

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-

विरचितया अनुयोगचन्द्रिकाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

हिन्दी-गुर्जर-भाषाऽनुवादसहितम्

श्री अनुयोगद्वारसूत्रम्

(प्रथमो भागः)

नियोजक :

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि

पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशकः

साणंदनिवासी-श्रेष्ठिश्री डोसाभाई गोपालदासस्मरणार्थं

तत्पुत्रप्रदत्त-द्रव्यसाहाय्येन

अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः

श्रेष्ठि-श्रीशान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः

मु० राजकोट

प्रथमा-आवृत्ति.

वीर-संवत्

विक्रम-संवत्

ईसवीसन्

प्रति १२००

२४९३

२०२३

१९६७

मूल्यम्-रु० २५-०-०

भजनानुं ठेकाण्ड :
श्री आ. ला. प्रवे. स्थानकेवासी
नैनशास्त्रोद्धार समिति,
ठ. गरेडिया कृपा रोड,
राजकोट, (सौराष्ट्र).



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्यं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुलपृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

मूल्यः ३. २५=००

प्रथम आवृत्ति प्रत १२००
वीर संवत् २४६३
विक्रम संवत् २०२३
धसवीसन १९६७

: मुद्रक :
भण्डालाल छगनदास शाह
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस,
धीकांटा रोड, अमदावाद.

श्री
अनुयोगद्वारसूत्र भाग पहले की
विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
१	मंगलाचरण	१-२
२	विषयों का विवरण	३-१३
३	पांच प्रकार के ज्ञान के स्वरूप का निरूपण	१३-२९
४	श्रुतज्ञान के स्वरूप का निरूपण	३०-५७
५	आवश्यक के अनुयोगस्वरूप का निरूपण	५८-६०
६	आवश्यक के निक्षेप का निरूपण	६१-६३
७	नामावश्यक के स्वरूप का निरूपण	६४-७२
८	स्थापनावश्यक के स्वरूप का निरूपण	७२-७७
९	नामावश्यक और स्थापनावश्यक के भेद का कथन	७८-८५
१०	द्रव्यावश्यक का निरूपण	८६-१०१
११	नयभेद से द्रव्यावश्यक के स्वरूप का निरूपण	१०२-११५
१२	नो आगम से द्रव्यावश्यक का निरूपण	११६-११९
१३	ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक का निरूपण	११९-१२६
१४	भव्यशरीर द्रव्यावश्यक निरूपणम्	१२७-
१५	ज्ञायक शरीर भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का निरूपण	१३१-१३२
१६	लौकिक द्रव्यावश्यक का निरूपण	१३२-१४१
१७	कुमात्रचनिक द्रव्यावश्यक का निरूपण	१४२-१५०
१८	ज्ञायक शरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त लोकोत्तरीय द्रव्यावश्यक का निरूपण	१५०-१५९
१९	भावावश्यक का निरूपण	१५९-१६४
२०	नो आगम भावावश्यक का निरूपण	१६४-१६८

२१	कुप्रावचनिक भावावश्यक का निरूपण	१६८-१७०
२२	लोकोत्तरीय भावावश्यक का निरूपण	१७१-१७७
२३	भावावश्यक के पर्याय का निरूपण	१७८-१८२
२४	नामश्रुतका निरूपण	१८३-१८४
२५	आगम से द्रव्य श्रुतका निरूपण	१८४-१८६
२६	नो आगम से द्रव्यावश्यक का निरूपण	१८६-१८७
२७	ज्ञायक शरीर द्रव्यश्रुतका निरूपण	१८७-१८८
२८	भव्यशरीर द्रव्यश्रुतका निरूपण	१८९-१९०
२९	ज्ञायक शरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुतकानिरूपण	१९०-१९९
३०	आगमसे भावश्रुतका निरूपण	२००-२०१
३१	लौकिक नो आगम से भावश्रुतका निरूपण	२०२-२०५
३२	लोकोत्तरीय नो आगमसे भावश्रुतका निरूपण	२०६-२१०
३३	भावश्रुत के पर्यायों का निरूपण	२१०-२१२
३४	स्कन्धाधिकार का निरूपण	२१३-२१५
३५	द्रव्यस्कन्ध का निरूपण	२१६-२१८
३६	द्रव्यस्कन्ध के सचित्तरूप प्रथम भेद का निरूपण	२१९-२२१
३७	अचित्त द्रव्यस्कन्ध का निरूपण	२२२-२२३
३८	मिश्र द्रव्यस्कन्ध का निरूपण	२२४-२२७
३९	अकृत्स्नस्कन्ध का निरूपण	२२८-२३०
४०	अनेक द्रव्यस्कन्ध का निरूपण	२३१-२३४
४१	आगमसे भावस्कन्ध का निरूपण	२३५-
४२	नो आगमसे भावस्कन्ध का निरूपण	२३६-२३८
४३	स्कन्धों के पर्यायों का निरूपण	२३९-२४१
४४	आवश्यक के छ अध्ययनों का निरूपण	२४१-२४५
४५	आवश्यक व्याख्यात हो चुके और आगे व्याख्यात होने वाले विषय का निरूपण	२४५-२५१
४६	लौकिक उपक्रम का निरूपण	२५१-२५३

४७	सचित्त द्रव्योपक्रम का निरूपण	२५४-२५७
४८	द्विपद संबंधी द्रव्योपक्रम का निरूपण	२५७-२५९
४९	चतुष्पद विषयक दोनों प्रकार के उपक्रम का निरूपण	२६०-२६१
५०	अपद विषयक दोनों प्रकार के उपक्रम का निरूपण	२६१-२६२
५१	अचित्त द्रव्योपक्रम का निरूपण	२६२-२६३
५२	मिश्र द्रव्योपक्रम का निरूपण	२६३-२६५
५३	क्षेत्रोपक्रम का निरूपण	२६६-२६९
५४	कालोपक्रम का निरूपण	२६९-२७१
५५	नो आगम से भावोपक्रम का निरूपण	२७१-२८४
५६	शास्त्रभावोपक्रम का निरूपण	२८४-२८५
५७	आनुपूर्वीमादि के स्वरूप का निरूपण	२८६-
५८	नामादि आनुपूर्वी का निरूपण	२८७-३०४
५९	अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का निरूपण	३०५-३१६
६०	नैगमव्यवहारार्थपदका निरूपण	३१७-३१९
६१	भङ्गसमुत्कीर्तनता का निरूपण	३१९-३२७
६२	भङ्गोपदर्शनता का निरूपण	३२७-३३४
६३	समवतार के स्वरूप का निरूपण	३३५-३३९
६४	अनुगमके स्वरूप का निरूपण	३३९-३४३
६५	सत्पद का निरूपण	३४३-३४४
६६	द्रव्यप्रमाण का निरूपण	३४५-३४७
६७	क्षेत्रप्रमाण का निरूपण	३४८-३५५
६८	स्पर्शनाद्वार का निरूपण	३५५-३६०
६९	कालद्वार का निरूपण	३६१-३६४
७०	अन्तरद्वार का निरूपण	३६५-३७६
७१	भागद्वार का निरूपण	३७६-३८३
७२	भावद्वार का निरूपण	३८३-३८७

७३ अल्प बहुत्वद्वार का निरूपण	३८७-३९७
७४ अर्थपद का निरूपण	३९९-४०२
७५ भङ्ग समुत्कीर्तनता का निरूपण	४०३-४०५
७६ भङ्गोपदर्शनता का निरूपण	४०६-४०८
७७ समवतार के स्वरूप का निरूपण	४०८-४१०
७८ अनुगम के स्वरूप का निरूपण	४१०-४२४
७९ पूर्वानुपूर्वी आदि तीन भेदों का निरूपण	४२५-४३१
८० पुद्गलास्तिकायकों अधिकृत करके तीन द्रव्यों का निरूपण	४३१-४३८
८१ क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	४३९-४४२
८२ अर्थपद की प्ररूपणा	४४२-४४८
८३ अर्थपद प्ररूपणा के प्रयोजन का निरूपण	४४९-४५०
८४ भङ्गसमुत्कीर्तनता के प्रयोजन का निरूपण	४५१-४५२
८५ भङ्गोपदर्शनता का निरूपण	४५२-४५६
८६ समवतार का निरूपण	४५६-४५७
८७ अनुगम का निरूपण	४५८-४५९
८८ द्रव्यप्रमाण का निरूपण	४६०-४६४
८९ क्षेत्रप्रमाणद्वार का निरूपण	४६५-४७७
९० स्पर्शनाद्वार का निरूपण	४७७-४७९
९१ कालद्वार का निरूपण	४८०-४८४
९२ अन्तरद्वार का निरूपण	४८५-४९०
९३ भागद्वार का निरूपण	४९१-५००
९४ भावद्वार का निरूपण	५०१-५०२
९५ अल्पबहुत्वद्वार का निरूपण	५०३-५१०
९६ अत्रौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५११-५१६
९७ औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५१६-५२३
९८ अधोलोक गत क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५२३-५२६

१९९	तिर्यग्लोक क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५२७-५३२
१००	ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५३३-५३९
१०१	कालानुपूर्वी आदि का निरूपण	५३९-५४०
१०२	नैगमव्यवहारनयसंमत अर्थपद का निरूपण	५४१-५४७
१०३	नैगमव्यवहारनयसंमत भङ्गसमुत्कीर्तन का निरूपण	५४८-५५०
१०४	नैगमव्यवहारनयसंमत मङ्गोपदर्शन का निरूपण	५५१-५५४
१०५	समस्तार के स्वरूप का निरूपण	५५५-५५६
१०६	अनुगम के स्वरूप का निरूपण	५५७-५६२
१०७	क्षेत्रद्वार और स्पर्शनाद्वार का निरूपण	५६३-५७३
१०८	कालद्वार का निरूपण	५७४-५७७
१०९	अन्तरद्वार का निरूपण	५७७-५८७
११०	अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का निरूपण	५८७-५८८
१११	अर्थपदप्ररूपण आदि का निरूपण	५८८-५८९
११२	औपनिधिकी कालानुपूर्वी का निरूपण	५९०-६०१
११३	उत्कीर्तनानुपूर्वी का निरूपण	६०१-६०५
११४	गणनानुपूर्वी का निरूपण	६०५-६०८
११५	संस्थानानुपूर्वी का निरूपण	६०८-६१४
११६	सामाचार्यानुपूर्वी का निरूपण	६१४-६२३
११७	भावानुपूर्वी का निरूपण	६२३-६२८
११८	उपक्रम के दूसरेभेद नाम का निरूपण	६२८-६३०
११९	एक नाम के स्वरूपका निरूपण	६३०-६३२
१२०	द्विनाम आदिके स्वरूपका निरूपण	६३३-६४४
१२१	त्रिनाम के स्वरूपका निरूपण	६४५-६६६
१२२	पर्यवनामका निरूपण	६५५-६६६
१२३	प्रकारान्तरसे त्रिनामका निरूपण	६६६-६७१
१२४	चतुर्नामका निरूपण	६७१-६७७
१२५	पांचनामों का निरूपण	६७७-६७९
१२६	छ नामों का निरूपण	६७९-६८२
१२७	औदयिकादि भावों के स्वरूपका निरूपण	६८२-६९१
१२८	औपशमिक भावका निरूपण	६९३-६९६

१२९	क्षायिक भावका निरूपण	६९७-७१९
१३०	सायोपशमिक भावका निरूपण	७२०-७३५
१३१	पारिणामिक भावका निरूपण	७३५-७४५
१३२	सान्निपातिक भावका निरूपण	७४५-७४६
१३३	द्विकादि संयोगका निरूपण	७४७-७६६
१३४	द्विकादि त्रिकसंयोगज सांनिपातिकभावका निरूपण	७५७-७७२
१३५	चतुष्कसंयोगज सांनिपातिक भावका निरूपण	७७२-७८२
१३६	पंचक संयोगज सांनिपातिक भावका निरूपण	७८२-७८८
१३७	सप्तनामका निरूपण	७८९-७९२
१३८	कारणदर्शनपूर्वक स्वरीका निरूपण	७९२-७९८
१३९	सात स्वरी के लक्षण का निरूपण	७९८-८०२
१४०	स्वरी के ग्राम एवं मूर्च्छना का निरूपण	८०३-८०५
१४१	स्वर के उत्पत्ति आदि का निरूपण	८०६-८०८
१४२	गीत में हेय और उपादेय का निरूपण	८०८-८२१
१४३	अष्ट नाम का निरूपण	८२१-८२७
१४४	नव नाम का निरूपण	८२८-८३३
१४५	लक्षणपूर्वक वीररस का निरूपण	८३३-८३६
१४६	लक्षणपूर्वक शृंगाररस का निरूपण	८३६-८३९
१४७	लक्षण सहित अद्भुतरस का निरूपण	८३९-८४०
१४८	लक्षण सहित रौद्ररस का निरूपण	८४१-८४४
१४९	लक्षणसहित व्रीडनकरस का निरूपण	८४५-८४८

समाप्त



પટેલ ડોસાભાઈ ગોપાલદાસ

સુ. સાણંદ (જી. અમદાવાદ)



જન્મ : તા. ૧૭-૧-૧૮૭૦

મરણ : તા. ૫-૬-૧૯૬૪

સાણુંદનિવાસી ધર્માનુરાગી સ્વ. શ્રી ડોસાભાઈ ગોપાળભાઈ પટેલનું

સંક્ષિપ્ત જીવનચરિત્ર

સાણુંદ (જી. અમદાવાદ) નિવાસી પટેલ ડોસાભાઈનો જન્મ વિક્રમ સંવત ૧૯૨૬ તા. ૧૭-૧-૧૯૭૦ના રોજ થયો હતો. તેઓ એ ભાઈઓ હતા. મોટા હરીભાઈ અને નાના ડોસાભાઈ તેઓ કડવા પાટીદાર જ્ઞાતિના હતા. કડવા પાટીદાર જ્ઞાતિમાં વૈષ્ણવધર્મી અને જૈનધર્મી હોય છે શ્રી ગોપાલજી ભાઈમાં જૈનધર્મના સંસ્કારો દૃઢ હતા. તેઓ સ્થાનકવાસી જૈનધર્મના ચુસ્ત અનુયાયી હતા તેથી તેમના બંને પુત્રોમાં જૈનધર્મના સંસ્કારો ખાલ્યાવસ્થામાંથી દૃઢ થયા હતા તેમના પૂર્વજો મૂળ અમદાવાદ પાસેના નરોડા ગામના વંતની હતા, પરંતુ સમય જતાં તેઓ સાણુંદમાં આવી વસ્યા હતા.

બંને પુત્રોએ ધાર્મિક શિક્ષણ સાથે ગુજરાતી શિક્ષણ લીધું, તે દરમિયાન બંને પુત્રોને બાળ-અવસ્થામાં છોડી પિતા ગોપાળભાઈ સ્વર્ગવાસ પામ્યા. માતા બંને પુત્રોને લઈ પોતાના પિયર ગયા ત્યારબાદ ૧૮ વર્ષની ઉંમરે ડોસાભાઈને લઈ તેમની માતા પુનઃ સાણુંદમાં આવી વસ્યા. ઈ સ. ૧૯૦૨માં શ્રી ડોસાભાઈનું શ્રીમંત કન્યા જડાવબાઈ સાથે ખીજવાર લગ્ન થયું જડાવબાઈ સરળ, ધાર્મિક અને સેવાપરાયણ હતા. પોતાના ખેતીના ધંધામાં જીવનનિર્વાહ ખરેખર ચાલતો ન હોવાથી ડોસાભાઈએ નોકરી સ્વીકારી ૩૦ વર્ષ સુધી નોકરી કર્યા બાદ અનાજના ધંધામાં પડ્યા અને પ્રમાણિકતા, મીઠી ભાષા વગેરે સદ્ગુણોથી તેઓએ ધંધામાં ખૂબ પ્રગતિ સાધી સાથે સાથે દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ પણ ઘણી સારી કરી.

શ્રી ડોસાભાઈ ધર્મના રંગથી ખરેખરા રંગાયેલા હતા સામાયિક, બંને વખત પ્રતિક્રમણ, વરસોનાવરસો સુધી કરેલી બંને વખતની આયખીલની સંપૂર્ણ ઝોળી, ઉપવાસાદિ તપશ્ચર્યા એ જૈનધર્મ પ્રત્યેની તેમની ભક્તિના અપૂર્વ પ્રતીકો હતાં.

પશુ-પ્રાણીઓ પ્રત્યેની તેમની હયા પ્રશંસનીય હતી. એકવાર તેઓ કોઈ ગામડામાં ઉધરાણીએ ગયેલા, ત્યાં રસ્તામાં ભૂખતરસથી પીડાતી એવી દુર્બળ ગાયને જોઈ, તેમનું હૃદય કરુણાથી ભરાઈ આવ્યું. તેમણે ગામલોકોને આ દુઃખી ગાયની વ્યવસ્થા કરવાનું કહ્યું પણ કોઈએ ગણુકાયું નહિ, તેથી ડોસાભાઈ પોતાની ઉધરાણીના કામને જતું કરી તરતજ ગામમાંથી એક ગાડું ભાડે લાવી તેમાં ગાયને તેમાં નાખી, સાણુંદ લાવ્યા અને પાંજરાપોળમાં મૂકી પોતાના તરફથી તેના ધાંસચારાનો સંપૂર્ણ બંદોબસ્ત કર્યો,

સાધુમુનિરાજે પ્રત્યે તેમને અનન્ય લક્ષિત હતી ગામમાં સંતસતીશ્રીઓ મિરાજતા હોય ત્યારે તેમના દર્શન કર્યા પહેલાં તેઓ કદી અન્નજળ લેતા ન હતા. સંઘના દરેક કાર્યમાં તેમનો તન, મન, ધનનો હમેશાં સક્રિય સહકાર રહેતો તેમણે અને તેમના પુત્રોએ અમદાવાદ દાણા ખજારમાં (કાળુપુર-ચોખાખજાર) અનાજની જથ્થાબંધ દુકાન શરૂ કરી તેની સાથે તેમણે પેઢીમાં પોતાનું નામ રાખવાનું ખીલકુલ પસંદ કર્યું નહિ તેઓ જૈન ધર્મના સૂક્ષ્મ તત્ત્વોને જાણતાં હોઈ, તેમણે “ક્રિયા”, (પાપની રાયાઈ) આવવાનાં કારણે નામ સ્થાપનાથી મુક્ત થયા છેલ્લા કેટલાયે વરસોથી તેઓ નિવૃત્ત ધાર્મિક જીવન ગાળતા.

તેઓ સાદુ જીવન ગાળતા જીંદગીમાં તેમણે કદી ડોક્ટરની દવા સુદ્ધાં લીધી ન હતી. તેઓએ ખૂબજ લાંબુ આયુષ્ય લોગવી, ૬૫ વર્ષની ઉંમરે સંવત ૨૦૨૦ ના વૈશાખ વદ દશમ તા. ૫-૬-૧૯૬૪ના રોજ ખૂબજ સમતાપૂર્વક સ્વર્ગગમન કર્યું. તેમને પોતાના અંતિમ સમયની જાણ થઈ હોય તેમ તેમણે પોતાના જ્યેષ્ઠ પુત્ર મહાસુખલાઈને કહી દીધું કે સરસ્ત કુટુંબને અહિં એકત્ર કરો તે મુજબ આજુ કુટુંબ તેમની પાસે હાજર થયું સૌની ક્ષમાયાચના કરી અને પવિત્ર નવકરમંત્રના શાંત જાપપૂર્વક તેઓ આ ક્ષાની દુનિયાનો ત્યાગ કરી ગયા અને પોતાના મનુષ્યજીવનને ધન્ય બનાવી ગયા.

શ્રી ડે.સાલાઈને એક પુત્રી અને ત્રણ પુત્રો છે. પુત્રી મહાલક્ષ્મીબેન ધર્મના સંસ્કારથી ભૂષિત છે ત્રણ પુત્રો (૧) મહાસુખલાઈ (૨) બલદેવલાઈ (૩) ચમનલાલલાઈ જેઓ પોતાના અનાજના વ્યવસાયમાં રોકાયેલ હોવા છતાં જૈનધર્મમાં ઉત્થાન કાર્યમાં સારો ફાળો આપે છે, જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમીતીને તેમણે પોતાના સદ્ગત પિતાશ્રી ડે.સાલાઈની પુણ્યસ્મૃતિમાં રૂ. ૫૦૦૧ આપીને છે અને આ આગમ તેમન સ્મરણાર્થે પ્રગટ કરાવેલ છે.

તેમના જ્યેષ્ઠ પુત્ર મહાસુખલાઈ વર્ષો સુધી સરકારી સ્કૂલમાં અધ્યાપક કરીકે રહ્યા હતા. હાલ પોતાની અનાજની પેઢીમાં ધીકનો વ્યવસાય કરી રહ્યા છે ખીજા પુત્ર શ્રી બલદેવલાઈ અમદાવાદ જૈન મચાન્દસ એસોસીએશનના પ્રમુખ પદ પર છે અને ત્રીજા પુત્ર શ્રી ચીમનલાઈ શિક્ષણપ્રિય સજ્જન છે. ત્રણે ભાઈઓનો ફાળો જૈનધર્મના કાર્યોમાં સહકાર ભરતો રહેલ છે તે ખરેખર આનંદજનક છે.

રાજકોટ

માનદ્મંત્રીઓ

તા. ૨૫-૬-૧૯૬૭

અ. ભા. શ્રે. સ્થા. જૈન. શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ.

આધુરુજીશ્રીઓ



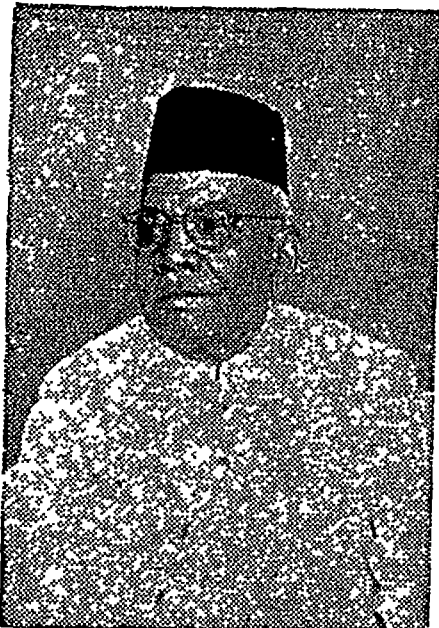
શ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ.



(સ્વ.) શ્રી શામળભાઈ વેલ્હલભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



(સ્વ.) શ્રી છગનલાલ શામળદાસ ભાવસાર - અમદાવાદ.



શ્રી રામળભાઈ શામળભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



વચ્ચે બેઠેલા
લાલાળ કિશનચંદળ સા. જોહરી
ઉમેલા સુપુત્ર ચિ. મહેતાબચંદળ સા
નાના - અનિલકુમાર જૈન (દાયતા)

આધુનિકીશ્રીઆ



(સ્વ.) શેઠશ્રી હરભયંદ કાદીદાસ વારિઆ
ભાણુવડ.



(સ્વ.) શેઠ રંગભાઈ મોહનલાલ શાહ
અમદાવાદ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી દિનેશભાઈ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ.



શ્રી વિનોદભાઈ વીરાણી



શેઠશ્રી નેસિંગભાઈ પોચાલાલભાઈ
અમદાવાદ.



સ્વ. શેઠશ્રી આત્મારામ માણેકલાલ
અમદાવાદ.

આધ્યમુરખીશ્રીઓ



શ્રી વૃજલાલ દુલ્લલ પારેખ
રાજકોટ.



કેઠારી હરશોવિંદ જૈયંદલાઈ
રાજકોટ.



શેઠશ્રી મિશ્રીલાલ લાલચંદળ સા. હુણિયા
તથા શેઠશ્રી જૈવંતરાજ લાલચંદળ સા.



(સ્વ.) શેઠશ્રી ધારશીલાલ જૈવંતરાજ
બારસી.



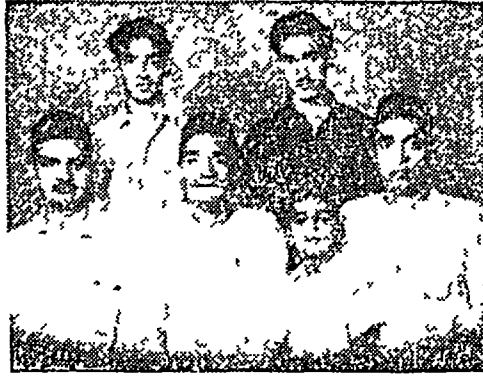
સ્વ. શ્રીમાન્ શેઠશ્રી મુકુન્દચંદળ સા.
બાલિયા પાલી મારવાડ



સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
ખંભાત.



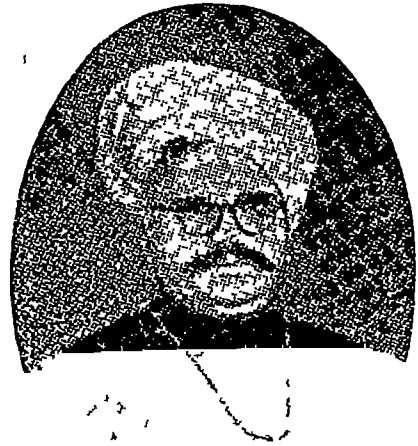
સ્વ. શેઠ તારાચંદજી સાહેબ ગેલડા
મદ્રાસ.



શ્રીમાન્ શેઠ સા. ત્રીમનલાલજી સા.
ક્રમચંદજી સા. અજીતવાલે (સપરિવાર)



૧ વચ્ચે ગેડેલા મોઢાલાઈ શ્રીમાન્ મૂલચંદજી
૨ જવાહીરલાલજી ખરડિયા
૩ બાલુમાખેડેલા ભાઈ મિશ્રીલાલજી ખરડિયા
૩ ઉમેલા સૌથી નનાભાઈ પૂનમચંદ ખરડિયા



શ્રીમાન્ સેઠશ્રી
શ્રીમરાજજી સા. ચોરડિયા

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री जैनाचार्य—जैनधर्मदिवाकर—पूज्यश्री घासीलालव्रतिविरचितया
अनुयोगचन्द्रिकाख्यया व्याख्यया समलङ्कितम्—

श्री_अनुयोगद्वारसूत्रम्

(प्रथमो भागः)

(मालिनी वृत्तम्)

शिवसरणिविधानं जीवरक्षैकतानं,
सुरनरकृतगानं केवलज्ञानभानम् ।
प्रशमरसनिदानं ज्ञानदानप्रधानं,
परमसुखनिधानं वर्धमानं नमामि ॥ १ ॥

(२)

करणचरणधारं सर्वपूर्वाब्धिधारं,
शुभतरगुणधारं प्राप्तसंसारपारम् ।
कलितसकललब्धि लब्धविज्ञानसिद्धिं,
गणधरमभिरामं गौतमं तं नमामि ॥ २ ॥

॥ श्री ॥

अनुयोगद्वार सूत्र का हिन्दी भाषान्तर प्रारम्भ

मैं उन अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ कि जिन्होंने ४ घातिक कर्मों का अत्यंत विनाश करके केवलज्ञानरूपी अनन्त प्रकाश प्राप्त कर लिया है। और इसी कारण जो मोक्षमार्ग के विधायक तथा अनन्त अव्यावाध सुख के निधान (निधि) बने हैं। भव्य जीवों को जो प्रधानरूप से ज्ञान का दान देते हैं और जीवों की रक्षा करने में सदा तत्पर रहते हैं। देव और मनुष्य जिनके गुणों का गान करते हैं तथा जो प्रशम (शांत) रस के निदान—आदिकारण हैं ॥१॥

अनुयोगद्वार सूत्रनुं भाषान्तर प्रारंभ—

जेमणे चार घातिया कर्मोने संपूर्णतः क्षय करीने केवलज्ञानरूपी अनन्त प्रकाशने प्राप्त करी लीधा छे, अने ते कारणे जेयो मोक्षमार्गना विधायक तथा अनन्त अव्यावाध सुखना निधान (निधि) बनेला छे, जेयो लव्य जेवोने मुष्यत्वे ज्ञाननुं दान हे छे अने जेवोनी रक्षा करवाभा जे सदा तत्पर रहे छे, जेयो अने मनुष्यो जेमना गुणो गाय छे, अने जेयो शान्तरसना निदान आदिकारणु छे जेवां अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर जिनेन्द्रने हुं नमस्कार करे छुं ॥ १ ॥

(पृथ्वीच्छन्दः)

सगुप्तिसमितिं समां विरतिमादधानं सदा,
 क्षमावदखिलक्षमं कलितमञ्जुचारित्रकम् ।
 सदोरमुखवस्त्रिका विलसिताननेन्दुं गुरुं,
 दुरन्त भववारिधिप्लवमपूर्वबोधं स्तुवे ॥३॥
 (गीतिः)

भव्यानामुपकृतये, प्रवचनसिद्धान्तबोधिनीं सरलाम् ।
 घासीलालः कुरुते, व्याख्यामनुयोगचन्द्रिकां शिवदाम् ॥ ४ ॥

जो करणसत्तरि और चरणसत्तरि के धारण करने वाले हैं। समस्त १४ पूर्वरूप समुद्र के जो पारगामी हैं। अत्यन्त श्रेष्ठ सम्यग्दर्शनादि गुणों के जो धारक हैं। संसार का पार जिन्होंने पा लिया है। समस्त लब्धियाँ के जो भंडार हैं विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) को सिद्धि जिन्हें प्राप्त हो चुकी है— ऐसे उन मुनिश्रेष्ठ गौतम गणधर को मैं नमस्कार करता हूँ। ॥२॥

जो तीन गुप्तियों सहित पांच समितियों को और समस्त विरति को सदा धारण करते हैं। पृथ्वी की तरह जो सर्वसह हैं। निर्मल चारित्र के जो आराधक हैं। वायुकायादिक जीवों की रक्षा के लिये सदोरकमुख-वस्त्रिका से जिन का मुखचन्द्र सर्वदा सुशोभित होता रहता है। जो इस दुरन्त संसाररूप समुद्र में प्रवहण-(नौका) के जैसे हैं। ऐसे अर्पूर्व बोध विशिष्ट गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ। ॥३॥

जेथो करणसत्तरि (सत्तर करण) अने चरणसत्तरि (सत्तर चरण)ना धारक छे, समस्त १४ पूर्वरूप समुद्रने पार जेभले पामी दीधा छे, अत्यंत श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन-आदि गुणोथी जेथो विलुषित छे, जेभले पोताना संसारने अन्त करी नाथ्ये छे, जेथो समस्त लब्धियोना भंडार छे, अने विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान)नी सिद्धि जेभने थछ चुकी छे जेवां मुनिश्रेष्ठ गौतम गणधरने हुं नमस्कार करे छुं ॥ २ ॥

त्रणु गुप्तियो अने पांच समितियो तथा समस्त विरतिने सदा धारण करनाश, पृथ्वीना जेवा सहिष्णु, निर्मल चारित्रना आराधक, सदोरकमुखवस्त्रिका (मुहुपत्ती) वडे जेभतुं मुखचन्द्र सदा सुशोभित रहे छे, जेथो आ दुरन्त संसारमां भ्रमण करतां छेवो माटे नौका समान छे, जेवां अपूर्व बोधविशिष्ट गुरुदेवने हुं नमस्कार करे छुं ॥ ३ ॥

इह मनुष्यजन्म दुर्लभं, यथा—केनाऽपि क्रीडापरेण देवेन यदि माणिक्य-
मयं स्तम्भं वज्रेण चूर्णीकृत्य परमाणुतुल्यं तच्चूर्णं नलिकान्तर्निधाय मेरुशिखरं
समारूढ्य फूत्कृतसमीरणैस्तच्चूर्णं सकलं सर्वतः समुद्घायितं भवेत् । तदनन्तरं च
यदि विक्षिप्तास्ते परमाणवः प्रचण्डपवनोद्भूताः सर्वासु दिक्षु दूरं गता एकै
कशो विभिन्नाः पतिताः स्युस्तदा तान् परमाणुरूपान् सर्वतः संचित्य तैः पुनः

मैं घासीलाल मुनिव्रति भव्य जीवों के उपकार के निमित्त प्रवचन के सिद्धान्त
को स्पष्ट करनेवाली अनुयोगद्वार सूत्र पर अनुयोगचन्द्रिका नाम की सरल
व्याख्या की कि जो भव्य जीवों के लिये आनन्दप्रद है—रचता हूँ । ॥४॥

इस चतुर्गतिरूप संसार में मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ है । इस की
दुर्लभता शास्त्रकारोंने इस प्रकार से—प्रकट की है—जैसे क्रीडा में तत्पर बना
हुआ कोई—देव माणिक्य के स्तम्भ को वज्र से तोडकर चूर २ कर देवें,
और फिर उस चूर्ण को एक नली के भीतर भरकर मेरु के शिखर पर खडा
२ अपनी फूंक से इधर उधर दिशाओं में उसे सब ओर उडादेवें । इस तरह
सर्व दिशाओं में विखरे हुए वे चूर्ण परमाणु कि जिन्हें प्रचंड वायु के वेग
ने एक २ करके बहुत अधिक दूरतक तितर बितर कर लिया है अब यदि
वह देव—उन विखरे हुए विभिन्न परमाणुओं को सर्व दिशाओं से एकत्रित

भव्य एवोना उपकारने भाटे, प्रवचनना सिद्धान्तानुं स्पष्टीकरण करनारी,
अनुयोगद्वार सूत्रनी अनुयोगचन्द्रिका नामनी सरल व्याख्या, के ले भव्य एवोने
भाटे आनन्दप्रद छे, तेनी हुं घासीलाल ए मुनि, रचना करे हूँ । ॥ ४ ॥

चार गतिवाणा आ संसारमां मनुष्यजन्मनी प्राप्ति थवी बणी हुंकर छे.
तेनी हुंकरतानुं शास्त्रकारोये नीचेना दृष्टान्त द्वारा प्रतिपादन कथुं छे.

धारे के डोछ अेक देव क्रीडांमां तत्पर भनेलो छे. ते वज्रनी महदथी भाणुकना
स्तंभने तोडी नाभीने तेना चूरेचूरा करी नाये छे. त्थार भाद ते चूर्णने अेक
नलींमां लरी ले छे. त्थारभाद ते देव ते भाणुकना बूकाथी लरेली नलींने लधने
भेइ पर्वतना शिखर उपर जधने जलो रहे छे अने कूंक भारी भारीने ते नलींमां
लरेला भाणुकना बूकाने चारे दिशाओमां उडाडी हे छे. त्थार भाद प्रचंड वायु
कुंकावाने लीधे चारे दिशाओमां विभरायेला ते भाणुकना परमाणुओ हूर हूर सुधी
छाडी जधने वेर विभेर थध जय छे. हुवे धारे के ते देव अेबे विचार करे के
सर्व दिशाओमां वेरविभेर पडेला ते भाणुकना परमाणुओने अेकत्र करीने करीथी

स्तम्भनिष्पादनं दुष्करं, तथैव चतुर्गतिसंसारेषु भ्रमतां जीवानां मनुष्यजन्म दुर्लभम् तथा चायं संग्रहःश्लोकः—

“चूर्णीकृत्य पराक्रमान्मणिमयं स्तम्भं सुरेण स्वयं,

मेरौ सन्नलिकासमीरवशतः क्षिप्तं रजो दिक्षु तत् ।

स्तम्भस्तः परमाणुभिः सुमिलितैर्लोकै यथा दुष्करः,

संसारे भ्रमतो मनुष्यजननं जन्तोस्तथा दुर्लभम्” ॥ इति ॥

एवंविधमतिदुर्लभं मानुषं जन्म सम्प्राप्य, मिथ्यात्वतिमिरप्रणाशकं श्रद्धाज्योतिःप्रकाशकं तत्त्वातत्वविवेचकं पीयूषपानमिव हितावहं चञ्चच्चन्द्र-चन्द्रिकामिव हृदयाह्लादक स्वप्नदृष्टवस्तुनः पुनर्जाग्रदवस्थायां—तल्लाभवत्प्रमोदजनकं भूमिगननिधानप्राप्तिमिव सुखजनकसकलसन्तापहारकं धर्मश्रवणं समुपलभ्य,

कर पुनः उनसे मणिमय स्तंभ बनाना चाहे तो जिस प्रकार यह स्तंभ निर्माण कार्य उमका दुष्कर है, उसी प्रकार से इस चतुर्गतिरूप संसार में भटकते हुए जीवों को मनुष्य जन्म-मिलना दुर्लभ है । यही बात इस “चूर्णीकृत्य—इत्यादि श्लोक द्वारा कही गई है । इस तरह से अति दुर्लभ बने हुए मनुष्यजन्म को पाकर-के और इसमें भी मिथ्यात्वरूप अन्धकार को नाश करनेवाले, श्रद्धारूप ज्योति का प्रकाश करनेवाले एवं तत्त्व और अतत्त्व का स्वरूप कहने वाले, ऐसे धर्म का श्रवण कि जौ जीव के लिये अमृतपान के समान हितकारक है—चमकती हुई चन्द्रिका के समान, हृदयानन्दजनक है—जागृत अवस्था में स्वप्नदृष्ट वस्तुकी प्राप्ति के समान प्रमोदकारक है, भूमिगतनिधान की प्राप्ति के समान सुख-दायक और समस्त सन्तानों का नाशक है, प्राप्त करके तथा इसके प्रभाव से

तेमांथी भाण्डिक्य स्तंभानुं निर्माणुं कर्त्तुं । ते ते वेर विष्णु रथने पडेला परमाणुओने ओकत्र करीने तेमांथी भाण्डिक्य स्तंभानुं निर्माणुं करवानुं काम ते देवने भाटे जेटलुं दुष्कर छे, जेटलुं न दुष्कर चार गतिवाणा आ संसारमां लटकतां जेवने भाटे मनुष्य जन्मनी प्राप्तिइय कार्य छे. जेवात सूत्रकारे “चूर्णीकृत्यः” इत्यादि श्लोक द्वारा प्रकट करी छे.

आ रीते अति दुर्लभ जेवा मनुष्यजन्मने प्राप्त करीने, मिथ्यात्वइय अंध-कारने नाश करनार, श्रद्धाइपी ज्योतिने प्रकाशित करनार, तत्त्व अने अतत्त्वना स्व-इयतुं प्रतिपादन करनार, जेवा धर्मनुं श्रवणुं के जे जेवने भाटे अमृतपान समान हितकर छे, जे चमकती जेवी चन्द्रिकाना प्रकाशसमान हृदयने आनंददायक छे, जागृत अवस्थामां जे स्वप्नदृष्ट वस्तुनी प्राप्तिना समान प्रमोदकारक छे, जे भूमिनी

संसारसागरतरणतरणि मिथ्यात्वतिमिरहरणद्युमणि स्वर्गापवगसुखचिन्तामणि
क्षपकश्रेणिसरणि कर्मरिपुदमनीं केवलदर्शनजननीं श्रद्धामवाप्य, कर्मरजः
प्रक्षालने जलमिव भोगभुजङ्गनिवारणे मंत्रमिव, कर्मघनाघनविकरणे पवनमिव-
केवलज्ञानभास्करप्रकटने प्राचीदिशमिव साद्यन्तमुक्तिसाम्राज्याभिलषित-
प्राप्तौ कल्पवृक्षमिव संयम लब्धा, हे गोपादे स्वन्तुस्वल्पनिरूपकाण्यवगाधा-

संसारसागर से पार उतारने के लिये, तरणि—नौका—जसी मिथ्यात्वरूप-
गहन अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य जैसी स्वर्ग और मोक्ष के सुखां
को देने के लिये चिन्तामणि जैसी और क्षपकश्रेणि पर आरूढ कराने के
लिये नसैनी (निसरणी) जैसी, ऐसी श्रद्धा को कि जो जीवों के अनादि संचित
कर्मरूप रिपुओं को नाश करने वाली होती है एवं केवलज्ञान और केवल-
दर्शन को जन्म देने वाली होती है प्राप्त करके तथा जल के समान संचित
कर्मरूपरज को धोनेवाले मंत्र के समान भोगरूप भृङ्ग को दूर करनेवाले,
पवन के समान भविष्यत् कालीन कर्मरूप मेघों को उडा देनेवाले, अर्थात्
(विखेरनेवाले) पूर्व दिशा के समान केवलज्ञानरूप सूर्य को प्रकटित करने-
वाले, और कल्पवृक्ष के समान सादि-अनंत मुक्ति के साम्राज्यरूप इच्छित
पदार्थ की प्राप्ति करा देने वाले, ऐसे संयम को प्राप्त करके तथा—हेय

नीचे छुपायेला भजनानी प्राप्तिसमान सुभदायक छे, जे समस्त संतापोनुं नाशक
छे, जेवा धार्मिक प्रवचननुं लाविक जेव श्रवणु करवुं जेधजे.

आ प्रकारना धर्मश्रवणुने प्राप्त करीने, तेना प्रभावथी संसारसागरने पार
करवाने माटे श्रद्धानी आस जर रहे छे ते श्रद्धाने अर्ही नौका समान कही छे,
कारणु के संसारसागरने पार करवामां ते नौकानी गरज सारे छे. जेवी नौका
समान, मिथ्यात्वरूप गहन अन्धकारने लेहवामां सूर्यसमान, स्वर्ग अने मोक्षना
सुभ प्राप्त कराववामां चिन्तामणि रत्न समान क्षपकश्रेणि पर आरोहणु कराववामां
निसरणी समान, जेवी श्रद्धा धर्मतत्त्व प्रत्ये होवी जेधजे. जेवी श्रद्धा जेवोना
अनादि काणथी संचित कर्मरूप शत्रुजोना नाश करनारी अने केवलज्ञान अने
केवलदर्शननी प्राप्ति करावनारी होय छे.

जणनी जेम संचित कर्मरूप रजने धानार, मंत्रनी जेम लोगरूप भुङ्गने
दूर करनार, पवननी जेम भविष्यकालिन कर्मरूप वाहणोने अस्तव्यस्त करी नाभनार,
प्राची दिशा (पूर्व दिशा) समान केवलज्ञानरूप सूर्यने प्रकट करनार, अने कल्पवृक्ष
समान सादिअनंत मुक्तिसा साम्राज्यरूप इच्छित पदार्थनी प्राप्ति करावनार जेवा

सुखजनकानि आचाराङ्गादिसूत्राणि विधिवदधीत्य, संसारवारिधिमहातरणि शिव-
पद-सरलसरणि सिद्धिपददायकं सवलगुणनायकम् अनादि भवसंचिताष्टविध-
कर्मबन्धनोच्छेदकं मिथ्यात्वग्रन्थिभेदकं सम्यग्ज्ञानवर्षणे समर्थं सूत्रपरमार्थं
स्वपरसमयग्रहस्य च विज्ञाय, तथाविधकर्मक्षयोपशमलम्भविनीं सकलतत्त्व
स्वरूपनिदर्शिनीं द्रव्यगुणपर्यायविषयविज्ञां विशदप्रज्ञां समधिगत्य, प्रवचनानु-
योगकरणे यतिभिर्यतितव्यम् ।

और उपादेयरूप वस्तुओं के स्वरूप के निरूपक एवं अव्याबाध सुख के जनक
आचाराङ्ग आदि-आगम शास्त्रों का सविधि अध्ययन करके, तथा-संसारमसुद्र
से पार उतारने में महातरणि जैसे-और शिवपद के सोपान जैसे, सूत्र के पर-
मार्थ को एवं स्व-पर समय के रहस्य को कि जिसके बल पर जीव को
सिद्धि गति की प्राप्ति होती है, और जीवों के अनादि भव परम्परा से
संचितअष्टविध कर्मों का समूह विनाश होता है तथा-मिथ्यात्वरूपी अन्तरंग
ग्रन्थि (गांठ)का जो भेदक होता है और सम्यग्ज्ञानरूपी वर्षा को जो बरसाने में
समर्थ होता है, जान करके, तथा तथाविधकर्म-ज्ञानावरणीय-के क्षयो-
पशम से उत्पन्न-हुई विशदप्रज्ञा को कि जो समस्त तत्त्वों के स्वरूप का यथार्थ
दर्शन कराती है, और जिसे-द्रव्यों के सहवर्ती गुणों एवं क्रमवर्ती पर्यायों
का वास्तविक भान होता है इस बात को जान करके मोक्षाभिलाषियों का
कर्तव्य है कि वे प्रवचन के व्याख्यान करने में प्रयत्नशील रहें ।

संयमने प्राप्त करीने तथा छेय अने उपादेयरूप वस्तुओंना स्वइपना निइपक अने
अव्याबाध सुभना जनक आचारांग आदि आगमशास्त्रोनुं विधिपूर्वक अध्ययन करीने
तथा संसार सागरने तरी जवामां महातरणि (नौका) जेवा. शिवपदना सोपान
समान, सूत्रना परमार्थने प्रकट करनार, स्व अने पर समयना (जैन सिद्धांत अने
अन्य सिद्धांतोना) रहस्यने प्रकट करनार, जेना प्रलावधी छुवने सिद्धिनी प्राप्ति
थाय छे, अनादि भव परम्पराथी संचित अष्टविध कर्मोना समूहने जेना द्वारा
विनाश थध जाय छे, तथा मिथ्यात्वइय अन्तरंग ग्रन्थिनुं जे लेदक होय छे, अने
सम्यक् ज्ञानइय वर्षा वरसाववाने जे समर्थ होय छे, जेवा प्रवचननुं श्रवण करवामां
तथा पठन करवामां छेवे तत्पर रहवुं जेधये ज्ञानावरणीय आदि कर्मोना क्षयोपशमथी
उत्पन्न थयेली विशद प्रज्ञा के जे समस्त तत्त्वोना स्वइपनुं यथार्थ दर्शन करावे
छे, अने जेना द्वारा द्रव्योना सहवर्ती गुणो अने क्रमवर्ती पर्यायोनुं वास्त-
विक भान थाय छे, जे वातने समछने मोक्षाभिलाषी छेवोये प्रवचननुं व्याख्यान
करवामां प्रयत्नशील रहवुं जेधये.

ननु कस्तावदनुयोगः ? उच्यते-युज्यते=संबध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योगः कथनलक्षणो व्यापारः, अनुरूपोऽनुकूलो वा योगः अनुयोगः । भगवद्भाषितार्थतो न्यूनाधिकविपरीतभाववैलक्षण्यमीषदपि गणधरोक्तसूत्रेषु नास्ति-इति भगवदुक्तार्थानुरूपः प्रतिपादनलक्षणो व्यापारोऽनुयोग-इति निष्कर्षः ।

अयमनुयोगश्चतुर्धा—(१) चरणकरणानुयोगः (२) धर्मकथानुयोगः, (३) गणितानुयोगः, (४) द्रव्यानुयोगश्च ।

शंका—अनुयोग शब्द का क्या अर्थ है,

उत्तर—भगवान् ने अर्थरूप से जो प्रवचन की प्ररूपणा की है उसी के अनुसार अनुकूल-जो वक्ता द्वारा प्रवचन का कथन किया जाता है—उसका नाम अनुयोग है ।

यहां पर कथन करनेरूप व्यापारका नाम योग है । भगवद्भाषित अर्थ को गणधरों ने सूत्ररूप से ग्रथित किया है । सो इस ग्रथनकार्य में उन्होंने अपनी तर्क से कुछ भी मिश्रण नहीं किया है—किन्तु जैसा प्रभु का कथन था उसी के अनुसार उन्होंने न्यूनता, अधिकता विपरीतता, एव भाववैलक्षण्य का परिहार करते हुए ज्यों का त्यों कथन किया है—उसे सुमंबद्ध किया है । इसी कारण गणधरोक्त सूत्रों में न्यूनता अधिकता आदि बातें जरासी भी मात्रा में नहीं हैं । इस तरह “भगवदुक्त अर्थ के अनुरूप प्रतिपादन रूप जो व्यापार है—उसका नाम अनुयोग है” यह इसका निष्कर्षार्थ है ।

प्रश्न—“अनुयोग” शब्दको शाब्दिक अर्थ थाय छ ?

उत्तर—लगवाने अर्थरूप जे प्रवचनकी प्ररूपणा करी छ, तेने अनुकूल अथवा तेनी अनुसार वक्ताद्वारा प्रवचननुं जे कथन कराय छ तेनुं नाम अनुयोग छ.

अही कथन करवाइय व्यापारने योग कहैवामां आवैल छ. भगवद्भाषित अर्थने गणधरोक्ते सूत्ररूपे ग्रथित किये छ. परन्तु ते ग्रंथनकार्यमां तेमण्णे पोतानी दृष्टपनाथी कौं पणु वस्तुने उभेरे किये नथी लगवाननुं जे प्रकारनुं कथन हुनुं तेने अनु-इय कथन न तेमण्णे कियुं छ. लगवानना कथनमां सहैण पणु वधारो के धटाछो कया विना, तथा विपरीतता अने भाववैलक्षण्यने परिहार करीने तेमण्णे ते कथन अनुसारनुं न कथन सूत्ररूपे ग्रथित करैलुं छ. ते कारण्णे गणधरो द्वारा कथित सूत्रोमां न्यूनता, अधिकता आदिने अल्प मात्रामां पणु सहैण नथी. आ प्रकारे भगवद्भक्त (अर्हन्तो द्वारा ग्रथित) अर्थने अनुइय प्रतिपादन इय जे व्यापार छ तेनुं नाम न अनुयोग छ. आ प्रकारेनुं अनुयोग पदने अर्थ इलित थाय छ.

यथा गणधरेण सुधर्मस्वामिना जम्बूस्वामिनं प्रति भगवदुक्तार्थानुरूप-
कथनरूपोऽनुयोग उपक्रमादीनि चत्वारि द्वाराणि समाश्रित्य कृतस्तथाऽन्येनाप्या-
चार्येण शिष्येभ्यः सूत्रार्थकथनरूपोऽनुयोगः कर्त्तव्यः । यद्यपि सर्वेषामागमानाम-
नुयोगः कर्त्तव्यः, तथाऽप्यत्रसूत्रे आवश्यकस्यानुयोगः प्रस्तुतः । आवश्यकस्यानु-
योगकरणे समर्थः खलु सर्वेषामागमानामनुयोगकरणे समर्थो भवति । तस्मादनु-
योगविधिजिज्ञासुना मुनिनाऽनुयोगद्वारसूत्रमध्येतव्यम् । इदं च सूत्रं द्रव्या-
नुयोगान्तर्गतम् ।

यह अनुयोग चार प्रकार का है—(१) चरणकरणानुयोग (२) धर्मकथानुयोग
(३) गणितानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग ।

जिस प्रकार से गणधर सुधर्मा स्वामीने जंबूस्वामी के प्रति भगवदुक्त
अर्थ के अनुसार कथन करनेरूप अनुयोग का उपक्रम आदि चार द्वारों का
आश्रय करके किया है उसी तरह से अन्य आचार्य को भी शिष्यों के—
प्रति सूत्रार्थ का कथन करनेरूप अनुयोग करना चाहिये । यद्यपि आचार्य
को शिष्यों के लिये समस्त आगमों का अनुयोग कर्त्तव्य है, फिर भी इस
सूत्र में आवश्यक का अनुयोग प्रस्तुत किया गया है ।—क्यों कि आवश्यक के
अनुयोग करने में समर्थ—बना हुआ मुनिजन समस्त आगमों के अनुयोग करने
में शक्तिशाली हो जाता है । इसलिये अनुयोग की विधि को जानने की
इच्छा रखनेवाले मुनिजन को इस अनुयोगद्वारसूत्र का अध्ययन अवश्य करता
चाहिये । इस सूत्र का अन्तर्भाव द्रव्यानुयोग में हुआ है । अनुयोग शब्द
का अर्थ व्याख्यात है ।

आ अनुयोग नीचे प्रमाणे चार प्रकारना छे—(१) चरणकरणानुयोग, (२) धर्म-
कथानुयोग, (३) गणितानुयोग अने (४) द्रव्यानुयोग.

जे प्रकारे गणधर सुधर्मास्वामीने पोताना शिष्य जंबूस्वामीनी समक्ष लग-
वदुक्त अर्थने अनुइप कथन करवा इप अनुयोगनु उपक्रम आदि चार द्वारोने
आश्रय लधने कथन क्युं छे; जे प्रमाणे अन्य आचार्योने पणु शिष्योना हितने
भाटे सूत्रार्थनु कथन करवा इप अनुयोग करवो नेछये. जे के आचार्योने शिष्योने
भाटे समस्त आगमोने अनुयोग करवो नेछये, परन्तु आ सूत्रमां आवश्यकने
अनुयोग प्रस्तुत करवामां आव्यो छे, कारण के आवश्यकने अनुयोग करवाने समर्थ
होय जेवा आचार्य अथवा मुनिजन समस्त आगमोने अनुयोग करवामां समर्थ
पनी नय छे. तेथी अनुयोगनी विधिने लखवानी छेछावाणा मुनिजोने आ अनु-
योगद्वार सूत्रनु अध्ययन अवश्य करवुं नेछये. आ शब्दने अन्तर्भाव (समावेश)
द्रव्यानुयोगमां थयो छे. अनुयोग शब्दने अर्थ व्याख्यात समजवो.

अस्य शब्दार्थस्त्वेवम्—अनुयोगस्य—व्याख्यानस्य द्वाराणि अनुयोगद्वाराणि, तत्प्रतिपादकं सूत्रम्—अनुयोगद्वारसूत्रम् । अनुयोगस्य चत्वारि द्वाराणि सन्ति । तद्यथा—उपक्रमः, निक्षेपः, अनुगमः, नयश्चेति । तत्र उपक्रमः—उपक्रमणम् उपक्रमः। व्याख्येयवस्तुना नामनिर्देशः, व्याचिख्यासितशास्त्रस्य तैस्तैः प्रतिपादनप्रकारैः समीपीकरणं न्यासदेशानयनं निक्षेपयोग्यताकरणमित्यर्थः । उपक्रान्तं हि उपक्रमान्तर्गतभेदैर्विचारितं—निक्षिप्यते, नत्वनुपक्रान्तम् १ । निक्षेपः—निक्षेपणं निक्षेपः—उपक्रमानीतस्य व्याचिख्यासितस्य षड्विध आवश्यकतादेः शास्त्रस्य नाम स्थापनादि भेदेन निरूपणम् २ । अनुगमः—अनुगमनम्—अनुगमः । नामादिना निक्षिप्तस्य शास्त्रस्यानुकूलं ज्ञानम्, अनुकूलार्थकथनं च ३ । नयः—नयति=अनेकांशात्मकं वस्तु

इस व्याख्यानरूप अनुयोग के द्वारों का प्रतिपादन करनेवाला जो सूत्र—आगम—है वह अनुयोगद्वार सूत्र है । अनुयोग के चार द्वार हैं । वे इस प्रकार से हैं—[१] उपक्रम (२) निक्षेप, (३) अनुगम और (४) नय । व्याख्येय वस्तु के नाम का कथन करना अर्थात् व्याचिख्यासित-व्याख्या से युक्त करने की इच्छा के विषयभूत बने हुए शास्त्र को उस २ रूपसे प्रतिपादन करने की शैली से न्यासदेश में लाना—निक्षेप की योग्यतावाला उसे बनाना इसका नाम उपक्रम है । उपक्रान्त-उपक्रम के अन्तर्गत भेदों से विचारित-वस्तु का ही तो निक्षेप होता है । अनुपक्रान्त का नहीं । षड्विध आवश्यक आदि शास्त्र का कि जो उपक्रमित एवं व्याचिख्यासित है, नाम स्थापना आदि के भेद से निरूपण करना इसका नाम निक्षेप है । नामादि के भेद से निरूपित शास्त्र का अनुकूल ज्ञान होना और अनुकूल उसके अर्थ का कथन करना इसका नाम अनुगम है । अनेक-धर्मात्मक वस्तु को एकांश के

आ व्याख्यानस्य अनुयोगना द्वारेण प्रतिपादन करनार जे सूत्र—आगम—छे, तेनुं नाम अनुयोगद्वार सूत्र छे. अनुयोगना जे चार द्वार छे, ते नीचे प्रमाणे छे. (१) उपक्रम, (२) निक्षेप, (३) अनुगम अने (४) नय. व्याख्येय वस्तुना नामनुं कथन करवुं अटवे के व्याचिख्यासित व्याख्याथी युक्त करवानी छाना विषयस्य अनेक शास्त्रने ते ते उपे प्रतिपादन करवानी शैली वडे न्यासदेशमां लाववुं. तेने निक्षेपनी योग्यतावाणुं अनाववुं तेनुं नाम उपक्रम छे. उपक्रान्त उपक्रमना अन्तर्गत लेहोनी अपेक्षाये विचारायेली वस्तुना जे निक्षेप थाय छे—अनुपक्रान्तना थतो नथी. जे उपक्रमित अने व्याचिख्यासित छे अेवा छे प्रकारना आवश्यक आदि शास्त्रनुं नाम स्थापना आदि लेहोथी निरूपण करवुं. तेनुं नाम निक्षेप छे नामादिना लेहोथी निरूपित शास्त्रनुं अनुकूल ज्ञान होवुं अने तेना अर्थनुं अनुकूल कथन करवुं

एकांशवलम्बनेन प्रतीतिपथं प्रापयतीति नयः, नयनम्=अनन्तधर्मात्मकस्य वातु-
नो नियतैकधर्मात्मकतावलम्बनेन प्रतीतौ प्रापणं नयः । अनन्तधर्मात्मकस्य
वस्तुन एकांशपरिच्छेदो नय इति ४ ।

अत्र नगरदृष्टान्तमाह—

यथा द्वाररहितं नगरं नगरमेव न भवति । यद्येकस्यामेव प्राच्यां दिशि
द्वारं भवेत्, तर्हि तत्र गजरथतुरगपदातीनां नगरवासिनां तदितरेषा-
मागन्तुकानां जनानां च संघर्षे निर्गमः प्रवेशो वा दुष्करोऽनर्थकरश्च भवति ।

अवलम्बन से जो प्रतीति कराता है, इसका नाम नय है । नगर के दृष्टान्त
से इन चारों दिशों का स्पष्टीकरण इस प्रकार से है—जिस नगर को द्वार
नहीं होता है वह वास्तव में नगर ही नहीं माना जाता है । जिस नगर में
केवल पूर्वदिशा में ही द्वार हो तो वहाँ के रहनेवाले गज, तुरग आदि
जानवरों का मनुष्यों का, तथा बाहर से आये हुए प्राणियों का आने जाने
में संघर्ष होने पर प्रवेश और निर्गम दुष्कर बन जाता है, तथा वह आना जाना
अनर्थोत्पादक भी होता है । इसी प्रकार से उस नगर में प्रवेश करने
के लिये केवल पूर्व और पश्चिम दिशा में एक २ द्वार हो तो ऐसी स्थिति में
यद्यपि पूर्व पश्चिम दिग्बिभागवती प्राणियों को आने जाने में सरलता भले
ही रहे, परन्तु जो और दिशाओं में वहाँ रहते हैं, उन्हें तथा बाहर से आने-
वाले जो प्राणी हैं उन्हें और गज, रथ तुरग, आदि जो जानवर हैं—उन्हें संघर्ष

तेनुं नाम अनुगम छि अनेक धर्मात्मक अर्थात् अनेक धर्माना स्वभाववाणी वस्तुनी
जे एकांशना अवलम्बनथी प्रतीति करावे छि तेनुं नाम नय छि.

नगरना दृष्टान्त द्वारा आ चार द्वारोनुं हुवे स्पष्टीकरण करवामां आवे छे-

जे नगरने दरवाने न न होय तेने वास्तविक रीते तो नगर न कही शक्य
नहीं. केछ नगरने मात्र पूर्वादि केछ एक न दिशाभां एक न दरवाने होय, ते
नगरभां दाण्ड थवानुं के ते नगरभांथी अहार नवानुं कार्य मुश्केल गनी नय छे,
कारण के हाथी, घोडा आदि प्राणीओ तथा मनुष्योनी अवरनवरभां संघर्ष थवाने
कारण ते नगरभां प्रवेश करवानुं के ते नगरभांथी अहार नीकणवानुं कार्य दुष्कर
गनी नय छे, तथा ते अवरनवर क्यारेक अनर्थोत्पादक पणु गनी गती होय छे.
केछ नगरभां पूर्व पश्चिम जे दिशाभां जे द्वारो होय तो ते ते दिशाभां रहेला प्राणीओ
अने मनुष्योने तो अवर नवर करवानी अनुकूलता रहे छे, परन्तु अन्य दिशाओभां जे
प्राणीओ अने मनुष्ये रहेला होय छे, तेमने तो अवरनवरभां मुश्केली न पडे छे.
अन्य दिशाओभांथी नगरभां प्रवेश करतां हाथी, रथ घोडा आदि प्राणीओ अने
नगरनी अहार गता प्राणीओ वच्ये संघर्ष थया न करे छे, ते कारणे ते

प्राच्यां पश्चिमायां च दिशि द्वारसद्भावे तत्तद्विभागवर्तिनां निर्गमप्रवेशसौ-
कर्येऽपि तदितरदिग्भागवर्तिनां नगरान्तर्निवासिनां तदितरेषां बाह्य देशादागतानां
च जनानां गजरथतुरगादीनां च संघर्षे निर्गमः प्रवेशो वा दुष्करोऽनर्थकरश्च
भवति, तथैव त्रिषु दिग्भागेषु द्वारत्रयसद्भावेऽपि जनानां निर्गमः प्रवेशो वा
दुष्करोऽनर्थकरश्च भवति, यत्र तु नगरे चतुसृषु दिशासु चत्वारि मूलद्वाराणि, तथा
तदनुगतानेकमार्गसंलग्नरथ्याद्वाराणि विद्यन्ते, तत्र निर्गमः प्रवेशो वा सुकरो
भवति । तथैवावश्यकरूपं नगरमपि उपक्रमादिद्वाररहितं नाधिगन्तुं शक्यते । न
च केवलमुपक्रमद्वारेण, नापि वा द्वाभ्यामुपक्रमनिक्षेपाभ्यां, न चापि त्रिभिरुप-

होने पर आना जाना बड़ा मुश्किल हो जाता है । परस्पर में धक्कमधक्का होने
से अनेक प्रकार के अनिष्ट भी हो जाते हैं । इसी तरह से यदि उसमें प्रवेश
करने के लिये तीन द्वार हों, तो कुछ पहिले की अपेक्षा प्रवेश निर्गम में
सरलता होने पर भी सर्वथा सरलता नहीं आती है । परन्तु जब उसमें आने
जाने के लिये चारो दिशाओं में चार दरवाजे हों, तथा और भी अनेक मार्ग
संलग्न रथ्याद्वार हों, तो फिर आने जाने में किसी प्रकार का संघर्ष न होने
से कोई भी प्राणी को रुकावट नहीं होती है और न किसी प्रकार के अनर्थ
होने की संभावना ही रहती है । ठीक इसी प्रकार से आवश्यकरूप नगर भी
यदि उपक्रम आदि चार द्वारों से विहीन हो तो वह ज्ञान का विषयभूत नहीं
बन सकता अर्थात् उसका वास्तविक रहस्यज्ञात नहीं हो सकता, अतः उसे
वास्तविकरूप में जानने के लिये इन चार ही उपक्रम आदि द्वारों की परम

नगरमां प्रवेश करवानुं अने ते नगरमांथी निर्गमन करवानुं कार्य
मुशकिल न थई पडे छे. त्यां अेकधीन वर्ये धक्का धक्की थवाथी अनेक प्रकारना
अनिष्टो पणु उद्भववे छे. अेव प्रमाणे जे ते नगरने त्रणु दिशाओमां त्रणु दरवाण
राख्या डोय तो पडेला अने धीन प्रकारना नगर करतां प्रवेश अने निर्गममां
अधिक सरणता तो रहे छे, पणु संपूर्ण सरणता तो रहेती नथी. पणु जे नगरमां
आववा-जवा भाटे यारे दिशाओमां यार दरवाण राख्या डोय, तथा धीन भागेनि
जेडतां धीन पणु उपद्वारे राख्यां डोय, तो त्यां अवरजवरमां डोय पणु प्रकारना
संघर्ष थतो नथी-डोय पणु जे प्राणीओ वर्ये धक्काधक्की आलती नथी अने
ते करणु त्यां डोय पणु प्रकारना अनर्थनी शक्यता रहेती नथी. त्यां प्राणीओ
अने मनुष्यो सरणताथी प्रवेश पणु करी शके छे अने निर्गम पणु करी शके
छे. अेव प्रमाणे आवश्यकरूप नगर पणु जे उपक्रम आदि यार द्वारेथी रहित
डोय, तो ज्ञानना विषयरूप अनी शकतुं नथी-अेटवे के तेनुं वास्तविक रहस्य
जणी शकतुं नथी. तेथी तेने यथार्थरूपे जणुवा भाटे उपक्रम आदि आ यारे

क्रमनिक्षेपानुगमैर्द्वारैस्नदर्थमधिगन्तुं शक्यते । तदर्थानधिगमे च सति क्लेशोऽनर्थश्च जायते । भेदप्रभेदसहितोपक्रमादिद्वारचतुष्टयसद्भावे तु स्वल्पेनैव कालेन तत्सुगमं शाश्वतसुखप्रदं च भवति । तस्माद् द्वारचतुष्टयमाश्रित्य षड्विधावश्यक-प्रतिपादनार्थमिदं सूत्रं प्रस्तुतम् ।

इह शास्त्रे प्रवृत्त्यर्थमादावानुबन्धचतुष्टयं विज्ञेयम् । तच्च विषयः, प्रयोजनं संबन्धः, अधिकारी चेति । तत्र विषयोऽभिधेयः—स चेह उपक्रमादीन्यनुयोग-

आवश्यकता है । केवल एक उपक्रमद्वार से या उपक्रम निक्षेपरूप दो द्वारों से अथवा उपक्रम निक्षेप और अनुगम इन तीन द्वारों से उसका अर्थ नहीं जाना जा सकता । अर्थाधिगम—पदार्थ के ज्ञान हुए विना क्लेश एवं अनर्थ होता है । जब भेद प्रभेद सहित इन उपक्रम आदि चार द्वारों का उसमें सद्भाव होता है, तो उनकी सहायता से स्वल्प काल में ही वास्तविकरूप में शास्त्र के अर्थ का बोध सुगमरीति से हो जाता है और इस से वह शास्त्र शाश्वत सुख प्रद भी हो जाता है । इसलिये सूत्रकारने इन पूर्वोक्त चार द्वारों को लेकर षड् विध आवश्यकों को प्रतिपादन करने के लिये इस सूत्र को प्रस्तुत किया है ।

इस शास्त्र में प्रवृत्ति होने के निमित्त चार बातों की आवश्यकता है । उनका नाम अनुबन्ध चतुष्टय है । और वे “विषय, प्रयोजन, संबन्ध अधिकारी” ये हैं । जो इस शास्त्र का अभिधेय है, वह विषय है । वह विषय उपक्रमादि चार

द्वारोनी परम आवश्यकता रहे छे. केवल एक उपक्रम द्वारथी न, अथवा उप-क्रम अने निक्षेपरूप छे द्वारोथी अथवा उपशम, निक्षेप अने अनुगमरूप त्रणु द्वारोथी तेने अर्थ न्नाणी शकते नथी अर्थाधिगम (अर्थनुं ज्ञान) थया (विना तो क्लेश अने अनर्थने पात्र थवुं पडे छे. न्यारे भेद प्रभेद सहित आ उप-क्रम आदि चार द्वारोने तेमां सहलाव डोय छे, त्यारे तेनी सहायताथी धणु थोडा समयमां न अने सरणताथी वास्तविकरूपे शास्त्रना अर्थने बोध थछ नय छे, अने तेने लीधे ते शास्त्र शाश्वत सुखप्रद पणु थछ नय छे. तेथी सूत्रकारे पूर्वोक्त उपक्रम आदि चार द्वारोने अनुलक्षिने छ प्रकारना आवश्यकैतनुं प्रति-पादन करवाने माटे आ सूत्रने प्रस्तुत कर्युं छे.

आ शास्त्रमां प्रवृत्ति थवाने निमित्ते चार भाषतोनी आवश्यकता रहे छे. न्ने चार भाषतोनी आवश्यकता रहे छे ते चार भाषतोने अनुबन्ध चतुष्टय कडे छे. ते चार भाषतो नीचे प्रमाणे छे—विषय, प्रयोजन, संबन्ध अने अधिकारी. आ शास्त्रने न्ने अभिधेय छे तेनुं नाम न विषय छे. ते विषय उपक्रम

द्वाराणि । प्रयोजनं—फलम्, तच्च द्विविधम्—अन्तरफलं परम्पराफलं च । तत्राद्यं शास्त्रकर्तुर्भव्यानुग्रहरूपम् । श्रोतुश्च शास्त्रार्थबोधः । उभयोरपि परम्परा प्रयोजनम्—परमपदप्राप्तिः । शास्त्रस्य विषयस्य च सम्बन्धः—प्रतिबोध्य प्रतिबोधकभावः । परमपदप्राप्तिः । अधिकारी तु जिनाज्ञाराधक इति ।

अथ शिष्टाचारपरिपालनार्थं शास्त्रनिर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं शास्त्रस्य मंगलस्वरूपत्वेऽपि शिष्यस्य शास्त्रविषयीभूतार्थज्ञानप्राप्तिदृढाश्वासार्थं च मंगलरूपं प्रथमं सूत्रमाह—

मूलम्—नाणं पंचविहं पणत्तं, तं जहा—आभिनिबोहियनाणं सुयनाणं, ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं ॥ सू० १ ॥

अनुयोग द्वाररूप है । प्रयोजन नाम फल का है । वह दो प्रकार का होता है— [१] अनन्तर—साक्षात्—फल और दूसरा परम्परा फल । “पढने वाले, सुनने वाले भव्यजीवों का इस से अनुग्रह हो ऐसी भावना जो शास्त्रकार के हृदय में होती है वह ग्रन्थकर्ता की अपेक्षा तथा इसे अध्ययन करनेवाले, सुननेवाले प्राणियों को जो इस के द्वारा बोध प्राप्त होता है वह उनकी अपेक्षा इसका साक्षात् प्रयोजन है । एवं ग्रन्थ—शास्त्र—कर्ता—और अध्येता—श्रोता को जो परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है वह इसका परम्परा प्रयोजन है । शास्त्र का और विषय का प्रतिबोध्य प्रतिबोधकभाव संबन्ध है विषय प्रतिबोध्य शास्त्र उसका प्रतिबोधक है जिनाज्ञा का आराधक जीव अधिकारी है ।—

આદિ ચાર અનુયોગ દ્વારરૂપ જ છે. પ્રયોજન એટલે ફળ. તે પ્રયોજન બે પ્રકારનું હોય છે. અનન્તર સાક્ષાત્ અને (૨) પરમ્પરા ફળ.

વાંચનારા અને શ્રવણ કરનારા ભવ્ય જીવોનું તેના દ્વારા કલ્યાણ થાય, એવી બે ભાવના તે શાસ્ત્રકારના હૃદયમાં હોય છે, તે ગ્રન્થકર્તાની અપેક્ષાએ તેનું સાક્ષાત્ પ્રયોજન છે. તથા તેનું અધ્યયન કરવાથી કે શ્રવણ કરવાથી અધ્યયન કરનારને કે શ્રોતાને બોધ થાય છે, તે તેમની અપેક્ષાએ તેનું સાક્ષાત્ પ્રયોજન ગણાય છે. ગ્રન્થ (શાસ્ત્ર) કર્તાને, ગ્રન્થનું અધ્યયન કરનારને અને તેનું શ્રવણ કરનારને બે પરમપદની પ્રાપ્તિ થાય છે, એજ તેનું પરમ્પરા પ્રયોજન ગણાય છે. શાસ્ત્રનો અને વિષયનો પ્રતિબોધ્ય-પ્રતિબોધકભાવ રૂપ સંબંધ હોય છે. વિષય પ્રતિબોધ્ય અને શાસ્ત્ર તેનું પ્રતિબોધક હોય છે. જિનાજ્ઞાનું આરાધન કરનાર જીવ તેનો અધિકારી ગણાય છે.

છાયા—જ્ઞાનં પञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद् यथा—आभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुत-
જ્ઞાનમ્, અવધિજ્ઞાનં, મનઃપર્યવજ્ઞાનં, કેવલજ્ઞાનમ્ ॥૧॥

ટીકા—‘નાણં’ इत्यादि—

જ્ઞાનમ્—જ્ઞાતિર્જ્ઞાનમિતિ ભાવસાધનઃ, સ્વવિદિત્યર્થઃ । જ્ઞાયતેવાઽનેના-
સ્માદ્દેતિ જ્ઞાનં, તદાવરણસ્ય ક્ષયઃ ક્ષયોપશમો વા । જ્ઞાયતે વાઽસ્મિન્નિતિ

અવ સૂત્રકાર શિષ્ટ પુરુષોં કે આચાર કો પાલન કરને કે લિયે શાસ્ત્ર કી
નિર્વિઘ્ન પરિસમાપ્તિ કે લિયે ઔર-શિષ્યોં કો શાસ્ત્ર વિષયીભૂત અર્થજ્ઞાન કી
પ્રાપ્તિ કા દૃઢ વિશ્વાસ જમાને કે લિયે મંગલરૂપ હોને પર મી ઇસ શાસ્ત્ર
કી આદિ મેં સર્વ પ્રથમ મંગલ સૂત્ર કા પાઠ કરતે હૈં ।

“નાણં પંચવિહં પળ્ણત્તં” इत्यादि । ॥ सू० १ ॥

શબ્દાર્થ—(નાણં) જ્ઞાન (પંચવિહં) પાંચ પ્રકાર કા—(પળ્ણત્તં) કહા ગયા
હૈં । યહાં જ્ઞાન શબ્દ ભાવસાધન-કરણસાધન ઔર કર્તૃસાધન હૈ “જ્ઞાતિઃ-જ્ઞાનમ્
જાનના ઇસકા નામ જ્ઞાન હૈ યહ ભાવસાધન મેં જ્ઞાન કી વ્યુત્પત્તિ હૈ—“જ્ઞાયતે
અનેન ઇતિ જ્ઞાનમ્” યહ કરણસાધન મેં વ્યુત્પત્તિ હૈ—આત્મા જિસકે દ્વારા
પદાર્થોં કો જાનતા હૈ વહ જ્ઞાન હૈ—ઇસ કરણસાધન સે જ્ઞાનાવરણ કર્મ કા
ક્ષય અથવા ક્ષયોપશમ લક્ષિત હોતા હૈ । ક્યોં કિ ઇસ કે હોને પર હી આત્મા
મેં જ્ઞાન કા પ્રાદુર્ભાવ (ઉત્પત્તિ) યા જ્ઞાન મેં સર્વથા નિર્મલતા આતી હૈ । અતઃજ્ઞાનાવરણ
કા ક્ષય ઔર ક્ષયોપશમ જ્ઞાનરૂપ હોને કે કારણ અભેદ સંબન્ધ સે જ્ઞાનરૂપ હી

શાસ્ત્રકારે શિષ્ટ પુરુષોના આચારનું પાલન કરવા માટે, શાસ્ત્રની નિર્વિઘ્ને
પરિસમાપ્તિ કરવા નિમિત્તે અને શિષ્યોમાં શાસ્ત્રવિષયીભૂત અર્થજ્ઞાનની પ્રાપ્તિને
દૃઢ વિશ્વાસ જમાવવાને નિમિત્તેને કે શાસ્ત્ર પોતે જ મંગળરૂપ હોવા છતાં
પણુ-આ શાસ્ત્રનો પ્રારંભ કરતી વખતે સૌથી પહેલાં મંગળ સૂત્રનો પાઠ કર્યો છે.

“નાણં પંચવિહં પળ્ણત્તં” इत्यादि

॥ सू० १ ॥

શબ્દાર્થ—(નાણં) જ્ઞાન (પંચવિહં) પ્રાચ પ્રકારનું (પળ્ણત્તં) કહ્યું છે. અહીં
‘જ્ઞાન’ શબ્દ ભાવસાધન, કરણસાધન અને કર્તૃસાધનરૂપ છે. ભાવસાધનમાં જ્ઞાનની
વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે “જ્ઞાતિઃ-જ્ઞાનમ્” બાણુવું તેનું નામ જ્ઞાન છે.
કરણસાધનમાં જ્ઞાનની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે “જ્ઞાયતે અનેન ઇતિ જ્ઞાનમ્”
આત્મા જેના દ્વારા પદાર્થોને જાણે છે તેનું નામ જ્ઞાન છે. આ કરણસાધન દ્વારા
જ્ઞાનાવરણકર્મનો ક્ષય અથવા ક્ષયોપશમ લક્ષિત થાય છે, કારણ કે જ્ઞાનાવરણીય
કર્મનો ક્ષય અથવા ક્ષયોપશમ થવાથી જ આત્મામાં જ્ઞાનનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે અથવા
જ્ઞાનમાં સર્વથા નિર્મળતા પ્રકટ થાય છે. તેથી જ્ઞાનાવરણનો ક્ષય અને ક્ષયોપશમ
જ્ઞાનરૂપ જ હોવાને કારણે અભેદ સંબંધની અપેક્ષાએ જ્ઞાનરૂપ જ નિવડે છે.

पञ्चविधं दर्शयति—‘तं जहा’ इत्यादिना ‘तं जहा’ तद्यथा—तज्ज्ञान यथा पञ्चविधं भवति, तथा प्रोच्यते । तत्र (१) प्रथमं ज्ञानम्—‘आभिनिबोधिय-नाणं’ आभिनिबोधिकज्ञानम्. ‘अभि’ इति अभिसुत्रः—वस्तुयोग्यदेशवस्थाना-पेक्षी, ‘नि’ इति नियतः—इन्द्रियमनःसमाश्रित्य स्व स्व विषयापेक्षीबोधः—अभिनिबोधः, स एव आभिनिबोधिकम् तच्च तद् ज्ञानं च आभिनिबोधिक-ज्ञानम् । अत्र ‘ज्ञान’ शब्दः सामान्यज्ञान-वाचकः । अभिनिबोधशब्दः इन्द्रिय ने

से सूत्रकारने प्रकट की है । अथवा, “पण्णत्तं” इस पद की संस्कृत छाया “प्राज्ञाप्त” ऐसी भी होती है—इस का अर्थ यह है कि ज्ञान में पंच प्रकारता गणधरो ने प्राज्ञ तीर्थ कर सर्वज्ञ भगवान् से प्राप्त की है । अथवा इसी छाया के पक्ष में ऐसा अर्थ भी होता है कि ज्ञान में यह पंच प्रकारता भव्य प्राणियों ने अपनी बुद्धि से ही पाई है । विना बुद्धि से तो यह प्राप्त की नहीं जा सकती है । इस तरह जो प्रज्ञाप्त है वही प्राज्ञाप्त है । (तं जहा) वह ज्ञान में पंच प्रकारता इस तरह से है ।

(आभिनिबोधियनाणं) (१) आभिनिबोधिक ज्ञान-यह ज्ञान वस्तु को योग्य देश में होने की अपेक्षा रखता है तथा पांच इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है । यह बात “अभि” और “नि” शब्द से प्रकट होती है । इस तरह योग्य देश में स्थित वस्तु को इन्द्रिय और मन की सहायता से जानने वाले ज्ञान का नाम आभिनिबोध ज्ञान है । यह अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक

“पण्णत्तं” आ पदनी संस्कृत छाया “प्राज्ञाप्तं” छे. आ प्राज्ञाप्तं नी अपेक्षाये ले विचार करवासां आवे तो तेना अर्थ आ प्रमाणे थाय छे-ज्ञानमां पंचविधतानी प्राप्ति गणधरोये प्राज्ञ तीर्थ कर सर्वज्ञ भगवान् पासैथी करी छे.

अथवा तेना अर्थ एवो पणुथाय छे के-ज्ञानमां आ पांच प्रकारता लव्य एवोये पोतानी बुद्धिथी न प्राप्त करेव छे. बुद्धि वगर तो तेनी प्राप्ति थछ शकती न थी. आ रीते ने प्रज्ञाप्त छे, एव प्राज्ञाप्त छे. (तं जहा) ज्ञानना ते पांच प्रकारा नीये प्रमाणे छे—(आभिनिबोधियनाणं) (१) आभिनिबोधिक ज्ञान—

आ ज्ञान वस्तु योग्य देशमां होय एवी अपेक्षा राये छे, तथा पांच इन्द्रियो अने मननी सहायताथी थाय छे. एव वात “अभि” अने “नि” उपसर्गो द्वारा प्रकट करी छे. आ रीते आभिनिबोधिक ज्ञाननी व्याख्या आ प्रमाणे थाय छे—“योग्य देशमां स्थित (रहेली) वस्तुने इन्द्रियो अने मननी सहायताथी लणुनारा ज्ञाननु” नाम आभिनिबोध छे. ते आभिनिबोध न आभिनिबोधिक

इन्द्रियजन्यविशिष्टज्ञानवाचकः । अतः सामान्यविशेषयोर्ज्ञानयोः सामानाधिकरण्यम् । इदं मतिज्ञानमप्युच्यते ॥१॥

(२) श्रुतज्ञानम्—श्रुतं—श्रुतिः—श्रवणं ज्ञानविशेषः । तच्च कीदृशम् ? उच्यते, शब्दस्य श्रवणेन भाषणादिना वा तज्ज्ञानमुत्पद्यते तदेव श्रुतम् । अत्र श्रुतशब्देन श्रुतज्ञानं गृह्यते—ज्ञानं प्रभेदप्रकरणान्तःपातित्वात् । न तु श्रूयते' इति व्युत्पत्त्या शब्दार्थकः श्रुतशब्दः । लघ्विहूपे मतिज्ञाने सति पश्चात् श्रुतज्ञानमुत्पद्यते, न तु मतिज्ञानाभावे । अतो मतिज्ञानं कारणं श्रुतज्ञानस्य ।

ज्ञानं है । यहां ज्ञान शब्द सामान्यज्ञान का वाचक और अभिनिबोध शब्द इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाले विशिष्टज्ञान का वाचक है । अतः" 'आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं च आभिनिबोधिकज्ञानं" इस तरह से इन दोनों सामान्य विशेष ज्ञानों में समानाधिकरणता हुई है । इस आभिनिबोधिकज्ञान का दूसरा नाम मतिज्ञान भी है ।

श्रुतज्ञान—शब्द के श्रवण से अथवा भाषण आदि से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान श्रुतज्ञान है । ज्ञान के प्रभेदों के प्रकरण के आने के कारण यहां श्रुतशब्द से ज्ञान का ग्रहण हुआ । श्रुत से शब्द का नहीं । "श्रूयते" इति श्रुतं इस प्रकार की व्युत्पत्ति से श्रुत शब्दरूप अर्थ का वाचक भी हाता है परन्तु वह शब्दार्थक श्रुत यहाँ गृहीत नहीं हुआ है । कारणवह शब्द पौद्गलिक पर्याय होने से अचेतन है, और ज्ञान आत्मा का निजस्वरूप होने से चेतन है ।

ज्ञान छे." अही ज्ञान पद सामान्य ज्ञाननुं वाचक छे अने अभिनिबोध पद इन्द्रियो अने मननी सहायताथी उत्पन्न थनार विशिष्ट ज्ञाननुं वाचक छे. तेथी "आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं च आभिनिबोधिकज्ञानं" आ प्रकारे ते अने सामान्य विशेष ज्ञानोर्गां समानाधिकरण्यता धर छे. आ आभिनिबोधिक ज्ञाननुं णीणुं नाम मतिज्ञान पणु छे.

(२) श्रुतज्ञान—शब्दना श्रवणथी अथवा भाषण आदि वडे जे ज्ञान उत्पन्न थाय छे तेने श्रुतज्ञान कडे छे. ज्ञानना प्रलेहोना प्रकरणमां आवी जतु डोवाने लीधे अही श्रुत शब्द वडे ज्ञाननुं ज अडलु थयुं छे—अही 'श्रुत' पद द्वारा शब्द गृहीत थयेल नथी. "श्रूयते इति श्रुतम्" आ प्रकारनी व्युत्पत्तिने आधारे श्रुत पद शब्दरूप अर्थनुं वाचक पणु संलवी शके छे, परन्तु ते शब्दार्थक श्रुत अही अडलु करवामां आणुं नथी. कारण के ते शब्द पौद्गलिक पर्यायरूप डोवाथी अचेतन छे, पणु ज्ञान आत्माना निजगुणरूप डोवाथी चेतन छे.

શંકા—શબ્દ કે શ્રવણ અથવા ભાષણ આદિ સે જો જ્ઞાન હોતા હૈ વહ શ્રુતજ્ઞાન હૈ” એસા જો શ્રુત કા લક્ષણ કહા જા રહા હૈ વહ અતિવ્યાપ્તિ દોષ સે યુક્ત હોને કે કારણ ઠીક નહીં હૈ । ક્યોં કિ યહ લક્ષણ મતિજ્ઞાન મેં મી રહતા હૈ । વહ શ્રોત્રેન્દ્રિય ઓર મન સે મી હોતા હૈ ।—

ઉત્ત—એસા સમજના ઠીક નહીં હૈ—કારણ મતિજ્ઞાન પાંચોં ઇન્દ્રિયોં ઓર મન સે હી હોતા હૈ—। તબ યહ જ્ઞાન કેવલ મન સે હી હોતા હૈ—અન્ય ઇન્દ્રિયોં સે નહીં ।” શબ્દશ્રવણ અથવા ભાષણઆદિ સે જો જ્ઞાન હોતા હૈ વહ શ્રુતજ્ઞાન હૈ । એસા જો કહા ગયા હૈ ઉસકા કારણ યહ હૈ કિ શબ્દ શ્રવણ ઓર ભાષણ આદિ જન્ય જો શ્રોત્રેન્દ્રિય સે ઉસ વા જ્ઞાન હોતા હૈ વહ મતિજ્ઞાન હૈ—ઓર ઇસ મતિજ્ઞાનપૂર્વક ઉસ વિષય મેં જો શબ્દશ્રવણ આદિ કે સંબંધ સે વિશેષ ચિંતન ચાલૂ હોતા હૈ કિ જો કેવલ મન કા હી કાર્ય હૈ વહ શ્રુતજ્ઞાન હૈ । ઉદાહરણાર્થ—શબ્દ વિષયક શ્રોત્ર જન્યજ્ઞાન હોને પર ઉસકે સંબંધ સે મન મેં” યહ કિસ પ્રકાર કે શબ્દ કો વોલ રહા હૈ—ઉચ્ચસ્વર સે શબ્દ ઉચ્ચરિત હો રહા હૈ યા ધીમે સ્વર સે” ઇત્યાદ વિકલ્પોં કા હોના શ્રુતજ્ઞાન હૈ ।

શંકા—“શબ્દના શ્રવણ અથવા ભાષણ આદિથી જે જ્ઞાન થાય છે, તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે,” આ પ્રકારનું જે શ્રુતનું લક્ષણ અહીં ગતાવવામાં આવ્યું છે તે અતિવ્યાપ્તિ દોષથી યુક્ત હોવાને કારણે ઉચિત નથી, કારણ કે તે લક્ષણનો સદ્ભાવ તો મતિજ્ઞાનમાં પણ હોય છે. તે શ્રોત્રેન્દ્રિય અને મનની સહાયતાથી થાય છે.

ઉત્તર—આ માન્યતા ધરાવતી નથી. કારણ કે—મતિજ્ઞાન પાંચે ઇન્દ્રિયો અને મનની સહાયતાથી જ ઉત્પન્ન થાય છે, પરંતુ શ્રુતજ્ઞાન તો માત્ર મનની સહાયતાથી જ ઉત્પન્ન છે—અન્ય ઇન્દ્રિયોની સહાયતાની તેને જરૂર રહેતી નથી. “શબ્દશ્રવણ અથવા ભાષણાદિથી જે જ્ઞાન થાય છે તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે,” આ પ્રમાણે જે કહેવામાં આવ્યું છે તેનું કારણ એ છે કે શબ્દશ્રવણ અને ભાષણાદિ જન્ય જે શ્રોત્રેન્દ્રિય થી તેનું જ્ઞાન થાય છે તે મતિજ્ઞાનરૂપ હોય છે. અને તે મતિજ્ઞાનપૂર્વક તે વિષયને અનુલક્ષીને શબ્દશ્રવણ આદિના વિષયમાં વિશેષ ચિન્તન ચાલૂ થઈ જાય છે તે તો માત્ર મનનું જ કાર્ય હોવાથી તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે ઉદાહરણ દ્વારા આ વાતનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—શબ્દવિષયક શ્રોત્રજન્ય જ્ઞાન થવાથી તેને વિષે મનમાં આ પ્રકારના વિકલ્પો ઉદ્ભવે છે—“આ કયા પ્રકારના શબ્દનું ઉચ્ચારણ થઈ રહ્યું છે જિંચે સ્વરે શબ્દનું ઉચ્ચારણ થઈ રહ્યું છે કે ધીમે સ્વરે શબ્દનું ઉચ્ચારણ થઈ રહ્યું છે” આ પ્રકારના વિકલ્પો જે જ્ઞાનમાં ઉદ્ભવે છે તે જ્ઞાનને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે.

शंका-यद्यपि जिस प्रकार मतिज्ञान की उत्पत्ति में इन्द्रियाँ साक्षात् निमित्त होती हैं वैसे वे श्रुतज्ञान की उत्पत्ति में साक्षात् निमित्त नहीं होती हैं-परन्तु परम्परा से तो होती ही हैं। जैसे-स्पर्शन आदि इन्द्रियों से मतिज्ञान हो गया और फिर बाद में उनके विषय में श्रुतज्ञान-जो विशेष विचाररूप है वह होता है। अतः इस अपेक्षा से तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में कोई भेद प्रतीत नहीं होता सो ऐसा कथन भी ठीक नहीं है कारण कि यह औपचारिक कथन है। दूसरे मतिज्ञान विद्यमान वस्तु में ही प्रवृत्त होता है, और श्रुतज्ञान त्रैकालिक विषयों में प्रवृत्त होता है। तथा मतिज्ञान में शब्दोल्लेख ही होता है और श्रुतज्ञान में नहीं होता है। अर्थात् जैसे श्रुतज्ञान की उत्पत्ति के समय संकेत स्मरण और श्रुतग्रन्थ का तात्पर्य अनुसरण अपेक्षित होता है, वैसे वह ईहा आदि मतिज्ञान की उत्पत्ति में अपेक्षित नहीं है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि लब्धिरूप मतिज्ञान के होने पर श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है मतिज्ञान के अभाव में नहीं। इसलिये इस श्रुतज्ञान का कारण मतिज्ञान है।

शंका-जेम मतिज्ञाननी उत्पत्तिमां छिन्द्रिये साक्षात् निमित्त भने छे जेम श्रुतज्ञाननी उत्पत्तिमां तेज्ये साक्षात् निमित्त भनती नथी. परन्तु परम्परानी अपेक्षाये तो तेज्ये श्रुतज्ञानमां पणु निमित्त इय भने न छे. जेम के स्पर्शेन्द्रिय आदिनी सहायताथी धारे के मतिज्ञाननी प्राप्ति थछ गछ छे, त्यारबाह तेमने विषे विशेष विचार करवाइय श्रुतज्ञान पणु उत्पन्न थछ नय छे. आ रीते विचार करवामां आवे तो मतिज्ञान अने श्रुतज्ञान वच्ये केछ लेह न नणुतो नथी. समाधान-आ प्रकारनी मान्यता पणु भरी नथी. कारणके आ कथन तो मात्र औपचारिक कथन न छे वणी णीणुं कारण ये छे के मतिज्ञान तो मात्र विद्यमान वस्तुमां न प्रवृत्त थाय छे, परन्तु श्रुतज्ञान तो त्रैकालिक विषयोमां प्रवृत्त थाय छे. तथा मतिज्ञानमां शब्दोल्लेखन न थाय छे, न्यारे श्रुतज्ञानमां तो स्मरण तर्कवितर्क आदि पणु थाय छे अटवे के जेवी रीते श्रुतज्ञाननी उत्पत्तिने समये संकेत, स्मरण अने श्रुतग्रन्थनु अनुसरण अपेक्षित होय छे, जेवी रीते छडा आदिइय मतिज्ञानमां ते संकेत, स्मरण आदिनी अपेक्षा रहेती नथी. आ वात परथी जेन वात निश्चित थाय छे के लब्धिइय मतिज्ञानना सहलावमां न श्रुतज्ञान उत्पन्न थाय छे-मतिज्ञानने अलाव होय तो श्रुतज्ञान उत्पन्न थतुं नथी. तेथी मतिज्ञानने श्रुतज्ञानमां कारणभूत कछुं छे.

ननु आभिनिवोधिकज्ञास्परपर्यायमतिज्ञानमेव श्रुतज्ञानं सम्पद्यते यथा मृत्तिकैव घटः, तन्तुरेव पटः. तर्हि श्रुतज्ञानस्य पृथगुपादानं भगवता किमर्थं कृतम् ? उच्यते दृष्टान्तद्वयमिदं विषमम्, यथा घट प्रादुर्भावे—पिण्डाकारा मृत्तिका प्रणश्यति, पटोत्पत्तौ सत्यां तन्तुपुञ्जश्च तथा श्रुतज्ञाने समुत्पन्ने मतिज्ञानं न प्रणश्यति ।

शंका—जब श्रुतज्ञान का कारण मतिज्ञान है किं जिसका दूसरा नाम आभिनिवोधिकज्ञान है भी तब जिस प्रकार मिट्टीहूप कारण घटकार्यरूप से परिणम जाता है उसी प्रकार से मतिज्ञान भी श्रुत ज्ञानरूप से परिणम जावेगा—अथवा जिस प्रकार मिट्टी ही घट बन जाती है, और तन्तु ही पट बन जाया करते हैं इसी तरह से मतिज्ञान भी श्रुतज्ञान हो जावेगा—तो फिर सूत्रकारने श्रुतज्ञान का पृथक् रूप से पाठ सूत्र में क्यों रखा है ?

उत्तर—ये दोनों दृष्टान्त ही विषम हैं क्यों कि—

इस प्रकार की मान्यता में मतिज्ञान का विनाश प्रसक्त होगा—हम देखते हैं कि जब घट का उत्पत्ति होती है, तब पिण्डाकार मृत्तिका का विनाश होता है और पट की उत्पत्ति में तन्तुपुंज का । परन्तु जब श्रुतज्ञान होता है तब मतिज्ञान का अभाव नहीं होता है । क्योंकि एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान तक होना सिद्धान्तकारों ने माना है । यदि श्रुतज्ञान के सद्भाव में मतिज्ञान का अभाव स्वीकार किया जावे तो यह सिद्धान्त विरुद्ध कथन

शंका—जे मतिज्ञान अथवा आभिनिवोधिक ज्ञानने ज श्रुतज्ञानना कारणरूप मानवामां आवे, तो जेम माटीरूप कारण घटकार्यरूपे परिणुमी नय छे, जेज प्रभाणु मतिज्ञान पणु श्रुतज्ञानरूपे परिणुमी नशे, अथवा जे प्रकारे माटी ज घडाइये परिणुमित थछ नय छे, जेज प्रभाणु मतिज्ञान पणु श्रुतज्ञानरूपे परिणुमित थछ नशे. तो पछी सूत्रकारे श्रुतज्ञानने अही पृथक् रूपे (जेक बुद्ध ज ज्ञानरूपे) शा मांटे प्रतिपादित कथुं छे ?

उत्तर—आ जन्ने दृष्टान्तो ज विषम छे, कारणु के आ प्रकारनी मान्यतामां तो मतिज्ञानने विनाश थवानी वात मानवानो प्रसंग उद्भूतवशे. आपणु जे वातने तो प्रत्यक्ष देणी शक्ये छीजे के न्यारे घट (घडा)नी उत्पत्ति थाय छे त्यारे माटीना पिंडानो विनाश थछ नय छे अने न्यारे पट (कापड)नी उत्पत्ति थाय छे त्यारे तंतुपुंजने नाश थछ नय छे. परंतु न्यारे श्रुतज्ञान उत्पन्न थाय छे त्यारे मतिज्ञानने विनाश थछ नतो नथी, कारणु के जेक आत्मां जेक साथे चार ज्ञानने सदृभाव छोछ शके छे, जेवुं सिद्धान्तकारेजे स्वीकारेकुं छे. जे श्रुतज्ञानने सदृभाव छोछ त्यारे मतिज्ञानने अभाव छोछ जेवुं मानवामां आवे, तो ते मान्यता तो

“जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुयं तत्थ मई” (नन्दी सू० २४)

छाया—यत्र मतिस्तत्र श्रुतं, यत्र श्रुतं तत्र मतिः ।

श्रुतस्य सद्भावे मतेर्विद्यमानता भगवताऽभिहिता तस्मादपेक्षाकारणमेव मतिज्ञानं श्रुतज्ञानस्येति मन्तव्यम्, तथा च मतिज्ञानपूर्वकमिन्द्रियमनोजन्यमाप्तवचनानुसारि ज्ञानं तज्ज्ञानमिति निष्कर्षः ।

‘श्रूयते यत्तच्छ्रुतम्’ इति व्युत्पत्त्या श्रुतशब्देन प्रवचनमपि गृह्यते । तस्मिन्पक्षे—श्रुतस्य=आप्तवचनस्य ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति षष्ठीतत्पुरुषः । आप्तो रागादि

ठहरता है । कि “जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुयं तत्थ मई” जहां पर मतिज्ञान है वहां श्रुतज्ञान है और जहां श्रुतज्ञान है वहां मतिज्ञान है । इस तरह श्रुत के सद्भाव में मतिज्ञान का सद्भाव-भगवान् ने कहा है । इसलिये ऐसा मानना चाहिये, कि तज्ज्ञान का मतिज्ञान केवल अपेक्षाकारण ही है । अपेक्षाकारण का तात्पर्य निमित्तकारण से है । जो निमित्तकारण होते हैं वे उपादान कारण की तरह स्वयं कार्यरूप नहीं परिणमते हैं केवल उपादान कारण ही कार्यरूप परिणमता है । तथा च—जो मतिज्ञानपूर्वक ही परंपरा से इन्द्रियों से जो जनिता हों और साक्षात्कारण जिसकी उत्पत्ति में मन हो ऐसा आप्तवचनानुसारी जा ज्ञान है वही श्रुतज्ञान है ।

श्रूयते यत् तत् श्रुतम् “इस व्युत्पत्ति के अनुसार श्रुतशब्द से प्रवचन का भी ग्रहण हो जाता है । अतः इस पक्ष में आप्तवचनरूप श्रुत का जो ज्ञान है वह श्रुतज्ञान है ऐसा षष्ठी तत्पुरुष समास करना चाहिये । रागद्वेष आदि से रहित

सिद्धान्तनी विद्धानी मान्यता प्रतिपादित थाय छे. शास्त्रोभां अप्पु क्खुं छे के.... “जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुयं तत्थ मई” जथां मतिज्ञानं होय छे, त्यां श्रुतज्ञानं होय छे जथां श्रुतज्ञानं होय छे त्यां मतिज्ञानं होय छे.” आ रीते श्रुतना सहस्रावभां मतिज्ञानने पणु सहस्राव भगवाने कडेवे छे. तेथी अप्पुं मानपुं जेधुं जे मतिज्ञानं जे श्रुतज्ञाननी उत्पत्तिभां मात्र अपेक्षाकारणु (निमित्तरूप कारणु) जे छे. जे निमित्त कारणु होय छे ते उपादान कारणुनी जेभ स्वयं कार्यरूपे परिणुभता नथी. मात्र उपादान कारणु जे कार्यरूपे परिणुभे छे. आ दृष्टिये विचारवामां आवे तो श्रुतज्ञानने आ प्रमाणे अथं इदित थाय छे.

जे मतिज्ञानपूर्वक होय, परम्परानी अपेक्षाये जे ज्ञान इन्द्रियोथी जनित होय छे पणु जेनी उत्पत्तिभां साक्षात् कारणुभूत मन होय छे, अप्पुं आप्तवचनानुसारी जे ज्ञान छे तेने श्रुतज्ञान कडे छे. “श्रूयते यत् तत् श्रुतम्” आ व्युत्पत्ति अनुसार श्रुत पद द्वारा प्रवचन पणु अहुणु थधुं जय छे. तेथी आ दृष्टिये विचारवामां आवे तो आप्तवचन रूप श्रुतनुं जे ज्ञान छे तेने श्रुतज्ञान कडे छे, जेवे षष्ठी तत्पुरुष

रहितः सर्वज्ञस्तस्य वचनम्—आप्त वचनम् । तदर्थाध्यवसाय (निर्णय) रूपं ज्ञानं श्रुत ज्ञानमिति । श्रुतज्ञानं प्रति शब्दस्य निमित्तकारणतया शब्देऽपि श्रुतव्यपदेशो भवति । ज्ञानभेदव्यवस्थायां श्रुतशब्दः श्रवणार्थवाचीत्यभिधेयम् ॥२॥

(३) अवधिज्ञानम्—अपधानमवधि—इन्द्रिय नोइन्द्रिय निम्पेक्षस्य आत्मनः साक्षादर्थग्रहणम्, अवधिरेवज्ञानम् अवधिज्ञानम् । अथवा—‘अव’ शब्दोऽधःशब्दार्थः । अव=अधः विस्तृतं वस्तु धीयते=ज्ञायतेऽनेनेत्यवधिः । अवधिश्चासौ तज्ज्ञानं चेत्यवधिज्ञानम् । विस्तृतविषयकं ज्ञानमित्यर्थः । यथा—अनुत्तरोपपातिका देवा अवधिज्ञानबलेन, भगवन्तमापृच्छथ जीवादितत्त्वस्वरूपं निर्धारयन्ति ।

विशिष्ट व्यक्ति का नाम आप्त है । जिसे सर्वज्ञ कहा जाता है । उसके बचन का नाम आप्तवचन है । उनके द्वारा प्रतिपादित अर्थरूप जो आगम है, उस आगम का निर्णयरूप ज्ञान श्रुतज्ञान है । श्रुतज्ञान के प्रति शब्द निमित्तकारण होता है एतावता निमित्त कारण की अपेक्षा लेकर शब्द में भी श्रुत का व्यवहार होता है । परन्तु ज्ञान भेद की व्यवस्था में श्रुतशब्द श्रवण जन्यज्ञानरूप अथ का वाची लिया गया है ।

“अवधानमवधिः” अर्थात् इन्द्रियों एवं मनकी सहायता के बिना केवल आत्मा से ही द्रव्य क्षेत्रकाल और भाव की मर्यादा लेकरूपी पदार्थों को जो साक्षात् रूप से ग्रहण करनेवाला ज्ञान होना है उसका नाम अवधि है ।

अथवा—अवधिज्ञान में जो अपशब्द है वह अधःशब्द के अर्थ को कहने वाला है । इसलिये जिसज्ञान के द्वारा नीचे का विषय विस्तररूप से “धीयते” जाना जाता है । वह अवधिज्ञान है तात्पर्य इसका यह है कि जब

समास अर्द्धी समञ्जो ज्ञेयः । राग, द्वेष आदिथी रहित विशिष्ट व्यक्तिने आप्त कहे छे । सर्वज्ञाने न ज्ञेयां आप्त कही शक्य छे । ते सर्वज्ञाना वचनने आप्तवचन कहे छे । तेमना द्वारा प्रतिपादित अर्थ रूप ज्ञे आगम छे, ते आगमना निर्णयरूप ज्ञानने न श्रुतज्ञान कहे छे । श्रुतज्ञाननी प्राप्तमां शब्दरूप निमित्त परम्प । कारण रूप छेय छे । तेथी निमित्त कारणनी अपेक्षा ज्ञे शब्दमां पणु श्रुत शब्दने व्यवहार थाय छे परंतु ज्ञानना लेदोनी व्यवस्थामां श्रुत शब्दने श्रवणजन्य ज्ञानरूप अर्थने वाचक देवामां आवेळ छे ।

(३) “अवधानमवधिः” अवधिज्ञान—

इन्द्रियो अने मनना सहायता बिना देवण आत्मा द्वारा न द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी मर्यादानी अपेक्षा ज्ञे रूपी पदार्थने साक्षात् रूपे ग्रहण करना नुं ज्ञे ज्ञान छे, तेने अवधिज्ञान कहे छे । अथवा—अवधिज्ञानमां ज्ञे ‘अव’ उपसर्ग छे ते अधः शब्दना अर्थने वाचक छे । तेथी ज्ञे ज्ञान द्वारा नीचेना विषयनुं विस्तृत रूपे “धीयते” ज्ञान थाय छे, ते ज्ञानने अवधिज्ञान कहे छे । आ कथननुं तात्पर्य नीचे प्रमाणे छे—अवधिज्ञाननुं क्षेत्र आंगणना असंख्यातमां

यद्वा—अवधिना ज्ञानम्—इति तृतीया समासः । अवधिर्मर्यादारूपिद्रव्याप्येव विषयीकरोति नेतराणीति व्यवस्थारूपा । तथाचायमर्थः—अरूपि द्रव्यपरिहारेण रूपिद्रव्यमात्रविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानमिति ।

यद्वा—अधोऽधोऽधिकं पश्यति येन तदवधिज्ञानम् । तश्चचतुर्गतिवर्तिनां जीवानामिन्द्रियमनोनीरपेक्षं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तं रूपिद्रव्यसाक्षात्कार जनकं भवति । एतस्य देवमनुष्यतिर्यङ्मनारका अधिकारिणः ॥३॥

अवधिज्ञान का क्षेत्र अंगुल केअपंख्यातवें भाग से लेकर सारा लोकर हैं—तब उसका विषय भी कतिपय पर्याय सहितरूपी द्रव्य है इसलिये यह ज्ञान विस्तृत विषयवाला है । विस्तृत विषयता जो इस में प्रकट की है वह मनः पर्यायज्ञान की अपेक्षा जाननी चाहिये । क्यों कि मनःपर्याय ज्ञान का क्षेत्र सिर्फ मानुषोत्तर पर्वत पर्यंत ही है और उसका विषय अवधिज्ञान के विषयभूत हुए रूपी द्रव्य का अनन्ततवां भाग है । अथवा—अवधिशब्द का अर्थ मर्यादा है । इस अर्थ में अवधि और ज्ञान का तृतीया तत्पुरुष समास होकर ऐसा अर्थ होता है कि जो ज्ञान मर्यादा लेकर पदार्थों को जानता है । वह अवधिज्ञान है । इस में मर्यादा रूपी पदार्थों को जाननेकी अपेक्षा से जाननी चाहिये । क्यों कि वह ज्ञान रूपी पदार्थों को नहीं जानता है । इसलिये इस प्रकार का व्यवस्थारूप मर्यादा युक्त होने के कारण इस ज्ञानक नाम अवधिज्ञान रखा है । अथवा—नीचे नीचे की ओर जो ज्ञान अधिक विषय को

भागर्था लधने आभा लोक पर्यन्तनुं छे, अने कतिपय पर्याय सहितना रूपी द्रव्यने विषय करनाइं ज्ञान छे. आ रीते ते ज्ञान विस्तृत विषयवाणुं छे. तेमां जे विस्तृत विषयता प्रकट करवामां आवी छे ते मनःपर्याय ज्ञाननी अपेक्षाये समजवी, कारणु के मनःपर्याय ज्ञाननुं क्षेत्र मात्र मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त ज छे अने अवधिज्ञान द्वारा जेटलाइपी द्रव्यने जेध शक्य छे तेना करतां मनःपर्याय ज्ञानद्वारा अनन्तमां भागना रूपी द्रव्यने जेध शक्य छे.

अथवा—अवधि जेटले मर्यादा. आ अर्थमां अवधि अने ज्ञान, आ जे पढोने तृतीया तत्पुरुष समास अन्यो छे. आ दृष्टीये वेचारव.मां आवे तो अवधिज्ञानने अर्थ आ प्रमाणे थशे—जे ज्ञान मर्यादित पदार्थोने जाले छे, ते ज्ञाननुं नाम अवधिज्ञान छे. ते ज्ञान, रूपी पदार्थोने जे जाले छे—अरूपी पदार्थोने जालेतुं नथी, आ प्रकारनी रूपी पदार्थोने जे जालुवाइप आ मर्यादा समजवी. तेथी आ प्रकारनी व्यवस्थाइप मर्यादाथी युक्त होवाने लीधे आ ज्ञाननुं नाम अवधिज्ञान पडयुं छे. अथवा—जे ज्ञान नीचेनी णालुये अधिक विषयने देणी शके छे ते ज्ञानने अवधिज्ञान कडे

देखता है—वह ज्ञान अवधिज्ञान है ऐसा यह अवधिज्ञान चारों गतियों के जीवों को इन्द्रियाँ और मन की सहायता के बिना अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होता है।

शंका:—शास्त्रकारों ने मनुष्य और तिर्य्यचगति के जीवों को जो अवधिज्ञान कहा है वही क्षयोपशम निमित्तक कहा है—फिर यहां चारों गतियों के जीवों को जो अवधिज्ञान होता है वह क्षयोपशम निमित्तक होता है ऐसा क्यों कहा—तो इस शंका का समाधान इस प्रकार से है कि अवधिज्ञान की उत्पत्ति नियमतः अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ही होती है—परन्तु इस क्षयोपशम में जहां व्रत, नियम, आदि अनुष्ठान की अपेक्षा रहती है—वह क्षयोपशम निमित्तक कहलाता है ऐसा अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्य्यचों के होता है। जिस अवधिज्ञान में इनकी अपेक्षा न हो किन्तु भवजन्म लेना ही कारण हो वहां वह अवधिज्ञान इन गुणों की अपेक्षा बिना ही अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हो जाता है। ऐसा अवधिज्ञान देव और नारकियों को होता है। अन्तरंग कारण इन दोनों प्रकार के अवधिज्ञानों

छे. छिन्द्रियो अने मननी सहायता विना इपी पदार्थोनि ज्येष्ठ शकनाइं आ अवधिज्ञान, अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयथी आरे गतिना एवोमां उत्पन्न थतुं होय छे.

शंका—शास्त्रकारोये तो एवुं कहुं छे के मनुष्य अने तिर्य्यचगतिना एवोने ने अवधिज्ञान थाय छे ते क्षयोपशम निमित्तक होय छे. छतां आप शा कारणे एवुं कहे छे के आरे गतिना एवोने अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमथी अवधिज्ञान उत्पन्न थछ शके छे?

समाधान—अवधिज्ञाननी उत्पत्ति तो नियमथी न अवधिज्ञानावरण कर्मना क्षयोपशमथी न थाय छे, परन्तु आ क्षयोपशममां जयां व्रत, नियम आदि अनुष्ठानोनी आवश्यकता रहे छे, त्यां ते अवधिज्ञानने क्षयोपशमनिमित्तक कहेवामां आवे छे. एवा क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञानने सहलाव मनुष्य अने तिर्य्यचोमां न होय ने अवधिज्ञानमां तेनी आवश्यकता न होय पणु लव न (जन्म लेवो एव) कारणे इप होय, त्यां आ गुणोनी अपेक्षा विना न अवधिज्ञानावरण कर्मना क्षयोपशमथी अवधिज्ञान उत्पन्न थछ नय छे. एवा अवधिज्ञानने सहलाव देवो अने नारकोमां होय छे. आ रीते आ जन्मे प्रकारना अवधिज्ञानमां अन्तरंग कारणे तो समान होय छे अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशम न ते जन्मेमां अन्तरंग कारणे छे ते कारणे 'अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमथी आरे गतिना एवोमां अवधिज्ञान उत्पन्न थाय छे.' आ प्रकारना कथनमा डोछ दोष संभवतो नथी.

मनःपर्यवज्ञानमिति । अवनम् अवः । 'अव रक्षणं गतिकान्तिप्रीतितृप्त्य-
वगमाद्यर्थेषु' पठितोऽरित, तत्रावगमार्थमाश्रित्य निष्पन्नः । अवः—अवगमः, बोध
इत्यर्थः । परिशब्दः सर्वतो भावे, पर्यवः—समन्तादबोधः । मनसः पर्यवो मनः
पर्यवः मनोविषयकः समन्तादबोध इत्यर्थः । मनःपर्यवश्चासौ तज्ज्ञानं चेति
मनःपर्यवज्ञानम् । पर्ययः, पर्यायः, एते शब्दा एकार्थवाचकाः ।

में समान हैं । अधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ही अन्तरंग कारण है ।
अतः ऐसा कहने में कि अधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अधि-
ज्ञान की उत्पत्ति चारों गतियों के जीवों को होती है इस प्रकार के कथन
में कोई विरोध नहीं है ।

मनःपर्यवज्ञान-पर्यव यह शब्द परि उपसर्ग अव धातु से बना है । अव
धातु रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम आदि अर्थों में पठित हुआ
है सो वही पर इन में से अवगम अर्थ लिया गया है ।

अवगम का अर्थ बोध है । "परि" का अर्थ सब प्रकार से है । मन की सब
पर्यायों का साक्षात् जानने वाला जो ज्ञान है वह मनः पर्यवज्ञान है । पर्यय
पर्याय ये सब शब्द एकार्थवाचक हैं । तात्पर्य इसका यह है कि मनवाले
संज्ञी प्राणी—किसी भी वस्तु का चिन्तन मनसे करते हैं । चिन्तन के समय
चिन्तनीयवस्तु के भेद के अनुसार चिन्तनकर्म में प्रवृत्त मन भिन्न २ आकारों
को धारण करता रहता है । ये आकृतियां ही मन की पर्याय हैं । इन मन की
पर्यायों को साक्षात् जानने वाला ज्ञान मनःपर्यवज्ञान है द्रव्य मन और

(४) मनःपर्यवज्ञान-परि+अव्=पर्यव. आ रीते 'अव्' धातुने 'परि' उपसर्ग
लागवार्थी 'पर्यव' पद बन्युं छे. 'अव्' धातु रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति,
अवगम आदि अर्थोभां वपराय छे. अहीं तेने अवगम अर्थ गृहीत थये छे.
अवगम ओटवे बोध, अने 'परि' ओटवे 'सर्व प्रकारे'

"मनना सधणा पर्यायेने साक्षात् ज्ञानाज्ञं जे ज्ञान छे, तेनुं नाम मनः
पर्यवज्ञान छे." पर्यय अने पर्याय आ अन्ने शब्दो समानार्थी छे. आ कथनने
लावार्थ नीचे प्रमाणे छे-मनवाणा एवो (संज्ञी एवो) केध पणु वरतुनु मननी
मददथी चिन्तन करे छे. आ प्रकारना चिन्तनकर्मभां प्रवृत्त थयेछुं मन सिन्नसिन्न
आकारेने धारण करतुं रहे छे. ते आकृतियो ज मनना पर्याये छे. मनन ओ
पर्यायेने साक्षात् ज्ञानाज्ञं जे ज्ञान छे ते ज्ञाननुं नाम ज मनःपर्यवज्ञान छे.

મનોદ્વિવિધ-દ્રવ્યભાવભેદાત્ । તત્ર દ્રવ્યમનો મનોવર્ગણાઃ । સંજ્ઞિના મનો-
વર્ગણા ગૃહીતાઃ સત્યો મન્યમાનાશ્ચિન્ત્યમાના ભાવમનોઽભિધીયતે ।

તત્રેહ ભાવમનઃ પરિગૃહ્યતે । ભાવમનસઃ પર્યાયાશ્ચ પરેષામ્ અર્દ્ધતૃતીયદ્વીપામ્ય-
ન્તસ્વર્ત્તિસંજ્ઞિપञ्ચેન્દ્રિયાણાં ચિન્ત્યમાનવિષયાઽધ્યવસાયરૂપાઃ । યથા—અન્યઃકશ્ચિ-
દેવં ચિન્તયેત્—આત્મા કીદૃશઃ ? અરૂપી, ચેતનાસ્વભાવઃ, કર્મણાં કર્તા
તત્ફલભોક્તા ચેત્યાદયો યે જ્ઞાનવિશેષરૂપાસ્તસ્થાત્મનઃ પરિણામવિશેષા તેષાં યદ્
જ્ઞાનં તન્મનઃપર્યાયજ્ઞાનમ્ ।

ભાવ મન કે ભેદ સે મન દો પ્રકાર કા હોતા હૈ । इनमें मनोवर्गणारूप तो
द्रव्य मन है तथा संज्ञी जीव उन मनोवर्गणाओं को ग्रहण करके उनके निमित्त
से जो विचार करता है वह भावमन है । यहां पर भावमन का ग्रहण हुआ
है । मनः पर्यायज्ञानी दूसरों के इस भावमन की पर्यायों को कि जो अढाई
द्वीपवर्ती संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणियों द्वारा विचारी गई है उन्हें साक्षात् जानता
है । जैसे कोई यह विचारे कि आत्मा वैसा है ? “अरूपी है चेतना स्वभाव-
वाला है, कर्मों का कर्ता है, और उन कर्मों के फलों का भोक्ता है “इस
तरह ये ज्ञानविशेषरूप जो उस आत्मा के विचारित परिणाम विशेष है उन
परिणाम विशेषों का जो ज्ञान है वह मनःपर्याय ज्ञान है । अर्थात् मनःपर्याय-
ज्ञानी इन से कल्पित मन की पर्यायों को साक्षात् जानता है । इससे यह
वात घनित होती है कि मनःपर्यायज्ञानी मन को ही प्रत्यक्षरूप से जानता
है, चिन्तनीय वस्तुओं को नहीं ।

द्रव્યमन અને ભાવમનના ભેદથી મન બે પ્રકારનું કહ્યું છે. આ બન્નેમાંનું જે દ્રવ્ય
મન છે તે મનોવર્ગણારૂપ છે, તે મનોવર્ગણાઓને ગ્રહણ કરીને તેમના નિમિત્તથી
સંજ્ઞી જીવ જે વિચાર કરે છે તે ભાવમનરૂપ છે. અહીં ભાવમન ગ્રહણ કરવામાં
આવ્યું છે. અહીં દ્વીપવર્તી સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવો દ્વારા વિચારવામાં આવેલી ભાવ-
મનના પર્યાયોને મનઃપર્યાયજ્ઞાની જીવ સાક્ષાત્ જાણે છે. જેમ કે કોઈ એવો વિચાર
કરે કે “આત્મા કેવો છે ? શું તે અરૂપી છે ? શું તે ચેતના સ્વભાવવાળો છે ? શું
તે કર્મોના કર્તા અને તે કર્મોનાં ફલોના ભોક્તા છે ?” આ પ્રકારનું આ જ્ઞાનવિશેષ-
રૂપ ને આત્માદ્વારા વિચારિત જે પરિણામવિશેષ છે, તે પરિણામવિશેષોને જાણનાર
જે જ્ઞાન છે, તે જ્ઞાનનું નામ મનઃપર્યાયજ્ઞાન છે. એટલે કે મનપર્યાયજ્ઞાની જીવ આ
સંકલ્પિત મનના પર્યાયોને સાક્ષાત્ જાણી શકે છે. આ કથન દ્વારા એ વાત સૂચિત
થાય છે કે મનપર્યાયજ્ઞાની જીવ મનની પર્યાયોને જ પ્રત્યક્ષરૂપે જાણે છે—ચિન્તનીય
વસ્તુઓને જાણતો નથી,

मनःपर्ययज्ञानी च मनःपर्ययानेव प्रत्यक्षी करोति, न तु बाह्यवस्तु । न च मनः पर्ययज्ञानिना बाह्यं वस्तु ज्ञायते इति वाच्यम्, अनुमानतस्तस्य बाह्यवस्तुज्ञानसद्भावात् । यथा विशिष्टक्षयोपशामिकप्रतिभाशाली प्रेक्षावान् प्रशान्तःकस्यचिदाकारेङ्गितादिकं विलोक्य तदीयमनोगतं भावं सामर्थ्यं चानुमानतो विजानाति तथा मनःपर्ययज्ञानी कस्यचिद् भावरूपं मनःसर्वतोभावेन प्रत्यक्षीकृत्वानुमानेन बाह्यं विषयमवबुध्यते—‘इदं वस्त्वनेन चिन्त्यते’ इति । बाह्यपदार्थचिन्तनसमये हि बाह्यपदार्थाकारसदृशाकारं मनो भवति ।

इदं मनःपर्ययज्ञानं रूपिविषयत्वप्रत्यक्षयोपशामिकत्वप्रयक्षत्वादिसाम्येऽप्यवधिज्ञानाद् भिन्नं, स्वाम्यादि भेदात् । तथाहि अवधिज्ञानमविस्तसम्पददृष्टेरपि

प्रश्न—तो क्या चिन्तनीय वस्तुओं को मनःपर्ययज्ञानी जान नहीं सकता ?—उत्तरः—जान सकता है—पर पीछे से अनुमानद्वारा । जैसे कोई विशिष्टक्षयोपशामिक प्रतिभाशाली विद्वान् शान्तभाव से किसी दूसरे व्यक्ति के आकार इंगित आदि को प्रयक्ष देख कर उसके मनोगत भाव एवं सामर्थ्य को अनुमान से जान लेता है उसी तरह मनःपर्ययज्ञानी किसी के भावरूप मन को सर्वतोभाव से प्रयक्ष कर अनुमान से तर्जित चिन्तनीय बाह्य वस्तुओं को जानलिया करता है कि इसने इस वस्तु का चिन्तन किया है क्यों कि इसका मन उस वस्तु के चिन्तन के समय अवश्य होनेवाले इसप्रकार के आकारों से युक्त है । मन जब बाह्य पदार्थों का चिन्तन करता है तो उस समय वह उस चिन्तित बाह्यपदार्थ के आकार जैसा आकारवाला हो जाता है ।

मनःपर्ययज्ञान और अवधिज्ञान इन दोनों में रूपी पदार्थों को जानने

प्रश्न शुं मनःपर्ययज्ञानी एव चिन्तनीय वस्तुओंके ज्ञाणी शकतो नथी ?

उत्तर—मनःपर्ययज्ञानी एव चिन्तनीय वस्तुओंके पाछणथी अनुमानद्वारा ज्ञाणी शके छे जेवी रीते केछे विशिष्ट क्षयोपशामिक प्रतिभाशाली विद्वान् शान्तभावे केछे अन्य व्यक्तितनी मुष्णाकृति, तेनी जेध्याओ आदिने प्रत्यक्ष जेधने तेना मनोगत भावेने सामर्थ्यने अनुमानथी ज्ञाणी ले छे, जेज प्रमाणे मनःपर्ययज्ञानी एव केछे अन्य एवना बावइय मनने पोताना मनःपर्ययज्ञान वडे प्रत्यक्ष कनीने अनुमानथी तद्गत चिन्तनीय बाह्य वस्तुओंके पक्षु ज्ञाणी शके छे. ते मनःपर्ययज्ञानी एव जेवुं अनुमान करे छे के आ व्यक्तितये आ वस्तुतुं चिन्तन करुं छे, कारणु के तेतुं मन ते वस्तुना चिन्तन समये जेवां आकारेथी अवश्य युक्त छेपुं जेधज्ये जेवा आकारेथी अवश्य युक्त छे. मन ज्यारे बाह्यपदार्थोंतुं चिन्तन करे छे, ज्यारे ते (मन) ते चिन्तित बाह्यपदार्थोंना आकार जेवा आकारवाणुं थध जय छे.

मनःपर्ययज्ञान जने अवधिज्ञानमां रूपी पदार्थोंने ज्ञाणुवानी अपेक्षाज्ये, क्षयो-

ભવતિ । દ્રવ્યતોઽશ્વેષરૂપિદ્રવ્યવિષયમ્, ક્ષેત્રતોઽસંખ્યાતલોકવિષયમ્ । કાલતોઽતી-
તાનાગતાસંખ્યાતોત્સર્પિણ્યવસર્પિણીવિષયમ્ । ભાવતઃ સકલરૂપિદ્રવ્યેષુ પ્રતિદ્રવ્ય-
મસંખ્યાતપર્યાયવિષયમ્ ।

મનઃપર્યવજ્ઞાનં તુ પ્રમાદરહિતસ્થાઽઽમર્ષાદ્યન્યત્તમલબ્ધિધારિણઃ સંયતસ્ય
ભવતિ । દ્રવ્યતઃ—સંજ્ઞિપञ्चेन्द्रियमनोद्रव્યવિષયમ્ । ક્ષેત્રતઃ—સમક્ષેત્રમાત્રવિષયમ્ ।
કાલતઃ—અતીતાનાગતપલ્યોપમાસંખ્યાતભાગવિષયમ્ । ભાવતો—મનોદ્રવ્યગતાનન્ત-
પર્યાયવિષયમ્ ॥૪॥

ક્રી, ક્ષાયોપશમિકત્વ કી एवं પ્રત્યક્ષત્વ આદિ કી અપેક્ષા સે સમાનતા હૈ—
તો મી સ્વામ્યાદિ કી અપેક્ષા સે મિન્નતા હૈ—અવધિજ્ઞાન જો અવિરતસમ્પ્રકૂ
દૃષ્ટિ હૈ, ઉસકો મી હો જાતા હૈ, દ્રવ્ય કી અપેક્ષા યહ સમસ્તરૂપી પદાર્થોં કો
વિષય કરના હૈ, ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા અસંખ્યાત લોક ઇસકા વિષય માના ગયા
હૈ, કાલ કી અપેક્ષા યહ અતીત અનાગતકાલ કે અસંખ્યાત ઉત્સર્પિણી ઓર
અવસર્પિણી કાલોં કો જાનતા હૈ, તથા ભાવ કી અપેક્ષા યહ સમસ્તરૂપી
દ્રવ્યોં મેં પ્રતિદ્રવ્ય કી અસંખ્યાત પર્યાયોં કો જાનતા હૈ । મનઃપર્યવજ્ઞાન
અવિરત અવસ્થાવાલે જીવ કો નહીં હોતા હૈ । ઉસમેં મી પ્રમત્ત સંયત કા
નહીં હોતા હૈ કિન્તુ જો અપ્રમત્ત સંયત હૈ ઉસકો હોતા હૈ ।
ઉસમેં મી આમર્ષ આદિ કિસી ઇક લબ્ધિધારી કે હી હોતા હૈ । દ્રવ્ય કી
અપેક્ષા સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિયજીવ કે મનોદ્રવ્ય કો વિષય કરતા હૈ । ક્ષેત્ર કી

પશમિકત્વની અપેક્ષાએ અને પ્રત્યક્ષત્વ આદિની અપેક્ષાએ સમાનતા છે. પરન્તુ કેટલીક
બાબતોમાં તે અવધિજ્ઞાનથી બુદ્ધ પડે છે.

અવધિજ્ઞાન અવિરત સમ્પ્રકૂદૃષ્ટિ જીવમાં પણ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, દ્રવ્યની
અપેક્ષાએ તે સમસ્તરૂપી પદાર્થોને જોઈ શકે છે, ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત લોક
તેના વિષય મનાય છે, કાળની અપેક્ષાએ તે અતીત અને અનાગતકાળના અસંખ્યાત
ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણી કાળોને જાણે છે, તથા ભાવની અપેક્ષાએ તે સમસ્તરૂપી
દ્રવ્યોમાંના પ્રત્યેક દ્રવ્યની અસંખ્યાત પર્યાયોને જાણે છે. મનઃપર્યવજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ
અવિરત અવસ્થાવાળા જીવમાં થતી નથી, પરન્તુ જે જીવ સંયત હોય છે તેને
જ મનઃપર્યવજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. વળી પ્રત્યેક સંયત જીવને તે ઉત્પન્ન થાય
છે એવો કોઈ નિયમ નથી. જેમ કે પ્રમત્ત સંયતને તે ઉત્પન્ન થતું નથી, પણ
અપ્રમત્ત સંયતને જ ઉત્પન્ન થાય છે. અપ્રમત્ત સંયતમાં પણ આમર્ષ આદિ કોઈ
એક લબ્ધિધારીને જ મનઃપર્યવજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. દ્રવ્યની અપેક્ષાએ સંજ્ઞી
પંચેન્દ્રિય જીવના મનોદ્રવ્યને તે વિષય કરે છે—જાણી શકે છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ

(५) केवलज्ञानम्—केवलम्=एकमसहायं ज्ञानावरणीयकर्मत्तदन्तर्क्षयसमुद्भूतम् अतीतानागतवर्तमानदथावस्थितसकलद्रव्यगुणवर्धयविषयकमप्रतिपातिज्ञानं केवल-ज्ञानम् ॥५॥

अधिकं जिज्ञासुभिर्नन्दिसूत्रे मत्कृतज्ञानचन्द्रिकाटीकायां विलोकनीयम् ।

इत्थं शास्त्रस्यादावेव ज्ञानपञ्चकवर्णनेन मङ्गलं प्रदर्शितं भवति, सकलक्लेशो-च्छित्तिमूलत्वेन ज्ञानस्य परममङ्गलत्वात् ॥सू० १॥

अपेक्षा—इसका विषय समयक्षेत्र मात्र हैं । काल की अपेक्षा—अतीत अनागत काल का—पल्योपम का असंख्यात वां भाग इसका विषय है । भाव की अपेक्षा—इसका विषय मनोद्रव्य संबन्धी अनंत पर्याये हैं । केवलज्ञान—एक असहाय ज्ञान का नाम केवलज्ञान हैं । यह ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के अत्यन्त क्षय से होता है । अन्य ज्ञानों की तरह यह प्रतिपाती नहीं हैं । इसके विषय का अधिक विस्तार नन्दिसूत्र की ज्ञानचन्द्रिका नाम की टीका में मैंने लिखा हैं—सो जिज्ञासु महानुभाव वहाँ से इसे देखले ।

इस प्रकार से सूत्रकार ने शास्त्र की आदि में ही जो पांच प्रकार के ज्ञानों का वर्णन किया है उससे मंगल प्रदर्शित होता है । क्योंकि ज्ञान सकलक्लेशों की उच्छित्ति का मूलकारण है । अतः उसमें परम मंगलता आती है । ॥ सूत्र० १ ॥

समयक्षेत्र मात्रने न ते विषय करुनाइं—जणुनाइं—छे. काणनी अपेक्षाअे अतीत (भूत) अने अनागत (लविष्य) काणना पल्योपमने असंख्यातमे लाग तेने विषय छे. लावनी अपेक्षाअे तेने विषय मनोद्रव्य संबन्धी अनंत पर्याये छे.

(५) केवलज्ञान—आ ज्ञान अेवुं छे के जेमां छन्द्रीये अने मननी सहाय-तानी अपेक्षा रडेती नथी, ज्ञानवरणीय कर्मना आत्यन्तिक (संपूर्णतः) क्षयथी आ ज्ञान उत्पन्न थाय छे. तेने विषय, भूत, लविष्य अने वर्तमान, आ त्रणे काण संबन्धी समस्त द्रव्य अने तेमनी समस्त (अनंत) पर्याये छे अन्य ज्ञानोनी जेम ते प्रतिपाति (अेक वणत प्राप्त थया भाइ जेने विनाश थाय अेवुं) नथी. केवलज्ञाननुं विस्तृत निरूपणु नन्दिसूत्रनी ज्ञानचन्द्रिका नामनी में लपेदी टीकाभां करवाभां आण्युं छे, तो जिज्ञासु पाठकेअे त्यांथी ते वांथी देवुं.

आ प्रकारे सूत्रकारे शास्त्रने प्रारंभे न पांच प्रकारना ज्ञानोनुं जे निरूपणु कथुं छे तेनुं कारणु अे छे के ज्ञान पोते न मंगलइप छे. सकल क्लेशोना उच्छे-दनमां ज्ञान न कारणुभूत णने छे. आ रीते ज्ञानमां परम मंगलताने सदृसाव होवाथी सूत्रकारे शङ्कातमां न तेनी प्ररूपणु करी छे. ॥ सू० १ ॥

पञ्चविधेषु ज्ञानेषु श्रुतज्ञानस्यैव उद्देशसमुद्देशाद्यवसरेऽधिकारोऽस्ति, नेतरे-
पामिति बोधयितुमाह—

मूलम—तत्थ चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं णो उद्दिसंति,
णो समुद्दिसंति, णो अणुण्णविज्जंति । सुयणाणस्स उद्देशो समुद्देशो
अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ॥ सू० २ ॥

छा । तत्र चत्वारि ज्ञानानि स्थाप्यानि स्थापनीयानि नो उद्दिश्यन्ते, नो समुद्दि-
श्यन्ते, नो अनुज्ञाप्यन्ते । श्रुतज्ञानस्य उद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्ततोऽस्त्व० २।

टीका—‘तत्थ चत्तारि’ इत्यादि—

तत्र=तेषु पञ्चविधेषु ज्ञानेषु चत्वारि—चतुःसंख्यकानि ज्ञानानि आभिनिबो-
धिकाऽवधिमनःपर्यवकेवलरूपाणि असं० । चत्वार्याणि-न व्यवहारार्हाणि ‘ठप्पाइं’ स्था-
प्यानि उद्देशसमुद्देशाद्यवसरे अत एव ‘ठवणिज्जाइ’ स्थापनीयानि=अनधि-
कृतानि । न तेषामुद्देशादयः क्रियन्ते इति भावः ।

अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि पांच प्रकार के जो ये ज्ञान हैं—
इनमें श्रुतज्ञान का ही उद्देश, समुद्देश आदि के अवसर में अधिकार है दूसरे
चार ज्ञानों का नहीं— “तत्थ चत्तारि”—इत्यादि । ॥ सूत्र २॥

शब्दार्थः—(तत्थ) इन पूर्वोक्त पांच प्रकार के ज्ञानों में (चत्तारि नाणाइं)
चार प्रकार के ज्ञान—मति-अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान—(ठप्पाइं) उद्देश,
समुद्देश आदि के अवसर में व्यवहारयोग्य नहीं हैं । क्यों कि ये गुरु के
उपदेश की अपेक्षावाले नहीं हैं । इसलिये (ठवणिज्जाइं) ये स्थापनीय हैं—
अर्थात् इनके उद्देश आदि नहीं—किये गये हैं । इस विषय में ऐसा जानना
चाहिये कि श्रुतज्ञान ही वाचना आदि द्वारा अपने विषयभूत पदार्थों में

हुवे सूत्रकार ये प्रकट करे छे के पांच प्रकारना जे ज्ञान छे तेमांथी श्रुत-
ज्ञानना जे उद्देश, समुद्देश आदिने अवसरे अधिकार छे—अन्य चार ज्ञानाना नथी.

“तत्थ चत्तारि” इत्यादि—

शब्दार्थ—(तत्थ) पूर्वोक्त पांच प्रकारना ज्ञानांमांथी (चत्तारि नाणाइं) चार
प्रकारना ज्ञान अटवे के मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान अने केवलज्ञान
(ठप्पाइं) उद्देश, समुद्देश आदिना अवसरे व्यवहारयोग्य नथी. कारण के चारे
ज्ञानमां गुरुना उपदेशनी अपेक्षा रहेती नथी, तेथी (ठवणिज्जाइं) ते चारे ज्ञान
स्थापनीय छे. अटवे के तेमना उद्देश आदि करवामां आवेद नथी आ विषयने
अनुलक्षिने अेषुं समञ्जसुं जेथेके के श्रुतज्ञान जे वाचना आदि द्वारा पोताना

इदमत्राबधेयम्—श्रुतज्ञानमेव हि वाचनादिना साक्षात् प्रवर्त्तकं च । अन्यानि तु यद्यपि पदार्थानां स्वरूपमवबोधयन्ति, तथापि श्रुतज्ञानमनाश्रित्य साक्षात् प्रवर्त्तयितुं निवर्त्तयितुं वा न समर्थानि, तस्मादिह तेषां नाधिकार इति । उक्तमेवार्थं विशदयन्नाह—‘णो उद्दिस्सन्ति’ इत्यादि । नो उद्दिश्यन्ते शिष्येभ्यो नोपदिश्यन्ते । नो समुद्दिश्यन्ते—एतानि स्थिरपरिचितानि कुरु इत्येवंरूपेण एतानि चत्वारि ज्ञानानि गुरुभिः शिष्यान् प्रति नोपदिश्यन्ते, अत एव एतानि नो अनुज्ञाप्यन्ते—‘एतानि सम्भ्र.गवधारय, अन्धांश्चापि अध्यापय’ इत्येवं रूपेण एतानि शिष्यान् प्रति नानुमोद्यन्ते ।

अथ—आभिनिबोधिकज्ञानम्, अवधिादीनि च ज्ञानानि स्थाप्यानि गुर्वनधीनत्वेनोद्देशाद्यविषयाणि, अतः स्थापनीयानि=अध्याख्येयानि । श्रुतज्ञानं तु

साक्षात् प्रवर्त्तक होता है । यद्यपि अन्तज्ञान भी पदार्थों के स्वरूप का बोध कराते हैं, परन्तु वे श्रुतज्ञान का आश्रय लिये विना अपने विषयभूत हेयोपादेय विषय से न साक्षात् रूप में निवर्त्तक होते हैं, और न उसमें प्रवर्त्तक होते हैं । इसलिये उन ज्ञानों का यहां उद्देश समुद्देश आदि में विचार नहीं किया गया है । इसी अर्थ को सूत्रकार विशद रूप से विवेचन करने के लिये कहते हैं कि (णो उद्दिस्सन्ति णो समुद्दिस्सन्ति) ये चार ज्ञान गुरुजनों द्वारा शिष्यों के लिये उपदिष्ट नहीं होते हैं—और न गुरुजन उनसे ऐसा कहते हैं । कि तुम इनका स्थिररूप से परिचय करो (णो अणुण्णविज्जन्ति) इन्हें अच्छी तरह से निश्चित कर हृदय में धारण करो तथा दूसरों को भी इन्हें पढाओ अथवा—ये आभिनिबोधिक और अवधि आदि ज्ञान स्थाप्य है—गुरुजनों के ये आधीन नहीं हैं इस कारण उद्देश आदि विषयभूत नहीं हैं इसलिये स्थापनीय

विषयभूत पदार्थोंमें साक्षात् प्रवर्त्तक अने निवर्त्तक होय छे जे के अन्य ज्ञान पण पदार्थोंना स्वरूपने बोध करावे छे थरां, परन्तु तेयो श्रुतज्ञानने आधार दीधा विना पोताना विषयभूत हेयोपादेय विषयथी साक्षात् रूपे निवर्त्तक पणु होतां नथी. अने तेमां प्रवर्त्तक पणु होतां नथी. तेथी ते ज्ञानोने अही उद्देश समुद्देश आदिमां विचार करवामां आण्यो नथी. अणु विषयनुं विशदरूपे विवेचन करवा निमित्ते सूत्रकार कहे छे के—

(णो उद्दिस्सन्ति णो समुद्दिस्सन्ति) ते चार ज्ञान गुरुजनों द्वारा शिष्योंने उपदिष्ट थतां नथी, अने गुरुजन तेमने अणु पणु कहेता नथी के तमे तेमने स्थिर रूपे परिचय करे, (णो अणुण्णविज्जन्ति) तेमने सारी रीते निश्चय कराने हृदयमां धारणु करे तथा अन्यने पणु तेनुं अध्ययन करावे.

अथवा—आभिनिबोधिक, अवधिज्ञान अने देवज्ञान स्थाप्य छे, ते चार ज्ञानो गुरुजनोंने

अनेकार्थत्वादतिगम्भीरत्वाद् विविधमन्त्राद्यतिशयसम्पन्नत्वाच्च गुरुपदेशसापेक्षम्, अत एव गुरोरन्तिके उद्देशादिविधिना परमकल्याणकारि श्रुतमेव गृह्यते । आभिनिबोधिकादीनि तु तत्तदावरणीयकर्मक्षयक्षयोपशमाभ्यां स्वत एव जायते, न तु उद्देशादिक्रमपेक्षन्ते । अत एव आभिनिबोधिकस्य अवध्यादीनां च उद्देशादो न क्रियन्ते, किन्तु श्रुतज्ञानस्य उद्देशः=उद्दिश्यते इत्युद्देशः=इदमध्ययनादित्वया पठितव्यमिति गुरोरुपदेशरूपं वचनम् । समुद्देशः=इदमधीतसूत्रादिकं स्थिरपरिचितं कुरु' इति गुरोरुपदेशवचनम् । अनुज्ञा-इदं धारय अन्यांश्च अध्यापयेति

हैं-अव्याख्येय हैं । परन्तु जो श्रुतज्ञान है वह तो अनेक अर्थवाला होने से, अति गंभीरता युक्त होने से, और विविध प्रकार के मन्त्रादिकों के अतिशय से समन्वित होने से गुरुजनों के उपदेश की अपेक्षावाला है । इसलिये गुरुजन के समीप उद्देश आदिरूप विधिपूर्वक परम कल्याणकारी श्रुत ही ग्रहण किया जाता है । अवशिष्ट जो आभिनिबोधिक आदिक ज्ञान हैं वे तो अपने २ आवरणीय कर्म के क्षयोपशम और क्षय से स्वतः ही आविर्भूत हो जाया करते हैं । ये उद्देश, समुद्देश आदिह्य क्रम की अपेक्षा अपनी आविर्भूति-उत्पत्ति-में नहीं रखते हैं । इसलिये आभिनिबोधिक ज्ञान और अवधिज्ञानों के उद्देश आदि नहीं किये जाते हैं । किन्तु जो (सुयनाणस्स) श्रुतज्ञान है-उसका ही (उद्देशो) उद्देश-इस अध्ययन आदि-को तुम्हें पढना चाहिये इस प्रकार का गुरु का उपदेशरूप वचन, (समुद्देशो) समुद्देश-ये पठित सूत्रादिक विमृत न हो जावे इसलिये इन्हें स्थिररूप से परिचित करो बार २ इनका पाठ करो इस प्रकार का गुरु का उद्देशरूपवचन (अणुण्णा) अनुज्ञा हृदय

आधीन नहीं, ते कारणे ते चारे ज्ञान उद्देश आदिना विषयभूत नहीं, तेथी ते चारे ज्ञानोने स्थापनीय-अव्याख्येय कहेवामां आवेल छे. परन्तु श्रुतज्ञान तो अनेक अर्थवाणुं होवाथी, अति गंभीरता युक्त होवाथी, अने विविध प्रकारना मन्त्रादिकोना अतिशयेथी समन्वित (युक्त) होवथी गुरुजनोना उपदेशनी अपेक्षावाणुं छे. ते कारणे गुरुजनोनी समीपे उद्देश आदिइप विधिपूर्वक परम कल्याणकारी श्रुत न ग्रहण करवामां आवे छे. आधीना आभिनिबोधिक आदि ने चार ज्ञानो छे ते तो चेत चेताना आवरणीय कर्मना क्षयोपशम अने क्षयथी चेतानी जते न आविर्भूत (प्रकट) थय जय छे. ते चारे ज्ञाननी उत्पत्तिमां आ उद्देश समुद्देश आदिइप कर्मनी अपेक्षा रहेती नहीं. तेथी आभिनिबोधिक ज्ञान अने अवधिज्ञान आदि ज्ञानोना उद्देश करवामा आवता नहीं परन्तु ने (सुयनाणस्स उद्देशो) श्रुतज्ञान छे. तेना न उद्देश, (समुद्देशो) समुद्देश, (अणुण्णा) अनुज्ञा (अणुओगो य) अने अनुयोग (पत्रच्छ) होय छे-अन्य ज्ञानोना उद्देश, समुद्देश आदि होता नहीं.

शिष्यं प्रति गुरोरुपदेशवचनम् । अनुयोगः—भगवदुक्तानुरूपता च प्रवर्त्तते । श्रुत-
ज्ञानस्यैव उद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च भवति, नान्येषामितिभावः ॥सू०२॥

मूलम्—जइ सुयनाणस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो
य पवत्तइ किं अंगपविट्ठस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो
य पवत्तइ ? किं अंगबाहिरस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो

में इनका धारणरूप संस्कार जमाओ, और दूसरों के लिये इन्हें पढाओं इस प्रकार का गुरु का उपदेशरूपवचन, (अणुओगो य) और अनुयोग भगवदुक्तानुरूपता (पवत्तइ) ये सब होते हैं । अन्य ज्ञानों के नहीं ।

भावार्थ—श्रुतज्ञान के अतिरिक्त अवशिष्ट चार ज्ञानों में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग ये चार बातें नहीं होती हैं । क्यों कि इन ज्ञानों में गुरु के उपदेश से जन्यत्व की अपेक्षा नहीं है । ये तो अपने २ आवरणकर्मों के क्षय क्षयोपशम के अनुसार उत्पन्न होते हैं । यद्यपि तज्ज्ञान भी अपने आवरणकर्म के क्षयोपशम से ही उत्पन्न होता है—फिर भी उस में गुरुपदेश की अपेक्षा से जन्यता मानी गई है । अतः उसमें उद्देश आदि होते हैं । ॥सू०२॥

आ अध्ययन आदिने। तभारे अभ्यास करवे। जेष्ठमे, आ प्रकारना गुरुना उपदेशरूप वचनने उद्देश कहे छे। आ पठित सूत्रादि भूली न जवाय ते मटे स्थिर चित्ते तेमने। परिचय करे। वारंवार तेने पाठ करे, आ प्रका । गुरुना वचनने समुद्देश कहे छे।

इदयमां आ सूत्रने कही पणु विस्मृत न थाय जेवी रीते धारणु करे। अने अन्यने तेनुं अध्ययन करावे, आ प्रकारना गुरुना उपदेशरूप वचनने अनुज्ञा कहेछे। भगवदुक्तानुरूपताने अनुयोग कहे छे।

भावार्थ—श्रुतज्ञान सिवायना जे चार ज्ञानो छे तेमां उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोगनो—(आ चार बातनो) सहजाव होतो नथी, कारणु के ते ज्ञानोनी उत्पत्ति गुरुना उपदेशने लीधे संलपी शकती नथी। ते चार ज्ञानोनी उत्पत्ति तो त्यारे ज थाय छे के ज्यारे ते प्रत्येक ज्ञानना आवारक कर्मोना क्षयोपशम अथवा क्षय थछ जय छे। जेवणज्ञाननी उत्पत्ति त्यारे ज थाय छे के ज्यारे ज्ञानवरणीय कर्मोना संपूर्णतः क्षयोपशम थवाथी ज ते ज्ञान उत्पन्न थाय छे। जे के श्रुतज्ञान पणु तेनुं आवरणु करनारा कर्मना क्षयोपशमथी ज उत्पन्न थतुं होय छे। छतां पणु तेमां गुरुना उपदेशनी अपेक्षाजे जन्यता मानवामां आवी छे। तेथी ज श्रुतज्ञानमां उद्देश समुद्देश आदिने सहजाव रह्ये छे। ॥ सू. २ ॥

य पवत्तइ ? अंगपविट्टस्स वि उद्देशो जाव पवत्तइ, अणंगपविट्टस्स वि उद्देशो जाव पत्तवइ । इमं पुण पट्टवणं पडुच्च अणंगपविट्टस्सं अणुओगो ॥ ३ ॥

छाया—यदि श्रुतज्ञानस्य उद्देशः, समुद्देशः, अनुज्ञा, अनुयोगश्च प्रवर्तते किम् अङ्गप्रविष्टस्य उद्देशः, समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्तते ? किम् अङ्गवाह्यस्य उद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा, अनुयोगश्च प्रवर्तते ? अङ्गप्रविष्टस्यापि उद्देशो यावत् प्रवर्तते, अनङ्गप्रविष्टस्यापि उद्देशो यावत् प्रवर्तते । इदं पुनः प्रस्थापनं प्रतीत्य अनङ्गप्रविष्टस्य अनुयोगः ॥सू० ३॥

टीका—‘जइ सुयनाणस्स’ इत्यादि—

यदि श्रुतज्ञानस्य उद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्तते तर्हि स उद्देशादिः किम् अङ्गप्रविष्टस्य—द्वादशाङ्गान्तर्गतस्याचाराङ्गादेः प्रवर्तते, किं वा अनङ्गप्रविष्टस्य—अङ्गवाह्यस्य दशवैकालिकादेः प्रवर्तते ? इति शिष्यप्रश्नः । गुरु-रुत्तरयति—‘अंगपविट्टस्स वि’ इत्यादिना । हे शिष्य ! अङ्गप्रविष्टस्यापि उद्देशो

“जइ सुयनाणस्स” इत्यादि

शब्दार्थ—(जइ) यदि (सुयनाणस्स) श्रुतज्ञान में (उद्देशो) उद्देश (समुद्देशो) समुद्देश, (अणुण्णा) अनुज्ञा (य) और (अणुओगो) अनुयोग इन की (पवत्तइ) प्रवृत्ति होती है तो (किं) क्या (अंगपविट्टस्स) जो अंगप्रविष्ट श्रुत है उसमें (उद्देशो) इन उद्देश, (समुद्देशो) समुद्देश, (अणुण्णा) अनुज्ञा (य) और (अणुओगो) अनुयोग की (पवत्तइ) प्रवृत्ति होती है ? क्या अथवा जो (अंगवाहिरस्स) अंग वाह्य श्रुतज्ञान है उसमें (उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ) उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग इनकी प्रवृत्ति होती है क्या ? उत्तर—(अंगपविट्टस्स) अंग प्रविष्ट जो आचाराङ्गादि श्रुत है उनमें (वि) भी (उद्देशो य जाव

“जइ सुयनाणस्स” इत्यादि

शब्दार्थ—(जइ) ने (सुयनाणस्स) श्रुतज्ञानमां (उद्देशो) उद्देश, (समुद्देशो) समुद्देश, (अणुण्णा) अनुज्ञा (य) अने (अणुओगो पवत्तइ) अनुयोगनी प्रवृत्ति (सद्दुत्ताव) थाय छे, तो (किं अंगपविट्टस्स) शुं ने अंगप्रविष्ट श्रुत छे तेमां (उद्देशो, समुद्देशो, अणुण्णा य अणुओगो पवत्तइ) अे उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोगनी प्रवृत्ति थाय छे ? उे ने (अंगवाहिरस्स) अंगवाह्य श्रुतज्ञान छे तेमां (उद्देशो, समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ) उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोगनी प्रवृत्ति थाय छे ?

उत्तर—(अंगपविट्टस्स वि उद्देशो जाव पवत्तइ) आचारांग आदि ने अंग

यावत् प्रवर्तते, अनङ्गप्रविष्टस्यापि च उ शो यावत् प्रवर्तते । अत्र शास्त्रे पुनः
इदं=प्रस्तुतं प्रस्थापनं—प्रारम्भं प्रतीत्य आश्रित्य अनङ्गप्रविष्टस्य अनुयोगः प्रवर्तते। सू. ३
मूलम्—जइ अणंगपविट्टस्स अणुओगो, किं कालियस्स अणु-
ओगो ? उक्कालियस्स अणुओगो ? । कालियस्स वि अणुओगो,
उक्कालियस्स वि अणुओगो । इमं पुणपट्टवणं पडुच्च उक्कालियस्स
अणुओगो ॥ सू० ४ ॥

छाया—यदि अनङ्गप्रविष्टस्य अनुयोगः, किं कालिकस्य अनुयोगः ? उत्का-
लिकस्यानुयोगः ? कालिकस्यापि अनुयोगः, उत्कालिकस्यापि अनुयोगः । इदं
पुनः प्रस्थापनं प्रतीत्य उत्कालिकस्यानुयोगः ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘जइ’ इत्यादि—

यदि अनङ्गप्रविष्टस्य अनुयोगः किं कालिकस्यानुयोगः ? किं वा उत्का-
लिकस्यानुयोगः ? इति शिष्यप्रश्नः । तत्र-कालेन निर्वृत्तं कालिकम् । काले प्रथम-

पवि तइ] इन उद्देश समुद्देश आदि की प्रवृत्ति होती है, तथा “अणंगपविट्टस्स वि जा’
अनंग प्रविष्ट दशवैकालिक आदि सूत्र हैं उनमें भी (उद्देशो जाव पवत्तइ) उद्देश
आदि की प्रवृत्ति होती है । (इमं पुण पट्टवणं पडुच्च) इस शास्त्र में यह प्रारंभ की
अपेक्षा लेकर अनंग प्रविष्ट में अनुयोग प्रवर्तित होता है ऐसा कहा गया है । ॥सूत्र३॥

“जइ अणंगपविट्टस्स इत्यादि ।”

शब्दार्थ—(जइ) यदि (अणंगपविट्टस्स अणुओगो) अनंग प्रविष्ट श्रुत में
अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तो (किं) क्या (कालियस्स अणुओगो ?) कालिक
में अनुयोग प्रवृत्ति होती है क्या ? या (उक्कालियस्स अणुओगो) उत्कालिक

प्रविष्ट श्रुत छे तेमा उद्देश, समुद्देश, अनुशा अने अनुयोग प्रवर्ते छे, तथा
(अणंगपविट्टस्स वि उद्देशो जाव पवत्तइ) दश वैकालिक आदि न् अनंगप्रविष्ट
श्रुत छे तेमां पणु उद्देश, समुद्देश, अनुशा अने अनुयोग प्रवर्ते छे, आ रीते
अंगप्रविष्ट अने अंगणाद्य, अे अन्ने प्रकारना श्रुतमां उद्देश आदि आरेना सदृशाव
समन्वे। (इमं पुण पट्टवणं पडुच्च) आ शास्त्रमां आ प्रारंभनी अपेक्षाअे अेषु
कडेवामां आण्युं छे के अनंग प्रविष्ट श्रुतमां अनुयोगनी प्रवृत्ति थाय छे. ॥ सू ३ ॥

“जइ अणंगपविट्टस्स” इत्यादि— ॥ सू. ४ ॥

शब्दार्थ—प्रश्न (जइ अणंगपविट्टस्स अणुओगो) न् अनंगप्रविष्ट श्रुतमां अनु-
योगनी प्रवृत्ति थाय छे, तो (किं कालियस्स अणुओगो ?) श् कालिक श्रुतमां

ચરમપૌરુષીલક્ષણે અસ્વાધ્યાયકાલં વિહાય પઠયતે યત્ તત્કાલિકમ્ । તચ્ચ ઉત્તરા
ધ્યયનાદિકં, યદિહ દિવસરાત્રિ પ્રથમચરમપૌરુષીદ્વયે એવ પઠયતે । ઉર્ધ્વ
કાલાત્ પઠયતે, इत्युत्કાલિકમ્ । અસ્વાધ્યાયકાલં વિહાય દિવસે રાત્રૌ ચ સર્વ-
સ્મિન્ યામે યત્ પઠયતે તદુત્કાલિકમિત્યર્થઃ કાલિકસૂત્રાણિ— (૧) ઉત્તરા-
ધ્યયન—(૨) દશાશ્રુતસ્કન્ધ—(૩) બૃહત્કલ્પ—(૪) વ્યવહાર—(૫) નિશીથ—(૬)
જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ—(૭) ચન્દ્રપ્રજ્ઞપ્તિ—(૮) નિરયાવલિકા—(૯) કલ્પાવતંસિકા—(૧૦)
પુષ્પિતા (૧૧) પુષ્પચૂલિકા—(૧૨) વૃષ્ણિદશાદીનિ અંગબાહ્યાનિ, આચારાઙ્ગાદીનિ

में अनुओग की प्रवृत्ति हाती है ? (कालियस्स वि अणुओगो उक्कालियस्स वि
अणुओगो) उत्तरः—कालिकका भी अनुयोग होता है और उत्कालिक का भी
अनुयोग होता है । (इमं पुण पट्टवणं पडुच्च उक्कालियस्स अणुओगो) इस
शास्त्र में यह प्रारंभ की अपेक्षा लेकर उत्कालिक का अनुयोग कहा है ।

भावार्थ—अनंग प्रविष्ट श्रुत के अनेक भेद कहे गये हैं—उनमें कालिक
उत्कालिक श्रुत है । प्रथम पौरुषी और अन्तिम पौरुषीरूप बाल में जो अस्वा
ध्यायकाल को छोडकर पढा जाता है, वह कालिक श्रुत है । जैसे—उत्तराध्यय १,
दशाश्रुतस्कंध २, बृहत्कल्प ३, व्यवहार ४, निशीथ, ५ जंबूद्वीप प्रज्ञपति ६,
चन्द्रप्रज्ञपति ७, निरयावलिका ८, कल्पावतंसिका ९, पुष्पिता १०, पुष्पचूलिका
११, वृष्णिदशा आदि ये सब अंगबाह्य श्रुत हैं वे कालिक श्रुत हैं । तथा आचारां-

અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે, કે (ઉક્કાલિયસ્સ અણુઓગો) ઉત્કાલિક શ્રુતમાં અનુ-
યોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે ?

ઉત્તર—(કાલિયસ્સ વિ અણુઓગો ઉક્કાલિયસ્સ વિ અણુઓગો) કાલિક શ્રુતમાં
પણ અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે અને ઉત્કાલિક શ્રુતમાં પણ અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે,
(इमं पुण पट्टवणं पडुच्च उक्कालियस्स अणुओगो) આ શાસ્ત્રમાં આ પ્રારંભની
અપેક્ષાએ ઉત્કાલિકનો અનુયોગ કહ્યો છે.

ભાવાર્થ—અનંગ પ્રવિષ્ટ શ્રુતના અનેક ભેદ કહ્યા છે. તેમાંના બે ભેદો આ
પ્રમાણે છે—(૧) કાલિકશ્રુત અને (૨) ઉત્કાલિક શ્રુત.

પહેલી પૌરુષી (પહેલો પ્રહર) અને છેલ્લી પૌરુષી (છેલ્લો પ્રહર)૩૫ કાળમાં
અસ્વાધ્યાયકાળ જે કહ્યો છે તેટલા કાળને છોડીને, જેનું અધ્યયન કરવામાં આવે
છે, એવા શ્રુતને કાલિક શ્રુત કહે છે. કાલિક શ્રુત નીચે પ્રમાણે કહ્યાં છે—

(૧) ઉત્તરાધ્યયન (૨) દશાશ્રુતસ્કંધ, (૩) બૃહત્કલ્પ, (૪) વ્યવહાર, (૫) નિશીથ
(૬) જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ, (૭) ચન્દ્રપ્રજ્ઞપ્તિ, (૮) નિરયાવલિકા (૯) કલ્પાવતંસિકા, (૧૦)
પુષ્પિતા, (૧૧) પુષ્પચૂલિકા (૧૨) વૃષ્ણિદશા વગેરે જે અંગબાહ્ય શ્રુત છે તેમનો
કાલિકશ્રુતમાં સમાવેશ થાય છે, તથા આચારાંગાદિ જે ૧૧ અંગ છે તેમનો પણ

एकादशज्ञानि च । इतोऽतिरिक्तान्यपि कालिकसूत्राणि नन्दिसूत्रे निर्दिष्टानि सन्ति, विच्छिन्नत्वान्नेह तानि निर्दिश्यन्ते । उत्कालिकसूत्राणि—(१) दशवैकालिकौ—(२) पपातिक—[३] राजप्रश्नीय—(४) जीवाभिगम—(५) प्रज्ञापना(६)—नन्दीमूत्रा—[७] नुयोगद्वारा—(८) वश्यक—(९) सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्राणि । इतोऽन्यान्यप्युत्कालिकसूत्राणि नन्दिसूत्रे निर्दिष्टानि सन्ति, विच्छिन्नत्वान्नेह तानि निर्दिश्यन्ते । उत्तरयति—कालिकस्याऽप्यनुयोगः, उत्कालिकस्याप्यनुयोगः । पुनरत्र शास्त्रे इदं=प्रस्तुतं प्रस्थापनं=प्रारम्भं प्रतीत्य=आश्रित्य, उत्कालिकस्थानुयोगः ॥ सू० ४ ॥

मूलम्—जइ उक्कालियस्स अणुओगो, किं आवस्सगस्स अणुओगो ? आवस्सगवइरित्तस्स अणुओगो ? आवस्सगस्स वि अणुओगो,

गादि जो ११ अंग हैं ये भी कालिकश्रुत हैं । इन से अतिरिक्त और भी कालिक सूत्र हैं जिनका कथन नन्दिसूत्र में किया गया है । विच्छिन्न हो जाने के कारण हम उन्हें यहां निर्दिष्ट नहीं करते हैं । (१) दशवैकालिक, (२) औपपातिक, (३) राजप्रश्नीय (४) जीवाभिगम, (५) प्रज्ञापना (६) नन्दीसूत्र (७) अनुयोगद्वार (८) आवश्यक, (९) सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, ये सब उत्कालिकसूत्र हैं । इनसे अतिरिक्त और भी उत्कालिक सूत्र हैं । जिन्हें नन्दिसूत्र में निर्दिष्ट किया गया है, परन्तु वे सब विच्छिन्न हो चुके हैं अतः हम उन्हें यहां प्रकट नहीं करते हैं । उत्कालिक सूत्र अस्वाध्यायकाल को छोड़कर दिन में और रात्रि में जब चाहे तब हरएक समय में पढ़े जाते हैं । इस शास्त्र में उत्कालिक का अनुयोग ही प्रस्तुत होने से प्रकट किया गया है । ॥सूत्र ४॥

कालिकश्रुतमां न समावेश थाय छे, ते सिवाय थीळां डेटलाक कालिकसूत्रो पणु छे, जेमनुं कथन नन्दिसूत्रमां करवामां आण्युं छे. ते सूत्रो विच्छिन्न थछ गयेला डोवाथी अड्डीं तेमनो निदेश करवामां आण्यो नथी.

हुवे उत्कालिक सूत्रानां नाम आपवामां आवे छे—

(१) दशवैकालिक, (२) औपपातिक, (३) राजप्रश्नीय, (४) जीवाभिगम, (५) प्रज्ञापना, (६) नन्दिसूत्र, (७) अनुयोगद्वार, (८) आवश्यकसूत्र अने (९) सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, आ अथां सूत्रानो उत्कालिक श्रुतमां समावेश थाय छे. आ सिवाय थीळां डेटलाक उत्कालिक सूत्रो छे, जेमनां नाम नन्दिसूत्रमां आपवामां आण्युं छे. परन्तु ते सूत्रो विच्छिन्न थछ गयेलां डोवाथी तेमनां नामो अड्डीं प्रकट कर्यां नथी. अस्वाध्याय काल सिवायना कोर पणु कणे—दिवसे अथवा रात्रे, न्यारे छण्ण थाय त्तारे उत्कालिकसूत्रोनुं अथयन थछ शके छे. आ शास्त्रमां उत्कालिकनो अनुयोग न प्रस्तुत डोवाथी प्रकट करवामां आण्यो छे. ॥ सूत्र ४ ॥

आवस्सगवइरित्तस्स वि अणुओगो ! इमं पुण पट्टवणं पडुच्च आव-
स्सगस्स अणुओगो ॥ सू० ५ ॥

छाया—यदि उत्कालिकस्य अनुयोगः, किमावश्यकस्य अनुयोगः ? आव-
श्यकव्यतिरिक्तस्य अनुयोगः ? आवश्यकस्यापि अनुयोगः, आवश्यकव्यतिरिक्त-
स्यापि अनुयोगः । इदं पुनःप्रथानं प्रतीत्य आवश्यकस्य अनुयोगः ॥सू० ५॥

टीका—‘जइ’ इत्यादि—

यदि उत्कालिकस्य अनुयोगः, किमावश्यकस्य अनुयोगः ? आवश्यक
व्यतिरिक्तस्य वाऽनुयोगः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—‘आवस्सगस्स वि’
इत्यादिना । अनुयोग आवश्यकस्यापि भवति, आवश्यकव्यतिरिक्तस्यापि भवति ।

“जइ उक्कालिय स” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(जइ) यदि (उक्कालिय स) उत्कालिक श्रुत का (अणुओगो)
अनुयोग होता है तो (किं) क्या (आवस्सगस्स अणुओगो ?) आवश्यक का
अनुयोग होता है ? या (आव सगवइरित्तस्स अणुओगो) आवश्यक से व्यति-
रिक्त का अनुयोग होता है ? उत्तर—(आवस्सगस्स वि अणुओगो) आवश्यक
का भी अनुयोग होता है । और (आव सगवइरित्तस्स वि अणुओगो) जो
आवश्यक से भिन्न है उनका भी अनुयोग होता है । (इमं पुण पट्टवणं पडुच्च
आवस्सगस्स अणुओगो) इस शास्त्र में यह प्रारंभ की अपेक्षा लेकर आवश्यक
का अनुयोग कहा है ।

भावार्थ—शिष्य पूछ रहा है कि हे भद्रंत ! यदि उत्कालिक श्रुत का
अनुयोग होता है तो किस उत्कालिक श्रुत का—आवश्यक का या आवश्यक

“जइ उक्कालियस्स” इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—(जइ उक्कालियस्स अणुओगो) ने उत्कालिकश्रुतने अनु-
योग थाय छे, तो (किं आवस्सगस्स अणुओगो) शुं आवश्यकने अनुयोग थाय छे के
(आवस्सगस्सगवइरित्तस्स अणुओगो ?) आवश्यकथी सिन्न छाय जेवां श्रुतने
अनुयोग थाय छे.

उत्तर—(आवस्सगस्स वि अणुओगो) आवश्यकने पणु अनुयोग थाय छे, अने
(आवस्सगवइरित्तस्स वि अणुओगो) ने आवश्यकथी सिन्न छे तेमने पणु अनु-
योग थाय छे. (इमं पुण पट्टवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो) आ शास्त्रमां आ
प्रारंभनी अपेक्षाअे आवश्यकने अनुयोग कखी छे.

भावार्थ—शिष्य अही जेवां प्रश्न पूछे छे के “हे भद्रवन् ! ने उत्कालिक
श्रुतने अनुयोग थाय छे, तो क्या उत्कालिक श्रुतने अनुयोग थाय छे ? शुं आवश्यकने
अनुयोग थाय छे ? के आवश्यक सिवायना ने उत्कालिक श्रुत छे ? तेमने अनुयोग थाय छे ?”

पुनरत्र शास्त्रे इदं—प्रस्तुतं प्रस्थापनं—प्रारम्भं प्रतीत्य—आश्रित्य आवश्यक—य—भ्रमणैः
श्रावकैश्चोभयकालमवश्यकरणीयस्य सामायिकादिषु अध्ययनात्मकस्य सकलसामाचा-
रीमूलस्यावश्यकसूत्रस्यानुयोगः प्रवर्तते । यद्यप्यावश्यकसूत्रे उद्देशसमुद्देशानुज्ञा
वर्तन्ते तथाऽप्यत्र सूत्रे उद्देशादिकं त्रयं विहायानुयोग एवाधिक्रियते, तथावसरप्राप्त
त्वात् । अनुयोगस्य वक्तव्यताचैवम्—

“निकखेवेगद्व निरुक्तिं विही, पविर्त्ती य केण वा कस्स ? ।

तदार भेयलक्षण, —तदरिह परिसा च सुत्तथो ॥”

छाया—निक्षेप एकार्थी निरुक्तिः विधिः प्रवृत्तिश्च केन वा करय ।

तद्द्वाराणि भेदा लक्षणं, तदर्ही परिषच्च सूत्रार्थः ॥इति॥

अथा व्याख्या—निक्षेपः=नामस्थापनादिकः । एकार्थः=पर्यायः—अनुयोगो

से अतिरिक्त का—तब उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं कि इन दोनों का भी अनुयोग होता है । यहां पर उद्देश, समुद्देश और अनुज्ञा का कथन कर के सूत्रकार ने जो आवश्यक में केवल अनुयोग का कथन किया है वह अनुयोग को अवसर प्राप्त होने से किया है । यह आवश्यक साधु साध्वी और श्रावक श्राविका को प्रातः और सायंकाल दोनों समय अवश्य करने योग्य कहा गया है । सामायिक आदि के भेद से यह आवश्यक छह प्रकार का है । इसके ऊपर षड्ध्ययनात्मक एक स्वतन्त्र सूत्र रचा गया है—जिसका नाम आवश्यक सूत्र है । यह सकल सामाचारी का मूल कारण है । अनुयोग के विषय में वक्तव्यता इस प्रकार से है—

“निकखेवेगद्व इत्यादि” नाम स्थापना आदिरूप से अनुयोग का कहना यह अनुयोग का निक्षेप है । अनुयोग के पर्यायवाची शब्दों को कहना—जैसे

आ प्रश्नो उत्तर आपतां आचार्यं कडे छे के “आ णन्नेनो अनुयोगे छे ?”

अही उद्देश, समुद्देश अने अनुज्ञानुं कथन करीने सूत्रकारे आवश्यकतां केवण अनुयोगनुं न् न् कथन कथुं छे ते अनुयोगना प्राप्त अवसरनी अपेक्षाये कथुं छे. आ आवश्यक साधु साध्वी, श्रावक अने श्राविकाये प्रातः अने सायंकाण, अने णन्ने समये करवा योग्य कहेल छे. सामायिक आदिना वेदथी आ आवश्यक छ प्रकारने कहेल छे. आ विषयने अनुलक्षीने छ अध्ययनवाणुं अके स्वतत्र सूत्र रचवातां आणुं छे. ते सूत्रनुं नाम “आवश्यक सूत्र” छे. ते सकल सामाचारीनुं भूण कारणु छे. अनुयोगना विषयमां आ प्रमाणे वक्तव्यता छे,

“निकखेवेगद्व” इत्यादि—नाम, स्थापना आदिरे अनुयोगनुं कथन थनुं तेनुं नाम अनुयोगने निक्षेप छे. अनुयोगना पर्यायवाची शब्दोनुं कथन करवुं—जेभ के

नियोगो भाषा विभाषा वार्तिकं चैतेऽनुयोग पर्यायाः । निरुक्तिः=निर्वचनम्, सा चैवम्- तीर्थङ्करप्ररूपितार्थस्य गणधरोक्तशब्दसमूहरूपसूत्रेण सह अनु=अनुकूलो नियतो वा योगः सम्बन्धोऽनुयोगः । अनुयोगशब्दस्य विस्तृतव्याख्या-उपासकदशाङ्गसूत्रस्य मत्कृतायामगारधर्मसंजीवनीयां टीकायां विलोकनीया । विधिः=सूत्रार्थवचनविधिः । तत्र-गुरुणा प्रथमं शिष्येभ्यः सूत्रार्थो वक्तव्यः । तदनु सोऽर्थो निर्युक्तिमिश्रो वक्तव्यः । सूत्रे निर्युक्तानां-निश्चयेन युक्तानामेवार्थानां युक्तिपुररसमर्थः शिष्येभ्यो वक्तव्य इत्यर्थः । ततः पुनरपि प्रसङ्गानुप्रसङ्गागतः सर्वोऽप्यर्थो वाच्यः । तदुक्तम्-

“सुत्तथो खलु पढमो बीयो निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।

तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे ॥”

अनुयोग, नियोग, भाषा, विभाषा, वार्तिक यह शब्द अनुयोग के पर्यायवाचक हैं । निरुक्तिपूर्वक अनुयोग का अर्थ कहना यह अनुयोग की निरुक्ति है । इस में तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित अर्थ का गणधरोक्त शब्द समूहरूप सूत्र के साथ अनुकूल अथवा नियत संबन्ध प्रकट करना होता है । सूत्रार्थ कहने की पद्धति का नाम विधि है । इसमें सर्व प्रथम गुरु को शिष्य के लिये सूत्र का अर्थ सिखलाने का विधान है । बाद में उस शिक्षित अर्थ को निर्युक्ति से मिश्रित कर शिष्य को सिखलाना चाहिये अर्थात् निश्चययुक्त पदार्थों का ही-अर्थात् वीतराग कथा से जिन पदार्थों का पदों के अर्थों का गुरु के द्वारा शिष्यने निश्चय कर लिया है ऐसे ही पदार्थों का युक्ति प्रदानपूर्वक शिष्य को और अर्थ कहना चाहिये, इसके बाद प्रसङ्ग अनुप्रसंग को लेकर और भी जो २ अर्थ होता हौ-उस सब को प्रकट करना चाहिये-इन सब

अनुयोग, नियोग, भाषा, विभाषा वार्तिक, आ णधा पढो अनुयोगना पर्यायवाचक शब्दो छे. निरुक्तिपूर्वक अनुयोगना अर्थ कडेवो तेनुं नाम “अनुयोग निरुक्ति पूर्वक अनुयोगना अर्थ कडेवो तेनुं नाम “अनुयोगनी निरुक्ति” छे. तेमां तीर्थंकरो द्वारा प्ररूपित अर्थना गणधरोक्त शब्दसमूहरूप सूत्रनी साथे अनुकूल अथवा नियत संबन्ध प्रकट करवानो होय छे. सूत्रार्थ कडेवानी पद्धतिनुं नाम विधि छे. तेमां सुत्तथे सौथी पडेलां तो शिष्यने सूत्रना अर्थ शिष्यवो लोछये, एवुं विधान छे. त्यारणाद शिष्यवामां आवेला ते अर्थने निर्युक्तिथी मिश्रित करीने शिष्यने शिष्यवो लोछये. ओटवे के निश्चययुक्त पदार्थना न [वीतराग द्वारा प्ररूपित के पदार्थना पढोना अर्थना गुरुनी मददथी शिष्ये निश्चय करी लीघो होय एवां न पदार्थना) युक्ति प्रदानपूर्वक के कोछ णीले अर्थ थतो होय ते पणु शिष्यने कडेवो लोछये, त्यारणाद प्रसंग जाने अनुप्रसंगने अनुलक्षीने तेना णीलां के के अर्थ थतां होय ते सधणां अर्थ पणु प्रकट करवा लोछये. आ णधी णाणतोने अनुयोगमां

छाया-सुत्रार्थः खलु प्रथमो, द्वितीयो ननुक्तिमिश्रितो भणितः ।

तृतीयश्च निरवशेषः, एष विधिर्भवत्यनुयोगे ॥ इति ॥

विस्तरतस्तद्वन्द्यम् । तथा-अनुयोगस्य प्रवृत्तिः अत्र चत्वारो भङ्गाः । तत्र प्रथमो

भङ्गः-उद्यमी गुरुद्वयमी शिष्यः । द्वितीयो भङ्गः-उद्यमी गुरुनुद्यमी शिष्यः ।

तृतीयो भङ्गः-अनुद्यमी गुरुद्वयमी शिष्यः । चतुर्थो भङ्गः-अनुद्यमी गुरुनुद्यमी

शिष्यः अत्र-प्रथमभङ्गेऽनुयोगस्य सर्वथा प्रवृत्तिर्भवति, चतुर्थभङ्गे तु सर्वथा नैव

भवति । द्वितीय तृतीययोस्तु कदाचित् प्रवृत्तिर्भवति कदाचिन्नापि भवति ।

तथाऽनुयोगः केन कर्तव्यः ? इति प्रोच्यते-

का अनुयोग में समाविष्ट है । यही बात तदुक्तं करके "सुत्तथा" इत्यादि-गाथा द्वारा पुष्ट की है । विधि संबन्धी विस्तार अन्य शास्त्रों में लिखा है । अतः जिज्ञासु जन इस विषय को वहां से जान लेवे अनुयोग की प्रवृत्ति में चार भंग हैं-वे इस प्रकार से हैं-

उद्यमी गुरु उद्यमी शिष्य यह प्रथम भंग है । उद्यमी गुरु अनुद्यमी शिष्य

यह द्वितीय भंग है । अनुद्यमी गुरु उद्यमी शिष्य यह तीसरा भंग है । अनुद्यमी

गुरु अनुद्यमी शिष्य यह चौथा भंग है । इन में से जो प्रथम भंग है उसमें

तो अनुयोग की सर्वथा प्रवृत्ति होना निश्चित है । चौथे भंग में अनुयोग की

प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं होती है । द्वितीय और तृतीय भंग में अनुयोग की

प्रवृत्ति कभी होती है और कभी नहीं भी होती है ।

समावी शक्याय छे अन्व वात "सुत्तथा" इत्यादि गाथाओं द्वारा पुष्ट कर्वाभां

आवी छे. विधि संबन्धी विस्तृत कथन अन्य शास्त्रोभां आपवाभां आवेलुं छे, तो

जिज्ञासु पाठकोअये आ विषयनुं विशेष कथन त्यांथी वाची लेवुं लेछये. अनुयोगनी

प्रवृत्तिभां नीचे प्रमाणे चार लांगाओ (विकल्पो) छे-

(१) उद्यमीगुरु अने उद्यमी शिष्य, आ पडेवो लांगो छे.

(२) उद्यमी गुरु अने अनुद्यमी शिष्य, आ पीले लांगो छे.

(३) अनुद्यमी गुरु अने उद्यमी शिष्य, त्रीले लांगो छे

(४) अनुद्यमी गुरु अने अनुद्यमी शिष्य, आ चोथो लांगो छे.

आ चार विकल्पोभांथी ले पडेवो विकल्प अतव्यो छे ते विकल्प प्रमाणेनी

परिस्थितिभां तो अनुयोगनी प्रवृत्ति थवाहुं कार्य सर्वथा निश्चित न होय छे.

चोथो विकल्पभां अताव्या प्रमाणेनी न्यारे परिस्थिति होय छे, त्यारे अनुयोगनी

प्रवृत्ति बिल्कुल आली शकती नथी. पीले अने त्रीले विकल्पोभां अतावेली परि-

स्थितिभां क्यारेक अनुयोगनी प्रवृत्ति संलवी पणु शके छे अने क्यारेक नथी पणु

संलवी शकती.

“देस कुल जाई रूची, संहणणी, धिइजुओ अणासंसी ।

अविकत्थणो अमाई, थिरपरिवाडी गहियचक्को ॥ १ ॥

जियपरिसो जियनिदो, मज्झत्थो देसकालभावन्तू ।

आसन्नलद्धपइभो, नानाविहदेसभासन्तू ॥ २ ॥

पञ्चविहे आचारे, जुत्तो सुत्तत्थतदुभयविहिन्तू ।

आहरण हेउ उवणय, नय निउणो ग्राहणाकुसलो ॥ ३ ॥

ससमयपरसमयविज्ज, गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो ।

गुणसयकलियो जुत्तो, पवयणसारं परिकहेउं ॥ ४ ॥

छाया—देशकुलजातिरूपी संहननी, धृतियुतः अनाशंसी ।

अविकत्थनः आमायी, स्थिरपरिपाटी गृहीतवाक्यः ॥१॥

जितपरिषद् जितनिद्रो मध्यस्थो देशकालभावज्ञः ।

आसन्नलब्धप्रतिभो नानाविधदेशभाषाज्ञः ॥२॥

पञ्चविधे आचारे, युक्तः सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः ।

आहरणहेतूपनय, नय निपुणो ग्राहणाकुशलः ॥३॥

स्वसमयपरसमयविद्, गम्भीरो दीप्तिमान् शिवः सोमः ।

गुणशतकलितो युक्तः, प्रवचनसारं परिकथयितुम् ॥४॥

गाथार्थः—यो मुनिः देशकालकुल जातिरूपी—देशः=आर्यदेशः, कुलं=विशुद्धः पितृवंशः, जातिः=विशुद्धो मातृवंशः, रूपं=शोभनाऽऽकृतिः, एतानि चत्वारि सन्त्यस्येति तथा भवति । अर्थाद् यः आर्यदेशोत्पन्नः, विशुद्धपितृमातृवंशोद्भवः, रूपवांश्च भवति । तथा संहननी=दृढसंहननवान् । दृढसंहननी हि

अब यह कहा जाता है कि यह अनुयोग किस प्रकार के विशेषणों से विशिष्ट मुनिजन द्वारा किया जाता है—“देसकुल जाई रूची” इत्यादि देश—जो मुनि आर्य देश में उत्पन्न हुआ हो (१) कुल जाति शुद्ध हो जिसका पितृवंश और जिसका मातृवंश विशुद्ध हो (२) रूप—आकार जिसका शोभन हों (३) संहननी—जो दृढ संहनन वाला हो (४) धृति युक्त—अति गहन भी अर्थ में जिसे किसी भी प्रकार की

इसे ये बात प्रकट करवामां आवे छे डे कथा कथा शुद्धाथी (विशेषशुद्धाथी) संपन्न विशिष्ट मुनिजनो द्वारा आ अनुयोगमां प्रवृत्ति थर्ष शके छे—

“देसकुल जाई” धःधादि—

(१) जे मुनि आर्यदेशमां उत्पन्न थयेना होय, (२) जे मुनिना कुलजाति शुद्ध होय—अर्थात् जे जेना मातृवंश अने पितृवंश विशुद्ध होय, (३) रूप—जेभना आकार (रूपभाव) सुंदर होय, (४) संहननी—जे मुनि दृढ संहननवाणा होय, (५)

व्याख्यानादौ न श्राम्यतीति भावः । धृतियुतः—धृतिः=अतिगहनेष्वप्यर्थेषु निर्भ्रान्तता, परीषहोपसर्गसहने निश्चलता च, तथा युतः=युक्तः । अनाशंसी=वस्त्रसत्काराद्यनाकाङ्क्षी । अविकल्थनः=आत्मश्लाघावर्जितो नाति बहुभाषी वा । अमायी=कपटवर्जितः । स्थिरपरिपाटी—स्थिरा=अतिशयेन निरन्तराभ्यासतः स्थैर्यमापन्ना परिपाटी—अनुयोगकरणक्रमो यस्य स तथा । यद्वा—गुरुपरम्पराप्राप्तज्ञाननिरन्तरपाठकः । एतादृशो हि सूत्रमर्थं च न कदाचिदपि विपरीतं करोति । गृहीतवाक्यः—गृहीतं वाक्यं=वचनं यस्य स तथा, आदेयवचनवान् इत्यर्थः । तस्य हि अल्पमपि वचनं महार्थमिव प्रतिभाति । जितपरिषद्—जिता परिषद् येन स तथा, महत्यामपि परिषदि यः क्षोभं नोपयाति । जितनिद्रः—जिता निद्रा येन स तथा, रात्रौ सूत्रमर्थं च चिन्तयन् निद्राधीनो न भवतीत्यर्थः । मध्यस्थः=पक्षपातवर्जितः । देशकालभावज्ञः—द्रव्यक्षेत्रकालभावज्ञानसम्पन्नः । आसन्नलब्धप्रतिभः—

आन्ति न हो, तथा परीषह और उपसर्ग के सहने में जिसके निश्चलता हो (५) अनाशंसी—वस्त्र सत्कार आदि की जिसके आकांक्षा न हो (६) अविकल्थन आत्मप्रशंसा से जो रहित हो अथवा व्यर्थ का जा बहुत भाषण करने वाला न हो (७) अमायी—कपट भाव से जो रहित हो (८) स्थिर परिपाटी—जिसका अनुयोग करने का क्रम अतिशय निरन्तर अभ्यास के वश से स्थिरता को प्राप्त हो गया हो अथवा—गुरु परम्परा से प्राप्त ज्ञानका जो पाठक हो, (९) गृहीत वाक्य—जिसके वचन आदेय हों (१०) जित परिषद्—बड़ी भारी सभा में भी जो क्षोभ को प्राप्त न हो, ११, जितनिद्रः—रात्रि में भी जो सूत्र और अर्थ का चिन्तन करता हुआ निद्रा के वशवर्ती नहीं होता हो १२, मध्यस्थ—पक्षपात से जो रहित हो १३, देशकाल भावज्ञ—जो देश, काल भाव का ज्ञाता

धृतियुक्त—अति गहन विषयना अर्थ विषे पणु जेभना मनमां केरि पणु प्रकारनी आन्ति न होय. तथा परीषहो अने उपसर्गोनी निश्चलतापूर्वक जे सहन करनाश होय, ६, अनाशंसी वस्त्र, सत्कार आदिनी आकांक्षाथी जेयो रहित होय, ७, अविकल्थन—जेयो आत्मश्लाघाथी रहित होय अथवा नकासुं लाणुं थोडुं लाणु करनाश न होय. ८, अमायी—जेयो कपटलावथी—मायाचारीथी रहित होय. ९, स्थिरपरिपाटी निरन्तर अभ्यासने कारणे जेभने अनुयोग करवाने कुभ स्थिरता युक्त जेयो होय, अथवा गुरुपरम्पराथी प्राप्त ज्ञानना जेयो पाठक होय, १०, गृहीतवाक्य—जेभना वचने आदेय (अहणु करवा योज्य) होय. ११, जितपरिषद्—धणी विशाण सभाभां पणु जेयो क्षोभ अनुभवता न होय. १२, जितनिद्रः—जेभणु निद्रा उपर पणु विज्य प्राप्त कयो होय ओटले के रात्रे पणु निद्राने अधीन तथा विना जेयो सूत्र अने अर्थनु चिन्तन कयो करता होय १३, मध्यस्थ—जेयो पक्षपातथी रहित होय, १४. देशकाल

आसन्नं=शास्त्रार्थं कर्तुं समीपे समागतं परवादिनं प्रति लब्धा प्रतिभा येन स तथा, परवादिभिराक्षिप्तः शीघ्रमुत्तरदायीत्यर्थः । नानाविधदेशभाषाज्ञः— अनेकदेशभाषाज्ञानसम्पन्नः । पञ्चविधआचारे युक्तः=ज्ञानादिपञ्चाचारे युक्तः । सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः । आहरणहेतूपनयनिपुणः— तत्र—आहरणं=दृष्टान्तः, हेतुः= कारको ज्ञापकश्च । तत्र कारको—यथा घटस्य कर्ता कुम्भकारः । ज्ञापको यथा—घटानामभिव्यञ्जकः प्रदीपः । उपनयः=उपसंहारः, नयाः=नैगमादयः, एतेषु निपुणः= कुशलः । ग्राहणाकुशलः ग्राहणायां=शिष्यस्य सूत्रार्थतदुभयग्राहणायां कुशलः । स्वसमपरसमयवित्=स्वसिद्धान्तपरसिद्धान्तज्ञानसंपन्नः । गम्भीरः=अतुच्छस्वभावः ।

हो—अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जो जानने वाले हो १४, आसन्नलब्धप्रतिभः—शास्त्रार्थ करने के लिये निकट आये हुए परवादी को परास्त करने के लिये जिस की प्रतिभा तेज हो—अर्थात् परवादी से आक्षिप्त होने पर जा शीघ्र ही उत्तर दाता हो १५, नानाविध देशभाषाज्ञः—अनेक देशों की भाषाओं का जिसे ज्ञान हो १६, पञ्चविध आचारयुक्तः—ज्ञानाचार आदि पाँच प्रकार के आचारों का जो पालन कर्ता हो, १७, सूत्रार्थ तदुभय विधिज्ञः—सूत्र अर्थ तथा तदुभय सूत्रार्थ की विधि का जानकार हो १८, आहरण हेतूपनयनिपुणः—उदाहरण, हेतु, उपनय और नय इनमें जो निपुण हो १९, ग्रहण कुशल—जो शिष्य को तत्व ग्रहण कराने में कुशल हो २०, स्वसमय पर समयवित्—जिस स्वसमय का और परसमय का अच्छी तरह से बोध—ज्ञान

लावज्ञ-जेओ देश, काल अने लावना ज्ञाता होय, अन्ते के द्रव्य क्षेत्र, काल अने लावना जेओ ज्ञातकार होय, १५, "आसन्नलब्धप्रतिभः" शास्त्रार्थ करवाने भाँटे पोतानी पास आवेला परवादीने परास्त करवाने योग्य प्रतिभाधी जेओ संपन्न होय—अन्ते के परमतवादीनी साथे लयारे अर्था आवे ल्यारे, तेना प्रश्नोना योग्य उत्तर आपीने तेना मतनुं पंडन अने पोताना मतनु (स्व, समयनुं) समर्थन करवाने जेओ अर्थ होय छे, १६, "नानाविधदेशभाषाज्ञः" जेभने अनेक देशनी भाषाओनुं ज्ञान होय, १७, "पञ्चविधआचारयुक्तः" ज्ञानाचार आदि पांच प्रकारना आचारोनुं जेओ पालन करनारा होय, १८, "सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः" — जेओ सूत्र, अर्थ तथा तदुभय (सूत्र अने अर्थ अन्ने) सूत्रार्थनी विधिना ज्ञातकार होय, १९, "आहरणहेतूपनयनिपुणः" उदाहरण, हेतु उपनय अने नयमां जेओ निपुण होय, २०, "ग्रहणकुशलः" जेओ शिष्यने तत्व ग्रहण करवावामां कुशल होय, २१, "स्वसमयपरसमयवित्" जेओ स्वसमय (नैत सिद्धान्त) अने परसमयनुं (अन्यसिद्धान्तोनुं) साईं ज्ञान धराव ॥ होय,

दीप्तिमान्-परवादिभिरनुद्वेषणीयः । शिवः-अकोपः यदा-त्र तत्र वा विहान्
 लोककल्याणकारी । सोमः-शान्तदृष्टिः । गुणशतकलितः=गुणाः=दया दक्षि-
 ण्यादयः तेषां शतानि, तैः कलित, इह शतशब्दो बहुत्ववाचकः । एतादृश एव
 मुनिः प्रवचनसारं=द्वादशाङ्गरूपप्रवचनार्थं परिकल्पितुं=रम्यं प्ररूपयितुं युक्तः=
 योग्यः समर्थो भवतीत्यर्थः उक्तपञ्चविंशतिगुणयुक्तस्य मुनेर्वचनं घृतपरिषिक्त-
 वह्निरिव भाति । उक्तगुणरहितस्य वचनं तु स्नेहविहीनदीप इव न शोभते ।
 एवं पञ्चविंशति गुणयुक्तेन मुनिना कस्य वाऽनुयोगः=कस्य शास्त्रस्यऽनुयोगः
 कर्तव्य इत्यपि वक्तव्यम् । तद्द्वाराणि-तस्य अनुयोगस्य द्वाराणि=उपक्रमादीनि
 वक्तव्यानि । वक्ष्यते अग्रे स्वयमेव सूत्रकारः । तथा-अनुयोगस्य लक्षणं वक्तव्यम् ।
 लक्षणं चैवमुक्तम्—

हो २१, गंभीरः—जिसका स्वभाव गहरा हो २२, दीप्तिमान् परवादियों द्वारा
 जो परास्त न किया जा सके २३, शिव—क्रोध जिसे न आवे, अथवा—इत-
 स्ततः विहार करता हुआ जो लोक का कल्याणकारी हो २४, सोम—जिसकी
 दृष्टि शांत हो २५ और गुणशत कलित—सैकड़ों दयादाक्षिण्य आदि गुणों से
 जो युक्त हो, ऐसा मुनि द्वादशाङ्गरूप प्रवचन के अर्थ को अच्छी तरह से
 प्ररूपित करने के लिये समर्थ होता है । इन २५, (पच्चीस) गुणों से युक्त
 मुनि के वचन घृत से सिंचित अग्नि के जैसे तेजस्वी होते हैं । परन्तु इन
 गुणों से रहित जो साधु होता है उसके वचन स्नेह से रहित दीपक की तरह
 शोभित नहीं होते हैं । इस प्रकार इन २५ गुणों से युक्त मुनि को “किस
 शास्त्र का अनुयोग कर्तव्य है यह भी कहना चाहिये । अनुयोग के जो उपक्रम
 आदि द्वार कहे गये हैं—वे भी शिष्य को कहना चाहिये । अनुयोग के भेद-

२२, “गंभीरः” जेम्मे स्वभावे गंभीर होय, २३, “दीप्तिमान्” जेम्मे दीप्तिमान
 होय—परभतवादीज्जे जेम्मे परास्त करवाने समर्थ न होय, २४, “शिवः”
 जेम्मेनामां क्रोधने अलाव होय अथवा अहीं तहीं विहार करता थकां जेम्मे
 उपायुं उध्यायु कराना होय, २५, “सोम” जेम्मेना दृष्टि अथवा मुणमुद्रा शान्त
 होय, “गुणशतकलितः” अने जेम्मे दया दक्षिण्य आदि सैंकड़ो गुणोथी संपन्न
 होय, जेम्मे मुनि जे द्वादशाङ्गप्र प्रवचनना अर्थने सारी रीते प्ररूपित करवाने
 समर्थ होय छे, आ २५ गुणोथी युक्त मुनिनां वचने धी वडे सिंचित अग्निना
 समान तेजस्वी होय छे परन्तु आ गुणोथी रहित जे साधु होय छे तेना वचने
 तेदथी रहित दीपकना समान तेजरहित (प्रलाव रहित) होय छे ।

आ प्रकारना २५ गुणोथी युक्त मुनिजे क्या शास्त्रने अनुयोग करवे
 जेम्मे, जे वात पणु अहीं प्रष्ट करवा अनुयोगना जे उपक्रम आदि द्वार

“संहिता य पयं चैव, पयत्यो पयविग्रहो ।

चालना य पसीद्धी य छब्विहं विद्धि लक्ष्णं ॥

छाया—संहिता च पदं चैव पदार्थः पदविग्रहः ।

चालना च प्रसिद्धिश्च षड्विधं विद्धि लक्षणम् ॥

तत्र—संहिता=अस्त्रलितपदोच्चारणम् । पदम्=वर्णानामन्योन्यापेक्षाणां निरपेक्षा संहति, सुबन्तं तिङन्तं वा । पदार्थः—पदस्य अर्थः=अभिधेयः । पदविग्रहः=प्रकृतिप्रत्ययविभागरूपो विस्तारः । च=पुनः चालना=प्रश्नः । प्रश्ने सति प्रसिद्धिः=समाधानं चेति षड्विधम् अनुयोगस्य लक्षणं विद्ध=जानीहि । व्याख्येयसूत्रस्य च ‘अलिङ्गमुवधायजणयं’ इत्यादि द्वात्रिंशदोषरहितत्वादिकं लक्षणं वक्तव्यम् ।

कि जिन्हें सूत्रकार स्वयं ही आगे कहेंगे । अनुयोग का क्या लक्षण है यह भी शिष्य को समझाना चाहिये । अनुयोग का लक्षण इस प्रकार वहा है—“संहिता य” इत्यादि—अस्त्रलितरूप से पदों का उच्चारण करना इस का नाम संहिता है । अन्यान्यापेक्षावाले वर्णों की निरपेक्षा जो संहिता है उसका नाम अथवा सुबन्त और तिङन्त वा नाम पद है । पद के अभिधेय का नाम पद विग्रह है । चालना नाम प्रश्न का है । प्रश्न के समाधान का नाम प्रसिद्धि है । ये छह प्रकार का अनुयोग का लक्षण है । यह लक्षण बहना चाहिये—तथा “अलिङ्गमुवधायजणयं” इत्यादि जो ३२, दोष कहे गये है उनसे रहित अनुयोग होता है यह भी अनुयोग का लक्षण बहना चाहिये । तथा यह भी कहना चाहिये कि अनुयोग को सुनने के लिये

छे. ते पणु तेमणु शिष्येने कडेवा नेधये. अनुयोगना पणु लेदो शिष्येने णताववा नेधये. ते लेदोनुं निइपणु सूत्रकार पोते न आगण करवाना छे. तेमणु शिष्येने अनुयोगनां लक्षणो पणु समज्जववा नेधये. अनुयोगनां लक्षणो नीचे प्रमाणे छे.

“संहिता य” इत्यादि—पदोनुं अस्त्रलित रूपे उच्चारण करवुं तेनुं नाम संहिता छे. अन्यान्यनी अपेक्षावाणा वणोथी निरपेक्ष ने संहिता छे तेनुं नाम अथवा सुबन्त अने तिङन्तनुं नाम पद छे. पहना अभिधेयनुं नाम पदर्थ छे. प्रकृति प्रत्ययना विभागरूप विस्तारनुं नाम पदविग्रह छे प्रश्नने “चालना” कडे छे. प्रश्नना समाधानरूप उत्तरने प्रसिद्धि कडे छे. आ छ प्रकारनुं अनुयोगनुं लक्षण छे. शुद्धये अनुयोगना आ छ लक्षणो पणु शिष्यने कडेवा नेधये. तथा “अलिङ्गमुवधायजणयं” इत्यादि ने ३२ दोष छे ते पणु कडेवा नेधये आ ३२ दोषोथी अनुयोग रहित होय छे, अने पणु शिष्येने कडेवुं नेधये. वणी तेमणु शिष्येने अने पणु समज्जववुं नेधये के अनुयोगनुं श्रवणु करवा भाटे देवा देवा मुनिने योग्य गणवामां आवे छे. अनुयोगनु श्रवणु करवा भाटे मुनिनां नीचेनी जाग्यताओ होवी नेधये.

तदर्हाः तस्य=अनुयोगरथ अर्हाः=योग्या मुनयो वक्तव्याः । तथाहि—

बहुस्सुए चिरपव्वइए, कप्पिए य अचंचल्ले ।

अव्वट्टिए य मेहावी, अपरिभाविओ विद्ध ॥१॥

पत्तं य अणुण्णाए, भावओ परिणामगे ।

एयारिसे महाभागे, अणुओगं सोउमरिहह ॥२॥

छाया—बहुश्रुतश्चिरप्रव्रजितः, कल्पिकश्च अचञ्चलः ।

अवस्थितश्च मेधावी, अपरिभावितो विद्वान् ॥१॥

पात्रं चानुज्ञातः, भावतः, परिणामकः ।

एतादृशो महाभागः, अनुयोगं श्रोतुमर्हति ॥२॥

यो मुनिः बहुश्रुतः=शास्त्रज्ञः, चिरप्रव्रजितः=चिरकालशुद्धीतदीक्ष, कल्पिकः=गीतार्थः, अचञ्चलः=चाञ्चल्यवर्जितः, अवस्थितः=साधुमर्यादायां स्थितः, मेधावी=बुद्धिमान्, अपरिभावितः=परिषहोपसर्गैरपरिभूतः, परतीर्थिकैरपरिभूतो वा, विद्वान्=पण्डितः—प्रभूनाशेषशास्त्राभ्यासनिर्मलबुद्धिरित्यर्थः, पात्रं=योग्यः, अनुज्ञातः=गुरुणाऽऽज्ञप्तः, तथा—भावतः परिणामकं=भावपरिणामयुक्तश्च भवति । एतादृशो महाभागो मुनिरनुयोगं श्रोतुमर्हति ।

ऐसा मुनि योग्य होता है—जो बहुस्सुए, चिरपव्वइए” इत्यादि बहुश्रुत—शास्त्रों का ज्ञाता हो, चिरकाल का दीक्षित हो, गीतार्थ हो, चञ्चलता से रहित हो, साधुमर्यादा में स्थिर हो, बुद्धिशाली हो, परीषह और उपसर्गों से बचा, अन्यतीर्थिकजनों से अपरिभूत हो, विद्वान् हो,—अर्थात् अनेकशास्त्रों के अभ्यास से जिस की बुद्धि निर्मल हो अनुयोग का पात्र हो गुरु से अनुयोग सुनने की जिसे आज्ञा मिल चुकी हो, और जो भावसे परिणामयुक्त हो ऐसा महाभाग मुनि अनुयोग को सुनने के योग्य होना है । गुरु को अनुयोग सुनाने वाली सभा का भी कथन करना चाहिये—उन्हें कहना चाहिये कि

‘बहुस्सुए चिरपव्वइए’ इत्यादि—जे बहुश्रुत—(शास्त्रों का ज्ञाता) होय, चिरकाल का दीक्षित होय, गीतार्थ होय, अचञ्चलता थी रहित होय, साधुनी मर्यादा में रहित पूर्वक चालन करना होय, बुद्धिशाली होय, परीषह, उपसर्गों अने अन्यतीर्थिकों से अपरिभूत (परास्त न थाय ओवे) होय, विद्वान् होय—अर्थात् अनेकशास्त्रों का अभ्यास थी, जेनी बुद्धि निर्मल थयेली होय, अनुयोगने पात्र होय, गुरुसे जेने अनुयोगतुं श्रवणु करवानी अनुज्ञा आपी होय, अने जे भावनी अपेक्षासे परिष्णामयुक्त होय, ओवा महाभाग मुनिने जे अनुयोगतुं श्रवणु करवाने पात्र मानवामां आवे छे, गुरुसे अनुयोग श्रवणु करवानी परिषह डेवी होवी

તથા-પરિષદ્=અનુયોગસ્ય યોગ્યા પરિષદ્ વક્તવ્યા । સા ચ સામાન્યત-
સ્ત્રિધા ભવતિ । તદ્વથા—

“જાગંતિયા જાગંતિયા ય, તદ્ દુર્લભિયમ્ ઠૂયા ચૈવ ।

તિવિહા ય હોઠ્ પરિષ્તા, તીસે નાગત્તમં વોક્ષં ॥૧॥”

છાયા—જાનાના અજાનાના ચ, તથા દુર્લભિયમ્ ઠૂયા ચૈવ ।

ત્રિવિધા ચ ભવતિ પરિષત્ તસ્યા જ્ઞાનાત્વં વક્ષ્યે ॥૧॥

અર્થ ભાવઃ—પરિષત્ ત્રિવિધા ભવતિ, —જ્ઞાયકપરિષત્, અજ્ઞાયકપરિષત્,
દુર્લભિયમ્ ઠૂયા પરિષદિતિ । તત્ર—એકેકપરિષત્સ્વરૂપં લક્ષયિતું પ્રથમં જ્ઞાયકપરિષ-
ત્સ્વરૂપમાહ—

“ગુણદોષવિશેષણૂ અણભિગ્ગહિયા ય કુસ્સુડમણ્સુ ।

સા સ્વલુ જાગગપરિષ્તા, ગુણતત્તિહ્યા અગુણવજ્જા ॥૧॥

સ્ત્રીરમિવ રાયહંસા, જે ઘુટ્ટંતિ ગુણે ગુણસમિદ્ધા ।

દ સે વિ ય છઢ્ઢિત્તા, તે વસહા ધીરપુરિસત્તિ ॥૨॥

છાયા—ગુણદોષવિશેષણૂ અણભિગ્ગહિતા ચ કુશ્રુતિમતેષુ ।

સા સ્વલુ જ્ઞાયકપરિષત્, ગુણતત્પરા અગુણવર્જા ॥૧॥

સ્ત્રીરમિવ રાજહંસા, તે પિવન્તિ ગુણાન્ ગુણસમૃદ્ધાઃ ।

દોષાનપિ ચ ત્યક્ત્વા, તે વૃષભા ધીરપુરુષા इति ॥૨॥

અર્થ ભાવઃ—યા પરિષદ્ ગુણદોષાન્ વિશેષતો જાનાતિ । કુશ્રુતિમતેષુ

આગ્રહવતી ન ભવતિ । એવંવિધા ગુણેષુ તત્પરા અગુણેભ્યો રહતા પરિષત્જ્ઞાયક

અનુયોગ કો સુનને કે યંગ્ય એસી પરિષત્ હોતી હૈ—અર્થાત્ પરિષત્ સામાન્ય

સે ૩, પ્રકાર કી હોતી હૈ—એક જ્ઞાયક પરિષત્, દૂસરી અજ્ઞાયક પરિષત્ ઓર

૩ તીસરી દુર્લભિયમ્ ઠૂયા પરિષત્ । યહી વાત “જાગંતિયા” ઇત્યાદિ ગાથાદ્વારા પ્રકટ

કી ગઈ હૈ । ઇનમં સે જ્ઞાયક પરિષત્ કો સ્વરૂપ ઇપ પ્રકાર સે હૈ—ગુણદોષ

વિશેષણૂ “ઇત્યાદિ—જો પરિષદ્ ગુણ ઓર દોષાં કો વિશેષરૂપ સે જાનતી હૈ

જોઈએ તે પણ શિષ્યને સમજાવવું જોઈએ. તેમણે તેને એ વાત સમજાવવી

જોઈએ કે અનુયોગી શ્રવણ કરનારી પરિષદમાં આ પ્રકારની યોગ્યતા

જોવી જોઈએ—પરિષદના સામાન્ય રીતે ત્રણ પ્રકાર હતા છે, તે પ્રકારો નીચે

પ્રમાણે છે—૧, જ્ઞાયક પરિષદ, ૨, અજ્ઞાયક પરિષદ અને ૩. દુર્લભિયમ્ ઠૂયા પરિષદ

આ વાત “જાગંતિયા” ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

જ્ઞાયક પરિષદનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું હોય છે—

“ગુણદોષવિશેષણૂ” ઇત્યાદિ—જે પરિષદ ગુણ અને દોષોને વિશેષરૂપે

જાણતી હોય છે, અને જોટાં શાસ્ત્રોની માન્યતાએને જે માનતી નથી—જોટાં શાસ્ત્રોને

परिषदुच्यते । अत्र परिषदि ये नरा भवन्ति, ते गुणसमृद्धा भवन्ति ।

यथा राजहंसा सजलदुग्धाद् जलं विहाय दुग्धमेव पिबन्ति, तथैव एते दोषान् विहाय गुणानेव गृह्णन्ति । एते हि धर्मधुराधारणे वृषभा इव उद्युक्ता भवन्ति । अत एव एते धीरपुरुषा उच्यन्ते, इति ज्ञायक-परिषत् ।

अथ—अज्ञायकपरिषत्स्वरूपमाह—

“जा होइ पगइमुद्धा मिगसावगसीहकुकुडगभूया ।

रयणमिव असंठविया, सुहसंणप्पा गुणसमिद्धा ॥१॥

छाया—या भवन्ति प्रकृतिमुग्धा मृगशावकसिंहकुक्कुटकभूता ।

रत्नमिवासंस्थापिता सुखसंज्ञाप्या गुणसमृद्धा ॥१॥

अयं भावः—या परिषत् प्रकृतिमुग्धा=प्रकृत्या—स्वभावेन मुग्धा=भद्रभाव-संपन्ना, मृगशावकसिंहकुक्कुटकभूताः—तव मृगशावकाः=हरिणशिशवः, सिंहाः=सिंह-

और खोटे शास्त्रों को मानने वालों के मत में जिसे आग्रह नहीं होता है वह परिषत् ज्ञायक परिषत् है । ऐसी परिषत् गुणों में तत्पर और अगुणों से रहित होती है । इस परिषत् में जो मनुष्य होते हैं वे गुणसमृद्ध होते हैं । जैसे राज हंस जलसहितदुग्ध मेंसे जल का परित्याग कर दूध का ही पान करते हैं वैसे ही यह परिषत् दोषों को छोड़ कर गुणों को ही ग्रहण करती है । इस परिषत् के सदस्यजन धर्म की धुरा को धारण करने में वृषभ की तरह सदा उद्योगशील रहा करते हैं । इसलिये ये धीर पुरुष कहलाते हैं । अज्ञायक परिषत् का स्वरूप इस प्रकार से है—“जा होइ पगइ मदा” इत्यादि—जो परिषत् स्व-भाव से भद्रभावयुक्त होती है । तथा मृगशिशु, सिंहशिशु और कुक्कुटशिशु के समान जिसके सदाय सरल भाव वाले होते हैं—एवं जो खान से निकले हुए

माननारा लोड्डेना मतमां जेने णिलकुल श्रद्धा होती नथी जेवी परिषदने ज्ञायक परिषद कडे छे. जेवी परिषद गुणुआही अने अगुणोथी रडित होय छे. आ परिषदमां जेकत्र थयेला मनुष्ये गुणसमृद्ध होय छे. जेवी रीते राजहंस जलमिश्रित दूधमांथी दूधने ज अडणु करे छे अने जणने परित्याग करे छे. तेम आ परिषद यणु दोषेने परित्याग करीने गुणोने अडणु करे छे. आ परिषदना सभ्ये धर्मनी धुराने धारणु करवामां वृषभनी जेम सदा उद्योगशील रहे छे. ते कारणे तेमने धीइ पुइषे मानवामां आवे छे.

अज्ञायक परिषदनुं स्वरूप आ प्रकारनुं होय छे—

“जा होइ पगइमदा” इत्यादि—जे परिषदना सभ्ये स्वभावनी अपेक्षाजे भद्रभाव (सरलता)थी युक्त होय छे. जेना सभ्ये मृगशिशु, सिंहशिशु अने कुक्कुटाना

शावकाः, कुकुटकाः=कुकुटकशावकाः-तद्भूताः=तत्सदृशा । 'सिंहकुकुट' शब्दौ
अत्र तत्तच्छावकपरौ । तज्जना हरिणशिशुसिंहशिशुकुकुटशिशव इव अत्यन्त
सरल इत्यर्थः ।

तथा-रत्नमिव असंस्थापिता=सहजरत्नमिवासंस्कृता=भवति । सा परिषत्
सुखसंज्ञाप्या=अनायासबोधनीया गुणसमृद्धा=गुणगणयुता च भवति । किं च-

“जा खलु अभावियाकुस्सुइहिं न य ससमए गहियसारा ।

अकिलेसकरा सा खलु, वइरं छकोडिसुद्धं व ॥”

छोया-या खलु अभाविता कुश्रुतिभिः, न च स्वसमये गृहीतसारा ।

अक्लेशकारी सा खलु वज्रं पट्कोटिशुद्धमिव ॥२॥

अयं भावः-या परिषत् कुश्रुतिभारभाविता भवति, न च स्वसमये गृहीत
सारा=स्वसिद्धान्ताभिज्ञा च न भवति, अक्लेशकारी=क्लेशोत्पादिका न भवति, या
च पट्कोटिशुद्धं सर्वथा शुद्धवज्रमिव हीरक इव विशुद्धा भवति, सा खल्व
ज्ञायकपरिषदुच्यते । इति ॥

सम्प्रति दुर्विदग्धपरिषदुच्यते-

“न य कत्थ वि निम्माओ, न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं ।

वत्थिव वायपुण्णो, फुड्डइ गामेल्लगजवियड्ढं ॥१॥

किंचिम्मत्तग्गाही, पल्लवगाही य तुरियगाही य ।

दुवियड्ढंगा उ एसा, भणिया तिविहा इमा पग्गिसा” ॥२॥

रत्न के समान असंस्कृत होते हैं । और इसी से जिन्हें समझाना बहुत सरल
होता है-अर्थात् जो थोड़े से कहने में ही सन्मार्ग पर आ जाते हैं । ये सब
गुणगण से युक्त रहा करते हैं । “जा खलु अभाविता” इत्यादि-यह परिषत्
कुश्रुतियों के बहकावे में नहीं आती है और अपने सिद्धान्त के पीछे यह
लटना झगडना नहीं जानती है । पट्कोटि शुद्ध हीरे के समान यह परिषत्
विशुद्ध होती है । दुर्विदग्ध परिषत् का स्वरूप इस प्रकार से है-‘नय कत्थ
वि’ इत्यादि-जो पुरुष किसी भी विषय में निष्णात न हो और जो पुरुष

शिशु समान सरलभावधी युक्त होय छे. अने आण्णोमाथी नीकणेला रत्न समान जे
असंस्कृत होय छे. जे परिषदाने धर्मतत्व समजववानुं कार्य धारुं ज सरल होय
छे. अवेवा गुण्णोथी युक्त परिषदने अज्ञायक परिषद कडे छे. “जा खलु अभाविता”
कुशास्त्रो आ परिषदने अडेकावी शकतां नथी अने ते परिषद स्व सिद्धांतोथी अलिख
पणुं होती नथी. सिद्धान्तने नामे तने अगडा करता पणुं आवडता नथी. पटकोट
शुद्ध हीरा समान वशुद्ध आ परिषद होय छे.

छाया—न च कुत्रापि निर्मातो न च पृच्छति पारभवस्य दोषेण ।

वस्तिरिव वातपूर्णः स्फुटति ग्रामेयकोऽविदग्धः ॥१॥

किञ्चिन्मात्रग्राहिणी, पल्लवग्राहिणी त्वरितग्राहिणी च ।

दुर्विदग्धा त्वेषा भणिता, त्रिविधेयं परिषत् ॥२॥

यो नरः कुत्रापि विषये निष्णातो न भवति ।

परिभवस्य दोषेण=अपमानदोषेण चान्यं जनं वस्तुतत्त्वं न पृच्छति । 'यद्यहमेनं प्रक्ष्यामि तव ममाप्रतिष्ठा स्यादिति हेतोस्तत्त्वज्ञजनकाशात् तत्त्वज्ञानं लब्धुं न यतते इति भावः । एतादृशो ग्रामेयको—ग्राम्यः=संस्कारवर्जितः अविदग्धः—अनिपुणः पुरुषः, वातपूर्णो वस्तिरिव स्फुटति =स्थूलो भवति अहंकारी भवतीत्यर्थः किञ्च—य किञ्चिन्मात्रग्राही भवति,

निष्णात हैं उनसे वह इस अभिप्राय से वस्तुतत्त्व को नहीं पूछता हो कि इन से पूछने पर मेरी अप्रतिष्ठा—अवज्ञा—होगी इसी कारण वह तत्त्वज्ञान प्राप्ति में प्रयत्नशाली नहीं होता है ऐसी व्यक्ति सत् ज्ञान के संस्कार से रहित बन कर केवल अविदग्ध—अनिपुण बना रहता है और वायु से पूर्ण धमनी के समान अपने अभिमान में फूला रहता है । इसी तरह जो थोडा बहुत जानता है तथा पल्लवग्राही पांडित्य—जिसके पास में है, जो त्वरितग्राही है—कहने पर शीघ्र समझतो लेता है—पर फिर विस्मृत हो जाता है—फिर भी ज्ञानि के अहंकार में तत्पर रहता है ऐसे इन व्यक्तियों की सभा का नाम दुर्विदग्धा सभा है । तात्पर्य इस का यह है कि बोध लव होने पर जो अपने आप

दुर्विदग्ध परीषदनुं स्वरूप आ प्रकारनुं डोय छे.

'नय कथ्य वि' धत्यादि—कोई एक पुरुष अमुक विषयमां निष्णात नथी. ते विषयमां भीछ कोछ ओक व्यक्ति निष्णात छे, परन्तु पडेली व्यक्ति भीछ व्यक्तितने वस्तुतत्त्व विषे ओ कारणे पूछती नथी के तेने पूछवाथी भारी अप्रतिष्ठा थशे. आ प्रकारना अलिमानने कारणे ते तत्त्वज्ञान—प्राप्तिमां प्रयत्नशील रहेतो नथी. ओवो भाणुस साया ज्ञानना संस्कारथी रहित न रहेवाने कारणे अविदग्ध—अनिपुण न रहे छे. ओवो भाणुस हुवाथी लरेली धमणु समान अलिमानथी कूलाया न करे छे, आ प्रकारना अधक्यरा ज्ञानवाणाने अधदग्ध कडे छे. आ प्रकारना अधदग्ध, छीछरा ज्ञानवाणा, त्वरितग्राही (कोछ वात कडेवामां आवे तो शीघ्र समझ लेनारा पणु पाछणथी तेने लूली ननारा) भाणुसो ज्ञानना अलिमानमां तत्पर रहेता डोय छे. ओवी व्यक्तियेनी सलाने दुर्विदग्धा परिषद कडे छे आ कथननेो सावार्थ ओ छे के ओओ पोताने विशिष्ट तत्त्वज्ञानी भानी रह्या छे, अने ओवो वारंवार समझववा

पल्लवग्राही त्वरितग्राही भवति । तेषां परिषद् दुर्विदग्धा । इत्येवमुक्तरीत्या त्रिविधा परिषद् विज्ञेया । इहाद्ये उभे अनुयोगार्हे, तृतीया तु अनुयोगानर्हा । एतत्सर्वमुक्त्वा सूत्रार्थो वक्तव्यः । इत्येवमनुयोगस्य द्वादश द्वाराणि वक्तव्यानि भवन्ति । सूत्रकारस्तु शेषाणि द्वाराण्युपलक्षयितुं 'कस्य शास्त्रस्यायमनुयोगः ?' इति सप्तमं द्वारं चेतसि निधाय 'जइ सुयनाणस्स उद्देशो' इत्यारभ्य 'इमं पुण पट्टवणं पट्टच्च आवस्सगस्स अणुओगो' इति यावदुक्तवान् ॥सू० ५॥

को विशिष्ट तत्त्वज्ञानी मान बैठे हैं और समझाने पर भी जो अपने झूठे आग्रह को छोड़ते नहीं हैं ऐसे व्यक्ति दुर्विदग्ध कहे गये हैं । इन की सभा का नाम दुर्विदग्ध सभा है । इस प्रकार इन तीन सभाओं में से आदि की दो सभाएं तो अनुयोग के योग्य हैं, परन्तु जो तीसरी सभा है वह अनुयोग है वह अनुयोग के योग्य नहीं है ।—

यह सब अनुयोग से लगता हुआ विषय पहिले कहकर अनुयोगाचार्य को सूत्रार्थ का कथन करना चाहिये । इस प्रकार ये अनुयोग के १२ द्वार हैं । इन बारह द्वारों को अनुयोगाचार्य के विषय कहना चाहिये । सूत्रकारने यद्यपि इन १२ द्वारों का यहाँ कथन नहीं किया है तो भी उन्होंने शेष द्वारों को उपलक्षित करनेकेलिये "कस्य शास्त्रस्य अयम्-अनुयोगः" इस सप्तमद्वार को चित्त में रखकर—"जइ सुयनाणस्स उद्देशो" यहाँ से प्रारंभ करके "इमं पुण पट्टवणं पट्टच्च आवस्सगस्स अणुओगो" यहाँ तक कहा है । स्थिर परिपाटी—

छतां पणु पोताना दुराग्रहने छोडता नथी, जेओ शानी पुरुषोनी वात समजवाने पणु तत्पर नथी जेवां पुरुषोने दुर्विदग्ध कडे छे अने जेवा पुरुषोनी सलाने दुर्विदग्ध परिषद कडे छे, आ त्रणु प्रकारनी जे परिषदो कडी तेमांनी पडेला जे प्रकारनी परिषदो तो अनुयोगने पात्र गणाय छे, पणु त्रीण प्रकारनी जे दुर्विदग्ध परिषद छे, तेने अनुयोगने पात्र गणी नथी, अनुयोगने लगतुं आ अधुं कथन सौथी पडेलां करवुं जेधजे. त्थारभाद ज अनुयोगात्थार्थे सूत्रार्थतुं कथन करवुं जेधजे. आ प्रकारना ते अनुयोगना १२ द्वार छे, ते गार द्वारेतुं अनुयोगात्थार्थे शिष्य आगण कथन करवुं जेधजे. जे के सूत्रकारे जे १२ द्वारेतुं कथन अर्ही कथुं नथी, छतां पणु भाडीना द्वारेने उपलक्षित करवा निमित्ते "कस्य शास्त्रस्य अयम् अनुयोगः" "कथा सूत्रेना आ अनुयोग छे," आ सातमां द्वारने हृदयमां धारणु करीने "जइ सुयनाणस्स उद्देशो" आ सूत्रपाठथी शङ् करीने "इमं पुण पट्टवणं पट्टच्च आवस्सगस्स अणुओगो" आ सूत्रपाठ पर्यन्ततुं कथन कथुं छे. "स्थिर परिपाटी" आ विशेषणु

मूलम्—आवस्सयं णं किं अंगं अंगाइं ? सुयं सुयाइं ? खंधो खंधा ? अज्झयणं अज्झयणाइं ? उद्देसो उद्देसा ? । आवस्सयं णं नो अंग, नो अंगाइं, सुयं, नो सुयाइं, खंधो, नो खंधा, नो अज्झयणं, अज्झयणाइं, नो उद्देसो, नो उद्देसा ॥ सू० ६ ॥

छाया—आवश्यकं खलु किम् अङ्गम् अङ्गानि ? श्रुतं श्रुतानि ?, स्कन्धः स्कन्धाः ? अध्ययनम् अध्ययनानि ?, उद्देशः उद्देशाः ? । आवश्यकं खलु ना अङ्गं, नो

जो विशेषण बतलाया गया है वह यह प्रमाणित करता है कि इम विशेषण-वाला मुनि कभी भी सूत्र और अर्थ को विपरीत नहीं करता है । जो आदेय वचनवाला मुनि होता है—उसके थोड़े भी वचन महार्थ से भरे हुए जैसे मालूम होते हैं । आहरण नाम उदाहरण का है । हेतु दो प्रकार का होता है— १ एक ज्ञापक हेतु और दूसरा कारक हेतु—घटका—अभिव्यञ्जक दीप घटका ज्ञापक हेतु है । घटका कर्ता कुंभकार—घटका कारक हेतु है । उपसंहार का नाम उक्थनय है । नैगमादि सात नय हैं । ॥सूत्र ५॥

“आवस्सयं णं इत्यादि । ॥सूत्र ६॥

शब्दार्थ—(आवस्सयं णं) आवश्यक सूत्र (किं अंगम्) क्या १ एक अंग रूप है ? (अंगाइं) या अनेक अंगरूप है ? (सुयं सुयाइं) एक श्रुतरूप है ? या अनेक श्रुतरूप है ? (खंधो खंधाइं ?) एक स्कंधरूप है ? या अनेकस्कंध रूप है ? (अज्झयणं अज्झयणाइं) एक अध्ययनरूप है—या अनेक अध्ययनरूप है ? (उद्देसो उद्देसा) एक उद्देशरूप है या अनेक उद्देशरूप है ?—

ये वातन्तुं समर्थान् करे छे के आ (विशेषणवाणो मुनि कही पणु सूत्र अने अर्थानुं विपरीत कथन करतो नथी. जे मुनि आदेयवचनथी युक्त होय छे, तेमना थोडां वचनो पणु महु अर्थथी लरेदा लागे छे. “आहरणु” अेटवे उदाहरणु अथवा दष्टान्त हेतु जे प्रकारनो होय छे—(१) ज्ञापकहेतु अने (२) कारक हेतु घटनो अभिव्यञ्जक दीपक घटना ज्ञापक हेतुइय छे. घटनुं निर्माणु करनार कुंभकार (कुंभार) घटना कारकहेतुइय छे. उपसंहारनुं नाम उपगम छे. नैगम आदि सात नय छे. । सूत्र ५ ।

“आवस्सयं णं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(आवस्सयं णं अंगम् अंगाइं ?) आवश्यक सूत्र शुं एक अंगइय छे, के अनेक अंगइय छे ? (सुयं सुयाइं ?) शुं ते एक श्रुतइय छे, के अनेक श्रुत-इय छे ? (खंधो खंधाइं ?) शुं ते एक स्कंधइय छे, के अनेक स्कंधइय छे ? (अज्झयणं अज्झयणाइं ?) शुं ते एक अध्ययनइय छे, के अनेक अध्ययनइय छे ? (उद्देसो उद्देसा ?) शुं ते एक उद्देशइय छे, के अनेक उद्देशइय छे ?

अङ्गानि, श्रुतम्, नो श्रुतानि, स्कन्धः नो स्कन्धाः नो अध्ययनम् अध्ययनानि,
नो उद्देशो नो उद्देशाः ॥सू० ६॥

टीका—‘आवस्सयं णं’ इत्यादि—

आवश्यकं खलु किं द्वादशान्तर्गतमेकमङ्गमिदम् ? किं वा अङ्गानि—बहून्य-
ङ्गानि । तथा किं श्रुतं श्रुतानि ? आवश्यकं किमेकश्रुतरूपं किंवाऽनेकश्रुतरूपम् ?
तथा किं स्कन्धः स्कन्धाः—किमेकः स्कन्धः, बहवो वा स्कन्धाः ! । तथा
अध्ययनम् अध्ययनानि आवश्यकमिदं किमेकमध्ययनं किं वा बहून्यध्ययनानि ।
तथा उद्देश-उद्देशा वा—किम्—एक उद्देशो वा बहवो वा उद्देशाः इति दश प्रश्नाः ।

उत्तरयति—‘आवस्सयं णं’ इत्यादि । आवश्यकं खलु नो एकाङ्गरूपं नैवा-

उत्तर—(आवस्सयं णं नो अंगं नो अंगाइं) अनंग प्रविष्टरूप श्रुत होने
के कारण आवश्यक सूत्र—न एक अंगरूप है । और न अनेक अंगरूप है ।
‘सुयं नो सुयाइं’ यह तो एक श्रुतरूप है । अनेक श्रुतरूप नहीं है । (खंधो
नो खंधा) एक स्कंधरूप है, अनेक स्कंधरूप नहीं है । (नो अज्झयणं, अज्झ-
यणाइं) पड् अध्ययन स्वरूप होने से यह एक अध्ययनरूप नहीं है किन्तु अनेक
अध्ययनरूप है । (नो उद्देशो नो उद्देशा) यह न एक उद्देशरूप है और न अनेक
उद्देशरूप है । इसका तात्पर्य यह है कि यह आवश्यक सूत्र एक श्रुत स्कंधात्मक
और पड् अध्ययनरूप है । यह एक अंगरूप और अनेक अंगरूप नहीं है ।
अनेक श्रुतस्कंधरूप नहीं है और न एक अध्ययनात्मक है, न एक और अनेक
उद्देशरूप ही है ।

शंका—यहां ये दो प्रश्न हैं कि “यह आवश्यक सूत्र १ अंगरूप है या
अनेक अंगरूप है” करने योग्य ही नहीं प्रतीत होते—क्यों कि यह सूत्र नन्दि-

उत्तर—(आवस्सयं णं नो अंगं नो अंगाइं) अनंग प्रविष्ट श्रुतरूप होवाने
कारण आवश्यकसूत्र एक अंगरूप पणु नथी, अने अनेक अंगरूप पणु नथी.
(सुयं नो सुयाइं) ते अेक श्रुतरूप ँ छे. अनेक श्रुतरूप नथी, (खंधो नो खंधा)
ते अेक स्कंधरूप छे, अनेक स्कंधरूप नथी, (णो अज्झयणं, अज्झयणाइं) ते ६
अध्ययनवाणुं होवाने लीधे तेने अेक अध्ययनवाणुं कही शकय नही, पणु अनेक
अध्ययनवाणु कही शकय. (नो उद्देशो, नो उद्देशा) ते अेक उद्देशरूप पणु नथी
अने अनेक उद्देशरूप पणु नथी. आ कथनने लोवार्थ नीचे प्रमाणे छे—आवश्यक
सूत्र अेक श्रुतस्कंधात्मक अने छ अध्ययनवाणुं छे, ते अेक अंगरूप पणु नथी
अने अनेक अंगरूप पणु नथी, ते अनेक श्रुतस्कंधरूप पणु नथी, ते अेक अध्यय-
नात्मक पणु नथी, अने अेक अथवा अनेक उद्देशरूप पणु नथी.

शंका—“आवश्यक सूत्र अेक अंगरूप छे ? के अनेक अंगरूप छे ?” आ जे
प्रश्नो अही पूछना लेउता न. उता, कारण के आये ँ आगण अेवी बात करी

नैकाङ्गरूपम् अःयानङ्गप्रविष्टत्वात् । श्रुतम्—इदमेकश्रुतरूपमस्ति नो श्रुतानि—बहु-
श्रुतात्मकं च नारित । स्कन्धः—इदमेकस्कन्धरूपं नतु स्कन्धाः—बहुस्कन्धात्मकं
न भवति । नो अध्ययनम्—नैकाध्ययनरूपम्, किन्तु अध्ययनानि—षडध्ययनात्म-
कतयाऽनेकाध्ययनरूपम् । नो उद्देशः—इदं नैकोद्देशरूपम्, नो उद्देशाः—न बहुद्देशा-
त्मकमित्यर्थः ।

अयं भावः—इदम् आवश्यकम् एकश्रुतात्मकत्वात् श्रुतभूएक स्कन्धात्मकत्वात्
स्कन्धः षडध्ययनात्मकत्वात् अध्ययनानि च, किन्तु नो अङ्गम्, नो अङ्गानि, नो
श्रुतानि, नो स्कन्धाः, नो अध्ययनम्, नो उद्देशः, नो उद्देशा वा ।

नचावश्यकम्—अङ्गम् अङ्गानि वा ? इति प्रश्नद्वयमकरणीयमेव, नन्दिसूत्रे-
ऽस्यानङ्गप्रविष्टत्वेनोक्तत्वात्, अत्र तृतीयसूत्रे—‘इमं पुण पट्टवणं पडुच्च अणंग-
पविट्टस्स अनुअंगो’ इत्यनेनास्य सूत्रस्यानङ्गप्रविष्टत्वेनोक्तत्वात् ? इति चेत्,
‘उच्यते—यत्तावदुक्तम्—नन्दिसूत्रेऽस्यानङ्गप्रविष्टत्वमुक्तम्, अतोऽत्र सूत्रेऽस्याङ्गत्वविषये
प्रश्नोऽयुक्त इति, तदयुक्तम्, यतो नास्ति काश्चिदेवंविधो नियमो यत्प्रथमं नन्दि-
सूत्रं व्याख्यायैवेदं सूत्रं व्याख्येयम्, कदाचिदनुयोगद्वारं व्याख्यायैव नन्दिसूत्रं

सूत्र में अनंग प्रविष्टरूप से कहा गया है । तथा इसी सूत्र के तृतीय सूत्र में
“इमं पुण पट्टवणं पडुच्च अणंगपविट्टस्स अनुओगो” इस अंशद्वारा भी इसी
बात को कहा है कि यह सूत्र अनंग प्रविष्ट श्रुतरूप है । अतः अनंग-
प्रविष्ट होने के कारण इस सूत्र के प्रति ये पूर्वोक्त दो प्रश्न अकरणीय ही हैं ।
उत्तर—इस बात को लेकर कि नन्दिसूत्र में इस सूत्र के अनंग प्रविष्ट कहा है;
इसलिये सूत्र में अंगत्वविषयक ये दो प्रश्न अयुक्त हैं सो ऐसा कहना ठीक
नहीं है क्यों कि इस प्रकार का कोई नियम तो है नहीं कि पहिले नन्दि-
सूत्र का व्याख्यान करके ही इस सूत्र का व्याख्यान करना चाहिये । कदाचित्
ऐसा भी हो सकता है कि पहिले इस अनुयोगद्वार सूत्र का व्याख्यान कर

छे के आवश्यक सूत्रने नन्दिसूत्रमां अनंग प्रविष्ट (अंगणाह्य) सूत्ररूपे कडेवामां
आंयुं छे. वणी आ अनथना त्रीम सूत्रमां न “इमं पुण पट्टवणं पडुच्च अणंग-
पविट्टस्स अनुओगो” आ सूत्रांश द्वारा पणु आवश्यक सूत्रने अनंग प्रविष्ट श्रुत
रूपे प्रतिपादित करवामां आंयुं छे. आ रीते तेने अनंगप्रविष्ट श्रुतरूप प्रकट कर्या
गाह उपयुक्त छे प्रश्नो शुं अस्थाने नथी ? आ प्रकारना प्रश्न करी पूछवामां शुं
युनरुक्ति होषनी संलावना रहेती नथी ?

उत्तर—नन्दिसूत्रमां आवश्यकसूत्रने अनंग प्रविष्ट श्रुतरूप कडेवामां आंयुं
छे, तेथी आ सूत्रने अनुदक्षीने अंगत्व विषयक न्ने छे प्रश्नो पूछवामां आंया छे,
ते प्रश्नाने अयुक्त गण्वा ते उचित नथी, कारण के अवेो केछ नियम तो नथी

व्याख्येयं भवेत् । किञ्च-यदि नन्दिसूत्रेऽस्या वाह्यत्वे निर्णीते पुनरस्याङ्गत्वविषये प्रश्नो निरर्थकस्तर्हि 'जइ सुयनाणस उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं अंगपविट्टस्स.....? किं अंगवाहिरस्स.....?' इत्यादि तृतीयसूत्रोपन्यास एव निरर्थकः स्यात्, अतो नारित नन्दिसूत्रा-अनुयोगद्वारसूत्रयोः पौर्वापर्यभावः, अतोऽस्याङ्गत्वविषये प्रश्नः समीचीन एव ।

ननु मङ्गलार्थं नन्दिसूत्रमेव प्रथमं व्याख्यातव्यम् ? इति चेदुच्यते-तदपि न, नन्दिसूत्रेऽपि ज्ञानपठचक्रकीर्तनस्यैव मङ्गलत्वम्, तच्चेहाऽप्यस्तीति मङ्गलस्यापि नन्दिसूत्रस्य प्रथमव्याख्याने प्रयोजनाभावात् । रञ्जोक्तम्—'इमं पुण पट्टवणं'

के बाद में व्याख्याता नन्दिसूत्र का व्याख्यान करदें । किञ्च-यदि नन्दिसूत्र में इसमें अंगवाह्यता का निर्णय होने से अंगत्व विषयक प्रश्न निरर्थक है ऐसा ही मान लिया जावे तो फिर "जइ सुयनाणस" इत्यादि तृतीय सूत्र का उपन्यास ही निरर्थक हो जावे गा । इसलिये नन्दिसूत्र और अनुयोगद्वारसूत्र इनमें पौर्वापर्यभाव नहीं है-अतः अंगत्व विषयक प्रश्न इसके ऊपर जो किया गया है वह समीचीन ही है ।

शंका—मंगल के निमित्त नन्दिसूत्र ही प्रथम व्याख्यान करने योग्य है अतः इस तरह इन में पौर्वापर्यभाव आ जायगा-सो ऐसी भी बात नहीं है क्योंकि नन्दिसूत्र में भी पांच ज्ञानों के कथन से जिस प्रकार मंगलता है उसी प्रकार से वह मंगलता इसमें भी है । क्योंकि यहाँ पर भी पांच ज्ञानों

જ કે પહેલાં નન્દિસૂત્રનું વ્યાખ્યાન (કથન) કર્યા બાદ આ સૂત્રનું વ્યાખ્યાન કરવું ન જોઈએ. કદાચ એવું પણ સંભવી શકે છે કે પહેલાં આ અનુયોગ દ્વાર સૂત્રનું વ્યાખ્યાન કરીને ત્યારબાદ વ્યાખ્યાતા નન્દિસૂત્રનું વ્યાખ્યાન પણ કરે.

વળી એવું જ માની લેવામાં આવે કે નન્દિસૂત્રમાં આ સૂત્ર (આવશ્યક સૂત્ર) ની અંગબાહ્યતાનો નિર્ણય થઈ ગયો હોવાથી-અંગત્વ વિષયક જે પ્રશ્નો પૂછવામાં આવ્યા છે તે નિરર્થક લાગે છે, એવી પરિસ્થિતિમાં તો "જइ सुयनाणस" इत्यादि त्रीण सूत्रेण उपन्यास एव निरर्थक एव नृशे. नन्दिसूत्र अने अनुयोगद्वारसूत्रां पौर्वापर्य लावनो सदृलाव नथी, तेथी तेने अनुलक्षीने अंगत्व विषयक જે प्रश्नो पૂछવામાં આવ્યા છે તે ઉચિત જ છે.

शंका—मंगलनिमित्तनी अपेक्षाये तो नन्दिसूत्र ए प्रथम व्याख्यान करवा योग्य है, ते कारणे ते अन्नेमां पौर्वापर्य लावनो सदृलाव પણ संभवी शकें છે.

ઉત્તર—એવી વાત પણ નથી, કારણે કે નન્દિસૂત્રમાં પણ પાંચ જ્ઞાનના કથનથી જેવી મંગળતાનો સદૃલાવ છે, એવી જ મંગળતાનો આ સૂત્રમાં પણ સદૃલાવ છે,

इत्यादिनाऽऽद्यानङ्गत्वमुक्तमेव, पुनरस्त्याङ्गत्वविषये प्रश्नोऽसमीचीन एवेति. तत्सत्यम्, परन्तु विस्मरणशीलानामल्पबुद्धिमतां शिष्याणामनुग्रहार्थमेवायं प्रश्नः, इत्यस्याङ्गत्वविषये प्रश्नो निर्दुष्ट एवेति बोध्यम् ॥ सू० ६ ॥

‘इमं पुण पट्टवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो’ । इत्यनेन ‘आवश्यकम्’ इति सूत्रनाम निर्णीतम्, तथाऽनन्तरोक्तेषु दशसु प्रश्नेष्व्वावश्यकं श्रुतत्वेन स्कंधत्वेनाध्ययनकलापात्मकत्वेन च निर्णीतम्, तस्मात् प्रकृते किम् ? इत्याह-‘तम्हा’ इत्यादिना

का सर्व प्रथम कथन किया गया है । इस लिये इस बात को लेकर मंगल भूतभी नन्दिसूत्र का प्रथम व्याख्यान करना चाहिये यह बात नहीं बनती है । क्योंकि इस प्रकार के कथन में कोई खास प्रयोजन की पुष्टि नहीं होती है । तथा यह जो बात यही है कि ‘इमं पट्टवणं’ इत्यादि पाठ से भी इस अनुयोगद्वार में अनङ्गप्रविष्टता प्रतिपादित होती है अतः इस में यह अंगत्व विषयक प्रश्न असमीचीन ही है सो यह बात ठीक है-परन्तु जो शिष्य विस्मरणशील है और अल्पबुद्धिवाले हैं उनके अनुग्रह के लिये ही यह प्रश्न किया गया है । इस तरह इसमें यह अंगत्व विषयक प्रश्न निर्दोष ही है ऐसा जानना चाहिये । ॥सू० ६॥

‘इमं पुण पट्टवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो’ “इस सूत्र पाठ से इसका नाम आवश्यक सूत्र है यह निर्णीत हो जाता है, तथा अनन्तरोक्त दश प्रश्नों में यह आवश्यक श्रुतरूप है, स्कंधरूप है, और पट्टु अध्ययनात्मक है यह

कारण के आ सूत्रमां पणु सौथी पडेलां पाय ज्ञानोनुं ञ कथन करवामां आव्युं छे. आ दृष्टिये विचार करवामां आवे तो मगणभूत नन्दिसूत्रनुं ञ प्रथम व्याख्यान करवुं नेधये, जेवी वात प्रतिपादित थती नथी, कारण के आ प्रकारना कथनथी केअ भास प्रयोजनने पुष्टि भणती नथी.

तथा जेवी ञ दलील करवामां आवी छे के “इमं पट्टवणं” इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा पणु आ अनुयोग द्वारमां अनङ्गप्रविष्टता प्रतिपादित थाय छे, तेथी अंगत्व विषयक प्रश्नो अनुचित ञ छे, तो जे दलील पणु थराथर नथी, कारण के जे शिष्य विस्मरणशील अने अल्पबुद्धिवाणा होय तेमना उपर अनुग्रह करवाने भाटे ञ आ जे प्रश्न पूछवामां आव्या छे. ते कारणे अंगत्व विषयक जे प्रश्न पूछवामां आवेल छे, ते थधा निर्दोष प्रश्नो ञ समज्वा नेधये. ॥ सू. ६ ॥

‘इमं पुण पट्टवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो’ आ सूत्रपाठ द्वारा तेनुं नाम आवश्यकसूत्र छे, ते निर्णीत थथ जय छे, अने त्थार पछीना दस प्रश्नो द्वारा जे निर्णीत थथ जय छे के आ सूत्र श्रुतरूप छे, स्कंधरूप छे अने छ

मूलम्—तम्हा आवस्सयं निक्खविस्सामि, सुयं निक्खविस्सामि
स्कंधं निक्खविस्सामि, अज्झयणाइं निक्खविस्सामि ॥ सू० ७ ॥

हाथा-तरमात् आवश्यकं निक्षेप्यामि, श्रुतं निक्षेप्यामि स्कंधं निक्षेप्या-
मि, अध्ययनानि निक्षेप्यामि ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘तम्हा’ इत्यादि—

इह हि आवश्यकसूत्रस्यानुयोगः तच्चाऽऽवश्यकं श्रुतरूपं स्कंधरूपम्,
अध्ययनरूपं च । ‘तम्हा’ तस्मात् आवश्यकं निक्षेप्यामि=आवश्यकं च निक्षेपं
करिष्यामि, श्रुतं निक्षेप्यामि=श्रुतस्य निक्षेपं करिष्यामि, स्कंधं निक्षेप्यामि
स्कंधस्य निक्षेपं करिष्यामि, अध्ययनानि निक्षेप्यामि=अध्ययनानां निक्षेपं करि-

निर्णीत हो जाता है—इससे प्रकृत में क्या बात आती है ? इस शंका के
“समाधान निमित्त” सूत्रकार कहते हैं—

“तम्हा आवस्सयं” इत्यादि । ॥सू० ७॥

शब्दार्थ—यहां आवश्यक सूत्र का अनुयोग प्रस्तुत है और वह आव-
श्यक श्रुतरूप, स्कंधरूप एवं अध्ययनरूप है । (तम्हा) इसलिये (आवस्सयं)
आवश्यक का मैं (निक्खविस्सामि) निक्षेप करूंगा । (सुयं निक्खविस्सामि)
श्रुत का निक्षेप करूंगा (अज्झयणाइं निक्खविस्सामि) अध्ययनों का निक्षेप
करूंगा । इसका तत्पर्य यह है—कि जब यह शास्त्र आवश्यक आदिरूप से निर्णीत
हो चुका है । तब इन आवश्यक आदि शब्दों का अर्थ खुलासारूप से स्पष्ट
करने के योग्य हो जाता है । इसके अर्थ का स्पष्टरूप से विवेचन तभी हो
सकता है कि जब पदों का निक्षेप किया जावे । बिना निक्षेप किये इन

अध्ययनवाणुं छे. हुवे आ सूत्रमां कथा कथा विषयने सभावेश थाय छे, ते प्रकट
करवा निमित्ते सूत्रकार कहे छे के—“तम्हा आवस्सयं” इत्यादि—

शब्दार्थ—अहीं आवश्यक सूत्रने अनुयोग प्रस्तुत छे, अने ते आवश्यक
श्रुतरूप, स्कंधरूप अने अध्ययनरूप छे. तम्हा तेथी (आवस्सयं निक्खविस्सामि)
आवश्यकने हुं निक्षेप करीश, (सुयं निक्खविस्सामि) श्रुतने निक्षेप करीश,
(अज्झयणाइं निक्खविस्सामि) अने अध्ययनने हुं निक्षेप करीश.

आ अभनने लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—ज्यारे आ शास्त्र आवश्यक आदिरूपे
निर्णीत थछे गथुं छे, त्यारे आ आवश्यक आदि शब्दोना अर्थ खुलासा सहित
स्पष्ट करवानुं जरूरी अनी जय छे. तेना अर्थनुं स्पष्टरूपे विवेचन करवानुं
कार्य त्यारे ज सरण अनी शके के ज्यारे पदोने निक्षेप करवांमां आवे. निक्षेप

व्यामि । अयं भावः—इदं शास्त्रमावश्यकदिरूपतया निर्णीतम्, अत आवश्यकानां शब्दानामर्थो निरूपणीयः ! स च निक्षेपपूर्वक एव स्पष्टतया निरूपितो भवति, अत आवश्यकानां निक्षेपः क्रियते । निक्षेपश्च निक्षेपणं आवश्यकानां यथासम्भवं नामादिभेदनिरूपणम् ॥सू० ७॥

उत्कृष्टतो जघन्यतश्च कियान् निक्षेपः कर्तव्यः ? इत्याह—

मूलम्—जत्थ य जं जाणेज्जा निक्खेवं निक्खिक्खे निरवसेसं ।

जत्थ वि य न जाणेज्जा चउक्कग निक्खिक्खे तत्थ ॥सू० ८॥

छाया—यत्र च यं जानीयाद् निक्षेपं निक्षिपेत् निरवशेषम् । यत्रापि च न जानीयात्, चतुष्कं निक्षिपेत्तत्र ॥सू० ८॥

के अर्थ का विवेचन स्पष्टरूप से नहीं हो सकता है । इसलिये इन आवश्यक आदि शब्दों का अब निक्षेप किया जाता है । निक्षेप का अर्थ—आवश्यक आदि शब्दों के यथा संभव नामादि भेदों का निरूपण करना—होता है । ॥सूत्र७॥

उत्कृष्टरूप से और जघन्यरूप से कितने निक्षेप कर्तव्य होते हैं इसके लिये सूत्रकार कहते हैं कि— “जत्थ य जं जाणेज्जा” इत्यादि । सू० ८ ॥

शब्दार्थ—(जत्थ य जं जाणेज्जा) जीवादिरूप वस्तु में निक्षेपता यदि निक्षेप—न्यास—को जानता हो तो उस जीवादिरूप वस्तु में वह (निरवसेसं निक्खेवं निक्खिक्खे) नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावादि स्वरूप समस्त निक्षेप भेदों का निरूपण करे । (जत्थ वि य न जाणेज्जा तत्थ चउक्कगं निक्खिक्खे) तथा जिस वस्तु में जीवादिरूप पदार्थ में—

क्या विना अर्थानुं विवेचन स्पष्टतापूर्वक थछ शक्तुं नथी. तेथी आ आवश्यक आदि पहोने। हुवे निक्षेप करवामां आवे छे.

निक्षेपने अर्थ आवश्यक शब्दोना यथा संलव नामादि लेहोनुं निरूपण करवुं तेनुं नाम न निक्षेप छे. ॥ सू० ७ ॥

उत्कृष्टरूपे अने जघन्यरूपे डेटला निक्षेप कर्तव्य (यखा योय्य) छाय छे, ते प्रकट करवाने भाटे सूत्रकार कहे छे डे—

“जत्थ य जं जाणेज्जा” इत्यादि—

शब्दार्थ—(जत्थ य जं जाणेज्जा) अवादिइय वस्तुमां निक्षेपता निक्षेप (न्यास)ने जणुतो। छाय तो (निरवसेसं निक्खेवं निक्खिक्खे) ते अवादिइय वस्तुमां नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, लव अने अवादिइय निक्षेपना समस्त लेहोनुं निरूपण करवुं जेधये. (जत्थ वि य न जाणेज्जा तत्थ चउक्कगं निक्खिक्खे) तथा जे वस्तुमां—अवादिइय पदार्थमां—समस्त निक्षिपेने (निक्षेपता निक्षेप करनार शुरु)

टीका—‘जत्थ य’ इत्यादि—

यत्र च=जीवादि वस्तूनि यं निक्षेपं-न्यासं जानीयात्,

तत्र जीवादिवस्तूनि निस्वशेषं=समग्रं-नाम स्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभवभावादि स्वरूपं निक्षेपभेदसमूहं निक्षिपेत्-निरूपयेत् । यत्रापि च अपि च=पुनः यत्र=यस्मिन् जीवादिवस्तूनि सर्वान् निक्षेपान् न जानीयात्, तत्र-तस्मिन्नपि जीवादिवस्तूनि चतुष्कं-नामस्थापनाद्रव्यभावरूपं निक्षेपं निक्षिपेत्-न्यस्येत् । अयं भावः-यत्र नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभवभावादिलक्षणा भेदा ज्ञायन्ते, तत्र एभिः सर्वैरपि भेदैर्वस्तुनो निक्षेपो भवति । यत्र तु सर्वे भेदा न ज्ञायन्ते, तत्रापि नामादि-भिश्चतुर्भिवस्तुनिक्षेपव्यमेव, नामादीनां सर्वव्यापकत्वात् । न हि किमपि सदृशं वस्तु विद्यते, यत्र नामादिवस्तुष्टयं नास्तीति ॥सू० ८॥

यदि वह निक्षेपता समस्त निक्षेपों को नहीं जानता हो तो भी उस वस्तु में वह नाम स्थापना, द्रव्य, और भावरूप चार निक्षेपों का न्यास करें ।

भावार्थ—जहां पर नाम स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव आदिरूप निक्षेप भेद जाने जाते हैं वहां पर इन समस्त भी भेदों से वस्तु का निक्षेप होता है । परन्तु जहां ये सब भेद नहीं जाने जाते हैं वहां भी नाम आदि चार वस्तु का निक्षेप तो करना ही चाहिये । क्योंकि नामादिक सर्वव्यापक हैं । ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जिस में नामादि चतुष्टय नहीं हैं ।

लोक में या आगम में जितना भी शब्दव्यवहार होता-है-वह कहां किस अपेक्षा से किया जा रहा है । इस ग्रन्थी को सुलझाना ही निक्षेप-व्यवस्था का काम है । प्रयोजन के अनुसार एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो

जाणुता न होय, ते वस्तुभां पणु नाम, स्थापना, द्रव्य अने लावइय निक्षेपना आर लेहोनुं निरूपणु तो तेमणु करवुं न् जेधये.

भावार्थ—ज्यां नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव अने लाव आदिइय निक्षेप जाणी शक्य अयेम होय त्यां आ समस्त लेहोनी अपेक्षाये वस्तुनो निक्षेप थाय छे. परन्तु ज्यां आ यथां लेहो जाणी शक्यता न होय त्यां पणु नाम, स्थापना, द्रव्य अने लाव, आ आर वस्तुनो निक्षेप तो करवो न् जेधये, कारणु के नामादिक आरे वस्तुयो तो सर्वव्यापक छे. अवी कोठ पणु वस्तु नथी के जेभां नामादि चतुष्टयनो सहलाव न होय.

लोकमां अथवा आगममां जेटला शब्दो नो व्यवहार थाय छे ते कथां कंठ दृष्टिये करवामां आवतो होय छे, आ समस्याने हल करवानुं न् निक्षेप-व्यवस्थानुं काम छे. अके न् शब्दना प्रयोजन अनुसार अनेक अर्थ थता होय छे, ते अर्थ

आवश्यकं, श्रुतं, स्कन्धम्, अध्ययनानि च निक्षेपस्यामीति प्रतिज्ञातम् ।
तत्र प्रतिज्ञानुसारेण प्रथममावश्यकनिक्षेपार्थमाह—

मूलम्—से किं तं आवस्सयं ? आवस्सयं चउव्विहं पणत्तं,
तं जहा—नामावस्सयं ठवणावस्सयं दव्वावस्सयं भावावस्सयं ।सू०९।

जाते हैं। ये अर्थ ही उस शब्द के न्यास—निक्षेप—अथवा विभाग हैं। शब्द का अर्थ यदि निक्षेपा नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव आदि रूप से जानता है तो उसका कर्तव्य है कि वह इन सब न्यासों का विश्लेषण उस शब्द के अर्थ को समझाने में करे। यदि वह इन सब भेदों से परिचित नहीं है तो कम से कम उस शब्दार्थ को वह नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप से विश्लेषण अवश्य करे। क्योंकि ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो इन चाररूप न हो। हरएक पदार्थ कम से कम नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप तो है ही। इन में से वक्ता किस निक्षेपरूप अर्थ का प्रतिपादन कर रहा है यह बात सहज में समझ में आ जाती है। इस से प्रकृत अर्थ का बोध और अप्रकृत अर्थ का निराकरण होनेरूप फल श्रोता को प्राप्त हो जाता है। सूत्र ८।

अब सूत्रकार प्रतिज्ञा के अनुसार आवश्यक इस शब्द का निक्षेपार्थ क्या है। इस बात को स्पष्ट करते हैं। क्योंकि उन्होंने अभी ऐसी प्रतिज्ञा की है कि मैं आवश्यक, त, स्कंध और अध्ययनों का निक्षेप करूँगा।

७ ते शब्दना न्यास, निक्षेप अथवा विभागइयं छे. जे निक्षेपा (निक्षेप करनार गुरु) शब्दना अर्थ नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव अने भाव आदि इये जणुतो डोय, तो तेनुं अे कर्तव्य थछ पडे छे के तेणु शब्दना अर्थ समझवती वधते आ अधां न्यासो (विलागो)नुं विश्लेषणकरवुं जेछअे. जे निक्षेपा अे अधां लेदोथी परिचित न डोय तो तेणु शब्दार्थनुं नाम, स्थापना, द्रव्य अने भावइये तो अवश्य विश्लेषण करवुं ७ जेछअे, कारण के अेवो केछ पदार्थ नथी के जेमां नाम आदि उपयुक्त आर निक्षेपोना सहलाव ७ न डोय प्रत्येक पदार्थ ओछामां ओछा नाम, स्थापना, द्रव्य अने भावइये तो अवश्य डोय ७ छे. आ निक्षेपोमांथी वक्ता क्या निक्षेपइय अर्थनुं प्रतिपादन करी रह्यो छे अे वात सरणताथी समझथ जय छे. तेना द्वारा प्रकृत अर्थना बोध अने अप्रकृत अर्थनुं निराकरण थवाइये इण श्रोताने प्राप्त थछ जय छे. ॥ सू. ८ ॥

इसे सूत्रकार पोटानी प्रतिज्ञा अनुसार “आवश्यक” आ शब्दना शे। निक्षेपार्थ छे, ते प्रकट करे छे, कारण के तेमणु इमणुं ७ (पूर्व सूत्रमा) अेवुं वयन आण्युं छे के “हुं आवश्यक, श्रुत, स्कंध अने अध्ययनानां निक्षेप करीश.”

છાયા—અથ કિં તદાવસ્યકમ્ આવશ્યકં ચતુર્વિધં પ્રજ્ઞસમ્, તદથા—નામા-
વશ્યકં સ્થાપનાવશ્યકં, દ્રવ્યાવશ્યકં, ભાવાવશ્યકમ્ ॥સૂ૦ ૧॥

ટીકા—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ—

‘સે’ ઇતિ ‘અથ’ શબ્દાર્થે । સ ચેહ વાક્યોપન્યાસે । ઉક્તં ચ—‘મજ્જલા-
નન્તરારમ્ભપ્રશ્નકાત્સ્ન્યેષ્વથો અથ’ ઇતિ । કિં શબ્દઃપ્રશ્ને । તદિતિ પૂર્વપ્રક્રાન્તપરામર્શે
તતોઽયં નિષ્કર્ષો—અથ તત્=પૂર્વપ્રક્રાન્તમ્ આવશ્યકં કિમ્=કિં સ્વરૂપમ્ ?
ઇતિ શિષ્યપ્રશ્નઃ । ઉત્તરયતિ—‘આવસ્સયં’ ઇત્યાદિના । આવશ્યકમ્—અવશ્યં કર્ત-
વ્યમ્—આવશ્યકમ્—શ્રમણાદિમિશ્વતુર્વિધસંઘેરવશ્યમુભયકાલં ક્રિયતે ઇતિ ભાવઃ ।

સે કિં તં આવસ્સયં ઇત્યાદિ । ॥સૂત્ર ૧॥

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં આવસ્સયં) શિષ્ય પૂછતા હૈ કિં હે મદંત ! પૂર્વ
પ્રક્રાન્ત આવશ્યકકા કયા સ્વરૂપ હૈ ?

ઉત્તર—(આવસ્સયં ચઠ્ઠિહં પળ્ણત્તં) આવશ્યક ચાર પ્રકાર કા કહા ગયા
હૈ । (તંજહા) ઉસકે વે ચાર પ્રકાર યે હૈ—(નામાવસ્સયં, ઠાવણાવસ્સયં, દ્વા-
વસ્સયં ભાવાવસ્સયં) નામ આવશ્યક સ્થાપના આવશ્યક દ્રવ્ય આવશ્યક, ઓર
ભાવ આવશ્યક । અથ શબ્દ કા પ્રયોગ મજ્જલ અનન્તર, આરંભ, પ્રશ્ન ઓર
કાત્સ્ન્યે ઇન અર્થોં મેં હોતા હૈ । યહાં ઇસકા પ્રયોગ વાક્ય કે ઉપન્યાસ મેં
હુઆ હૈ । “કિં શબ્દ પ્રશ્ન મેં આયા હૈ । અવશ્ય કર્તવ્ય જો હોતા હૈ ઉસકા
નામ આવશ્યક હૈ । સાધુસાધ્વી ઓર શ્રાવક શ્રાવિકારૂપ ચતુર્વિધ સંઘ કે
લિયે પ્રાતઃકાલ ઓર સાયંકાલ યહ વર્મ આવશ્યક કર્તવ્ય કહા ગયા હૈ ।—અથવા

‘સે કિં તં આવસ્સયં’ ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં આવસ્સયં ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે
“હુ ભગવન્ ! પૂર્વોક્ત આવશ્યકતું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(આવસ્સયં ચઠ્ઠિહં પળ્ણત્તં) આવશ્યક ચાર પ્રકારના કહ્યા છે,
(તં જહા) એ ચાર પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(નામાવસ્સયં, ઠાવણાવસ્સયં, દ્વા-
વસ્સયં, ભાવાવસ્સયં) (૧) નામ આવશ્યક, (૨) સ્થાપના આવશ્યક, (૩) દ્રવ્ય
આવશ્યક અને (૪) ભાવ આવશ્યક. “અથ” શબ્દનો પ્રયોગ મંગળ, અનન્તર,
આરંભ, પ્રશ્ન, અને કાત્સ્ન્યે, આટલા અર્થમાં થાય છે. અહીં તેનો પ્રયોગ વાક્યના
ઉપન્યાસમાં થયો છે. (“કિં”) આ પદ પ્રશ્ન પૂછવા નિમિત્તે વપરાયું હોવાથી પ્રશ્ના-
ર્થતું વાચક છે. જે અવશ્ય કરવા યોગ્ય હોય છે તેને આવશ્યક કહે છે. સાધુ,
સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધ સંઘને સવારે અને સાંજે (સાયંકાળે)
અવશ્ય કર્તવ્ય (કરવા યોગ્ય) અમુક જે કાર્યો છે તેને આવશ્યક કહે છે. અથવા
અવશ્ય શબ્દનો આ પ્રમાણે પણ અર્થ થાય છે—અચલ, અરુજ, અક્ષય, અવ્યાપાધ

यद्वा—अचलमरुजमक्षयमव्याबाधममन्दानन्दसन्दोहरूपं शाश्वतं शिवसुखमवश्यं—
निश्चयेन भवति यस्मात्—तदावश्यकम् । यद्वा—आ=समन्ताद्वश्या भवन्ति इन्द्रि-
यकषायादि भावशत्रवो यस्मात्तदावश्यकम् । यद्वा—ज्ञानादिगुणसमूहो मोक्षो वा
आ=समन्ताद्वश्यः क्रियतेऽनेनेति—आवश्यकम् ।

यद्वा—‘आवस्सय’ इत्यस्य ‘आवासक’ मितिच्छाया । विंशतिसंख्यकेषु
स्थानकेषु आवासयति—तदाराधने तत्परं करोत्यात्मानमित्यावासकं षड्विधावश्य-
कमेव । यद्वा—श्रुतचारित्रलक्षणधर्मरामे आवासयति—निवासयत्यात्मानमित्यावासकम् ।

इदं आवश्यकं चतुर्विधं—चत्स्रो विधा भेदा अस्येति चतुर्विधं—चतुःप्रकार-
कं प्रज्ञप्तं—प्ररूपितम् । तद्यथा—यथा—तदाव यकं चतुर्विधं भवति तथोच्यते—नामा-
वश्यकं, स्थापनावश्यकं, द्रव्यावश्यकं, भावावश्यकम्, इत्येवं चतुर्विधमावश्यकं भवति ॥ सू० ९ ॥

अवश्यशब्द का अर्थ अचल अरुज अक्षय अव्याबाध अमन्दआनन्द (अत्यन्त आनन्द का
पुंज) का संदोहरूप जो शाश्वत शिव सुख है वह है । यह शिव सुख निश्चय से जिसके
प्रभाव वश जीवां को प्राप्त होता है वह आवश्यक है । अथवा—इन्द्रिय और कषाय
आदि भावशत्रु सर्व प्रकार से जिस से वश में हो जाते हैं वह आवश्यक है ।
अथवा—ज्ञानादिक गुणों का समूह या मंक्ष जिसके द्वारा सर्व प्रकार से वश्य
किया जाता है वह आवश्यक है । अथवा—“आवस्सय” की संस्कृत छाया
“आवासक” ऐसी भी है—जो २० स्थानों में—अर्थात् इन स्थानों की आराधना
में—आत्मा को तत्पर बनाता है उसका नाम आवासक है और वे १० प्रकार के
प्रकार के आवश्यक ही हैं । अथवा—श्रुतचारित्ररूप धर्मोद्यान में जा आत्मा
का निवास करता है वह आवासक है । यह आवासकरूप आवश्यक चार
प्रकार का कथित हुआ है । ॥ सूत्र ९ ॥

अमन्द आनन्दना सहोदश्ये जे शाश्वत शिव सुख छे तेने अवश्य कहे छे. जेना
प्रलावथी लवने ते शिव सुखनी अवश्य प्राप्ति थछे जय छे, ते वस्तुनुं नाम
आवश्यक छे. अथवा—इन्द्रियो अने कषाय आदि लावशत्रुयो जेना द्वारा सर्व प्रकारे
वश थछे जय छे, तेनुं नाम आवश्यक छे. अथवा ज्ञानादि गुणोने समूह अथवा
मोक्ष जेना द्वारा सर्व प्रकारे वश्य (पोताने अधीन) करवामां आवे छे, तेनुं नाम
आवश्यक छे. अथवा “आवस्सय” आ पहनी संस्कृत छाया “आवासक” पणु
थाय छे. जे दृष्टिओ विचारवामां आवे तो आवश्यकने अर्थ आ प्रमाणे पणु थाय
छे—जे २० स्थानोनी आराधना करवामां पोताना आत्माने प्रवृत्त राभे छे तेनुं
नाम आवासक छे, अने ओवां छ प्रकारना जे आवश्यक छे. अथवा श्रुत चारित्ररूप
धर्मोद्यानमां जे आत्मा निवास करे छे तेने आवासक कहे छे. ते आवासकरूप
आवश्यक चार प्रकारना कहे छे. ॥ सू. ९ ॥

સમ્પ્રતિ નમાવશ્યકસ્ય સ્વરૂપં પ્રતિપાદયિતુ સૂત્રકાર આહ—

મૂલમ્—સે કિં તં નામાવસ્સયં ?, નામાવસ્સયં જસ્સ ણં જીવ-
સ્સ વો અજીવસ્સ વા જીવાણં વા અજીવાણં વા તદુભયસ્સ વા તદુ-
ભયાણં વા, આવસ્સણ્તિ નામં કજ્જહ, સે તં નામાવસ્સયં ॥સૂ૦૧૦॥

છાયા—અથ કિં તદ્ નામાવશ્યકમ્ ? નામાવશ્યકં—યસ્ય સ્વલુ જીવસ્ય વા અજીવ-
સ્ય વા જીવાનાં વા અજીવાનાં વા, તદુભયસ્ય વા, તદુભયેષાં વા આવશ્યક-
મિતિ નામ ક્રિયતે, તદેતન્નામાવશ્યકમ્ ॥ સૂ૦ ૧૦॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—‘સે કિં તં નામાવ સય’ ઇતિ । અથ કિં
તન્નામાવશ્યકમ્ ? ઉત્તરયતિ—નામાવશ્યકમ્—એવં મત્તિ યસ્ય સ્વલુ જીવસ્ય વા
અજીવસ્ય વા, જીવાનાં વા અજીવાનાં વા, તદુભયસ્ય વા જીવાજીવોભયસ્ય વા,
તદુભયેષાં વા=જીવાજીવોભયેષાં વા આવશ્યકમિતિ નામ ક્રિયતે તદેતન્નામાવ-

અવ કાર નામ આવશ્યક વા વ્યા સ્વરૂપ હૈં ઇસે પ્રતિપાદન કરને
કે લિપે સૂત્ર કથન કરતે હૈં—“સે કિં તં નામાવસયં” ઇત્યાદિ । ॥ સૂત્ર ૧૦॥

શબ્દાર્થ—શિષ્ય પૂછતા હૈ કિ હે મદંત । (સે કિં તં નામાવસ્સયં) પૂર્વ
પ્રક્રાન્ત નામ આવશ્યક વા વ્યા સ્વરૂપ હૈ ? ઉત્તર—(નામાવસ્સયં) નામ આવ-
શ્યક વા સ્વરૂપ ઇત પ્રકાર સે હૈ—(જસ્સ ણં જીવસ્સ વા અજીવસ્સ વા જીવાણં
વા અજીવાણં વા) જિસ મિસી જીવ કા અથવા અજીવ કા, યા અનેકજીવો
કા યા અનેક અજીવો કા (તદુભયસ્સ વા તદુભયાણં વા) અથવા જીવઅજીવ
દોનો કા, યા જીવાજીવો કા (આવસ્સણ્તિ નામં કજ્જહ) આવશ્યક ઇસા
જો નામ સ્મરલિયા જાતા હૈ (સે તં નામાવસ્સયં) ઇહ નામ આવશ્યક હૈ । નામ

હવે સૂત્રકાર નામ આવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે, એ વાતનું પ્રતિપાદન
કરવાને માટે નીચેના સૂત્રનું કથન કરે છે—“સે કિં તં નામાવસ્સયં” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે—(સે કિં તં નામાવસ્સય ?) હે
ભગવન્ । પૂર્વોક્ત નામ આવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(નામાવસ્સયં) નામ આવશ્યકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે—(જસ્સ ણં
જીવ સ વા અજીવસ્સ વા, જીવાણં વા અજીવાણં વા) એ કેાઇ જીવનું અથવા
અજીવનું, અથવા અનેક જીવોનું કે અનેક અજીવોનું, (તદુભયસ્સ વા તદુભયાણં વા)
અથવા જીવ અજીવ બન્નેનું અથવા જીવોનું અને અજીવોનું (જીવો અને અજીવો
બન્નેનું) (આવસ્સણ્તિ નામં કજ્જહ) “આવશ્યક” એવું એ નામ ગણવામાં આવે
છે. (સે તં નામાવસ્સયં) તેને ‘નામ આવશ્યક’ કહે છે નામ આવશ્યકમાં નામ

श्यकम् । नाम च तदावश्यकं चेति नामावश्यकं नामरूपमावश्यकमित्यर्थः । यद्वा—जीवादिवस्तु नामावश्यकं भवति, नाम्ना—नाममात्रेण आवश्यकं नामावश्यकमिति व्युत्पत्तिसंभवात् । यदि जीवादि—वस्तुन आवश्यकमिति नाम क्रियते तदा जीवादिवस्तु नाममात्रेणावश्यकं भवतीति नामावश्यकशब्दार्थो जीवादिवस्तुभवतीति भावः । नाम्नो लक्षणं चेदम्—“यद्वस्तुनोऽभिधानं, स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षम् “अपर्यायानभिधेयं च नाम यादृच्छिकं तथा ।” इति । अयं भावः—‘यद्वस्तुनोऽभिधानम्’ वस्तुनः इन्द्रादेः यदभिधानम्=इन्द्रेति वर्णपञ्चकानुपूर्वीरूपं

आवश्यक में नाम ही आवश्यक हो जाता है । अर्थात् “आवश्यक” ऐसा नाम उस वस्तु का रख लिया जाता है । तात्पर्य कहने का यह है कि किसी भी जीवादिक का “आवश्यक” ऐसा जो व्यवहार में इच्छानुसार गुणनिरपेक्ष नाम रख लिया जाया करता है वह “आवश्यक का नामनिक्षेप है । इस नामनिक्षेप में वस्तु केवल “आवश्यक” इस नाम मात्र से ही उसरूप कही जाती है । इस नामनिक्षेप में तदनुरूप गुणों की आवश्यकता नहीं होती है । केवल व्यवहार चलाने के लिये ही ऐसा किया जाता है । अतः नाम मात्रेण आवश्यकं नामावश्यकं” इस व्युत्पत्ति के अनुसार वह आवश्यकरूप वस्तु नाम मात्र से आवश्यक कहा जाता है । आवश्यक जैसेगुण उसमें नहीं होते । इस विषय का खुलासा अर्थ इस प्रकार से है—जब किसी जीवादि वस्तु का “आवश्यक” ऐसा नाम रख लिया जाता है उस समय वह जीवादिक वस्तु नाम मात्र से आवश्यक कहलाती है । इस प्रकार नामरूप आवश्यक इस

७ आवश्यक थछ नय छे. अेटले के ते वस्तुनुं “आवश्यक” अेवुं नाम राभवामां आवे छे. आ कथननुं तात्पर्यं अे छे के केाँ पञ्च लुवादिकनुं “आवश्यक” अेवुं जे गुणनिरपेक्ष (गुणुनी अपेक्षाथी रहित) नाम. इच्छानुसार व्यवहार नक्षी करवामां आवे छे तेने “आवश्यकनो नाम-निक्षेप” कहे छे. आ नामनिक्षेप-मां वस्तुने केवण “आवश्यक” अेवा नाम मात्रथी ७ ते इपे अेणभवामां आवे छे. आ नाम निक्षेपमां तेने अनुइप ह्य अेवा गुणुनी आवश्यकता रहेती नथी. केवण व्यवहार यथाववाने निमित्ते ७ अेवुं करवामां आवे छे. तेथी “नाममात्रेण आवश्यकं नामावश्यकं” आ व्युत्पत्ति अनुसार ते आवश्यकइप वस्तुने नाम मात्रनी अपेक्षाअे ७-अेटले के नाम पुरती ७ आवश्यक कहेवामां आवे छे-जे के आवश्यकने अनुइप गुणुनो ते वस्तुमां अभाव होय छे. आ विषयनुं विशेष रूपटी-करणु हुवे करवामां आवे छे—ज्यारे केाँ लुवादिक वस्तुनुं “आवश्यक” अेवुं नाम राभवामां आवे छे. त्यारे ते लुवादिक वस्तुने नाममात्रनी अपेक्षाअे ७ आवश्यक

तन्नाम, इति प्रथमः प्रकारः । अथ द्वितीयेन प्रकारेण नाम्नो लक्षणमाह—
‘स्थितमन्यार्थे’ तदर्थनिरपेक्षं पर्यायानभिधेयं च’ इति । अन्यार्थे—गोपालदार-
कादौ स्थितम्—इन्द्रेति नाम तदर्थनिरपेक्षं=तस्य प्रसिद्धस्य इन्द्रशब्दस्य परमै-
श्वर्यादिरूपो योऽर्थस्तन्निरपेक्षं भवति, गोपालदारकादौ परमैश्वर्यादिरभावात् ।
तथा—गोपालदारकादौ स्थितम् ‘इन्द्र’ इति नाम इन्द्रस्य ये पर्यायाः शक्रादयस्त-
दनभिधेयं च भवति । शक्रादौ इन्द्रेति प्रसिद्धं नाम वाच्यार्थशून्ये गोपालदारका-

शब्द का वह जीवादिरूप वस्तु वाच्यार्थ हो जाता है । नाम वा लक्षण इस प्रकार से कहा गया है—

“वस्तुनो यदभिधानं तन्नाम” वस्तु का जा व्यवहारमें नाम रहे वह नाम है । जैसे किसी इन्द्रादिरूप वस्तु का इन्द्र इनमें इन्-द्र-इ-अ-इन् पांच अक्षरों की आनु-पूर्वीरूप आभिधान यह नाम का प्रथम प्रकार है । नाम के लक्षण का द्वितीय प्रकार इस तरह से है—“स्थितमन्यार्थे निरपेक्षं पर्यायानभिधेयं च” किसी गोपाल के लडके का नाम किसी ने इन्द्र ऐसा रखदिया—उसमें परमैश्वर्य आदि-रूप जो इन्द्रशब्द का अर्थ है वह है नहीं—क्यों कि वह तो ग्वाले का लडका है उस में परमैश्वर्य का होना कहां से आ सकता है, उसका तो उसमें अभाव ही है—इसलिये उसका इन्द्र यह नाम अपने अर्थ से निरपेक्ष है । और इन्द्र के जो शक्र पुरन्दर आदि पर्यायवाची शब्द हैं उन से भी वह अनभिधेय (नहीं कहने योग्य) है । इन पर्यायवाची शब्दों से अभिधेय तो इन्द्र ही हो सकता है । अतः

कडेवाभां आवे छे. आ रीते ते लुवादिइप वस्तु नामइप ‘आवश्यक’ आ शब्दने वाच्यार्थ भनी जय छे. नामनु लक्षण आ प्रमाणे कहुं छे.

“वस्तुनो यदभिधानं तन्नाम” वस्तुनुं जे व्यवहारभां नाम रहे तेनुं जे नाम ‘नाम’ छे. जेभ के डोछ धन्द्रादिइप वस्तुनुं “धन्द्र” जेपुं पांच अक्षरानी आनुपूर्वीइप अलिधान आ नामने प्रथम प्रकार छे. नामना लक्षणने भीजे प्रकार आ प्रमाणे छे—“स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षं पर्यायानभिधेयं च” डोछगोवाणना पुत्रनुं नाम डोछजे ‘धन्द्र’ पाउयुं ‘धन्द्र’ पद तो परम ऐश्वर्यनुं वाचक छे. गोवाणना ‘धन्द्र’ नामना पुत्रभां आ ऐश्वर्य कथांथी संलपी शके ? तेभां तो आ गुणने अभाव जे होय छे. आ रीते तेनुं आ नाम पोताना अर्थनी अपेक्षाजे तो थराथर लागतुं नथी. आ रीते अर्थनी अपेक्षा राख्या विना पणु डोछ वस्तु के व्यक्तितने असुक नामे ओणभवामां आवती होय छे. वणी शक्र, पुरन्दर आदि जे शब्दो धन्द्रना पर्यायवाची छे. तेमना द्वारा पणु ते अनभिधेय छे. आ पर्यायवाची शब्दों द्वारा अलिधेय तो धन्द्र जे डोछ शके छे. आ रीते गोवाणना आणन धन्द्र जेपुं

दावारोपितं, तदपि नाम भवतीति बोध्यम् । तृतीयप्रकारेणापि तल्लक्षणमाह—
'यादृच्छिकं च तथा' इति । तथा—यदृच्छया कमप्यर्थमनाश्रित्य स्वेच्छया तथा-
विध्व्युत्पत्तिशून्यं "डित्थडवित्थादिरूपं नाम क्रियते, तदपि नाम । इति
त्रिविधं नामलक्षणम् । त्रिविधिमपि नाम अवश्यकरणीयत्वाद् नामावश्यकमुच्यते ।
अत्र सूत्रे 'वा' शब्दाः विकल्पार्थकाः ।

ननु जीवस्य 'आवश्यकम्' इति नाम कथं संभवीत ? उच्यते—यथा
कश्चिच्छे के जीवस्य स्वपुत्रादे 'देवदत्त' इत्यादि नाम करोति तथा कश्चित् स्वे-

गोपालदारक (बालक) का इन्द्र ऐसा नाम जो कि शक्र आदि में प्रसिद्ध है
वाच्यार्थ से शून्य बने हुए उस गोपालदारक में आरोपित किया गया है ।
नाम के लक्षण का यह द्वितीय प्रकार है । तथा जो यदृच्छा से नाम रख
लिये जाते हैं वे यादृच्छिक नाम हैं जैसे किसी अर्थ की अपेक्षा किये विना
ही डित्थ डवित्थ इत्यादि नाम तथाविध व्युत्पत्ति से रहित रखे जाते हैं ।
इन नामों के रखने में रखनेवाले की इच्छा होती है । इस तरह यह तीन
प्रकार नाम के लक्षण हैं । ये तीनों प्रकार के नाम अवश्यकरणीय होने के
कारण नाम आवश्यक कहे जाते हैं ।

शंका—जीवका "आवश्यक" ऐसा नाम कैसे संभवित होता है ?

जे नाम राभवामां आब्धुं छे ते वाच्यार्थथी रहित न् लागे छे. शक आदिने
अनुलक्षीने ज्यारे "इन्द्र" नाम वपराय छे. त्यारे तो ते नाम तेना वाच्यार्थथी
शुक्तं लागे छे. आ रीते वाच्यार्थ साथे भेण न भाय अथवा जे नाममां वाच्यार्थ
ने न् अंलाव डोय ओवुं नाम पणुं डोय डोय वार राभवामां आवतुं डोय छे.
नामना लक्षणुने आ भीने प्रकार समज्ये.

तथा जे नाम धृच्छा अनुसार राभवामां आवे छे, ते नामने यादृच्छिक नाम कडे
छे. जेभके डोय अर्थनी अपेक्षा राख्या विना न् "डित्थ, डवित्थ" इत्यादि, ते
प्रकारनी व्युत्पत्तिथी रहित नामे पणुं राभवामां आवे छे. आ प्रकारना
नामो राभवामां ते नामे रावनारनी धृच्छा न् मुण्य लाग लजवती डोय छे.
नामनुं आ त्रीण प्रकारनुं लक्षणु छे. आ रीते पडेला प्रकारमां "इन्द्र"
नाम सार्थक लागे छे, भीण प्रकारमां गोवाणना पुत्रनुं "इन्द्र" नाम
तेना अर्थ प्रमाणे शुणुथी संपन्न लागनुं नथी त्रीण प्रकारना
"डित्थ, डवित्थ" आदि नामो डोय पणुं प्रकारना अर्थनी अपेक्षा विना मात्र
नाम रावनारनी धृच्छानुसार राभवामां आवे छे. आ त्रणु प्रकारना नाम अवश्य
करणीय डोवाथी तेमने आवश्यक कडेवामां आवे छे.

शंका—एवमु "आवश्यक" ओवुं नाम डेवी रीते संलवी शके छे ?

च्छावशात् स्वपुत्रादेरावश्यकमिति करोति । भावावश्यक स्वरूपशून्ये गोपालदारकादौ
आवश्यकेति नामकरणे नाम्ना-नाममात्रेणावश्यकं नामावश्यकं गोपालदारकादि भवति ।

अजीवस्यावश्यकमिति नाम कथं संभवति । उच्यते-‘आवश्यकवासाक’
शब्दयोरेकार्थता प्रोक्ता । लोके हि-शुष्कोऽचित्तो बहुकोटराकीर्णो वृक्षोऽन्यो

उत्तर—जैसे कोई व्यक्ति अपने पुत्र का नाम देवदत्त रख लेता है उसे देवने तो दिया नहीं है—परन्तु लोक व्यवहार चलाने के लिये ऐसा किया जाता है—उसी तरह कोई ग्वाला आदि अपनी इच्छा से अपने पुत्र आदि का नाम “आवश्यक” ऐसा रखले तो यह आवश्यक का नाम निक्षेप है । वास्तव में आवश्यक जैसे गुण उस गोपालदारक में नहीं है—वह तो उन से शून्य है—अर्थात् भावावश्यक से वह रहित है—उस में आवश्यक ऐसा जो नामकरण किया गया है वह एक जीव को आश्रित नाम मात्र का आवश्यक है । इस नाम मात्र आवश्यक का वाच्य वह गोपालदारक है । एक अजीव में आवश्यक ऐसा नाम निक्षेप इस प्रकार से घटित करना चाहिये—

आवश्यक और आवासक इन दोनों शब्दों में एकार्थता अभी २ कही गई है—सो इस दृष्टि को ध्यान में रखकर अजीव में “आवश्यक” यह नाम ऐसे घटित हो जाता है कि किसी व्यक्तिने किसी एक शुष्क (सूखे) और

उत्तर—जेम केछ व्यक्ति पोताना पुत्रतुं नाम ‘देवदत्त’ राणे छे, जे के देवे तेने ते पुत्र आण्ये होतो नथी, परन्तु लोकव्यवहार चलाववाने जेवुं केछ पणु नाम राणवुं ज पडे छे, जेज प्रमाणे जे केछ गोवाण आदि व्यक्ति पोतानी छेछाथी पोताना पुत्रतुं नाम “आवश्यक” राणी शके छे. ते आ प्रकारतुं नाम राणवुं तेतुं नाम ज आवश्यकने नामनिक्षेप समजवो. भरी रीते ते ते गोवाणना पुत्रमां आवश्यक जेवा गुणो तो होता नथी—जे प्रकारना गुणोथी तो ते रहित ज होय छे. जेटले के सावावश्यकथी ते आणक रहित ज छे, छतां पणु तेमां ‘आवश्यक’ जेवा नामतुं ज आशेषु करवामां आव्युं छे ते जेक जवनने आश्रित नाम मात्रतुं ज ‘आवश्यक’ छे. आ नाम मात्र ना आवश्यकने वाच्य ते गोवाणपुत्र छे. लोक व्यवहार चलाववा निमित्ते ज आवी केछ पणु ‘संज्ञा’ ते आणकने आणभव माटे उपयोगी थछ पडे छे जेटले जेम ‘देवदत्त’ नाम राणी शकय छे, तेम “आवश्यक” नाम पणु शा माटे न राणी शकय केछ जेक अजवमां “आवश्यक” जेवो नाम निक्षेप आ प्रकारे घटावी शकय छे—आ सूत्रमां ज आगण जे वाततुं प्रतिपादन करवामां आव्युं छे के आवश्यक अने आवासक, आ अन्ने समनाथी पडे छे. आ दृष्टिजे विचार करवामां आवे तो अजवमां “आवश्यक” जेवुं नाम आ प्रमाणे सुसंगत लागे छे—

वा तथाविधः कश्चित् पदार्थविशेषः सर्पादेरावासोऽयमिति प्रोच्यते । स वृक्षो-
ऽन्यो वा तथाविधः पदार्थो यद्यप्यनन्तैः परमाणुलक्षणैरजीवद्रव्यैर्निष्पन्नस्तथाऽप्येक-
स्कन्धपरिणतिमाश्रित्य एकाजीवत्वेन विवक्षितः । स्वार्थिक क प्रत्यये कृते आवास
एव आवासकमिति नाम एकस्याजीवस्य सिद्धम् ।

बहूनामपि जीशानामावासकमिति नाम संभ्रमति । यथा इष्टकापाकाद्य-
ग्निमूषिकावास इत्युच्यते । इष्टकापाकाद्यग्नौ हि मूषिकाः संमूर्च्छन्ति । अत-
स्तेषामसंख्येयानामग्निजीवानां पूर्ववदावासकमिति नाम सिद्धम् । बहूनाम-
जीवानामपि आवासकमिति नाम भवति । दृश्यते हि बहुभिरचित्तै स्तृणैर्नीडं

अनेक कोटरों से युक्त वृक्ष को अथवा इसी प्रकार के किसी दूसरे पदार्थ को
कि जिस में सर्पादिक का निवास स्थान है देखकर कह दिया कि यह वृक्षा-
दिशुष्क पदार्थ सर्पादिक का निवासस्थान है—आवासभूत है—। लोक में ऐसा
व्यवहार चलता है—इसलिये उस अजीव एक वृक्षादि पदार्थ का “आवासक
या आवश्यक ऐसा नाम रखना यह एक अजीव के आश्रित नाम निक्षेप का
विषय है । यद्यपि वह वृक्षादि पदार्थ अनंत परमाणुरूप अजीव द्रव्यों से निष्पन्न
हुआ है तो भी एक स्कंधरूप परिणति को आश्रित करके वह एक अजीव-
रूप विवक्षित किया गया है । तात्पर्य कहने का यह है कि यदि कोई यहाँ
पर ऐसी आशंका करें कि यहाँ पर एक अजीव पदार्थ को लेकर आवश्यक
ऐसा नाम निक्षेप का विषय प्रस्तुत है—शुष्क-वृक्ष में आपने इसे घटित किया
है सो वह शुष्क वृक्ष एक अजीव पदार्थ नहीं है—वह तो अनेक परमाणु

कोई एक शुष्क (सूक्ष्म) अने अनेक अपोदोधी युक्त वृक्षमां सर्पादिक एवोना
वास लोभने अथ कही देवामां आवे छ के आ वृक्ष तो सर्पादिकतुं निवासस्थान
छ अथवा सर्पादिकना आवासरूप छे. लोकमां आ प्रकारने। व्यवहार आवे छे. तेथी
ते वृक्षादि अणुव पदार्थतुं “आवासक अथवा आवश्यक” अणुं नाम शब्दुं ते
अथ अणुवमां “आवासक अथवा आवश्यक” अणुं नाम निक्षेपइय समणुं. जे के
ते वृक्षादि पदार्थ अनंत परमाणु रूप अणुव द्रव्यो वडे निष्पन्न थयेल होय छे,
छतां पणु अथ स्कन्धइय परिणतिने। आश्रय लधने तेने अथ अणुवइये प्रकट
करवामां आवेस छे. अही कोथ अथी शंका करे के अही तो अथ अणुव पदार्थनी
अपेक्षाअथ आवश्यक अथ नामनिक्षेपनी वात आवी रही छे, आवे तो शुष्क वृक्षमां
‘आवश्यक’ अथ नामनिक्षेप कथो छे, परन्तु ते शुष्क वृक्ष अथ अणुव पदार्थइय
नथी. ते तो अनेक परमाणु पुंजमांथी निष्पन्न थयेलुं होवाथी अनेक अणुव द्रव
इय पदार्थ न छे, तो आ शंकातुं समाधान आ कथन द्वारा करवामां आणुं छे.
अही अथ अलाववामां आणुं छे के शुष्क वृक्ष जे के अनेक पौद्गलिक परमाणु-

सम्पद्यते । तद्धि पक्षिणामावासकमित्युच्यते । इत्थं बहूनामजीवानामपि 'आवासक'मिति नाम सिद्धम् ।

पुंज से निष्पन्न होने के कारण अनेक अजीव द्रव्यरूप पदार्थ हैं—सो इस शंका का समाधान इस बथन में किया गया है । कहा गया है कि वह शुष्क पदार्थ यद्यपि अनेक पौद्गलिक परमाणुओं के पुंज से निष्पन्न हुआ है—परन्तु उसरूप की यहाँ विवक्षा नहीं है—यहाँ तो उन सबके संवन्ध से एक परिणतिरूप हुए एक स्कन्धद्रव्य की विवक्षा है—इससे वह एक अजीव द्रव्य की विवक्षा है—इससे वह एक अजीव द्रव्य हैं । अनेक अजीव द्रव्य नहीं ।

अनेक जीवों में आवासक ऐसा नाम इस प्रकार से घटित करना चाहिये—इष्टका (इंट) पाक आदि की जो अग्नि होती है उसमें अनेक मृषिकाएँ समूर्च्छन जन्म धारण करती हैं । इस अपेक्षा वह इष्टपाक आदि की अग्नि मृषिका-वासरूप से वह दी जाती है । इस तरह उन असंख्यात अग्नि जीवों का आवासक ऐसा नाम सिद्ध हो जाता है । अनेक अजीवों का आवासक ऐसा नाम इस प्रकार से हाता है कि अनेक अचित्त तिनकों से नीड-घोंसला-वनता है । और उसमें पक्षी रहते हैं—इसलिये वह पक्षियों का आवासक है—इस नाम से कहा जाता है । अतः अनेक अजीवों में आवासक ऐसा आवासक नामनिक्षेप

ओना पुंजथी निष्पन्न थयेहुं छे, परन्तु अही ते प्रकारनी विवक्षा करवाभां आवी नथी—अही तो ते अधाना संधथी ओक परिणतिरूप थयेला ओक स्कन्ध द्रव्यनी ओ विवक्षा आवी रही छे. तेथी तेने अही ओक अल्प द्रव्य रूपे ओ प्रतिपादित करवाभां आवेल छे, अनेक अल्प द्रव्य रूपे प्रतिपादित करवाभां आवेल नथी.

अनेक लोकोभां "आवासक" ओवुं नाम आ प्रमाणे घटित करवुं लेछंओ—
छंटे पकववाना लहुं आदिनी ओ अग्नि होय छे तेभां अनेक मृषिकाओ (इंटरडीओ) समूर्च्छन जन्म धारण करे छे. तेथी ते लहुं आदिनी अग्निने मृषिकावासरूपे पणु ओणणवाभां आवे छे. आ रीते ते असंख्यात अशिल्लोवोनुं "आवासक" ओवुं नाम सिद्ध थछं नय छे.

अनेक अलोवोनुं आवासक ओवुं नाम आ प्रमाणे सिद्ध कही शकय छे.
अनेक अचित्त तणुणलांओनी भद्वथी भाणो भने छे, अने तेभां पक्षीओ रहे छे, ते कारणे तेने पक्षीओना आवासरूप गहणीने ओवुं कहेवाभां आवे छे छे "आ पक्षीओना आवासक छे," आ रीते अनेक अलोवोभां "आवासक" ओवो

जीवाजीवोभयद्वयापि 'आवासक'मिति नाम संभवति । दृश्यते हि-जलाशयोद्यानजलयन्त्रादिसहितः प्रासादादिप्रदेशो राजादेरावास उच्यते । अत्र च-जलाशयोद्यानादयः सचेतनरत्नादयश्च जीवाः सन्ति । इष्टका काष्ठादयोऽचेतनरत्नादयश्चाजीवाः सन्ति । एतदुभयनिष्पन्नस्य राजप्रासादादि-प्रदेशस्य आवासकं नाम सिद्ध्यति ।

उभयेषां जीवानामजीवानां चापि 'आवासक' मिति नाम संभवति । दृश्यते हि-राजप्रासादयुक्तं सम्पूर्णनगरं राजादीनामावास उच्यते । सर्वलः सौधर्मादिकल्प इन्द्रादीनामावास उच्यते । इत्थं बहूनां जीवानामजीवानां च सम्मिलितानाम् 'आवासकम्' इति नाम सिद्धम् । राजप्रासादस्य लघुत्वादेकमेव जीवा-

सिद्ध हो जाता है । जीव और अजीव इन दोनों में आवासक यह नाम निक्षेप इस प्रकार से बनता है कि जो राजमहल का प्रदेश जलाशय, उद्यान एवं जल यन्त्र-नल-आदि से युक्त होता है वह राजा आदिका आवासस्थान है- इस नाम से कहा जाता है । वहां जो जलाशय, उद्यान एवं सचेतन रत्नादिक हैं-वे तो सचित द्रव्य हैं और इष्टका (ईंट) का काष्ठ, अचेतन रत्नादिक हैं वे सब अजीव हैं । इन दोनों से निष्पन्न हुए उस राजमहल आदि के प्रदेश का नाम आवासरूप होने के कारण "आवासक" का निक्षेप बनता है । इसी प्रकार से जीव अजीव इन दोनों का भी आवासक यह नाम इस प्रकार से घटित होता है कि राजप्रासाद से युक्त समस्त नगर राजादिक का आवास है इस रूप से व्यवहार में कह दिया जाता है । तथा सौधर्म आदि समस्त कल्प इन्द्रादिकों के आवासरूप से व्यवहृत होते हैं । इस तरह संमिलित अनेक अजीव और जीवों का "आवासक" ऐसा नाम सिद्ध हो जाता

आवासको नामनिक्षेप सिद्ध थर्षण्य छे. लव अलव, अने अन्नेमा "आवासक" आ नामनिक्षेप आ प्रमाणे सिद्ध करी शक्य छे.

जे राजमहलको प्रदेश जलाशय, उद्यान अने जलयन्त्र (नल) आदिथी युक्त होय छे, तेने "राज आदिनुं आवासस्थान छे," अने इपे कहेवामा आवे छे, त्यां जे उद्यान, जलाशय अने सचेतन रत्नादिक वस्तुओ छे, ते तो सचित द्रव्यइय ज छे, अने ईंटनी दीवालौ, अने अचेतन रत्नादिके वजरे जे वस्तुओ छे, ते अचितद्रव्यइय होवथी अलव छे, अने अन्नेथी जेनुं निर्माण थयुं छे. जेवा ते महल आदिना प्रदेशनुं नाम आवासइय होवनेकारणे "आवासक"नुं निक्षेप अनेछे. जेअ प्रमाणे लवलवमां पणु 'आवासक' आ नामनिक्षेप आ प्रमाणे घटावी शक्य छे.

राजप्रासादथी युक्त समस्त नगर "राजदिकको आवास छे." आ इपे व्यवहारमां कहेवामां आवे छे. तथा सौधर्म आदि समस्त कल्पने ईन्द्रादिकेना आवास इय कहेवामां आवे छे. अने रीते संमिलित अनेक अलवो अने लवोनुं "आवासक"

जीवोभयं विवक्षितम् । नगरादीनां सौधर्मादिकल्पानां च महत्त्वाद् बहूनि जीवा-
जीवोभयानि विवक्षितानि । इत्थं जीवाजीवोभयैकत्वबहुत्वविषये एकत्वं बहुत्वं
च विवक्षाधीनं द्रष्टव्यम् । एवमन्यत्रापि जीवादीनामावासकनाम यथासंभवं
भावनीयम् । इदं हि दिङ्मात्रप्रदर्शनार्थमुक्तम् इति नामावश्यकप्ररूपणा ॥सू०१०॥

अथ स्थापनाऽऽवश्यकं निरूपयितुं सूत्रकार आह—

मूलम्—से किं तं ठवणावस्सयं ? ठवणावस्सयं जण्णं कट्टुकम्मि

है । राजप्रासाद नगर एवं सौधर्म आदि की अपेक्षा लघु होने के कारण जीव और अजीव इन दोनों रूप से एक कहा गया है । तथा राजप्रासाद की अपेक्षा नगरादिक एवं सौधर्मकल्प महान्-विशाल-होने के कारण अनेक जीव और अजीवरूप से विवक्षित हुए हैं । इस प्रकार जीव, अजीव, और उभय में अनेकत्व का यह विचार विवक्षा के आधीन हुआ जानना चाहिये । इस प्रकार से अन्यत्र भी जीवादि वीं का आवासक नाम यथा संभव समझ लेना चाहिये । यह जो यहाँ समझाया गया है वह तो बहुत ही संक्षेप से समझाया गया है ।

इस प्रकार यह नाम आवश्यक की प्ररूपणा जाननी चाहिये ।

भावार्थ—सूत्रकार ने यहाँ नाम आवश्यक का स्वरूप जीव अजीव आदि पदार्थों के एकत्व अनेकत्व को लेकर समझाया है । इसे व्यवहार में पहिले यों समझ लेना चाहिये—कि प्रत्येक शब्द का अर्थ चार प्रकार का होता है—
(१) नामरूप (२) स्थापनारूप, (३) द्रव्यरूप और चौथा भावरूप । शास्त्रीय परिभाषा में इन्हें निक्षेप कहा गया है । निक्षेप नाम स्त्रने या न्यास का है ।

अणुं नाम सिद्ध थं जय छे. राजप्रासाद, नगर अने सौधर्म कल्प आदिनी अपेक्षाअणुव अने अणुवो नाना होवाने कारणे ते अणुने अणुं अणुवअणु अणु शण्डधीण प्रतिपादित करवामां अणुवेद छे. तथा राजमडेद करतां नगर साधर्मादि कल्पो विशाण होवाने कारणे अनेक अणुव अने अणुवअणुये विवक्षित थयेद छे. आ रीते अणुव. अणुव अने उभयमां अणुत्व अनेकत्वने आ विचार विवक्षाने अधीन रहिने थयेदो समणवो. अणु प्रकारे अन्यत्र पणु अणुवादिअणु 'आवासक' नाम यथा संभव समणु देवुं जेधअे. अणुं आ जे समणुती आपवामां आवी छे. ते तो अणुण संक्षिप्तमां आपवामां आवी छे. आ प्रकारनी आ नाम आवश्यकनी प्ररूपणा समणुवी.

सूत्रकारे अणुं नाम आवश्यकनुं स्वरूप अणुव अणुव आदि पदार्थाना अणुत्व अनेकत्वनी अपेक्षाअे समणुअणुं छे. आ अणुतमां पडेदां तो अणु समणु देवुं जेधअे के प्रत्येक शण्डने अर्थ चार प्रकारने होय छे. ते चार प्रकार नीअे प्रमाणे छे.

वा पोत्थकस्मे वा, चित्तकस्मे वा, लेप्पकस्मे वा गंधिमे वा वेढिमे
वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगो
वा सबभावठवणा वा असबभावठवणा वा आवस्सए त्ति ठवणा
ठविज्जइ, से त्तं ठवणावस्सयं ॥सू० ११ ॥

जिसमें व्युत्पत्ति की प्रधानता नहीं है किन्तु जो मातापिता या इतर लोगों के संकेत बल से जाना जाता है वह नामनिक्षेप का विषय है। जैसे किसी व्यक्ति में "महावीर" जैसे गुण नहीं होने पर भी व्यवहार चलाने के निमित्त उसके माता पिता आदि जन उसका नाम महावीर रख लेते हैं। जो वस्तु असली वस्तु के सदृश आकार वाली है वह स्थापना निक्षेप का विषय है। जैसे जंबूद्वीप का नक्षत्र अढाईद्वीप का नक्षत्र तथा वृक्ष महेल आदि का चित्र। जापदार्थ भाव का पूर्वरूप या उत्तररूप हो वह द्रव्यनिक्षेप का विषय है—जैसे जो वर्तमान में श्रावकपुत्र है वह आगे श्रावक बनेगा उसे श्रावक कहना। जिस शब्द के अर्थ में शब्द का व्युत्पत्ति या प्रवृत्ति निमित्त वर्तमान में बराबर घटित हो रहा हो वह भावनिक्षेप का विषय है। जैसे वर्तमान में महान् वीरता के कार्य करने वालेको महावीर कहना। इसी तरह से जिस जीवादि

(१) नामरूप (२) स्थापनारूप, (३) द्रव्यरूप अन् (४) लावरूप शास्त्रोनी परिभाषाओं में तेने नामनिक्षेप कहेवाओं आवे छे. निक्षेप अेटले नाम राणवुं अथवा न्यास (विलाग) करवे। तेनुं नाम निक्षेप छे.

जेमां व्युत्पत्तिनी प्रधानता होती नथी पणु जे माता, पिता अथवा अन्य लोकाना संकेतना आधार लधने जणु शक्य छे, अेवुं नामनिक्षेपनुं स्वरूप अथवा अेवो नामनिक्षेपना विषय छे. जेमके कोछ व्यक्तियों महुवीर जेवां गुणाना अलाव होवा छतां पणु व्यवहार अदाववाने निमित्ते तेना माता, पिता आदि लोकें तेनुं नाम महुवीर राणी ले छे जे वस्तु असली वस्तुना समान आकारवाणी छे, ते स्थापना निक्षेपना विषय छे. जेमके जंबूद्वीपना नक्षत्र, अढाईद्वीपना नक्षत्र, वृक्ष महेल आदिना चित्र, आ पधा स्थापना निक्षेपना उदाहरण छे.

जे पदार्थ लावना पूर्वरूप के उत्तररूप होय, ते द्रव्यनिक्षेपना विषय छे. जेमके जे अत्यारे श्रावकपुत्र छे ते लविष्यमां श्रावक जनशे भाटे तेने श्रावक कहेवो जेधअे. आनुं नाम द्रव्यनिक्षेप छे.

जे शब्दना अर्थमां शब्दनी व्युत्पत्ति अथवा प्रवृत्तिनुं निमित्त वर्तमानमां पशुअर घटावी शकतां होय. ते लावनिक्षेपना विषय छे जेमके वर्तमान समये महुवीरतानुं धर्थ करनारने महुवीर कहेवो, ते लावरूप निक्षेप अथे गणाय.

पदार्थ में आवश्यक जैसा एक भी गुण नहीं है और उसे आवश्यक इस नाम से व्यवहार करना सो नाम आवश्यक है। नाम का तीन प्रकार के लक्षण से व्यवहार होता है—जहां नाम का व्युत्पत्ति या प्रवृत्ति का निमित्त घटित होता है वह नाम-नामनिक्षेप का विषय न हो कर भावनिक्षेप का विषय बनता है। जैसे परमेश्वर्य को भोगते हुए इन्द्र नामधारी व्यक्ति को इन्द्र इस नाम से पुकारना। यह नाम का प्रथम प्रकार है। द्वितीय प्रकार में जैसा नाम हो उसकी प्रवृत्ति का निमित्त व्युत्पत्ति का निमित्त उस में हो किन्तु संकेत आदि हो तो यह नामनिक्षेप में परिणमित किया गया है जैसे गोपाल इन्द्र—गोपाल बालक। तृतीय प्रकार में डित्, डित्ति आदि रूढ शब्द कि जो व्युत्पत्ति रहित ही स्वेच्छानुसार प्रचलित होते हैं—लिये गये हैं। इन में भी प्रवृत्ति का निमित्त व्युत्पत्ति का निमित्त नहीं होता है किन्तु रुढि होती है। इस तरह केवल द्वितीय प्रकार ही नामनिक्षेप का विषय पडता है। अतः जिस में आवश्यक जैसे गुण नहीं हैं उस में आवश्यक इस नाम का न्यास (रखना) करना यह आवश्यक का नामनिक्षेप है। जीवआदिक पदार्थों में यह निक्षेप जिस

अथ प्रमाणे जे एवादि पदार्थमां 'आवश्यक' अथवा अथ पणु गुणु नथी, ते एवादि पदार्थमां 'आवश्यक' अथवा नामनो व्यवहार करवो, तेने नाम आवश्यक कहे छे. नामनो त्रणु प्रकारना लक्षणोथी व्यवहार थाय छे—ज्यां नामनुं व्युत्पत्ति अथवा प्रवृत्तिनुं निमित्त घटित थतुं होय छे, ते नाम-नामनिक्षेपनो विषय बनवाने पडवे लावनिक्षेपनो विषय जनी जय छे. जेभके परम अश्वर्यथी संपन्न अथवा डेअ व्यक्तिते "इन्द्र" अथवा नामे ओणजवी. आ नामनो पडवे प्रकार छे.

नामनो जीने प्रकार—जेनुं नाम होय अथवा प्रवृत्तिना निमित्तनो अथवा व्युत्पत्तिना निमित्तनो जेमां सहलाव न होय, परन्तु संकेत आदिनो सहलाव होय तो तेने नामनिक्षेपमां परिणमित करवामां आणुं छे. जेभके गोवाणना पुत्रनुं 'इन्द्र' नाम.

तीज प्रकारमां 'डित् डित्ति' आदि रूढ शब्दो के जे व्युत्पत्तिथी रहित छे अने गोबनारनी स्वेच्छानुसार प्रचलित (उत्थारित) थयेत छे, तेभने गणुवी शकय छे. तेमां पणु प्रवृत्तिनुं निमित्त अथवा व्युत्पत्तिनुं निमित्त होतुं नथी पणु रुढिनो ज सहलाव होय छे. आ रीते डेवण जीने प्रकार ज नामनिक्षेपना विषयइप गणुवी शकय छे. तेथी जेमां आवश्यक जेवां गुणु नथी, तेमां 'आवश्यक' आ नामनो न्यास करवो तेने आवश्यकनो नामनिक्षेप कहे छे एवादि पदार्थमां आ निक्षेप डेवा प्रकारे घटित करवामां आणुं छे, ते विषयनुं टीकाकारे सूत्रनी

छायाः—अथ किं तत् स्थापनावश्यकम् ? स्थापनावश्यकं—यत्स्वल्गु काष्ठ-
कर्मणि वा पुस्तकर्मणि वा चित्रकर्मणि वा लेप्यकर्मणि वा ग्रन्थिमे वा वेष्टिमे वा
पूरिमे वा सङ्घातिमे वा अक्षे वा वराटके वा एको वा अनेको वा मङ्गावस्थापनया वा
असङ्गावस्थापनया वा आवश्यकैति स्थाप्यते, तदेतत् स्थापनावश्यकम् ॥सू० ११॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

‘से किं तं ठवणावस्सयं’ अथ किं तत् स्थापनावश्यकम् ? इति शिष्य
प्रश्नः । उत्तरमाह—‘ठवणावस्सयं’ इत्यादि । स्थापनावश्यकम्—स्थाप्यते—क्रियते
इति स्थापना । यथा—जम्बूद्वीपस्य मानचित्रम्, ‘नक्शा’ इति भाषाप्रसिद्धम् ।
आवश्यकमित्यनेन आवश्यकक्रियावान् श्रावकादिरिह गृह्यते । आवश्यकं तद्वतो
रभेदोपचारात् । काष्ठपाषाणादौ कृतं तस्य चित्रं-ज्ञानादिगुणरहिताऽऽकृतिः स्थापना ।

प्रकार से घटित किया गया है यह विषय सूत्र की टीका में टीकाकारने स्पष्ट
किया है । उसे भावार्थ में स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है । ॥सूत्र १०॥

अब सूत्रकार स्थापना आवश्यक का निरूपण करते हैं—

“से किं तं ठवणावस्सयं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं ठवणावस्सयं) शिष्य प्रश्न करता है भइंत । स्था-
पना आवश्यक का क्या स्वरूप है ?—

उत्तरः—(ठवणावस्सयं) स्थापना आवश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है—
जो की जावे उसका नाम स्थापना है । जैसे जंबूद्वीप का नक्शा, अढाई द्वीप
का नक्शा है । आवश्यक शब्द से यह आवश्यक क्रियावाला श्रावक आदि
गृहीत हुआ है । क्यों कि आवश्यक क्रिया और आवश्यक क्रियावाले में अभेद
का उपचार किया गया है । काष्ठपाषाण आदि में किया गया—उकेरा गया—

टीकाभां ज स्पष्टीकरण करेणुं छे. तथी भावार्थभा तेनुं स्पष्टीकरण करवानी जरूरत
रहेती नथी ॥ सू० १० ॥

इवे सूत्रकार स्थापना आवश्यकतुं निरूपणुं करे छे—

“से किं तं ठवणावस्सयं” इत्यादि—

शब्दार्थ—शिष्य गुइने अवे प्रश्न पूछे छे के—(से किं तं ठवणावस्सयं ?)
हे लगवन् ! स्थापना आवश्यकतुं केवुं स्वरूप छे ?

उत्तर—(ठवणावस्सयं) स्थापना आवश्यकतुं स्वरूप आ प्रकारतुं छे. जे
करवामां आवे तेनुं नाम स्थापना छे जेभके जम्बूद्वीपनो नक्शा, अढीद्वीपनो नक्शा,
वगेरे स्थापना आवश्यकरूप छे. आवश्यक पहना प्रयोगद्वारा अहीं आवश्यक क्रिया-
वाला श्रावक वगेरे गृहीत थया छे, कारणुं के आवश्यक क्रिया अने आवश्यक क्रिया-
वालाभां अलेहनो उ पचार करवामां आये छे. काष्ठ पाषाणु आदिभां आवेणवामां—

तत्र श्रावकाद्यभेदोपचारात् स्थापनारूपमावश्यकमित्यर्थः । काष्ठकर्मादिषु आवश्यक क्रियां कुर्वन्तो यत् स्थापनारूपाः श्रावकादयः स्थाप्यन्ते चित्ररूपेण तत् स्थापनावश्यकमिति तात्पर्यम् ! तदाह—जण्णं' इत्यादि । अत्रंवलु काष्ठकर्मणि वा—काष्ठे' समुत्कीर्णे रूपके वा पुस्तकर्मणि वा । पुस्तं वस्त्रं तस्य कर्म—तन्निर्मिता पुत्तलिका तस्मिन् वा । अथवा—'पोत्थकर्मणि' इतिच्छाया, पोत्थं=पुस्तकं, तच्चेह संपुटक रूपम्, तत्र कर्म=तन्मध्ये वर्तित्कालिखितं रूपकं तस्मिन् वा । यद्वा—पोत्थं-पुस्तं=ताडपत्रं, तत्र कर्म—तच्छेदनिष्पन्नं रूपकं तस्मिन् वा । चित्रकर्मणि वा=चित्रलिखिते रूपके वा लेप्यकर्मणि-लेप्यरूपके वा, ग्रन्थिमे वा-ग्रन्थेन निवृत्तं ग्रन्थिमं-नैपुण्यातिशयात् ग्रन्थिसमुदाय निष्पादितं रूपकं तस्मिन् वा । वेष्टिमे वा-वेष्टनेन=पुष्पवेष्टनक्रमेण निष्पन्नं रूपकं वेष्टिमं

उसका चित्र जो कि ज्ञानादि गुणों से सर्वथा शून्य (रहित) होता है. वह स्थापना-निक्षेप है उसमें आवश्यक क्रिया को संपादन करने की आकृतिरूप में श्रावक आदि को का फोटो-पत्थर या काष्ठ के पट्टिये पर बनाया जाता है, सो चित्र यही स्थापनारूप आवश्यक है । इसी विषय को सूत्रकार "जण्णं" इत्यादि पदों द्वारा स्पष्ट करते हैं—(जण्णं कट्टकम्ममे वा' पोत्थकम्ममे वा) जो आकृति काष्ठ में उकेरी जावे उसमें अथवा पुस्त-वस्त्र-कपडे पर चित्रित की जावे उसमें अथवा वस्त्र से पुत्तलिका के रूप में बनाई जावे उस में या पोत्थकर्मणि" पुस्तक के बीच में कुची से रंग आदि भर कर बनाई जावे उसमें अथवा ताड पत्र पर छेद करके बनाई जावे उसमें अथवा (चित्तकम्ममे वा) चित्ररूप में बनाई जावे इसमें (लेप्यकम्ममे वा) अथवा मृत्तिका को गिली करके बनाई जावे उसमें (गंधिमे वा वेष्टिमे वा पूरिमे वा संधाइमे वा) अथवा वस्त्र की गांठों के समुदाय से

केतरवाभां आवेलुं तेनुं चित्र के जे ज्ञानादि गुणोत्थी सर्वथा विहीन होय छे, ते स्थापनानिक्षेप छे. जेभां आवश्यक क्रियाने संपादन करवानी आकृतिरूपे श्रावक आदिकेनां चित्रो पत्थर पर अथवा लाकडानां पाटियां वगेरे पर बनाववाभां आवे छे, तेने जे स्थापना रूप आवश्यक कहे छे. जेज विषयने सूत्रकार "जण्णं" इत्यादि पदो द्वारा स्पष्ट करे छे—

(जण्णं कट्टकम्ममे वा पोत्थकम्ममे वा) जे आकृति लाकडा पर केतरी डाढवाभां आवे तेभां अथवा पुस्त पर (वस्त्र पर) चित्रित करवाभां आवे तेभां, अथवा वस्त्र-माथी हींगलीरूपे बनाववाभां आवे तेभां अथवा-पोत्थकर्मणि" पुस्तकनी अंदर पीछी वडे रगादि पूरिने बनाववाभां आवे तेभां, अथवा (चित्तकम्ममे वा) चित्ररूपे जेनुं सज्जन करवाभां आवे तेभां, (लेप्यकम्ममे वा) लीनी माटीमाथी बनाववाभां आवे तेभां, (गंधिमे वा, वेष्टिमे वा, पूरिमे वा, संधाइमे वा) अथवा वस्त्रनी गांठोना समुदायथी ।

तस्मिन् वा । यद्वा—एकस्य द्वयोर्वहूनां वा वस्त्राणां वेष्टनेन निष्पन्नं यद्रूपं तद्
वेष्टितं तस्मिन् वा । पूरिमे वा—पूरणेन भरणेन निष्पन्नं पूरिमं—ताम्रपित्तलादिमयं
तस्मिन् वा । सङ्घातिमे वा—सङ्घातेन=बहुवस्त्रादिखण्डसमुदायेन निष्पन्नं रूपकं
सङ्घातिमं तस्मिन् वा । अक्षे वा—अक्षश्चन्दनकस्तस्मिन् वा वराटके=कर्पूरके वा
सद्भावस्थापनया वा काष्ठकर्मादिषु आकारवती या स्थापना सा सद्भावस्थापना
श्रावकाद्याकारस्य तत्र सद्भावात् । तथा सद्भावस्थापनया, असद्भावस्थापनया वा
अक्षादिषु अनाकारवती असम्यग्रूपेण स्थापना भवति सा असद्भावस्थापना, श्राव-
काद्याकारस्य तत्रासद्भावात् । तथा वा स्थाप्यमानः एको वा अनेको वा
आवश्यकेति—आवश्यकक्रियायुक्तश्रावकादिः स्थापना स्थाप्यते=क्रियते । तदेतत्
स्थापनाऽऽवश्यकम् । सू. ११॥

जो बनाई जावे उसमें, अथवा एक या दो अथवा अनेक वस्त्रों को वेष्टित
करके जो बनाई जावे उसमें, अथवा पुष्पों को आकृति के रूप में सजा सजा
करके जो आकार बनाया जावे उसमें अथवा पित्तलादि द्रव्यों को सांचे में ढार
कर जो आकृति बनाई जावे उसमें अथवा अनेक वस्त्रों के खण्डों से—घञ्जियों
से—जो रूप बनाया जावे उसमें (अखेवा) अथवा पाशे में (वराडएवा) अथवा
कोडी में (एगो वा अणेगो वा) एक अथवा अनेक आवश्यक क्रिया युक्त एक
अनेक श्रावक आदि की (सम्भावठवणा असम्भावठवणा) की गई जो
सद्भावस्थापना अथवा असद्भावस्थापना है (आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ)
वह आवश्यक की स्थापना है । (से तं ठवणावस्सयं) यह स्थापना आवश्यक
का स्वरूप है । ॥ सूत्र ११॥

अनाववासां आवे तेसां, अथवा अेक, अे अथवा अनेक वस्त्रोने वेष्टत करीने अना-
ववासां आवे तेसां, अथवा पुष्पोनी आकृतिइये सलवट करी करीने अे आकार
अनाववासां आवे तेसां, अथवा पित्तलादि द्रव्योने थीणामां ढाणीने अे आकार
अनाववासां आवे तेसां अथवा आवे तेसां, अथवा अनेक वस्त्रोना लीरांअो (चिंहर-
उंअो)मांथी अे आकृति अनाववासां आवे तेसां (अखे वा) अथवा पाशाअोमां
अथवा (वराडए वा) कोडीमां (एगो वा अणेगो वा) अेक अथवा अनेक आवश्यक
क्रिया युक्त अेक-अनेक श्रावक आदिवडे (सम्भावठवणा असम्भावठवणा) करवासां
आवेली अे सहलावस्थापना अथवा असहलाव स्थापना अे. (आवस्सएत्ति ठवणा
ठविज्जइ) तेतुं नाम आवश्यकनी स्थापना अे. (से तं ठवणावस्सयं) अा प्रकारतुं
आ स्थापनाआवश्यकतुं स्वरूप अे. ॥ सू० ११ ॥

नामस्थापनयोर्भेदमाह---

मूलम्—नामद्वुवणाणं को पइविसेसो ? णामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होजा आवकहिया वा ॥सू० १२॥

छाया—नामस्थापनयोः कः प्रतिविशेषः ? नाम यावत्कथिकम्, स्थापना इत्वरिका वा भवेत्, यावत्कथिका वा । ॥सू० १२॥

टीका—‘नामद्वुवणाणं’ इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति—नामस्थापनयोः कः प्रतिविशेषः ? नामस्थापनयो को विशेषः ? न कोऽपि विशेषो दृश्यते । यथा भावावश्यकस्वरूपशून्ये गोपालदारकादौ आवश्यकैति नाम क्रियते, तथैव स्थापनाऽपि भावावश्यकस्वरूपशून्ये काष्ठपुस्तकादौ आवश्यकशास्त्रस्य तदाकाररूपतया अतदाकाररूपतया वा स्थापना स्थाप्यते अतो भावशून्ये द्रव्यमात्रे क्रियमाणत्वादनयोर्नास्ति कश्चिद् विशेष इति प्रष्टुरा-

अत्र सूत्रकार नाम और स्थापना निक्षेप में क्या अन्तर है—इस बात को प्रकट करते हैं—“नामद्वुवणाणं” इत्यादि । ॥सूत्र १२॥

शब्दार्थ—(हे भदंत ! नाम और स्थापना का क्या भेद है ? इस पूर्वोक्त कथन से तो इन दोनों में काह अन्तर नहीं ज्ञात होता है ? कारण—

जिस प्रकार भावावश्यक के स्वरूप से शून्य गोपालदारक आदि में आवश्यक ऐसा नामनिक्षेप किया जाता है—उसी प्रकार से भावावश्यक के स्वरूप से शून्य काष्ठ पुस्तक आदि में आवश्यकशास्त्र की तदाकाररूप से या अतदाकाररूप से स्थापनानिक्षेप किया जाता है । अतः भाव से शून्य द्रव्यमात्र में क्रियमाण होने के कारण इन दोनों में कोई विशेषता लक्षित नहीं होती है—इस प्रकार का अभिप्राय पूछनेवाले शिष्य का है ।

इत्थे सूत्रकार नाम निक्षेप अने स्थापना निक्षेप वच्ये शो तद्भावत छे, ते प्रकट करे छे. “नामद्वुवणाणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—शिष्य शुरुने अयेवो प्रश्न पूछे छे के “हे भगवन् ! नाम अने स्थापना वच्ये शो तद्भावत छे ? पूर्वोक्त कथन प्रमाणे तो ते अन्ने वच्ये कोछ लेद न देणातो नथी, कारण के.....जेम भावावश्यकना स्वरूपथी रहित गोवाणपुत्र आदिमां “आवश्यक” अयेवो नाम निक्षेप करवामां आवे छे, अजे प्रमाणे भावावश्यकना स्वरूपथी विहीन, काष्ठ, पुस्तक आदिमां आवश्यकशास्त्रनी तदाकाररूपे अथवा अतदाकार रूपे स्थापना रूप निक्षेप करवामां आवे छे. तेथी भावथी विहीन द्रव्य मात्रमां क्रियमाणे होवाने कारणे अे अन्ने वच्ये कोछ पणु प्रकारने लेद देणातो नथी. आ प्रकारनी प्रश्न करनार शिष्यनी मान्यता अडीं प्रकट करे छे.

शब्दः उत्तरयति—‘णामं आवकहियं’ इत्यादि । नाम यावत्कथिकम्—स्वाश्रयद्रव्यस्य अस्तित्वकथां यावद् नाम अवतिष्ठते, नाग्न आश्रयद्रव्यं यावत्तिष्ठति तावन्नामापि तिष्ठतीति भावः । स्थापना तु इत्वरिका=स्वल्पकालावस्थायिनी वा भवेत् यावत्कथिका वा भवेत् । काष्ठकर्मादौ आवश्यकशास्त्रस्य तदाकाररूपा अतदाकाररूपा स्थापना यावत्कथिका भवति, अक्षादौ तु सा इत्वरिका भवतीत्यर्थः अयं भावः—काचित् स्थापना स्वाश्रयद्रव्यस्य सद्भावेऽपि मध्यकाल एव निव-

उत्तर—(णामं आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा) नाम यावत्कथिक होता है और स्थापना इत्वरिक तथा यावत्कथिक दोनों प्रकार का होता है ।

स्वाश्रय द्रव्य के अस्तित्व काल तक नाम रहता है—अर्थात्—जिसका वह नाम है वह जब तक मौजूद रहता है तब तक उसका वह नाम विद्यमान रहता है—इसका नाम यावत्कथिक है परन्तु स्थापना जो है वह स्वल्प काल तक भी रहती है और यावत्कथिक भी होती है—काष्ठ कर्म आदि में आवश्यकशास्त्र की तदाकाररूप अथवा अतदाकाररूपकृत स्थापना यावत्कथिक होती है—स्वाश्रयद्रव्य की स्थिति तक रहती है । तथा अक्ष—(चौकोर पाशा) आदि में कृत अतदाकार स्थापना स्वल्प काल तक रहती है । तात्पर्य यह है कि कोई स्थापना स्वाश्रय द्रव्य के सद्भाव में भी बीच ही में समाप्त हो जाया करती है और कोई स्थापना ऐसी होती है जो अपने आश्रयभूत द्रव्य की

उत्तर—(णामं आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होज्जा, आवकहिया वा) नाम यावत्कथित होय छे, परन्तु स्थापना इत्वरिक (स्वल्पकाल सुधी न रहनेपर) अने यावत्कथित, अने अने प्रकारनी होय छे, स्वाश्रयभूत द्रव्यना अस्तित्वकाल सुधी नाम रहे छे. अटवे के जेतुं ते नाम राखवामां आंयुं छे ते वस्तु अथवा व्यक्तिनुं अस्तित्व न्यां सुधी रहे छे. त्यां सुधी न ते नामनुं अस्तित्व रहे छे. आ रीते नामने यावत्कथित कहेवामां आंयुं छे. परन्तु स्थापना तो स्वल्पकाल सुधी पणु रहे छे अने यावत्कथित (वस्तुनुं अस्तित्व रहे अटला भाटे काल सुधी टकनारी) पणु होई शके छे.

जेभके काष्ठ कर्म आदिमां आवश्यकशास्त्रनी तदाकाररूप अथवा अतदाकाररूप करेली स्थापना यावत्कथित होय छे—स्वाश्रयभूत द्रव्यनुं न्यां सुधी अस्तित्व रहे त्यां सुधी न ते स्थापनानुं अस्तित्व रहे छे, तथा अक्ष (पाशा) आदिमां करेली अतदाकार स्थापना णहु न ओछा काल सुधी रहे छे. आ कथननुं तात्पर्य अे छे के—कोई स्थापनना स्वाश्रयभूत द्रव्यनुं अस्तित्व रहेवा छता पणु वञ्चेथी न

तन्ते, काचित्तु तत्सत्तां यावदवतिष्ठते, इति एवं च-नामस्थापनयोर्भावशून्यत्वे-
नाधारसाम्येऽपि भेदः स्व स्वावस्थानकाल कृत एव भगवता प्रदर्शितः यद्यपि गोपाल-
दारकादौ विद्यमानेऽपि कदाचिदनेकनामपरिवर्तनं लोके कञ्चीद्दृश्यते, तथाच
कालकृतोऽपि भेदो नास्ति, तथापि-वहुशः स्थले नाम्नो यावत्काथिकत्वमेव दृश्यते,
नाम्नः परावर्तनं तु क्वचिद्विरलतद्योपलभ्यते । अतोऽल्पस्थलव्यापित्वेन नाम्न इत्व-
रिक्ता भगवता न विवक्षिता । नाम्नोऽल्पकालिकताकल्पने तूत्सृजप्ररूपणा-
पत्तिरिति बोध्यम् ।

सत्तां काल तक रहती है । इस प्रकार नाम और स्थापना निक्षेप में भावशून्यता
की अपेक्षा आधार की समानता होने पर भी अपने २ अवस्थान काल की
अपेक्षा कृत ही भेद है ऐसा भगवान ने प्रदर्शित किया है । यद्यपि गोपाल-
दारक आदि में उन्ही विद्यमानता रहने पर भी कभी २ अनेक नामों का
परिवर्तन होता हुआ लोक में कहीं २ देखा जाता है-इस अपेक्षा कालकृत
भेद सर्वथा नहीं आता है-तो भी अनेक स्थलों में नाम में यात्कथिकता
देखी जाती है । इत्वरिकता नहीं । यह तो केवल विरलतारूप में ही कहीं २
देखी जाती है । इसलिये नाम की इत्वरिकता अल्पस्थल व्यापी होने के कारण
उस में भगवान् ने विवक्षित नहीं की है । यदि नाम में अल्पकालिकतारूप
इत्वरिकता कल्पित की जावे तो उत्सृज प्ररूपणा की आपत्ति आती है ऐसा
जानना चाहिये ।

गमे त्पारे समाप्त थथ जती डोय छे, त्पारे डोय स्थापना जेवी डोय छे डे जे
पोताना आश्रयभूत द्रव्यनुं अस्तित्व जयां सुधी रहे त्यां मोजूद रहे छे.

आ प्रभाण्णे नाम अने स्थापना निक्षेपमां सावशून्यतानी अपेक्षाज्जे आधारनी
समानता डोवा छतां पणु पोतपोताना अवस्थानकाणनी अपेक्षाज्जे ज लेह रहेडो
छे, जेवुं लगवाने कहुं छे.

जे डे गोवाणपुत्र आदिनुं अस्तित्व रहेवा छतां पणु डोय डोय वार तेमना
नामोमां परिवर्तन थया करतुं डोय छे, जेवुं पणु जेवामां आवे छे अइं. आ
दृष्टिज्जे विचारवामां आवे तो जेवी परिस्थितिमां तो नाममां यावत्कथिकता रहेती
नथी, परन्तु आवुं लाग्जे ज गने छे. अनेक वस्तुज्जे अथवा पदार्थोमां तो नामनी
यावत्कथिकता ज जेवा भणे छे-धत्वरिकता (अल्प स्थायित्व) देभाती नथी. नामनी
अपेक्षाज्जे धत्वरिकता तो डेवण विरलता इपे ज डोय डोय वस्तुमां जेवामां आवे
छे. आ रीते नामनी धत्वरिकता अल्प स्थलव्यापी डोवाथी लगवाने अडीं तेनी
विवक्षा करी नथी. जे नाममां अल्पकालिकता इप आ धत्वरिकताने स्वीकारवामां

यत्तु—उपलक्षणमात्रं चेदं कालभेदेनैतयामेदकथनम्—अपरस्यापि बहुप्रकार-
भेदस्य सम्भवात्, इत्युक्तं,

तदुत्सृत्रप्ररूपणम्—यथोत्सृत्रप्ररूपणमिषा—नामनिक्षेपे इत्वरिकतायाः क्वचिन्
संभवेऽपि भगवताऽनुक्तत्वादुपलक्षणमिति न स्वीकृतं; तथैव स्थापनायां काञ्च-
तिरिक्तस्य भेदहेतोः कल्पनेऽप्युत्सृत्रप्ररूपणं प्रसज्येत कालान्धकृतभेदस्य भगवता-
ऽनुक्तत्वात् । एतेन—यत् कैश्चिदुक्तं यथा—प्रतिमाख्यस्थापनां—दर्शनात् भावः समुल्ल-

जो कोई ऐसा कहते हैं कि” इस प्रकार के काल भेद से नामनिक्षेप
और स्थापननिक्षेप में जो भेद का कथन किया गया है वह उपलक्षण मात्र
है क्योंकि इससे और भी अनेक प्रकारों को लेकर इन दोनों में भेद संभवित
होता है “सो उनका ऐसा कथन करना उत्सृत्र प्ररूपणा है—आगम से विरुद्ध
है— देखो जैसे नाम निक्षेप में क्वचित् इत्वरिकता का संभव होने पर भी
भगवान् ने इसे उत्सृत्रप्ररूपणा के अर्थ से उस में नहीं कहा है—वहां तो
यावत्कथितता ही कही है और इसी कारण से इत्वरिकता को उपलक्षणरूप से
स्वीकार नहीं किया है—उसी तरह स्थापना में काल से अतिरिक्त और किसी
बात को भेद का हेतु स्वीकार किया जायगा तो उसमें भी उत्सृत्र प्ररूपणा
की प्रसक्तिमाननी पड़ेगी । क्योंकि काल के सिवाय अन्य कृत भेद भगवान्
ने उसमें कहा नहीं है । इसी तरह से जो कोई और भी ऐसा कहते हैं कि” प्रतिमाख्य

आवे तो उत्सृत्रप्ररूपणानो दोष लागे छे—अटले के अ प्रकारनी प्ररूपणा करवी अ
सृत्र विरुद्धनी सिद्धान्तोथी विरुद्धनी प्ररूपणा करी गणाय, अम समञ्जुं.

अही कोछ अत्री हलील करे के आ प्रकारना काणलेदनी अपेक्षाअे नामनिक्षेप
अने स्थापनानिक्षेप अये अे लेद प्रकट करवामां आंये छे, ते तो उपलक्षण
मात्र अ छे कारण के आ सिवाय भीअ अनेक रीते पणु ते अने अये लेद
संभव शके छे. तो आ प्रकारनुं तेनुं अे कथन छे तेने उत्सृत्र प्ररूपणा इय अ
गणु शकय, कारण के ते प्रकारनी मान्यता आगमनी विरुद्ध अय छे. अम नाम-
निक्षेपमां कोछ कोछ प्रसंगे इत्वरिकता (अदपकालिनता)नो संभव हुवा छतां पणु
भगवाने उत्सृत्र प्ररूपणाना लयथी तेने उल्लेख कयो नथी—त्यां तो मात्र यावत्कथितता
अ प्रदर्शित करवामां आवी छे अने अेअ कारणे इत्वरिकतानो उपलक्षणरूपे स्वीकार
करवामां आंये नथी, अेअ प्रमाणे स्थापनामां पणु काण सिवायनी कोछ पणु
आगतने लेद कारणरूपे स्वीकारवामां आवे तो अे प्रकारनी प्ररूपणामां पणु
उत्सृत्रप्ररूपणानो अ प्रसंग प्राप्त थसे, कारण के स्थापना निक्षेपमां काणकृत लेद
सिवायनो कोछ पणु लेद भगवाने उछो नथी.

સતિ નૈવ નામશ્ચ ઘ્નમાત્રાદિતિ નામ સ્થાપનઘોર્ભેદઃ, યથા ચન્દ્રાદેઃ પ્રતિમારૂપ-
સ્થાપનાર્થાં લોકસ્યોપયાચિતેચ્છા પૂજાપ્રવૃત્તિસમીહિતલાભાદયો દ્વયન્તે, નૈવ
નામેન્દ્રાદૌ, ઇત્યપિ તઘોર્ભેદઃ । એવમન્યદપિ વાચ્ય” મિતિ તદુત્ત્વપ્રરૂપણાજનિ-
તાનન્તસંસારજનકમ્ । આગમે યદિદમુપલભ્યતે—“તહારૂવાણં અરહંતાણં નામગોપ-
સવળયાએ મહાફલં” । ઇતિ । તત્ર નાસ્તિ નામનિક્ષેપસ્ય વિષયઃ । “અરહંતાણ
ભગવંતાણં” ઇત્યુત્તયા તસ્મિન્નર્થે પ્રયુક્તસ્ય નામ્ન એવ શ્રવણેન મહાફલસંભવાત્

સ્થાપના કે દેખને સે જૈસે માં ાં મેં ઉલ્લાસ હોતા હૈ—જૈસા ભાવ ઉત્પન્ન હોતે હૈ વૈસા
ભાવો મેં ઉલ્લાસ—ઉસ તરહ કા પરિણામ—ઉસ નામ માત્ર કે શ્રમણ સે નહીં હોતા
હૈ—યહી નામ ઓર સ્થાપનાનિક્ષેપ મેં ભેદ હૈ ।— દેખો—જબ ઇન્દ્રકી પ્રતિમા
રૂપ સે સ્થાપના કી જાતી હૈ તો લોગ ઉસકે સમક્ષ વિવિધ પ્રકાર કી
યાચના કરતે હૈ, ઉસકી પૂજા કરતે હૈ, ઓર અપને સમીહિત કી પ્રાપ્તિ કરલે-
તે હૈ, ઇત્યાદિ સબ બાતે દેખી જાતી હૈ—નામ ઇન્દ્ર આદિ મેં ઇસ પ્રકાર કી
બાતે નહીં દેખી જાતી—અતઃ ઇસ તરહ સે મી ઇન ઘોનોં નિક્ષેપોં મેં ભેદ હૈ—
તથા ઓર મી ઇસી તરહ સે ભેદ કે હેતુ વાચ્ય હૈ” સો એસા યહ વક્તવ્ય
મા આગમ કે વિરુદ્ધ હૈ ઓર ઇસ તરહ કી પ્રરૂપણા કરના અનન્ત સંસાર
કા વઢાને વાલા હૈ । કિ “તથારૂપવાલે અરહંત ભગવંતોં કે નામ ઓર ગોત્ર કે સુને
સે મહાફલ હોતા હૈ” સો યહ કથન નામનિક્ષેપ કા વિષય નહીં હૈ । “અરહંતા
ણં ભગવંતાણં” ક્યોંકિ ઇસ ઉક્તિ સે તથારૂપ ભાવઅર્હ ત મેં પ્રયુક્ત નામ કે

વળી કોઇ કોઇ માણસો એવું પણ કહે છે કે.....“પ્રતિમારૂપ સ્થાપનાને
નિહાળવાથી ભાવોનો જેવો ઉલ્લાસ અનુભવવામાં આવે છે—જેવો ઉલ્લાસ ઉત્પન્ન થાય
છે, એવો ભાવોનો ઉલ્લાસ (એ પ્રકારનું મન:પરિણામ)—તે નામ માત્રના શ્રવણથી
ઉત્પન્ન થતો નથી. નામનિક્ષેપ અને સ્થાપનાનિક્ષેપ વચ્ચે આ પ્રકારનો જ તફાવત
છે. જેમકે ઇન્દ્રની પ્રતિમાની સ્થાપના કરવામાં આવી હોય તો લોકો તેની સમક્ષ
વિવિધ પ્રકારની યાચના કરે છે, તેની પૂજા કરે છે અને પોતાની ઇચ્છિત વસ્તુઓની
પ્રાપ્તિ કરી લે છે, પરંતુ નામ ઇન્દ્ર આદિમાં એવું જોવામાં આવતું નથી. આ રીતે
તે ધન્ને પ્રકારના નિક્ષેપોમાં આ પ્રકારનો ભેદ પણ રહેલો છે એટલું જ નહીં પણ
તે ધન્ને નિક્ષેપો વચ્ચે રહેલો ભેદ દર્શાવતા બીજાં કેટલાક કારણોનો પણ સદ્ભાવ છે.

તો આ પ્રકારનું કથન પણ આગમ વિરુદ્ધનું કથન હોવાથી ઉત્સૂત્રકથન જ
ગણાય છે. આ પ્રકારની આગમ વિરુદ્ધની પ્રરૂપણા કરનાર વ્યક્તિ અનન્ત સંસારની
બંધનક બને છે. આગમમાં આ પ્રકારનું જે કથન આવે છે કે.....

“તથારૂપ અહંત ભગવંતોના નામ અને ગોત્રનું શ્રવણ કરવાથી મહાફલની
પ્રાપ્તિ થાય છે,” આ કથન નામનિક્ષેપના વિષયક નથી. કારણકે “અરહંતાણં ભગ-

गोपालदारकादौ प्रयुक्तस्य नाम्नः श्रवणेन तु गोपालदारकाद्यर्थस्यैव बोधादात्म-
परिणामशुद्धिहेतुत्वं तस्य नास्तीति । नामनिक्षेपस्थले भगवतोऽर्हतः स्मरणा-
संभवः, तस्य भावशून्यत्वात्, अत्र तु नामगोत्रात् भगवदर्हतः सम्बन्धं पठ्यन्त-
पदप्रयोगादेव दर्शयता भगवता नामनिक्षेपो न विवक्षितः । भावजिनबोध-

ही श्रवण से महाफल होना बतलाया गया है । केवल नाम श्रवण से नहीं ।
नहीं तो गोपालदारक में प्रयुक्त अर्हत नाम के श्रवण से भी महाफल की
प्राप्ति हो जानी चाहिये । वहाँ तो ऐसा होता नहीं
है । केवल उस नाम से गोपालदारकरूप अर्थ की ही प्रतीति होती है ।
आत्मपरिणामों की शुद्धिरूप महाफल उससे प्राप्त नहीं होता है । अतः यह
मानना चाहिये कि भावरूप अर्हत नाम के ही श्रवण से जीवों को आत्म-
परिणामों की शुद्धिरूप फल प्राप्त होता है । क्यों कि वही उसका हेतु है ।
साधारण नामनिक्षेप में यह हेतुता नहीं आती है । यदि कोई ऐसा कहे-
कि अर्हत नामनिक्षेप भले ही आत्मपरिणामों की शुद्धि का हेतु न हो तो
न सही परन्तु उसके श्रावण से भगवान् अर्हत का तो स्मरण हो जाता है
सो ऐसा कहना भी उचित नहीं है क्यों कि नामनिक्षेप स्थल में भगवान्
अर्हत का, उससे भावनिक्षेप से शून्य होने के कारण स्मरण हो आना असं-

वन्तान्" इत्यादि कथन द्वारा ये गतावयामां आच्यु छे के तथाइप लावइप अहं-
तमां प्रयुक्त नामना न श्रवणुथी मडाइलनी प्राप्ति थाय छे-केवण नाम नामना न
श्रवणुथी मडाइलनी प्राप्ति थती नथी. नही तो केछ पणु व्यकितने माटे (हाभला
तरीके गोवाणना पुत्रने माटे) 'अहंत' आ नामने उपयोग करवामां आवे, तो
तेना नामनुं श्रवणु करवथी पणु मडाइलनी प्राप्ति थछ नवी जेधये । पणु अही
तो अेवुं अनतुं नथी. ते नामद्वारा मात्र ते गोवाणपुत्र इप अर्थनी न प्रतीति
थाय छे. आत्मपरिणामोनी शुद्धिइप मडाइलनी प्राप्ति तेना नाम श्रवणुथी थती नथी.
तेथी अेवुं मानवुं जेधये के लावइप अहंत नामना न श्रवणुथी एवोने आत्म-
परिणामोनी शुद्धिइप इणनी प्राप्ति थाय छे, कारणु के अेन तेना हेतु छे. साधारण
नामनिक्षेपमां आ हेतुता संलनी शकती नथी.

वणी केछ माणुस अही अेची हलील करे के अहंत नामनिक्षेप लवे आत्म
परिणामोनी शुद्धिमां कारणुभूत न थतो होय, पणु तेनाश्रवणुथी लगवान अहंतना
नामनुं स्मरणु तो थछ नय छे, अेटहुं तो आपे मानवुं न पडथे ।

तो आ प्रमाणे कडेवुं ते पणु उचित नथी, कारणु के लावनिक्षेपथी रहित
अेवा नामनिक्षेपथी अहंत लगवाननुं स्मरणु थवानी वात असंलवित छे.

कस्य नाम्न एव श्रवणेन महाफलसंभवः । एवं स्थापनापि भावरूपार्थशून्या, स्थापनया भावरूपार्थस्य नास्ति कोऽपि सम्बन्धः । भावजिनशरीरवर्तिनी या ऽऽकृतिरासीद् तस्या आश्रयाश्रयिभावरूपसम्बन्धो भावजिनेन सह तदानीं भावो-
ह्लासोऽपि कस्यचित् संजातः, तथा रुक्त्या तामाकृतिं रमरतो जनस्य भावोऽह्लासः संभवतु, तदाऽऽकृतेर्भावजिनेन संबन्धात्, परंतु-स्थापनाया आश्रयाश्रयिभाव-
सम्बन्धो नारितभावजिनेन सह । भावजिनात्मनरतत्रावाहनं स्थापनं तु जिनाज्ञावाह्यं

भव है । इसलिये “तहारूपाणं अरहंताणं” इत्यादि पाठ में नाम और गोत्र इन दोनों के साथ भगवान् अर्हंत के संबन्ध को पृष्ठयन्तपद के प्रयोग से प्रकट करनेवाले सूत्रकार ने नामनिक्षेप की विवक्षा नहीं की है । किन्तु भाव-
निक्षेप जिनके बोधक नाम की विवक्षा की है । क्योंकि उसी नाम के श्रवण से श्रोता को महाफल की प्राप्ति होना संभवित है । इसी तरह से स्थापना-
भी भावरूप अर्थ से शून्य होती है । क्यों कि उसका भावनिक्षेपरूप अर्थ के साथ कोई संबन्ध ही नहीं है । यदि कहा जावे कि पहिले भाव जिनके अस्तित्व काल में जो उनके शरीर की आकृति थी—वह आकृति ही स्थापना
निक्षेप में विद्यमान रहती है—इसलिये उससे आश्रयाश्रयी भावरूप संबन्ध का बोध हो जाता है—सो यह कथन भी ठीक नहीं है—क्योंकि स्थापनानिक्षेप में आश्रयी ही नहीं हैं तब उससे भावजिन के साथ आश्रयाश्रयी भावरूप संबन्ध ज्ञात कैसे हो सकता है ? यह तो भावजिनके साथ वे जब थे तब

तेथी “तहारूपाणं अरहंताणं” इत्यादि पाठमां नाम अने गोत्र अने जनेनी साथे लगवान् अर्हुंतना संभंधने छडी विलाकितना पहना प्रयोग द्वारा प्रकट करना सूत्रकारे नामनिक्षेपनी विवक्षा करी नथी, परन्तु भावनिक्षेप जिनना बोधक अने नामनी विवक्षा करी छे. कारणु के अने नामना श्रवणुथी श्रोताने महाफलनी प्राप्ति थवानुं संभवी शके छे. अने प्रमाणे स्थापना पणु भावरूप अर्थथी विडीन न डाय छे, कारणु के भावनिक्षेपरूप अर्थनी साथे तेना केध संभंध न डेतो नथी.

जे अर्हुं अनी दलील करवामां आवे के पहिलां भावजिनना अस्तित्वकालमां जे तेमना शरीरनी आकृति हुती, अने आकृति न स्थापनानिक्षेपमां विद्यमान रहे छे, तेथी तेना द्वारा आश्रयाश्रयी भावरूप संभंधने बोध थध नय छे, तो अने प्रकारनी मान्यता पणु उचित नथी, कारणु के वर्तमान काले स्थापना निक्षेपमां जे आश्रयीने न सहभाव न डाय तो तेना द्वारा भावजिननी साथे आश्रयाश्रयी भावरूप संभंधने बोध न डेवी रीते थध शके । भावजिननी साथे जयारे ते

प्रवचनविरुद्धं कर्तुमशक्यं, कथं तर्हि-भावजिनसम्बन्धाभावे प्रतिमा भावजिनं तद्गुणं वा स्मरयितुं शक्ता भवेत् । सर्वथा कुप्रावचनिकद्रव्यावश्यकवत् प्रतिमापूजनं कुर्वन्तःकारयन्तश्च मिथ्यात्वं प्राप्नुवन्ति न तु सम्भ्यक्त्वमिति । इति स्थापनावश्यकम् ॥सू० १२॥

था-। हां यह हो सकता है कि जिस प्रकार भावजिन का दर्शन करनेवाले किसी व्यक्ति को भावोल्लास हो आता है, उसी तरह भक्ति से उनकी उस आकृति का स्मरण करनेवाले जन को भावोल्लास हो आवे-क्यों कि उस आकृति का भावजिन के साथ संबन्ध है यदि भावजिनके साथ उस आकृति को संबन्ध नहीं होवे तो फिर प्रतिमा भावजनक और उनके गुणों का स्मरण कराने में समर्थ कैसे हो सकती है ? परन्तु स्थापना का भावजिन के साथ आश्रयाश्रयी भावरूप संबन्ध तो कोई है नहीं-कि जिस से उससे इसका बोध हो जावे । भावजिन की आत्मा का उसमें आह्वान करना, स्थापन करना यह सब तो चिनाज्ञा से बिल्कुल बाहिर की बात है । ऐसी प्रवचन विरुद्ध बात को करना अशक्य है इसलिये सर्वथा कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक की तरह प्रतिमा पूजन करने और करानेवाले मिथ्यादृष्टिपने को प्राप्त होते हैं-सम्पत्त्व को नहीं । इस तरह स्थापनावश्यक का यह स्वरूप है । भावार्थ इसका स्पष्ट है । ॥सूत्र १२॥

आकृति विद्यमान हुती त्यारे न आ प्रकारने संबंध अस्तित्व धरावतो हुतो. डा, जेवुं स लवी शके छे के जे प्रकारे भावजिनना दर्शन करनार केछ व्यक्तित्वां भावोद्भासने उमणके आवी जय छे, जेज प्रमाणे लकिनभावपूर्वक ते आकृतिनुं स्मरण करनार व्यक्तित्वां पणु भावोद्भासने उमणके आवी जय थरो, कारणु के आकृतिने भावजिननी साथे संबंध छे. जे भावजिननी साथे ते आकृतिने संबंध न होय, तो ते प्रतिमा भावजनक अने अनेक गुणोनुं स्मरण कराववाने समर्थ केवी रीते जनी शके । परन्तु स्थापनाने भावजिननी साथे आश्रयाश्रयी भावरूप केछ संबंध तो छे न नही. के जेना द्वारा तेना बोध थछ जय, भावजिनना आत्मानुं तेमां आवाहन करवुं-स्थापन करवु, जे तो, जिनाज्ञानी विरुद्धनुं कृत्य गणाय. जेवी प्रवचनविरुद्धनी बात करवी जेछजे नही. तेथी सर्वथा कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यकनी जेभ प्रतिमापूजन करनार अने करावनार मिथ्यादृष्टियुक्त, जनी जय छे अने सम्भ्यक्त्वथी रहित न रहे छे, स्थापनावश्यकतुं आ प्रकारनुं स्वइ. छे. तेना भावार्थ स्पष्ट होवार्थी विशेष स्पष्टीकरणुं नइर रहेती नथी. ॥सू० १२॥

इदानीं द्रव्यावश्यकं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं द्वावस्सयं ? द्वावस्सयं दुविहं पणत्तं

तं जहा—आगमओ य नो आगमओ य ॥ सू० १३ ॥

छाया—अथ किं तद् द्रव्यावश्यकम् ? द्रव्यावश्यकं द्विविधं प्रज्ञप्तम्,
तत्रथा—आगतश्च नो आगतश्च ॥ सू० १३ ॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति—अथ १क तद् द्रव्यावश्यकम् ? उत्तरयति—‘द्वावस्सयं’
इत्यादि । द्रव्यावश्यकम्—इवति=गच्छति तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम्—विव-
क्षितयोस्तीतभविष्यद् भावधोःकारणम्, अनुभूतविवक्षितभावमनुभविष्यद्विवक्षित-
भावं वा वस्त्वित्यर्थः । द्रव्यलक्षणं च सामान्यत इदं बोध्यम् ।

अब सूत्रकार द्रव्यावश्यक का निरूपण करते हैं—

‘से किं तं द्वावस्सयं’ इत्यादि ॥ सूत्र १३ ॥

शब्दार्थ—(अथ) शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! (किं तं द्वावस्सयं)

पूर्व प्रक्रान्त (पूर्व प्रस्तुत विषय) द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(द्वावस्सयं दुविहं पणत्तं) द्रव्यावश्यक दो प्रकार का है जो उन २ पर्यायों को प्राप्त करता है उसका नाम द्रव्य है अर्थात् जो विवक्षित अतीत अनागत भाव का कारण हो वह द्रव्यनिक्षेप है । जैसे राजगद्दी से पृथक् किये हुए राजा को नरेश कहना । तथा जो आगे राजा होनेवाला है वर्तमानमें वह राजा की पर्याय में नहीं है उसे अभी से राजा कहना यह भविष्यत् कालीन पर्याय की अपेक्षा द्रव्यनिक्षेप है । जैसे राजा का पुत्र

इसे सूत्रकार द्रव्यावश्यकत्वं निरूपण करे छे—

‘से किं तं द्वावस्सयं’ इत्यादि—

शब्दार्थ—शिष्य गुरुने अवे प्रश्न पूछे छे के....

‘से किं तं द्वावस्सयं?’ छे लगवन् । पूर्व प्रक्रान्त (पूर्व प्रस्तुत विषय)

द्रव्यावश्यकत्वं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(द्वावस्सयं दुविहं पणत्तं) द्रव्यावश्यक-के प्रकारने क्खो छे. ते ते पर्यायिने जे प्राप्त करतुं रहै छे तेत्तुं नाम द्रव्य छे. अटवे के जे विवक्षित अतीत (भूत कालिन), अनागत (भविष्यकालिन) लावतुं कारणुं होय छे, ते द्रव्य-निक्षेप छे. जेभके राजगद्दीने जेनी पासै त्याग कराववामां आये छे तेने नरेश कहवो ते भूतकालिन पर्यायनी अपेक्षाअे द्रव्यनिक्षेप छे, तथा वर्तमान काले जे राजा नथी. पणुं भविष्यमां राजा बनवानो छे तेने अत्यारथी जे राजा कहवो ते भविष्यकालिन-पर्यायनी अपेक्षाअे द्रव्यनिक्षेप छे. जेभके राजा पुत्रने राजा कहै

भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके ।

तद् द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम् । इति ।

व्याख्या—लोके हि भूतस्य=अतीतस्य भाविनः=भविष्यतो वा भावस्य तु रत्कारणं भवति, तत् तत्त्वज्ञैः द्रव्यं-कथितम् । तद्द्रव्यं सचेतनाचेतनं-सचेतनं=पुरुषादिकम्, अचेतनं=काष्ठादिकं च भवति । अयं भावः—यः पूर्वं स्वर्गादिष्विन्द्रादिर्भूत्वा इदानीं मनुष्यादित्वेन परिणतः स जीवोऽतीतस्य इन्द्रादिपर्यायस्य कारणत्वात् साम्प्रतमपि द्रव्यत इन्द्रादिरुच्यते । यथा-अमात्यादि पदात् प्रच्युतोऽपि अमात्यादिरुच्यते । अपि च अग्रेऽपि य इन्द्रादित्वेनोत्पत्त्यते, स इदानीमपि भविष्यदिन्द्रादिपदपर्यायकारण-

राजा कहा जाता है द्रव्य निक्षेप में विवक्षितपर्याय को जा अनुभवित कर चुकी है ऐसी वस्तु तथा विवक्षित पर्याय को जो भविष्यत्काल में अनुभव करेगा ऐसी वस्तु के विषयरूप से परिगणित हुई है यही बात सामान्यरूप से कथित इस द्रव्य के लक्षण में इस प्रकार से जानने के लिये वही गई है—लोक में तत्त्वज्ञों ने भूतपर्याय का अथवा भविष्यत् पर्याय का जो कारण होता है वह द्रव्य है । ऐसा कहा है । वह द्रव्य सचेतन भी है और अचेतन भी है । इस का भाव इस प्रकार से जानना चाहिये—जैसे कोई जीव पहिले स्वर्ग आदि में इन्द्र आदि की पर्याय में था और वहाँ से चव कर मनुष्य पर्याय में आगया । फिर भी उसे अतीत इन्द्रादि पर्याय का कारण होने से मनुष्य पर्याय में भी अमात्यपद से रहित हुए व्यक्तिको अमात्य कहने की तरह इन्द्र कहना यह द्रव्य निक्षेप है । इसी तरह जो जीव भविष्य में

वामां आवे छे द्रव्यनिक्षेपमां विवक्षित (अमुक) पर्यायने ने अनुभवित करी चुकी छे ऐसी वस्तु तथा विवक्षित पर्यायने ने भविष्यत्कालमां अनुभव करे, ऐसी वस्तु तेना विषयरूपे परिगणित थछ छे. ओज वात सामान्यरूपे कथित द्रव्यना लक्षणमां आ प्रकारे लक्षणवाने. माटे गताववामां आवी छे-तत्त्वज्ञोऽप्ये अपुं कश्चिं छे के लोकमां भूतपर्यायनुं अथवा भविष्यती पर्यायनुं ने कारण छे, तेनुं नाम द्रव्य छे. ते द्रव्य सचेतन पणु छे अने अचेतन पणु छे. तेना लावार्थं आ प्रमाणे समजवो.

जेमके केछ ओक एव पडेलीं स्वर्गमां ईन्द्रनी पर्याये उत्पन्न थयो उतो. त्यारणाद ते लवनुं आयुष्य पूरं थतां, त्यांथी रथवीने ते मनुष्यलोकमां मनुष्यनी पर्याये उत्पन्न थछ गयो. जेम अमात्यना पहथी रथुत थयेली व्यक्तितने अमात्य कडेवामां आवे छे. जेम मनुष्यनी पर्याये उत्पन्न थयेला ते मनुष्यने तेनी लुत-कालिन ईन्द्ररूप पर्यायने कारणे ईन्द्र कडेवो, तेनुं नाम ज द्रव्यनिक्षेप छे. जेम

त्वाद् द्रव्यत इन्द्रादिरभिधीयते, यथा—राजकुमारोऽपि राजा प्रोच्यते भाविराज पर्यायप्राप्तिहेतुत्वात् । एवमचेतनस्य काष्ठादेरपि भूतभविष्यत्पर्यायकारणत्वेन द्रव्यता भावनीयेत्यर्थः ।

एवं द्रव्यरूपमावश्यकम् । तद् द्रव्यावश्यकं छिद्रिचं प्रज्ञप्तम् ? तद्यथा— आगमतश्च—आगममाश्रित्य, नो आगमतश्च—नो आगममाश्रित्य । च शब्दौदयोऽपि स्वस्वविषये प्राधान्यख्यापनार्थो ॥सू० १३॥

तत्र—आगतो द्रव्यावश्यकं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं आगमओ द्रव्यावस्सयं ? आगमओ द्रव्याव-
स्सयं जस्स णं आवस्सएत्ति पदं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं
नामसमं घोससमं अहीणक्खरं अणच्चक्खरं अट्वाइक्खरं अक्ख-
लियं अभिलियं अवच्चामेलियं पडिपुणं पडिपुणघोसं कठेट्ठविप्प-

इन्द्र की पर्याय से उत्पन्न होनेवाला हो उसे भविष्यत्कालीन इन्द्र पर्याय का कारण होने के कारण राजकुमार को राजा कहने की तरह इन्द्र कहना यह भी द्रव्य निक्षेप का विषय है। यद्यपि राजकुमार वर्तमान में राजा नहीं है आगे राजा होगा—परन्तु जो उस अवस्था में भी वह राजा कहा जाता है वह भाविराज पर्याय की प्राप्ति का हेतु होने से ही कहा जाता है। इसी तरह से अचेतनकाष्ठ आदि में भी भूत, भविष्यत् पर्याय की कारणतालेकर द्रव्यता घटित कर लेनी चाहिये। इस तरह द्रव्यरूप आवश्यक का नाम द्रव्यावश्यक है। यह द्रव्यावश्यक आगम को आश्रित करके और नो आगम को आश्रित करके दो प्रकार का होता है। भावार्थ स्पष्ट है—सूत्र १३।

लविष्यकाणमां राज्ण णनवानो होय येवा राजकुमारो 'राज्ण' कडेवामां आवे छे, येण प्रमाणे जे एव लविष्यमां धन्द्रनी पर्याये उत्पन्न थवानो होय तेने लविष्यकालिन धन्द्र पर्यायतुं कारणु होवाने दीधि उन्द्र कडेवा ते पणु द्रव्यनिक्षेपनो विषय छे जे के राजकुमार अत्यारे राज्ण नथी, परन्तु लविष्यमां राज्ण थवानो छे, छतां पणु तेने राजकुमारनी अवस्थांमां पणु जे राज्ण कडेवामां आवे छे ते लावि राज्णपर्यायनी प्राप्तिश्च कारणुनी अपेक्षाये जे कडेवामां आवे छे. येण प्रमाणे अचेतन काष्ठ आदिमां पणु भूत—लविष्य पर्यायनी कारणुतानी अपेक्षाये द्रव्यता घटित करी लेवी जेधये. आ प्रकारे द्रव्यरूप आवश्यकतुं नाम द्रव्यावश्यक छे ते द्रव्यावश्यक जे प्रकारनो छे—(१) आगमनी अपेक्षाये अने नो आगमनी अपेक्षाथी जे प्रकारना समजवा. भावार्थ स्पष्ट छे. ॥ सू० १३ ॥

मुक्त्वा गुरुवायणोवगयं, से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्ठणाए धम्मकहाए नो अणुप्पेहाए, कम्हा ? 'अणुवओगो दव्व' मिति कट्ठासू. १४।

छाया—अथ किं तद् आगमतो द्रव्यावश्यकम् ? आगमतो द्रव्यावश्यकं यस्य खलु आवश्यकेति पदं शिक्षितं स्थितं जितं मितं परिजितं नामसमं घोषसमम् अहीनाक्षरम् अनत्यक्षरम् अव्याविद्धाक्षरम् अस्खलितम् अमिलितम् अव्यत्याम्रोडितं परिपूर्णं परिपूर्णघोषं कण्ठोष्ठविप्रमुक्तं गुरुवाचनोपगतम् । स खलु तत्र वाचनया प्रच्छनया परिवर्तनया धर्मकथया नो अनुप्रेक्षया, कस्मात् ? अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा ॥सू० १४॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं आगमओ दव्वावस्सयं' इति । अथ किं तद् आगमतो द्रव्यावश्यकम् ? आगममाश्रित्य द्रव्यावश्यकं किम् ? इति प्रष्टुराशयः उत्तरयति—'आगमओ दव्वावस्सयं' इत्यादि । आगमतो द्रव्यावश्यकम्—एवं विज्ञेयम्—यस्य खलु साधो—आवश्यकमिति पदम्—सर्वज्ञप्रणीतमावश्यकामिधेयं शास्त्रं शिक्षितम्—विनयपूर्वकं गुरुमुखाद् गृहीतम् । स्थितं स्मृतिपथे

आगम की अपेक्षा द्रव्यावश्यक का स्वरूप सूत्रकार निरूपित करते हैं—

“से किं तं” इत्यादि ॥सूत्र १४॥

शब्दार्थ—(से) शिष्य पूछता है कि हैं भदंत ! (किं तं आगमओ दव्वावस्सयं) आगम की अपेक्षा करके द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ? अर्थात् द्रव्यावश्यक के जो दो भेद कहे गये हैं उनमें से पहिले भेद का क्या स्वरूप है ? उत्तर—(आगमओ दव्वावस्सयं) आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है—(जस्स णं आवस्सएत्ति पदं सिक्खियं) जिस साधुने आवश्यक शास्त्र को विनयपूर्वक गुरुके मुख से सीखा है (ठियं) उसे अच्छी

हुवे सूत्रकार आगमनी अपेक्षाये द्रव्यावश्यकता स्वरूपतुं निरूपणुं करे छे.

“से किं तं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने अयेवा प्रश्न पूछे छे के—(किं तं आगमओ दव्वावस्सयं ?) आगमनी अपेक्षाये के द्रव्यावश्यक कद्यो छे तेनुं केवुं स्वरूप छे ? अेट्ठे के द्रव्यावश्यकता के जे लेद अताववागां आये छे, तेमांथी के पट्टेला लेद अताये छे तेनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(आगमओ दव्वावस्सयं) आगमनी अपेक्षाये द्रव्यावश्यकतुं स्वरूप आ प्रकारतुं छे—(जस्सणं आवस्सएत्ति पदं सिक्खियं) के साधुने आवश्यकशास्त्रतुं गुरुनी समक्ष विनयपूर्वक अध्ययन कथुं छे, (ठियं) तेने साराभां सारी रीते पोताना

विद्यमानम्, जितं—शब्दतोऽर्थतश्च परिचितम्—परिज्ञातम् । मितं—विज्ञातश्लोकपद-
वर्णादि संख्यामानम् । परिजितं—परि=समन्तात् सर्वप्रकारैर्जितं—परिजितम्, आनु-
पूर्व्या, अनानुपूर्व्या च परां तितम्, नामसमम्—नाम्ना समं यथा स्नामं न विस्मृतं
भवति, तथा एत् वदापि विस्मृतं न भवति, तन्नामसमम्, घोपसमं=घोषा उदा-
त्तादश्रुतैः समम्, यथा गुरुणां घोषा उक्तास्तथा यत्र शिष्येणापि समुच्चार्यन्ते
तद् घोपसमम् । अहीनाक्षरम् एकेनाप्यक्षरेण अहीनम् । अनत्यक्षरम्—एकद्वयादि-
भिरक्षरैःधिकमत्यक्षरम्, न अत्यक्षरं यत्र तदनत्यक्षरम्—अधिकाक्षररहितमित्यर्थः,
अव्याविद्धाक्षरम्—व्याविद्धानि=विपर्यस्तरत्नमालागतरत्नानीव विपर्यस्तानि अक्षराणि
यस्मिंस्तद् व्याविद्धाक्षरम्, न तथा अव्याविद्धाक्षरम्=व्याविद्धाक्षरत्वदोष-

तरह से अपने स्मृत पथ में उतारा है, (जियं) शब्द और अर्थ की अपेक्षा
लेकर जिसने उसे अच्छी तरह से जान लिया है (मियं) जिसके श्लोकों की
पदों की और वर्णों की संख्या का प्रमाण जिसे भली प्रकार अभ्यास किया हुआ है
(परिजियं) आनुपूर्वी एवं अनानुपूर्वी से जिसने उसे सब तरफ से और सब
प्रकार से आवर्तित किया है, (नामसमं) अपने नाम के समान जो कभी-
भी उसे अपने स्मृतिपथ से दूर नहीं करता है (घोससमं) जिस प्रकार से
गुरु महाराज उदात्त आदि घोष स्वरों का उच्चारण किया है, उसी
प्रकार से जो उसके घोषादि स्वरों का चारुरूप से उच्चारण करता है, तथा-(अही-
णवखरं) एकभी अक्षर की हीनता से रहित उसे जिसने सीखा है (अणच्च-
वखरं) बोलते समय—पाठ करते समय जो अपनी तरफ से बोलता है—अर्थात्
जैसा उसमें लिखा है वैसा ही उसे उच्चारण करता है (अ-वाइद्धवखरं) जिसे

स्मृतिपटलमां उतायुं छे, (जियं) शब्द अने अर्थनी अपेक्षाये नेने तेषु सारी
रीते भाषी दीधेल छे, (मियं) नेना श्लोकेानी, पदानी अने वर्णानी संख्यानुं
प्रमाणु नेणु सारी रीते समणु दीधुं छे, (परिजियं) आनुपूर्वी अने अनानुपूर्वी
पूर्वक नेणु तेने भधी तरुथी अने भधा प्रकारे परावर्तित करी दीधुं छे, (नामसमं)
पोताना नामनी नेम ने तेने कही पणु पोताना स्मृतिपटमांथी दूर करतो नथी,
(घोससमं) ने रीते गुरु महाराजे उदात्त आदि घोषस्वरानुं उच्चारणु कयुं होय,
अण प्रकारे तेना घोषादि स्वरानुं ने सुंदर रीते उच्चारणु करतो होय, (अहीणवखरं)
अक पणु अक्षरनी हीनता न रहे अवी रीते नेणु तेनु अध्ययनं कयुं छे,
(अणच्चवखरं) बोलती वणते—पाठ करता वणते ने पोताना तरुथी अक पणु अक्षर
तेमां उमेरीने बोलतो नथी—अटले के तेमां ने प्रमाणु लणुं होय अे प्रमाणु अ
तेनुं उच्चारणु करे छे.

रहितम्, अक्षरव्यतिक्रमरहितमित्यर्थः, अस्खलितम्—शास्त्रपाठसमये मध्ये मध्ये विरम्य विरम्य तदुच्चारणम् तत्स्खलितरूपोच्चारणदोषस्तेन रहितमित्यर्थः । अमिलितं=मिलितदोषरहितम्, यत् शास्त्रान्तरवर्तिभिः पदैरमिश्रितं, यथा—सामायिकसूत्रे दशवैकालिकोत्तराध्ययनादिपदानि न क्षिपति । अथवा—परावर्तमानस्य यत्र पदादि विच्छेदो न प्रतीयते तन्मिलितं, न तथा, अमिलितम् । अव्यत्याप्रेडितम्—एकस्मिन्नेव शास्त्रेऽन्यान्यस्थाननिबद्धानि एकार्थानि सूत्राणि एकत्र स्थाने समानीय यत्पठितं तद् व्यत्याप्रेडितम्, अथवा—भाचाराङ्गादिसूत्रमध्ये स्वबुद्धि-

उसने इस तरह से सीखा है कि जिस से उसके उच्चारण में अक्षरों का व्यतिक्रम नहीं हो सकता हो, (अस्खलितं) पाठ करते समय जो बीच २ में ठहर कर उसका उच्चारण नहीं करना है किन्तु धाराप्रवाह के समान सावधि जो उसे बोलता चला जाता है, (अमिलितं) शास्त्रान्तरवर्ती पदां को मिलाकर जो उसे नहीं बोलता है—जैसे सामायिक सूत्र में दशवैकालिक, उत्तराध्ययन के सूत्रों को बोलना—यह मिश्रित दोष है—इस दोष से रहितकर सामायिक पाठ का बोलना यह अमिश्रित दोष है । अथवा पाठ करते समय जहाँ पदादि का विच्छेद प्रतीत नहीं होता है, उसका नाम मिलित है, इसरूप से नहीं बोलना इस का नाम अमिलित है—अर्थात् इस तरह से आवश्यकसूत्र का उच्चारण करता है कि जिसके उच्चारण में पदादिका विच्छेद अच्छी तरह से लक्षित होता रहता है । (अवच्चामेलितं) एक ही शास्त्र में अन्य २ स्थानों पर लिखे गये एकार्थक सूत्रों को एक स्थान में लेकर उस शास्त्र का पठना इसका नाम

(अव्वाइद्वक्खरं) जेठुं तेणुं अवी रीते अध्ययन कथुं छे के तेना उच्चारण वधते अक्षरेना व्यतिक्रम थध जतो नथी, (अस्खलितं) जेना पाठ करती वधते वरये वरये अटकीने तेनुं उच्चारणु करतो नथी पणु पाणीना प्रवाहुनी जेम अस्थलितइये जे तेनुं उच्चारणु कथे जय छे, (अमिलितं) अन्य शास्त्रवर्ती पदाने तेनी साथे सेणलेण धरीने जे तेनुं उच्चारणु करतो नथी—जेभके सामायिक सूत्रमां दशवैकालिक के उत्तराध्ययनना सूत्रानुं उच्चारणु करपुं तेनुं नाम मिश्रित दोष छे, आ दोषो न थाय अवी रीते सामायिक पाठनुं उच्चारणु थपुं जेधअे. अथवा पाठ करती वधते जयां पदादिना विच्छेद थतो नथी, तेनुं नाम मिलित छे अने ते प्रकारे उच्चारणु न करपुं तेनुं नाम अमिलित छे. अटले के ते आवश्यकसूत्रना पाठनुं अवी रीते उच्चारणु करे छे के जेना उच्चारणुमां पदादिना विच्छेद सारी रीते लक्षित थतो रहे छे, (अवच्चामेलितं) अेक ज शास्त्रमां जुदा-जुदा स्थानो पर लभवामां आवेदा अेकार्थक सूत्राने अेक ज स्थानमां लधने ते शास्त्रेना पाठ करपे

कल्पितानि तत्सदृशानि सूत्राणि कृत्वा प्रक्षिप्य पठित व्यत्याम्रेडितम् । यद्वा
 अस्थानविरतिकं व्यत्याम्रेडितम्, न तथा, अव्यत्याम्रेडितदोषरहितमित्यर्थः ।
 परिपूर्णम्-सूत्रतो विन्दुमात्रादिभिरननम्, अर्थतोऽध्याहागकाङ्क्षादिरहितं च ।
 परिपूर्णघोषम् उदात्तादिघोषयुक्तम् ननु 'घोषसमम्' इत्युक्त्वा पुनःपरिपूर्णघोषमिति
 कथनं पुनरुक्तिदोषग्रतम्, इति चेदुच्यते, घोषसमम्' इति शिक्षाकालमाश्रित्यो-
 क्तम्, 'परिपूर्णघोषम्' इति तु परावर्तनाकालमाश्रित्ये क्तम्, अतो नास्ति पुनरु-

व्यत्याम्रेडित है अथवा आचारांग आदि सूत्र के बीच में अपनी बुद्धि से
 बनाकर उसके जैसे सूत्रों को प्रक्षिप्त करके पढ़ना इसका नाम भी व्यत्या-
 म्रेडित है, अथवा बोलते समय जहां विराम लेना चाहिये वहां विराम नहीं
 लेना और नहीं लेना चाहिये वहां विराम लेना इसका नाम भी व्यत्याम्रेडित
 है। इस प्रकार का व्यत्याम्रेडित दोष जिसके द्वारा उस आवश्यक शास्त्र के
 अध्ययन करने में नहीं लगा गया, है अर्थात् इस दोष के वर्जित करके जिसने
 आवश्यकशास्त्र को सीखा है, (पंडिपुण्यं) सूत्र की अपेक्षा विन्दु मात्र आदि से
 अन्यून एवं अर्थ की अपेक्षा अध्याहार एवं आकांक्षा आदि से रहितरूप से
 उस आवश्यकशास्त्र का जिसने भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लिया है-
 (पंडिपुण्यघोसं) उदात्त अनुद्यत्स्वरिस घोषों का यथास्थान ज्ञान प्राप्तकर जिसने
 उस शास्त्र का अच्छी रीति से परावर्तन किया है। "घोषसमं और परिपूर्णघोषं" इन
 दोनों विशेषणों में पुनरुक्तिदोषइम लिये नहीं मानना चाहिये कि पहिला विशेषण
 शिक्षा काल को आश्रित करके कहा गया है और यह दूसरा विशेषण परावर्तन

तेषु नाम "व्यत्याम्रेडितं छे, अथवा आचारांग आदि सूत्रनो पाठ करती वपते
 वच्ये वच्ये पोतानी बुद्धिथी इत्येतां तेना जेवां न सूत्रेणुं उच्यारथुं करवुं तेषुं
 नाम पणु व्यत्याम्रेडितं छे अथवा बोलनी वपते जयां विराम लेवो अने विराम
 न लेवानो होय त्यां विराम लेवो तेषुं नाम पणु व्यत्याम्रेडितं छे, आ प्रकारनो
 व्यत्याम्रेडित दोषणुं जेना द्वारा ते आवश्यक शास्त्रणुं अध्ययन करती वपते सेवन
 'करायुं' नथी, ओटवे के आ दोषनो त्यागपूर्वक जेणे आवश्यकशास्त्र अध्ययन करुं छे.
 (पंडिपुण्यं) सूत्रनी अपेक्षाये विन्दु मात्र आदिथी अन्यून अने अर्थनी अपेक्षाये
 अध्याहार अने आकांक्षा आदिथी रडितइये ते आवश्यकशास्त्रणुं जेणे सारी रीते
 ज्ञान प्राप्त करी लीधुं छे.

(पंडिपुण्यघोसं) उदात्त आदि घोषणुं यथास्थान ज्ञान प्राप्त करीने जेणे
 ते शास्त्रणुं सारी रीते परावर्तन करुं छे, 'घोषसमं' अने "पंडिपुण्यघोसं" आ जेने
 विशेषणोभां पुनरुक्ति दोष जे कारणे मानवो जेधये नहीं के पडेणुं विशेषण
 शिक्षा कालने आश्रित करीने वपरायुं छे अने भीणुं विशेषण परावर्तन कालने

क्तिदोषः । कण्ठोष्ठविग्रमुक्तम्—कण्ठश्च—ओष्ठंच—कण्ठोष्ठम्—तेन विग्रमुक्तम्—सुस्पष्ट-
मित्यर्थः न तु बालमूकादिभाषितवदस्पष्टम् । तथा—गुरुवाचनोपगतं—गुरोःसका-
शादधिगता या वाचना,=सूत्रस्यार्थस्य च ग्रहणं तथा उपगतं प्राप्तम्, तदेवं यस्य
साधोरावश्यकपदं—शिक्षितादिगुणोपेतमधिगतं भवति, स खलु साधुः तत्र=
आवश्यकपदे वाचनया—शिष्याध्यापनरूपया प्रच्छनया—प्रच्छना—पूर्वाधीतसूत्रादौ
संशये सति गुरुसमीपे प्रच्छनम्, यद्वा—प्रच्छना—विशोधितस्य सूत्रस्य माभूद् विस्मरण-
मिति गुरोः प्रश्नरूपा, तथा, परिवर्तनया=अधीतस्य सूत्रादेः पुनःपुनरावृत्ति करणं
गुणनं परिवर्तना, तथा, धर्मकथया=दुर्गतौ प्रपन्नन्तं सत्त्वसंघातं सुगतौ धारय-

(पुनरावर्तन) कालको आश्रित करके कहा गया है। (कण्ठोष्ठविग्रमुक्तं) बाल आदि के
भाषित की तरह जिस का उसशास्त्र वा अष्ट उच्चारण नहीं है—किन्तु बिलकुल स्पष्ट स्वर
से जो उसका उच्चारण करता है, तथा (गुरुवायणोव्रगयं) गुरुके पास रह कर जिसने
इस आवश्यकशास्त्र की वाचना पाई है—सूत्र और अर्थ का अध्ययन किया है—जिस
से उसे उस—आवश्यक शास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ है—इस तरह इन पूर्वोक्त श्रुत-
गुणरूपविशेषणों के अनुसार जिस साधुने आवश्यकशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर-
लिया है—अतः (से) वह साधु (तत्थ) उस आवश्यकशास्त्र में (वायणाए पुच्छ-
णाए परियट्टणाए धम्मकहाए) शिष्य अध्ययनरूप वाचना से, पूर्वाधीत सूत्रादि
में संशय होने पर गुरु के समीप पूछनेरूप अथवा विशोधित सूत्र का विस्म-
रण न हो जावे इस ख्याल से गुरु से प्रश्नकरनेरूप पृच्छना से, अधीत पढा हुआ
सूत्रादिक कि पुनः पुनः आवृत्ति करनेरूप परिवर्तना से और दुर्गति में पडते

आश्रित करीने वपरायुं छे. (कण्ठोष्ठविग्रमुक्तं) बालक अथवा भूंगा माण्डसना
जेवुं अस्पष्ट उच्चारणु जे करतो नहीं—परन्तु बिलकुल स्पष्ट स्वरथी जे तेनुं उच्चारणु
करे छे, (गुरुवायणोव्रगयं) गुरुनी पासे रहीने जेहे आ आवश्यक शास्त्रनी वाचना
करी छे—अटवे के गुरुनी समक्ष जेहे सूत्र अने अर्थनुं अध्ययन कयुं छे अने
आ रीते जेने आवश्यक सूत्रनुं ज्ञान प्राप्त थयुं छे, आ रीते पूर्वोक्त श्रुत श्रुति
इय विशेषणाना अनुसार जे साधुमे आवश्यकशास्त्रनुं ज्ञान प्राप्त करी लीधुं छे. अने
तेथी (से) ते साधु (तत्थ) ते आवश्यकशास्त्रमां (वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए
धम्मकहाए) शिष्य अध्ययनइय वाचन वडे पूर्वाधीत (पडेलां जेनुं अध्ययन करवांमां
आव्युं छे तेने पूर्वाधीत कडे छे) सूत्रादिमां संशय थाय त्तारे गुरुने ते विषे प्रश्न
करवाइप पृच्छावडे अथवा विशोधित सूत्रनुं विस्मरणु न थर्थ जय ते ख्याली
गुरुने प्रश्न करवाइप पृच्छना वडे अधीत सूत्रनो करी करीने पाठ करवाइप परिवर्तना
वडे अने दुर्गतिमां पडतां जेवने सुगतिमां धारयुं करावनार धर्मकथावडे—अटवे

तीनि धर्मः तस्य वृथनं धर्मकथा अहिंसादि धर्मप्ररूपणरूपा, तथा, वर्तमानोऽस्तीति आगमनो द्रव्यावश्यकमुच्यते । ननु वाचनादिभिस्तत्रावश्यकशास्त्रे वर्तमानः साधुः कथमागमनो द्रव्यावश्यकं भवतीति शिष्यशङ्कां निराकर्तुमाह—‘नो अणुप्पेहाए’ नो अनुप्रेक्षया—वाचनादिभिस्तत्र वर्तमानोऽपि शास्त्रार्थानुचिन्तनरूपयाऽनुप्रेक्षया नो वर्तमानो भवति अनुप्रेक्षया युक्तो न भवतीत्यर्थः, अतः स आगमतो द्रव्यावश्यकं भवति । अनुप्रेक्षयाच्चाऽवर्तमानः कथमागमतो द्रव्यावश्यकं भवतीति स्वयमाह सूत्रकारः—‘कम्हा’ इत्यादिना । कस्मात् आगमतो द्रव्यावश्यकं भवति ? उनरयति—‘अणुवओगो दवामिति वड्डु’ अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा—उपयुज्यते—वस्तुपरिच्छेदं करोति जीवोऽनेनेत्युपयोगः । करणे घञ् प्रत्ययः । उपयोगः=

हुए जीवों की सुगति में धारणकराने वाले (पहोंचाने वाले) धर्म की कथा से—अर्थात् अहिंसादि धर्म की प्ररूपणा से—वर्तमान है—इस तरह आगम की अपेक्षा वह साधु द्रव्यावश्यक कहा गया है । यहां ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, कि वाचनादिरूप क्रियाओं से उस आवश्यक शास्त्र में वर्तमान वह साधु आगम की अपेक्षा द्रव्यावश्यक कैसे है क्योंकि (नो अणुप्पेहाए) इस पद से सूत्रकारने इस शंका का समाधान किया है—वे कहते हैं कि वाचनादिरूप क्रियाओं से आवश्यकशास्त्र में वर्तमान रहा हुआ भी वह साधु शास्त्र के अर्थ का अनुचिन्तन करने रूप अनुप्रेक्षा चिन्तन से उसमें वर्तमान नहीं है । इसलिये वह आगम से द्रव्यावश्यक है । (कम्हा अनुपयोगो दवामिति) क्योंकि “अनुपयोगो द्रव्यं” ऐसा शास्त्र का वचन है । इस का तात्पर्य यह है कि—जीव जिस के द्वारा वस्तु का परिच्छेद करता है उस का नाम उपयोग है । उप उपसर्ग पूर्वक युञ्

के अहिंसादि धर्मनी प्ररूपणावडे वर्तमान (विद्यमान) छे. आ रीते आगमनी अपेक्षाछे ते साधुने द्रव्यावश्यक कडेवामां आओये छे.

अही ओवी शंका न करवी जेभुंओ के वाचनादि क्रियाओ वडे ते आवश्यक सूत्रमां वर्तमान ते साधु आगमनी अपेक्षाछे द्रव्यावश्यक केवी रीते संलवी शके छे ? सूत्रकारे आ सूत्रपाठ द्वारा ते शंकानुं समाधान कथुं छे—

(नो अणुप्पेहाए) वाचनादिरूप क्रियाओ वडे आवश्यक शास्त्रमां वर्तमान रहेले ओयो ते साधु शास्त्रेना अर्थनुं अनुचिन्तन करवाइप अनुप्रेक्षानी अपेक्षाछे तेमां वर्तमान छोटो नथी ते कारणे ते आगमनी अपेक्षाछे द्रव्यावश्यक छे. (कम्हा अनुपयोगो दवामिति) कारणे के शास्त्रनुं ओपुं वचन छे के “अनुपयोगो द्रव्यं” आ कथनने लावार्थ नीये प्रभाछे छे—

एव जेना द्वारा वस्तुने परिच्छेद करे छे (वस्तुनुं ज्ञान भेजवे छे) तेनुं

जीवस्य बोधरूपो व्यापारः । न विद्यते उपयोगो द्वासाः—अनुपयोगः । इति
 कृत्वा=अस्मात् कारणात् स साधुरागमतो द्रव्यावश्यकं भ-ति । यस्य. वरयचित्त
 साधोरावश्यकशास्त्रं शिक्षितं स्थितं जितं यावद् वाचनोपगतं भवति, स खलु
 साधुरतत्रावश्यकशास्त्रे वाचना-प्रच्छना-परिवर्तना धर्मकथाभिर्दत्तमानोऽपि आ-वश्यको-
 पयोगरहितत्वादागमतो द्रव्यावश्यकं भवतीति समुदितार्थः । अत्रेदं बोध्यम्—
 वाचना प्रच्छनादय उपयोगपूर्वका अनुपयोगपूर्वकाश्च भवन्ति । परमिह द्रव्या-
 वश्यकप्रस्तावादानुपयोगपूर्वका वाचनाप्रच्छनादयो बोद्धव्याः । अनुपयोगस्तु भौव-

धातु से करण में धञ् प्रत्यय करने से उपयोग शब्द निष्पन्न हुआ है । जीव
 के बोधरूप व्यापार का नाम उपयोग है । यह उपयोग जहां पर नहीं है
 उस का नाम अनुपयोग है । इस अनुपयोग से उस आवश्यकशास्त्र में युक्त
 होने के कारण वह आवश्यक शास्त्र वा ज्ञाता आगम से द्रव्यावश्यक माना
 जाता है । तात्पर्य कहने का यह है कि जिस साधुने आवश्यक शास्त्र को
 अच्छी तरह से जान लिया है, सीख लिया है—उसका वह पूर्णरूप से ज्ञाता
 हो चुका है—अतः वह साधु उस आवश्यकशास्त्र में वाचना पृच्छना, परिवर्तना
 एवं धर्मकथा के रूप से वर्तमान मान लिया जाता है—फिर भी आवश्यक
 के उपयोग से रहित होने के कारण वह आगम से द्रव्यावश्यक कहलाता है ।
 उसे यों समझना चाहिये कि वाचना पृच्छना आदि उपयोगपूर्वक भी होते हैं
 और अनुपयोगपूर्वक भी । परन्तु यहां द्रव्यावश्यक का प्रकरण होने से वे

नाम 'उपयोग' छे. 'युञ्' धातुने उप उपसर्गपूर्वक करण् अर्थ धञ् प्रत्यय लगा-
 उवाची उपयोग शब्द अने छे. एवना बोधरूप व्यापारत्वं नाम उपयोग छे. ते
 उपयोगनो न्यां सदृशाव नथी तेने अनुपयोग कडे छे. ते अनुपयोगपूर्वक ते आव-
 श्यकशास्त्रमां युक्त होवाने कारणे ते आवश्यकशास्त्रना ज्ञाताने द्रव्यनी अपेक्षाये
 आवश्यक (द्रव्यावश्यक) मानवामां आवे छे. आ कथननु तात्पर्य अे छे के ने
 साधुअे आवश्यक शास्त्रने सारी रीते लक्ष्णी लीधुं छे—सारी रीते तेनु अध्ययन करी
 लीधुं छे. तेना पूर्णरूपे लक्षणकार थछ गये छे, अेवा साधुने ते आवश्यकशास्त्रमां
 वाचना, पृच्छना, परिवर्तना अने धर्मकथा रूपे वर्तमान मानी लेवामां आवे छे,
 छतां पणु आवश्यकना उपयोगथी रहित होवाने कारणे तेने आगमनी अपेक्षाअे
 द्रव्यावश्यक कडेवामां आवे छे. आ वातने वधु सुदासे आ प्रमाणे समजवो-
 वाचना, पृच्छना, आदि उपयोगपूर्वक पणु थाय छे अने अनुयोगपूर्वक पणु थाय
 छे परन्तु अही द्रव्यावश्यकत्वं प्रकरण् आहतुं होवाची तेमने अनुपयोगपूर्वक न

शून्यता, तच्छून्यं च वरतु द्रव्यमेव भवतीति वाचनादिभिरत्र वर्तमानोऽपि साधु द्रव्यावश्यकम् । अनुपेक्षा तूपयोगपूर्विकैव संभवति, अत्रतत्र वर्तमानो द्रव्यावश्यकं न भवति ।

ननु आगममाश्रित्य द्रव्यावश्यकमित्यागमरूपमिदं द्रव्यावश्यकमित्युक्तं भवति, एतच्च युक्तं न प्रतिभाति, यत् आगमो ज्ञानं, ज्ञानं च भाव एवेति कथमस्य द्रव्यत्वमुपपद्यते ? इति चेत् उच्यते—आगमस्य कारणमात्मा, तदधिष्ठितो देहः, शब्दश्रोपयोगशून्यसत्रोच्चारणरूप इहास्ति, न तु साक्षादागमः । एतच्च त्रितयमागम कारणत्वात् कारणे कार्योपचारादागम उच्यते, कारणं च विवक्षित भावस्य द्रव्यमेव भवतीत्यदोषः ।

अनुपयोगपूर्वकं गृहीत किये गये हैं । भावशून्यता का नाम अनुपयोग है । उपयोग से शून्य द्रव्य ही होता है । इसलिये वह आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता साधु उसमें वाचनादिक से वर्तमान होता हुआ भी उपयोग से शून्य होने के कारण द्रव्यावश्यक है । अनुपेक्षा जो होती है वह उपयोगपूर्वक ही होती है इसलिये उसमें वर्तमान साधु द्रव्यावश्यक नहीं है वह तो भावावश्यक है ।— शंका—जब आप आगम को आश्रित करके द्रव्यावश्यक की प्ररूपणा करते हो तो वह द्रव्यावश्यक आगमरूप बहा गया है मानने में आता है । परन्तु यह बात युक्त प्रतीत नहीं होती है क्योंकि आगम जो होता है वह तो ज्ञानरूप होता है । और ज्ञान भावरूप होता है । अतः आगम में द्रव्यता कैसे बन सकती है ?

उत्तर—आगम के कारण आत्मा, आत्माधिष्ठित देह, और उपयोगशून्य सत्र का उच्चारणरूप शब्द ये तीन माने गये हैं । साक्षात् आगम नहीं । ये तीन आगम के कारण होने से कारण में आगमरूप कार्य का उपचार किया गया है । इसलिये इन्हें आगमरूप से बहा है । विवक्षित भाव का जो कारण

गृहीत करवाया आवेक छे. भावशून्यता नाम अनुपयोग छे द्रव्य न उपयोगथी रहित होय छे. तेथी ते आवश्यक शास्त्रना ज्ञाता साधु तेमां वाचना आदिउपे वर्तमान होवा छतां पणु उपयोगथी रहित होवाने कारणे द्रव्यावश्यक न कडेवाय छे. अनुपेक्षा तो उपयोगपूर्वक न थाय छे. तेथी तेमां (अनुपेक्षाभां) वर्तमान साधु द्रव्यावश्यक नथी, पणु भावावश्यक छे.

शंका—ज्यादे आप आगमने आश्रित करीने द्रव्यावश्यकनी प्ररूपणा करे छे. त्यादे जेवुं लागे छे के द्रव्यावश्यकने आगमरूप कडेवायां आणुं छे, जेवुं आप प्रतिपादन करी रहा छे. परन्तु जे वात युक्त लागती नथी कारणे के आगम

ननु—आगतोऽनुपयुक्तो द्रव्यावश्यकम्, इत्येतावतैवेष्टसिद्धेः शिक्षितादि-
श्रुतगुणाभिधानं व्यर्थमिति चेत्, उच्यते—शिक्षितादिश्रुतगुणाभिधानेन सूत्रकार इदं
सूचयति—एवंविधं निर्दोषमपि श्रुतसुच्चारयतोऽनुपयुक्तस्य द्रव्यश्रुतं द्रव्यावश्यक-
मेव भवति, किं पुनः सद्दोषम् । उपयुक्तस्य स्वलितादिदोषदुष्टसुच्चारणतोऽपि

होता है वह द्रव्य ही होता है । इसलिये आवश्यक में उपयोगरहित आत्मा
का आगम से द्रव्यावश्यक कहना निर्दोष है ।

शंका—ठीक है— आवश्यक में अनुपयुक्त आत्मा को आप आगम की
अपेक्षा द्रव्यावश्यक कहिये—इसमें कोई विरोध नहीं है—परन्तु सूत्रकार ने
जो शिक्षितादि श्रुतगुणों का वर्णन किया है सो उनके कहने की क्या
आवश्यकता थी ? वह श्रुतगुण कथन तो व्यर्थ है । क्यों कि इस श्रुतगुण
कथन से आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक की सिद्धि में कोई संगति
प्रतीत नहीं होती ? सो इस प्रकार का आक्षेप भी संगत प्रतीत नहीं होता—
कारण सूत्रकार इस श्रुतगुणवर्णन से यह सूचित करते हैं कि इस प्रकार निर्दोष भी
शास्त्र का उच्चारण करने वाले साधुका कि जो उस में अनुपयुक्त (विना उपयोग के)

तो ज्ञानरूप होय छे अने ज्ञान लावइय होय छे. तेथी आगममां द्रव्यता केवी
रीते धटावी शकय छे ?

उत्तर—आगमना आ त्रणु कारणो मानवामां आण्यां छे—(१) आत्मा, (२)
आत्माधिष्ठित देह अने (३) उपयोग रहित सूत्रना उच्यारणरूप शब्द—साक्षात्
आगम नहीं. आगमना आ त्रणु कारणो होवाथी कारणमां आगमरूप कार्यना
उपचार करवामा आण्ये छे. ते कारणे तेमने आगमरूप दृष्टवामां आवेल छे. विव
क्षित लावतुं ने कारणु होय छे ते द्रव्य न होय छे. तेथी आवश्यकमां उपयोग
रहित आत्माने आगमनी अपेक्षाये द्रव्यावश्यक दृष्टेवा अेमां केछ दोष नथी, अे
तो निर्दोष कथन न गणी शकय.

शंका—आवश्यकमां अनुपयुक्त आत्माने आप आगमनी अपेक्षाये लडे
द्रव्यावश्यक कहे, अेमां अमने कंछ वांधे नथी; परन्तु सूत्रकारे ने शिक्षित आदि
श्रुतगुणानुं वर्णन कयुं छे. ते वर्णन क्वानी अड्डीं शी आवश्यकता हुती ? ते
श्रुतगुणकथन तो व्यर्थ न लागे छे, कारणु के आ श्रुतगुण कथन वडे आगमनी
अपेक्षाये द्रव्यावश्यकनी सिद्धिमां केछ संगति देण ती नथी.

उत्तर—आ प्रकारने आक्षेप पणु संगत लागतो नथी, कारणु के सूत्रकार आ
श्रुतगुण वर्णन वडे अे सूचित करवा मागे छे के—आ प्रकारे निर्दोषरूपे पणु शास्त्रं
उच्यारणु करवारे साधु के ने तेगां अनुपयुक्त न दृष्टेवा छे, तेनुं ते द्रव्य त

भावश्रुतमेव भवति । एवं प्रत्युपेक्षादि क्रिया निर्दोषा अपि अनुपयुक्तस्य न तथाविधफलदादिभ्यो भवन्ति । उपयुक्तस्य तु मतिवैकल्यादितः सदोषा अपि प्रत्युपेक्षादि क्रियाः कर्ममलापनयनाय समर्था भवन्तीति ।

ननु भवत्वनुपयुक्तो द्रव्यावश्यकम्, किन्तु हीनाक्षरसूत्रं समुच्चारिते को दोषः ? कथमुक्तमहीनाक्षर ? मिति, उच्यते—लौकिकविद्यामन्त्रा अपि अक्षरहीनाः समुच्चार्यमाणारस्तत्फलं दातुमसमर्था अनर्थाविहास्य भवन्ति, किं तर्हि परममन्त्ररूपे

हो रहा है—वह द्रव्यश्रुत द्रव्यावश्यक ही है । तो फिर सदोष शास्त्र को उच्चारण करने वाले की तो बात ही क्या है ? जो उस शास्त्र में उपयोग युक्त है ऐसा प्राणी यदि स्वलित आदि दोष से भी दूषित शास्त्र का उच्चारण करता है तो उसका वह द्रव्य त भावश्रुत ही है । इसी तरह अनुपयुक्त साधु रूप प्राणी की प्रत्युपेक्षादि क्रिया निर्दोष भी हों तो भी वे तथाविध फल की प्रदाता नहीं होती हैं । परन्तु जो साधु उन प्रत्युपेक्षादि-पडिलेहणा क्रियाओं को उनमें उपयुक्त बन कर करता है और यदि वे मति विकलता आदि के वश से सदोष भी कर्ममलको दूर करने के लिये समर्थ होती हैं ।

शंका—अनुपयुक्त साधु द्रव्यावश्यक भले हो परन्तु हीनाक्षररूप से सूत्र के उच्चारित होने पर क्या दोष है कि जिस से “अहीणवस्त्रं” यह श्रुत का कथित गुणरूप स्वरूप विशेषण सफल माना जा सके ?

उत्तर—लौकिक विद्या, मंत्र, भी जब अक्षर न्यून बोलते जाते हैं तो वे अपने वास्तविक फल को देने में असमर्थ हो जाते हैं और अनर्थाकारक बन जाते हैं तब फिर परममंत्र रूप सूत्र के विषय में क्या कहना । हीनाक्षर सूत्र के

द्रव्यावश्यक न छे, तो सदोष शास्त्रनुं उच्चारणु करनारनी तो वात न शी करवी । ने ते शास्त्रमां उपयोगयुक्त छे जेवो साधु पणु ने स्वलित आदि दोषशी दूषित थयेवा शास्त्रनुं उच्चारणु करे छे, तो तेनुं ते द्रव्यश्रुत लावश्रुत न छे. जेन प्रमाणे अनुपयुक्त साधुपुं जवनी प्रत्युपेक्षादि क्रिया निर्दोष होय तो पणु तथाविध (ते प्रकारना) इलनी प्रदाता संलनी शकती नथी. परन्तु जे साधु ते प्रत्युपेक्षादि क्रिया-जोने तेमां उपयुक्त जनीने करे छे, जेवो साधु कदाय मति विकलता आदिने कारणे सदोष होय तो पणु तेनी ते क्रियाओ कर्मभणने दूर करवाने समर्थ न होय छे.

शंका—अनुपयुक्त साधुने द्रव्यावश्यक मानी लक्ष्ये, परन्तु हीनाक्षररूपे सूत्रनुं उच्चारणु करवामां जेवो तो कथो दोष छे जे जेथी “अहीणवस्त्रं” आश्रुतना कथित गुणरूप विशेषणने सकृण आनी शकय ?

उत्तर—लौकिक विद्यारूप मंत्रनुं उच्चारणु करवामां पणु जे जेकाह अक्षरने उलडी देवामां आवे छे, तो ते मंत्र पणु वास्तविक इण आपवाने असमर्थ

सूत्रे वक्तव्यम् ? हीनाक्षरे सूत्रे उच्चारिते तत्कल इमकल्याणरूपमोक्षानवाप्ति-
रनन्तसंसात्वात् भवतीति सुधीभिर्विभाव्यम् ।

अत्रायं दृष्टान्तः—एकदा राजगृहनगरोद्याने समवसृतस्य भगवतो महावीर-
स्य चरणौ वन्दितुं देवासुरविद्याधरनरसमुदायः समागतः । स्वपुत्रेणामयकुमा-
रेण सह राजा णिकोऽपि समागतः । भगवता परिषदि धर्मदेशना दत्ता ।
धर्मदेशनानन्तरं सर्वेऽपि भगवन्तमभिवन्द्य स्वस्वस्थानं गताः । सपुत्रः
श्रेणिको भगवन्तं पर्युपासीनः । भगवत्समीप एव स्थितः । अस्मिन् समये
कश्चिद् विद्याधरो विस्मृतविद्यैकाक्षरो नभसा गन्तुमुत्पतितः, किञ्चिद् गत्वा

उच्चरित होने पर उसका फल जो परम कल्याणरूप मोक्ष की प्राप्ति होना
वह नहीं होती है और अनन्त संसार की प्राप्तिरूप अनर्थ प्रगट होते हैं, इस
विषय में यह दृष्टांत है—एक समय राजगृह नगर के उद्यान में भगवान् महा-
वीर का समवसरण हुआ ।

प्रभु को वंदना करने के लिये देव, असुर, विद्याधर, एवं मनुष्य इन सबकां
समुदाय आ पहुंचा । अपने पुत्र अभयकुमार के साथ राजा श्रेणिक भी आये ।
भगवान् ने परिषदा में धर्म की देशना दी । देशना सुनकर सब भगवान्
को वंदना करके अपने-अपने स्थान पर चले गये । पर राजा श्रेणिक
नहीं गये । सपुत्र वे भगवान् की पर्युपासना में लवलीन हो कर भगवान् के
समीप में ही बैठ गये । इतने में कोई एक विद्याधर जिसको अपनी विद्या का
एक अक्षर विरमृत हो गया था । आकाशमार्ग से जाने के लिये उडा । वह

अनी जय छि अने अनर्थकारक पणु अनी शके छि, तो पछी परम मंत्ररूप सूत्रनी
तो वात न शी करवी ? हीनाक्षर सूत्रना उच्चारणने लीधि परमकल्याणकारक मोक्ष
रूप इणनी प्राप्ति पणु थती नथी ओखुं न नही पणु अनंत संसारनी प्राप्तिरूप
अनर्थ पणु प्रगट थाय छि आ विषयने अनुलक्षीने नीयेनुं दृष्टात आपवामां आव्युं छे.

कैध ओक समये राजगृह नगरना उद्यानमां महावीर प्रभुनुं समवसरण थयुं
प्रभुने वंदणा करवा निमित्तं देव, असुर, विद्याधर अने मनुष्यने समुदाय आवी
पहोऽथे। पोताना पुत्र अभयकुमारने साथे लधने राजारण श्रेणिक पणु आवी
पहोऽथे। लगवाने त्या ओकत्र थयेदी परिषदाने धर्मनी देशना दीधी। लगवाननी देशना
सांलणने अने लगवानने वंदणा करीने सौ पोतपोताने स्थाने पाछां इयां, परन्तु
राजा श्रेणिक त्यांथी अस्या नही। ते पोताना पुत्रनी साथे लगवाननी पर्युपासनामां
तल्लीन थधने त्यांज जेसी रह्यो। डवे आ वणते नीयेने अनाव अन्थे। समवसरण-
मांथी पाछे इरतो। कैध ओक विद्याधर आकाशमार्गे उडवा भागतो इतो पणु आका-
शमां उडवा माटे जे मंत्रने उच्चार करवे जेधये ते मंत्रने ओक अक्षर ते लूली

निपतितः, पुनस्तपतितो निपतितश्च । एवं पुनः पुनस्तपतन्तं निपनन्तं तं विद्याधरं वीक्ष्य
अभयकुमारो भगवन्तं प्रणम्यैवमब्रवीत्—भदन्त । कथमयं महाभागो विद्याधरो
विच्छिन्नपक्षः पक्षीव पुनः पुनर्नभसि उत्पतति निपतति च ? ततो भगवता
प्रोक्तम्—अयं विद्याधरो विस्मृतविद्यैकाक्षरो नभसि गन्तुं प्रयतते, परन्तु सफला
न भवति । भगवद्वचनं श्रुत्वा अभयकुमारस्तस्य विद्याधरस्य समीपे समागत्यै-
वमब्रवीत्—महाभाग ! यदिवं मह्यमपि विद्यासाधनोपायं कथयेस्तदा—त्वद्विस्मृत-
विद्यैकाक्षरं तुभ्यं निवेदयामि । विद्याधरेणाभयकुमारवचनं प्रतिपन्नम् । अभय-

कुछ दूर गया. ही था कि नीचे गिर पडा । वहाँ से फिर उडा और फिर
आगे जाकर गिर पडा । इस तरह बारबार उडते और गिरते हुए उस विद्याधर
को अभयकुमारने देख लिया । देखकर उसने भगवान् से नमस्कार कर पूछा-
हे भदन्त ! कटे हुए पक्षवाले पक्षी की तरह यह विद्याधर बार २ आकाश
में उडता है और गिर पडता है सो इसका क्या कारण है ? तब भगवान्-ने
कहा—यह विद्याधर अपनी आकाश गामिनी विद्या का एक अक्षर भूल गया
है—अतः उडने का प्रयत्न करता हुआ भी यह उसमें सफल नहीं हो पा रहा
है । भगवान् के इस प्रकार वचन सुनकर अभयकुमार शीघ्र ही उस विद्याधर
के पास गया और बोला—महाभाग ! यदि तुम मुझे विद्या सिखा
देंगे तो मैं तुम्हारे लिये विद्या के विस्मृत हुए एक अक्षर को कह
दूंगा । अभयकुमार की इस बात को उस विद्याधरने मान लिया—तब अभय-

गये हुतो. ते आकाशमां उडये। तो धरे। पण थोडे दूर जधने नीचे पडी गये।
वणी इरीथी उडये, परन्तु थोडे दूर जधने इरी नीचे पडी गये। आ प्रमाणे
वारंवार उडतां अने पडतां ते विद्याधरने अलयकुमारने जेथे। तेनुं कारणु जणुवानी
तेने धंश थध तेणे महावीर प्रभुने वंशु। नभस्कार करीने आ प्रमाणे प्रश्न
पूछये—“हे लगवन् ! तूहेली पांभवाणा पक्षीनी जेभ आ विद्याधर वारंवार आका-
शमां उडे छे अने नीचे पडी जय छे. तेनुं कारणु शुं उथे ?

त्यारे महावीर प्रभुजे अलयकुमारने आ प्रमाणे जवाण आये।—हे अलय-
कुमार ! ते विद्याधर पोतानी आकाशगामिनी विद्याने अेक अक्षर भूली गये छे.
ते कारणे उडवाने प्रयत्न करवा छतां पण ते तेमां सक्षण थतो नथी.

लगवाननां जेवां वयने। सांलणीने अलयकुमार तुरत ज ते विद्याधरनी
पासे पछांची जये। तेणे ते विद्याधरने कहुं—“हे महाभाग ! जे तमे मने विद्या
साधवाने उपाय जतावे, तो हुं तमने आकाशगामिनी विद्याना मंत्रने विस्मृत
थध गयेथे। अेक अक्षर जतावी दडं विद्याधरे अलयकुमारनी ते वातने स्वीकार कर्ये।

कुमारस्य एकस्मादपि पदादनेकपदाभ्युहनशक्तिरासीत् । स विद्याधरकथितमन्त्रं श्रुत्वा विस्मृतमक्षरं तस्मै निवेदितवान् । स विद्याधरोऽपि तस्मै विद्यासाधनोपायमकथयत् । ततो विद्याधरो विस्मृतमक्षरमुपलभ्य स्वसमीहितप्रदेशं गतः । अनेन दृष्टान्तेनेदं बोध्यम्—यथा तस्य विद्याधरस्यैकाक्षरविस्मरणेन हीनाक्षरतादोषान्नभोगतिरुपरता, विद्या च व्यर्थतां याता तथैव हीनाक्षरे सूत्रे उच्चारितेऽर्थभेदः तद्देदात् क्रियाभेदः, क्रियाभेदे च मोक्षानवाप्तिः । ततो दीक्षाग्रहणादिकमपि वैयर्थ्यमापद्येतेति । एवमधिकाक्षरादिष्वपि दोषा बोध्याः । विस्तरभिया दृष्टान्ताभिधानाद् विरम्यते । ॥ सू० १४ ॥

कुमार ने कि जिसे 'सर्वाक्षर सन्निपाती' विद्या में निपुणता थी जिससे उनको एक भी पद से अनेक पदों को विचार करने की शक्ति प्राप्त थी उस विद्याधर के कथित मंत्र को सुनकर विस्मृत अक्षर उसे कह दिया । विद्याधरने भी अभयकुमार को विद्यासाधन के उपाय कह दिये । इस प्रकार अपनी विद्या के विस्मृत अक्षर को प्राप्त कर वह विद्याधर अपने यथेष्ट स्थान पर चला गया । अतः इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार उस विद्याधर की एक अक्षर विस्मृत हो जाने के कारण विद्या हीनाक्षरता के दोष से दूषित होने से नभोगति करने में असमर्थ हुई और व्यर्थ हुई उसी तरह हीनाक्षर करके सूत्र का उच्चारण से अर्थ में भेद हो जाता है, उस से क्रिया में भेद आने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो पाती है । इस से दीक्षा ग्रहण आदि कार्य भी सब व्यर्थ हो जाते हैं । इसी तरह

अभयकुमार पास 'सर्वाक्षरसन्निपाती' विद्या होवाथी तेजोभां जेवी शक्ति हुती के ते ओकाद पदने श्रवणु करीने पणु अनेक पदोने विचार करी शकता हुता. आ शक्तिना प्रभावथी विद्याधर कथित मंत्रने सांभणीने विस्मृत अक्षर तेले ते विद्याधरने जतावी दीधा. विद्याधरे पणु अभयकुमारने विद्या साधवाना उपाय जतावी दीधा. आ प्रकारे मंत्रना विस्मृत अक्षरने जणु लईने ते विद्याधर-पोताने यथेष्ट स्थाने आल्ये गये.

आ दृष्टान्त द्वारा जे वात सिद्ध थाय छे के-जेम ते विद्याधर पोतानी आकाशगामिनी विद्याने ओक अक्षर लूदी जवाने करणु तेनी विद्या हीनाक्षरताना दोषथी दूषित थवाने दीधे तेने नभोगति कराववाने असमर्थ जनी गछ, जेज प्रमाणु हीनाक्षर करीने सूत्रनु उच्चारणु करवाभां आवे ते अर्थ भां लेद पडी जय छे, अर्थ भां लेद पडी जवाने करणु क्रियाभां पणु लेद पडी जय छे अने क्रियाभां लेद पडी जवाने दीधे मोक्षनी प्राप्ति पणु थछ शकती नथी. ते करणु दीक्षाग्रहणु आदि कार्य पणु व्यर्थ जनी जय छे. जेज प्रमाणु सूत्रभां अक्षरने उभेरीने सूत्रनु

सम्प्रति नयभेदेन द्रव्यावश्यकभेदा उच्यन्ते—

मूलम्—नेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वाव-
स्सयं, दोणिण अणुवउत्ता आगमओ दोणिण दव्वावस्सयाइं, तिणिण
अणुवउत्ता आगमओ तिणिण दव्वावस्सयाइं, एवं जावइया अणुव-
उत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वावस्सयाइं । एवमेव ववहारस्सवि ।
संगहस्स णं एगो वा अणेगे वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा
दव्वावस्सयं दव्वावस्सयाणि वा, से एगे दव्वावस्सए । उज्जुसुयस्स
एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावस्सयं, पुहुत्तं नेच्छइ ।
तिण्हं सहनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु, कम्हा ? जइ जाणए
अणुवउत्ते न भवइ, जइ अणुवउत्ते जाणए ण भवइ तम्हा णत्थि
आगमओ दव्वावस्सयं । से तं आगमओ दव्वावस्सयं ॥सू० १५॥

अधिक अक्षर आदि करके सूत्र के उच्चारण में दोष आते हैं । इनके ऊपर भी दृष्टान्त है जिन्हें यहाँ शास्त्र के विस्तार के भय से नहीं लिखा है ।

भावार्थ—संक्षेप में आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक का स्वरूप सूत्र-कार के अभिप्रायानुसार इस प्रकार जानना चाहिये जिस साधुने आवश्यक सूत्र को सविधि अच्छी तरह से सीख लिया है—श्रुत गुण के अनुसार उसका अध्ययन कर लिया है—परन्तु उसमें उपयोग से वह रहित है—ऐसी स्थिति में वह साधु का आगम द्रव्यावश्यकरूप है । ॥सूत्र १४॥

उत्तरार्थ कर्त्रामां पणु देव रडेवो छे. तेनुं प्रतिपादन करतुं अेक दृष्टान्त आपी थकाय अेम छे, पणु शास्त्रने विस्तार थछव्वाना लयथी. अडी ते दृष्टान्त आप्युं नथी.

भावार्थ—आगमनी अपेक्षाये द्रव्यावश्यकतु स्वरूपं सूत्रकारना अभिप्राय अनुसार केवुं छे ते इवे संक्षिप्तमां प्रकट करवामां आवे छे—

वे साधुये आवश्यकसूत्रने विधिपूर्वक सारी रीते शीघ्री दीधु छे—श्रुतगुणानु-
सार तेनुं अध्ययन करी दीधुं छे परन्तु तेमां ते उपयोगथी विडीन छे; अेवी
परिस्थितिमां ते साधु आगमनी अपेक्षाये द्रव्यावश्यक कडेवाने योग्य गणुय छे ॥सूत्र १४

छाया-नैगमस्य खलु एकः अनुपयुक्त आगमत् एकं द्रव्यावश्यकम्, द्वावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे द्रव्यावश्यके, त्रयः अनुपयुक्ता आगमतः त्रीणि द्रव्यावश्यकानि । एवं यावन्तः अनुपयुक्ता आगमतः तावन्ति द्रव्यावश्यकानि । एवमेव व्यवहारस्यापि । संग्रहस्य खलु एका वा अनेके वा अनुपयुक्तो वा अनुपयुक्ता वा द्रव्यावश्यकं द्रव्यावश्यकानि वा, स एकं द्रव्यावश्यकम् । ऋजुसूत्रस्य एकः अनुपयुक्त

अब सूत्रकार नयों के भेद से द्रव्यावश्यक के भेद कहते हैं:—

“नैगमस्स णं एगो” इत्यादि । ॥सू० १५॥

शब्दार्थ-(नैगमस्स णं) नैगमनय की विवक्षा से (एगो) एक (अणुवउत्तो) अनुपयुक्त आत्मा (आगमओ) आगम की आश्रित करके (एगं दव्वावस्सयं) एक द्रव्यावश्यक है । (दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइं) दो अनुपयुक्त आत्माएं आगम की अपेक्षा लेकर दो द्रव्यावश्यक हैं । (तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइं) तीन अनुपयुक्त आत्माएं आगम की अपेक्षा लेकर तीन द्रव्यावश्यक हैं । (एवं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वावस्सयाइं) इसी तरह जितनी और भी आत्माएं अनुपयुक्त हैं उतने ही आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक हैं । (एवमेव व्यवहारस्स वि) इसी तरह से व्यवहारनयकी विवक्षा से जानना चाहिये । (संग्रहस्स णं एगो वा अणोगो वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दव्वावस्सयं दव्वावस्सयाणि वा से एगो दव्वावस्सए) संग्रहनय की विवक्षा से एक, अनुपयुक्त आत्मा एक द्रव्यावश्यक तथा अनेक द्रव्यावश्यक हैं’ ऐसा जो कथन नैगमनय और व्यवहार

इसे सूत्रकार नयाना लेहनी अपेक्ष से द्रव्यावश्यकता लेहोनुं कथन करे छ,

“नैगमस्स णं एगो” इत्यादि—

शब्दार्थ—(नैगमस्स णं) नैगम नयनी दृष्टिये विचार करवामां आवे तो (एगो) एक (अणुवउत्तो) अनुपयुक्त आत्मा (आगमओ) आगमने आश्रित करीने (एगं दव्वावस्सयं) एक द्रव्यावश्यक छे, (दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइं) दो अनुपयुक्त आत्माओं आगमनी अपेक्षासे दो द्रव्यावश्यक छे, (तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइं) त्रणु अनुपयुक्त आत्माओं आगमनी अपेक्षासे त्रणु द्रव्यावश्यक छे, (एवं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वावस्सयाइं) सेव प्रमाणे णीणं नेटला आत्माओं अनुपयुक्त छे, सेटला आगमनी अपेक्षासे द्रव्यावश्यक छे, (एवमेव व्यवहारस्स वि) व्यवहारनयनी दृष्टिये विचारवामां आवे तो तणु आ विषयने अनुलक्षीने उपर कुण्णनुं व कथन समञ्जुं, (संग्रहस्स णं एगो वा अणोगो वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दव्वावस्सयं दव्वावस्सयाणि वा से एगो दव्वावस्सए) संग्रह नयने आधारे विचार करवामां आवे तो “एक अनुपयुक्त आत्मा आगमनी अपेक्षासे एक द्रव्यावश्यक

आगमत् एक द्रव्यावश्यकम्, पृथक्त्वं नेच्छति । त्रयणां शब्दनयानां ज्ञायकः अनुपयुक्तः अवस्तु, कस्मात् ? यदि ज्ञायकोऽनुपयुक्तो न भवति, यदि अनुपयुक्तो ज्ञायको न भवति तस्माद् नारितं आगमतो द्रव्यावश्यकम् । तदेतदागमतो द्रव्यावश्यकम् ॥ सू० १५ ॥

टीका—‘नेगमस्स णं’ इत्यादि—

जिनशासने हि सर्वमपि सूत्रमर्थश्च नयैर्विचार्यते । तत्र न्याः सप्तविधाः ।

नय की दृष्टी से किया जाता है वह सब एक द्रव्यावश्यक है। क्योंकि संग्रहनय भिन्न २ प्रकार की वस्तुओं को तथा अनेक व्यक्तियों को किसी भी सामान्य तत्त्व के आधार पर एक रूप में संकलित करता है। (उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावसयं पुहुत्तं नेच्छइ) ऋजु सूत्र नयकी दृष्टी में एक अनुपयुक्त आत्मा आगम की अपेक्षा लेकर एक द्रव्यावश्यक है। यह नय भेदवाद को नहीं चाहता है। (तिण्णं सहनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु, कस्मा ? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ, जइ अणुवउत्ते, जाणए न भवइ) तीन शब्दनयों की दृष्टि में जो ज्ञायक होता है वह यदि तों अनुपयुक्त है, तो वह अवस्तुस्वरूप है। क्यों कि ज्ञायक अनुपयुक्त नहीं होता। यदि वह अनुपयुक्त है तो वह ज्ञायक नहीं है। इसलिये आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक जो कहा गया है वह नहीं है। (से तं आगमओ दव्वावसयं) इस तरह आगम को आश्रित करके प्रकान्त द्रव्यावश्यक

छे, तथा अनेक अनुपयुक्त आत्माओ अनेक द्रव्यावश्यक छे।” आ प्रकारनुं जे जे कथन नेगम नय अने व्यवहार नयनी अपेक्षाओ करवामां आओ छे, तेने पहिले अहीँ अधाने ओके द्रव्यावश्यक जे कहेवा जेछओ, कारण के संग्रहनय जुहा जुहा प्रकारनी वस्तुओने तथा अनेक व्यक्तियोंने केछ यणु सामान्य तत्त्वने आधार लधने ओके रूपमां संकलित करे छे। (उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावसयं पुहुत्तं नेच्छइ) ऋजुसूत्र नयनी दृष्टिओ ओके अनुपयुक्त आत्मा आगमनी अपेक्षाओ ओके द्रव्यावश्यक छे। आ नय लेखलावने आहुतो नथी। (तिण्णं सहनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु, कस्मा ? जइ जाणए अणुवउत्ते, न भवइ, जइ अणुवउत्ते, जाणए न भवइ) तणु शब्द नयेनी दृष्टिओ ओवुं मानवामां आवे छे के—जे ज्ञायक होय छे ते जे अनुपयुक्त होय तो ते अवस्तु स्वरूप छे, कारण के ज्ञायक अनुपयुक्त संलवी शके जे नहीँ जे ते अनुपयुक्त होय, तो ते ज्ञायक जे होछ शके नहीँ। ते कारणे आगमने आश्रय लधने जे द्रव्यावश्यक गताववामां आवेल के तेने सहलाव जे नथी। (से तं आगमओ दव्वावसयं) आ प्रकारनुं आगमने आश्रित करीने प्रकान्त (प्रस्तुत विषयरूप) द्रव्यावश्यकनुं स्वरूप छे।

उक्तं च—

नैगम संग्रहव्यवहार, उज्जुसुए चैव होइ बोद्धव्वे ।

सद्दे य समभिरूढे, एवंभूए य मूलनया ॥१॥

छाया—नैगमः संग्रहो व्यवहार ऋजुसूत्रश्चैव भवति बोद्धव्यः ।

शब्दश्च समभिरूढ एवंभूतश्च मूलनयाः ॥इति॥

तत्र—नैगमनयमाश्रित्य आगमती द्रव्यावश्यकभेदमाह—

का स्वरूप है।—

जिनशासन में समस्त सूत्र और अर्थों का विचार नयों को लेकर किया गया है। ये नय मूल में सात हैं कहाभी है (१) नैगम (२) संग्रह (३) व्यवहार (४) ऋजु सूत्र (५) शब्द (६) समभिरूढ (७) एवंभूत। इनमें से नैगमनय को लेकर सूत्रकार आगम की अपेक्षा से द्रव्यावश्यक के भेदों को कहते हैं—नैगमनय का तात्पर्य उन विचारों से है कि जिनके बल पर पदार्थ का बोध विविध प्रकार से होता है। “नैको गमो बोधमार्गः यस्य सः नैगमः” बोधका अनेक उपाय है वे नैगम हैं इस व्युत्पत्ति के अनुसार यही अर्थ लभ्य होता है।

इस नैगम नयनी अपेक्षा से उपयोग वर्जित एकदेवदत्त आदि व्यक्ति एक आगम द्रव्यावश्यक है। दो अनुपयुक्त देवदत्त और यज्ञदत्त नाम के व्यक्ति दो आगम द्रव्यावश्यक हैं। अनुपयुक्त देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुदत्त नाम के व्यक्ति ३ आगमद्रव्यावश्यक हैं। इसी तरह जितने भी अनुपयुक्त व्यक्ति हैं वे सब उतने ही आगमद्रव्यावश्यक इस नय की दृष्टि

जिन शासनमां समस्त सूत्र अने अर्थेना जुहा जुहा नयने आधार लधने विचार करवामां आव्ये। छे. ये नय सुष्यत्वे सात क्हा छे. (१) नैगम नय, (२) संग्रह नय, (३) व्यवहार नय, (४) ऋजुसूत्र नय, (५) शब्द नय, (६) समभिरूढ नय अने (७) एवंभूत नय.

पडेकां तो नैगम नयनी मान्यता अनुसार सूत्रकार आगमनी अपेक्षाये द्रव्यावश्यकता लेहानुं निरूपण करे छे. नैगम नयने लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—जे विचारने आधारे पदार्थने बोध विविध थाय छे, ते विचारधारानुं नाम नैगम नय छे. नैको गमो बोधमार्गः यस्य सः नैगमः” आ व्युत्पत्ति अनुसार उपर्युक्त अर्थ न प्राप्त थाय छे,

आ नैगमनयनी अपेक्षाये उपयोग वर्जित एक देवदत्त आदि व्यक्ति एक आगम द्रव्यावश्यक छे. उपयोगरहित (अनुपयुक्त) देवदत्त अने यज्ञदत्त नामनी ये व्यक्ति ये आगमद्रव्यावश्यक छे. देवदत्त, यज्ञदत्त अने विष्णुदत्त नामनी त्रण अनुपयुक्त व्यक्तियो त्रण आगमद्रव्यावश्यक छे. अत्र प्रमाणे जेटदी अनुपयुक्त व्य

नैगमस्स णं' इत्यादिना' नैको गमोऽर्थमार्गो ऽस्य स नैगमः । पृषोदरा-
दित्वात् ककारस्य लोपः बहुविधवस्त्वबोधक इत्यर्थः । तस्य नैगमस्य खलु
एको देवदत्तादिः अनुपयुक्तः=उपयोगवर्जितः, आगमत एकं द्रव्यावश्यकम् ।
द्वौ देवदत्तयज्ञदत्तावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे द्रव्यावश्यके । त्रयो देवदत्तयज्ञदत्त-
विष्णुमित्रा अनुपयुक्ता आगमतस्त्रीणि द्रव्यावश्यकानि । 'एवं' अनेन प्रकारेण
भावन्तः अनुपयुक्ताः, आगमतः तावन्ति द्रव्यावश्यकानि अयं भावः—नैगमनयः
सामान्यरूपं विशेषरूपं च वस्तु अधिगमयति=बोधयति । न तु संग्रहवत्सामान्यमेव ।
तत्र—विशेषरूपं भेदमाश्रित्य देवदत्तादि प्रत्येकव्यक्तिभेदेन भावन्तोऽनुपयुक्ताः भवन्ति
सर्वाण्यस्य द्रव्यावश्यकानि । न पुनःसंग्रहवत्सामान्यवादित्वादेवमेव द्रव्यावश्यकम् इति।

में हैं। तात्पर्य इसका यह है कि—नैगमनय सामान्य और विशेषरूप अर्थ को
कहता है—जिस प्रकार संग्रहनय सामान्यरूप ही अर्थ है ऐसा कहता है, उस
प्रकार से यह नय नहीं कहता। यह तो विशेष को भी विषय करता है।
इसकी मान्यतानुसार पदार्थ सामान्य और विशेष उभयरूप है वह न सामान्यरूप
है और न केवल विशेषरूप ही। इस तरह विशेषरूप भेद का आश्रय करके
देवदत्त आदि जितने भी अनुपयुक्त व्यक्ति हैं उतने ही आगम द्रव्यावश्यक
इस नय की दृष्टि से हैं सामान्यवादी होने के कारण संग्रहनय की तरह
एक ही द्रव्यावश्यक नहीं हैं। संग्रहनय से गृहीत पदार्थों को विधिपूर्वक-
विभाग जिस अभिप्राय के द्वारा किया है उस अभिप्राय का नाम व्यवहार
नय है। इस नय की मान्यतानुसार सामान्य कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि
यह सामान्य का निराकरण करता है। इसके प्रतिपादन का विषय विशेष है।

कितनेो होय छे तेओो आ नयनी मान्यता अनुसार ओटला न आगमद्रव्यावश्यक
छे. आ कथननुं तात्पर्य नीचे प्रमाणे छे. नैगम नय सामान्य अने विशेषरूप
अर्थने जातावे छे. जेवी रीते संग्रहनय "सामान्यरूप न अर्थ छे," ओपुं कहे छे,
ओ प्रकारे आ नय कहेतो नथी. ओ तो विशेषरूपे पणु अर्थने जातावे छे. नैगम
नयनी मान्यता अनुसार तो पदार्थ केवल सामान्यरूप पणु नथी, केवल विशेषरूप
पणु नथी, परन्तु सामान्य अने विशेषरूप ओटले के उलयरूप छे. आ रीते विशेष-
रूप लेहनी अपेक्षाओ देवदत्त आदि जेटला अनुपयुक्त पुरषो छे, ओटलां न
आ नयनी दृष्टिओ आगम द्रव्यावश्यक छे—सामान्यवादी होवाने कारणे संग्रहनयनी
जेम ओक न द्रव्यावश्यक नथी, संग्रहनयथी गृहीत पदार्थोना जे अलिप्रायद्वारा
विधिपूर्वक विभाग करवाभां आवे छे, ते अलिप्रायनुं नाम व्यवहार नय छे. आ
नयनी मान्यता अनुसार कोछ वस्तु सामान्य नथी, कारणे के ते सामान्यनुं निरा-

एवं व्यवहारस्यापि—संग्रहनयेन गृहीतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसंधिना क्रियते स व्यवहारः । अर्थात् विशेषप्रतिपादनपरो व्यवहारनय इत्यर्थः । परसंग्रहनयेन गृहीतार्थविषये व्यवहारोदाहरणं यथा—यत् सत्, तद् द्रव्यं पर्यायो वेति । अपरसंग्रहगृहीतार्थविषये व्यवहारोदाहरणं यथा—यद् द्रव्यं तल्लीवादिषड्विधम् । स पर्यायः द्विविधः—क्रमभावी सहभावी चेति । एवं यो जीवः स मुक्तः संसारी-

अतः यह उसके प्रतिपादन करने में ही तत्पर रहता है । संग्रहनय के दो भेद हैं—१, पर संग्रहनय और दूसरा अपर संग्रहनय—। जड चेतनरूप अनेकद्रव्यक्रियाओं में जो सद्रूप एक सामान्यतत्त्व है उसी पर दृष्टि रखकर दूसरे विशेषों को ध्यान में न रखते हुए सभी व्यक्तियों को एक रूप मानकर ऐसा जो विचार होता है कि संपूर्ण जगत् सद्रूप है क्यों कि—सत्ता से रहित कोई वस्तु है ही नहीं । इसी का नाम परसंग्रहनय है । इस पर संग्रहनय से गृहीत विषय के विषय में व्यवहार ऐसा विचार करता है कि जो सद्रूप है वह द्रव्य है या पर्याय है । यदि द्रव्य सत् है जो कि परसंग्रहनयके विषय की अपेक्षा ऊपर संग्रहनय का विषय पडता है तो क्या जीव द्रव्य है, या अजीव द्रव्य है । क्योंकि द्रव्य के जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस प्रकार से ६ भेद हैं । इन में जीव को छोड़कर पुद्गल आदि सब अजीव द्रव्य के भेद हैं । यदि पर्याय सत् है—तो वह दो प्रकार की है (१) क्रमभावी और दूसरी सहभावी । यदि जीवद्रव्य सत् है तो

कारण करे छे, तेने प्रतिपादन करवाने विषय विशेष छे, तेथी ते तेनुं प्रतिपादन करवाने न तत्पर रहे छे. संग्रहनयना जे लेहे छे—(१) पर संग्रहनय अने (२) अपरसंग्रहनय जड चेतनरूप अनेक वस्तुओमां जे सद्रूप अने सामान्य तत्त्व छे. अना पर न नजर नाणीने पीछे विशिष्टताओने ध्यानमां लीधा विना सधणी वस्तुओने अकल्प मानीने ओवे जे विचार करवामां आवे छे के संपूर्ण जगत सद्रूप छे, कारण के सत्ता (अस्तित्व)थी रहित कोछ पदार्थ छे नही, तेनुं न नाम परसंग्रहनय द्वारा गृहीत पदार्थना विषयमां व्यवहार ओवे विचार करे छे के जे सद्रूप छे ते द्रव्य छे के पर्याय छे ? जे ते द्रव्यसत् रूप होय तो ते परसंग्रहनयने विषय होवाने जहले अपरसंग्रहनयने विषय गणी शक्य छे. जे ते द्रव्यसत् रूप होय तो शुं ते अणुद्रव्यरूप छे के अणुद्रव्यरूप छे ? कारण के द्रव्यना पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश अने काल, आ प्रकारे ६ लेहे पडे छे. तेमांथी अणु सिवायना जे पांच लेहे कहे छे ते अणुद्रव्यना लेहे छे. जे पर्यायसत् होय तो ते पर्याय जे प्रकारनी होय छे—(१) क्रमभावी अने (२) सहभावी.

च," इत्यादि । तस्य एवमेव=नैगमवदेव एको देवदत्तादिरनुपयुक्त आगमत
एकं द्रव्यावश्यकम्, इवानुपयुक्तौ आगतौ द्वे द्रव्यावश्यकं, त्रयाऽनुपयुक्ता
आगमतस्त्रीणि द्रव्यावश्यकानि । एवं यावन्तोऽनुपयुक्तास्तावन्ति आगतौ द्रव्या-
वश्यकानि विज्ञातव्यानि । विशेषार्थप्रतिपादकतया नैगमव्यवहारयोः साम्यम्,
अतःक्रमप्राप्तं संग्रहमतिक्रम्य ग्रन्थलाघवार्थं व्यवहारोपन्यासो नैगममनुकृतः । सम्प्रति

कौन सा जीवद्रव्य संसारी जीव या युक्त जीव ? इस तरह यह व्यवहार
नय वहाँ तक भेद करता चला जाता है कि फिर जिस से और भेद नहीं
हो सके । जिस विधि से संग्रह किया जाता है उसी विधि से उनका वि-
भाग किया जाता है । इस प्रकार नैगमनय की तरह ही अनुपयुक्त एक
देवदत्त आदि व्यक्ति आगम द्रव्यावश्यक है । अनुपयुक्त दो व्यक्ति दो आगम
द्रव्यावश्यक हैं । अनुपयुक्त तीन व्यक्ति तीन आगम द्रव्यावश्यक हैं । इस
तरह जितने भी आगम में अनुपयुक्त व्यक्ति हैं वे सब उतने ही आगम द्रव्या-
वश्यक हैं । जिस प्रकार विशेषरूप अर्थ की प्ररूपणा नैगमनय करता है उसी
प्रकार से उसकी प्ररूपणा व्यवहारनय भी करता है—एता ता इन दोनों में
समानता है । इसीलिये सूत्रकारने क्रमप्राप्त संग्रहनय को छोड़कर शास्त्र की
लघुता निमित्त व्यवहारनय का उपन्यास संग्रहनय से पहिले और नैगमनय
के पीछे किया है । संग्रहनय की विचारधारा के अनुसार आगम द्रव्यावश्यक
एक ही है—वह इस प्रकार से सामान्य मात्र को विषय करनेवाला जो परा-

ले एवद्रव्य सत् होय तो क्युं एवद्रव्य एवुं छे—संसारी एवद्रव्य एवुं छे के
युक्तः एवद्रव्य एवुं छे ? आ प्रकारे आ व्यवहारनय त्यां सुधी लेह करतो न
नय छे, के छेवटे एभांथी अन्ये केछे लेह पाडी शक्य न नही, ने विधिथी
संग्रह करवामां आवे छे, एव विधिथी तेमने विभाग करवामां आवे छे, आ
प्रकारे नैगमनयनी एमन अनुपयुक्त एक देवदत्त आदि व्यक्ति एक आगम
द्रव्यावश्यक छे, अनुपयुक्त जे व्यक्ति जे आगमद्रव्यावश्यक छे, अनुपयुक्त त्रय
व्यक्ति त्रय आगमद्रव्यावश्यक छे, एव प्रमाणे नेटली आगममां अनुपयुक्त व्य-
क्तिजो होय, एटलां न आगमद्रव्यावश्यक समजवा, ने प्रकारे नैगमनय विशेष
रूप अर्थनी प्ररूपणा करे छे, एव प्रमाणे तेनी प्ररूपणा व्यवहारनय पथु करे छे,
एटला पुरती ए एनेमां समानता छे, ते कारणे सूत्रकारे क्रमप्राप्त संग्रहनयने
छोडीने शास्त्रनी लघुताने निमित्त नैगमनयनी पछी एने संग्रहनयना पहिलां व्य-
वहारनयने उपन्यास कयो छे,

संग्रहनयनी मान्यता अनुसार आगमद्रव्यावश्यक एक न छे, ते आ प्रमाणे
समजवुं—सामान्य मात्रने विषय करेनारी ने परामेश (अभिप्राय-मान्यता) छे, तेह

संग्रहनयमतेन ग्राह- 'संग्रहस्स' इत्यादिना । संग्रहस्य, सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः । स द्विविधः-परोऽपरश्च । सर्वं वस्तु एकं, सरूपत्वेनाविशेषात् । अयमर्थः-सर्वस्मिन् वस्तुनि सत्ता विद्यते, सा चैकैव, अतस्तां सत्तामाश्रित्य सर्वं वस्तु एकं सदित्युच्यते । सत्ताख्यं महासामान्यमाश्रित्य परसंग्रहः प्रोक्तः । अपरसंग्रहस्तु अवान्तरसामान्यं द्रव्यत्वपर्यायत्वादिकमाश्रित्य भवति । यथा- 'धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वाभेदात्' इत्यादि । अयमर्थः-

मर्श है उसका नाम संग्रहनय है । यह संग्रहनय पर सामान्य और अपरसामान्य को विषय करने की दृष्टि से दो प्रकार का है-परसामान्य को विषय करनेवाला-परसंग्रहनय और अपरसामान्य को विषय करनेवाला अपरसंग्रहनय है । सत्ता नाम का महा सामान्य परसामान्य है । द्रव्यत्व, पर्यायत्व आदि जो अवान्तर सामान्य है वह अपरसामान्य की अविशेषता से एक है-अर्थात् ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जिस में सत्ता नहीं हो अतः-अब सब में सत्ता विद्यमान है और वह सत्ता एक ही है-तब इस सत्ता को लेकर सब वस्तुएँ एक रूप हैं । यह परसंग्रहनय की विचार धारा है । अपरसंग्रहनय की विचारधारा अवान्तर सामान्य को लेकर चलती है-जैसे धर्म, अधर्म आकाश काल, पुद्गल और जीव इन द्रव्यों में द्रव्यत्वजाति की अपेक्षा अभेद होने से एकता है । क्यों कि इनमें इसी से द्रव्य द्रव्य ऐसा

नाम संग्रहनय छे । ते संग्रहनय परसामान्य अने अपरसामान्यने विषय करवाणी दृष्टये छे प्रकारने छे । पर सामान्यने विषय करनारे, परसंग्रहनय छे अने अपरसामान्यने विषय करनारे अपरसंग्रहनय छे सत्ता नामना महासामान्यने परसामान्य कहे छे । द्रव्यत्व, पर्यायत्व, आदि जे अवान्तर सामान्य छे, तेने अपरसामान्य कहे छे । ज्यारे जेवो विचार करवामा आवे छे के समस्त वस्तु सत्ता सामान्यनी अविशेषतानी अपेक्षाय्जे एक जे छे-जेठले के जेवी केछ वस्तु जे नथी के जेमां सत्ता जे (अस्तित्वज) न होय । आ रीते सधणी वस्तुयोमां सत्ता विद्यमान छे अने ते सत्ता एक जे छे, जे जे सत्तानी दृष्टिये विचार करवामा आवे तो सधणी वस्तुयो एक रूप जे छे । आ प्रकारनी परसंग्रहनयनी विचारधारा (मान्यता) छे ।

अपरसंग्रहनयनी विचारधारा अवान्तर सामान्यनी अपेक्षाय्जे आवे छे-जेमके धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अने जीव, आ द्रव्योंमां द्रव्यत्वजातिनी अपेक्षाय्जे अलेह होवाथी एकता छे । कारण के तेमनामां तेना द्वारा जे द्रव्याद्रव्य जेवुं ज्ञान अने द्रव्याद्रव्य जेवी वचनप्रवृत्ति थाय छे । जेवा वातने

लोके हि धर्मो द्रव्यम् अधर्मो द्रव्यम्, आकाशो द्रव्यं, कालो द्रव्यं, पुद्गलो द्रव्यं-
जीवो द्रव्यम्, इत्येवमुच्यते, अतो ज्ञायते-धर्मादौ द्रव्यत्वं वर्तत इति । एक-
मेव द्रव्यत्वं धर्मादिषु पदसु विद्यते । द्रव्यत्वेन धर्मादीनामेकत्वं संगृह्यते । एवं
चेतनाचेतनपर्यायाणां सर्वेषामेकत्वं संगृह्यते, पर्यायत्वाविशेषादिति । एवंभूतो
यः संग्रहो न्यस्तस्यापेक्षया खलु एको वा अनेके वा अनुपयुक्तो वा अनुपयुक्ता
वा यद् आगतो द्रव्यावश्यकं द्रव्यावश्यकानि वा । तत् किमि-याह—‘से एगे’
इति । तदेकं द्रव्यावश्यकम् । अस्या माशयः—संग्रहनयो हि सामान्यस्यैव ग्राहकः
न तु विशेषाणाम्, तस्मात् सामान्यव्यतिरेकेण विशेषसिद्धेर्यानि कानिचिद् द्रव्या-

ज्ञान और द्रव्य, द्रव्य ऐसीवचन प्रवृत्ति होती है । इसी बात को “धर्मो द्रव्यं
अधर्मो द्रव्यं, आकाशो द्रव्यं, कालो द्रव्यं पुद्गलो द्रव्यं, जीवो द्रव्यं” इन पदोंद्वारा
प्रगट किया है, इस तरह अनुवृत्ति प्रत्यय होने से यह प्रतीत होता है कि इनमें द्रव्यत्व
है । और यह द्रव्यत्व धर्मादिक ६ द्रव्यव्यक्तियों में एक ही है । इसलिये इस
द्रव्यत्व की अपेक्षा धर्मादिक द्रव्यों में एकता का संग्रह हो जाता है । इसी
तरह से सचेतन और अचेतन द्रव्यों की जितनी भी पर्यायें हैं उन सब में
भा पर्यायत्वरूप सामान्य की अपेक्षा से एकता का संग्रह हो जाता है । इस
प्रकार का जो यह संग्रहनय है । उस की अपेक्षासे चाहे तो एक आगम
में अनुपयुक्त देवदत्तादि व्यक्ति हों चाहे अनेक देवदत्तादि व्यक्ति हों वे
सब एक ही आगमद्रव्यावश्यक हैं । तात्पर्य इसका यह है—कि संग्रहनय एक
सामान्यमात्र का ही ग्राहक है, विशेषों का नहीं । इसलिये विशेष की
अपेक्षा जो अनेक आगम द्रव्यावश्यक हैं वे सब जब सामान्य के अतिरिक्त

“धर्मो द्रव्यं अधर्मो द्रव्यं, आकाशो द्रव्यं, पुद्गलो द्रव्यं जीवो द्रव्यं” આ પદો
દ્વારા પ્રગટ કરવામાં આવી છે. આ રીતે અનુવૃત્તિ પ્રત્યય હોવાથી એવું લાગે છે કે
તેમનામાં દ્રવ્યત્વ છે. અને તે દ્રવ્યત્વ ધર્માદિક ૬ દ્રવ્યવ્યક્તિઓમાં (પદાર્થોમાં)
એક જ છે. તેથી આ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ધર્માદિક દ્રવ્યોમાં એકતાનો સંગ્રહ થઈ
જાય છે. એજ પ્રમાણે સચેતન અને અચેતન દ્રવ્યોની જેટલી પર્યાયો છે, તે સઘળી
પર્યાયોમાં પણ પર્યાયત્વરૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ એકતાનો સંગ્રહ થઈ જાય છે.
આ પ્રકારનો સંગ્રહનય છે તેની અપેક્ષાએ એક આગમમાં અનુપયુક્ત દેવદત્ત આદિ
વ્યક્તિ પણ એક જ આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે, અને અનુપયુક્ત દેવદત્ત આદિ અनेક
વ્યક્તિઓ પણ એકજ આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે સંગ્રહ-
નય એક સામાન્ય માત્રનો જ ગ્રાહક છે. વિશેષોનો ગ્રાહક નથી. તેથી વિશેષની
અપેક્ષાએ જે અनेક આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે, તે બધાં જ નો સામાન્ય છે—વિશેષોરૂપ

व्यक्तानि तानि सर्वाणि सामान्यापेक्षया सत्ताया एकत्वादेवमेव, अत संग्रह-
नयमते एकमेव द्रव्यावश्यकम् । इति ।

अथ ऋजुसूत्रमते आह—‘उज्जुसुयस्स’ इत्यादि । ऋजुसूत्रस्य ऋजु=वर्त-
मानक्षणस्थायि पर्यायमात्रं प्राधान्यतः सूत्रयति—सूचयतीति ऋजुसूत्रः । यथा

विशेष हैं ही—नहीं तो उसकी अपेक्षा जायमान ये अनेक आगम द्रव्यावश्यक
सत्ता की एकता के कारण एक ही हैं । इसलिये संग्रहनय के मत में एक
ही द्रव्यावश्यक है । अब सूत्रकार ऋजु सूत्रनय की अपेक्षा आगम द्रव्यावश्यक
का विचार करते हैं—वर्तमानक्षण स्थायि पर्यायमात्रं को जो प्रधानता से विषय
करता है उसका नाम ऋजु सूत्रनय है । नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन
नय पदार्थों की विविध अवस्थाओं की ओर ध्यान नहीं देते हैं । इसलिये
उन्हें क्या पता कि वर्तमान में पदार्थ का क्या रूप है । इसीलिये इन तीन
नयों को द्रव्यार्थिकनय माना गया है । क्यों कि इनमें द्रव्य को ही विषय
करने की मुख्यता है । पर्यायों की तरफ इनका लक्ष्य नहीं है—क्योंकि इन
की दृष्टि में अविवक्षित है—गौण—हैं । परन्तु ऐसा तो हो ही नहीं सकता
कि विचारक का ध्यान केवल द्रव्य पर ही रहे, पर्याय पर न जावे । विचा-
रक के विचार जिस प्रकार विविध पदार्थों का उनकी विविध अवस्थाओं
की विवक्षा किये बिना वर्गीकरण और विभाग करते हैं उसी प्रकार वे उन
पदार्थों की विविध अवस्थाओं को भी अपने लक्ष्य में रखते हैं । किंतु

न थी, तो तेनी अपेक्षासे जायमान ते अनेक आगमद्रव्यावश्यक सत्तानी एकताने
कारणसे एक न छे । तेथी संग्रहनयनी मान्यता अनुसर तो एकन द्रव्यावश्यक छे

इसे सूत्रकार ऋजुसूत्रनयनी अपेक्षासे आगमद्रव्यावश्यकनो विचार करे छे—
वर्तमान क्षणस्थायी पर्यायमात्रनो न ने मुख्यत्वे विचार करे छे, ते नयनं नाम
ऋजुसूत्रनय छे । नैगम, संग्रह अने व्यवहार, आशु प्रकारना नय, पदार्थनी
विविध अवस्थासे तरङ्ग ध्यान देतां नथी, तेथी ते नयने आधारे अपुं केवी रीते
जाणी शक्य के वर्तमानमां पदार्थानुं केपुं स्वरूप छे ? ते कारणे ते त्रय नयने
द्रव्यार्थिक नय मानवामां आवेल छे । कारणे के तेमां द्रव्यने न विषय करवानी—
द्रव्यनो न विचार करवानी—प्रधानता होय छे । परन्तु पर्यायनी तरङ्ग तेमनुं लक्ष्य
होतुं नथी, कारणे के ते तो तेमनी दृष्टिसे अविवक्षित अथवा गौण छे । पण वि-
चारकनुं ध्यान केवण द्रव्य पर न रहे अने पर्याय पर न जाय अपुं तो संलवी
शक्तुं नथी । विचारकना विचारे ने प्रमाणे विविध पदार्थानुं—तेमनी विविध अव-
स्थासेनी विवक्षा कर्या विना—ध्यानमां लीधा विना नेम वर्गीकरण अने विभागी-
करण करे छे, अने प्रमाणे तेसे विविध पदार्थनी विविध अवस्थासेने पण

‘संप्रति सुखविवर्तोऽस्ति’ इत्यादि । अनेन वाक्येन हि वर्तमानक्षणवर्ति सुखा-
ख्यं पर्यायमात्रं प्रदर्श्यते । तस्य मते-एको देवदत्तादिः अनुपयुक्तः, आगमत् एकं
द्रव्यावश्यकम् । अयं भावः-ऋजुसूत्रनयो हि वर्तमानकालिकमेव पर्यायवस्तु
बोधयति, नातीतं विनष्टत्वात्, नाप्यनागतमनुत्पन्नत्वात् । वर्तमानकालिकमपि

विविध अवस्थाओं का सम्मेलन द्रव्य केाटि में आता है पर्याय केाटि में आता
है क्योंकि पर्याय एक क्षणवर्ती होती है । उसमें भी वर्तमान का नाम ही
पर्याय है । क्योंकि अतीत विनष्ट और अनागत अनुत्पन्न होने के कारण
उनमें पर्याय का व्यवहार नहीं हो सकता । इसी से ऋजु सूत्रनय का विषय
वर्तमान पर्यायमात्र कहा गया है । आशय यह है कि यह नय विद्यमान
अवस्थारूप से ही वस्तु को स्वीकार करता है । द्रव्य उसमें सर्वथा अविवक्षित
रहता है । अतः पर्याय संबन्धी जितने भी विचार होते हैं वे सब ऋजु
सूत्रनय की श्रेणि में आते हैं । जैसे “संप्रति सुखविवर्तोऽस्ति” इस समय सुखयुक्त है
इस वाक्य से वर्तमानक्षणवर्ती सुख नाम की पर्यायमात्र दिखालाई गई है । इसके
मत में एक अनुपयुक्त देवदत्तादि एक आगम द्रव्यावश्यक है । यह अभी
स्पष्ट किया गया है कि वर्तमानकालीन पर्याय वस्तु को ही यह नय
विषय करता है अतीत अनागत पर्यायों को नहीं-क्योंकि अतीत पर्याय विनष्ट
है और अनागत पर्याय अनुत्पन्न हैं । वर्तमान कालीन पर्याय में भी जो

लक्ष्यमां राषे छे. परंतु विविध अवस्थाओंनुं सम्मेलन द्रव्यकेाटिमां आवे छे-
पर्यायकेाटिमां आवतुं नथी. वास्तवमां तो अेक पर्याय न पर्यायकेाटिमां आवे छे,
कारणु के पर्याय अेक क्षणवर्ती होय छे. तेमां पणु वर्तमाननुं नामन पर्याय छे.
कारणु के अतीत (भूतकालिन) विनष्ट होय छे अने अनागत (अविष्य कालिन)
अनुत्पन्न होय छे. ते कारणु तेमनामां पर्यायने वदेवार थछ शकतो नथी. ते
कारणु ऋजुसूत्र नयने विषय वर्तमान पर्याय मात्र न कह्यो छे. आ कथनने भावार्थ
अे छे के आ नय विद्यमान अवस्था इपे न वस्तुने स्वीकार करे छे. द्रव्य तेमां
सर्वथा अविवक्षित रहे छे. तेथी पर्याय संबंधो नेटलां विचारो होय छे, ते
बंधां ऋजुसूत्रनयनी श्रेणिमां आवी नय छे. नेमके “संप्रति सुखविवर्तोऽस्ति”
आ वाक्यथी वर्तमान क्षणवर्ती सुख नामनी पर्याय मात्र न गताववामां आवी
छे. ऋजुसूत्रनयनी मान्यता अनुसार अेक अनुपयुक्त देवदत्तादि अेक आगमद्रव्या-
वश्यक छे. अे वात तो आगण स्पष्ट करवामां आवी थूकी छे के आ नय वर्तमान
कालिन पर्यायवस्तुने न विषय करे छे-अतीत अनागत पर्यायने विषय करतो नथी
कारणु के अतीत (भूतकालिन) पर्यायो विनष्ट होय छे अने अनागत (अविष्य

स्वकीयमेव बोधयति स्वकार्यसाधकत्वात् स्वधनवत्, न तु परकीयं, स्वकार्यसाधकत्वात् परधनवत्, तस्मादेको देवदत्तादिरनुपयुक्तोऽस्य मते आगत एकं द्रव्यावश्यकम्, इति । अयं नयः—पृथक्त्वं नेच्छति—अतीतानागतभेदतः परकीयभेदतश्च पार्थक्यं नामिलषति, किंतु वर्तमानकालिकं स्वगतमेव वस्तु, तच्चैकमेव । तस्मादेकमेव द्रव्यावश्यकमेतन्नयमते ।

शब्दादींस्त्रीन् नयान् समाश्रित्य कथयति—‘तिष्ठं सहनक्षणं’ इत्यादि । त्रयाणां शब्दप्रधाना नयाः शब्दनयाः=शब्दसमभिरूढैवम्भूता, एते हि अर्थावगमकारणत्वात् शब्दस्यैव प्राधान्यमिच्छन्ति, न त्थस्य । शब्दादेवार्थप्रतीतेः, तेषां

अपनी पर्याय है उसे ही कहता है क्योंकि वही स्वधन की तरह अपने कार्य की साधक होती है । परकीय पर्याय को वह विषय नहीं करती है कारण वह अपने कार्य की साधक नहीं होती है जैसे परका धन । इस नयकी दृष्टि में इसी कारण से पृथक्त्व—नामात्व नहीं है—अर्थात् अतीत अनागत के भेद से और परकीय भेद से यह पर्यायों में भिन्नता नहीं मानता है । किन्तु वर्तमान कालिक स्वगत पर्याय को ही वास्तविक मानता है और एक ही है ऐसा प्रतिपादन करता है । इसलिये इस नयकी मान्यतानुसार आगतद्रव्यावश्यक एक ही है—अनेक नहीं ।—अब सूत्रकार शब्द, समभिरूढ और एवंभूत नय को लेकर आगतद्रव्यावश्यक का विचार करते हैं ।—शब्दप्रधाननयों का नाम शब्दनय है और ऐसे ये तीन नय हैं । अर्थावगम अर्थ का ज्ञान होने का कारण होने से शब्द की ही ये प्रधानता मानते हैं—अर्थ की नहीं । इन नयों की

कालिन) पर्यायो अनुत्पन्न होय छे. वर्तमानकालिन पर्यायमां पणु जे पोतानी पर्याय छ तेने ज ते अतावे छे, कारणु के अणु पोताना धननी जेम पोताना कार्यनी साधक होय छे. कारणु के अणु पोता ॥ धननी जेम पोताना कार्यनी साधक होय छे. परकीय पर्यायने ते विषय करतो नहीं. कारणु के अनयना धननी जेम ते पोताना कार्यनी साधक होती नहीं. आ नयनी दृष्टिये अणु कारणु पृथक्त्व-वैविध्य नहीं कारणु के अतीत अनागतना लेदथी अने परकीय लेदथी आ नय पर्यायोमां लिन्नता मानतो नहीं. परन्तु वर्तमानकालिक स्वगत पर्यायने ज ते वास्तविक माने छ अने अणु ज छे अणु प्रतिपादन करे छे. तेथी आ नयनी मान्यता अनुसार आगत द्रव्यावश्यक अणु ज छे अनेक नहीं.

उवे सूत्रकार शब्दनय, समभिरूढ नय अने एवंभूत नयनी दृष्टिये आगत-द्रव्यावश्यकना विचार करे छे—शब्द प्रधान नयानुं नाम शब्दनय छे. अने अणु आ-त्रणु नय छे, अर्थावगम (अर्थना बोध)नुं कारणु होवाथी शब्दनी ज प्रधानता

ज्ञायकः-ज्ञाता, अथ च अनुपयुक्तः, इत्येतत् अवस्तु=असत्, न संभवतीत्यर्थः । कस्मात् एवमुच्यते ? इत्याह—'जइ' इत्यादि—यदि ज्ञायको भवति, अथ अनुपयुक्तो न भवति, यदि अनुपयुक्तो भवति तर्हि ज्ञा' को न भवति । अयं भावः—आवश्यकशास्त्रज्ञस्तत्र चानुपयुक्त आगतो द्रव्यावश्यकमिति पूर्वं प्ररूपितम् । एतच्च शब्दादिनया न स्वीकुर्वन्ति । एतेषां मते यो हि—आवश्यकशास्त्रज्ञः सोऽनुपयुक्तो न भवितुमर्हति, यो हि—अनुपयुक्तः स आवश्यकशास्त्रज्ञो न भवितुमर्हति, ज्ञानस्थोपयोगरूपत्वात् । एते हि शुद्धन्यासाश्रित्य वस्त्वभ्युपगच्छन्ति,

मान्यता है कि द्रव्य और पर्याय के संबन्ध में जितने विचार होते हैं उनका वर्गीकरण उपर्युक्त चार नयों में ही हो जाता है । जिनका वर्गीकरण स्वतंत्र नय द्वारा किया जाय ऐसे विचार ही शेष नहीं रहते । तथापि विचारों को प्रकट करने और इष्ट पदार्थ का ज्ञान कराने का प्रधान साधन शब्द है । इसलिये इसकी मुख्यता से जितना भी विचार किया जाता है वह सब तीन नयों की ही कोटि में आता है । ये नय यह कहते हैं कि अवतक शब्द प्रयोग की विविधता होने पर भी अर्थ में भेद स्वीकार नहीं किया गया है—परन्तु जहाँ शब्दनिष्ठ तारतम्य है उसके अनुसार अवश्य अर्थभेद है । इसीलिये ये कहते हैं कि यह बात कैसे बन सकती है कि जो आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता है वह उसमें अनुपयुक्त है । क्योंकि ज्ञाता होने पर अनुपयुक्त—और अनुपयुक्त होने पर ज्ञाता यह असत् है—संभवित नहीं होता है ।

आ त्रणे नयो माने छे—अर्थनी प्रधानता मानता नथी. आ नयोनी ओवी मान्यता छे के द्रव्य अने पर्यायना संबन्धमां जेटला विचारो डोय छे. ते विचारोनु' वर्गीकरणे उपर्युक्त चार नयमां न थर नय छे.

जेमनु' वर्गीकरणे स्वतंत्र नय द्वारा करी शक्य ओवो डोय विचार न थाकी रहितो नथी. छतां पणु विचारोने प्रकट करनार अने इष्ट पदार्थोनु' ज्ञान करानार मुख्य साधन शब्द छे. तेथी तेनी (शब्दनी) प्रधानतानी अपेक्षाओ जेटला विचारो करवामां आवे छे तेटला विचारोने आ त्रणे नयोनी कोटिमां न भूकी शक्य छे. ते नयो ओ षतावे छे के इष्ट सुधी शब्द प्रयोगनी विविधता डोवा छतां पणु अर्थमां लेहने स्वीकार करवामां आओ नथी परन्तु जयां शब्द नष्ट तारतम्य छे. तेना अनुसार अर्थलेह पणु अवश्य छे न. तेथी तेओ डडे छे के—ओवी वात केवी रीते संलवी शके के जे आवश्यकशास्त्रने ज्ञाता छे. ते तेमां अनुपयुक्त छे, कारणके ज्ञाता डोवा छतां पणु अनुपयुक्त डोय अने अनुपयुक्त डोवा छतां पणु ज्ञाता डोय ओ वात न असंभवित डोय छे. ज्ञाता डोय तो ते तेमां उपर्युक्त

अतो यद्रूप्यागमकारणत्वादात्मदेहादिकमागमत्वेनोक्तं तद्रूप्यौपचारिकम्, अत-
दागमत्वेन न प्रतिपद्यन्ते । तस्मादेतन्मते द्रव्यावश्यकस्य असंभवेति ।
उक्तार्थमुपसंहरन्नाह—‘से तं आगमो द्रव्यावश्यकस्य’ इति । तदेतदागमतो द्रव्या-
वश्यकम् ॥ सू० १५ ॥

ज्ञाता है तो वह उस में उपयुक्त है । अनुपयुक्त है तो वह उस का ज्ञाता
नहीं है । अतः आवश्यक शास्त्र के अनुपयुक्त ज्ञाता को लेकर जो आगमद्रव्या-
वश्यक की प्ररूपणा को ये शब्दादिनय स्वीकार नहीं करते हैं । क्योंकि
ज्ञाता और अनुपयुक्तता का समन्वय बैठता नहीं है । अनुपयुक्तता की स्थिति
में वह आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता ही नहीं हो सकता है । ज्ञाता शब्द का
अर्थ “उस संबन्धी ज्ञानवाला” ऐसा होता है । जब तत्संबन्धी ज्ञानवाला वह
है तो इसका तात्पर्य यही है कि वह ज्ञान के उपयोगवाला है । क्योंकि
ज्ञान स्वयं उपयोगरूप है । ये तीनों नय शुद्धनय को आश्रित करके वस्तु को
स्वीकार करते हैं । इसलिये जो “आगम के कारण होने से आत्मा तदधि-
ष्ठित देह, और शब्द ये आगमरूप है” ऐसा कहा है । क्योंकि ये आगम-
रूप से नहीं माने जाते हैं । इसलिये इन नयों के मन्तव्यानुसार आगमद्रव्या-
वश्यक असंभव ही है । इस तरह पूर्व प्रक्रान्त आगमद्रव्यावश्यक का स्वरूप
इस प्रकार का कहा है ।

(‘उपयोग’ संपन्न) होय, अने अनुपयुक्त होय तो तेना ज्ञाता न
होय अथवा न संभव शक्य छे, तेथी आवश्यकशास्त्रना अनुपयुक्त ज्ञातानी अ-
पेक्षाअने अने आगम व्यावश्यकनी प्ररूपणा करी छे, अथवा प्ररूपणाने आ शब्दादि त्रय
प्रकारना नये स्वीकार करता नथी, कारण के ज्ञाता अने अनुपयुक्तताने समन्वय
न संभव शक्यो नथी, अनुपयुक्ततानी स्थितिमां ते आवश्यकशास्त्रने ज्ञाता न
संभव शक्यो नथी, (‘ज्ञाता’ अटवे “तेना संबन्धी ज्ञान धरावनादे.” आ प्रकार-
ने अर्थ समन्वये) अने ते ज्ञाता होय अटवे के ते विषयना ज्ञानथी संपन्न होय,
तो तेनु तात्पर्य अथवा छे के ते ज्ञानना उपयोगवाणे (उपयुक्त) छे, कारण के ज्ञान
पोते न उपयोगरूप होय छे आ त्रय नय शुद्ध नयने आधारे वस्तुने स्वीकार
करे छे, तेथी अथवा अने कडेवांमां आव्यु छे के “आगमनां कारणरूप होवथी आत्मा
तदधिष्ठित देह अने शब्द अथवा आगमरूप छे,” आ कथन पण औपचारिक कथन
न छे, कारण के तेमने आगमरूप मानवांमां आवता नथी, तेथी आ त्रय नयेनी
मान्यता अनुसार आगमद्रव्यावश्यक संभवित नथी, आ रीते पूर्वप्रक्रान्त आगम-
द्रव्यावश्यकत्वं स्वरूप आ प्रकारनु कथ्ये छे.

सम्प्रति नोआगमता द्रव्यावश्यकं प्राह—

मूलम्—से किं तं नो आगमओ द्रव्वावस्सयं ? नो आगमओ

द्रव्वावस्सयं तिविहं पणत्तं, तं जहा-जाणयसरीरद्रव्वावस्सयं, भवि-
यसरीरद्रव्वावस्सयं, जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं द्रव्वावस्सयं ।सू०१६।

छाया-अथ किं तद् नोआगमतो द्रव्यावश्यकम्, नो आगमतो द्रव्या-

अयं भावः—सूत्रकार ने नैगमादि सात नयों की मान्यता को आश्रित करके आगमद्रव्यावश्यक में एकत्व अनेकत्व आदि का प्रतिपादन किया है। नैगमनय की अपेक्षा से आगमद्रव्यावश्यक में एकत्व और अनेकत्व है। संग्रहनय की अपेक्षा से उसमें केवल एकत्व है। व्यवहारनय की अपेक्षा से एक और अनेक आगम द्रव्यावश्यक हैं। ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से आगमद्रव्यावश्यक एक ही हैं। शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन तीन नयों की अपेक्षासे आगमद्रव्यावश्यक है ही नहीं। इन सब नयों की मान्यताओं का स्पष्टीकरण टीका के अर्थ में करदिया गया है। ॥ सूत्र १५ ॥

अब सूत्रकार नोआगमद्रव्यावश्यक का प्रतिपादन करते हैं—

“से किं तं नो आगमओ” इत्यादि । ॥ सूत्र १६ ॥

शब्दार्थ—(से किं तं नोआगमओ द्रव्वावस्सयं) हे भदंत ! नोआगम

संक्षिप्त लोकार्थ—सूत्रकारे नैगम आदि सात नयेनी मान्यतानो आधार लक्ष्णे आगमद्रव्यावश्यकमां एकत्व, अनेकत्व आदिनुं प्रतिपादन कयुं छे. नैगमनयनी मान्यता अनुसार आगमद्रव्यावश्यकमां एकत्व अने अनेकत्व छे. संग्रहनयनी मान्यता अनुसार तेमां मात्र एकत्व न छे, व्यवहारनयनी मान्यता अनुसार एक आगमद्रव्यावश्यक पणु छे अने अनेक द्रव्यावश्यक पणु छे. ऋजुसूत्रनयनी मान्यता प्रमाणे आगमद्रव्यावश्यक एक न छे. शब्दनय, समभिरूढनय अने एवंभूतनय आ त्रणे नयेनी मान्यता अनुसार आगमद्रव्यावश्यक छे न नडी. आ सधणा नयेनी मान्यतानुं स्पष्टीकरण टीकार्थमां करवामां आण्युं छे. ॥सू० १५॥
इये सूत्रकार “नोआगमद्रव्यावश्यकनुं” प्रतिपादन करे छे—

“से किं तं नोआगमओ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं नो आगमओ द्रव्वावस्सयं ?)-हे भगवन् ! नो आगम ने आश्रित करीने द्रव्यावश्यकनुं केवुं स्पष्ट छे ?

वश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तथा-ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम्, भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम्, ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम् ॥ सू० १६ ॥

टीका—‘सै किं तं’ इत्यादि—

अथ किं तद् नो आगमतो द्रव्यावश्यकम् ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—
‘नोआगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पणत्तं’ इत्यादि । नो आगमतो द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम् । अत्र नो शब्दः सर्वथा प्रतिषेधे देशतः प्रतिषेधेऽपि च वर्तते तथा च सर्वथा आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं, तथा-देशतः आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं च नोआगमतो द्रव्यावश्यकमिति । तत् त्रिविधं प्रज्ञप्तं=तीर्थं करैः प्ररूपितमित्यर्थः । (१) ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकं, (२) भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम्, (३) ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यावश्यकंचेति । तत्र—ज्ञानवानिति ज्ञायकः, शीयंते

को आश्रित कर के द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ? उत्तर—(नोआगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पणत्तं)नोआगम की अपेक्षा करके द्रव्यावश्यक तीन प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है । (तंजहा) उसके वे तीन प्रकार ये हैं—(जाणयसरीर-दव्वावस्सयं, भवियसरीरदव्वावस्सयं, जाणयसरीरभवियसरीरवइरिक्त-दव्वावस्सयं) (१)ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक (२)भव्य शरीरद्रव्यावश्यक, और ज्ञायक शरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक । नो शब्द सर्वथा प्रतिषेध में और किञ्चित् प्रतिषेध में भी आता है । नो आगमद्रव्यावश्यक में नो शब्द इन्हीं दोनों अर्थों में व्यवहृत हुआ है । इस तरह आगम के सर्वथा अभाव को और आगम के एकदेश अभाव को लेकर द्रव्यावश्यक बनता है । यह नो आगम द्रव्यावश्यक ज्ञायक शरीर आदि के भेद से ३ प्रकार का है । जो आगमशास्त्र को जान चुका है ऐसे ज्ञायक का निर्जीव शरीर नोआगम-

उत्तर—(नोआगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पणत्तं) नो आगमनी अपेक्षा-द्रव्यावश्यकना त्रय प्रकार उह्या छे. (तंजहा) ते त्रय प्रकारो नीचे प्रमाणे समज्वा—

(जाणयसरीरदव्वावस्सयं, भवियसरीरदव्वावस्सयं, जाणयसरीरभविय-सरीरवइरिक्तं दव्वावस्सयं) (१) ज्ञायकशरीर द्रव्यावश्यक. (२) लव्यशरीर द्रव्यावश्यक अने ज्ञायकशरीर लव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक.

टीकार्थ—“नो” शब्द सर्वथा निषेध अथवा अंशतः निषेधना अर्थमां वपराय छे. “नोआगम द्रव्यावश्यकमां” जे “नो” शब्द आव्ये छे ते उपर्युक्त अन्व अर्थमां वपराये छे. आ रीते आगमना सर्वथा अलावने अने आगमना अक्षे देशतः अलावने लधने द्रव्यावश्यक अने छे. आ नोआगमद्रव्यावश्यक ज्ञायक शरीर आदिना लेहथी त्रय प्रकारनो कह्यो छे. जे आगमनुं लण्णी युक्तयो छे अवे ज्ञायकनुं निर्जीव शरीर नो आगमद्रव्यावश्यक छे. आगामी काणमां जे एव विवक्षित

प्रतिक्षणं क्षीयते इति शरीरं, ज्ञापयत्यशरीरं ज्ञायकशरीरं तदेव द्रव्यावश्यकमिति विग्रहः
जीवपरित्यक्तमावश्यकशास्त्रज्ञानवतः शरीरं ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् । विव-
क्षितपर्यायेण भविष्यतीति भव्यस्तस्य शरीरं भाविभावावश्यककारणत्वात् द्रव्या-

द्रव्यावश्यक है । विवक्षित पर्याय से युक्त जो आगामी काल में होगा उसका नाम भव्य है । भावि, भावरूप आवाक का कारण होने से उसका शरीर भव्य शरीर द्रव्यावश्यक है ज्ञायक शरीर और भव्यशरीर इन दोनों से भिन्न जो द्रव्यावश्यक है वह ज्ञायक शरीर—भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक है । इस प्रकार यह तीन प्रकार का नो आगमद्रव्यावश्यक है ।

भावार्थ—नो आगमद्रव्यावश्यक का स्वरूप प्रकट करने के लिये सूत्र-
कार ने इसके तीन भेद किये हैं—(१) ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक, (२) भव्य
शरीरद्रव्यावश्यक और (३) तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक । नोआगम द्रव्यावश्यक
में नो शब्द आगम के सर्वथा निषेध करने में प्रयुक्त हुआ है—तथा च—जीव
पहिले आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता था वह जब मर जाता है—पर्यायान्तरित हो
जाता है तब उस समय का निर्जीव शरीर है वह आगमाभाव से विशिष्ट
होने के कारण ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक है । इसी तरह जो आगामी काल
में आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता होगा ऐसे उसका जो शरीर है वह भव्यशरीर

पर्यायथी युक्त थवानो छे, तेने लव्यशरीर कहे छे लावि स्वभाव रूप आवश्यकतुं कारण
होवाथी तेनुं शरीर लव्यशरीर द्रव्यावश्यक गणाय छे. ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक
अने लव्यशरीर द्रव्यावश्यकथी लिन्न जे द्रव्यावश्यक छे तेने ज्ञायकशरीर—लव्य-
शरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक कहे छे. आ प्रमाणे आ त्रणु प्रकारनो आ
नोआगम द्रव्यावश्यक छे.

भावार्थ—नोआगम द्रव्यावश्यकतुं स्वरूप प्रकट करवा निमित्ते सूत्रकारे तेना
नीचे प्रमाणे त्रणु लेह कहे छे—

(१) ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक, (२) लव्यशरीर द्रव्यावश्यक, (३) तद्व्यतिरिक्त
(अन्नेथी लिन्न) द्रव्यावश्यक.

नोआगम द्रव्यावश्यकमां “नो” पद आगमनो सर्वथा निषेध करवामां
प्रयुक्त थयो छे. जेभके—

जे लव्य पडेतां आवश्यकशास्त्रनो ज्ञाता हतो, ते जयारे मरणु पासे छे—अन्य
पर्याये ‘उत्पन्न थध जय छे, ते समयनुं तेनुं जे निर्लव शरीर होय छे ते आगमना
अभाववाणुं होवाने कारणे ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक रूप गणाय छे. जेज प्रमाणे
जे लव्य लविष्यमां आवश्यकशास्त्रनो ज्ञाता थवानो छे; ते लवना शरीरने लव्य-

वश्यकं भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम् । ज्ञायकशरीरभन्व्यशरीरभ्यां व्यतिरिक्तं-भिन्न
द्रव्यावश्यकं इत्येवं त्रिविधं नोआगमता द्रव्यावश्यकं बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

तत्र प्रथमभेदं निरूपयितुमाह—

मूलम्—मे किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं ? जाणयसरीर-
दव्वावस्सयं आवस्सएत्ति पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगंय-
चुयचवियचत्तदेहं जीवविप्पजहं सिज्जागयं वा संथारगयं वा निसी-
हियागयं वा सिद्धसिलातलगयं वा पासित्ता णं कोई भणेज्जा अहो !
इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं आवस्सएत्तिपयं आघ-
वियं पणवियं परूवियं दंसियं निदंसियं उददंसियं । जहा को दि-
ट्ठतो ? अयं महुकुंभे आसी, अयं घयकुंभे आसी से तं जाणयसरीर-
दव्वावस्सयं ॥ सू० १७ ॥

छाया—अथ किं तद् ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् ? ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् आ-
शक्येति पदार्थाधिकारज्ञायकस्य यत् शरीरकं व्यपगतच्युतच्यात्तित्यक्तदेहं जीव-

द्रव्यावश्यक है । तथा इन दोनों से व्यतिरिक्त जो द्रव्यावश्यक है वह तद्व्य-
तिरिक्त द्रव्यावश्यक है । ॥ सूत्र १६ ॥

अब सूत्रकार नोआगम द्रव्यावश्यक का जो प्रथम भेद ज्ञायक शरीर
द्रव्यावश्यक है उसे विशेषरूप से स्पष्ट करते हैं—

“से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं” इत्यादि । ॥ सू० १७ ॥

शब्दार्थ—प्रश्न—(से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं) हे भदंत ! ज्ञायक
शरीर द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

शरीर द्रव्यावश्यकरूप मानवामां आवे छे. तथा आणन्ने कस्तां लिन्न एवे। ने
द्रव्यावश्यक छे तेने तद्व्यव्यतिरिक्त (उल्लयथी लिन्न) द्रव्यावश्यक कहे छे. ॥सू १६॥

“नोआगम द्रव्यावश्यक” नो, ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक नामने। ने पडेवे।
लेह छे तेनुं सूत्रकार डवे विशेष स्पष्टीकरण करे छे—

‘से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं’ इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—(से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं) हे भगवन् ! ज्ञायक
शरीर द्रव्यावश्यकनुं केवुं स्वरूप कहुं छे ?

विप्रहीणं शय्यागतं वा संस्तारगतं वा नैषेधिकीगतं वा सिद्धशिलातलगतं वा दृष्ट्वा खलु वेऽपि भणेत्—अहो ! अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आह्वयकेतिपदम् आघवितं प्रज्ञापितं प्ररूपितं दर्शितं निदर्शितम् उदर्शितम् ।

उत्तर—(आवरसएत्ति पयत्थाहिगारंजाणयस्स जं सरीरं) आवश्यक पदवाच्य आगम के अर्थरूप अधिकार के ज्ञाता का—अर्थात् आवश्यकसूत्र के अर्थ को जाननेवाले साधु आदि का—ऐसा शरीर कि जो (वद्वगयचुयचवियचत्तदेहं) व्यपगत चैतन्यपर्याय से रहित है, च्युत-बलिष्ठ आयुक्षय के कारणों से प्राण रहित है त्यक्तदेह-आहारपरिणति जनित वृद्धि जिससे सर्वथा निकलचुकी है (जाणयसरीरदव्वावरसयं) ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक है । इसी अर्थ का स्पष्ट ज्ञान होने के लिये सूत्रकार शब्दान्तर से इसका वर्णन करते हैं (जीवविप्पजदं सिज्जागयं वा संथारगयं वा निषीहियागयं वा सिद्धशिलातलगयं वा पासित्ताणं कोइ भणेज्जा) वे कहते हैं कि जब इस प्रकार के प्राण रहित शरीर को शय्या पर देखकरके, संस्तारगत देखकरके स्वाध्यायभूमि अथवा स्मशानभूमि गत देखकरके या सिद्ध शिलातलगत देखकरके वे कहते हैं कि (अहो) अहो ! (इमेणं) इस (सरीरसमुस्सएणं) शरीररूप पुद्गल संघात ने (जिनदिट्ठेणं भावेणं) तीर्थंकरों द्वारा मान्य हुए कर्म निर्जरण के अभिप्राय से अथवा तदावरण के क्षय, क्षयोपशमरूप भाव से अर्थात् ज्ञानावरणीयकर्म के क्षय

उत्तर—(आवरसएत्ति पयत्थाहिगारं जाणयस्स जं सरीरं) आवश्यक पदवाच्य आगमना अर्थरूप अधिकारना ज्ञातानुं ओटवे के आवश्यकसूत्रना अर्थने ज्ञानाना साधु आदिनुं ओपुं शरीर के जे (वद्वगयचुयचवियचत्तदेहं) व्यपगत-चैतन्य पर्यायथी रहित छे, च्युत-दृस प्रकारना प्राणोथी परिवर्जित (रहित) छे, त्यक्तदेह आहारपरिणति जनित वृद्धि जेभांथी स पूछुं नीकणी चुकी छे, (जाणय सरीरदव्वावरसयं) ओवा शरीरने “ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक” कहे छि, आ अर्थने वधु स्पष्ट ज्ञात आपवाना हेतुथी सूत्रकार अन्य शब्दों द्वारा तेनुं वर्णन करे छे—

(जीवविप्पजदं सिज्जागयं वा, संथारगयं वा, निषीहियागयं वा, सिद्धशिलातलगयं वा पासित्ताणं कोइ भणेज्जा) आ प्रकारना प्राणरहित शरीरने शय्या पर देणीने, संस्तारगत देणीने, स्वाध्यायभूमि अथवा स्मशानभूमिगत देणीने अथवा सिद्धशिलागत देणीने तेओ कहे छे के—(अहो) अहो ! (इमेणं सरीरसमुस्सएणं) आ शरीर रूप पुद्गल संघाते (जिनदिट्ठेणं भावेणं) तीर्थंकर लागवाना द्वारा मान्य थयेला कर्मनिर्जरणना अभिप्रायथी अथवा तदावरणना क्षय, क्षयोपशम रूप भावथी ओटवे के ज्ञानावरणीय कर्मना क्षय क्षयोपशम अनुसार (आवरसएत्तिपय)

यथा को दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भ आसीत्, अयं घृतकुम्भ आसीत् । तदेतत् ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् ॥ सू० १७ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । हे भदन्त ! अथ किं तत् ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् ? उत्तरमाह—‘जाणयशरीरद्रव्यावस्यं’ इत्यादि । ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकं दर्शयते इत्यर्थः । आवश्यकेति पदार्थाधिकारज्ञायकस्य—आवश्यकेतिपदस्य=आवश्यकपदवाच्यस्य आगमस्य यः अर्थाधिकारः=अर्थ एव अर्थाधि, कारः तस्य ज्ञायकः=ज्ञाता, तस्य आवश्यकमत्रार्थं ज्ञातवतः साध्वादे र्यत् शरीरम् ।

अक्षयोपशम के अनुसार (आवरसंत्तिपयं) आवश्यक सूत्र वा विशेषरूप से (आघ्रवियं) गुरु से ज्ञान प्राप्त किया था (पण्णवियं) सामान्यरूप से उसे शिष्यों को समझाया था । (परुविद्यं) सूत्रार्थ कथनपूर्वक फिर उसे शिष्यजनों को पढाया था (दंसियं) प्रतिलेखनादि क्रियारूप में उसे स्वयं ने अपनी आत्मा में उतारा था । और बाद में इसी रूप में दूसरों को दिखलाया था—अर्थात् प्रतिलेखनादि क्रिया के प्रदर्शन से यह प्रकट किया था कि दोनों समथ समस्त भंडपंक्तियों की प्रतिलेखना करनी आवश्यक हैं । अंगुल मात्र वस्त्र खण्ड भी विना प्रतिलेखना के नहीं रहना चाहिये । (निदंसियं) आवश्यकशास्त्र के ग्रहण करने में जो शिष्यजन अक्षम थे उनके लिये इसने करुणावश होकर वारं वार आवश्यकशास्त्रग्रहण करवाया था । (उवदंसियं) सर्वनय और युक्तियों द्वारा शिष्यजनों के हृदयस्थान में इसे विना किसी संदेह के इसने जमाया था अंतः वह शरीरज्ञायक शरीरद्रव्यावश्यक हैं ।

आवश्यक सूत्रनुं विशेषरूपे (आघ्रवियं) गुरु पास अध्ययन कथुं इतुं—ज्ञान प्राप्त कथुं इतुं । (पण्णवियं) सामान्यरूपे तेषु शिष्येने ते सरण्णोयुं इतुं, (परुविद्यं) सूत्रार्थना कथनपूर्वक तेषु इरीथी शिष्येनेने तेनुं अध्ययन करांयुं इतुं (दंसियं) प्रतिलेखनादि क्रियारूपे तेषु पोते पोताना आत्माभां उतारुं इतुं, अने त्थार भाद ओण रूपे शिष्येने भतांयुं इतुं, ओटवे के प्रतिलेखना आदि क्रियाना प्रदर्शनथी ये प्रकट कथुं इतुं के अन्ने समय समस्त पात्र वस्त्रादि उपकरणोनी प्रतिलेखना करवी आवश्यक छे. वस्त्रेना ओक धंय नेटवे लाग पणु प्रतिलेखना विनाने। रडेवे। ओधये नडी । (निदंसियं) आवश्यकशास्त्रने अहणु करवाने ने शिष्ये अक्षम इता, तेमना प्रत्ये करुणालाव राणीने तेषु तेमने वारंवार आवश्यक सूत्र अहणु करावाने। प्रयत्न कथे इते। (उवदंसियं) अधां नय अने युक्तियो द्वारा तेषु शिष्येनेने। हृदयस्थानमां निःशंकेरूपे तेने अवधानेणु करांयुं इतुं । तेथी तेनुं आ शरीर ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक छे.

कीदृशं ज्ञायवशरीरं द्रव्यावश्यकं भवतीत्याह—‘वदगय’ इत्यादि । व्यपगतच्युत-
 च्यावितरयत्तदेहं—व्यपगतं=चैतन्यपर्यायः हितम्, अत एव—च्युतं=दशविधप्राणेश्चः
 परिवर्जितम्, च्यावितम्=बलवताऽऽयुःक्षयेण प्राणेश्चः परिभंशितम्, त्यक्तदेहं—
 त्यक्तो देहः=आहारपरिणतिजनित उपचयो देन तत्तथा, व्यपगतादीनां कृतुर्णा
 कर्मभारयः । अमुमेवार्थं स्पष्टप्रतिपत्तये शब्दान्तरेणाह—‘जीवविप्पजडं’ इति,
 जीवविप्रहीणं=जीवात्मना सर्वथा परित्यक्तं तत् शय्यागतं वा—शय्या शरीरप्रमाणा
 तत्र गतं=स्थितं दृष्ट्वा संस्तारगतं वा संस्तारेऽर्धद्वितीयहरतप्रमाणस्तत्र गतं दृष्ट्वा
 नैपेधिकीगतं वा—नैपेधिकी स्वाध्याय भूमिः इत्यन्तर्भूमिश्च तत्र गतं दृष्ट्वा सिद्ध-
 शिलातलगतं वा—अनेकविधतपःपरिशोपितशरीराः साधवो यत्र स्वस्वमेव गत्वा
 अक्तप्रत्याख्यानरूपमनशनं कृतवन्तः, कुर्वन्ति, वरिष्णन्ति च, तत् सिद्धशिला-
 तलम्, यद्वा यत्र कश्चिद् महर्षिः सिद्धस्तत् सिद्धशिलातलम्, तत्र गतं=स्थितं दृष्ट्वा
 खलु कोऽपि श्राद्धादिः, भणति=कथयति—‘अहो !’ अहो इति दैन्ये, विस्मय,
 आमन्त्रणे च ‘अनित्यं शरीरम्’ दैव्यम् । ‘आवश्यकं ज्ञातम्’ इति विस्मयः ।
 पार्श्वस्थं प्रति आमन्त्रणम् । त्रितयोऽप्यर्थोऽत्र संगच्छते । खलु अनेन=प्रत्यक्ष-
 तथा परिदृश्यमानेन शरीरसमुच्छ्रयेण=शरीरमेव समुच्छ्रयः पुद्गलसंघातस्तेन
 जिनदृष्टेन तिर्थेङ्कराभिमतो भावेन=कर्मनिर्जराभिप्रायेण, यद्वा—तदावरणक्ष-
 क्षर्योपशमलक्षणेन आवश्यकेतिपदम्—आवश्यकशास्त्रम्, आगृहीतम्=गुरोः सका-
 शादधिगतम्, प्रज्ञापितम्—सामान्यरूपेण शिष्येभ्यः कथितम्, प्ररूपितम्=सुत्रार्थ-
 कथनपूर्वकं शिष्येभ्योऽध्यापितम्, दर्शितम्=प्रतिलेखनादिक्रियायाः प्रतिलेखनी-
 यम् अर्गुलमात्रं दत्तखण्डमपि अप्रतिलेखनेन न स्थापनीयम्, इति । निदर्शितम्—

शंका—अचेतन होने से शरीररूप पुद्गल स्कंध जब आवश्यकशास्त्र वा
 ज्ञाता ही नहीं हो सकता है तब सूत्रकार वा “आवस्सएत्तिपदं आधविंयं”
 आदि कहना संगत नहीं होता है । क्योंकि ग्रहण करना प्ररूपणाआदि
 करना ये सब क्रियाएँ जीव के साथ संबन्धित होती हैं । अतः जीव
 के धर्म होने के कारण इनकी घटना शरीर के साथ नहीं हो
 सकती है ? सो इस आशंका का उत्तर इस प्रकार

शंका—अचेतन होवाने कारणे शरीररूप पुद्गल स्कंध ने आवश्यकशास्त्रने
 ज्ञाता न हो शकते नथी. तो सूत्रकारने “आवस्सएत्ति पदं आधविंयं) आ प्ररु-
 रणं कथन संगत लागतुं नथी. कारणे के ग्रहण करवानी अने प्ररूपणा आदि करवानी
 क्रियाओ तो एवनी साथे संबन्ध धरावनाही होय छे. आ क्रियाओ एवना धर्म
 उप होवाने कारणे मृत शरीरमां तेने केवी रीते घटावी शकय ? चैतन्य युक्त
 शरीरमां न आ क्रियाओने सहभाव होय छे.

आवश्यकशास्त्रग्रहणाक्षमेभ्यः शिष्येभ्यः करुणावशात् पुनः पुनर्दर्शितम्, उपदर्शितम्=सर्वनययुक्तिभिश्च प्रदर्शितम् । अत इदं शरीरं ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् !

नन्वनेन शरीरसमुच्छ्रयेणाऽऽवश्यं मागृहीतमि यदि नोपपद्यते, ग्रहण-प्ररूपणादीनां जीवधर्मत्वेन शरीरस्थाघटमादत्त्वात्, इति चेदुच्यते-भूतपूर्वमाश्रित्य तत्कथितम्, अतो नास्ति दोषः । ननु शय्यादिगतं साधुशरीरं दृष्ट्वा कश्चित् पूर्वोक्तप्रकारेण वदति, परन्तु तस्य द्रव्यावश्यकत्वं न संभवति, "भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम्" इति पूर्वोक्तचिन्तान् आवश्यकपर्यायस्य कारणमेव द्रव्यावश्यकं भवितुमर्हति । आवश्यकपर्यायस्य कारणं तु चेतनाधिष्ठितमेव शरीरम्, नत्वचेतनम्, अतो निर्जीव

से है कि ज्ञायक शरीर को जो द्रव्यावश्यक कहा है वह भूतपूर्व को (अर्थात् भूतकाल की अपेक्षा को) लेकर कहा है । अर्थात् जब यह शरीर चेतनाधिष्ठित था—तब उस के संबन्ध से यह उस शास्त्र की प्ररूपणा आदि करता था । अतः इसमें कोई दोष नहीं है ।

शंका-शय्यादिगत साधु के शरीर को देख करके यदि कोई पूर्वोक्त प्रकार से बहता है तो भले कहो । परन्तु उस शरीर में द्रव्यावश्यकता संभवित नहीं होती है क्यों कि भूत अथवा भावी पर्याय का जो कारण है—चाहे वह सचेतन हो चाहे अचेतन हा वही तत्त्वज्ञों की दृष्टि में द्रव्य-द्रव्य निक्षेप का विषय माना गया है । अतः इस कथन से आवश्यकपर्याय का कारण ही द्रव्यावश्यक होने के योग्य हो सकता है । सो ऐसे द्रव्यावश्यक का ऐसा कारण तो चेतनाधिष्ठित शरीर ही होता है, अचेतन शरीर नहीं । इसलिये निर्जीव शय्यादिगत साधु शरीर द्रव्यावश्यक नहीं हो सकता है ।

आ शंकातुं समाधान नीचे प्रभाषे समञ्जसुं—

ज्ञायक शरीरने जे द्रव्यावश्यक कहेवामां आऽयुं छे, ते भूतपूर्वनी अपेक्षाये कहेवामां आऽयुं छे. अतएव के न्याये ते शरीर चैतन्यथी युक्त इतुं त्पारे ते आं शास्त्रनीं प्ररूपणा आदि करतुं इतुं. तेथी आ प्रधारना कथनमां केछ दोष नहीं. शंका—शय्यादिगत साधुना-शरीरने जेधने केछ पूर्वोक्त प्रकारे कहेतां होय तो लवे कहे, परन्तु जे शरीरमां द्रव्यावश्यकता तो सबवी ज शकती नथी । कारणुं के भूत के लवी पर्यायनुं जे कारणुं छे-एवे ते सचेतन होय अथवा एवे ते अचेतन होय. एषु अने ज तरवजो द्रव्य-द्रव्यनिक्षेपने विषय माने छे. तेथी आ कथन अनुसार तो आवश्यकपर्यायनुं कारणुं जे द्रव्यावश्यक जणुवाने थोऽयुं होछ थुंके छे अने जेवा द्रव्यावश्यकनुं जेपुं कारणुं तो चेतनायुक्त शरीर ज होछ थुंके छे, अचेतन शरीर जेवां कारणुं जणुनी शकतुं नथी. ते कारणुं शय्यादिगत निर्जीव साधुनुं शरीर द्रव्यावश्यक होछ शकतुं नथी.

शय्यादिगतं साधुशरीरं द्रव्यावश्यकं भवितुं नार्हतीति चेदुच्यते—यद्यपि तस्मिन् काले चैतन्याभावात् शरीरस्य द्रव्यावश्यकत्वं नास्ति, तथापि अतीतपर्यायानुवृत्त्याभ्युपगमपरनयानुवृत्त्याऽतीतमावश्यकपर्यायकारणत्वमपेक्षस्य द्रव्यावश्यकत्वं बोध्यमिति नास्ति काचिद् विप्रतिपत्तिः । अत्रार्थे शिष्यो दृष्टान्तं पृच्छति—‘जहा कोदिद्वंतो’ इति । यथा को दृष्टान्तः=अत्र यथा कश्चिद् दृष्टान्तो भवेत्, तथा कथयतु ? इति शिष्यपृच्छायां दृष्टान्तमाह—‘अयं मधुकुम्भे आसी, अयं घृतकुम्भे आसी’ इति । अयं मधुकुम्भ आसीत्, अयं घृतकुम्भ आसीत् इति । अयं भावः—यथा कोऽपि कस्मिंश्चिद् घटे घृतं वा मधु वा भृत्वा समानीतवान्, पुनस्ततस्तदपसारितवान्, अपसारिते तस्मिन्-अयं घृतकुम्भ आसीत्, अयं मधुकुम्भ आसीदिति

सो इस शंका का उत्तर इस प्रकार से है कि यद्यपि उस काल में चेतना नहीं होने से उस शरीर में द्रव्यावश्यकरूपता नहीं है तो भी भूतपूर्व प्रज्ञापननय की अपेक्षा से अतीत आवश्यक पर्याय के प्रति कारणता उसमें भी ऐसा मानकर उसमें द्रव्यावश्यकता जाननी चाहिये । इस तरह इस कथन में कोई दोष नहीं है । शिष्यजनां को समझाने के लिये इसी विषय में सूत्रकार दृष्टान्त कहते हैं क्योंकि (जहा कोदिद्वंतो) उन्होंने इन पदोंद्वारा यही पूछा है कि हे गुरु महाराज ! इस विषय में जैसा कोई दृष्टान्त हो वैसा आप कहिये । (अयं मधुकुम्भे आसी अयं घृतकुम्भे आसी) तब वे शिष्य को दृष्टान्त कहते हैं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति घड़े में मधु या घृत भरकर लाया और फिर उसमें से उस मधु या घृतको निकाल लिया भी वह उसे यह मधुकुम्भ था या यह घृतकुम्भ था इस प्रकार से कहता है । और ऐसा व्यवहार भी लोक में उसमें भूतकालिक मधु या घृत का आधार-

आ शकानुं हुवे समाधानं कर्वाभां आवे छे—

जे के ते काणे ते साधुशरीरमां चेतनानो सदृलाव नथी अने ते कारणे ते शरीरमां द्रव्यावश्यकरूपतानो सदृलाव नथी, परन्तु भूतपूर्व प्रज्ञापननयनी अपेक्षाये अतीत (भूतकालिन)-आवश्यकपर्यायना कारणेनो तो तेमां सदृलाव हुतो ज, अमभानीने तेमां द्रव्यावश्यकता नाणुची-जेअं आ रीते विचारवाभां आवे तो आ कथनमां केअं दोष नथी, आ-विषय शिष्यजनोने सारी रीते समभववा भाटे सूत्रकार अके दृष्टान्त आवे छे, (जहा को दिद्वंतो) कारणे के शिष्ये द्वारा ज आ प्रकारनुं सूचन कर्वाभां आणुं छे “हे गुरुमहाराज ! आ विषयने अमने सुयोद आद आवे ते भाटे अेषुं केअं दृष्टान्त होय, तो आप अमने तेकडी संलणाववानी कृपा करौ”

(अयं मधुकुम्भे आसी, अयं घृतकुम्भे आसी) शिष्यजनोनी आ विनंतिने ध्यानमां लधने गुरु नीयेनुं दृष्टान्त आवे छे—केअं अके व्यक्ति अके घडामां मध अथवा घी लरीने आवे छे, त्थार भाद ते तेमांथी मध अथवा घी काढी नाजे छे अथवा वापरी नाजे छे. छतां पणु ते अेषुं कडे छे. के. “आ मधनेा घडो छे अथवा आ घीनेा घडो छे.” भूतकालमां ते कुंल मध अथवा घीने लरवा

भूतकालिक घृतमध्वाधारत्वेन लोके व्यपदिच्यते । तथैव भूतकालिकावश्यकपर्याय कारणत्वाधारत्वेन निर्जीवं शय्यागतं शरीरमपि द्रव्यावश्यकमुच्यते, इति ।

इत्थं पूर्वोक्त जीव विप्रमुक्तं शय्यादिगतं साधुशरीरं नोआगमतो द्रव्यावश्यकं भवति । आवश्यकार्थज्ञानलक्षणस्य आगमस्य तदानीं तच्छरीरं सर्वथाऽभावात् । 'चुय' इत्युक्त्वा 'चाविय' इति पुनरभिधानं स्वभाववादिनो मतनिराकरणार्थम् । स्वभाववादिनो हि स्वभावत एव मरणं मन्यन्ते, परन्तु स्वभावस्य सर्वदा वर्तमानत्वेन सर्वदा तत्प्रसङ्गात्, अतः आयुः क्षयेणैव प्राणिनां प्राणाः शरीरान्निर्गच्छन्तीति सूचयितुं 'चाविय' इत्युक्तम् ।

वाला होने से व्यपदिष्ट होता है । उसी प्रकार भूतकालीन आवश्यक पर्याय का कारणरूप आधारवाला होने से निर्जीव शय्यादिगत शरीर भी द्रव्यावश्यक कहा जाता है । इस तरह पूर्वोक्त जीव विप्रमुक्त शय्यादिगत साधु आदि का शरीर नोआगमकी अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक होता है । क्योंकि उस अवस्था में आवश्यक का अर्थज्ञानरूप आगम का उस शरीर में सर्वथा अभाव है "चुय" ऐसा कहकरके भी जो सूत्रकार ने "चाविय" ऐसा कहा है वह स्वभाववादी मत को निराकरण करने के लिये कहा है, क्योंकि स्वभाववादियों की ऐसी मान्यता है कि मरण स्वभाव से ही होता है । परन्तु यह उनकी मान्यता ठीक नहीं है क्योंकि मरण स्वभाव तो सर्वदा वर्तमान ही रहता है—अतः सर्वदा मरण होने का प्रसंग प्राप्त होता है । इसलिये इस पद से यह बात ठाया गया है कि जब आयु का क्षय होता है तभी प्राणियों के प्राण शरीर से निकलते

भाटे वपरातो हुतो. ते कारणे दोडोमां तेने मधनो घडो अथवा धीनो घडो कडेवातो. अन्यकारणतो जेवामां आवे छे. अन्व प्रमाणे भूतकालीन आवश्यक पर्यायना कारण रूप आधारवाणुं होवाथी निर्जीव शय्यादिगत शरीर पणु, द्रव्यावश्यक न कडेवाय छे. आ प्रकारे पूर्वोक्त जीवविप्रमुक्त (प्राणोथी रहित) शय्यादिगत साधु आदिनुं शरीर नोआगमनी अपेक्षाये द्रव्यावश्यक होय छे. कारण के ते अवस्थां आवश्यकना अर्थज्ञानरूप आगमनो ते शरीरमां णिलेकुल अभाव होय छे.

"चुय" "च्युत" आ पदना प्रयोग कर्था भाद "चाविय" "चावित" आ पदना जे प्रयोग करवामां आवे छे ते स्वभाववादीओना मतनुं निराकरण करवा भाटे करवामां आवेल छे. स्वभाववादीओनी अेवी मान्यता छे के मरण तो स्वाभाविक रीते न थाय छे. तेमनी ते मान्यता गराणर नथी. कारण के मरणस्वभाव तो सर्वदा विद्यमान रहे छे. अने तेमनी मान्यता स्वीकारवामां आवे तो सर्वदा मरण थवानो प्रसंग प्राप्त थये. तेथी तेमनी ते मान्यता जोटी छे. "चाविय" आ पदना

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह—‘से त्तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं’ इति । तदेतत् ज्ञा क शरीरद्रव्यावश्यकं वर्णितम् । इति ॥ सू० १७॥

हैं । इतना बतनकर अब सूत्रकार इसका उपसंहार करते हुए कहते हैं कि— (से त्तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं) इस प्रकार पूर्वोक्त ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक का यह वर्णन है ।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा ज्ञायकशरीर द्रव्यावश्यक का स्वरूप वर्णन किया है । यह बात पहिले स्पष्ट की जा चुकी है कि भूत या भविष्यत् का कारण ही द्रव्य होता है । अतः जो साधु आदि आश्रयशास्त्र को जान रहा है परन्तु उसका उसमें उपयोग नहीं है ऐसा वह साधु आदि का जीव द्रव्यावश्यक है । इस द्रव्यावश्यक का भेद ही नोआगम द्रव्यावश्यक है । जिस साधुने पहिले आवश्यक सूत्र का सविधिज्ञान प्राप्तकर लिया था और जब वह पर्याप्तान्तरित होता है—तो उसका वह निजीव शरीर आवश्यक सूत्र के ज्ञान से सर्वथा अभावविशिष्ट होने के कारण ही नोआगमज्ञायकशरीर-द्रव्यावश्यक है । आगमज्ञान जिस में बिल्कुल नहीं है ऐसा वह शरीर उस आगम के ज्ञाता का है कि जिसने उन आगम को जाना तो था परन्तु वह उसमें उपयोग से विहीन था । इस तरह नोआगमज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक पदों के अर्थ से वह निजीव शय्यादिगत साधु का शरीर नोआगमज्ञायक

प्रयोग करीने ये वातनुं प्रतमाहन करवामां आवी युकी छे के न्यारे आयुक्कर्मने क्षय थाय छे त्तारे न प्राणीयेनां प्राणु शरीरमांथी नीकणी नय छे.

इवे सूत्रकार आ सूत्रने उपसंहार करतां आ प्रमाणे कडे छे—(से त्तं जाणय सरीरदव्वावस्सयं) आ प्रकारनुं पूर्वोक्त ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यकनुं स्वरूप छे.

भावार्थ—सूत्रकारने आ सूत्रद्वारा ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यकता स्वरूपनुं वर्णन कियुं छे. ये वात तो पड़ेला स्पष्ट करवामां आवी युकी छे के भूत अथवा भविष्य पर्यायनुं कारण न द्रव्य होय छे तेथी न साधु आदि आवश्यकशास्त्रने जानी गये छे. पण तेमां तेने उपयोग नहीं अटले के न अनुपयुक्तता संपन्न छे, अवां ते साधु आदिने एव द्रव्यावश्यक कडेवाय छे.

“नोद्रव्यावश्यक” आ द्रव्यावश्यकने अेक लेह छे.

न साधुने पड़ेलां आवश्यक सूत्रनुं सविधि ज्ञान प्राप्त करीलीधुं इतुं. अवा साधुने एव न्यारे मनुष्यपर्यायमांथी नीकणीने अन्य पर्यायमां अट्यो नय छे. त्तारे तेनुं ते निर्लव शरीर आवश्यक सूत्रनां ज्ञानथी सर्वथा अभावविशिष्ट (रहित) थय नय छे. ते कारणे तेनाते निर्लव शरीरने नो आगमज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक रूप कडेवामां आवे छे. आगमज्ञान जेना गिडकुल नहीं. अेवुं ते शरीर ते आगमज्ञातानुं छे के जेणे ते आगमने नहये तो इतो पण ते तेमां उपयोगथी विहीन (अनुपयुक्त) इतो. आ रीते नोआगम ज्ञायक शरीर

अथ द्वितीयभेदं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सयं ? भवियसरीर-
दव्वावस्सयं जे जीवे जोणि म्मणनिक्खते इमेणं चे व आत्तण्णं
सरीरसमुस्सएणं जिवोवदिट्ठेणं भावेणं आदस्सएत्तिपयं सेयकाले
सिक्खस्सइ न ताव सिक्खाइ । जहा को दिट्ठतो ? अय महुकुंभे
भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सइ । से त्तं भवियसरीरदव्वावस्सयं । सू० १८ ।

छाया—अथ किं तद् भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम् ? भव्यशरीर द्रव्यावश्यकं
यो जीवो योनिजन्मनिष्क्रान्तः अनेनैव आत्तकेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन

शरीर द्रव्यावश्यक है । अनेव विध तपस्याओं से जिनका शरीर परिशोधित हो
रहा है ऐसे साधुजनों ने जहाँ से यमेव जाकर भक्त प्रत्याख्यानरूप अनशन को
किया है करते है और आगे भी करेंगे उस स्थानका नाम सिद्धशिलातल
है । अथवा जहाँपर जो कोई महर्षि संस्तारक करके मरणधर्मको प्राप्त किया हो
उस स्थान का नाम सिद्ध शिलातल है । ॥ सू० १७ ॥

अब सूत्रधार नोआगम द्रव्यावश्यक वा जो दूसरा भेद भव्यशरीर
द्रव्यावश्यक है—उसकि प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सयं इत्यादि—॥ सू० १८ ॥

शब्दार्थ—(अथ) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त ! (तं भवियसरीर-
दव्वावस्सयं किं) पूर्वप्रक्रान्त भव्यशरीरद्रव्यावश्यक वा क्या स्वरूप है ?

द्रव्यावश्यक” आ पटोना अर्थनी अपेक्षाये ते निर्णय शय्यादिगत साधुनुं शरीर-नो
आगम ज्ञायकशरीर द्रव्यावश्यक” छे.

अनेक प्रकारनी तपस्यायो वडे जेनुं शरीर परिशोधित थछ रह्युं छे. अथां
साधुयो जथां जते ज जधने आहारपाणीना प्रत्याख्यानरूप अनशन धारणु करे
छे. धारणु करता हुता अने धारणु करशे. ते स्थाननुं नाम ‘सिद्धशिलातल’ छे.
अथवा जे स्थाने कोर्ध महर्षि थछ गया होय ते स्थानने सिद्धशिलातल कडे छे. सू १७

हुवे सूत्रधार लच्छ शरीर द्रव्यावश्यक नामनो नो आगमद्रव्यावश्यकनो जे भीजे

लेह छे तेनी प्ररूपणा करे छे—“से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सयं इत्यादि—

शब्दार्थ—(अथ) हुवे शिष्य गुरुने अथो प्रश्न पूछे छे के (तं भवियसरीर-
दव्वावस्सयं किं?) छे लगवन् । पूर्वोक्त लव्य द्रव्यावश्यकनुं केवुं स्वरूप छे ?

भावेन आवश्यकंति पदम् एकाले शिक्षियते, न तावत् शिक्षते । यथा
को दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भो भविष्यति, अयं घृतकुम्भो भविष्यति । तदेतत्
भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम् ॥ सू० १८ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—से किं तं भवियसरीरदव्वावरसयं' इति अथ
किं तद् भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम् ? उत्तरमाह—'भवि'सरीरदव्वावरसयं' इति
भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं=भविष्यतीति सूत्रः—विवक्षितपर्याययोग्य इत्यर्थः, तस्य
शरीरं तदेव भविभावावश्यककारणत्वाद् द्रव्यावश्यकं—भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं
वर्ण्यते इत्यर्थः । यो जीव—योनिजन्मनिष्क्रान्तः=योन्धः=योनिमध्यात्—जन्म
काले निष्क्रान्तः=निर्गतो न तु पूर्णसमयात् पूर्वमेव गर्भात् पतितो अनेक आत्त-
केन=गृहीतेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन भावेन आवश्यक इति पदम्=आव-
श्यकशास्त्र भविष्यत्काले शिक्षिते=अध्येष्यते, न तावत्-संप्रति शिक्षते ? एवं
विधं शरीरं भव्यद्रव्यावश्यकं भवति । अत्रापि आगमाधारमाश्रित्य नोआगमत्वं
बोध्यम्, तस्मिन् समये तत्र शरीरे सर्वथाऽऽगमस्याऽभावात् । नो शब्देऽत्र
आगमस्य सर्वथा निषेधं सूचयति ।

उत्तर—(जे जीवे जोणिजम्मणनिखंते इमेणं चव आत्तएणं सरीरसमुसएणं
जिणोवदिट्ठेणं आवस्सएत्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ न तावसिक्खाइ
भवियसरीरदव्वावरसयं) जो जीव उत्पत्तिस्थानरूप योनि स्वे अपना समयपूर्ण
करके ही निकला है—समय के पहिले बीच में उत्पन्न नहीं हुआ है—ऐसा
वह जीव उस प्राप्त शरीर से जिनोपदिष्ट भावके अनुसार आवश्यकशास्त्र को
भविष्यत्काल में सीखेगा—वर्तमान कालमें सीख नहीं रहा है ऐसा वह शरीर
भव्यशरीर द्रव्यावश्यक है । इस भव्यशरीर द्रव्यावश्यक में भी आगम के
अभाव को लेकर नो आगमता जाननी चाहिये । क्यों कि उस समय उस

उत्तर—(जे जीवे जोणिजम्मणनिखंते इमेणं चव आत्तएणं सरीरसमुसएणं
जिणोवदिट्ठेणं भावेणं आवस्सएत्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ न तावसिक्खाइ
भवियसरीरदव्वावरसयं) जे एव उत्पत्तिस्थानरूप योनिभांथी पोतानो समयपूर्णे
करीने जे अडारनीकएथे छे समय पूरे थया पहिला अडारनीकएथे नथी अटवे के गर्भांथी
पूरे समय व्यतीत थया पहिला पतित थयो नथी, अवे ते एव ते प्राप्त शरीर
वडे जे जिनोपदिष्ट भाव अनुसार आवश्यकशास्त्रने भविष्यमां शिष्ये—वर्तमान
क्षणमां ते तेने शिषी रह्यो नथी, अवे ते लण्य एवन्तुं शरीर 'भव्यशरीर द्रव्या-
वश्यक' कहेवाय छे. आ लण्यशरीरद्रव्यावश्यकमां पणु आगमना अलावने तीध
नोआगमता (आवश्यकशास्त्रना ज्ञाननो सर्वथा अलाव) जणुवी, कारणे के ते समये

ननु-आवश्यकपर्यायस्य कारणं द्रव्यावश्यकमुच्यते-तदानीं तत्र शरीरे आगमभावात् तस्य नास्ति ते प्रति कारणत्वम्, अतोऽयं शरीरे नास्ति द्रव्यावश्यकत्वम् ? इति चेत्, उच्यते-तदानीमपि तत्र द्रव्यावश्यकत्वमुपचर्यते इति नास्ति कोऽपि दोषः। अत्र दृष्टान्तजिज्ञासया शिष्यः पृच्छति-‘जहा को दिदृतो’ इति। यथा को दृष्टान्तः हे भदन्त। अत्र यथा कोऽपि दृष्टान्तो भवेत्, तथा द्रवीतु ? उत्तरमाह-‘अयं महुकुंभे भविस्सइ, अयं घटकुंभे भविस्सइ’ इति। अयं मधुकुम्भो भविष्यति, अयं घृतकुम्भो भविष्यति। अयं भावः-घृतरक्षणाय मधुरक्षणाय च कुम्भ-

शरीर में आगम वा सर्वथा अभाव है। जो शब्द इस समय के शरीर में आगम का सर्वथा निषेध सूचित करता है।

शंका-आवश्यक पर्याय का जो कारण होता है वह द्रव्यावश्यक कहा जाता है। इस समय के शरीर में तो आगम का सर्वथा अभाव है, इसलिये उस शरीर को द्रव्यावश्यक के प्रति कारणता नहीं होने से उसमें द्रव्यावश्यकता कैसे आसकती है ?

उत्तर-उस समय भी उसमें द्रव्यावश्यकता उपचार किया जाता है। क्योंकि यह शरीर आगे चलकर इसी पर्याय में आवश्यकशास्त्र वा ज्ञाता बनेगा-परन्तु वर्तमान में नहीं है। इसलिये आवश्यकशास्त्र वा भाविनाल संबन्धी अनुपयुक्त ज्ञातृत्व वा उसमें उपचार करके उसका सर्वथा निषेध किया गया है। इस विषय में दृष्टान्त जानने की इच्छा से शिष्य पृच्छति है कि हे भदन्त ! (जहा को दिदृतो) यहां पर जैसा दृष्टान्त हो वैसा आप कहिये

ते शरीरमां आगमनो सर्वथा अलाव न् होय छे. “नो” पद ते समये शरीरमां सर्वथा निषेध सूचित करे छे.

शंका-आवश्यकपर्यायतुं जे कारण होय छे, तेने द्रव्यावश्यक कहेवामां आवे छे. अत्यारे तो तेना शरीरमां आगमनो सर्वथा अलाव न् छे. आरीते शरीरमां द्रव्यावश्यकना कारणनो न् सद्भाव न् होवा छतां पणु तेमां द्रव्यावश्यकता केवी रीते संलवी शके छे ?

उत्तर-आ समये तो तेमां द्रव्यावश्यकतानो उपचार करवामां आवे छे अटले के आ अथनने औपचारिक इथन न् समजवु जेदंजे कारण के आ शरीर आगम जतां आ मनुष्य पर्यायमां न् आवश्यकशास्त्रनो ज्ञाता बनवाना। ई-वर्तमानमाणे तो ते तेना ज्ञाता नथी. तेथी आवश्यकशास्त्रना लविषयज्ञाण सणधी अनुपयुक्त ज्ञातृत्वनो तेमां उपचार करीने तेना सर्वथा निषेध करवामां आवेयो छे.

आ विषयने दृष्टान्तथी समजवा भाटे शिष्य गुरुने आ प्रभाणे ‘कहे छे- (जहा को दिदृतो) हे भदन्त ! आ विषयतुं प्रतिपादन करतुं कोछ दृष्टान्त कहेवानी कृपा करे. गुइ महाराज आ विषयतुं प्रतिपादन करवा निमित्त नीचेतुं दृष्टान्त आदिछे

कारेण द्यौ घटौ निर्मितौ । ततःकोऽपि तं पृष्टवान्—किमर्थो एतौ घटौ ? कुम्भ-
कारः कथयति अयं घृतकुम्भो भविष्यति, अयं तु मधुकुम्भो भविष्यति, इति ।
यथा भविष्यद्घृताधाःत्वपर्यायं मध्वाधारत्वपर्यायं तदानीमप्याश्रित्य घृतकुम्भो
मधुकुम्भश्चेति व्यपदिष्यते, तथाऽत्रापि भाविनद्रव्यावश्यकपर्यायकारणत्व-

(अयं मधुकुम्भे भविरसइ, अयं घृतकुम्भे भविरसइ) सुनो दृष्टान्त इस विषय में
इस प्रकार है—घृत रखने के लिये, और मधु रखने के लिये, किसी कुंभार
ने दो घडे बनाये । उन्हें देखकर किसीने उससे पूछा कि ये किसलिये तुमने
बनाये हैं—तब उसने उससे कहा कि यह घृत कुंभ होगा और यह मधुकुंभ
होगा । तो जिस प्रकार उस समय भविष्यत् घृताधारत्वरूप पर्याय और मध्वा-
धारत्वरूप पर्याय वा उन दोनों में आश्रयकर उन्हें वह घृत कुंभ और मधु-
कुंभ इसरूप के कह देता है, उसी तरह इस समय के शरीर में भी भावि
आवश्यकरूप पर्याय के प्रति कारणता को लेकर उसे द्रव्यावश्यकरूप से मान
लिया जाता है । इस द्रव्यावश्यकरूप भव्यशरीर में वर्तमान में आवश्यक के
अर्थज्ञान वा सर्वथा अभाव है इसलिये उसमें नोआगमता जाननी चाहिये ।
इस तरह यह प्रक्रान्त (पूर्वप्रस्तुत) भव्यशरीर द्रव्यावश्यक का वर्णन किया ।

तात्पर्य इसका यह है कि—सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा भव्यशरीर द्रव्या
वश्यक का स्वरूप प्रकट किया है । मनुष्य प्राप्त शरीर से जा आगे आवश्यक

(अयं मधुकुम्भे भविस्सइ, अयं घृतकुम्भे भविरसइ) डोह अेक कुंभारे मध
लखाने भाटे तथा धी लखाने भाटे जे घडा जनाव्या. ते जन्ने घडाने जेधने
डोहअे तेने अेवे प्रश्न पूछये के “आ जे घडा तमे शा भाटे जनाव्या छे ?”
त्यारे कुंभारे अेक घडा जतावीने कहुं के “आ मधुकुंभ छे” अने जेधने घडा
जतावीने कहुं के “आ घृतकुंभ छे” जे प्रकारे लविष्यकालिन घृताधारत्वइप पर्याय
अने मधु आधारत्वइप पर्यायने ते जन्ने घडाभां आश्रय लधने अत्यारे पणु तेभने
घृतकुंभ अने मधुकुंभ इपे ओणजवामां आवे छे—(जे के वर्तमानकाणे तो तेभां
घृत पणु नथी अने मधु पणु नथी) अेज प्रमाणे आ समयना शरीरभां पणु
लविष्यकालिन आवश्यकइप पर्यायना कारणेने सदृलाव होवाने कारणे तेने द्रव्यावश्यक
इपे मानी लेवामां आवे छे. आ द्रव्यावश्यकइप लव्यशरीरभां वर्तमान काणे तो
आवश्यकना अर्थज्ञानने सर्वथा अभाव ज छे. ते कारणे तेभां “नोआगमता”
समजवी. पूर्वप्रक्रान्त (पूर्वप्रस्तुत) लव्यशरीरद्रव्यावश्यकनुं आ प्रक्रान्तुं स्वरूप छे.

लावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रद्वारा लव्यशरीर द्रव्यावश्यकनुं स्वरूप प्रकट कथुं
छे. जे मनुष्य प्राप्त शरीर द्वारा ज लविष्यभां आवश्यकसूत्रने अनुपयुक्त ज्ञाता

माश्रित्य द्रव्यावश्यकत्वं विज्ञेयमिति । भव्यशरीरे आवश्यकार्थज्ञानाभावान्नो-
आगमत्वं बोध्यम् । तदेतद् भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं वर्णितम् ॥सू० १८॥

अथ तृतीयभेदं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं जाणयसरीरभवि सरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं
जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं तिवि पणत्तं । तं
जहा—लोइयं, कुप्पावयणियं, लोउत्तरियं ॥ सू० १९ ॥

छाया—अथ किं तद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम् ।
ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा लौकिकं,
कुप्रावचनिकं, लोकोत्तरिकम् ॥सू० १९॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ किं तद् ज्ञायकशरी-
रभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम् ? उत्तरमाह—‘जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं’

शास्त्र वा अनुपयुक्त ज्ञाता बनेगा उस वा वह शरीर द्रव्यावश्यक है । वर्तमान
में वह ऐसा नहीं है, अतः उसका उसमें उपचार कर लिया जाता है । इस
द्रव्यावश्यक में आवश्यक का अर्थज्ञान बिलकुल नहीं है । इसलिये इसे नो-
आगम की अपेक्षा वह भव्यशरीर द्रव्यावश्यक है । ॥ सूत्र १८ ॥

अब सूत्रकार तृतीय भेद के स्वरूप का निरूपण करते हैं—

‘से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं इत्यादि । ॥ सू० १९ ॥

शब्दार्थ—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! (त जाणयसरीर भविय
सरीर वइरित्तं दव्वावस्सयं किं) पूर्व प्रक्रान्त (पूर्वप्रतुत) ज्ञायकशरीर भव्यशरीर
व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ? उत्तर—(जाणयसरीरभवियसरीर-

णनवांनो छे, तेना ते शरीरने द्रव्यावश्यकइपे अहीं प्रकट करवाभां आंधुं छे.
वर्तमानकाणे ते अंधुं नथी, तेथी तेना तेभां उपचार करी लेवाभां आवे छे आ
अपेक्षाअे तेने द्रव्यावश्यक गणावी लेवाभां आवे छे. आ द्रव्यावश्यकभां आवश्यकतुं
अर्थज्ञान बिलकुल नथी, तेथी नोआगमनी अपेक्षाअे तेने लव्यशरीर द्रव्यावश्यक
इहेवाभां आंधुं छे.-॥ सू० १८ ॥

इसे सूत्रकार उपयुक्त गन्नेथी लिन्न अेवा नोआगमद्रव्यावश्यक' ना त्रीण
लेहत्तुं स्वइप समजवे छे—“से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं” इत्यादि—

शब्दार्थ—शिष्य गुरुने अेवा प्रश्न पूछे छे के (से तं जाणयसरीर भवियसरी-
रवइरित्तं दव्वावस्सयं किं) छे लागवन् ! पूर्वप्रतुत ज्ञायकशरीर लव्यशरीर व्यति-
रिक्त द्रव्यावश्यकतुं स्वइप केपुं छे ? अेटले के ज्ञायकशरीर अने लव्यशरीरथी लिन्न
अेवा द्रव्यावश्यकतुं स्वइप केपुं छे ?

इत्यादि । ज्ञायकशरीर भव्यशरीरव्यतिरिक्तं ज्ञायकशरीरभव्यशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं
 =मिन्नं द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रहसम् । तथा—लौकिकं, कुप्रावचनिकं च ॥ सू० १९ ॥
 तत्र ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तलौकिक द्रव्यावश्यकं प्रथमं भेदं निरूपयितुमाह—
 मूलम्—से किं तं लोइयं द्वावस्सयं लोइयं द्वावस्सयं जे इमे
 राईसरतलवर माडंबियकोडुंबियइब्भसेट्टि सेणावइ सत्थवाहप्पभिइओ
 कळं पाउप्पभायाए रयणीए सुविमलाए फुल्लुप्पलकमलकोमल्लुम्मि-
 लियम्मि अहापंडुरे पभाए रक्तासोगप्पगासकिंसुयसुयमुहगुंजद्ध-
 रागसरिसे कमलागरनल्लिणिसंडबोहए उट्टियम्मि सूरे सहस्सर-
 रिसिदिणयरे तेयसा जलंते मुहधोयणदंतपक्खालण-तेह-णहाण-
 फणिहसिद्धत्थय-हरि आलिय-अदागध्ववपुप्फमल्लगंधतंबोलवत्थाइ
 याइं द्वावस्सयाइं करेति । तओ पच्छा रायकुलं वा देवकुलं वा
 आरामं वा उज्जाणं वा सभं वा पवं वा गच्छंति से तं लोइयं द्वा-
 वस्सय ॥ सू० २० ॥

छाया—अथ किं तद् लौकिकं द्रव्यावश्यकम् ? लौकिकं द्रव्यावश्यकं—य

वदिरिक्तं द्वावस्सयं त्रिविधं पणत्तं) ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्या-
 वश्यकं तीन प्रकार का ब्रह्म है—(तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(लोइयं कुप्पावय-
 णियं लोउत्तरियं) लौकिक कुप्रावचनिक और लौकोत्तरिक । ॥ सू०-१९ ॥

अत्र सूत्रकार तद्व्यतिरिक्त लौकिक द्रव्यावश्यकं रूपं प्रथमं भेदं का
 कथन करते हैं—से किं तं लोइयं द्वावस्सयं” इत्यादि । ॥ सूत्र २० ॥

शब्दार्थ—से किं तं शिष्यं पूछता है कि है भदंत ! (तं लोइयं द्वावस्सयं

उत्तर—(ज्ञायकशरीर भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्वावस्सयं त्रिविधं पणत्तं)
 ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यकता त्रय प्रकार कक्षा छे. (तंजहा) ते
 प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(लोइयं कुप्पावयणियं लोउत्तरियं) (१) लौकिक, (२)
 कुप्रावचनिक अने (३) लौकोत्तरिक ॥ सू. १९ ॥

इये सूत्रकार तद्व्यतिरिक्त लौकिक द्रव्यावश्यकं रूपं पडेला लेदनुं स्वरूप समझवेछे.

“से किं तं लोइयं द्वावस्सयं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्यं गुणे अथवा प्रश्न पूछे-छे के छे-संगवन् । (तं लोइयं

इमे राजेश्वरतल-रमाडम्बिककौटुम्बिकेभ्यश्चेष्टिसेनापतिसार्थवाहप्रभृतयः कल्पे प्रादुप्रभातायां रजन्दां सुविमलायां फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते- यथापाण्डुरे प्रभाते रक्ताशोकप्रकाशकिंशुकशुकमुखगुञ्जार्द्धरागसदृशे कमलाकरनलिनीपण्ड- बोधके उत्थिते सूर्ये सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति मुखधावनदन्तप्रक्षालन

किं) लौकिक द्रव्यावश्यक रूप प्रथम भेद का क्या स्वरूप है? (लो.यं दद्वा- वस्सयं) उत्तर-लौकिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है-(जे इमे राईसर, तलवरमाडंबिय, कोडुंबिय, इम्भ, सेट्टि, सेणावड, सत्थवाहप्पभिडओ) जो ये राजेश्वर-मांडलिकनरपति, ऐश्वर्य संपन्नव्यक्ति, तलवर, मांडंबिक कौटु- म्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि मनुष्य (कल्लं) सामान्य प्रभात के होने पर (पाउपभायाए रयणीए) प्रारंभिक अवस्था प्राप्त है प्रभात जिस में ऐसी रात्रि के होने पर (सुविमलाए, फुल्लुत्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि) तथा पूर्व की अपेक्षा स्फुटतर प्रकाश संपन्न रात्रि के होने पर विकसित कमल के पत्रों के और मृगविशेष के नयनों के सुकुमार उन्मीलनवाले (अहापडुरे) यथा योग्य पीतमिश्रित शुक्ल (पभाए) प्रभात के होने पर (रक्तासोगप्पगासकिं सुयसुयमुहगुं जद्धरागसरिसे) तथा रक्त अशोकवृक्ष की क्रांति के तथा पलाश पुष्प, और शुक मुख एवं गुंजार्ध के राग के सदृश (कमलागरनलिणि संडवोहए) कमलों की उत्पत्ति भूमिरूप हृदादिजलाशयों में पत्रवनों के विक्राशक (सहस्ररस्सिमि

दद्वावस्सयं किं?) लौकिक द्रव्यावश्यक रूप ते प्रथम लेदनु स्वरूप केवुं छ?

उत्तर--(लोइयं दद्वावस्सयं) लौकिक द्रव्यावश्यकनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छ-

(जे इमे राईसर, तलवर, मांडंबिय, कोडुंबिय, इम्भ, सेट्टि, सेणावड, सत्थवाहप्पभिडओ) जे आ राजेश्वर (मांडलिक नरपति-अश्वर्यसंपन्न व्यक्ति), तलवर, मांडलिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि मनुष्य (कल्लं) सामान्य प्रभातकाण थतां, (पाउपभायाए रयणीए) रात्रि व्यतीत थदने दिवरुनी प्रारंभिक अवस्थाइय प्रभातकाणने प्रारंभ थतां, (सुविमलाए, फुल्लुत्पल- कमलकोमलुम्मिलियम्मि) तथा रात्रिकाण पसार थदने परेलां इत्तर स्फुटतर प्रकाशधी संपन्न, विकसित कमलपत्रेथी संपन्न अने मृगविशेषना नदनाना सुकुमार उन्मीलनथी युक्त, (अहापडुरे) यथायोग्य पीतमिश्रित शुक्ल (आथां पीणां) पभाए) प्रभात थतां, (रक्तासोगप्पगासकिंसुय सुयमुहगुं जद्धरागसरिसे) तथा पाल अशोकवृक्षना प्रमान, पलाशपुष्प समान तथा शुकना मुष समान अने गुंजार्ध (अण्णोहीना अर्धं लाग) समान लाल, (कमलागरनलिणि संडवोहए) कमलोना उत्पत्ति स्थानइय हृदादि जलाशयोमां पत्र वनोने विकसित करनार, (सहस्ररस्सिमि दिणयरे तेयसा

तैलस्नानफणिहसिद्धार्थकहरितालिकाऽऽदर्शधूपपुष्पमाल्यगन्धताम्बूलवस्त्रादिवानि द्रव्या-
वश्यकानि कुर्वन्ति । ततःपश्चात् राजकुलं वा देवकुलं वा आरामं वा उद्यानं
वा सभां वा प्रयागं वा गच्छन्ति । तदेतत् लौकिकं द्रव्यवश्यकम् ॥सू० २०॥

टी० १—शिष्यःपृच्छति—से किं तं इत्यादि । अथ किं तद् लौकिकं
द्रव्यावश्यकम् इति । उक्तमाह—लौकिकं—लोके भवं लौकिकं द्रव्यावश्यकं वर्णते

दिणयरे तेयसा जलंते) सहस्रविरणां से युक्त, दिवसविधायक और तेज से
देदीप्यमान ऐसे (सूरे उड्डियम्मि) सूर्य के उदित होने पर (मुहधोयण—दंतपत्रखा-
लण—तेल्ल—ण्हाणफणिह—सिद्धत्थय—हरि—अद्दागधूपुष्पमल्लगंधतंबोलत्था याइं
द्रव्यावश्यकं करेति) मुँह का धोना दन्तों का पक्षालन करना फणिह
—कंची से बालों का ऊछना, मङ्गलनिमित्त सरसों का और दुर्वा का प्रक्षेपण
करना, दर्पण में मुँह का अवलोकन करना, धूप से वस्त्रों को सुरभित करना,
फूलों को लेना, पुष्पों की माला पहिरना पान खाना, और शुद्ध वस्त्रों का
पहिरना इत्यादिरूप द्रव्यावश्यक करते हैं । (तओ पच्छा) इसके बाद वे (राजकुलं वा
देवकुलं वा आरामं वा उज्जाणं वा सभं वा, पवं वा गच्छन्ति) राजकुल में, या
देवकुल में अथवा आराम में या उद्यान में, या सभा में अथवा पानीयशाला
में जाते हैं । तात्पर्य इसके बहने का यह है कि राजेश्वरादि संबन्धी जो
मुखधा=नादि कार्य हैं वह सब लौकिक द्रव्यावश्यक हैं । राजा जिन्हें

जलंते) सहस्र (किं-ल्लोथी युक्त, दिवस विधायक अने तेजधी देदीप्यमान अथवा
(सूरे उड्डियम्मि) सूर्यने उदय यतां (मुहधोयणं, दंतपत्रखालणं, तेल्ल, ण्हाण-
फणिह, सिद्धत्थय, हरि, अद्दागधूप, पुष्पमल्लगंधतंबोलत्थायाइं द्रव्याव स-
याइं करेति) मुण धोयण. हांत साइ क्त्वा इप शरीर पर तेलनुं
मालिश करवाइप, स्नान करवाइप, हांतिया के कांसकी वडे वाण ओणवाइप, मंगण
निमित्त सरसव अने दुर्वातुं प्रक्षेपणु करवाइप, दर्पणुमां पोताना मोठनु अवलो-
कन करवाइप, सुगंधयुक्त धूपथी वस्त्रोने सुगंधिहार करवाइप, झूले अहणु करवाइप,
झूलेनी भाणाओणपडेकरवाइप, पान भावाइप, स्वच्छ वस्त्रे ने परिधान करवाइप इत्यादि-
इप द्रव्यावश्यक करे छे (तओ पच्छा) त्यारणाह तेओ (राजकुलं वा, देवकुलं वा,
आरामं वा, उज्जाणं वा, सभं वा, पवं वा, गच्छन्ति) राजदरबारमां, अथवा देव
स्थानमां, अथवा आरामगृहमां अथवा भागमां, अथवा सलामां अथवा जगदशय
तश्च जय छे.

आ सभस्त कथनने। लावार्थं ओ छे के राजेश्वर आदि उपर्युक्त भाषुसेना
के मुखधावन आदि कार्यो छे ते सोने लौकिक द्रव्यावश्यकइप गणुवामां आठ्या छे.

इत्यर्थः । ये इमे मनुष्याः राजेश्वरतलवरमाण्डविककौटुम्बिकेभ्यश्चेष्टिसेनापति
 सार्थवाहप्रभृतः, तत्र—राजानः=माण्डलिका नरपतयः, ईश्वराः=ऐश्वर्यसम्पन्नाः,
 तलवराः=भूपालदत्तपट्टपरिभूषितराजवल्पाः कौटुपाला इत्यर्थः छिन्नभिन्नजनाश्रय-
 विशेषो मडम्बस्तत्राधिकृताः माडम्बिकाः ग्रामपञ्चशतीपत्य इत्यर्थः, यद्वा—
 सार्द्धक्रोशद्वयपरिमितप्रान्तरैर्विच्छिद्यविच्छिद्यस्थितानां ग्रामाणामधिपतयः, कौटु-
 म्बिकाः=कुटुम्बभरणे तत्पराः, यद्वा—बहुकुटुम्बप्रतिपालकाः, इभ्याः इभो=हरती तत्प्र-
 माणं द्रव्यमर्हन्तीति तथा, ते च जघन्यमध मोत्कृष्टभेदात् त्रिपकाराः, तत्र हस्ति-
 परिमितमणिमुक्ताप्रवालसुवर्णरजतादिद्रव्यराशिस्वामिनो जघन्याः, हस्तिपरिमित
 वज्रमणिमाणिक्यराशिस्वामिनो मध्यमाः, हस्तिपरिमितकेवलवज्रस्वामिन

पट्टबन्ध प्रदान करता है उनका नाम तलवर है अर्थात् कौटवाल । ये राजा
 जैसे ही होते हैं । छिन्नभिन्न जनाश्रय विशेष का नाम मडम्ब है । इन मडम्बों
 में जो अधिकृत होते हैं उ का नाम माडम्बिक है । ये ५०० गांवों के अधि-
 पति होते हैं । ढाई २ कोस के अन्तर को छोड़ छोड़ कर जो गांव वसते
 हैं उनका नाम भी मडम्ब है । इनके जो अधिपति होते हैं वे माडम्बिक हैं ।
 कुटुम्ब के भरणपोषण कार्य में जो रत रहते हैं अथवा अनेक कुटुम्बों का जो
 प्रतिपालन करते हैं वे कौटुम्बिक हैं । इभ नाम हाथी का है । हाथी प्रमाण
 द्रव्य जिनके पास होता है वे इभ्य है । ये जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट इस
 त ह ३ प्रकार के होते हैं । इनमें से जो हस्ति परिमित मणि, मुक्ता, प्रवाल
 सुवर्ण और रजत आदि द्रव्यराशि के स्वामी होते हैं वे जघन्य इभ्य हैं ।
 हस्तिपरिमित वज्र-हीरा, मणि, और माणिक्य राशि के जो स्वामी होते हैं

हुये आ सूत्रमां वपरायेला तलवर आदि पदोना अर्थ समजववामां आवे
 छे—“तलवर” संतुष्ट थाय त्यारे राज जेमना राजपोषाक प्रदान करे छे तेमनु नाम
 तलवर छे. तेओ राज जेवां जे डोय छे. छिन्नभिन्न जनाश्रयविशेषने मडम्ब कडे
 छे. आ प्रकारना मडम्बोना अधिपतिने माडम्बिक कडे छे तेओ ५००-५०० गाभोना
 अधिपति डोय छे. अथवा अदी अदी गाठिने अंतरे जे गाभो वसे छे ते गाभोनु
 नाम मडम्ब छे अने तेना अधिपतिने माडम्बिक कडे छे. कुटुम्बना भरण पोषण
 ना कार्यमां जेओ रत रहे छे तेमने. अथवा अनेक कुटुम्बोनु परिपालन करनारने
 कौटुम्बिक कडे छे. ‘इभ्य’ ओटवे हाथी हाथी प्रमाण धन जेनी पासो डोय छे.
 तेने इभ्य कडे छे इभ्यना नीचे प्रमाणे त्रय प्रकार छे. जघन्य मध्यम अने उत्कृष्ट
 हस्तिपरिमित (हाथी प्रमाण) मणि, मोती, प्रवाल, सुवर्ण, रजत (चांदी) आदि
 द्रव्यराशिने जे स्वामी डोय छे तेने ‘जघन्य’ इभ्य’ कडे छे. हस्तिपरिमित वज्र

उत्कृष्टाः, श्रेष्ठिनः=लक्ष्मीकृपाकटाक्षप्रक्षलक्ष्यमाणद्रविणलक्षलक्षण-
विलक्षणहिरण्यपद्ममूलकृतमूर्धानो नगरप्रधानव्यवहर्त्तारिः, सेना तत्रः
=चतुरङ्गसेनानायकाः, सार्थवाहाः=गणिम-धरिम-मेय-परिच्छेद्यरूपद्रव्यविक्रयवस्तु-
जातमादाय लाभेच्छया देशान्तराणि व्रजतां सार्थं वाहयन्ति=योगक्षेमेभ्यो परि-
पालयन्ति, दीनज्जोपवसाय मूलधनं दत्त्वा तान् संवर्द्धन्तीति तथा, तत्र-
गणिमम्=एकद्वित्रिचतुरादि संख्याङ्गमेण गणयित्वा यदी-ते तथा-नालिं र-पूगी-

वे मध्यम द्रव्य हैं। जो हस्ति परिमित वज्र के ही अकेले स्वामी होते हैं वे
उत्कृष्ट द्रव्य हैं। जिन के पास लक्ष्मी देवी के कृपाकटाक्ष से लाखा का द्रव्य
होता है और इसी कारण जो नगर सेठ की उपाधि से विभूषित रहा करते
हैं। इसके उपलक्ष्य में राजा इन्हें सुवर्ण वा पट्टबंध प्रदान करता है जिस से
उन का मस्तक सदा विभूषित रहा करता है। ऐसे मनुष्य श्रेष्ठी कहलाते
हैं। चतुरंग सेना के जो नायक होते हैं उनका नाम सेनापति है। गणिम,
धरिम, मेय, और परिच्छेद्यरूप क्रय विक्रय योग्य द्रव्यसमूह को लेकर जो
लाभ की इच्छा से देशान्तर का जाते हुए मनुष्यों के साथ जो दीनजनों के
निमित्त प्रदान कर उनका संवर्द्धन करते हैं उनका नाम सार्थवाह है। अलब्ध
वस्तु का लाभ होना इसका नाम योग और लब्ध का परिरक्षण होना इसका
नाम क्षेम है। नारिकेल-नारियल, पूगीफल-सुपारी, कदलीफल-केला आदि
ये सब गणिम द्रव्य हैं। क्योंकि ये एक, दो, तीन, चार, आदिरूप से

-हीरा, मणि अने भाण्डकी राशिना जे स्वामी होय छे तेने मध्य धर्म्य' कहे छे।
उत्तिपरिमित वज्रना जे स्वामी होय छे तेने उत्कृष्ट धर्म्य' कहे छे।

जेमनी पासे लक्ष्मीदेवीनी कृपाने लीधे लाजोनुं द्रव्य होय छे। अने ते
कारणे जेने नगरसेठनी पदवी भणी होय छे। जेवा मनुष्यने श्रेष्ठी (श्रेष्ठ) कहे छे।
आ पदवीना उपलक्ष्यमां राजा तेमने सुवर्णना पट्टबंध प्रदान करे छे। ते पट्टबंधथी ते
श्रेष्ठीनुं मस्तक सदा विभूषित रहे छे। चतुरंग सेनाना नायकने सेनापति कहे छे।

हुये सार्थवाह' आ पदना अर्थ समजववामां आवे छे—

गणिम, धरिम, मेय, अने परिच्छेद्यरूप क्रयविक्रययोग्य द्रव्यसमूहने लब्धने
लाभ प्राप्तिनी ध्येयाथी अन्य देश तरङ्ग प्रयाण करतां मनुष्येना सार्थ (समूह)ने
जे योग क्षेमपूर्वक पाणे छे। अथवा तेमने ज्वातुं होय ते स्थाने सलामत रीते
पहुंआडे छे, जे पोताना मण धननु गरीण लोकाने भाटे दान करीने तेमनुं स व-
र्द्धन करे छे, जेवा पुत्रने सार्थवाह कहे छे,

अलब्ध वस्तुने लाल (प्राप्तिरूप लाल) थयो तेनुं नाम 'योग' छे। अने
लब्ध (प्राप्त थयेली वस्तु)नुं परिरक्षण थयुं तेनुं नाम 'क्षेम' छे न गियेर. सुपारी

फलं—कदलीफलादिकम् । धरिमं=तुलासूत्रेणोत्तोल्य यद्दीयते. यथा व्रीहि—यव-
लवण—सितादि । मेयं=शरावलघुभाण्डादिनोत्तोल्य यद्दीयते, यथा—दुग्ध—घृत—
तैलप्रभृति । परिच्छेद्यं च प्रत्यक्षतो निकषादिपरीक्षया यद्दीयते, यथा—मणि—
मुक्ता—प्रवालभरणादि । एतेषां राजेश्वरादीनामितरेतस्यो गद्वन्द्वः, ते प्रभृतयः—
आद्या मुख्या येषां ते तथा, कल्पे=सामान्येन प्रभाते, प्रभातस्यैव विशेषावस्थाः
प्राह—‘पाउप्पभायाए’ इत्यादिना । ‘पाउप्पभायाए’ प्रादुष्पभातायां—प्रादुर्भूतः प्रा-
रम्भिकावस्थां प्राप्तः प्रभातो यस्यां सा तथा तस्याम्, राज्याम्—रात्रौ इति
प्रभातस्य प्रथमावस्था १ । तदनन्तरम् सुविमलायां=पूर्वपिक्षया—स्फुटतरप्रकाशायां

गिनकर बेचे या दिये जाते हैं । जो तराजू से तोलकर बेचे या दिये जाते
हैं—उनका नाम धरिम है जैसे व्रीहि, यव—जौ, लवण, शक्कर आदि ।
पीतल आदि के बनाये गये बाँटो से जो नापकर बेचे या दिये जाते हैं—
उनका नाम मेय है—जैसे घृत, तेल दुग्ध वगैरह । जो कसौटी आदि पर
कसकर प्रत्यक्ष में परीक्षित करके दिये जाते हैं वे परिच्छेद्य हैं । जैसे मणि,
मुक्ता प्रवाल आदि । “पाउप्पभायाए” इत्यादि पदों द्वारा सूत्रकारने प्रभात
की विशेष अवस्थाओं का प्रतिपादन किया है । वे अवस्थाएँ यहां ३-तीन
प्रकट की गई हैं—“पाउप्पभायाए” इस पद से प्रभात की प्रथम अवस्था बत-
लाई गई है—इस अवस्था में रात्रि प्रभातप्राय हो जाती है । यह समय प्रभात
की आभा प्रारम्भिक अवस्था में आ जाती है । इसके बाद प्रभात की द्विती-

केषां आदिने गण्णिमद्रव्य कडे छे, कारणु के आ वस्तुओ अक ये, त्रणु आदिइय
गण्णिने वेच्याय छे—अथवा भरीह कराय छे. त्राण्वानी महदथी वजन करीने जे वस्तु-
ओने वेच्याय अथवा भरीहाय छे ते वस्तुओने धरिम कडे छे. जेमके योपा. जव,
भीहुं. साकर आदि द्रव्यो पीतण आदिमांथी जनावेला पावणां आदि साधनेा वडे
भापीने जे द्रव्यो वेच्याय छे ते द्रव्योने मेय कडे छे. जेमके धी. तेल; हृध.
जे द्रव्योने कसोटी पथर आदि पर कसोटी करीने—तेमनी प्रत्यक्ष परीक्षा करीने
करीने वेच्या के भरीहवामां आवे छे. ओवां द्रव्योने परिच्छेद्य कडे छे. जेमके.
मण्णि. मोति. प्रवाल आदि द्रव्यो.

“पाउप्पभायाए” इत्यादि पदों द्वारा सूत्रकारने प्रभातनी विशेष अवस्थाओनुं
प्रतिपादन कथुं छे. ते अवस्थाओ अडी त्रणु प्रकारनी कहेवामां आवी छे—“पाउ-
प्पभायाए” आ पद द्वारा प्रभातनी प्रथम अवस्था प्रकट करवामां आवी छे. आ
अवस्थां रात्रि प्रभातप्राय थछ जय छे. लगलग रात्रिना थार वाग्याना समयने
आ प्रभातनी प्रथम अवस्थाइय समय समजवो. ते समये प्रभातनी आला

तथामेव रात्रौ अनन्तम् फुल्लोत्पलकमलकोरलान्मीलिते-फुल्लं च तदुत्पलं च
 फुल्लोत्पलम्, कमलो मृगविशेषः, तयोः वीमलं=सुकुमा म् दलान् । न रनयोश्च उन्मी-
 लितम्=उन्मीलनं यस्मिन् प्रभाते स तथा तस्मिन् 'अहापंडुरे' यथापाण्डुरे
 =यथायोग्यपीतसंकलितशुक्ले प्रभाते सति इति-प्रभातस्य द्वितीयावस्था २। तदन्तरं-
 रक्ताशोक् प्रकाशकिशुकशुकमुखगुञ्जार्द्धरागसदृशे रक्ताशोक् स्य प्रकाशः=कान्तिः, किशुकं
 =पलाशपुष्पं च, गुञ्जार्द्धं च, तेषां रागेण सदृशो यः स तथा तस्मिन्, कम-
 लाकरनलिनीषण्डबोधके-कमलानाम् आकराः=उत्पत्तिभूमयो हृदादि जलाशय
 विशेषास्तेषु यानि नलिनीषण्डानि=पद्मवनानि तेषां बोधकस्तस्मिन्, सदृशश्च=
 सहस्रकिरणे दिनकरे=दिवसविधायिनि तेनसा ज्वलति सूर्ये उत्थिते च सति
 इति प्रभातस्य तृतीयावस्था ३। तदा मुखधावनदन्तप्रक्षालनतैलस्नानफणह-
 सिद्धार्थकहरितालिकाऽऽदर्शधूपपुष्पमाल्यगन्धताम्बूलवस्त्रादिकानि द्रव्यावश्य
 कानि कुर्वन्ति । तत्र-मुखधावनं=जलेन मुखप्रक्षालनम्, दन्तप्रक्षालनम्=दन्तकाष्ठा-

य अवस्था होती है-इसमें पहिले की अपेक्षा प्रकाश स्फुटतर हो जाता है-
 जिसे पौ फटना कहते हैं । धीरे २ प्रकाश बढ़ते २ कमलों के ईपत् विकाश
 और मृगों के उन्निद्र-निद्रारहित नयनों के सुकुमार उन्मीलन से युक्त होकर कुछ २
 पीतवर्ण से मिश्रितशुभ्रता से समन्वित बन जाता है । इस द्वितीय अवस्था को
 पार कर जब प्रभात अपनी तृतीय अवस्था में पहुंचता है तब इस समय सूर्य
 उदित होकर अपने प्रकाश-ऊषा से उसे प्रकाशित कर देता है । इसे तृतीय
 अवस्था संपन्न प्रभात के समय जो राजेश्वरादि मनुष्य मुखधावनादि आवश्यक
 कृत्यों वा संपादन करते हैं वे सब कार्य लौकिक द्रव्यावश्यक हैं ।

प्रारंभिक अवस्थाओं आवी ज्ञय छे. त्यारथाह प्रभातनी द्वितीय अवस्थाने। प्रारंभ
 थवा भाडे छे. त्यारे पहिला करतीं प्रकाश स्फुटतर थतो ज्ञय छे. आ समयने
 'योः शटवो' अथवा लणलाभणानो समय कडे छे धीर्धीरे प्रकाश वधतो वधतो
 कमलानो धपत् (आमान्य अल्प) विकासथी अने रणानो उन्निद्रनयनाना सुकुमार
 उन्मीलनथी (विधरवाथी) युक्त थधने सहज सहज पीतवर्णथी मिश्रित अथवा शुभ्र-
 तांथी समन्वित जनी ज्ञय छे आ भील अवस्था पसार करीने ज्यारे प्रभात पोतानी भील
 अवस्थाने प्राप्त करे छे, त्यारे सूर्योदय थध ज्ञवाने कारणे, सूर्यना हजारे किरणो
 वडे-ऊषा वडे प्रभात प्रकाशित थध ज्ञय छे. आ तृतीय अवस्था संपन्न प्रभातने
 समये राजेश्वर आदि मनुष्यो जे मुखधावन आदि आवश्यक कृत्यो करे छे, ते
 संपणां कृत्योने लौकिक द्रव्यावश्यक कडे छे.

दिना दन्तानां धावनं, तैलं=तैलाभ्यङ्गः, स्नानं, तथा—फणिहः—कङ्कतिका—कङ्कति-
क्या केशेषु व्यापारणमित्यर्थः, सिद्धार्थकाः=सर्षपाः, हरितालिका=दूर्वा, मस्तके
मङ्गलार्थं सिद्धार्थकानां दूर्वायाश्च प्रक्षेपणम्. आदर्शः=दर्पणः—मुख्याद्यवलोकनम्,
धूपः=धूपेन वस्त्राणां सुरभीकरणम्, पुष्पाणि, माल्यम्=पुष्पमाला, पुष्पमाल्यानां मस्त-
कादिषूपयोगः, ताम्बूलम्, वस्त्राणि च आदिर्येषां तानि तथाभूतानि द्रव्यावश्य-
कानि कुर्वन्ति । ततःपश्चात्=मुखधावनादि-द्रव्यावश्यककरणानन्तरं राजकुलं वा
देवकुलं वा आरामं वा उद्यानं वा तथा सभां वा, प्रपां=पानीयशालां वा मच्छ-
न्ति । राजेश्वरादिसम्बन्धिकं मुखधावनादिकं द्रव्यावश्यकं विज्ञेयम् ।

ननु राजेश्वरादिभिरवश्यं क्रियमाणत्वाद् मुखधावनादीनां भवत्वावश्यकत्वम्
परन्तु द्रव्यत्वं तु तेषां नास्ति, विवक्षितपर्यायस्य यत् कारणं तस्यैव द्रव्य-
त्वात्, उक्तं चापि—

“भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके ।

तद्द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम्” ॥ इति ॥

अस्य पद्यस्य व्याख्या प्रागेव ‘से किं तं द्रव्यावस्यं’ इति त्रयोदश-
सूत्रस्य टीकायां कृता ।

इत्थं राजेश्वरादि संबन्धिनां मुखधावनादीनामावश्यकपर्यायकारणत्वाभावाद्

शंका—राजेश्वर आदि मनुष्य द्वारा संपादित मुखधावनादि कृत्यों में
अवश्यकरणीयता होने के कारण आवश्यकत्व भले रहे. इस में हमें कोई विवाद
नहीं है—परन्तु उनमें विवक्षित पर्याय के प्रतिकारणत्वरूप द्रव्यत्व नहीं आता
है । क्योंकि विवक्षित यहाँ आवश्यक पर्याय है, उस पर्याय के प्रति मुख
धावनादि क्रियाओं वा क्या संबन्ध ? । द्रव्य का लक्षण १३ वें सूत्र की
टीका में “भूतस्य भाविनो वा” इत्यादि पद्यद्वारा स्पष्ट ही कर दिया गया
है । अतः इस प्रकार की द्रव्यता राजेश्वर आदि के मुख धावनादि लौकिक

शंका—राजेश्वर आदि मनुष्यद्वारा संपादित मुखधावन आदि क्रियाओं में
अवश्यकरणीयता होने के कारण आवश्यकत्व भले रहे. ये बात संबंधों में अनेक
विवादों में उतरेला भागता नहीं. परन्तु ते क्रियाओं में विवक्षित पर्यायना कारण
द्रव्यत्व संलपी शक्य नहीं. कारण के विवक्षित पर्यायने आवश्यक पर्याय अर्ही
प्रकट करवाया आवी छे, ते पर्यायनी साथे मुखधावन आदि क्रियाओंने शो संबंध
छे ? तेरमें सूत्रनी टीका में आपे द्रव्यतुं आ प्रमाणे लक्षण कथं छे—“भूतस्य
भाविनो वा” इत्यादि. आपे प्रतिपादित करेला ये लक्षण प्रमाणेनी द्रव्यता राजे-
श्वर आदिना मुखधावन आदि लौकिक कार्यों में नहीं आवी शकवाथी (असंलवित

नास्ति द्रव्यावश्यकत्वमिति चेदुच्यते—'भूतस्य भाविनो वा' इत्याद्येव द्रव्य-
लक्षणं नास्ति, किन्तु—'अप्पाहणो वि दव्वसदोत्थि' अप्राधान्येऽपि 'द्रव्यशब्दो-
ऽस्ति—इति वचनात् अप्रधानरूपेऽर्थेऽपि द्रव्यशब्दो वर्तते । मुखधावनादौ मोक्षप्राप्तेर-
प्राधान्यं च मोक्षकारणभूतभावावश्यकतापेक्षया बोध्यम् । यतो मोक्षस्य कारणं तु भावा-
वश्यकमेव नतु द्रव्यावश्यकम् अतोऽत्र मुखधावनादेरप्राधान्यमिति । ततश्च द्रव्यभूतानि—
अप्रधानभूतानि—आवश्यकानि द्रव्यावश्यकानीत्यर्थः, एवं च संसारकारणानां राजेश्व-
रादि मुखधावनादीनामस्त्येव द्रव्यावश्यकत्वम्, इति नास्ति दोषावसरः । मुख-

कार्यों में नहीं, आसकने से उनमें आवश्यक पर्याय के प्रति कारणता नहीं
बन सकती है । इस कारणता के अभाव में उनमें द्रव्यावश्यकता नहीं आसकती है ?

उत्तर—शंकाकार को जो इस प्रकार की शंका उत्पन्न हुई है । उसका
कारण "भूतस्य भाविनो वा" इत्यादि पद्योक्त द्रव्य का लक्षण
है कि इसपर यह कहना है कि द्रव्य का लक्षण इतना ही नहीं
है किन्तु "अप्पाहणो वि दव्वसदोत्थि" अप्राधान्य अर्थ में भी द्रव्य शब्द है "इस-
कथन के अनुसार अप्रधान अर्थ में भी द्रव्य शब्द का प्रयोग हुआ है ।
इन मुखधावनादि लौकिक कृत्यों में मोक्षप्राप्ति की अप्रधानता मोक्ष के कारण
भूत भावावश्यक की अपेक्षा से कहा गया है । क्योंकि मोक्ष का कारण तो
भावावश्यकही होता है, नहि कि द्रव्यावश्यक इसलिए यहाँ मुखधावनादि
की अप्रधानता है । इसकारण द्रव्यभूत-अप्रधानभूत जो आवश्यक
हैं वे द्रव्यावश्यक हैं—ऐसा अर्थ द्रव्यावश्यक का लभ्य हो जाता
है । इस तरह राजेश्वर आदि के संसारकारणभूत मुखधावनादि कार्यों में
द्रव्यावश्यकता घटित हो जाती है । इन मुखधावनादि कृत्यों में लोकप्रसिद्धि
से भी आगमरूपता नहीं है—अतः उनमें आगम का अभाव होने से नो

डोवाथी) ते क्रियाओ आवश्यकपर्यायना कारणरूप णनी शकती नथी, आ कारणतांना
अभावने लीधे ते क्रियाओमां द्रव्यावश्यकतानो सहलाव संलवी शकतो नथी,

उत्तर—शंका करनारे आ प्रकारनी जे शंका करी छे तेनु कारण "भूतस्य
भाविनो वा" इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा द्रव्यनु जे लक्षण प्रकट करवामां आण्युं छे,
ते लक्षणवाणा पदार्थने जे द्रव्य मानवुं जेछ्ये, ओवी जे तेनी मान्यता छे, आ
प्रकारनी मान्यताने कारणे जे आ शंका उद्देलवी छे, तो तेनी शंकाना जवाणरूपे
अभारे ओटवुं जे कडेवानुं के द्रव्यनु लक्षण ओटवुं जे नथी, परन्तु "अप्पाहणो
वि दव्वसदोत्थि" "अप्रधान्यमां षणु द्रव्य शब्द छे," आ कथन अनुसार अप्रधान
अर्थमां षणु द्रव्य शब्दने प्रयोग थयो छे, ते मुखधावन आदि लौकिक कृत्योमां
जे अप्रधानता (प्रधानताथी रक्षितपणु) कही छे ते मोक्षना कारणभूत भावावश्यकनी
अपेक्षाओ कडेवामां आवी छे, तेथी द्रव्यभूत-अप्रधानरूप जे आवश्यक छे तेमने

धावनादौ लोकप्रसिद्ध्याऽपि आगमाभावात् सर्वथा नोआगमत्वम्, नोशब्दश्चात्र सर्वथा आगमनिषेधे वर्तते । तदेतत् लौकिकं द्रव्यावश्यकं वर्णितम् ॥सू० २०॥

आगमता आजाती है । इस प्रकार सर्वथा आगम के अभावेऽन्य द्रव्यावश्यकता इनमें होने से लौकिक द्रव्यावश्यकता इनमें बन जाती है । इस तरह से लौकिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप वर्णन है ।

भावार्थ—इस सूत्रद्वारा सूत्रकार ने तद्व्यतिरिक्त लौकिकद्रव्यावश्यक का स्वरूप बतलाया है । उसमें संसारीजनोंद्वारा जो भी मांगलिक कृत्य हैं कि जिन्हें करना आवश्यक होता है वे सब लौकिक द्रव्यावश्यक हैं । मंगल निमित्त सर्पों का प्रक्षेप करना दूर्वा का संसार कार्यों में उपयोग करना, दही आदि का किसी शुभ कार्य के निमित्त भक्षण करना आदि सब द्रव्यावश्यक हैं । यद्यपि इन लौकिक आवश्यकपर्याय के प्रति कोई संबंध नहीं है फिर भी इन्हें द्रव्यावश्यक का अर्थ अप्रधानभूत आवश्यक मानकर द्रव्यावश्यकरूप माना गया है । इन लौकिक कार्यों में आगम का सर्वथा अभाव रहता है । अतः ये नोआगमरूप हैं ॥सूत्र२०॥

द्रव्यावश्यकरूप कहे छे आ प्रकारनो द्रव्यावश्यकनो अर्थ प्राप्त थछे जय छे आ प्रकारे रानेश्वरादिना संसार कारणभूत मुणधावन आदि कार्योमां द्रव्यावश्यकता घटित थछे जय छे आ मुणधावनाद कृत्योमां लोकप्रसिद्धिनी अपेक्षाये यणु आगमरूपता नथी ते कारणे ते क्रियाओमां आगमनो अलाव न्होवाने शीघे नो आगमता सिद्ध थय छे आ प्रकारे आगमना सर्वथा अलाव ज्ये द्रव्यावश्यकता तेमनामां होवाथी तेमनामां लौकिक द्रव्यावश्यकता होवानी वात सिद्ध थछे जय छे द्रव्यावश्यकताना स्वइपतुं आ प्रकारतुं वर्णन अही करवामां आव्यु छे

भावार्थ—आगला ये सूत्रमां (१७ अने १८ मां सूत्रमां शायकशरीरुं द्रव्यावश्यक अने लव्यशरीरद्रव्यावश्यकतुं स्वइप प्रकट करवामां आव्युं छे छे तेणनेथी लिन्न ओवां द्रव्यावश्यकनी प्रइपणां करवामां आवे छे आ सूत्रद्वारा तेना प्रथम लेहइप लौकिक द्रव्यावश्यकतुं स्वइप जताववामां आव्युं छे संसारी जवो द्वारा जे जे मांगलिक क्रियाओ करवानुं आवश्यक मानवामां आवे छे तेसघणी क्रियाओने लौकिक द्रव्यावश्यक कहेवामां आवे छे मंगल निमित्ते सरसव आदिना प्रक्षेप करवो; दूर्वा (हर्ष)नो मांगलिक कार्योमां उपयोग करवो केछ शुभकार्यने निमित्ते दही आदिनुं लक्षण करवुं वगेरे क्रियाओने लौकिक द्रव्यावश्यक कहे छे जे के आ लौकिक आवश्यक कृत्योना आवश्यकपर्यायनी साथे केछ संबंध नथी छतां यणु द्रव्यावश्यकनो अर्थ अप्रधानभूत आवश्यक मानीने तेमने द्रव्यावश्यकरूप मानवामां आवेल छे आ लौकिक कार्योमां आगमनो सर्वथा अलाव रहे छे तेथी तेओ नो आगमरूप छे ॥ सू० २० ॥

અથ જ્ઞાયકશરીરભવ્યશરીરવ્યતિરિક્ત-કુપ્રાવચનિકદ્રવ્યાવશ્યકરૂપં દ્વિતીય-
ભેદં નિરૂપયતિ—

મૂલમ્—સે કિં તં કુપ્પાવચણિયં દ્વવાવસ્સયં ? કુપ્પાવચણિયં
દ્વવાવસ્સયં જે ઇમે ચરગચીરિગચમ્મખંડિયભિક્વોડપંડુરંગગોયમ
ગોવ્વતિય ગિહિધમ્મધમ્મચિંતગઅવિરુદ્ધવિરુદ્ધવુદ્ધેસાવગંપભિત-
ઓ પાસેહત્થા કલ્હં પાઉપ્પમાયાણ રયણીણ જાવ તેયસા જલંતે
ઈંદસ્સ વાં સ્વંદસ્સ વા રુદ્ધસ્સ વા સિવસ્સ વાવેસમણસ્સ વા દેવસ્સ
વા નાગસ્સ વા જક્કલ્લસ્સ વા મૂયસ્સ વા મુગુદસ્સ વા અજ્જાણ વા
હુંગ્ગાણ વા કોદકિરિયાણ વા ઉવલેવણસંમજ્જણઆવરિસણધૂવ-
પુપ્ફગંધમહ્ણાહ્યાહં દ્વવાવસ્સયાહં કરેતિ, સે તં કુપ્પાવચણિયં
દ્વવાવસ્સયં ॥ સૂ. ૨૧ ॥

છાયા—અથ કિં તત્ કુપ્રાવચનિકં દ્રવ્યાવશ્યકમ્ ? કુપ્રાવચનિકં દ્રવ્યા-
વશ્યકં ય ઇમે ચરકચીરિકચમ્મખંડિકમ્ભિક્ષોણ્ડપાણ્ડુરાગ્ગોતમગોત્રતિક

અથ સૂત્રકારતદ્વચતિરિક્ત કા-જા દ્વસરા ભેદ કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યક
હૈ ઉસા વર્ણન કરતે હૈ—“સે કિં તં કુપ્પાવચણિયં” ઇત્યાદિ ॥ સૂત્ર ૨૧ ॥

શબ્દાર્થ—(સે) હે મદંત ! (તં) પૂર્વપ્રક્રાન્ત (પૂર્વ પ્રસ્તુતવિષય) કુપ્પાવચણિયં
દ્વવાવસ્સયં (કિં) કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યક કા વ્યા સ્વરૂપ હૈ । (કુપ્પાવચણિયં
દ્વવાવસ્સયં) ઉત્તર—કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યક કા સ્વરૂપ ઇસ પ્રકાર હૈ—સુનો—
(જે ઇમે ચરગચીરિગચમ્મખંડિ) ભિક્વોડપંડુરંગગોયમગોવ્વતિયગિહિધમ્મ

“તદ્વચતિરિક્ત દ્રવ્યાવશ્યકનો જે કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યક નામનો ખીલો લેઈ છે
તેનું હવે સૂત્રકાર વર્ણન કરે છે—“સે કિં તં કુપ્પાવચણિયં” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(સે) શિષ્ય ગુરૂને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે લગવન ! (તં) પૂર્વ
પ્રક્રાન્ત (પૂર્વ પ્રસ્તુત વિષય) (કુપ્પાવચણિયં દ્વવાવસ્સયં કિં) કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યા-
વશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(કુપ્પાવચણિયં દ્વવાવસ્સયં) કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ આ
પ્રકારનું છે—(જે ઇમે ચરગચીરિગચમ્મખંડિયભિક્વોડપંડુરંગગોયમગોવ્વતિગિ-

गृहिधर्म धर्मचिन्तकाविरुद्धविरुद्धवृद्धश्रावकप्रभृतयः पाषण्डस्थाः कल्पे प्रादु-
 ष्यभातायां रजन्यां यावत् तेजसा जलति इन्द्रस्य वा स्कन्दस्य वा रुद्रस्य वा
 शिवस्य वा वैश्रवणस्य वा देवस्य वा नागस्य वा यक्षस्य वा भूतस्य वा मुकु-
 ंदस्य वा आर्याया वा दुर्गाया वा कोट्टक्रियाया वा उपलेपनसम्मार्जनावर्षण-
 धूपपूष्पगन्धमाल्यादिकानि द्रव्यावशकानि कुर्वन्ति । तदेतत् कुप्रावचनिकं द्रव्या-
 वश्यकम् ॥ सू० २१ ॥

धम्मचित्तगं अविरुद्धविरुद्धवुद्धसावगण्यमित्तो पासंडथा) जो ये चरक,
 चीरिङ्क, चर्मखंडिक, मिक्षोण्ड, पाण्डुराङ्ग, गौतम, गोत्रतिक, गृहि, धर्माधर्म
 चित्तक, अविरुद्ध, विरुद्ध, और वृद्ध श्रावक आदि हैं कि जो पाषण्डस्थ
 अपने आप को ब्रती मानते हैं (कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते)
 सामान्य प्रभात होने पर प्रभातप्राय रजनी के होने पर यावत् तेज से ज्वलित
 सूर्य के उदय होने पर (इंदस्सवा) इन्द्र की (खंदस्स वा) अथवा स्कंद—कार्ति-
 क स्वामी की (रुद्रस्स वा) अथवा रुद्र की (सिवस्स वा) अथवा शिव की (वेस-
 मणस्स वा) अथवा वैश्रमण की (देवस्स वा) अथवा सामान्य देव की (नागरस्स वा)
 अथवा नाग की (जक्खस्स वा) अथवा यक्ष की (भूयस्स वा) अथवा भूत की
 (मुगुंदस्सवा) अथवा मुकुंद की (अज्जाए वा) अथवा आर्यादेवी की (दुग्गाए वा)
 अथवा दुर्गा कि (कोट्टकिरियाए वा) अथवा कोट्टक्रिया की (उवलेवण संमज्जण-
 आवरिसण—धूवपुप्फगंधमल्लाइयाइ दव्वावस्सयाइं वरेति—से तं कुप्पावयणियं

हि धम्मधम्मचित्तगं अविरुद्धविरुद्धवुद्धसावगण्यमित्तो आ पासंडथा) जे आ चरक
 चीरिङ्क, धर्माधर्म, मिक्षोण्ड, पाण्डुराङ्ग, गौतम, गोत्रतिक, गृहिधर्मा, धर्मचिन्तक,
 अविरुद्ध अने वृद्ध श्रावक आदि छे के जेओ पाषण्डस्थ छे-जेओ पोतानी मतने
 ब्रती माने छे (आ णधां पढोने अर्थ शण्डार्थने अन्ते स्पष्ट करवाभां आव्ये छे)
 (कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते) तेओ सामान्य प्रभात यतां-
 लणलण रात्रिने अन्तकाण समीप आवे त्तारे लणलांभणुं थाय त्तारे अने सूर्य
 पोताना सडसकिरिणोथी प्रकाशवा लागे त्तारे (इंदस्स वा) इन्द्रनी अथवा (खंदस्स वा)
 स्कंदनी—कार्तिक स्वामिनी, (रुद्रस्स वा) अथवा रुद्रनी (सिवस्स वा) अथवा शिवनी
 (वेसमणस्स वा) अथवा वैश्रमणुनी कुणेरनी. (देवस्स वा) अथवा सामान्य देवनी
 (नागरस्स वा) अथवा नागनी (जक्खस्स वा) अथवा यक्षनी. (भूयस्स वा) अथवा
 भूतनी (मुगुंदस्स वा) अथवा मुकुंदनी. (अज्जाए वा) अथवा आर्यादेवीनी (दुग्गाए वा)
 अथवा दुर्गानी (कोट्टकिरियाए वा) अथवा कोट्ट क्रियानी (उवलेवण, संमज्जण-
 आवरिसण—धूव पुप्फ गंधमल्लाइयाइ दव्वावस्सयाइं करेति से तं कुप्पावयणियं

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ किं तत् कुप्रावच-
निकं द्रव्यावश्यकम् ? उत्तरमाह—कुप्रावचनिकं=कुत्सितं प्रवचनं येषां ते कुप्रा-
वचनाः, कुत्सितत्वं चाग्य प्रवचनस्य मोक्षानुपयोगित्वात्, तेषामिदं कुप्रावचनि-
कम् द्रव्यावश्यकमेवं विज्ञेयम्—य इमे चरकचीरिकचर्मखण्डिक—भिक्षोण्ड-पा-
ण्डुराङ्गोतमगोत्रतिकगृहिधर्मधर्मचिन्तकाविरुद्धविरुद्धवृद्धश्रावकप्रभृतयः, पाप-
ण्डस्थाः, तत्र-चरकाः=घाटिवाहकाः—यूथबद्धाः सन्तो ये भिक्षां चरन्ति ते चरकाः,
अथवा-भुञ्जाना ये चरन्ति ते चरकाः । चीरिकाः=रथ्यापतितवस्त्रखण्डधारकाः,
चर्मखण्डिकाः=चर्मवसनाः, यद्वा—चर्ममयसर्वोपकरणाः, भिक्षोण्डाः=ये भिक्षा-
लब्धमेवान्नादिकं भुञ्जते न तु स्वपालितगवादीनां दुग्धादिकं, ते भिक्षोण्डा

द्व्यावस्य) उपलेपन क्रिया करते हैं, समार्जन क्रिया करते हैं, दुग्ध एवं गन्धों
दक आदि से स्नान क्रिया करते हैं, पुष्पपूजा करते हैं, धूपपूजा करते हैं,
चन्दन से उनका उपलेपन करते हैं उन पर माला चढाते हैं, इत्यादिरूप जो
द्रव्यावश्यक करते हैं वह सब कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक है । इस प्रकार पूर्व
प्रक्रान्त द्रव्यावश्यक का यह स्वरूप है ।

जो समुदायरूप में एकत्रित होकर भिक्षा मांगते हैं
वे चरक हैं । अथवा खाते २ जो चलते हैं वे चरक हैं
मार्ग में पड़े हुए वस्त्रखंडों को जो पहना करते हैं वे चीरिक हैं । चमड़े को
वस्त्ररूप में पहनते हैं अथवा चमड़े के ही समस्त उपकरण जिनके होते हैं
उनका नाम चर्मखण्डिक है । भिक्षा में प्राप्त हुए अन्न से ही जो अपना-
उदर पूर्ण करते हैं अपने घर में पालित गाय आदि के दुग्धादिक से नहीं—

द्व्यावस्य) उपलेपक क्रिया करे छे, समार्जन क्रिया करे छे, दूध, गंधादिक आदि-
पडे स्नान कराववानी क्रिया करे छे, फूलो पडे पूजा करे छे, धूपपूजा करे छे, चन्दन
पडे तहुं उपलेपन करे छे, तेमना पर भाणाओ चडावे छे, धत्यादि प्रकारना जे
द्रव्यावश्यक करे छे ते सधणा द्रव्यावश्यकने कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक कडे छे. पूर्व
प्रस्तुत कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यकनुं आ प्रकारहुं स्वरूप छे उवे चरक आदि पहोना
अर्थ स्पष्ट करवामां आवे छे—जेओ सधुदायइये ओकर थधने भिक्षा मागे छे
तेमहुं नाम चरक छे. अथवा भातां भातां जेओ आवे छे. तेमने ‘चरक’ कडे छे.
मार्ग पर पडेला वस्त्रखंडोने ओकर करीने जेओ ते वस्त्रखंडोने धारणु करे छे—
पडेरे छे—तेमने ‘चीरक’ कडे छे, आमडोने ज वस्त्रइये पहिरनार अथवा आमडानां
ज उपकरणो राणनारने ‘चर्मखण्डिक’ कडे छे.

भिक्षामां प्राप्त थयेला अन्नथी ज जेओ पोतानुं पेट भरि छे—पोताने घर
भाजेवी गाय आदिना दूध आदिथी जे पोतानुं पेट भरतो नथी तेने ‘भिक्षोण्ड’

उच्यन्ते, यद्वा—भिक्षोण्डाः=सुगतशासनस्थाः, पाण्डुराङ्गाः-पाण्डुराणि=भस्मलेप-
नात् शुभ्राणि अङ्गानि=गात्राणि येषां ते तथा, भस्मलेपितशरीरा इत्यर्थः
गोतमाः—ये हि विस्मयकारकपादपतनादिशिक्षाभिर्दृष्यं शिक्षयित्वा वराट्-
वमालाभिस्तं विभूष्य तस्य वृषभस्य विविधमभिनयं दर्शयित्वा भिक्षन्ते ते गोतमाः
गोत्रतिकाः—गोत्रतं येषां ते गोत्रतिकाः=गोचर्यानुकारिणः, ते हि गावां मध्ये
वस्तुमिच्छया तद्भवनाभावितान्तःकरणा पुरान्निर्गच्छन्तीभिर्गोभिःसह निर्गच्छन्ति,
तिष्ठन्तीभिः सह तिष्ठन्ति, उपविशन्तीभिः सहोपविशन्ति, भुञ्जानाभिःसह तद्वदेव
तृणपुष्पफलादिकं भुञ्जते, जलं पिबन्तीभिः सह तदनुकरणेनैव जलं पिबन्ति ।
उक्तं च— “गावीहिं समं निगमयवेसठाणासणाइ पकरंति ।
भुञ्जंति जहा गावी तिरिक्खवासं विभावता ॥”

उनका नाम भिक्षोण्ड है। अथवा सुगत-(बुद्ध) के शासन को मानने वालों का नाम भी भिक्षोण्ड है। भस्म के लेपन से जिनका शरीर शुभ्र हो जाता है उन का नाम शुभ्राङ्ग है। जो बेल को विस्मयकारक चाल सिखा करके और उसे कौड़ियों की मालाओं से विभूषित करके उसका अभिनय दिखाकर भिक्षावृत्ति करते हैं उनका नाम गोतम है। राजा दिलीप की तरह गोत्रत का जो पालन करते हैं उनका नाम गोत्रतिक है। गोत्रत को पालन करने वाले मनुष्य गायों के मध्य में रहने की इच्छा से गायें जब पुर से निकलती हैं तब उनके साथ ही निकलते हैं, जब वे बैठती हैं—तब बैठते हैं, जब वे खड़ी होती हैं—तब वे खड़े होते हैं, जब ये चरती हैं तब वे भोजन करते हैं फलादि का, और जब वे जल पीती हैं, तब वे जल पीते हैं।

कहे छे अथवा सुगतना (बुद्धना) शासनने माननारनुं नाम बिक्षांड छे. भस्मना लेपथी जेमनुं शरीर शुभ्र थथ जय छे, तेमने 'शुभ्रांग' कहे छे. जेओ जणहने आश्रयजनक आल शिष्यीने अने तेने कौडीओनी भाणाओथी विभूषित कसीने, तेने अलिनय दोकाने अतावी अतावीने बिक्षावृत्ति करे छे तेमने 'गोतम' कहे छे. राजा दिलीपनी जेम गोत्रतनुं पालन करनारने 'गोत्रतिक' कहे छे. गोत्रतनुं पालन करनार पुरुष गायोनी पासै रूडीने तेमनी सेवा कर्या करे छे. ज्यारे गायो गाभभांथी अहार नीकणे छे त्यारे गोत्रातक पणु तेमनी साथे जे गाभनी अहार आली नीकणे छे, ज्यारे ते गायो नीचे असे छे त्यारे ते गोत्रतिक पणु नीचे असे छे. ज्यारे तेओ जिली थाय छे त्यारे ते पणु जिलो थाय छे, ज्यारे तेओ चरती डोय छे, त्यारे ते पणु इलाहिइय लोअन करे छे, ज्यारे तेओ पाणी पीवे छे, त्यारे ते पणु पाणी पीवे छे. कहुं पणु छे, जेम कडीने सूत्रकारे जे गाथा आपी छे ते

छाया-गोभिः समं निर्गमप्रवेशस्थानासनादि प्रकर्षन्ति ।

भुठजते यथा गौः, तिर्यग्वासं बिभावयन्तः ॥ इति ॥

गृहधर्माणः—गृहिणां धर्मो येषां ते गृहधर्माणः=‘गृहस्थ-धर्म एव श्रेयान्’ इति मत्वा तदुचितधर्माचारिणः, । उक्तं च तदनुसारिभिः—

“गृहाश्रमसमो धर्मो, न भूतो न भविष्यति ।

तं पालयन्ति ते धीराः, क्लीबाः पाषण्डमा ताः ॥ इति ।

धर्मचिन्तकाः—याज्ञवल्क्यादि प्रणीतधर्मसंहितादिभिः सह ये धर्मं चिन्तयन्ति=रामि-
र्व्यवहरन्ति ये ते धर्मचितिका उच्यन्ते, अविरुद्धाः—देवनृपमातापितृतिर्यगादीनाम-
विरोधेन विनयकारिणो ये भवन्ति तेऽविरुद्धाः=वैनयिका इत्यर्थः, विरुद्धाः=

उक्तं च—करके जो गाथा लिखी है उस का अर्थ भी यही है । गृह-
स्थ धर्म ही श्रेयस्कर है ऐसी जिन की मान्यता होती है । और उसी के
उचित जो धर्म का आचरण करते हैं वे गृहधर्मा हैं । इन लोगों का ऐसा
कहना है कि गृहस्थाश्रम जैसा धर्म न हुआ है और न होगा । जो धीर होते
हैं वे ही इसका पालन करते हैं और जो क्लीब-कमजोर हैं वे व्रतों को लेते
हैं । याज्ञवल्क्य आदि के द्वारा रचित धर्मसंहिता आदि को लेकर जो
धर्म का विचार करते हैं-उनके अनुसार अपनी दैनिक प्रवृत्त चलाते हैं वे
धर्मचिन्तक हैं । देव नृप, मातापिता और तिर्यञ्च आदि का विना किसी
भेदभाव के जो एकसा विनय करते हैं वे अविरुद्ध-वैनयिक मिथ्यादृष्टि-हैं ।

गाथानो उपर मुज्जनेो न् अर्थ थाय छे. ते गाथाभां गोव्रतिकनां लक्षणो षता-
वामां आव्या छे,

“गृहस्थधर्मो न् अयस्कर छे,” आ प्रकारनी मान्यता धरावनार अने तेने
अतृष्टप न् धर्मनुं आचरण करनार ने पुरुषो डाय छे तेमने ‘गृहधर्मा’ कडे छे.
ते डोडोनी ओवी मान्यता छे के “गृहस्थाश्रम नेओ कौध धर्म थये . पणु नथी
अने थवानेो पणु नथी ने डोडो धीर डाय छे तेओ न् तेनुं पालन करी शके छे
अने ने डोडो क्लीब (कमजोर) डाय छे तेओ न् व्रतानी आराधना करे छे.
याज्ञवल्क्य आदि तत्त्वचिन्तके द्वारा रचित धर्मसंहिता आदने आधारे नेओ
धर्मनेो विचार करे छे, अने तेने अनुसार न् पोतानी दैनिक प्रवृत्ति चलावे छे
तेमने “धर्मचिन्तक” कडे छे.

नेओ देव. नृप, माता. पिता. अने तिर्यग्वादिनेो कौधपणु प्रकारनेो लेहलाव
राथ्या विना ओक सरणो विनय करे छे, तेमने ‘अविरुद्ध’ (वैनयिक मिथ्यादृष्टि)

अक्रियावादिनः, एते हि पुण्यपापपरलोकादिकं न मन्यन्ते, अतः सर्वपाषण्डि-
विरुद्धाचारत्वादेते विरुद्धा उच्यन्ते ।

नन्वेतेषामक्रियावादीनां पुण्यपापाद्यस्वीकरणात् इन्द्राद्युपलेपनकर्तृत्वं न संभ-
वतीति चेत्, उच्यते, पुण्यप्राप्तीच्छया यद्यपि तेषाम् इन्द्राद्युपलेपनकर्तृत्वं न
संभवति तथापि जीविकोद्देशेन तु तत्संभवत्वमेवेति न कश्चिद् दोषः ।

वृद्धश्रावकाः=वृद्धाः प्राचीनकालमपेक्ष्य वृद्धाः, तएव श्रावयन्तीति श्रावकाः-
ब्राह्मणा—ऋषभदेवज्येष्ठपुत्रभरतशासनकाले ये देवगुरुधर्मस्वरूपं श्रावयितार

पुण्य, पाप और परलोक आदि की मान्यता से जो बहिर्भूत होते हैं वेसे
अक्रियावादी विरुद्ध हैं । इनका आचारविचार सर्व पाषण्डियों' सर्व धर्मवाले
की अपेक्षा विरुद्ध होता है । इसलिये ये विरुद्ध कहे जाते हैं ।

शंका—ये अक्रियावादी जब पुण्यपाप आदि कुछ भी नहीं मानते हैं
—तब इन्द्र आदि का ये उपलेपन आदि क्यों करेंगे—अर्थात् नहां करेंगे,
ऐसी स्थिति में इन्हें इन्द्रादि के उपलेपन आदि के कर्तृत्व में क्यों गिनाया
गया है—सो इस शंका का उत्तर इस प्रकार से है कि इनमें भले ही पुण्य
प्राप्ति की इच्छा से इन्द्रादिक का उपलेपन कर्तृत्व संभवन हो—तोभी
आजिविका के उद्देश से उनमें इन्द्रादिक का उपलेपनादि करना संभ-
वित होता ही है । अतः सूत्रकार की कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक में इनकी
परिगणना निर्दुष्ट है । वृद्धश्रावक का अर्थ यहां ब्राह्मण से है । क्योंकि प्राचीन

कहे छे. जेज्यो पाप, पुण्य, परलोक आदिने मानता न नथी जेवां अक्रियावादीने
'विरुद्ध' कहे छे. तेमना आचारविचार अधां धर्मवाणा करतां विरुद्धना न होय छे.

शंका—ते अक्रियावादीज्यो जे पाप पुण्य आदिमां मानता न नथी. तो
तेज्यो इन्द्र आदिनुं उपलेपन. पूजन आदि शा. भाटे करै ? कहेवाचुं तात्पर्य जे
छे-के सूत्रमां इन्द्रादिनुं उपलेपन. पूजन आदि करनारमां आ अक्रियावादीज्योने
पण्य गणनावामां आवेल छे. अक्रियावादीज्यो आ प्रकारनी क्रियाज्यो करै ते केवी
रीते भानी शक्य ?

उत्तर—लखे तेज्योमां पुण्यप्राप्तिनी धृच्छाथी इन्द्रादिनुं उपलेपन, पूजन आदि
क्रियाज्यो करवानी वात असंभवित होय परंतु आलुविका यत्नाववाना हेतुथी तेज्योमां
पण्य इन्द्रादिनुं उपलेपन पूजन आदि क्रियाज्योने सदृभाव होय शके छे. तेथी
सूत्रकारे कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यकमां तेमनी जे परिगणना करी छे ते निर्दोष कथनइप
न समजवी जेछे.

आ सूत्रमां 'वृद्धश्रावक' आ पद ब्राह्मणना अर्थमां वपरायुं छे, कारणुं के
अही प्राचीन कालनी अपेक्षाज्ये तेमनामां वृद्धता प्रकट करवामां आवी छे. आ

आसन् अतएववृद्धाः, त एव पश्चाद् ब्राह्मणा जाताः। एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः,
ते प्रभृतयः=आद्योः-मुख्या येषां ते तथा, प्रभृतिग्रहणात् परिव्राजकादीनां संग्रहः,
पाषण्डस्थाः-पाषण्डं=व्रतं तत्र तिष्ठन्तीति पाषण्डस्थाः=व्रतिनः कल्पे प्रादुष्प्रभा-
तायां रजन्यां यावत्तेजसा ज्वलति, एतेषां पदानां व्याख्या पूर्वसूत्रे कृता तत
एवावगन्तव्या, इन्द्रस्य वा स्कन्दस्य=कार्तिकेयस्य वा, रुद्रस्य=हरस्य वा, शिवस्य
=व्यन्तरविशेषस्य वा, वैश्रवणस्य वा, देवस्य=सामान्यदेवस्य वा, नागस्य=

काल की अपेक्षा लेकर इनमें वृद्धता कही गई है, और वह इस प्रकार से
है कि—जब ऋषभदेव भगवान् यहाँ विराजमान थे, तब उनके ज्येष्ठपुत्र भरत-
चक्रवर्ती ने अपने शासनकाल में देव गुरु धर्म के स्वरूप को सुनाने के लिये
इनकी स्थापना की थी। अतः स्थापना का काल बहुत ही अधिक प्राचीन
इस तरह से प्रमाणित होता है! बाद में ये वैदिकधर्म के उपासक बन गये
अतः ये ब्राह्मण कहलाने लगे। यहाँ प्रभृति शब्द से परिव्राजक आदि
कों का ग्रहण हुआ है। पाषण्ड शब्द का अर्थ व्रत है। व्रतका
पालन करने वाले पाषण्डस्थ है। यहाँ यावत् शब्द से २१, वेः सूत्र
में कथित प्रातःकाल की ३ अवस्थाओं का और सूर्य के सहस्ररश्मि-दिनकर
आदि विशेषणों का ग्रहण किया गया है। स्कन्द नाम कार्तिकेय का है।
रुद्रनाम महादेव का है। शिव-व्यन्तरदेव विशेष का नाम है। वैश्रवण

कथननु नीचे प्रमाणे स्पष्टीकरण समञ्जसु-न्याये ऋषभदेव लगवान् अही विराज-
मान् इति, त्वारे तेभना ज्येष्ठ पुत्र भरतचक्रवर्तीये प्रोक्तानां शासनकालमां देव,
गुरु अने धर्मनुं स्वइय संलगाववानो कालेषु प्राचीन होवानी वात प्रमाश्रित
(सिद्ध) यथ जय छे. त्वार आह ते दोडो वैदिक धर्मना उपासक भनी गया, अने
ति कारणे-प्राह्मण्य तरीके ओणभावा लाग्या आ रीते प्राचीन कालमां ज्यो न्निने-
न्द्रना उपासको इति, पणु साछणथी नैदिक धर्मना उपासक भनी ग्या. अर्था
दोडोने अही, "वृद्धप्रावक?" कहा छे. अही 'प्रभृति' पदने प्रयोग करीने सूत्रकारे
अही परिव्राजक आदि अन्य पन्थना दोडोने ग्रहण करवावुं सूचन कथुं छे.
"पाषण्ड" आ पद "व्रत"ना अर्थमां वपरायुं छे. व्रतने पालन करनारने 'पाष-
ण्ड' कडे छे. "कल्लं पादुष्प्रभायाए रयणीए जाव तेयसां जलते" आ सूत्रपाठमां
"जाव (यावत्)" पद आणुं छे. तेना द्वारा २१ मां सूत्रमां कथित प्रातःकालनी
त्रणु अवस्थाओने तथा सूर्यना सहस्ररश्मि दिनकर आदि विशेषणोने ग्रहण
करवामां आवेल छे.

स्कंध अटले कार्तिकेय. रुद्र अटले महादेव. शिव आ शपह व्यन्तरदेव-

भवनपतिविशेषस्य वा, यक्षस्य वा, भूतस्य वा यक्षोभूतौ व्यन्तरविशेषौ सुकु-
न्दस्य=नारायणस्य वा, आर्यायाः=आर्यादेवी विशेषः, तस्या वा, दुर्गायाः—
सिंहारूढामहिषासुरं हतुं तदुपरिनिहितैकचरणा दुर्गा तस्या वा, कोट्टक्रियायाः
=महिषकट्टनपरा कोट्टक्रिया—तस्या वा, उपलेपनसंमार्जनावर्षणधूपपुष्पगन्धमाल्या-
दिकानि=द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति । तत्र उपलेपनम्=नवनीताद्युपलेपः, सम्मार्जनं=
वस्त्रखण्डेन संशोधनम्, आवर्षणम्=दुग्ध—गन्धोदकादिना स्नपनम्, पुष्पं=पुष्पैः
पूजनम्, धूपः=धूपदानम्, गन्धः=चन्दनाद्यनुलेपनम्, माल्यं=मालापरिधापनम्,
एतान्यादौ येषां तानि तथा, द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति । अयं भावः—य इमे
चरकचीरिकादयः पाषण्डस्थाः कल्पे प्रादुष्प्रभातरजन्यादिक्रमेण समुत्थाय इन्द्रा-
कुबेर का नाम है । भवनपति विशेष नागकुमार का नाम नाग है । यक्ष और
भूत ये व्यन्तरदेवविशेष हैं । नारायण का नाम सुकुन्द है । दुर्गा नाम की
एक देवी है । जिसकी सवारी सिंह पर है । महिषासुर को मारने के लिये
इसका एक चरण सिंह पर रखा रहता है—इसरूप में इसकी मूर्ति बनी हुई
होती है । कोट्टक्रिया नाम की भी एक देवी होती है । जिसने महिषासुर
का नाश किया है । नवनीत—मखन आदि वा इन पर उपटन करना इसका
नाम उपलेपन है । वस्त्रखण्ड से इनको झाडना पीछना इसका नाम सम्मार्जन
है । दुग्ध एवं गन्धोदक से इन्हें नहलाना इसका नाम स्नपन है । तात्पर्य
कहने का यह है कि जो चरक चीरक आदि पाषण्डस्थ प्रातःकाल आदि के

विशेषने भाटे वपरायो छे. वैश्रण्व अटवे कुबेर नामने दोकपाल हसं प्रकर्सना
भवनपति देवोभां जे नागकुमार देवो छे तेमने अही “नाग” कडेवाभां आवेल
छे. यक्ष अने भूत, आ भन्ने व्यन्तर निकायना देवो छे. “सुकुन्द” अटवे नारायण
(विष्णु लगवान), “दुर्गा” आ नामनी अेक देवी छे. ते सिंह पर सवारी करे छे.
महिषासुरने मारनारी आ देवीनी अेवी मूर्ति बनाववाभां आवे छे के जेने अेक
थरण महिषासुर पर अने जीले सिंह पर रहेले होय छे. “कोट्टक्रिया” आ नामनी
पण अेक देवी होय छे. जेले महिषासुरने ध्वंस कर्यो हुतो.

हुवे उपलेपन आदि पहोने अर्थ स्पष्ट करवाभां आवे छे—उपर्युक्त देव-
देवीअोनी मूर्ति पर माण्डु आदिनु उपटन (लेपन) करवुं तेनुं नाम उपलेपन
छे. वस्त्रना ककडा वडे तेमनी मूर्तिअोने लूखी अथवा आपटवी तेनुं नाम सम्मा-
र्जन छे. दूध अने गन्धोदक (सुगन्धयुक्त जण) आदि वडे तेमनी मूर्तिअोने
नवरावधी तेनुं नाम ‘स्नपन’ छे.

आ सधणा कथनने लावार्थ अे छे के चरक, चीरक आदि उपर्युक्त पाषण्ड-
स्था (पाषण्डीअो) प्रातःकाल आदि समये इन्द्रादिकेनी प्रतिमाअोनु उपलेपन आदि

दीनामुपलेपनादीनि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति, तैः कृतमुपलेपनादिकं कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकमिति । अत्रापि अप्राधान्याद् द्रव्यत्वम्, अप्राधान्यं चोपलेपनादौ मोक्षकारणभावावश्यकपेक्षया बोध्यं ,

मोक्षकारणं तु भावावय मेव न तु द्रव्यावश्यकम्,

अतोऽथोपलेपनादि द्रव्यं वश्यकस्याप्राधान्यं भवतीति ।

सर्वथा-आगमत्वाभावात् नोआगमत्वं च ज्ञेयम् । तदेतत्कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकं वर्णितमिति ॥सू० २१॥

ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकस्य लोकोत्तरिकरूपं तृतीय-भेदमाह—

मूलम्—से किं तं लोगुत्तरियं द्वावस्सयं ? लोगुत्तरियं द्वाव-
वस्सयं जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्कायनिरणुक्कंपा हय इव उद्दामा,
गया इव निरंकुसा, घट्टा मट्टा तुप्पोट्टा पंडुरपडपाउरणा जिणाणां
मणाणाए सछंदं विहरिऊणं उभओ कालं आदस्सयस्स उवट्टति ।
से तं लोगुत्तरियं द्वावस्स । से त जाणयसरीरभवियसरीर-
वडरित्तं द्वावस्सयं । से तं नोआगमओ द्वावस्सयं ॥सू० २२॥

हो जाने पर इन्द्रादिकों की प्रतिमाओं का उपलेपन आदि आवश्यक कृत्य करते हैं वे सब कृत्य कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक हैं । इन उपलेपनादि क्रियाओं में मोक्ष के कारणभूत भावावश्यक की अपेक्षा अप्रधानता होने से द्रव्यत्व जानना चाहिये और सर्वथा आगम के अभाव का अपेक्षा नोआगमता जाननी चाहिये । इस प्रकार कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक का यह स्वरूपवर्णित किया है । भावार्थ स्पष्ट है—॥सूत्र २१॥

अब सूत्रकार तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का तीसरा भेद जो लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है—उसका कथन करते हैं—

आवश्यक कृत्ये करे छे. ते णधां कृत्येने कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक कहेवाभां आवे छे. ते उपलेपन आदि क्रियाओभां मोक्षना कारणभूत भावावश्यकनी अपेक्षाओ अप्रधानता होवाथी द्रव्यत्वने सद्वलाव समणवे जेधये. अने आगमना सर्वथा अलावनी अपेक्षाओ 'नो आगमता' समणवी जेधये. आ प्रकारे कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यकनुं आ स्वइय अही प्रतिपादित करवाभां आओ छे. लावार्थ स्पष्ट छे. ॥सू. २१॥

तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यकना लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक नामना त्रीण लेदनुं स्व-इय डवे सूत्रकार प्रकट करे छे—“से किं तं लोगुत्तरियं” धत्यादि—

छाया—अथ किं तद् लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम् ? लोकोत्तरिकं द्रव्या-
वश्यकं—य इमे श्रमणगुणमुक्तयोगिनः षट्कायनिरनुकम्पाः हया इव उदामानः,
गजा इव निःकुशाः, घृष्टाः मृष्टाः, तुम्रोष्ठाः पाण्डुरपटप्रावरणाः जिनातामनाज्ञया
स्वच्छन्दं विहृत्य उभयकालम् आवश्यकाय उपतिष्ठन्ते । तदेतद् लोकोत्तरिकं द्रव्या-
वश्यकम् । तदेतद् ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम् । तदेतत्
नो आगततो द्रव्यावश्यकम् ॥सू० २२॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ किं तद् लोको-
त्तरिकं द्रव्यावश्यकम् ? उत्तरमाह—लोकोत्तरिकं लोकेषु=भुवनत्रये उत्तराः=उत्कृष्ट-
तराः साधवः, यद्वा—लोकेषु=भुवनत्रये उत्तरम्=उत्कृष्टतरं जिनप्रवचनं, तेषां तस्य
वा इदम्—लोकोत्तरिकं साधुसम्बन्धिजिनशासनसम्बन्ध वा, द्रव्यावश्यकम् एव
विज्ञेयम् य इमे श्रमणगुणमुक्तयोगिनः—श्रमणाः=साधवस्तेषां गुणाः=मूलोत्तर-
गुणरूपाः, तत्र—भाषातिपातविरमणादयो मूलगुणाः, पिण्डविशुद्ध्यादयस्तूत्तर-
गुणाः—तेषु मुक्तः=परित्यक्तो योगो=व्यापारो दैस्ते श्रमणगुणमुक्त-

“से किं तं लोकोत्तरियं” इत्यादि । ॥सूत्र २२॥

शब्दार्थ—(से) हे भदंत । (तं) लोकोत्तरियं द्रव्यावसयं किं) लोकोत्तरिक
द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(लोकोत्तरियं द्रव्यावसयं) लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप
इस प्रकार है—(जे इमे समणगुणमुक्तजोगी छक्काय निरणुक्पा हया इव उदामा)
श्रमण के मूल गुणों और उत्तर गुणों में जिनका व्यापार परित्यक्त हो चुका
है—अर्थात्—मूलोत्तर गुणों में जिनकी बिल्कुल आस्था नहीं उपेक्षा है अर्थात् उनसे
जो रहित है तथा छहकाय के जीवों के प्रति जिन के अन्तःकरण में दया
नहीं है, अतएव उदण्ड घोड़ों की तरह जिनकी प्रवृत्ति बिल्कुल हो रही है—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने अवेो प्रश्न पूछे छे—(तं) लोकोत्तरियं द्रव्या-
वसयं किं ?) छे । अहन्त ! पूर्वप्रस्तुत लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यकनुं स्वरूप छेवुं छे ?

उत्तर—(तं) लोकोत्तरियं द्रव्यावसयं) लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यकनुं आ प्रकारनुं
स्वरूप छे ।

(जे इमे समणगुणमुक्तजांगी छक्काय निरणुक्पा हयाइव उदामा) श्रमणना
भूणगुणो अने उत्तरगुणोभांथी जेभनेो व्यापार (प्रवृत्ति) परित्यक्त थछ युकी छे-
अट्ठे छे मुलोत्तरगुणोभां जेभने जिवकुल आस्था नथी यणु उपेक्षा न छे—अट्ठे
छे जेअो श्रमणना भूणगुणोथी अने उत्तरगुणोथी रहित छे । तथा छकायना अवेो
प्रत्ये जेभना अंतःकरणभां दया नथी । अने ते डारणु उदंभ अश्वनी जेभ जेभनी

योगिनः, मूलोत्तरगुणरहिता इत्यर्थः । एते कदाचित् सानुकम्पा अपि स्युरित्याह—'छक्कायनिरणुकम्पा' इति । पक्कायनिरनुकम्पाः—पक्कायेषु = पृथिव्यादिषु निर्गताः=अनुकम्पा दया येषां ते तथा, षड्जीवनिकायदयावर्जिताः अत एव—ते हया इव उद्दामानः=बलगरहिता अश्वा इव, चरणनिपातजीवोपमर्द निरपेक्षत्वात् द्रुतचारिणः, गजा इव निरंकुशाः=आचार्याज्ञोच्छ्वनशीलत्वात् तथा—घृष्टाः=फेनादिना श्लक्ष्णीकृत=जह्वाद्यवयवा अवयवाद्यविनोरभेदापचारात् घृष्टाः । तथा—मृष्टाः=तैलादिसादिना मृष्टाः चिकणीकृताः केशाःशरीरं वा येषां ते मृष्टाः, तथा—तुप्रोष्टाः=शीतकालि रूक्षत्वापनयनार्थं नवनीतादिस्निग्धपदार्थे रक्षिता अष्टा येषां ते तथा, नवनीतादिभिः चिकणितौष्टा इत्यर्थः, तथा—

अर्थात् जिस प्रकार विनालगाम के अश्व चरण निपात में जीवोपमर्द निरपेक्ष होने से द्रुतगति किया करते हैं उसी तरह जो ईर्यासमिति से रहित होने के कारण दबदबचारी (द्रुतचारी) होते हैं (गयाइव निरंकुसा) मदोन्मत हाथी की तरह जो निरंकुश होते हैं—जिस प्रकार मदोन्मत गज अपने महावत की आज्ञा से बहिभूत बन जाया करता है—उसी प्रकार जो आज्ञा को नहीं मानते हैं—(घट्टा) जिन्होंने फेन आदिसे जंघा आदि अवयवों का चिक्राण—मुलायम) बनाया है (मट्टा) तैल आदिस्निग्धपदार्थों से केशों का जो संस्कार करते हैं, जल से बार २ जो शरीर को धोते रहते हैं (तुप्पोट्टा) शीतकाल जन्य ओष्ठों की रूक्षता हटाने के लिये जो नवनीत-मखन-आदि स्निग्धपदार्थों की उनमें मालिश करते हैं—अर्थात् नवनीतादिक की मालिश से जो अपने ओष्ठयुगल

प्रवृत्तिः या । रही छे. ओट्टे के जेवी. शीते अश्व जमीन पर चरण मुकती वधते. जीवोपमर्दननी परवी कर्था विना द्रुतगतिथी आल्या करे छे. ओज प्रभाणे जेओ धर्यासमितिथी विडीन डोवाने कारणे जीवोपमर्दननी परवा कर्था विना शीघ्रगतिथी आल्या करतां डोय छे (ताचारी डोय छे). (गयाइव निरंकुसा) जेओ मदोन्मत हाथीना जेवां निरंकुश डोय छे—जेम मदोन्मत हाथी तेना महावतनी आज्ञा प्रभाणे आलतो नथी ओज प्रभाणे जेओ गुरुनी आज्ञाने मानता नथी. (घट्टा) फेन (ओक प्रकारने स्निग्ध पदार्थ) आदि वडे जेभणे ल'ध आदि अवयवोने मुलायम गनाव्यां छे. (मट्टा तैल आदि स्निग्ध पदार्थ वडे जेओ पोताना वाणने संस्कार करे छे. अने जेओ जणथी शरीरने बारवार धोया करे छे. धोयां करे छे, (तुप्पोट्टा) ठंडीने कारणे शरी गयेला डोठनी रूक्षता हर करवाने भांटे जेओ माणणु, स्नो, वेसेलीन आदि स्निग्ध पदार्थोनु तेना पर मालिश करे छे, ओट्टे के जेओ स्नो आदिना मालिश वडे पोताना डोठाने मुलायम राखवाने

पाण्डुरपटप्रावरणाः—पाण्डुराः धौताः मलपरीषहसहनाक्षमत्वात्, पटाः=परिधान-
वस्त्राणि, प्रावरणानि—शरीराच्छादनवस्त्राणि च येषां ते तथा, परिहितनिर्मल-
वसनाः, जिनानामज्ञया स्वच्छदं विहृत्य—जिनाज्ञामनादृत्य स्वस्त्र रुच्या विविध-
क्रियाः कृत्वा उभयकालं—प्रातःसायम् आवश्यकाय—प्रतिक्रमणाय उपतिष्ठन्ते—
उद्युक्ता भवन्ति । तत्तेषामावश्यकं लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम् । अत्र द्रव्यावश्यक-
त्वं भावशून्यत्वात्, तत्कलाभावात्, संसारकारणत्वाच्च अप्रधानतया बोध्यम् ।

को चिकने रखते हैं. (पंडुरपटपाउरणा) जो मल परीषह को सहने में असमर्थ होने के कारण अपने पहनने और ओढने के वस्त्रों को धोने में आसक्त रहते हैं— (जिणाणमणाणाए) जिन भगवान् की आज्ञाकी परवाह न करके जो (स छंदं विहरिज्जणं) अपनी अपनी रुचि के अनुसार विविध क्रियाओं को करके (उभओ कालं) प्रातः सायं दोनों समय (आवस्सयस्स उवट्ठंति) प्रतिक्रमण करने के लिये उद्युक्त होते हैं (से) सो (तं लोउत्तरियं दव्वावस्सयं) उनका वह आवश्यक-प्रतिक्रमण—लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है । (से तं जाणयसरीर भविय सरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं) इस तरह ज्ञायकशरीर और भव्यशरीर इन दोनों से जुदा यह द्रव्यावश्यक—लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है । इन क्रियाओं में भाव-शून्यता होने के कारण उनका कोई वास्तविक फल प्राप्त नहीं होता है— उल्टा उन से संसार का ही वर्धन होता है । इसलिये इन भावशून्य द्रव्य-लिङ्गि साधुओं द्वारा किया गया आवश्यक कर्म अप्रधान होने के कारण द्रव्या-

प्रयत्न करता रहे छे, (पंडुरपटपाउरणा) जेओ मलपरीषहने सहन करवामां अस-
मर्थ होवाने कारणे पोताना पहरेवा ओढवाना वस्त्रोने धोवामां आसक्त रहे छे.
(जिणाणमणाणाए) जिनेन्द्र लगवाननी आज्ञानी परवा कयां विना जेओ (सछंदं
विहरिज्जणं) पोतानी छच्छा अनुसारनी विविध क्रियाओ करीने (उभओकालं)
प्रातःकाण अने सायंकाण, आ गन्ने समये (आवस्सयस्स उवट्ठंति) प्रतिक्रमण कर-
वाने तैयार थाय छे, (से तं लोउत्तरियं दव्वावस्सयं) तो तेमनी ते आवश्यक
क्रियाइय प्रतिक्रमण लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यकइय गणाय छे. (से तं जाणयसरीर भविय
सरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं) ज्ञायकशरीर अने लव्यशरीर, आ गन्नेथी लिन्न
ओवा द्रव्यावश्यकना लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक नामना त्रीण लेद्धुं आ प्रकारनुं स्व-
इय समज्जुं. आ क्रियाओमां भावशून्यता होवाने कारणे तेमनुं केछ वास्तविक
इद प्राप्त थतुं नथी, परन्तु उट्टो संसार ज वर्धे छे. तेथी आ प्रकारना द्रव्य-
लिङ्गी साधुओ द्वारा करवामां आवेहुं आवश्यककर्म अप्रधान होवाने कारणे द्रव्या-

नोआगमत्वं च देशे क्रियालक्षणे आगमाभावात् । 'नो' शब्दस्यात्र देशप्रतिषेध-
वचनत्वं बोध्यम् । आवश्यकज्ञानसद्भावादागमोऽपि देशतो वर्तते, इति ।

अत्र लोकोत्तरिकद्रव्यावश्यकके दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—पुरा वसन्तपुरे नगरेऽ-
गीतार्थ एकः संघो विहरतिभ्यः । तत्र संघे साधुगुणरहितः कश्चित्संविग्नाभासः
साधुः प्रतिदिनं पुरःकर्मादिदोषदुष्टमनेषणीयं भक्तादिं गृहीत्वा महता संवेगेन
प्रतिक्रमणकाले सर्वमालोचयति । अगीतार्थो गच्छाचार्यश्च तस्मै अगीतार्थत्वात्

वश्यक माना गया है ऐसा जानना चाहिये । यहां पर 'नो' शब्द एक देश प्रति-
षेध अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अर्थात् परिक्रमण क्रियारूप एकदेश में आगम
रूपता नहीं है । परन्तु प्रतिक्रमणरूप आवश्यक के ज्ञान का सद्भाव होने से
वहां आगम भी इस तरह एकदेशरूप आवश्यक क्रिया में आगम का प्रति-
षेध यह 'नो' शब्द करता है । और यह प्रकट करता है कि यहां केवल
आगम एकदेश में वर्तमान है । इस तरह "नो" शब्द में देश प्रतिषेधवच-
नता जाननी चाहिये । लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक के ऊपर दृष्टान्त इस प्रकार
से है—प्राचीनकाल में वसन्तपुर नाम के नगर में एक अगीतार्थ संघविहार
करता हुआ आया । उसमें साधुगुणों से रहित एक साधु था । जो संविग्ना-
भास (ऊपर से वैराग्य देखानेवाला) था । वह प्रतिदिन पुरः कर्मादि दोषों
से युक्त अनेषणीय आहार ले करके आता—और बड़े ही संवेग भाव से

वश्यक रूप मानवामां आभ्युं छे, अम समञ्जुं. अही "नो आगम" पदमां वपरायेदो
"नो" शब्द अेक देश प्रतिषेध (निषेध)ना अर्थमां प्रयुक्त थयो छे, अेटले के
प्रतिक्रमणु क्रियारूप अेक देशमां आगमरूपता छोती नथी, परन्तु प्रतिक्रमणु रूप
आवश्यकता ज्ञानना सद्भाव छोवाथी त्यां आगमना पण अेकदेशनी अपेक्षाअे
सद्भाव छोय छे. आ रीते 'नो' पद अही अेक देशरूप आवश्यक क्रियामां आगम-
ना प्रतिषेध (निषेध) करे छे, अने अे वात प्रकट करे छे, के त्यां आगम केवल
अेक देशतः वर्तमान छे. आ प्रमाणे "नो" शब्दमां देश प्रतिषेध वचनता सम-
ञ्जी लोभअे लोकोत्तरिक द्रव्य-वश्यकनुं प्रतियाहन करवाने भाटे हुवे नीयेनुं
दृष्टान्त आपवामां आवे छे—

प्राचीन कालमां वसन्तपुर नामना नगरमां अगीतार्थ साधुअेना अेक संघ
विहार करतो करतो आवी पडोअेयो. ते संघमां साधुअेना गुणोथी रहित, पण
संविग्नलासी (ऊपर उपरथी वैराग्य लाव देणाउनादे) अेवे. अेक साधु हुतो. ते
हुंभेशा पुरःकर्मादि दोषोथी युक्त अनेषणीय (अकल्प्य) आहार वडोरी लावतो
हुतो. अने प्रतिक्रमणु करती वणते घणुा अ संवेगलाव पूर्वक पोताना दोषोनी

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन् एवं वदति-पश्यन् साधवः । कथमयं स्वदुष्कृतमगोपयन्
अशठतया प्रकाशयति, दोषासेवने सुकरम्, आलोचना तु दुष्करा, अतोऽशठ-
तयैव शुध्यतेऽसौ । इत्थं तस्य प्रशंसां कृत्वाऽन्येऽपि अगीतार्थश्रमणास्तं प्रशंस-
न्ति, चिन्तयन्ति च गुरुसमीपआलोचनां चेत् शुद्धस्तर्हि असकृद्दोषासेवनायां
कृतायामपि न कश्चिद् दोषः । इत्थं गच्छति कियतिकाले तत्रैकः संविग्नगीतार्थः
कश्चित् साधुः समायातः । स प्रतिदिनमेवविधं व्यतिकरं विलोक्य तं गच्छा-

प्रतिक्रमण करने के समय में अपने दोषों की आलोचना करता । गच्छाचार्य
जी कि स्वयं अगीतार्थ थे वे अगीतार्थ जान करके उसके लिये प्रायश्चित्त दे ते
समय ऐसा कहते कि है साधुओं—देखो—यह साधु कितना भला है कि जो
अपने एक भी दोष को नहीं छिपाता है, और सबको सरल भावसे प्रकटकर
देता है । दोषों का सेवन तो हो जाता है, परन्तु उनकी आलोचना करना
बड़ा कठिन काम है । इसलिये यह किसी भी मायाचार के बिना जो
अपने दोषों की आलोचना करता है उसी से यह शुद्ध हो जाता है । इस
प्रकार आचार्यकृत प्रशंसा को सुनकर के संघस्थ अन्य अगीतार्थ श्रमणजन भी
उसकी प्रशंसा करने लगजाते । और विचारने लगते कि गुरु के समीप में
यदि आलोचना करने मात्र से ही दोषों की शुद्धि हो जाता है तो बार २
दोषों के सेवन करने में भी कोई हानि नहीं है । इस प्रकार करते २ जब
कितनाक समय निकल गया—तब उस संघ में एक संविग्न (क्रियापात्र) गीता
र्थ कोई साधु विहार करता हुआ बाहर से आया । जब उसने संघ की इस

आलोचना करता हुआ । ते गच्छना आचार्य के जेयो अगीतार्थ होता, तेयो आ
संविग्नलासी साधुने प्रायश्चित्त देती वपते साधुयोनी पासे तेनी आ प्रमाणे प्रशंसा
कर्या करतां हुतां—“हे साधुयो ! जेयो, आ साधु केटलो ललो छे के तेना ओक
पणु दोष छुपावतो नथी, अने पोताना सधणा दोषोने सरलभावे प्रकट करी दे छे.
दोषोनु सेवन तो थछ जय छे, परन्तु तेमनी आलोचना करवानुं काम धणुं ज
कठणु छे. केछ पणु प्रकारना मायाचार बिना पोताना दोषोनी आलोचना करवाने
दीधे ते शुद्ध थछ जय छे.” आचार्य द्वारा तेनी आ प्रमाणे प्रशंसा थती जेधने
संघना अगीतार्थ अन्य श्रमणो पणु तेनी प्रशंसा करवा मंडी जता. ते संघना
साधुयोमां आ प्रकारनी जोटी मान्यता व्यापी गछ के गुरुनी समीपे मात्र आलो-
चना करवाथी ज दोषोनी शुद्धि थछ जती होय, तो वारवार दोषोनु सेवन करवा-
मां पणु केछ हानि नथी. आ प्रकारनी तेमनी प्रवृत्ति केटलाक समय सुधी यालु
ज रही. जेवामां केछ ओक संविग्न (क्रियापात्र) गीतार्थ साधु गामनगर आदिने
विहार करतो करतो ते वसन्तपुर नगरमां आवी पडोन्चा. जयादे तेले ते अगी-

चार्यमुक्तवान्—त्वमस्य शठसाधः प्रशंसां कुर्वन् अग्निभक्तप्रशंसको नृप इव दृश्यसे ।
गच्छाचार्येण तत्कथां कथयितुं प्रेरितः स संविग्नगीतार्थो मुनिरेवं प्रोक्तवान् ।

आसीद् गिरिनगरवासी कश्चिदग्निभक्तो वणिकः । स प्रतिवर्षं पद्मराग-
रत्नैः गृहं भृत्वा वह्निना तत् प्रदीपयति । अग्नौ तस्यैवं विधं श्रद्धातिशयं
विलोक्य, तन्नगरवासिनो जना नृपतिश्चो विवेचितया तं प्रशंसन्त एवं वदन्ति—‘अन्यो-
ऽयं वणिकः, यः प्रतिवर्षं पद्मरागैर्वह्निं सन्तर्पयति । अथान्यदा प्रबलपवनवेगेन

प्रकार की प्रतिदिन की व्यवस्था देखी—तब उससे नहीं रहा गया—और गच्छा-
चार्य के पास जाकर उसने उनसे कहा आप इस शठ साधु की जो प्रशंसा
करते हैं—वह क्यों आपका अग्निभक्त की प्रशंसा करनेवाले एक राजा की
तरह है । यह कथा कैसी है इस प्रकार गच्छाचार्य के पूछने पर उस संवि-
ग्न गीतार्थ साधुने उन्हें यह कथा इस तरह से सुनाई—गिरिनगर में एक अग्नि-
भक्त वणिक रहता था । वह प्रतिवर्ष पद्मरागरत्नों को घर में भरकर उसमें
आग लगा देता था । उसके अविवेक पूर्ण कार्य की वहां का राजा और
पुरवासिजन सबही प्रशंसा करते । कहते—देखो इसके श्रद्धातिशय को—जो प्रति
वर्ष पद्मरागमणियों से अग्निदेव को संतर्पित रता है । एकदिन की बात
है कि जब उसने पद्मरागमणियों को भरकर घरमें आग लगाई—तब उस समय
आंधी के वेग से अग्निज्वाला इतनी अधिक प्रदीप्त हुई कि उसका संभालना
मुश्किल हो गया— देखते ही उस प्रदीप्त अग्निने राजमहल सहित उस समस्तनगर

तार्थसंघना ते संविग्नगिरिवासी साधुनी ते प्रकारनी हरद्वेषनी प्रवृत्ति देणी, त्याहे
तेनाथी ते सहन थळ शकी नडी. तेणे ते अगीतार्थ संघाचार्यानी यासे जेधने
तेमने आ प्रमाणे कहु — ‘आप आ शठ साधुनी जे प्रशंसा करे छे ते अग्नि-
लकतनी प्रशंसा करनारा ओक राजना कथं जेवुं कार्य छे. त्याहे ते संघाचार्य
तेमने पूछ्युं—‘अग्निभक्तनी शी कथा छे ?

त्याहे ते संविग्न गीतार्थ साधुणे तेमने नीचे प्रमाणे कथा कही—गिरिनगर-
मां ओक अग्निभक्त वणिक रहतेो हुते. ते अग्निदेवने भुश करवा भाटे प्रतिवर्ष
पद्मराग रत्नेने घरमां भरने तेने आग लगाउतेो हुते. तेना आ अविवेकपूर्ण
कार्यानी त्याने राजा अने नगरवासींओ भूषण प्रशंसा करता हुता. तेओ ओक पीळने
कहेतां—‘जुओ तेने अग्निदेव प्रत्ये डेटली गधी श्रद्धा छे । ते श्रद्धाने कारणे तो
ते प्रतिवर्ष पद्मराग मणियोथी अग्निने संतृप्त करे छे.’ हुवे ओक दिवसे जेवुं
अन्युं के त्याहे ते वणिके घरमा पद्मरागमणियो भरने घरने आग लगाडी त्याहे
अन्यानक आधी उठवने कारणे ते आग ओमेर प्रसरी गध अने तेने धाणुमां

प्रवृद्धितरतत्प्रदीपितवह्नीराजप्रासादसहितं समस्तमपि तन्नगरं ददाह । ततो राज्ञा
सं वणिग्दण्डितो नगराद् निष्कासितश्च ।

तथा त्वमपि अविधिप्रवृत्तस्य अस्य प्रशंसां कुर्वन् आत्मानं संघं च विना
ज्ञयसि । यदि पुनस्तत्रमेनं शिक्षयसि, तदाऽपर नृप इव स्वपरकल्याणकारको
भविष्यसि । तथाहि—

आसीत्कश्चिद् राजा, यो हि तथाविधकर्मकारिणं कंचीदेकं वणिजं समा-
हूय प्रोक्तवान्—यदि तव पद्मरागमणिभिरग्नेस्तर्पणमावश्यकं, तर्हि वने गत्वा

को भी स्वाहा कर दिया । राजा ने जब परिस्थिति का विचार किया तो
अपने भ्रज्ज्ञानता पर उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ । अन्तमें उसने उस वणिक् को दण्डित
कर अपने नगर से बाहिर निकाल दिया । इसी प्रकार आप भी अविधि में प्रवृत्त
हूँ इस साधु की जो प्रशंसा करते हैं—वह आप का आर संघ का विनाशक है ।
यदि इस संघ में आप किसी एक को भी शिक्षित करदे तो आपका यह कार्य
एक दूसरे राजा की तरह ही और पर का कल्याणकारक होगा—सुनिये—एक
राजा था। उसके राज्य में भी इसी अग्निभक्त वणिक् की तरह एक वणिक् रहता था।
वह भी प्रतिवर्ष पद्मरागमणियों के घर में भरार उसमें आग लगा देता था—और
इस तरह से अग्नि को संतर्पित किया करता था । जब राजा को उसकी इस बात का
पता लगा—तब उसे बुलाकर उसने कहा कि यदि पद्मरागमणियों से अग्नि
को संतर्पित करना तुम्हारे लिये आवश्यक है—तो तुम यह कार्य नगर में रह

देवानु कार्य सुशुद्ध गनी गयुं. ते आगनी नवाणांभोमां राजमहेल सडित
आयुं नगर लस्मीलूत थड गयुं. न्यारे राज्ने आ परिस्थितिना कारणुने शांत-
चित्ते विचार कथे त्परे तेने पोतानी अज्ञानताने माटे पश्चात्ताप थये. तेणु ते
वणिकने सज्ज इरभावीने पोताना नगरमांथी डांडी काढये. ते राजनी नेम आप
अविधिमां—पापाचारमां प्रवृत्त थयेला आ शठ साधुनी ने प्रशंसा करे छे, ते
आपने अने संघने विनाश करनारी निवडशे. ने आप आ संघमांथी अवे अवेक
साधुने पणु शिक्षा करीने डांडी काढशे. तो आपनुं ते कार्य अवेक भीज्ज राजना
कार्यनी नेम स्व अने परनुं कल्याणु इरनाइं थड पडशे. हुवे ते संविज्ञ गीतार्थ
साधु ते राजनी कथा ते आचार्यने कडी संलणावे छे --

कैथ अवेक राजना नगरमां उपर्युक्त अश्लिषकत वणिक नेवे अवेक वणिक
रहेतो हुतो. ते पणु अग्निदेवने तृप्त करवा । नभित्ते प्रतिवर्ष पोताना घरमां पद्म-
रागमणियो लरीने घरने आग लगाडी हेतो हुतो न्यारे राजने तेनी आ वातनी
अणर पडी त्त्यारे तेणु ते वणिकने पोतानी पासे गेलावीने आ प्रभाणु येतवणु
आपी—ने पद्मराग मणियो घरमां लरीने तेने आग लगाडीने तमे अग्निदेवने

कथं नैव करोषि ? तवैवंविधया क्रियया कदाचित्सम तोऽपि श्रापो विनश्यत् ।
इच्छेवं तं निर्भर्त्स्य दण्डयित्वा नगराद् निष्कासितवान् । तथा त्वमपि कुरु ।

एवं तेन संविग्नगीतार्थेन बहुशः प्रतिबोधितोऽपि स गच्छाचार्यो यदा
स्वव्यापारान्न निवृत्तस्तदा स साधुः अन्यान् गच्छस्थितान् साधून् एवमुक्तवान्
—“यद्येषोऽसंविग्नोऽगीतार्थो गच्छाधिपो भवद्भिर्न परित्यज्यते, तदा भवतां
महान् अनर्थो भविष्यती”ति । एवंविधं साध्वाभासावशं कप्रकारं सर्वं लोकोत्त-
रिक्तं द्रव्यावश्यकम् । एतत्सर्वं निगमयन्नाह—‘से तं लोकोत्तरियं द्रव्यावश्यं’

कर क्यों करते हो—क्यों नहीं जंगल में जाकर इसे किया करते हो । क्यों
कि इस तुम्हारी प्रवृत्ति से कभी न कभी समस्त ग्राम के नष्ट होने की
संभावना है । अतः तुम इस दुष्प्रवृत्ति का या तो त्याग करो नहीं तो गाँव
से बाहिर निकल जाओ । इस प्रकार डाँट डपट कर उस रज्जाने उसे दण्डित
करके अपने नगर से बाहिर निकाल दिया । अतः आप भी संघ की कल्याण
कांमना से ऐसा ही कीजिये । इस प्रकार उस संविग्नगीतार्थ साधुने उन
गच्छाचार्य को बहुत प्रकार से समझाया । परन्तु जब वे समझाने पर नहीं
समझे तब उस आगतसाधुने संघस्थित अन्य साधुओं से इस प्रकार कहा—देखो
यह गच्छाधिपति असंविग्न (क्रियाहीन) और अगीतार्थ है, यदि आपलोग
इससे अलग नहीं होते हैं—तो इसमें आप सब का बड़ा भारी अनर्थ होगा ।
इस प्रकार का साध्वाभासों (वेपथारियों) का जो भी आवश्यक प्रकार है वह

संतुष्ट करवानुं आवश्यक मानता हो। तो तमारे नगरमां रडीने जेवुं कार्यं करवुं
जेधजे नडीं। जंगलमां जधने तमे ते काम करी शके छे। नगरमां रडीने तमे
तमारी आ प्रवृत्ति आबु राणशे। तो तमारी आ दुष्प्रवृत्तिने कारणे डेध वार आभा
नगरने लस्मीभूत करी नाणशे। भाटे डं तो तमारी आ दुष्प्रवृत्ति जध करी हो
नडीं तो गाम छोडीने जता रडे” आ प्रमाणे धमकावीने राजजे तेने पोताना
नगरमांथी डांकी काठये। आपे पणु संघना कल्याणने भातर ते शठ साधुने संघ-
मांथी डांकी काठये जेधजे आ प्रमाणे ते स विग्नगीतार्थ साधुजे ते गच्छाचार्यने
भूणभूण समजव्या, छतां पणु ज्यारे तेमणे तेनी वातने न स्वीकारी त्यारे ते
संविग्नगीतार्थ साधुजे ते संघना अन्य साधुजेने आ प्रमाणे कह्युं— आ गच्छ-
धिपति असंविग्न (क्रियाहीन) जने अगीतार्थ छे जे आप तेगनाथी ज्युदा नडीं
पडे तो आपनुं अकल्याण थशे। आपने ससार अल्प थवाने जहले दीर्घ थतो जशे।”

आ प्रकारना द्रव्यदिग्गी साधुजेनी (मात्र वेपनी अपेक्षाजे ज साधु देभाता
छाय पणु साधुना आचार्यथी रडित छाय जेवा साधुने द्रव्यदिग्गी कडे छे) जे

इति तदेतत् लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकं वर्णितम् । नोआगमतो द्रव्यावश्यकमपि सर्वं निरूपेतमिति एकटयितुमाह—तदेतद् नोआगमतो द्रव्यावश्यकं वर्णितम् । तदेतत् द्रव्यावश्यकं वर्णितम्, इति ॥सू० २२॥

अथावसरथासं भावावश्यकं निरूपयितुमाह—

मूल्य—से किं तं भावावस्सयं ? भावावस्सयं दुविहं पणत्तं, तं जहा आगमओ य, नो आगमओ य ॥ सू० २३ ॥

छाया—अथ किं तद् भावावश्यकम् ? भावावश्यकं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्य ॥—आगमतश्च, नोआगमतश्च ॥सू० २३॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं भावावस्सयं’ इति । हे भदन्त ! अथ किं तद् भावावश्यकम् ? उत्तरमाह—‘भावावस्सयं’ इति । भावावश्यकं-

सर्व लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकं है । इस तरह यहाँ तक (से तं नोआगमओ द्रव्यावस्सयं) पूर्व प्रक्रान्त नोआगम द्रव्यावश्यक का कथन किया गया है कि नोआगम को लेकर द्रव्यावश्यक के भेद प्रभेदों का पूर्वोक्त रूप से वर्णन हो चुका है । ॥ सूत्र २२ ॥

अब सूत्रकार भावावश्यक का वर्णन करते हैं—

से किं तं भावावस्सयं इत्यादि ॥सूत्र २३॥

शब्दार्थ—(से) हे भदन्त ! भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(भावावस्सयं दुविहं पणत्तं) भावावश्यक दो प्रकार का है । (तंजहा) वे प्रकार ये हैं—(आगमओ य नोआगमओ य) एक आगम को लेकर भावावश्यक और दूसरा नोआगम को लेकर भावावश्यक । विवक्षित क्रिया के अनुभव से युक्त जो साध्यादिरूपपदार्थ है उसका नाम भाव है । यहाँ भाव

केल आवश्यक क्रियाओं को लेता है । ते लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक रूप गणाय छे । (से तं नो आगमओ द्रव्यावस्सयं) आ रीते अही सुधीमां पूर्वप्रस्तुत नोआगम द्रव्यावश्यकतुं कथन करवामां आणुं छे । अम समणुं, कडेवानुं तात्पर्य अे छे । के नोआगमनी अपेक्षाअे द्रव्यावश्यकना ने लेद-प्रलेदो पडे छे । तेमनुं वर्णन अही पूरुं थाय छे । ॥सू० २२॥

इसे सूत्रकार भावावश्यकता स्वरूपतुं निरूपण करे छे—

‘से किं तं भावावस्सयं’ इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने अेवो प्रश्न पूछे छे—तं भावावस्सयं किं) हे भगवन् ! भावावश्यकतुं स्वरूप केवुं कहुं छे ?

इह-विवक्षितक्रियानुभवयुक्तोयोऽर्थः साध्वादिरूपः स भावः। भाव तद्वतो भेदोपचाराद् भावः। यथा-ऐश्वर्यरूपायाः इन्दनक्रियायाः अनुभवाद् इन्द्रो भाव उच्यते। भाव-श्चासौ आवश्यकं च भावावश्यकम्। यद्वा-विवक्षितक्रियानुभवरूप भावमाश्रित्य आवश्यकं भावावश्यकम्।

तद् द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा-आगमतश्च=आगममाश्रित्य, नोआगम-तश्च=आगमाभावमाश्रित्य ॥ सू० २३ ॥

सूत्रम्—से किं तं आगमओ भावावस्सय ? आगमओ भावा-वस्सयं जाणय उवउत्ते। से तं आगमओ भावावस्सयं ॥ सू० २४॥

छाया—अथ किं तद् आगमतो भावावश्यकम् ? आगमतो भावावश्यकं ज्ञायक उपयुक्तः। तदेतदागमतो भावावश्यकम् ॥ सू० २४ ॥

और भाववान् में अभेदोपचार किया गया है। इसलिये विवक्षित क्रिया के अनुभव से युक्त अर्थ को भाव कह दिया है। जैसे ऐश्वर्यरूप इन्दन क्रिया के अनुभव से इन्द्र भाव कहा जाता है। भावरूप आवश्यक का नाम भावावश्यक है। अथवा विवक्षित क्रिया के अनुभवरूप भाव को लेकर जो आवश्यक होता है उसका नाम भावावश्यक है। ॥सूत्र २३॥

भावावश्यक का स्वरूप आगम की अपेक्षा लेकर सूत्रकार इस प्रकार से प्रकट करते हैं—से किं तं आगमओ भावावस्सयं इत्यादि ॥सूत्र २४॥

शब्दार्थ—हे भदंत! आगम को आश्रित करके भाव आवश्यक का क्या स्वरूप है ?

ઉત્તર—(ભાવાવસ્સયં દુવિહં પળ્લત્તં) ભાવાવશ્યકના બે પ્રકાર છે (તંજહા) તે પ્રકારે નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે (આગમો ય નોઆગમો ય) (૧) આગમની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક અને (૨) નો આગમની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક.

વિવક્ષિત ક્રિયાના અનુભવથી યુક્ત બે સાધુ આદિ રૂપ પદાર્થ છે, તેનું નામ ભાવ છે અહીં ભાવ અને ભાવવાનમા અભેદોપચારની અપેક્ષાએ આ પ્રમાણે કહેવામાં આવ્યું છે. તેથી વિવક્ષિત ક્રિયાના અનુભવથી યુક્ત અર્થને 'ભાવ' કહેવામાં આવ્યો છે. જેમ કે અશ્રય રૂપ ઈન્દન ક્રિયાના અનુભવથી ઈન્દ્રને ભાવરૂપ કહેવામાં આવે છે. ભાવરૂપ આવશ્યકનું નામ ભાવાવશ્યક છે. અથવા વિવક્ષિત ક્રિયાના અનુભવને અપેક્ષાએ બે આવશ્યક હોય છે, તેનું નામ ભાવાવશ્યક છે. ॥ સૂ० ૨૩ ॥

હવે સૂત્રકાર ભાવાવશ્યકના પ્રથમ ભેદ રૂપ બે “આગમનની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક” છે, તેના સ્વરૂપનું કથન કરે છે—

टीका—शिव्यः पृच्छति—‘से किं तं आगमो भावावस्सयं’ इति ।
अथ किं तद् आगतो भावावश्यकम् ? उत्तरमाह—‘आगमो भावावस्सयं’ इत्यादि ।
आगतो भावावश्यकम् ज्ञानक उपयुक्तः । अयमर्थः—आवश्यक आश्रयक पदार्थ-
ज्ञानजनित—संवेगेन विशुध्यमानपरिणाम तत्र चोपयुक्तः साध्यादिरागतो भावा-
वश्यकम् । आवश्यकार्थज्ञानरूपस्यागमस्यात्र सत्त्वात् । भावेश्चात्रावश्यकार्थज्ञान-
जनितोपयोगवत्त्वात्, भावमाश्रित्यावश्यकमिति व्युत्पत्तेः । इदमुक्तं भवति—अवि-

उत्तर—(आगमो भावावस्सयं जाणय उवउत्ते) आवश्यकसूत्र के अर्थ को जानने वाला ऐसा उसमें उपयोगयुक्त बना हुआ साध्यादि कि जिसके परिणाम संवेग से विशुद्ध बन रहे हैं आगतः भावावश्यक है । क्योंकि इसमें आवश्यक सूत्र के अर्थज्ञानरूप आगमका सद्भाव हो रहा है । यद्यपि आश्रयक के अर्थज्ञान से जनित जो उपयोग है उसका नाम भाव है । और इस भाव को आश्रित करके जो आवश्यक है वह भावावश्यक है, इस प्रकार की व्युत्पत्ति से आवश्यक अर्थ के ज्ञाता का आवश्यक में उपयोगरूप बना हुआ परिणाम, आगम से भावावश्यकरूप उहरता है फिर भी जो साध्यादि को भावावश्यकरूप में कहा जाता है वह इस प्रकार के परिणाम से युक्त होने के कारण उपचार से कहा जाता है ऐसा जानना चाहिये । आवश्यक में जो यह उपयोग परिणाम

से किं तं आगमो भावावस्सयं ” इत्यादि—

शण्डार्थ—हे लगवन्! आगमने आश्रित करीने (आगमनी अपेक्षायै) लाव आवश्यकत्वं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(आगमो भावावस्सयं जाणय उवउत्ते) आवश्यक सूत्रना अर्थने जाणनारे अने तेमां उपयोग युक्त जनेदो साधु के जेनां परिणामो संवेगते दीधे विशुद्ध जनी रह्या होय छे, ते आगमनी अपेक्षायै लावावश्यक होय छे, कारण के जेवा साधुमां आवश्यक सूत्रना अर्थज्ञान रूप आगमने सद्भाव थछ रह्यो होय छे, जे के आवश्यकना अर्थज्ञानथी जनित जे उपयोग छे तेनुं नाम लाव छे, अने ते लावने आश्रित करीने जे आवश्यक छे, तेनुं नाम लावावश्यक छे, आ प्रकारनी व्युत्पत्ति अनुसार आश्रयक अर्थना ज्ञातानुं आवश्यकमां उपयोगयुक्त जनेदुं परिणाम (गनोवृत्ति) आगमनी अपेक्षायै लावावश्यक रूप प्रतिपादित थाय छे, छतां पणु जे साधु आदिने लावावश्यक रूप कडेवामां आवेल छे ते आ प्रकारना परिणामथी युक्त होवाने कारणे औपचारिक रीते कडेवामां आव्युं छे, जेम समजवुं.

रूप भावावश्यक है वह धर्म पदवाच्य है क्योंकि यह श्रुत धर्म के अन्तर्गत है इसी की मान्यता के विषय में जिन भगवान् की आज्ञा का सद्भाव है।—

तात्पर्य कहनेका यह है कि यहाँ पर शंकाकार की ऐसी शंका हो सकती है कि नाम आवश्यक, स्थापना आवश्यक और द्रव्य आवश्यक ये आराधना करने योग्य हैं ऐसी जिन भगवान् की आज्ञा ही नहीं है यह बात तो निश्चित है—क्योंकि इनमें उपयोग का अभाव है और चारित्र गुण विहीनता है। अतः ये कर्मों कि निर्जरा के साधक नहीं होते हैं। और इसी कारण ये धर्मपद वाच्य भी नहीं होते हैं। परन्तु जो सामायिक आदि रूप लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है कि जो प्रवचनोक्त है—आगम संमत है—वह तो धर्मपदवाच्य होना चाहिये—सो इस शंका का समाधान इस प्रकार से है—कि सामायिक आदि क्रियाएँ प्रवचनोक्त अवश्यक हैं तो भी वे जिनाज्ञा से बहिर्भूत बने हुए साध्वामासों (वेषधारियों) द्वारा कि जो स्वच्छंद विहारी होते हैं, मूलगुण और उत्तर गुणों में जिन्हें आस्था नहीं होती है, छहकाय के जीवों की रक्षा करनेरूप अनुकंपा का भाव जिनके अंतःकरण में शून्यरूप से रहता है अनुपयोगपूर्वक अपनी रुचि के अनुसार यद्वा तद्वा क्रिया की

आवश्यकताओं के आ उपयोग परिष्कृत रूप लावावश्यक छे ते धर्म पदवाच्य छे, कारण के ते श्रुतधर्मनी अंदर समाविष्ट थछ जय छे. तेनी ज मान्यताना विषयमां जिनेन्द्र लगवाननी आज्ञानो सदृलाव छे आ कथननो लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—
कदाच कोछने जेवी शंका थाय के नाम आवश्यक स्थापना आवश्यक अने द्रव्यावश्यक, ते त्रजे आवश्यको आराधना करवा योग्य छे, जेवी जिनेन्द्र लगवाननी आज्ञा ज नथी. कारण के तेमनामां उपगनो अलाव छे, अने चारित्रगुण विहीनता रहेली छे तेथी तेजो कर्मनी निर्जराना साधक थता नथी. अने जे कारणे तेजो धर्म पदवाच्य पणु डोता नथी. परन्तु सामायिक आदि रूप लोकोत्तर द्रव्यावश्यक, के जे प्रवचनोक्त छे—आगम संमत छे, ते तो धर्म पदवाच्य होवा ज जेछजे.

तो ते प्रकारनी शंकानुं समाधान आ प्रमाणे समजवुं सामायिक आदि क्रियाओ आगमसंमत अवश्य छे. परन्तु जिनाज्ञाना परिपालनथी जेजो विहीन जनेला छे जेवा द्रव्यविंगी (साधु वेषधारी) साधुजो द्वारा करवामां आवती ते सामायिक आदि क्रियाओ धर्म पदवाच्य होछ शकती नथी. कारण के जेवा साधुजो तो स्वच्छंद विहारी होय छे, मूलगुण अने उत्तर गुणोथी तेजो रहित होय छे, छहकाय लवोनी रक्षा करवा रूप अनुकंपा लावने तेमनामां सदंतर अलाव होय छे, जेवा साधुजो तो अनुपयोग पूर्वक, पोतानी रुचि प्रमाणे जेवे जेवी रीते ते सामायिक आदि

शक्यार्थज्ञस्य आवश्यकोपयोगपरिणाम आगमतो भावावश्यकम् । साध्वादिस्तु तादृशपरिणामवत्त्वादुपचारादागमतो भावावश्यकमुच्यते ।

इदमावश्यकोपयोगपरिणामरूपं भावावश्यकं धर्मपदवाच्यं भवति, श्रुत धर्मान्तर्गतत्वादत्र जिनाज्ञायाः सत्त्वात् ।

जाती है । अतः वे भी धर्मपदवाच्य नहीं हो सकती है । इसलिये उस लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक में भी निर्जराजनकत्व का अभाव होने से जिन भगवान् की आज्ञा उसे मान्यता प्रदान करने की—वह आराधना करने योग्य है इस प्रकार की—नहीं हैं । इस प्रकार यह आगम भावावश्यक का वर्णन किया ।

भावार्थ—यह सूत्रकारने पहिले ही प्रकट करदिया है कि विवक्षित क्रिया के अनुभव से युक्त अर्थ का नाम भाव है । अर्थात् जो आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता है और उसमें उपयोग से युक्त है—ऐसा साध्वादिरूप अर्थ भावावश्यक है । इस भावावश्यक के दो भेद हैं—? एक आगम भावावश्यक और दूसरे नोआगम भावावश्यक । आगम भावावश्यक में ज्ञाता का उपयोग रूप परिणाम आगमरूप माना गया है । अतः वह परिणाम आगम की अपेक्षा भावावश्यक होने से आगम भावावश्यक है । साध्वादिकों कि जो आवश्यकशास्त्र के ज्ञाता होकर उसमें उपयुक्त बने हुए हैं जो आगमभावावश्यक कहा जाता है वह उस परिणाम की अभेद विवक्षा से कहा जाता है । जिन भगवान् ने इस आगमभावावश्यक को ही धर्मपदवाच्य होने के कारण उपादेय

कियाओ करता होय छे. ते कारणे तेमनी ते कियाओ धर्म पदवाच्य (धर्म कडी शक्य ओवी) होती नथी. तेथी ओ लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यकमां पणु निर्जराजनकत्वने अभाव होवाधी जिन लगवाने तेमने आराधना करवा योग्य कडी नथी. आ प्रकारे आ सूत्र द्वारा आगम लावावश्यकतुं स्वरूप प्रकट करवामां आण्युं छे.

भावार्थ—सूत्रकारे ओ बात तो आगम प्रकट करी हीधी न छे के विवक्षित क्रियाना अनुभवथी युक्त अर्थतुं नाम भाव छे. ओ लोके के ओ साधु आवश्यक शास्त्रने ज्ञाता छे अने तेमां उपयुक्त (उपयोग परिणामथी युक्त) छे, ओवा साधु आदि रूप अर्थने लावावश्यक कडे छे. आ लावावश्यकना ओ लेह भताव्या छे (१) आगम लावावश्यक अने (२) नोआगम लावावश्यक.

आगम लावावश्यकमां ज्ञाताना उपयोग रूप परिणामने आगम रूप मानवामां आवेल छे. तेथी ते परिणाम आगमनी अपेक्षाओ लावावश्यक रूप होवाधी तेने आगम लावावश्यक कडेवामां आण्युं छे. साध्वादिके के ओओ आवश्यक शास्त्रना ज्ञाता होवानी साथे साथे तेमां उपयुक्त भनेला तेमने न न आगम लावावश्यक कडेवामां आवे

नामावश्यकम्-आवश्यकनामको गोपालदारकादिः, स्थापनावश्यकम् आव-
श्यकक्रियाश्चतः कस्यचित् काष्ठकर्मादिषु चित्रम्, द्रव्यावश्यकं च आवश्यकोप-
योगशून्या देहागमक्रियाः । एषावश्यकेषु उपयोगाभावेन चरणगुणरहितत्वेन
च कर्मनिर्जराजनकत्वाभावादाराध्यत्वेन जिनाज्ञा नास्ति, तस्मादेतत् त्रिविध-
मावश्यकं धर्मपदवाच्यं न भवतीति निश्चयः । लोकोत्तरिकद्रव्यावश्यकं-
प्रवचनोक्तं सदपि जिनाज्ञावाद्यैः स्वच्छन्दविहारिभिर्मूलोत्तरगुणरहितैः पट्टकाय-
निन्दुकम्पैरनुपयोगपूर्वकं क्रियमाणं सामायिकादिकम् । तदपि धर्मपदवाच्यं न
भञ्जितुमर्हति तत्रापि निर्जराजनकत्वाभावेन विधेयतया जिनाज्ञाया अभावात् ।

उक्तमर्थमुपसंहरन् प्राह—‘से तं आगमओ भावावस्सयं’ इति । तदेतत्
आगमतो भावावश्यकं वर्णितम् ॥ सू० २४ ॥

अथ भावावश्यकस्य द्वितीयभेदमाह—

मूलम्—से किं तं नो आगमओ भावावस्सयं ? नो आगमओ
भावावस्सयं त्रिविहं पणत्तं, तं जहा-लोइयं, कुप्पावयणियं,
लौगुत्तरियं ॥ सू० २५ ॥

स्वीकार्य कहा है—नाम स्थापना और द्रव्य आवश्यक को नहीं । क्योंकि आवश्यक
नाम के धारी गोपालवालों में आवश्यक की स्थापनावाले किसी श्रावकआदि
के आवश्यक क्रिया संपन्न चित्र में तथा आवश्यक क्रिया में उपयोग शून्य
बने हुए नोआगम द्रव्यावश्यकरूप देह में एवं आगमोक्त भी लोकोत्तरिक
द्रव्यावश्यकरूप सामायिक आदि में उपयोग की शून्यता से और चारित्र-गुण
की रहितता से कर्म निर्जरा करने की सामर्थ्य नहीं है । अतः ये धर्मपदवाच्य
नहीं हुए हैं । और इसी कारण इन्हें उपादेय नहीं कहा गया है । ॥सूत्र २४॥

छे ते आ परिणामनी अलेह विवक्षानी अपेक्षाये कडेवाभां आवे छे आ आगम
लोवावश्यकं न धर्म पदवाच्य-डोवाथी निनेधर लगवाने तेने उपादेय कडेल छे-
नामावश्यक, स्थापना आवश्यक अने द्रव्यावश्यकने उपादेय कहा नथी. कारण
के आवश्यक नामधारी गोपालवाणोभां, आवश्यकनी स्थापनावाणा डोह श्रावक
आदिना आवश्यक क्रिया संपन्न चित्रभां, तथा आवश्यक क्रियाभां उपयोग शून्य
(अनुभयुक्त) बनेला नोआगम द्रव्यावश्यक रूप सामायिक आदिभां उपयोगनी
शून्यता अने चारित्रगुणनी रहितताने लीधे कर्मनी निर्जरा करवानुं समर्थ डोतुं
नथी. तेथी-तेभने धर्म पदवाच्य कडी शक्य नही, अने अण कारणे तेभने उपा-
देय पण गणी शक्य नही. ॥ सू० २४ ॥

छाया--अथ किं तद् नोआगमतो भावावश्यकम् ? नो आगमतो भावावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा--लौकिकं कुप्रावचनिकं लोकोत्तरिकम् ॥सू० २५॥

टीका--'से किं तं इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा ॥सू० २५॥

लौकिकं भावावश्यकमाह--

मूलम्--से किं तं लोड्यं भावावस्तयं ? लोड्यं भावावस्तयं पुव्वणहे भारहं अवरणहे रामायणं । मे तं लोड्यं भावावस्तयं ॥सू० २६॥

अब सूत्रकार भावावश्यक का द्वितीय भेद जो नोआगमभावावश्यक है उसका निरूपण करते हैं--'से किं तं नोआगमओ' इत्यादि ॥सूत्र २५॥

शब्दार्थ--(से) शिष्य पूछता है कि हे भद्रंत । नोआगम की अपेक्षा लेकर भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर--(नोआगमओ भावावस्तयं त्रिविधं पणत्त) नोआगम को आश्रित करके भावावश्यक तीन प्रकार का कहा हुआ है । (तंजहा) जैसे--(लोड्यं) लौकिक (कुप्रावचनियं) कुप्रावचनिक और (लोगुत्तरियं) लोकोत्तरिक । इस प्रकार जानना चाहिये । उस व्याख्या में द्रव्यावश्यक की जगह भावावश्यक शब्द का प्रयोग करना चाहिये । ॥सूत्र २५॥

अब सूत्रकार लौकिक भावावश्यक का वर्णन करते हैं--

'से किं तं लोड्यं' इत्यादि ॥सूत्र २६॥

भावावश्यकनो नो 'नोआगम भावावश्यक' नामनो णीणे लेह छे तेनुं सूत्रकार डवे निरूपणु करे छे--'से किं तं नो आगमओ' इत्यादि--

शब्दार्थ-- (से) शिष्य गुरुने जेवो प्रश्न पूछे के डे लगवन् ! नो आगमनी अपेक्षाजे नो भावावश्यक कहे छे ते भावावश्यकनुं जेटवे के नो आगम भावावश्यकनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर--(नोआगमओ भावावस्तयं त्रिविधं पणत्त) नोआगमने आश्रित करीने भावावश्यकना त्रयु प्रकार कहे छे. (तंजहा) ते त्रयु प्रकारो नीचे प्रभाणु छे--

(लोड्यं) (१) लौकिक (कुप्रावचनियं) (२) कुप्रावचनिक अने (३) लोगु-त्तरियं) लोकोत्तरिक आ पहेनी व्याख्या द्रव्यावश्यकनी जेवी न समजवी जेधजे, परन्तु ते व्याख्यामां द्रव्यावश्यकनी जग्याजे 'भावावश्यक' पहेनो उपयोग करवे जेधजे ॥ सू. २५ ॥

डवे सूत्रकार लौकिक भावावश्यकनुं निरूपणु करे छे--

'से किं तं लोड्यं' इत्यादि--

छाया—अथ किं तद् लौकिकं भावावश्यकम् ? लौकिकं भावावश्यकं पूर्वाह्ने भारतम्, अपराह्ने रामायणम् । तदेतत् लौकिकं भावावश्यकम् । सू० २६।

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं लोडयं भावावस्सयं’ अथ किं तद् लौकिकं भावावश्यकम् ? उत्तरमाह—‘लोडयं भावावस्सयं’ इत्यादि । लौकिकं भावावश्यकं पूर्वाह्ने भारतं=भारतस्य वाचनं श्रवणं वा, अपराह्ने रामायणम्, अपराह्ने रामायणम्=रामायणस्य वाचनं श्रवणं वा । लोके हि—भारतस्य वाचनं श्रवणं पूर्वाह्ने क्रियमाणं दृश्यते तथा—रामायणस्य वाचनं श्रवणम् अपराह्ने क्रियमाणं दृश्यते, वैपरीत्ये दोषदर्शनात् । ततश्चेत्थं लोकेऽवश्यकरीयतयाऽऽवश्यकत्वं तद्वाचकाय श्रोतुश्च तदर्थोपयोगपरिणामसत्त्वाद् भावत्वम्, तद्वाचकः भाषणक्रियया पुस्तकरूपत्रादिपरावर्तनरूपया हस्ताभिनयरूपया च क्रियया युक्ता

शब्दार्थ—(से) शिष्यः पूछता है कि हे भदंत ! पूर्वप्रक्रान्त (पूर्वप्रस्तुत) लौकिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(लोडयं भावावस्सयं पुव्वह्णे भारहं अवरह्णे रामायणं) लौकिक भावावश्यक का स्वरूप ऐसा है कि पूर्वाह्ण में महाभारत का वाचना अथवा श्रवण करना, अपराह्ण में रामायण का वाचन अथवा श्रवण करना । लोकमें महाभारत का वाचन अथवा उसका श्रवण करना यह काम पूर्वाह्ण में देखा जाता है, तथा रामायण का वाचना अपराह्ण में (दूपेर पीछे) । इसके विपरीत करने से दोष का पात्र होना पड़ता है । इस तरह यह काम आवश्यक करने योग्य होने के कारण आवश्यकरूप है, तथा उसके श्रोता और वाचनकर्ता का उसके अर्थ में उपयोगरूप परिणाम के सद्भाव से उनमें भावरूपता है । वाचने वाला

शब्दार्थ—शिष्यः गुरुने अथो प्रश्नः पूछे छे के छे लगवन् ! पूर्वप्रस्तुत लौकिक भावावश्यकनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(लोडयं भावावस्सयं पुव्वह्णे भारहं अवरह्णे रामायणं) लौकिक भावावश्यकनुं स्वरूप का प्रकारनुं छे—पूर्वाह्ण (दिवसना आगला लागमां) महाभारतने वांचवुं अथवा श्रवणुं करवुं अने अपराह्णने (दिवसना पाछला लागमां) रामायणने वांचवुं अथवा श्रवणुं करवुं, ते अवश्य करवा योग्य होवाथी आवश्यक रूप गणाय छे. लोकेमां महाभारतनुं वांचन अथवा श्रवणुं करवानुं कार्यं पूर्वाह्णमां करवा योग्य गणाय छे अने रामायणनुं वांचन अथवा श्रवणुं करवानुं कार्यं अपराह्णमां करवा योग्य मनाय छे. तेना करतां विपरीत कमे ते करवाथी दोषने पात्र थवुं पडे छे. आ रीते आ कार्यं अवश्य करवा योग्य होवाथी आवश्यक रूप छे, तथा तेना श्रोता अने वाचनकर्ताना तेना अर्थमां उपयोग रूप परिणामना सद्भावने लीधे तेमां भावरूपता पणुं होय छे. वाचनकर्ता ते वधते लाभणुं करवानी कियथी, पुस्तकना

भवति, श्रोताऽपि च श्रवण-मात्र संयतत्व-कसंपुटीकरणदित्रियावान् भवति । एवं तयोः क्रियादत्त्वेन नोआगमत्वम्, 'किरियाऽऽगमो न होइ' इति वचनात् । क्रियारूपे देशे आगमत्वाभावाद् नोआगमत्वमपि । अत्र ना शब्दस्य देशनिषेधबोधकत्वात् । लोके भारतादावागमत्वं व्यवहियते, तस्मादेशत आगमोऽत्यपि । तस्मात् पूर्वाह्णोपरोह्ण यथानिर्दिष्टकाले भारताद्युपयुक्तो यदवश्यं भारतादिकं वाचयति शृणोति वा, तद्वाचनं श्रवणं च लौकिकं भावावश्यकमिति

वाचते समय भाषण क्रिया से, पुस्तक के पन्नों को पलटने आदिरूप क्रिया से, और निज हाथ से इशारा करने रूप अभिनय क्रिया से युक्त होता है । तथा जो श्रोता होते हैं । वे भी श्रवण क्रिया से शरीर को संयत करनेरूप क्रिया से और दोनों हाथों को जोड़े रहनेरूप क्रिया से युक्त होते हैं । इस तरह की इन दोनों की इन क्रियाओं में आगमता नहीं है—क्यों कि "किरिया-आगमो न होइ" क्रिया आगम नहीं होती है ऐसा सिद्धांत वा वचन है । इसलिये क्रियारूप देश में आगमता का अभाव होने से नोआगमता भी है । यहां नो शब्द देशनिषेधका बोधक है । परन्तु लोक में महाभारत आदि ग्रन्थों में आगमता का व्यवहार होता है—इसलिये इनमें आगमता भी है । इस तरह क्रिया में आगमता वा सद्भाव होने से वहीं आगमता वा सद्भाव और वहीं आगमता का अभाव बन जाने से नो एकदेश से आगमता बन जाती है । इस प्रकार यथा निर्दिष्ट पूर्वाह्ण और आराध काल में भारतादि में उच्युक्त हुए व्यक्ति आदि का जा उनका वाचता और सुननारूप आग-

पानांश्चो हेरववानी क्रियाथी युक्त होय छे, तथा श्रोताश्चो ते श्रवणु करवा इप क्रियाथी, शरीरने संयत करवा इप क्रियाथी अने अने होथेने जेडी राणवा इप क्रियाथी युक्त होय छे. आ प्रकारनी वकता अने श्रोतानी ते क्रियाश्चोमां आगमतानो सहभाव होतो नथी कारणु के "किरिया आगमो न होइ" "क्रिया आगमइप होती नथी," आ प्रकारनुं सिद्धान्तनुं कथन छे. आ प्रकारे क्रिया इप देशमां आगमतानो अभाव होवाथी तेमां 'नो आगमता'नो पणु सहभाव होय छे. अर्द्धी "नो" शब्द देश निषेधनो (अंशत निषेधनो) बोधक छे. परन्तु लोकमां महाभारत आदि ग्रन्थोमां आगमतानो व्यवहार थाय छे, ते कारणु तेमनामां आगमतानो सहभाव पणु रहेलो छे. आ रीते क्रियामां आगमतानो अभाव अने महाभारत आदिमां आगमतानो सहभाव होवाथी अटले के अेक प्रकारे आगमतानो सहभाव होवाथी तेमां नोआगमता (अेक देशनी अपेक्षाअे आगमता) सिद्ध थाय छे. आ प्रकारे यथा निर्दिष्ट पूर्वाह्ण आराधमां महाभारत आदिमां उपयुक्त (उपयोग परिष्णामथी युक्त) थयेल व्योक्तनुं जे तेमना वाचन अने श्रवणु इप

बोध्यम् । तदेतत् निगमयन्नाह—‘से तं लोइयं भावावस्सयं इति । तदेतत् लौकिकं भावावश्यकं वर्णितम् ॥सू० २६॥

कुप्रावचनिकं भावावश्यकमाह—

सूत्रम्—‘से किं तं कुप्पावयणियं भावावस्सयं ? कुप्पावयणियं भावावस्सयं जे इमे चरगचीरिग जाव पासंडथा, इज्जंजलि होमजपो दुस्कनमोक्कारमाइयाइं भावावस्सयाइं करेति । से त कुप्पावयणियं भावावस्सयं सू० २७॥

छाया—अथ किं तत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकम् ? कुप्रावचनिकं भावावश्यकं य इमे चरकचीरिक या त् पापण्ड थाः इज्याज्जलिहोमजपोन्दुरुकनमस्कारादिकानि भावावश्यकानि कुर्वन्ति । तदेतत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकम् ॥सू० २७॥

अथ कर्म है वह वाचन और श्र ण लौ किक भावावश्यक है । इस तरह एक-देश में आगमता की अपेक्षा लेकर (से तं लोइयं भावावस्सयं) यह पूर्वप्रक्रान्त लौकिक भावावश्यक का वर्णन किया । ॥सूत्र २६॥

अब सूत्र का कुप्रावचनिक भावावश्यक का वर्णन करते हैं ।

“से किं तं कुप्पावयणियं” इत्यादि । ॥सू० २७॥

शब्दार्थ—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! तं (तत्) पूर्व प्रक्रान्त (पूर्वप्रस्तुत) (कुप्पावयणियं भावावस्सयं किं) कुप्रावचनिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(कुप्पावयणियं भावावस्सयं) कुप्रावचनिक भावावश्यक का स्वरूप

आवश्यक कर्म है, ते वाचन अने श्रवण लौकिक भावावश्यक रूप होय है । (से तं लोइयं भावावस्सयं) का प्रकारतुं नो आगम (अेकदेशरूप आगमताना सहभावाणा) लौकिक भावावश्यकतुं स्वरूप समंजसुं ।

इसे सूत्रकार नो आगम भावावश्यकता नील लेह रूप कुप्रावचनिक भावावश्यकतुं निरूपण करे है—“से किं तं कुप्पावयणियं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने अेवो प्रश्न पूछे है के (तं) पूर्वप्रक्रान्त-पूर्वप्रस्तुत (कुप्पावयणियं भावावस्सयं किं) कुप्रावचनिक भावावश्यकतुं स्वरूप केवु है ?

उत्तर—(कुप्पावयणियं भावावस्सयं) कुप्रावचनिक भावावश्यकतुं स्वरूप का प्रकारतुं है—(जे इमे चरगचीरिग जाव पासंडथा) जे चरक, चीरिक आदि पूर्वोक्त

शिष्यः पृच्छति—'से किं तं कुपावयणियं भावावश्यकं ?' इति । अथ किं तत् कुपावचनिकं भावावश्यकम् ? । उत्तरमाह—कुपावचनिकं भावावश्यकमेवं विज्ञेयम्—य इमे चरकचीरिका यावत् पाषण्डस्थाः उपयुक्ताः सन्तो यथावसरं यदवश्यकम्, इज्याञ्जलिहोमजपो-दुरुक्कनमस्कारादिकानि, भावावश्यकानि कुर्वन्तीत्यन्वयः । तत्र चरकादयः प्राग्व्याख्यानाः । तत्र—इज्या=यज्ञः अञ्जलिः—जलाञ्जलिः सूर्याय दीयते, होमः=नित्यहवनम् जपः=गायत्रीः, उन्दुस्क्कम्—धूपः, धूपदानमित्यर्थः, अयं देशीयःशब्दो धूपार्थकः । नमस्कारः=वन्दनम्, एतान्यादौ येषां तानि भावावश्यकानि कुर्वन्ति । एतानि हि चरकचीरिकादिभिः पाषण्डस्थैरवश्यं क्रियमाणत्वादावश्यकानि । तदर्थोपयोगश्चादिपरिणामसद्भावाद् भावत्वम् । चरकादीनां तदर्थज्ञानरूपो देशत आगमः, करशिरः संयोगादिक्रियारूपो देशस्तु नोभागमः इस प्रकार से है । (जे इमे चरक चीरिका जात पाषण्डस्था) जो ये चरक चीरिका आदि पाषण्डस्थ मनुष्य उपयुक्त होकर अवसर के अनुसार (इज्जंजलिहोमजपो-दुरुक्कनमोक्कारमाइयाइं) यज्ञ करते हैं, सूर्य के लिये जलाञ्जलि देते हैं, नित्य हवन करते हैं, गायत्री का जाप करते हैं, अग्नि में धूप जलाते हैं, तथा वंदना आदिरूप भावावश्यक करते हैं, सो ये सब क्रिया उन चरक चीरिकादिकों द्वारा आवश्यककरणीय होने के कारण आवश्यकरूप हैं । तथा इनके अर्थ में जो उनका उपयोग परिणाम लगा रहता है तथा श्रद्धा आदि का भाव जाग्रत रहता है—सो इस वारक ये क्रियाएं भावावश्यकरूप हैं । इस तरह चरक आदि को वा जो उन क्रियाओं संबन्धीज्ञान है वह एक देश आगमरूप है । तथा उनका कर और शिर का संयोजनादिरूप जो व्यवहार है वि-क्रियाएं हैं—वह क्रियारूप व्यवहार आगमरूप नहीं हैं—नो-

पाषण्डस्थी (पाषण्डी) मनुष्ये। उपयुक्त (उपयोग इप परिणाम संपन्न) यद्यने अवसरने यत्तुइप (इज्जंजलिहोमजपोदुरुक्कनमोक्कारमाइयाइं) यज्ञ करे छे, सूर्यने जलाञ्जलि अर्पणु करे छे, नित्य होमहवन करे छे, गायत्रीने जाप करे छे, अग्निमां धूप नाथीने तेने जाणे छे, तथा वंदना आदि क्रियाओ करे छे, ते अधी क्रियाओ भावावश्यक इप गणाय छे, आ सधणी क्रियाओ ते चरक, चीरिका आदि पूर्वोक्त दोडो द्वारा अवश्य करवा योग्य होवाने कारणे आवश्यक इप गणाय छे, वणी ते क्रियाओमां तेमना उपयोग परिणामने पणु सहलाव रहे छे, अने श्रद्धादि लावे पणु जगृत रहे छे, आ कारणे ते क्रियाओने भावावश्यक इप कडे-वामां आवी छे, तथा ते वणते तेमना कर अने शिरना संयोजन आदि इप ने व्यवहार अथवा क्रियाओ थाय छे, ते क्रियाइप व्यवहार आगम इप नहीं पणु ने

तथा च देशिकागमाभावमाश्रित्य नोआगमत्वमपि । नो शब्दस्यात्रापि देशनिषेध
परत्वात् । चरकचीरिकादिभिः पाषण्डस्थैरवश्यं क्रियमाणम् इज्याञ्जलि होमादिकं
कुप्रावचनिकं भावावश्यकमितिभावः । तदेतत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकं वर्णितमाम्बर७।

आगम है—। इस तरह देशिक आगमके अभाव को लेकर उन क्रियाओं में
नोआगमता है । नोआगम का तात्पर्य एकदेश में आगमता का सद्भाव है ।
अतः चरक, चीरक आदि पाषण्डस्थ पुरुषों द्वारा की गई इज्या (यज्ञ) अंजलि
होमादिकरूप एक देश क्रियाओं के ज्ञान में तो आगमता है । इस प्रकार
कुप्रावचनिक—भावावश्यक का यह स्वरूप है ।

भावार्थ—यहां नोआगम का तात्पर्य सर्वथा आगमाभाव से नहीं है ।
किन्तु एकदेशमें आगम के अस्तित्व से है । चरक चीरिकादि पाषण्डी जनों
को यज्ञादि क्रियाएँ उनके सिद्धान्तानुसार अवश्यकरणीय होती हैं, वे उन्हें
उपयोगपूर्वक करते हैं । उनमें उनकी अटूट श्रद्धा होती है । इस तरह ये
क्रियाएँ भावावश्यकरूप में पडती है और ये सब क्रियाएँ उनकी ज्ञान मूलक
ही होती हैं । इसलिये इन क्रियाओं के ज्ञानमें तो आगम रहता ही है ।
परन्तु जो और उनकी हस्त शिर की संयोजन आदिरूप क्रियाएँ हैं उनमें

आगम इयं न छे; कारण्य के आ क्रियाओ आगममान्य क्रियाओ नथी; आ रीते
देशिक आगमना अलावनी अपेक्षाओ छे क्रियाओमां नो आगमतानो सदृभाव डोय
छे अम समञ्जुं. “नो आगमता” अेटवे अेकदेशनी अपेक्षाओ आगमता तेथी
चरक, चीरिक आदि पूर्वोक्त पाषण्डस्थ पुरुषो द्वारा करवामां आवेदी यज्ञ, अंजलि
द्वारा अलिषेक, होम आदि इय अेकदेशइय क्रियाओना ज्ञानमां तो आगमतानो
सदृभाव छे. ते दृष्टिओ विचारता ते क्रियाओ कुप्रावचनिक लावावश्यक इय गणाय
छे. कुप्रावचनिक लावावश्यकतुं आ प्रकारतुं स्वइय समञ्जुं.

लावार्थ—“नो आगम” आ यह सर्वथा आगमालावता दर्शावतुं नथी; पणु
अेकदेशनः आगमनो सदृभाव अतावे छे. चरक, चीरिक आदि पाषण्डी लोकने भाटे
यज्ञादि क्रियाओ तेमना सिद्धान्तानुसार अवश्य करणीय गणाय छे तेओ ते क्रियाओ
उपयोगपूर्वक करे छे. तेमां तेमने अटूट श्रद्धा डोय छे आ रीते आ क्रियाओ
लावावश्यक इय गणाय छे, अने तेमनी आ अधी । याओ ज्ञानमूलक न डोय छे.
तेथी ते क्रियाओना ज्ञानमां तो आगमनो सदृभाव नडे छे न परन्तु अे सिवा-
यनी हस्तशिरना संयोजन आदि इय न क्रियाओ छे तेमां आगमइयता डोती.

लोकोत्तरिकं भावावश्यकमाह—

मूलम्—से किं तं लोकोत्तरियं भावावस्सयं ? लोकोत्तरियं भावावस्सयं जणं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तद्धेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोव-उत्ते तदत्पियकरणे तब्भावणाभाविए अपणत्थकत्थइमणं अकारेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेति, से तं लोकोत्तरियं भावावस्सयं । से तं नो आगमओ भावावस्स ।, से तं भावावस्सयं ॥ सू २८ ॥

छाया—अथ किं तद् लोकोत्तरिकं भावावश्यकम् ? लोकोत्तरिकं भावावश्यकं-यत्त्वलु इमे वणा वा श्रवण्यो वा श्रावका वा श्राविका वा तच्चित्तास्तन्म-नसस्तल्लेश्यास्तदध्यवसितास्तत्तीव्राध्यवसानास्तदर्थोपयुक्तास्तदपितकरणास्तद्भावना-

आगमरूपता नहीं हैं । इस तरह आगम का एकदेश में अस्तित्व लेकर चरकचीरिकादि संबंधी होम आदि क्रियाएं कुप्रावचनिक भावावश्यक हैं । सू० २७।

अब सूत्रकार लोकोत्तरिक भावावश्यक का कथन करते हैं—

“से किं तं लोकोत्तरियं” इत्यादि । ॥ सू० २८ ॥

शब्दार्थ—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! लोकोत्तरिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(लोकोत्तरियं भावावस्सयं) लोकोत्तरिक भावावश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है—(जणं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा) जो ये श्रमण श्रमणी, श्रावक अथवा श्राविका जन (तच्चित्ते) आवश्यक में चित्त लगाकर (तम्मणे) मन लगाकर (तल्लेस्से)

नहीं, आ रीते आगमना एकदेशतः अस्तित्वनी अपेक्षाये चरक, चीरिक आदि द्वाश कृत होम, हुवन, यज्ञ आदि क्रियाओ कुप्रावचनिक भावावश्यक रूप होयछे । सू. २७।

हुवे सूत्रकार लोकोत्तरिक भावावश्यक नामना नो आगम भावावश्यकना त्रीण लेटनुं निरूपणु करे छे “से किं तं लोकोत्तरियं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने अवेा प्रश्न पूछे छे के पूर्वप्रस्तुत लोकोत्तरिक भावावश्यकनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(लोकोत्तरियं भावावस्सयं) लोकोत्तरिक भावावश्यकनुं आ प्रकारनुं स्वरूप होय छे—

(जणं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा) आ श्रमण, श्रमणी (साध्वी), श्रावक अने श्राविकाओ (तच्चित्ते) आवश्यकभां चित्त लगावीने, (तम्मणे)

भाविता अन्पत्र कुत्रापि मनोऽकुर्वन्त उभयतः कालम् आवश्यकं कुर्वन्ति । तदेतद् लोकोत्तरिकं भावावश्यकम् । तदेतन्नो अगमता भावावश्यकम् तदेतद् भावावश्यकम् ॥ सू० २८ ॥

टीका—शियः पृच्छति—‘से किं तं लोकोत्तरियं भावावस्सयं’ अथ किं तद् लोकोत्तरिकं भावावश्यकम् ? इति । उत्तरमाह—‘लोकोत्तरियं’ भावावस्सयं’ इत्यादि । लोकोत्तरिकं भावावश्यकमेवं विज्ञेयम्, यत्खलु इमे श्रमणा वा श्रमण्यो वा श्राम्यन्ति=मुक्त्यर्थं तपन्तीति—श्रमणाः स्त्रियश्चेत् श्रमण्यः—साधवो वा साध्व्येवेत्यर्थः श्रावका वा श्राविका वा, शृण्वन्ति=साधुसमीपे जिनप्रणीतां सामाचारीमिति श्रावकाः=श्रमणोपासकाः, स्त्रियश्चेत् श्राविका=श्रमणोपासिकाः, वा शब्दाः समुच्चयार्थाः, तच्चित्ताः=तस्मिन्नेव आवश्यकके चित्तं=सामान्योपयोगरूपं येषां ते तथा, आवश्यकके सामान्योपयोगवन्तः, तथा तन्मनसः—तस्मिन्नेव मनो विशेषो

शुभपरिणामरूप लेश्यासंपन्न होकर (तदज्झवसिए) क्रिया संपादन विषयक अध्ये-
वसाययुक्त होकर (तत्तिव्वज्झवसाणे) तीव्र आत्मपरिणाम विशिष्ट होकर
(तदद्दोवउत्ते) तदर्थ में उपयुक्त होकर (तदप्पियकरणे) तदर्थितकरणवाले होकर
(तदभावणाभाविए) तद्भावना से भावित होकर (अण्णत्थकत्थइ मणं अकरेमाणे)
अन्य और कहीं पर भी मनको नहीं लगाकर (उभओ कालं) दोनों समय
(आवस्सयं करेति) आवश्यक करते हैं (से त लोकोत्तरियं भावावस्सयं) वह
लोकोत्तरिक भावावश्यक है । मुक्ति प्राप्ति के निमित्त जो तप तपते हैं उन
का नाम “श्राम्यन्तीति श्रमणाः” इस व्युत्पत्ति के अनुसार श्रमण हैं जो
साधुओं के समीप जिन प्रणीत सामाचारी का श्रवण करते हैं उनका नाम
श्रावक है । ये श्रमणोपासक होते हैं । आवश्यक क्रिया में जिनका सामा-
न्यरूप से उपयोग है, वे श्रमण आदिजिन यहाँ “तच्चित्ते” पद के वाच्यार्थ हुए

मन लगावने (तच्छेत्त) शुभ परिणामरूप लेश्या संपन्नथधने (तदज्झवसिए
क्रियासंपादन विषयक अध्येवसायथी युक्तं धधने, (तत्तिव्वज्झवसाणे) तीव्र आत्म
परिणाम युक्तं धधने, (तदद्दोवउत्ते) आवश्यक अर्थमा उपयुक्त (उपयोगे) रूप
परिणामयुक्त) धधने (तदप्पियकरणे) तदर्थित करणयुक्तं धधने (तदभावणा
भाविए) ते प्रकारनी लावनाथी लावित (संपन्न) धधने (अण्णत्थकत्थइ मणं अक
रेमाणे) अने अन्य केध पणु वस्तुमां मनने लभवा हीधा विना, (उभओ कालं)
धधने समये (आवस्सयं करेति) वे आवश्यक (प्रतिक्रमणु आदि अवश्य करवा योग्य
क्रियाओ) करे छे, तेने लोकोत्तरिक भावावश्यक कहे छे.

इये आ सूत्रमां श्रमणु आदि पढेने लोकार्थ स्पष्ट करवामां आवे छे—

“श्राम्यन्ति इति श्रमणाः” आ व्युत्पत्ति प्रमाणे “मुक्ति प्राप्त करवा
निमित्ते नेओ तप तपे छे तेमने श्रमणु कहे छे नेओ साधुओनी समीपे जिनप्रणीत
सामाचारीनुं श्रवणु करे छे तेमने श्रावक कहे छे तेओ श्रमणोपासक होय छे.
आवश्यक क्रियामां सामान्य रूपे उपयोग युक्त होय ओवा श्रमणु आदिने अहाँ
“तच्चित्ते” आ पढना वाच्यार्थ रूपे प्रयुक्त थयेला समजवा, नेओ विशेष रूपे

पयोगरूपं येषां ते तथा, आवश्यकं विशेषोपयोगवन्तः, तल्लेश्याः—तस्मिन्=आवश्यकं एव लेश्या=शुभपरिणामरूपा येषां ते तथा, आवश्यकं शुभपरिणामवन्तः, तथा—तदध्यवसिताः—तस्मिन्=आवश्यकं एव तच्चित्तत्वादिना अध्यवसितम्=अध्यवसायः क्रियासम्पादनविषयो येषां ते तथा, आवश्यकं क्रियासंपादनविषयकविचारयुक्ता, तथा—तत्तीव्राध्यवसानाः—तस्मिन्=आवश्यकं एव तीव्रं=प्रारम्भकालादेव प्रतिक्षणं प्रवर्धमानम् अध्यवसानम् इदं सकलकर्मनिर्जराजनकं तस्मादवश्यमाश्रयणीय'—मित्याकारक आत्मपरिणामो येषां ते तथा, तदर्धोपयुक्ताः आवश्यकार्थोपयुक्ताः—'आवश्यकं-सामायिक-चतुर्विंशतिरतद-वन्दन-प्रतिक्रमण-कार्योत्सर्ग-प्रत्याख्यानरूपं यदवश्यं शाश्वतमचलमरुजमक्षयमवाधममन्दानन्दसन्दोहरूपं शिवसुखं प्रापयति, तस्मादवश्यं सोपयोगं प्रशस्ततत्संवेगनिर्वेद-

जानना चाहिये । जिनका उपयोग विशेषरूप से आवश्यक क्रिया में लगा हुआ है ऐसा श्रमण आदिजन "तम्मणे" इस पद के वाच्यार्थ हुए जानना चाहिये । आवश्यक क्रियाओं के संपादन विषयक विचारों से जो युक्त हैं ऐसे श्रमण आदिजन "तदज्झसिए" इस पद के वाच्यार्थ हुए जानना चाहिये । तथा जिनका आत्मपरिणाम प्रारम्भकाल से ही इस प्रकार के विचार से कि यह आवश्यक सकलकर्मों की निर्जरा का जनक है इसलिये अवश्य आश्रयणीय है, प्रतिक्षण वृद्धिगत होता रहता है वे श्रमण आदिजन "तत्तिव्वज्झवसाणे" इस पद के वाच्यार्थ हुए हैं । आवश्यक में जिन के परिणाम शुभ हैं वे "तल्लेश्ये" पद के वाच्यार्थ—जानना चाहिये । आवश्यक-सामायिक चतुर्विंशतिस्तव, वन्दन प्रतिक्रमण, कार्योत्सर्ग इनरूप हैं, सो यह अवश्य, शाश्वत, अचल, अरुण, अक्षय, अवाध और अनन्द आमन्द के सन्दोहरूपशि ।

आवश्यक क्रियाओंमें उपयोग युक्त थयेला छे जेवां श्रमणोने अही "तम्मणे" आ पदना वाच्यार्थ इपे प्रयुक्त थयेला समजवा.

, आ आवश्यक आश्रयणीय छे, आ प्रकारनी विचार धाराथी जेमनुं आत्मपरिणाम आरंभकाणथी ज युक्त रहे छे, अने कमे कमे जेमनुं आ प्रकारनुं आत्मपरिणाम वृद्धि पामनुं रहे छे, जेवां श्रमणादिने अही "तत्तिव्वज्झवसाणे" आ पदना वाच्यार्थ इपे समजवा. आवश्यक क्रियांमें जेमना परिणाम शुभ छे जेवां श्रमण आदिने अही "तल्लेश्ये" आ पदना वाच्यार्थ इपे समजवा जेधजे.

"सामायिक, २४ तिर्थंकरेनी स्तुति, वन्दन, प्रतिक्रमण, कार्योत्सर्ग इत्यादि इपे जे आवश्यक छे, तेजो शाश्वत, अचल, अरुण, अक्षय, अव्याध अने अनन्द आनन्दना सन्दोहरूप (समुदायरूप) शिव सुभनी प्राप्ति अवश्य करावी देनार छे, अने

પૂર્વક મારાધનીય—' મિત્યાત્મપરિણામયુક્તાઃ ઇત્યર્થઃ । તથા—તદર્પિતકરણાઃ— તસ્મિન્=આવશ્યકે અર્પિતાનિ=યાથાતથ્યેન નિયુક્તાનિ કરણાનિ=તત્સાધકભૂતાનિ દેહરજોહરણસદોરકમુખવસ્ત્રિકાદીનિ યૈ તે તથા, આવશ્યકકર્મણિ સમ્યગ્થા સ્થાનન્યસ્તોપકરણા ઇત્યર્થઃ, તથા-તન્ભાવનાભાવિતાઃ—તસ્ય=આવશ્યકસ્ય ભાવના= આવશ્યક-સર્વકલ્યાણ-કારણમ્, અનન્તભવોપાર્જિત કર્મરજોઽપહારક-મિતિ પ્રતિ- ક્ષણ-મનુસ્મરણરૂપા, તથા ભાવિતાઃ પ્રમાદપરિહારપૂર્વક પરમેત્સાહેન આવશ્યક ક્રિયાકરણપરાયણાઃ, અન્યત્ર કુત્રાપિ મનઃ અકુર્વન્તઃ, ઉપલક્ષણત્વાદ્ વાચં કાયં ચાન્ ત્રા કુર્વન્તઃ ઉભયકાલે યત્ આવશ્યકં કુર્વન્તિ તદેતલ્લોકોત્તરિકં ભાવાવ-

સુખ કો પ્રાપ્ત કરા દેતા હૈ અતઃ યહ અવશ્ય ઉપયોગપૂર્વક પ્રશસ્તર સંવેગ કે સાથ નિર્વેદપૂર્વક આરાધનીય હૈ ઇસ પ્રકાર કે આત્મપરિણામોં સે જો યુક્ત હૈં એસે શ્રમણ આદિજન "તદદ્વસ્વઉત્તે" ઇસ પદ કે વાચ્યાર્થ હુએ હૈં । તથા—જિન્હોં ને આવશ્યક મેં યથાસ્થાન તત્સાધકભૂત દેહ, રજે હરણ, સદોરકમુખવસ્ત્રિકા આદિકોં કો નિયુક્ત કર રલા હૈ અર્થાત્ આવશ્યક ક્રિયા મેં અચ્છી તરહ સે ઉ હોંને યથા સ્થાન ઉપકરણોં કો રલા હૈ એસે વે શ્રમણ આદિ જન "તદ- પ્પિયકરણે" પદ કે વાચ્યાર્થ હુએ હૈં । આવશ્યક સમસ્ત કલ્યાણોં કા કારણ હૈ તથા અનન્ત ભવોપાર્જિત કર્મ રજ કા નાશક હૈ ઇસ પ્રકાર વી પ્રતિક્ષણ મેં અનુસ્મરણરૂપ ભવના સે જો પ્રમાદ પરિત્યાગપૂર્વક પરમેત્સાહ સે આવશ્યક ક્રિયા કે કરને મેં પરાયણ વને હુએ હૈં એસે શ્રમણ અદિજન "તન્ભાવનાભા- વિણ" પદ કે વાચ્યાર્થ હુએ હૈં । મન રહ પદ વચન ઓર કાયકા ઉપલક્ષણ

તે કારણે તે અવશ્ય ઉપયોગ પૂર્વક પ્રશસ્તર સંવેગની સાથે, નિર્વેદપૂર્વક આરા- ધનીય છે," આ પ્રકારના આત્મપરિણામથી જેઓ યુક્ત હોય છે એવાં શ્રમણુ આદિને "તદદ્વોવઉત્તે" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપે ગ્રહણ કરવા જોઈએ

આવશ્યક ક્રિયા કરતી વખતે તે ક્રિયાના સાધનભૂત દેહ, રજોહરણ, સદોરક મુહુપત્તી આદિ ઉપકરણોને જેમણે યોગ્ય સ્થાને રાખેલાં છે એટલે કે આવશ્યક ક્રિયામાં જેમણે ઉપકરણોને યરબર વિચાર પૂર્વક ઉચિત સ્થાને સ્થાપિત કરેલાં છે, તે શ્રમણુ આદિને આહી "તદ્પિયકરણે" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપ સમજવા જોઈએ.

"આવશ્યક ક્રિયાઓ સમસ્ત કલ્યાણોની જનક છે, તથા અનન્ત ભવોપાર્જિત કર્મરજનો નશ કરનારી છે" આ પ્રકારની પ્રતિક્ષણે અનુસ્મરણ રૂપ ભાવનીથી પ્રેરાઈને જેઓ પ્રમાદના ત્યાગ પૂર્વક અને પરમેત્સાહ પૂર્વક આવશ્યક ક્રિયાઓ કરવાને પરાયણ બનેલા છે એવાં શ્રમણુ આદિને "તન્ભાવનામ વિણ" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપ સમજવા જોઈએ.

श्रमणमूलं समणे वा' इत्यादौ बहुत्वे वाच्ये एकवचननिर्देश आर्पित्वात्—यदिमे श्रमणादयस्तच्चित्तादि विशेषण—विशिष्टा उभयकालं प्रतिक्रमणाद्यावश्यकं कुर्वन्त तल्लोकोत्तरिकं भावावश्यकम्, इति संक्षेपार्थः । अत्रापि—अवश्यं करणात् आवश्यकम् । तदुपयोगपरिणामस्य सद्भावाद् भावत्वम्, आवश्यकं क्रियालक्षण देशस्थानो गमत्वाद् नोआगमत्वं च बोध्यम् । तदेतल्लोकोत्तरिकं भावावश्यकं वर्णितम् एवं विधं नोआगमतो भावावश्यकं निरूपितमिति सूचयितुमाह—'से तं नोआगमतो भावावस्सयं' इति । तदेतन्नो आगमतो भावावश्यकं वर्णितम् । एवं सर्वथा भावावश्यकं निरूपितमिति सूचयितुमाह—'से तं भावावस्सयं' इति । तदे-

हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि जो श्रमण आदिजन तच्चित्त आदि विशेषणों से युक्त बनकर दोनों काल प्रतिक्रमण आदि आवश्यकों को करते हैं भावावश्यक है । ये क्रियाएँ श्रमण आदि जनोंको अवश्य करने योग्य हैं इसलिये तो ये आवश्यक हैं । तथा उनमें इनके करनेवालोंका उपयोग परिणाम वर्तमान रहता है इसलिये उसमें भावरूपता है । तथा आवश्यक क्रियाएँ स्वयं आगम रूप नहीं हैं अतः आवश्यक क्रिया रूप एकदेशमें अनागमता और इनके ज्ञानरूप एकदेशमें आगमताका सद्भाव होनेसे नो आगमकी अपेक्षा ये आवश्यक क्रियाएँ लोकोत्तरिकभावावश्यक जाननी चाहिये । इस तरह नोआगमको आश्रित करके लोकोत्तरिकभावावश्यकका यहां तकका वर्णन किया । इस प्रकार नोआगम भावावश्यकका पूर्णरूपसे वर्णन हो चुका है । इस बातको बतलाने के लिये सूत्रकारने "से तं भावावस्सयं" पदका प्रयोग किया है ।

'मन' आ पद वचन अने कथनुं उपलक्षक छे. आ सधणा कथननुं तात्पर्य अछे छे के जे श्रमण, श्रमणी, श्रावक अने श्राविका "तच्चित्त" आदि विशेषणोथी युक्त भनीने भन्ने कणे प्रतिक्रमण आदि जे आवश्यको करे छे, ते आवश्यको नोआगमनी अपेक्षाये लोकोत्तरिक भावावश्यक गणाय छे. आ क्रियायो श्रमण श्रमणी श्रावक अने श्राविकोने भाटे अवश्य करवा योग्य मनीती होवाथी तेमने आवश्यक रूप कही छे. ते आवश्यक क्रियायो करनार श्रमण आदिनुं उपयोग परिणाम तेमां विद्यमान रहे छे, ते कारणे तेमां भावद्रूपतानो सद्भाव होय छे. तथा आवश्यक क्रियायो स्वयं आगम रूप नथी, तेथी आवश्यक क्रिया रूप एकदेशमां अनागमता अने तेमना ज्ञानरूप एक देशमां आगमतानो सद्भाव होवाथी आ आवश्यक क्रियायोने नोआगमनी अपेक्षाये लोकोत्तरिक भावावश्यक रूप समजवी आ रीते नोआगमने आश्रित करीने लोकोत्तरिक भावावश्यकनुं आ सूत्रमां प्रतिपादक करवामां आच्युं छे. अज वातने सूत्रकारे 'से तं भावावस्सयं' आ सूत्रपाठ द्वारा प्रगट करी छे. आ सूत्रपाठ अे वात सूत्रना

તદ્ ભાવાવશ્યકં સર્વથા વર્ણિતમ્ । ભાવાવશ્યકમેવ ચતુર્વિધસંઘૈરુપાદેયં ન તુ
નામસ્થાના દ્રવ્યાવશ્યકાનિ, તેષાં કર્મ નિર્જરાજનકન્ધાભાવાત્ સંસારકાસ્ત્ન-
સ્વાચ્ચ । તથા-ભાવાવશ્યકેઽપિ આગમતો ભાવાવશ્યકં લોકોત્તરિકરૂપં નોઆગમતો
ભાવાવશ્યકં ચેતિ દ્વયમેવોપાદેયં, ન તુ-લૌકિકં કુપ્રાવચનિક ચ ભાવાવશ્યક
મિતિ સર્વતીર્થકરણામભિપ્રાયઃ ॥૬૦ ૨૮॥

ભાવાવશ્યક હી ચતુર્વિધ સંઘને ઉપાદેય છે । નામ સ્થાપના ઓર દ્રવ્યરૂપ
આવશ્યક ઉપાદેય નહીં છે । ક્યોંકિં હનમેં કર્મ નિર્જગત્તી જનકતાકા સર્વથા
અભાવ છે અર્થાત્ હનકો નિમિત્ત યા હનકા સેવન કરકે યદિ કોઈ પ્રાણી અપને
કર્મોંકી નિર્જરા કરના યાહે તો વહ નહીં કર સતા છે- । હસલિયે હનને
સંસાર વર્ષક કારણોંમેં પરિગણિત કિયા ગયા છે । ભાવાવશ્યકમેં મી આગમ
ભાવાવશ્યક ઓર નોઆગમકા તૃતીય મેદ રૂપ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક યે
દોહી ઉપાદેય છે । લૌકિક ઓર કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યક નહીં ંસા સમસ્ત
તીર્થકરોંકા કથન છે ।

ભાવાર્થઃ—નોઆગમ ભાવાવશ્યકને આવશ્યક રૂપ આગમકા સર્વથા
અભાવ વિવક્ષિત નહાં હુઆ છે । કિન્તુ આગમકા ંકદેશ વિવક્ષિત હુઆ છે ।
હસ નોઆગમ ભાવાવશ્યકકે લૌકિકકુપ્રાવચનિક ઓર લોકોત્તરિક યે ૩
તીન મેદ કિયે ગયે છે । પૂર્વાહ્લમેં મહાભારતકા અપરાહ્લમેં રામાયણકા વાચના

ઉપસંહાર રૂપે પ્રકટ કરે છે કે આ રીતે નોઆગમ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યકનું
નિરૂપણ અહીં પુરૂં થાય છે.

ભાવાવશ્યક જ ચતુર્વિધ સંઘને માટે ઉપાદેય ગણાય છે. નામ, સ્થાપના અને
દ્રવ્યાવશ્યક ઉપાદેય ગણાતાં નથી, કારણ કે તે ત્રણે આવશ્યકોમાં કર્મનિર્જરાની
જનકતાનો સર્વથા અભાવ જ છે. કારણ કે તેમનું સેવન કરવાથી જો કોઈ જીવ
કર્મોની નિર્જરા કરવાનું ઇચ્છતો હોય, તો તે રીતે કર્મોની નિર્જરા કરી શકતો
નથી. તે કારણે તે ત્રણે આવશ્યકોને સંસારવર્ધન કરનારાં કારણો રૂપે ગણાવવામાં
આવેલ છે. ભાવાવશ્યકમાંથી પણ આગમ ભાવાવશ્યક અને નોઆગમના ત્રીજા ભેદ
રૂપ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક આ બેને જ ઉપાદેય કહી શકાય તેમ છે. લૌકિક અને
કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યકને ઉપાદેય રૂપ ગણી શકાય નહીં, એવું સમસ્ત તીર્થકરોંકાનું
કથન છે.

ભાવાર્થ—નોઆગમ ભાવાવશ્યકમાં આવશ્યક રૂપ આગમનો સર્વથા અભાવ
વિવક્ષિત થતો નથી, પરન્તુ આગમનો એક દેશ વિવક્ષિત થયો છે. આ નોઆગમ
ભાવાવશ્યકના નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભેદ પડે છે (૧) લૌકિક, (૨) કુપ્રાવચનિક અને
(૩) લોકોત્તરિક પૂર્વાહ્લમાં મહાભારતનું અને અપરાહ્લમાં રામાયણનું વાચન

एवं श्रवण करना ये निर्दिष्ट समय पर क्रियमाण होनेसे आवश्यक रूप है। इनमें वाचक और श्रोताका जो अर्थोपयोग परिणाम है वह भावरूप है। इसलिये वाचक और श्रोता, कि जिनका ग्रन्थों में उपयोग रूप परिणाम लग रहा है वे लौकिक भावावश्यक हैं। तथा लोकको अपेक्षा भारतादिक आगम भी हैं। इन आगमों में उपयुक्त बने हुए वक्ता और श्रोताजन में उस समय विविध प्रकारकी जो क्रिया होती रह है वे आगमरूप नहीं हैं क्योंकि श्रुतज्ञान ही आगमरूप माना गया है। इ तरह एकदेशमें आगमकी विद्यमानता होनेसे भारतादिकका वाचन वण लौकिक भावावश्यक है। चरक चिरिक आदि पाखंडीजनों द्वारा जो होम यज्ञ आदि क्रियाएँ की जाती हैं वे सब उनके लिये उनके मान्य सिद्धान्तानुसार अवश्य वर्तव्य हैं इसलिये ये सब क्रियाएँ आवश्यक हैं। इन आवश्यक क्रियाओं के संपादन करते समय उन संपादन कर्ताओंका उपयोग आदि रूप परिणाम उनमें संलग्न रहता है इसलिये ये भाव हैं। इस तरह ये क्रियाएँ भावावश्यक मान ली जाती हैं। इनका ज्ञान आगम, और संपादन कर्ताओं की करशिर संयोजनादिरूप क्रियाएँ अनागम हैं। इस प्रकार एकदेशमें आगमका सद्भाव होनेसे आगम के एकदेशके आदि करके ये क्रियाएँ कुप्रावचनिक भावावश्यक हैं।

अने श्रवण करवा रूप कार्य निर्दिष्ट समये क्रियमाण होवाची आवश्यक रूप छे. तेमां वाचक अने श्रोतानुं ने अर्थोपयोग युक्त परिणाम छे, ते भावरूप छे. आ कारणे ते अर्थोमां उपयोग युक्त परिणामथी युक्त जेवां ते वाचक अने श्रोताजने लौकिक भावावश्यक रूप गणाय छे तथा लोकनी अपेक्षाये महाभारत आदिने आगम यण गणवामां आवे छे. ते आगमोमां उपयुक्त अनेवा वक्ता अने श्रोतायोमां ते समये विविध प्रकारनी क्रियाओ थती रहे छे, ते क्रियाओ आगमरूप नथी, कारणे के श्रुतज्ञानने न आगमरूप मानवामां आओ छे. आ रीते एकदेशनी अपेक्षाये आगमनी विद्यमानता होवाना कारणे महाभारत आदिनुं वाचन अने श्रमण 'नोआगम लौकिक भावावश्यक' रूप छे. अरक, चिरिक आदि पाखंडीओ द्वारा ने यज्ञ, होम, हुवन आदि क्रियाओ करवामां आवे छे ते तेमना मान्य सिद्धान्तानुसार तेमने भाटे अवश्य करवा योग्य मनाय छे. तेथी ते अधी क्रियाओने आवश्यक रूप कहेवामां आवे छे. आ आवश्यक क्रियाओ करती वणते ते क्रियाओ करनार लोकना उपयोग आदि रूप परिणाम ते आवश्यक क्रियाओमां संलग्न रहे छे, तेथी आ प्रकारना भावथी युक्त ते क्रियाओने भावावश्यक रूप मानवामां आवे छे. ते क्रियाओनुं ज्ञान आगम रूप गणाय छे. अने ते क्रियाओ करनारनी कर शिर संयोग आदि रूप आओ अनागम रूप गणाय छे. आ प्रकारे एक देशमां आगमताने।

અથ—ભાવાવશ્યકસ્ય પર્યાયાનાહ—

મૂલમ્—તસ્સ ણં ઇમે ઇગટ્ટિયા ણાણાઘોસા ણાણાવંજણા ણામ-

ધેજ્ઞાં ભવંતિ, તં જહા—

આવસ્સયં ૧, અવસ્સકરણિજ્ઞં ૨, ધુવનિગ્ગહો ૩, વિસોહી ૪ય ।

અજ્ઞયણહુક્કવગ્ગો ૫, નાઓ, આરાહણા ૭ મગ્ગો ૮ ॥૧૧॥

સમણેણં સાવેણં ચ અવસ્સકાયઠ્ઠવયં હવઙ્ગ જમ્હા ।

અંતે અહો નિસસ્સય તમ્હા આવસ્સયં નામ ॥૧૨॥

સે તં આંવસ્સયં ॥સૂ૦ ૨૧॥

ચતુર્વિધ સંઘ દ્વારા ઉપયુક્ત હોકર જો દોનોં સમય—સુબહ ઓર સાય-
કાલ—પ્રતિક્રમણ આદિ આવશ્યક ક્રિયાઈં કી જાતી હૈ વે નોઆગમકી અપેક્ષા
લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક હૈં સંઘકો યે અવશ્ય હી ઉમયકાલ મેં ક્રિયમાણ
હોનેસે આવશ્યક રૂપ હૈં । કર્તા ઇનમેં ઉપયોગ પૂર્વક તલ્લીન હોતા હૈ ઇસ-
લિયે ઇનમેં ભાવરૂપતા હૈ । ઇનકા જ્ઞાન ઉપયોગરૂપમેં ઉસે હોતા હૈ અતઃ યે
આગમ રૂપ હૈ તથા ઓર અવશિષ્ટ કર શિર સંયોજનાદિ ક્રિયાઈં આગમ રૂપ
નહીં હૈં । ઇસ તરહ નોઆગમકો આશ્રિત કરકે પ્રતિક્રમણ આદિ િયાઈં
લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક હૈં । સૂત્ર ॥ ૨૮ ॥

સદ્ભાવ હોવાથી આગમના એક દેશને આશ્રિત કરીને તે ક્રિયાઓને નોઆગમ
કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યક રૂપ કહેવામાં આવે છે.

ચતુર્વિધ સંઘ ઉપયુક્ત થઈને ઝને સમય પ્રાતઃકાળે અને સાયંકાળે પ્રતિ-
ક્રમણ આદિ જે આવશ્યક ક્રિયાઓ કરે છે, તે ક્રિયાઓ નોઆગમની અપેક્ષાએ
લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક રૂપ છે. ઝને કાળે શ્રમણાદિ દ્વારા તે અવશ્ય કરવા યોગ્ય
હોવાથી આવશ્યક રૂપ છે કર્તા તેમાં ઉપયોગ પૂર્વક તલ્લીન થઈ જાય છે, તેથી
તેમાં ભાવરૂપતા છે. તે ક્રિયાઓના જાનનો ઉપયોગ રૂપે તેનામાં સદ્ભાવ હોય છે,
તેથી તે ક્રિયાઓ આગમરૂપ છે, તથા ખીજી કર શિર સંયોજન આદિ ક્રિયાઓ
આગમરૂપ નથી. આ રીતે નોઆગમને આશ્રિત કરીને પ્રતિક્રમણ આદિ ક્રિયાઓ
લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક રૂપ છે, એટલે કે તે પ્રતિક્રમણ આદિ આવશ્યક ક્રિયાઓ
નોઆગમ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક રૂપ છે, એમ સમજવં ॥ ૨૧ ૨/ ॥

छाया—तस्य खलु इमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—

आवश्यकम् १ अवश्यकरणीयम् २ ध्रुवनिग्रहो ३ विशोधिश्च ४ ।

अध्ययनषट्कवर्गः ५ न्यायः ६ आराधना ७ मार्गः ८ ॥१॥

श्रमणेन श्रावकेण च अवश्यककर्तव्यकं भवति यस्मात् ।

अन्तेऽहर्निशस्य तस्मादावश्यकं नाम ॥२॥

तदेतदावश्यकम् ॥ सू० २९ ॥

अब सूत्रकार भावावश्यकका पर्यायोंको कहते हैं—

“तस्सणं इमे” इत्यादि । सूत्र ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—(तस्स णं) उस आवश्यक के (इमे) ये वक्ष्यमाण (एगंड्विया) एक अर्थवाले (नामधेज्जा) नाम हैं । ये नाम (णाणा घोसा णाणा वंजणा) भिन्न २ उदात्त आदि स्वरेण एवं ककार आदि अनेक व्यञ्जनोंसे सहित हैं । (तंजहा) वे इस प्रकारसे हैं—(आवस्सयं) १ आवश्यक (अवस्स करणिज्जं) अवश्यकरणीय, (ध्रुवनिग्रहो) ध्रुवनिग्रह ३, (विशोधि य) विशोधि ४ अज्झयण छक्कवग्गो)अध्ययनषट्कवर्ग ५, (नाओ) न्याय ६, (आराहणा) आराधना ७, (मग्गो) मार्ग इनमें आवश्यक शब्दका अर्थ (से किं तं आवस्सयं) इसके पहिले नौवे—सूत्र में स्पष्ट कर दिया गया है । अवश्यकरणीय—मोक्षार्थीजनों द्वारा यह नियमसे अनुष्ठेय (करने योग्य) होता है इसलिये इसका नाम अवश्यकरणीय है । ध्रुव

इसे सूत्रकार भावावश्यकका पर्यायवाची शब्दोंको निरपणु करेहै—

“तस्सणं इमे” इत्यादि—

(तस्सणं इमे एगंड्विया नामधेज्जा) ते भावावश्यकना नीचे प्रमाणे अर्थक नामो छे—

(णाणा घोसा णाणा वंजणा) ते नामो जुहा जुहा उदात्त आदि स्वरे अने ककार आदि अनेक व्यञ्जनोंकी युक्त छे. (तंजहा) ते नामो नीचे प्रमाणे छे— (आवस्सयं) (१) आवश्यक, (अवस्सकरणिज्जं) (२) अवश्य करणीय, (ध्रुवनिग्रहो)ध्रुवनिग्रह, (विशोहाय) (४) विशोधि, (अज्झयणछक्कवग्गो) (५) अध्ययनषट्कवर्ग, (नाओ) (६) न्याय, (आराहणा) (७) आराधना अने (मग्गो) मार्ग (१) ‘आवश्यक’ का पहला अर्थ “से किं तं आवस्सयं” का प्रथमसूत्रकी शक्ति यथा नवमां सूत्रमां प्रकट करवामां आव्यो छे. (२) ‘अवश्यककरणीय’-मोक्षार्थीजनों द्वारा ते अवश्य अनुष्ठेय (अनुष्ठान करवा योग्य, आवश्यकणीय) होय छे, तेथी तेनुं ‘अवश्यककरणीय’ नाम पड्युं छे.

अथ—भावावश्यकस्य पर्यायानाह—

मूलम्—तस्स णं इमे एगट्टिया णाणाघोसा णाणावंजणा णाम-

धेज्जा भवंति, तं जहा—

आवस्सयं १, अवस्सकरणिज्जं २, धुवनिग्गहो ३, विसोही ४य ।

अज्झयणल्लक्कवग्गो ५, नाओ, आराहणा ७ सग्गो ८ ॥१॥

समणेणं सावण्णं य अंवस्सकायव्वयं हवइ जम्हा ।

अंते अहो निसस्सय तम्हा आवस्सयं नाम ॥२॥

से तं आंवस्सयं ॥सू० २९॥

चतुर्विध संघ द्वारा उपयुक्त होकर जो दोनों समय—सुबह और साय-
ङ्काल—प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रियाएँ की जाती हैं वे नोआगमकी अपेक्षा
लोकोत्तरिक भावावश्यक हैं संघको ये अवश्य ही उभयकाल में क्रियमाण
होनेसे आवश्यक रूप हैं । कर्त्ता इनमें उपयोग पूर्वक तल्लीन होता है इस-
लिये इनमें भावरूपता है । इनका ज्ञान उपयोगरूपमें उसे होता है अतः ये
आगम रूप हैं तथा और अवशिष्ट कर शिर संयोजनादि क्रियाएँ आगम रूप
नहीं हैं । इस तरह नोआगमको आश्रित करके प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ
लोकोत्तरिक भावावश्यक हैं । सूत्र ॥ २८ ॥

सङ्घलाव होवाधी आगमना ओक देशने आश्रित करीने ते क्रियाओने नोआगम
कुप्रावर्धनिक लावावश्यक रूप कडेवाभां आवे छे.

चतुर्विध संघ उपयुक्त थर्धने णन्ने समय प्रातःकाणे अने सायंकाणे प्रति-
कमणु आदि जे आवश्यक क्रियाओ करे छे, ते क्रियाओ नोआगमनी अपेक्षाओ
लोकोत्तरिक लावावश्यक रूप छे. णन्ने काणे श्रमणुादि द्वारा ते अवश्य करवा योग्य
होवाधी आवश्यक रूप छे कर्त्ता तेभां उपयोग पूर्वक तल्लीन थर्ध जय छे, तेथी
तेभां लावइपता छे. ते क्रियाओना जाननेा उपयोग रूपे तेनाभां सङ्घलाव होय छे,
तेथी ते क्रियाओ आगमरूप छे, तथा भीणु कर शिर संयोजन आदि क्रियाओ
आगमरूप नहीं. आ रीते नोआगमने आश्रित करीने प्रतिक्रमणु आदि क्रियाओ
लोकोत्तरिक लावावश्यक रूप छे, ओटवे के ते प्रतिक्रमणु आदि आवश्यक क्रियाओ
नोआगम लोकोत्तरिक लावावश्यक रूप छे, ओम समणुं. ॥ सू. २८ ॥

छाया—तस्य खलु इमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—

आवश्यकम् १ अवश्यकरणीयम् २ ध्रुवनिग्रहो ३ विशोधिश्च ४ ।

अध्ययनषट्कवर्गः ५ न्यायः ६ आराधना ७ मार्गः ८ ॥१॥

श्रमणेन श्रावकेण च अवश्यकर्तव्यकं भवति यस्मात् ।

अन्तेऽहर्निशस्य तस्मादावश्यकं नाम ॥२॥

तदेतदावश्यकम् ॥ सू० २९ ॥

अब सूत्रकार भावावश्यकका पर्यायोको कहते हैं—

“तस्सणं इमे” इत्यादि । सूत्र ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—(तस्स णं) उस आवश्यक के (इमे) ये वक्ष्यमाण (एगट्टिया) एक अर्थवाले (नामधेज्जा) नाम हैं । ये नाम (णाणा घोसा णाणा वंजणा) भिन्न २ उदात्त आदि स्वरों एवं ककार आदि अनेक व्यञ्जनोंसे सहित हैं । (तंजहा) वे इस प्रकारसे हैं—(आवस्सयं) १ आवश्यक (अवस्स करणिज्जं) ५ अवश्यकरणीय, (ध्रुवनिग्रहो) ध्रुवनिग्रह ३, (विशोही य) विशोधि ४ अज्झयण छक्कवग्गो)अध्ययनषट्कवर्ग ५, (नाओ) न्याय ६, (आराहणा) आराधना ७, (मग्गो) मार्ग इनमें आवश्यक शब्दका अर्थ (से किं तं आवस्सयं) इसके पहिले नौवे—सूत्र में स्पष्ट कर दिया गया है । अवश्यकरणीय—भोक्षार्थीजनों द्वारा यह नियमसे अनुष्ठेय (करने योग्य) होता है इसलिये इसका नाम अवश्यकरणीय है । ध्रुव

इवे सूत्रकार भावावश्यकना पर्यायवाची शब्दोक्तुं निरपणु करेहे—

“तस्सणं इमे” इत्यादि—

(तस्सणं इमे एगट्टिया नामधेज्जा) ते भावश्यकना नीचे प्रभाषे अर्थक नामो छे—

(णाणा घोसा णाणा वंजणा) ते नामो शुद्ध शुद्ध उदात्त आदि स्वरो

अने ककार आदि अनेक व्यञ्जनोंथी युक्त छे. (तंजहा) ते नामो नीचे प्रभाषे छे—

(आवस्सयं) (१) आवश्यक, (अवस्सकरणिज्जं) (२) आवश्यक करणीय, (ध्रुवनि-

ग्रहो)ध्रुवनिग्रह, (विशोहाय) (४) विशोधि, (अज्झयणछक्कवग्गो) (५) अध्यय-

षट्कवर्ग, (नाओ) (६) न्याय, (आराहणा) (७) आराधना अने (मग्गो) मार्ग (९)

‘आवश्यक’ आ पहिले अर्थ “से किं तं आवस्सयं” आ प्रश्नसूत्रथी शंङ्गं यथा

नवमां सूत्रमां प्रकट करवामां आव्यो छे. (२) ‘अवश्यककरणीय’-भोक्षार्थीजनों द्वारा

ते आवश्यक अनुष्ठेय (अनुष्ठान करवा योग्य, आवश्यक करणीय) होय छे, तेथी तेहुं ‘अव-

श्यककरणीय’ नाम पड्युं छे.

टीका—‘तस्स णं’ इत्यादि—

तस्य=आवश्यकस्य खलु इमानि=वक्ष्यमाणानि नानाघोषाणि—नाना=भेदक
विधाः भिन्ना भिन्ना इति यावत्, घोषाः=उदात्तादिरवराः येषां तानि तथा-
भिन्नाभिन्नोदात्तादिस्वरयुक्तानि, तथा—नानाव्यञ्जनानि—नाना=अनेकविधानि
व्यञ्जनानि=ककारादीनि येषां तानि तथा—ङकारादिभिन्नभिन्नव्यञ्जनसहितानि
एकार्थिकानि=परमार्थत एकार्थविषयाणि नामधेयाणि-नामानि-पर्यायाः भवन्ति ।
तद्यथा—आवश्यकम् १ अवश्यकरणीयम् २ ध्रुवनिग्रहो ३ विशोधिश्च ४ अध्ययनपट्टवर्गो ५
न्यायः ६ आराधना ७ मार्गः ८ । इति । अयमर्थः—आवश्यकम्, अस्य शब्दार्थः=
‘से किं तं आवस्सयं’ इत्यत्र प्राग् वर्णितः ॥१॥ अवश्यकरणीयम्—मोक्षार्थि-
भिर्नियमेनानुष्ठेयत्वात्—अवश्यकरणीयम् ॥२॥ ध्रुवनिग्रहः—अनादित्वात् चिद-
पर्यवसितत्वाद् ध्रुवं=कर्म तत्फलभूतः संसारो वा, तस्य निग्रहः=निग्रहहेतुत्वात्
निग्रहः, ध्रुवनिग्रहः—चतुर्गतिकसंसारनिवारकः ॥३॥ विशोधिः—विशोवनं
विशोधिरतद्हेतुत्वाद् आवश्यकं विशोधिः=तस्य कर्ममलापहारकत्वात् ॥४॥ अध्य-
यनपट्टवर्गः—अध्ययनापट्टम्=अध्ययनपट्टकम् तद्रूपा वर्गः अध्ययनपट्टकवर्गः=सामा-
यिकादिषडध्ययनसमूहरूपः ॥५॥ न्यायःअभीष्टार्थसिद्धेः सस्वरुपायत्वाद् न्यायः यद्वा—

निग्रह—अनादि होने के एवं नाना जीवों की अपेक्षा पर्यवसानसे रहित होने के
कारण ध्रुवनामकर्म या कर्म के फलभूत संसार है । इस कर्मका या उसके
फलभूत संसारका निग्रह इससे होता है, इसलिये इसका नाम ध्रुवनिग्रह है ।
विशोधि— कर्मरूप मल की अपहृति (निवृत्ति) इससे होती है— इसलिये इसका
नाम विशोधि है । यह सामायिक आदि छह अध्ययन समूह रूप है—इसलिये
इसका नाम अध्ययनपट्टक वर्ग है । अभीष्ट अर्थ की सिद्धिका यह सबसे भला
उपाय है इसलिये इसका नाम न्याय है—अथवा जीव और कर्म के अनादिका-

(३) ध्रुवनिग्रह—कर्म अथवा कर्मना इत्यस्वरूप संसारतुं नाम ध्रुव छे, कारण
के कर्म अने संसार, या अने अनादि अने विविध जीवोनी अपेक्षासे पर्यव-
सानथी रहित (अनंत) छे. अथवा अनादि अनंत कर्मना अथवा कर्मना इत्यभूत
संसारना निग्रह आ आवश्यक कियासे. वडे थाय छे, तेथी तेनुं त्रीणुं नाम
‘ध्रुवनिग्रह’ छे.

(४) विशोधि—तेना द्वारा कर्मरूपी भणनी निवृत्ति अथवा विशुद्धि थाय छे,
तेथी तेनुं योथुं नाम “विशोधि” छे.

(५) ‘अध्ययनपट्टक वर्ग’—ते सामायिक आदि ६ अध्ययनना समूहरूप होवाथी
तेनुं यांथुं नाम ‘अध्ययनपट्टक वर्ग’ छे

(६) ‘न्याय’—अभीष्ट अर्थनी सिद्धिना सौथी सारा उपाय रूप होवाने कारणसे

जीवकर्मसंबन्धापनयनात् प्रायः—यथार्थि प्रतर्थिनोर्द्वयोरपि क्षेत्रधनदिसम्बन्धिकं चिर-
कालिकमपि विवादं न्यायाध्यक्षैर्दृष्टोऽयायो रूपनयति, तथैवावश्यकमपि जीवकर्मणो-
रनादिकालिकमाश्रयाश्रयिभावसम्बन्धमपनयतीति—आवश्यकमपि न्याय इत्युच्यते
॥६॥ आराधना=मोक्षाराधना हेतुत्वादावश्यकम् आराधना ॥७॥ मार्गः—तथा
मार्गो नगरं प्रापयति, तथैवावश्यकमपि मोक्षं प्रापयतीति मोक्षरूपपुरप्रापकत्वात्
आवश्यकं मार्गः इति ॥८॥

सगप्रति—भावश्यकपदस्य शब्दार्थः सूत्रकारः स्वयमेव प्रदर्शयति—‘सम-
णेण’ इत्यादि । श्रमणेन=साधुना श्रावकेण, चकारस्योपलक्षणत्वात् श्रमणा
श्राविकया च यस्मात् अहर्निशस्य=अहोरात्रस्य अन्ते=अवसाने दिवसान्ते रात्र्यन्ते च

कीन संबन्धको यह दूर कर देता है—जिस प्रकार वादि प्रतिवादी के बहुत
समय का भी क्षेत्र, धन आदि संबन्धी विवादको न्यायाध्यक्ष न्याय के बल
पर दूर कर देता है—उसी प्रकार आवश्यक भी जीव और कर्म के अनादि-
कालीन आश्रयाश्रयिभावरूप संबन्धको दूर कर देता है—इसलिये इसका नाम
भी न्याय है । मोक्षकी आराधना करनेका यह हेतु है । इसलिये इसका नाम
आराधना है । जिस प्रकार मार्ग पथिकको नगर में पहुँचा देता है उसी
प्रकार आवश्यक भी मोक्ष रूप नगर में अपने पथिकको पहुँचा देता है—इसलिये
इसका नाम-मार्ग है । आवश्यक शब्दका क्या अर्थ है—इस बातको अब
सूत्रकार प्रकट करते हैं—(समणेण सावणं य) श्रमण, श्रावक के द्वारा यह (जम्हा)
जिस कारणसे (अहोनिशस्य अन्ते) दिवसान्त और निशान्त में (अवस्सकायव्वं
होइ) अवश्य करणीय होता है (तम्हा) इसकारण से (आवस्सयं नाम) इसका

तेनुं छट्ठुं नाम “न्याय” अथवा—जेवी रीते न्यायाधीश वादी अने प्रतिवादीना
जर, जमीन आदि विवादोने न्यायने आधारे दूर करी नापे छे, जेज प्रमाणे
आवश्यक पणु लुव अने कर्मना अनादि कालिन आश्रयाश्रयी लावइप संय धने दूर
करी नापे छे. तेथी आवश्यकनुं छट्ठुं नाम ‘न्याय’ छे.

(७) ‘आराधना’—मोक्षनी आराधना करवामां आवश्यक हेतुइप (साधनइप)
थळ पडे छे, तेथी तेनुं सावसुं नाम ‘आराधना’ छे.

(८) ‘मार्ग’—जेवी रीते मार्ग पथिकने नगरमां पडोंग्राडी दे छे, जेज प्रमाणे
आवश्यक पणु तेना आराधक लुवने मोक्ष रूप नगरमां पडोंग्राडी दे छे, तेथी तेनुं
सावसुं नाम मार्ग छे. आवश्यक शब्दने शो अर्थ छे, ते छे सूत्रकार प्रकट करे
छे(समणेण सावणं य) श्रमण अने श्रावक द्वारा ते (जम्हा) जे कारणे (अहो
निशस्य अन्ते) दिवसने अन्ते अने रात्रिने अन्ते (अवस्स कायव्वं होइ) अवश्य

व्यर्थः, अवश्यकर्त्तव्यकर्म=अवश्यं करणीयं भवति, तस्मात् अस्य आवश्यकं नाम भवति । तदेतदावश्यकम्—‘आवस्सयं निक्खविस्सामि’ इति यत्प्रतिज्ञातं तदेवं नामादिभेदैरावश्यकं निक्षिप्य वर्णितम् । इत्थमनुयोगद्वारसूत्रे आवश्यक-
कार्थिकारः संपूर्ण ॥ सू० २९ ॥

‘सुयं निक्खविस्सामि’ इति प्रतिज्ञानुसारेण श्रुताधिकारः प्रारभ्यते—तत्र प्रथमं श्रुतस्वरूपं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं सुयं ? सुयं चउत्विहं पणत्तं, तं जहा-नाम-
सुयं, ठवणासुयं, दव्वसुयं, भावसुयं ॥सू० ३०॥

छाया--अथ किं तत् श्रुतम् ? श्रुतं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-नामश्रुतम्, स्थापनाश्रुतम्, द्रव्यश्रुतं, भावश्रुतम् ॥ सू० ३० ॥

टीका--‘से किं तं सुयं’ इत्यादि--व्याख्या निगदसिद्धा ॥सू० ३०॥

नामआवश्यक है । (से तं आवस्सयं) “आवस्सयं निक्खविस्सामि” इसप्रकार की जो सूत्रकार ने पहिले कहा है उसी के अनुसार नाम, स्थापना आदि भेदां द्वारा आवश्यकका न्यास करके वर्णन किया है । इस प्रकारसे अनुयोगद्वार सूत्र में आवश्यक का अधिकार समाप्त हुआ । सूत्र० २९ ॥

अब सूत्रकार “सुयं निक्खविस्सामि” इस कथन के अनुसार श्रुताधिकार प्रारंभ करते हैं—इसके पहिले वे श्रुत के स्वरूपको निरूपण करने के लिये “से किं तं सुयं, इत्यादि । सूत्र कहते हैं—

“से किं तं सुयं ?” इत्यादि । ॥ सूत्र ३० ॥

शब्दार्थः—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त ! श्रुतका क्या स्वरूप है?

उत्तर—(सुयं चउत्विहं पणत्तं) श्रुत चार प्रकारका कहा गया है

करणीय होय छे, (तम्हा)ते कारणे (आवस्सयं नाम) तेनुं नाम आवश्यक छे. (से तं “आवस्सयं ‘आवस्सयं निक्खविस्सामि’ आ प्रकारे सूत्रकारे ने पड़ेलां कहुं छे ते अनुसार नाम स्थापना आदि लेहो द्वारा आवश्यकनो न्यास (विलाग) करीने वणुन कथुं छे आ प्रकारे अनुयोगद्वार सूत्रनो आवश्यक अधिकार अही समाप्त थाय छे. ॥ २९ ॥

इसे सूत्रकार “सुयं निक्खविस्सामि” आ कथन अनुसार श्रुताधिकारनो प्रारंभ करे छे सोथी पड़ेलां तेओ श्रुतना स्वरूपतुं निरूपण करवा निमित्ते “से किं तं सुयं” इत्यादि सूत्र कहे छे—“से किं तं सुयं?” इत्यादि —

— शब्दार्थः—(से किं तं सुयं ?) शिष्य गुरुने ओवो प्रश्न पूछे छे के “हे भदन्त ! श्रुतनुं स्वरूप केवुं छे ?

तत्र नामश्रुतं निरूपयति-

मूलम्—से किं तं नामसुय ? नामसुयं जस्स णं जीवस्स वा जाव सुएत्ति नाम कज्जइ, ॥सू० ३१॥

छाया—अथ किं तद् नामश्रुतम्? नामश्रुत यस्य खलु जीवस्य वा यावत् श्रुतेति नाम क्रियते, तदेतत् नामश्रुतम् ॥सू० ३१॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा ॥ सू० ३१ ॥

अथ स्थापनाश्रुतं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं ठवणासुयं ? ठवणासुयं जण्णं कटुकम्मि वा जाव ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणासुय । नामठवणाणं को पइविसे-सो? नाम आवकहियं, ठवणा इत्तरिय वा होजा आवकहिया वा ।सू० ३२॥

(तं जहा) उसके वे चार प्रकार ये हैं—(नामसुयं ठवणासुयं-दब्बसुयं भावसुयं) नामश्रुत, स्थापनाश्रुत, द्रव्य त और भाव त । ॥ सूत्र ३० ॥

नाम श्रुतका क्या स्वरूप है इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—

‘से किं तं नाम सुय’ इत्यादि । ॥ सूत्र ३१ ॥

शब्दार्थः— हे भदंत ! नामश्रुत का क्या स्वरूप है ? उत्तर—(नामसुयं)

नाम श्रुतका स्वरूप इस प्रकार से है (जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जाव सुएत्ति नाम कज्जइ) जिस किसी जीव अथवा अजाव आदि का त ऐसा जो नाम रख लिया जाता है । इसकी व्याख्या नामावश्यक की तरह जाननी चाहिये । ॥ सूत्र ३१ ॥

उत्तर—(सुयं चउच्चिहं पण्णत्तं) श्रुत चार प्रकारतुं कहुं छे (तंजहा) ते चार प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(नाम सुयं, ठवणासुयं, दब्बसुयं, भावसुयं, (१) नाम श्रुत (२) स्थापनाश्रुत, (३) द्रव्यश्रुत, अने (४) भावश्रुत । ॥ सू० ३० ॥

इवे सूत्रकार नामश्रुतना स्वरूपतुं निरूपण करे छे—

“से किं तं नामसुयं?” इत्यादि—

शब्दार्थ—शिष्य गुरुने ओवे प्रश्न पूछे छे के छे लगवन् ! नामश्रुततुं केतुं स्वरूप छे ?

उत्तर—(नामसुयं) नामश्रुततुं स्वरूप आ प्रकारतुं छे—(जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जाव सुएत्ति नाम कज्जइ) ने कोछे एव अथवा अएव आदितुं “ त” ओवुं ने नाम राभवामां आवे छे तेने नाम त कहे छे. आ नामश्रुतनी व्याख्या । म आवश्यकनी व्याख्या अनुसार ज समए लेवी. ॥ सू० ३१ ॥

छाया—अथ किं तत् स्थापनाश्रुतम् ? स्थापनाश्रुतं यावत्खलु काष्ठकर्मणि वा यावत् स्थापना स्थाप्यते, तदेतत् स्थापनाश्रुतम् । नामस्थापनयोः कःप्रति विशेषः ? नाम यावत्कथिकम्, स्थापना इत्वरिका वा भवेत्, यावत्कथिका वा ॥ सू० ३२ ॥

टोका—‘से किं तं ठवणासु ’ इत्यादि—व्याख्या प्राग्वत् ॥ सू० ३२ ॥
द्रव्यश्रुतं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं द्रव्यसुयं ? द्रव्यसुयं दुविहं पणत्तं, तं जहा
—आगमओ य नो आगमओ य ॥ सू० ३३ ॥

छाया—अथ किं तद् द्रव्यश्रुतम् ? द्रव्यश्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
आगमतश्च नो आगमतश्च ॥ सू० ३३ ॥

स्थापना श्रुत का स्वरूप क्या है इत्यादिवा सूत्रकार निरूपण करते हैं—
“से किं तं” इत्यादि । ॥ सूत्र ३२ ॥

शब्दार्थः—से(किं तं)हे भदन्त ! स्थापनाश्रुत का क्या स्वरूप है ?

उत्तरः—(ठवणासुयं) स्थापनाश्रुत का स्वरूप इस प्रकार से है (जणं) जो (कट्टकम्मे वा जाव ठवणाठविज्जइ) काष्ठ आदि में “रह त है” इस प्रकार की जो कल्पना या आरोप किया जाता है (से तं ठवणासुयं) वह स्थापना श्रुत है। नाम ठवणाणं को पइविसेसो) नाम और स्थापना में क्या अन्तर है ?

उत्तरः—(नाम आवकहियं या ठवणा इत्तरिया वा होज्जा) नाम यावत्कथिक होता है और स्थापना यावत्कथिक/और इत्वरिक दोनों प्रकार की होती है। इसकी व्याख्या बारहवें सूत्र की तरह जाननी चाहिये । ॥ सूत्र ३२ ॥

इवे सूत्रकार स्थापना श्रुतना स्वरूपनुं निरूपणुं करे छे ...

“से किं तं ठवणासुयं?” इत्यादि—

शब्दार्थः—(से किं तं) इत्यादि—शिष्य गुरुने अवेो प्रश्न पूछे छे डे डे लगवन् ! स्थापनाश्रुतनुं डेवुं स्वरूप छे ? (कट्टकम्मे वा जाव ठवणा ठविज्जइ) काष्ठ आदिमा “आ श्रुत छे” आ प्रकारनी जे कल्पना अथवा आरोप करवामां आवे छे (से तं ठवणासुयं तेने ‘स्थापनाश्रुत’ डडे छे (नाम ठवणाणं को पइविसेसो) डे लगवन् ! नाम अने स्थापना वर्ये शेो तक्षवत छे ?

उत्तर—(नाम आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होज्जा) नाम यावत्कथिक डोय छे. अने स्थापना यावत्कथिक अने इत्वरिक, आ अने प्रकारनी डोय छे. आ सूत्रनुं विशेष विवेचन तथा आ सूत्रनेो लायार्थं धारमां सूत्रमां (स्थापना आव-शक्यं सूत्रमां) डह्या अनुसार समजवेो. ॥ सू० ३२ ॥

टीका—‘से किं तं द्रव्यसुयं’ इत्यादि ।

व्याख्या प्राग्वत् ॥ सू० ३३ ॥

सूत्र—आगमतो द्रव्यश्रुतं निरूपयति—

मूलम्—‘से किं तं आगमओ द्रव्यसुयं ? आगमओ द्रव्यसुयं जस्स णं सुएत्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं जाव णो अणुप्पेहाए कम्हा ? अणुवओगो द्रव्यमिति कट्टे, नेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं द्रव्यसुयं जाव कम्हा ? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ । से तं आगमओ द्रव्यसुयं ॥सू० ३४॥

छाया—अथ किं तदागतो द्रव्यश्रुतम्, आगमतो द्रव्यश्रुतं—यस्य खलु भवेति पदं शिक्षितं स्थितं जितं यावत् नो अनुप्रेक्षया, कस्मात् ? अनुपयोगो

शब्दार्थ—(से किं तं) हे भदन्त ! द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(द्रव्यसुयं दुविहं पणत्तं) द्रव्यश्रुत दो प्रकारका कहा गया है । (तंजहा) उसके दो प्रकार ये हैं—(आगमओ य नोआगमओ य) ? आगम को आश्रित कर के द्रव्यश्रुत होना है और दूसरा नोआगमको आश्रित करके द्रव्यश्रुत होता है । इसकी व्याख्या पहिले की तरह जाननी चाहिये ॥सूत्र ३३॥

अब सूत्रकार आगम की अपेक्षा कर के द्रव्यश्रुतका निरूपण करते हैं—

‘से किं तं आगमओ द्रव्यसुयं’ इत्यादि ॥ सूत्र ३४ ॥

शब्दार्थ—(से किं तं) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त । आगम का आश्रय करके जो द्रव्यश्रुत होता है उसका क्या स्वरूप है ?

इसे सूत्रकार द्रव्यश्रुतना स्वरूपत्वं निरूपणुं करे छे—

‘से किं तं द्रव्यसुयं ?’ इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं द्रव्यसुयं?) हे भगवन् ! द्रव्यश्रुतत्वं केवुं स्वरूप कथं छे ?

उत्तर—(द्रव्यसुयं दुविहं पणत्तं) द्रव्यश्रुतना दो प्रकार कथा छे. (तंजहा) ते दो प्रकारे नीचे प्रमाणे छे (आगमओ य नोआगमओय) (१) आगमने आश्रित करीने द्रव्यश्रुत होय छे, अने (२) नोआगमने आश्रित करीने द्रव्यश्रुत होय छे. तेनी व्याख्या आवश्यक सूत्रमां आगण कथा प्रमाणे समजवी. ॥ सू० ३३ ॥

इसे सूत्रकार आगमने आश्रित के द्रव्यश्रुत छे तेनुं नीचे प्रमाणे निरूपणुं करे छे—‘से किं तं आगमओ द्रव्यसुयं’ इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं आगमओ द्रव्यसुयं?) शिष्य गुरुने जेवो प्रश्न पूछे छे उ—हे भगवन् ! आगमने आश्रय करीने के द्रव्यश्रुत होय छे, ते द्रव्यश्रुतत्वं केवुं स्वरूप छे ?

દ્રવ્યમિતિ કૃત્વા, નૈગમસ્ય સ્વલુ એકોઽનુપયુક્ત આગમત એકં દ્રવ્યશ્રુતં યાવત્
કસ્માત્ ? યદિ જ્ઞાયકઃ અનુપયુક્તો ન ભવતિ । તદેતદાગમતો દ્રવ્યશ્રુતમ્ । સૂ૦ ૩૪।

ટીકા—‘સે કિં તં આગમઓ દ્વસુયં’ इत्यादि । व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ३४॥
ઉક.માગમતો દ્રવ્યશ્રુતમ્ । અથ નો આગમતો દ્રવ્યશ્રુતમાહ—

મૂલમ્—સે કિં તં નો આગમઓ દ્વસુયં ? નો આગમઓ
દ્વસુયં તિવિહ પળણત્તં, તં જહા—જાણયસરીરદ્વસુયં, ભવિય-
સરીરદ્વસુયં, જાણયસરીર—ભવિયસરીરવઙ્ગરિત્તં દ્વસુયં । સૂ૦ ૩૫।

ઉત્તર:—(આગમઓ દ્વસુયં) આગમવા આશ્રય કર કે દ્રવ્યશ્રુત કા સ્વરૂપ
હસ પ્રકાર સે હૈ—(જસ્સ ણં સુણત્તિ પયં સિવિસ્વયં ઠિયં જિયં જાવ ણો અણુપ્પેહાણ)
જિસ સાધુ આદિ કો શ્રુતપદ શિક્ષિત હૈ સ્થિત હૈ જિત હૈ । યાત્પદ સે મિત
હૈ, પરિજિત હૈ નામસમ હૈ, ઘોપસમ હૈ, અહીનાક્ષર હૈ, અનત્યક્ષર હૈ, અવ્યાવિદ્ધાક્ષર
(ઉલટ પુલટ પનેસે રહિત) હૈ, અસ્વલિત હૈ, અમિલિત હૈ, અવ્યત્યામ્નેહિત હૈ,
પરિપૂર્ણ ઘોષવાલા હૈ, ઘઠોઠવિપ્રમુક્ત હૈ, ઓર શુરુવાચનોપગત હૈ । ઇસતરહ
વહ સાધુ આદિ વાચના સે પૃચ્છનાસે પરિવર્તના (આવૃત્તિ)સે ઓર ધર્મકથા સે ઉસમેં
વર્તમાન હૈ પરન્તુ ઉપયોગ સે વર્તમાન નહીં હૈ, અતઃ ઉપયોગ સે રહિત હં ને કે
કારણ વહ સાધુ આગમ કો આશ્રિત કર કે દ્રવ્યશ્રુત માના ગયા હૈ । (કમ્હા)
ક્યોંકિ (અણુવઓગો દ્વમિતિ કહું) એસા આગમ વા વચન હૈ કિ જો
ઉપયોગ સે રહિત હોતા હૈ વહ દ્રવ્ય માના જાતા હૈ । ઇસકી વ્યાખ્યા ૧૪ વે
સૂત્ર કે સમાન જાનની ચાહિયે । સૂત્ર ॥ ૩૪ ॥

ઉત્તર—(આગમઓ દ્વસુયં) આગમને આશ્રય કરીને દ્રવ્યશ્રુતમ્ આ
પ્રકારનું સ્વરૂપ છે—

(જસ્સ ણં સુણત્તિ પયં સિવિસ્વયં ઠિયં જિયં જાવ ણો અણુપ્પેહાણ) જે
સાધુ આદિને શ્રુતપદ શિક્ષિત છે, સ્થિત છે, જિત છે, મિત છે, પરિજિત છે,
નામસમ છે, ઘોષસમ છે, અહીનાક્ષર છે, અનત્યક્ષર છે, અવ્યાવિદ્ધાક્ષર અસ્વલિત
છે, અમિલિત છે, અવ્યત્યામ્નેહિત છે, પરિવષ્ટિ ઘોષયુક્ત છે, ઘઠોઠ વિપ્રમુક્ત છે,
અને શુરુવાચનોપગત છે, આ રીતે તે સાધુ આદિ વાચનાથી, પરિવર્તનાથી પૃચ્છ-
નાથી, પરિવર્તનાથી અને ધર્મકથાથી તેમાં વર્તમાન છે, પરન્તુ ઉપયોગ પરિણામથી
તેમાં વર્તમાન (પ્રવૃત્ત) નથી, અને તેથી ઉપયોગથી રહિત હોવાને કારણે તે સાધુને
આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યશ્રુત માનવામાં આવે છે, (કમ્હા) કારણ કે (અણુવઓગો
દ્વમિતિ કહું) આગમનું એવું વચન છે કે જે ઉપયોગથી રહિત હોય છે—
અનુપયુક્ત પરિણામવાળો હોય છે તેને દ્રવ્યરૂપ માનવો જોઈએ. આ સૂત્રમાં
વપરાયેલાં પદોનો ભાવાર્થ ૧૪ માં સૂત્રમાં આપ્યા પ્રમાણે સમજવો. ॥ સૂ૦ ૩૪ ॥

छाया—अथ किं तद् नो आगमतो द्रव्यश्रुतम् ? नो आगमतो द्रव्यश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा—ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतम्, भव्यशरीरद्रव्यश्रुतम्, ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम् ॥सू० ३५॥

टीका—‘से किं तं नोआगमतो द्रव्यश्रुतम्’ इत्यादि । व्याख्या पूर्ववत् ॥सू० ३५॥
अथ ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतमाह—

मूलम्—से किं तं जाणयसरीरद्रव्यश्रुतम् ? जाणयसरीरद्रव्यश्रुतं सुयत्तिपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्तदेहं तं चेव पुत्त्वभणियं भाणियत्वं जाव से तं जाणयसरीरद्रव्यश्रुतम् ॥ सू० ३६ ॥

अब सूत्रकार नोआगम को आश्रित करके द्रव्यश्रुत का कथन करते हैं—

“से किं तं नोआगमतो द्रव्यश्रुतम्” इत्यादि । सूत्र ३५ ॥

शब्दार्थः—(से किं तं) हे भदन्त ! नोआगम को आश्रित करके द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ? (नोआगमतो द्रव्यश्रुतम्) नोआगम को आश्रित करके द्रव्यश्रुत (त्रिविधं पणत्तं) ३ तीन प्रकार का कहा है । (तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(जाणयसरीरद्रव्यश्रुतम्, भव्यशरीरद्रव्यश्रुतम्, जाणयसरीर—भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम्) ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत, भव्यशरीरद्रव्यश्रुत, और ज्ञायकशरीरभव्यशरीर इन दोनों से व्यतिरिक्तद्रव्यश्रुत । इस सूत्र की व्याख्या पहिले कहे हुए १६ वे सूत्र की व्याख्या के अनुसार जाननी चाहिये । ॥ सू० ३५ ॥

इवे सूत्रकार नोआगमने आश्रित करीने द्रव्यश्रुतं निरूपय कश्चे छे—

“से किं तं नोआगमतो द्रव्यश्रुतम्?” ध्यातव्यं—

शब्दार्थः—(से किं तं) इत्यादि शिष्य शुरुने अवे प्रश्न पूछे के छे लक्ष्णम् !
नोआगमने आश्रित करीने द्रव्यश्रुतं स्वरूपं केषुं छे ?

उत्तर—(नोआगमतो द्रव्यश्रुतं त्रिविधं पणत्तं) नोआगमने आश्रित करीने द्रव्यश्रुतना त्रय प्रकार क्ख्या ते. (तं जहा) ते त्रय प्रकारे नीचे प्रमाणे छे (जाणयसरीरद्रव्यश्रुतम्, भव्यशरीरद्रव्यश्रुतम्, जाणयसरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम्) (१) ज्ञायक शरीर द्रव्यश्रुत, (२) भव्यशरीर द्रव्यश्रुत, अने (३) ज्ञायक शरीर अने भव्यशरीरही लक्षण अवे द्रव्यश्रुत आ सूत्रनी व्याख्या आगण १६ मां सूत्रनी ने व्याख्या आपवामा आवी छे, ते व्याख्या प्रमाणे समजवी. ॥ सू० ३५ ॥

छाया--अथ किं तद् ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतम् ? ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत-
श्रुतेति पदार्थाधिकारज्ञायकस्य यत् शरीरकं व्यपगतच्युतच्यावितत्यक्तदेहं तदेव
पूर्वभणितं भणितव्यं यावत्, तदेतत् ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतम् ॥सू० ३६॥

टीका--'से किं तं जाणयसरीरद्वसुयं' इत्यादि । व्याख्या पूर्ववत् ॥सू० ३६॥

ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है--इस बात को सूत्रकार स्पष्ट
करते हैं--"से किं तं जाणयसरीरद्वसुयं" इत्यादि ॥सू० ३६॥

शब्दार्थ--(से किं तं जाणयसरीरद्वसुयं) हे भदन्त (ज्ञायकशरीर द्रव्य
श्रुत का क्या स्वरूप है?

उत्तर--(सुयत्तिपयत्थाहिगारजाणयस्स) श्रुत शब्द वाच्य आगम के
अर्थ रूप अधिकार के ज्ञाता का ऐसा (सरीरय) शरीर (जं) जो (व्यपगतच्यु
चावियच्चत्तदेहं) व्यपगत-चैतन्य पर्याय से रहित हो चुका है, च्युत--दश प्रकार
के प्राणों से परिवर्जित हो गया है, च्यावित--बलिष्ठ आयुक्षय के कारणों से
प्राण रहित हो गया है । त्यक्तदेह आहार परिणत जनित वृद्धि जिससे
सर्वथा निकल चुकी है (जाणयसरीरद्वसुयं) ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुत है । (तं
चेव पुत्रभणियं) यहाँ पर १७ वे सूत्र कथित इस विषय संबन्धी इस व्यपगत
आदि पाठ से आगे (जाव से तं जाणयसरीरद्वसुयं) ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुत
का पाठ (भाणियव्वं) ग्रहण करलेना चाहिये । इसकी (व्याख्या १७ वे सूत्र
में कही गई है) ॥ सूत्र ३६ ॥

इसे सूत्रकार ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुतना स्वरूपं निरूपण करे छे--

"से किं तं जाणयसरीरद्वसुयं" इत्यादि--

शब्दार्थ--(से किं तं जाणयसरीरद्वसुयं?) शिष्य गुरुने जेवा प्रश्न
पूछे छे के छे लगवन्! ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुतं स्वरूपं केवु छे?

उत्तर--(सुयत्ति पयत्थाहिगारजाणयस्स) श्रुत शब्दना वाचक जेवा आग-
मना अर्थरूप अधिकारना ज्ञातानुं (सरीरय) शरीर (जं) के जे (व्यपगतच्यु
चावियच्चत्तदेहं) व्यपगत अथ युक्त्युं छे चैतन्य पर्यायथी रहित अथ युक्त्युं छे,
च्युत अथ युक्त्युं छे इस प्रकारना प्राणोथी रहित अथ युक्त्युं छे, च्यावित अथ
युक्त्युं छे, बलिष्ठ आयुक्षयना कारणोथी प्राणरहित अथ युक्त्युं छे, त्यक्तदेह अथ
युक्त्युं छे आहार परिणति जनित वृद्धि जेमांथी सर्वथा नीहणी चुकी छे
(जाणयसरीरद्वसुयं) जेवां शरीरने 'ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुत' रूप कहेवाभां आवे
छे. (तं चेव पुत्रं भणियं) अही १७भां सूत्रभां कथित आ विषय संबन्धी आ
व्यपगत आदि पदथी श्रु करीने (जाव से तं जाणयसरीरद्वसुयं) ज्ञायक-
शरीर द्रव्यश्रुत पर्यान्तने पाठ (भाणियव्वं) अहणु करवे जेधजे. तेनी व्याख्या
१७भां सूत्रनी व्याख्या प्रमाणे समजवी जेधजे. ॥ सू० ३६ ॥

अथ भव्यश्रुतं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं भवियसरीरद्वयसुयं ? भवियसरीरद्वय-
सुयं जे जीवे जोणी जम्मण निकखंते जहा दव्वावस्सए तहा भाणि-
यव्वं जाव, से तं भवियसरीरद्वयसुयं ॥ सू० ३७ ॥

छाया—अथ किं तद् भव्यशरीरद्रव्यश्रुतम् ? भव्यसरीरद्रव्यश्रुतं यो
जीवो योनिजन्मनिष्क्रान्तो यथा द्रव्यावश्यकं तथा भणितव्यं यावत् तदेतद् भव्य-
शरीरद्रव्यश्रुतम् ॥ सू० ३७ ॥

अब सूत्रकार भव्यशरीर द्रव्यश्रुत का निरूपण करते हैं—

“से किं तं भवियसरीरद्वयसुयं” इत्यादि ॥ सूत्र ३७ ॥

शब्दार्थः—(से) हे भदन्त ! (तं) पूर्वप्रक्रान्त (भवियसरीरद्वयसुयं) भव्य-
शरीरद्रव्यश्रुत का (किं) क्या स्वरूप है ?

उत्तरः—(जे जीवे जो णीजम्मणनिकखंते) जो जीव उत्पत्तिस्थानरूप
योनि से अपना समय पूर्ण करके निकला है—गर्भपान से उत्पन्न नहीं हुआ है
किन्तु जन्मा है ऐसा वह जीव उस प्राप्त शरीर से जिनापदिष्टभाव के अनु-
सार श्रुत शब्द वाच्य आगम के अर्थ को भविष्य में लीखेगा—वर्तमानकाल में
लीख नहीं रहा है ऐसा शरीर भव्यशरीर द्रव्यश्रुत है। (जहा दव्वावस्सए तहा
भाणियव्वं जाव से तं भवियसरीरद्वयसुयं) इस विषय से लगता हुआ वर्णन
जिस प्रकार से द्रव्यावश्यक के वर्णन में किया गया है उसी प्रकारका वर्णन
यहाँ भी समझना चाहिये। और यह वर्णन यह “भव्यशरीर द्रव्यश्रुत है”

इवे सूत्रकार लव्यशरीर द्रव्यश्रुतनुं निरूपयितुमाह—

“से किं तं भवियसरीरद्वयसुयं” इत्यादि

शब्दार्थः—(से) शिष्य गुरुने जेवो प्रश्न पूछे छे के (तं) पूर्वप्रस्तुत विषय-
रूप (भवियसरीरद्वयसुयं) लव्यशरीरद्रव्यश्रुतनुं (किं) केवुं स्वरूप छे ?

उत्तर (जे जीवे जोणीजम्मणनिकखंते) जे एव उत्पत्ति स्थानरूप योनि-
मांथी पोतानो समय (गर्भमां रडेवानो समय) पूरो करीने नीकल्यो छे गर्भपा-
तथी उत्पन्न थया नथी जेवो ते एव ते प्राप्त शरीर वडे वर्तमानकाले श्रुत
शब्दवाच्य आगमना अर्थने लीखी रह्यो नथी पणु लविष्यमां आगमना अर्थने
लीखवानो छे. जेवो ते एवना शरीरने लव्यशरीर द्रव्यश्रुत रूप गणवामां आवे
छे. (जहा दव्वावस्सए तहा भाणियव्वं जाव से तं भवियसरीरद्वयसुयं) १८मां
सूत्रमां द्रव्यावश्यकता विषयने अनुलक्षीने जेवुं वर्णन करवामां आण्यु छे. जेवुं
वर्णन अहीं पणु अहणु करवु जेधये. “तेने लव्यशरीर द्रव्यश्रुत कहे छे” आ

टीका--'से किं तं भवियसरीरद्वयसुयं' इत्यादि । व्याख्या पूर्ववत् । सू० ३७
अथ-ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतमाह--

मूलम्--से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्तं द्रव्यसुयं ?
जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्तं द्रव्यसुयं पञ्चविहं पणत्तं ।

अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्तं द्रव्यसुयं पञ्चविहं
पणत्तं, तं जहा-अंडयं १ वोंडयं २ कीडयं ३ वालयं ४ वागयं ५ ।
(तत्थ) अंडयं हंसगवभादि वोंडयं कप्पासमाइ । कीडयं पञ्चविहं
पणत्तं, तजहा-पट्टे मलए अंसुए चीणंसुए, किमिरागे । वालयं
पञ्चविहं पणत्तं, तं जहा-उण्णिए, उट्टिए, मियलोमिए, कोतवे,
किट्टिसे । वागयं सणमाइ । से तं जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्तं
द्रव्यसुयं । से तं नो आगमओ द्रव्यसुयं । से तं द्रव्यसुयं ॥ सू० ३८ ॥

छाया--अथ किं तद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम् ? ज्ञायक-
शरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतं पत्रकपुस्तकलिखितम् ।

यहाँ तक जानना चाहिये । इसकी व्याख्या १४ वें सूत्र के अनुसार ही
जाननी चाहिये । ॥ सूत्र ३७ ॥

अब सूत्रकार ज्ञायकशरीरभव्यशरीर इन दोनों से भिन्न जो तद्व्यति-
रिक्त द्रव्यश्रुत हैं इसका स्वरूप कहते हैं--

“से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्तं द्रव्यसुयं” इत्यादि ॥ सूत्र ३८ ॥

शब्दार्थः--(से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्तं द्रव्यसुयं) शिष्य

सूत्रपाठ पर्यन्तत्वं 'लव्यशरीर द्रव्यावश्यकं' सूत्रतुं समस्त कथन अर्द्धीं पणु अडणु
करुणुं लेधये तेनी व्याख्या पणु १८मां सूत्रनी व्याख्या प्रमाणे न समञ्जसी ॥ सू० ३७ ॥

ज्ञायक शरीर अने लव्यशरीर आ णन्नेथी भिन्न अणुं न्ने 'तद्व्यतिरिक्त
द्रव्यश्रुत' छे तेना स्वरूपतुं उवे सूत्रकार निरूपणु करे छे

“से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्तं द्रव्यसुयं” इत्यादि--

शब्दार्थः--(से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्तं द्रव्यसुयं ?) शिष्य

अथवा-ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यसूत्रं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-
अण्डजं, बोण्डजं, क्रीटजं, बालजं, बालफलम् । (तत्र) अण्डजं हंसगर्भादि, बोण्डजं
कर्पासादि, क्रीटजं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-पट्टं, मलयम्, अंशुकं, चीनां-
शुकं, कृमिरागम्, बालजं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्-तद्यथा और्णिकम् औष्ट्रिकम्, मृगलौ-
मिकम्, कौतवम्, किट्टिसम् । बालकलं शणादि । तदेतद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-
व्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम् । तदेतद् नोआगततो द्रव्यश्रुतम् । तदेतद् द्रव्यश्रुतम् ॥सू० ३८॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवहरितं
द्रव्यसुयं’ इति । अथ किं तद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम् ?
इति । उत्तरमाह—‘जाणयसरीरभवियसरीरवहरितं । द्रव्यसुयं’ इत्यादि । ज्ञायक-
शरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम्, पत्रकपुस्तकलिखितम्-पत्रकाणि=तलि-
पत्रादीनिच पुस्तकानि=पत्रसङ्घानरूपाणि च तेषु लिखितम् । यद्वा-‘पत्तयपोतयलिहियं’
इतिपाठस्य ‘पत्रकपोतकलिखितम्’ इतिच्छाया । एतन्न-पोतकानि=वस्त्राणि । पत्र-
केषु पुस्तकेषु वस्त्रकेषु च लिखितं ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुतम् ।

पूछता है कि हे भदन्त ! ज्ञायकशरीर और भव्यशरीर इन दोनों से भिन्न
जो द्रव्यश्रुत है उसका क्या स्वरूप है ?

उत्तरः—(पत्तयपोत्थयलिहियं जाणयसरीरभवियसरीरवहरितं द्रव्यसुयं)
ताडपत्रो और पत्रों के संघातरूप पुस्तकों में लिखा हुआ जो श्रुत हैं वह ज्ञायक
शरीर और भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत हैं ऐसा जानना चाहिये । सूत्रकार
(अहवा) अथवा—एतद् से कहते हैं “पत्तयपोतयलिहियं” इस पाठकी संस्कृत
छाया पत्रकपोतकलिखितं, ऐसी भी होती है इस पक्ष में पोतकशब्द का-
अर्थ वस्त्र है, और पत्रक शब्द का अर्थ पुस्तक । इस प्रकार वस्त्रों के ऊपर
और पुस्तकरूप कागजों के ऊपर लिखा गया श्रुत ज्ञायकशरीर और भव्यशरीर

श्रुतने अथवा प्रश्न पूछे छे डे डे लहन्त ! ज्ञायकशरीर अने लव्यशरीर, आ गन्नेभी
लिन्न अथुं ने द्रव्यश्रुत छे तेद्यं डेवुं स्वरूप छे ?

उत्तरः—(पत्तयपोत्थयलिहियं जाणयसरीरभवियसरीरवहरितं द्रव्यसुयं)
ताडपत्रो अने पत्रोना समूहइय पुस्तकोभां लथेलुं ने श्रुत छे तेने ज्ञायकशरीर अने
लव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत डहे छे. (अहवा) अथवा “पत्तयपोत्थयलिहियं”
आ सूत्रांशनी संस्कृत छायानी दृष्टिअे विचार करवाभां आवे तो आ सूत्रपाठने,
नीचे प्रमाणे अर्थ थशे—

“पोतक” अेटले वस्त्र, अने “पत्रक” अेटले पुस्तक आ रीते शब्दने अर्थ
करता द्रव्यश्रुतने नीचे प्रमाणे अर्थ पाणु थर्थ शके छे “वस्त्रो उपर अने पुस्तक
इय अगणे। पर लथेला श्रुतने ज्ञायकशरीर अने लव्यशरीरथी लिन्न अथुं द्रव्य-

પત્રકાદિલિખિતમ્ અતસ્ય ઉપયોગરહિતત્વાત્ દ્રવ્યત્વં વોધ્યમ્ । આગમો हि
 જ્ઞાનં, તસ્ય કારણમ્—આત્મા—દેહઃ શ્વદશ્ચૈતસ્રયં, તઃભાવાત્ તસ્ય નોઆગમત્વં
 વિજ્ઞયમ્, અપિ ચ—પત્રકપુસ્તકલિખિતસ્ય અચેતનત્વાદ્ જ્ઞાનરૂપત્ ।ભાવાચ્ચ નોઆગમ
 ત્વમ્ । इह 'सुय' इत्यस्यार्पत्वात् सूत्रमिति छायापक्षे प्राह—'अहदा' इत्यादि ।
 अथवा ज्ञायकशरीरभयशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यसूत्र पञ्चविधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—
 अण्डजम्?, घोण्डजम्?, कीटजम्?, बालजम्?, बालकलम्?,

તત્ર પઢચવિધદ્રવ્યસૂત્રમધ્યે પ્રથમં ભેદં પ્રરૂપયતિ—'અંડયં હંસગઘ્માદિ' इति।
 અણ્ડજં હંસગર્ભાદિ, इह हंसशब्देन चतुरिन्द्रियो जीवविशेषो गृह्यते, तस्य

સે વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યશ્રુત હૈ । પત્રક આદિ પર લિખે હુએ શ્રુત મેં ઉપયોગ સે
 રહિત હોને કે કારણ દ્રવ્યત્વ હૈ । આગમ નામ જ્ઞાન કા હૈ । ઇસ કે કારણ
 આત્મા, દેહ ઓર શ્વદ કારણભૂત હંતે હૈ । ઇનકા અભાવ હોને પર ઉસમે નોઆગમતા
 હૈ । અપિ ચ—પત્રક પુસ્તક આદિ મેં લિખિત શ્રુત મેં અચેતનતા હોને કે
 કારણ જ્ઞાનરૂપતા કા અભાવ હૈ ઇસલિયે મી ઉસમેં નોઆગમતા હૈ । તથા
 જબ "સુય" પદ કી છાયા 'સૂત્ર' એસી હોતી હૈ તવ ઉત્પ પક્ષ મેં વ્યા ઇસ
 કા અર્થ હોતા હૈ ઇસે (જાણકશરીરભવિયસરીરવદરિત્તં દ્રવ્યસુયં પંચવિહં
 પ્ણાત્ત) વે કહતે હૈ કિ જ્ઞાયક શરીર ઓર ભગશરીર ઇન સે ભિન્ન જો
 દ્રવ્યસૂત્ર હૈ વહ પાંચ પ્રકાર કા હૈ—(ત જહા) વે પ્રકાર વે હૈ (અંડયં, ૧
 વાંડયં, ૨, કીડયં, ૩, બાલયં, ૪, વાગયં, ૫,) અણ્ડજ ઘોણ્ડજ, કીટજ, બાલજ ઓર
 બાલકલ । (તત્થ) ઇન મેં (અણ્ડયં) અંડજ કા તાપય ઇસ પ્રકાર સે હૈ (હંસ

શ્રુત કહે છે." આગળ આદિ પર લખાયેલા શ્રુતમાં ઉપયોગથી રહિતતા હોવાને
 કારણે દ્રવ્યત્વ છે. જ્ઞાનને આગમ કહે છે તે આગમરૂપ જ્ઞાનમાં આત્મા; દેહ અને
 શ્વદ કારણભૂત અને છે. તેમનો જ્યાં અભાવ હોય ત્યાં આગમતાનો સદ્ભાવ હોતો
 નથી પણ નોઆગમતાનો સદ્ભાવ રહે છે. તાઉપત્ર પુસ્તક આદિમાં લખેલા શ્રુતમાં
 અચેતનતા હોવાથી જ્ઞાનરૂપતાનો અભાવ હોય છે, તે કારણે તે શ્રુતમાં નોઆગ-
 મતા રહેલી છે.

જ્યારે "સુયં" આ પદની સંસ્કૃત છાયા "સૂત્ર" 'સૂત્ર' થાય છે, ત્યારે
 તેનો શો અર્થ થાય છે તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે— (જાણકશરીરભવિયસરીર-
 વદરિત્તં દ્રવ્યસુયં પંચવિહં પ્ણાત્ત) તેઓ કહે છે કે જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યશ્રુત અને ભવિય-
 શરીર દ્રવ્યશ્રુતથી ભિન્ન એવું જે દ્રવ્યસૂત્ર ('દ્રવ્યસુય')ની સંસ્કૃત છાયા "દ્રવ્ય-
 સૂત્ર"ને આધારે આ પદ બન્યું છે છે તે પાંચ પ્રકારનું કહ્યું છે— (તંજહા)
 જે પ્રકારે નીચે પ્રમાણે છે—(અંડયં વાંડયં કીડયં વાગયં) (૧) અંડજ, (૨)
 વાંડજ, (૩) કીટજ, (૪) બાલજ અને (૫) વાલકલ (તત્થ અણ્ડયં હંસગઘ્માદિ)

गर्भः=तन्निर्मिता कोशिका 'कोथली' इति प्रसिद्धा तदुत्पन्नं सूत्रमण्डजमुच्यते, 'रेशमी' इति भाषाप्रसिद्धम् । आदिशब्दभ्रतुरिन्द्रियभेदं प्रदर्शयति । ननु यदि हंसगर्भोत्पन्नं सूत्रमण्डजमुच्यते तर्हि 'अंडयं हंसगर्भादि' इति सामानाधिकरण्यं नोपपद्यते इति चेदुच्यते, कारणे कार्योपचारात् हंसगर्भोत्पन्नं सूत्रमपि—हंसगर्भ इत्युच्यते इति नास्ति कोऽपि दोषः ॥१॥

अथ द्वितीयभेदं प्ररूपयति—'बोण्डयं कपासमाइ' इति । बोण्डजं कार्पासादि कार्पासनिष्पन्नं सूत्रं बोण्डजं-बोण्डं=कार्पासकोशः फलविशेषरूपस्तज्जातं गन्भादि) 'हंस' एक चतुरिन्द्रिय जीव विशेष होता है । वह एक कोथली बनाता है । इससे उत्पन्न जो सूत्र होता है उसका नाम अंडज है । इसे भाषा में रेशमी वस्त्र कहते हैं । हंसगर्भ में जो आदि शब्द है वह चौरिन्द्रियों के भेद का प्रदर्शक है ।

शंकाः— यदि हंसगर्भ से उत्पन्न सूत्र अंडज कहलाता है तो "अंडयं हंस गन्भादि" में समानाधिकरणता नहीं बन सकती है, सो उसका उत्तर इस प्रकार से है कि यहां पर कारण में कार्यका उपचार किया गया है । इसलिये हंस के गर्भ कोथली से उत्पन्न हुए सूत्रको भी हंसगर्भ के नाम से कह दिया है । इसतरह के कथन में कोई दोष नहीं है । (बोण्डयं कपासमाइ) कपास से बने हुए सूत्रका नाम बोण्डज है । बोण्ड नाम कपास के कोशका है । कपास का कोश एक प्रकारका फल होता है । जिसमें से कपास निकलता

पडलां तो अंडजने लावार्थं अतापवामां आवे छे. "हंस" अक चतुरिन्द्रिय एव-विशेषणुं नाम छे. (अडीं हंस नामनुं पक्षी गृहीत थयुं नथी पणु पतंगीया जेवुं कोष चतुरिन्द्रिय जंतु गृहीत थयुं छे.) ते अक कोशणी (कोश) अनावे छे तेभांथी जे सूत्र उत्पन्न थाय छे तेने 'अंडज' कडे छे. तेने शुजराती लावामां रेशमी वस्त्र कडे छे. 'हंसगर्भ' आ पहनी पाछण जे 'आदि' पद भूकवामां आंच्युं छे ते चौरिन्द्रियोना लेहनुं प्रदर्शक छे.

शंका—जे हंसगर्भभांथी उत्पन्न थयेला सूत्रने अंडज सूत्र कडेवामां आवे तो "अंडयं हंसगन्भादि"भां समानाधिकरणता धरित थती नथी.

उत्तर—अडीं कारणभां कार्यने उपचार करवामां आंच्ये छे. ते कारणे हंसना गर्भभांथी (कोशभांथी) उत्पन्न थयेला सूत्रने पणु अडीं हंसगर्भना नामे प्रकट करवामां आवेल छे. आ कारणे आ प्रकारना कथनभां कोष दोष नथी.

(बोण्डयं कपासमाइ) कपास अथवा इभांथी अनेला ओंडज छे. "ओंड" आ पद कपासना कोशरूप कालाने भाटे वचराय छे. आ कपासभांथी जे सूत्र अने छे तेने ओंडज कडे छे. (हिन्दीभां कालाने 'बोडियाँ' कडे छे) अडीं आदि पद

બોળજમુદ્ગતૈ । ઇહાપ્યાદિ શબ્દઃ પ્રકારવાચી । ફલસ્ય પ્રકારો ભેદઃ કર્પાસ
 ઇતિ વ્રોધયિતુમાદિ શબ્દઃ પ્રયુક્ત ઇતિ । અથાપિ કાર્પો કાર્યોન્વારાત કર્પાસ
 વોળજમિતિ સામાનાધિકરણ્યમ ।

અથ તૃતીયભેદમાહ—‘કીડયં પંચવિહં પળ્ણત્ત’ ઇતિ । કીટજં પઠ્ઠવિહં
 પ્રજ્ઞસમ્—કીટજં=કીટાત્ ચતુરિન્દ્રિયજીવવિશેષાજ્ઞાતં સૂત્રં પચ્ચપ્રકારકં પ્રજ્ઞસં=પટ્ટ-
 પિતમ્ । પઠ્ઠવિહંપ્રકારસ્ત્વમેષ સ્પષ્ટયતિ—‘તં જહા’ ઇત્યાદિ । તદ્વથા—પટ્ટં=પટ્ટસૂત્રમ્,
 પટ્ટસૂત્રોત્તિવિષયે, एवं વૃદ્ધસમ્પ્રદાયઃ—અરણ્યે નિકુન્જમધ્યે માંસચીડાદિરૂપામિપ-
 પુઞ્જાઃ સ્થાપ્યન્તે । તેષાં પુઞ્જાનાં પાર્શ્વતો નિમ્ના ઉન્નતાથ સાન્તરા વહવઃ

હૈ । ઇસ કર્પાસ કે વને હુએ સૂત્ર કો વોળજ કહા જાના હૈ । યહાં આદિ
 શબ્દ પ્રકારવાચી હૈ । કર્પાસ સે ફલકા ભેદ હૈ । યહ ભેદ કર્પાસ હૈ । ઇસ
 વાતકો સમજાને કે લિયે યહાં આદિ શબ્દ પ્રયુક્ત હુઆ હૈ । યહાં મી કારણ
 મેં કાર્ય કે ઉપચાર સે વોળજ સૂત્ર કો કર્પાસ વહ દિયા હૈ । ઇસલિયે સમા-
 નાધિકરણતા વનને મેં કોઈ દોષ નહીં હૈ । (કીડયં પંચવિહં પળ્ણત્ત) કીટજ
 સૂત્ર પાંચ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ । ચૌદ્રિય જીવ વિશેષ
 કા નામ કીટ હૈ । ઊસ સે ઉત્પન્ન જો સૂત્ર હોતા હૈ વહ પાંચ પ્રકાર
 કા હોતા હૈ । (તજહા) જૈસે—“પટ્ટે મલય અંસુણ ચીળંસુણ
 કિમિરાગે” પટ્ટ, મલય, અંશુક ચીનાંશુક ઓર કૃમિરાગ । પટ્ટ સે યહાં પટ્ટ-
 સૂત્ર લિયા ગયા હૈ । ઇસ પટ્ટસૂત્ર કી ઉત્પત્તિ કે વિષય મેં વૃદ્ધ પરમ્પરા સે
 એસી વાત સુનને મેં આતી હૈ—જંગલ મેં એક નિકુન્જ લતાપિહિત પ્રદેશ હોતા
 હૈ । ઇસ મેં માંસચીડાદિ રૂપ અમિપુન્જ રચ દિયે જાતે હૈ—

પ્રકારવાચક છે. કર્પાસ અને કાલા વચ્ચે ભેદ છે. કાલું એક પ્રકારના ફલ રૂપ છે
 જ્યારે કર્પાસ તેમાંથી નીકળતો વસ્તુરૂપ છે. આ વાતને સમજાવવાને માટે અહીં
 આદિ શબ્દ વપરાયો છે. અહીં પણ કહેવામાં આવેલ છે. તેથી સમાનાધિકરણતા ઘટિત
 થવામાં કોઈ દોષ રહેતો નથી.

(કીડયં પંચવિહં પળ્ણત્ત) કીટજ સૂત્ર પાંચ પ્રકારના હતાં છે. ચતુરિન્દ્રિય
 જીવવિશેષ (રેશમના કીડા આદિ જીવો)ને કીટ (કીડા કહે છે. તેની લાળ આદિ-
 માંથી બનેલું જે સૂત્ર હોય છે તેને કીટજ સૂત્ર કહે છે (તંજહા) કીટજ સૂત્રના
 પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(પટ્ટે, મલય, અંસુણ, ચીળંસુણ, કિમિરાગે) (૧) પટ્ટ,
 (૨) મલય, (૩) અંશુક, (૪) ચીનાંશુક અને (૫) કૃમિરાગ.

‘પટ્ટ’ આ પદથી અહીં પટ્ટસૂત્ર ગ્રહણ થયું છે. આ પટ્ટ સૂત્રની ઉત્પત્તિના
 વિષયમાં વૃદ્ધ પરમ્પરાની અપેક્ષાએ આ પ્રકારની વાત પ્રચલિત છે—જંગલમાં કોઈ
 એક નિકુન્જમાં (વૃક્ષ અને લતાઓના સમૂહથી યુક્ત સ્થાનને નિકુન્જ કહે છે)

कीलका निखन्यन्ते । मांसलोलुपाः पतङ्गकीटाः मांसचीडादिकमभितः समायान्ति । ते हि कीलकान्तरेषु इतस्ततः परिभ्रमन्तो लालाः प्रसृञ्चन्ति । ताश्च कीलकेषु लग्नाः परिगृह्यन्ते । ततस्ताभिः पट्टसूत्रं निर्मायते ॥१॥ मलयं=मलयदेशोत्पन्नं सूत्रम् ॥२॥ अंशुकम्=चीनदेशबहिर्भागे समुत्पन्नं सूत्रम् ॥३॥ चीनांशुकम्=चीनदेशाभ्यन्तरभागे समुत्पन्नं सूत्रम् ॥४॥ कृमिरागं=कृमिरागं=कृमिरागसूत्रम् । अत्र विषये एवं श्रयते-कस्मिंश्चिद्देशे मनुष्यादिशोणितं गृहीत्वा केनापि योगेन योजयित्वा पात्रे स्थाप्यते । तच्च सच्छिद्रपात्रेणाच्छाद्यते । तत्र-पुनः प्रभूताः कृमयः समुत्पद्यन्ते । ते पत्रनसेवनाभिलाषिणः पात्रच्छिद्रान्निर्गच्छन्ति आसन्नप्रदेशे पर्यट-

उन आमिष पुंजों को आजूबाजू में नीचीऊंची कुछ अन्तर से अनेक कीलें गाढ़ दी जाती हैं । वहां मांस के लोभी अनेक पतंग कीड़े उस मांस चीडादिक की चारों ओर आते हैं ।-और उन कीलों के आसपास घूम कर अपनी लारको छोड़ते हैं । उनकी लों पर लगी हुई उनकी लारोंको फिर लोग एकात्रत कर के उनसे पट्टसूत्र बनाते हैं । मलयदेश में उत्पन्न हुए सूत्रका नाम मलय है । चीनदेश के बाहर उत्पन्न हुए सूत्रका नाम अंशुक है । चीनदेश के भीतर बने हुए सूत्रका नाम चीनांशुक है । कृमिराग सूत्र के विषय में ऐसी बात सुनी जाती है कि किसी देश में मनुष्य आदिका रक्त ले कर लोग उसे पात्र में किसी भी तरह जमाते हैं । और फिर उस पात्र के मुँहको छिद्रोंवाले ढकने से ढक देते हैं । उसमें घीरे कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं । वह जब वायुसेवन की इच्छा से सच्छिद्रढक्कन से होकर

मांस आदिद्रव्य आमिषपुंज पाथरी देवामां आवे छे । त्यां ते मांसपुंजेनी आसपास थोडे थोडे अंतरे नीची ऊंची अनेक भीलीयो थोडी देवामां आवे छे । अनेक पतंगीयाओ (कीडाओ) मांसथी आकर्षित थधने ते भावानी ध्वंशथी ते मांसपुंजेनी आरे तरङ्ग आवे छे । अने मांसनुं लक्षणु करीने ते भीलाओनी आसपास लभीलभीने पोतानी लाग ते भीलाओ पर छोडे छे । ते भीलाओ पर ओकत्र थयेली लागने ओकत्र करी लधने बोडो । तेमांथी पट्टसूत्र बनावे छे ।

मलयदेशमां उत्पन्न थयेला सूत्रने मलयसूत्र कडे छे । चीन देशनी पहारना प्रदेशमां भनेला सूत्रने अंशुक कडे छे । चीन देशनी अंदरना भागोमां भनेला सूत्रने चीनांशुक कडे छे । कृमिरागसूत्र विषे आ प्रकारनी मान्यता प्रचलित छे । केध मनुष्य आदिना रक्तने ओकत्र करीने केध ओक पात्रमां जभावी दे छे । त्यांर पाद ते पात्र पर छिद्राणु आच्छादन ठांडी दे छे । तेमां धीरे धीरे कीटराशि उत्पन्न थध जय छे । ते हुवा भावानी ध्वंशथी ते सच्छिद्र आच्छानमांथी पहार नीकणीने

न्तस्ते लालजालं मुञ्चन्ति । तेन निष्पन्नं सूत्रं कृमिरागमुच्यते । तच्च रक्तवर्ण-
कृमिसमुत्पन्नत्वात् स्वाभाविकरक्तवर्णं भवति ।

अथ बालजसूत्ररूपं चतुर्थभेदं प्ररूपयति—‘बालयं’ इत्यादि । बालजं—बालाः
=रोमाणि बालेभ्यः=ऊरुणिकादि लोमभ्यो जातम् तत् पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्=प्ररूपितम्,
तद्यथा—और्णिकम्—ऊर्णाया इद्रमौर्णिकम् मेघ रोमनिष्पन्नम् ॥१॥ औष्ट्रिकम्—उष्ट्रा-
णामिदम्, औष्ट्रिकम्—उष्ट्रोमनिष्पन्नं सूत्रम् ॥२॥ मृगलौकिकम्—मृगरोमभिर्निष्पन्नं,
मृगलौकिकम् । मृगसदृशा मृगेभ्यो ह्रस्वाकारा आरण्यजीवविशेषा इह मृग
शब्देन विवक्षिताः, तेषां रोमभिर्निष्पन्नं सूत्रं मृगलौकिकम् ॥३॥ कौतवम्—उन्दु-
ररोमनिष्पन्नं सूत्रम् । ४॥ किट्टिसम्—औरुणिकादिसूत्रनिर्माणानन्तरं यदवशिष्टं

बाहर निकलते हैं तो वह आसपास के प्रदेश में घूमते हुए वहां अपनी लार
छोड़ते हैं । इस लार से जो सूत्र बनता है वह कृमिराग सूत्र कहलाता
है । इसकी रक्तवर्णवाले कृमियों से उत्पन्न होने के कारण वर्ण स्वाभावतः
लाल रहता है । (बालयं पंचविहं पण्णत्तं) भेद आदि के बालों से उत्पन्न
हुया सूत्रका नाम बालज सूत्र है । यह भी पांच प्रकारका है— (तंजहा)
जैसे—(उण्णिए) मेघ आदि के रोम से उत्पन्न हुआ सूत्र और्णिक (उट्टिए)
उष्ट्र के रोम से उत्पन्न हुआ सूत्र औष्ट्रिक (मियलोमिए) मृग के रोम से उत्पन्न
हुआ सूत्र मृगलौकिक (कोतवे) चूहे के रोम से उत्पन्न हुआ सूत्र कौतव,
(किट्टि से) और्णिक आदि सूत्रों के निर्माण करते समय जो बाल इधरउधर
गिर जाते हैं उसका नाम किट्टिस है । इस किट्टिस से जो सूत्र बनाया

ते पात्रनी आसपास लभवा भांडे छे अने ते पात्र पर पोतानी लाण छोड्या करे
छे. ते लाणने लोके अेकत्र करी ले छे, अने तेभांथी जे सूत्र बनाववामां आवे छे
तेने कृमिरागसूत्र कहे छे. लालवर्णवाणा कृमीआभांथी उत्पन्न थवाने धारणे तेना
रंगभां स्वाभाविक रताशने सदृलाव डोय छे.

(बालयं पंचविहं पण्णत्तं) घेटां आदिना वाणभांथी उत्पन्न थयेला सूत्रनुं
नाम ‘बालजसूत्र’ छे. तेना पण्ण पांच प्रकार छे (तंजहा) जेभ के उण्णिए (१)
औष्ट्रिक—घेटां आदिना वाणभांथी जनेला सूत्रने औष्ट्रिक (उत्तनुं जनेलुं) सूत्र कहे
छे. (उट्टिए) (२) औष्ट्रिक जेना वाणभांथी उत्पन्न थयेला सूत्रने ‘औष्ट्रिकसूत्र’
कहे छे (मियलोमिए) मृगना वाणभांथी जनावेला सूत्रने ‘मृगलौकिकसूत्र’ कहे छे.
(कोतवे) (४) उन्दरनी रंवाटीभांथी जनावेला सूत्रने कौतव सूत्र कहे छे. (किट्टिए)
(५) आरुणिक आदि सूत्रोनुं निर्माण करती वण्णते जे वाण उडीने आसतेम जध
पड्यां डोय छे ते वाणने ‘किट्टिस’ कहे छे. किट्टिसभांथी (वेस्टभांथी) जे सूत्र जना-

तत् किट्टिसं तन्निष्पन्नं सूत्रमपि किट्टिसमुच्यते । यद्वा-और्णिकादीनां सूत्राणां
द्वयादिसंयोगेन निष्पन्नं सूत्रं किट्टिसम् । अथवा-पूर्वोक्तातिरिक्ता येऽश्वाद्यो
जीवास्तल्लोमनिष्पन्नं सूत्रं किट्टिसम् । ५॥

अथ पञ्चमं भेदमाह='वागयं सणमाइ' इति । तालः लं शणादि-शणादि
निष्पन्नं सूत्रं वालकलम् ।

ननु श्रुतप्रकरणे प्रस्तुते किमर्थं सूत्रप्ररूपणम् इति चेदुच्यते, प्राकृते-'सुय'
शब्देन श्रुतस्य, आर्षत्वात्सूत्रस्य च ग्रहणात् समानशब्दप्रतिपाद्यत्वरूपसाम्यादि-
दमपि प्ररूपयतीति नास्ति कश्चिद्दोषः, प्रसंगतः शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थं सूत्रस्वरूपं

जाता से वह किट्टिस सूत्र से । अथवा और्णिक आदि सूत्रों को अब दुहरा
तिहरा- दो तारवाला तीरतारवाला आदि रूपमें करके जो सूत्र बनाया जाता है
उसका नाम किट्टिस है । अपना इन मेष आदि जीवों से अतिरिक्त जो अश्व
आदि जीव हैं, उनके रोमों से निष्पन्न हुआ सूत्र किट्टिस है । (वागयं सणमाइ)
सन आदि है जो सूत्र बनता है उसका नाम वालकल वल्वन सूत्र है ।

शंका-यहाँ तो श्रुत का प्रकरण प्रस्तुत है फिर किं कारण यहाँ
सूत्र की प्ररूपणा सूत्रकार ने की ?

उत्तर-आर्ष होने के कारण प्राकृत में "सुय" शब्द से श्रुत और
सूत्र इन दोनों का बोध होता है-क्योंकि इन दोनों अर्थों का प्रतिपादक
यह "सूत्र" शब्द है । अ : इन दोनों में समान शब्दद्वारा प्रतिपाद्यत्वरूप

ववाओं आवे छे तेने 'किट्टिससूत्र' कडे छे. अथवा और्णिक आदि सूत्रोने ज्योरे
दुपट, त्रिपट, चोपट, आदि रुपे वषुनि तेमांथी जे सूत्र बनाववामां आवे छे तेने
किट्टिस कडे छे. अथवा उपयुक्त घेरां, गोट आदि लुवे सिवायना अश्वदि
लुवेना वाणमांथी जनारेल सूत्रने किट्टिससूत्र कडे छे. (वागयं सणमाइ) ५)
शषु आदिनी छालमांथी जे सूत्र भने छे तेने वल्वन सूत्र कडे छे.

शंका-अहीं श्रुतने अधिकार आसी रह्यो छे. छतां अहीं सूत्रकारे सूत्रनी
प्ररूपणा सा भाटे करी छे ?

उत्तर-"सुय" आ प्राकृत पहने अर्थ श्रुत थाय छे, अने 'सुय' नी
संस्कृत छाया 'सूत्र' थाय छे आ वात तो आगण प्रकट थछ चुकी छे. आ रीते
'सुय' पह श्रुत अने सूत्र, आ अन्नेना अर्थनुं बोधक छे, कारण के "सुय"
शब्द आ अन्ने अर्थोनुं प्रतिपादन करे छे तेथी ते अन्नेमा समान शब्द द्वारा
प्रतिपाद्यत्वरूप समानता होवाने कारणे सूत्रकारे अहीं सूत्रनी पषु प्ररूपणा करी

પ્રરૂપિતમ્ અનેન—‘ભાવશ્રુતે પ્રક્રાન્તે, કથં નામશ્રુતાદિ પ્રરૂપણ ?’ મિતિસન્દેહા-
વસરોઽપિ નિરસ્તઃ, તસ્યાપિ શિષ્યબુદ્ધિવૈશદ્યફલત્વાત્ । કિંચ નામસ્થાપનદ્રવ્ય-
શ્રુતાનાં પ્રરૂપણમન્તરેણ ભાવશ્રુતસ્ય વિશિષ્ટજ્ઞાનં ન ભવતીત્યપિ બોધ્યમ્ ।

ઉક્તમર્થં નિગમન્નાહ—‘સે ત જાણયસરીરભવિયસરીરવહરિતં દવ્વસુય’
इति । तदेतद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरवतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम् । नो आगमतो द्रव्य-
श्रुतमपि सर्वं निरूपितमिति प्रकटितुमाह—‘से तं नोआगमओ दव्वसुयं’ इति । तदे-

સમાનના હોને કે કારણ સૂત્રકારને ઈસકી બી પ્રરૂપણા કર દી હૈ ।
અથવા પ્રસંગ લેકર શિષ્યબુદ્ધિ કી વિશદતા કે નિમિત્ત સૂત્રકારને
સૂત્રે કા સ્વરૂપ યહાં પ્રકટ કિયા હૈ । ઈમ વર્ણન
સે ઈસ સંદેહ કો બી કિં “યહાં પર તો ભાવશ્રુત કા પ્રકરણ ચલ રહા હૈ—
ફિર ઈસ પ્રકરણ મેં નામશ્રુત નામ આદિ કા પ્રરૂપણ વયોં કિયા” અવસર
નહીં મિલતા હૈ । ક્યોંકિ યહ વર્ણન બી શિષ્યજ્ઞેનાં કી બુદ્ધિ કી વિશદતા
કરને રૂપ ફલ સે સફલ હૈ । કિંચ-નામ સ્થાપના ઓર દ્રવ્યશ્રુત કી પ્રરૂ-
પણા કે વિના ભાવશ્રુત કા વિશિષ્ટજ્ઞાન નહીં હોના હૈ ઈસલિયે યહ નામ
શ્રુત આદિ કી પ્રરૂપણા કી ગઈ હૈ એસા બી જાનના ચાહિયે । અવ સૂત્રકાર
ઈસ અર્થ કા ઉપસંહાર કરતે હુએ કહતે હૈં કિં (સે તં જાણયસરીરભવિય-
સરીરવહરિતં દવ્વસુયં) ઈસ પ્રકાર યહ પૂર્વ પ્રક્રાન્ત જ્ઞાયકશરીર ઓર ભવ્ય-

તે કારણે આ પ્રકારની પ્રરૂપણા નિર્દોષ સમજવી જોઈએ. અથવા પ્રસંગ પ્રાપ્ત
આ સૂત્ર પદની પ્રરૂપણા કરવા પાછળ સૂત્રકારનો આ પ્રકારનો હેતુ પણ સંભવી
શકે છે—“સુય” પદની સંસ્કૃત છાયા “સૂત્ર” થાય છે. આ સંબંધને અનુલક્ષીને
શિષ્યબુદ્ધિની વિશદતાને નિમિત્તે પણ સૂત્રકારે અહીં સૂત્રના સ્વરૂપની પ્રરૂપણા
કરી છે. વળી અહીં એવી શંકા પણ અસ્થાને છે કે “અહીં તો દ્રવ્યશ્રુતની પ્રરૂપણા
થાલી રહી છે, છતાં આ પ્રકરણાં નામશ્રુત આદિની પ્રરૂપણા શા માટે કરવામાં
આવી છે?” આ શંકા ઉચિત ન ગણી શકાય, કારણ કે આ વર્ણન પણ શિષ્ય-
જ્ઞેનાંની બુદ્ધિની વિશદતાને નિમિત્તે જ કરવામાં આવ્યું છે અને તે પ્રકારની વિશ-
દતા કરવા રૂપ ફલથી સપન્ન છે. વળી નામશ્રુત, સ્થાપનાશ્રુત આદિની પ્રરૂપણા
કર્યા વિના દ્રવ્યશ્રુતનું વિશિષ્ટજ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકતું નથી. તે કારણે આ નામશ્રુત
આદિની પ્રરૂપણા અહીં કરવામાં આવી છે, એમ સમજવું જોઈએ.

હવે સૂત્રકાર આ વિષયનો ઉપસંહાર કરતાં કહે છે કે—

(સે તં જાણયસરીરભવિયસરીરવહરિતં દવ્વસુયં) જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્ય-
શરીરથી ભિન્ન એવા દ્રવ્યશ્રુતનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. (સે તં નોઆગમઓ

तद् नो आगमतो द्रव्यश्रुतम् । द्रव्यश्रुतमपि सर्वं निरूपितमिति सूचयितुमाह—
‘से तं द्रव्यसुयं’ इति । तदेतद् द्रव्यश्रुतं वर्णितम् ॥सू० ३८॥

अथ भावश्रुतं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं भावसुयं ? भावसुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहं
आगमओ य, नोआगमओ य ॥सू० ३९॥

छाया—अथ किं तद् भावश्रुतम् ? भावश्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आगम-
तश्च नोआगमतश्च ॥सू० ३९॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—से किं तं भावसुयं’ इति । अथ किं तद्
भावश्रुतम् ? इति, उत्तरमाह—भावसुयं’ इत्यादि । भावश्रुतम्—इह श्रुतपदाऽर्था-

शरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत है । (से तं नोआगमओ द्रव्यसुयं) इस तरह
नोआगम को आश्रित करके समस्तद्रव्यश्रुत का निरूपण हो चुका । (से तं
द्रव्यसुयं) यही सब द्रव्यश्रुत का स्वरूप है । ॥सूत्र ३८॥

अब सूत्रकार—भावश्रुत का वर्णन करते हैं—

“से किं तं भावसुयं” इत्यादि । सूत्र ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—(से किं तं) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त ! पूर्व प्रकान्त भाव-
श्रुत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(भावसुयं) भावश्रुत (दुविहं पण्णत्तं) दो प्रकार का कहा गया
है । श्रुत रूप पदार्थ के अनुभवं से युक्त जो साधु आदि जीव हैं वह भाव
शब्द का वाच्यार्थ है । भाव और श्रुत इन दोनों में अभेद के उपचार से भाव-
श्रुत साध्वादि को कहा गया है । इसतरह भाव जो है वही श्रुत बन जाता है ।

द्रव्यसुयं) आ रीते नोआगम द्रव्यश्रुतना त्रणे लेहोत्तुं निरूपणु अडीं समाप्तथाय
छे. (से तं द्रव्यसुयं) अने द्रव्यश्रुतना अधां लेहोत्तुं निरूपणु पणु अडीं पूरुं
थाय छे. ॥ सू० ३८ ॥

“से किं तं भावसुयं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं भावसुयं?) शिष्य गुरुने जेवो प्रश्न पूछे छे ते
लगवन् । पूर्वप्रस्तुत भावश्रुतनुं स्वरूप देवुं छे ?

उत्तर—(भावसुयं दुविहं पण्णत्तं) भावश्रुत जे प्रकारतुं कहुं छे. श्रुतरूप पदा-
र्थना अतुशवधी युक्त जे साधु आदि जेवो होय छे तेजो भाव शब्दना वाच्यार्थ
रूप छे भाव अने श्रुत आ गन्नेमां अलेहना उपचारनी अपेक्षाजे साधु आदिने
भावश्रुत कहेवामां आवेल छे. आ रीते जे भाव छे जेण श्रुत भनी जय छे.

नुभवयुक्तो यः साध्वादिः स भावः, श्रुतं च गृह्यते । भावश्रुतयोस्तद्वतो-
 क्ष अभेदीपचाराद् भावश्चासौ श्रुतं च भावश्रुतम् । यद्वा-अर्थानुभवरूपं भाव-
 माश्रित्य श्रुतं भावश्रुतम् । यद्वा-भावप्रधानं श्रुत-भावश्रुतम्, तत् द्विविध
 प्रथमम्, तं जहा' तद्यथा-आगमओ य नोआगमओ य आगमतश्च नोआगमतश्चेति॥३९॥

तत् प्रथमं भेदं निरूपयितुमाह--

मूलम्—से किं तं आगमओ भावसुयं ? आगमओ भावसुयं

जाणए उववत्ते । मे तं आगमओ भावसुयं सू० ४०॥

छाया—अथ किं तद् आगमतो भावश्रुतम् ? आगमतो भावश्रुतं ज्ञायक
 उपयुक्तः । तदेतत् आगमतो भावश्रुतम् । सू० ४० ।

टीका—शिष्यः पृच्छति—से किं त आगमओ भावसुयं' इति । अथ
 किं तत् आगमतो भावश्रुतम् ? उत्तरमाह—'आगमओ भावसुयं' इत्यादि । आग-

अथवा भावरूप श्रुत को आश्रित करके जो श्रुत होता है वह भावश्रुत है ।
 अथवा भाव प्रधान जो श्रुत है उसका नाम भावश्रुत है (तंजहा) उस भावश्रुत के
 दो प्रकार ये हैं—(आगमओ य, नोआगमओ य) ? एक आगम भावश्रुत
 और दूसरा नोआगम भावश्रुत । इनमें जो आगम को आश्रित करके भावश्रुत
 होता है उसका नाम आगम भावश्रुत और जो नोआगम आश्रित करके भाव-
 श्रुत होता है वह नोआगम भावश्रुत है । ॥ सूत्र ३९ ॥

अत्र सूत्रकार आगम भावश्रुत का स्वरूप बहते हैं—

“से किं तं आगमओ भावसुयं” इत्यादि । ॥ सूत्र ४० ॥

शब्दार्थः— (से किं तं आगमओ भावसुयं) हे भदन्त ! आगम को आश्रित
 करके जो भावश्रुत होता है उसका क्या स्वरूप है ?

अथवा भावश्रुतने आश्रित करीने ने श्रुत होय छे तेने भावश्रुत कडे छे.
 अथवा भावप्रधान ने श्रुत छे तेनुं नाम भावश्रुत छे. (तंजहा) ते भावश्रुतना
 नीचे प्रमाणे जे प्रकारे कहे छे—(आगमओ य, नोआगमओ य) (१) आगम
 भावश्रुत अने (२) नोआगम भावश्रुत आगमने आश्रित करीने ने भावश्रुत होय
 छे तेने आगम भावश्रुत कडे छे अने नोआगमने आश्रित करीने ने भावश्रुत
 होय छे तेने नोआगम भावश्रुत, कडे छे. ॥ सू. ३९ ॥

इवे सूत्रकार आगम भावश्रुतना स्वरूपतुं निरूपण करे छे—

“से किं तं आगमओ भावसुयं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने जेवा प्रश्न करे छे ते छे भगवन् ! (किं तं
 आगमओ भावसुयं?) आगमने आश्रित करीने ने भावश्रुत होय छे तेनुं
 स्वरूप केवुं छे ?

मतो भावश्रुतं ज्ञायक उपयुक्तः—श्रुतपदार्थज्ञः श्रुतपदार्थे उपयोगवांश्च यः साध्वादिः स आगमतः=आगममाश्रित्य भावश्रुतं भवति । अयं श्रुतोपयोगरूप-परिणामस्य सद्भावात् भावत्वम् । श्रुतार्थज्ञानस्य सद्भावादागमत्वं बोध्यम् । तदेतन्निगमयन्नाह—‘से तं आगमओ भावसुय’ इति । तदेतदागमतो भावश्रुतं वर्णितम्, इति ॥सू० ४०॥

अथ द्वितीयभेदमाह—

मूलम्—से किं तं नो आगमओ भावसुयं ? नोआगमओ भाव-सुयं दुविहं पणत्तं, तं जहा—लोइयं, लोयुत्तरियं च ॥सू० ४१॥

छाया—अथकिं तद् नोआगमतो भावश्रुतम् ? नोआगमतो भावश्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—लौकिकम्, लोकोत्तरिकं च ॥सू० ४१॥

उत्तर—(आगमओ भावसुयं जाणए उवउत्ते) आगम को आश्रित करके भावश्रुत का स्वरूप इस प्रकार से है—जो साध्वादि श्रुत का ज्ञाता है और उसमें उपयोग युक्त है । वह आगम को आश्रित करके भावश्रुत होता है । श्रुत में उपयोगरूप परिणाम के सद्भाव से उस साध्वादि में भावता है, और श्रुत के अर्थज्ञान के सद्भाव से आगमता है । इसतरह (से तं आगमओ भाव-सुयं) यह आगम को लेकर भावश्रुत का स्वरूप है । ॥ सूत्र ४० ॥

नोआगमकी अपेक्षा लेकर भावश्रुत का स्वरूप इस प्रकार से है—

“से किं तं” इत्यादि । ॥ सूत्र ४१ ॥

शब्दार्थः—(से) हे भदन्त ! नोआगमकी अपेक्षा लेकर भावश्रुत का क्या स्वरूप है ? (नोआगमओ भावसुयं दुविहं पणत्तं) नोआगम की अपेक्षा लेकर

उत्तर—(आगमओ भावसुयं जाणए उवउत्ते) आगमने आधारे लावश्रुतनुं आ प्रकारनुं स्वइप कहुं छे. जे साधु आदि एव श्रुतने ज्ञाता होय छे अने तेमां उपयोग परिणामथी युक्त होय छे, ते साधु आदिने आगमनी अपेक्षाओ लावश्रुत कहे छे श्रुतमां उपयोग रूप परिणामना सहलावने दीधे ते साधु आदिमां लावता होय छे श्रुतना अर्थज्ञानना सहलावने दीधे ते साधु आदिमां आगमतानो पणु सहलाव होय छे. आ प्रकारनुं (से तं आगमओ भावसुयं) आगमने आश्रित करीने लावश्रुतनुं स्वइप छे, अंभ समजवुं ॥ सू० ४० ॥

हुवे सूत्रकार नोआगम लावश्रुतना स्वइपनुं निइपणु करे छे.

“से किं तं नोआगमओ भावसुयं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने ओवो प्रश्न पूछे छे के हे लगवन्, नोआगमने आश्रय लधने लावश्रुतनुं केवुं स्वइप कहुं छे—

टीका— 'से किं तं नोआगमओ भावसुयं' इत्यादि ।

व्याख्या निगदसिद्धा सू० ४१

तत्राद्यभेदं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं लोइयं नोआगमओ भावसुयं ? लोइयं नोआगमओ भावसुयं जं इसं अण्णाणि एहिं मिच्छादिट्टि एहिं सच्छन्द बुद्धिमइविगप्पियं, तं जहा—भारहं रामायणं भीमासुरोक्तं कोटिल्लयं घोटयमुहं सगडभदियाओ कप्पासियं णागसुहुयं कणगसत्तरी वेसियं वइसेसियं बुद्धसासणं काविल लोगायइय सट्टित्तं माठरं पुराणं वागरणं नाडगाइं, अहवा वावत्तरिकलाओ चत्तारि वेया सगोवंगा । से तं लोइयं नो आगमओ भावसुयं ॥ सू० ४२ ॥

छाया—अथ किं तद् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम् ? लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतं यदिदमज्ञानिकैः मिथ्यादृष्टिकैः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम् तद्यथा—भारतं, रामायणं, भीमानुरोक्तं, कोटिल्लयकम्, घोटकगुखम् अकटमद्रका कार्पासिकम्, नामदुक्षम्, कनकसप्ततिः, वैशेशिदम्, बुद्ध्यात्मनम्, कपिलं, लोकायतिकम्, पण्डितन्त्रम्, माठरं पुराणं व्याकर नाटकानि । अथवा द्वासप्ततिकलाः, चत्वारोवेदाः साङ्गोपाङ्गाः । तदेतद् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम् ॥ सू० ४२ ॥

भावश्रुत दो प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) वे प्रकार ये हैं (लोइयं लोगुत्तरियं) १ एक लौकिक दूसरा लोकोत्तरिक । इस सूत्र की व्याख्या पहिले कही गई व्याख्या के अनुसार जाननी चाहिये । ॥ सू ४१ ॥

अब सूत्रकार नोआगमको आश्रित करके लौकिक भावश्रुत का कथन करते हैं—
“से किं तं” इत्यादि । सूत्र ४२ ॥

शब्दार्थः—(से) हे भदन्त ! (नोआगमओ) नोआगम को आश्रित करके (तं)

उत्तर—(नोआगमओ भावसुयं दुविह पणत्तं) नोआगमनी अपेक्षाये भावश्रुतना ये प्रकार क्हा छे (तंजहा), ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(लोइयं, लोगुत्तरियं) (१) लौकिक अने (२) लोकोत्तरिक आ सूत्रनी व्याख्या पडेलां आवश्यक सूत्रभां क्हा अनुसार समजवी ॥ सू. ४१ ॥

इवे सूत्रकार नोआगम लौकिक भावश्रुतना स्वश्रुतं निश्रुतं करे छे—
“से किं तं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने जेवा प्रश्न पूछे छे ते भगवन् ! (नोआग-

टीका—शिष्यः पृच्छति—से किं तं लेइयं नोआगमतो भावसुयं' इति। अथ किं तद् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम्? इति प्रश्नः। उत्तरमाह—'लेइयं नो आगमतो भावसुयं' इत्यादि। लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम्, यदिदं—वक्ष्यमाणं भारतादिकम्, अज्ञानिकैः=अल्पज्ञानिभिः—अत्राल्पार्थको नञ् शब्दः, सम्यग्दृष्टयोऽप्यज्ञानिका भवन्ति इत्यत आह—'मिच्छादिद्विहिं' इति। मिथ्यादृष्टिभिः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्—स्वच्छन्देन=सर्वज्ञोक्तार्थविरुद्धेन स्वाभिप्रायेण बुद्धिमतिभ्यां—बुद्धिः=ईहावग्रहरूपा, मतिः=अवायधारणारूपा, ताभ्यां विकल्पितम्—सर्वज्ञोक्तार्थाननुसारिबुद्धिमतिभ्यां विरचितमित्यर्थः। तद् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतं विज्ञेयम्। तदेव नामतो निर्दिशति 'तं जहा' इत्यादिना—तद्यथा—भारतं, रामायणं, भीमासुरोक्तं=भीमासुरेण रचितं शास्त्रम्, कौटिल्यकम्

पूर्वप्रक्रान्त (लेइयं भावसुयं) लौकिक भावश्रुत (किं) क्या है ?

उत्तरः—(नोआगमतो) नोआगमत को आश्रित करके (लेइयं भावसुयं) लौकिक भावश्रुत इस प्रकार से है—(जं इमं अण्णाणि एहिं मिच्छादिद्वि एहिं सच्छन्दबुद्धिमद्विगपियं) जो यह अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा अपनी स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचा गया है। वह लौकिक भावश्रुत है ऐसा जानना चाहिये। ईहा और अवग्रहरूप विचारधारा का नाम बुद्धि है। तथा अवाय और धारणरूप विचारधारा का नाम मति है। सर्वज्ञ उक्त अर्थसे विरुद्ध अभिप्रायवाली बुद्धि और मति से जिन शास्त्रोंका ग्रथन किया गया है वे सब लौकिक भावश्रुत है। (तंजहा) जैसे—(भारहं रामायणं भीमासुरुक्तं

मओ) नोआगमने आश्रित करीने (तं) पूर्वप्रस्तुत विषयइय (लेइयं भावसुयं?)—
दो।कक भावश्रुतनुं (कि) केवुं स्वइय छे ?

उत्तर—(नोआगमतो) नोआगमने आश्रित करीने (लेइयं भावसुयं) लौकिक भावश्रुतनुं आ प्रकारनुं स्वइय कहु छे।

(जं इमं अण्णाणि एहिं मिच्छादिद्वि एहिं सच्छन्दबुद्धिमद्विगपियं) अज्ञानी मिथ्यादृष्टियोंसे बडे पोतानी स्वच्छन्द बुद्धि अने मतिथी रयेला श्रुतने 'लौकिक भावश्रुत' कहे छे धडा अने अवग्रहइय विचारधारानुं नाम बुद्धि छे, तथा अवाय अने धारणाइय विचारधारानुं नाम मति छे, सर्वज्ञ केवणी लगवाने द्वारा रचित अर्थथी विरुद्ध अभिप्रायवाणी बुद्धि अने मतिथी जे शास्त्रोनुं ग्रथन (रचनइय ग्रथन) करायु छे, ते शास्त्रोने लौकिक भावश्रुत कहे छे (तंजहा) अंवां लौकिक भावश्रुतानां नाम नीचे प्रमाणे छे।

(भारहं रामायणं, भीमासुरुक्तं कौटिल्यं चोडयमुह) महाभारत, रामायण; भीमासुर रचित शास्त्र, कौटिल्य (याण्डक्य) रचित अर्थशास्त्र, चोडकमुण्ड

कौटिल्येन=चाणक्येन निर्मितम्-अर्थशास्त्रम् (घोटकमुखम्,) घोटकमुखनामकं शास्त्रम्,
 शकटभद्रिका:=एतन्नामकशास्त्राणि, कार्पासिकम्-कार्पासिकनामकं शास्त्रम्, नागसूक्ष्मम्,
 एतन्नामकं शास्त्रम्, कनकसप्ततिः-कनकरूपसतिनामकं शास्त्रम्, वैशिकम्-कामशास्त्र-
 प्रकरणविशेषः, वैशेषिकम्-काणाददर्शनम्, बुद्धशासनं-त्रिपिटकरूपम्, कविलम्-
 सांख्यशास्त्रम्, लोकायतिकं=चार्वाकदर्शनम्-सांख्यशास्त्रग्रन्थविशेषः, माठरं पुराणं
 व्याकरणं नाटकानि-माठरं=माठरनिर्मितशास्त्रविशेषः, पुराणं=व्याकरणं, नाटकानि=
 दृश्यकाव्यानि, बहुवचनान्तपदात्-श्रव्यकाव्यानि च । एतानि पूर्वोक्तानि भारता-
 दीनि लौकिकं नोआगततो भावश्रुतम् । प्रकारान्तरेण तदाह-‘अहवा’ इत्यादि ।
 अथवा-द्वासप्ततिकलाः-कलानि=लौकिकस्तुस्वरूपपरिज्ञानानि चलाः, द्वासप्तति
 संख्यकाः कलाः-द्वासप्ततिकलाः, एताश्च-समवायाङ्गादिसूत्रेषु प्रोक्ताः, तथा-च-
 त्वारो वेदाः साङ्गोपाङ्गाः-अङ्गानि=शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तछन्दोज्योतिषरूपाणि

कौटिल्यं घोटकमुखम्) महाभारत रामायण, भीमासुररचित शास्त्र, चाणक्य
 रचित अर्थशास्त्र, घोटकमुखनामकशास्त्र, (सगडभद्रियाओ)
 शकटभद्रिका नामकशास्त्र (कप्पासियं) कार्पासिक नामकशास्त्र (नागसूक्ष्मं) नाग
 सूक्ष्म नामक शास्त्र (कणगसत्तरी) कनकसप्तति नामक शास्त्र (वेसियं) कामशास्त्र
 प्रकरण विशेष (वेइसेसियं) वैशेषिकशास्त्र, (बुद्धसासनं) त्रिपिटकरूप बुद्धशास्त्र,
 (कविलं) सांख्यशास्त्र, (लोकायड्यं) चार्वाक दर्शन (सद्वितंतं) पट्टि तंत्र
 सांख्यशास्त्र ग्रन्थ विशेष, (माठर) माठरनिर्मितशास्त्र विशेष, (पुराणं) पुराण
 (वाकरणं) व्याकरण (नाडगाइं) दृश्य वाच्य और श्राव्य काव्य । (अहवा)
 अथवा (वावत्तरिकलाओ) ७२ कलाएँ (संगोवंगा चत्तारिवेदा) सांगोपांग
 चारों वेद । ७२ कलाओं का वर्णन समवायाङ्ग आदि सूत्रों में है । शिक्षा, कल्प,

नामदुं शास्त्र, (सगडभद्रियाओ) शकट भद्रिका नामदुं शास्त्र, (कप्पासिकं) कार्पा-
 सिक नामदुं शास्त्र, (नागसूक्ष्मं) नागसूक्ष्म नामदुं शास्त्र, (कणगसत्तरी) कनक
 सप्तति नामदुं शास्त्र, (वेसियं) कामशास्त्रदुं प्रकरण विशेष, (वेइसेसियं) वैशेषिक
 शास्त्र, (बुद्धसासनं) त्रिपिटक रूप बौद्धीनुं धर्मशास्त्र, (कविलं) कविलनुं सांख्य-
 दर्शन नामदुं शास्त्र, (लोकायड्यं) चार्वाक दर्शन, (सद्वितंतं) पट्टितंत्र सांख्य
 शास्त्रनो अर्थविशेष, (माठर) माठर निर्मित शास्त्र विशेष, (पुराणं) पुराण (वाकरणं)
 व्याकरण, (नाडगाइं) दृश्यकाव्य अने श्राव्यकाव्य, (अहवा) अथवा (वावत्तरिकलाओ)
 ७२ कलाओ, (संगोवंगा चत्तारि वेदा) अंग अने उपांगयुक्त चारै वेद आ
 अधाने लौकिकलावश्रुत कडे छे. ७२ कलाओनुं वर्णन समवायांग आदि सूत्रोमां कर-
 वायां आण्युं छे. वेदोना छ अंग नीचे पभाणु छे शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरु-
 क्त छन्द अने ज्योतिष अने तमनी व्याख्या रूप जे अंशे छे तेमने उपांग कडे

षट्, उपाङ्गानि=तद्व्याख्यारूपाणि. तैः सहिता ऋग्यजुःसामथर्वणलक्षणाश्रुतवारो वेदाः, लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम् । भारतरामयणादीनां लेके आगमत्वेन प्रसिद्धत्वाद्भागमत्वेऽपि तदुक्तक्रियाया अनागमत्वात् नोआगमत्वम्, लोकप्रसिद्धयैव तु तत्वमपि तेषां । तदुपयोग एव भवितुमर्हति, उपयोगो भावनिक्षेप इतिवचनात् । तदेतत् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतं वर्णितम् । इति ॥ सू०४२॥

व्याकरण निरुक्त, छ द. ज्यौनिष, ये छह वेदों के अंग हैं । और उनकी व्याख्या रूप जो ग्रन्थ हैं वे उपांग हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद ये चार वेद हैं । ये सब लौकिक भावश्रुत हैं । लोक में भारत रामायण आदि आगम शास्त्ररूप से माने जाते हैं, इसलिये इनमें आगमता है और इनमें जो क्रियाएँ वर्णित हैं, वे आचाररूप नहीं होने से अनागमरूप हैं । इस प्रकार भारत आदिकों में तदुक्त क्रियाओंकी अपेक्षा नोआगमता आ जाती है । लोक प्रसिद्धि से ही इनमें श्रुतता है । इसलिये ये नोआगम के आश्रित करके लौकिक भावश्रुत हैं । इनमें जो सूत्रकारने भावश्रुतता प्रकट की है वह इनके संलग्न उपयोग की अपेक्षा से ही प्रकट की गई जाननी चाहिये । शब्दात्मक जो भारत, रामायण आदिक हैं वे तो भावश्रुत हो ही नहीं सकते हैं क्योंकि “उपयोगो भावनिक्षेपः” उपयोग को ही भावनिक्षेप कहा है ऐसा आप्तवचन है । (से तं लोड्यं नोआगमओ भावसुयं) इस प्रकार नोआगमकी अपेक्षा यह लौकिक भावश्रुतका वर्णन किया।—

छे. चार वेदना नाम आ प्रमाणे छे ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद अने अथर्ववेद लोकमां महाभारत, रामायण आदिने आगम-शास्त्र रूपे मानवामां आवे छे, तेथी तेमां आगमताने सद्वलाव छे, अने ते शास्त्रोमां जे क्रियाओतुं वर्णन करवामां आव्युं छे ते क्रियाओ आचाररूप नहीं होवाथी अनागमरूप छे. आ रीते महाभारत आदि ग्रन्थोमां तदुक्त क्रियाओनी अपेक्षाओ नोआगमता आवी जाय छे. लोकप्रसिद्धिनी अपेक्षाओ ते ग्रन्थोमां श्रुतताने सद्वलाव छे. तेथी ते शास्त्रोने नोआगम लौकिक लावश्रुत रूप कहवामां आव्यां छे ते शास्त्रग्रन्थोमां सूत्रकारे जे लावश्रुतता प्रकट करी छे ते तेमना ते श्रुतोमां उपयोगरूप परिष्ठाभनी युक्तता (संदर्भता)ने कारणे ज प्रकट करवामां आवेल छे, ओम समजवुं. शब्दात्मक जे महाभारत, रामायण आदि छे, तेमने तो लावश्रुत गणी शक्य ज नहीं कारणे जे “उपयोगो भावनिक्षेपः” उपयोगने ज लावनिक्षेप कहे छे. आ प्रकारतुं सिद्धान्तोनुं वचन छे (से तं लोड्यं नोआगमओ भावसुयं) आ प्रकारतुं नोआगम लौकिक लावश्रुततुं स्वरूप समजवुं.

‘अज्ञानिक’ अज्ञानी पदमां जे “अ” उपसर्ग छे, ते नकारवाचक नहीं

अथ लोकोत्तरिकं नोआगमतो भावश्रुतमाह—

मूलम्—से किं तं लोउत्तरियं नोआगमओ भावसुय ? लोउत्तरियं नोआगमओ भावसुयं जं इयां अरहंतेहि अयंतेहिं उप्पण-
णाणदंसणधरेहिं तीयपञ्चुप्पणजणायजं जाणहिं सव्वणूहिं सव्व-
दरिसीहिं तिलुधनहियसहियपूइहिं अण्णटिहयवरनाणदंसणधरेहिं
पणीय दुवालसंगं गणिपिटगं, तं जहा—आयाते सुयमडो ठाणं सम-
वाओ विवाहपणत्ती नायाधम्मवहाओ, उवात्तपदसाओ अंतगड-
दाओ अणुत्तरोदवाइयदसाओ, एवहावागण्णायं विवागसुयं दिट्ठि-
वाओय । से तं लोउत्तरियं नोआगमओ भावसुयं । से तं आगमओ
भावसुयं । से तं भावसुयं ॥ सू० ४३ ॥

अथ किं तद् लोकोत्तरिकं नोआगमतो भावश्रुतम् ? लोकोत्तरिकं नो-
आगमतो भावश्रुतं यदिदं अर्हति गणयच्छिस्सवन्ना नदर्शनधरैः अतीतप्रत्युत्पन्ना
नागतज्ञायकैः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिनः शैलोदयान्तेनित्तमहित्तज्जितैः अग्रतिहतवर-
ज्ञानदर्शनधरैः प्रणीतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं, तद्यथा—आचारः, सूत्रकृतं, स्थानं,
समवायः, विवाहप्रज्ञप्तिः, दातादर्शनथाः, उपासकदशाः, अस्तकृतदशाः, अनु-
त्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याख्यानानि, विपाश्रुतम्, दृष्टिवादश्च । तदेतत् लोको-
त्तरिकं नोआगमनो भावश्रुतम् । तदेतद् नोआगमनो भावश्रुतम् । तदेतत् आग-
मतो भावश्रुतम् ॥ सू० ४३ ॥

अज्ञानिक पद में जो नञ् समास हुआ है वह अल्पार्थ में हुआ है। अतः
अज्ञानिक का तात्पर्य 'अल्पज्ञानवाले' ऐसे होता है। ऐसे अल्पज्ञानी तो
सम्यक् दृष्टि भी होते हैं—अतः इनकी निवृत्ति के लिये मिथ्यादृष्टि पद
सूत्रकार ने प्रयुक्त किया है ॥ सू० ४२ ॥

अब सूत्रकार नोआगम की अपेक्षा करके लोकोत्तरिक भावश्रुतका वर्णन
पणु अल्पार्थक छे. तेथी अज्ञानी अेटहे अल्पज्ञानवाणा, आ प्रकारनो अर्थ अडीं
समजवेो अेवेो अल्पज्ञानी तो सम्यक् दृष्टि एव पणु डोअ शडे छे, तेथी अडीं
सम्यक्दृष्टि अल्पज्ञानवाणानी निवृत्तिने निमित्ते सूत्रकारे मिथ्यादृष्टि विशेषणने पणु
प्रयोग कुर्ये छे. ॥ सू. ४२ ॥

‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ किं तद् लोकोत्तरिकं नोआगमतो भावश्रुतम् ? इति शिष्यप्रश्नः ।
उत्तरमाह—उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैः, उत्पन्ने ज्ञानावरणक्षपणादिप्रकारेण संजाते न
तु सहजे ये ज्ञानदर्शने तयोर्धराः=धारणास्तः, सादिकेवलज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तै
रित्यर्थः, तथा-अतीतप्रत्युत्प-जानागतज्ञायकैः तत्र अतीताः=भूतकालिकाः, प्रत्युत्पन्नाः=
वर्तमानकालिकाः, अनागताः=अविष्यत्कालिका अर्थास्तेषां ज्ञायकास्तैः, तथा—
सर्वज्ञैः=सर्वद्रव्यपर्यायं जानन्तीति सर्वज्ञास्तैः, सर्वदृशिभिः=केवलदर्शनेन एकेन्द्रि-
यादि सर्वं त्रसस्थावरं जगद् द्रष्टुं शीलं येषां ते सर्वदर्शिनस्तैः, तथा त्रिलोक्या-
करते हैं—“से किं तं लोउत्तरियं” इत्यादि ॥ सूत्र ४३ ॥

शब्दार्थः—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त ! (नोआगमओ) नोआग-
मको आश्रित करके (तं) पूर्वप्रकान्त (लोउत्तरियं भावसुयं किं) लोकोत्तरिक
भावश्रुत क्या है ?

उत्तर—(नोआगमओ) नोआग की अपेक्षा करके (लोउत्तरियं भावसुयं)
लोकोत्तरिकभावश्रुत इस प्रकार है— (उत्पण्णणाणदंसणधरेहिं) ज्ञाना
वरणकर्म के क्षय से उत्पन्न हुए केवलज्ञान और दर्शनावरण कर्म के
क्षय केवलदर्शनरूप उपयोग को धारण करनेवाले, (तीयपच्चुप्पण-
मणागयजाणएहिं) अतीत-भूतकालिक प्रत्युत्पन्न-वर्तमान कालिक
अनागत-अविष्यत्कालिक पदार्थों को जाननेवाले (सव्वण्णूहिं)
समस्त द्रव्यों और उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायों के ज्ञाता (सव्वद-
रिसीहिं) केवलदर्शन से एकेन्द्रियादि समस्त त्रसस्थावर रूप जगत् देखने के

इसे सूत्रकार नोआगम बोडोत्तरिक भावश्रुतनु निरूपण करे छे—

“से तं लोउत्तरियं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने जेवो प्रश्न पूछे छे ते हे भगवन् ! (नोआगमओ)
नोआगम भावश्रुतना पीआ लेदइप (तं लोउत्तरियं भावसुयं किं) पूर्वप्रस्तुत
बोडोत्तरिक भावश्रुतनु स्वरूप देवुं छे ?

उत्तर—(नोआगमओ) नोआगमनो आश्रय लधने (लोउत्तरियं भावसुयं)
बोडोत्तरिक भावश्रुतनु स्वरूप आ प्रकारनु छे.

“उत्पण्णणाणदंसणधरेहिं” ज्ञानवरणना क्षयथी उत्पन्न थयेला केवलज्ञान
अने केवलदर्शनरूप उपयोगने धारणु करनारा, ‘तीयपच्चुप्पणमणागयजाणएहिं’
अतीत (भूतकालिक), प्रत्युत्पन्न (वर्तमान कालिक), अने अनागत (अविष्यत्कालिक)
पदार्थोंने जणुनारा, (सव्वण्णूहिं) समस्त द्रव्ये अने तेमनी त्रिकाणवती पर्यायिना
ज्ञाता (सव्वदरिसीहिं) केवल दर्शनथी जेडोन्द्रियादि समस्त त्रस अने स्थावररूप

वलोक्तिमहितपूजितैः—त्रैलोक्येन=त्रिलोकीस्थितेन भवनपतिव्यन्तरनरविद्याधर
वैमानिकादिसमूहेन सूत्रे 'वहिय' इति देशी शब्दः अवलोकितार्थ
वाचक स्ततः—अवलोकिताः—अमन्दानन्दापरिप्लुतलोचनेर्निरीक्षिताः महिताः=
यथावस्थिताःसदृशगुणोत्कीर्त्तनलक्षणेन भावस्तवेन अभिषुताः पूजिताः=
वन्दनादिलक्षणया कायिकक्रिया सत्कृतास्तैः, तथा अप्रतिहनवरज्ञानदर्शनधरैः
अप्रतिहते=समस्तावरणक्षयसम्भूतत्वाद् मूर्त्तामूर्त्तेषु समस्तवस्तुषु कटकुड्यादिभिर-
स्वलिते अविस्वादाके वा अतएव क्षायिकत्वाद्वा वरे=श्रेष्ठे ये ज्ञानदर्शने=केवल
ज्ञानकेवलदर्शनरूपे, तयोर्धराः—धारका ये ते तथा तैः, एवंभूतैर्हृद्भिर्भगवद्भिः,
यदिदं द्वादशाङ्गं=अतरूपस्य परमपुरुषस्याज्ञानीव अज्ञानि द्वादशअज्ञानि—आचारा-
दीनि यत तद् द्वादशाङ्गगणिपिटकम् गणोऽस्यास्तीति गणी=आचार्यस्तस्य
पिटकमिव=सर्वस्वाधारमञ्जूषेव प्रणीतं=प्ररूपित, तद् लोकोत्तरिकं—लोकोत्तरैः=

स्वभाववाले (तिलुक्कवहियमहियपूइएहिं) तीन लोकवर्ती भवनपति,
व्यन्तर, नर, किन्नर, विद्याधर ज्योतिषिक वैमानिक आदि के समूह से
अवलोकित अमन्द आनन्द के अश्रुओं से परिप्लुत लोचनों द्वारा
निरीक्षित—हुए, महित—यथावस्थित गुणों के कीर्त्तनरूप भावस्तव-
से संस्तुत हुए, पूजित—वन्दनादिरूप कायिक क्रिया से सत्कृत हुए
(अप्पडियवरणाणदंसणधरेहिं) तथा अप्रतिहत समस्त आवरण के क्षय
से उत्पन्न होने के कारण मूर्त्त और अमूर्त्त सब वस्तुओं में कटकुडय (कट-
चटाई कुडय—भित्ति) आदि से भी अस्वलित अथवा अविस्वादी ऐसे
श्रेष्ठ के लक्षण और केवलदर्शन के धारक (अरिहंतेहिं भगवंतेहिं) अर्हन्त
भगवन्तो द्वारा (दुवालसंगं) आचारंगादि द्वादश अंगवाद्या (जं इम) जो यह

लगतने जेई शकवाना स्वभाववाणा, (तिलुक्कवहियमहियपूइएहिं) त्रयु लोकवर्ती
भवनपति, व्यन्तर, नर, किन्नर, विद्याधर, ज्योतिषिक, वैमानिक आदिना समूहथी
अवलोकित, अमन्द आनंदा श्रुत्येथी परिप्लुत लोचनेा द्वारा निरीक्षित
थती महित—यथावस्थित गुणोना कीर्त्तनरूप भावस्तवथी संस्तुत (स्तवित)
थतां, पूजितां-वन्दनादिरूप कायिक क्रियावडे सत्कारित थतां, (अप्पडियवरणाणदंसण
धरेहिं) तथा अप्रतिहत समस्त आवरणोना क्षयथी उत्पन्न थयेलुं होवाने कारणे
मूर्त्त अने अमूर्त्त सकल वस्तुओ कट, कुडय (कट अटवे चटाई अने कुडय अटवे
लीत) आदिथी त्रयु अस्वलित अथवा अविस्वादी ओवा श्रेष्ठ केवलज्ञान अने
केवलदर्शनना धारक (अरिहंतेहिं भगवंतेहिं) अर्हन्त भगवन्तो द्वारा (दुवालसंगं)
आचारांग आदि आर अंगवाणुं (जं इय) जे आ (गणिपिटकं पणीयं) गणिपिटक
प्ररूपत थयुं छे, ते लोकोत्तर तीर्थंकरे द्वारा प्रणीत होवाने कारणे लोकोत्तरिक

तीर्थकृद्भिः प्रणीतत्वाद् लोकोत्तरि भावश्रतम् । तत्स्वरूपमाह—‘तं जहा’ इत्यादिना—तद्यथा—आचारः, सूत्रकृतं, थानं, समवायो विवाहप्रज्ञप्तिः, ज्ञाताधर्मकथाः, उपासकदशाः, अन्तकृतशाः. अनुत्तरापपातिकदशाः, प्रश्नव्याकरणानि विपाकश्रुतं, दृष्टिवादश्च । सर्वज्ञप्रणीतं द्वादशाङ्गरूपं यद् गणिपिटकं. तदर्थोपयोगो भावश्रुतं उपयोगो भावनिक्षेप इति वचनात् । स चोपयोगश्चरणगुणसमन्वितश्चेत् तर्हि नो आगतो भावश्रतं भवति. चरणगुणस्य क्रियारूपत्वेन आनागतत्वात्. नो शब्दस्य च देशप्रतिषेधकत्वेना यणात् । उपयोगचारित्रवान्

(गणिपिटकं पणीयं) गणिपिटकं प्ररूपितं हुआ है लोकोत्तर तीर्थकरों द्वारा प्रणीत होने के कारण लोकोत्तरिक भावश्रत है । ‘तं जहा’ द्वादश अंगों के नाम इस प्रकार है ।—(आयारौ) आचारांग (सूयगडो) सूत्रकृतांग (ठाणं) स्थानांग (समवाओ) समवायांग (विवाह पण्णत्ती) विवाह प्रज्ञप्ति-‘भगवती सूत्र’ (नायाधम्मकहाओ) ज्ञाता धर्मकथा (उवासगदसाओ) उपासक दर्शांग (अंतगडदसाओ) अन्तकृतदशांग (अणुत्तरोववाइयदसाओ) अनुत्तरापपातिक दशांग (पण्हावागरणाइं) प्रश्नव्याकरण, (विवागसुयं) विपाकश्रुत (दिट्ठिवाओ य) आर दृष्टिवाद । इन बारह अंगों के अर्थ में जो उपयोगरूप परिणाम है वह भावश्रुत है “उपयोगो भावनिक्षेप” है, ऐसा सिद्धान्त का वचन है । यह उपयोगरूप परिणाम यदि चरणगुण—चारित्र गुण से युक्त है तो वह नोआगम से भावश्रुत है क्यों कि चरण गुण क्रियारूप है और क्रिया आगम नहीं होती है । इस प्रकार यहां नोशब्द में आगम एकदेश में निषेधक होने से देश प्रतिषेधकता बन जाती है । यद्यपि उपयोग आर चारित्र गुण से

भावश्रुतइयं छे. (तं जहा) ते द्वादश (आर) अंगोना नाम नीचे प्रभाछे छे—(आयारौ) (१) आचारांग, (यगडो) (२) सूत्रकृतांग. (ठाणं) (३) स्थानांग, (समवाओ) (४) समवायांग. (विवाह पण्णत्ती) (५) विवाह प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) (नाया धम्मकहाओ) (६) ज्ञाता धर्मकथा. (उवासगदसाओ) (७) उपासकदशांग. (अंतगडदसाओ) (८) अन्तकृतदशांग. (अणुत्तरोववाइयदसाओ) (९) अनुत्तरापपातिकदशांग. (पण्हावागरणाइं) (१०) प्रश्नव्याकरण. (विवागसुयं) (११) विपाकश्रुत अने ‘दिट्ठिवाओ य’ (१२) दृष्टिवाद. आ आरे अंगोना अर्थमां ने उपयोगइयं परिणाम छे तेनुं नाम भावश्रुत छे. कारण के “उपयोगो भावनिक्षेपः” आ प्रकारनु सिद्धान्तनुं वचन छे. आ उपयोग इयं परिणाम ने चरणगुण—चारित्रगुणुथी युक्त होय तो ते नोआगमनी अपेक्षाअने भावश्रुत छे, कारण के चरणगुणु क्रियाइयं होय छे, अने क्रिया आगमइयं होती नथी. आ प्रकारे अहाँ ‘नो’ पद एकदेशनी अपेक्षाअने आगमनुं निषेधक होवाथी देशप्रतिषेधकता घटित थर्थ नय छे. ने के उप-

શાબ્દાદિ-પ્યમેદોપચારાદ્ ભાવશ્રુત ભવિતુમર્હતિ । इह तु चारित्रसमन्वितो द्वाद-
 शाङ्गोपयोगो नोआगमतो भावश्रुतमित्याशयेन द्वादशाङ्गो गणिपिटकमित्युक्तम् ।
 અન્યથાં શબ્દાત્મકસ્ય દ્વાદશાંગસ્યોપયોગરૂપત્વાભાવાદ્ ભાવશ્રુતત્વં નોપપદ્યતે ।
 પ્રકૃતમુપસંહરન્નાહ-‘સે તં’ ઇતિ । તદેતદ્ લોકોત્તરિકં નો આગમનો ભાવશ્રુતમ્ ।
 ‘સર્વં નો આગમતા ભાવશ્રુતં નિરૂપિતમિતિ સૂચયિતુમાહ-‘સે તં’ ઇતિ । તદેતન્નો
 આગમતો ભાવશ્રુતમ્ । इत्थं समेदं भावश्रुतं प्ररूपितमिति सूचयितुमाह-‘से तं
 भावसुयं’ इति । तदेतद् भावश्रुतम् इति । सू० ૪૩॥

इत्थं भावश्रुतस्वरूपमुक्त्वा सम्प्रति तत्पर्यायानाह-

मूलम्—तस्स षां इमे एगट्टिया णाणाघोसा णाणावंजणा नाम-
 धेज्जा भवंति, तं जहा—

सुयसुत्तगंथसिद्धं,—तसासणे आणावयग उवएसे ।

पन्नत्रण आगमे वि य, एगट्टा पज्जवा सुत्ते ॥

से त सुयं ॥स० ४४॥

युक्त हुआ साधु आदि भी अभेदोपचार से भावश्रुत हो सकता है, परन्तु यहाँ जो द्वादशाङ्गगणिपिटकमो नोआगम से भावश्रुत कहा है वह द्वादशांग के चारित्रगुणसमन्वित उपयोग को लेकर ही कहा है ऐसा जानना चाहिये । क्योंकि शब्दात्मक जो द्वादशांग है वह उपयोगरूप नहीं होता है । अतः उसमें उपयोगरूपता का अभाव होने के कारण भावश्रुतता नहीं बनती है । (से तं नोआगमओ भावसुयं) इस तरह नोआगम को आश्रित करके यह लोकोत्तरिक भावश्रुत का स्वरूप है । (से तं भावसुयं) इस प्रकार से सूत्रकारने समेद-भावश्रुत की प्ररूपणा यहाँ तक की है । ॥सूत्र ४३॥

યોગ અને ચારિત્રગુણથી યુક્ત થયેલા સાધુ આદિ પણ અભેદોપચારથી ભાવશ્રુત હેઇ શકે છે, પરન્તુ અહીં જે દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકને નોઆગમની અપેક્ષાએ ભાવશ્રુત કહ્યું છે તે દ્વાદશાંગના ચારિત્રગુણ સમન્વત ઉપયોગની અપેક્ષાએ જ કહેવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું જોઈએ, કારણ કે શબ્દાત્મક જે દ્વાદશાંગ છે તે ઉપયોગરૂપ હોતું નથી. તેથી તેમાં ઉપયોગરૂપતાનો અભાવ હોવાને કારણે ભાવશ્રુતતા સંભવી શકતી નથી. (સે તં નોઆગમઓ ભાવસુયં) આ પ્રકારેનું નોઆગમને આશ્રિત કરીને લોકોત્તરિક ભાવશ્રુત નામના નોઆગમ ભાવશ્રુતના બીજા લેહનું સ્વરૂપ સમજવું (સે તં ભાવસુયં) આ પ્રકારે સૂત્રકારે ભાવશ્રુતના લેહનો અહીં સુધીમાં પ્રરૂપણા કરી છે આ રીતે ભાવશ્રુતનું વર્ણન અહીં સમાપ્ત થાય છે. ॥સૂ० ૪૩॥

छाया—तस्य खलु इमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—

श्रुतसूत्रग्रन्थसिद्धान्त शासनमाज्ञावचनमुपदेशः ।

प्रज्ञापना आगमोऽपि च एकार्थाः पर्यायाः सूत्रे ॥

तदेतत् श्रुतम् ॥ सू० ४४ ॥

टीका—‘तस्स णं’ इत्यादि—

तस्य=भावश्रुतस्य खलु इमानि=वक्ष्यमाणानि एकार्थिकानि=एकार्थविषयाणि नानाघोषाणि=उदात्तानुदात्तादि नानास्वरयुक्तानि, नानाव्यञ्जनानि=ककाराद्यनेकव्यञ्जनात्मकानि नामधेयानि=नामानि भवन्ति. तद्यथा—श्रुतसूत्र‘सिद्धान्त’ ग्रन्थशासनम्—तत्र— श्रुतम्—श्रूयते गुरुसमीपे यत्तत्श्रुतम् १, सूत्रम्—अथानां सूचकं सूत्रम् २, ग्रन्थः—तीर्थंकरकल्पपादवचनप्रसूनानां ग्रन्थनाद् ग्रन्थः ३, सिद्धान्तः

अब सूत्रकार भावश्रुत के पर्यायवाची शब्दों को कहते हैं ।

“तस्स णं इमे” इत्यादि ॥ सू० ४४ ॥

शब्दार्थ—(तस्स णं इमे णाणाघोसा णाणावज्जणा एगट्टिया नामधेज्जा भवन्ति) उस भावश्रुत के ये उदात्त अनुदात्त आदि नाना स्वरों से युक्त, और ककारआदि अनेक व्यञ्जनोंवाले एकार्थविषयक नाम हैं । (तं जहा) जो इस प्रकार से ह—

(सुयसुत्तगंथसिद्धंतसासणे आणवयणउवएसे पन्नवणआगमे वि य एगट्टापज्जवा सुत्ते) गुरु के समीप सुना जाने के कारण भावश्रुत का नाम श्रुत है अर्थों की सूचना इससे होती है इसलिये इसका नाम सूत्र है । तीर्थंकर रूप कल्पवृक्ष के वचन रूप पुष्पों का इसमें ग्रथन रहता है इसलिये इसका

इसे सूत्रकार भावश्रुतना पर्यायवाची शब्दोंको कथन करे—

“तस्सणं इमे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(तस्सणं इमे णाणाघोसा णाणावज्जणा एगट्टिया नामधेज्जा भवन्ति) ते श्रुतना, उदात्त अनुदात्त आदि विविध स्वरोधी युक्त अने ककार आदि अनेकव्यञ्जनोंधी युक्त अकार्थवाचक नामो छे. (तंजहा) ते नामो नीचे प्रमाणे छे—

(सुयसुत्तगंथसिद्धंतसासणे आणवयण उवएसे पन्नवण आगमे वि य एगट्टापज्जवा सुत्ते) (१) श्रुत—गुरुनी समीपे तेनुं श्रवणु करवामां आवे छे, ते कर्णु तेनुं नामश्रुत छे. (२) सूत्र—अर्थोनी सूचना तेना द्वारा भणे छे तेथी तेनुं भीणु नाम सूत्र छे.

(३) ग्रन्थ—तीर्थंकरे इप कल्पवृक्षना वचनरूपी पुष्पोनुं तेमां ग्रथन थयेणुं

सिद्धं=प्रमाणप्रतिष्ठितमर्थम् अन्तं नयति=प्रमाणकोटिमारोहयतीति सिद्धान्तः४,
शासनम्—मिथ्यात्वाविरतिकपायादिप्रवृत्तजीवानां शासनात्=शिक्षणाद्—शासनम् ५,
एषां समाहारः । तथा—आज्ञा—आज्ञाप्यन्ते मोक्षार्थिनः प्राणिनोऽनयेति—आज्ञा६,
वचनम्—उक्तिः=वाग्योग इत्यर्थः७, उपदेशः—हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्युपदेशनात्—
उपदेशः८, प्रज्ञापना—प्रज्ञाप्यन्ते यथावस्थितजीवादिपदार्थो अनयेति प्रज्ञापना९,
अपि च आगमःआचार्यपारम्पर्येणागच्छतीति—आगमः, आप्तवचनं वा आगमः१०,
एते सर्वेऽपि सूत्रविषये एकार्थाः पर्यायाः बोद्धव्याः । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—तदेतत्
श्रुतम्—श्रुतादिनामभेदैर्यदुक्तं तत् श्रुतं विज्ञयमिति ॥सू० ४४॥

नाम ग्रन्थ है । प्रमाण प्रतिष्ठित अर्थ को यह प्रमाण कोटिमें स्थापित कर देता है इसलिये इसका नाम सिद्धान्त है, मिथ्यात्व अविरति, और कपाय आदि में प्रवृत्त हुए व्यक्तियों को उनसे दूर होनेकी शिक्षा देता है इसलिये इसका नाम शासन है । मोक्षामिलायी प्राणी जन इससे आज्ञापित किये जाते हैं, इसलिये इसका नाम आज्ञा है । वाणी के द्वारा यह स्पष्ट क्रिया जाता है इसलिये इसका नाम वचन है । जीवों को इससे हित में प्रवृत्त होने की शिक्षा (उपदेश) मिलता है इसलिये इसका नाम उपदेश है । इसके द्वारा जावादिक समस्त पदार्थ जिस रूप में स्थित है उसी रूप से प्रज्ञापित किये जाते हैं इसलिये इसका नाम 'प्रज्ञापना' है । आचार्य परंपरा से यह चला आ रहा है इसलिये इसका नाम 'आगम' है । अथवा यह आप्त का वचन है इसलिये भी 'आगम' है । ये सब सूत्र के पर्यायवाची शब्द हैं ऐसा जानना

डोवाथी तेनुं नाम ग्रन्थ छे. (४) सिद्धांत प्रमाणप्रतिष्ठित अर्थने ते प्रमाणबू-
तनी डोटिमां स्थापित करी दे छे तेथी तेनुं नाम सिद्धांत छे. (५) शासन
मिथ्यात्व, अविरति, कपाय आदिमां प्रवृत्त थयेली व्यक्तिओने तेनाथी द्वर रहवानी
शिक्षा ते आपे छे, तेथी तेनुं पांचमुं नाम शासन छे (६) आज्ञा—तेना द्वारा
भनुष्य आदिने अभुङ्क आज्ञाओ आपवामां आवे छे, तेथी तेनुं छडुं नाम आज्ञा छे.
(७) वचनवाणी द्वारा तेने स्पष्ट करवामां आवे छे, तेथी तेनुं नाम वचन छे.
(८) उपदेश—तेना द्वारा एवने उपादेशेमां प्रवृत्त थवानी अने अनुपादेश (उप
पदार्थो)थी निवृत्त थवानी शिक्षा (उपदेश) भणे छे, तेथी तेनुं आठमुं नाम उपदेश छे.
(९) प्रज्ञापना—तेना द्वारा, एवादिक पदार्थो जे इपे वर्तमानमां छे ओज इपे प्रज्ञा-
पित करवामां आवे छे ओटवे डे एवादिक समस्त पदार्थोना यथार्थ स्वइपने
प्रज्ञापित करवामां आवे छे, तेथी तेनुं नाम प्रज्ञापना छे. (१०) आगम—आचार्य
परम्पराथी ते आद्युं आवे छे, तेथी तेनु नाम "आगम" छे. आ णधा श्रुतना

इत्थं श्रुताधिकारमुक्त्वा सम्-ति-‘खंधं निखिविस्सामि’ इति कथना-
नुसारेण स्कन्धाधिकार उच्यते—

मूलम्—से किं तं खंधे ? खंधे चउव्विहे पणत्ते, त जहा-
नामखंधे ठवणाखंधे दव्वखंधे भावखंधे ॥ सू० ४५ ॥

छाया—अथ कोऽसौ स्कन्धः ? स्कन्धश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—नामस्क-
न्धः, स्थापनास्कन्धः द्रव्यस्कन्धः, भावस्कन्धः ॥ सू० ४५ ॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अस्य व्याख्या स्पष्टा, नवरं—स्कन्धःपरमाणादि समुदायः ॥४५॥

चाहिये । (से तं सुयं) इस तरह इन श्रुतादि नामों से यह श्रुत कहा गया है ॥सूत्र४४॥

अब सूत्रकार (खंधं निखिविस्सामि) इस कथन के अनुसार स्कन्धाधि-
कार प्रारंभ करते हैं—

शब्दार्थः—(से किं तं खंधे) हे भदन्त ! स्कंधका क्या स्वरूप है ?
(खंधेचउव्विहे पणत्ते)

उत्तरः—स्कंधका स्वरूप प्रकट करने के लिये उस के चार प्रकार प्रज्ञप्त
हुए हैं—(तं जहा) वे इस तरह से हैं—(नामखंधे) नाम स्कंध (ठवणा खंधे)
स्थापना स्कंध (दव्वस्कंधे) द्रव्यस्कंध (भावखंधे) और भावस्कंध । स्कंध
शब्द का अर्थ है पुद्गल परमाणुओं का संश्लेष । इसकी व्याख्या पहिले
की गई व्याख्या की तरह ही जाननी चाहिये ।

पर्यायवाची शब्दो छे, अेम समज्जुं जेधंअे. (से तं सुयं) आ प्रकारे अड्डीं
श्रुतवुं निरूपणुं समाप्तं थाय छे. ॥ सू० ४४ ॥

उवे सूत्रकार ‘खंधं निखिविस्सामि’ आ कथन अनुसार स्कन्धाधिकारने
प्रारंभ करे छे—‘से किं तं खंधे’ इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं खंधे ?) शिष्य शुरुने अेवो प्रश्न पूछे छे के छे लगवन् ।
स्कन्धनुं केवुं स्वरूप होय छे ?

उत्तर—(खंधे चउव्विहे पणत्ते) स्कन्धना स्वरूपनुं निरूपणुं करवा निमित्ते
तेना चार प्रकार कइया छे. (तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(नामखंधे, ठवणा-
खंधे, दव्वखंधे, भावखंधे) (१) नामस्कन्ध, (२) स्थापनास्कन्ध, (३) द्रव्यस्कन्ध
अने (४) भावस्कन्ध स्कन्ध शब्दने अर्थ “पुद्गल परमाणुओंना संश्लेष” सम-
ज्जो आ सूत्रनी व्याख्या आगण कइली व्याख्या प्रमाणे समज्जी

માવાર્થ:—રૂપ, ગંધ, રસ, ઓર સ્પર્શ' જિસમેં પાયે જાતે હૈં ઉસકા નામ પુદ્ગલ હૈ। યહ પુદ્ગલ અણુ ઓર સ્કંધ કે ભેદ સે દો પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ। કિતને હી પ્રકાર કે પુદ્ગલ ક્યોં ન હોં, વે સત્ર ઇન દો ભાગોં મેં સમા જાતે હૈં। જો પુદ્ગલદ્રવ્ય અતિસૂક્ષ્મ હૈ—જિસ કા ભેદ નહીં હો સકતા હૈ ઇસી કારણ સે જો સ્વયં અપના હી આદિ અથવા અપના હી અંત ઓર અપના હી મધ્ય હૈ, દો સ્પર્શ એક રસ, એક ગંધ, ઓર એક વર્ણ સે યુક્ત હૈ વહ પરમાણુ હૈ। યદ્યપિ પુદ્ગલ સ્કંધ મેં સ્નિગ્ધ સૂક્ષ્મ મેં સે એક, શીત ઉષ્ણ મેં એક મૃદુ કઠોર મેં સે એક, ઓર લઘુ ગુરુ મેં સે એક, યે ચાર સ્પર્શ હોતે હૈં, કિન્તુ પરમાણુ કે અતિસૂક્ષ્મ હોને કે કારણ ઉસમેં મૃદુ કઠોર લઘુ ઓર ગુરુ, ઇન ચાર સ્પર્શોં કા પ્રશ્ન હી નહીં ઉઠના હૈ। ઇસલિયે ઇસમેં કેવલ દો સ્પર્શ માને ગયે હૈં। ઇસસે અન્ય દ્વયણુક આદિ સ્કંધ વનતે હૈં। ઇસલિયે યહ ઉનકા કારણ હૈ। કાર્ય નહીં।

યદ્યપિ દ્વયણુક આદિ સ્કંધોં કા ભેદ હોને સે પરમાણુ કી ઉત્પત્તિ દેખી જાતી હૈ ઇસલિયે યહ ભી કથઞ્ચિન્ત્ કાર્ય ઠહરતા હૈ પરન્તુ મૌલિક રૂપ મેં યહ પુદ્ગલકી સ્વાભાવિક દશા હૈ ઇસલિયે વસ્તુતઃ યહ કિસી કા કાર્ય નહીં હૈ। ઇસકા જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોં સે નહીં હોતા—કિન્તુ કાર્ય ઞિજ્ઞ દ્વારા ઇસકા અનુમાન જ્ઞાન

લાવાર્થ:—જેમાં રૂપ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શનો સદ્ભાવ હોય છે, તેનું નામ પુદ્ગલ છે. તે પુદ્ગલના બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) આણુ અને (૨) સ્કંધ ભેદે બંને તેટલા પ્રકારના પુદ્ગલો હોય પણ તે બધાનો આ બે ભેદોમાં સમાવેશ થઈ જાય છે.

જે પુદ્ગલ દ્રવ્ય અતિ સૂક્ષ્મ હોય છે, જેના વિભાગ થઈ શકતા નથી, અને તે કારણે જે પોતે જ પોતાના આદિ રૂપ, પોતાના અન્તરૂપ અને પોતાના મધ્યરૂપ હોય છે, જે બે સ્પર્શ, એક રસ, એક ગંધ અને એક વર્ણથી યુક્ત હોય છે, એવાં પુદ્ગલ દ્રવ્યને પરમાણુ કહે છે. જે કે પુદ્ગલ સ્કંધમાં સ્નિગ્ધ અને કઠોર આ બે સ્પર્શોમાંનો એક સ્પર્શ, શીત અને ઉષ્ણ, આ બેમાંથી એક, મૃદુ અને કઠોર આ બે સ્પર્શોમાંથી એક લઘુ અને ગુરુ, આ બેમાંથી એક, એમ ચાર સ્પર્શોનો સદ્ભાવ હોય છે, પરન્તુ પરમાણુ અતિ સૂક્ષ્મ હોવાને લીધે તેમાં મૃદુ, કઠોર, લઘુ અને ગુરુ, આ ચાર સ્પર્શોના સદ્ભાવનો તે પ્રશ્ન જ ઉદ્ભવતો નથી. તેથી તેમાં માત્ર બે સ્પર્શોનો જ સદ્ભાવ માનવામાં આવ્યો છે. તે પરમાણુમાંથી અન્ય દ્વયણુક (બે આણુવાળા) આદિ સ્કંધ બને છે. તેથી સ્કંધો બનાવવામાં તે કારણભૂત બને છે—કાર્યભૂત બનતું નથી. જે કે દ્વયણુક આદિ સ્કંધોનો વિભાગ થવાથી પરમાણુની ઉત્પત્તિ થતી બેવામાં આવે છે, તેથી તે પણ ક્યારેક કાર્યરૂપ બને છે. પરન્તુ મૌલિક રૂપે પુદ્ગલની તે સ્વાભાવિક દશા છે, તેથી વસ્તુતઃ તે કોઈના કાર્યરૂપ નથી. તે પરમાણુનું જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોથી થતું નથી, પરન્તુ કાર્યલિંગ

मूलम्—नामद्ववणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ ॥सू० ४६॥

छाया—नामस्थापने पूर्वभणितानुक्रमेण भणितव्ये ॥ सू० ४६ ॥

टीका—‘नामद्ववणाओ’ इत्यादि—

नामस्कन्धः स्थापनास्कन्धश्च नाभावश्यकस्थापनाऽऽवश्यक—प्रतिपादकः
सूत्राऽनुसारेण वक्तव्यौ । इति ॥सू० ४६॥

से बोध होता है। स्कंध दो या दो से अधिक परमाणुओं के संश्लेष से बनता है। द्वयणुक तो परमाणुओं के संश्लेष से ही बनता है—परन्तु त्रयणुक आदि स्कंध परमाणुओं के संश्लेष से भी बनते हैं तथा परमाणु और स्कंध के संश्लेष से या विविध स्कंधों के संश्लेष से भी बनते हैं। इसलिये अन्यस्कंध के सिवा शेष सब स्कंध परस्पर कार्य भी हैं और कारण भी। जिन स्कंधों से बनते हैं उनके कार्य हैं और जिन्हें बनाते हैं उनके कारण भी ॥सूत्र ४५॥

“नाम द्ववणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणिय व्वाओ” इत्यादि ॥ सूत्र ४६ ॥

शब्दार्थ—(नाम महवणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ) नाम स्कंध और स्थापनास्कंध का स्वरूप नाम आवश्यक और स्थापना आवश्यक के स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले सूत्रों के अनुसार जानना चाहिये। विशेषता केवल इतनी ही है। कि नाम आवश्यक की जगह नामस्कंध और स्थापना आवश्यक की जगह स्थापना स्कंध लगाकर सूत्रों का अनुगम करना चाहिये ॥सूत्र ४६॥

द्वयणुकेना अनुमान ज्ञानधी बोध थाय छे, अथवा अथी वधारे परमाणुओंना संश्लेषधी स्कन्ध अने छे, द्वयणुक स्कन्ध तो परमाणुओंना संश्लेषधी न अने छे, पणु त्रयणुक (त्रयणु आणुवाणे) आदि स्कन्धो परमाणुओंना संश्लेषधी पणु अने छे अथवा विविध स्कन्धोना संश्लेषधी पणु अने छे, तेधी द्वयणुक स्कन्ध सिवायना भाडीना अथां स्कन्धो परस्पर कार्य पणु छे अने कारण पणु छे—ते स्कन्धोमांथी तेओ अने छे ते स्कन्धोना कार्यइय अने ते स्कन्धोने तेओ अनावे छे तेमना कारणइय छे, अम समज्जु’ ॥ सू० ४५ ॥

“नामद्ववणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(नामद्ववणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ) नामस्कन्ध अने स्थापनास्कन्धना स्वइपणु निइपणु नाम आवश्यक अने स्थापना आवश्यकना स्वइपणु प्रतिपादन करनारां सूत्रो प्रमाणे न समज्जु’ नहीं, अटली न विशेषता समज्जुवानी छे के नाम आवश्यकने अहले नामस्कन्ध अने स्थापना स्कन्ध सूत्रोतुं कथत्त थपुं जेधये ॥ सूत्र ४६ ॥

अथ द्रव्यस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं द्रव्यखंधे? द्रव्यखंधे दुविहे पणत्ते, तं जहा आगमओ य नोआगमओ य । से क त आगमओ द्रव्यखंधे? आ मओ द्रव्यखंधे—जस्स णं खंधेत्ति प सिक्खियं, सेसं जहा द वावस्सए तहा भाणियव्वं । नवर खधाभिलावो जाव से किं तं जाणयसरीर भवियसरीर इरित्ते द्रव्यखंधे ! जाणयत्तरीरवइरित्ते द्रव्यखंधे तिविहे पणत्ते, तं जहा—सच्चित्त अच्चि मीसए ॥सू० ४७॥

छाया—अथ कोऽसौ द्रव्यस्कन्धः? द्रव्यस्कन्धो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगमतश्च नोआगमतश्च । अथ कोऽसौ आगतो द्रव्यस्कन्धः? आगतो द्रव्यस्कन्धः—यस्य खलु स्कन्धेति पदं शिक्षितम्, शेषं यथा द्रव्यावश्यकं तथा

अब सूत्रकार द्रव्यस्कंध का निरूपण करते हैं—

“से किं तं द्रव्यखंधे” इत्यादि ॥ सूत्र ४७ ॥

शब्दार्थः—(से) हे भदन्त ! (तं) पूर्वप्रक्रान्त (द्रव्यखंधे) द्रव्यस्कंध (किं) कथा है ?

उत्तर—(द्रव्यखंधे दुविहे पणत्ते) द्रव्यस्कंध दो प्रकार का कहा गया है । (तंजहा) जैसे (आगमओ य नोआगमओ य) ? एक आगम को लेकर और दूसरा नोआगम को लेकर । (से किं तं आगमओ द्रव्यखंधे) आगम से द्रव्य स्कंधका क्या स्वरूप है ? (आगमओ द्रव्यखंधे जस्स णं खंधेत्ति पयं

इये सूत्रकार द्रव्यस्कंधनुं निरूपण करे छे—

“से किं तं द्रव्यखंधे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुणने अवेो प्रश्न पूछे छे के (तं) पूर्व प्रस्तुत (द्रव्यखंधे) द्रव्यस्कंधनुं (किं) केवुं स्वइय छे ?

उत्तर—(द्रव्यखंधे दुविहे पणत्ते) द्रव्यस्कंध के प्रकारना कहा छे (तंजहा) ते के प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(१) (आगमओ य, नोआगमओय) (१) आगमनी अपेक्षाअे द्रव्यस्कंध अने (२) नोआगमनी अपेक्षाअे द्रव्यस्कंध.

(से किं तं आगमओ द्रव्यखंधे?) के लगवन् ! आगमने आश्रित करीने द्रव्यस्कंधनुं केवुं स्वइय छे ?

उत्तर—(आगमओ द्रव्यखंधे जस्स णं खंधेत्ति पयं सिक्खियं सेसं जहा द्रव्यावस्सए तहा भाणियव्वं) आगमनी अपेक्षाअे आगमने आश्रित करीने

भणितव्यम् । नवरं स्कन्धाभिलाषो यावत्-अथ कोऽसौ ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-
व्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः ? ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धस्त्रिविधः
प्रप्लवत्, तद्यथा-सचित्तः अचित्तो मिश्रकः ॥ ४७ ॥

टीका—‘से किं त’ इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा ॥सू० ४७॥

सिक्खियं सेसं जहा दव्वावस्सए तहा भाणियव्वं) उत्तर-आगम से-आगम को
आश्रित करके- द्रव्यस्कन्ध का स्वरूप इस प्रकार से है, जिस साधु आदि ने
स्कन्ध इस पदके अर्थ को गुरु के मुख से सीख लिया है यहां से लेकर “ठियं-
जियं” आदि शेष पदों को यहां कहना चाहिये और उनका अर्थ जिस
प्रकार से द्रव्यावश्यक के वर्णन में कहा गया है वैसा ही अर्थ यहां पर उस
पाठका लगा लेना चाहिये । इस तरह स्कन्ध संवन्धी आलाप “अथ कोऽसौ
ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः” यहां तक समझलेना चाहिये ।
(जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्ते दव्वखंधे तिविहे पणत्ते) ज्ञायकशरीर भव्य-
शरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्ध तीन प्रकार का कहा गया है । (तंजहा)
वे प्रकार ये हैं (सचित्तं अचित्तं मीसए) सचित्त, अचित्त और मिश्र ।

भावार्थः-शिष्य ने गुरुमहाराज से पूछा है कि है भदन्त ! द्रव्य स्कन्ध का
क्या स्वरूप है ? तब गुरु महाराज ने उसे समझाने के लिये ऐसा कहा कि
हे शिष्य । द्रव्य स्कन्ध का स्वरूप दो प्रकार से निर्धारित किया गया है-१-

द्रव्यस्कन्धतुं स्वइय आ प्रकारतु छे-“ जे साधुअे ‘स्कन्ध, आ पदना अर्थने गुरुनी
सभीये शीणी लीधो छे,” अहीथी शइ करीने “ठियं जियं” आदि द्रव्यावश्यक
सूत्रमां आवेदा पदोने अही पणु अहणु करवा लेधअे. ते पदोने जे प्रकारने
अर्थ द्रव्यावश्यक सूत्रमां करवामां आव्यो छे, ते प्रकारने अर्थ अही पणु
अहणु थवो लेधअे. आ प्रकारे स्कन्ध संवंधी “अथ कोऽसौ ज्ञायकशरीर-
भव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः” अही सुधीतुं अहणु थवुं लेधअे.

(जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्ते दव्वखंधे तिविहे पणत्ते) ज्ञायकशरीर
अने भव्यशरीर व्यतिरिक्त (थी लित्त) द्रव्यस्कन्ध त्रणु प्रकारने कह्यो छे,
(तं जहा) ते प्रकारे आ प्रमाणे छे-

(सचित्तं अचित्तं मीसए) (१) सचित्त (२) अचित्त अने (३) मिश्र.

भावार्थ-शिष्य गुरु महाराजने अेवो प्रश्न पूछि छे के ‘हे भगवन् ! द्रव्यस्कन्ध-
तुं स्वइय केवुं छे?’ त्पारे गुरु तेने ते समजववा भाटे लेह प्रलेहपूर्वक तेना
स्वइयतुं नीये प्रमाणे निरूपणु करे छे.

तेअो तेने कहे छे के द्रव्यस्कन्धतुं स्वइय जे प्रकारे निर्धारित करी शक्य छे

આગમ કો આશ્રિત કરકે ઓર દૂમરા નાઆગમ કો આશ્રિત કરકે । ઇનમેં આગમ કો આશ્રિત કરકે દ્રવ્યસ્કંધ કા સ્વરૂપ જૈસા પીછે ૧૪ વેં સૂત્ર મેં આગમ કો આશ્રિત કરકે દ્રવ્યાવશ્યક કા સ્વરૂપ કહા ગયા હૈ—વૈસા હી જાનનાં ચાહિયે । જિસકા તાત્પર્ય યહ હૈ કિ જિસ સાધુ આદિ ને સ્કંધ કે સ્વરૂપ કો પ્રતિપાદન કરનેવાલે શાસ્ત્ર કો અચ્છી તરહ સે જાન તો લિયાં હૈ પરંતુ વહ ડસમેં ઉપયાગ સે વર્જિત હૈ એમા વહ સાધુ આગમ કી અપેક્ષા દ્રવ્યસ્કંધ જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યસ્કંધ, ભવ્યશરીર દ્રવ્યસ્કંધ, ઓર ઇન ઢોનોં સે વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યસ્કંધ ઇસતરહ સે ૩ તીન પ્રકાર કા હૈ । ઇનમેં પહિલે પઢોંકા સ્વરૂપ ૧૬, ૧૭, ૧૮, ઇન તીન સૂત્રો દ્વારા પીછે સ્પષ્ટ કિયા ગયા હૈ । વહાં ઓવશ્યક પદ કી જગહ સ્કંધ પદ લગાકર ઇસે સમજલેના ચાહિયે । ઇસકા સારાંશ હ હૈ કિ સ્કંધશાસ્ત્ર કે જ્ઞાતા કા જો નિર્જિવ શરીર હૈં વહ નોઆગમ કી અપેક્ષા જ્ઞાયકશરીર હૈ । તથા આગે જિસ શરીર સે સ્કંધશાસ્ત્ર કો વહ

(૧) આગમને આશ્રિત કરીને અને (૨) નો આગમને આશ્રિત કરીને.

આગમનો આધાર લઇને દ્રવ્યસ્કંધનું કેવું સ્વરૂપ છે તે હવે સમજાવવામાં આવે છે. ૧૪માં સૂત્રમાં આગમનો આધાર લઇને દ્રવ્યાવશ્યકનું જેવું સ્વરૂપ કહેવામાં આવ્યું છે. એવું જ આગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યસ્કંધનું સ્વરૂપ સમજવું. આ કથનનો સંક્ષિપ્ત સારાંશ નીચે પ્રમાણે સમજવો.

જે સાધુ આદિએ સ્કંધના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરનારા શાસ્ત્રને સારી રીતે જાણી લીધું છે, પરંતુ તે તેમાં ઉપયોગ પરિણામથી રહિત છે, એવો તે સાધુ આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યસ્કંધ રૂપ છે. નોઆગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યસ્કંધના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે (૧) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યસ્કંધ, (૨) ભવ્યશરીર દ્રવ્યસ્કંધ અને (૩) ઉપયુક્ત બનેથી વ્યતિરિક્ત (લિપ્ત એવો) દ્રવ્યસ્કંધ આ ત્રણ પ્રકારોમાંના પહેલાં બે પ્રકારોનું સ્વરૂપ સૂત્ર ૧૭ ૧૮ અને ૧૯માં સૂત્રમાં કહ્યા અનુસાર જ સમજવું જોઇએ. ત્યાં 'આવશ્યક' શબ્દની જગ્યાએ "સ્કંધ" શબ્દ મૂકવાથી સ્કંધ વિષયક કથન બની જશે. તે સૂત્રોનો સારાંશ નીચે પ્રમાણે છે સ્કંધશાસ્ત્રના જ્ઞાતાનું જે નિર્જિવ શરીર છે તે નોઆગમની અપેક્ષાએ જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યસ્કંધ રૂપ છે, તથા જે જીવ ગૂંહીત શરીર દ્વારા ભવિષ્યમાં સ્કંધશાસ્ત્રનો જ્ઞાતા બનવાનો છે, તેના શરીરને નોઆગમ ભવ્યશરીર દ્રવ્યસ્કંધ રૂપ સમજવું.

હવે આ બનેથી વ્યતિરિક્ત (લિપ્ત) જે દ્રવ્યસ્કંધ છે, તેનું સ્વરૂપ સમજાવ-

तत्र सचित्तरूपं प्रथमं भेदं प्ररूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं सचित्ते दृवखंधे ? सचित्त दृवखंधे अणोग-
विहे पणत्ते, तं जहा—हयखंधे गयखंधे किन्नरखंधे किंपुरिसखंधे महो-
रगखंधे गंधवखंधे उसभखंधे । से तं सचित्ते दृवखंधे ॥सू० ४८॥

छाया—अथ कोऽसौ सचित्तो द्रव्यस्कन्धः ? सचित्तो द्रव्यस्कन्धोऽनेकविधः प्रज्ञप्तः,
तथा—हयस्कन्धो गजस्कन्धः किन्नरस्कन्ध- किम्पुरुषस्कन्धो महोरगस्कन्धो गन्धर्व-
स्कन्ध वृषभस्कन्धः । स एष सचित्तो द्रव्यस्कन्धः ॥सू० ४८॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ कोऽसौ सचित्तो
द्रव्यस्कन्धः ? इति । उत्तरमाह—‘सचित्ते दृवखंधे’ इत्यादि । चित्तं चेतना-
संज्ञानमुपयोगोऽवधानं मनोविज्ञानमिति पर्यायाः, चित्तेन सह वर्तते सचित्तः,
द्रव्यस्कन्धः अनेकविधः=व्यक्तिभेदात् अनेकप्रकारकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—हयस्कन्धः
हयः=अश्वः, स एव विशिष्टैकपरिणामपरिणतत्वात् स्कन्धो हयस्कन्धः, एवं
गजस्कन्धः, किन्नरादयो गन्धर्वान्ताः व्यन्तरविशेषाः । वृषभस्कन्धः—वृषभः—

सीखेगा वह भव्यशरीर द्रव्यस्कंध है ।—अब इन दोनों से व्यतिरिक्त जो द्रव्यस्कंध
है वह सचित्त, अचित्त और मित्र के भेद से ३ तीन प्रकार का है ॥सूत्र ४७॥

अब सूत्रकार सचित्त रूप प्रथम भेद की प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं सचित्ते दृवखंधे” इत्यादि । ॥ सूत्र ४८ ॥

शब्दार्थः—(से किं तं सचित्ते दृवखंधे) हे भदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त
(प्रारंभ किया हुआ) सचित्त द्रव्यस्कंध का क्या स्वरूप है ?

उत्तरः—(सचित्ते दृवखंधे अणोगविहे पणत्ते) सचित्त द्रव्यस्कंध
अनेक प्रकार का कहा गया है । (तंजहा) जैसे—(हयखंधे, गयखंधे किन्नर-

ववामां आवे छे तेना नीचे प्रमाणे त्रणु लेह कह्या छे (१) सचित्त, (२) अचित्त
अने (३) मिश्र. ॥ सू० ४७ ॥

हुवे सूत्रकार सचित्त रूप पडेला लेहनी प्ररूपणा करे छे.

“से किं तं सचित्ते दृवखंधे” इत्यादि—

शब्दार्थः—(से किं तं सचित्ते दृवखंधे?)

शिष्य गुरु महाराजने अवेा प्रश्न पूछे छे के हे लहन्त ! नोआगम शायक-
शरीर अने लव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्धना प्रथम लेहइय सचित्त द्रव्यस्कन्धनुं
केपुं स्वरूप कहुं छे.

उत्तर—(सचित्त दृवखंधे अणोगविहे पणत्ते) सचित्त द्रव्यस्कन्ध अनेक
प्रकारने कह्यो छे. (तंजहा) जेभ के (हयखंधे, गयखंधे, किन्नरखंधे, किंपुरिस-

बलीवर्दः स एव स्कन्धः वृषभस्कन्धः । जीवानां शरीरैः सह कथंचिदभेदे सत्यपि सच्चित्तस्कन्धाधिकारात् जीवानामेव च परमार्थतः सचेतनत्वादिह हयादिसम्बन्धिनो जीवा एव विवक्षिता नतु तदधिष्ठितशरीराणीति बोध्यम् । ननु जीवानां स्कन्धत्वं नोपपद्यते, पुद्गलप्रचयस्यैव स्कन्धत्वादिति चेन्न, जीवानां प्रत्येकमसंख्येय-

खंधे, किंपुरिसखंधे, महोरगखंधे, गंधव्वखंधे, उसभखंधे) हयस्कंध, गजस्कंध, किन्नरस्कंध, किंपुरुष स्कंध, महोरगस्कंध, गंधर्वस्कंध, वृषभस्कंध । चेतना, संज्ञान, उपयोग, अवधान, मन और विज्ञान ये सब चित्त के पर्यायवाची शब्द हैं ।

इस चित्त से जो युक्त होता है, उसका नाम सच्चित्त है । यह सच्चित्त स्कंध व्यक्तिभेद की अपेक्षा अनेक प्रकार का है । हय नाम अथ घोडा—का यह पुद्गल परमाणुओं की एक विशिष्ट पर्याय है । अतः यह स्कंध रूप है । इसी तरह से गजादि स्कंधों के विषय में भी जानना चाहिये । किन्नर से लेकर गंधर्व तक के स्कंध व्यन्तरदेव के भेद है । वृषभ नाम बैल का है जीवों का गृहीत शरीर के साथ कथंचित् अभेद हैं तो भी सच्चित्तस्कंध का अधिकार होने से यहाँ उन २ पर्यायों में रहे हुए जीवों में ही परमार्थतः सचेतनता होने के कारण वे हयादि संबन्धी जीव ही विवक्षित हुए हैं । तदधिष्ठित शरीर नहीं ।

शंकाः—यहां आप जीवों में स्कन्धता को कथन कर रहे हैं—तो यह

खंधे, महोरगखंधे, गंधव्वखंधे, उसभखंधे,) हयस्कंध, गजस्कंध, किन्नरस्कंध.

किंपुरुषस्कंध, महोरगस्कंध, गंधर्वस्कंध, अने वृषभस्कंध.

चेतना, संज्ञान, उपयोग, अवधान, मन, अने विज्ञान आ गधा चित्तना पर्यायवाची शब्दो छे. आ चित्तथी जे युक्त होय छे तेने सच्चित्त कह्ये छे. आ सच्चित्तस्कंध व्यक्तिभेदनी अपेक्षाअने अनेक प्रकारना छे. हय अटवे घोडा ते पुद्गल परमाणुअनी अनेक विशिष्ट पर्याय रूप छे. तेथी ते स्कंधरूप छे. अने प्रमाणे गजदि स्कंधाना विषयमां समजवुं.

किन्नरथी लधने व्यन्तर पर्यायाना स्कंधो व्यन्तर देवाना लेदरूप छे. वृषभ अटवे गज. अने गृहीत शरीरनी साथे अमुक रूपे अलेद छे, छतां पण सच्चित्त हयस्कंधने अधिकार आदतो होवाथी अहीं ते ते पर्यायामां रहेला अने परमार्थः (स्वभावतः) सचेतना होवाने लीधे ते हयादि संबन्धी अने विवक्षित थया छे तेमां अधिष्ठित (तदधिष्ठित) शरीरनी विवक्षा अहीं थई नथी.

शंका—आप अहीं अनेमां जे स्कन्धतानुं प्रतिपादन करतुं कथन करी रखा

प्रदेशात्मकत्वेन तेषां स्कन्धत्वस्य सुप्रतीतत्वात् । ननु हयस्कन्धादीनामन्यतरेण केनाप्युदाहरणेन सिद्धं किमेतैर्बहुभिरुदाहरणैरिति चेत्, उच्यते—आत्माऽद्वैतवाद-निराकर्तुं भिन्नस्वरूपविजातीयस्कन्धबहुत्वमाश्रित्य उदाहरणं प्रदर्शितम् । अतवादाङ्गीकारे सिद्धसंसारिव्यवहारोच्छेदप्रसंगात् । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—स एष सचित्तो द्रव्यस्कन्ध इति ॥सू० ४८॥

कथन जचता नहीं है । क्योंकि जो पुद्गल प्रचयरूप होता है उसमें ही स्कन्धता घटित होती है । जीव में नहीं क्योंकि यह पुद्गल प्रचयरूप नहीं है ।—

उत्तरः—ठीक है परन्तु यह ऐकान्तिक बात नहीं है, कि पुद्गलप्रचय में ही स्कन्धता घटित होती है । हरएक जीव असंख्यात प्रदेश है । इस अपेक्षा उनमें स्कन्धता सुप्रतीत है । अतः पुद्गलप्रचय रूप नहीं होने परभी असंख्यात प्रदेशात्मकता रूप प्रचयवाला होने से जीव में स्कन्धता सुघटित है ।

शंकाः—सचित् द्रव्यस्कन्धकी सिद्धि हयस्कन्ध आदि में से किसी एक भी उदाहरण से जब हो जाती है । तब फिर इन अनेक उदाहरणों को यहाँ प्रोट करने की क्या आवश्यकता हुई ? उत्तरः— आत्मा द्वैतवाद को निराकरण करने के लिये भिन्न स्वरूपवाले विजातीय स्कन्धों की अनेकता लेकर सूत्रकारने इन उदाहरणों को दिखलाया है ।

यदि केवल अद्वैतवाद को अंगीकार किया जावे तो सिद्ध और संसारी

छोते कथन उच्यते 'लागतुं नथी, कारणे के जे पुद्गलप्रचय इय होय तेमां ज स्कन्धता घटावी शक्य छे एवमां स्कन्धता घटावी शकती नथी कारणे के ते पुद्गलप्रचय इय नथी.

उत्तर "पुद्गलप्रचयमां ज स्कन्धता घटित थाय छे, ओवी केछ ओकास्तिक वात ज अही' प्रतिपादित थछ नथी. प्रत्येक एव असंख्यात प्रदेशयुक्त होय छे. ते दृष्टिओ विचार करवामां आवे तो तेमां स्कन्धता सुप्रतीत थाय छे. तेथी पुद्गलप्रचय इय नही' होवा छतां पणु असंख्यात प्रदेशात्मकता इय प्रचयवाणो होवाने कारणे एवमां स्कन्धता सुघटित ज छे ?

शंका—द्वयस्कन्ध आदि स्कन्धोमांथी केछ पणु ओक स्कन्धना उदाहरणु द्वारा सचित्त द्रव्यस्कन्धनुं प्रतिपादन करी शक्य ओम छे. छतां अही' अनेक उदाहरणु आपवा पाछण सूत्रकारनेो शो हेतु रहेलो छे.

उत्तर—आत्माद्वैतवादनुं निराकरणु करवाने माटे सिन्न सिन्न स्वरूपवाणा विजातीयस्कन्धोनी अनेकतानी अपेक्षाओ सूत्रकारे आ उदाहरणु पाताओया छे. जे मात्र अद्वैतवादनेो ज स्वीकार करवामां आवे, तो सिद्ध अने संसारीनेो जे व्यवहार छे तेना उच्छेदनेो प्रसंग प्राप्त थशे.

अचित्तद्रव्यस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं अचित्ते द्रव्यखंडे ? अचित्तं द्रव्यखंडे अणोग-
विहे पणत्तं, तं जहा—दुपएसिए तिपएसिए जाव दसपएसिए सं-
खिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए । से तं अचित्ते
द्रव्यखंडे ॥ सू० ४९ ॥

ज्ञाया—अथ कोऽसावचित्तो द्रव्यस्कन्धः ? अचित्तो द्रव्यस्कन्धः—अनेक-
विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—द्विप्रदेशिः त्रिप्रदेशिको यावत् दशप्रदेशिकः संख्येय
प्रदेशिकः असंख्येयप्रदेशिकः अनन्तप्रदेशिकः । स एषः अचित्तो द्रव्यस्कन्धः । ४९।

का जो व्यवहार है उसके उच्छेद का प्रसंग प्राप्त होगा । (से तं सचित्तं द्रव्य-
खंडे) इस प्रकार से यह सचित्त द्रव्यस्कन्ध है । ॥ सूत्र ४८ ॥

अब सूत्रकार अचित्त द्रव्यस्कन्धों का निरूपण करते हैं—

“से किं तं अचित्ते द्रव्यखंडे” इत्यादि । ॥ सूत्र ४९ ॥

शब्दार्थः—(से किं तं अचित्ते द्रव्यखंडे) हे भदन्त ! अचित्त द्रव्यस्कन्ध
का क्या स्वरूप है ? (अचित्ते द्रव्यखंडे अणोगविहे पणत्ते)
उत्तर—अचित्त द्रव्यस्कन्ध अनेक प्रकार का कहा गया है ।
(तं जहा) जैसे—(दुपएसिए तिपएसिए जाव दसपएसिए संखेज्जपएसिए असंखे-
ज्जपएसिए अणंतपसिए) दो प्रदेशवाला अचित्त द्रव्यस्कन्ध, तीन प्रदेशवाला
अचित्तद्रव्यस्कन्ध, यावत् दश प्रदेशवाला अचित्तद्रव्यस्कन्ध, संख्यात प्रदेशवाला
अचित्तद्रव्यस्कन्ध, असंख्यात प्रदेशवाला अचित्त द्रव्यस्कन्ध, और अनन्तप्रदेश-

(से तं द्रव्यखंडे) आ प्रकारे सचित्त द्रव्यस्कन्धना स्वइपत्तुं वल्लुं अड्डीं
समाप्तं थाय छे ॥ सू० ४८ ॥

इसे सूत्रकार अचित्त द्रव्यस्कन्धना स्वरेपत्तुं निरूपण करे छे—

“से किं तं अचित्त द्रव्यखंडे” इत्यादि—

शब्दार्थः—(से किं तं अचित्ते द्रव्यखंडे?) शिष्य गुरुने ओवो प्रश्न करे छे के
हे भगवन् ! पूर्वप्रस्तुत अचित्त द्रव्यस्कन्धत्तुं स्वइपत्तुं वल्लुं छे ?

उत्तर—(अचित्ते द्रव्यखंडे अणोगविहे पणत्ते) अचित्तद्रव्यस्कन्ध अनेक
प्रकारेणो कथ्यो छे. (तंजहा) नेम के...

(दुपएसिए, तिपएसिए जाव दसपएसिए, संखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसिए,
अणंतपएसिए) ये प्रदेशवाणे अचित्त द्रव्यस्कन्ध, तेषु प्रदेशवाणे अचित्त
द्रव्यस्कन्ध. ओज्ज प्रमाणे इस सुधीना प्रदेशवाणे अचित्त द्रव्यस्कन्ध, संख्यात

दीर्घा—“से क्रि तं” इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति—अथ कोऽसावचित्तो द्रव्यस्कन्धः ? उत्तरमाह—अचित्तो द्रव्यस्कन्धः—अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—द्विप्रदेशिकः—प्रकृष्टः पुद्गलास्तिकाय-देशःप्रदेशः प्रदेशः परमाणुरित्यर्थः, द्वौ प्रदेशौ च त्र स द्विप्रदेशिकः—स्कन्धः । एवं यावत्—अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः । स एषोऽचित्तो द्रव्यस्कन्धः ॥ सू० ४९॥

वाला अचित्त द्रव्यस्कन्ध । यह “प्रकृष्टः देशः प्रदेशः” इस व्युत्पत्ति के अनु-सार सब से अल्प परिमाणवाला पुद्गलास्तिकाय का जो देश है उसका नाम प्रदेश—परमाणु—है । संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला पुद्गलास्ति-काय का देश स्थान मूलरूप में परमाणु है ।

अनेक परमाणुओं के मेल से त्रयादि प्रदेशो स्कन्ध बनते हैं । ? पुद्गल परमाणु भी अस्तिकाय इसीलिए है कि वह नाना स्कन्धों का उत्पादक है—

भावार्थ—यहां पर सूत्रकारने अचित्त द्रव्यस्कन्ध का स्वरूप कहा है । उसमें दो प्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के जितने पुद्गलस्कन्ध हैं वे सब अचित्त द्रव्यस्कन्ध में परिगणित हुए हैं । दो परमाणु मिलकर द्विप्रदेशी स्कन्ध, तीन परमाणु मिलकर तीन प्रदेशी स्कन्ध यावत् अनन्त परमाणु मिलकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध बने हैं । ये सब अचित्त द्रव्यस्कन्ध हैं । ॥ सूत्र ४९ ॥

प्रदेशवाणो अचित्त द्रव्यस्कन्ध, असंख्यात प्रदेशवाणो अचित्त द्रव्यस्कन्ध, अने अनन्त प्रदेशवाणो अचित्त द्रव्यस्कन्ध ‘प्रकृष्टः देशः प्रदेशः’ आ व्युत्पत्ति अनु-सार सौथी अल्प परिमाणवाणो पुद्गलास्तिकायनो जे देश छे तेनुं नाम प्रदेश परमाणु छे संख्यात, असंख्यात अने अनन्त प्रदेशवाणा पुद्गलास्तिकायनो देश (अंश) भूणइये परमाणु छे.

अनेक परमाणुओना भेणथी (सथोगथी) द्रयादि प्रदेशी स्कन्ध बने छे. ओक पुद्गल परमाणु पणु विविध स्कन्धानुं उत्पादक होवाने कारणे अस्तिकाय रूप छे.

भावार्थ—अहीं सूत्रकारे अचित्त द्रव्यस्कन्धना स्वरूपनुं निरूपण कयुं छे. जे प्रदेशी स्कन्धथी लभने अनन्त प्रदेशी स्कन्ध पर्यन्तना जेटवा पुद्गल स्कन्धो छे, ते लभाने अहीं अचित्त द्रव्यस्कन्ध रूपे गणनावामां आण्यां छे. जे परमाणु भणीने द्विप्रदेशी स्कन्ध, त्रणु परमाणु भणीने त्रिप्रदेशी स्कन्ध, अने ओज परमाणु चार, पांच आदि अनन्त पर्यन्तना परमाणु भणीने चार प्रदेशी, पांच प्रदेशी आदि अनन्त प्रदेशी पर्यन्तना स्कन्धो बने छे. ते लभाने स्कन्धो अचित्त द्रव्यस्कन्धो छे. ॥ सू० ४९ ॥

अथ मिश्रद्रव्यस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं मीसए दव्वखंधे ? मीसए दव्वखंधे अणेग-
विहे पणत्त, तं जहा—सेणाए अग्गिमे खंधे, सेणाए मज्झिमे खंधे,
सेणाए पच्छिमे खंधे, से तं मीसए दव्वखंधे ॥सू० ५०

छाया—अथ कोऽसौ मिश्रको द्रव्यस्कन्धः ? मिश्रको द्रव्यस्कन्धः—
अनेकविधः प्रज्ञेसः, तद्यथा—सेनाया अग्रिमःस्कन्धः सेनाया मध्यमः—स्कन्धः,
सेनायाः पश्चिमः स्कन्धः । स एष मिश्रको द्रव्यस्कन्धः ॥सू० ५०॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ कोऽसौ मिश्रको द्रव्यस्कन्धः ? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरमाह—मिश्रकः—
सचेतनाचेतन संकीर्णो मिः, स एव मिश्रकः, एवंविधो द्रव्यस्कन्धः अनेक

अब सूत्रकार मिश्रद्रव्यस्कंध का वर्णन करते हैं,—

‘से किं तं मीसए’ इत्यादि । ॥ सूत्र ५०॥

शब्दार्थ—(से किं तं मीसए दव्वखंधे) हे भदन्त । मिश्र द्रव्यस्कंध का
क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(मीसए दव्वखंधे अणेगविहे पणत्त) मिश्रद्रव्यस्कंध अनेक प्रकार
का कहा गया है । (तं जहा) जैसे—(सेणाए अग्गिमेखंधे, सेणाए मज्झिमेखंधे
सेणाए पच्छिमे खंधे, से तं मीसए दव्वखंधे) सेना का अग्रिम स्कंध, सेना
का मध्यमस्कंध, सेना का पश्चिमस्कंध) इस प्रकार से यह मिश्र द्रव्यस्कंध है
सचेतन और अचेतन इन दोनों का मिश्रण जहां होता है उसका नाम मिश्र

इसे सूत्रकार मिश्र द्रव्यस्कन्धत्वं निरूपयति कहे छे—

‘से किं तं मीसए’ इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं मीसए दव्वखंधे) हे भदन्त । मिश्र द्रव्यस्कन्धत्वं
स्वरूपं केषुं छे.

उत्तर—(मीसए दव्वखंधे अणेगविहे पणत्ते) मिश्र द्रव्यस्कन्धना अनेक प्रकार
कहा छे. (तंजहा) जेभ क्के.....

सेणाए अग्गिमे खंधे, सेणाए मज्झिमे खंधे, सेणाए पच्छिमे खंधे, से तं
मीसए दव्वखंधे) (१) सेनानो अग्रिम स्कन्ध, (२) सेनानो मध्यमस्कन्ध अने (३)
सेनानो पश्चिम (अन्तिम) स्कन्ध आ प्रकारत्वं आ मिश्र द्रव्यस्कन्धत्वं स्वरूपं छे.

प्रकारकः प्ररूपितः, तद्यथा—सेनाया अग्रिमः स्कन्धः—हस्त्यश्वरथपदातिकवचखड्ग-
कुन्तधनुर्बाणादिसमुदायरूपासेना तस्या अग्रिमः स्कन्धः=अग्रभागो मिश्रकः
स्कन्धः । तथा—सेनाया मध्यमः स्कन्धः पश्चिमः=पृष्ठवर्ती स्कन्धश्च मिश्रकःस्कन्धः ।
हस्त्यादयश्चात्र सचेतनाः, कवचादयश्चाचेतनाः । इत्थं सचेतनाचेतनवत्त्वात् मिश्र-
कत्वं बोध्यम् । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—स एष मिश्रको द्रव्यस्कन्ध इति सू० ५० ॥

अथ प्रकारान्तरेण ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे
पणत्ते, तं जहा-कसिणखंधे, अकसिणखंधे अणेगदवियखंधे ।सू० ५१।

छाया—अथवा ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धस्त्रिविधः
प्रज्ञप्तः, तद्यथा—कृत्स्नस्कन्धः, अकृत्स्नस्कन्धः, अनेकद्रव्यस्कन्धः ॥५१॥

टीका—‘अहवा’ इत्यादि—व्याख्यानिगदसिद्धा ॥५१॥

है । सेना इन दोनों की संमिश्रणरूप अवस्था है । इसमें हस्ती, अश्व, रथ,
प्यादे, कवच, तलवार, भाला, धनुष, और बाण आदि का संबन्ध रहना है ।
इनका समुदाय ही तो सेना है इसमें हस्ती आदि सचेतन पदार्थ हैं । इन
दोनों का संमिश्रण इसमें रहता है । इसलिये इसे मिश्र द्रव्यस्कन्ध कहा है । सू. ५०।

अब दूसरी तरह सूत्रकार ज्ञायकशरीर भव्यशरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्ध
का निरूपण करते हैं—“अहवा जाणयसरीरभवियसरीर” इत्यादि । ॥सूत्र ५१॥

शब्दार्थ—(अथवा ज्ञायकशरीर भव्यशरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्ध तीन
प्रकार कहा गया है । (तं जहा) जैसे कृत्स्नस्कंध, अकृत्स्नस्कंध और अनेक
द्रव्यस्कंध । इसकी व्याख्या पहिले जैसी जाननी चाहिये ॥ सूत्र ५१॥

सचेतन अने अचेतन, आ अन्नेनुं मिश्रणु जेमां थयेलुं डोय छे तेने मिश्र
कडे छे. सेना आ अन्नेना संमिश्रणुइप अवस्थाथी संपन्न डोय छे. तेमां हाथी,
घोडा रथ, पायदण, कवच, तलवार, भाला, धनुष अने बाणु आदि सञ्चित्त अञ्चित्त
पदार्थोना सहलाव रहे छे, तेना समुदायने ज सेना कडे छे. तेमां हाथी, घोडा,
सैनिके आदि सचेतन पदार्थो डोय छे, अने तलवार, कवच, भाला आदि अचे-
तन पदार्थो पणु डोय छे. तेमां सचेतन अने अचेतन, अन्नेनुं संमिश्रणु रहे छे.

ते कारणे तेने मिश्र द्रव्यस्कन्ध इपे अर्ही प्रकट करवामां आवेल छे ॥ सू. ५० ॥
डवे सूत्रकार ज्ञायकशरीर अने लव्यशरीरथी लिन्न जेवा तद्रव्यतिरिक्त द्रव्य-
स्कन्धनुं निरूपणु भीलु रीते करे छे—‘अहवा जाणयसरीरभवियसरीर’ इत्यादि—

शब्दार्थ—अथवा ज्ञायकशरीर अने लव्यशरीरथी लिन्न जेवा द्रव्यस्कन्धना
त्रणु प्रकार कहा छे. (तंजहा) ते त्रणु प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(१) कृत्स्नस्कंध,
अकृत्स्नस्कंध अने अनेक द्रव्यस्कन्ध ते त्रणुना स्वरूपनु निरूपणु डवे पछीना सूत्रोमां
करवामां आवशे. ॥ सू. ५१ ॥

તત્રાગ્રભેદં નિરૂપયતિ—

મૂલમ્—સે કિં તં કસિણસ્કંધે ? કસિણસ્કંધે સે ચેવ હયસ્કંધે, ગયસ્કંધે । સે ત કસિણસ્કંધે સૂ૦ ૫૨

છાયા—અથ કોઽસૌ કૃત્સ્નસ્કન્ધઃ ? કૃત્સ્નસ્કન્ધઃ સ એવ હયસ્કન્ધો ગજસ્કન્ધો યાવદ્ વૃષભસ્કન્ધઃ । સ એષ કૃત્સ્નસ્કન્ધઃ ॥૫૨॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ ।

અથ કોઽસૌ કૃત્સ્નસ્કન્ધઃ ? ઉત્તરમાહ—કૃત્સ્નસ્કન્ધઃ—જીવાપેક્ષયા પ્રદેશાનાં પરિપૂર્ણત્વાત્ કૃત્સ્નઃ પરિપૂર્ણઃ, સ ચાસૌ સ્કન્ધઃ, અયં તુ સ એવ=પૂર્વોક્ત એવ હયસ્કન્ધો—ગજસ્કન્ધો યાવદ્ વૃષભસ્કન્ધો વિજ્ઞેયઃ ।

નનુ—હયસ્કન્ધાદીનામે ત્રાપિ ઉદાહરણત્વેન નિર્દિષ્ટત્વાત્ સચિત્સ્કન્ધસ્યૈવ સંજ્ઞાન્તરેણ પ્રકારાન્તરત્વમુક્તમ્, નત્વત્ર જ્ઞાયકશરીરભવઃશરીરવ્યતિરિક્ત

‘સે કિં તં કસિણસ્કંધે’ ઇત્યાદિ ॥સૂત્ર ૫૨॥

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં કસિણસ્કંધે) હે ભદન્ત કૃત્સ્નદ્રવ્યસ્કંધકા કયા સ્વરૂપ હૈ ? (કસિણસ્કંધે સે ચેવ હયસ્કંધે ગયસ્કંધે જાવ ઉસભસ્કંધે) ઉત્તર—હયસ્કંધ ગજસ્કંધ સે લેકર વૃષભસ્કંધ તક્ર જો સચિત્સ્કંધ ૪૮ વેં સૂત્ર મેં પ્રકટ કિયા ગયા હૈ—વહી કૃત્સ્નસ્કંધ હૈ । પરિપૂર્ણસ્કંધ કા નામ કૃત્સ્નસ્કંધ હૈ । ઇસ કંધ મેં જીવ કી અપેક્ષા પ્રદેશોં કી પરિપૂર્ણતા રહતી હૈ ।

શંકા—સૂત્રકારને ઇસ કૃત્સ્નસ્કંધ મેં મી હયાદિકોં કો હી ઉદાહરણરૂપ સે નિર્દિષ્ટ કિયા હૈ । ઓર સચિત્ દ્રવ્યસ્કંધ મેં મી ઉન્હેં હી ઉદાહરણરૂપ સે કહા હૈ તો ઇન્કે ઇસ વચન સે યહી જ્ઞાત હોતા હૈ કિ સચિત્ દ્રવ્યસ્કંધ હી

‘સે કિં તં કસિણસ્કંધે’ ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(સે કિં કસિણસ્કંધે?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૃષ્ઠિ છ કે હે લગવન્ ! કૃત્સ્ન દ્રવ્યસ્કંધનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(કસિણસ્કંધે સે ચેવ હયસ્કંધે ગયસ્કંધે જાવ ઉસભસ્કંધે) હયસ્કંધ, ગજસ્કંધ આદિ વૃષભસ્કંધ પર્યાનના જે સચિત્ ૪૮માં સૂત્રમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે, એ સચિત્ સ્કંધો જ કૃત્સ્ન દ્રવ્યસ્કંધ રૂપ છે પરિપૂર્ણ સ્કંધનું નામ કૃત્સ્ન સ્કંધ છે. આ સ્કંધમાં જીવની અપેક્ષાએ પ્રદેશોની પરિપૂર્ણતા રહે છે.

શંકા—સૂત્રકારે આ કૃત્સ્નસ્કંધમાં પણ અસ્વ વિગેરેના ઉદાહરણરૂપથી બતાવેલ છે, અને અચિત્ દ્રવ્યસ્કંધમાં પણ તેમને જ ઉદાહરણરૂપે પ્રકટ કર્યા છે. તેમના આ કથનથી એજ વાત બાણવા મળે છે કે સચિત્ દ્રવ્યસ્કંધને જ અહીં

द्रव्यस्कन्धस्य भेदा तरत्वम् अतः कृत्स्नस्कन्धत्वादिना पुनरभिधानमनर्थकमिति चे
दुच्यते-पूर्वं सचित्त-द्रव्यस्कन्धाधिष्ठात् तथाऽसम्भविनोऽपि बुद्ध्यां निष्कृष्य
उक्ता, इहतु जीवतदधिष्ठित शरीरावयवक्षणः समुदायः कृत्स्नस्कन्धत्वेन विव-
क्षित इत्यतोऽभिधेयभेदात् सिद्धं भेदान्तरत्वम् । अस्त्येवं, तथापि हयस्कन्धस्य
कृत्स्नत्वं नोपपद्यते, तदपेक्षया गजस्कन्धस्य बृहत्तरत्वादिति चेन्मैवम्, असंख्येय
प्रदेशात्मको जीवस्तदधिष्ठिताश्चशरीरावयवा इत्येवं रूपः समुदायो हयादिस्कन्धत्वेन
विवक्षित इति जीव्यासंख्येयप्रदेशात्मकत्वेन सर्वत्र तुल्यतया गजादि स्कन्ध
स्य बृहत्तरत्वासिद्धेः । प्रकृतमुपसहरन्नाह—'से तं' इति । स एष कृत्स्नस्कन्ध इति ॥५२॥

नामान्तर से प्रकारान्तररूप में बहे गये हैं । अतः इस तरह से कृत्स्नस्कन्ध आदि
रूप से—पुनः बथन करना—सचित्त द्रव्यस्कन्ध का विवेचन करना ठीक नहीं है ?

उत्तर सचित्तद्रव्यस्कन्ध में हयादि संबन्धी जीवों की ही उनके शरीर से
उन्हें अपनी बुद्धि द्वारा पृथक् निकालकर विवक्षा हुई है—उन्के शरीर की नहीं
परन्तु इस कृत्स्नस्कन्ध में जीव और जीवाधिष्ठित शरीरावयव इन दोनों रूप जो
समुदाय है उसकी विवक्षा हुई है । इस तरह अभिधेय के भेद से सचित्त
द्रव्यस्कन्ध में और इस कृत्स्नस्कन्ध में परस्पर में भेद है ।

शंका—इस तरह भेद भले रहे—तो भी हय स्कन्ध में कृत्स्नता नहीं
बनती है । क्यों कि हयस्कन्ध की अपेक्षा गजरकंध बहुत बड़ा होता है ।

उत्तर—ऐसा नहीं है क्योंकि हयादिस्कन्धों में असंख्यातप्रदेश जीव और
इस जीव से अधिष्ठित शरीरावयव इन दोनोंरूप समुदाय विवक्षित है—एक

नामान्तर द्वारा (कृत्स्नस्कन्ध रूप अन्य नाम द्वारा) प्रकट करवाया आवेद छे, तो
सचित्त द्रव्यस्कन्धतु अर्ही इरीथी कृत्स्नद्रव्यस्कन्धने नामे विवेचन करवुं ते योग्य
गणाय नर्ही.

उत्तर—सचित्त द्रव्यस्कन्धमां अर्वादि संबन्धी लुवोनी न तेमना शरीरथी
तेमने पोतानी (सूत्रकारनी) लुद्धि द्वारा पृथक् (अलग) करी नाणीने-विवक्षा थछ
छे-तेमनां शरीरनी विवक्षा थछ नथी. परन्तु आ कृत्स्नस्कन्धमां लुव अने लुवा-
धिष्ठित शरीरावयव आ लने रूप न समुदाय छे. तेनी विवक्षा थछ छे. आ रीते
अभिधेयना लेदनी अपेक्षाओ सचित्त द्रव्यस्कन्ध अने आ कृत्स्न द्रव्यस्कन्धमां पर-
स्पर लेद छे.

शंका—आ प्रकारने लेद लले होय, छतां पणु हयस्कन्धमां कृत्स्नता घटित
थती थी, कारण के हयस्कन्ध (अर्वाकन्ध) करतां गजस्कन्ध घणो मोटो होय छे.

उत्तर—ओवुं कथन योग्य नथी, कारण के हयादिस्कन्धोमां असंख्यात लुव
प्रदेशो अने ते लुव वडे अधिष्ठित शरीरावयवो लने रूप समुदाय विवक्षित छे.

अथ—अकृत्स्नस्कंधं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं अकसिणखंधे ? अकसिणखंधे सो चेव दुपए-
सियाइखंधे जाव अणंतपएसिए खंधे । से तं अकसिणखंधे । सू० ५३ ॥

जीव में असंख्यात प्रदेश होता है । इस प्रकार असंख्यात प्रदेशरूप से जीव की सर्वत्र तुल्यता है । अतः गजादस्कंधों में बृहत्तरता की असिद्धि है । (से तं कसिणखंधे) इस तरह यह कृत्स्नस्कंध का स्वल्प है ।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा दूसरी तरह से तद्व्यतिरिक्त द्रव्यस्कंध के भेदों का बथन किया है । इन में जो कृत्स्नस्कंध है उस में तत् ? जीव और तत्त जीवाधिष्ठितशरीरावयवरूपसमुदाय विवक्षित हुआ है । इस तरह हयस्कंध अपने रूप से गजादिस्कंध अपने रूप से अपने २ में पूर्ण हैं । इसलिये ये स्कंध कृत्स्नस्कंध हैं । आत्मा को शास्त्रकारोंने असंख्यात प्रदेशी कहा है । ये प्रदेश चाहे हयस्कंध हो चाहे गजस्कंध हो सब में पूर्ण रहते हैं । यही इनकी अपने-अपने स्कंध में पूर्णता है । सचितद्रव्यस्कंध में तत्त जीवाधिष्ठितशरीर विवक्षित नहीं है वहां तो केवल उस शरीर में वर्तमान जीव ही विवक्षित है । इस प्रकार कृत्स्नस्कंध में और—सचित द्रव्यस्कंध में अन्तर जानना चाहिये । ॥ सू० ५२ ॥

એક જીવમાં અસંખ્યાત પ્રદેશો હોય છે. આ પ્રકારે અસંખ્યાત પ્રદેશીરૂપે જીવની સર્વત્ર તુલ્યતા (સમાનતા) છે. તેથી ગજાદિ સ્કન્ધોમાં અશ્વાદિ સ્કન્ધો કરતાં અધિકતા સિદ્ધ થતી નથી. (સે તં કસિણસ્કન્ધે) આ પ્રકારનું સ્કન્ધનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા તદ્વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યસ્કન્ધના ભેદોનું ખીજી રીતે કથન કર્યું છે. તેમાંથી જે કૃત્સ્નસ્કન્ધ છે તેમાં તે તે જીવ અને તે તે (હય, ગજાદિ) જીવાધિષ્ઠિત શરીરાવયવ રૂપ સમુદાય વિવક્ષિત થયો છે. આવી રીતે હય-સ્કન્ધ અને ગજાદિ સ્કન્ધ પોતપોતાને રૂપે પરિપૂર્ણ છે. તેથી તે સ્કન્ધને કૃત્સ્નસ્કન્ધ કહેવામાં આવેલ છે. આત્માને શાસ્ત્રકારોએ અસંખ્યાત પ્રદેશી કહ્યો છે તે પ્રદેશ ભલે હયસ્કન્ધ હોય અથવા ભલે ગજસ્કન્ધ હોય બધામાં 'પૂર્ણ' રહે છે એજ તેમની પોતપોતાના સ્કન્ધમાં 'પૂર્ણતા' છે. સચિત્તદ્રવ્યસ્કન્ધમાં તે તે (અશ્વ, ગજ આદિ પ્રત્યેક) જીવાધિષ્ઠિત શરીર વિવક્ષિત થયું નથી, ત્યાં તે કેવળ તે તે શરીરમાં રહેલા જીવના જ વિવક્ષા થઈ છે. આ પ્રકારનું કૃત્સ્નસ્કન્ધ અને સચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ વચ્ચેનું અંતર (તદ્વ્યતિ) સમજવું. ॥ સૂ. ૫૨ ॥

छाया—अथ कोऽसौ अकृत्स्नस्कन्धः ? अकृत्स्नस्कन्धः स एव द्विप्रदेशिकादिस्कन्धो यावत् अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः । स एव अकृत्स्नस्कन्धः ॥५३॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ कोऽसावकृत्स्नस्कन्धः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—अकृत्स्नस्कन्धः—न कृत्स्नः—अकृत्स्नः, स चासौ स्कन्धश्चेति, अकृत्स्नस्कन्धः—य मादन्योऽपि बृहत्तरः स्कन्धोऽस्ति सोऽपरिपूर्णत्वादकृत्स्नस्कन्ध इत्यर्थः, स तु स एव पूर्वोक्त द्विप्रदेशिकादि स्कन्धो यावत् अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः । द्विप्रदेशिकः स्कन्धास्त्रिप्रदेशिकापेक्षयाऽकृत्स्नः, त्रिप्रदेशिकश्चतुः प्रदेशिकापेक्षयाऽकृत्स्न इत्युत्तरोत्तरापेक्षया

अत्र सूत्रकार अकृत्स्नस्कन्ध का कथन करते हैं—

“से किं तं अकसिणखंधे ?” इत्यादि । ॥सूत्र ५३॥

शब्दार्थ—(से किं तं अकसिणखंधे सो चेव दुपएसियाइखंधे जाव अणत्तपएसिए खंधे) अकृत्स्नस्कन्ध का स्वरूप इस प्रकार से है—कि जो द्विप्रदेशिक आदि स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशिक तक के स्कन्ध हैं वे सब अकृत्स्नस्कन्ध हैं । जिस स्कन्ध से और भी कोई दूसरा बहुत बड़ा स्कन्ध होता है—वह अपरिपूर्ण होने के कारण अकृत्स्नस्कन्ध है । ऐसे अपरिपूर्ण ये सब द्विप्रदेशिकवाले स्कन्ध से लेकर अनन्त प्रदेश तक के स्कन्ध हैं । इनमें अपरिपूर्णता इस प्रकार से है कि जो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है वह त्रिप्रदेशिकस्कन्ध की अपेक्षा न्यून होने से अपरिपूर्ण होता है, त्रिप्रदेशिकस्कन्ध चतुः प्रदेशिक स्कन्ध की अपेक्षा न्यून होने से अपरिपूर्ण होता है । इस तरह उत्तरोत्तर की

इसे सूत्रकार अकृत्स्नस्कन्धत्वं निरूपण करे छे—

“से किं तं अकसिणखंधे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं अकसिणखंधे?) शिष्य गुरुने अवेो प्रश्न पूछे छे डे डे गुरुमहाराज ! अकृत्स्न स्कन्धत्वं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर—(अकसिणखंधे सो चेव दुपएसियाइखंधे जाव अणत्तपएसिए खंधे) अकृत्स्नस्कन्धत्वं स्वरूप आ प्रकारत्वं छे जे द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धोथी लधने अनन्तप्रदेशिक पर्यन्तना स्कन्धो छे, ते यथां अकृत्स्नस्कन्धो छे, जे स्कन्ध करतां पधारे मोठो डोछ, भीजे स्कन्ध डोछ शके छे, ते स्कन्ध अपरिपूर्ण होवाने कारणे अकृत्स्न स्कन्ध गणाय छे, द्विप्रदेशीथी लधने अनन्त प्रदेशी पर्यन्तना समस्त स्कन्धो आ शीते अपरिपूर्ण जे होय छे, तेमां अपरिपूर्णता आ प्रकारे समजवी जेधअये जे द्विप्रदेशिक स्कन्ध होय छे ते त्रिप्रदेशिक स्कन्ध करतां न्यून होवाथी अपरिपूर्ण होय छे, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध चतुःप्रदेशिक स्कन्ध करतां न्यून होवाथी अपरिपूर्ण होय छे, अज प्रमाणे उत्तरोत्तर स्कन्धो करतां प्रत्येक पूर्वना (आगणना) स्कन्धमां न्यून-

पूर्वपूर्वोऽकृत्सो बोध्यो यावत्कृत्स्नता नायाति ! पूर्वद्विप्रदेशिकादिः सर्वोऽकृष्ट-
प्रदेशश्च स्कन्धाः सामान्येनाचित्ततया प्रोक्तः, इह तु सर्वोऽकृष्टस्कन्धादधोवर्ति एवा-
चित्तस्कन्धा उत्तरोत्तरोत्तरापेक्षया पूर्वपूर्वतरा अकृत्स्नस्कन्धत्वेनोक्ता इः युभयोर्भेदः ॥५३॥

अपेक्षा से पूर्व २ का स्कंध अकृत्स्न कथ जानना चाहिये । यह अकृत्स्नता तबतक चलती है कि जब तक कृत्स्नता नहीं आती है ।— द्विप्रदेशिक आदि स्कंध और समस्त और समस्त उकृष्ट प्रदेशवाले स्कंध पहिले सामान्य रूप से अचित्त कहे गये हैं । परंतु इस अकृत्स्न द्रव्य स्कंध के प्रवरण में सर्वो-
त्कृष्ट स्कंध से पहिले के ही स्कंध उत्तरोत्तर की अपेक्षा से अकृत्स्नस्कंधरूप से कहे गये हैं । यही इन दोनों में भेद है—

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा अकृत्स्नस्कन्ध का वरूप और अकृ-
त्स्नस्कंध में तथा अचित्तस्कंध में क्या अन्तर है यह प्रवट किया है । आपे-
क्षिक अचित्त स्कंधों की अपरिपूर्णता का नाम अकृत्स्नता है । यह अकृत्स्नता
द्विप्रदेशी आदि स्कंधों में त्रिप्रदेशी आदि स्कंधों की अपेक्षा आती है ।
और यह आपेक्षिक अकृत्स्नता तबतक मानी जाती है कि जबतक अन्त में
कृत्स्नता नहीं आ जाती है । इसके आते ही अन्त का स्कंध कृत्स्न होने से
फिर आगे के लिये अकृत्स्नता की द्वारा रु जाता है । इस प्रकार कृत्स्नता

તાની અપેક્ષાએ તેમાં અપરિપૂર્ણતા સમજવી આ અપરિપૂર્ણતાને કારણે જ તેમને
અકૃત્સ્નસ્કન્ધ કહેવામાં આવ્યા છે. આ અકૃત્સ્નતા ત્યાં સુધી ચાલુ રહે છે કે જ્યાં
સુધી કૃત્સ્નતા (પરિપૂર્ણતા) આવતી નથી.

द्विप्रदेशिक आदि स्कंध अने समस्त उकृष्ट प्रदेशवाला स्कंधोने पहिलों
सामान्यरूपे अचित्त कहेवामें आव्या छे. परन्तु आ अकृत्स्न द्रव्यस्कंधना प्रकरणुमें
सर्वोत्कृष्ट स्कन्धोनी आगणना स्कन्धोने उत्तरोत्तरनी अपेक्षाओ अकृत्स्नस्कन्धरूपे
कहेवामें आव्या छे. ओटवो ज अचित्तस्कन्ध अने अकृत्स्नस्कन्ध वरुये तद्भावत छे.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા અકૃત્સ્નસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કર્યું છે,
તથા અકૃત્સ્નસ્કન્ધ અને અચિત્ત સ્કન્ધ વચ્ચે શો તફાવત છે તે પણ પ્રકટ કર્યું
છે. આપેક્ષિક અચિત્તસ્કન્ધોની અપરિપૂર્ણતાનું નામ જ અકૃત્સ્નતા છે. દ્વિપ્રદેશિક
આદિ સ્કન્ધોમાં ત્રિપ્રદેશી આદિ સ્કન્ધો કરતાં અકૃત્સ્નતા (અપરિપૂર્ણતા) રહેલી
હોય છે. આ આપેક્ષિક અકૃત્સ્નતાનો સદ્ભાવ રહે છે કે જ્યાં સુધી અન્તે કૃત્સ્ન-
તા (પરિપૂર્ણતા) આવી જતી નથી આ પ્રકારે જ્યારે કૃત્સ્નતા આવી જાય છે ત્યારે
અન્તમ સ્કન્ધ (ઉત્કૃષ્ટ પ્રદેશોવાળો સ્કન્ધ)કૃત્સ્ન સ્કન્ધ થઈ જવાને કારણે ત્યારબાદ
અકૃત્સ્નતાની ધારા અટકી જાય છે. આ રીતે કૃત્સ્નસ્કન્ધો કરતાં પહેલાંના સ્કન્ધો

मूलम्—से किं तं अणेगदवियखधे ? अणेगदवियखधे—तस्स
 चेव देसे अवचिए तस्स चेव देसे उवचिए, से तं अणेगदवियखध
 से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्त दव्वखधे, से तं नी आगमओ
 दव्वखधे, से तं दव्वखधे ॥ सू० ५४ ॥

छाया—अथ कोऽसौ अनेकद्रव्यस्कन्धः ? अनेकद्रव्यस्कन्धः—तस्यैव देशोऽपचितः
 तस्यैव देशोऽपचितः । स एषः अनेकद्रव्यस्कन्धः स एष ज्ञाय कशरीरभव कशरीरव्यति-
 रिक्तो द्रव्यस्कन्धः, स एष नोआगतो द्रव्यस्कन्धः । स एष द्रव्यस्कन्धः ॥ ५४ ॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ कोऽसौ अनेकद्रव्यस्कन्धः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह अनेक-
 द्रव्यस्कन्धः—अनेकद्रव्यथासौ स्कन्धश्चेति कर्मधारयः, स तु यद्विपस्तथोच्यते ‘तस्स

से पहिले २ के स्कन्धों में पूर्व २ की अपेक्षा कृत्स्नता और उत्तर २ की
 अपेक्षा अकृत्स्नता सापेक्षिक सध जाती है । अन्त के कृत्स्नस्कन्ध में कृत्स्नता
 सापेक्षिक नहीं है किन्तु स्वाभाविक होती है । अचित्त द्रव्यस्कन्ध में द्वि-
 प्रदेशी आदि समस्त अचित्त स्कन्धों में सामान्यरूप से अचित्तता प्रकट की
 गई है और अकृत्स्नस्कन्ध में सर्वोत्कृष्ट स्कन्ध से पहिले पहिले के स्कन्धों में
 अपरिपूर्णता । इस प्रकार इन दोनों में अंतर कहा गया है ॥ सूत्र ५३-॥

अब सूत्रकार अनेक द्रव्यस्कन्ध को कहते हैं—

“से किं तं” इत्यादि । ॥ सूत्र ५४ ॥

मां तेमना पूर्वं पूर्वा (आगण-आगणना) स्कन्धोनी करतां कृत्स्नता अने उत्तरोत्तर
 (पाछण-पाछणना) स्कन्धोनी अपेक्षा अकृत्स्नता सापेक्षिकरीते धृति कथं जय छे.
 अन्तिम कृत्स्नस्कन्धमां कृत्स्नता सापेक्षिक होती नथी, पणु स्वाभाविक होय छे,
 कारणु के तेना करतां मोटो कोरि स्कन्ध न होतो नथी, पणु तेना करतां नाना तेनी
 आगणना स्कन्धो होय छे.

अचित्त द्रव्यस्कन्धमां—द्विप्रदेशी आदि समस्त अचित्त स्कन्धोमां सामान्यरूपे
 अचित्तता प्रकट करवामां आवी छे. अने अकृत्स्नस्कन्धमां सर्वोत्कृष्ट स्कन्धथी आग-
 णना (पहेलांना) स्कन्धोमां अपरिपूर्णता प्रकट करवामां आवी छे. आ प्रकारणुं ते
 अने वच्येणुं अंतर (तक्षवत) कहेवामां आणुं छे. ॥ सू० ५३ ॥

हुवे सूत्रकार अने द्रव्यस्कन्धोना स्वइपणुं निरूपणुं करे छे.

‘से किं तं अणेगदवियखधे’ इत्यादि—

चेव' इत्यादिना । तरयैव=सकन्धयैव यो देशः=नखदन्तकेशादिलक्षणो भागः
अपचितः=जीवप्रदेशैर्विरहितो भवति, तथा-तरयैव=सकन्धयैव यो देशः=पृष्ठी-
दरकरचरणादिलक्षणो भाग उपचितः=जीवा दशैर्व्याप्तो भवति, सोऽनेकद्रव्यस्कन्धो
बोध्यः । अयं भावः-तयोर्द्वयोस्तु देशयोर्विशिष्टैकपरिणामपरिणतयो र्यो देहाख्यः
समुदायः सोऽनेकद्रव्यस्कन्धः, सचेतनाचेतनानेकद्रव्यात्मकत्वादिति । अयमनेक
द्रव्यस्कन्धः सामर्थ्यात्तुरगादिसकन्ध एव प्रतीयते ।

ननु तर्हि कृत्स्नस्कन्धादस्य को विशेषः ? इति चे दुच्यते-कृत्स्नसकन्धस्तु

शब्दार्थ- (से किं तं अणो गदवियखधे) हे भद्रत ! अनेक द्रव्यस्कन्ध का
क्या स्वरूप है । (अणो गदवियखधे) उत्तर-अनेक द्रव्यस्कन्ध का स्वरूप जैसा
है-वैसा-हम कहते हैं (तस्स चेव देसे अवचिए तस्स चेव देसे उवचिए) स्कन्ध
का जो नख वेश दन्त, आदिरूप भाग है, वह अपचित-जीवप्रदेशों से
रहित-होता है, तथा उसी स्कन्ध का जो पृष्ठ, उदर, कर, चरण आदिरूप
भाग है, वह उपचित-जीवप्रदेशों से व्याप्त रहता है (से तं अणो गदविय-
खधे) वह अनेक द्रव्यस्कन्ध है । इसका तात्पर्य यह है कि इन दोनों भागों
का कि जो एक विशिष्ट आकार में परिणत रहते हैं. देहरूप समुदाय अनेक
द्रव्यस्कन्ध है ।

क्योंकि यह समुदाय सचेतन और अचेतनरूप अनेक द्रव्यात्मक है ।
यह अनेक द्रव्यद्रस्कन्ध सामर्थ्य से तुरगादिसकन्ध-हयादिसकन्ध ही प्रतीत होता है ।
शंका-जब यह अनेक द्रव्यस्कन्ध हयादिसकन्धरूप प्रतीत होता है तो

शब्दार्थ (से किं तं अणो गदवियखधे ?) शिष्य गुर्ने अवेो प्रश्न करे
छे के हे गुर् मडाराण ! अनेक द्रव्यस्कन्धनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर--(अणो गदवियखधे) अनंत द्रव्यस्कन्धनुं स्वरूप आ प्रकारनुं कहुं छे-
(तस्स चेव देसे अवचिए तस्स चेव देसे उवचिए) स्कन्धनो जे नण, केश, दांत
आदिरूप भाग डोय छे ते अपचित-एवप्रदेशोभांथी रहित-डोय छे, तथा जे
स्कन्धना जे पृष्ठ, उदर, हाथ, पग आदिरूप भागो छे तेओ उपचित-एव प्रदेशोथी
व्याप्त-रहे छे. (से तं अणो गदवियखधे) आ प्रकारनुं अनेक द्रव्यस्कन्धनुं स्वरूप
छे. आ कथननुं तात्पर्य अे छे के ते अन्ने भागो (अपचित अने उपचित भागो)
के जे ओक विशिष्ट आकारे परिणत थधने तेमनो जे देहरूप समुदाय अने छे तेने
अनेकद्रव्यस्कन्ध कहेवामां आवे छे कारणु के ते समुदाय सचेतनरूप अने अचेतन
रूप अनेक द्रव्यात्मक डोय छे आ अनेक द्रव्यस्कन्ध तुरगादिसकन्ध (अस्वादिसकन्ध)
समान जे भागो छे.

जीवप्रदेशानुगतो यावान् देशस्तावानेव विवक्षितो न तु जीवप्रदेशाव्याप्तनखादि सहितः, अत्र तु नखादि सहितोऽपि अनेकद्रव्यस्कन्धत्वेन विवक्षितः।

ननु पूर्वोक्तमिश्रस्कन्धादस्य को विशेषः ? इति चेदुच्यते—पूर्वत्र पृथगपृथ-
गवस्थितानां सचेतनानां हस्यादीनामचेतनानां कवचादीनां च समूहत्वेन परि-
कल्पनया मिश्रस्कन्धत्वम्, अत्र तु विशिष्ट परिणाम परिणतानां सचेतनाचेतनद्रव्याणा-
मनेकद्रव्यस्कन्धत्वम्, इत्यनयोर्विशेषः। मूले 'तस्स' शब्देनात्र प्रकरणस्वारस्यात्
स्कन्धमात्रं विवक्षितम्। सम्प्रति प्रकृतमुपसंहर्तुमाह—से तं' इत्यादि। स एषः

फिर कृत्स्नस्कंध से इसमें अंतर क्या है ?

उत्तर—कृत्स्नस्कंध में तो जीव के प्रदेशों से व्याप्त जितना शरीरावयरूप
देश है वही विवक्षित हुआ है, जीवप्रदेशों से अव्याप्त नखादि सहित प्रदेश
नहीं। परन्तु इस अनेक द्रव्यस्कंध में नखादि सहित भी देश अनेकद्रव्य-
स्कंधरूप से विवक्षित हुआ है।

शंका—तो फिर मिश्रद्रव्यस्कंध से इसमें क्या विशेषता आई ? उत्तर—
मिश्रद्रव्यस्कंध में पृथक् और अपृथक् रूप से व्यवस्थित हुए हस्ती आदिकी
के समुदाय को मिश्रस्कंधरूप से कहा गया है, परन्तु उस अनेक द्रव्यस्कंध
में विशिष्ट परिणामरूप से परिणत हुए सचेतन अचेतन द्रव्यों को अनेक
द्रव्यस्कंधरूप से कथित किया गया है। यही इन दोनों में विशेषता है।
मूलमें "तस्स" शब्द यहाँ पर प्रकरण की स्वरसता से स्कंध मात्र विवक्षित
हुआ है। अब इस प्रकरण का उपसंहार करने के निमित्त सूत्रकार कहते हैं

शंका—ले आ अनेक द्रव्यस्कन्ध ह्यादिस्कन्धइयं न प्रतीत थाय छे, तो
तेमां कृत्स्नस्कन्ध करतां शी विशिष्टता छे ?

उत्तर—कृत्स्नस्कन्धमां तो लवना प्रदेशोथी व्याप्त नेटवो शरीरावयरूप देश
(अंश-भाग) छे; तेनी न विवक्षा थछे छे, लवप्रदेशोथी अव्याप्त नखादि सहित
ना प्रदेशोनी विवक्षा थछे नथी. परन्तु आ अनेक द्रव्यस्कन्धमां तो नखादि सहित
लवप्रदेशोथी व्याप्त शरीरावयरूप देशोनी अनेक द्रव्यस्कन्धइये विवक्षा थछे छे,

शंका—मिश्र द्रव्यस्कन्ध करतां अनेक द्रव्यस्कन्धमां शी विशिष्टतां छे ?

उत्तर—मिश्र द्रव्यस्कन्धमां पृथक् अने अपृथक्इये व्यवस्थित थयेला ह्योथी
आदि सचेतन पदार्थोना अने कवचं, तलवार आदि अचेतन पदार्थोना समुदायने
मिश्रस्कन्धइय कडेव मां आव्यो छे परन्तु आ अनेक द्रव्यस्कन्धमां विशिष्ट परिणाम
इये परिणत थयेला सचेतन अचेतन द्रव्योने अनेकद्रव्यस्कन्धइय कडेवमां आवेल
छे. नेटवो न ये अने वन्चे तदावत छे. भूणमां "तस्स" शब्द प्रउ. अही प्रक
रणोनी स्वरसतानी अपेक्षाये स्कन्ध मात्र विवक्षित थयेल छे. हवे आ अकस्मिन्ने

अनेकविधो द्रव्यस्कन्ध इति । ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धो निरूपित इति सूचयितुमाह—‘से तं’ इत्यादि । स एष ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्ध इति । नो आगमतो द्रव्यस्कन्धो निरूपित इति सूचयितुमाह—‘से तं’ इत्यादि । स एष नोआगमतो द्रव्यस्कन्ध इति । द्रव्यस्कन्धोऽपि निरूपित इति सूचयितुमाह—‘से तं’ इत्यादि । स एष द्रव्यस्कन्ध इति ॥५४॥

अथ भावस्कन्धं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं भावस्कन्धे ? भावस्कन्धे दुविहे पणत्ते, तं जहा आगमओ य नोआगमओ य ॥ सू० ५५ ॥

छाया—अथ कोऽसौ भावस्कन्धः ? भावस्कन्धो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा आगमतश्च नोआगमतश्च ॥ ५५ ॥

कि (से तं अणोगदवियस्कन्धे) इस प्रकार यह अनेकविध द्रव्यस्कन्ध है । (से तं जाणयसरीरभवियसरीरवहरित्ते दव्वस्कन्धे—से तं नो आगमओ दव्वस्कन्धे, से तं दव्वस्कन्धे) इस प्रकार से ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्धका निरूपण समाप्त हुआ—और इसकी समाप्ति से नोआगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यस्कन्ध का कथन भी पूर्ण हुआ इसकी पूर्णता से द्रव्यस्कन्ध निक्षेप का स्वरूप विषयक वर्णन भी पूर्ण हो चुका । ॥सूत्र ५४॥

अब सूत्रकार भावस्कन्ध का निरूपण करते हैं—

“से किं तं भावस्कन्धे” । इत्यादि ॥सूत्र ५५॥

शब्दार्थ—(से किं तं भावस्कन्धे) हे भदन्त । भावस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

उपसंहार करवा निमित्ते सूत्रकार कहे छे के—(से तं अणोगदवियस्कन्धे) आ प्रकारनुं अनेकद्रव्यस्कन्धत्तुं स्वप्प छे (से तं जाणयसरीर, भवियसरीरवहरित्ते दव्वस्कन्धे—से तं नोआगमओ दव्वस्कन्धे, से तं दव्वस्कन्धे) आ प्रकारे ज्ञायकशरीर अने भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्धत्तुं निष्पण्ण अहीं समाप्त थाय छे. तेना निष्पण्णनी समाप्ति थवाथी नोआगमद्रव्यस्कन्धना अथा लेटोना निष्पण्णनी पण्ण अहीं समाप्ति थथं जय छे, आ रीते नोआगमद्रव्यस्कन्धत्तुं निष्पण्ण समाप्त थथं जवाथी द्रव्यस्कन्धनिक्षेपना स्वप्प विषयक कथन पण्ण अहीं पूरुं थथं जय छे. ॥सू० ५४॥

इसे सूत्रकार भावस्कन्धना स्वप्पत्तुं निष्पण्ण करे छे—

से किं तं भावस्कन्धे ?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं भावस्कन्धे ?) शिष्य गुरुने अवेवा प्रश्न पूछे छे के के गुरुभट्टाराजनी भावस्कन्धत्तुं स्वप्पत्तुं केवुं छे ?

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—व्याख्या निगदसिद्धा ॥५५॥

अथ—आगतो भावस्कन्धमाह—

मूलम्—से किं तं आगतो भावखंधे ? आगतो भावखंधे

जाणए उवउत्ते । से तं आगतो भावखंधे ॥सू० ५६॥

छाया—अथ कोऽसौ आगतो भावस्कन्धः ? आगतो भावस्कन्धो ज्ञायक उपयुक्तः । स एष आगतो भावस्कन्धः ॥५६॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा ॥५६॥

उत्तर—(भावखंधे दुविहे पणत्ते) भावस्कंध दो प्रकार का है (तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(आगतो य नोआगतो य) एक आगत भावस्कंध और दूसरा नोआगत भावस्कंध । इसकी व्याख्या आगत भावावश्यक की व्याख्या जैसी ही जाननी चाहिये । ॥सू० ५५॥

अब सूत्रकार आगतभावस्कंध का कथन करते हैं—

“से किं तं आगतो” इत्यादि । ॥ सूत्र ५६ ॥

शब्दार्थ—(से किं तं आगतो भावखंधे ?) हे भदंत ! आगत को आश्रित करके जायमान आगतभावस्कंध का क्या स्वरूप है ? (आगतो भावखंधे जाणए उवउत्ते) उत्तर—आगत नो आश्रित करके स्कंध पदार्थ का उपयुक्त ज्ञाता आगत भावस्कंध है । (से तं आगतो भावखंधे) यह आगत को

उत्तर—(भावखंधे दुविहे पणत्ते) भावस्कन्धना जे प्रकार कइया छे. (तं जहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(आगतो य नोआगतो य) (१) आगतभावस्कन्ध अने (२) नोआगतभावस्कन्ध भावस्कन्धनी व्याख्या भावावश्यकनी व्याख्या जेवी जे समजवी ॥ सू० ५५ ॥

इवे सूत्रकार आगतभावस्कन्धना स्वरूपं निरूपणु करे छे—

“से किं तं आगतो भावखंधे ?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं आगतो भावखंधे ?) शिष्य गुरुने जेवा प्रश्न पूछे छे ते गुरु भइराने ! आगतने आश्रित करीने जायमान जेवा आगतभावस्कन्धनुं केषुं स्वरूप छे ?

उत्तर (आगतो भावखंधे जाणए उवउत्ते) आगतने आधारे स्कन्धपदार्थना उपयुक्त (उपयोग परिष्ठात युक्त) ज्ञाताने आगत भावस्कन्ध कइ छे (से तं आगतो भावखंधे) आ प्रकारतुं आगतने आश्रित करीने आगतभावस्कन्धनुं

अथ नो आगमतो भावस्कन्धमाह—

मूलम्—से किं तं नोआगमओ भावखंधे? नोआगमओ भाव-
खंधे एएसिं चैव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदय-
समिइसमागमेणं आवस्सयसुयखंधे भावखंधेत्ति लब्भइ। से तं
नोआगमओ भावखंधे, से तं भावखंधे ॥सू० ५७॥

छाया—अथ कोऽसौ नोआगमतो भावस्कन्धः? नोआगमतो, भावस्कन्धः
एतेषामेव सामायिकादीनां पण्णामध्ययनानां समुदयसमितिसमागमेन आवश्यक-
श्रुतरकन्धो भावस्कन्ध इति लभ्यते । स एव नोआगमतो भावस्कन्धः । स एव
भावस्कन्धः ॥५७॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि—अथ कोऽसौ नोआगमतो
भावस्कन्धः? इति । उत्तरमाह—नो आगमतो भावस्कन्ध एवं विज्ञेयः—एतेषां
प्रस्तुतानामेव सामायिकादीनां पण्णाम् अध्ययनानां समुदयसमितिसमागमेन—

आश्रित करके आगम भावस्कंध का स्वरूप है । इसकी व्याख्या आगमभावा-
वश्यक प्रतिपादक सूत्र की व्याख्या जैसी जाननी चाहिये । ॥सूत्र ५७॥

अब सूत्रकार नोआगम को आश्रित करके भावस्कंध का स्वरूप कहते हैं—

‘से किं तं नोआगमओ इत्यादि । ॥सूत्र ५७॥

शब्दार्थ—(से किं तं नोआगमओ भावखंधे) हे भदन्त । नोआगम से
भावस्कंध क्या है । (नो आगमओ भावखंधे) नो आगम से भावस्कंध ऐसा
है—(एएसिं चैव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइं समागमेणं

स्वरूपं छे. आ सूत्रनी व्याख्या आगमलावावश्यकनुं प्रतिपादन करनारा सूत्रनी व्याख्या
प्रमाणे न समजवी. ॥सू० ५६॥

इसे सूत्रकार नोआगम लावस्कन्धना स्वरूपनुं निरूपणु करे छे—

‘से किं तं नोआगमओ भावखंधे’ इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं नोआगमओ भावखंधे?) शिष्य गुडने अवेो प्रश्न
पूछे छे डे डे गुरु भडारान् ! नोआगमने आश्रित करीने नो लावस्कन्ध कह्यो छे
ते नोआगमलावस्कन्धनुं स्वरूप डेवुं छे ?

उत्तर—(नोआगमओ भावखंधे) नोआगमलावस्कन्धनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे.

(एएसिं चैव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइं समा-
गमेणं आवस्सयसुयखंधे भावखंधेत्ति लब्भइ) परस्पर प्रस्तुत थयेला सामा-

समुदयस्य=आवश्यकानि षडध्ययनसमुदायस्य या समितिः=नैरन्तर्येण मीलनं तस्याः समागमः=परस्परं संबद्धतया एवोपयोगस्तेन निष्पन्नो य आवश्यकः श्रुतस्कन्धः स भावस्कन्ध इति लभ्यते=भवति । अयं भावः—परस्परसम्बद्धसामायिकादिषडध्ययनसमूहनिष्पन्नआवश्यकश्रुतस्कन्धः सदोरकमुखवस्त्रिका रजोहरणादिव्यापारलक्षणक्रियायुक्ततया विवक्षितो नोआगमतो भावस्कन्धः । स्कन्धपदार्थज्ञानत्वागमः । तदुपयोगो भावः, क्रिया नोआगमः । क्रियालक्षणस्य देशः या नागमत्वाद् नोशब्दोऽत्र देशनिषेधपरो बोद्धव्य इति । पृथग्भूतानामपि सामायिकादि षडध्ययनानां स्कन्धः स्यादत उक्तम्—‘समुदयसमिद्ध’ इति । समुदयसमि-

अवस्य सुखधे भावखधे तिलम्भः) आत्मा में परस्पर प्रस्तुत हुए सामायिक आदि छह अध्ययनों के निरन्तर सेवन से जो आत्मा में एक उपयोगरूप परिणाम उत्पन्न होता है, उस परिणाम से निष्पन्न आवश्यक श्रुतस्कन्ध भावस्कन्ध है । तात्पर्य इसका यह है—परस्पर में संबद्ध हुए सामायिक आदि छह अध्ययनों के समूह से निष्पन्न हुआ आवश्यक श्रुतस्कन्ध, सदोरकमुखवस्त्रिका रजोहरण आदि व्यापाररूप क्रिया से सहित जब विवक्षित होता है—तब वह नोआगमस्कन्ध है । स्कन्ध पदार्थ का ज्ञान आगम है । और उस आगम में हुआ ज्ञाता का उपयोग भाव है । तथा रजोहरण आदिरूप जो क्रिया है, वह नोआगम है । इस तरह क्रियारूप एकदेश में अनागमता होने से नो शब्द यहां देशनिषेध परक जानना चाहिये । सूत्रकार “समुदयसमिद्ध” पद का “आवश्यक आदि छह अध्ययनों के समूह का निरन्तर मिलना” यह अर्थ है तथा “समागम” का षट्प्रदेशीस्कन्ध की तरह आवश्यकश्रुतस्कन्ध का

यिक आदि छ अध्ययनोना निरन्तर सेवनथी आत्मासां जे अेक उपयोगरूप परिणाम निष्पन्न (उत्पन्न) थाय छे, ते परिणामथी निष्पन्न (जयमान) आवश्यक श्रुतस्कन्धनुं नाम लावस्कन्ध छे. आ कथनने लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—परस्परनी साथे संबद्ध थयेला अेवा सामायिक आदि छ अध्ययनोना समूहथी निष्पक्ष थयेला आवश्यक श्रुतस्कन्ध, सदोरक मुखपत्ती रजोहरण आदि व्यापाररूप क्रिया सहित जयारे विवक्षित थाय छे, त्यारे ते नोआगमलावस्कन्धरूप जनी जय छे. स्कन्धपदार्थना ज्ञानने आगमरूपे, तथा ते आगममां ज्ञाताना उपयोगरूप परिणामने लावरूपे अही प्रकट करवामां आवेला छे. तथा रजोहरण आदिरूप जे क्रिया छे तेने नोआगम कही छे. आ रीते क्रियारूप अेक देशमां अनागमता होवार्थी “नो” शब्द अही देशनिषेधनुं सूचन करे छे, अेभ समजवुं. आ सूत्रमां “समुदय समिद्ध” आ पदने “सामायिक आदि छ अध्ययनोनुं निरन्तर मणवुं” अेवा अर्थ थाय छे, तथा “समागम” आ पदने “छ प्रदेशी स्कन्धनी जेभ आवश्यक श्रुतस्कन्धनुं

तिस्तु नैरन्तर्यवस्थापितलोहशलाकानामिव परस्परनिरपेक्षाणामपि स्यादत आह—
‘समागम’ इति । पट्टप्रदेशिकस्कन्धवत् एकीभूतीयमावश्यकश्रुतस्कन्धः । प्रकृत-
मुपसंहरन्नाह—सोऽसौ नोआगमतो भावस्कन्धः, इति । भावस्कन्धः सर्वतोऽपि
निरूपित इहि सूचयितुमाह—सोऽसौ भावस्कन्धः, इति ॥सू० ५७

आत्मा में एकरूप होना” यह है । इस तरह सूत्रकारने इस समागमपद से यह स्पष्ट किया है कि नैरन्तर्यरूप में अवस्थापित लोह शलाकाओं के समान परस्पर निरपेक्ष सामायिक आदि पद आवश्यकों की समुदयरमिति नोआगम से भावस्कन्ध नहीं है । (से तं नोआगमओ भावस्कन्धे) इस तरह यह नोआगम से भावस्कन्ध है । (से तं भावस्कन्धे) इस प्रकार भावस्कन्ध का वर्णन किया ।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा नोआगम को आश्रित करके भावस्कन्ध का स्वरूप प्रकट किया है । इसमें उन्होंने यह कहा है कि परस्पर संश्लिष्ट सामायिक आदि छह अध्ययनों के निरन्तर सेवन करने से जो आत्मा में तल्लीनता होनेरूप उपयोग परिणाम होता है और उस परिणाम से जो आवश्यकश्रुतस्कन्ध निष्पन्न होता है उसका नाम भावस्कन्ध है । यही भावस्कन्ध जब सदोरकमुखशस्त्रिका आदि व्यापाररूप क्रिया से विवक्षित किया जाता है । तब वह नोआगम भावस्कन्ध है । स्कन्ध पदार्थ का ज्ञान आगम उसमें ज्ञाता का उपयोग भाव और जो रजोहरण आदि द्वारा किं

आत्मांशं ऐक्यं यत्”, अथैव अर्थं थाय छे. आ रीते सूत्रकारे आ समागम पदना प्रयोग द्वारा अे वात स्पष्ट करी छे के नैरन्तर्यं इये अवस्थापित लोहशलाकाओंनी (लोहानी सजीओनी) जेभ परस्पर निरपेक्ष सामायिक आदि छ आवश्यक-
केनी समुदयरमिति नोआगमनी अपेक्षाअे भावस्कन्ध नहीं. (से तं नोआगमओ भावस्कन्धे) नोआगमनी अपेक्षाअे भावस्कन्धतुं आ प्रकारतुं स्वरूप छे. (से तं भावस्कन्धे) आ रीते भावस्कन्धना अन्ने लेहोतुं वञ्चुं न अडी” समाप्त थाय छे.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रद्वारा नोआगमने आश्रित करीने भावस्कन्धना स्वरूपतुं निरूपणुं कथुं छे. तेमां तेओअे अे वात प्रतिपादित करी छे के परस्पर संश्लिष्ट (संभद्ध) सामायिक आदि ६ अध्ययनेना निरन्तर सेवनथी आत्मांशं जे तल्लीनता थवा इय उपयोग परिणाम थाय छे अने ते परिणामथी जे आवश्यकश्रुत स्कन्ध निष्पन्न थाय छे, तेतुं नाम भावस्कन्ध छे. अेज भावस्कन्धने ज्यारे सहे-
रक मुहत्ती रजोहरणुं आदि व्यापाररूप क्रियाथी विवक्षित करवांशं आवे छे, त्यारे ते नोआगमभावस्कन्ध कहेवाय छे. स्कन्ध पदार्थना ज्ञानतुं नाम आगम छे, तेमां ज्ञाताना उपयोग परिणामतुं नाम भाव छे, अने जे रजोहरणुं आदिपडे थती क्रिया

इदानीं स्कन्धस्य पर्यायान् विवक्षुराह—

मूलम्—तस्स णं इमे एगट्टिया णाणाघोसा णाणावंजणा
एगट्टिया नामधेज्जा भवंति, तं जहा—गणकाए य निकाए, खंधे वग्गे
तहेव रासी य । पुंजे पिंडे निगरे, संघाए आउलसमूह ॥१॥ से
तं खंधे ॥ सू० ५८ ॥

छाया—तस्य खलु इमानि एकार्थिणानि नानाघेषाणि नानाव्यञ्जनानि
एकार्थिणानि नामधेयानि भवन्ति, तथा—गणःकायश्च निकायः स्कन्धो वर्गस्तथैव
राशिश्च । पुञ्जःपिण्डो निकरः संघात आकुलः समूहः ॥१॥ स एष स्कन्धः ॥५८॥

जानेवाली प्रमार्जना आदि क्रियाएँ हैं वे नोआगम हैं ।
यहां नो शब्द सर्वथा आगमाभाव का निषेधक नहीं हैं किन्तु
एकदेश आगम का निषेधक है ? स्कंध पदार्थ का ज्ञान आगम और क्रिया
अनागम नोआगम है । यह नोआगम को लेकर भावस्कंध का स्वरूप है । सूत्र ५७।

अब सूत्रकार स्कंध की पर्यायों का कथन करते हैं—

तस्सणं इमे एगट्टिया इत्यादि ! ॥सूत्र ५८॥

शब्दार्थ—(तस्स) इस स्कंध के (इमे) ये (णाणाघोसा) उदान आदि
नाना घोषवाले (णाणावंजणा) ककारआदि अनेक व्यंजनोंवाले (एगट्टिया)—
एकार्थिक पर्यायवाची (नामधेज्जा भवंति) नाम हैं । (तं जहा) जो इम प्रकार
से हैं—(गणकाए य निकाए खंधे, वग्गे तहेव रासी य पुंजे पिंडे निगरे संघाए
आउलसमूहे ॥१॥ से तं खंधे) गणकाय, निकाय, स्कंध, वर्ग, राशि, पुंज,

आ छे ते नोआगम छे. अही 'नो' शब्द सर्वथा आगमालावनो निषेधक नथी,
परन्तु ओक देशतः आगमनो निषेधक छे. स्कन्ध पदार्थनुं ज्ञान आगमइय छे अने
क्रिया अनागम—नोआगमइय छे. नोआगमलावस्कन्धनुं आ प्रकारनुं स्वइयछे. ।सूपण
हुवे सूत्रकार स्कन्धना पर्यायवाची शब्दोनुं कथन करे छे—

“तस्स णं इमे एगट्टिया” इत्यादि—

शब्दार्थ—(तस्स) ते स्कन्धना (इमे) आ (णाणा घोसा) उदान आदि विविध
घोषवाणां (णाणावंजणा) ककार आदि अनेक व्यंजनोंवाणां (एगट्टिया) एकार्थिक-
पर्यायवाची (नामधेज्जा भवंति) नामो उद्यां छे. (तं जहा) ये नामो नीचे प्रमाणे छे—
(गणकाए य निकाए खंधे, वग्गे तहेव रासीय पुंजे पिंडे निगरे, संघाए आउल
समूहे ॥१॥ से तं खंधे) गण, काय, निकाय, स्कन्ध, वर्ग, राशि, पुंज, पिंड,

टीका—‘तस्स णं’ इत्यादि—

तस्य=स्कन्धस्य खलु इमानि=वक्ष्यमाणानि एकार्थिकानि नानाधापाण
नानाव्यञ्जनानि नामधेयानि भवन्ति । तद्यथा-गणः=महादिगणवद् गणः, कायः=
पृथिवीकायादिवत्कायः, निकायः=पटुजीवनिकायवन्निकायः, स्कन्धः=द्विप्रदेशिका
दिस्कन्धवत् स्कन्धः, वर्गः=गोवर्गवद् वर्गः, राशिः=शालिधान्यादिवद्राशिः, पुञ्जः=
विप्रकीर्णपुञ्जीकृतधान्यादिवत् पुञ्जः, पिण्डः=गुडादि पिण्डवत् पिण्डः, हिरण्य-
द्रव्यादिनिकरवद् निकरः, सङ्घातः=महोत्सवादि सम्मिलितजनसङ्घातवत् सङ्घातः,

पिण्ड, निकर, संघात, आकुल और समूह ! ये जो गण से लेकर समूह तक
के शब्द हैं, वे भावस्कन्ध के चाचक पर्याय हैं । ऐसा जानना चाहिये । एकार्थिक
आदि पदों की व्याख्या पहिले की तरह जाननी चाहिये । इस प्रकार से
यहां तक स्कन्ध के स्वरूप का वर्णन सूत्रकारने किया है ।

जिस प्रकार मल्ल आदिकों का गण होता है उसी प्रकार से स्कन्ध
भी अनेक परमाणुओं वा संश्लिष्टरूप एक परिणाम होता है इसलिये इस
का नाम गण है । पृथिवीकाय आदि के समान यह स्कन्ध काय है ; पटुजीव
निकाय की तरह यह स्कन्ध निकाय है । द्विप्रदेशिक आदिस्कन्ध केजैसा यहस्कन्ध
है । गोवर्ग की तरह यह वर्गरूप है । शालिधान्य आदि की तरह यह राशि-
रूप है ।—फैलाकर इकट्ठे किये गये धान्यादी की तरह यह पुंजरूप है । गुड
आदि के पिण्ड की तरह यह पिण्डरूप है । चांदी आदि के समूह की तरह

निकर, संघात, आकुल अने समूह आ जे गण्णी लघने समूह परान्तना शब्दो
छे ते भावस्कन्धना वाचक छे, जेम समञ्जुं. अर्थार्थिक आदि पदोनी व्याख्या
आगण द्वाया अनुसार समञ्जवी आ प्रकारे सूत्रकारे अही सुधी स्कन्धना स्वरूपतुं
वर्णन कर्युं छे. अही स्कन्धतुं वर्णन पूरुं थाय छे.

हुवे आ गण आदि पदोनी अर्थ समञ्जववाभां आवे छे—

“गण”-जेम मल्ल आदिनुं गणुं होय छे जेम प्रमाणे स्कन्ध पणुं अनेक
परमाणुओना ओक संश्लिष्ट परिणामरूप होय छे, तेथी तेनुं नाम गणुं पड्युं छे.

“काय”-पृथ्वीकाय आदिनी जेम आ स्कन्ध कायरूप छे.

“निकाय”-पटुजीवनिकायनी जेम आ स्कन्ध निकायरूप छे.

“स्कन्ध”-द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धनी जेम ते स्कन्धरूप छे.

“वर्ग”-गो वर्गनी जेम ते स्कन्धरूप छे.

“राशि” शालिधान्य (योग्या) आदिनी जेम ते राशिरूप छे.

“पुंज” ओकरेला धान्यपुंजनी जेम ते पुंजरूप छे.

“पिण्ड” गोण आदिना पिण्डनी जेम ते पिण्डरूप होय छे.

आकुलः=राजगृहाङ्गणजनाकुलवदाकुलः, समूहः=पुरादिजनसमूहवत् समूहः । एते गणादि समूहान्ताः शब्दा भावस्कन्धस्य वाचका बोध्याः । एकार्थिकादिपदानां व्याख्या पूर्ववद् बोध्या । सम्प्रति स्कन्धमुपसंहरन्नाह—स एष स्कन्ध इति॥सू५८॥ इत्थं स्कन्धाधिकार उक्तः, सम्प्रति आवश्यकस्य षडध्ययनानि विव्रियन्ते—

मूलम्—आवस्सगस्स णं इमे अत्थाहिगारा भवंति, तं जहा-
सावज्जजोगविरई, उक्कित्तण गुणवधो य पडिवत्ती ।

खलियस्स निंदणावणचिगिच्छा गुणधारणा चेव ।१। ॥सू०५९॥

छाया—आवश्यकस्य खलु इमे अर्थाधिकारा भवन्ति, तद्यथा—

सावद्ययोगविरतिः उत्कीर्त्तनं गुणव्रतश्च प्रतिपत्तिः ।

स्वलितस्य निन्दना व्रणचिकित्सा गुणधारणा चैव । सू० ५९॥

यह निस्करूप है । महोत्सव आदि में सम्मिलित जनसमुदाय के समान यह संघातरूप है । राजगृह के आंगन में हुए व्याप्त जनसमूहरूप यह आकुल है । पुर आदि के जनसमूह की तरह यह समूहरूप है ॥सूत्र ५८॥

स्कन्धाधिकार का कथनकर अब सूत्रकार आवश्यक के छह अध्ययनों का विवेचन करते हैं—‘आवस्सगस्स’ इत्यादि । ॥सूत्र ५९॥

शब्दार्थ—हे भदन्त ! आवश्यक संबन्धी छह अध्ययन कौन २ से हैं ? इस प्रकार से पूछे जाने पर सूत्रकार अर्थाधिकार को आश्रित करके उन अध्ययनों को कहते हैं—(आवस्सगस्स इत्यादि) (आवस्सगस्स णं इमे

“निकर” यांही आदिना समूहनी जेम ते निकरइप छे.

“संघात” महोत्सव आदिमां अेकत्र थयेला जनसमुदायनी जेम ते संघातइपछे.

“आकुल” राजगृह आदिना आंगणुमां जमा थयेला व्याप्त जनसमूहनी जेम ते आकुलइप छे.

“समूह” पुर आदिना जनसमूहनी जेम ते समूहइप छे. ॥ सू० ५८ ॥

स्कन्धाधिकारस्य षडध्ययनं पूरं थयुं, एवे सूत्रकार आवश्यकना ६ अध्ययनानुं

विवेचन करे छे—आवस्सगस्स” इत्यादि—

शब्दार्थ—शिष्य गुरुने अेवो प्रश्न पूछे छे के छे गुरु भडारज ! आवश्यकना क्या क्या छ अध्ययन छे ?

उत्तर—आ प्रकारना प्रश्नना उत्तर इपे सूत्रकार अर्थाधिकारने आश्रय लधने ते अध्ययनो छे छे—(आवस्सगस्स णं इमे अत्थाहिगारा भवंति) अर्थाधिकारने—

टीका—‘आवस्सगस्स णं’ इत्यादि—

आवश्यकसम्बन्धीनि षडध्ययनानि कानि ? इति तान्यर्थाधिकारमाश्रित्योच्यन्ते—आवस्सगस्स’ इत्यादिना । आवश्यकस्य खलु इमे=वक्ष्यमाणा अर्थाधिकारः—अर्थेन अधिकाराः—अर्थमाश्रित्य प्रस्तावा भवन्ति, तद्यथा—सावधयोगविरतिः=सामायिकलक्षणो प्रथमेऽध्ययने प्राणातिपातादि सर्वसावधयोगविरतिरर्थाधिकारः ? उत्कीर्तनम्=द्वितीये चतुर्विंशतिस्तवाध्ययने कर्मक्षयप्रधानकारणत्वात् लब्धबोधिविशुद्धिहेतुत्वात् पुनर्वोदिलाभफलत्वात् सावधयोगविरत्युपदेशकत्वेनोपकारित्वाच्च तीर्थकृतां गुणोत्कीर्तनरूपोऽर्थाधिकारः २ । तृतीये वन्दनाध्ययने गुणव्रतश्च प्रतिपत्तिः—गुणाः=मूलोत्तरगुणरूपा व्रतपिण्डविशुद्ध्यादयो विद्यन्ते

अथाहिगारा भवन्ति) आवश्यक के ये वक्ष्यमाण अर्थाधिकार-अर्थ को आश्रित करके कथन हैं । (तं जहा) जो इस प्रकार से हैं—

(सावज्जजोगविरई उविकत्तणं गुणवओ य पडिवत्ती । खलियस्स निंदणावणतिगिच्छा गुणधारणा चैव) सामायिकरूप प्रथम अध्ययन में, प्राणातिपात आदिरूप सर्व सावधयोग से विरति हेना यह अर्थाधिकार है । द्वितीय चतुर्विंशतिस्तवरूप अध्ययन में कर्मों के क्षय करने में प्रधानकारण होने से लब्धबोधिनी विशुद्धि से हेतु होने से, तथा पुनर्वोधि के लाभरूप फल की प्राप्ति में कारणभूत होने से और सावधयोग से विरति के उपदेशक होने के कारण अत्यन्त उपकारी होने से, तीर्थकरों के गुणों का उत्कीर्तनरूप अर्थाधिकार है, तृतीय वन्दनाध्ययन में मूलगुण और उत्तर गुणरूप व्रत, पिण्डविशुद्धि

अर्थने आश्रित करीने आवश्यकनुं नीचे प्रभाषे कथन छे. (तंजहा) ते छ अध्ययनोभां आ प्रकारना अर्थनी (विषयनी) प्रपणु करी छे—

(सावज्जजोगविरई उविकत्तणगुणवओ य पडिवत्ती । खलियस्स निंदणावणतिगिच्छा गुणधारणा चैव) सामायिकरूप षडेषा अध्ययनभां आदिइय सावधयोगोनी विरतिहं प्रतिपादन करवाभां आणुं छे. भीण चतुर्विंशतिस्तवरूप (२४ तीर्थकरेना कीर्तनस्तवनरूप) ने अध्ययन छे तेभां तीर्थकरेनी स्तुति गुणोना उत्कीर्तनरूप अर्थाधिकार छे ते तीर्थकरेनी स्तुति करवानुं कारण नीचे प्रभाषे छे— कर्मेना क्षय करवाभां प्रधान कारणभूत होवाथी, लब्धबोधिनी विशुद्धिभां कारणभूत होवाथी अने पुनर्वोधिना लाभरूप इणनी प्राप्तिभां कारणभूत होवाथी, सावधयोगोभांथी विरतिना उपदेशक होवाने कारणे अत्यन्त उपकारी होवाथी तीर्थकरेना गुणोनी स्तुति थवी न लेधमे. २४ तीर्थकरेना गुणोना उत्कीर्तनरूप अर्थथी संपन्न आ भीणुं अध्ययन छे. तीण वदणु अ. ६२. २० भां २७ ३६ अने ६२गुणरूप व्रत

यस्य स गुणवांस्तस्य प्रतिपत्तिः=वन्दनादिका कर्त्तव्या, -एदंरूपोऽर्थाधिकारः ।
 च शब्दः पुनरर्थे ३। तथा-चतुर्थे प्रतिक्रमणाध्ययने-स्खलितस्य=साधुकृत्याच्च-
 लितस्य निन्दना=निन्दा कर्त्तव्या । अयं भावः-मूलोत्तरगुणेषु प्रमादाचीर्णस्य
 प्रत्यागतसंवेगस्य जन्तोर्विशुध्यमानाध्यवसायस्य अकार्यमिद-^१मित्येवं रूपेण निन्दा-
 रूपोऽर्थाधिकारः ४। तथा षड्वमे कार्योत्सर्गाध्ययने-व्रणचिकित्सा-व्रणस्य चि-
 कित्सा=भैषज्यम् । अयं भावः-चारित्ररूपपुरुषस्य योऽयमतिचाररूपो भाव-
 व्रणस्तस्य दशविधप्रायश्चित्तरूपा चिकित्सा कर्त्तव्येति, एवंप्रथमोऽर्थाधिकारः
 प्रोच्यते ५। तथा-षष्ठे प्रत्याख्यानाध्ययने-गुणधारणां-गुणानां=मूलोत्तरगुणानां

आदि गुण जिसमें है ऐसे गुणवान् साधुको वन्दना आदि करनेरूप
 अर्थाधिकार है । चौथे प्रतिक्रमण अध्ययन में साधुकृत्य से स्खलित हुए की
 निन्दाकारने-अर्थात् अतिचारों की निग्रहणा करने आदिरूप अर्थाधिकार है ।
 इसका भाव यह है कि जो साधु मूलगुणों एवं उत्तरगुणों में प्रमाद पत्ति-
 ततो हो रहा है, परन्तु वैराग्यभाव उसका नष्ट नहीं हुआ है, और परिणामां
 में जिसको विशुद्धि बढ़ती रहती है-ऐसे उस साधु को "यह काम करने
 योग्य नहीं है" इस प्रकार का निन्दारूप अर्थाधिकार है ।—

पांचवां जो कायोत्सर्ग नामका अध्ययन है उसमें व्रण (फाडा) चिकि-
 त्सारूप अर्थाधिकार है तापर्य्य इसका यह है कि चारित्ररूप पुरुष का जो
 अतिचाररूप भावव्रण है उसकी दश प्रकार प्रायश्चित्तरूप चिकित्साकरनी
 चाहिये ऐसा उसमें अर्थाधिकार है । तथा छठा प्रत्याख्यान नाम का जो

पिंड विशुद्धि आदिथी संपन्न होय अथवा गुणवान् साधुने वंदना आदि करवाइय
 अधिकार छे. यथा प्रतिक्रमण अध्ययनमां साधुकृत्यथी स्खलित थयेदानी निन्दा
 करवाने अटवे के पोताना द्वारा ने आतयारेनुं सेवन थर्ध गथुं होय तेनी
 निग्रहणा आदि करवाइय अर्थाधिकार छे. आ कथनने लावार्थ अे छे के ने साधु
 भूणगुणो अने उत्तरगुणोनी आराधना करवामां प्रमादने कारणे दोषो करतो होय
 छे, परन्तु तेनी वैराग्यभाव नष्ट थयो नथी अने नेना पारणामोमां विशुद्धिनी
 वृद्धि न थती रहे छे, अथवा साधु द्वारा पोताना होपनी आ प्रकारे निन्दा कराय
 छे. "आ काम करवा थोज्य नथी, छतां प्रमादने कारणे माराथी अेवुं थर्ध गथुं."
 आ प्रकारनी निन्दाइय अधिकारथी युक्त थोथुं अध्ययन छे. (५) पांचमुं कायोत्सर्ग
 नामनुं अध्ययन छे, तेमां व्रणचिकित्साइय अर्थाधिकारनुं प्रतिपादन कथुं छे. अटवे
 के चारित्रइय पुरुषने अतिचारइय ने लावप्रणु छे तेनी दस प्रकारना प्रायश्चित्त
 इय धराने वडे चिकित्सा करवी नेधअे, अे विषयनुं तेमां प्रतिपादन कथुं छे.
 छठुं प्रत्याख्यान नामनुं अध्याय छे. तेमां भूणगुणो अने उत्तरगुणोने धारणु करवा

ટીકા—‘આવસ્સગસ્સ ણં’ इत्यादि—

આવશ્યકસમ્બન્ધીની પદધ્યયનાનિ કાનિ ? इति तान्यर्थाधिकारमाश्रित्यो-
 च्यन्ते—आवस्सगस्स’ इत्यादिना । आवश्यकं य खलु इमे=वक्ष्यमाणा अर्थाधि-
 वागः—अर्थेन अधिकाराः—अर्थमाश्रित्य प्रस्तावा भवन्ति, तथा—सावद्ययोग
 विरतिः=सामायिकलक्षणो प्रथमेऽध्ययने प्राणातिपातादि सर्वसावद्ययोगविरतिर-
 र्थाधिकारः ? उत्कीर्त्तनम्=द्वितीये चतुर्विंशतिस्तवाध्ययने कर्मक्षयप्रधानकारण-
 त्वात् लब्धबोधिविशुद्धिहेतुत्वात् पुनर्वोधिलभफलत्वात् सावद्ययोगविरत्युपदेश-
 कत्वेनोपकारित्वाच्च तीर्थकृतां गुणोत्कीर्त्तनरूपोऽर्थाधिकारः २ । तृतीये वन्दना-
 ध्ययने गुणव्रतश्च प्रतिपत्तिः—गुणाः=मूलोत्तरगुणरूपा व्रतपिण्डविशुद्ध्यादयो विद्यन्ते

अथाहिगारा भवन्ति) आवश्यक के ये वक्ष्यमाण अर्थाधिकार-अर्थ को आश्रित
 करके कथन हैं । (तं जहा) जो इस प्रकार से हैं—

(सावज्जजोगविरई उविकत्तणं गुणवओ य पडिवत्ती । खलियस्स निंदणा
 वणतिगिच्छा गुणधारणा चैव) सामायिकरूप प्रथम अध्ययन में, प्राणातिपात
 आदिरूप सर्व सावद्ययोग से विरति होना यह अर्थाधिकार है । द्वितीय चतु-
 र्विंशतिस्तवरूप अध्ययन में कर्मों के क्षय करने में प्रधानकारण होने से लब्ध-
 बोधिबी विशुद्धि से हेतु होने से, तथा पुनर्वोधि के लाभरूप फल की प्राप्ति
 में कारणभूत होने से और सावद्ययोग से विरति के उपदेशक होने के कारण
 अत्यंत उपकारी होने से, तीर्थकरों के गुणों का उत्कीर्त्तनरूप अर्थाधिकार
 है, तृतीय वन्दनाध्ययन में मूलगुण और उत्तर गुणरूप व्रत, पिण्डविशुद्धि

અર્થને આશ્રિત કરીને આવશ્યકતુ નીચે પ્રમણે કથન છે. (તંજહા) તે છ અધ્યય-
 નોમાં આ પ્રકારના અર્થની (વિષયની) પ્રરૂપણા કરી છે—

(સાવજ્જજોગવિરઈ ઉવિકત્તણગુણવઓ ય પડિવત્તી । ચલિયસ્સ નિંદ-
 ણાવણતિગિચ્છા ગુણધારણા ચૈવ) સામાયિકરૂપ પહેલા અધ્યયનમાં આદિરૂપ સાવધ-
 યોગોની વિરતિનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. ખીજા ચતુર્વિંશતિસ્તવરૂપ (૨૪
 તીર્થકરોના કીર્તનસ્તવનરૂપ) જે અધ્યયન છે તેમાં તીર્થકરોની સ્તુતિ શુણોના
 ઉત્કીર્તનરૂપ અર્થાધિકાર છે તે તીર્થકરોની સ્તુતિ કરવાનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—
 કર્મોના ક્ષય કરવામાં પ્રધાન કારણભૂત હોવાથી, લબ્ધબોધિની વિશુદ્ધિમાં કારણભૂત
 હોવાથી અને પુનર્બોધિના લાભરૂપ ફળની પ્રાપ્તિમાં કારણભૂત હોવાથી, સાવધ-
 યોગોમાંથી વિરતિના ઉપદેશક હોવાને કારણે અત્યંત ઉપકારી હોવાથી તીર્થકરોના
 શુણોની સ્તુતિ થવી જ જોઈએ. ૨૪ તીર્થકરોના શુણોના ઉત્કીર્તનરૂપ અર્થથી સંપન્ન
 આ ખીજું અધ્યયન છે. ત્રીજા વાક્યના અ.૧૨૨ માં ૨૫૨૬ અને ૯૨શુરૂપ વ્રત

यस्य स गुणवांस्तस्य प्रतिपत्तिः=वन्दनादिका कर्त्तव्या, -एवंरूपोऽर्थाधिकारः ।
 च शब्दः पुनरर्थे ३। तथा-चतुर्थे प्रतिक्रमणाध्ययने-स्खलितस्य=साधुकृत्याच्च-
 लितस्य निन्दना=निन्दा कर्त्तव्या । अयं भावः-मूलोत्तरगुणेषु प्रमादाचीर्णस्य
 प्रत्यागतसंवेगस्य जन्तोर्विशुध्यमानाध्यवसायस्य अकार्यमिद-मित्येवं रूपेण निन्दा-
 रूपोऽर्थाधिकारः ४। तथा षड्वमे कार्थोत्सर्गाध्ययने-व्रणचिकित्सा-व्रणस्य चि-
 कित्सा=भैषज्यम् । अयं भावः-चारित्ररूपपुरुषस्य योऽयमतिचाररूपो भाव-
 व्रणस्तस्य दशविधप्रायश्चित्तरूपा चिकित्सा कर्त्तव्येति, एवंरूपोऽर्थाधिकारः
 प्रोच्यते ५। तथा-षष्ठे प्रत्याख्यानाध्ययने-गुणधारणां-गुणानां=मूलोत्तरगुणानां

आदि गुण जिसमें है ऐसे गुणवान् साधुको वन्दना आदि करनेरूप
 अर्थाधिकार है । चौथे प्रतिक्रमण अध्ययन में साधुकृत्य से स्खलित हुए की
 निन्दाकारने-अर्थात् अतिचारों की निग्रहणा करने आदिरूप अर्थाधिकार है ।
 इसका भाव यह है कि जो साधु मूलगुणों एवं उत्तरगुणों में प्रमाद पति-
 ततो हो रहा है, परन्तु बैराग्यभाव उसका नष्ट नहीं हुआ है, और परिणामों
 में जिसको विशुद्धि बढ़ती रहती है-ऐसे उस साधु को "यह काम करने
 योग्य नहीं है" इस प्रकार का निन्दारूप अर्थाधिकार है ।—

पांचवां जो कार्थोत्सर्ग नामका अध्ययन है उसमें व्रण (फाडा) चिकि-
 त्सारूप अर्थाधिकार है तापर्य्य इसका यह है कि चारित्ररूप पुरुष का जो
 अतिचाररूप भावव्रण है उसकी दश प्रकार प्रायश्चित्तरूप चिकित्साकरनी
 चाहिये ऐसा उसमें अर्थाधिकार है । तथा छठा प्रत्याख्यान नाम का जो

पिंड विशुद्धि आदिथी संपन्न होय जेवा गुणवान् साधुने वंदना आदि करवाइय
 अधिकार छे. जेथा प्रतिक्रमण अध्ययनमां साधुकृत्यथी स्खलित थयेलानी निन्दा
 करवाने अटवे के पोताना द्वारा जे आतयारेनुं सेवन थयं गयुं होय तेनी
 निग्रहण आदि करवाइय अर्थाधिकार छे. आ कथनने लावार्थ अे छे के जे साधु
 भूणगुणो अने उत्तरगुणोनी आराधना करवामां प्रमादने कारणे दोषो करतो होय
 छे, परन्तु तेना वैराग्यभाव नष्ट थयो नथी अने जेना पारणामोमां विशुद्धिनी
 वृद्धि न थती रहे छे, जेवा साधु द्वारा पोताना होषनी आ प्रकारे निन्दा कराय
 छे. "आ काम करवा जेअ्य नथी, छतां प्रमादने कारणे मारथी जेवुं थयं गयुं."
 आ प्रकारनी निन्दाइय अधिकारथी युक्त जेथुं अध्ययन छे. (५) पांचमुं कार्थोत्सर्ग
 नामनुं अध्ययन छे, तेमां व्रणचिकित्साइय अर्थाधिकारनुं प्रतिपादन कथुं छे. अटवे
 के चारित्रइय पुरुषने अतिचारइय जे लावण्य छे तेनी दस प्रकारना प्रायश्चित्त
 इय धलाने वडे चिकित्सा करवी जेधअे, जे विषयनुं तेमां प्रतिपादन कथुं छे.
 छठुं प्रत्याख्यान नामनुं अध्याय छे. तेमां भूणगुणो अने उत्तरगुणोने धारण करवा

ધારણા=પ્રતિપત્તિઃ, એવ રૂપોડર્થાધિકારઃ પ્રરૂપયિષ્યતે । મૂલોત્તરગુણાનાં નિરતિ ચારં સન્ધારણં યથા ભવાંત તથા પ્રત્યાખ્યાનાધ્યયનં પ્રરૂપયિષ્યતે इत्यर्थः । 'चैव' इति 'च' शब्दादन्येऽप्यवान्तरार्थाधिकारा विज्ञेयाः । 'एव' शब्दाऽवधारणे बोध्यः ।

અધ્યયન હૈ । उसमें मूलगुण और उत्तरगुणों को धारण करनेरूप अर्थाधिकार है । मूलगुण उत्तरगुणों को अतिचार रहित अच्छी तरह धारण करता है वैसी प्ररूपणा सूत्रकार प्रत्याख्यान अध्ययन में करेंगे । "च" शब्द से सूत्रकारने यह प्रकट किया है कि आवश्यक के और अवान्तर अर्थाधिकार हैं । "एव" शब्द अवधारण अर्थ में आया है ।

ભાવાર્થ—સૂત્રકારને ઇસ સૂત્રદ્વારા આવશ્યક કે છ અર્થાધિકારોં કો વર્ણન ક્રિયા હૈ।(૧) સામાયિક (૨) ચતુર્વિંશતિસ્તવ, (૩) વંદના, (૪) પ્રતિક્રમણ, (૫) કાયોત્સર્ગ ઓર (૬) પ્રત્યાખ્યાન । ઇન સર્વ સાવચયોગોં સે વિરક્ત હોના સામાયિક અધ્યયન મેં, ચૌવીસ તીર્થકરોં કી સ્તુતિ કરના દ્વિતીય ચતુર્વિંશતિસ્તવ અધ્યયન મેં, ગુણવાન સાધુ કો વંદના આદિ કરના વંદનાધ્યયન મેં સાધુકૃત્ય સે સ્વલિત હુએ સાધુ કો અપની નિંદા કરના પ્રતિક્રમણ અધ્યયન મેં, ચારિત્ર મેં લગે હુએ અતિચારોં કી દશવિત્ર પ્રાયશ્ચિત સે શુદ્ધિ કરના ત યોત્સર્ગ અધ્યયન મેં, મૂલગુણ ઓર ઉત્તરગુણોં કો ધારણ કરના પ્રત્યાખ્યાન અધ્યયન મેં અર્થાધિકાર હૈ ।

इस अर्थाधिकार छे प्रत्याख्यान द्वारा ते मूलगुण अने उत्तरगुणोने अतिचार रहित सम्यक् रूपे धारण करे छे, जेवी प्ररूपणा सूत्रकार आगण जतां प्रत्याख्यान अध्ययनमां करशे. 'च' शब्द द्वारा सूत्रकारे जे प्रकट कयुं छे के आवश्यकता आ सिवायना पीण' यणु अवान्तर अर्थाधिकार छे. "एव" आ पद अवधारण अर्थमां वपरायुं छे.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા આવશ્યકના છ અર્થાધિકારોં વર્ણન કયું છે—(૧) સામાયિક (૨) ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૨૪ તીર્થકરોની સ્તુતિ), (૩) વંદના, (૪) પ્રતિક્રમણ, (૫) કાયોત્સર્ગ અને (૬) પ્રત્યાખ્યાન.

પહેલા અધ્યયનમાં સમસ્ત સાવધ યોગોથી વિરક્ત થવાનો, પીળ અધ્યયનમાં ૨૪ તીર્થકરોની સ્તુતિ કરવાનો, ત્રીજા વંદના અધ્યયનમાં ગુણવાન સાધુને વંદણા આદિ કરવાનો, ચોથા પ્રતિક્રમણ અધ્યયનમાં સાધુકૃત્યથી સ્વલિત થયેલા સાધુએ યોતાની નિન્દા કરવાનો, પાંચમાં કાયોત્સર્ગ અધ્યયનમાં ચારિત્રમાં લાગેલા અતિચારોની દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તોથી શુદ્ધિ કરવાનો અને છઠ્ઠા પ્રતિક્રમણ અધ્યયનમાં મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોને ધારણ કરવાનો અર્થાધિકાર છે. આગળ સૂત્રકારે આ પ્રમાણે કથન કયું હતું—

पूर्वम् 'आवस्ययं निक्खिविस्सामि, सुयं निक्खिविस्सामि, खंधं निक्खिविस्सामि, अज्झयणं निक्खिविस्सामि' इत्युक्तम् । तत्र-आवश्यक्यादीनि त्रीणि पदानि निक्षिप्तानि । अध्ययनस्य निक्षेपः सम्प्रति क्रमप्राप्तोऽपि न क्रियते । यतस्तस्य निक्षेपः वक्ष्यमाणनिक्षेपानुयोगद्वारे ओघनिष्पन्ननिक्षेपे करिष्यतोऽसू०५९।

आधुनाऽऽवश्यकस्य यद् व्याख्यातं, यच्च व्याख्येयं तदुभयमुपदर्शयन्नाह—
मूलम्—आवस्ययस्स एसो पिण्डत्थो वणिणओ समासेणं ।

एत्तो एक्केकं पुण, अज्झयणं कित्तइस्सामि ॥१॥

तं जहा—सोमाइयं, चउवीसत्थओ वन्दणयं पडिक्रमणं काउ-
स्सगो पच्चक्खाणं । तत्थ पढमं अज्झयणं सामाइयं, तस्स णं इमे

पूर्व में आवस्ययं निक्खिविस्सामि, सुयं निक्खिविस्सामि, खंधं निक्खिविस्सामि अज्झयणं निक्खिविस्सामि" ऐसा सूत्रकारने कहा है। सो इनमें से आवश्यक आदि तीन पद तो सूत्रकार द्वारा निक्षिप्त किये जा चुके। अब अध्ययन का निक्षेप क्रम प्राप्त है—सो क्रम प्राप्त होने पर भी उसका निक्षेप सूत्रकार यहां नहीं कर रहे हैं क्यों कि वक्ष्यमाण निक्षेपानुयोगद्वार में आघनिष्पन्न निक्षेप में वे उसका निक्षेप करेंगे। ॥ सूत्र ५९ ॥

अब सूत्रकार आवश्यक का जो विषय—व्याख्यात हो चुका है तथा आगे जो विषय व्याख्यात हो चुका है यह दिखलाते हैं:—

आवस्ययस्स एसो इत्यादि । ॥ सूत्र ६० ॥

शब्दार्थ—(आवस्ययस्स) आवश्यक इसनाम से प्रसिद्ध शास्त्र का (एसो) यह पूर्वोक्तरूप (पिण्डत्थो) पिण्डार्थ (समासेणं) संक्षेपसे (वणिणओ) कहा है।

“आवस्ययं निक्खिविस्सामि, सुयं निक्खिविस्सामि,
खंधं निक्खिविस्सामि, अज्झयणं निक्खिविस्सामि”

आ कथन अनुसार आवश्यक, श्रुत अने स्कन्ध आ त्रयुने निक्षेप तो थध युक्तयो छे डवे अनुक्रम प्रमाणे अध्ययनने निक्षेप थवे लेधये. छतां पणु सूत्रकार अही क्रम प्राप्त अध्ययनने निक्षेप करता नथी, कारण के आ विषयने निक्षेप अनुयोग द्वारमां—ओघनिष्पन्न निक्षेपमां तेओ तेने निक्षेप करशे. ॥ सू ५९ ॥

डवे सूत्रकार आवश्यकने ले विषय व्याख्यात थध युक्तयो छे अने आगण ले विषय व्याख्यात थवाने छे, ते भतावे छे. “आवस्ययस्स एसो” इत्यादि—

चत्वारि अणुओगदारा भवन्ति, तं जहा-उवक्रमे १, निक्खेवे २, अणुगमे ३, नए ४ ॥६०॥

छाया—आवश्यकस्य एष पिण्डार्थो वर्णितः समासेन ।

अत एकैकं पुनरध्ययनं कीर्त्तयिष्यामि ॥१॥

तद्यथा—सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवो वन्दनकं प्रतिक्रमणं कायोत्सर्गः प्रत्याख्या-
नम् । तत्र प्रथममध्ययनं सामायिकम् । तस्य खलु इमानि चत्वारि अनुयाग-
दाराणि भवन्ति, तद्यथा-उपक्रमो निक्षेपः अनुगमो नयः ॥६०॥

तात्पर्यं बहने का यह है—इस शास्त्र वा आवश्यकश्रुतस्कंध ऐसा नाम सार्थक
है । अतः सार्थक नाम होने से अवश्य करणीय सावधयोगविरति आदि का
प्रतिपादन सूत्रकार आगे करेगे । (एतो) इसलिये आवश्यक का संक्षेप से
समुदाय अर्थ वर्णन करने के बाद (पुण) पुनः (एकैकं अज्झयणं) एक एक
अध्ययन का (कित्तइस्सामि) कथन में करूंगा । (त जहा) वे अध्ययन इस
प्रकार से हैं—(सामाइयं चउवीसत्थओवन्दणयं पडिक्कमणं, काउसग्गो पच्चक्खाणं)
१ सामायिक, २ चतुर्विंशतिस्तव, ३ वन्दनक, ४ प्रतिक्रमण ५ कायोत्सर्ग
६, प्रत्याख्यान । (तत्थ पढमं अज्झयणं सामाइयं) इन ६ अध्ययनों में से १
पहिला अध्ययन सामायिक है । समः आयः—समायः समायः प्रयोजनमस्येति
सामायिकम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार रागद्वेष से रहित ऐसा आत्मा का-

शब्दार्थ—(आवस्सयस्स) आवश्यक आ नामे प्रसद्धि एवा शास्त्रमे (एतो)
आ पूर्वोक्त प्रकारने (पिण्डत्थो) पिंडार्थ (समासेण) संक्षिप्तभां (वणिणओ) कडेवाभां
आन्थे छे. आ कथनत्तुं तात्पर्यं आ प्रभाण्णु छे—आ शास्त्रत्तुं आवश्यक श्रु-
तस्कंध' एवुं नाम सार्थक छे. आ रीते आ शास्त्रत्तुं नाम सार्थकडेवाथी, अवश्य
करणीय सावधयोग विरति आदित्तुं प्रतिपादन सूत्रकार आगण करवाना छे. (एतो)
तेथी आवश्यकता समुदाय अर्थत्तुं संक्षिप्तभां वर्णन करीने (पुण) डवे (एकैकं अज्झयणं)
अेक अेक अध्ययनत्तुं (कित्तइस्सामि) वर्णन हुं करीश, एवुं सूत्रकार वचन आये
छे (तंजहा) आवश्यकता ते अध्ययनोनां नाम आ प्रभाण्णु छे (सामाइयं, चउ-
वीसत्थओ वन्दणयं पडिक्कमणं, काउसग्गो पच्चक्खाणं) (१) सामायिक, (२) चतु-
र्विंशतिस्तव (२४ तीर्थकरोनी रतुति). (३) वन्दनक, (४) प्रातकमण्णु, (५) कायोत्सर्ग
अने (६) प्रत्याख्यान. (तत्थ पढमं अज्झयणं सामाइयं) आ छ अध्ययनोभां पडेहुं
सामायिक नामत्तुं अध्ययन छे. जेना द्वारा ओध आदिडेना अधुक्क अधिक प्राप्ति
थती रडे तेत्तुं नाम अध्ययन छे. "समः आयः=समायः समायः प्रयोजनमस्येति

टीका—‘आवस्यस्स’ इत्यादि—

आवश्यकस्य=आवश्यक इति नाम्ना प्रसिद्धस्य शास्त्रस्य एवः=पूर्वोक्तरूपः
पिण्डार्थः=समुदायार्थः समासेन=संक्षेपेण वर्णितः=व्यथितः । अस्य शास्त्रस्यावश्यक
श्रुतस्कन्ध इति-अवर्थ-नाम । नाम्नोऽन्वर्थत्वात् अवश्यं करणीयं सावद्ययोगविर-
त्यादिकं प्रतिपादयिष्यते, इति-अभिप्रायः । उत्तरार्धं गाथाऽर्थमाह-अतः=आव-
श्यकस्य संक्षेपेण समुदायार्थं वर्णनानन्तरपुनः=भूयः एकैकम् अध्ययनं कीर्त्त-
यिष्यामि=कथयिष्यामीति ।

एकैकमध्ययनं कीर्त्तयिष्यामीति प्रतिज्ञानुसारेण तन्निरूपयितुमाह—
‘त जहा’ इत्यादि । तद्यथा-सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवो वन्दनकं प्रतिक्रमणं
कायोत्सर्गः प्रत्याख्यानम् । तत्र-तेषु षट्सु अध्ययनेषु प्रथमम्=आद्यम् अध्ययनम्-
अधि-अधिकम् अयनं=प्रापणं बोधादेर्येन तदध्ययनम्, सामायिकम्-समः=राग-
द्वेषवियुक्तः स्वात्मवत्सर्वभूतेषु दृष्टिसम्पन्नरतस्य आयः=प्रतिक्षणं ज्ञानादि-गुणोत्क-

समभाव इव परिणाम किं जो सर्वभूतों में स्वात्मवत् दृष्टि से सम्पन्न होता है
उसका नाम सम है । इस सम की जो आय प्राप्ति है-ज्ञानादिगुणोत्कर्ष के
साथ लाभ है-उसका नाम समाय है । यह सम प्रतिक्षण अपूर्व भवाटवी में
भ्रमण कराने के कारणभूत संक्षेप भाव के विच्छेदक और निरूपम सुख के
हेतु ऐसे ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप पर्यायों से जो संयुक्त हो जाता है
उसका नाम समाय है यह समायशब्द का निष्कर्षार्थ है । यह समाय ही
जिस ज्ञान क्रियारूप अध्ययन का प्रयोजन है उसका नाम सामायिक है । अथवा
समाय एव सामायिकम्” समाय ही सामायिक है । इसका जो सबसे पहिले
कथन किया है-उसका कारण यह है कि यह सामायिक समस्त चारित्रादि
गुणों का आधार होने के कारण मुक्ति का प्रधान हेतु है । कहा है-जैसे सर्व

सामायिकम्” आ व्युत्पत्ति रागद्वेषधी रहित एवा आत्मानुं समभाव इव परिणाम
के जे सर्वभूतोभां स्वात्मवत् दृष्टिधी सम्पन्न होय छे, तेनु नाम ‘सम’ छे. ते
समनी जे आय (प्राप्ति) छे-ज्ञानादि गुणोत्कर्ष इव जे लाभ छे, तेनु नाम समाय
छे प्रतिक्षण अपूर्व भवाटवीभां भ्रमण करववाने कारणभूत संक्षेप भावना विच्छेदक
अने अनुपम सुभना हेतु एवां ज्ञान, दर्शन अने चारित्रइव पर्यायेधी जे संयु-
क्त (सम्पन्न) थछे जाय छे तेनु नाम समाय छे आ प्रकारने ‘समाय’ पदने
निष्कर्षार्थ थाय छे. आ समाय जे जे ज्ञान क्रियाइव अध्ययननुं प्रयोजन छे,
तेनु नाम सामायिक छे. अथवा-“समाय एव सामायिकम्” समाय जे सामायिकइव
छे आ सामायिकनुं साथी प्रथम कथन करवानुं कारण ए छे के आ सामायिक
समस्त चारित्रादि गुणोना आधारइव होवाथी मुक्तिप्राप्तिना प्रधान कारणइव छे.

र्षप्राप्तिः—समायः, समो हि प्रतिक्षणमपूर्वेः ज्ञानदर्शनचरणपर्यायैर्भवाटवीभ्रमणहेतु-
संक्लेशविच्छेदकैर्निरूपमसुखहेतुभिः संयुज्यते इति भावः, समायः प्रयोजनमाय
ज्ञानक्रियासमुदायरूपस्वाध्ययमस्येति सामायिकम् । यद्वा—समाय एव सामायि-
कम् । समस्तचरणाद्गुणाधारत्वेन प्रधानमुक्तिधारणत्वादस्य प्रथममुपन्यासः । उक्तं च—
“सामायिकं गुणानामाधारः, स्वमिव सर्वभावानाम् ।

नहि सामायिकं हीनाश्रणादि गुणान्विता येन ॥१॥

तन्माज्जगाद् भगवान् सामायिकमेव निरूपमापायम् ।

शारीरमानसानेकदुःखनाशस्य मोक्षस्य ॥२॥” इति ॥

तस्यैवंभूतस्य सामायिकस्य खलु इमानि वक्ष्यमाणानि चचारि अनु-
योगद्वाराणि—अनुयोगः=अध्ययनार्थकथनविधिस्तस्य द्वाराणीव द्वाराणि—महा-
पुरस्येव सामायिकस्यानुयोगार्थं=व्याख्यानार्थं द्वाराणि=प्रवेशमार्गा भवन्ति ।
महानगरदृष्टान्तः पूर्वं सप्तपञ्च उपदर्शितस्तत एव विज्ञेयः ।

भावों का आधार आत्मा होता है उसी तरह समस्त गुणों का आधार सामायिक
है—सामायिक रहित पुरुष चारित्र्यादिगुणों से युक्त नहीं हो सकते हैं । इसलिये
भगवान् ने शारीरिक मानसिक अनेक दुःखों के नशवाले मोक्ष का निरूपम
उपाय सामायिकको ही कहा है । (तस्मिन् इमे चत्वारि अणुओगदारा हवन्ति)
उस सामायिक के वे चार अनुयोगद्वार हैं । जिस प्रकार प्रवेश के चार प्रधान
द्वार होते हैं । उसी प्रकार प्रवेश के चार प्रधान द्वार होते हैं । उन्हीं का
नाम अनुयोग द्वार अध्ययन के अर्थ के कहने की विधि का नाम अनुयोग है ।
महानगर का दृष्टान्त प्रथम सूत्र की व्याख्या करने के पहिले कह दिया है—
अतः वहां से उसे जान लेना चाहिये ।—

इहं छे के—जेम सत्तस्त लावेनो आधार आत्मा होय छे, तेम सभस्त गुणोना
आधार सामायिक छे.” सामायिकरहित पुरुष चारित्र आदि गुणोथी संपन्न होय
शकता नथी. तेथी ज लगवाने शारीरिक अने मानसिक दुःखोना नाशकर्ता मोक्ष
प्राप्तियो श्रेष्ठ उपाय सामायिक ज इहो छे. (तस्मिन् इमे चत्वारि अणुओगदारा
हवन्ति) ते सामायिकना आ चार अनुयोग द्वार छे जेम डोय महानगरमां प्रवेश
करवाने भाटे चारे दिशांमां चार मुख्य दरवाजा होय छे, जेज प्रभाणु आ महान-
नगररूप सामायिकना अनुयोगने (व्याख्यानने) भाटे चार द्वार कडे छे. अध्ययनना
अर्थने (विषयने) कडेवानी विधितुं नाम अनुयोग छे महानगरना द्वारोतुं दृष्टान्त
प्रथम सूत्रनी व्याख्या करतां, पहिलां प्रकट करवामां आव्युं छे तो ते दृष्टान्त पहिला
सूत्रमांथी वांथी सेवुं जेधजे.

तानि अनुयोगद्वाराणि दर्शयति—‘तं जहा’ इत्यादि । तद्यथा उपक्रमः-
 उपक्रमणम्-उपक्रमः-दूरस्थस्य वस्तुनस्तस्तैः प्रतिपादनप्रकारैः समीपमानीय
 निक्षेपयोग्यताकरणमित्यर्थः । उपक्रान्तं हि उपक्रमान्तर्गतैर्भेदैर्विचारितं सद्
 निक्षिप्यते नान्यथेति भावः । यद्वा-उपक्रम्यते=निक्षेपयोग्यं क्रियतेऽनेन गुरु-
 वाग्योगेनेत्युपक्रमः । अथवा-उपक्रम्यतेऽस्मिन् शिष्यश्रवणभावे सति गुरुणेत्युपक्रमः,
 किंवा-उपक्रम्यतेऽस्माद् विनीतविनयविनयादित्युपक्रमः । एवं विवक्षाभेदेन करणा-
 धिकरणा पादानकारकैर्गुरुवाग्योगादयोऽर्था उक्ताः । यदित्वेवोऽप्यन्यन्तरोऽर्थः
 करणादिकारकवाच्यत्वेन विवक्ष्यते तथापि न दोषः ।

(तं जहा) सूत्रकार उन्हीं अनुयोगद्वारों को कहते हैं—(उक्कमे, निक्खेवे,
 अणुगमे, नए) १ उपक्रम, निक्षेप, अनुगम, और नय । दूरस्थवस्तु को उन २
 प्रतिपादन प्रकारों से समीप में लाकरके निक्षेप की योग्यतावाली बनाना
 इसका नाम उपक्रम है । उपक्रान्त वस्तु ही उपक्रमान्तर्गत भेदों से विचारित
 होती हुई निक्षिप्त योग्य होती है । अन्यथा नहीं । अथवा—जिस गुरु के वचन
 के व्यापार से वस्तु निक्षेप योग्य की जाती है उसका नाम उपक्रम है ।
 शिष्यजनों को सुनने का भाव होने पर वस्तु जिसमें निक्षेपयोग्य की जाती
 है उसका नाम उपक्रम है । जिस विनीत-विनयशील शिष्य के विनयादि
 गुणों से वस्तु निक्षेप योग्य की जाती है उसका नाम उपक्रम है । इस
 प्रकार विवक्षा के भेद से इन पूर्वोक्त करण अधिकरण अपादान आदि आ
 गुरुवाग्योग आदि अर्थ उपक्रम का कोई एक भी अर्थकरण आदि द्वारा
 वाच्यत्वेन विवक्षित हुआ लिया जाय तो भी उसमें कोई दोष नहीं है ।

(तंजहा) ते अनुयोगद्वारे नीचे प्रमाणे छे—

(उक्कमे, निक्खेवे, अणुगमे, नए) (१) उपक्रम, (२) निक्षेप, (३) अनुगम
 अने (४) नय.

दूरनी वस्तुअने आ प्रतिपादन प्रकारेनी समीपमां लावीने निक्षेपने योग्य
 अनावची तेनुं नाम उपक्रम छे. उपक्रान्त वस्तु न उपक्रमान्त गतिसेदोधी विचारातां
 विचारातां न निक्षिप्तयोग्य थाय छे—अन्य प्रकारे निक्षेपयोग्य थती नथी.

अथवा—जे गुरुना वचनना व्यापारथी वस्तुने नि पयोग्य कराय छे, तेनुं
 नाम उपक्रम छे. शिष्येने सांखणवाने भाव थाय त्तारे वस्तु जेमां निक्षेपयोग्य
 कराय छे तेनुं नाम उपक्रम छे. जे विनीत शिष्यना विनयादि गुणोथी वस्तुने
 निक्षेपयोग्य कराय छे तेनुं नाम उपक्रम छे. आ प्रमाणे विवक्षाना लेदथी आ
 पूर्वोक्त करण, अधिकरण, अपादान आदिद्वारा गुरुवाग्योग आदि उपक्रमना अर्थ
 कहेवमां आल्या छे. जे आ अघामांथी उपक्रमना कोरि अके पणु अर्थकरण आदि
 द्वारा वा प्रत्यये जे विवक्षित थये छे ते देवामां आवे, तो पणु तेमां कोरि दोष नथी.

निक्षेपः=निक्षेपणं निक्षेपः-नामस्थापनादिभेदैः शास्त्रादेर्न्यसनं व्यवस्थापनमिति यावत् । निक्षिप्यतेऽनेनास्मिन् अरमादिति वा निक्षेपः । गुरुवाग्योऽगार्था अत्रापि पूर्ववद् बोध्याः ।

अनुगमः-अनुगमनम्, अनुगमः-अनुगमनार्थकथनम् । अनुगम्यते-व्याख्यायते सूत्रमनेनास्मिन् यस्माद्धेति-अनुगमः । वाच्यार्थविवक्षार्थपूर्ववद् बोध्या ।

नयः-नयनं नयः, नीयते=परिच्छिद्यते निर्णीयते वस्तुरवरूपम्-अनेनास्मिन् अरमाद्धेति नयः । अनन्तधर्माधिवासिते वस्तुनि एकांशग्राहको बोध इत्यर्थः । अयमेवार्थो भावसाधने वरणादि साधने चापि बोध्यः । इदमत्र बोध्यम्-उप-

खने का नाम निक्षेप है-नाम स्थापना आदि के भेद से शास्त्र आदि का न्याय-व्यवस्थापन करना इसका नाम निक्षेप है । जिसके द्वारा अथवा जिसमें अथवा जिससे वस्तु निक्षेपकी जाती-समझाई जाती हैं इसका नाम निक्षेप है । गुरुवाग्योग आदि अर्थ यहां पर भी पहिले की तरह करण आदि साधनोंद्वारा किये गये जानना चाहिये । सूत्र के अनुकूल अर्थ कहना इसका नाम अनुगम है । जिसके द्वारा सूत्रका व्याख्यान किया जावे अथवा जिसमें सूत्रका व्याख्यान किया जाय अथवा जिससे सूत्रका व्याख्यान किया जावे उसका नाम अनुगम है । यहां पर भी करणादिकारकों द्वारा वाच्य अर्थ की विवक्षा पहिले की तरह जान लेनी चाहिये । जिसके द्वारा, अथवा जिसमें, अथवा जिससे वस्तु का स्वरूप जाना जावे उसका नाम नय है । इसका तात्पर्य यह कि वस्तु में अनन्त धर्म हैं-उनमें से किसी एक अंश का ग्रहण करनेवाला जो बोध है उसका नाम नय

राग्युं अथवा स्थापनं करवुं तेनुं नाम नि य छे. अटवे के नाम, स्थापना आदिना लेटो । रा शास्त्र न्यास (व्यवस्थापन) करवो तेनुं नाम नि य छे. नेना द्वारा अथवा नेमां अथवा नेना वडे वस्तु नि य कराय छे-वस्तुनुं प्रतिपादन कराय छे-वस्तुनुं स्वरूप समजववामां आवे छे तेनुं नाम नि य छे. गुरुवाग्योग आदि अर्थ पशु अहीं पडेदांनो नेवांज करणु आदि साधनो द्वारा करवामां आव्या छे, अथ समजवुं. सूत्रने अनुकूल अथो अर्थ कडेवो तेनुं नाम अनुगम छे. नेना द्वारा वस्तुं व्याख्यान करवामां आवे, अथवा नेमां सूत्रनुं व्याख्यान करवामां आवे, अथवा ने वडे सूत्रनुं व्याख्यान करवामां आवे, तेनुं नाम अनुगम छे. अहीं पशु करणु आदि साधनो द्वारा वाच्य अर्थनी विवक्षा पडेदांनी नेमज समजवी.

नेना द्वारा अथवा नेनाथी वस्तुनुं स्वरूप समजववामां आवे छे तेनुं नाम नय छे. तेनुं ता पर्यं नीये प्रमाणे छे-वस्तुमां अनन्त धर्म छे तेमांथी केअ अक अंशनेो ग्रहणु करनारे ने बोध होय छे तेनुं नाम नय छे. नयनेो आ

क्रान्तमेव=निक्षेपयोग्यतामानीतमेव वस्तु निक्षिप्यते, अत आदावुपक्रममभिधाय पश्चाद् निक्षेप उक्तः नामादिभेदेर्निक्षिप्तमेव अनुगमविषयं भवति, अतो निक्षेपानन्तरमनुगम उच्यते । अनुगम्यमानमेव च नयैर्विचार्यते नान्यथा तदनन्तरं नय उक्तः ॥सू० ६०॥

तत्र-उपक्रमो द्विविधः शास्त्रीयो लौकिकश्च । तत्र लौकिकमुपक्रममाह—

मूलम्—से किं तं उदक्कमे ? उदक्कमे छविहे पणत्ते, त जहा

णामोवक्कमे ठवणोवक्कमे दव्वोवक्कमे खेत्तोवक्कमे कालोवक्कमे भावोवक्कमे । नामठवणाओ गयाओ । से किं तं दव्वोवक्कमे ? दव्वोवक्कमे दुविहे पणत्ते, तं जहा—आगमओ य नो आगमो य जाव जाणय-सरीरभवियसरीर वड्ढरित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पणत्ते तं जहा—सचित्ते अचित्ते मीसए ॥सू० ६१॥

है । नय का यही अर्थ भावभाषन में और करण आदि साधनों में भी जानना चाहिये । यहां इस प्रकार समझना चाहिये उपक्रान्त ही—निक्षेप की योग्यता में आई हुई ही वस्तु निक्षेप होती है, इसलिये सब से पहिले उपक्रम को कह करके पश्चात् सूत्रकारने निक्षेप का पाठ किया है । नाम आदि भेदों से निक्षेप हुई वस्तु ही अनुगम की विषयभूत बनती है—इसलिये निक्षेप के अनन्तर अनुगम कहा है । अनुगम से युक्त हुई ही वस्तु नयों द्वारा विचार कोटि में आती है, अन्यथा नहीं इसलिये अनुगम के बाद नय का पाठ किया है । ॥सूत्र ६०॥

अर्थ न साधसाधनमां अने करण आदि साधनोमां पणु समणवेो जेधये. अहीं आ प्रमाणे समणुं जेधये. उपक्रान्त न-निक्षेपनी योग्यतामां आवेली वस्तु न निक्षिप्त थाय छे, तेथी सूत्रकारे सौथी पड्डेलां उपक्रमनुं कथन करीने त्पारणाद निक्षेपनुं कथन कर्युं छे.

नाम आदि लेखी जेना निक्षेप करवामां आव्ये होय जेवी वस्तु न अनुगम करवाने योग्य अने छे. तेथी निक्षेपनुं कथन कर्या णाद सूत्रकारे अनुगमनुं कथन कर्युं छे. अनुगमथी युक्त जेवी वस्तु न नये द्वारा विचारणीय अने छे, तेथी अनुगमना स्वइपनुं कथन कर्याणद सूत्रकारे नयना स्वइपनुं कथन कर्युं छे. ॥सू. ६०॥

જાયા—અથ કોઽસૌ ઉપક્રમઃ ? ઉપક્રમઃ પદ્ધિઃ પ્રજ્ઞસઃ, તદ્વથા—નામોપ-
ક્રમઃ સ્થાપનોપક્રમઃ દ્રવ્યોપક્રમઃ ક્ષેત્રોપક્રમઃ કાલોપક્રમો ભાવોપક્રમઃ નામસ્થાપને
ગતૈ । અથ કોઽસૌ દ્રવ્યોપક્રમઃ ? દ્રવ્યોપક્રમો દ્વિવિધઃ પ્રજ્ઞસઃ, તદ્વથા—આગમતશ્ચ
નોઆગમતશ્ચ ભવ્યશરીરવ્યપતિરિક્તો દ્રવ્યોપક્રમસ્ત્રિવિધઃ પ્રજ્ઞસઃ તદ્વથા—સચિત્તઃ,
અચિત્તઃ મિશ્રકઃ ॥૬૧॥

ઉપક્રમ શાસ્ત્રીય ઉપક્રમ ઓર લૌકિક ઉપક્રમ લેઃ ભેદ સે દો પ્રકાર
કા હૈ—ઇનમેં લૌકિક ઉપક્રમ કા યા સ્વરૂપ હૈ ચહ સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ—

“સે કિં તં ઉવક્રમે” ઇત્યાદિ ॥સૂત્ર ૬૧॥

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં ઉવક્રમે) હે ભદન્ત ! ઉપક્રમ કા વ્યા તાત્પર્ય હૈ ?

ઉત્તર—(ઉવક્રમે છવ્વિહે પળ્ણ) ઉપક્રમ છ પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ ।
(તંજહા) જૈસે (નામોવક્રમે, ઠવળોવક્રમે, દવ્વોવક્રમે, સ્વેત્તોવક્રમે, કાલોવ-
ક્રમે, ભાવોવક્રમે) નામ ઉપક્રમ, સ્થાપના ઉપક્રમ દ્રવ્ય ઉપક્રમ, ક્ષેત્રઉપક્રમ, કાલ-
ઉપક્રમ ઓર ભાવઉપક્રમ । (નામઠવળાઓ ગયાઓ) નામ ઉપક્રમ ઓર સ્થાપના
ઉપક્રમ કા સ્વરૂપ નામ આવશ્યક ઓર સ્થાન આવશ્યક લે સમાન જાનના
ચાહિયે । (સે કિં તં દવ્વોવક્રમે) હે ભદન્ત ! દ્રવ્યોપક્રમ કા વ્યા સ્વરૂપ
હૈ ? (દવ્વોવક્રમે દુવિહે પળ્ણત્તે) દ્રવ્યોપક્રમ દો પ્રકાર કા કહા ગયા
હૈ । (તં જહા) જૈસે (આગમઓ ય નોઆગમઓ ય જાવ જાણયસરીર ભવિધસરીર-

ઉપક્રમના શાસ્ત્રીય ઉપક્રમ અને લૌકિક ઉપક્રમ નામના બે ભેદ કહ્યા છે.
તેમાંથી લૌકિકઉપક્રમનું સૂત્રકાર હવે નિરૂપણ કરે છે—

“સે કિં તં ઉવક્રમે” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં ઉવક્રમે ?) શિષ્ય શુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે
શુરુમહારાજ ! ઉપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(ઉવક્રમે છવ્વિહે પળ્ણત્તે) ઉપક્રમ ૬ પ્રકારનો કહ્યો છે—(તંજહા)
તે પ્રકારે નીચે પ્રમાણે છે.

(નામોવક્રમે, ઠવળોવક્રમે, દવ્વોવક્રમે, સ્વેત્તોવક્રમે, કાલોવક્રમે, ભાવોવક્રમે)
(૧) નામ ઉપક્રમ, સ્થાપના ઉપક્રમ, (૩) દ્રવ્યઉપક્રમ, (૪) ક્ષેત્રઉપક્રમ (૫) કાળ-
ઉપક્રમ અને (૬) ભાવઉપક્રમ. (નામઠવળાઓ ગયાઓ) નામઉપક્રમ અને સ્થાપના
ઉપક્રમનું સ્વરૂપ નામ આવશ્યક અને સ્થાપના આવશ્યક બેવું સમજવું.

(સે કિં તં દવ્વોવક્રમે ?) પ્રશ્ન—હે શુરુમહારાજ ! દ્રવ્યોપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(દવ્વોવક્રમે દુવિહે પળ્ણત્તે) દ્રવ્યોપક્રમ બે પ્રકારનો કહ્યો છે. (તં જહા)
બેનકે....(આગમઓ ય, નોઆગમઓ ય જાવ જાણયસરીર ભવિધસરીરવ્યરિત્તે દવ્વો-

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि—अथ कोऽसौ उपक्रमः ? इति ।
उत्तरमाह—उपक्रमः षाँ ङ्घः प्रज्ञप्तः—नामोपक्रमापनोपक्रमादिरूपः । तत्र नामोप-
क्रमस्थापनोपक्रमौ नामावश्यकथापनावश्यकवद् विज्ञेयौ । सम्प्रति द्रव्योपक्रमं
प्रश्नपूर्वकं प्रस्तौति—अथ कोऽसौ द्रव्योपक्रमः ? द्रव्योपक्रमो द्विविधः प्रज्ञप्तः,
तद् यथा—आगतश्च नो आगतश्च, यावत् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो
द्रव्योपक्रमः । इह यावच्छब्देन द्रव्यावश्यकवद् द्रव्योपक्रमव्याख्या बोध्या ।
तत्र ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रम द्विविधः प्रज्ञप्तः । तद्
यथा—सचित्तः, अचित्तः, मिश्रकः । तत्र सचित्त द्रव्यविषयः सचित्तः,
अचित्तद्रव्यविषयोऽचित्तः, मिश्रद्रव्यविषयो मिश्रकः ॥सू० ६१॥

वदरित्तं द्रव्योपक्रमे तिविहे पण्णत्ते—तं जहा—सचित्ते अचित्ते मीसए) आगत
द्रव्योपक्रम—नोआगत द्रव्योपक्रम । नोआगत द्रव्योपक्रम ३ तीन प्रकार का है—
ज्ञायकशरीर द्रव्योपक्रम, भव्यशरीर द्रव्योपक्रम और ज्ञायकशरीर भव्यशरीर
व्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम । इनमें ज्ञायक शरीर, भव्यशरीर से व्यतिरिक्त जो-
द्रव्योपक्रम है वह तीन प्रकार का है । सचित्त, अचित्त और मिश्र । जिस
उपक्रम का विषय सचित्त द्रव्य है वह तद्व्यतिरिक्त सचित्तद्रव्योपक्रम है ।
जिस उपक्रम का विषय अचित्त द्रव्य है वह तद्व्यतिरिक्त अचित्तद्रव्योपक्रम
है । और जिसका विषय सचित्त अचित्त दोनों प्रकार का द्रव्य है । वह
तद्व्यतिरिक्त मिश्र द्रव्योपक्रम है । इस द्रव्योपक्रम की व्याख्या द्रव्यावश्यक
की तरह जाननी चाहिये ।

भावार्थ—सूत्रकारने यहां पर उपक्रम के ६भेदों को प्रकट करते हुए

वक्रमे तिविहे पण्णत्ते—तं जहा—सचित्ते, अचित्ते मीसए)

(१) ज्ञायकशरीर द्रव्योपक्रम अने (२) नोआगतद्रव्योपक्रम. नोआगतद्रव्यो-
पक्रम नीचे प्रमाणे त्रणु प्रकारने कहे छे—(१) ज्ञायकशरीर द्रव्योपक्रम, (२) भव्य-
शरीर द्रव्योपक्रम अने (३) ज्ञायकशरीर अने भव्यशरीरथी व्यतिरिक्त (लिन्न)
द्रव्योपक्रम तेमाने जे ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम छे तेना नीचे
प्रमाणे त्रणु प्रकार छे. (१) सचित्त, (२) अचित्त अने (३) मिश्र जे उपक्रमने
विषय सचित्त द्रव्य छे, तेने तद्व्यतिरिक्त सचित्तद्रव्योपक्रम कहे छे. जे उपक्रमने
विषय अचित्तद्रव्य छे ते उपक्रमने तद्व्यतिरिक्त अचित्त द्रव्योपक्रम कहे छे. अने
जेने विषय सचित्त अचित्त अने प्रकारनुं द्रव्य छे. ते उपक्रमने तद्व्यतिरिक्त मिश्र
द्रव्योपक्रम कहे छे. आ द्रव्योपक्रमनी व्याख्या द्रव्यावश्यकता जेवी जे समजवी.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रमां उपक्रमना ६ भेदाने प्रकट कर्था छे. तेमांथी

अथ सचित्तं द्रव्योपक्रमं निरूपयति—

मूढम्—से किं तं सचित्तं द्रव्योपक्रमे ? सचित्ते द्रव्योपक्रमे ति-
विहे पणत्ते, तं जहा—दुपए चउप्पए अपए । एक्कि पुण दुविहे
पणत्ते, तं जहा—परिक्कमे य वत्थुविणासे य ॥ सू० ६२ ॥

नाम स्थापना और द्रव्य का उपक्रम का स्वरूप प्रकट किया है। इसमें किसी चेतन अचेतन पदार्थ वा उपक्रम ऐसा नाम रख लेना यह नाम उपक्रम है। किसी पदार्थ में उपक्रम वा आरोप करना यह स्थापना उपक्रम है। भूत में हुई अथवा भविष्यत् काल में होनेवाली उपक्रम की पर्याय को वर्तमान में उपक्रमरूप से हना यह द्रव्य उपक्रम है। इसके आगम और नो आगम को आश्रित करके दो भेद हैं। उपक्रमशास्त्र का अनुपयुक्त ज्ञाता आगम की अपेक्षा से द्रव्योपक्रम है। नोआगम को आश्रित करके द्रव्योपक्रम के ३ भेद हैं—ज्ञायकशरीर, भव्यशरीर और इन दोनों से व्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम। इनमें उपक्रम शास्त्र के अनुपयुक्त ज्ञाता का निर्जीव शरीर नोआगम से ज्ञायक शरीर द्रव्योपक्रम है। जिस प्राप्त शरीर में जीव आगे उपक्रम शास्त्र को सीखेगा वह भव्यशरीर द्रव्योपक्रम है। इन दोनों से व्यतिरिक्त जो नोआगमद्रव्योपक्रम है वह सचित्त, अचित्त और मिश्रद्रव्योपक्रम के भेद से तीन ३ प्रकार का है। ॥सूत्र ६१॥

नाम, स्थापना अने द्रव्योपक्रमं निरूपयति आ सूत्रमां कथुं छे कोष्ठ चेतन-अचेतन पदार्थानु 'उपक्रम' ओवुं नाम राभवुं ते 'नामउपक्रम' छे. कोष्ठ पदार्थमां उपक्रमने आरोप करवे तेनुं नाम स्थापना उपक्रम' छे. लूतकाणमां प्राप्त थयेकी अथवा लविध्यमां थनारी उपक्रमनी पर्यायने वर्तमानमां उपक्रमइये कडेवी तेनुं नाम द्रव्यउपक्रम छे. तेना आगम अने नोआगमने आश्रित करीने छे लेह छे. उपक्रमशास्त्रने अनुपयुक्त ज्ञाता आगमनी अपेक्षाओ द्रव्योपक्रम छे, नोआगमने आश्रित करीने द्रव्योपक्रमना त्रणु लेह पडे छे. (१) ज्ञायकशरीर, (२) भव्यशरीर अने (३) ते जन्नेथी लिन्न ओवे। तद्व्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम.

उपक्रमशास्त्रना अनुपयुक्त ज्ञाताना निर्जीव शरीरने नोआगमनी अपेक्षाओ ज्ञायकशरीरद्रव्योपक्रम कडे छे. जे प्राप्त शरीरथी लुव आगम जतां उपक्रमशास्त्र शीणशे, तेनुं नाम भव्यशरीर द्रव्योपक्रम छे. आ जन्नेथी लिन्न ओवे। जे नोआगम द्रव्योपक्रम छे, ते सचित्त, अचित्त, अने मिश्र द्रव्योपक्रमना लेहथी त्रणु प्रकारने कहे छे. ॥ सू. ६१ ॥

छाया—अथ कोऽसौ सचित्तो द्रव्योपक्रमः ? सचित्तो द्रव्योपक्रमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—द्विपदश्चतुष्पदोऽपदः । एकैकः पुनर्द्विपिङ्गः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्मणि च व तु विनाशे च ॥ सूत्र ६२ ॥

अब सूत्रकार सचित्त द्रव्योपक्रम का स्वरूप प्रकट करते हैं—

“से किं तं सचित्ते द्रव्योपक्रमे” इत्यादि ॥ सूत्र ६२ ॥

शब्दार्थ—(से किं तं सचित्ते द्रव्योपक्रमे) हे भदन्त ! सचित्त द्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है ?

(सचित्ते द्रव्योपक्रमे त्रिविधे पण्णत्ते) उत्तर—सचित्त द्रव्योपक्रम इतीन प्रकार का कहा गया है । (तं जहा) जैसे (दुए चउपए अपए) द्विपद, चतुष्पद और अपद । इन में से नट नर्तक आदिरूप द्विपद सचित्त द्रव्योपक्रम है । हस्ती अश्व आदिरूप चतुष्पद सचित्त द्रव्योपक्रम है । तथा आम्नादि-वृक्षरूप अपद सचित्त द्रव्योपक्रम है । (एकिके पुण दुविहे पण्णत्ते) इनमें भी एक एक दो २ प्रकारका कहा गया है । (तं जहा) जैसे—(परिक्रमे य वत्थुविणासे य) परिकर्म में और व तु विनाश में अवस्थित वस्तु में गुण विशेष का आधान करना परिकर्म है । इस परिकर्म में परिकर्म विषयवाला द्रव्योपचार होता है । द्विपदवाले नट—नर्तक आदि जन घृत आदि द्रव्य के उपयोग से जो अपने बल आदि की वृद्धि करते हैं अथवा और अनेक साधनों से कर्ण एवं स्कन्धों को बढ़ाते हैं वह परिकर्म को आश्रित करके सचित्त द्रव्यो

पुत्रे सूत्रकार सचित्त द्रव्योपक्रमना स्वरूपं निरूपयति करे छे—

“से किं तं सचित्ते द्रव्योपक्रमे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं सचित्ते द्रव्योपक्रमे ?) शिष्य गुरुने एवे। प्रश्न पूछे छे के छे लगवन् ! सचित्त द्रव्योपक्रमं केवुं स्वरूपं छे ?

उत्तर—(सचित्ते द्रव्योपक्रमे त्रिविधे पण्णत्ते) सचित्त द्रव्योपक्रम त्रय प्रकारने दृष्टो छे (तं जहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे.

(दुए, चउपए, अपए) (१) द्विपद, (२) चतुष्पद अने (३) अपद नट, नर्तक आदिरूप द्विपद सचित्त द्रव्योपक्रम छे, गज, अश्व आदिरूप चतुष्पद सचित्त द्रव्योपक्रम छे, तथा आम्नादि वृक्षरूप अपद सचित्त द्रव्योपक्रम छे.

(एकिके पुण दुविहे पण्णत्ते) ये प्रत्येकना पण्णत्ते प्रकार दृष्टा छे. (तं जहा) जेभके (परिक्रमे य वत्थुविणासे य) (१) परिकर्मना आश्रित करीने गुणविशेषनुं आधान करवुं तेनुं नाम परिकर्म छे. आ परिकर्ममां परिकर्मविषयवाणे। द्रव्योपक्रम छे. द्विपदवाणा (ये पगवाणा) नट, नर्तक आदिजन धी आदिद्रव्यना उपयोगथी पोताना जग आदिनी जे वृद्धि करे छे, अथवा जीन अनेक साधनाथी कर्ण अने स्कन्धाने

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त’ इत्यादि—

अथ कोऽसौ सचित्तो द्रव्योपक्रमः ? इति । उत्तरमाह—सचित्तो द्रव्यो-
पक्रमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः । तद्व्यथा—द्विपदः, चतुष्पदः, अपद इति । तत्र-द्विपदः=
नदनर्तकादिरूपः, चतुष्पदः=हस्त्यश्वादिरूपः, अपदः=आम्नादिवृक्षरूपः । तत्र
द्विपदादिषु पुनरेकैका द्विविधः—परिकर्मणि च वस्तुविनाशे च । तत्रावस्थितस्य च
वस्तुनो गुणविशेषाधानपरिकर्म, तत्र परिकर्मणि—परिकर्मविषयो द्रव्योपक्रमः।

पक्रम है । कहा भी है कि क्रिया से वस्तुओं का जा गुण विशेषरूप परिणाम है—
उसका नाम परिकर्म है । वस्तु के विनाश को विषय करनेवाला द्रव्योपक्रम
तब होता है कि जब उपाय विशेषों से वस्तु के विनाश का ही उपक्रम होता है।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा सचित्त द्रव्योपक्रम को ३ रूप में
विभक्त किया है । १ द्विपद २ चतुष्पद और तीसरा अपद । द्विपद दो
चरणवाले प्राणी चतुष्पद—चार चरणवाले जानवर, अपद—जिनके चरण नहीं
ऐसे एकेन्द्रिय वृक्ष आदि अपद हैं । इन सब में जीव होने से ये सब सचित्त
हैं । इन तीनों प्रकार के सचित्तों के विषय में परिकर्म और विनाश को
लेकर द्विपदादि द्रव्योपक्रम दो २-२ प्रकार का और होता है । घृत आदि
शक्तिवर्धक पदार्थों के सेवन से जो ये द्विपद आदि अपने में बल आदि
की वृद्धि करते हैं वह परिकर्म विषयवाला, और उपाय विशेषों से वस्तु को
विनाश करनेवाला जो उपक्रम किया जाता है वह विनाश विषयवाला द्रव्यो-

(अलाभ्याने) वृद्धियुक्त करे छे, ते परिकर्मने आश्रित करीने जे उपक्रम छे तेनुं नाम
सचित्तद्रव्योपक्रम छे. कहुं पणु छे के कियानी अपेक्षाये वस्तुओनुं जे शुणुविशेष-
इय परिणाम छे तेनुं नाम परिकर्म छे. वस्तुना विनाशने विषय करनारे. योप-
क्रम त्तारे जे थाय छे के त्तारे उपायविशेषो द्वारा वस्तुना विनाशने जे उपक्रम थाय छे.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्र १२ सचित्त द्रव्योपक्रमना त्रयु लेदो अताव्या छे.
(१) द्विपद, (२) चतुष्पद) अने (३) अपदद्विपद अटवे जे पगवाणा छवे, चतुष्पद
अटवे चार पगवाणा जानवरो अने अपद अटवे जेने पग नथी अवे अकेन्द्रिय
वृक्षादिने अडणु करवा लेधये. आ अधामां छव होवाथी तेओ सचित्त छे. आ
त्रये प्रकारना सचित्तोना विषयमां परिकर्म अने विनाशनी अपेक्षाये द्विपदादि प्रत्येक
द्रव्योपक्रमना अपणे प्रकार पडे छे. धी आदि शक्तिवर्धक पदार्थोना सेवनथी जे
आ द्विपद आदि सचित्त छवे पोताना जण आदिनी वृद्धि करे छे, ते परिकर्म
विषयवाणे द्रव्योपक्रम छे, अने उपायविशेषो द्वारा वस्तुनो विनाश करनारे जे
उपक्रम करवामा आवे छे ते विनाश विषयवाणे द्रव्योपक्रम छे. आ इथनने।

द्विपदानां नटनर्त्तकादीनां घृताद्युपयोगेन यद् बलवर्णादिकरणं कर्णरक्त्तवर्धना-
दिक्रिया वा स सचित्तद्रव्योपक्रमः । उक्तं च--

“परिकर्मं किरियाए, वत्थूणं गुणविसेस परिणामो” ।

छाया--परिकर्मं क्रियया वस्तूनां गुणविशेषपरिणामः ॥इति॥

वस्तुविनाशविषयो द्रव्योपक्रमश्च-यदा उपायविशेषैर्वस्तुनो विनाश एवो
पक्रम्यते तदा भवति ॥सू० ६२॥

द्विविधमप्येतमुपक्रमं वक्तुमुपक्रमते--

मूलम्--से किं तं दुपए उवक्कमे ? दुपए उवक्कमे नडाणं नच्च-
गाणं जल्लाणं मल्लाणं मुट्टियाणं बेलंबगाणं वहगाणं पवगाणं लास-
गाणं आइक्खगाणं लंखाणं मंखाणं तूणइल्लाणं तुंबवीणियाणं का-
वडियाणं मागहाणं । से तं दुपए उवक्कमे ॥ सू० ६३ ॥

छाया--अथ कोऽसौ द्विपद उपक्रमः ? द्विपद उपक्रमो नटानां नर्त्तकानां
जल्लानां मल्लानां मौष्टिकानां विडम्बकानां कथकानां प्लवकानां लासकानाम्

पक्रम हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि सचित्त द्विपदों चतुष्पदों और अपदों
कों परिकर्म और विनाश को लेकर जो घृतादिद्रव्यों का उपक्रम आयोजन
सेवन किया जाता है वह परिकर्म और विनाशविषयवाला सचित्त द्विपदादि
द्रव्योपक्रम हैं । ॥सू० ६२॥

इसी विषय को सूत्रकार स्पष्ट करते हैं-

“से किं तं दुपए उवक्कमे” इत्यादि ॥सूत्र ६३॥

शब्दार्थ--(से किं तं दुपए उवक्कमे) हे भदन्त ! द्विपद सम्बन्धी द्रव्यो-
पक्रम का क्या स्वरूप है । ? (दुपए उवक्कमे नडाणं नच्चगाणं जल्लाणं

लावार्थं अथे छे के द्विपदो, चतुष्पदो अने अपदोना परिकर्म अने विनाशनी-अपे-
क्षाअथे ने धी आदि द्रव्योना उपक्रम (आयोजन-सेवन) करवासां आवे छे, ते परि-
कर्म अने विनाशरूप विषयवाणो सचित्त द्विपदादि द्रव्योपक्रम छे. ॥ सू० ६२ ॥
आ द्विपद सम्बन्धी द्रव्योपक्रमना विषयमां सूत्रकार विशेष स्पष्टीकरण करे छे-

“से किं तं दुपए उवक्कमे” इत्यादि--

शब्दार्थ--(से किं तं दुपए उवक्कमे ?) शिष्य गुरुने अथो प्रश्न पूछे छे के हे
भगवन् ! द्विपद सम्बन्धी द्रव्योपक्रमनुं स्वरूप केपुं छे ?

आख्यायकानां लङ्घानां मङ्घानां तूणिकानां तुम्बवीणिकानां कावडिकानां माग-
धानाम् । स एष िपद उपक्रमः ॥मृ० ६३॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त’ इत्यादि । अथ कोऽसौ द्विपद-
उपक्रमः ? उत्तरमाह—यद् नटानां-नाट्यकर्तृणां, नर्तकाणां नृत्यविधायिनां,
जल्लानां-जल्लाः-वस्त्रमादाय क्रीडाकारकाः, विरुदपाठका वा, तेषाम्, मल्लानां=
मल्लाः प्रसिद्धास्तेषां, मौष्टिकानां मुष्टिभिर्योद्धारो मल्लविशेषा मौष्टिकारतेषाम्,
विदम्बकानाम्=नानावेषधारिणां विदूषकानाम्, कथकानाम्-कथकाः=वथाकारका-
स्तेषाम्, प्लवकानां-प्लवःते ये ते प्लवकाः=गर्त्ताद्दृष्ट्वारितारो नद्यादितारका
वा तेषाम्, लासकानाम्-रासकान् गायन्ति ये ते लासकाः, जयशब्द प्रयोक्तारे
मण्डाया, तेषाम्, आख्यायकानाम्-आख्यायकाः=शुभशुभाख्यायिन-
स्तेषाम् लङ्घानाम्-महतो वंशरयाग्रभागं येऽधिरं दन्ति ते लङ्घारतेषाम्, मङ्घानाम्
ये चित्रपटादिहरता भिक्षा चरन्ति ते मङ्घारतेषाम्, तूणिकानाम्=तूणवाद्यवादिनाम्,

मल्लानां मुष्टियाणं बेलंबगाणं बहगाणं पवगाणं लासगाणं आइवखगाणं लंखाणं
मंखाणं तूणइल्लाणं तुंबवीणियाणं कावडियाणं मागहाणं) नाट्य करनेवाले नटों
का नृत्यकरनेवालों का, वस्त्र को पकड़कर क्रीडा करनेवाले जल्लों का, अथवा
विरुदावली पढनेवालों का पहलवानों का, मुष्टियों से युद्ध करनेवाले मल्लविशेषों
का, अनेक मेषों का धारण करनेवाले विदूषकों का, कथाओं को कहनेवालों
का, गर्त्त आदि को लांघने की अथवा नदी से पार उतारने की क्रिया में
अभ्यस्त बने हुए प्लवकों का रासलीला करनेवालों का अथवा जयशब्द का
प्रयोग करनेवाले भांडों का शुभ और अशुभ को कहनेवाले अख्यायकों का,
बड़े भारी वांस के अग्रभाग पर आरोहण करनेवाले लंखों का, चित्रपट आदि
को हाथ में लेकर भीख मांगनेवाले मंखों का, तूणवाद्य को बजानेवाले तूणिकों

उत्तर—(दुपए उवक्रमे नटाणं नचगाणं जल्लाणं मल्लाणं, मुष्टियाणं बेलंबगाणं
बहगाणं पवगाणं लासगाणं आइवखगाणं, लंखाणं मंखाणं, तूणइल्लाणं तुंबवीणि-
याणं कावडियाणं मागहाणं) नाटके करनार नटोने, नृत्य करनार नर्तकोने, वस्त्रने
पकडीने क्रीडा करनार जल्लोने अथवा विरुदावली पढानायाओने पडेलवा-
नोने, मुष्टिकोने (मुष्टीओ वडे लडनारा मल्लविशेषोने), अनेक वेषो धारणु करनार
विदूषकोने, कथाकारोने, गर्त्त आदिने पार करवानी अथवा नदीने पार करववानी
क्रियामां अभ्यस्त रहेता ओवा प्लवकोने, रासलीला करनारानो अथवा जय शब्दतुं
उच्यारणु करनार भांडोने, शुभ अने अशुभने कहेनारा अख्यायकोने, घण्टा मोटा
वांस पर आरोहणु करनार लंखोने (गल्लणीयाओने), चित्रपट आदिने हाथमां
लधने तेनी महदथी लीप्य भागता मंखोने, तंतूवाद्योने गल्लवनारा तूणिकोने,

तुम्बवीणिक्कानाम् तुम्बनिर्मिता या वीणा सा तुम्बवीणा, तद्वादनं शिल्पं येषां तुम्बवीणिकास्तेषाम्, कावडिकानाम्—'कावडि' इति भाषाप्रसिद्धभारवाहकानाम् मंगलानाम्—मंगलाः=मङ्गल पाठकास्तेषाम्, एषां सर्वेषामपि घृताद्युपयोगेन बलवर्णाधिकरणं कर्णसान्धादिवर्द्धनं वा स द्विपद उपक्रमः । एष परिकर्मविषयः सचित्तो द्विपद उपक्रमः यस्तु नटादीनां खङ्गादिभिर्नाश एवोपक्रम्यते—सम्प्राप्ते स वस्तुविनाशविषयः सचित्तो द्विपदो द्रव्योपक्रमः इति वाक्यमपि प्रकरणवशादोक्षेप्तव्यम् । स एष द्विपद उपक्रमः ॥सू० ६३॥

का, तूंबडी की वीणा बनाकर उसे बजानेवाले तुंबवीणिकों का, कावड से भार ढोनेवालों कावडिकों का, और मंगल पाठकों का जो अपने शरीर में घृतादिक द्रव्य के सेवन से शक्ति आदि के संबर्द्धन करने का उपक्रम किया जाता है, अथवा जिन २ और साधनों से बानों को और स्कंधों को बढ़ाया एवं बलिष्ठ किया जाता है वह सब प्रयत्न द्विपद संबन्धी उपक्रम है । यह जो द्विपदों का उपक्रम है वह परिकर्म को विषय करनेवाला है इसलिये यह सचित्त द्विपद उपक्रम है । तथा उन्हीं नट आदिकों का जो खङ्गादि से विनाश करने का उपक्रम किया जाता है वह वस्तु के विनाश से संबन्धित होने के कारण वस्तु विनाश विषयवाला सचित्त द्विपद द्रव्योपक्रम है । इस तरह का वस्तु विनाश विषयक सचित्त द्विपद द्रव्योपक्रम का पाठ सूत्र में नहीं आया है—तो भी प्रकरण के वश से उसे यहां समझ लेना चाहिये । इस प्रकार से यह द्विपद उपक्रम संबन्धी कथन है ।

तुंबडीनी वीणा बनावीने तेने वगाडनारा तुंबवीणिकेनो, कावडनी महदथी लार वडन करनार कावडीयायेनो अने मंगलपाठकेनो जे पोताना शरीरमां धी आदिना सेवन वडे शक्ति आदिना संबर्द्धननो जे उपक्रम करवामां आवे छे. अथवा जे जे भीजां साधनो ।रा कलेनि अने भलाने वृद्धियुक्त अने बलिष्ठ करवामां आवे छे, ते भधां प्रयत्नने द्विपद विषयक उपक्रम कडे छे. आ जे द्विपदोनो उपक्रम छे ते परिकर्मने विषय करनारे छे, तेथी ते सचित्त द्विपद उपक्रम छे. तथा जेज नट आदिकेनो तलवार आदिथी जे विनाश करवानो उपक्रम करवामां आवे छे, ते वस्तुना विनाशरूप विषयवाणो सचित्त द्विपद द्रव्योपक्रम छे. आ प्रकारनो वस्तु-विनाश विषयक सचित्त द्विपद द्रव्योपक्रमनो पाठ सूत्रमां आव्यो नथी, तो पणु आ प्रकारणुमां तेनो समावेश करवानुं जरूरी लागवाथी, तेनुं कथन अही थपुं लेधये. आ प्रकारनुं द्विपद सचित्त उपक्रमनुं स्वरूप समजपुं.

अथ चतुष्पदविषयं द्विविधमप्युपक्रमं वर्णयति-

मूलम्--से किं तं चउप्पए उवक्कमे ? चउप्पए उवक्कमे चउप्प-
याणं आसाणं हत्थीणं इच्चाइ । से त चउप्पए उवक्कमे ॥सू० ६४॥

छाया--अथ कोऽसौ चतुष्पद उपक्रमः ? चतुष्पद उपक्रमश्चतुष्पदानाम्
अश्वानां हस्तिनाम्, इत्यादि । स एष चतुष्पद उपक्रमः ॥ ॥प्र० ६४॥

भावार्थ--सूत्रकारने जो सच्चित्त के भेदरूप द्विपद आदि का परिकर्म
और विनाश विषयक द्रव्योपक्रम कहा है-उसी के द्विपदरूप आद्यभेद के
स्वरूप का वर्णन संक्षेप में इस सूत्रद्वारा किया गया है-नट, नर्तक आदिजनों
का जो अपने में शक्ति बढ़ाने वाले घृत आदि पदार्थ हैं उन पदार्थों के
सेवन आदि करने का जो उनका उपक्रम प्रयत्न-है वह परिकर्म विषयक
द्विपद उपक्रम है । तथा विनाश के साधनभूत तलवार आदि से जो इनके
विनाशकर दिये जाने का उपक्रम होता है, वह विनाश विषयक द्विपद
उपक्रम है । ॥सू० ६३॥

अब चतुष्पद विषयक दोनों प्रकार के उपक्रम का वर्णन सूत्रकार करते हैं-

“से किं तं चउप्पए” इत्यादि । ॥सूत्र ६४॥

शब्दार्थ--(से किं तं चउप्पए उवक्कमे) हे भदन्त ! चतुष्पद उपक्रम
का क्या स्वरूप है--(चउप्पए उवक्कमे चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं इच्चाइ)
चतुष्पद अश्व, गज आदि जानवरों को अच्छी चालचलने आदि की शिक्षा

भावार्थ--सूत्रकारने जो सच्चित्तना भेदरूप द्विपद आदिना परिकर्म अने विनाश
विषयक द्रव्योपक्रम कहे छे, तेना जो द्विपदरूप प्रथम भेदना स्वरूपनुं वर्णन अर्हो
संक्षिप्तमां करवामां आणुं छे--

नट, नर्तक आदिजनों को पोटानी शक्ति बढ़ाने की आदि पदार्थोंनुं सेवन
करवाने जो उपक्रम-प्रयत्न करे छे तेने परिकर्म विषयक द्विपद उपक्रम कहे छे. तथा
तलवार आदि साधने वडे ते नट, नर्तक आदिजनोंना विनाश करी नाभवाने जो
उपक्रम (प्रयत्न) थाय छे तेने विनाश विषयक द्विपद उपक्रम कहे छे. ॥ सू० ६३ ॥

उवे. सूत्रकार चतुष्पद विषयक अने प्रकारता उपक्रमनुं विषयकनुं निरूपण करे छे-

“से किं तं चउप्पए” इत्यादि--

शब्दार्थ--(से किं तं चउप्पए उवक्कमे ?) शिष्य गुरुने अवेो प्रश्न पूछे छे के
हे भगवन् ! चतुष्पद उपक्रमनुं केवुं स्वरूप छे ?

उत्तर--(चउप्पए उवक्कमे चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं इच्चाइ) आपणां अश्व,
गज आदि जानवरोंने सारी आदि अलाववा आदि शिक्षा देवाइप जो उपक्रम छे.

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त’ इत्यादि । अथ कोऽसौ चतुष्पदानाम् अथानां हस्तनामित्यादि—अश्वगजप्रभृति चतुष्पदजीवानां शिक्षागुणविशेषकरण-परिकर्मणि—सचित्तद्रव्योपक्रमः, स्वर्गादिभिस्त्वेषां विनाशकरण च, वस्तुविनाशे सचित्तद्रव्योपक्रमः, इति वाक्यशेषः । एतन्निगमयन्नाह—स एष उपक्रम इति ॥सू.६४॥

अथापदविषयं द्विविधमप्युपक्रममाह—

लम्—से किं तं अपए उवक्कमे ? अपए उणक्कमे अपयाणं अंबाणं अंबाडगाणं इच्छाड् । से तं अपओवक्कमे । से तं सचित्त-दव्वोवक्कम् ॥सू० ६५॥

छाया—अथ कोऽसौ अपद उपक्रमः ? अपद उपक्रमः—अपदानाम् आम्राणाम् आम्रा-तकानाम् इत्यादि । स एष अपदोपक्रमः । स एष सचित्त द्रव्योपक्रमः ॥६४॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त’ इत्यादि । अथ कोऽसौ अपद उपक्रमः ? इति । उत्तरमाह—अपद उपक्रमां हि—अपदानां=स्थायरनामकर्मो-दयात् चञ्चनक्रियावर्जितानाम् आम्राणाम्=आम्रवृक्षाणाम्, तत्फलानां च, तथा—

देना यह परिकर्म की अपेक्षा सचित्त द्रव्योपक्रम है । तथा इन्हीं जानवरों को तलवार आदि से मार डालना यह विनाश की अपेक्षा सचित्त द्रव्योपक्रम है । इस प्रकार यह सचित्त के भेदरूप चतुष्पद का दोनों प्रकार के द्रव्योपक्रम का कथन है । ॥सूत्र ६४॥

अब सूत्रकार अपद विषयक दोनों प्रकार के उपक्रम का कथन करते हैं—
‘से किं तं अपए’ इत्यादि । ॥सूत्र ६५॥

शब्दार्थ—(से किं तं अपए उवक्कमे) हे भदन्त ! अपद—जो आम्र एवं आम्रातक आदि वृक्ष और उन के फल हैं कि जिनमें स्थावर नामकर्म के

ते परिक्रमणी अपेक्षाये सचित्त द्रव्योपक्रमे छे. तथा येन जानवराने तलवार आदि वडे भारी नाभवानेने उपक्रमे छे, तेने विनाशनी अपेक्षाये सचित्त द्रव्यो-पक्रमे छे. आ प्रकारे सचित्तना लेदइय चतुष्पदना जन्ने प्रकारना द्रव्योपक्रमेणुं अर्हो वलुंन करवासां आणुं छे. ॥ सू० ६४ ॥

उवे सूत्रकार अपद (अरण्य विहीन एव) विषयक जन्ने प्रकारना उपक्रमेणुं निरूपण करे छे. ‘से किं तं अपए उवक्कमे’ इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं अपए उवक्कमे ?) शिष्य गुरुने एवे। प्रश्न पूछे छे के छे लगवन् ! अपद उपक्रमेणुं स्वइय केवुं डोय छे ?

આમ્રાતકાનામ્—આમ્રાતકદૃક્ષાણાં તત્ફલાનાં ચ, ઇયાદિ । અયં ભાવઃ—આમ્રાદિ-
વૃક્ષાણાં વૃક્ષાયુર્વેદોક્તપદ્ધત્યા વૃદ્ધિકરણં, તત્ફલાનાં ચ ગતે પલાલાદૌ સ્થાપ-
નાદિના ણટિતિ પવવાવસ્થાપાદનં તત્ પરિકર્મવિષયઃ અપદ ઉપક્રમઃ । શસ્ત્રાદિના
ચ યદેપાં વિનાશકરણં તદ્ વસ્તુ વિનાશવિષયઃ અપદ ઉપક્રમ ઇતિ । સ એપઃ
અપદોપક્રમઃ । સ એપ સચિત્તદ્રવ્યોપક્રમ ઇતિ ॥મૂ૦ ૬૫॥

અથ—અચિત્તદ્રવ્યોપક્રમં નિરૂપયતિ—

મૂલમ્—સે કિં તં અચિત્તદ્રવ્યોપક્રમે ? અચિત્તદ્રવ્યોપક્રમે
સ્વંડાર્ણં ગુડાર્ણં મચ્છંડીણં । સે તં અચિત્તદ્રવ્યોપક્રમે ॥ સૂ૦ ૬૬॥

છાયા—અથ કોઽસૌ અચિત્તદ્રવ્યોપક્રમઃ ? અચિત્તદ્રવ્યોપક્રમઃ સ્વંડા-
દીનાં ગુડાદીનાં મત્સ્યણ્ડીનામ્ । સ એપઃ અચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમઃ ॥૬૬॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ—અથ કોઽસૌ અચિત્ત-
દ્રવ્યોપક્રમઃ ? ઇતિ । ઉત્તરમાહ—અચિત્તદ્રવ્યોપક્રમઃ—સ્વંડાદીનાં=‘સ્વંડ’ ઇતિ

ઉદય સે સ્વયં ચલન ક્રિયા નહીં હોતી હૈં ઉનકી વૃક્ષાયુર્વેદોક્ત પદ્ધતિ સે
વૃદ્ધિ કરના—સ્વાત આદે ડાઠકર ઉનહેં વઢાને કા ઉપક્રમ કરના ઉનકે ફલોં
કો સ્વંડા આદિ મેં ભરકર પલાલ આદિ સે ઉનહેં દવાકર કે જલ્દી પકા લેના
યહ સબ પરિકર્મ કો વિષય કરનેવાલા અપદ ઉપક્રમ હૈં । તથા શસ્ત્ર આદિ
સે ઇનકા વિનાશ કરના યહ વસ્તુ વિનાશ વિષયક અપદ ઉપક્રમ હૈં । ઇસપ્રકાર
યહ દોનોં પ્રકારકા ઉપક્રમ અપદ કા દ્રવ્યોપક્રમ હૈં । ઇન તરહ યહાં તક યહ
સચિત્ત દ્રવ્ય સંબન્ધી ઉપક્રમ કા કથન હૈં । ॥મૂ૦ ૬૫॥

ઉત્તર—આમ્ર (આંબો) આદિ જે વૃક્ષો અને તેમનાં જે જે ફળો છે, જેમના
સ્થાવર નામ કર્મના ઉદયને લીધે જેઓ ચલન ક્રિયાથી રહિત હોય છે, તેમની
વૃક્ષાયુર્વેદોક્ત પદ્ધતિથી વૃદ્ધિ કરવી—ખાતર આદિ નાખીને તેમની સારી રીતે વૃદ્ધિ
થાય એવો પ્રયત્ન કરવો, તેમના ફળોને ખાડા આદિમાં ભરીને તેના પર પરાળ
આદિ દળાવીને તેમને જલ્દી પકાવવાનો પ્રયત્ન કરવો, તેને પરિકર્મની અપેક્ષાએ
અપદ ઉપક્રમ કહેવાય છે. તથા શસ્ત્ર આદિ વડે તે વૃક્ષાદિનો વિનાશ કરવો તેને
વસ્તુ વિનાશવિષયક અપદ ઉપક્રમ કહે છે. આ પ્રકારે બંને પ્રકારના અપદ ઉપ-
ક્રમનું નિરૂપણ અહીં પૂરું થાય છે, અને સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમના બધાં લેહોનું વર્ણન
પણ અહીં સમાપ્ત થાય છે. ॥સૂ. ૬૫॥

भाषाप्रसिद्धप्रभृतीनां, गुडादीनां=गुडप्रभृतीनां, मत्स्यण्डीनाम्-प्रतलगुडादीनां, 'राव' इति भाषाप्रसिद्धानां विज्ञेयः । अयं भावः-अचित्तानां खण्डगुड मत्स्य-ण्डीनां द्रव्याणामुपाय-विशेषेण यन्माधुर्याधिक्यकरणं तत्परिकर्मविषयः अचित्त-द्रव्योपक्रमः । एषामेव यत्सर्वथा विनाशकरणं तद् वस्तुविनाशविषयः अचित्त-द्रव्योपक्रमः । एतन्निगमदन्नाह-'से तं' इत्यादि । स एष अचित्त द्रव्योप-क्रम इति ॥सू० ६६॥

अथ मिश्रद्रव्योपक्रममाह—

मूलम्—से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे ? मीसए दव्वोवक्कमे से चेव थासग आयंसगाइमंडिए आसाई । से तं मीसए दव्वोवक्कमे । से तं जाणयसरीर भवियसरीर वडरित्ते दव्वोवक्कमे । स तं नोआगमओ दव्वोवक्कमे । से किं तं दव्वोवक्कमे सू०६७॥

अब सूत्रकार अचित्त द्रव्योपक्रम का कथन करते हैं—

“से किं तं अचित्त दव्वोवक्कमे” इत्यादि ॥सूत्र ६६॥

शब्दार्थ—(से किं तं अचित्तद्रव्योपक्रमे) हे भद्रे ! अचित्त द्रव्योप-क्रम का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(खंडादीनां गुडादीनां मच्छंडीणं, अचित्तद्रव्योपक्रमे) खंड, गुड और राव इन पदार्थों में उपाय विशेष से जो मधुरता की अधिकता करदी जाती है वह परिकर्म विषयवाला अचित्त द्रव्योपक्रम है तथा इन्हीं पदार्थों का जो सर्वथा विनाश करदिया जाता है, वह विनाश विषयक अचित्तद्रव्योपक्रम है । (से तं अचित्तद्रव्योपक्रमे) इस तरह से अचित्त द्रव्योपक्रम का यह स्वरूप है । ॥सूत्र ६६॥

उवे सूत्रकार अचित्त द्रव्योपक्रमना स्वस्वपुं निरूपणु करे छे—

“से किं तं अचित्तद्रव्योपक्रमे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं अचित्तद्रव्योपक्रमे?) शिष्य गुरुने ओवे प्रश्न पूछे छे के छे लगवन् ! अचित्त द्रव्योपक्रमनुं स्वस्वपुं केवु छे ?

उत्तर—(खंडादीनां गुडादीनां मच्छंडीणां अचित्तद्रव्योपक्रमे) भांड, गोण, इत्यादि पदार्थोंमें उपाय विशेषे द्वारा मधुरतानी वृद्धि करवा रूप ने उपक्रम थाय छे, तेने परिकर्म विषयने अचित्त द्रव्योपक्रम कहे छे. तथा ओन् पदार्थोंने ने सर्वथा विनाश करी नाभवा रूप उपक्रम थाय छे तेने विनाश विषयक अचित्त द्रव्योपक्रम कहे छे. (से तं अचित्ते दव्वोवक्कमे) आ प्रकारनुं अचित्त द्रव्योपक्रमनुं स्वस्वपुं छे. ॥ सू. ६६ ॥

छाया—अथ कोऽसौ मिश्रको द्रव्योपक्रमः स एव स्थासकादर्शकादि-
मण्डितः अश्वादिः । स एष मिश्रको द्रव्योपक्रमः । स एष ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-
व्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रमः । स एष आगमतो द्रव्योपक्रमः । स एष द्रव्योपक्रमः ॥मू० ६७॥

टीका—शिष्य पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ वेऽसौ मिश्रको
द्रव्योपक्रमः ? इति । उत्तरमाह—मिश्रकः=सचित्ताचित्तात्मको द्रव्योपक्रमः—स्थास-
कादर्शकादि मण्डितः—स्थासकः=अश्वाभरणविशेषः, आदर्शः=दृपभग्नीवाभरण
विशेषः, आदि शब्दात् कुङ्कुमादयः, एषां समासः, तैर्मण्डितः=भूषितः अश्वा-

अब सूत्रकार मिश्र द्रव्योपक्रम का कथन करते हैं—

‘से किं तं मीसए दव्वोवक्रमे’ इत्यादि । ॥मू० ६७॥

शब्दार्थ—(से किं तं मीसए दव्वोवक्रमे) हे भदन्त ! मिश्र द्रव्योप-
क्रम क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(मीसए दव्वोवक्रमे से चेव थासगआयंसगाइमंडिए आसाइ—से तं
मीसए दव्वोवक्रमे) सचित्तात्मक—मिश्र—द्रव्योपक्रम का स्वरूप इस प्रकार से
है—कि अचित्त स्थासक और आदर्श आदि से विभूषित हुए घाडे से लेकर
वैल तक के जानवरों में जो शिक्षा आदि गुण की विशेषता करने का उपक्रम
किया जाता है वह परिारम विषयक मिश्रद्रव्योपक्रम है । स्थासक यह घाडे
का आभरण विशेष है । आदर्श यह वैल का आभरण विशेष है । एडक शब्द
का अर्थ मेष हैं । स्थासक—आदर्श और आदि पद से गृहीत कुंकुम का लेप

डवे सूत्रकार मिश्र द्रव्योपक्रमना स्वरूपं निरूपणु करे छे—

‘से किं तं मीसए दव्वोवक्रमे’ इत्यादि

शब्दार्थ—(से किं तं मीसए दव्वोवक्रमे?) शिष्य गुरुने ओवो प्रश्न पूछे छे
—हे डे लगवान् ! मिश्र द्रव्योपक्रमं स्वरूपं केवुं छे ?

उत्तर—(मीसए दव्वोवक्रमे से चेव थासगआयंसगाइमंडिए आसाइ—से
तं मीसए दव्वोवक्रमे)

सचित्तात्मक मिश्र द्रव्योपक्रमं स्वरूपं आ प्रकारं छे— अचित्त स्थासक,
दर्पण आदिनी विलूषित थयैला घोडाथी लघने गणद पर्यन्तना जानवरोंमां जे
शिक्षा आदि गुणनी विशेषता करवाने उपक्रम करवामां आवे छे, तेने परिकर्म
विषयक मिश्र द्रव्योपक्रम कडे छे. ‘स्थासक’ आ घोडानुं ओक भास आभरणु छे
अने दर्पणनी भाये गणदनुं आभरणु विशेष छे. ‘एडक’ आ शब्द मेष (घे.।)
ने वाचक छे. स्थासक, दर्पण, कुंकुमना लेप आदि अचित्त द्रव्ये छे तथा अश्व,

दिः=अश्वप्रभृत्येऽकान्तो विज्ञेयः । अयं भावः—स्थासकादर्शकादि भूपितानां कृत
 कृमानां तेषामश्वाद्येडकान्तानां यच्छिक्षादि गुणविशेषकरणं परिकर्मविषयः
 मिश्रद्रव्योपक्रमः । तेषां रङ्गादिभिर्दिनाशस्तु दस्तुविनाशविषयो मिश्रद्रव्यो-
 पक्रम इति । अत्र—अश्वादीनां सचेतनत्वात् स्थासकादीनाम् अचेतनत्वात् मिश्र
 द्रव्यत्वं बोध्यम् । एतदुपसंहरन्नाह—‘से तं’ इत्यादि । स एष मिश्रका द्रव्यो-
 पक्रम इति । ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रमः सूकलोऽपि निरूपित
 इति सूचयितुमाह—‘से तं’ इत्यादि । स एष ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो
 द्रव्योपक्रम इति । नोआगमतः सर्वोऽपि द्रव्योपक्रमो निरूपित इति सूचयितुमाह—
 ‘से तं’ इत्यादि । स एष नोआगमतो द्रव्योपक्रम इति । द्रव्योपक्रमः सर्वो
 निरूपित इति सूचयितुमाह—‘से तं’ इत्यादि । स एष द्रव्योपक्रम इति ॥सू०६७॥

ये सब अचित्त द्रव्य है । तथा अश्व वगैरह सचित्त द्रव्य है । इन से जब इन
 सचित्त पदार्थों को विभूषित किया जाता है—तब ये मिश्र द्रव्य कहलाते हैं । इन
 में जो शिक्षा गुण से विशेषता का आपादन होता है यही मिश्र द्रव्योपक्रम
 का स्वरूप परिकर्म की अपेक्षा लेकर कहा गया है । तथा जब इनका खड्ग
 आदि विनाशक कारणों से विनाश हो जाता है तब वह विनाश को लेकर
 मिश्र द्रव्योपक्रम का स्वरूप कहा जाता है । यही मिश्रद्रव्योपक्रम
 है । (से तं ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्योपक्रमे) इस
 प्रकार ज्ञायकशरीर द्रव्योपक्रम और भव्यशरीर द्रव्योपक्रम से व्यतिरिक्त द्रव्यो-
 पक्रम का स्वरूप कहा है । (से तं नोआगमतो द्रव्योपक्रमे—से तं द्रव्यो-
 पक्रमे) नोआगम की अपेक्षा लेकर यह द्रव्योपक्रम का स्वरूप पूर्णरूप से निरूपित

अणद, घटां आदि सचित्त द्रव्यो छे. आ सचित्त अर्थ आदि जनवराने ज्यारे
 उपर्युक्त स्थासक, दर्पण आदि अचित्त द्रव्यो वडे वभूषत करवाभां आवे छे,
 त्यारे तेओ मिश्र द्रव्य रूप जनी जय छे. जेवां मिश्र द्रव्य रूप स्थासकथी
 विभूषित अश्वादिमां जे शिक्षा आदि गुणनी विशेषता करवाने उपक्रम थाय छे
 तेनुं नाम ज परिकर्म विषयक मिश्र द्रव्योपक्रम छे. अने तेमने तलवार आदि
 शस्त्रो-वडे विनाश करवाने जे उपक्रम थाय छे, ते उपक्रमने विनाश विषयक मिश्र
 द्रव्योपक्रम कहे छे. आ प्रकारनुं मिश्र द्रव्योपक्रमनुं स्वरूप छे.

(से तं ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्योपक्रमे)

आ प्रकारे ज्ञायकशरीर द्रव्योपक्रम अने लव्यशरीर द्रव्योपक्रमथी व्यतिरिक्त
 (लिनन) जेवा द्रव्योपक्रमना स्वरूपनुं निरूपण आही पड़ थाय छे. (से तं नो
 आगमतो द्रव्योपक्रमे से तं द्रव्योपक्रमे) आ रीते नोआगम द्रव्योपक्रमना अधा

अथ क्षेत्रोपक्रम निरूपयति—

मूलम्—से किं तं खेत्तोवक्कमे ? खेत्तोवक्कमे जणं हलकुलिया-
ईहिं खेत्ताइं उवक्कमिज्जंति । से तं खेत्तोवक्कम ॥सू० ६८॥

छाया—अथ कोऽसौ क्षेत्रोपक्रमः ? क्षेत्रोपक्रमो यत्खलु हलकुलिकादिभिः
क्षेत्राण्युपक्रम्यन्ते । स एष क्षेत्रोपक्रमः ॥६८॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—से किं तं इत्यादि । अथ कोऽसौ क्षेत्रोपक्रमः ? इति ।

उत्तरमाह—क्षेत्रोपक्रमः-क्षेत्राणामुपक्रमः-क्षेत्रसम्बन्ध्युपक्रमः यत्खलु हल-

हो चुका । इसके निरूपण होने से द्रव्योपक्रम का समस्त स्वरूप भी निरूपित
हो गया ऐसा जानना चाहिये ।

भावार्थ—सचित्ताचित्त द्रव्य में जो विशेषता का आपादन किया जाता
है वह परिक्रम विषयवाला मिश्र द्रव्योपक्रम है और सचित्ताचित्तरूप मिश्र
द्रव्य का जो खर्जादि विनाशक कारणों से विनाश किया जाता है, वह विनाश विषयक
सचित्ताचित्त द्रव्योपक्रम है—इस प्रकार यहां तक द्रव्योपक्रम से संबन्धित जितना
भा वर्णन है वह सब सूत्रकार ने कर दिया है । ॥सूत्र ६७॥

अब सूत्रकार क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप प्रकट करते हैं—

“से किं तं खेत्तोवक्कमे” इत्यादि । सूत्र ॥६८॥

शब्दार्थ—(से किं तं खेत्तोवक्कमे) हे भदन्त ! क्षेत्रोपक्रम का क्या
स्वरूप है ?

उत्तर—(खेत्तोवक्कमे जणं हलकुलियाईहिं खेत्ताइं उवक्कमिज्जंति—से

लेहोना स्वइपनुं निइपणु अडिं संपूणुं थाय छि, अने तेनुं निइपणु थं नवाने वीधि
द्रव्योपक्रमना अथा लेहो अने प्रलेहोनुं निइपणु पणु संपूणुं थं नय छि अम समणुं.

भावार्थ—सचित्ताचित्त द्रव्यमां (मिश्र द्रव्यमां) ने विशेषतानुं आपादन
करवामां आवे छे, ते परिक्रम विषयक मिश्र द्रव्योपक्रम छे. अने सचित्ताचित्त
इप मिश्र द्रव्योने ने शस्त्रादि इप विनाशक कारणे वडे विनाश करवामां आवे छे,
तेने विनाश विषयक मिश्र द्रव्योपक्रम कडेवाय छे. आ रीते अहीं सुधीमां द्रव्यो-
पक्रम साथे संबन्ध राअनाइं अणुं समस्त वणुं न सूत्रकारे समाप्त कथुं छे. ॥ सू० ६७॥

इवे सूत्रकार क्षेत्रोपक्रमना स्वइपनुं निइपणु करे छे—

“(से किं तं खेत्तोवक्कमे)” इत्यादि—

शब्दार्थ—“से किं तं खेत्तोवक्कमे” हे भगवन् क्षेत्रोपक्रमतुं शुं स्वइप
छे ? (खेत्तोवक्कमे जणं हलकुलियाईहिं खेत्तो उवक्कमिज्जंति से तं

कुलिकादिभिः—हलं प्रसिद्धम्, कुलिकं=हलविशेषः तत् लघुतरं काष्ठं खलु तृणादि-
च्छेदनार्थमुपयुज्यते । तदादिभिः क्षेत्राणि उपक्रम्यन्ते—बीजवपनयोग्यानि क्रियन्ते।
अयं भावः—हलकुलिकादिभिः क्षेत्राणां यद्बीजवपनयोग्यताः रणं तत्परिकर्मविषयः
क्षेत्रोपक्रमः । तथा—गजबन्धनादिभिर्भूत क्षेत्राणि उपक्रम्यन्ते=विनाश्यन्ते, तद् वस्तु
विनाशविषयः क्षेत्रोपक्रमः । गजमूत्रपुरिष दिना क्षेत्रगतबीजप्ररोहणशक्तिं विनाशयते,
इति विनष्टानि क्षेत्राण्युच्यन्ते । इत्थं द्विविधः क्षेत्रोपक्रमो बोध्य इति ।

ननु क्षेत्रगत पृथिव्यादि द्रव्याणामेव एतौ परिकर्मविनाशौ । इत्थं च

तं खेतोवक्त्रमे) क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप इस प्रकार से है कि जो हल एवं कुलिका—
तृणादिको खेत में से दूर करने के लिये काम में लिये गये एक प्रकार का हल
जैसा लघुतर काष्ठ—आदि से जोतकर खेत बीज वपन (बोने) के योग्य बनाये जाते
हैं वह क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप है । यह क्षेत्रोपक्रम परिपक्व और विनाश
को लेकर दो प्रकार का है—इनमें जो हल आदि से जोतकर क्षेत्र की
बीजोत्पादन की योग्यतावाला बनाना यह परिकर्म विषयक क्षेत्रोपक्रम है
तथा खेतों में हाथी आदि कों को बांधकर उन्हें बीजवपन (बोने) के अयोग्य
बना देना यह वस्तु विनाश विषयक क्षेत्रोपक्रम है । हाथी की मूत्र और
लिडों से खेत में बीजोत्पादन करने की शक्ति का नाश हो जाता है । इस
प्रकार यह दोनों प्रकार का क्षेत्रोपक्रम जानना चाहिये ।

शंका—परिकर्म और विनाश जो होते हैं वे क्षेत्रगत पृथिवी आदि
द्रव्यों के ही होते हैं—

खेतोवक्त्रमे) क्षेत्रोपक्रमं स्वल्प आ प्रकारं तु छे जे ढण अने कुलिक (पेतरमांथी
तृणादिकोने दूर करवाने माटे एक प्रकारं तुं ढण जेवुं लघुतर काष्ठ विशेष वपराय
छे तेनुं नाम कुलिक छे.) आदि वडे जेडीने पेतरने भीज वाववाने योग्य अनाववानुं
कार्यं थाय छे तेने क्षेत्रोपक्रम कडे छे. ते क्षेत्रोपक्रमना परिकर्म अने विनाशनी
अपेक्षाये जे लेह पडे छे ढण आदि वडे जेडीने पेतरने जे भीजेत्पादननी योग्य-
तावाणुं अनाववाने उपक्रम (प्रयत्न) थाय छे, तेने परिकर्म विषयक क्षेत्रोपक्रम कडे
छे. तथा पेतरमां हाथी आदिने बांधीने तेने भीजेत्पादनने माटे अयोग्य अनाव-
वाने जे उपक्रम थाय छे तेने विनाश विषयक क्षेत्रोपक्रम कडे छे. जेवुं मानवांमां
आवे छे के हाथीना मूत्र, मण आदि जे पेतरमां पडयुं होय ते पेतरनी भीजे-
त्पादन शक्तिने नाश थछं जय छे आ प्रकारे अहीं अने प्रकारना क्षेत्रपरिकर्मं तुं
स्वल्प प्रकट करवामां आण्युं छे.

शंका—परिकर्म अने विनाश जे थाय छे ते तो क्षेत्रगत पृथ्वी आदि
द्रव्योने जे थाय छे. तेथी तेने क्षेत्रोपक्रम कडेवाने णहवे द्रव्योपक्रम जे कडेयो

દ્રવ્યોપક્રમ एवायं न तु क्षेत्रोपक्रमः, तर्हि कथं क्षेत्रोपक्रमः ? इति चेत्, उच्यते-
 क्षेत्रं हि आकाशमुच्यते, तस्य चामूर्त्तत्वात्तदुपक्रमो न संभवति, तथापि तदा-
 धेयत्वेन स्थितानां पृथिव्यादि द्रव्याणां य उपक्रमः स क्षेत्रोऽप्युपचर्यते । लोके-
 ऽपि यथा 'मञ्चाः क्रोशन्ती'-त्यादौ आधेयतधर्माणांमाधारे उपचरो भवति । उक्तंचापि
 "खेत्तमरूवं निचं, न तस्य परिक्रमणं न य विणासे ।
 आहेयगयवसेण उ, करणविणासेवयारो उ" ॥ १ ॥

इसलिये यह क्षेत्रोपक्रम न होकर द्रव्योपक्रम ही हुआ फिर इसे क्षेत्रोप-
 क्रम कैसे कहा—

उत्तर—क्षेत्र शब्द का अर्थ आकाश है । और यह आकाशरूप क्षेत्र
 अमूर्त है—अतः इसका उपक्रम नहीं होसकता है । फिर भी इस में आधेय
 रूप से वर्तमान जो पृथिविव्यादि द्रव्य है, उनका तो उपक्रम होता है इसलिये
 उनका उपक्रम आधाररूप आकाश में उपचरितकर लिया जाता है । इसलिये
 क्षेत्रोपक्रम बन जाता है । लोक में भी जैसे "मञ्चाःक्रोशन्ति" मंचबोलते हैं ।
 खेत रक्षा के लिये खेत के लिये खेत के पाली पर जो घरविशेष बनाते हैं
 उसको मंच कहते हैं, मंच बोलते हैं ऐसा जो कह दिया जाता है—इह आधेय
 रूप पुरुषादिकों के धर्मों को आधार में उपचरित करके ही कहा जाता
 है—कहा भी है—'खेत्तमरूवे' इत्यादि—उस का अर्थ यही है—कि क्षेत्र तो
 अरूपी और नित्य है । उसका न परिकर्म हो सकता है और न विनाश,

कोधये. છતાં અહીં તેને ક્ષેત્રોપક્રમ રૂપે શા માટે પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યો છે ?
 ઉત્તર—ક્ષેત્રા શબ્દનો અર્થ આકાશ થાય છે, અને આ આકાશરૂપ ક્ષેત્ર
 અમૂર્ત છે તેથી તેનો ઉપક્રમ થઈ શકતો નથી. છતાં પણ તેમાં આધેય રૂપે વર્ત-
 માન જે પૃથ્વી આદિ દ્રવ્ય છે તેમનો તો ઉપક્રમ થાય છે. તેથી તેમનો ઉપક્રમ
 આધાર રૂપ આકાશમાં ઉપચરિત કરી લેવામાં આવે છે. તેથી ક્ષેત્રોપક્રમ ઘટિત થઈ
 બન્ય છે. લોકોમાં પણ "મઝ્ચાઃ ક્રોશન્તિ" "મંચ બોલે છે," એવું કહેવામાં
 આવતું હોય છે. ખેતરની રક્ષા માટે એક મંચડો બનાવ્યો હોય છે. ત્યાં બેઠો
 બેઠો કોઈ પુરુષ ખેતરની રખવાળી કરે છે મંચ પર બેઠેલો પુરુષ બોલતો હોય
 ત્યારે કંટકીક વખતે "મંચ બોલે છે," આ પ્રકારનો પણ વ્યવહાર થતો બેવામાં
 આવે છે. આધેય રૂપ પુરુષના ધર્મોને આધાર રૂપ મંચમાં ઉપચરિત કરીને આ
 પ્રમાણે કહેવામાં આવે છે. કહ્યું પણ છે કે "ખેત્તમરૂવે" ઇત્યાદિ—આ સુત્રપા-
 ઠનો પણ એવો જ અર્થ છે કે ક્ષેત્ર તો અરૂપી અને નિત્ય છે. તેનું પરિકર્મ

छाया—क्षेत्रमरूपं नित्यं न तस्य परिहर्षं न च विनाशः ।

आधेयगतवशेनैव करणविनाशोपचारोऽत्र ॥ इति ।

इत्थं च 'क्षेत्रोपक्रमः' उक्ताऽपि न दोषः । सम्प्रति प्रकृतमुपसंहरन्नाह—
'से तं' इत्यादि । स एष क्षेत्रोपक्रम इति ॥ सू० ६८ ॥

अथ कालोपक्रमं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं कालोवक्त्रमे ? कालोवक्त्रमे जण्णं नालियाई हिं
कालस्सोवक्त्रमणं कीरइ । से तं कालोवक्त्रमे ॥ सू० ६९ ॥

छाया—अथ कोऽसौ कालोपक्रमः ? कालोपक्रमो यत्खलु नालिकादिभिः कालस्यो-
पक्रमणं क्रियते । स एष कालोपक्रमः ॥ ६९ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं' इत्यादि ? इति । उत्तरमाह—
कालोपक्रमो हि स भवति, यत्खलु नालिकादिभिः—नालिका=ताम्रादिमय घटिका,

परन्तु क्षेत्र में जो करण और विनाश का व्यवहार होता है वह आधेयगत-
वस्तु के वरण और विनाश के उपचार से होता है । इस प्रकार क्षेत्रोपक्रम
कहने में कोई दोष नहीं है । इस तरह वह क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप है ॥ सू० ६८ ॥

अब सूत्रकार कालोपक्रम का स्वरूप प्रकट करते हैं—

'से किं तं कालोवक्त्रमे' इत्यादि । ॥ सूत्र ६९ ॥

शब्दार्थ—(से किं तं कालोवक्त्रमे) हे भद्रन्त ! कालोपक्रम का क्या स्वरूप है ?
(कालोवक्त्रमे जण्णं नालियाई हिं कालस्सोवक्त्रमणं कीरइ । से तं
कालोवक्त्रमे) कालोपक्रम का स्वरूप इस प्रकार से है—जो नालिका
तथा घटी आदि से कालका यथावत् स्वरूप परिज्ञात हो
जाता है—वह कालोपक्रम है । ताम्रआदि का एक छोटी सी घटी

पणु थर्ष शक्तुं नथी अने तेना विनाश पणु थर्ष शक्तो नथी. परन्तु क्षेत्रमां ने
करण अने विनाशनेो व्यवहार थाय छे. ते आधेयगत वस्तुना करणु अने विना-
शना उपचारनी अपेक्षाये थाय छे. आ प्रकारे तेने क्षेत्रोपक्रम कडेवामां कोथ दोष
नथी. आ प्रकारनुं क्षेत्रोपक्रमनुं स्वइय छे ॥ सू० ६८ ॥

'से किं तं कालोवक्त्रमे' इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं कालोवक्त्रमे?) शिष्य शुरुने अवेो प्रश्न पूछे छे के के
लगवन् ! कालोपक्रमनुं स्वइय केवुं छे ?

उत्तर—(कालोवक्त्रमे जण्णं नालियाई हिं कालस्सोवक्त्रमणं कीरइ—से तं
कालोवक्त्रमे) कालोपक्रमनुं स्वइय आ प्रकारे कहुं छे—नालिका आदि वडे कणना
यथावत् स्वइयनुं ने परिज्ञान थाय छे तेनुं नाम कालोपक्रम छे. ताम्र आदिनी

इयं हि दाडिमपुष्पाकाराऽधच्छिद्रा भवति। अधश्छिद्रेण नालिका मध्ये जलं प्रविशति। जलेन भृतायां नालिकायां कालमानो निश्चीयते। आदि पदात् शंकुच्छाया नक्षत्रचारादयोऽपि बोध्याः। एभिरपि कालो मीयते। एतैः—कालमापकसाधनैः कालस्योपक्रमं क्रियते। अयं भावः—नालिकाशंकुच्छायानक्षत्रचारादिभिर्वत् 'एतावान् पौरुष्यादिकालोऽतिक्रान्तः' इति परिज्ञायते स परिकर्मविषयः कालोपक्रमः। अत्र कालस्य यथावत्परिज्ञानमेव परिकर्म बोध्यम्। तथा—नक्षत्रादि चारैः कालस्य यद् विनाशनं स वस्तुविनाशविषयः कालोपक्रमः। श्रूयते हि लोके

वनाई जाती है। उसका आकार दाडिम—अनाके पुष्प जैसा होता है? इनके नीचे एक छेद होता है? नीचे के छेद से इसमें जल प्रविष्ट होता है। जब यह जल से भर जाती है तो इससे काल का मान निश्चित किया जाता है। यहां पर आदि पद से शंकुच्छाया और नक्षत्रों की चाल आदि ग्रहण हुई है। इन से भी काल का मान जाना जाता है। इस तथे इन कालमापक साधनों से काल का उपक्रम किया जाता है।

तात्पर्य कहने का यह है कि इन नालिका—शंकुच्छाया और नक्षत्रचाल आदि से जो “इतना पौरुषी आदिकाल व्यतीत हो चुका” सा जाना जाता है वह परिकर्म विषयवाला कालोपक्रम है। काल का यथावत् परिज्ञान होना ही यहां परिकर्म जानना चाहिये। तथा नक्षत्र आदिकों की चाल से जो काल का विनाश होता है वह वस्तुविनाश विषयक कालोपक्रम है। लोक में ऐसा

એક નાની સરખી ઘડિયાળ બનાવવામાં આવે છે. તેનો આકાર દાડમના પુષ્પ જેવો હોય છે. તેની નીચે એક છિદ્ર હોય છે. આ સાધનને પાણીથી ભરેલા કોઈ યાત્રમાં મૂકવામાં આવે છે. તે છિદ્ર દ્વારા તેમાં પાણી દાખલ થવા માંડે છે. બ્યારે તે સાધન (નાલિકા) જળઘડી પાણીથી ભરાઈ જાય છે ત્યારે તેની મદદથી કાળનું માપ નિશ્ચિત કરવામાં આવે છે. અહીં 'આદિ' પદ વડે શંકુચ્છાયા અને નક્ષત્રોની ચાલ આદિ ગ્રહણ થયેલ છે. તેમની મદદથી પણ કાળનું માપ નીકળી શકે છે. આ પ્રકારે આદિ કાલમાપક સાધનો વડે કાળનો ઉપક્રમ કરવામાં આવેલ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે આ નાલિકા (જળઘડી) શંકુચ્છાયા (સૂર્ય ઘડી) અને નક્ષત્રોની ચાલ આદિ દ્વારા “આટલા પહોર આટલી ઘડી આદિ વ્યતીત થઈ ગયા આ પ્રકારનું કાળવિષયક જે જ્ઞાન થાય છે તેને પરિકર્મ કાલોપક્રમ કહે છે. કાળનું યથાવત્ પરિજ્ઞાન થવું તેનું નામ અહીં પરિકર્મ સમજવું. તથા નક્ષત્ર આદિકોની ચાલથી કાળનો જે વિનાશ થાય છે, તે વસ્તુવિનાશવિષયક કાલોપક્રમ સમજવો. લોકોમાં એવી વાત થતી સાંભળે

‘अनेन ग्रहनक्षत्रादिचारेण कालो विनाशितः, न भविष्यन्त्यधुना धान्यानि’—
इति । उक्तं च—

“छायाए नालियाए, व परिकम्मं से जहत्थं विन्नाणे ।

रिक्खाइयचारे हि य, तस्स विणासो विवज्जासो ॥१॥

छाया—छायया नालिकया वा परिकर्मं तस्य यथार्थविज्ञानम् ।

ऋक्षादिकचारैश्च, तस्य विनाशो विपर्यासः ॥१॥

इत्थं वस्तु विनाशविषयः कालोपक्रमो बोध्यः । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—‘से
तं’ इति । स एषकालोपक्रम इति ॥६९॥

अथ भावोपक्रमं निरूपयति—

श्ल६—से किं तं भावोवक्कमे ? भावोवक्कमे दुविहे पणत्ते,
तं जहा आगमओ य नोआगमओ य । आगमओ ऽभावोवक्कमो
नाणए उववत्ते । नोआगमओ भावोवक्कमे दुविहे पणत्ते, तं जहा
पसत्थे, य अपसत्थे य । तत्थ अपसत्थे ऽडोडिगिगणिया अमच्चा-
ईणं । पसत्थे गुरुमाइणं । से तं नोआगमओ भावोवक्कमे । से तं
भावोवक्कम । से तं उवक्कम ॥सू०७०॥

सुना जाता है कि इस ग्रह नक्षत्र आदि की चाल से काल नष्ट हो गया—
अब अनाज पैदा नहीं होगा । वहा भी है—‘छायया’ इत्यादि उसका अर्थ
इस प्रकार से हैं कि छाया से अथवा नालिका से जो काल का यथार्थ परि-
ज्ञान है वह परिकर्म है । तथा नक्षत्रादिकों की गति से उसमें जो विपरीत
ता है वह काल का यह वस्तु विनाश विषयक कालोपक्रम है । इस तरह से
यह कालोपक्रम का स्वरूप वर्णन है । ॥सू० ६९॥

वाभां आवे छे के आ नक्षत्रनी चाल आदिथी काण नष्ट थर्ध जथो—हुवे अनाज
पेदा नही थाय. कहुं पणु छे के— “छाया” इत्यादि—आ सूत्रपाठनो लावाथ नीचे
प्रमाणे छे—छाययाथी अथवा नालिका आदिथी जे काणनुं यथार्थ परिज्ञान थाय छे
तेनुं नाम परिकर्म छे, तथा नक्षत्रादिकेनी गतिथी तेमां जे विपरीतता आवे छे,
ते काणना विनाशइय छे. आ प्रकारना काणना वस्तुविनाश विषयक आ काणोपक्रम
छे. आ प्रकारे कालोपक्रमना विषयनुं निइपणु अही संपूर्ण थाय छे. ॥ सू. ६९ ॥

છાયા—અથ કોઽસૌ ભાવોપક્રમઃ ? ભાવોપક્રમો દ્વિવિધઃ પ્રજ્ઞસઃ, તદ્વથા—
આગમતશ્ચ નોઆગમતશ્ચ । આગમતો ભાવોપક્રમો જ્ઞાયક ઉપયુક્તઃ । નોઆગમતા
ભાવોપક્રમો દ્વિવિધઃ પ્રજ્ઞસઃ, તદ્વથા—પ્રશસ્તશ્ચાપ્રશસ્તશ્ચ । તત્ર—અપ્રશસ્તો ડોહિણિ
ગણિકાઽમાત્યાદીનામ્ । પ્રશસ્તો ગુર્વાદીનામ્ । સ એપ નોઆગમતો ભાવોપક્રમઃ ।
સ એપ ભાવોપક્રમઃ । સ એપ ઉપક્રમઃ ॥૭૦॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—‘સે કિં તં’ इत्यादि । અથ કોઽસૌ ભાવે પક્રમઃ
? इति । ઉત્તરમાહ—ભાવોપક્રમો દ્વિવિધઃ પ્રજ્ઞસઃ, તદ્ વથા—આગમતશ્ચ નોઆગમ-
તશ્ચ । તત્ર—આગમતઃ । આગમમાશ્રિત્ય ઉપક્રમો હિ જ્ઞાયકઃ=ઉપક્રમ
શબ્દાર્થજ્ઞઃ ઉપયુક્ત=ઉપક્રમે ઉપયોગવાંશ્ચ વોદ્યઃ । અયં ભાવઃ—ઉપક્રમ—

અવ સૂત્રકાર ભાવોપક્રમ કા નિરૂપણ કરતે હૈં—

“સે કિં તં ભાવોવક્રમે इत्यादि । ॥સૂ૦ ૭૦॥

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં ભાવોવક્રમે) હે મદન્ત ! ભાવોપક્રમ કા કયા
સ્વરૂપ હૈ ?

ઉત્તર—(ભાવોવક્રમે દુવિહે પળ્ણત્તે) ભાવોપક્રમ દો પ્રકાર વા કહા ગયા
હૈ । (તં જહા) ઉસકે વે પ્રકાર વે હૈ—(આગમઓ ય નોઆગમઓ ય) ? આગમ
કો આશ્રિત કરકે ભાવોવક્રમ હોતા હૈ ઓર દૂસરા નોઆગમકો આશ્રિત કરકે
ભાવોવક્રમ હોતા હૈ. (જાણણ ઉવઉત્તે આગમઓ ભાવોવક્રમે) જો ઉપક્રમ
શબ્દ કે અર્થ વેા જાનતા હૈ ઓર ઉસમૈં ઉપયોગ સે યુક્ત હૈ વહ આગમ સે
ભાવોવક્રમ હૈ ।—

હવે સૂત્રકાર ભાવોવક્રમનું નિરૂપણ કહે છે—

“સે કિં તં ભાવોવક્રમે” इत्यादि—

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં ભાવોવક્રમે?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે
હે ભગવાન્ ! ભાવોવક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(ભાવોવક્રમે દુવિહે પળ્ણત્તે) ભાવોવક્રમના બે પ્રકાર કહ્યાં છે. (તં જહા)
તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે.

(આગમઓ ય, નોઆગમઓ ય) (૧) આગમને આશ્રિત કરીને જે ભાવોવક્રમ
થાય છે તેને ‘આગમ ભાવોવક્રમ’ કહે છે. (૨) નોઆગમને આશ્રિત કરીને થતા
ભાવોવક્રમને—‘નોઆગમ ભાવોવક્રમ’ કહે છે (જાણણ ઉવઉત્તે આગમઓ ભાવોવક્રમે)
જે ઉપક્રમ શબ્દના અર્થને બાણે છે અને તેમાં ઉપયોગથી યુક્ત છે, તે આગમની
અપેક્ષાએ ભાવોવક્રમ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—ઉપક્રમ અને ઉપાય,
આ બન્ને એકાંર્થક શબ્દો છે. ભગવાન તીર્થંકર દ્વારા કથિત અનુશાસનના જ્ઞાનના

उपायः, स चेह—भगवदनुशासनज्ञानसाधनरूपो ग्राह्यः । उक्तं च—

“सोच्चा भगवाणुसासनं, सच्चे तत्थ करेज्जुवकमं ॥”

छाया—श्रुत्वा भगवदनुशासनं सत्यं तत्र कुर्यादुपक्रमम्—इति—

व्याख्या—सत्यं=यथार्थं भगवता तीर्थंकरेण प्रोक्तमनुशासनं श्रुत्वा तत्र=

अनुशासने उपक्रमं=तत्प्राप्त्युपायं कुर्यात्—इत्यर्थः ।

इत्थं च भगवदुक्तानुशासनप्राप्त्युपायज्ञस्तत्रोपक्रमे उपयुक्तश्च आगमतो भावोपक्रम इति ।

नोआगमतो भावोपक्रमोऽपि द्विविधः प्रज्ञप्तः । तद् यथा प्रशस्तश्च, अप्रशस्तश्च । इह भावशब्दः—अभिप्रायाख्यो जीवद्रव्यपर्यायोऽभिमतः । उक्तं च—भावाभिख्याः पञ्च स्वभावसत्ताऽऽत्मयोन्यभिप्राया इति । ततश्च—भावस्य

इसका भाव यह है कि उपक्रम और उपाय ये एकार्थक शब्द हैं— भगवान् तीर्थंकर द्वारा कथित अनुशासन के ज्ञान का साधनरूप वह उपक्रम यहाँ ग्राह्य हुआ है । अन्यत्र ऐसा ही कहा है—(सोच्चा) इत्यादि । कि भगवान् के द्वारा कथित अनुशासन बिलकुल सत्य है—उसे श्रवणकर श्रोता का कर्तव्य है कि वह उसकी प्राप्ति का उपाय करे । इस प्रकार भगवदुक्त अनुशासन की प्राप्ति का उपाय जानने वाला ज्ञाता उस उपक्रम में उपयुक्त होता हुआ आगम से भावोपक्रम है । (नोआगमतो भावोपक्रमे दुविहे पणत्ते—तं जहा) नो आगमको आश्रित करके भावोपक्रम दो प्रकारका कहा गया है । जैसे (पसत्थे य अपसत्थे य) एक प्रशस्त और दूसरा अप्रशस्त । यहाँ पर भाव शब्द का अर्थ अभिप्राय है और यह जीव द्रव्य का पर्यायरूप से माना गया है । कहा भी है (भावाभिख्याः) भावके पांच नाम हैं स्वभाव १, सत्ता २, आत्मा ३, योनि ४, और अभिप्राय ५ । इस तरह

साधनरूप ते उपक्रम अर्हो ग्राह्य थये छे. अन्यत्र पणुं ओपुं न कहुं छे के 'सोच्चा' धत्यादि—तीर्थंकर भगवान् द्वारा कथित अनुशासन सर्वथा सत्य छे. तेने श्रवण करनार श्रावकनुं तेनी प्राप्तिने उपाय करवानुं कर्तव्य थर्ध पडे छे. आ प्रकारे भगवदुक्त अनुशासननी प्राप्तिने उपाय जणुनार ज्ञाता ते उपक्रममां उपयुक्त (उपयाग परिष्णामथी युक्त) होवाने कारणे आगमनी अपेक्षाये भावोपक्रमइत्थं होय छे.

(नोआगमतो भावोपक्रमे दुविहे पणत्ते) नोआगम भावोपक्रम जे प्रकारेने कहुं छे. (तं जहा) ते जे प्रकारे नीचे प्रमाणे छे— (पसत्थे य अपसत्थे य) (१) प्रशस्त अने (२) अप्रशस्त अर्हो भाव शब्दने अर्थ अभिप्राय छे, अने ते जीव द्रव्यने पर्यायरूप मानवामां आये छे. कहुं पणुं छे के “भावाभिख्याः” भावना पांच नाम नीचे प्रमाणे छे—(१) स्वभाव, (२) सत्ता, (३) आत्मा, (४) योनि

परकीयाभिप्रायस्य उपक्रमणं=यथावत्परिज्ञानं भावोपक्रम इति । तत्र=द्विविधे नोआगमतो भावोपक्रमे, अप्रशस्ता भावोपक्रमः—डोडिणि गणिकाऽमात्यादीनां बोध्यः । अयमाशयः—डोडिणिनाम्न्या ब्राह्मण्या गणिकया अमात्येन च यत् पराभिप्रायरूपस्य भावस्य यथावत् उपक्रमः—परिज्ञानं कृतं तद् नोआगमतोऽप्रशस्त भावोपक्रमः । अप्रशस्तत्वं चास्य संसारफलत्वात्, इति । डोडिण्यादि भिर्गथा पराभिप्रायः परिज्ञातः प्रसङ्गवशात्तदुच्यते—

आसीत्काऽपि डोडिणि नाम्नी ब्राह्मणी । तस्या आसंस्तिस्रो दुहितरः । सा ताः परिगायैवं चिन्तितवती-जामातृणामभिप्रायं परिज्ञाय दुहितरः शिक्षणीयाः

परकीय भाव अभिप्रायका यथावत् परिज्ञान हेतुना इस का नाम भावोपक्रम है । (तत्थ) नोआगम की अपेक्षा से द्विविध हुए भावोपक्रम में जो अप्रशस्त भावोपक्रम है—वह डोडिणि ब्राह्मणी गणिका, और अमात्य आदि कों में जानना चाहिये । डोडिणि नाम की ब्राह्मणी एक बेश्या और एक अमात्य था सब पर के अभिप्राय का जो यथावत् परिज्ञात कर लिया करते थे वह उनका नोआगम से अप्रशस्त भावोपक्रम था । अप्रशस्तता इस में इसलिये है कि यह संसाररूप फल का जनक होता है—डोडिणि आदि ने जिस प्रकार से पर का अभिप्राय जाना—प्रसंगवश उसे यहां दर्शाया जाता है—

एक कोई डोडिणी नामकी ब्राह्मणी थी । उसकी ३ तीन लड़किया थीं । उनका उसने विवाह करदिया ! विवाह करने के बाद उसने सोचा कि मैं जामाताओं के अभिप्राय का ज्ञात कर अपनी इन पुत्रियों को शिक्षित कर

अने (प) अलिप्राय. आ रीते परकीय लावनुं (अलिप्रायनुं) यथार्थं परिज्ञानं यत् तेनुं नाम लावोपक्रमं छे. (तत्थ) नोआगमलावोपक्रमना न्ने अे प्रकारे कडेवामां आन्त्या तेमाने न्ने अप्रशस्त लावोपक्रम कड्यो छे तेनो सद्दलाव डोडिणि प्राह्मणी, गणिका अने अमात्य वगेरेमां न्नेणुवो. डुवे आ डोडिणि प्राह्मणी आदिना अप्रशस्त लावोपक्रमने समन्वयवाने माटे अही तेमनी कथा आपवामां आवी छे. ते त्रणे पधांना अलिप्रायने परिज्ञात करवाने समर्थ हुता. तेमनो ते लावोपक्रम नोआगमनी अपेक्षाअे अप्रशस्त लावोपक्रमरूप हुतो. तेमनो लावोपक्रम अप्रशस्त ते कारणे हुतो के ते संसाररूप इवनो जनक हुतो. डोडिणि आदिअे न्ने प्रकारे अन्यनो अलिप्राय न्नेणुवो हुतो ते प्रकारनुं अही प्रसंगवश कथन करवामां आवे छे—कोई एक गाममां डोडिणी नामनी एक प्राह्मणी रहती हुती. तेने त्रणु पुत्रीअो हुती. तेणु ते त्रणुना विवाह करी नाभ्या. पुत्रीअोनो विवाह कर्या आह. तेने अेवो। वयार आन्थे के त्रणु न्नेमार्थअोनो अलिप्राय (स्वलाव) न्नेणु लधने, मादे मारी पुत्रीअोने अेवा प्रकारनी शिक्षा आपवी न्नेधअे के ते शिक्षाने अनुत्तर एवन

यथैताः सुखिताः स्युः इति विचिन्त्य तथा सर्वा दुहितर एवमुक्ताः=युष्माकं पतयो
 यदा स्व स्व शयनागारे समागच्छेयुस्तदा युष्माभिः—कंचि दोष मुद्गाव्य स्व स्वपतिः
 शिरसि पादप्रहारेण ताडनीयः । तदा युष्मत्पतयो यत्कुर्युस्तन्मह्यं निवेदयत ।
 एवं जनन्या प्रोक्ते सति ताः सर्वाः पुत्रिकाः स्व शयनागारे स्वीयं स्वीयं पतिं
 प्रतीक्षमाणाःस्थिताः ।

अथ ज्येष्ठायाः पतिः शयनागारे समागतः ततः सा कमपि दोषमुद्गाव्य
 तच्छिरसि चरणेन प्रहृतवती । प्रहारसमनन्तरमेव तस्याः पतिस्तदीयं चरणं
 हस्तेन गृहीत्वा सस्नेहमिदमब्रवीत्—अयि प्रिये ! पाषाणादपि कठोरे मम शिरसि
 त्वया चरणः पातितः । मन्ये केतकीकुसुमादपि कोमलतरस्त्वदीयश्चरणः पीडितो

हूँ कि जिससे इन का जीवन सुखी बन सके । इस प्रकार विचार करके
 उसने अपनी ३ तीनों पुत्रियों से कहा कि देखों जब तुम्हारे पति अपने
 २ शयन भवन में आवे तब तुम लोग किसी दोष को कल्पित कर उन्हें
 लाते मारना । जब वे तुम लोगों से इसके प्रतिकार स्वरूप में जो कुछ करे
 वह हम से कहना । इस प्रकार माता के कहने पर उन सब पुत्रियों ने वैसा
 ही किया । वे सब अपने २ शयनागार में चली गईं और वहाँ अपने २
 पतिओं की प्रतीक्षा करतीं हुई बैठ गईं । इतने में बड़ी लडकी का पति
 आगया । पति के आने पर उसने उसे दोष दिखाकर एक लात शिर में
 जमा दी । लात के लगते ही उसने उसके उसी पग को पकड़कर बड़े भारी
 स्नेह के साथ कहा अयि प्रिये ! पाषाण से भी कठोरतर मेरे शिर पर तुमने
 अपने चरण को रखा है—सो मैं समझता हूँ कि केतकी के कुसुम से भी

लुचीने तेज्यो पोताना लुवनने सुभी जनावी शके. आ प्रकारने विचार करीने
 तेज्ये पोतानी त्रजे पुत्रीज्योने जोलावीने आ प्रभाजे सलाहु आपी—

“आजे ज्यारे तमारा पति तमारा शयनभंडमां आवे त्यारे तमारे डोर्ध
 कल्पित दोष जतावीने तेमना भस्तक पर लातो मारवी. त्यारे प्रतिकारइये तेज्यो
 तमने जे कंर्ध कडे अथवा जे कंर्ध करे ते सवारमां मने कडेवानुं छे.

ते त्रजे पुत्रीज्योने मातानी सलाहु प्रभाजे जे कथुं—तेज्यो पोतपोताना शयन-
 भंडमां जाली गध अने पोतपोताना पतिनी प्रतीक्षा करवा लागी. सौथी मोठी
 पुत्रीने पति ज्यारे शयनभंडमां आव्यो, त्यारे तेज्ये तेना पर डोर्ध दोषनुं आदेश-
 पणु करीने तेना भस्तक पर जेक लात लगावी हीधी. लात जातानी साथे जे तेना
 पतिज्ये तेना पग पकडीने तेने आ प्रभाजे कहुं—“प्रिये ! पथरथी पणु कठोर
 जेवां मारा भस्तकपर तमे केतकीना पुष्पसमान डोमण पग वडे जे लात भारी छे

जातः। एवं ब्रुवाणः स तस्याश्चरणसंवाहनमकरोत्। प्रभाते सा सर्वं वृत्तं मात्रं निवेदितवती। सहर्षया मात्रा सा प्रोक्ता—वत्से ! त्वया स्वगृहे यथेच्छं कर्तव्यम्, तव पतिं स्वदाज्ञावतीं भविष्यति। अथ द्वितीययाऽपि तथैव स्वपत्युःशिरसि चरणप्रहारः कृतः। तयाः पतिः किञ्चिद्रोषमुपदर्शयन्नुवाच—कुलवधूनामनुचितोऽयं व्यवहारः। इत्युक्त्वा कोपान्निवृत्तः। प्रभाते साऽपि मात्रे सर्वं वृत्तं निवेदितवती। ततः सा मात्रा सहर्षं प्रोक्ता—वत्से ! त्वमपि स्वगृहे यथेच्छं-

अधिक सुकुमार यह तुम्हारा चरण दुखने लगा होगा। इस प्रकार कहने के साथ ही उसने उसके उस चरण को दाबना प्रारंभ कर दिया। प्रातःकाल उस लडकी ने यह सब कृत्य अपनी माता से कह दिया। माता को इसे सुनकर बड़ा हर्ष हुआ। उसने पुत्री से कहा—वत्से। तुम अपने घर में जो कुछ करना चाहो सो कर सकती हो—क्योंकि पति के इस व्यवहार से यह पता पडता है कि वह तुम्हारा आज्ञावशवर्ती रहेगा।

दूसरी पुत्री ने भी अपने पति के साथ ऐसा ही व्यवहार किया—उसके शयनागार में पति के आने पर उसने उसके मस्तक पर ज्यों ही चरण प्रहार किया कि उसे कुछ रोष आ गया। अपना रोष प्रकट करते हुए उसने उससे कहा यह व्यवहार कुलवधुओं के योग्य नहीं है—जो तुमने मेरे साथ किया है। ऐसा कहकर वह फिर शांत हो गया। प्रातःकाल उस पुत्री ने रात्रि के पति के इस व्यवहार को माता से प्रकट किया। तब उसकी माताने हर्षित

तेनें दीधे तभारा नाञ्जुक अरुणु दुभवा मांडया डुशे,” आ प्रभाणे कडीने तेणे तेना ते पगने हाभवा मांडये, थीजे द्विवसे ते मोटी पुत्रीजे आ समस्त वात तेनी माताने कडी संलणावी. ते वात सांलणीने माताने (डाडिणी आहाणीने) धण्णे न आनंद थये. नभाधना आ प्रहारना वर्तनथी तेना स्वलावने ते समल गध. तेणे तेनी मोटी पुत्रीने आ प्रभाणे सदाड आपी. “तुं तारा घरमां न करवा धारे ते करी शकीश, कारणु के तारा पतिना आ व्यवहारथी जेवुं लागे छे के ते तारी आज्ञाने अधीन रहेशे.”

भील पुत्रीजे पणु पोताना पति साथे न जेवो न वर्ताव जाताये—जेवो ते शयनअंडमां प्रवेशये के तुरत न केरि होपनुं आरोपणु करीने तेणे तेना मस्तक पर जेक वात लगावी दीधी. त्यारे तेना पतिने थोडा रोष उभये. तेणे पोताना रोष मात्र आ शब्दो द्वारा न प्रकट कर्यो—“भारी साथे ते न जे वर्ताव कर्यो छे, ते कुलवधुजोने योग्य वर्ताव न गणाय तारे आवुं करवुं जेधजे नही” आ प्रभाणे कडीने ते शान्त थध जये. प्रातःकाणे भील पुत्रीजे पणु आ अधी वात संलणावी

कुरु रुष्टोऽपि पतिः क्षणमात्रेण तुष्टो भविष्यति ! अथ तृतीययाऽपि स्व-
पतिस्तथैव प्रहतः ततः स क्रोधाध्मातचित्तो रोषारुणलोचन उच्चैः स्वरेण तां
निर्मत्स्यन्नेवमुवाच-अयि दुष्टे ! कुलकन्यकानुचितमिदं कृत्यं कथं त्वया कृतम् ?
इत्युक्त्वा मुष्ट्यादिभिस्तां ताडयित्वा गृहान्निष्कासितवान् । ततः सा मातुः समीपे
गत्वा सर्वं वृत्तं निवेदितवती । जामातुः स्वभावमवगत्य सा ब्राह्मणी तत्स-
मीपे गत्वा तत्क्रोधमुपसान्त्वयितुं मधुरया गिरा प्रोवाच-वत्स ! अस्मत्कुलाचा-
रोऽयं यत् प्रथमसमागमे वध्वा वरस्य शिरसि चरणप्रहारः कर्तव्य इति, अतो मम

होकर उसे कहा कि हे बेटी ! तुमभी अपने घर में अपनी इच्छानुसार सब
कुछ करो ! तुम्हारे व्यवहार से रुष्ट भी तुम्हारापति क्षणमात्र में तुष्ट हो
जावेगा । जब तीसरी लडकी का पति अपने शयनागार में आया—तो उसने
भी अपनी माता के कहे अनुसार वैसा ही व्यवहार अपने पति के साथ किया ।
तब वह क्रोध से भर गया और रोष से लाल २ आँखें करके बड़े जोर से
उससे डाटकर कहने लगा—अयि दुष्टे ! कुलकन्या के अयोग्य यह कृत्य तूने
मेरे साथ क्यों किया ? ऐसा कहकर उसने उसे खूब मुक्कों से मारा पीटा
और मार पीट कर फिर उसे घर से बाहिर निकाल दिया । तब वह अपने
माता के पास गई और सब वृत्तान्त कहने लगी । पुत्री के कथनानुसार वह
अपने जामाता के स्वभाव को जानकर उसके पास गई—और जाकरके मीठी
रवाणी से उसके क्रोध को शांत करती हुई कहने लगी—वत्स ! यह हमारे
कुल का आचार है कि सुहागरात में प्रथम समागम के समय वधू अपने पति

त्यारे तेनी माताये संतोष पाभीने तेने आ प्रभाणु कहुं—“जेटी ! तुं पणु तारा
घरमां तारी छच्छा प्रभाणु वर्ताव करी शके छे. तारा पतिने स्वभाव जेवो
छे के ते गमे तेटवो. इष्ट थये होय तो पणु क्षणमात्रमां तुष्ट थय जय जेवोछे.”

त्रीण पुत्रीये पणु कोष होपनु आरोपणु करीने तेना पतिने भस्तक पर
दात लगावी दीधी. त्यारे तेना क्रोधने आरो धणु उंचे चडी गये, तेनी आंजे
कोधथी दाद थय गधं जने तेणु तेने आ प्रभाणु कहुं, “अरे नीच ! कुलकन्यांजे
न करवा योग्य आ प्रकारनुं कार्य ते शा भाटे क्युं ?” आ प्रभाणु कहीने तेणु
तेने गडदा, पाहु आदि मारी मारीने घरमांथी धक्को मारीने गडार काढी मूकी. त्यारे
ते पुत्री तेनी माता पासे गधं जने तेमने सर्व हुकीकत कही संलणावी. पुत्रीनी
आ वात द्वारा ओडिणी प्राह्मणीने तेनी त्रीण पुत्रीना पतिना स्वभावने पणु जयाद
आवी गये. तुरत ज ते तेनी (त्रीण पुत्रीना पतिनी) पासे पडोच्यी गधं जने मीठी
वाणी द्वारा तेना क्रोधने शान्त पाडवाने प्रयत्न करवा लागी. तेणु तेने आ प्रभाणु
कहुं—“जभाधराज ! अमारा कुणमां सुहागराते प्रथम समागम वधते पतिना

पुत्र्या भवांस्ताडितो न तु दौर्जन्येन । अतो भवान् स्वरोपं निवर्तयतु । श्वश्रू
वचनं निशम्य स रोषान्निवृत्तः । सा स्वपुत्रीमुक्तवान्—वत्से ! दुराराध्यस्ते पातः
अतोऽयं त्वया परमसावधानतया महता प्रयत्नेन समाराधनीयः । इत्थं डोडिणि
ब्राह्मण्या स्व जामातृणामभिप्रायो ज्ञातः । १)

अथ गणिकया यथा पराभिप्रायो ज्ञातस्तथोच्यते

आसीत् कस्मिंश्चिन्नगरे चतुष्पष्टिकलाचतुरा विलासिनी नाम गणिका ।
तया हि पराभिप्रायपरिज्ञानार्थं रतिभवनभित्तौ स्व स्व क्रियां कुर्वन्तो राजपुत्रा
दयश्चित्रिताः । तस्या गृहे यज्जातीयो जनः समायाति स स्वजातीयोचितचित्र-

के मस्तकपर चरण प्रहार करे । इसी बात से भेरी पुत्री ने तुम्हें ताडित
क्रिया है—दुर्जनता से नहीं । इसलिये आप अपने रोष की शांति कर लें ।
इस प्रकार से साम् के वचन को सुनकर उसने क्रोध छोड़ दिया । तब
डोडिणि ने अपनी पुत्री से कहा—वत्से । तेरा पति दुराराध्य है । इसलिये
तू इसकी बड़ी सावधानी के साथ बहुत ही यत्न पूर्वक सेवा करना । इस
प्रकार डोडिणि ब्राह्मणी ने अपने जामाताओं का अभिप्राय जान लिया ।

अब गणिका ने जिस प्रकार से पर का अभिप्राय जाना वह कहा जाता
है—किसी नगर में ६४ कलाओं में निपुण विलासवती नाम की एक गणिका
रहती थी । उसने दूसरों के जभिप्राय को जानने के निमित्त अपने रति-
भवन की दीवाल पर अपनी २ क्रियाओं को करते हुए राजपुत्र आदिकों

मस्तक पर चरणप्रहार करवाने आचार आदयो आवे छे. ते कारणे मारी पुत्रीये
तमारी साथे येवो व्यवहार कर्यो छे, दुष्टताने कारणे येवुं करवामां आव्युं नथी.
भाटे आपे क्रोध छोडीने तेना वर्तन भाटे तेने माक्षी आपवी जेधये.” सासूना
आ प्रकारना वचनो सांलणीने तेना गुस्से उतरी गयो. त्यारभाह ते डोडिणी
ब्राह्मणीये तेनी त्रीण पुत्रीने आ प्रभाणे सदाह, आपी—“जेटी ! तारा पति दुरा-
राध्य छे. भाटे तारे तेमनी आज्ञातुं पराणर पादन करवुं अने भ्रुण ज सावधानी
पूर्वक तेमनी सेवा करवी.

आ प्रकारे डोडिणी ब्राह्मणीये पोताना जभाधयेना अलिप्रायने उपर
दशावेली युक्ति वडे जणुी लीधो.

हुवे परने अलिप्राय जणुवाने समर्थ येवी अेक विलासवती नामनी शुष्किनुं
दृष्टांत आपवामां आवे छे. केध अेक नगरमां केध अेक गणिका रहेती हती. ते
६४ कलायेमां निपुण हती. तेणे परने अलिप्राय जणुवाने भाटे आ प्रकारनी
पद्धति अचनावी हती. तेणे पोताना रतिलवननी ली तो पर जुहा जुहा प्रकारनी
क्रियाये करतां विविध नतिना पुश्पेनां चित्रो दोराव्यां हुतां जे पुश्प

दर्शने समासज्जते । ततः सा तं परिचितम् तदुचितव्यवहारेण तं सत्कुरुते । तरया व्यवहारेण संतुष्टा जनारतस्यै यथेष्टमर्थं जातं प्रयच्छन्ति । इत्थं गणिकया पराभिप्रायो ज्ञातः । २)

अथाऽमात्येन यथा पराभिप्रायो ज्ञातस्तथोच्यते—

आसीत् कस्मिंश्चिन्नगरे भद्रबाहुर्नाम राजा । तस्यासीन्नीति-शास्त्रचतुरो झटिति पराभिप्रायसंवादनशीलः सुशीलो नामाऽमात्यः । अथैकदा स राजाऽमात्येन सहाश्ववाहनिकार्यां गतः । पथि गच्छता राजतुरङ्गमेण काऽपि खिलप्रदेशे (बिनजोता-पडतल प्रदेश) स्थित्वा मूर्त्रितम् । तच्च मूत्रं बहुतरकालपर्यन्तं तत्र

के चित्रों को अंकित कर दिया । उसके घरमें जिस जाति का मनुष्य आता वह अपने जातीयोचित चित्र के देखने में तल्लीन हो जाता । इस तरह उसे पहिचान कर उसके योग्य व्यवहार से उसका सत्कार करने लगती । इस प्रकार उसके व्यवहार से संतुष्ट हुए मनुष्य उसे इच्छानुकूल पैसा दे दिया करते।

अमात्य जिस पद्धति से पर का अभिप्राय जान लेता वह बात यहाँ प्रकट की जाती है—

किसी नगर में भद्रबाहु नामक राजा था । उसके अमात्य का नाम सुशील था । वह नीतिशास्त्र में बड़ा चतुर था, पर के अभिप्राय को जल्दी से जल्दी जान लेता था । एक दिन की बात है कि राजा अमात्यके साथ अश्वक्रीडा करने के लिये बाहर निकला-मार्ग में चलते हुए राजा के घोड़े ने किसी पडतल प्रदेश में खड़े होकर पेशाबकर दिया पेशाब वहीं पर

त्यां आवतो, ते पोताना जतीथोचित चित्रं निरीक्षणं कर्वाभां तन्मयं यथं जते । तेनां आ प्रकारना वर्तन्थी तेनी जति, स्वभाव, रुचि आदिने ते विदासवती समलु जती इती अने ते पुष्पनी साथे तेनी जति, रुचि आदिने योग्य वर्ताव अतावीने तेने सत्कार आदि द्वारा शुशुभुश करी नाअती । तेना वर्तत आदिथी शुशु यधने तेने त्यां जनारा पुष्पे अथ धन आपीने पोतानो संतोष प्रकट करता इता ।

इवे अमात्यनुं दृष्टान्त आपवाभां आवे छे अने अे वात प्रकट कर्वाभां आवे छे के ते अमात्य केवी रीते, अन्यना अलिप्रायने जणी लेतो इतो—

कैध अेक नगरमां लद्रभाहु नामे राजा राज्य करतो इतो । तेने सुशील नामे अेक अमात्य इतो । ते नीतिशास्त्रमां धणे ज नियुणु इतो । परना अलिप्रायने धणी ज उडपथी जणी देवाने ते समर्थ इतो । इवे अेक दिवस ते राजा ते अमात्यने साथे लधने अश्वक्रीडा करवा निमित्ते नगरनी अडार नीकणा पडयो । आलतां आलतां मार्गना कैध अेक पडतर (जेती न थती डोय अेवे प्रदेश) पर जला रडीने घोडाअे पेशाब कर्यो । ते पेशाब सुकध गयो नडी पथु त्यां ते जमीनमां

स्थितमेवासीत् । निवर्त्तमानेन राज्ञोऽश्वमूत्रं तथैवावस्थितं दृष्टम् । ततो राज्ञा
चिन्तितम् यद्यत्र सरो भवेत्तर्हि तदगाधजलं भवेत्, न कदापि परिशुष्येत् । इत्थं
चिन्तयन् राजा तं भूभागं चिरं निरीक्षितवान् । ततोऽमात्येन सह राजा
स्वभवनं समागतः । राज्ञो मनोगतभावं परिज्ञाय तेनामात्येन तदनु-
त्तरं महत्सरः कारितम्, परितः सरोवरपालिषु च सर्वकुसुमफला विविध
जातीया वृक्षाः समारोपिताः । ततोऽन्यथाऽमात्येन सह तत्र प्रदेशे गच्छता
तेन राज्ञा तरुगजिशोभितं तत् सरोवरं विलोक्य पृष्टम्—अहो ! केनेदमति
रमणीयं सरः कारितम् ? आमात्येनोक्तम्—भवद्भिरेव, ततो विस्मितमना राजा

भरा रहा—सूखा नहीं जब अश्वक्रीडा करके राजा वापिस लौटा तो
उसने उस घोड़े के पेशाब को वहीं पर भरा हुआ देखा—तब राजाने मन में
विचार किया—कि यदि यहाँ पर तालाब खुदवाया जावे तो वह अगाध जल
से भरा रहेगा । कभी भी सूखेगा नहीं । इस प्रकार विचार करते-र उस
राजा ने बहुत समय तक उस भूभाग को देखा इसके बाद वह राजा अमात्य
के साथ राजमहल में आगया । राजा के मनोगत भाव को जानने वाले
उस अमात्यने कुछ समय बाद वहाँ एक बड़ा भारी तालाब खुदवा दिया ।
उसके चारों ओर उसने तट पर सब ऋतुओं के कुसुम और फलवाले अनेक
जाति के वृक्ष लगा दिये । किसी समय अमात्य के साथ राजा उसी मार्ग
से होकर निकले । वृक्षके झुण्डों से शोभित उस सरोवर को देखकर उन्होंने
मंत्री से पूछा अहो ! यह अति रमणीय तालाब यहाँ किसने बनवाया है ?

अभने अभ पड्यो रही. थोडीवार पछी राजा अने अमात्य अने रस्तेथी भाछी
इर्या. ते पडतर जग्यामां थोडाना पेशाबने डल्ल पणु विना सूकायेवो जेधने
राजना मनमां आ प्रकारने विचार आये—“जे आ जग्याये तणाव जोहाववामां
आवे, तो ते तणाव कायम अगाध जगथी भरपूर रहेसे. तेतुं पाणी सूकाये नहीं
आ प्रकारने विचार करतो करतो ते राजा ते लूमिभाग सामे धणीवार सुधी ताडी
रही. त्यारभाद ते राजा ते अमात्यनी साथे राजमहल तरइ रवाना थई गयो.
ते अतुर अमात्य ते राजना मनोगत भावने भराभर समंज गयो. तेजे राजने
पूछया विना ज ते जग्याये अेक विशाज तणाव जोहावुं अने तेना किनारे
विविध प्रकारना अने विविध ऋतुयोनां इल-इलथी संपन्न वृक्षो रोपावी दीधां.
त्यारभाद इरी डोई हिवसे ते राजा ते अमात्यनी साथे अेक रस्ते थईने इरवा
नीकज्यो पेदी जग्याये वृक्षाना जुडोथी सुशोभित ते जणाशयने जेधने राजने
ते अमात्यने पूछयुं—अरे ! आ अतिशय रमणीय जणाशय अडीं डोखे अंधांयुं छे ?

पृष्टवान्—मया कदा कारितम् ? इति नो स्मरामि । एवं नृपेणोक्तोऽमात्यः सर्वं वृत्तं कथितवान् । राजाऽपि सचिवस्य परचित्ताभिप्रायज्ञानशक्तिं विलोक्य तं प्रशंस्य तज्जीविकां वर्द्धयामास । इत्थममात्येन पराभिप्रायो ज्ञातः । ३।

एतेषां सर्वेषां भावोपक्रमाणां संसारफलत्वाः प्रशस्तत्वम् । नो आगतः प्रशस्तो भावोपक्रमश्च गुर्वादीनाम् । श्रुतादिपरिज्ञानार्थं यद् गुर्वादीनां भावोप-

तव अमात्य ने कहा महाराज ! आपने ही बनवाया है, तब राजा के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने मंत्री से पूछा मैंने यह करवाया है ? इस बात की तो मुझे याद ही नहीं है । इस प्रकार राजा से कहे गये अमात्य ने सब यथा स्थितवृत्तान्त उनसे कह दिया ! राजा ने जब मंत्रा की परके चित्त के अभिप्राय को जानने की शक्ति देखकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और उसके वेतनकी वृद्धि करदी और उनका पद बढ़ा दिया इस प्रकार यह परचित के अभिप्राय को जाननेवाले अमात्य की कथा है । कि जिसमें इस प्रकार से अमात्य ने परचित्ताभिप्राय को जाना यह कहा गया है । इन सब भावोपक्रमों में संसाररूप फल जनकता होने के कारण अप्रशस्तता है । (पसत्ये गुरुमाईणं) गुरु आदिकों के अभिप्राय को यथावत् जानना यह नोआगम को आश्रित करके प्रशस्त भावोपक्रम है । अर्थात् श्रुत आदिकों के परिज्ञान के

त्यारे अमात्ये नृपाय आशये—“हे महाराज आपने पोते न आ नृपाशय अंधाव्युं छे.” त्यारे राजाना आशयने पार न रह्यो. तेणु अमात्यने कहुं. “आ नृपाशय शुं मे अंधाव्युं छे ? आ नृपाशय अंधाववानो केई आदेश कर्यानुं मने याह नथी !” त्यारे अमात्ये आ प्रभाणुं पुलासो कर्यो—“हे महाराज ! धणुं समय सुधी आ नृपाशये घोडाना मूत्रने विना सुकाये पड्युं रडेणुं जेधने आपे आ नृपाशये नृपाशय अंधाववानो विचार करेवो. आपे मानेणुं के आ नृपाशये नृपाशय जेहाववथी तेमां पाणुं केई सुकाशे नही. आपना आ मनोगत विचारने आप अश्वकीडा करीने पाछा करती वणते जे दृष्टिथी ते अश्वमूत्रनी सामे मिरथी रह्या हुता-ते दृष्टि द्वारा न्हाणुं जेधने मे आ नृपाशय अही अंधाव्युं छे.” परना चित्तने समजवानी पोताना अमात्यनी ते शक्ति जेधने राजने धणुं दुषं थयो तेणुं तेनी भूष प्रशसा करी अने तेहुं वेतन अने होहो वधारी दधने तेनी कहर करी. आ प्रकारनी अन्यना मनोगत लावोने न्हाणुंर ते अमात्यनी कथा छे. आ त्रणे लावोपक्रमणुं दृष्टान्तो छे. आ लावोपक्रमणुं संसाररूप इलजनकतानो सहलाव होवाथी तेमने अप्रशस्त कडेवामां आवेल छे.

(पसत्ये गुरुमाईणं) गुरु आदिनां अलिप्रायने यथार्थरूप न्हाणुवा ते प्रशस्त भावोपक्रम छे. अटले के श्रुत आदिनुं परिज्ञान प्राप्त करवा धर्यता शिष्यादिद्वारे

ક્રમણં સ પ્રશસ્તભાવોપક્રમ इत्यर्थः । नन्वत्रानुयोगद्वारविचारः प्रकृतः, अनु-
 योगश्च व्याख्यानम्, एवं च यदेवानुयोगद्वारव्याख्यानोपयोगि तदेवात्र वक्तव्यम् ।
 गुरुभावोपक्रमस्तु व्याख्यानानुपयोगित्वादवक्तव्य एवेति चे दुच्यते
 व्याख्यानं हि गुर्वयत्तं भवति । अतो व्याख्यानोपलब्धये
 शिष्याणां गुरोरभिप्रायज्ञानं परमावश्यकम् । गुर्वभिप्रायज्ञो हि तदनुकूलाचरणेन
 गुरं प्रसादयति, प्रसादितो गुरुस्तस्मै सरहस्यं शास्त्रं प्ररूपयति । एवं गुरुभावो
 पक्रमोऽपि व्याख्यानसयाङ्गमेव, अतो गुरुभावोपक्रम उचित एव । उक्तं च—
 “गुर्वयत्ता यस्माच्छास्त्रारम्भा भवन्ति सर्वेऽपि ।

तस्माद् गुर्वाराधनपरेण हितकाङ्क्षिणा भाव्यम् ॥१॥

લિયે જો શિષ્યાદિકો ગુરુ આદિ કોં કે ભાવ કા યથાવત્ પરિજ્ઞાન હોતા
 હૈ—વહ પ્રશસ્ત ભાવોપક્રમ હૈ ।

શંકા—યહાં તો અનુયોગદ્વારકા વિચાર ચલ રહા હૈ । અનુયોગ કા
 અર્થ વ્યાખ્યાન હૈ । ઇસલિયે જો અનુયોગદ્વાર કે વ્યાખ્યાન કરને મેં ઉપયોગી
 હો વહી યહાં કહના ચાહિયે । ગુરુ ભાવોપક્રમ તો વ્યાખ્યાન મેં અનુપયોગી
 હૈ । ઇસલિયે ઉસે યહાં નહી કહના ચાહિયે ।—

ઉત્તર—વ્યાખ્યાન ગુરુ કે આધીન હોતા હૈ । અતઃ ઉસ વ્યાખ્યાન કી
 પ્રાપ્તિ કે લિયે ગુરુ કે અભિપ્રાય કા જ્ઞાન કરના શિષ્યોં કો પરમ આવશ્યક
 હૈ । ગુરુ કે અભિપ્રાય કો જ્ઞાનને ચાલા શિષ્ય ઉનકો અપને ઉપર અનુકૂલ
 આચરણ સે પ્રસન્ન કરતા હૈં ઓર પ્રસાદિત હુએ વે ગુરુજન ઉસકે લિયે રહસ્ય
 યુક્ત શાસ્ત્ર કી પ્રરૂપણા કરતે હૈં । ઇસ પ્રકાર ગુરુકે ભાવકા શિષ્ય કો યથાવત્
 પરિજ્ઞાન હોના યહ મી વ્યાખ્યાન કા અંગ હી હૈ । ઇસલિયે ઉસકા કથન
 યહાં ઉચિત હી હૈ । કહા મી હૈ (ગુર્વાયત્તા) ઇત્યાદિ । શાસ્ત્રોં કા પઢનાદિ-

ગુરુઆદિકેના લાવનું જે યથાર્થ પરિજ્ઞાન થાય છે, તેનું નામ નો
 આગમની અપેક્ષાએ પ્રશસ્ત ભાવોપક્રમ છે.

શંકા—અહીં તો અનુયોગદ્વારની પ્રશ્નણા ચાલી રહી છે. અનુયોગનો અર્થ
 વ્યાખ્યાન થાય છે. તેથી અનુયોગદ્વારનું વ્યાખ્યાન કરવામાં ઉપયુક્ત હોય તેમનું
 જ કથન અહીં થવું જોઈએ. ગુરુભાવોપક્રમ તો વ્યાખ્યાનમાં અનુપયોગી છે, તેથી
 અહીં તેનું કથન થવું જોઈએ નહીં.

ઉત્તર—વ્યાખ્યાન ગુરુને આધીન હોય છે. તેથી તે વ્યાખ્યાનની પ્રાપ્તિને
 માટે ગુરુના અભિપ્રાયને જાણી લેવાનું જ્ઞાન શિષ્યોને માટે પરમ આવશ્યક ગણાય
 છે. ગુરુના અભિપ્રાયને જાણનારો શિષ્ય તેમને અનુકૂળ થઈ પડે એવા પોતાના
 આચરણથી તેમને ખુશ કરે છે, અને તેના વર્તનથી સંતુષ્ટ થયેલા તે ગુરુ તેની
 સમક્ષ રહસ્યયુક્ત શાસ્ત્રની પ્રશ્નણા કરે છે. આ રીતે ગુરુના લાવનું શિષ્યને યથા-
 વત્ પરિજ્ઞાન થવું એ પણ વ્યાખ્યાનના એક અંગરૂપ જ છે. તે કારણે સૂત્રકારનું
 ઉપયુક્ત કથન ઉચિત જ છે. કહું પણ છે કે—(ગુર્વાયત્તાઇત્યાદિ) શાસ્ત્રોનું પઢન

अन्यच्च—“जुक्तं गुरुमणग्रहणं नाज्जण तयं जहड्डियं तत्तो ।

जह होइ सुप्पसन्नं, तह जइयव्वं गुणत्थीहिं” ॥१॥

छाया—युक्तं गुरुमनोग्रहणं, ज्ञात्वा तदा यथास्थितं ततः ।

यथा भवति सुप्रसन्नं, तथा यतितव्यं गुणार्थिभिः ॥१॥

पुनः

“गुरुचितायत्ताइं, वक्खाणंगाइ जेण सव्वाइं ।

तेण सह सुप्पसन्नं, होइ तयं तं सहा कुज्जा” ॥२॥

छाया—गुरुचितायत्तानि, व्याख्यानाङ्गानि येन सर्वाणि ।

तेन यथा सुप्रसन्नं, भवति तदा तत् तथा कुर्यात् ॥२॥

रूप समस्त अध्ययन गुरु महाराज के समीप में ही होता है इसलिये समस्त शास्त्रारम्भ गुरुमहाराज के आधीन है। अतः अपने हित की अभिलाषा रखने वाले शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु महाराज की आराधना करने में तत्पर रहे।

१॥—और भी गुरुमहाराज के मनका-अभिप्राय -शिष्य को जानना उचित है। तब ही वह उनसे यथार्थ में शास्त्र का रहस्य ज्ञात कर सकता है। इसलिये गुणाधी-विनीत शिष्य को चाहिये कि जिस प्रकार से गुरु महाराज सुप्रसन्न रहें ऐसा यत्न उसे करते रहना चाहिये।

२॥—फिर भी कहा है ‘गुरु चित्ताइं’ इत्यादि। व्याख्यान के समस्त अंग गुरु महाराज के चित्ताधीन रहा करते हैं। इसलिये जिस प्रकार से वे सुप्रसन्न रहें वैसा सब काम शिष्य को अवश्य कर्तव्य है। ३॥—और भी

आदिइय समस्त अध्ययन गुरु महाराजनी समीपे न थाय छे, तेथी समस्त शास्त्रारम्भ गुरुने आधीन छे. तेथी पोताना छितनी जेवना राखनार शिष्यतुं जे कर्तव्य थई पडे छे के तेणे गुरुमहाराजनी आराधना करवाना कार्यमां तत्पर रहेवुं लेछे.

(१) गुरुमहाराजना मनोलावने (अभिप्रायने) ज्ञाणी देवे ते शिष्यने मांटे अति आवश्यक छे. त्याभाइ न ते तेमनी पासैथी शास्त्रना यथार्थ रहस्यने ज्ञाणी शके छे. तेथी जे प्रकारे गुरु राखे रहे जे प्रकारने प्रयत्न गुणाधी विनीत शिष्ये करवे लेछे.

(२) कहु छे के—“गुरुचिताइं” इत्यादि-व्याख्यानना समस्त अंगे गुरु महाराजनी चित्ताधीन रहे छे. तेथी जे प्रकारे तेणे प्रसन्न रहे ते प्रकारने कामे शिष्ये जे अवश्य करवा लेछे.

પુનઃ

“આગારિંગિયકુસલં, જહ્ સેયં વાયસં વણ પુજ્જા ।

તહવિ ય સે નવિ કૂડે, વિરહમ્મિ ય કારણં પુચ્છે” ॥૩॥

છાયા—આકારેઙ્ગિતકુસલં (શિષ્ય) યદિ શ્વેતં વાયસં વદેયુઃ પૂજ્યાઃ

તથાપિ ચ તેષાં (વચનં) નાપિ કૂટયેત્, વિરહે ચ કારણં પુચ્છે ॥૩॥

તેષાં પૂજ્યાનાં વચનં નાપિ કૂટયેત્=અસત્યં ન કુર્યાત્, તથેતિ કુર્યાદિત્યર્થઃ
વિરહે=વિજને એકાન્તે इत्यર્થઃ, કારણં=થેતવાયસકથનપ્રયોજનં પુચ્છેત્ શેષં સુગમમ્ ॥

સ એવ નોઆગમતો ભાવોપક્રમઃ । સ એવ ભાવોપક્રમઃ । સ એવ
ઉપક્રમઃ ॥સૂ.૦ ૭૦॥

‘ગુરુમાઢ્ણં’ इत्यત્રાદિશબ્દેન સૂચિતં જ્ઞાત્રભાવોપક્રમં નિરૂપયિતુમાહ—

મૂલમ્—અહવા—ઉવક્રમે છવિવહે પળળત્તે, તંજહા—આણુપુઠ્વી૧,

નામં૨, પળાસં૩ વત્તઠ્વયા૪ અત્થાહિગારે૫ સમોયારે૬ ॥સૂ.૦ ૭૧॥

કહા છે ‘આગારિંગિયકુસલં, इत्यादि आकार और इंगित (अभिप्राय) के जानने में
कुशल शिष्य यदि पूज्य गुरुमहाराज काले कौवे को यदि सफेद कौवा भी कह दें,
तो भी गुरुजन के वचन को उसे विना किसी तर्क के स्वीकार कर लेना
चाहिये । बाद में एकान्त में काले कौवे को सफेद कहने के प्रयोजन—
का कारण पूछना चाहिये । (से तं नोआगमओ भावोवक्रमे—से तं भावोव-
क्रमे—से तं उवक्रमे) ब्रह्म यह नोआगमको आश्रित करके भावोपक्रम है । इस-
तरह आगम और नोआगमको आश्रित करके भावोपक्रम का यहाँ तक स्व-
रूप वर्णन किया । इस स्वरूप से उपक्रम का स्वरूप ज्ञात हो जाता है ।सूत्र७०।

(૩) કહ્યું પણ છે કે “આગારિંગિયકુસલં” ઇત્યાદિ—આકાર અને ઇંગિતને
જાણવામાં નિપુણ એવો શિષ્ય ગુરુનાં વચનને તર્ક અથવા દલીલ કર્યા વિના સ્વી-
કારી લે છે. ધારે કે ગુરુ કહે કે “કાગડાનો વણ ઘોળો હોય છે,” તે તેમના
તે કથનને પણ તે શિષ્ય દલીલ કર્યા વિના સ્વીકારી લે છે. ત્યારબાદ એકાન્તમાં
તેણે ગુરુને પૂછવું જોઈએ કે “આપ કાગડાનો વણ ઘોળો કહો છો તેનું કારણ
કૃપા કરીને સમજાવો.”

(સે તં નોઆગમઓ ભાવોવક્રમે) આ નોઆગમને આશ્રિત કરીને ભાવો-
પક્રમનું સ્વરૂપ સમજવું. (સે તં ભાવોવક્રમે) આગમ ભાવોપક્રમ અને નો-
આગમ ભાવોપક્રમરૂપ ભાવોપક્રમના અન્ને લેદોનું નિરૂપણ અહીં સમાપ્ત થાય છે.
(સે તં ઉવક્રમે) આ રીતે ઉપક્રમના સમસ્ત લેદોનું વર્ણન અહીં સમાપ્ત
થાય છે. ॥સૂ.૦ ૭૦॥

छाया—अथवा—उपक्रमः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आनुपूर्वी १, नाम २, प्रमाणं ३, वक्तव्यता ४, अर्थाधिकारः ५, समवतारः ६ ॥ सूत्र ७१ ॥

टीका—अहवा इत्यादि—

पूर्वं गुरुभावोपक्रमः प्रदर्शितः संप्रति शास्त्रभावोपक्रमः प्ररूप्यते—‘अथवे’—ति, अथवा—अनन्तरं=गुरुभावोपक्रमवर्णनानन्तरम् उपक्रमः—शास्त्रभावोपक्रमः षड्विधः प्रज्ञप्तः । ‘तं जहा’ इत्यादि, तद्यथा—यथा तस्य भावोपक्रमस्य षड्विधत्वं तदुच्यते ‘आणुपुन्वी’ इत्यादिना । तत्र प्रथम उपक्रम आनुपूर्वी १, द्वितीयो नाम २, तृतीयः प्रमाणम् ३, चतुर्थी वक्तव्यता ४, पञ्चमः—अर्थाधिकारः ६, षष्ठः समवतारः ६ इति । ॥ सूत्र ७१ ॥

अब सूत्रकार “गुरुमाईणं” इस पद में आदि पद से सूचित शास्त्रभावोपक्रम का निरूपण करने के लिये “अहवा” इत्यादि सूत्र कहते हैं—

“अहवा उक्कमे छव्विहे” इत्यादि । ॥ सूत्र ७१ ॥

शब्दार्थ—(अहवा) अथवा (उक्कमे) उपक्रम (छव्विहे) छह प्रकार का (पणत्ते) कहा गया है । (तंजहा) वे प्रकार ये हैं—(आणुपुन्वी १, नामं २, पणामं ३, वक्तव्यता ४, अर्थाधिकारे ५, समोयारे ६,) आनुपूर्वी १, नाम २, प्रमाण ३, वक्तव्यता ४, अर्थाधिकार ५, और समवतार ६, पहिले गुरुभावोपक्रम का कथन सूत्रकारने करदिया है । अब वे आदिपद से सूचित शास्त्र भावोपक्रम का निरूपण करते हैं—यहां उपक्रम पद से शास्त्रभावोपक्रम लिया गया है । अतःशास्त्रोक्त भावोपक्रम पूर्वोक्तरूप से छ प्रकार का है ऐसा सूत्र का संक्षिप्तार्थ है । ॥ सूत्र ७१ ॥

इसे सूत्रकार “गुरुमाईणं” आ पदमां आदि पदथी सूचित शास्त्रभावोपक्रमनुं निरूपण करवाने भाटे “अहवा” इत्यादि सूत्रोक्तुं कथन करे छे—

“अहवा उक्कमे छव्विहे”—इत्यादि—

शब्दार्थ—(अहवा) अथवा (उक्कमे छव्विहे पणत्ते) उपक्रम छ प्रकारको कही छे. (तंजहा) ते छ प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(आणुपुन्वी, नामं, पणामं, वक्तव्यता, अर्थाधिकारे, समोयारे) (१) आनुपूर्वी, (२) नाम, (३) प्रमाण, (४) वक्तव्यता (५) अर्थाधिकार अने ६ समवतार.

पहिलां गुरुभावोपक्रमनुं प्रतिपादन सूत्रकारे करी लीधुं. इवे तेओ आदिपदथी सूचित शास्त्रभावोपक्रमनुं निरूपण करे छे— आ वात “अहवा” अथवा पदथी सूचित थाय छे. अही उपक्रम पदथी शास्त्रभावोपक्रम गृहीत थयो छे. तेथी शास्त्रोक्तभावोपक्रम पूर्वोक्तरूपे छ प्रकारको होय छे, ओवे आ सूत्रको संक्षिप्तार्थ छे. ॥ सूत्र ७१ ॥

अथानुपूर्वादीनां स्वरूपं निरूपयितुमाह;

मूलम्—से किं तं आणुपुव्वी१, आणुपुव्वी दसविहा, पणत्ता, तंजहा। नामाणुपुव्वी१, ठवणाणुपुव्वी२, दव्वाणुपुव्वी३, खेत्ताणुपुव्वी४, कालाणुपुव्वी५, उक्कित्तणाणुपुव्वी६, गणणाणुपुव्वी७, संठाणाणुपुव्वी८, सामायारीआणुपुव्वी९, भावाणुपुव्वी१० ॥सू० ७२॥

छाया—अथ काऽसौ आनुपूर्वी ? आनुपूर्वी दशविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
नामानुपूर्वी१, स्थापनानुपूर्वी२, द्रव्यानुपूर्वी३, क्षेत्रानुपूर्वी४, कालानुपूर्वी५,
उत्कीर्त्तनानुपूर्वी६, गणनानुपूर्वी७, संस्थानानुपूर्वी८, सामाचार्यानुपूर्वी९, भावा-
नुपूर्वी १० ॥सू० ७२॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ कौऽसौ आनुपूर्वी ? इति ।
उत्तरमाह—आनुपूर्वी—इह हि पूर्वं प्रथमम् आदिः इति पर्यायाः । पूर्वस्य—अनु=

अब सूत्रकार आनुपूर्वी आदि कौ के स्वरूप का कथन प्रारंभ करते हैं—
इस में सब से प्रथम वे आनुपूर्वी कितने प्रकार की है यह स्पष्ट करते हैं—
“से किं तं” इत्यादि । ॥सूत्र ७२॥

शब्दार्थ—(से किं तं आणुपुव्वी) हे भदन्त ! पूर्व प्रकान्त आनुपूर्वी क्या है—(आणुपुव्वी दसविहा पणत्ता) उत्तर—आनुपूर्वी दस प्रकार की वही गई है । (तं जहा) जो इस प्रकार से है—(णामाणुपुव्वी) एक नामानुपूर्वी (ठवणाणुपुव्वी) दूसरी स्थापनानुपूर्वी (दव्वाणुपुव्वी) तीसरी द्रव्यानुपूर्वी (खेत्ताणुपुव्वी) चौथी क्षेत्रानुपूर्वी (कालाणुपुव्वी) पांचवी कालानुपूर्वी (उक्कित्तणाणुपुव्वी) छठी उत्कीर्त्तनानुपूर्वी (गणणाणुपुव्वी) सातवीं गणनानुपूर्वी (संठाणाणुपुव्वी) आठवीं—संस्थानानुपूर्वी (सामायारीआ०) नववीं सामाचार्यानुपूर्वी (भावाणुपुव्वी) और दशमी भावानुपूर्वी । पूर्व, प्रथम और आदि ये सब पर्याय

हुवे सूत्रकार आनुपूर्वी आदि के स्वरूप निरूपण करने के लिये प्रारंभ करते हैं।
तेमां सौथी पडेलां तो ओ वात प्रकट करे छे के आनुपूर्वी केटला प्रकारनी छे ?

“से किं तं आणुपुव्वी” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं आणुपुव्वी) शिष्य श्रुने ओवे प्रश्न पूछे छे के छे
हे भगवन् ! पूर्वप्रकान्त (पूर्व प्रस्तुत) आनुपूर्वीतुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—आणुपुव्वी दसविहा पणत्ता—तंजहा) आनुपूर्वीना नीचे प्रमाणे दश
प्रकार कहे छे—

(णामाणुपुव्वी (१) नामानुपूर्वी, (ठवणाणुपुव्वी) (२) स्थापनानुपूर्वी, (दव्वा-
णुपुव्वी) (३) द्रव्यानुपूर्वी, (खेत्ताणुपुव्वी) (४) क्षेत्रानुपूर्वी, (कालाणुपुव्वी) (५)

पश्चात्—अनुपूर्वं, तस्य भावः आनुपूर्वीं—त्र्यादिवस्तु संहतिः, आनुपूर्वीं—अनुक्रमः
परिपाटीत्येते शब्दाः समानार्थकाः । त्र्यादिवस्तु संहतिरूपा एषाऽऽनुपूर्वीं
नामानुपूर्व्यादिभेदैर्दशविधा विज्ञेयेति ॥सू० ७२॥

सम्प्रति नामाधानुपूर्वीं निरूपयितुमाह—

मूलम्—नाम ठवणाओ गयाओ ।

से किं तं दव्वाणुपुव्वी ? दव्वाणुपुव्वी दुविहा पणत्ता, त-
जहा—आगमओ य नोआगमओ य ।

से किं तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी जस्स णं आणुपुव्वित्ति पयं
सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं जाव नो अणुप्पेहाए, कम्हा ?
अणुवओगो दव्वमिति कट्ठु । णेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगम-
ओ एगा दव्वाणुपुव्वी जाव कम्हा ? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ
जइ अणुवउत्ते जाणए न भवइ तम्हा णत्थि आगमओ दव्वाणुपुव्वी ।
से तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी ।

वाची शब्द हैं । पूर्वस्य अनु अनुपूर्वं—पूर्व के पीछे ऐसा अनुपूर्व शब्द का
अर्थ होता है । अनुपूर्व का जो भाव है वह आनुपूर्वीं है । अर्थात् तीन आदि
वस्तुओं का जो समुदाय है वह आनुपूर्वीं है । आनुपूर्वीं अनुक्रम, परिपाटी
ये सब आनुपूर्वीं के पर्यायवाची शब्द हैं । तीन आदि वस्तुओं की संहति
रूप यह आनुपूर्वीं पूर्वोक्त प्रकार से दश भेदवाली है ऐसा जानना चाहिये । ॥सूत्र७२॥

आदानुपूर्वीं, (उक्त्तिणाणुपुव्वी) (६) उत्कीर्तनानुपूर्वीं, (गणणाणुपुव्वी) (७)
गणनानुपूर्वीं, (संठाणाणुपुव्वी) (८) संस्थानानुपूर्वीं (सामायारी आणुपुव्वी) (९)
समाचार्याणुपूर्वीं अने (भावाणुपुव्वी) (१०) लावानुपूर्वीं ।

पूर्व, प्रथम अने आदि आ त्रये पर्यायवाची शब्दो छे. “पूर्वस्य अनु
अनुपूर्वं” “पूर्व (प्रथम)नी पाछा”, अयेवो अनुपूर्वं शब्दो अर्थ थाय छे. आ
अनुपूर्वो नो नो लाव छे तेनुं नाम अनुपूर्वीं छे. अेट्ठे के आदि वस्तुओनो नो
समुदाय छे तेनुं नाम आनुपूर्वीं छे. आनुपूर्वीं, अनुक्रम अने परिपाटी, आ त्रये
आनुपूर्वींना पर्यायवाची शब्दो छे. त्रये आदि वस्तुओना समूहइय आ आनुपूर्वीं
पूर्वोक्त दस लेखवाणी कडी छे, अेम समञ्जुं. ॥सू. ७२॥

से किं तं नो आगमओ द्वाणुपुव्वी ? नो आगमओ द्वाणु-
पुव्वी तिविहा पणत्ता, तं जहा—जाणयसरीरद्वाणुपुव्वी, भविय-
सरीरद्वाणुपुव्वी, जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता द्वाणुपुव्वी ।
से किं तं जाणयसरीरद्वाणुपुव्वी ? जाणयसरीरद्वाणुपुव्वी
आणुपुव्वी पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्त-
देहं सेसं जहा द्वावस्सए जाव से तं जाणयसरीरद्वाणुपुव्वी ।
से किं तं भवियसरीरद्वाणुपुव्वी ? भवियसरीरद्वाणुपुव्वी जे
जीवे जोणीजम्मणणिक्वंते सेसं जहा द्वावस्सए जाव से त-
भवियसरीरद्वाणुपुव्वी ।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता द्वाणुपुव्वी ?
जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता द्वाणुपुव्वी दुविहा पणत्ता,
तं जहा—ओवणिहिया य अणोवणिहिया य । तत्थ णं जा सा
ओवणिहिया सा ठप्पा । तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा
पणत्ता, तं जहा—नेगमववहाराणं, संगहस्स य ॥सू० ७३॥

छाया—नामस्थापने गते ।

अथ काऽसौ द्रव्यानुपूर्वी ? द्रव्यानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता; तद्यथा—आगमतश्च
नोआगमतश्च ।

अब सूत्रकार नामानुपूर्वी को निरूपण करते हैं—

“नाम ठवणाओ गयाओ” इत्यादि । ॥सूत्र ७२॥

शब्दार्थ—(नामठवणाओ गयाओ) नामानुपूर्वी और स्थापनानुपूर्वी का
स्वरूप नामावश्यक और स्थापनावश्यक के जैसा जानना चाहिये । (से किं

इवे सूत्रकार नामानुपूर्वी निरूपण करे छे—

“नामठवणाओ गयाओ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(नामठवणाओ गयाओ) नामानुपूर्वी अने स्थापनानुपूर्वी तं स्वरूप
नामावश्यक अने स्थापना आवश्यकना पूर्वोक्त स्वरूप अनुसार न समञ्जसुं (से किं
त द्वाणुपुव्वी ?) छे लगयन ! द्रव्यानुपूर्वी तं स्वरूप केतुं छे ?

अथ काऽसौ आगतो द्रव्यानुपूर्वी? आगतो द्रव्यानुपूर्वी यस्य खलु आनुपूर्वीति पदं शिक्षितं स्थितं जितं मितं परिजितं यावद् नोअनुप्रेक्षया, कस्मात्? अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा । नैगमस्य खलु एकोऽनुपयुक्तः आगतत एका द्रव्यानुपूर्वी यावत्, कस्मात्? यदि ज्ञायकः अनुपयुक्तो न भवति, यदि अनुपयुक्तो ज्ञायको न भवति, तस्माद् नास्ति आगततो द्रव्यानुपूर्वी । सैषा आगततो द्रव्यानुपूर्वी ।

अथ काऽसौ नोआगततो द्रव्यानुपूर्वी? नोआगततो द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी, भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी, ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वी । अथ काऽसौ ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी? ज्ञायक-शरीरद्रव्यानुपूर्वी—आनुपूर्वीपदार्थाधिकारज्ञायकस्य यत् शरीरकं व्यपगतच्युतव्या-वितत्यक्तदेहं शेषं यथा द्रव्यावश्यके तथा भणितव्यम्, यावत् सैषा ज्ञायक-शरीरद्रव्यानुपूर्वी ।

अथ का सा भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी? भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी—यो जीवो योनि-जन्मनिष्क्रान्तः शेषं यथा द्रव्यावश्यके० यावत् सैषा भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी । अथ काऽसौ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता, द्रव्यानुपूर्वी? ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-व्यतिरिक्ता, द्रव्यानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—औपनिधिकी च अनौपनिधिकी च । तत्र खलु या सा औपनिधिकी सा स्थाप्या । तत्र खलु या सा अनौपधिकी सा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—नैगमव्यवहारयोः, संग्रहस्य च ॥सू० ७३॥

टीका—'नाम ठवणाओ' इत्यादि—

नामस्थापने=नामानुपूर्वी—स्थापनानुपूर्वी गते=गत=गतप्राये उक्तप्राये इत्यर्थः । अयं भावः—नामानुपूर्वी स्थापनानुपूर्वी चैतद्वयं नामावश्यकवत् स्थापनावश्यकवद् विज्ञेयमिति ।

अथ द्रव्यानुपूर्वीं निरूपयितुमाह—'से किं तं' इत्यादि ।

अथ काऽसौ द्रव्यानुपूर्वी? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—'दव्वाणुपुव्वी' इत्यादि । द्रव्यानुपूर्वीं द्विविधा प्रज्ञप्ता । तद् यथा—आगततश्च, नोआगततश्च ।

तं दव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त ! द्रव्यानुपूर्वीं का क्या स्वरूप है ? (दव्वाणु-पुव्वी दुविहा पणत्ता) उत्तर—द्रव्यानुपूर्वीं दो प्रकार की कही गई है (तंजहा) वे प्रकार ये हैं (आगमओय नोआगमओय) एक आगम से-

उत्तर—(दव्वाणुपुव्वी दुविहा पणत्ता-तंजहा) द्रव्यानुपूर्वीं ना नीचे प्रमाणे से प्रकार कहे हैं । (आगमओ य नोआगमओ य) (१) आगमनी अपेक्षासे अने (२) नोआगमनी अपेक्षासे आगमने आश्रित करीने से द्रव्यानुपूर्वीं

તત્ર-આગમતો દ્રવ્યાનુપૂર્વીં યસ્ય સાધોઃ સ્વલુ આનુપૂર્વીંતિ પદં શિક્ષિતં સ્થિતં
જિતં મિતં પરિજિતં યાવત્-इह यावच्छब्दात्-નામસમં ઘોષસમમ્ અહીનાક્ષરમ્
અત્યક્ષરમ્ અવ્યાવિદ્ધાક્ષરમ્ અસ્ત્વલિતમ્ અમિલિતમ્ અવ્યત્યામ્નેડિતં પ્રતિપૂર્ણં પ્રતિ-

ઔર દૂસરી નોઆગમ સે । આગમ કો આશ્રિત કરકે જો દ્રવ્ય આનુપૂર્વીં
હોતી હૈ વહ આગમ દ્રવ્યાનુપૂર્વીં હૈ । (સે કિં તં આગમઓ દ્રવ્યાનુપુર્વીં)
હે ભદન્ત । આગમ કો આશ્રિત કરકે જો દ્રવ્યાનુપૂર્વીં હોતી હૈ ? ઉસકા
કયા સ્વરૂપ હૈ ? (આગમઓ દ્રવ્યાનુપુર્વીં) આગમ કો આશ્રિત કરકે જો
દ્રવ્યાનુપૂર્વીં હોતી હૈ ઉસકા સ્વરૂપ હસ પ્રકાર સે હૈ-(જસ્સ ણં આણુ-
પુવ્વિત્તિ પયં સિક્ષિતયં) જિસ સાધુ આદિને આનુપૂર્વીં હસ પદ વાચ્ય
અર્થ કો વિનયપૂર્વક ગુરુમુખ સે સીખ લિયા હૈ (ઠિયં) ઉસે અચ્છી
તરહ સે અપને સ્મૃતિ પથ મેં ઉતાર લિયા હૈ (જિયં) શબ્દ ઔર અર્થ
કી અપેક્ષા સે જિસને ઉસે ખલિ ખાંતિ જાન લિયા હૈ (મિયં) ઉસકે
પદાદિકોં કી સંખ્યા કા પરિમાણ જિસને ખલી પ્રકાર સે અભ્યાસ કર
લિયા હૈ । (પરિજિયં) જિસને ઉસે સબ તરફ સે ઔર સઘ પ્રકાર સે પરા-
વર્તિત કરલિયા હૈ । વહ આગમ કો આશ્રિત કરકે દ્રવ્યાનુપૂર્વીં હૈ ।
યહાં યાવત્ શબ્દ સે “ નામસમ, ઘોષસમ અહીનાક્ષર અત્યક્ષર અવ્યા-
વિદ્ધાક્ષર, અસ્ત્વલિત, અમિલિત, અવ્યત્યામ્નેડિત, પ્રતિપૂર્ણ પ્રતિપૂર્ણઘોષ

થાય છે તેનું નામ આગમદ્રવ્યાનુપૂર્વીં છે અને નો આગમને આશ્રિત કરીને
જે આનુપૂર્વીં થાય છે તેનું નામ નોઆગમદ્રવ્યાનુપૂર્વીં છે. (સે કિં તં આગ-
મઓ દ્રવ્યાનુપુર્વીં) ? હે ભગવન્ ! આગમનો આશ્રિત કરીને જે આનુપૂર્વીં છે
તેનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

(આગમઓ દ્રવ્યાનુપુર્વીં) આગમને આશ્રિત કરીને જે દ્રવ્યાનુપૂર્વીં થાય
છે તેનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-

(જસ્સ ણં આણુપુર્વીંતિ પયં સિક્ષિતયં) જે સાધુ આદિએ “ આનુપૂર્વીં ”
આ પદના વાચ્યાર્થને વિનયપૂર્વક શુરને મુખેથી સારી રીતે શીખી લીધો છે,
(ઠિયં) તેને સારી રીતે પોતાના સ્મૃતિપટલ પર ઉતારી લીધો છે, (જિયં)
શબ્દ અને અર્થની અપેક્ષાએ જેણે તેને સારી રીતે જાણી લીધેલ છે, (મિયં)
તેના પદાદિકોની સંખ્યાનું પરિણામ જેણે સારી રીતે સમજી લીધું છે,
(પરિજિયં) જેણે તેને બધી તરફથી અને બધા પ્રકારે પરાવર્તિત કરી લીધું
છે, તે આગમનો આશ્રિત કરીને દ્રવ્યાનુપૂર્વીં છે. અહીં ‘ યાવત્ ’ પદથી
“ નામસમ, ઘોષસમ, અહીનાક્ષર, અત્યક્ષર, અવ્યાવિદ્ધાક્ષર, અસ્ત્વલિત,

पूर्णघोषं कण्ठोष्ठविप्रमुक्तं गुरुवाचनोपगतं भवति । स खलु तत्र-आनुपूर्वीतिपदे वाचनया प्रच्छनया परिवर्तनया धर्मकथया च वर्तमानो भवति, न तु अनुप्रेक्षया वर्तमानो भवति । एवंविधः स साधुरागतो द्रव्यानुपूर्वी पदेऽनुप्रेक्षयाऽवर्तमानः साधुः आगतो द्रव्यानुपूर्वी कथं भवतीत्याह-‘कम्हा’ इत्यादिना-कस्मात् कण्ठोष्ठविप्रमुक्तः गुरुवाचनोपगतः ” इन पदों का संग्रह किया गया है । इन पदों का अर्थ १४ वे सूत्र में स्पष्ट कर दिया है । ऐसा वह व्यक्ति “आनुपूर्वी” इस पद में वाचना पृच्छना, परिवर्तना और धर्मकथा इन से वर्तमान माना जाता है । परन्तु अनुप्रेक्षा से वर्तमान-नहीं माना जाता है । इस प्रकार का वह साधु व्यक्ति आगम से द्रव्यानुपूर्वी जानना चाहिये ।

शंका-(कम्हा) आनुपूर्वी पद में अनुप्रेक्षा से अवर्तमान साधु आगम से द्रव्यानुपूर्वी कैसे माना जाता है ?

उत्तर-“अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा” अनुपयोग-जीव जिसके द्वारा वस्तु का परिच्छेद करता है उसका नाम उपयोग है । इस उपयोगका अभाव अनुपयोग है । इस से युक्त होने के कारण आनुपूर्वी का वह ज्ञाता आगम से द्रव्यानुपूर्वी माना जाता है । ऐसा शास्त्र का वचन है । तात्पर्य कहने का यह है कि जिस साधुने आनुपूर्वी को

अभिलिखित, अव्यत्याश्रित, प्रतिपूर्णा, प्रतिपूर्णाघोष, कण्ठोष्ठविप्रमुक्त, गुरुवाचनोपगत” आ पढ़ने गृह्य करवाभां आंवां छे. ते पढ़ेने अर्थ १४भां सूत्रभां स्पष्ट करवाभां आंवां छे. आ अभां विशेषणोधी युक्त साधु आदिने ‘आनुपूर्वी’ आ पढ़भां वाचना, पृच्छना, परिवर्तना अने धर्मकथा द्वारा वर्तमान मानवाभां आवे छे, परन्तु अनुप्रेक्षा द्वारा वर्तमान मानतो नथी. आ प्रकारना ते साधुने आगमनी अपेक्षाअे द्रव्यानुपूर्वी समजवे.

शंका-(कम्हा) आनुपूर्वी पढ़भां अनुप्रेक्षा द्वारा अवर्तमान साधु आगमनी अपेक्षाअे द्रव्यानुपूर्वी कैवी रीते मनाय छे ?

उत्तर-“अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा” अण्वेना द्वारा वस्तुने परिच्छेद (घोष) करे छे तेनुं नाम उपयोग छे. ते उपयोगना अभावनुं नाम अनुपयोग छे. आ अनुपयोगधी युक्त होवने कारणे अनुपूर्वीने ते ज्ञाता आगमनी अपेक्षाअे द्रव्यानुपूर्वी मनाय छे, अण्वुं शास्त्रनुं वचन छे. आ कथनने लवार्थ अे छे के-जे साधुअे आनुपूर्वीने सारी रीते ज्ञाती लीधी छे-शीभी लीधी छे-अेटले के ते तेने परिपूर्णाअे ज्ञाता थय गये छे, ते

अनुपेक्षया वर्तमानः साधुरागमतो द्रव्यानुपूर्वी भवति? उत्तरयति-अणुवओगो द्रव्यमितिकट्टु' अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा । अनुपयोगो हि द्रव्यं भवति, अतोऽनुपेक्षयाऽवर्तमानः साधुरागमतो द्रव्यानुपूर्वी भवति ।

नैगमादि भेदेन द्रव्यानुपूर्वी भेदास्त्वेवं विज्ञेयाः-नैगमस्य खलु एकोऽनुपयुक्त आगमत एका द्रव्यानुपूर्वी, यावत् यावच्छब्दात् द्वावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे आनुपूर्वी । त्रयोऽनुपयुक्ता आगमतस्तिस्त्रो द्रव्यानुपूर्व्यः । एवमेव व्यवहारस्यापि ।

सम्यक् प्रकार से जान लिया है-सीख लिया है-वह उसका पूर्णरूप से ज्ञाता बन चुका है, अतः वह साधु उस आनुपूर्वी में वाचना पृच्छना आदि से वर्तमान होने पर भी उसमें उपयोग से रहित होने के कारण वह आगम से द्रव्यानुपूर्वी कहलाता है । (जेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगा द्वाणुपुव्वी, जाव कम्हा? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ, जइ अणुवउत्ते जाणए न भवइ, तम्हा णत्थि आगमओ द्वाणुपुव्वी से तं आगमओ द्वाणुपुव्वी)

अब सूत्रकार नैगमनय आदि के भेद से द्रव्यानुपूर्वी के भेदों को कहते हैं-इन में नैगमनय की दृष्टि से एक अनुपयुक्त आत्मा-साधु आगम से एक द्रव्यानुपूर्वी है । यहाँ यावत् शब्द से ऐसा जानना चाहिये-कि दो अनुपयुक्त साधु आगम से दो द्रव्यानुपूर्वी हैं । तीन अनुपयुक्त साधु, आगम से तीन द्रव्यापूर्वी हैं । इस प्रकार जितने अनुपयुक्त साधु हैं आगम से उतनी ही द्रव्यानुपूर्वीयां हैं । इसी प्रकार से व्यवहारनय की दृष्टि से द्रव्यानुपूर्वी में एकत्व अनेकत्व का कथन

साधु आनुपूर्वीमां वाचना, पृच्छना, आदि वडे वर्तमान डोवा छतां पणु तेमां उपयोगथी रहित डोवाने कारणे आगमनी अपेक्षाये द्रव्यानुपूर्वीं कडेवाय छे.

(जेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगा द्वाणुपुव्वी जाव कम्हा ? जइ जाणए अनुवउत्ते न भवइ, जइ अनुवउत्ते जाणए न भवइ, तम्हा णत्थि आगमओ द्वाणुपुव्वी-से तं आगमओ द्वाणुपुव्वी)

डवे सूत्रकार नैगमनय आदिना लेहथी द्रव्यानुपूर्वीना लेहोनुं कथन करे छे-नैगम नयनी दृष्टिअे अेक अनुपयुक्त आत्मा (साधु) आगमनी अपेक्षाअे अेक द्रव्यानुपूर्वी छे. अडी " यावत् " पदथी नीचेना पूर्वोक्त सूत्रपाठ अडणु करवे.

नैगमनयनी दृष्टिअे अे अनुपयुक्त साधु आगमनी अपेक्षाअे अे द्रव्यानुपूर्वी छे, तणु अनुपयुक्त साधु आगमनी अपेक्षाअे तणु द्रव्यानुपूर्वी छे. अेअ प्रमाणे जेटला अनुपयुक्त साधु छे अेटलां अ आगमनी अपेक्षाअे द्रव्यानुपूर्वी छे. अेअ प्रमाणे व्यवहारनयनी अपेक्षाअे पणु द्रव्यानुपूर्वीमां

संग्रहस्य खलु एकोऽनुपयुक्तः, अनेकेवाऽनुपयुक्ता आगततो द्रव्यानुपूर्वीं द्रव्यानुपूर्व्यौ वा एकैव द्रव्यानुपूर्वीं बोध्या । ऋजुसूत्रस्य एकोऽनुपयुक्त आगत एका द्रव्यानुपूर्वीं, पृथक्त्वं नेच्छति । त्रयाणां शब्दनयानां ज्ञायकोऽनुपयुक्तोऽवस्तु, कस्मात् ? यदि ज्ञायकः, अनुपयुक्तो न भवति, यदि अनुपयुक्तः, ज्ञायको न भवति तस्माद् नास्ति तन्मते आगततो द्रव्यानुपूर्वीं । अत्रोक्तानां शिक्षितादि पदानां व्याख्या पूर्ववद् बोध्या । एतदुपसंहरन्नाह-सैषाऽऽगततो द्रव्यानुपूर्वीति ।

जानना चाहिये संग्रहनय की ऐसी मान्यता है कि एक द्रव्यानुपूर्वी है । नैगम और व्यवहार नय की मान्यता के अनुसार द्रव्यानुपूर्वी जो एक और अनेकरूप है-सो यह नय ऐसा कथन करता है कि सामान्यतत्त्व के आधार पर समस्त द्रव्यानुपूर्वियां एक ही हैं-भिन्न २ अनेक नहीं । ऋजुसूत्रनय की मान्यतानुसार वर्तमान क्षण में एक अनुपयुक्त साधु आगम की अपेक्षा एक आनुपूर्वी है । यह नय आनुपूर्वी में भिन्नता-अनेकता नहीं मानता है । तीन शब्दनय की मान्यतानुसार-ज्ञायक होकर भी जो अनुपयुक्त होता है वह अवस्तु स्वरूप है । क्यों कि जो ज्ञायक होगा वह अनुपयुक्त नहीं होगा, जो अनुपयुक्त होगा वह ज्ञायक नहीं होगा । इसलिये आगम की अपेक्षा लेकर जो द्रव्यानुपूर्वी बनती है वह नहीं है । यहां पर जो शिक्षित आदि पद आये हैं उनकी व्याख्या पहिले की व्याख्या के समान समझनी

એકત્વ અનેકત્વનું કથન સમજવું જોઈએ. સંગ્રહનયની એવી માન્યતા છે કે એક જ દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. નૈગમનય અને વ્યવહાર નયની માન્યતા અનુસાર દ્રવ્યાનુપૂર્વી જે એક અને અનેકરૂપ છે તેનું કારણ એ છે કે આ નય એવું કથન કરે છે કે સામાન્ય તત્ત્વના આધાર પર સમસ્ત દ્રવ્યાનુપૂર્વીઓ એક જ છે-લિપ્ત લિપ્ત અનેક-નથી. ઋજુસૂત્ર નયની માન્યતા અનુસાર વર્તમાન ક્ષણે એક અનુપયુક્ત સાધુ આગમની અપેક્ષાએ એક આનુપૂર્વી છે. આ નય આનુપૂર્વીમાં ભિન્નતા (અનેકતા)ને માનતો નથી. ત્રણે શબ્દનયોની માન્યતા અનુસાર જ્ઞાયક હોવા છતાં પણ જે અનુપયુક્ત હોય છે તે અવસ્તુસ્વરૂપ છે. કારણ કે જે જ્ઞાયક હશે તે અનુપયુક્ત અહીં હોય અને જે અનુપયુક્ત હશે તે જ્ઞાયક નહીં હોય, આ પ્રકારની તે ત્રણે શબ્દ નયોની માન્યતા છે. તેથી આગમની અપેક્ષાએ જે દ્રવ્યાનુપૂર્વી બને છે તેનો આ ત્રણે શબ્દનયોની માન્યતા અનુસાર સહભાવ જ હોતો નથી. અહીં જે શિક્ષિત આદિ પદો આવ્યાં છે તેમની વ્યાખ્યા આગળ આખ્યા પ્રમાણે જ સમજવી. આ પ્રકારનું આગમ દ્રવ્યાનુપૂર્વી સ્વરૂપ છે.

अथ नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वीति जिज्ञासया शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ काऽसौ नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी ? इति । उत्तरयति—‘नोआगमओ द्रव्यानुपूर्वी’ इत्यादि । नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा मज्ञप्ता—ज्ञायकशरीर-द्रव्यानुपूर्वी^१ भव्यशरीर—द्रव्यानुपूर्वी^२ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्या-नुपूर्वी^३ । ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी जिज्ञासमानः शिष्यः पृच्छति—अथ काऽसौ ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी ? उत्तरयति—‘जाणयसरीर’ इत्यादि । ज्ञायकशरीरद्रव्यानु-पूर्वी हि—आनुपूर्वी पदार्थाधिकारज्ञायकस्य यत् शरीरकं व्यपगतच्युतच्यावितत्य-क्तदेहं जीवविप्रमुक्तं शय्यागतं वा संस्तारगतं वा सिद्धशिलातलगतं वा दृष्ट्वा खलु

चाहिये । इस प्रकार यह आगम से द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है । (से किं तं नोआगमओ द्रव्यानुपूर्वी) हे भदन्त ! नो आगम को आश्रित करके द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ? (नोआगमओ द्रव्यानुपूर्वी त्रिविहा पणत्ता) नोआगम को आश्रित करके होनेवाली द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है । (तं जहा) जैसे—(जाणयसरीरद्रव्यानुपूर्वी, भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी, जाणयसरीरभव्यशरीरवहरित्ता द्रव्यानुपूर्वी) ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी, भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी और ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी । (से किं तं जाणयसरीरद्रव्यानु-पूर्वी) हे भदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त ज्ञायशरीर द्रव्यानुपूर्वी क्या है ?

(जाणयसरीरद्रव्यानुपूर्वी) ज्ञायकशरीर द्रव्यानुपूर्वी इस प्रकार से है । (आनुपूर्वीपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरं ववगयच्युयचावियचत्त-

(से किं तं नोआगमओ द्रव्यानुपूर्वी ?) हे भगवान् ! नोआगमने आश्रित करीने द्रव्यानुपूर्वीनुं स्वइयं केवुं छे ?

उत्तर—(नोआगमओ द्रव्यानुपूर्वी त्रिविहा पणत्ता) नोआगमने आश्रित करीने ज्ञायमान द्रव्यानुपूर्वी त्रय प्रकारनी कही छे—(तंजहा) ते त्रय प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—

(जाणयसरीरद्रव्यानुपूर्वी, भव्यशरीर द्रव्यानुपूर्वी जाणयसरीरभव्यशरीर-वहरित्ता द्रव्यानुपूर्वी) (१) ज्ञायकशरीर द्रव्यानुपूर्वी, (२) भव्यशरीर द्रव्यानुपूर्वी अने (३) ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी ।

प्रश्न—से किं तं जाणयसरीरद्रव्यानुपूर्वी ? हे भगवान् ! पूर्व प्रक्रान्त (पूर्व प्रस्तुत) ज्ञायकशरीर द्रव्यानुपूर्वीनुं स्वइयं केवुं छे ?

उत्तर—(जाणयसरीरद्रव्यानुपूर्वी) ज्ञायकशरीर द्रव्यानुपूर्वीनुं स्वइयं आ प्रकारनुं छे—(आनुपूर्वी पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरं ववगयच्युयचाविय-क्तदेहं) ‘आनुपूर्वी’ आ पटना अर्थाधिकारने ज्ञायनार साधुनुं हसे प्रमाणे थी

कोऽपि भणेत अहो ! खलु अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आनुपूर्वीति पदम् आगृहीतं प्रज्ञापितं प्ररूपितं दर्शितं निदर्शितम् । यथा कोऽत्र दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भ आसीदिति । ' जीव विप्रमुक्तम् ' इत्यारभ्य एतत्पर्यन्तः पाठः ' शेषं यथा द्रव्यावश्यकं तथा भणितव्यं यावत् ' इत्यनेन संग्राह्यः एषां पदानां व्याख्या द्रव्यावश्यकं द्रष्टव्या । एतन्निगमयन्नाह—सैषा ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वीति ।

देहं) आनुपूर्वीं इस पद के अर्थाधिकार को जानने वाले साधु का जो व्यपगत च्युत, व्यावित और त्यक्त देहवाला शरीर अर्थात् आहार परिणति जनित वृद्धि से रहित शरीर है वह ज्ञायकशरीर द्रव्यानुपूर्वी है । (सेसं जहा द्वावस्सए जाव से तं जाणयस्सरीरद्वानुपुव्वी) यहां पर " जीवविप्रमुक्तं शय्यागतं वा संस्तारगतं वा नैषेधिकीगतं वा, सिद्धं शिलातलगतं वा दृष्ट्वा खलु कोऽपि भणेत अहो ! खलु अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आनुपूर्वीति पदं आगृहीतं, प्रज्ञापितं, प्ररूपितं, दर्शितं, निदर्शितं । यथा कोऽत्र दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भ-आसीत् अयं घृतकुम्भ आसीत् " यह (सेसं) अवशिष्ट पाठ (जहा द्वावस्सए जाव) जैसा द्रव्यावश्यक में कहा है वैसा लगा लेना चाहिये । इन समस्त पदों की व्याख्या द्रव्यावश्यक के प्रकरण में कह दी गई है—अतः वहां से जान लेनी चाहिये । इस प्रकार नोआगम की अपेक्षा से द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है ।

रहित च्युत, व्यावित अने त्यक्त देहवाणुं जे निश्च'व शरीर छे—अटले के आहार परिणति जनित वृद्धिथी रहित जे शरीर छे ते ज्ञायक शरीर द्रव्या-नुपूर्वी छे. (व्यपगत, च्युत, व्यावित आदि पढेने लावथ' आगण आवी गये छे.)

(सेसं जहा द्वावस्सए जाव से तं जाणयस्सरीरद्वानुपुव्वी) अही " जीवविप्रमुक्तं शय्यागतं वा, नैषेधिकीगतं वा, सिद्धशिलातलगतं वा दृष्ट्वा खलु कोऽपि भणेत अहो ! खलु अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आनुपूर्वीति पदं आगृहीतं, प्रज्ञापितं, प्ररूपितं, दर्शितं, निदर्शितं यथा कोऽत्र दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भ आसीत्, अयं घृतकुम्भ आसीत् " आ (सेसं) आझीने। सूत्रपाठ (जहा द्वावस्सए जाव) द्रव्यावश्यकमां कहा अनुसार अदृष्ट करवे जेधये. आ सधणां पढेनी व्याख्या द्रव्यावश्यकना प्रकरणमां आपवामां आवी छे. तेथी जिज्ञासु पाठकेअे ते त्यांथी वांथी देवी. आ प्रकारनुं नोआगमनी अपेक्षाअे द्रव्यानुपूर्वीतुं स्वइय छे.

शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ काऽसौ भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी ? भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी हि—यो जीवो योनि जन्मनिष्क्रान्तोऽनेनैव आत्तकेन शरीर-समुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन भावेन आनुपूर्वीति पदम् आगामिकाले शिक्षिष्यते, न तावत् शिक्षते । यथा को दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भो भविष्यति, अयं घृतकुम्भो भविष्यतीति अनेनैव आत्तकेन’ इत्यारभ्य एतत्पर्यन्तः पाठः शेषं यथा ‘द्रव्यावश्यके यावत्’ इत्यनेन संग्राहः । व्याख्या च द्रव्यावश्यके द्रष्टव्या । सम्प्रत्येतदुप-संहरन्नाह—सैषा भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वीति ।

(से किं तं भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी) हे भदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त भव्य-शरीर द्रव्यानुपूर्वीका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी) भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है—(जे जीवे जोणीजम्मणणिकखंते सेसं जहा दव्वावस्सए जाव—से तं भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी) जो जीव जन्मकाल में अपना पूर्ण नौवास का समय समाप्तकर उत्पन्न हुआ—बीच में नहीं, ऐसा मनुष्य उस प्राप्त शरीर से जो भविष्यत्कालमें आनुपूर्वी का अनुपयुक्त ज्ञाता बनेगा उसका वह प्राप्त शरीर नोभागमसे भव्यशरीर द्रव्यानुपूर्वी है । यहाँ पर “ अनेनैव आत्तकेन ” इस पाठ से लेकर “ शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन भावेन आनुपूर्वीतिपदं आगामि-काले शिक्षिष्यते न तावत् शिक्षते । यथा को दृष्टान्तः अयं मधुकुम्भो भविष्यति अयं घृतकुम्भो भविष्यति ” यहाँ तक का पाठ “ शेषं यथा द्रव्यावश्यके यावत् ” इस पाठ से ग्रहण करलेना चाहिये । इस

प्रश्न—से किं तं भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी ? डे लगवन् ! लव्यशरीर द्रव्या-नुपूर्वीतुं डेवु स्वरूप छे ?

उत्तर—(जे जीवे जोणिजम्मणणिकखंते सेसं जहा दव्वावस्सए जाव से तं भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी) जे एव भाताना गलंभां पूरां नव भास रहीने अेटवे डे पूरुंकाण व्यतीत करीने उत्पन्न थये छे—अपूरुं काण व्यतीत उत्पन्न थये नथी, अेवे एव लविण्यकाणभां अनुपूर्वीने अनुभवयुक्त अनशे—वर्त-मानकाणे तो अनुपूर्वीने ज्ञाता नथी, तो अे एवने ते प्राप्त शरीर नेआगमनी अपेक्षअे लव्यशरीर द्रव्यानुपूर्वी छे, अही “ अनेनैव आत्तकेन ” आ सूत्रपाठथी लधने “ शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन भावेन आनुपूर्वीतिपदं आगामि काले शिक्षिष्यते न तावत् शिक्षते । यथा को दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भो भविष्यति अयं घृतकुम्भो भविष्यति ” अही सुधीने। सूत्रपाठ द्रव्यावश्यक सूत्रभां कही। अनुसार अडुणु करवानुं सूत्रकारे

शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ काऽसौ ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-
व्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वी ? इति । उत्तरमाह—‘जाणयसरीर’ इत्यादि । ज्ञायक-
शरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वी हि द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—औपनिधिकी
च अनौपनिधिकी च । तत्र=भेदद्वयमध्ये या सा औपनिधिकी इह निधिशब्दस्य
निक्षेपोऽर्थः, निधानं, निधिः निक्षेपः, न्यासः, स्थापनेति शब्दाः पर्यायाः । उप=
सामीप्येन निधिः—उपनिधिः—एकस्मिन् विविक्षितेऽर्थे पूर्वं व्यवस्थापिते तत्समीपे

पाठ की शंकासमाधान पूर्वक जैसी व्याख्या द्रव्यावश्यक के स्वरूपको
निरूपण करते समय की है वैसी ही व्याख्या इसकी जाननी चाहिये ।
इस प्रकार यह नोआगम को लेकर द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है । (से किं
तं जाणयसरीरभावियसरीरवहरित्ता द्रव्याणुपूर्वी) हे भदन्त ! पूर्वोक्त
ज्ञायक शरीर भव्य शरीर इन दोनों से व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी
का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(जाणयसरीरभावियसरीरवहरित्ता द्रव्याणुपूर्वी दुविहा
पणत्ता) ज्ञायकशरीर भव्यशरीर इन दोनों से भिन्न द्रव्यानुपूर्वी दो
प्रकार की कही है (तंजहा) जैसे (ओवणिहिया, य अणोवणिहिया य)
औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी और अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी । (तत्थणं
जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा) इनमें जो औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी है
वह स्थाप्य है । क्योंकि अल्प विषयवाली होने से वह इस समय
व्याख्या करने योग्य नहीं है । निधिशब्द का अर्थ यहां निक्षेप है ।

सूत्रन कथं छे द्रव्यावश्यकता प्रकरणुमां शंकाओना समाधान पूर्वक लव्य-
शरीर द्रव्यावश्यकता स्वइपनुं जेवुं निइपणु करवामां आओयुं छे जेवुं न
अहीं लव्यशरीर द्रव्यानुपूर्वीनुं निइपणु थवुं जेछंओ आ प्रकारनुं नोआग-
मनी अपेक्षाओ लव्यशरीर द्रव्यानुपूर्वीनुं स्वइप समजवुं ।

प्रश्न—(से किं तं जाणयसरीरभावियसरीरवहरित्ता द्रव्याणुपूर्वी ?) छे
लगवन् । पूर्वप्रकान्त ज्ञायकशरीर अने लव्यशरीर आ अन्नेथी भिन्न जेवी
द्रव्यानुपूर्वीनुं स्वइप केवुं छे ?

उत्तर—(जाणयसरीरभावियसरीरवहरित्ता द्रव्याणुपूर्वी दुविहा पणत्ता)
ज्ञायकशरीर अने लव्यशरीरथी भिन्न जेवी द्रव्यानुपूर्वी के प्रकारनी कही छे ।
(तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—ओवणिहिया च अणोवणिहिया य (१)
औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी अने (२) अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी (तत्थणं जा
सा ओवणिहिया सा ठप्पा) तेमां जे औपनिधिकी आनुपूर्वी छे ते स्थाप्य

एवापरापरस्य वक्ष्यमाणपूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण यन्निक्षेपणं स उपनिधिरित्यर्थः
 उपनिधिः प्रयोजनं यस्या आनुपूर्व्याः सा-औपनिधिकी । सामायिकादि-षडध्य-
 यनानां पूर्वा पूर्वादिना निक्षेप एव उपनिधिः स प्रयोजनं यस्याः आनुपूर्व्याः
 सा, औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी स्थाप्या=सम्प्रति न व्याख्यातव्या-अल्पविषयत्वे-
 नात्र नोच्यते, किंत्वग्रे वक्ष्यते इति भावः । सम्प्रति बहुवक्तव्यत्वेन पश्चान्निर्दिष्टा-
 ऽपि अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्व्येव व्याख्यायते । तत्र खलु या सा अनौपनिधिकी

निधान, निधि निक्षेप, न्यास स्थापना ये सब निधिशब्द के पर्याय
 वाची शब्द हैं । उपशब्दका अर्थ समीप है और निधि शब्दका अर्थ
 रखना है । एक कोई विवक्षित पदार्थ पहिले व्यवस्थापित कर देने पर
 फिर उसके पास ही और २ दूसरे पदार्थों के वक्ष्यमाण पूर्वानुपूर्वी के
 क्रम से जो रखा जाता है उसका नाम उपनिधि है । यह उपनिधि जिस
 आनुपूर्वी का प्रयोजन हो वह औपनिधिकी आनुपूर्वी है । इसमें सामा-
 यिक आदि छह अध्ययनों का पूर्वानुपूर्वी से निक्षेप किया जाता है ।
 इनका यह निक्षेप ही उपनिधि है । औपनिधिकी आनुपूर्वी में यह उप-
 निधि ही प्रयोजनभूत होती है । अल्प विषय वाली होने से जो यहां
 उसे व्याख्यातव्य नहीं कहा गया है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि
 उस सूत्र में सूत्रकार उसका कथन नहीं करेंगे । किन्तु आगे वे उसे
 कहेंगे-अभी यहां नहीं । अनौपनिधिकी आनुपूर्वी का जो सूत्रकार

छे, कारणके अल्प विषयवाणी होवाना कारणे अत्यारे अही' तेनु' प्रतिपादन
 करवानी नइर नथी 'निधि' पदने अर्थ अही' 'निक्षेप' समजवे निधान,
 निधि, निक्षेप, न्यास अने स्थापना आ अथा निधिशब्दना पर्यायवाची
 शब्दो छे. 'उप' शब्दने अर्थ 'समीप' थाय छे अने 'निधि' शब्द
 'राभवाना अर्थने सूचक छे इवे उपनिधि शब्दने आ प्रभाणे अर्थ
 थाय छे-कौछि अेक विवक्षित पदार्थने पडेलीं व्यवस्थापित करी दीधां पछी
 तेनी पासे न अन्य पदार्थने पूर्वानुपूर्वीना कभथी न राभवामां (स्थापित
 करवामां) आवे छे तेनु' नाम उपनिधि छे. " आ उपनिधि न अनुपूर्वीनुं
 प्रयेजन छे ते आनुपूर्वीने औपनिधिकी आनुपूर्वी' कडे छे तेमां सामायिक
 आदि ६ अध्ययनेना पूर्वानुपूर्वीथी निक्षेप करवामां आवे छे. तेमने आ
 निक्षेप न उपनिधि इप छे. औपनिधिकी आनुपूर्वीमां आ उपनिधि न
 प्रयेजनभूत होय छे. अल्पविषयवाणी होवाने कारणे तेने अही' व्याख्यात
 करवा योग्य नही' इडेवानुं तात्पर्य अेषु' नथी छे आ सूत्रमां सूत्रकार

द्रव्यानुपूर्वी सा द्विविधा प्रज्ञप्ता । 'अनौपनिधिकी' इत्यस्यायमर्थः अनुपनिधिः= वक्ष्यमाणपूर्वानुपूर्वादिक्रमेण अनिक्षेपः-अव्यवस्थापनं, स प्रयोजनं यस्याः सा अनौपनिधिका । पूर्वानुपूर्वादिक्रमेण व्यवस्थापनं न क्रियते सा त्र्यादि परमाणु-निष्पन्नस्कन्धविषया आनुपूर्वी अनौपनिधिकीत्युच्यते इति भावः ।

औपनिधिकी आनुपूर्वी के पहिले यहीं विवेचन कर रहे हैं ! उसका कारण यह है कि उस आनुपूर्वी के विषय में वक्तव्यता बहुत है। (तत्थणं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा) इन औपनिधिकी अनौपनिधिकी आनुपूर्वी में जो यह दूसरी अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है वह दो प्रकार की है। (तंजहा) जैसे (नेगमववहाराणं संगहस्सय) एक नैगम व्यवहार नय संमत और दूसरी संग्रह नय संमत । "अनौपनिधिकी" इसका अर्थ इस प्रकार से है कि वक्ष्यमाण पूर्वानुपूर्वी क्रम से जहां पदार्थों की स्थापना नहीं होती है-उसका नाम अनुपनिधि है यह अनुपनिधि जिस आनुपूर्वी का विषय है उसका नाम अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है। जिस आनुपूर्वी में पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से पदार्थों की स्थापना व्यवस्था न हो और जो त्र्यादिपरमाणु से निष्पन्न हुए स्कन्ध को विषय करती हो ऐसी आनुपूर्वी अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है ।

तेनुं निरूपणं करवा भागता नथी तेअ। अहीं तेनुं निरूपणं करवाना नथी पणु आ अन्थमां (सूत्रमां) न तेनुं निरूपणं आगण करवामां आवशे.

अनौपनिधिकी आनुपूर्वींनुं अहीं सूत्रकारे औपनिधिकी आनुपूर्वीं पडेलां ने विवेचनं कथुं छे तेनुं कारणं अे छे के अनौपनिधिकी आनुपूर्वीं विषेनी वक्तव्यता धणी न लांभी छे. (तत्थणं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा) आ अन्ने प्रकारनी आनुपूर्वींओमांनी ने अनौपनिधिकी आनुपूर्वीं छे ते अे प्रकारनी कडी छे. (तंजहा) ते अे प्रकारे नीचे प्रमाणे छे-(नेगमववहाराणं संगहस्सय) (१) नैगम अने व्यवहार नय संमत अने (२) संग्रहनय संमत "अनौपनिधिकी" आ पढेना अर्थ आ प्रमाणे थाय छे वक्ष्यमाण पूर्वानुपूर्वीना क्रमे जथां पदार्थोनी स्थापना थती नथी तेनुं नाम अनुपनिधि छे. आ अनुपनिधि ने आनुपूर्वींने विषय छे ते आनुपूर्वींनुं नाम अनौपनिधिकी आनुपूर्वीं छे. आनुपूर्वींमां पूर्वानुपूर्वीं आदिना क्रमपूर्वक पदार्थोनी स्थापना व्यवस्था न होय अने ने त्रणु आदि परमाणुथी निष्पन्न थयेला (उत्पन्न थयेला) स्कन्धने विषय करती होय (स्कन्धनुं प्रतिपादन करती होय) अेवी आनुपूर्वींनुं नाम अनौपनिधिकी आनुपूर्वीं छे.

नच स्कन्धविषयेऽनौपनिधिकीत्वं नोपपद्यते, यतः कश्चित् स्कन्धस्त्रिप्रदेशिकः, कश्चित् द्विप्रदेशिकः कश्चित् प्रश्चप्रदेशिकः, इत्युत्तरोत्तरं सर्वे स्कन्धाः क्रमपूर्वकमेव भवन्ति ततश्च पूर्वानुपूर्व्या व्यवस्थापनस्य सद्भावादनौपनिधिकीत्वमेव तत्रास्ति, नत्वनौपनिधिकीत्वं तत्र संभवतीति चेत्.

अत्रोच्यते—तत्र कस्यचित् स्कन्धस्य पूर्वानुपूर्व्यादि क्रमेण व्यवस्थापनं नान्येन केनचित् क्रियते, सर्वेषां स्कन्धानां विस्रसापरिणामपरिणतत्वात् अतः स्कन्धविषयेऽनौपनिधिकीत्वमुपपद्यते। यत्र तु तीर्थकरादिना पूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण वस्तुनां

शंका—स्कंध में अनौपनिधि की पना नहीं बनता है। क्योंकि कोई स्कंध तीन प्रदेश वाला होता है, कोई चार प्रदेश वाला होता है, कोई पांच प्रदेश वाला होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर समस्त स्कंध क्रम पूर्वक ही होते हैं इस प्रकार इनमें पूर्वानुपूर्वी के क्रम से स्थापना की व्यवस्था का सद्भाव आने से औपनिधि की पना ही आता है, अनौपनिधिकीपना नहीं।

उत्तर—स्कंधों में जो त्रिप्रदेशिकता आदि है वह किसी के द्वारा वहां की हुई नहीं है—अर्थात् ऐसा नहीं है कि त्रिप्रदेशी स्कंध है उसे किसी ने तीन परमाणु पूर्वानुपूर्वी क्रम से रखकर बनाया हो। उसमें त्रिप्रदेशिकता तो स्वभाव से ही है। क्योंकि जितने भी स्कंध हैं वे सब स्वाभाविक परिणाम से परिणत होते रहते हैं। इसलिये स्कंध में अनौपनिधिकीपना ही आता है। जहां पर तीर्थकर आदिकों द्वारा पूर्वा-

शंका—स्कंधमां अनौपनिधिकीपणुं संलपी शक्तुं नथी, कारणु के केध स्कंध त्रणु प्रदेशवाणेो डोय छे, केध चार प्रदेशवाणेो डोय छे, केध पांच प्रदेशवाणेो डोय छे. आ प्रकारे उत्तरोत्तर समस्त स्कंध क्रमपूर्वक न डोय छे. तेथी तेमां पूर्वानुपूर्वीना क्रमपूर्वक स्थापनानी व्यवस्थानो सद्भाव डोवाथी औपनिधिकी पणुं डोय शक्तुं नथी.

उत्तर—स्कंधमां न त्रिप्रदेशिकता आदि छे ते केधना द्वारा त्यां करायेत नथी अटले के अेवी केध वात नथी के त्रिप्रदेशी ने स्कंध छे तेने केधअे त्रणु परमाणु पूर्वानुपूर्वी क्रमपूर्वक राणीने बनाये छे. तेमां तो स्वभावथी न त्रिप्रदेशिकता डोय छे, कारणु के नेटलां स्कंध छे ते णधां स्वाभाविक परिणाम द्वारा न परिणत थता रहे छे. तेथी स्कंधमां अनौपनिधिपणुं न घटापी शकय छे न्यां तीर्थकर आदिको द्वारा पूर्वानुपूर्वी आदिना क्रमथी वस्तु-

व्यवस्थापनं भवति, तत्रौपनिधिकी आनुपूर्वी, यथा-धर्माधर्मादिषुद्रव्येषु, सामायिकादि षडध्ययनेषु च ।

नन्वेवं पूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण व्यवस्थापनं यत्र नास्ति तत्रानौपधिकीति स्वीकारे आनुपूर्वीत्वमेव नोपपद्यते, पूर्वानुपूर्व्यादिक्रमस्यैवानुपूर्वीरूपत्वात्, पूर्वानुपूर्व्यादि क्रमेण व्यवस्थापनस्याऽभावे आनुपूर्व्या एव नास्ति संभवः? इति चेत्.

अत्रोच्यते-यद्यपि स्कन्धगतत्रयादि परमाणूनां स्कन्धरूपेण विशिष्टौकपरिणामपरिणतत्वात्, तथापि-योग्यतामाश्रित्यानुपूर्वीत्वं संभवति । तथाहि-त्रयादिपरमाणूनामादिमध्यावसानभावेन नियतक्रमेण व्यवस्थापनयोग्यताऽस्तीत्यतस्तां योग्यतामाश्रित्यात्राप्यानुपूर्वीत्वं न विरम्यते ।

नुपूर्वी आदि के क्रम से वस्तुओं की व्यवस्था होती है वहां पर औपनिधिकी आनुपूर्वी होती है । जैसे धर्म अधर्म आदि ६ द्रव्यों में और सामायिक आदि ६ अध्ययनों में है ।—

शंका-यदि ऐसा ही स्वीकार किया जावे कि जहां पर पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से व्यवस्थापन नहीं है वहां अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है सो इस कथन में-ऐसी मान्यता में-आनुपूर्वीपना ही नहीं आता है । क्यों कि पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रममेंही आनुपूर्वी रूपता है । जहां पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से व्यवस्थापन का अभाव है वहां आनुपूर्वी का ही संभव नहीं होता है ।

उत्तर-यद्यपि स्कन्धगत तीन आदि परमाणुओं का नियतक्रम नहीं है क्यों कि वे परमाणुओं स्कन्धरूपसे विशिष्टैक परिणाम में परिणत रहा करते हैं । तो भी योग्यता को आश्रित करके उनमें आनुपूर्वीपना

श्रीमन्नी व्यवस्था थाय छे, त्यां औपनिधिकी आनुपूर्वी थाय छे. जेभ के धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि ६ द्रव्येभामं अने सामायिक आदि ६ अध्ययनेभामं शंका-जे अेषुं ज मानी देवामं आवे के जयां पूर्वानुपूर्वी आदिना कभथी व्यवस्थापन नथी पणु अनौपनिधिकी आनुपूर्वीना कभथी व्यवस्थापन छे, तो अ प्रकारनी मान्यताभामं तो आनुपूर्वीता ज संलवी शकती नथी, कारणु के पूर्वानुपूर्वी आदिना कभभामं ज आनुपूर्वीरूपता छे. जयां पूर्वानुपूर्वी आदिना कभपूर्वक व्यवस्थापनना अभाव छे, त्यां आनुपूर्वीना संलव ज होतो नथी.

उत्तर-जे के स्कन्धगत त्रयु आदि परमाणुश्रीमन्नी नियतक्रम होतो नथी, कारणु के ते परमाणुश्रीमन्नी स्कन्धरूपे अेक विशिष्ट परिणामभामं परिणत थया करे छे. छतां पणु योग्यताने आश्रित करीने आनुपूर्वीता आ प्रकारे

સમ્પ્રતિ અસ્યા દ્વિવિધ્યમાહ-તદ્વથા-નૈગમવ્યવહારયોઃ, સંગ્રહસ્ય ચ । નૈગમ-વ્યવહારસંમતા સંગ્રહસંમતા ચેતિ દ્વિવિધાઽનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીત્યર્થઃ । इदमत्र बोध्यम्-औघनो हि नैगमसंग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूताः सप्त नया भवन्ति एतेषां हि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकदृक्षणे नयद्वयेऽन्तर्भावो भवति । 'द्रव्यमेव परमार्थतोऽस्ति न पर्यायाः' इत्यभ्युपगमपरो नयो द्रव्यार्थिक-नयः, 'पर्याया एव वस्तुतः सन्ति न द्रव्य'-मित्यभ्युपगमपरो नयः पर्याया-र्थिकनयः । तत्र नयेषु-नैगमसंग्रहव्यवहारा द्रव्यार्थिकनयाः, ऋजुसूत्रशब्दसमभि-

माना गया है । और वहां इस प्रकार से-कि-तीन आदि परमाणुओं में आदि मध्य और अवसानभावरूप जो नियतक्रम है उस क्रम से व्यवस्थापनकी योग्यता है । इसलिये उस योग्यता को आश्रित करके उन तीन आदि परमाणुओं में भी आनुपूर्वीपन विरुद्ध नहीं होता ।

अनौपनिधिकी आनुपूर्वी में जो द्विविधता कही गई है उसका अभिप्राय यह है कि सामान्य से नय सात हैं, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र शब्द, समभिरूढ और एवंभूत । इन सातों का द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दो नयो में अन्तर्भाव हो जाता है । द्रव्य ही परमार्थतः-वास्तविक रूप से-हैं पर्यायें नहीं-इस प्रकार द्रव्य को ही स्वीकार करने वाला नय द्रव्यार्थिक नय है । और पर्यायें ही वास्तविक सत् हैं द्रव्य नहीं इस प्रकार पर्यायों को ही वास्तविक रूप में मानने वाला नय पर्यायार्थिक नय है । नैगम, संग्रह, और व्यवहार ये तीन द्रव्य को ही

मानવામાં આવી છે-ત્રણ આદિ પરમાણુઓમાં આદિ, મધ્ય અને અવસાન (અન્ત) ભાવરૂપ જે નિયતક્રમ છે તે ક્રમની અપેક્ષાએ વ્યવસ્થાપનની યોગ્યતા છે. તેથી તે યોગ્યતાની અપેક્ષાએ તે ત્રણ આદિ પરમાણુઓમાં આનુપૂર્વી-તાનો સદ્ભાવ માનવામાં કેઈ વાંધો રહેતો નથી.

અનૌપનિધિકી આનુપૂર્વીમાં જે દ્વિવિધતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે-સામાન્ય રીતે તો આ સાત નય છે-નૈગમ, સંગ્રહ, વ્યવહાર, ઋજુસૂત્ર, શબ્દ, સમભિરૂઢ અને એવંભૂત તે સાતે નયને મુખ્ય જે પ્રકારમાં વહેંચી શકાય છે-(૧) દ્રવ્યાર્થિક અને (૨) પર્યાયાર્થિક દ્રવ્ય જે પરમાર્થતઃ (વાસ્તવિક રૂપે) છે-પર્યાયો નથી, આ રીતે-દ્રવ્યને જે સ્વીકાર કરનારા નયોને દ્રવ્યાર્થિક નય કહે છે.

પર્યાયો જે વાસ્તવિક સત્ છે-દ્રવ્ય વાસ્તવિક સત્ (વિદ્યમાન વસ્તુ) નથી, આ રીતે પર્યાયોને જે વાસ્તવિક રૂપે સ્વીકારનારા નયોને પર્યાયાર્થિક નય કહેવામાં આવે છે. નૈગમ નય, સંગ્રહ નય અને વ્યવહાર નય, આ ત્રણે

रूढैवंभूताश्चत्वारः पर्यायार्थिकनयाः । तत्र द्रव्यार्थिको हि सामान्यतो द्विविधो भवति—विशुद्धोऽविशुद्धश्च । तत्र नैगमव्यवहाररूपः—अविशुद्धः । संग्रहरूपस्तु विशुद्धः । नैगमव्यवहारौ हि अनन्तपरमाण्वनन्तद्रव्यणुकाद्यनेक व्यक्त्यात्मकं कृष्णाद्यनेकगुणाधारं त्रिकालविषयं वा अविशुद्धं द्रव्यं विषयीकुरुतः, इति हेतोरनयोरविशुद्धत्वम् । संग्रहश्च परमाण्वादिकं परमाण्वादि साम्यादेकं तिरोभूतगुणकलापमविद्यमानपूर्वापरविभागं नित्यं सामान्यमेव द्रव्यं विषयीकुरुते । सामान्यं च—अनेकत्वादि दोषवर्जितत्वात् शुद्धम् । ततश्च सामान्यरूपशुद्धद्रव्याभ्युपगमपरत्वादयं संग्रहनयः शुद्धः ।

विषय करने वाले होने से द्रव्यार्थिक नय हैं । ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये चार नय पर्यायों को ही विषय करने वाले होने से पर्यायार्थिक नय हैं । सामान्य से द्रव्यार्थिक नय दो प्रकार का होता है एक विशुद्ध और दूसरा अविशुद्ध । नैगम और व्यवहार ये दो नय अविशुद्ध हैं । संग्रह नय विशुद्ध है । नैगम और व्यवहार ये दो नय अनन्त परमाणु, अनन्त द्रव्यणुक आदि अनेक व्यक्तिस्वरूप, और कृष्ण आदि अनेक गुणों के आधारभूत अथवा त्रिकालवर्ती ऐसे अविरुद्ध द्रव्य को विषय करते हैं । इसलिये ये अविशुद्ध हैं । तथा संग्रह नय जातिकी अपेक्षा से परमाणु आदि एक सामान्य रूप द्रव्य को ही विषय करता है उसकी दृष्टि में अनेक भिन्न २ परमाणु भी परमाणु आदि रूप से समानता वाले होने के कारण एक हैं । गुण समूह पर उसकी

नयो द्रव्यनुं न प्रतिपादन करनारा होवाथी द्रव्यार्थिक नयमां तेभने सभावी लेवाभां आव्या छे ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिर्ऋ नय अने एवंभूत नय, आ आरे नयो पर्यायानुं न प्रतिपादन करनारा होवाथी तेभने पर्यायार्थिक नयमां सभावी शक्य छे. सामान्य इये द्रव्यार्थिक नय ये प्रकारेने। छे—(१) विशुद्ध अने (२) अविशुद्ध नैगम अने व्यवहार, आ अन्ने नय अविशुद्ध छे अने संग्रहनय विशुद्ध छे. नैगम अने व्यवहार नय अनंत परमाणु, अनंतद्रव्यणुक आदि अनेक व्यक्तिस्वरूप (वस्तुस्वरूप) अने कृष्ण आदि अनेक गुणाना आधारभूत अथवा त्रिकालवर्ती अथवा अविशुद्ध द्रव्यने विषय करे छे (प्रतिपादन करे छे) तेथी ते अन्ने नयने अविशुद्ध कक्षा छे. संग्रहनयने विशुद्ध कडेवानुं कारण नीये प्रमाणे छे संग्रहनय जातिनी अपेक्षाये परमाणु आदि अनेक सामान्य रूप द्रव्यने न विषय करे छे ते नयनी सामान्यता अनुसार तो अनेक भिन्न भिन्न परमाणुमां पण परमाणु आदि रूप सामान्यतावाणा होवाने लीये अने न छे. शुष्कसमूह तरङ्ग तेनी दृष्टि नती नथी,

अत्र च द्रव्यानुपूर्व्याः प्रक्रान्तत्वात् द्रव्यार्थिकमतेनैव तस्याः शुद्धाऽशुद्धस्वरूपं दर्शयिष्यते, न तु पर्यायार्थिकमतेन, पर्यायविचारस्याप्रक्रान्तत्वादिति ॥सू०७३॥

सम्पत्ति नैगमव्यवहारसम्मतामनौपनिधिकीं द्रव्यानुपूर्वीं दर्शयति-

मूलम्—से किं तं नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणु-
पुव्वी ? नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा
पणत्ता, तं जहा—अट्टपयपरूवणथा१, भंगसमुक्कित्तणया२, भंगो-
वदंसणया३, समोयारे४, अणुगमे५ ॥सू०७४॥

दृष्टि नहीं जाती है। क्योंकि गुण भी एक प्रकार की पर्याय है। और यह वस्तु की सहभावी पर्याय है द्रव्यगत पूर्वापरविभाग को भी यह नहीं मानता है। अतः इन स्वध्यातों को गौण करके वह नय सिर्फ एक नित्य सामान्य धर्मात्मक विशुद्ध द्रव्य को ही विषय करनेवाला होने से विशुद्ध माना गया है। क्योंकि इस नय का विषय अनेकत्वआदि नहीं है। सामान्य रूप द्रव्यत्व में अनेकत्वआदि तो उसकी दृष्टि में दूषण है। अतः अनेकत्वआदि दोषों से वर्जित सामान्यरूप शुद्ध द्रव्य को विषय करने के कारण यह नय विशुद्ध है। यहां पर द्रव्यानुपूर्वी का प्रकरण चल रहा है इसलिये द्रव्यार्थिकनय के मत से ही उस द्रव्यानुपूर्वी का शुद्ध अशुद्ध स्वरूप सूत्रकार दिखलावेगे पर्यायार्थिकनय के मत से नहीं ॥सू०७३॥

कारण के गुण पण एक प्रकारनी पर्याय न छे. द्रव्यगत पूर्वापर विभागने पण ते मानतो नथी तेथी आ णभी आणतोने गौणरूप गणीने ते नय मात्र नित्य सामान्य धर्मात्मक विशुद्ध द्रव्यनुं न प्रतिपादन करनासे होवाथी तेने विशुद्धनय मानवामां आये छे, कारण के आ नयने विषय अनेकत्व आदि नथी सामान्यरूप द्रव्यत्वमां अनेकत्व आदि तो ते नयनी मान्यता प्रमाणे इषणरूप छे. तेथी अनेकत्व आदि दोषोथी विहीन सामान्यरूप शुद्ध द्रव्यनुं प्रतिपादन करनासे होवाने कारणे सशुद्धनयने विशुद्ध नय कडेवामां आये छे अही द्रव्यानुपूर्वीने अधिकार आली रही छे, तेथी सूत्रकार अही द्रव्यार्थिक नयनी मान्यता अनुसार न द्रव्यानुपूर्वीना शुद्ध अशुद्ध स्वरूपनुं निरूपण करे—पर्यायार्थिक नयना मत अनुसार अही तेनुं निरूपण करे नही ॥सू०७३॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी? नैगम-
व्यवहारयोः अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-अर्थपदप्ररूप-
णता१, भङ्गसमुत्कीर्तनता२, भङ्गोपदर्शनता३, समवतारः४, अनुगमः५ ॥मू०७४॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा नैगमव्यवहारसम्भता अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी? इति शिष्य
प्रश्नः। उत्तरमाह—‘नैगमव्यवहाराणं’ इत्यादि। नैगमव्यवहारयोरनौपनिधिकी
द्रव्यानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता। तद् यथा—अर्थपदप्ररूपणता—अर्थः=त्र्यणुकस्कन्धा-
दिरूपस्तद्युक्तं तद्विषयं वा पदम्=आनुपूर्व्यादिकम्—अर्थपदम्, तस्य प्ररूपणं=कथनं

अथ सूत्र का नैगम-व्यवहार नय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानु-
पूर्वी को प्रकट करते हैं—‘से किं तं इत्यादि’।

शब्दार्थ—(से किं तं नैगमव्यवहाराणं अणोवणिहिया द्रव्याणुपूर्वी?)
हे भदन्त! नैगम और व्यवहार इन दो नयों को संमत जो अनौपनि-
धिकी द्रव्यानुपूर्वी है उसका क्या स्वरूप है?

उत्तरः—(नैगमव्यवहाराणं अणोवणिहिया द्रव्याणुपूर्वी पञ्चविहा
पण्णत्ता) नैगम व्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पांच
प्रकारकी कही हुई है। (तंजहा) वे प्रकार ये हैं—(अट्टपयपरूवणया, भंग-
समुत्कीर्तनया, भंगोवदंसणया, समोयारे अणुगमे) अर्थपदप्ररूपणता१,
भंगसमुत्कीर्तनता२, भंगोपदर्शनता३, समवतार४, और अनुगम५।
अर्थपदप्ररूपणता—त्र्यणुकस्कंध आदिरूप अर्थ से युक्त अथवा—त्र्यणुकस्कंध
तीन परमाणुवाला स्कंध आदिरूप अर्थ को विषय करनेवाला जो पद है

इसे सूत्रकार नैगम अने व्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानु-
पूर्वीतुं स्वइय प्रकट करे छे—“से किं तं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं नैगमव्यवहाराणं अणोवणिहिया द्रव्याणुपूर्वी?)
शिष्य गुरुने ज्येवा प्रश्न पूछे छे के डे लगवान्! नैगम अने व्यवहार, आ
ये नयेने संमत जे अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी छे तेतुं स्वइय डेवुं छे ?

उत्तर—(नैगमव्यवहाराणं अणोवणिहिया द्रव्याणुपूर्वी पञ्चविहा पण्णत्ता)
नैगम अने व्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पांच प्रकारनी
कही छे. (तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(अट्टपयपरूवणया, भंग समुत्कि-
त्तणया, भंगोवदंसणया, समोयारे अणुगमे) (१) अर्थपद प्ररूपणता, (२) भंग-
समुत्कीर्तनता, (३) भंगोपदर्शनता, (४) समवतार अने (५) अनुगम
अर्थपदप्ररूपणता—त्र्यणुक (त्रणु परमाणुवाणे) स्कंध आदि इय अर्थथी युक्त
अथवा त्र्यणुकस्कंध आदिइय अर्थने विषय करवावाणुं जे पद छे तेतुं नाम

तदेव, अर्थपदप्ररूपणता । आनुपूर्व्यादिका संज्ञा, तद्वाच्यस्वयणुकादिरर्थः संज्ञी । संज्ञासंज्ञिसम्बन्धकथनमात्रं प्रथमं कर्तव्यमिति भावः । इति प्रथमो भेदः १ । अत्र स्वार्थे तल्ल् प्रत्ययो बोध्यः । तथा-भङ्गसमुत्कीर्तनता-भङ्ग्यन्ते=विकल्प्यन्ते इति भङ्गा=तेषामेव आनुपूर्व्यादिपदानां समुदितानां वक्ष्यमाणन्यायेन संभविनो विकल्पाः, तेषां समुत्कीर्तनं=समुच्चारणं, तदेव, भङ्गसमुत्कीर्तनता, आनुपूर्व्यादिपदनिष्पन्नानां प्रत्येकभङ्गानां द्रव्यादिसंयोगभङ्गानां च समुच्चारणमित्यर्थः । इति द्वितीयो भेदः २ । तथा-भङ्गोपदर्शनता-तेषामेव सूत्रमात्रतयाऽनन्तरसमुत्कीर्तितानां भङ्गानां प्रत्येकं स्वाभिधेयेन त्र्यणुकाद्यर्थेन सह उपदर्शनम्-भङ्गोपदर्शनं, तदेव भङ्गोपदर्शनता । इति तृतीयोभेदः ३ ।

उसका नाम अर्थपद है । इस अर्थपद की प्ररूपणता करना यही अर्थपद प्ररूपणता है । आनुपूर्वी आदि यह संज्ञा है-नाम है । इन नाम का वाच्यार्थ जो त्र्यणुक आदि है वह संज्ञी है । संज्ञा संज्ञी के संबन्धका कथन मात्र सब से प्रथम करना यही अर्थपद प्ररूपणता है । तथा-भंग समुत्कीर्तनता-जो भेदरूप हो उसका नाम भंग है । समुदित उन्हीं आनुपूर्वी आदि पदों के संभवित विकल्पों-भेदों-का अच्छी प्रकार से उच्चारण करना अर्थात् आनुपूर्वी आदि के पदों से निष्पन्न हुए प्रत्येक भंगों का और संयोगज दो आदि भंगों का बोलना यही भंग समुत्कीर्तनता है । भंगोपदर्शनता-सूत्र मात्र होने के कारण अनन्तररूप से उच्चरित हुए उन्हीं-भंगों में से प्रत्येक भंग का अपने अभिधेयरूप कथन त्र्यणुकादि अर्थ के साथ जो उपदर्शन-बोलना है-वही भंगोपदर्शनता है ।

अर्थपद छे. आ अर्थपदनी प्ररूपणता करवी तेनुं नाम ज 'अर्थपद प्ररूपणता' छे. आनुपूर्वी आदि आ संज्ञा (नाम) छे. आ नामेनो जे त्रिअणुक आदि वाच्यार्थ छे संज्ञी छे. संज्ञा संज्ञीना संबन्धनुं कथन ज सौथी पडेलां करवुं जे अर्थपदप्ररूपणता छे.

भंगसमुत्कीर्तनता-जे भेद इप होय तेनुं नाम भंग छे. समुदित जे आनुपूर्वी आदि पदेना संभवित भेदोनुं (विकल्पोनुं) सारी रीते उच्चारण करवुं जेटले के आनुपूर्वी आदिना पदे वडे निष्पन्न (उत्पन्न) थयेला प्रत्येक भंगोनुं अने संयोगजनित जे आदि भंगोनुं कथ करवुं तेनुं नाम ज भंगसमुत्कीर्तनता छे.

भंगोपदर्शनता-सूत्रमात्र होवाने कारणे अनन्तररूपे उच्चरित थयेला जे भंगोमांथी प्रत्येक भंगनुं चेताना अभिधेय इप त्रिअणुक आदि अर्थनी साथे जे उपदर्शन (उच्चारण) करवुं तेनुं नाम ज भंगोपदर्शनता छे.

ननु भङ्गसमुत्कीर्तनभङ्गोपदर्शनयोः को भेदः ? इति चेत् उच्यते—भङ्गसमुत्कीर्तने भङ्गविषयकं सूत्रमेवोच्चारणीयम् । भङ्गोपदर्शने तु तदेव स्वविषयभूतेनार्थेन सहोच्चारयितव्यमिति । तथा-समवतारः=तेषामेवानुपूर्व्यादि द्रव्याणां स्वस्थानपरस्थानान्तर्भावचिन्तनप्रकारः । इति चतुर्थो भेदः ४ । तथा-अनुगमः—अनुगमनम् , अनुगमः=तेषामेवानुपूर्व्यादिद्रव्याणां सत्पदप्ररूपणादिभिरनुयोगद्वारैर्विचारणम् । इति पञ्चमो भेदः ५ । एभिः पञ्चभिः प्रकारैर्नैगमव्यवहारनयमतेन अनौपनिधिक्याः द्रव्यानुपूर्व्याः स्वरूपं निरूप्यत इति भावः ॥सू० ७४॥

तत्र प्रथमं भेदमाह—

मूलम्—से किं तं नेगमववहाराणं अट्टपयपरूवणया ? नेगमववहाराणं अट्टपयपरूवणया—तिपएसिए आणुपुठ्वी, चउप्पएसिए आणुपुठ्वी जाव दसपएसिए आणुपुठ्वी, संखेज्जपएसिए

शंकाः—भंगसमुत्कीर्तन और भंगोपदर्शन इन दोनों में क्या भेद है ? भंगसमुत्कीर्तन में भंग विषयक सूत्र का ही केवल उच्चारण करना होता है और भंगोपदर्शन में वही सूत्र अपने विषयभूत अर्थ के साथ बोला जाता है । उन्हीं आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का स्वस्थान और परस्थान में अन्तर्भाव होने के विचारों का जो प्रकार है उसका नाम समवतार है । उन्हीं आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का जो सत्पदकी प्ररूपणा आदि वाले अनुयोगद्वारों से विचार करना होता है वह अनुगम है । इन पांच प्रकारों से नैगमव्यवहार नय के मत से मान्य अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीका स्वरूप निरूपित होता है ॥सू०७४॥

शंका—लंग समुत्कीर्तन अने लंगोपदर्शन वच्ये शे। लेह छे ?

उत्तर—लंग समुत्कीर्तनमां लंगविषयक सूत्रनुं ज केवण उच्चारणु करवानुं होय छे. परन्तु लंगोपदर्शनमां अज सूत्र पोताना विषयभूत अर्थनी साथे उच्चारित थाय छे.

समवतार—अज आनुपूर्वी आदि द्रव्येनो स्वस्थान अने परस्थानमां अन्तर्भाव थवाना विचारोने जे प्रकार छे तेनुं नाम 'समवतार' छे.

अनुगम—अज आनुपूर्वी आदि द्रव्ये। जेने सत्पदनी प्ररूपणा आदि वाणा अनुयोग द्वारोथी विचार कराय छे तेनुं नाम अनुगम छे.

आ पांच प्रकारे नैगम अने व्यवहार नयना मतसंमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीनुं स्वरूप निरूपित थाय छे, ॥सू०७४॥

आणुपुर्वी, असंखिज्जपएसिए आणुपुर्वी, अणंतपएसिए आणु-
पुर्वी, परमाणुपोग्गले अणाणुपुर्वी, दुपएसिए अवत्तवए, तिप-
एसिया आणुपुर्वीओ जाव अणंतपएसियाओ आणुपुर्वीओ,
परमाणुपोग्गला अणाणुपुर्वीओ, दुपएसियाइं अवत्तवयाइं । से
तं णैगमववहारणं अट्टपयपरूवणया ॥सू० ७५॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः अष्टपदप्ररूपणता ? नैगमव्यवहारयोः
अष्टपदप्ररूपणता—त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी, चतुष्प्रदेशिक आनुपूर्वी, यावद् दशप्रदे-
शिक आनुपूर्वी, संख्येयप्रदेशिक आनुपूर्वी, असंख्येयप्रदेशिक आनुपूर्वी, अनन्त-
प्रदेशिक आनुपूर्वी, परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी, द्विप्रदेशिकः अवक्तव्यकः । त्रिप्रदे-
शिका आनुपूर्व्यो यावत् अनन्तप्रदेशिका आनुपूर्व्यः । परमाणुपुद्गलाः अनानुपूर्व्यः ।
द्विप्रदेशिकादीनि अवक्तव्यकानि । सैषा नैगमव्यवहारयो अर्थपदप्ररूपणा ॥सू० ७५॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—अथ का सा नैगमव्यवहारसम्प्रता अर्थपदप्ररूपण-
तारूपाऽऽनुपूर्वी ? इति । उत्तरमाह—नैगमव्यवहारसम्प्रताऽर्थपदप्ररूपणतारूपा-
ऽऽनुपूर्वी एवं विज्ञेया, तथाहि—त्रिप्रदेशिकः—त्रयःप्रदेशाः=परमाणुलक्षणा विभागा
यस्मिन् स त्रिप्रदेशिकः=प्रदेशत्रयात्मकः स्कन्धः आनुपूर्वी बोध्या । एवं चतुष्प्रदे-

अब सूत्रकार प्रथम भेदका वर्णन करते हैं—

‘से किं तं नैगमववहारणं इत्यादि’ ।

शब्दार्थः—(से किं तं नैगमववहारणं अट्टपयपरूवणया) हे भदन्त !
पूर्वकथित नैगम व्यवहारनयसंमत अर्थपद प्ररूपणतारूप आनुपूर्वी का
क्या स्वरूप है ?

उत्तरः—(नैगमववहारणं अट्टपयपरूवणया) नैगम व्यवहारनय
संमत अर्थपद प्ररूपणतारूप आनुपूर्वीका स्वरूप इस प्रकार से है (ति-
पएसिए आणुपुर्वी, चउप्पएसिए आणुपुर्वी, जाव दसपएसिए आणु-

इवे सूत्रकार प्रथम भेदनुं वर्णन करे छे—

“ से किं तं नैगमववहारणं ” इत्यादि—

शब्दार्थः—(से किं तं नैगमववहारणं अट्टपयपरूवणया ?) हे भगवन् !
पूर्वकथित नैगमव्यवहार नयसंमत अर्थपद प्ररूपणता इय आनुपूर्वीनुं
स्वरूप कैनुं छे ?

उत्तर—(तिपएसिए आणुपुर्वी, चउप्पएसिए आणुपुर्वी, जाव दसपएसिए

શિકઃસ્કન્ધો યાવત્ દશપ્રદેશિકઃ આનુપૂર્વી બોધ્યા યાવત્ સંખ્યાતપ્રદેશિક આનુપૂર્વી, અસંખ્યાતપ્રદેશિકઃ આનુપૂર્વી, અનન્તપ્રદેશિકઃ આનુપૂર્વી બોધ્યા ।

પરમાણુપુદ્ગલઃ=૧કઃ પરમાણુસ્તુ અનાનુપૂર્વી બોધ્યા । પરમાણ્વન્તરા-સંસ્પૃષ્ટત્વાત્, દ્વિપ્રદેશિકઃ=પરમાણુદ્વયવિભાગવાન્ સ્કન્ધસ્તુ આનુપૂર્વિતયા અનાનુપૂર્વિતયા વા વક્તુમશક્યઃ, અતઃ સોઽવક્તવ્યકઃ । યસ્માદેવં તસ્માત્-ત્રિપ્રદેશિકાઃ સર્વેઽપિ સ્કન્ધા આનુપૂર્વ્યો ભવન્તિ, યાવત્ અનન્તપ્રદેશિકાઃ સર્વેઽપિ સ્કન્ધા આનુપૂર્વ્યો ભવન્તિ ।

પુઁવી સંખેજ્જપૅસિૅ આણુપુઁવી, અસંખિજ્જપૅસિૅ આણુપુઁવી, અણંત-પૅસિૅ આણુપુઁવી) ત્રીન પ્રદેશોવાલા ત્ર્યણુક સ્કંધ આનુપૂર્વી હૈ ચાર પ્રદેશોવાલા ચતુષ્પ્રદેશિક સ્કંધ આનુપૂર્વી હૈ । યાવત્ દશ પ્રદેશોવાલા સ્કંધ આનુપૂર્વી હૈ યાવત્ સંખ્યાતપ્રદેશોવાલા સ્કંધ આનુપૂર્વી હૈ, અસંખ્ય પ્રદેશોવાલા સ્કંધ આનુપૂર્વી હૈ । ઁસા જાનના ચાહિયે ।

(પરમાણુપોગલે આણુપુઁવી, દુપૅસિૅ અવક્તવ્વૅ) પરન્તુ જો ૅક પરમાણુ હૈ વહ આનુપૂર્વી નહીં હૈ । ક્યોંકિ વહ ઁર કિસી દૂસરે પરમાણુ સે સંસ્પૃષ્ટ નહીં હૈ । દ્વિપ્રદેશવાલા જો સ્કંધ હૈ વહ આનુપૂર્વીરૂપ સે ઁર અનાનુપૂર્વીરૂપ સે વક્તું અશક્ય હૈ હસલિયે વહ અવક્તવ્ય હૈ । જવ ઁસી વાત હૈ તો (તિપૅસિયા આણુપુઁવીઁ જાવ અણંતપૅસિયાઁ આણુપુઁવીઁ) ત્રીન પ્રદેશવાલે સમસ્તસ્કંધ આનુપૂર્વી હૈ—યાવત્ અનન્ત પ્રદેશવાલે જિતને ઁી સ્કંધ હૈ વે સવ આનુપૂર્વિયાં હૈ । (પરમાણુ

આણુપુઁવી, સંખેજ્જપૅસિૅ આણુપુઁવી, અસંખિજ્જપૅસિૅ આણુપુઁવી, અણંત-પૅસિૅ આણુપુઁવી) ત્રણ પ્રદેશોવાળો ત્ર્યણુક સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, ચાર પ્રદેશોવાળો ચતુષ્પ્રદેશિક સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, દસ પર્યંતના પ્રદેશોવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, સંખ્યાત પ્રદેશોવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે અને અનંત પ્રદેશોવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, ઁમ સમજવું

(પરમાણુપોગલે આણુપુઁવી, દુપૅસિૅ અવક્તવ્વૅ) પરન્તુ જે કેવળ ઁક પરમાણુ છે તે આનુપૂર્વી રૂપ નથી, કારણ કે તે કોઈ બીજા પરમાણુ વડે સંસ્પૃષ્ટ હોતું નથી જે પ્રદેશવાળો જે સ્કંધ છે તે આનુપૂર્વી રૂપે અને અનાનુપૂર્વી રૂપે વ્યક્ત થવો અશક્ય છે તેથી તે અવક્તવ્ય છે જે ઁવી વાત છે તે । (તિપૅસિયા આણુપુઁવીઁ જાવ અણંતપૅસિયાઁ આણુપુઁવીઁ) ત્રણ પ્રદેશોવાળા સમસ્ત સ્કંધો આનુપૂર્વીઁ । રૂપ છે, અને અનંત પર્યંતના પ્રદેશોવાળા જેટલા સ્કંધો છે તેઁ પણ આનુપૂર્વીઁ । રૂપ છે.

પરમાણુપુદ્ગલારતુ અનાનુપૂર્વ્યો ભવન્તિ । દ્વિપ્રદેશિકાનિ=દ્વયણુકસ્કન્ધદ્રવ્યાણિ
આનુપૂર્વિતયાઽનાનુપૂર્વિતયા વા અવક્તવ્યકાનિ ભવન્તિ ।

અત્રેદં बोध्यम्—આનુપૂર્વી પરિપાટીત્યુચ્યતે । સા ચ યત્રૈવાદિ મધ્યાન્તલક્ષણઃ
સમ્પૂર્ણો ગણનાનુક્રમોઽસ્તિ તત્રૈવોપપદ્યતે, નાન્યત્ર । एवं च यत्र स्कन्ध आदिर्मध्यो-
ऽन्तश्च भवति स स्कन्ध आनुपूर्वीत्युच्यते । આદિશ્ચ યસ્માત્પરમસ્તિ પૂર્વં નાસ્તિ સ
બોધ્યઃ । મધ્યશ્ચ યસ્માત્ પૂર્વમસ્તિ પરમપ્યસ્તિ સ બોધ્યઃ । અન્તશ્ચ યસ્માત્પૂર્વ-
મસ્તિ પરં નાસ્તિ સ બોધ્યઃ । एतत्त्रितयं तु त्रिप्रदेशिकाद्यनन्तप्रेदेशिकान्तेषु

પોગલા અણાણુપુઞ્વીઓ, દુપણ્ણિયાઈ(અવક્તવ્યયાઈ) જો ભિન્ન ૨ અસંબદ્ધ
અવસ્થાવાલે—પુદ્ગલ પરમાણુ હૈં વે આનુપૂર્વિયાં નહીં હૈં । (દુપણ્ણિયાઈ
અવક્તવ્યયાઈ) ઓર જો દો પ્રદેશવાલે પુદ્ગલ સ્કંધ હૈં વે આનુપૂર્વીરૂપ
સે ઓર અનાનુપૂર્વી રૂપ સે વક્તવ્ય નહીં હોને કે કારણ અવક્તવ્ય હૈં ।

यहां यह समझना चाहिये—कि आनुपूर्वी नाम परिपाटी का है।
यह परिपाटीरूप आनुपूर्वी वहीं पर होती है कि जहां पर आदि मध्य
और अन्त रूप गणना का संपूर्ण अनुक्रम होता है । अन्यत्र नहीं होती ।
इस प्रकार जहां स्कंध में आदि, मध्य और अंत होता है । वह स्कंध
आनुपूर्वी ऐसा कहलाता है । जिससे पर है और पूर्व नहीं है वह आदि
शब्द का वाच्यार्थ—पदका अर्थ है । जिससे पूर्व है और पर भी है वह मध्य
शब्द का वाच्यार्थ है । और जिससे पूर्व है परन्तु पर नहीं है—वह अन्त

(પરમાણુપોગલા અણાણુપુઞ્વીઓ, દુપણ્ણિયાઈ અવક્તવ્યયાઈ) જે ભિન્ન
ભિન્ન—અસંબદ્ધ અવસ્થાવાળા પુદ્ગલ પરમાણુઓ છે તેઓ આનુપૂર્વીઓ રૂપ
નથી, અને જે બે પ્રદેશોવાળા પુદ્ગલસ્કંધો છે તેમને આનુપૂર્વી રૂપે અને
અનાનુપૂર્વી રૂપે વ્યક્ત કરી શકાય એવાં ન હોવાથી અવક્તવ્ય છે.

અહીં આનુપૂર્વીનો અર્થ પરિપાટી સમજવો તે પરિપાટી રૂપ આનુ-
પૂર્વીનો ત્યાં જ સદ્ભાવ હોય છે કે જ્યાં આદિ, મધ્ય અને અન્ત રૂપ ગણ-
નાનો સંપૂર્ણ અનુક્રમ શક્ય હોય છે—જ્યાં આ અનુક્રમ સંભવિત હોતો
નથી ત્યાં આનુપૂર્વી પણ સંભવી શકતી નથી આ પ્રકારે જે સ્કંધમાં આદિ,
મધ્ય અને અન્ત હોય છે, તે સ્કંધને આનુપૂર્વીરૂપ કહી શકાય છે. જેની
પૂર્વે કંઈ ન હોય પણ પછી કંઈક હોય, એવો 'આદિ' પદનો વાચ્યાર્થ
છે. જેની પૂર્વે કંઈક હોય અને પછી પણ કંઈક હોય, એવો 'મધ્ય' પદનો
વાચ્યાર્થ છે. જેની પૂર્વે કંઈક હોય પણ પછી કંઈ પણ ન હોય, એવો

स्कन्धेष्वस्ति, अतस्तेषु प्रत्येकं स्कन्धः आनुपूर्वी भवति । परमाणुपुद्गले तु एतत्त्रितयं नास्ति, अतः सोऽनानुपूर्वी बोध्यः । द्विप्रदेशिकस्तु अवक्तव्यको भवति । यद्यपि तत्र परमाणुद्वयस्य सद्भावादन्योऽन्यापेक्षया पूर्वपश्चाद्भावोऽस्ति, अतस्तत्र पूर्वस्य अनु-अनुपूर्वं तस्य भाव आनुपूर्वी इत्येवंरूपाऽऽनुपूर्वी सुतरां सिध्यति, तथापि मध्याभावात् सम्पूर्णगणनानुक्रमो नास्ति, अतः स आनुपूर्वीत्वेन वक्तुमशक्यः ।

ननु माऽस्तु सम्पूर्णगणनानुक्रमस्तथापि पूर्वपश्चाद्भावरूपाया आनुपूर्व्या विद्यमानत्वादयमानुपूर्वी भवितुं मर्हति ? इति चेदुच्यते, यथा येरुपर्वतादौ क्वचित्

शब्द का वाच्यार्थ है । ये तीनों आदि मध्य और अन्त त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध से लेकर अनन्त प्रदेशतक के स्कंधों में होते हैं । इसलिये इनमें प्रत्येक स्कंध आनुपूर्वीरूप होता है । परन्तु जो एक परमाणु है उसमें ये तीनों नहीं होते हैं । इसलिये वह आनुपूर्वी नहीं होता है । द्विप्रदेशिक पुद्गलस्कंध अवक्तव्य होता है । यद्यपि द्विप्रदेशिक स्कंध में दो परमाणु संश्लिष्ट रहते हैं इसलिये वहां अन्योन्यापेक्षा से पूर्व पश्चाद्भाव है । अतः पूर्वस्य अनु-पूर्व के पीछे-अनुपूर्व है और इस अनुपूर्व का जो भाव है वह आनुपूर्वी है । इत्येवं रूपा आनुपूर्वी सुतरां वहां सिद्ध हो जाती है, तो भी मध्य का अभाव होने से सम्पूर्ण गणनानुक्रम वहां नहीं बनता है । इसलिये वह गणनानुक्रम आनुपूर्वी रूप से वक्तुं अशक्य है ।

‘अन्त’ रहने का वाच्यार्थ है, आ त्रयेने (आदि, मध्य अने अन्तने) सद्भाव त्रिप्रदेशिक आदि स्कंधों में लभने अन्त प्रदेशिक पर्यन्तना स्कंधों में डाय है, तथै ते प्रत्येक स्कंध आनुपूर्वी इयं डाय है, परन्तु जे अेक परमाणु है तेमां आदि, मध्य अने अन्त, आ त्रयेने अभाव डाय है, तथै अेक परमाणु आनुपूर्वी इयं डाय नथै द्विप्रदेशिक स्कंधने आनुपूर्वी इये अथवा ते अनानुपूर्वी इये व्यक्त करी शकते नथै तथै तेने अव-क्तव्य कथो है जे के द्विप्रदेशिक स्कंधमां जे परमाणु संश्लिष्ट रहे है, ते कारणे तेमां अन्योन्यापेक्षाये पूर्वपश्चाद्भावने (आदि अने अन्तने) सद्भाव डाय है, परन्तु त्यां मध्यने सद्भाव डायो नथै अनुपूर्वनी व्युत्पत्ति आ प्रमाणे थाय है-“ पूर्वस्य अनु अनुपूर्वः ” “ पूर्वनी पाछणतुं अेट्ठे अनुपूर्व ” आ अनुपूर्वने जे भाव है तेतुं नाम आनुपूर्वी है, आ प्रकारनी आनुपूर्वी तो अही (द्विप्रदेशी स्कंधमां) सरणताथै सिद्ध थंनय है, छांतां पण्ण मध्यने अभाव डायो त्यां संपूर्ण गणनानुक्रम संभवी शकते नथै तथै ते गणनानुक्रम आनुपूर्वी इये व्यक्त थवो अशक्य है.

कमपि पदार्थं मध्यत्वेनावधीकृत्य पूर्वादिविभागो लोकैः क्रियते, तथैवाऽत्रापि यदि स्यात्तर्हि स्यादेवम् । नचैवमस्ति । अत्र तु मध्ये कोऽपि नास्ति, यमवधीकृत्याऽसाङ्कर्येण पूर्वपश्चाद्भावः परस्परानपेक्षया संभवेत् । अर्थात्-यत्राद्यवरमपरमाण्वोर्मध्येऽन्यः परमाणुर्विद्यते, तत्र-मध्यगतं परमाणुमाश्रित्य यः पूर्वपश्चाद्भावो भवति स एवानुपूर्वी भवति, नान्यः अतोऽयमानुपूर्वीत्वेन वक्तुमशक्यः ।

शंकाः—संपूर्ण गणनाक्रम भले न हो-परन्तु पूर्व पश्चाद्भाव रूप आनुपूर्वी के विद्यमान होने से यह द्विप्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी हो सकता है ।

उत्तरः—जिस प्रकार मेरु पर्वत आदि में किसी स्थल पर किसी भी पदार्थ को मध्यरूप से मर्यादित करके लोग उससे पूर्व पश्चिमपर का विभाग करते हैं, उसी प्रकार यहां पर भी-द्विप्रदेशिक स्कंध में भी यदि ऐसा होता तो ऐसा हो सकता अर्थात् आनुपूर्वित्व आ सकता । परन्तु ऐसा तो है नहीं । क्यों कि यहां द्विप्रदेशिक स्कंध में मध्य में कोई भी नहीं है कि जिसे मर्यादित करके उस स्कंध में पूर्व पर भाव परस्पर की अनपेक्षा के समग्र भाव से बन जावे । तात्पर्य कहनेका यह है कि जहां पर आदि अंतके दो परमाणुओं के बीच में एक तीसरा परमाणु मौजूद रहता है वहां पर मध्य गत परमाणु को अवधिभूत मान कर जो पूर्व पश्चाद्भाव होता है वही आनुपूर्वी होना है । अन्य दूसरा नहीं । इसलिये द्विप्रदेशी स्कंध आनुपूर्वीरूप से वक्तुं अशक्य है ।

शंका—संपूर्ण गणनानुक्रम भले न होय पणु आदि अने अन्तर्भूत-पूर्वपश्चाद्भाव रूप आनुपूर्वी विद्यमान होवाथी आ द्विप्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी रूप संभवी शक्ये छे तो तेने आनुपूर्वी रूप कहेवासां शो वांधो नडे छे ।

उत्तर—जे रीते मेरु पर्वत आदि स्थलनी मध्यमां आवेला कंध पदार्थने मध्यभाग रूपे मर्यादित करीने लोके तेना पूर्व पश्चिम रूप विभाग पाडे छे अने मध्यस्थ स्थलनी पूर्वे आवेला भागोने पूर्वा भागो रूपे अने पश्चिमे आवेला स्थलने पश्चिमना भागो रूपे ओणजे छे, ओण प्रभणु द्विप्रदेशी स्कंधमां पणु मध्यभागनो सदृभाव होततो ओणुं थं शक्य अन्त-तेना पूर्व-पश्चिमरूप विभाग पडी शक्य-अने तो तेमां आनुपूर्वीत्व संभवी शक्य, परन्तु ओणुं तो तेमां शक्य नथी, कारणुं के द्विप्रदेशिक स्कंधमां मध्यमां ओणुं कंध पणु नथी के जेने मर्यादित करीने ते स्कंधमां पूर्व पर भाव परस्परनी अनपेक्षा पूर्वक समग्ररूपे शक्य अने आ कथननो भावार्थ ओ छे जयां आदि अने अन्तना जे परमाणुओनी वन्धे ओक त्रीणुं परमाणु मौजूद होय छे, त्यां मध्यना परमाणुने अवधिभूत (मर्यादा रूप) मानीने पूर्वपश्चाद्भाव शक्य अने छे अने त्यां जे आनुपूर्वी संभवी शक्ये छे-ते सिवाय आनुपूर्वीत्व शक्य अन्तुं नथी. ते कारणुं द्विप्रदेशी स्कंधने आनुपूर्वीरूपे व्यक्त करी शक्यो नथी.

ननु तर्हि परमाणुपुद्गलवत् अनानुपूर्वीत्वेन कथं नोच्यते ? इति चेदाह-
परस्परापेक्षया पूर्वपश्चाद्भावमात्रस्य सद्भावादयमनानुपूर्वीत्वेनापि वक्तुं न शक्यते ।
इत्यमानुपूर्वीत्वेन अनानुपूर्वीत्वेन च वक्तुमशक्यत्वादवक्तव्यक एव द्वयणुकस्कन्धः ।
अनेन चेद्रमायांतं-यत् त्रिप्रदेशिकादौ आदिमध्यान्तभावस्य विद्यमानतयाऽसा-
ङ्ग्येण पूर्वपश्चाद्भावस्य सत्त्वात् त्रिप्रदेशिकादिः स्कन्ध एवानुपूर्वी, परमाणुपुद्गल-
स्त्वनानुपूर्वी, द्वयणुकस्त्ववक्तव्यक इति । एवं चात्र संज्ञासंज्ञिसम्बन्धकथनरूपाऽ-
र्थपदप्ररूपणा कृता भवति ।

शंका-जब यह द्विप्रदेशिकस्कंध आनुपूर्वीरूप से नहीं कहा जा सकता है तो फिर इसे पुद्गलपरमाणु की तरह अनानुपूर्वीरूप से क्यों नहीं कह देते हैं ?

उत्तर-परस्पर की अपेक्षा से इसमें पूर्वपश्चाद्भाव मात्र का जब सद्भाव है तो फिर इसे अनानुपूर्वीरूप से भी कैसे कहा जा सकता है ? इस प्रकार आनुपूर्वी और अनानुपूर्वीरूप से यह द्विप्रदेशिकस्कंध वक्तुं अशक्य होने से अवक्तव्य कोटि में मानलिया गया है । इस कथन से यह बात आई कि त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध में आदि, मध्य और अन्त-भाव की विद्यमानता होने से समग्र रूपमें पूर्वपश्चाद्भाव मौजूद है । यह त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध ही आनुपूर्वी है । और परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वी है तथा द्वयणुकस्कंध अवक्तव्य है । इस प्रकार यहाँ पर संज्ञासंज्ञि सम्बन्धरूप अर्थ पद की प्ररूपणा हो जाती है ।

शंका-जे द्विप्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी इय कही शकता नथी, तो तेने पुद्गल परमाणुनी जेम अनानुपूर्वी इय कडेवाभां शे वांधो छे ?

उत्तर-परस्परनी अपेक्षाजे तेभां पूर्वपश्चाद्भाव मात्रनो जे जे। सद्भाव छे तो तेने अनानुपूर्वी इय पणु डेवी रीते कही शकय ? आ रीते आ द्विप्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी इय पणु कही शकय तेम नथी अने अनानुपूर्वी इय पणु कही शकय तेम नथी, ते कारणे तेने अवक्तव्य कोटिमां गणुववाभां आण्यो छे. आ कथन द्वारा जेज वात सिद्ध थाय छे के त्रिप्रदेशिक आदि, स्कंधमां आदि मध्य अने अन्त भावनी विद्यमानता होवाथी तेमां समग्रइये पूर्वपश्चाद्भाव मौजूद छे. तेथी आ त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध आनुपूर्वी इय छे, अने परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वी इय छे तथा द्विप्रदेशी स्कंध अवक्तव्य कोटिनो छे. आ प्रकारे अही संज्ञा संज्ञी सम्बन्ध इय अर्थपदनी प्ररूपणा थछ जय छे.

ननु 'त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी' इत्याद्येकवचनप्रदर्शनेनैव संज्ञासङ्घिसम्बन्ध-
कथनं सिद्धम्, कथं पुनस्त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः इत्यादि बहुवचनान्तनिर्देशः
कृतः? इति चेदुच्यते—आनुपूर्व्यादि द्रव्याणां प्रतिभेदमन्तव्यक्तिख्यापनार्थं
नैगमव्यवहारयोरित्थंभूताऽभ्युपगमप्रदर्शनार्थं च बहुवचनान्तत्वेन निर्देशः कृत इति
नास्ति कश्चिद् दोषः ।

शंका—“त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी” इत्यादि एकवचन के कथन से
ही संज्ञा संज्ञी सम्बन्धका कथन जब सिद्ध हो जाता है तब फिर क्यों
सूत्रकार ने “त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः” तीन इत्यादि बहुवचनान्त
पद का निर्देश किया ?

उत्तर—आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का हर एक भेद अनन्त व्यक्तिरूप है
इस बात को ख्यापन करने के लिये और नैगम एवं व्यवहार नय का
ऐसा सिद्धान्त है इस बात को प्रदर्शित करने के लिये बहुवचनका
प्रयोग किया है । तात्पर्य कहने का यह है कि “त्रिप्रदेशां आनुपूर्व्यः”
ऐसा जो सूत्रकारने कथन किया है उससे वे यह कहना चाहते हैं कि
त्रिप्रदेशिक एक द्रव्यरूप एक ही आनुपूर्वी नहीं है किन्तु त्रिप्रदेशिक
द्रव्य अनन्त हैं—अतः अनन्त आनुपूर्वियां हैं । इसलिये त्रिप्रदेशिकरूप
भिन्न २ अनन्त आनुपूर्वियों की सत्ता सूचित करनेके लिये “त्रिप्रदे-
शिका आनुपूर्व्यः” ऐसा बहुवचनान्त पद का प्रयोग किया गया है ।

शंका—‘त्रिप्रदेशिक इत्यादि एक वचनना कथन द्वारा न संज्ञा संज्ञी
संबंधनु कथन नो सिद्ध थो नय छे तो सूत्रकारे “त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः”
‘त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वीओ’ इत्यादि बहुवचनान्त पदना निर्देश सा
कारणे क्यो छे ?

उत्तर—‘आनुपूर्वी आदि द्रव्येना प्रत्येक भेद अनन्त व्यक्तिरूप
(पक्षार्थरूप) छे,’ ओ वातनुं प्रतिपादन करवाने भाटे अने नैगम तथा
व्यवहार नयना ओवो सिद्धांत छे ओ वातने प्रदर्शित करवा भाटे बहुवच-
नना प्रयोग पणु करवाभां आंये छे आ कथननुं तात्पर्य ओ छे के “त्रिप्र-
देशाः आनुपूर्व्यः” आ प्रकारनुं सूत्रकारे न कथन क्युं छे तेना द्वारा तेओ
ओ वात प्रकट करवा भाणे छे के त्रिप्रदेशिक ओक द्रव्यरूप ओक न आनुपूर्वी
नथी परन्तु त्रिप्रदेशिक द्रव्य अनन्त होवाने लीये अनन्त आनुपूर्वीओ छे
तेथी त्रिप्रदेशिक रूपा गुणी गुणी अनन्त आनुपूर्वीओनी सत्ता (अस्तित्व)
सूचित करवाने भाटे “त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः” “त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वीओ”
ओवां बहुवचनान्त पदना प्रयोग करवाभां आंये छे ओन प्रमाणे चाके

ननु अनानुपूर्वीद्रव्यमेकेन परमाणुना निष्पद्यते, अवक्तव्यकद्रव्यं तु परमाणु-
द्वयेन, आनुपूर्वीद्रव्यं तु जघन्यतोऽपि परमाणुत्रयेण, एवं द्रव्यवृद्ध्या पूर्वानुपूर्वी-
क्रममाश्रित्य प्रथममनानुपूर्वीद्रव्यं वक्तव्यम्, ततोऽवक्तव्यकद्रव्यम्, ततश्चानुपूर्वी-
द्रव्यम्। पश्चानुपूर्वीक्रममाश्रित्य तु प्रथममनानुपूर्वी द्रव्यं वक्तव्यम्, ततोऽवक्तव्यक-
द्रव्यम्, ततश्चानुपूर्वीद्रव्यम्। अत्र पुनः क्रमद्वयमुल्लङ्घ्य निर्देशः कथं कृतः ?
इति चेदुच्यते—

इसी प्रकार से चार प्रदेशोंवाला एक स्कंध एक आनुपूर्वी है—इस प्रकार
से चार प्रदेशोंवाले स्कंध भी अनन्त हैं अतः वे अनन्तानुपूर्वियों हैं।
अन्यत्र भी इसी प्रकार से उद्भावित कर लेना चाहिये।

शंका—अनानुपूर्वी जो द्रव्य है वह एक परमाणु से निष्पन्न होता
है अर्थात् एक परमाणु अनानुपूर्वी है, और अवक्तव्य द्रव्य परमाणुद्वय
के सम्बन्ध से निष्पन्न होता है। अर्थात् संश्लिष्ट परमाणुद्वयस्कंध
अवक्तव्य है, तथा कम से कम भी आनुपूर्वी द्रव्य परमाणुत्रय से निष्पन्न
होता है, अर्थात् परमाणुत्रय के संश्लेष से सब से जघन्य आनुपूर्वी
निष्पन्न होती है इस प्रकार द्रव्य की वृद्धि से पूर्वानुपूर्वी क्रम को लेकर
सूत्रकार को चाहिये था कि वे पहिले अनानुपूर्वी द्रव्य का कथन करते,
इसके बाद अवक्तव्य द्रव्यका कथन करते और इसके बाद आनुपूर्वी द्रव्य
का कथन करते हैं। यदि पश्चानुपूर्वी के क्रम को लेकर उन्हें कथन करना

प्रदेशोवाणो षेक स्कंध षेक आनुपूर्वी इप छे अने चार प्रदेशोवाणा ने
अनंत स्कंधो छे तेओ अनंत आनुपूर्वी इप छे ओण प्रमाणे अनंत प्रदेशी
पर्यन्तना स्कंधो विषे पणु समञ्जो लेवुं.

शंका—अनानुपूर्वी ने द्र० छे ते ओक परमाणुमाथी निष्पन्न थाय छे—
ओटले के ओक परमाणु अनानुपूर्वी इप छे, अने अवक्तव्य द्रव्य ने परमा-
णुना सम्बन्धी निष्पन्न थाय छे—ओटले के संश्लिष्ट परमाणु द्वयस्कंध अव-
क्तव्य छे—ओटले के द्विप्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी इप पणु नथी अने अनानु-
पूर्वी इप पणु नथी आनुपूर्वीद्रव्य ओछामां ओछा तणु परमाणु पडे
निष्पन्न थाय छे ओटले के तणु परमाणुना संश्लेषथी जघन्यमां जघन्य इप
आनुपूर्वी निष्पन्न थाय छे. आ रीते द्रव्यनी वृद्धि द्वारा पूर्वानुपूर्वी क्रमनी
अपेक्षाओ सूत्रकारे पहिलां अनानुपूर्वी द्रव्यनु कथन करवुं लेधतुं छतुं तयार
पछी अवक्तव्य द्रव्यनु कथन करवुं लेधतुं छतुं अने तयार भात आनुपूर्वी
द्रव्यनु कथन करवुं लेधतुं छतुं ने पश्चानुपूर्वीना क्रमथी कथन करवुं होथि

आनुपूर्वीद्रव्यापेक्षयाऽनानुपूर्वीद्रव्याणि अल्पानि, अनानुपूर्वीद्रव्यापेक्षयाऽ-
वक्तव्यकद्रव्याणि अल्पतराणि, इत्येव' द्रव्यहान्या पूर्वानुपूर्वीक्रमनिर्देश एवात्र
वर्तते, इति नास्ति कश्चिदोषः । सम्प्रति प्रकृतमुपसंहरन्नाह—सैषा नैगमव्यवहार-
सम्मतार्थपदप्ररूपणतारूपाऽनौपनिधिकी आनुपूर्वी ॥सू० ७५॥

था तो—पहिले आनुपूर्वी द्रव्य का कथन करते बाद में अवक्तव्य द्रव्य
का कथन करते और फिर बाद में अनानुपूर्वी द्रव्य का कथन करते।
परन्तु उन्होंने इन दोनों क्रमों का उल्लंघन कर निर्देश किया है सो
इसका क्या कारण ?

उत्तर—सूत्रकार को इस प्रकार के निर्देश से यह बतलाना इष्ट
है कि आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य थोड़े हैं, और अना-
नुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा अवक्तव्यक द्रव्य और भी कम हैं। इस प्रकार
द्रव्य की हानि से सूत्रकारने यहां पूर्वानुपूर्विक्रम को लेकर उसी का
निर्देश वक्तव्यरूप से इष्ट किया है। अतः इस प्रकार निर्देश में कोई
दोष नहीं है। (से तं नैगमव्यवहाराणं अदृष्यपरूवणया) इस प्रकार से
नैगम व्यवहारनय संमत यह पूर्वप्रकान्त अर्थ पदप्ररूपणतारूप का
अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा अर्थपद प्ररूपणा का क्या स्वरूप
है यह विषय स्पष्ट किया है। त्र्यणुकस्कंध से लेकर अनन्त प्रदेशवाले

तो पड़ेलां आनुपूर्वीद्रव्यतुं, त्पार भाद-अव्यक्त-द्रव्यतुं अने त्पार भाद
अनानुपूर्वी द्रव्यतुं कथन करवुं लेधतुं हतुं, परन्तु आ अे कमभांथी अेक
प्रपणुं कमने अतुसरवाने अद्वैते तेमले पड़ेलां आनुपूर्वीद्रव्यतुं, त्पार भाद
अनानुपूर्वीतुं द्रव्यतुं अने छेहले अव्यक्तव्य द्रव्यतुं कथन कथुं छे, तो आभ
करवतुं थुं करणुं हरे ?

उत्तर—सूत्रकार आ प्रकारना कम द्वारा अे अताववा भागे छे आनुपू-
र्वीद्रव्य करतां अनानुपूर्वी द्रव्य थोडुं छे, अने अनानुपूर्वी द्रव्य करतां
अव्यक्तव्य थोडुं छे आ रीते सूत्रकारे अही द्रव्यनी हानिनी अपेक्षाअे पूर्वा-
नुपूर्वी कमने आधार लधने उपयुक्तुं कम तेनी प्ररपणुं करी छे, तेथी
आ प्रकारना निर्देशमां केध होष नहीं.

(से तं नैगमव्यवहाराणं अदृष्यपरूवणया) आ प्रकारतुं नैगम अने
व्यवहारनय संमत पूर्वप्रस्तुत अर्थपद प्ररपणुंता इप अनौपनिधिकी
आनुपूर्वीतुं स्वरूप छे.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्र द्वारा अर्थपद प्ररपणुंते कुं स्वरूप छे ते
विषयने स्पष्ट कया छे, त्रणु अणुवाणा (त्रप्रदेशी) स्कंधथी लधने अनन्त

अस्याः प्रयोजनं किम् ? इति दर्शयितुमाह—

मूलम्—एयाए णं नेगमववहाराणं अट्टपयपरूवणयाए किं पओयणं ? एयाए णं नेगमववहाराणं अट्टपयपरूवणयाए भंग-समुक्कित्तणया कज्जइ ॥सू० ७६॥

जितने भी स्कंध हैं वे सब यहां " अर्थ " शब्द से गृहीत हुए हैं। इस अर्थ से युक्त अथवा इस अर्थ को विषय करनेवाला जो पद है उसका नाम अर्थपद है। इसकी प्ररूपणा का नाम अर्थ पद प्ररूपणा है। इस प्ररूपणा में पुद्गल परमाणु और द्विप्रदेशी स्कंध वर्जित हो जाते हैं। क्यों कि—एकपुद्गलपरमाणु आनुपूर्वीरूप नहीं है और द्विप्रदेशी स्कंध अवक्तव्य है। सब से जघन्य आनुपूर्वी का प्रारंभ त्रिप्रदेशी स्कंध से होता है। क्यों कि यहीं से क्रम की सम्पूर्ण गणना चलती है। गणना का तात्पर्य गिनती से है। आदि मध्य और अंत इस प्रकार से गणना जहां होती है वहाँ पर आनुपूर्वीरूप परिपाटी मौजूद रहती है। यह अर्थ पद प्ररूपणारूप आनुपूर्वी नैगमनय और व्यवहारनय इन दोनों नयों को संमत है। ये अर्थ पद प्ररूपणारूप आनुपूर्वियां एक से लेकर अनन्त हैं। इसका कारण यह है कि त्रिप्रदेशी आदि स्कंध से लेकर अनन्त-प्रदेशी स्कंध तक के जितने भी स्कंध हैं वे सब अनन्त हैं। ॥सू० ७५॥

पर्यन्तना प्रदेशवाणी-जेटला स्कंध-छे, ते अधाने लघने अही " अर्थ " पदथी अडणु करवाभां आवेल छे. आ अर्थथी युक्त अथवा आ अर्थपुं प्रतिपादन करनाइ-जे पद छे-तेपुं नाम ' अर्थपद ' छे. तेनी प्ररूपणापुं नाम ' अर्थपद प्ररूपणा ' छे. आ प्ररूपणाभां पुद्गल परमाणु अने द्विप्रदेशी स्कंध वर्जित थछे जय छे-जेटले के तेमनी प्ररूपणा थती नथी, कारणु के अक पुद्गल परमाणु आनुपूर्वी रूप नथी अने द्विप्रदेशी स्कंध अवक्तव्य छे. जघन्यभां जघन्य आनुपूर्वीना प्रारंभ त्रिप्रदेशी स्कंधथी थाय छे, कारणु के त्यांथी ज कमनी संपूर्ण गणना थालु थाय छे. (गणना जेटले गणुतरी) आदि, मध्य अने अन्त, आ प्रकारनी गणना जयां संलवित डोय छे, त्यां ज आनुपूर्वी रूप परिपाटी मौजूद रहे छे. आ अर्थपद प्ररूपणा रूप आनुपूर्वी नैगमनय अने व्यवहारनय, आ अन्ते नयो द्वारा संमत (मान्य) छे. आ अर्थपद प्ररूपणा रूप आनुपूर्वीआ अकथी लघने अनंत पर्यन्तनी छे, कारणु के त्रिप्रदेशीथी लघने अनंत प्रदेशी सुधीना जेटला स्कंध छे, ते अधाने अनंत छे. ॥सू० ७५॥

भङ्गसमुत्कीर्तनत्वेन एतस्या नैगमव्यवहारसम्प्रदाया अर्थपदप्ररूपणतायाः फलं बोध्यमिति ॥सू० ७६॥

अथानीपनिधिव्या द्वितीयभेदरूपामर्थपदप्ररूपणतायाः फलभूतां भङ्गसमुत्कीर्तनतां निरूपयति—

मूलम्—से किं तं नैगमव्यवहारानं भङ्गसमुत्कीर्तनया ?

नैगमव्यवहारानं भङ्गसमुत्कीर्तनया अतिथि आणुपुन्वी१, अतिथि अणाणुपुन्वी२, अतिथि अवत्तव्यय३, अतिथि आणुपुन्वीओ४, अतिथि अणाणुपुन्वीओ५, अतिथि अवत्तव्ययाइं६, अहवा—अतिथि आणुपुन्वी य अणाणुपुन्वी य १। अहवा—अतिथि आणुपुन्वीय अणाणुपुन्वीओ२। अहवा अतिथि आणुपुन्वीओ य अणाणुपुन्वीओ य३। अहवा—अतिथि आणुपुन्वीओ य अणाणुपुन्वीओ य४। अहवा—अतिथि अणाणुपुन्वी य अवत्तव्यय य ५। अहवा—अतिथि आणुपुन्वीओ य अवत्तव्ययाइं य ६। अहवा—अतिथि आणुपुन्वीओ य अवत्तव्यय य ७। अहवा—अतिथि आणुपुन्वीओ य अवत्तव्ययाइं य ८। अहवा—अतिथि अणाणुपुन्वी य अवत्तव्यय य ९। अहवा अतिथि अणाणुपुन्वी य अवत्तव्ययाइं य १०। अहवा—अतिथि अणाणुपुन्वीओ य अवत्तव्यय य ११। अहवा—अतिथि अणाणु-

भङ्गों की प्ररूपणा का होना असंभव है। इसलिये भङ्ग समुत्कीर्तनता ही इस नैगम व्यवहार संमत अर्थपदप्ररूपणता का फल है। ऐसा जानना चाहिये ॥सू० ७६॥

भाष्ये (१) नी प्ररूपणा इत्येतानुं, काङ्क्षे च असंभवित्वात् अती नयं छे तेषां लक्ष्ण-
समुत्कीर्तनता च भाष्ये नैगमव्यवहारसंमत अर्थपद प्ररूपणतानुं इत्ये
अत्र असंभवत्वं नोपपद्यते ॥सू० ७६॥

पुन्वीओ य अवत्तव्याइं य १२। अहवा-अत्थि आणुपुन्वी य
 अणाणुपुन्वी य अवत्तव्ये य १। अहवा-अत्थि आणुपुन्वी य
 अणाणुपुन्वी य अवत्तयाइं य २। अहवा-अत्थि आणुपुन्वी य
 अणाणुपुन्वीओ य अवत्तव्ये य ३। अहवा-अत्थि आणुपुन्वी य
 अणाणुपुन्वीओ य अवत्तव्याइं य ४। अहवा-अत्थि आणु-
 पुन्वीओ य अणाणुपुन्वी य अवत्तव्ये य ५। अहवा-अत्थि
 आणुपुन्वीओ य अणाणुपुन्वी य अवत्तव्याइं य ६। अहवा-अत्थि
 आणुपुन्वीओ य अणाणुपुन्वीओ य अवत्तव्ये य ७। अहवा-अत्थि
 आणुपुन्वीओ य अणाणुपुन्वीओ य अवत्तव्याइं य ८ एए अट्ट
 भंगा। एवं सव्वे वि छव्वीसं भंगा। से तं नेगमववहाराणं
 भंगसमुक्कित्तणया ॥सू० ७७॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोर्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता? नैगमव्यवहारयो-
 र्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता-अस्ति आनुपूर्वी १, अस्ति अनानुपूर्वी २, अस्ति अवक्तव्यकम् ३,
 सन्ति आनुपूर्व्यः ४, सन्ति अनानुपूर्व्यः ५, सन्ति अवक्तव्यकानि ६।

अथवा-स्तः आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च १, अथवा सन्ति आनुपूर्वी च अनानु-
 पूर्व्यश्च २, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्वी च ३, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च
 अनानुपूर्व्यश्च ४, अथवा स्तः आनुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ५, अथवा सन्ति आनु-
 पूर्वी च अवक्तव्यकानि च ६, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकं च ७, अथवा
 सन्ति आनुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च ८, अथवा स्तः अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ९,
 अथवा सन्ति अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च १०, अथवा सन्ति अनानुपूर्व्यश्च
 अवक्तव्यकं च ११, अथवा सन्ति अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च १२।

अथवा-सन्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च १, अथवा सन्ति
 आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च २, अथवा सन्ति आनुपूर्वी च अनानु-
 पूर्व्यश्च अवक्तव्यकं च ३, अथवा सन्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि
 च ४, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ५, अथवा सन्ति आनु-
 पूर्व्यश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च ६, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्व्यश्च

अवक्तव्यकं च७, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च८, एतेऽष्टौ भङ्गाः । एवं सर्वेऽपि षड्विंशतिर्भङ्गाः । सैषा नैगमव्यवहारयोर्भङ्गसमुत्कीर्तनता ॥ सू० ७७ ॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मतता भङ्गसमुत्कीर्तनता? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरयति—नैगमव्यवहारसम्मतता भङ्गसमुत्कीर्तनता एवं विज्ञेया, तद्यथा—अस्ति आनुपूर्वी, अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकमित्यादि । अस्य सूत्रस्य व्याख्या स्पष्टा । अत्रेदं बोध्यम्—एकचनान्तेन आनुपूर्व्यादिपदत्रयेण त्रयो भङ्गाः, बहुवच-

अब सूत्रकार इसी अंग समुत्कीर्तनता का कि जो अनौपनिधिकी अर्थपदप्ररूपणताकी फलभूत है निरूपण करते हैं—

“से किं तं नैगमव्यवहाराणं अंगसमुत्कीर्तनता” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं नैगमव्यवहाराणं अंगसमुत्कीर्तनता) हे भदन्त ! नैगम व्यवहारनय संमत ऐसी वह अंगसमुत्कीर्तनता क्या है ?

उत्तर—(नैगमव्यवहाराणं अंगसमुत्कीर्तनता) नैगम व्यवहारनय संमत वह अंगसमुत्कीर्तनता इस प्रकार से है (अत्थि आणुपुर्वी) आनुपूर्वी है (अत्थि अणानुपुर्वी) अनानुपूर्वी है (अत्थि अवक्तव्यक) अवक्तव्य है (अत्थि आणुपुर्वीओ) आनुपूर्वियां हैं । (अत्थि अणानुपुर्वीओ) अनानुपूर्वियां हैं (अत्थि अवक्तव्ययाइं) अवक्तव्यक है इत्यादि । इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है । यहाँ इस प्रकार से जानना चाहिये—कि जो ये आनुपूर्वी आदि तीन पद एकचनान्त हैं उन से

इसे सूत्रकार अनौपनिधिकी अर्थपद प्ररूपणता के इत्यर्थ में ऐसी अंग समुत्कीर्तनता को निरूपण करे है—

“से किं तं नैगमव्यवहाराणं अंगसमुत्कीर्तनता” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं नैगमव्यवहाराणं अंगसमुत्कीर्तनता) हे भदन्त ! नैगमव्यवहारनय संमत ऐसी ते अंगसमुत्कीर्तनता को स्वल्प रूप में क्या है ?

उत्तर—(नैगमव्यवहाराणं अंगसमुत्कीर्तनता) नैगमनय अने व्यवहारनय संमत ते अंगसमुत्कीर्तनता का प्रकारनी है (अत्थि आणुपुर्वी) आनुपूर्वी है, (अत्थि अणानुपुर्वी) अनानुपूर्वी है, (अत्थि अवक्तव्यक) अवक्तव्यक है, (अत्थि आणुपुर्वीओ) आनुपूर्वियां है, (अत्थि अणानुपुर्वीओ) अनानुपूर्वियां है, (अत्थि अवक्तव्ययाइं) अने अवक्तव्यक है, इत्यादि रूप अंगोंनी समुत्कीर्तनता (उत्पत्ति) समञ्ची ।

आ सूत्रनी व्याख्या स्पष्ट है. अही अंगोंनी रचना का प्रमाण समञ्ची. आनुपूर्वी आदिना के त्रय पदों अर्थचनान्त है, तेभना त्रय

नान्तेन च त्रयो भङ्गाः, इत्येवमसंयोगपक्षे षड् भङ्गा भवन्ति ६। संयोगपक्षे तु पद-
त्रयस्यास्य त्रयो द्विकसंयोगाः। एकैकस्मिन्स्तु द्विकसंयोगे एकवचन-बहुवचनाभ्यां
चतुर्भङ्गाः सद्भावाद् त्रिष्वपि द्विकयोगेषु द्वादश भङ्गाः सम्पद्यन्ते। १२।
त्रिकयोगस्त्वत्र एक एव। तत्र च एकवचनबहुवचनाभ्यामष्टौ भङ्गा भवन्ति।
नवेऽप्यपी षड्विंशतिः। २६। भङ्गानां स्थापना चैवम्—

। षड्विंशतिभङ्गानां कोष्ठकमिदम्।

असंयोगे भङ्गाः ६	द्विकसंयोगे प्रथमा चतुर्भङ्गी १	त्रिकसंयोगे भङ्गाः ८
*आनुपूर्वी १	आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी १	आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकः १
अनानुपूर्वी २	आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी २	आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकाः २
अवक्तव्यकः २	आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी ३	आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकः ३

तीन भंग बनते हैं और जो आनुपूर्वी आदि तीन पद बहुवचनान्त हैं
उनसे भी ३ भंग बनते हैं। इस प्रकार असंयोग पक्षमें ये छह ६ भंग
हो जाते हैं ६। और संयोग पक्षमें इन तीन पदों के द्विसंयोगी भंग ३
होते हैं। इनमें एक एक भंग में दो दो का संयोग होने पर एकवचन
और बहुवचन को लेकर चार २ भंग हो जाते हैं इस प्रकार तीन भंग
के द्विक संयोगी भंग चार २ होने से ये १२ भंग बन जाते हैं। तथा त्रिक
संयोग में एक वचन और बहुवचन को लेकर ८ भंग बनते हैं। इस प्रकार
सब भंग मिलकर २६ भंग होते हैं। इन भंगोंका क्रम इस प्रकार से है—

आनुपूर्वी १, अनानुपूर्वी २, अवक्तव्यक ३, ये तीन भंग एक वच-
नान्त हैं। आनुपूर्वियां १, अनानुपूर्वियां २; और अनेक अवक्तव्यक ३,
ये ३ भंग बहुवचनान्त हैं, ऐसे असंयोगी भंग हुए ६। दो के संयोग
से तीनचतुर्भङ्गियां बनती हैं, उनमें प्रथम चतुर्भङ्गी इस प्रकार
से बनती है—आनुपूर्वी अनानुपूर्वी १, आनुपूर्वी अनानुपूर्वियां २,

भांगा भने છે અને બે આનુપૂર્વી આદિના ત્રણ પદો બહુવચનान्त છે
તેમના પણ ત્રણ ભાંગાઓ અને છે. આ રીતે કુલ ૬ અસંયોગી ભાંગાઓ
બને છે. આ ત્રણ પદોના (આનુપૂર્વી, અનુપૂર્વી અને અવકતવ્યકના) દ્વિક-
સંયોગી ભાંગા ત્રણ થાય છે પ્રત્યેક ભાંગામાં બંનેનો સંયોગ થવાથી એક વચન
અને બહુવચનની અપેક્ષાએ પ્રત્યેક પદની સાથે ચાર-ચાર ભાંગા બને છે. આ
રીતે ત્રણ પદોની સાથે કુલ ૧૨ દ્વિકસંયોગી ભાંગા બને છે. ત્રિકસંયોગી
કુલ ૮ ભાંગા બને છે. આ રીતે બધા મળીને ૬+૧૨+૮=૨૬ ભાંગા બને છે.

આ ૨૬ ભાંગાઓનો કેમ આ પ્રમાણે સમજવો—(૧) આનુપૂર્વી, (૨)
અનુપૂર્વી, (૩) અવકતવ્યક, આ ત્રણ ભાંગા એકવચનान्त છે.

(૧) આનુપૂર્વીઓ, (૨) અનુપૂર્વીઓ (૩) અનેક અવકતવ્યકો, આ
ત્રણ ભાંગા બહુવચનान्त છે. એવી રીતે અસંયોગી છ ભાંગા થયા ૬

बहुवचनान्ता- ख्यः आनुपूर्व्यः १ अनानुपूर्व्यः २ अवक्तव्यकाः ३ असंयोगे षड् भङ्गाः ६	आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्व्यः ४ द्विकसंयोगे द्वितीया चतुर्भङ्गी २ आनुपूर्वी- अवक्तव्यकः १ आनुपूर्वी- अवक्तव्यकाः २ आनुपूर्व्यः- अवक्तव्यकः ३ आनुपूर्व्यः-अवक्तव्यकाः ४ द्विकसंयोगे तृतीया चतुर्भङ्गी ३ अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकः १ अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकाः २ अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकः ३ अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकाः ४ पतेद्विकसंयोगे द्वादश भङ्गाः १२	आनुपूर्वी-अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकः ४ आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकः ५ आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकाः ६ आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकः ७ आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकाः ८ पते त्रिकसंयोगे अष्टौ भङ्गाः ८
--	---	--

आनुपूर्वियां अनानुपूर्वी ३, आनुपूर्वियां अनानुपूर्वियां ४ । द्वितीय चतुर्भङ्गी
इस प्रकार से है—

आनुपूर्वी, अवक्तव्यक १, एक आनुपूर्वी बहु अवक्तव्यक २, आनुपूर्वियां
एक अवक्तव्यक, ३, आनुपूर्वियां बहु अवक्तव्यक ४ । तृतीय चतुर्भङ्गी इस
प्रकार से है—अनानुपूर्वी अवक्तव्यक १, अनानुपूर्वी बहु अवक्तव्यक
२, अनानुपूर्वियां एक अवक्तव्यक ३ अनेक आनुपूर्वियां अनेक अवक्त-
व्यक ४ । इन तीन चतुर्भङ्गियोंको मिलानेसे द्विकसंयोगी बारह भंग होते
हैं १२ । तीन तीनके संयोग से जो आठभंग बनते हैं—वे इस प्रकार
से हैं—एक आनुपूर्वी एक अनानुपूर्वी एक अवक्तव्यक १, एक आनुपूर्वी
एक अनानुपूर्वी अनेक अवक्तव्यक २, एक आनुपूर्वी अनेक अनानु-

ये पहोना संयोगी त्रयु चतुर्भङ्गीयो भने छे, तेमां प्रथम चतुर्भङ्गी
आ प्रमाणे भने छे—(१) आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी, (२) आनुपूर्वी-अनानुपूर्वीयो,
(३) आनुपूर्वीयो-अनानुपूर्वी (४) आनुपूर्वीयो अनानुपूर्वीयो.

धील द्विकसंयोगी चतुर्भङ्गी आ प्रमाणे त्रयु चतुर्भङ्गीयो भने छे. तेमां
बने छे—(१) आनुपूर्वी-એક અવક્તવ્યક, (२) आनुपूर्वी-બહુ અવક્તવ્યક, (३)
आनुपूर्वीयो-એક અવક્તવ્યક, (४) આનુપૂર્વીઓ બહુ અવક્તવ્યક.

त्रीलु चतुर्भङ्गी आ प्रमाणे भने छे—(१) अनानुपूर्वी-એક અવક્ત-
વ્યક, (२) अनानुपूर्वी-બહુ અવક્તવ્યક (३) अनानुपूर्वीઓ-એક અવક્ત-
વ્યક અને (४) अनानुपूर्वीઓ-અનેક અવક્તવ્યક. આ ત્રણ ચતુर्भङ्गीओने
भेणववाथी द्विकसंयोगी पार लंग भने छे. १२

त्रयु पहोना संयोगी नीचे प्रमाणे आठ लांगा भने छे—(१) એક
આનુપૂર્વી, એક अनानुपूर्वी એક अवक्तव्यक (२) એક આનુપૂર્વી, એક
अनानुपूर्वी, અનેક अवक्तव्यक (३) એક આનુપૂર્વી, અનેક अनानुपूर्वीઓ,

एवमेते षड्विंशतिर्भेदा विज्ञेयाः। ननु किमर्थं भङ्गकसमुत्कीर्तनं क्रियते? इति चेदु-
च्यते—इहैकवचनान्तबहुवचनान्तैरानुपूर्व्यादिभिस्त्रिभिः पदैरसंयोगपक्षे संयोगपक्षे
च मिलिताः षड्विंशति भङ्गाः संभवन्ति । तेषु च मध्ये येन केनचिद् भङ्गेन वक्ता

पूर्वियां एक अवक्तव्यक ३, एक आनुपूर्वी अनेक अनानुपूर्वियां, अनेक
अवक्तव्यक ४, अनेक आनुपूर्वियां एक अनानुपूर्वी एक अवक्तव्यक ५,
अनेक आनुपूर्वियां एक अनानुपूर्वी अनेक अवक्तव्यक ६, अनेक आनु-
पूर्वियां अनेक अनानुपूर्वियां एक अवक्तव्यक ७, अनेक आनुपूर्वियां
अनेक अनानुपूर्वियां अनेक अवक्तव्यक, ८, ऐसे त्रिकसंयोगी आठ भंग
होते हैं ८ इस प्रकार ये स्वतन्त्र रूप से विना संयोग के एक वचन
और बहुवचन, को लेकर ६, तथा इन छहों के दो दो के संयोग से
१२, और तीन २ के संयोग से ८ भंग हो जाते हैं। ऐसे सब मिलकर
कुल छहस भंग होते हैं।

शंका— भंगों का समुत्कीर्तन वर्णन किस लिए किया गया है?

उत्तर—यहां पर एकवचनान्त और बहुवचनान्त जो आनुपूर्वी
आदि तीन २ पद हैं कि जिनके असंयोग पक्ष से ६ और संयोग पक्षमें
२० इस तरह २६ भंग बन जाते हैं—

एक अवक्तव्यक. (४) एक आनुपूर्वी, अनेक अनानुपूर्वीओ, अनेक अव-
क्तव्यको (५) अनेक आनुपूर्वीओ, एक अनानुपूर्वी, एक अवक्तव्यक.
(६) अनेक आनुपूर्वीओ, एक अनानुपूर्वी, अनेक अवक्तव्यको. (७)
अनेक आनुपूर्वीओ, अनेक अनानुपूर्वीओ, एक अवक्तव्यक. (८) अनेक
आनुपूर्वीओ, अनेक अनानुपूर्वीओ, अनेक अवक्तव्यको आ रीते त्रिक
संयोगी आठ भांग भने छे. आ रीते स्वतंत्र ३ए—विना संयोगवाणा ६
भांगा एक वचन अने बहुवचनवाणां पदोथी भने छे. तथा ते छओना
द्विकसंयोगथी १२ भांगा भने छे, अने त्रयु त्रयुना संयोगथी त्रिकसंयोगी
८ भांगा भने छे. आ रीते कुल भांगा $६ \times १२ \times ८ = २६$ थर्ध जय छे.

प्रश्न—भांगोनुं (भांगाओनुं) समुत्कीर्तन (उत्पत्ति) शा भाटे करवाभां आओनुं छे?

उत्तर—अह्नीं ने एकवचनान्त अने बहुवचनान्त ने आनुपूर्वी, अना-
नुपूर्वी अने अवक्तव्यक, आ त्रयु त्रयु पदो छे तेमना असंयोग पक्षे ६,
अने संयोगपक्षे (द्विकसंयोग अने त्रिकसंयोगनी अपेक्षाओ) २० भांगा
भने छे. आ रीते कुल २६ भांगा भने छे, आ सधणा भांगाओभांथी वक्ता

द्रव्यं विवक्षते, तेन भङ्गेन वक्ता विवक्षितद्रव्यं वदतु इति हेतो नैगमव्यवहारनया-
भ्युपगमेन सर्वानपि भङ्गान् प्रतिपादयितु भङ्गसमुत्कीर्तनं कृतमिति । सम्प्रति
प्रकृतमुदाहरन्नाह—सैवा भङ्गसमुत्कीर्तनतेति ॥सू०७७॥

अस्याः प्रयोजनं किम्? इति प्रश्नपूर्वकं कारणं प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्—एयाए णं नेगमववहाराण भंगसमुक्कित्तणयाए किं
पयोयणं? एयाए णं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगो-
वदंसणया कौरइ ॥सू०७८॥

छाया—एतया खलु नैगमव्यवहारयो भङ्गसमुत्कीर्तनतया किं प्रयोजनम्?
एतया खलु नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्तनतया भङ्गोपदर्शनता क्रियते ॥सू०७८॥

टीका—शिव्यः पृच्छति—‘एयाए णं’ इत्यादि—एतया नैगमव्यवहारसम्मतया
भङ्गसमुत्कीर्तनतया किं प्रयोजनं-फलं किम्? इति । उत्तरयति—एतया नैगमव्यव-

उनके बीच में वक्ता जिस किसी भंग से द्रव्य की विवक्षा करना
चाहता है, वह उस भंग से विवक्षित द्रव्य को कहे इस कारण नैगम
और व्यवहारनय संमत समस्त भी भंगों को कहने के लिये सूत्रकार
ने इन भंगो का समुत्कीर्तन क्रिया है । (से तं नेगमववहाराणं भंग
समुक्कित्तणया) इस प्रकार यह पूर्व प्रक्रान्त नैगम व्यवहारनय संमत
भंग समुत्कीर्तनता है । ॥सू० ७७॥

इसका क्या प्रयोजन है इस बात को सूत्रकार स्पष्ट करते हैं

“एयाएणं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पयोयणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ— हे भदन्त ! नैगम व्यवहारनय संमत इस भंग समुत्की-
र्तनता का क्या प्रयोजन है ?

जे कोण भांगा (विवक्ष्य)नी अपेक्षाये द्रव्यनी विवक्षा (प्रतिपादन) करवा
भागता होय, ते भांगानी अपेक्षाये विवक्षित द्रव्यतुं प्रतिपादन करे, ते
हेतुने ध्यानभां लवने नैगम अने व्यवहारनय संमत समस्त भांगाओतुं
कथन करवाने माटे सूत्रकारे आ भांगाओतुं समुत्कीर्तन (रचना) क्युं छे.
(से तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) आ प्रकारतुं नैगम अने व्यवहा-
रनय संमत पूर्वोक्त भंग समुत्कीर्तनतातुं स्वरूप छे. ॥सू०७७॥

हुये सूत्रकार नैगमव्यवहार नयसंमत भंगसमुत्कीर्तनतातुं शुं प्रयोजन
छे ते प्रकट करे छे—“एयाएणं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तयाए किं पयायणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—हे भगवान् ! नैगमव्यवहार नयसंमत आ भंगसमुत्की-
र्तनतातुं शुं प्रयोजन छे ?

हारसम्पत्तया भङ्गसमुत्कीर्तनतया भङ्गोपदर्शनता क्रियते इति भङ्गोपदर्शनतैव भङ्ग-
समुत्कीर्तनतायाः प्रथो जनमिति। अयं भावः—भङ्गसमुत्कीर्तनतायां भङ्गसमूत्रमुक्तम्,
भङ्गोपदर्शनतायां तस्यैव वाच्यं व्यणुकस्कन्धादिकं वक्ष्यते, तच्च भङ्गकसूत्रे समु-
त्कीर्तिते सत्येव वक्तुं शक्यते। वाच्यकथनमातरेण वाच्यकथनस्य सर्वथैवाऽसम्भ-
वात्, अतो भङ्गोपदर्शनतैव भङ्गसमुत्कीर्तनतायाः फलं बोध्यम्।

उत्तर—(एयाएण नेगमव्वहाराणं भंगसमुत्कीर्तणयाए भंगोवदंस-
णया कीरइ) नेगम व्यवहारनय संभन इस भंग समुत्कीर्तनता से भंगों
को दिखाया जाता है उनकी प्ररूपणा की जाती है। इसलिये भंगसमु-
त्कीर्तनता का भंगों को दिखलाना प्रयोजन है। इसका तात्पर्य यह है
भंगों की समुत्कीर्तनता में भंगों को कहने वाला उनकी प्ररूपणता करने
वाला सूत्र कहा गया है और भंगोपदर्शनता में उसी के वाच्य व्यणुक
स्कन्धआदि प्रदर्शिन क्रिये जावेंगे कहे-जावेंगे।

सो व्यणुक स्कन्ध आदिकों का यह प्रदर्शनरूप कथन जब तक भंगों
को दिखाने वाला सूत्र नहीं कहा जावेगा—तब तक नहीं हो सकता है उसी
प्रदर्शक सूत्र के समुत्कीर्तन होनेपर ही वह वक्तुं शक्य हो सकता है।
क्यों कि यह नियम है कि वाचक सूत्र—के कथन के बिना वाच्यरूप अर्थ
का कथन करना सर्वथा असंभव है। इसलिये भंगोपदर्शनता ही
भंगसमुत्कीर्तनता का फल है—ऐसा जानना चाहिये।

उत्तर—(एयाएणं नेगमव्वहाराणं भंगसमुत्कीर्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ)
नेगमव्यवहार नयसंभन आ भंगसमुत्कीर्तनता वडे लगे (लांगाम्मे) भता-
ववामां आवे छे—तेमनी प्रइपण्णा करवामां आवे छे तेथी लांगाने भताववानुं
ए लंगसमुत्कीर्तनतानुं प्रयोजन छे आ कथननुं तात्पर्य नीचे प्रमाणुं छे—
लंगोनी समुत्कीर्तनतामां लंगोने कडेनारा तेमनी प्रइपण्णा करनारा—लंगोने
प्रकट करनारां सूत्रे तुं कथन करवामां अणुं छे, अने लंगोपदर्शनतामां
तेना ए वाच्य अथां व्यणुक (त्रिप्रदेशी—त्रणु अणुवाणा) स्कंध आदि प्रदर्शित
करवामां आवेशे.

ज्यां सुधी लगेने प्रकट करनार्ं सूत्र कडेवामां न आवे, त्यां सुधी
त्रिअणुक स्कंध अडिकेना प्रदर्शन रूप कथन थड शकतुं नथी अणु प्रदर्शक
सूत्रनुं समुत्कीर्तन थतां ए ते कथन करवुं शक्य अने छे, कारणुं के अथे
नियम छे के वाचक सूत्रनुं कथन कथां विना वाच्यरूप अर्थनुं कथन करवानुं
कार्य सर्वथा असंभवित होय छे. तेथी लंगोपदर्शनता (लंगोने प्रकट
करवा ते) ए लंग समुत्कीर्तनताना इल्लररूप छे अणु समज्जणुं जेधअ.

ननु भङ्गोपदर्शनतायां वाच्यस्य व्यणुक्स्कन्धादेः कथनकाले आनुपूर्व्यादि-
सूत्रं पुनरप्युत्कीर्तयिष्यते, तत्कथं पुनर्भङ्गसमुत्कीर्तनं क्रियते? इति चेदुच्यते—
यथा हि—

संहिया य पयं चैव, पयत्थो पयविग्गहो ।

चालणा य पसिद्धी य छव्विहं विद्धि लक्खणं ॥१॥

छाया—संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदसंग्रहः ।

चालना च पसिद्धिश्च, पद्विधिं विद्धि लक्षणम् ॥१॥

इति व्याख्याक्रमे संहिताया व्याख्यानकाले सूत्रसमुच्चारितमपि पदार्थकथन-
काले पुनरप्यर्थकथनार्थं तदुच्चार्यते, तद्वदत्रापि भङ्गसमुत्कीर्तनतासिद्धस्यैव सूत्र-
स्य भङ्गोपदर्शनतायां वाच्यवाचकभावस्य प्रतिपत्त्यर्थं प्रमद्गतः पुनरपि समुत्कीर्तनं
करिष्यते न मुख्यतयेति न कश्चिद् दोष इति ॥सू० ७८॥

शंका—भङ्गोपदर्शनतामें वाच्य जो व्यणुक स्कन्ध आदि है उनके
कथन काल में आनुपूर्वी-आदि प्रदर्शक सूत्र सूत्रकार-फीर कहेंगे-तो
फिर यह कथन कैसे संगत हो सकता कि पहिले भङ्गसमुत्कीर्तन किया
जाता है बाद में भङ्गो पदर्शन ?

उत्तर—“संहिया य पयं चैव पयत्थो पयविग्गहो, चालणा य
पसिद्धी य छव्विहं विद्धि लक्खणं” इस प्रकार व्याख्यान के समय में
सूत्र समुच्चारित होता हुआ भी पदार्थ कथन के अवसर पर उसका
पुनः भी अर्थप्रतिपादन के लिये उच्चारण किया जाता है । उसी प्रकार
से यहां पर भी भङ्गसमुत्कीर्तनता से सिद्ध हुए ही सूत्र का भङ्गोपद-
र्शनता में वाच्यवाचक भाव की सुखपूर्वक प्रतिपत्ति के निमित्त

शंका—भङ्गोपदर्शनतामें वाच्य जे त्रिअणुक आदि स्कंध छे तेमना
कथनकाले (तेमनुं कथन करती वण्णते) आनुपूर्वी आदि प्रदर्शक सूत्र सूत्रकार
इरी उडेशे तो आ कथन केवी रीते संगत भनी शकशे के पडैतां भङ्गस-
मुत्कीर्तन कराय छे अने त्यार भाद भङ्गोपदर्शन कराय छे ?

उत्तर—“संहिया य पयं चैव पयत्थो पयविग्गहो । चालणा य पसिद्धी य
छव्विहं विद्धि लक्खणं” आ सूत्रमां उट्ठा प्रमाहेनेो व्याभ्यानेो कम्म छे.
जेम संहिताना व्याभ्यानकाले सूत्र समुच्चारित थयेत्थुं डोवा छतां पणु
पदार्थकथनने अवसरे अर्थनुं प्रतिपादन करवा निमित्ते इरीथी पणु तेनुं
उत्थारणु करवामां आवे छे, जेण प्रमाहे अही पणु भङ्गसमुत्कीर्तनताथी
सिद्ध थयेता सूत्रनुं जे भङ्गोपदर्शनतामें वाच्यवाचक भावनी सुखपूर्वक प्रति-

અથ મંગ્લોપદર્શનતાં પ્રતિપાદયિતુમાહ—

મૂલમ્—સે કિં તં નેગમવવહારાણં મંગોવદંસળયા? નેગમ-
વવહારાણં મંગોવદંસળયા—તિપ્પણસિણ આણુપુઠ્ઠવી૧, પરમાણુ-
પોગ્ગલે અણાણુપુઠ્ઠવી૨, દુપ્પણસિણ અવત્તઠ્ઠવણ ૩। અહવા તિપ્પ-
સિયા આણુપુઠ્ઠવીઓ૧, પરમાણુપોગ્ગલા અણાણુપુઠ્ઠવીઓ૨, દુપ્પ-
ણસિયા અવત્તઠ્ઠવયાઈં ૩।

અહવા તિપ્પણસિણ૧ય પરમાણુપુગ્ગલે૨ય આણુપુઠ્ઠવી૩ય
અણાણુપુઠ્ઠવી૪ય ચઠમંગો। અહવા—તિપ્પણસિણ૧ય દુપ્પણસિણ ય
આણુપુઠ્ઠવી ય અવત્તઠ્ઠવણ ય ચઠમંગો। અહવા પરમાણુપોગ્ગલે

પ્રસંગવશ ફિર સે મી સમુત્કીર્તન ક્રિયા જાવેગા મુખ્ય રૂપ સે નહીં।
અતઃ ડસ મેં કોઈ ઢોષ નહીં હૈ।

ભાવાર્થ—મંગસમુત્કીર્તનતા કા કયા પ્રયોજન હૈ ઘાત સૂત્રકાર
ને હસ સૂત્ર ઢ્વારા સ્પષ્ટ કી હૈ। વે કહ રહે હૈં કિ મંગસમુત્કીર્તનતા કા
ફલ મંગોપદર્શનતા હૈ। મંગસમુત્કીર્તનતા મેં મંગો કા નામ નિર્દેશ
ક્રિયા જાતા હૈ। તથા મંગ કિતને હોતે હૈં, યહ પ્રકટ ક્રિયા જાતા હૈ।
મંગોપદર્શનતામેં જો મંગ કહે ગયે હૈં ડનકા વાચ્યાર્થ 'ઘહ હૈ' ઘહ પ્રકટ
ક્રિયા જાતા હૈ। હસ પ્રકર મંગસમુત્કીર્તનતા મેં કથિત મંગો કા મંગોપ-
દર્શનતા-મંગો કા ઢિલાને કા વાચ્યાર્થ ઘહ હૈ ઘહ પ્રકટ ક્રિયા ગયા હોને સે
મંગસમુત્કીર્તનતા કા ફલ મંગોપદર્શનતા હૈ ઘહ ઘાત વન જાતી હૈ।મૂ૦૭૮।

પત્તિ (અહથ્થુ—ઘોધ) કરાવવાને માટે પ્રસંગવશ ફરીથી પણ સમુત્કીર્તન
કરવામાં આવશે—મુખ્ય રૂપે નહીં તેથી તેમા કોઈ ઢોષની સંભાવના નથી.

ભાવાર્થ—મંગસમુત્કીર્તનતાનું શુ પ્રયોજન છે, એ વાતનું સૂત્રકારે
આ સૂત્ર ઢ્વારા સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે—તેમણે એ વાત અહીં સમજાવી છે કે
મંગસમુત્કીર્તનતાનું ફલ મંગોપદર્શનતા છે. મંગસમુત્કીર્તનતામાં મંગોનો
વાચ્યાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આ પ્રકારે મંગસમુત્કીર્તનતામાં જે જે
મંગો કહેવામાં આવ્યા હોય તે તે મંગોનો વાચ્યાર્થ પ્રકટ કરવાનું કાર્ય
મંગોપદર્શનતામાં કરવામાં આવે છે તે કારણે મંગસમુત્કીર્તનતાનું ફલ
મંગોપદર્શનતા છે, એ વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે. ॥મૂ૦૭૮।

य दुष्पणसिष्ण य अणुपुष्णी य अवत्तव्वण य चउभंगो १२। अहवा
 तिप्पणसिष्ण य परमाणुपोग्गले य दुष्पणसिष्ण य आणुपुष्णी य
 अणुपुष्णीय अवत्तव्वण य १। अहवा तिप्पणसिष्ण य परमाणु-
 पोग्गले य दुष्पणसिष्ण य आणुपुष्णी य अणुपुष्णी य अवत्त-
 व्वयाहं च २। अहवा तिप्पणसिष्ण य परमाणुपुष्णला य दुष्पणसिष्ण
 य आणुपुष्णी य अणुपुष्णीओ य अवत्तव्वण य ३। अहवा
 तिप्पणसिष्ण य परमाणुपोग्गला य दुष्पणसिष्ण य आणुपुष्णी य
 अणुपुष्णीओ य अवत्तव्वयाहं च ४। अहवा तिप्पणसिष्ण य पर-
 माणुपोग्गले य दुष्पणसिष्ण य आणुपुष्णीओ य अणुपुष्णी य अव-
 त्तव्वण य ५। अहवा तिप्पणसिष्ण य परमाणुपोग्गले य दुष्पणसिष्ण
 य आणुपुष्णीओ य अणुपुष्णी य अवत्तव्वयाहं च ६। अहवा-
 तिप्पणसिष्ण य परमाणुपोग्गला य दुष्पणसिष्ण य आणुपुष्णीओ य
 अणुपुष्णीओ य अवत्तव्वण य ७। अहवा—तिप्पणसिष्ण य परमा-
 णुपोग्गला य दुष्पणसिष्ण य आणुपुष्णीओ य अणुपुष्णीओ य
 अवत्तव्वयाहं च ८। से तं नैगमव्यवहारणं भंगोवदंसणया॥सू०७९॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता ? नैगमव्यवहारयोः
 भङ्गोपदर्शनता—त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी १ परमाणुपुद्गलः अनानुपूर्वी २
 द्विप्रदेशिकः अवक्तव्यम् ३, अथवा त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः परमाणुपुद्गला
 अनानुपूर्व्यः द्विप्रदेशिकाः अवक्तव्यकानि ३। अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च
 आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च ४ चत्वारो भङ्गाः, अथवा त्रिप्रदेशिकश्च
 द्विप्रदेशिकश्च आनुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ४, चत्वारो भङ्गाः, अथवा परमाणु-
 पुद्गलश्च, द्विप्रदेशिकश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ४ चत्वारो भङ्गाः १२। अथवा
 त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदेशिकश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वीश्च य
 अवक्तव्यकं च १, अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदेशिकाश्च आनुपूर्वी च
 अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च २, अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदे-

શિક્ષ આનુપૂર્વીં ચ અનાનુપૂર્વ્યશ્ચ અવક્તવ્યકં ચ ૩, અથવા ત્રિપ્રદેશિકશ્ચ પરમાણુ-
પુદ્ગલાશ્ચ દ્વિપ્રદેશિકાશ્ચ આનુપૂર્વીં ચ અનાનુપૂર્વ્યશ્ચ અવક્તવ્યકાનિ ચ ૪, અથવા
ત્રિપ્રદેશિકાશ્ચ પરમાણુપુદ્ગલશ્ચ દ્વિપ્રદેશિકશ્ચ આનુપૂર્વ્યશ્ચ અનાનુપૂર્વીં ચ અવક્તવ્યકં
ચ ૫, અથવા ત્રિપ્રદેશિકાશ્ચ પરમાણુપુદ્ગલશ્ચ દ્વિપ્રદેશિકાશ્ચ આનુપૂર્વ્યશ્ચ અનાનુ-
પૂર્વીં ચ અવક્તવ્યકાનિ ચ ૬ । અથવા ત્રિપ્રદેશિકાશ્ચ પરમાણુપુદ્ગલાશ્ચ દ્વિપ્રદેશિકશ્ચ
આનુપૂર્વ્યશ્ચ અનાનુપૂર્વ્યશ્ચ અવક્તવ્યકં ચ ૭, અથવા ત્રિપ્રદેશિકાશ્ચ પરમાણુપુદ્ગલાશ્ચ
દ્વિપ્રદેશિકાશ્ચ આનુપૂર્વ્યશ્ચ અનાનુપૂર્વ્યશ્ચ અવક્તવ્યકાનિ ચ ૮ સૈવા નૈગમવ્યવહાર-
યોઃ મજ્ઞોપદર્શનતા ॥ સૂ ૦ ૭૧ ॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—‘ સે કિં તં ’ इत्यादि । अथ का सा नैगमव्यवहा-
सम्भता मज्ज्ञोपदर्शनता ? इति । उत्तरयति—नैगमव्यवहारसम्भता मज्ज्ञोपदर्शनता
एवं विज्ञेया, तथाहि त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वीं—त्रिप्रदेशिकोऽर्थ आनुपूर्वीत्युच्यते—
त्रिप्रदेशिकस्कन्धलक्षणेनार्थेनानुपूर्वीति प्रथमो मज्ज्ञको निष्पद्यते इत्यर्थः १ । पर-

अव सूत्रकार उसी अंगोपदर्शनता का प्रतिपादन करते हैं—

“से किं तं नैगमव्यवहाराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ— (से किं तं नैगमव्यवहाराणं अंगोवदंसणया ?) हे भदन्त
नैगम व्यवहारनय संभत वह अंगोपदर्शनता क्या है ? (नैगमव्यवहा-
राणं अंगोवदंसणया)

उत्तर— नैगमव्यवहारनय संभत वह अंगोपदर्शनता इस प्रकार
से हैं । (तिप्पएसिए आणुपुव्वी १ परमाणुपुगले अणाणुपुव्वी २,
दुप्पएसिये अवत्तव्वए ३) त्रिप्रदेशिकस्कंधरूप पदार्थ आनुपूर्वी इस
शब्द का वाच्यार्थ है—अर्थात् तीन प्रदेश वाला पदार्थ आनुपूर्वी इस
नाम से कहा जाता है इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध रूप अर्थ से आनुपूर्वी

હેવે સૂત્રકાર એજ અંગોપદર્શનતાનું પ્રતિપાદન કરે છે—

“ સે કિં તં નૈગમવ્યવહારાણં ” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—પ્રશ્ન—(સે કિં તં નૈગમવ્યવહારાણં અંગોવદંસણયા ?) હે ભગવન્ !
નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંભત તે અંગોપદર્શનતાનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(નૈગમવ્યવહારાણં અંગોવદંસણયા) નૈગમવ્યવહાર નયસંભત તે
અંગોપદર્શનતાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે—(તિપ્પેસિયે આણુપુવ્વી ૧, પરમા-
ણુપુગલે અણાણુપુવ્વી ૨, દુપ્પેસિયે અવત્તવ્વે ૩,) ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધ રૂપ
પદાર્થ આનુપૂર્વી શબ્દનો વાચ્યાર્થ છે. એટલે કે ત્રણ પ્રદેશવાળા સ્કંધ રૂપ
પદાર્થને ‘ આનુપૂર્વી ’ આ નામે ઓળખાય છે. તેથી ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધ રૂપ
અર્થ (પદાર્થ) વડે ‘ આનુપૂર્વી ’ આ પ્રથમ અંગ અને છે. પરમાણુ પુદ્ગલ

माणुपुद्गलः अनानुपूर्वी परमाणुपुद्गललक्षणोऽर्थः अनानुपूर्वीत्युच्यते, इति द्वितीयो भङ्गः । द्विप्रदेशिकः अवक्तव्यकम्—द्विप्रदेशिकस्कन्धलक्षणोऽर्थोऽवक्तव्यकमुच्यते । इति तृतीयो भङ्गः ३ । एकवचनपक्षे त्रयो भङ्गा उक्ताः ३ । एवं बहवस्त्रिप्रदेशिकस्कन्ध-लक्षणा अर्था अनानुपूर्व्यः, बहवः परमाणुपुद्गरूपा अर्था अनानुपूर्व्यः बहवो द्वि-प्रदेशिकस्कन्धरूपा अर्था अवक्तव्यकानि । इति बहुवचनपक्षे त्रयो भङ्गाः ६ । इत्थमसंयोगपक्षे षण्णां भङ्गानामर्थकथनं बोध्यम् । एवं संयोगपक्षे प्रथमद्विक-

यह प्रथम भंग बनता है । परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी अर्थात् परमाणु पुद्गल रूप अर्थ अनानुपूर्वी कहलाता है—इसलिये पुद्गल परमाणु अर्थ से अनानुपूर्वी यह द्वितीय भंग बनता है । द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्यक इस शब्द का वाच्यार्थ है—अर्थात् द्विप्रदेशवाला पदार्थ अवक्तव्यक इस नाम से कहा जाता है इसलिये वह अवक्तव्यक कहलाता है । यह तीसरा भंग है ये ३ भंग एक वचन पक्ष से कहे हैं । (अहवा तिप्प-एसिया आणुपुव्वीओ १, परमाणुपोग्गला अणुपुव्वीओ २, दुप्पएसिया अवक्तव्वयाइं ३,) इसी प्रकार बहुत त्रिप्रदेशिक स्कन्धरूप पदार्थ अनानुपूर्वीयां हैं । बहुत १ परमाणु पुद्गल रूप पदार्थ अनानुपूर्वीयां हैं । बहुत द्विप्रदेशिक स्कन्ध रूप पदार्थ बहुत अवक्तव्यक हैं । इस प्रकार बहुवचन पक्षमें ये ३ तीन भंग हैं । इस प्रकार से असंयोग पक्ष में उक्त ६ भंगों का यह अर्थ

अनानुपूर्वी इयं छे—अट्ठे के परमाणु पुद्गल इयं अर्थ (पदार्थ) ने अनानु-पूर्वी कहे छे. तेथी पुद्गलपरमाणु इयं पदार्थथी “अनानुपूर्वी” आ नामने भीजे लंग (लांगो) अने छे द्विप्रदेशिक स्कन्ध ‘अवक्तव्यक’ इयं शब्दने वाच्यार्थ छे. (द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वी इये पणु व्यक्त थर्थ शकतो नथी अने अनानुपूर्वी इये पणु व्यक्त थर्थ शकतो नथी, ते कारणे तेने अवक्तव्यक कह्यो छे) अट्ठे के द्विप्रदेशिक स्कन्धने “अवक्तव्यक” आ नामने ओणभवामां आवे छे, ते कारणे तेने ‘अवक्तव्यक’ आ नामना त्रीजे लंग इयं गणुव्वे छे आ त्रजे लंग अेकवचनान्त पदनी अपेक्षाअे अनाववामां आव्या छे.

(अहवा—तिप्पएसिया आणुपुव्वीओ १, परमाणुपोग्गला अणुपुव्वीओ २, दुप्पएसिया अवक्तव्वयाइं ३,) अेअ प्रमाणु धणु त्रिप्रदेशिक स्कन्ध इयं पदार्थ अनानुपूर्वीओ इयं छे, अने धणु परमाणु पुद्गल इयं पदार्थ अनानुपूर्वीओ इयं छे, अने धणु द्विप्रदेशिक स्कन्ध पदार्थ धणु अवक्तव्यक इयं छे. आ रीते बहुवचन पक्षमां आ त्रजे लांगो अने छे आ प्रकारतुं असंयोग पक्षमां लांगोअेनुं कथन समजवुं अट्ठे के असंयोगी कुल ६ लांगो अने

સંયોગેऽપિ ત્રિપ્રદેશિકઃ સ્કન્ધઃ પરમાણુપુદ્ગલશ્ચાનુપૂર્વ્યનાનુપૂર્વીત્વેનોચ્યતે । એત-
દેવ દર્શયતિ-અથવા ત્રિપ્રદેશિકશ્ચ પરમાણુપુદ્ગલશ્ચ આનુપૂર્વીવ અનાનુપૂર્વી ચ
ચત્વારો મજ્ઞાઃ ૪ । અયં ભાવઃ-યદા ત્રિપ્રદેશિકસ્કન્ધઃ પરમાણુપુદ્ગલશ્ચ પ્રતિ-
પાદયિતુમશીષ્ટો ભવતિ, તદા 'અત્થિ આણુપુઁવી ય અણાણુપુઁવી ય' હત્યેવં મજ્ઞો
નિષ્પદ્યતે । એવમન્યેऽપિ ત્રયો મજ્ઞા અર્થકથનપુરસ્સરા વક્તવ્યાઃ । હત્યં પ્રથમ-

કથન જનનાં વાહિયે । સંયોગ પક્ષમે-એકવચન ઓર વહુવચન સંવન્ધી
પ્રથમ ઓર દ્વિતીય ભંગ કો સંયુક્ત કરને પર ત્રિપ્રદેશિક- એક સ્કંધ
એક આનુપૂર્વી ઓર એક પરમાણુપુદ્ગલ એક અનાનુપૂર્વી કા
વાચ્યાર્થ જાનના વાહિયે । યહી વાત (અહવા તિષ્પસિએ ય પરમાણુપુગલે
ય આણુપુઁવી ય અણાણુપુઁવી ય ચડભંગો) હન પદો દ્વારા સ્પષ્ટ કી ગઈ
હૈ । યહ પ્રથમ ચતુર્ભંગી કા પ્રથમ ભંગ હૈ । "આનુપૂર્વી અનાનુ-
પૂર્વ્યઃ" હસ દ્વિતીય ભંગ મેં ત્રિપ્રદેશ વાલા ૧, એક સ્કંધ ઓર એક
પ્રદેશ વાલે અનેક પુદ્ગલપરમાણુ વાચ્યાર્થરૂપ સે વિવક્ષિત હુએ હૈં ।
"આનુપૂર્વ્યઃ અનાનુપૂર્વી", હસ તૃતીય ભંગ મેં ત્રીન આદિ પ્રદેશ વાલે
વહુત સ્કંધ ઓર ૧ એક પ્રદેશવાલા ૧ એક પુદ્ગલપરમાણુ વિવક્ષિત હુઆ
હૈ । "આનુપૂર્વ્યઃ અનાનુપૂર્વ્યઃ" હસ ચતુર્થ ભંગ મેં અનેક ત્ર્યાદિ પ્રદેશ
વાલે સ્કંધ ઓર અનેક એક પ્રદેશ વાલે પુદ્ગલ પરમાણુ વાચ્યાર્થરૂપ સે
વિવક્ષિત હુએ હૈં । હસ પ્રકાર સે યહ દો ભંગોં કો સંયોગ સે ઉત્પન્ન હુઈ

છે, એમ સમજવું સંયોગપક્ષમાં એકવચન અને બહુવચન સંબંધી પહેલા
અને બીજા ભાંગાને સંયુક્ત કરવાથી ત્રિપ્રદેશિક એક સ્કંધ એક આનુપૂર્વી
૩૫ અને એક પરમાણુપુદ્ગલ એક અનાનુપૂર્વીના વાચ્યાર્થ ૩૫ સમજવે
નેહએ એજ વાત "અહવા તિષ્પસિએ ય પરમાણુપુગલે ય આણુપુઁવી ય
અણાણુપુઁવી ય ચડભંગો" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે. આ
પહેલી ચતુર્ભંગીને પહેલા ભાંગો છે. "આનુપૂર્વી અનાનુપૂર્વ્યઃ" આ બીજા
ભાંગામાં ત્રિપ્રદેશવાળો એક સ્કંધ અને એક પ્રદેશવાળા અનેક પુદ્ગલપર-
માણુ વાચ્યાર્થ ૩૫ વિવક્ષિત થયા છે. "આનુપૂર્વ્યઃ અનાનુપૂર્વી" આ ત્રીજા
ભાંગામાં ત્રણ આદિ પ્રદેશવાળા ઘણા સ્કંધો અને એક પ્રદેશવાળું એક
પુદ્ગલ પરમાણુ વિવક્ષિત થયેલ છે. "આનુપૂર્વ્યઃ અનાનુપૂર્વ્યઃ" આ ચોથા
ભાંગામાં અનેક ત્રિપ્રદેશી આદિ સ્કંધો અને અનેક એક પ્રદેશવાળા પુદ્ગ-
લપરમાણુ વાચ્યાર્થ ૩૫ વિવક્ષિત થયા છે. આ પ્રકારની બે ભાંગો
(ભાંગાઓના) ના સંયોગથી ઉત્પન્ન થયેલી આ પહેલી ચતુર્ભંગી છે. તેમાં

द्विकयोगे चत्वारो भङ्गा बोद्धव्याः ४ । एवमेव द्वितीयद्विकयोगे तृतीयद्विकयोगे च चत्वारश्चत्वारो भङ्गा विज्ञेयाः । एवं द्वादश भङ्गाः १२ । चउभंगो' इत्यत्रार्पत्वादेक वचनम् । त्रिकयोगे तु—अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदेशिकश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं चेत्यादयोऽष्टौ भङ्गा बोद्धव्याः । सर्वेऽपि भङ्गा अर्थकथनपुरस्सरा भावनीयाः ।

प्रथम चतुर्भंगी है । इसमें चार भंगों का वाच्यार्थ प्रकट किया गया है । इसी प्रकार से द्वितीय द्विक के योग में चारभंग और तृतीय द्विक के योग में चार भंग जानना चाहिये । इनके योग में वाच्यार्थ इन भंगों का क्या २ होता है यह बात प्रथम द्विक के योग से जायमान चतुर्भंगी में स्पष्ट कर दी है सो उसी के अनुसार उन उन भंगों का वाच्यार्थ समझना चाहिये । इस प्रकार १२ भंगों का वाच्यार्थ यहां तक प्रकट किया । “चउभंगो” में जो एकवचन का प्रयोग हुआ है वह आर्ष होने से हुआ है । त्रिक-तीन-के योग में तीन प्रदेश वाला पुद्गलस्कंध “आनुपूर्वी” इस शब्द का वाच्यार्थ एक प्रदेश वाला पुद्गल “अणु-अनानुपूर्वी” इस शब्द का वाच्यार्थ और दो प्रदेश वाला स्कंध “अव-क्तव्यक” इस शब्द का वाच्यार्थ पडता है इसी प्रकार से द्वितीय तृतीय आदि आठ भंगों में भी भिन्न भिन्न भंगों के वाच्यार्थ जान लेना चाहिये ।

चार लांगाम्बोने वाच्यार्थ प्रकट करवाभां आये। छे. ओज प्रमाणे जीन द्विकसंयोगभां पणु चार लांगा, अने त्रीन द्विकसंयोगभां पणु चार लांगा समञ्जवा जेधये आ दरेक लांगाने वाच्यार्थ पडेती द्विकसंयोगी अतुल-गीना लांगाम्बोनु' स्पष्टीकरणु करती वभते स्पष्ट करवाभां आये। छे. ते तेनी भदधथी आ जे अतुल'गीने वाच्यार्थ पणु समणु देवे। जेधये आ रीते द्विकसंयोगी चार (१२) लांगाम्बोने वाच्यार्थ अही' सुधीभां स्पष्ट करवाभां आये। छे.

डेवे त्रणुना योगथी जे लांगाम्बो जने छे तेनु' स्पष्टीकरणु करवाभां आवे छे—पडेले। लांगो-त्रणुप्रदेशवाणे। पुद्गलस्कंध “आनुपूर्वी” शब्दना वाच्यार्थ ३प, ओक प्रदेशवाणु ओक पुद्गलपरमाणु “अनानुपूर्वी” शब्दना वाच्यार्थ ३प अने जे प्रदेशवाणा स्कंध “अवक्तव्यक” शब्दना वाच्यार्थ ३प समञ्जवे।

ओज प्रमाणे जेथी लधने आठ पर्यन्तना लांगाने वाच्यार्थ पणु समणु देवे।

ननु-आनुपूर्व्यादिपदानां ऽप्यणुक्कन्धादिकोऽर्थः अर्थपदप्ररूपणतालक्षणे प्रथमद्वारे उक्त एव तत्किमनेन पुनरुक्तेन? इति चेत्, उच्यते-तत्र पदार्थमात्रमुक्तम्, इह तु तेषामेवानुपूर्व्यादिपदानां भङ्गकरचना समादिष्टानामर्थः प्रोच्यते इति नास्ति कश्चिद् दोषः। यद्वा-नयमतवैचित्र्यप्रदर्शनार्थं वा पुनरर्थोपदर्शनं कृतमिति नास्ति कश्चिद् दोष इत्यलमधिकोक्त्या। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि। सैषा नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गोपदर्शनतेति ॥सू० ७९॥

शंका— इन आनुपूर्वी आदि पदों का ऽप्यणुक् आदि रूप वाच्यार्थ अर्थ पद प्ररूपणता रूप प्रथम द्वार में कह ही दिया गया है। फिर इस पुनरुक्त कथन से क्या लाभ ?

उत्तर— अर्थपदप्ररूपणता में पदार्थमात्र कहा गया है—तबकि यहाँ पर उन्ही आनुपूर्वी आदि पदोंका जो भंगरचना द्वारा स्पष्ट किये गये हैं अर्थ कहा गया है। अतः—यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं है। अथवा नय मत की विचित्रता दिखलाने के लिये पुनःअर्थ कथन किया गया है। इस प्रकार यह कथन सर्वथा निर्दोष है। इस विषय में अब अधिक क्या कहें। (से तं नैगमव्यवहाराणं भंगोपदर्शनया) इस प्रकार से नैगम व्यवहारनय संमत यह भंगोपदर्शनता है

भावार्थ—भंगसमुत्कीर्तनता द्वारा निर्दिष्ट हुए भंगों का इस भंगोपदर्शनता में अर्थ का कथन किया जाता है। इनका कौन वाच्यार्थ है यह बात

शंका—आ आनुपूर्वी आदि पदोना त्रिअणुक् आदि रूप वाच्यार्थ अर्थपद प्ररूपणता रूप पडेला द्वारमां कडी देवामां आ०ये० छे. छतां अडीं तेनुं इरीथी कथन शा माटे करवामां आ०युं छे ?

उत्तर—अर्थपदप्ररूपणतामां मात्र पदार्थनुं ज प्रतिपादन करायुं छे. परन्तु अडीं तो लंगरचना द्वारा रूपट करायेला अत्र आनुपूर्वी आदि पदोना अर्थ कडेवामां आ०ये० छे तेथी अडीं पुनरुक्तिदोषनो संलव रडेतो नथी अथवा नयमतनी विचित्रता अताववाने माटे अर्थनुं इरीथी कथन करवामां आ०युं छे आ रीते आ कथन अिलकुल निर्दोष ज छे आ विषयमां हुवे अधिक कडेवानी जर रडेती नथी. (से तं नैगमव्यवहाराणं भंगोपदर्शनया) आ प्रकारनी नैगम अने व्यवहार नयसंमत आ लंगोपदर्शनता छे.

भावार्थ—लंगसमुत्कीर्तनता द्वारा निर्दिष्ट थयेला लंगेना अर्थनुं कथन आ लंगोपदर्शनतामां करवामां आ०युं छे तेमनो कये कये वाच्यार्थ थाय छे अे वात व्याख्यामां रूपट करवामां आवी छे. अर्थपदप्ररूपणतामां

अथ क्रमप्राप्तं समवतारं प्ररूपयति-

मूलम्-से किं तं समोयारे? समोयारे-नेगमववहाराणं
 आणुपुवीदवाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुवीदवेहिं समोयरंति?
 अणाणुपुवीदवेहिं समोयरंति? अवत्तवयदवेहिं समोयरंति?
 नेगमववहाराणं आणुपुवीदवाइं अणाणुपुवीदवेहिं समोयरंति
 नो आणुपुवीदवेहिं समोयरंति णो अवत्तवयदवेहिं
 समोयरंति । नेगमववहाराणं अणाणुपुवीदवाइं कहिं
 समोयरंति? किं आणुपुवीदवेहिं समोयरंति? अणाणुपुवी
 दवेहिं समोयरंति? अवत्तवयदवेहिं समोयरंति?, नो आणु-
 पुवीदवेहिं समोयरंति अणाणुपुवीदवेहिं समोयरंति, नो अव-
 त्तवयदवेहिं समोयरंति । नेगमववहाराणं अवत्तवयदवाइं कहिं
 समोयरंति? किं आणुपुवीदवेहिं समोयरंति? अणाणुपुवीदवेहिं
 समोयरंति? अवत्तवयदवेहिं समोयरंति? नो आणुपुवीदवेहिं
 समोयरंति, णो अणाणुपुवीदवेहिं समोयरंति अवत्तवयदवेहिं
 समोयरंति । से तं समोयारे ॥सू०८०॥

छाया—अथ कोऽसौ समवतारः? समवतारः-नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वी-
 द्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति?, किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अनानुपूर्वीद्रव्येषु
 समवतरन्ति? अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति? नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि
 आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अवक्तव्यक-
 द्रव्येषु समवतरन्ति । नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति?

व्याख्या में स्पष्ट की गई है । अर्थपद प्ररूपणता में केवल अर्थपदरूप पदार्थ
 का कथन है-तब कि इसमें भिन्न २ रूपसे कथित भंगोका अर्थ है ।
 इसलिए पुनरुक्ति दोष के लिये यहां स्थान नहीं है । सू० ७९॥

तो केवल अर्थपद रूप पदार्थनुं व कथन थयुं छे, परन्तु ल'गो।पददर्शनतामां
 तो भिन्न भिन्न रूपे कथित ल'गोना अर्थनुं कथन थयुं छे तेथी अह्नीं
 पुनरुक्ति दोषनो संभव नथी. ॥ सू०७९॥

किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ? अनानुपूर्वी द्रव्येषु समवतरन्ति ? अवक्तव्यक
द्रव्येषु समवतरन्ति ? नो आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, अनानुपूर्वी द्रव्येषु
समवतरन्ति, नो अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति । नैगमव्यवहारयोः अवक्त-
व्यकद्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति ? किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ?
अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ? अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति ? नो आनुपूर्वी-
द्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वी द्रव्येषु समवतरन्ति, अवक्तव्यकद्रव्येषु
समवतरन्ति । स एष समवतारः ॥सू०८०॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ कोऽसौ समवतारः ? इति शिष्य प्रश्नः । उच्यते—समवतारः—समव-
तरणं समवतारः=समावेशः तेषामेवानुपूर्वीद्रव्याणां स्वस्थानपरस्थानान्तर्भाव-
चिन्तनप्रकारः, स एवं विज्ञेयः—तद्यथा—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि कुत्र
समवतरन्ति ?=नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वी द्रव्याणि कुत्र समाविशन्ति ?
किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ? किमनानुपूर्वीद्रव्येषु ? किमाऽवक्तव्यक द्रव्येषु ?

अब सूत्रकार समवतार की प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं समोयारे” इत्यादि ।

(से किं तं समोयारे) हे भदंत! पूर्व प्रक्रान्त समवतार का क्या स्वरूप है ?

उत्तर— (समोयारे) पूर्व प्रक्रान्त समवतार का स्वरूप इस प्रकार
से है—समवतार का तात्पर्य समावेश है—अर्थात् अनेक आनुपूर्वी
आदि जो द्रव्य हैं इनका अन्तर्भाव स्वस्थान में होता है या परस्थान
में होता है इस प्रकार के चिन्तन प्रकार का—विचार का जो उत्तर है
वही समावेश—या समवतार है । यह विचार इस प्रकार से होता है
कि—(नैगमव्यवहाराणं आणुपुन्वी द्रव्याहं—कहिं समोयरन्ति, किं आणु-
पुन्वी द्रव्येहिं समोयरन्ति अणुपुन्वी द्रव्येहिं समोयरन्ति ?)

इसे सूत्रकार समवतारनी प्ररूपणा करे छे—

“से किं तं समोयारे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं समोयारे ?) हे भगवन्! पूर्व प्रस्तुत समवतारनुं
स्वरूप कैपुं छे ?

उत्तर—(समोयारे) समवतारनुं स्वरूप नीचे प्रभाषे छे—समवतार अटवे समावेश
अटवे के अनेक आनुपूर्वी आदि के द्रव्ये छे तेमने अंतर्भाव स्वस्थानमां
थाय छे के परस्थानमां थाय छे, आ प्रकारना चिन्तनने—विचारने के उत्तर
छे तेने न समवतार अथवा समावेश कडे छे ते विचार आ प्रभाषे थाय
छे—(नैगमव्यवहाराणं आणुपुन्वी द्रव्याहं कहिं समोयरन्ति ? किं आणुपुन्वी

इति त्रिविधः प्रश्नः। उत्तरमाह—नेगमव्यवहारणं' इत्यादि। नेगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वीद्रव्येषु, न वाऽवक्तव्यकद्रव्येषु। अयं भावः—आनुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्यलक्षणायां स्वजातावेव वर्तन्ते, न ततोऽन्यत्र। यतः समवतारः—सम्यगविरोधेन अवतरणं=वर्तनम्—अविरोधवृत्तिर्ता प्रोच्यते। अविरोधवृत्तिता च स्वजातावेव स्यात्, न तु परजातौ। तस्याः परजातिवृत्तित्वे विरोधात्। ततश्च नानादेशवृत्तीनि सर्वाण्य-

नेगम और व्यवहारनय-संमत जो आनुपूर्वी द्रव्य है वे कहां समाविष्ट होते हैं? क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं या अनानुपूर्वी द्रव्यों में? या (अवक्तव्यद्वेषेहिं समोयरंति) अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं? (नेगम व्यवहारणं आणुपुञ्जी दब्बाइं अणुपुञ्जी दब्बेहिं समोयरंति)

उत्तर—नेगम व्यवहारनय संमत जो आनुपूर्वी द्रव्य हैं वे आनुपूर्वी द्रव्यों में ही समाविष्ट होते हैं (नो अणुपुञ्जीदब्बेहिं समोयरंति नो अवक्तव्यदब्बेहिं समोयरंति) अनानुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट नहीं हैं और न अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं। इसका भाव यह है—कि समस्त आनुपूर्वी द्रव्य, बिना किसी विरोध के अपनी जाति में ही रहते हैं। दूसरी जाति में नहीं। बिना विरोध के अपनी जाति में रहना इसी का नाम समवतार समावेश, अविरोधवृत्तिता है। यह

दब्बेहिं समोयरंति, अणुपुञ्जी दब्बेहिं समोयरंति) नेगम अने व्यवहार नयसंमत जे आनुपूर्वी द्रव्ये छे तेभने कयां समावेश थाय छे? शुं आनुपूर्वी द्रव्येभां समावेश थाय छे, के अनानुपूर्वी द्रव्येभां समावेश थाय छे? अथवा (अवक्तव्यदब्बेहिं समोयरंति) अवक्तव्यक द्रव्येभां समावेश थाय छे? (नेगमव्यवहारणं आणुपुञ्जीदब्बाइं अणुपुञ्जीदब्बेहिं समोयरंति) उत्तर—नेगम अने व्यवहार नयसंमत जे आनुपूर्वी द्रव्ये छे, तेभने आनुपूर्वी द्रव्येभां न समावेश थाय छे, (नो अणुपुञ्जी दब्बेहिं समोयरंति, नो अवक्तव्यदब्बेहिं समोयरंति) अनानुपूर्वी द्रव्येभां समावेश पणु थतो नथी अने अवक्तव्यक द्रव्येभां पणु समावेश थतो नथी आ कथननुं तात्पर्यं नीचे प्रमाणे छे—

समस्त आनुपूर्वी द्रव्ये कौं पणु जतना विरोध (अविरोध) बिना पोतानी जतिभां रहै छे—भील जतिभां रहैता नथी कौं पणु प्रकारना विरोध बिना पोतानी जतिभां रहैवुं तेनुं न नाम समवतार अथवा समा-

અવિરોધ વૃત્તિતા અપની જાતિ મેં હી હો સકતી હૈ દૂસરી જાતિ મેં નહીં । આનુપૂર્વી દ્રવ્યોંકા સમવતાર યદિ પર જાતિ મેં મી માના જાવેગા તો હસ પ્રકાર પરજાતિ મેં રહને પર ડનમેં સ્વજાતિ મેં રહને કી અવિરોધ વૃત્તિતા નહીં બન સકેગી । હસલિયે યહ નિશ્ચિત સિદ્ધાન્ત હૈ-કિ નાના દેશવર્તી સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય આનુપૂર્વી દ્રવ્યરૂપ અપની જાતિ મેં હી રહતે હૈં । પરજાતિ મેં નહીં । (નૈગમવ્યવહારાણં અણાણુપુઠ્વાઈ કહિં સમોયરંતિ કિં આણુપુઠ્વીદવ્વેહિં સમોયરંતિ ? અણાણુપુઠ્વી દવ્વેહિં સમોયરંતિ ? અવત્તવ્યદવ્વેહિં સમોયરંતિ) નૈગમ વ્યવહારનય સંમત સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય કહાં પ્રવિષ્ટ હોતે હૈં ? કયા આનુપૂર્વી દ્રવ્યોંમેં સમાવિષ્ટ હોતે હૈં, યા અવત્તવ્યક દ્રવ્યોંમેં સમાવિષ્ટ હોતે હૈં ?

ઉત્તર—(નો આણુપુઠ્વીદવ્વેહિં સમોયરંતિ, અણાણુપુઠ્વીદવ્વેહિં સમોયરંતિ, નો અવત્તવ્યદવ્વેહિં સમોયરંતિ) જિતને મી અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય હૈ—વે સબ ન તો આનુપૂર્વી દ્રવ્યોંમેં રહતે હૈં, ઓર ન અવત્તવ્યક દ્રવ્યોંમેં રહતે હૈં, કિન્તુ અપની જાતિ રૂપ જો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય હૈ ડનમેં હી રહતે હૈં । હસી પ્રકાર સે જિતને મી નૈગમવ્યવહાર નય સંમત અવત્ત-

વેશ અથવા અવિરોધવૃત્તિતા છે. આ અવિરોધવૃત્તિતાને સદ્ભાવ પોતાની જાતિમાં જ હોઈ શકે છે—અન્ય જાતિમાં હોઈ શકતો નથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યોને સમવતાર (સમાવેશ) નો પર જાતિમાં પણ માનવામાં આવે તો આ રીતે પર જાતિમાં રહેવાથી તેમનામાં સ્વજાતિમાં રહેવાની અવિરોધવૃત્તિતા સંભવી નહીં શકે તેથી એવો નિશ્ચિત સિદ્ધાંત છે કે વિવિધ દેશવર્તી સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ પોતાની જાતિમાં જ રહે છે—પરજાતિમાં રહેતું નથી.

(નૈગમવ્યવહારાણં અણાણુપુઠ્વાઈ કહિં સમોયરંતિ કિં આણુપુઠ્વી દવ્વેહિં સમોયરંતિ ? અણાણુપુઠ્વી દવ્વેહિં સમોયરંતિ ? અવત્તવ્યદવ્વેહિં સમોયરંતિ ?) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કયાં પ્રવિષ્ટ થાય છે ? શું તેઓ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થાય છે કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થાય છે, કે અવકતવ્યક દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થાય છે ?

ઉત્તર—(નો આણુપુઠ્વીદવ્વેહિં સમોયરંતિ, અણાણુપુઠ્વીદવ્વેહિં સમોયરંતિ, નો અવત્તવ્યદવ્વેહિં સમોયરંતિ) બેટલાં આનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે, તેઓ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં પણ રહેતાં નથી, અવકતવ્યક દ્રવ્યોમાં પણ રહેતાં નથી, પણ તેમની જાતિ રૂપ બે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો હોય છે તેમાં જ રહે છે. એજ પ્રમાણે નૈગમવ્યવહારનય સંમત બેટલાં અવકતવ્યક દ્રવ્યો છે તેઓ

प्यानुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्येष्वेव वर्तन्ते नान्यत्रेति । एवं नैगमव्यवहारसम्मतानि अनानुपूर्वी द्रव्याणि अनानुपूर्वीद्रव्येष्वेव वर्तन्ते, नैगमव्यवहारसम्मतानि अवक्तव्यकद्रव्याणि च अवक्तव्यकद्रव्येष्वेव वर्तन्ते, इत्यपि भावनीयम् । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—स एष समवतार इति ॥सू०८०॥

अथानुगमं निरूपयितुमाह—

मूळम्—से किं तं अणुगमे? अणुगमे नवविहे पणत्ते? तं जहा संतपयपरुवणया? दव्वप्पमाणं२च खित्त३ फुसणा य४। कालो य ५ अंतरं ६ भाग ७ भाव ८ अप्पावहुं ९ चेव ॥१॥
से तं अणुगमे ॥सू०८१॥

छाया—अथ कोऽसौ अनुगमः? अनुगमो नवविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सत्पद-परुपणता १ द्रव्यप्रमाणं च २ क्षेत्रं ३ स्पर्शना च ४ । कालश्च ५ अन्तरं ६ भागो ७ भावः ८ अल्पबहुत्वं चैव ॥१॥ स एषोऽनुगमः ॥सू० ८१॥

व्यक्त द्रव्य हैं वे सब अपनी जातिरूप अवक्तव्यक द्रव्यों में ही रहते हैं। ऐसा अर्थ अवशिष्ट पाठ को लगा लेना चाहिये। इस प्रकार यह समवतार का स्वरूप है ?

भावार्थ—आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक जितने भी द्रव्य हैं उनके विषय में ये तीन प्रश्न हो सकते हैं—कि आनुपूर्वी आदि समस्त द्रव्य कहां रहते हैं? अपनी जातिवालों में ही रहते हैं—या भिन्न जाति वालों में रहते हैं। इनका ही समाधान सूत्रकार ने इस सूत्रद्वारा किया है। उसमें यह कहा गया है कि नैगमव्यवहारसंमत समस्त आनुपूर्वी आदि द्रव्य अपनी २ जाति में ही रहते हैं—भिन्न जाति में नहीं। ॥सू० ८०॥

पणु पोतानी जति इय अवक्तव्यक द्रव्योभां न रडे छे; जेवो अर्थ भाकीना पाठना विषयभां समञ्ज जेवो जेप्रजे आ प्रकारनुं समवतारनुं स्वइय छे.

भावार्थ—आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक इय जेटलां द्रव्यो छे, तेमने विषे आ तणु प्रश्न संलपी शके छे—आनुपूर्वी आदि समस्त द्रव्य कथां रडे छे? शुं तेजो पोतानी जतिवाणाभां न रडे छे, के लिप्त जतिवाणाभां रडे छे? सूत्रकारे आ सूत्रभां आ प्रश्नोतुं न समाधान क्युं छे. तेमणु आ सूत्रभां जे वातनु प्रतिपादन क्युं छे के नैगमव्यवहारसंमत समस्त आनुपूर्वी आदि द्रव्य पोतपोतानी जतिभां न रडे छे—लिप्त जतिभां रडेतां नथी. ॥सू०८०॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं’ इत्यादि। अथ कौऽसी अनुगमः ? इति। अनुगमः—सूत्रार्थस्य अनुकूलम् अनुरूपं वा गमनं=व्याख्यानम्—अनुगमः। स नवविधः=नवप्रकारकः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः, तद्यथा—सत्पदप्ररूपणता—सन् विद्यमानो योऽर्थः=भावस्तद्विषयं पदं सत्पदं तस्य प्ररूपणं=प्रज्ञापनं तदेव सत्पदप्ररूपणता प्रथमं कर्तव्या। अयं भावः—स्तम्भकुम्भादीनि पदानि तदर्थविषयाणि दृश्यन्ते, शशशृङ्गगनकुमुदादीनि पदानि त्वसदर्थविषयाणि दृश्यन्ते। तत्रानु-

अथ सूत्रकार अनुगम का निरूपण करते हैं—

“से किं तं अणुगमे ?”। इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं अणुगमे ?) हे भदन्त ! अनुगम का क्या स्वरूप है ? उत्तर—(अणुगमे नवविहे पणत्ते) अनुगम नौ प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे—(संतपयपरूवणया) १ सत्पद-प्ररूपणता (द्वव्यपमानं च) २ द्रव्यप्रमाण (खित्त ३ फुसणाय ४) ३ क्षेत्र ४ स्पर्शन (कालोय, अंतर, भाग भाव अप्पाबहुं चैव) ५ काल ६ अन्तर, ७ भाग ८ भाव और ९ अल्पबहुत्व । (से तं अणुगमे) इस प्रकार यह अनुगम का स्वरूप है। सूत्र के अनुकूल अथवा अनुरूप व्याख्यान करना इसका नाम अनुगम है। यह पूर्वोक्त रूप से नौ प्रकार का कहा गया है। सत्पद-प्ररूपणतारूप १ प्रथम अनुगम के भेद में यह प्ररूपित किया जाता है कि जिस प्रकार से शशशृङ्ग आदि पद असदर्थ को विषय करने वाले

इसे सूत्रकार अनुगमनुं निरूपण करे छे—

“से किं तं अणुगमे ?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं अणुगमे ?) हे भगवन् ! पूर्वप्रस्तुत अनुगमनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(अणुगमे नवविहे पणत्ते—तं जहा) अनुगमना नीचे प्रमाणे नव प्रकार कहा छे—(संतपयपरूवणया) (१) सत्पद प्ररूपणता, (द्वव्यपमाणं च) (२) द्रव्यप्रमाण, (खित्त ३ फुसणाय ४) (३) क्षेत्र, (४) स्पर्शन, (कालो य, अंतर, भाग, भाव, अप्पाबहुं चैव) (५) काल, (६) अन्तर, (७) भाग, (८) भाव, अने (९) अल्पबहुत्व.

(से तं अणुगमे) का प्रकारनुं अनुगमनुं स्वरूप छे सूत्रने अनुकूल अथवा अनुकूल व्याख्यान करवुं तेनुं नाम अनुगम छे तेना उपर मुख्य नव प्रकार कहा छे. सत्पदप्ररूपणता रूप अनुगमना प्रथम लेहमां विद्यमान पदार्थविषयक पदनी प्ररूपण करवामां आवे छे ससलाने शिगडां होवानी

पूर्वादिपदानि स्तम्भादि पदानोव सदर्थविषयाणि, किं वा शशशृङ्गादिपदानोव
अपदर्थविषयाणि ? इति पर्यालोचनीयमिति । १। तथा-द्रव्यप्रमाणम्=आनुपूर्वादि-
पदवाच्यानां द्रव्याणां प्रमाणं=संख्यास्वरूपं पर्यालोचनीयम् । २। च पुनः क्षेत्रम्=
आनुपूर्वादिपदवाच्यद्रव्याणाम् आधारस्वरूपं वक्तव्यम् । कियति क्षेत्रे तानि
भवन्तीति चिन्तनीयमिति भावः । ३। तथा-स्पर्शना च पर्यालोचनीया । तानि
द्रव्याणि कियत् क्षेत्रं स्पृशन्तीति चिन्तनीयमिति भावः । ४। तथा-कालश्च वक्तव्यः-

होते हैं, उस प्रकार से ये आनुपूर्वी आदि पद असदर्थ विषयक नहीं हैं
किन्तु जिस प्रकार स्तम्भ आदि पद स्तम्भ आदिरूप अपने वास्तविक
अर्थ को विषय करने वाले होते हैं उसी प्रकार से आनुपूर्वी आदि पद
यथार्थरूपसे अपने सदर्थ को विषय करने वाले हैं । इस प्रकार विद्य-
मान पदार्थ विषयकपद की प्ररूपणा का नाम सत्पदप्ररूपणता है । यह
सत्पदप्ररूपणा अनुगम करते समय प्रथम कर्तव्य होती है । इसलिये उसे
अनुगम के स्रोतों में प्रथम स्थान दिया गया है । द्रव्य प्रमाण में आनु-
पूर्वी आदि पदों के द्वारा जिन द्रव्यों को कहा जाता है उनकी संख्या
कितनी है इसका विचार होता है ? क्षेत्र में-आनुपूर्वी आदि पदों द्वारा
कथित द्रव्यों का आधाररूप क्षेत्र विचारित होता है-अर्थात् ये आनुपूर्वी
आदि द्रव्य कितने प्रमाण क्षेत्र में होते हैं ऐसा विचार किया जाता है ।
स्पर्शन में ये आनुपूर्वी आदि द्रव्य कितने क्षेत्र को स्पर्श करते हैं

प्ररूपणा करवी ते असदर्थं प्ररूपणा छे, कारणु के तेने शिंशुडां न डोतां
नथी परन्तु आनुपूर्वी आदि पद असदर्थं विषयक डोता नथी पणु सदर्थं
विषयक डोय छे. जेवी रीते स्तम्भ आदि पद स्तम्भ आदि रूप पोताना
वास्तविक अर्थने विषय करनारा (प्रतिपादन करनारा) डोय छे, जेज प्रमाणु
आनुपूर्वी आदि पद यथार्थं रूपे पोताना सदर्थने विषय करनारा डोय छे.
आ रीते विद्यमान पदार्थविषयक पदनी प्ररूपणानुं नाम 'सत्पदप्ररूपणता'
छे, आ सत्पदप्ररूपणा अनुगम करती वभते पडेलीं करवा योग्य डोय छे.
तेथी तेने अनुगमना लेहोमां पडेलुं स्थान आपवामां आण्युं छे. १

द्रव्यप्रमाणुमां जे विचार करवामां आवे छे के आनुपूर्वी आदि पदो
द्वारा जे द्रव्येणुं कथन करवामां आवे छे तेमनी संख्या केटवी छे. २

क्षेत्रमां-आनुपूर्वी आदि पदो द्वारा कथित द्रव्येणा आधार रूप क्षेत्रने
विचार करवामां आवे छे-जेठले के जे आनुपूर्वी आदि द्रव्य केटला प्रमा-
णुवाणा क्षेत्रमां डोय छे, जेवो विचार करवामां आवे छे. ३

તેષાં દ્રવ્યાणां स्थितिलक्षणः कालश्च प्ररूपणीयः ॥२॥ तथा-अन्तरं वक्तव्यम् । विवक्षितस्वभावपरित्यागे सति पुनस्तद्भावप्राप्तिविरहलक्षणमन्तरं प्ररूपणीयमिति भावः । द्रव्यस्य विवक्षितस्वभावपरित्यागे सति पुनस्तद्भावप्राप्तौ च मध्ये यः कालः सोऽन्तरमुच्यते, इति बोध्यम् ॥६॥ तथा-भागश्च वक्तव्यः । आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कस्मिन् भागे वर्तन्ते, इत्येवं भागः प्ररूपणीय इति भावः ॥७॥ तथा भावः प्ररूपणीयः । आनुपूर्वीद्रव्याणि कस्मिन् भावे वर्तन्ते इत्येवं रूपो भावो वक्तव्य इत्यर्थः ॥८॥ तथा-अल्पबहुत्वं चैव=चापि वक्तव्यम् । आनुपूर्व्यादिद्रव्याणां

ऐसी पर्यालोचना होती है । क्षेत्र में केवल आधारभूत आकाश ही लिया जाता है और स्पर्शनता में आधार क्षेत्र के चारों तरफ के आकाश प्रदेश जो आधेय के द्वारा छुये गये हों वे भी लिये जाते हैं । आनुपूर्वी आदि द्रव्यों की स्थिति का विचार यह काल है । अनुगम में आनुपूर्वी आदि द्रव्यों की स्थिति कितनी है इस बात की पर्यालोचना की जाती है अन्तर नाम विरह काल का है । विवक्षित पर्याय के परित्याग हो जाने पर पुनः उसी पर्याय की प्राप्ति होने में जो बीच में अन्तर पडता है उसका नाम विरह काल है । अनुगम में इस अन्तर की प्ररूपणा करना आवश्यक माना गया है । आनुपूर्वी द्रव्यशेष द्रव्यों के किस भाग में रहते हैं इस प्रकार के भाग की भी प्ररूपणा अनुगम में कर्तव्य होती है आनुपूर्वी आदि द्रव्य किस भाव में रहते हैं इस प्रकार की प्ररूपणा का नाम भाव है । न्यूनाधिकता

स्पर्शन अनुगमમાં એવો વિચાર કરવામાં આવે છે કે તે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્ય કેટલા ક્ષેત્રને સ્પર્શ કરે છે ક્ષેત્રમાં કેવળ આધારભૂત આકાશ જ લેવામાં આવે છે અને સ્પર્શનામાં આધાર ક્ષેત્રની ચારે તરફના જે આકાશ પ્રદેશો આધેય દ્વારા સ્પૃષ્ટ થયા હોય, તેમને પણ લેવામાં આવે છે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોની સ્થિતિને વિચાર કરવો તેનું નામ 'કાળઅનુગમ' છે. કાળઅનુગમમાં આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોની સ્થિતિ કેટલી છે, એ વાતની પર્યાલોચના (વિચારણા) કરવામાં આવે છે વિરહકાળને અન્તર કહે છે. વિવક્ષિત (અમુક) પર્યાયને પરિત્યાગ થઈ ગયા બાદ ફરીથી એજ પર્યાયની પ્રાપ્તિ થવામાં વચ્ચે જેટલું અન્તર પડે છે તેટલા અન્તરને વિરહકાળ કહે છે. અનુગમમાં આ અન્તરની પણ પ્રરૂપણા કરવાનું આવશ્યક ગણાય છે.

આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શેષ (બાકીના) દ્રવ્યોના કયા ભાગમાં રહે છે, તે પ્રકારના ભાગની પણ પ્રરૂપણા અનુગમમાં કરવી પડે છે. ૭ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો કયા ભાવમાં રહે છે, તે પ્રકારની પ્રરૂપણાનું નામ ભાવઅનુગમ છે. ન્યૂનાધિકતાનું નામ અલ્પબહુત્વ છે દ્રવ્યાર્થિક નયને આધારે, પ્રદેશાર્થતાને

द्रव्यार्थताऽऽश्रयणेन प्रदेशार्थताऽऽश्रयणेन तदुभयार्थताऽऽश्रयणेन च परस्परं
स्तोकबहुत्वचिन्तालक्षणम् अल्पबहुत्वं चाऽपि प्ररूपणीयमिति भावः ॥९॥ प्रकृत-
मुपसंहरन्नाह—‘से तं’ इत्यादि । स एष अनुगम इति ॥सू० ८१॥

इत्थं संक्षेपतोऽर्थमभिधाय विस्तरेणार्थमभिधातुकामः सूत्रकारोऽनुगमस्य नवसु
भेदेषु सत्पदप्ररूपणारूपं प्रथमं भेदमाह—

मूलम्—नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि नत्थि ?
णियमा अत्थि, नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि
णत्थि?, णियमा अत्थि, नेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं किं
अत्थि णत्थि? णियमा अत्थि ॥सू० ८२॥

का नाम अल्पबहुत्व है । द्रव्यार्थिकनय के आश्रय से प्रदेशार्थता के
आश्रय से और तदुभय—द्रव्यार्थिक प्रदेशार्थिक इन दोनों के आश्रय
से इन आनुपूर्वी आदि द्रव्यों में जो स्तोक बहुत का विचार है वही अल्प-
बहुत्व है । अनुगम में इस अल्पबहुत्व की भी प्ररूपणा कर्तव्य होती
है । (से तं अणुगमे) इस प्रकार यह अनुगम का स्वरूप है ।

भावार्थ—सूत्रार्थ के अनुकूल अथवा अनुरूप व्याख्यान का नाम
अनुगम है । इस अनुगम में इन नौ ९, विषयों का विचार किया जाता
है । इसलिये वह अनुगम सत्पद प्ररूपणा आदि के भेद से नौ प्रकार
का कहा गया है । इन सत्पद प्ररूपणता आदि का क्या स्वरूप है इसे
स्वयं सूत्रकार विस्तार से आगे सूत्रों द्वारा स्पष्ट करते हैं । ॥ सू० ८१॥

आधारे अने तदुभय (ते णन्ने)—द्रव्यार्थिक अने प्रदेशार्थिक अने णन्नेने
आधारे आ आनुपूर्वी आदि द्रव्येमां ने अल्प अने षडुत्तनेो विचार
करवामां आवे छे तेनुं नाम न् अल्पषडुत्त छे अनुगममां आ अल्पषडु-
त्तनी प्रश्पणा पणु करवा योग्य गणाय छे (से तं अणुगमे) आ प्रकारनुं
अनुगमनुं स्वश्प छे.

भावार्थ—सूत्रार्थने अनुकूल अथवा अनुकूल व्याख्याननुं नाम अनुगम
छे. ते अनुगममां उपर्युक्त नव विषयेनो विचार करवामां आवे छे, तेथी
ते अनुगममां सत्पद प्रश्पणा आदि नव लेह कथा छे आ सत्पद प्रश्पणा
आदिना स्वश्पनुं विस्तार पूर्वकनुं निश्पणु सूत्रकार पोते न् आगणना सूत्रेमां
करवाना छे, तेथी अही तेनो भावार्थ सक्षिप्तमां आपवामां आव्ये छे. ॥सू० ८१॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति । नैगमव्यवहारयोः अनालुपूर्वी द्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति । नैगमव्यवहारयोः अवक्तव्यकद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति ॥ सू०८२ ॥

टीका—‘ नैगमव्यवहाराणं ’ इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा ॥ सू०८२ ॥

इस प्रकार संक्षेप से सत्पदप्ररूपणा आदि का अर्थ कहकर अब सूत्रकार विस्तार से उनका अर्थ करने की इच्छा से अनुगम के नौ भेदों का कथन करते हैं—‘ नैगमव्यवहाराणं ’ इत्यादि ।

शब्दार्थ—(नैगमव्यवहाराणं अणुपुर्वीदवाइं किं अत्थि नत्थि ?) नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्य है या नहीं है ?

(नियमा अत्थि) उत्तर—अवश्य हैं । (नैगमव्यवहाराणं अणुपुर्वी दवाइं किं अत्थि णत्थि ?) नैगम व्यवहारनयसंमत अनालुपूर्वी द्रव्य हैं या नहीं हैं ? उत्तर—(नियमा अत्थि) नियम से हैं—अवश्य २ हैं—(नैगमव्यवहाराणं अवक्तव्यकद्रव्यं किं अत्थि ? णत्थि ?—नियमा अत्थि) नैगम व्यवहारनय संमत अवक्तव्यक द्रव्य हैं या नहीं हैं ?

उत्तर—नियमतः हैं ।

भावार्थ—सूत्रकार ने इस सूत्रद्वारा नैगम व्यवहारनय संमत आनुपूर्वी आदि द्रव्य हैं ? यह बात नियमपद से जोर के साथ प्रकट की है

आ प्रभाषे अनुगमना सत्पदप्ररूपणु. आदि लेदोनेो अर्थ संक्षिप्तमां समजवीने हुवे सूत्रकार ते नवे लेदोनेो अर्थ विस्तारपूर्वक समजववा भागे छे. तेथी तेओ सत्पदप्ररूपणुता रुप तेना प्रथम लेदतुं नीयेना सूत्र द्वारा निरूपणु करे छे—“ नैगमव्यवहाराणं ” इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—(नैगमव्यवहाराणं अणुपुर्वी दवाइं किं अत्थि नत्थि ?) नैगम अने व्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्यो छे के नथी ?

उत्तर—(नियमा अत्थि) अवश्य छे ७.

प्रश्न—(नैगमव्यवहाराणं अणुपुर्वी दवाइं किं अत्थि णत्थि ?) नैगमव्यवहारनयसंमत अनालुपूर्वी द्रव्यो शुं छे के नथी ?

उत्तर—(नियमा अत्थि) नियमथी ७ अटके के अनालुपूर्वी द्रव्योतुं अस्तित्व पणु अवश्य छे ७.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रद्वारा नैगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी आदि द्रव्योतुं अस्तित्व होवानुं प्रतिपादन कथुं छे. “ तेमनुं अस्तित्व नियमथी ७ छे, ” आ प्रकारना कथन द्वारा तेमणे आ वातने बारपूर्वक

अथ द्रव्यप्रमाणरूपं द्वितीयभेदमाह—

मूलम्—नेगमव्यवहाराणं आणुपुण्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ? , नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं अणंताइं । एवं अणाणुपुण्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च अणंताइं भाणि-
यवाइं ॥सू०८३॥

छाया—नेगमव्यवहारयोराणुपूर्वीं द्रव्याणि किं संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि ? नो संख्येयानि नो असंख्येयानि अनन्तानि । एवम् अनानुपूर्वीं द्रव्याणि अवत्तव्यकद्रव्याणि च अनन्तानि भणितव्यानि ॥सू०८३॥

टीका—‘नेगमव्यवहाराणं’ इत्यादि ।

नेगमव्यवहारसम्भवानि आणुपूर्वीं द्रव्याणि किं संख्येयानि सन्ति ? किम-संख्येयानि सन्ति ? किंवाऽनन्तानि सन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—आणुपूर्वीं-द्रव्याणि नो संख्येयानि सन्ति, नो असंख्येयानि सन्ति । अपि तु अनन्तानि सन्ति ।

अर्थात् वे जोर देकर यह कह रहे हैं कि ये आणुपूर्वीं आदि द्रव्य सत्ता विशिष्ट हैं । ऐसे नहीं हैं, कि ये नहीं हैं । ॥ सूत्र० ८२ ॥

‘नेगमव्यवहाराणं’ इत्यादि ।

शब्दार्थ—(नेगमव्यवहाराणं आणुपुण्वी दव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ?) नेगमव्यवहारनय संमत अनेक आणुपूर्वीं द्रव्य-संख्यात हैं ? या असंख्यात हैं ? या अनन्त हैं ?

उत्तर—(नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं) नेगमव्यवहारनय संमत आणुपूर्वीं द्रव्य न संख्यात हैं और न असंख्यात हैं किन्तु (अणंताइं)

भ्रष्ट करी छे अटले के तेओ। लारपूर्वक अणुं कडे छे के आणुपूर्वीं आदि द्रव्ये। सत्ताविशिष्ट छे—ते द्रव्ये।नुं अस्तित्व अवश्य छे. अ. तेओ अवि-धमान नथी अम समणु ॥ सू०८२ ॥

“नेगमव्यवहाराणं आणुपुण्वी” इत्यादि—

शब्दार्थ—(नेगमव्यवहाराणं आणुपुण्वी दव्वाइं किं संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं अणंताइं ?) नेगमव्यवहार नय संमत अनेक आणुपूर्वीं द्रव्ये। शुं संख्यात छे, के असंख्यात छे, के अनन्त छे ?

उत्तर—(नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं, अणंताइं) नेगम अने व्यव-हारनयसंमत आणुपूर्वीं द्रव्ये। संख्यात पणु नथी, असंख्यात पणु नथी,

एवम् अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च अनन्तानि विज्ञेयानि । इदमत्र बोध्यम्—इहानुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्येषु प्रत्येकमनन्तान्यनन्तानि एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशे लभ्यन्ते, किं पुनः सर्वलोके । अतः संख्येयासंख्येयप्रकारद्वयं निषिध्य त्रिष्वपि स्थानेष्वानन्त्यमेवोच्यते । असंख्येये लोके कथमनन्तानि द्रव्याणि तिष्ठन्तीति न शङ्कनीयम् ? पुद्गलपरिणामस्य अचिन्त्यत्वात्, दृश्यते हि—एक प्रदीपप्रभा परमाणुव्याप्तेशु एकगृहान्तर्वर्त्याकाशप्रदेशेषु अनेकापरप्रदीपप्रभा-

अनन्तहैं । (एवं अणुपुञ्जीद्ववाइं अवत्तव्यगद्ववाइं च अणंताइं भाणियव्वाइं) इसी प्रकार से यह भी जानना चाहिये कि अनानुपूर्वीद्रव्य और अवक्तव्यकद्रव्य भी अनन्त हैं । संख्यात-असंख्यात नहीं हैं । इस कथन का यह भाव है कि आनुपूर्वी और अवक्तव्यक इन द्रव्यों में प्रत्येक आनुपूर्वी आदि द्रव्य अनन्त २ हैं । और प्रत्येक ये एक २ भी आकाश के प्रदेश में अनन्त अनन्त पाये जाते हैं । सर्वलोक की तो बात ही क्या है । इसलिये ये न संख्यात हैं और न असंख्यात हैं इसलिये इन तीनों में दोनों प्रकारता का निषेध कर अनन्तता की स्थापना की गई है । यहाँ ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये कि असंख्यात प्रदेशी आकाश रूप क्षेत्र में अनन्त आनुपूर्वी आदिद्रव्य कैसे ठहर सकते हैं क्योंकि पुद्गल का परिणामन अचिन्त्य होता है । यह तो हम अपनी आँखों से देखते हैं कि एक प्रदीप की प्रभा से व्याप्त एक गृहान्तर्वर्ती-आकाश के प्रदेशों में

परन्तु अनन्त छे (एवं अणुपुञ्जीद्ववाइं अवत्तव्यगद्ववाइं च अणंताइं भाणियव्वाइं) ओम् प्रभाणे अनानुपूर्वी द्रव्ये। पञ्च अनन्त छे अने अवत्तव्यक द्रव्ये। पञ्च अनन्त छे, ओम् समञ्जसुं जेधजे ते अन्ने प्रकारना द्रव्ये। संख्यात पञ्च नथी अने असंख्यात पञ्च नथी आ कथनने। सावार्थं ओ छे के आनुपूर्वी अनानुपूर्वी अने अवत्तव्यक आ द्रव्येमाना आनुपूर्वी आदि द्रव्ये। अनन्त-अनन्त छे, ते प्रत्येकने ओक ओक आकाशप्रदेशमां पञ्च अनन्त अनन्त इपे जइभाव डोय छे, तो पछी सर्वलोकनी तो बात न शी करवी । ते कारणे तेजाने संख्यात पञ्च कइया नथी अने असंख्यात पञ्च कइया नथी आ रीते त्रयेमां अन्ने प्रकारताने निषेध करीने अनन्ततातुं न प्रतिपादन करवामां आञ्चुं छे।

अछीं ओवी शंका करवी न जेधजे के असंख्यात प्रदेशी आकाश इप क्षेत्रमां अनन्त आनुपूर्वी आदि द्रव्ये। डेवी रीते नही शकै छे, कारणे के पुद्गलतुं परिणामन अचिन्त्य डोय छे, ओ तो आपणे आपणी आंजे वटे जेध शकिये छीजे के ओके प्रदीप (दीपक) नी प्रभाथी व्याप्त ओक गृहान्तर्वर्ती—(बरनी अंदर)

परमाणुनामव्यवस्थानम् । न चाक्षिदृष्टेऽप्यर्थेऽनुपपत्तिः, अतिप्रसङ्गात् । अत आनुपूर्व्यादि द्रव्याणामानन्त्ये न कश्चिद् दोष इति ॥सू० ८३॥

दूसरे ओर भी अनेक प्रदीपों की प्रभा के परमाणुओं का अवस्थान हो जाता है । आखों देखे हुये अर्थ में शंका करने जैसी कोई बात ही नहीं होती है । नहीं तो, अतिप्रसंग नाम का दोष आता है । इसलिये आनुपूर्वी आदि अनन्त द्रव्यों को असंख्यात प्रदेशी आकाश में अवस्थित होने में कोई बाधा नहीं आती है । और न आनुपूर्वी आदि द्रव्यों को अनन्त मानने में कोई आपत्ति आती है ।

भावार्थ— सूत्रकार ने अनुगम का द्वितीय भेद जो द्रव्य प्रमाण है उसके विषय में यह निर्णय किया है उसमें आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का प्रमाण अनन्त है ऐसा निर्देश कर ऐसा स्पष्ट किया है कि असंख्यात प्रदेशी आकाश लोकाकाश-में इनका अवगाहन बाधित नहीं हो सकता है क्योंकि पौद्गलिक परिणाम अचिन्त्य होना है । एकही घर के भीतर में रहे हुये आकाश में हम देखते हैं कि अनेक प्रदीप प्रभा के परमाणु समा जाते हैं । इसी प्रकार से अवगाहन शक्ति के योग से और परिणामन की विचित्रता से एक भी आकाश के प्रदेश में अनन्त आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का अवगाहन बाधित नहीं होता है । ॥सू० ८३॥

रहेल आकाशना प्रदेशोभां पीण' पणु अनेक प्रदीपोनी प्रलाना परमाणुओनु' अवस्थान (निवास) थछ नय छे. आंणे वडे जेथेला विषयभां शंकाणे केछ अवकाश न रहेतो नथी नही' तो. अतिप्रसंग नामने दोष आवे छे. तेथी आनुपूर्वी आदि अनन्त द्रव्योनु' असंख्यात प्रदेशी आकाशभां अवस्थान थवामां केछ बाधा (मुश्केली, अवरोध) रहेती नथी अने आनुपूर्वी आदि द्रव्योने अनन्त मानवामां पणु केछ बाधा संलवतो नथी.

भावार्थ—सूत्रकारे अनुगमना द्रव्यप्रमाण नामना पीण लेहनु' आ सूत्र द्वारा निरूपण कयुं छे. तेभां ओवुं कहेवामां आव्युं छे के आनुपूर्वी आदि द्रव्यो अनन्त छे. आ प्रकारनु' प्रतिपादन करीने ओवी स्पष्टता करवामां आवी छे के असंख्यातप्रदेशी आकाशभां-लोकाकाशभां तेभनी अवगाहना होवानी वात स्वीकारवामां केछ पणु प्रकारने बांधो संलवी शकतो नथी, कारणे के पौद्गलिक परिणाम अचिन्त्य होय छे. ओक न घरनी अंदर रहेला आकाशभां (अवकाशभां) अनेक प्रदीपोनी प्रलाना परमाणुओने सभावेश थछ नय छे, ओ वात तो आपणे आपणी आंणे वडे न जेछ शक्तीओ छीओ. ओन प्रमाणे अवगाहनशक्तिना योगथी अने परिणामननी विचित्रताथी आकाशनां ओक प्रदेशभां पणु अनन्त आनुपूर्वी आदि द्रव्योनु' अवगाहन (सभावेश) मानवामां केछ आपत्ति संलवी शकती नथी. ॥सू० ८३॥

सम्प्रति क्षेत्ररूपं तृतीयभेदमाह—

मूलम्—नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं लोयस्स किं संखि-
ज्जइभागे होज्जा, असंखिज्जइभागे होज्जा, संखेज्जेसु भागेषु
होज्जा, असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा, सव्वलोए होज्जा? एगं
दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइभागे वा
होज्जा संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा, असंखिज्जेसु भागेषु वा
होज्जा, सव्वलोए वा होज्जा। णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्व-
लोए होज्जा। नेगमववहाराणं अणुपुव्वीदव्वाइं किं लोयस्स
संखिज्जइभागे होज्जा जाव सव्वलोए वा होज्जा? एगं दव्वं
पडुच्च नो संखेज्जइ भागे होज्जा असंखिज्जइभागे होज्जा नो
संखेज्जेसु भागेषु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा नो
सव्वलोए होज्जा। एवं अत्रत्तव्वगदव्वाइं भाणियव्वाइं ॥सू०८४॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागे
भवन्ति, असंख्येयतमभागे भवन्ति, संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, सर्वलोके भवन्ति!
एकं द्रव्यं प्रतीत्य संख्येयेषु भागेषु वा भवन्ति, असंख्येयतमभागे वा भवन्ति,
संख्येयेषु भागेषु वा भवन्ति, असंख्येयेषु वा भवन्ति, सर्वलोके वा भवन्ति। नाना-
द्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति। नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि
किं लोकस्य संख्येयतमभागे भवन्ति यावत् सर्वलोके वा भवन्ति? एकं द्रव्यं
प्रतीत्य नो संख्येयतमभागे भवन्ति असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असंख्येयेषु
भागेषु भवन्ति, नो सर्वलोके भवन्ति, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके
भवन्ति। एवमेवक्तव्यकद्रव्याणि भणितव्यानि ॥सू०८४॥

टीका—'नेगमववहाराणं' इत्यादि—

अब सूत्रकार—तृतीय भेद के विषय में कहते हैं—

“नेगम ववहाराणं” इत्यादि।

इसे सूत्रकार अनुगमना त्रीण लेद ३५ क्षेत्रता विषयमा नीम
प्रभाषे कथन करे छे—'नेगमववहाराणं' इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं लोकस्य एकस्मिन् संख्येय-
तमे भागे भवन्ति=अवगाहन्ते ? १ किं वा एकस्मिन् असंख्येयतमे भागेऽवगाहन्ते ? २
अथवा-किं संख्येयभागेषु भवन्ति अवगाहन्ते ? ३ किमसंख्येयभागेषु भवन्ति-
अवगाहन्ते ? ४ अथवा-किं सर्वलोके भवन्ति ? ५ इति पञ्चप्रश्नाः । उत्तरमाह-
आनुपूर्वीद्रव्याणि=त्र्यणुकस्कन्धादीनि अनन्ताणुकस्कन्धान्तानि, तत्र-एकं द्रव्यं
प्रतीत्य=सामान्यत एकं द्रव्यमाश्रित्य किमपि लोकस्य संख्येयतमभागे भवति,

शब्दार्थ—(नैगमव्यवहाराणं आणुपुर्वी द्रवाइं) नैगम व्यवहार नय
संमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य (लोकस्य) लोक के (किं) क्या (संखि-
ज्जइ भागे) १ संख्यातवे भाग में (होज्जा) अवगाहित हैं ? या
(असंखिज्जइ भागे होज्जा २) असंख्यातवे भाग में अवगाहित हैं ?
(संखेज्जेसु भागेषु होज्जा) या ३ संख्यात भागों में अवगाहित
हैं ? या ४ (असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा) असंख्यात भागों में अव-
गाहित हैं ? या (सव्वलोए होज्जा ?) ५ सम्पूर्ण लोकमें अवगाहित हैं ?

उत्तर—(एगं द्रव्यं पडुच्च संखेज्जइ भागे वा होज्जा, असंखेज्जइ
भागे वा होज्जा संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा; असंखेज्जेसु भागेषु
वा होज्जा सव्वलोए वा होज्जा) त्र्यणुकादि अनन्ताणु स्कन्धों में से
सामान्य रूप से किसी एक द्रव्य की अपेक्षा करके कोई एक आनुपूर्वी
लोक के संख्यातवे भाग में तथा कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोक के
असंख्यातवे भाग में रहता है तथा कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोकके

शब्दार्थ—(नैगमव्यवहाराणं आणुपुर्वीद्रवाइं) नैगम अने व्यवहार.
नयसंमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य (लोकस्य किं संखिज्जइ भागे होज्जा) शुं
लोकना संख्यातमां लागमां अवगाहित छे ? के लोकना असंख्यातमां लागमां
अवगाहित छे, के (असंखिज्जइ भागे होज्जा २) लोकना असंख्यातमां लागमां
अवगाहित छे, के (संखेज्जेसु भागेषु होज्जा ३) संख्यात लागमां अवगाहित
छे; के (सव्वलोए होज्जा ?) संपूर्ण लोकमां अवगाहित छे ?

उत्तर—(एगं द्रव्यं पडुच्च संखेज्जइ भागे वा होज्जा, असंखेज्जइ भागे
वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा, असंखिज्जेसु भागेषु वा होज्जा, सव्व-
लोए वा होज्जा) त्र्यणु परमाणुवागा (त्रिप्रदेशी) थी अनंत पर्यन्तनां अणुवाणा
स्कंधा (अनंत प्रदेशी स्कंधा)मांथी सामान्य रूपे केई एक द्रव्यनी अपे-
क्षाये केई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यातमां लागमां अवगाहित
थयनि रहे छे, केई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना असंख्यातमां लागमां रहे

लोकस्य संख्याततमभागमवगाह्य तिष्ठतीत्यर्थः १ । तथा—किमपि लोकस्य असंख्येयतमे भागे भवति—तिष्ठति २ । तथा—किमपि तु लोकस्य संख्येयेषु भागेषु भवति ३ । तथा—लोकस्याऽसंख्येयेषु भागेषु भवति ४ । तथा किमपि सर्वलोके भवति=सर्वलोकमवगाह्य तिष्ठति ।

अयं भावः—अनन्तानन्तपरमाणुपञ्चनिष्पन्नमचित्तमहास्कन्धलक्षणम् आनुपूर्वीद्रव्यमेकं समयं सकललोकमवगाहते । ननु कथमयमचित्तमहारस्कन्धः सकललोकमवगाहते ? इति चेदाह—यथा—समुद्घातवर्तिकेवली सकललोकमवगाहते तथैवाचित्तमहास्कन्धोऽपि । तथाहि—लोकमध्यव्यवस्थितः समुद्घातवर्तिकेवली प्रथमसमये तिर्यग्संख्यातयोजनविस्तरं संख्यातविस्तरं वा ऊर्ध्वाधस्तु चतुर्दशर-

संख्यात भागों में तथा कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य, लोक के असंख्यात भागों में और कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोक में अवगाहित होकर रहता है । जैसे कि अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं के समूह से निष्पन्न हुआ अचित्त महास्कन्ध । यह अचित्त महा स्कन्धरूप आनुपूर्वी द्रव्य एक समय में सकल लोक को अवगाहित करता रहता है ।

शंका—यह अचित्त महारस्कन्ध सकललोक में कैसे अवगाहित हो जाता है ?

उत्तर—जैसे समुद्घातवर्ती केवली सकल लोक में समा जाते हैं—उसी प्रकार से अचित्त महास्कन्ध भी सकल लोक में अवगाहित हो जाता है—समा जाना है । अर्थात् लोक के मध्य में व्यवस्थित हुआ केवली जब समुद्घात करता है तो वह प्रथम समय में आत्मा के प्रदेशों को दण्डाकार रूप में परिणमना है । यह दण्डाकार रूप परिणमन

छे, तथा केँ अेक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यात भागोमाँ रहे छे, केँ अेक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना असंख्यात भागोमाँ रहे छे, अने केँ अेक आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोकमाँ अवगाहित धरने रहे छे जेम के अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओना समूहमाँथी निष्पन्न थयेवेँ अचित्त महास्कन्ध ते अचित्त महास्कन्ध इप आनुपूर्वी द्रव्य अेक समयमाँ सकल लोकने अवगाहित करी शके छे.

प्रश्न—ते अचित्त महास्कन्ध सकल लोकमाँ केवी रीते अवगाहित धरने जय छे.

उत्तर जेवी रीते समुद्घातवर्ती केवली सकल लोकमाँ समाई जय छे—अवगाहित धरने जय छे, अेक प्रमाणे अचित्त महास्कन्ध पण सकल लोकमाँ अवगाहित धरने जय छे—समाई जय छे अेटवेँ केँ लोकनी मध्यमाँ रहेवेँ केवणी न्यारे समुद्घात करे छे, त्यारे प्रथम समये आत्मप्रदेशोने दण्डाकार

ज्वायतं विश्रसापरिणामेन वृत्तं दण्डं करोति, द्वितीये कपाटं करोति, तृतीये मन्थानं करोति, चतुर्थेऽन्तरालपूरणेन सकललोकव्याप्तिं करोति, पञ्चमेऽन्तराणि संहरति, षष्ठे मन्थानं, सप्तमे कपाटम्, अष्टमे पुनर्दण्डं संहरति । ततः स्वावस्थां प्रतिपद्यते । एवमचित्तमहास्कन्धोऽपि समयमेकं सकललोकमवगाहते इति ।

तथा-नानाद्रव्याणि=आनुपूर्वीपरिणामयुक्तानि अनन्तानि द्रव्याणि प्रतीत्य=आश्रित्य द्रव्याणि नियमात्=नियमतः सर्वलोके भवन्ति=सकललोकमवगाहन्ते ।

उनका तिर्यङ्ग में संख्यात योजन तक अथवा असंख्यात योजन तक विस्तृत होता है । तथा ऊर्ध्व और नीचे में १४राजु प्रमाण लंबा होता है । आत्मप्रदेशों का यह दण्डाकार रूप परिणामन स्वाभाविक होता है द्वितीय समय में उनके वे आत्मप्रदेश कपाट के आकार में परिणम जाते हैं । तृतीय समय में मन्थान रूप हो जाते हैं । और चौथे समय में अन्तराल की पूर्ति कर वे सकल लोक में व्याप्त होजाते हैं पांचवें समय में अंतरालों को संकुचित कर छठवें समय में मन्थान का सातवें समय में कपाट का आठवें समय में दण्ड का संकोच कर अपने आप में समाजाते हैं- पूर्वावस्थापन्न हो जाते हैं । इसी प्रकार अचित्त महास्कन्ध भी एक समय में सकल लोक को व्याप्त कर लेता है । (गाणादव्वाइं पद्भुच्च नियमा सब्वलोए होज्जा) तथा आनुपूर्वी परिणाम युक्त अनंतद्रव्यों को आश्रित करके वे द्रव्य नियम से सर्वलोक में

इये परिष्णभावे छे. तेमनुं आ इंडाकार इप परिष्णमन तिर्यङ्ग लोकमां स'भ्यात योजन सुधी अथवा अस'भ्यात योजन सुधी विस्तृत थयेछुं डाय छे, तथा उर्ध्व' अने अधोभागमां १४ यौद राजुप्रमाण लाम्पुं डाय छे. आत्म-प्रदेशानुं आ इंडाकार इप परिष्णमन स्वाभाविक डाय छे. भील समयमां तेमना ते आत्मप्रदेशो कपाटना आकारमां परिष्णमन पाये छे त्रील समयमां मन्थानइप थर्छ लय छे, अने योथा समयमां अन्तरालनी पूर्ति करीने सकण लोकमां व्याप्त थर्छ लय छे. पांचमा समयमां अंतरालीने संकुचित करीने छटा समयमां मन्थानने संकुचित करीने, सातमां समयमां कपाटने अने आठमां समयमां इंडने संकुचित करीने पोताना शरीरमां ज समाध लय छे अटले के पूर्वावस्थांमां आवी लय छे जेज प्रमाणे अचित्त महास्कंध पण्जेक समयमां सकण लोकने व्याप्त करी ले छे. (गाणादव्वाइं पद्भुच्च नियमा सब्वलोए होज्जा) तथा आनुपूर्वी परिष्णाम युक्त अनंत द्रव्योनी अपेक्षाजे विचर करवांमां आवे तो ते द्रव्यो समस्त लोकमां अवगाहित छे. आ इथननुं

अयं भावः—सर्वलोकाकाशस्य नास्ति कोऽपि प्रदेशो यत्र सूक्ष्मपरिणामपरिणतानि अतन्तानि आनुपूर्वीद्रव्याणि न सन्ति, किन्तु सर्वत्र सन्ति। नस्वेतापि नानाद्रव्याणि संख्येयतमादिप्रदेशेषु सन्तीति। एवं नैगमव्यवहारसम्मतानानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यविषयेऽपि पञ्च पञ्च प्रश्नाः। उत्तरस्त्वेवं विज्ञेयः—एकं द्रव्यमाश्रित्यानानुपूर्वीद्रव्यम् अवक्तव्यकद्रव्यं च लोकस्य असंख्येयतमभागे भवति,

अवगाहितं है। तात्पर्यं इसका यह है कि समस्त लोकाकाश का कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं है कि जहां पर सूक्ष्म परिणाम से परिणत हुए अनंत आनुपूर्वी द्रव्य न हो। अर्थात् लोक में सर्वत्र आनुपूर्वी द्रव्य है। ये आनुपूर्वी अनेक द्रव्य लोक के संख्यातवे अथवा असंख्यातवे भाग में नहीं हैं। इसी प्रकार से नैगम और व्यवहारनय संमत अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी पांच २ प्रश्न होते हैं जो (नैगमव्यवहारणं अणाणुपुञ्जी दब्बाइ किं लोयस्स संखिज्जइ भागे, होज्जा जाइ सव्वलोए वा होज्जा?) इन पदों द्वारा व्यक्त किये गये हैं। इन प्रश्नों का उत्तर भी (एगं दब्बं पडुच्च नो संखेज्जइ भागे, होज्जा, असंखिज्जइ भागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा नो सव्वलोए होज्जा) इनसूत्रांशों द्वारा इसप्रकार दिया गया है—कि एक द्रव्य को आश्रित करके अनानुपूर्वी द्रव्य और अवक्तव्यक द्रव्य लोक के असंख्यातवे भाग में अवगाहित

तात्पर्यं એ છે કે સમસ્ત લોકાકાશનો કોઈ પણ પ્રદેશ એવો નથી કે જ્યાં સૂક્ષ્મ પરિણામથી પરિણત થયેલાં અનંત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો ન હોય એટલે કે લોકમાં સર્વત્ર આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ છે તે અनेक आनुपूर्वी द्रव्या लोकाकाशसंख्यातमां अथवा असंख्यातमां भागमां नथी पञ्च समस्त लोकमां છે, એમ સમજવું એજ પ્રમાણે નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવકતવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ પાંચ-પાંચ પ્રશ્નો પૂછી શકાય છે. જે પ્રશ્નો નીચેના સૂત્ર દ્વારા પૂછવામાં આવ્યા છે. (નૈગમવ્યવહારણં અણાણુપુજ્જી દબ્બાઈ કિં લોયસ્સ સંખિજ્જઇભાગે હોજ્જા, જાઇ સવ્વલોપ વા હોજ્જા?) નૈગમ અને વ્યવહાર નય સંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું? લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં, કે સંખ્યાત ભાગોમાં કે અસંખ્યાત ભાગોમાં કે સમસ્ત લોકમાં અવગાહિત થઈને રહે છે?

ઉત્તર—“एगं दब्बं पडुच्च नो संखेज्जइ भागे, होज्जा, असंखेज्जइ भागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा. नो सव्वलोए होज्जा” जे એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અને અવકતવ્યક દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં જ અવગાહિત થઈને રહે છે, સંખ્યાતમાં ભાગમાં, સંખ્યાત ભાગોમાં, અસંખ્યાત

न तु संख्येयतमभागे । अनानुपूर्वीद्रव्यं हि परमाणुरुच्यते स चैकैकाकाशप्रदेशा-
वगाढ एव भवति, अवक्तव्यद्रव्यं च द्रव्यणुकस्कन्धः, स चैकप्रदेशावगाढो द्वि-
प्रदेशावगाढो वा स्यादित्यनयोरसंख्येयभागवृत्तित्वमेव । नानाद्रव्याणि प्रतीत्य
नियमात्सर्वलोकावगाहना पूर्ववद् बोध्या ॥ सू० ८४ ॥

होकर रहते हैं । संख्यातवे' भाग में नहीं । परमाणु अनानुपूर्वी द्रव्य
है । वह आकाश के एकप्रदेश में ही अवगाहित- होकर रहता है ।
क्यों कि वह स्वयं एकरुप्रदेशी है । द्रव्यणुक जो स्कंध है । वह अवक्त-
व्यक द्रव्य है । वह लोकाकाश के एक प्रदेश में भी रहता है और दो
प्रदेश में भी रहता है । इस प्रकार इन दोनों की वृत्ति लोक के असं-
ख्यातवे' भाग में ही है, नाना अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को
आश्रित करके नाना अनानुपूर्वी द्रव्य और अवक्तव्यक नियम से समस्त
लोकाकाश में रहते हैं । क्यों कि आकाश का कोई प्रदेश ऐसा नहीं है
कि जहां पर इनका सद्भाव न हो ।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा आनुपूर्वी आदि द्रव्यों के रहने के
विषय में किये गये पांच प्रश्नों का उत्तर एक और नाना द्रव्यों को लेकर
दिया गया है—वे पांच प्रश्न इस प्रकार से हैं—१ अनानुपूर्वी द्रव्य क्या
लोक के संख्यातवे' भाग में रहते हैं ? २ या असंख्यातवे' भाग में
रहते हैं ३ या लोक के संख्यात भागों में रहते हैं ? या ४ असंख्यात

भागोंमें के सर्वलोकमें अवगाहित थधने रहेता नथी परमाणु अनानुपूर्वी
द्रव्यरूप छे. ते आकाशना एक प्रदेशमें ज अवगाहित थधने रहे छे जे
अणुवाणो जे स्कंध छे ते अवक्तव्यक द्रव्यरूप छे. ते लोककाशना एक
प्रदेशमें पणु रहे छे अने जे प्रदेशमें पणु रहे छे आ रीते ते अन्नेनी
अवगाहना लोकना असंख्यातमां भागमां ज छे. विविध अनानुपूर्वी द्रव्यो
अने अवक्तव्यक द्रव्योनी अपेक्षाये विचार करवामां आवे तो तेयो समस्त
लोककाशमां रहे छे, अम समसु' जेधये, कारणु के आकाशना कौध पणु
प्रदेश अये नथी के जथां तेमने। सद्भाव न डाय.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्र द्वारा आनुपूर्वी आदि द्रव्योनी अवगाहना
विषे पूछवामां आवेला पांच प्रश्नोने। उत्तर एक द्रव्य अने अनेक द्रव्योने
अनुलक्षीने आये छे ते पांच प्रश्नो नीचे प्रमाणे छे—(१) आनुपूर्वी
द्रव्यो शुं लोकना संख्यातमां भागमां रहे छे ? अथवा (२) असंख्यातमां

भागों में रहते हैं ४ या समस्त लोक में रहते हैं ? ५

उत्तर- पुद्गल द्रव्य का आधार यद्यपि सामान्य रूप से लोकाकाश ही नियत है तथापि-विशेष रूप से भिन्न २ पुद्गल द्रव्य के आधार क्षेत्र के परिमाण में अन्तर होता है, वही अन्तर इस उत्तर में प्रकट किया गया है- क्योंकि भिन्न २ व्यक्ति होते हुए भी पुद्गलों के परिमाण में विविधता है एक रूपता नहीं है। इसलिये यहाँ उनके आधार का परिमाण अनेक रूप से कहा गया है-सारांश यह है कि आधार भूत क्षेत्र के प्रदेशों की संख्या आधेयभूत पुद्गल द्रव्य के परमाणुओं की संख्या से न्यून या उसके बराबर हो सकती है अधिक नहीं। इसलिये एक परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य आकाश के एकही प्रदेश में स्थित रहता है। पर द्रव्य एक प्रदेश में भी ठहर सकता है और दो प्रदेश में भी। इसी प्रकार उत्तरोत्तर संख्या बढ़ते बढ़ते त्र्यणुक, चतुरणुक, यावत् संख्याताणुक स्कन्ध एक प्रदेश, दो प्रदेश, तीन प्रदेश यावत् संख्यात प्रदेश क्षेत्र में ठहर सकते हैं। संख्याताणु द्रव्य की स्थिति के लिये असंख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र की आवश्यकता नहीं-पड़ती।

भागमां रडे छे ? (३) अथवा शु' लोकना संख्यात भागोमां रडे छे ? (४) अथवा शु' लोकना असंख्यात भागोमां रडे छे ? (५) अथवा शु' समस्त लोकमां रडे छे.

उत्तर-पुद्गल द्रव्येना आधार जे के सामान्य रूपे लोकाकाश न नियत छे, छतां पशु विशेष रूपे भिन्न भिन्न पुद्गलद्रव्यना आधारक्षेत्रना परिमाणमां अन्तर होय छे, ओज अन्तर आ उत्तरमां प्रकट करवामां आंयुं छे-कारणु के भिन्न भिन्न पदार्थ होवा छतां पशु पुद्गलेना परिमाणमां विविधता छे, ओकरूपता नथी तेथी अही' तेमना आधारनु' परिमाणु (प्रमाणु) अनेक रूपे कडेवामां आंयुं छे. आ कथनने भावार्थ ओ के आधारभूत क्षेत्रना प्रदेशोनी संख्या आधेयभूत पुद्गलद्रव्यना परमाणुओनी संख्या करतां न्यून अथवा तेना जेटली न होई शके छे, पशु अधिक होई शकती नथी तेथी ओक परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य आकाशना ओक न प्रदेशमां रडे छे, पशु जे आणुवाणुं अवकतव्यक द्रव्य आकाशना ओक प्रदेशमां पशु रही शके छे अने जे प्रदेशमां पशु रही शके छे. आ रीते उत्तरोत्तर परमाणुओनी अथवा प्रदेशोनी वृद्धि थतां थतां त्र्यणुवाणा, चार आणुवाणा यावत् संख्याताणुक स्कन्ध ओक प्रदेशमां, जे प्रदेशमां, त्र्यणु प्रदेशमां यावत् संख्यात प्रदेश रूप क्षेत्रमां-रही शके छे. संख्यात आणुवाणा

सम्प्रति स्पर्शनाद्वाररूपं चतुर्थभेदमाह-

मूलम्-नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखे-
ज्जइभागं फुसंति? असंखेज्जइभागं फुसंति? संखेज्जे भागे
फुसंति? असंखेज्जे भागे फुसंति? सव्वलोगं फुसंति?। एगं
दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागं वा फुसइ जाव सव्वलोगं वा
फुसइ। णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोगं फुसंति। नेगम-
ववहाराणं अणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागं फुसंति

असंख्याताणुक स्कंध एक प्रदेश से लेकर अधिक से अधिक अपने बरा-
बर की असंख्यात संख्यावाले प्रदेशों के क्षेत्र में ठहर सकता है।
अनंताणुक और अनंतानंताणुक स्कंध भी एक प्रदेश, दो प्रदेश इत्यादि
क्रम से बढ़ते २ संख्यात प्रदेश और असंख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र में
ठहर सकते हैं उनकी स्थिति के लिये अनन्त प्रदेशात्मक क्षेत्र की जरू-
रत नहीं है। पुण्डूल द्रव्य का सबसे बड़ा स्कंध जिसे अचित्त महास्कंध
कहते हैं और जो अनंतानंत अणुओं का बना हुआ होता है वह भी
असंख्यात प्रदेश लोकाकाश में ही ठहर जाता है। इस प्रकार आनु
पूर्वी आदि एक द्रव्य की अपेक्षा इस कथन को हृदय में धारण करके
इस सूत्र को लगाना चाहिये। नाना द्रव्य की अपेक्षा इन समस्त द्रव्यों
का अवगाहन समस्त लोकाकाश में है ॥ सू० ८४ ॥

द्रव्यने रडेवा भाटे असंख्यात प्रदेशोवाणा क्षेत्रनी जर पडती नथी असं-
ख्यात अणुवाणो स्कंध ओक प्रदेशथी लधने वधारेमां वधारे पोताना नेटली
ज असंख्यात संख्यावाणा प्रदेशोना क्षेत्रमां रही शके छे अनंत अणुवाणो
अथवा अनंतानंत अणुवाणो स्कंध पणु ओकथी लधने संख्यात पर्यन्तना
प्रदेशवाणा अने असंख्यात प्रदेशोवाणा क्षेत्रमां रही शके छे, तेने रडेवाने
भाटे अनंत प्रदेशोवाणा क्षेत्रनी आवश्यकता रडेती नथी पुद्गल द्रव्यने
सौधी भाटे स्कंध के नेने अचित्त महास्कंध रडे छे अने जे अनंतानंत
अणुओने अनेलो डोय छे, ते पणु लोकाकाशना असंख्यात प्रदेशोमां ज
रही शके छे. आ प्रमाणे अनानुपूर्वी आदि स्कंधद्रव्यनी अपेक्षाओ आ
कथनने हृदयमां धारणु करीने आ सूत्रने अर्थ समजवे नेधओ विविध द्रव्योनी
अपेक्षाओ आ समस्त द्रव्योनु अवगाहन समस्त लोकाकाशमां छे. ॥सू०८४॥

जाव सव्वलोगं फुसंति ? एगं दव्वं पडुच्च नो संखिज्जइ भागं फुसइ, असंखिज्जइ भागं फुसइ नो संखिज्जे भागे फुसइ, नो असंखिज्जे भागे फुसइ, नो सव्वलोगं फुसइ । नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोगं फुसंति । एवं अवत्तव्वगदव्वाइं भाणियव्वाइं ॥सू० ८५॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वी द्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? असंख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? संख्येयान् भागान् स्पृशन्ति ? असंख्येयान् भागान् स्पृशन्ति ? सर्वलोकं स्पृशन्ति ? । एकं द्रव्यं प्रतीत्य लोकस्य संख्ये-

अब सूत्रकार स्पर्शनाद्वार नामक चतुर्थ भेद का कथन करते हैं—
“नेगमववहाराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ— (नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइ भागं फुसंति ?) नैगमव्यवहारनय संमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवे भाग का स्पर्श करते हैं ? (असंखेज्जइ भागं फुसंति) या असंख्यातवे भाग का स्पर्श करते हैं (संखेज्जे भागे फुसंति) या संख्यात भागों का स्पर्श करते हैं ? (असंखेज्जे भागे फुसंति) या असंख्यात भागों का स्पर्श करते हैं ? (सव्वलोगं फुसंति) समस्त लोक का स्पर्श करते हैं— ?

उत्तर— (एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइ भागं वा फुसइ जाव सव्व लोगं वा फुसइ) व्यणुक स्कंध से लेकर अनन्ताणु स्कंध

इसे सूत्रकार अनुगमना स्पर्शना नामना योथा द्वारनुं निरूपणु करे छे—
“नेगमववहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ— (नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइ भागं फुसंति ?) नैगम अने व्यवहार नयसंमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्ये शुं लोकना संप्र्यातमां लागेना स्पर्श करे छे ? (असंखेज्जइ भागं फुसंति ?) के असंप्र्यातमां लागेना स्पर्श करे छे ? (संखेज्जे भागे फुसंति ?) के संप्र्यात भागेना स्पर्श करे छे ? (असंखेज्जे भागे फुसंति ?) के असंप्र्यात भागेना स्पर्श करे छे ? (सव्वलोगं फुसंति ?) के समस्त लोकना स्पर्श करे छे ?

उत्तर— (एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइ भागं वा फुसइ जाव सव्वलोगं वा फुसइ) त्रिअणुक स्कंधी लघने अनन्ताणु स्कंध पर्यन्तना आनु-

यत्तमभागं वा स्पृशति यावत् सर्वलोकं वा स्पृशति । नाना द्रव्याणि प्रतीत्य निय-
मात् सर्वलोकं स्पृशन्ति । नैगमव्यवहारयोरनानुपूर्वीं द्रव्याणि लोकस्य किं संख्ये-
यतमभागं स्पृशन्ति । यावत् सर्वलोकं स्पृशन्ति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य नो संख्येय-
तमभागं स्पृशति, असंख्येयतमभागं स्पृशति, नो संख्येयान् भागान् स्पृशति, नो
असंख्येयान् भागान् स्पृशति, नो सर्वलोकं स्पृशति । नाना द्रव्याणि प्रतीत्य
नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति । एवम् अवक्तव्यक द्रव्याणि भणितव्यानि ॥ सू० ८५ ॥

तक के आनुपूर्वीं द्रव्यों में से सामान्यतः कोई एक आनुपूर्वीं द्रव्य-
लोक के संख्यातवे भाग की कोई एक लोक के असंख्यातवे भाग की
कोई एक संख्यात भागों की कोई एक असंख्यात भागों की और कोई
एक सर्व लोक की स्पर्शना करते हैं (णाणा द्वाइं पडुच्च नियमा सव्व-
लोगं फुसंति) तथा नना आनुपूर्वीं द्रव्य-अनन्त आनुपूर्वीं परिणामयुक्त
द्रव्य नियम से सर्वलोक की स्पर्शना करते हैं । (नैगमव्यवहाराणं अणा-
णुव्वी द्वाइं लोयस्स किं संखेज्जइ भागं फुसंति, जाव सव्वलोगं
फुसंति ?) नैगम व्यवहार नय संमत समस्त अनानुपूर्वीं द्रव्यों में कोई
एक अनानुपूर्वीं द्रव्य क्या लोक के संख्यातवे भाग की स्पर्शना करते हैं ?

उत्तर- (एगं दव्वं पडुच्च नो संखिज्जइ भागं फुसइ, असंखि
ज्जइ भागं फुसइ नो संखिज्जे भागे फुसइ, नो असंखिज्जे भागे
फुसइ, नो सव्वलोगं फुसइ) एक द्रव्य की अपेक्षा लेकर अनानुपूर्वीं

पूर्वीं द्रव्य लोकना संख्यातमां लागेना स्पर्श करे छे, केछि ओक आनुपूर्वीं
द्रव्य लोकना असंख्यातमां लागेना स्पर्श करे छे, केछि ओक आनुपूर्वीं द्रव्य
लोकना संख्यात लागेना, केछि ओक आनुपूर्वीं द्रव्य लोकना असंख्यात
लागेना, अने केछि ओक आनुपूर्वीं द्रव्य समस्त लोकना स्पर्श करे छे.
(णाणा द्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोगं फुसंति) तथाविविध आनुपूर्वीं
द्रव्य-अनन्त आनुपूर्वीं परिणामयुक्त द्रव्य नियमधी सर्वलोकनी स्पर्शना करे छे.

(नैगमव्यवहाराणं अणाणुपुव्वी द्वाइं लोयस्स किं संखेज्जइ भागं
फुसंति, जाव सव्वलोगं फुसंति ?) नैगम अने व्यवहार नयसंमत समस्त
अनानुपूर्वीं द्रव्योमांतुं केछि ओक अनानुपूर्वीं द्रव्य शुं लोकना संख्यातमां
लागेनी के असंख्यातमां लागेनी, के संख्यात लागेनी, के असंख्यात
लागेनी के समस्त लोकनी स्पर्शना करे छे ?

उत्तर- (एगं दव्वं पडुच्च नो संखिज्जइ भागं फुसइ, असंखिज्जइ
भागं फुसइ, नो संखिज्जे भागे फुसइ, नो असंखिज्जे भागे फुसइ, नो सव्व-

टीका—'नेगमत्रवहाराणं' इत्यादि ।

क्षेत्रद्वारवत् अत्रापि प्रश्नोत्तरप्रकारो बोध्यः । क्षेत्रस्पर्शनयो स्त्वयं विशेषः । परमाणुद्रव्यस्यावगाहना—एकरिमन्नाकाशप्रदेशे भवति तत् क्षेत्रम्, स्पर्शना तु परमाणुद्रव्यस्य सप्तसु प्रदेशेषु, षड् दिग्ब्यवस्थितान् षट्प्रदेशान् यत्र च स्वावगाहना तमपि प्रदेशं स्पृशति परमाणुद्रव्यम् ।

द्रव्यलोक के संख्यात भाग की स्पर्शनता नहीं करता है । किन्तु असंख्यात भाग की ही स्पर्शना करता है । लोक के संख्यात भागों की वह स्पर्शना नहीं करता है, असंख्यात भागों की वह स्पर्शना नहीं करता है और न वह सर्वलोक की स्पर्शना करता है । (नाणा द्वाद्वाहं पडुच्च नियमा सव्वल्लोयं फुसंति) नाना द्रव्यों की अपेक्षा वे अनानुपूर्वी द्रव्य नियमतः समस्त लोक की स्पर्शना करते हैं । (एवं अवत्तव्वगद्व्वाहं भाणियव्व्वाहं) इसी प्रकार से नाना अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी जानना चाहिये ।

भावार्थ—क्षेत्रद्वार की तरह यहां पर भी प्रश्नोत्तर का प्रकार जानना चाहिये । क्षेत्र के स्पर्शन में यह भेद है कि परमाणुद्रव्य की जो अवगाहना एक आकाश प्रदेश में होती है वह क्षेत्र है, तथा परमाणु की जो निवासस्थान रूप आकाश के चारों ओर के प्रदेशों को छूना होता है वह स्पर्शना है यह उत्कृष्ट स्पर्श-छूना परमाणु का आकाश

लोगं फुसइ) एक अनानुपूर्वी द्रव्यनी अपेक्षाये विचार करवामां आवे तो आ प्रमाणे कथन समञ्जसु—एक अनानुपूर्वी द्रव्य लोकना संप्र्यातमां लागनी स्पर्शना करतुं नथी, संप्र्यात लागोनी स्पर्शना पणु करतुं नथी, असंप्र्यात लागोनी स्पर्शना पणु करतुं नथी, अने समस्त लोकनी पणु स्पर्शना करतुं नथी, पणु असंप्र्यातमा लागनी न स्पर्शना करे छे । (नाणाद्व्वाहं पडुच्च नियमा सव्वल्लोयं फुसंति) विविध द्रव्योनी अपेक्षाये विचार करवामां आवे तो ते अनानुपूर्वी द्रव्यो नियमथी न समस्त लोकनी स्पर्शना करे छे (एवं अवत्तव्वगद्व्वाहं भाणियव्व्वाहं) ऐज प्रमाणे अवक्तव्यक द्रव्योनी स्पर्शना विषे पणु समञ्जसु ।

भावार्थ—क्षेत्रद्वारना जेवा न अडीं पणु प्रश्नोत्तरना प्रकार समञ्जवा क्षेत्र अने स्पर्शनमां जे लेः छे के परमाणुद्रव्यनी अवगाहना जे एक आकाशप्रदेशमां थाय छे ते क्षेत्रइय छे, तथा परमाणु वडे तेना निवासस्थान इय आकाशना आरे तरइना प्रदेशोना जे स्पर्श थाय छे तेनुं नाम स्पर्शना छे । परमाणुना ते उत्कृष्ट स्पर्श आकाशना सात प्रदेशोमां थाय छे, ते सात

यत्तु सौगताः-परमाणुद्रव्यमादिमध्यान्त्यादिविभागरहितं निरंशमेकस्वरूप-
मिष्यते तस्य परमाणुद्रव्यस्य पृथक्स्पर्शनाऽभ्युपगमे तदेकत्वसिद्धान्तो-
नोपपद्यते-यदि येनैव स्वरूपेण परमाणुः पूर्वाद्यन्यतरदिशया सम्बद्धस्तेनैवान्य-
दिग्भिरित्युच्यते, तर्हि-अयं पूर्वदिक्सम्बद्धः, अयं चापरदिक्सम्बद्ध इत्यादि
विभागो न स्यात्, एकस्वरूपत्वात्, यदि विभागाभाव एक इष्ट इत्युच्यते, तर्हि-

के सात प्रदेशों में होता है चारों दिशाओं के चार प्रदेश और ऊपर
नीचे के दो एवं जहां उसकी अपनी अवगाहना है एक वह प्रदेश इस
प्रकार ये सात प्रदेश हैं। 'इस स्पर्शना के विषय में जो बौद्धों का
ऐसा कहना है कि परमाणु द्रव्य तो आदि मध्य, और अन्त आदि के
विभाग से निरंश एक रूप है। फिर वह छह दिशाओं को स्पर्श करता
है, ऐसा स्वीकार कैसे किया जा सकता है? यदि ऐसा स्वीकार किया जावे
तो उसमें एकत्व का सिद्धान्त घटित नहीं हो सकता है क्यों कि जिस-
स्वरूप से परमाणु पूर्वआदि किसी एक दिशा से सम्बद्ध है यदि वह
उसी स्वरूप से अन्य दिशाओं से भी सम्बद्ध है तो इस मान्यता में
फिर ऐसा विभाग नहीं बन सकता कि यह परमाणु का पूर्व दिग् सम्बद्ध
प्रदेश है यह अपर दिक्सम्बद्ध प्रदेश है। क्यों कि वह एकरूप स्वीकार
किया गया है। अतः यह मानना चाहिये कि परमाणु जब सप्त प्रदेशों
को छूता है तो उसमें विविध रूपता होने से वह एक रूप नहीं हो

प्रदेश नीचे प्रमाणे छे-चारै दिशाओना चार प्रदेश, उपरनेा एक प्रदेश, अने
नीचेनेा एक प्रदेश अने ज्यां तेनी पोतनी अवगाहना छे ते एक प्रदेश-
आ रीते ते वधारेमां वधारे सात आकाशप्रदेशोनेा स्पर्श करे छे. आ
स्पर्शना विषयमां औद्घोनी ओवी जे मान्यता छे के परमाणु द्रव्य तो आदि,
मध्य अने अन्त आदिना विभागथी रहित निरंश (अंश रहि-)-एकइप
ज छे तो पछी ओवे स्वीकार केवी रीते करी शकय के ते छ दिशाओनेा
स्पर्श करे छे? जे ओवे सिद्धांत स्वीकारवामां आवे तो तेमां एकत्वनेा
सिद्धांत घटित थछ शकतो नथी, कारण के स्वइपे परमाणु पूर्वादि केछ ओक
दिशामां संभद्ध छे, ओवां ज स्वइपे जे ते अन्य दिशाओ साथे पछु
संभद्ध होय, तो आ मान्यतामां ओवे विभाग संभवी शकतो नथी के
परमाणुनेा आ प्रदेश पूर्वादिभाग साथे संभद्ध छे अने आ प्रदेश पश्चिम
दिग्भाग साथे संभद्ध छे, कारण के तेने तो निरंश इपे (एक इपे) स्वीका-
रवामां आव्यो छे. तेथी ओवुं मानवुं जेछओ के परमाणु सात प्रदेशोनेा
स्पर्श करतुं होवाथी तेमां विविध रूपता होवाथी ते एकइप होछ शकतुं

षड्दिक्सम्बन्धकथनं विरुध्यते, यदि येन स्वरूपेण परमाणुः पूर्वाघन्यतरदिशया सम्बद्धस्तद्भिन्नभिन्नस्वरूपेणापरदिग्भिः संबध्यते इत्युच्यते तर्हि परमाणोः षट् स्वरूपाश्रया एकत्वं हीयते, इति वदन्ति तन्न सम्यक्।

परमाणुद्रव्यतया निरंश एव, एक एव, तथापि परमाणोः परिणामशक्तिरचिन्त्याऽस्तीति तथाविधपरिणामसद्भावाद् दिक्षट्केन सह नैरन्तर्येणावस्थानं संभवतीति तस्य सप्तसु प्रदेशेषु स्पर्शना कथनं नानुपपन्नमिति ॥ सू० ८५ ॥

सकता है। यदि एक रूपना मानने के लिये विविध रूपतारूप विभाग का अभाव ही इष्ट रखा जावे तो फिर उसमें षड्दिक छ दिशाओंका संबंध कथन विरुद्ध पड़ता है। तात्पर्य इसका यह है कि परमाणु जिस स्वरूप से पूर्व आदि किसी एक दिशा के साथ संबद्ध है उसका वह निजरूप भिन्न है और अपर आदि दिशाओं के साथ संबद्ध स्वरूप भिन्न है तो फिर इस प्रकार स्वरूप में भिन्नता आने के कारण—छह स्वरूपता की आपत्ति का प्रसंग हो जाने के कारण— उसमें एकत्व की हीनता ही आती है।

अतः बौद्धों का ऐसा कथन ठीक नहीं है— क्यों कि परमाणु द्रव्यरूप होने के कारण निरंश ही है एक ही है फिर भी परमाणु की परिमाण शक्ति अचिन्त्य है इसका कारण उस प्रकार के परिणाम के सद्भाव से छह दिशाओं के साथ उसका निरन्तर रूप अवस्थान संभवित है। इसलिये सात प्रदेशों में स्पर्श ना कथन अघटित नहीं है ॥ सू० ८५ ॥

नथी जे ऐकइपता मानवाने माटे विविध रूपता रूप विभागने अभाव न छे मानवामा आवे, तो तेमां छ दिशाओ साथे संबद्ध होवानुं कथन विरुद्ध पडे छे आ कथनने भावार्थे ऐ छे के परमाणु जे स्वरूपे पूर्वादि के छे ऐक दिशानी साथे संबद्ध छे, तेनुं ते निजरूप भिन्न छे अने पश्चिम आदि दिशाओनी साथे संबद्ध स्वरूप पणु भिन्न होय तो आ रीते स्वरूपमां भिन्नता आववाने कारणे छ प्रकारना स्वरूपे मानवाने प्रसंग प्राप्त थशे अने ते कारणे तेमां ऐकत्वने अभाव आववाने प्रसंग प्राप्त थशे।

तेथी भौद्धोनी ऐ प्रकारनी मान्यता साथी नथी, कारणे के परमाणु द्रव्य रूप होवाने कारणे निरंश न छे—ऐक न छे, छतां पणु परमाणुनी परिणामशक्ति अचिन्त्य छे, ते कारणे ते प्रकारना परिणामना सद्भावमां छ दिशाओनी साथे तेनुं निरंतर रूप अवस्थान संभवित छे, तेथी सात दिशाओमां तेना स्पर्शनुं कथन अघटित (अनुचित) नथी ॥ सू० ८५ ॥

उक्तं स्पर्शनाद्वारम्, इदानीं पञ्चमं कालद्वारमाह—

मूलम्—नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं कालओ केव-
च्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहणणेणं एगं समयं उक्कोसेणं
असंखेज्जं कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा । अणा-
णुपुव्वी दव्वाइं अवत्तव्वग दव्वाइं च एवंचेव भाणियव्वाइं । सू. ८६।

भाषा—नेगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति? एकं
द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम् । नाना द्रव्याणि
प्रतीत्य नियमात् सर्वाद्धा । अनानुपूर्वीद्रव्याणिवत्तव्यक द्रव्याणि च एवमेव
भणितव्यानि ॥ सू० ८६ ॥

स्पर्शना द्वार को कह कर अब सूत्रकार पाँचवें कालद्वार का कथन
करते हैं—“नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं) नेगम और व्यव-
हार इन दो नय संमत आनुपूर्वी द्रव्य (कालओ) काल की अपेक्षा से
(केवच्चिरं) कितने काल तक (होई) आनुपूर्वी रूप से रहते हैं? (एगं
दव्वं पडुच्च जहणणेणं एगं समयं)

उत्तर—आनुपूर्वी द्रव्य एक आनुपूर्वी की अपेक्षा को लेकर कम
से कम एक समय और (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) अधिक से
अधिक असंख्यात काल तक आनुपूर्वी रूप से रहता है । (णाणा-
दव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा) तथा नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपे-

स्पर्शनाद्वारतुं निश्चय्य करीने इवे सूत्रकार अनुगमना पांचमां वेद
इयं काणद्वारतुं कथन करे छे—

“ नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं) नेगम अने व्यवहार,
आ ये नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्ये (कालओ) काणनी अपेक्षाअे (केवच्चिरं)
केटला काण सुधी (होई) आनुपूर्वी इये रडे छे ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च जहणणेणं एगं समयं) अेक आनुपूर्वी द्रव्यनी
अपेक्षाअे विचारवाभां आवे तो अेक आनुपूर्वी द्रव्य आछाभां आछा अेक
समय सुधी अने (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) वधारेभां वधारे असंख्यात काण
सुधी आनुपूर्वी इये रडे छे, (णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा) तथा विविध
आनुपूर्वी द्रव्येनी अपेक्षाअे विचार करवाभां आवे तो अनेक आनुपूर्वी
द्रव्येनी स्थिति सर्वकाणनी डेअ छे आ कथननेा भाषार्थ नीअे प्रभाअे छे,

टीका—' जेगमववहारणं ' इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि कालतः=कालमाश्रित्य कियच्चिरं= कियन्तं कालं भवन्ति? । आनुपूर्वीत्रपर्यायेण कियत्कालम् अवतिष्ठन्ते? इति प्रष्टुराशयः । सूत्रे ' होई ' इत्येकवचनमार्पत्वात् उत्तरमाह—आनुपूर्वीद्रव्यम् एकं द्रव्यं प्रतीत्य=आश्रित्य जघन्यत एकं समयमवतिष्ठते, उक्त्वैतः असंख्येयं कालमवतिष्ठते । नानाद्रव्याणि=बहूनि आनुपूर्वीद्रव्याणि प्रतीत्य=आश्रित्य तु नियमत एषां सर्वाङ्गा=सार्वकालिकी स्थितिर्भवति । अयं भावः—परमाणुद्रव्यादी अपरैकादिपरमाणुमीलने सति अपूर्वं किञ्चिदानुपूर्वीद्रव्यमुत्पद्यते, ततः समयाद्दूर्वं पुनरप्ये-

क्षा लेकर अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों की स्थिति सार्वकालिकी है तात्पर्य इसका यह है कि आनुपूर्वी द्रव्य का आनुपूर्वी द्रव्य रूप में रहने का जो एक समय रूप काल कहा गया है, वह इस प्रकार से है कि—परमाणुद्रव्य आदि में दूसरे एक आदि परमाणुओं के मिलने पर एक कोई अपूर्व आनुपूर्वी द्रव्य उत्पन्न हो जाता है बाद में एक समय के अनन्तर उसमें से एक आदि परमाणु के छूट जाने पर वह आनुपूर्वी द्रव्य उस रूप से अपगत (नष्ट) हो जाता है । इसलिये एक आनुपूर्वी द्रव्य की, अपेक्षा से आनुपूर्वी रूप में रहने का काल जघन्य से एक समय कहा गया है । और जब वही एक आनुपूर्वीद्रव्य असंख्यात काल तक आनुपूर्वी द्रव्य रूप में रहकर एक आदि परमाणु से वियुक्त होना है तब उसकी अवस्थितिका उकृष्ट समय असंख्यात का कहा गया है । अवस्थिति काल किसी भी एक

आनुपूर्वी द्रव्येना आनुपूर्वी द्रव्यरूपे रक्षेवानो नो एक समय रूपे काण कक्षो छे ते आ प्रकारे कक्षो छे—

परमाणु द्रव्येषुआदिमां (ये परमाणुमां) केअ एक आदि अन्य परमाणु भणवाथी केअ एक अपूर्व द्रव्य उत्पन्न थअ नय छे तयार आद एक समय पथी तेमांथी एक आदि परमाणु वियुक्त (अलग) थअ नवाथी ते आनुपूर्वी द्रव्य ते रूपमांथी अपगत (नष्ट) थअ नय छे अटवे के ते रूपे रक्षेवं नथी ते कारणे एक आनुपूर्वी द्रव्येनी अपेक्षाये आनुपूर्वी रूपे रक्षेवानो काण आछामां आछे एक समयेना कक्षो छे. अने नयारे अने एक आनुपूर्वीद्रव्य असंख्यात काण सुधी आनुपूर्वी द्रव्यरूपे रक्षीने एक आदि परमाणु रूपे वियुक्त (अलग) थअ नय छे तयारे तेनी अवस्थितिने उकृष्ट समय असंख्यात काणने कक्षो छे. केअ पथु एक आनुपूर्वी द्रव्येनी अप-

काघणौ वियुक्ते सति तदानुपूर्वीद्रव्यमपगतं भवति, अत एकमानुपूर्वीद्रव्यमधि-
कृत्य जघन्यत एकः समयोऽवस्थितिकालः । यदा तु तदेवैकमानुपूर्वीद्रव्यमसङ्-
ख्यातकालं तद्भावेन स्थित्वाऽनन्तरोक्तस्वरूपेण वियुज्यते, तदा तस्य उत्कृष्टतो
ऽसंख्येयोऽवस्थितिकालः, नत्वनन्तोऽवस्थितिकालः, उत्कृष्टाया अपि पुद्गल-
संयोगस्थितेरसंख्येयकालत्वात् । बहूनि आनुपूर्वीद्रव्याणि आश्रित्य तु एषामानु-
पूर्वीद्रव्याणां नियमतः सर्वादा स्थिति र्वोध्या । यतो नास्ति कश्चित्तादृशः कालो
यत्र कालेऽयं लोक आनुपूर्वीद्रव्यरहितो भवेदिति ।

आनुपूर्वी द्रव्य का आनुपूर्वीरूप में रहने का काल अनन्त नहीं होता
है । क्योंकि उत्कृष्ट भी पुद्गल संयोगस्थिति असंख्यात काल की ही
होती है । अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा तो इन आनुपूर्वीद्रव्यों
की स्थिति नियमतः सर्व कालकी है । क्योंकि लोक में ऐसा कोई
काल नहीं है कि जिसमें ये आनुपूर्वी द्रव्य नहीं हों । (अणाणुपुन्वी
द्व्वाहं अवत्तव्वगद्व्वाहं च एवं चेव भाणियव्वाहं) अनानुपूर्वी
द्रव्यों में और अवक्तव्यक द्रव्यां में भी जघन्य और उत्कृष्ट रूप काल
एक द्रव्य और अनेक द्रव्यों की अपेक्षा लेकर पूर्वोक्त रूपसे ही जानना
चाहिये । तात्पर्य यह है कि कोई एक परमाणु एक समय तक अकेला
रहकर बाद में किसी दूसरे परमाणु से संश्लिष्ट हो जाता है । इस-
लिये एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा से उस अनानुपूर्वी रूप एक द्रव्य
का अवस्थिति काल जघन्य से एक समय का और जब वही एक परमाणु

स्थितिकाण (आनुपूर्वीं इपे रडेवानो कण) अनन्त डोतो नथी, कारण के
उत्कृष्ट पुद्गलसंयोग स्थिति पणु अत्रंभ्यात काणनी न डोय छे. अनेक
आनुपूर्वीं द्रव्येानी अपेक्षाअे तो ते आनुपूर्वीं द्रव्येानी स्थिति नियमथी न
सर्वकालीन डोय छे, कारण के दोउभां अेवे। केअ काण नथी के न्यारे
आनुपूर्वीं द्रव्येानुं अस्तित्त्व न डोय.

(अणाणुपुन्वीद्व्वाहं अवत्तव्वगद्व्वाहं च एवं चेव भाणियव्व) अनानु-
पूर्वीं द्रव्येभां अने अवक्तव्यक द्रव्येभां पणु अेक द्रव्य अने अनेक द्रव्येानी
अपेक्षाअे पूर्वोक्त जघन्य काण अने उत्कृष्ट काण समणु देवे। आ कथनने
लावार्थ नीअे प्रभाणु छे. केअ अेक परमाणु अेक समय सुधी अेकडुं रडीने
त्यार आअ केअ थीअ परमाणु साथे संश्लिष्ट थअ जाय छे तेथी अेक
अनानुपूर्वीं द्रव्येने। अवस्थितिकाण (अनानुपूर्वीं द्रव्य इपे रडेवानो काण)
आअभां अेअे अेक समयने। कही छे, अने न्यारे अेअ अेक परमाणु

एवमेव—अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च वक्तव्यानि । आनु-
पूर्वीद्रव्येषु अवक्तव्यद्रव्येषु च जघन्यत उत्कृष्टतश्चापि पूर्वोक्त एवावस्थानकालः ।

अयं भावः—कश्चित्परमाणुरेकं समयमेकाकी स्थित्वा ततोऽन्येन परमाणुना
संश्लिष्टो भवति । अत एकमनानुपूर्वीद्रव्यमधिकृत्य जघन्यत एकः समयोऽवस्थिति-
कालः । स एवैकः परमाणु र्यदा असंख्यातं कालं तद्भावेन स्थित्वाऽन्येन परमाणुना
संश्लिष्यति, तदा उत्कृष्टतोऽसंख्येयोऽवस्थितिकालो भवति । नानाद्रव्याण्याश्रित्य
तु पूर्ववदेव सर्वाद्धा स्थितिर्बोध्या ।

परमाणुद्वयलक्षणमवक्तव्यकद्रव्यमपि यदा समयमेकं संयुक्तं स्थित्वा ततो
वियुज्यते, तदवस्थमेव वा पुनरन्येन परमाणुना संयुज्यते, तदा तस्यावक्तव्यक
द्रव्यतया, एकममयलक्षणः कालस्तस्य जघन्यतोऽवस्थितिकालो बोध्यः । यदा तु

असंख्यात काल तक अकेले रहने की स्थिति में रहकर बाद में किसी
दूसरे परमाणु से संश्लिष्ट हो जाना है तब उसका अवस्थितिकाल
उत्कृष्ट से असंख्यात काल माना जाता है नाना द्रव्यों की अपेक्षा
से इन अनानु पूर्वी द्रव्यों की अवस्थिति का समय सर्वकाल माना
गया है क्योंकि लोक में ऐसा कोईसामी समय नहीं है कि जिसमें
ये अनानुपूर्वी द्रव्य न हों । एक परमाणुरूप द्रव्यरूप अवक्तव्यक द्रव्य
भी जब एक समय तक संयुक्त रह कर फिर वियुक्त हो जाता है तब
उसका अवस्थिति काल जघन्य से एक समय माना गया है, अथवा
जब वह उसी स्थिति में एक समय तक रहते हुए किसी और दूसरे
परमाणु से संयुक्त हो जाता है तब उसका अवस्थितिकाल जघन्य से एक
समय का माना गया है । और जब वही अवक्तव्यक द्रव्य असंख्यात

असंख्यात काण सुधी ओकलुं रडीने त्यार भाद केध भीज परमाणुनी साथे
संश्लिष्ट थध नय छे, त्यारे तेने अवस्थिति काण अधिमां अधिक असं-
ख्यात काणने मनाय छे विविध द्रव्योनी अपेक्षाओ विचारवामां आवे ते
ते अनानुपूर्वी द्रव्योने अवस्थितिकाण सर्वकालीन मानवामां आव्ये छे,
कारणु के लोकमां ओवे केध समय नथी के न्यारे आ अनानुपूर्वी द्रव्योनुं
अस्तित्व न न डोय.

जे परमाणु ३प ओक अवक्तव्यक द्रव्य पणु न्यारे ओक समय सुधी
संयुक्त रडीने त्यार भाद विलक्त थध नय छे, त्यारे तेने नघन्य अवस्थिति
काण ओक समयने मानवामां आवे छे अथवा न्यारे ते ओन स्थितिमां
ओक समय सुधी रडीने त्यार भाद केध ओक भीज परमाणु साथे संश्लिष्ट

तद्देवावक्तव्यकद्रव्यं असंख्यातं कालं तद्भावेन स्थित्वा विघटते, तदवस्थमेव वा पुनरन्येन परमाणुना संश्लिष्यति, तदा उत्कृष्टतो अवक्तव्यकद्रव्यतया असंख्यात-कालस्तदवस्थितिकालो बोध्यः। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु पूर्ववत् सर्वाद्वाऽव-स्थितिकालो बोध्यः ॥सू० ८६॥

सम्प्रति पष्ठमन्तरद्वारमाह-

मूलम्-णोगमववहाराणं आणुपुत्रीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। णोगमववहा-राणं अणाणुपुत्रीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहणणेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। णोगमववहाराणं अवत्तग-

काल तक तद्भाव से स्थित रहकर फिर विघटित हो जाता है, अथवा जब यह उसी स्थिति में असंख्यात काल तक रहता हुआ बाद में किसी दूसरे परमाणु से संश्लिष्ट हो जाता है तब उत्कृष्ट से उसका अवक्तव्यक द्रव्य रूप से अवस्थिति काल असंख्यात काल प्रमाण माना जाता है। नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा इन अवक्तव्यक द्रव्यों का अवस्थिति काल सर्वकालिक माना गया है। क्योंकि लोक में ऐसा कोई भी समय नहीं है कि जिसमें इनकी अवस्थिति न हो ॥सू० ८६॥

थઈ जय छे त्थारे तेनो अवस्थिति काण जधन्यनी अपेक्षाअे अेक समयनो जण्णाय छे, अने न्यारे ते अवक्तव्यक द्रव्य असंख्यात काण सुधी अेज्ज स्थितिमां रहीने त्थार भाद विघटित (विलकत) थई जय छे, अेट्ठे के न्यारे ते अेज्ज स्थितिमां असंख्यात काण सुधी रहे छे अने त्थार भाद ईअं णीण परमाणु साथे संश्लिष्ट (संयुक्त) थई जय छे, त्थारे तेनो अवक्तव्यक द्रव्यरूपे रहेवानो काण (अवस्थिति काण) अधिकमां अधिक असंख्यात काण प्रमाण मानवामां आव्थे छे.

विविध अवक्तव्यक द्रव्योनी अपेक्षाअे ते अवक्तव्यक द्रव्योनी अव-स्थिति काण (अवक्तव्यक द्रव्यरूपे रहेवानो समय) सर्वकालीन क्खो छे. अेट्ठे के अेवो केअं पणु समय नथी के न्यारे तेमनी अवस्थिति (अस्तित्व) न नो डाय. ॥ सू० ८६ ॥

द्वयानं अंतरं कालो केवच्चिरं होई ? एगं द्रव्यं पदुच्च-
जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं, नाणादव्वाइं पदुच्च-
णत्थि अंतरं ॥सू० ८७॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीं द्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ?
एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालम्, नानाद्रव्याणि
प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् । नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीं द्रव्याणाम् अन्तरं कालतः किय-
च्चिरं भवति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण असंख्येयं

अब सूत्रकार अन्तरद्वारकी प्ररूपणा करते हैं

“जेगमववहाराणं” इत्यादि

शब्दार्थ—प्रश्न—(जेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालो
केवच्चिरं होई)

प्रश्न—नैगम व्यवहारनय संमत आनुपूर्वीं द्रव्यों का व्यवधान
काल की अपेक्षा कितने काल का होता है ? अर्थात् आनुपूर्वीं द्रव्य
आनुपूर्वीं स्वरूप का परित्याग करके पुनः उस आनुपूर्वीं स्वरूप को
जितने काल के व्यवधान से प्राप्त करते हैं उस काल व्यवधान का नाम
अर्थात् विरह काल का नाम अंतर है । यहां अंतर यह काल की अपेक्षा
से शिष्य ने पूछा है । क्योंकि अंतर क्षेत्र की अपेक्षा से भी होता है ।
इसीलिये यहां उस क्षेत्र गत अंतर के परिहारार्थ काल पद का प्रयोग
सूत्रकार ने किया है ।

७वे सूत्रकार अन्तरद्वारनी प्ररूपणा करे छे—“जेगमववहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—(जेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालो केव-
च्चिरं होई ?) नैगम अने व्यवहार, आ अने नयसंमत आनुपूर्वीं द्रव्यनुं
व्यवधान (अंतरविरहमाण) काणनी अपेक्षाअे डेटला काणनुं डोय छे ?
आनुपूर्वीं द्रव्य आनुपूर्वीं स्वरूपने त्याग कर्या णाह इरीथी ते आनुपूर्वीं
द्रव्यरूप स्वरूपने जेटला काणना व्यवधान (अंतर) णाह प्राप्त करे छे, ते
व्यवधान काणनुं नाम अथवा विरहकाणनुं नाम अंतर छे अही शिष्ये
काणनी अपेक्षाअे ते अंतरना विषयमां प्रश्न पूछये छे. क्षेत्रनी अपेक्षाअे
पणु अंतर डोई शके छे, पणु अही क्षेत्रनी अपेक्षाअे अंतर पूछयुं नथी
अही तो काणनी अपेक्षाअे अंतर पूछयुं छे. तेथी न अही “कालो
केवच्चिरं” आ सूत्रपाठ भूकये छे.

कालम्, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम्। नैगमव्यवहारयोरवक्तव्यद्रव्या-
णाम् अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्,
उत्कर्षेण अनन्तं कालम्, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् ॥सू० ८७॥-१।

टीका—‘ नैगमव्यवहाराणं ’ इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानाम् आनुपूर्वीद्रव्याणाम् अन्तरं=व्यवधानं कालतः=
कालमाश्रित्य कियच्चिरं=कियत्कालावधि भवति ?। क्षेत्रतोऽप्यन्तरं भवत्यतस्त-
द्रव्यवच्छेदाय प्राह—‘ कालो केवच्चिरं ’ इति । आनुपूर्वीद्रव्याणाम् आनुपूर्वी
स्वरूपतां परित्यज्य पुनस्तत्प्राप्ति र्थावता कालेन भवति स किं परिमाणः कालो
भवतीति प्रश्नः । उत्तरमाह—एकं द्रव्यं प्रतीत्य=आश्रित्य जघन्यत एकं समयमन्त-
रम्, उत्कर्षतस्तु अनन्तं कालमन्तरम् । नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु अन्तरं नास्ति ।
अयं भावः—व्यणुकचतुरणुकादीनां मध्ये किमप्यानुपूर्वीद्रव्यं विश्रसापरिणामात्
प्रयोगपरिणामाद् वा खण्डशो वियुज्य परित्यक्त्वा अनुपूर्वीभावं संजातम् । पुनस्तत्
एकसमयाद्धर्षं विश्रसादिपरिणामात् पुनस्तैरेव परमाणुभिस्तथैव निष्पन्नम् । इत्थं

उत्तर—(एकं द्रव्यं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं-
कालं) एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय का
और उत्कृष्ट अंतर अनंत काल का है (नाणा द्रव्याइं पडुच्च गत्थि
अंतरं) तथा नाना द्रव्यों की अपेक्षा अंतर नहीं है । इस कथन का
भाव यह है कि व्यणुक, चतुरणुक आदि आनुपूर्वी द्रव्य में से कोई
एक आनुपूर्वी द्रव्य स्वाभाविक अथवा प्रायोगिक परिणामन से खंड
खंड होकर आनुपूर्वी पर्याय से रहित हो गया अब पुनः वही द्रव्य
एक समय के बाद स्वाभाविक आदि परिणाम के निमित्त से उन्हीं

उत्तर—(एकं द्रव्यं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं)
एक आनुपूर्वी द्रव्यनी अपेक्षाये ओछांभां ओछुं अंतर (विरडकाण) ओक
समयनुं अने वधारेभां वधारे अंतर अनंत कालनुं डेय छे. (नाणा द्रव्याइं
पडुच्च गत्थि अंतरं) तथा विविध द्रव्योनी अपेक्षाये विचारवामां आवे तो
ओवा अंतरने सदभाव नथी. आ कथनने लोवार्थ नीचे प्रभाषे छे-
त्रषु अलुवाणुं, चार अलुवाणु आदि आनुपूर्वी द्रव्योभांथी केछि ओक आनु-
पूर्वी द्रव्य स्वाभाविक अथवा प्रायोगिक परिणामन वडे अंड अंड थछ नधने
आनुपूर्वी पर्यायथी रहित थछ गयेलुं डेवे ओन द्रव्य ओक समय पाड इरीथी
स्वाभाविक आदि परिणामन द्वारा ओन परमाणुओना संयोगथी ओन आनुपूर्वी

ચ એકં દ્રવ્યમાશ્રિત્યાનુપૂર્વીત્વસ્ય પરિત્યાગે પુનર્ભાવે ચ સતિ મધ્યે યોજન્તરઃ સ જઘન્યત એકસમયાત્મકો બોધ્યઃ, ઉત્કૃષ્ટતસ્તુ અન્તરમનન્તકાલં ભવતિ। તથાહિ તદેવ વિવક્ષિતં કિમપ્યાનુપૂર્વીદ્રવ્યં પૂર્વવદેવ ભિન્નમ્, તતસ્તે પરમાણવોડ્યેષુ પરમાણુદ્વયણુકત્રયણુકપ્રમૃતિષુ અનન્તાણુકસ્કન્ધપર્યન્તેષુ પ્રતિસ્થાનમુત્કૃષ્ટાં સ્થિતિમનુભવન્તઃ પર્યટન્તિ। इत्थं पर्यटनं कृत्वा कालस्यानन्तत्वाद् विश्रसादिपरिणामतः पुनर्यदा तैरेव परमाणुभिस्तदेव विवक्षितमानुपूर्वीद्रव्यं जायते तदा उत्कृष्टतोऽनन्त

પરમાણુઓં કે સંયોગ સે નિષ્પન્ન હો ગયા-વિવક્ષિત આનુપૂર્વી રૂપ ઘન ગયા। इस प्रकार एक आनुपूर्वी द्रव्य को आश्रित करके आनुपूर्वी स्वरूप के परित्याग हो जाने पर और पुनः उसी स्वरूप में आने पर बीच में जो अन्तर पडा वह जघन्य से एक समय का पडा-इस प्रकार यह एक समय का अन्तर जानना चाहिये। तथा उत्कृष्ट से अन्तर अनन्त काल का, इस प्रकार से अजाता है कि कोई एक विवक्षित आनुपूर्वी द्रव्य पूर्वोक्त रूप से आनुपूर्वी पर्याय से रहित हो गया। इस प्रकार निर्गत वे परमाणु अन्य द्वयणुक त्रयणुक आदि से लेकर अनन्त स्कंध पर्यन्त रूप अनन्त स्थानों में प्रत्येक उत्कृष्ट काल की स्थिति का अनुभव करते हुए संश्लिष्ट रहे। इस प्रकार प्रत्येक द्वयणुक आदि अनन्त स्थानों में अनन्त काल तक संश्लिष्ट होते २ अनन्त काल समाप्त होने पर जब उन्हीं परमाणुओं द्वारा वही विवक्षित आनुपूर्वी द्रव्य पुनः निष्पन्न हो जावे तब यह अनन्त काल का उत्कृष्ट अंतर

રૂપ બની જાય છે. આ રીતે એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યના આનુપૂર્વી સ્વરૂપનો પરિત્યાગ થઈ ગયા બાદ ફરીથી એજ સ્વરૂપમાં આવી જવામાં જે કાળનો આંતરો પડે છે તે કાળના આંતરો રૂપ જઘન્ય અંતર એક સમયનું સમજવું ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ જે અનંત કાળનું અંતર કશું છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે-ધારો કે કોઈ એક વિવક્ષિત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય પૂર્વોક્ત રૂપે આનુપૂર્વી પર્યાયથી રહિત થઈ ગયું છે. આ રીતે વિલક્ષિત થયેલાં તે પરમાણુઓ અન્ય જે આણુવાણા, ત્રણ આણુવાણા વગેરેથી લઈને અનંત પર્યન્તના આણુવાણા સ્કન્ધ રૂપ અનંત સ્થાનોમાંની પ્રત્યેક સ્થાનમાં ઉત્કૃષ્ટ કાળની સ્થિતિનો અનુભવ કરતાં થકા સંશ્લિષ્ટ રહ્યા. આ પ્રમાણે પ્રત્યેક દ્વયણુક આદિ અનંત સ્થાનોમાં અનંત કાળ સુધી સંશ્લિષ્ટ રહ્યા બાદ એટલે કે એ સ્વરૂપમાં રહેતાં રહેતાં અનંત કાળ વ્યતીત થઈ ગયા બાદ એજ પરમાણુઓ દ્વારા બ્યારે વિવક્ષિત આનુપૂર્વી દ્રવ્યનું ફરીથી નિર્માણ થઈ જાય છે, ત્યારે એમ

कालमन्तरं भवति । नानाद्रव्याण्याश्रित्य त्वन्तरं न भवति । यतो नास्ति कश्चित् स कालो यत्र सर्वाण्यानुपूर्वीद्रव्याणि युगपदानुपूर्वीभावं परित्यजन्ति, लोकेऽनन्तानन्तानुपूर्वीद्रव्याणां सर्वदा विद्यमानत्वात्, अतो नानाद्रव्यापेक्षयाऽन्तरं नास्तीति ।

तथा—नैगमव्यवहारसम्मतानामनानुपूर्वीद्रव्याणां कालतः कियच्चिरमन्तरं भवतीति प्रश्नः । उत्तरमाह—‘एगं दव्वं’ इत्यादि । एकं द्रव्यमाश्रित्य जघन्यत एकं समयमनानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं भवति, उत्कर्षतोऽसंख्येयं कालमन्तरं भवति । नाना-

होता है । नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा जो काल का अन्तर नहीं कहा गया है, सो उसका कारण यह है कि लोक में ऐसा कोई सा भी काल नहीं कि जिस में समस्त आनुपूर्वी द्रव्य अपने आनुपूर्वी स्वभाव का एक साथ परित्याग कर देते हो । क्यों कि लोक में अनन्तानन्त आनुपूर्वी द्रव्य सर्वदा विद्यमान रहते हैं । इसलिये नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं आ सकता है । (नेगमव्यवहारण अणाणुपुव्वीदव्वाणं अन्तरं कालओ केवच्चिरं होई ?)

प्रश्न—नैगम व्यवहारनय संमत अनानुपूर्वी द्रव्यों का व्यवधान काल की अपेक्षा कितने काल का होता है ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं नाणादव्वाहं पडुच्च णत्थि अन्तरं) अनानुपूर्वी द्रव्यों का विरह काल एक अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य एक समय का और

थवाभां अनंत काणनुं उत्कृष्ट अंतर पडी जय छे. अेटले के आनुपूर्वी पर्यायने परित्याग कर्या आह करी आनुपूर्वी पर्यायभां आवी जवामां अनंत काणनुं व्यवधान (अंतरे) पडी जय छे. “विविध द्रव्येनी अपेक्षाअे काणनुं अंतर छे ज नही,” आ प्रकारना कथननुं कारण अे छे के लोकभां अेवे कोर्ध पणु समय नथी के न्यारे समस्त आनुपूर्वी द्रव्ये पोताना आनुपूर्वी स्वभावने अेक साथे परित्याग करी देता होय, कारण के लोकभां अनन्तानन्त आनुपूर्वी द्रव्ये सर्वादा विद्यमान रहे छे, तेथी विविध आनुपूर्वी द्रव्येनी अपेक्षाअे काणने अंतरे ज पडी शकने नथी.

प्रश्न—(नेगमव्यवहाराण अणाणुपुव्वी दव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई ?)

नेगम अने व्यवहार नयसंमत अनानुपूर्वी द्रव्येणुं व्यवधान (अंतर—विरह-काण) काणनी अपेक्षाअे केटला काणनुं होय छे ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं नाणादव्वाहं पडुच्च णत्थि अन्तरं) अनानुपूर्वी द्रव्येणो विरहकाण अेक

દ્રવ્યાળ્યાશ્રિત્ય તુ નાસ્તિ અન્તરમિતિ । અયમાશયઃ—યદા પરમાણુસ્વરૂપં કિમપ્ય-
નાનુપૂર્વીદ્રવ્યમ્, અન્યેન પરમાણુના દ્વચણુકત્ર્યણુકાદિના વા એકં સમયં સંશ્લિષ્ય
સમયાદૂર્ધ્વં પુનર્વિશ્લિષ્ટં ભવતિ, તદૈક દ્રવ્યાપેક્ષયા જઘન્યત એકં સમયમન્તરં ભવતિ ।
યદા તુ તદેવાનાનુપૂર્વીદ્રવ્યં પરમાણુદ્વચણુકત્ર્યણુકાદિના કેનચિદ્ દ્રવ્યેણ સહ
સંયુજ્યતે, સંયુક્તં ચાસંખ્યેયં કાલં સ્થિત્વા તતો વિયુજ્ય પુનઃ પૂર્વવદનાનુપૂર્વીત્વં
લભતે । इत्थमेकं द्रव्यमाश्रित्य उत्कृष्टतोऽसंख्येयकालमन्तरं भवतीति ।

उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात काल का होता है । नाना अनानुपूर्वी द्रव्यों
की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं हैं । तात्पर्य इसका इस प्रकार से है कि
जब कोई भी परमाणुरूप अनानुपूर्वी द्रव्य अन्य किसी दूसरे परमाणु
के साथ अथवा द्व्यणुक त्र्यणुक आदि के साथ एक समय तक संश्लिष्ट
होकर बाद में उससे वियुक्त विश्लिष्ट-हो जाता है तब एक अनानु-
पूर्वी द्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय का अन्तर होता है । और जब
वही अनानुपूर्वी द्रव्य रूप परमाणु किसी द्व्यणुक त्र्यणुक आदि के साथ
संयुक्त हो जाता है और असंख्यात काल तक संयुक्त रह कर फिर
उससे वियुक्त होता है, तो इस प्रकार पुनः उसे अनानुपूर्वी रूप में आने
पर यह द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर होता है ।

અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઝોછામાં ઝોછો એક સમયનો અને વધારેમાં
વધારે અસંખ્યાત કાળનો હોય છે વિવિધ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ
વિચાર કરવામાં આવે તો વ્યવધાન (વિરહકાળ-અંતર)નો સદ્ભાવ જ નથી.
આ કથનનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—જ્યારે કોઈ પરમાણુ રૂપ અનાનુ-
પૂર્વી દ્રવ્ય કોઈ બીજા પરમાણુની સાથે અથવા દ્વચણુક, ત્રિચણુક આદિ
સ્કંધોની સાથે એક સમય સુધી સંશ્લિષ્ટ (સંયુક્ત) રહીને તેનાથી વિયુક્ત
(અલગ) થઈ જાય છે ત્યારે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઝોછામાં
ઝોછા સમયનું અંતર (વ્યવધાન) પડી જાય છે. અને એજ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય
રૂપ પરમાણુ જ્યારે કોઈ દ્વચણુક, ત્રિચણુક આદિ સ્કંધોની સાથે સંશ્લિષ્ટ
થઈને અસંખ્યાત કાળ સુધી એજ સ્થિતિમાં રહીને ફરીથી તેમાંથી વિયુક્ત
(વિલક્ષત) થઈ જાય છે, અને ફરીથી અનાનુપૂર્વી રૂપે નિબપ્ત થઈ જાય છે,
તો આ પ્રકારે અનાનુપૂર્વીના પરિત્યાગથી લઈને અનાનુપૂર્વીના પુનઃ નિર્મા-
ણમાં વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળનું અંતર પડે છે આ ઉત્કૃષ્ટ અંતર
એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ કહ્યું છે, એમ સમજવું.

ननु अनानुपूर्वीद्रव्यं यदाऽनन्तानन्तपरमाणुप्रचितस्कन्धेन सह संयुज्यते, तत्संयुक्तं चासंख्येयं कालमवतिष्ठते, ततोऽसौ स्कन्धोभिद्यते । भिन्ने च तस्मिन् स्कन्धे यस्तस्माल्लघुःस्कन्धो भवति, तेनापि सह संयुक्तमसंख्यातं कालमवतिष्ठते, पुनस्तस्मिन्नपि स्कन्धे भिद्यमाने यस्तस्माल्लघुतरः स्कन्धो भवति तेनापि लघुतरेण स्कन्धेन सह संयुक्तमसंख्येयं कालमवतिष्ठते, इत्येवं क्रमेण पुनस्तस्मिन्नपि भिद्यमाने स्कन्धे यस्तस्माल्लघुतमः स्कन्धो भवति, तेनापि संयुक्तमसंख्येयं कालमवतिष्ठते, इत्येवं तत्र भिद्यमाने क्रमेण कदाचिदनन्ता अपि स्कन्धा संभ-

शंका-जब एक अनानुपूर्वी द्रव्य अनन्तानन्त परमाणुओं के प्रचय रूप से संयुक्त होता है और वह उसके साथ संयुक्त अवस्था में असंख्यात काल तक रहता है और बाद में जब वह स्कंध भेद को प्राप्त होता है-अर्थात् टूटता है-तब उससे जो लघुस्कंध उत्पन्न होता है, उसके साथ भी यह परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य असंख्यात काल तक संयुक्त रहता है । बाद में जब वह भी स्कंध भेद को प्राप्त होता है-तब उससे भी एक लघुतर स्कंध उत्पन्न हो जाता है । और उस लघुतर स्कंध के साथ भी यह असंख्यात काल तक संयुक्त रहता है । इस प्रकार के क्रम से जब वह लघुतर स्कंध भी भेद प्राप्त हो जाता है-तब उससे भी एक लघुतम स्कंध उत्पन्न हो जाता है । और यह परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य उस लघुतर स्कंध के साथ भी असंख्यात काल

शंका-ज्यारे एक अनानुपूर्वी द्रव्य अनन्तानन्त परमाणुओंना प्रचय रूप स्कंध साथे संयुक्त थाय छे अने ते तेनी साथे संयुक्त अवस्थाभां असंख्यात काल सुधी रह्या भाह ज्यारे ते स्कंध विलकत थछ जय छे. त्यारे तेमांथी केछ लघुस्कंध उत्पन्न थछ जय छे. ते लघुस्कंधनी साथे पणु ते परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य असंख्यात काल सुधी संयुक्त रहे छे. त्यारभाह ज्यारे ते स्कंध पणु विलकत थछ जय छे त्यारे तेमांथी केछ लघुस्कंध उत्पन्न थछ जय छे ते लघुस्कंधनी साथे पणु ते परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य असंख्यात काल सुधी संयुक्त रहे छे. त्यार भाह ज्यारे ते स्कंध पणु विलकत थछ जय छे त्यारे तेमांथी पणु एक लघुतर स्कंध उत्पन्न थछ जय छे, अने ते लघुतर स्कंध साथे पणु ते परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य असंख्यात काल सुधी संयुक्त रहे छे त्यार भाह ते लघुतर स्कंध पणु विलकत थछ जय छे अने तेमांथी पणु एक लघुतम स्कंध उत्पन्न थछ जय छे. आ परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य ते लघुतम स्कंधनी साथे पणु असंख्यात काल सुधी संश्लिष्ट (संयुक्त) रहे

वेद्युः, तत्र प्रत्येकस्मिन् स्कन्धे संयुक्तमनानुपूर्वीद्रव्यं यदा यथोक्तामसंख्येयकालं स्थितिमनुभूय एकाकि भवति, तदा तस्य यथोक्तानन्तस्कन्धस्थित्यपेक्षयाऽनन्तमपि कालमन्तरं भवति । ततः कथमुक्तमसंख्येयं कालमेवान्तरम् ? इति चेत्, उच्यते—

यदि संयुक्तः परमाणुरनन्तं कालं तिष्ठेत्तदा भवदुक्तमुचितं स्यात्, परन्त्वेवं नास्ति, एतत्सूत्रप्रामाण्यात् व्याख्यामज्ञप्त्यादि सूत्रप्रामाण्याच्च परमाणुसंयोग-

तक संश्लिष्ट रहता है । इस प्रकार क्रम २ से उन २ स्कंधों के टूटने पर कहाचित् अनंत भी स्कंध संभवित होते हैं—इस प्रकार अनंत स्कंधों में से प्रत्येक स्कंध के साथ संयुक्त वह अनानुपूर्वी द्रव्य, जब असंख्यात काल की अपनी स्थिति को समाप्त कर एकाकी रूप में आजाता है—अर्थात् पूर्व की अनानुपूर्वी रूप एक परमाणु अवस्था को प्राप्त कर लेता है—तब उसका इन पूर्वोक्त अनन्त स्कंधों में रहने रूप स्थिति की अपेक्षा से अनन्त काल का भी अन्तर हो जाता है । तब फिर सूत्रकार ने यहाँ पर एक अनानुपूर्वी द्रव्यका काल की अपेक्षा लेकर असंख्यात काल का ही अन्तरक्यों कहा है ?

उत्तर—यह शंकाकार के द्वारा प्रदर्शित अनन्त काल का अन्तर तब संगत बैठ सकता है कि जब परमाणु संयुक्त होकर अनन्त काल तक द्रव्यणुकादि अनन्त स्कंधों के साथ रहता हो । परन्तु इस सूत्र की प्रमा-

छे—आ रीते क्मे क्मे ते ते स्कंधो विभक्त यत्न रडे छे. आ प्रकारे तो क्यारेके अनंत स्कंध पणु संभवी शके छे आ अनंत स्कंधोमाना प्रत्येक स्कंधनी साथे असंख्यात—असंख्यात काण सुधी संयुक्त रहिने न्यारे ते परमाणु इय अनानुपूर्वी द्रव्य पूर्वनी पोतानी स्थितिमां आवी नय छे—ओटले के अनानुपूर्वी इय परमाणु अवस्थाने इरी प्राम करे छे, त्यारे तो पूर्वोक्त अनंत स्कंधोमां रडेवा इय स्थितिनी अपेक्षाये तो अनंत काणतुं अंतर पणु पडी नय छे छतां सूत्रकारे अही शा माटे ओवुं कथन कथुं छे के ओक अनानुपूर्वी द्रव्यने विरडकाण असंख्यात काणने होय छे ? ओटले के अनानुपूर्वी द्रव्य इय अवस्थाने त्याग कयां न ह इरी ओन अवस्था प्राम करवामां असंख्यात काणतुं, अंतर पडे छे ओम शा माटे हलुं छे ? अनंत काणतुं अंतर पडे छे, ओवुं केम कहुं नथी ?

उत्तर—शंकाकर्ता द्वारा प्रदर्शित अनंत काणतुं अंतर त्यारे न संगत भनी शके के न्यारे ते परमाणु द्रव्यणुक आदि अनंत स्कंधोनी साथे संयुक्त थडने अनंत काण सुधी रहितुं होय, परन्तु आ सूत्रनी प्रमाणुताथी अने

स्थितेरुत्कृष्टतोऽसंख्येयकालत्वावगमात्, अतोऽसंख्येयं कालमन्तरं बोध्यम् ।
नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु अन्तरं न भवतीति ।

तथा-नैगमव्यवहारसम्मतानां द्विप्रदेशिकस्कन्धरूपाणामवक्तव्यकद्रव्याणां
कालतः कियच्चिरमन्तरं भवतीति प्रश्नः ।

उत्तरमाह-‘एगं दव्वं’ इत्यादि । एकं द्रव्यमाश्रित्य जघन्यत एकं
समयमन्ताम्, उत्कृष्टतोऽनन्तं कालमन्तरं भवति । नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु
अन्तरं नास्तीति ।

गता से और व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि सूत्रों की प्रमाणता से परमाणु की
संयुक्त अवस्था की स्थिति उत्कृष्ट रूप से असंख्यात काल तक की ही
कही गई है । अतः सूत्र कथित असंख्यात काल का ही उत्कृष्ट अन्तर-
जानना चाहिये । तथा नाना-अनानुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं
होता है । क्यों कि लोक में ऐसा कोई भी काल नहीं है कि जिस काल
में कोई न कोई अनानुपूर्वी द्रव्य न रहे । ‘नैगमव्यवहाराणं अवत्तग-
दव्वं अंतरं कालो केवच्चिरं होई ?’

प्रश्न-नैगमव्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्यों अपनी अवक्त-
व्यक अवस्था का परित्याग कर देने पर और पुनः उसी स्थिति में आने
पर कालकी अपेक्षा कितना विरह काल है । ?

उत्तर-(एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं-

व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि सूत्रानी प्रमाणताथी परमाणुनी संयुक्त अवस्थाभां
रहेवानी उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात काल पर्यन्तनी न कही छे तथी सूत्रक-
थित असंख्यात कालतुं न उत्कृष्ट अंतर समज्जुं लेधये ।

“विविध अनानुपूर्वी द्रव्येनी अपेक्षाये अंतर डोतुं नथी,”
आ प्रकारना कथनतुं कारण नीये प्रमाणे छे—

दो कर्मां अये। केध पणु काल नथी के ने काले केधने केध अनानु-
पूर्वी द्रव्यतुं अस्तित्व न न डोय अटले के केधने केध अनानुपूर्वी द्रव्यतुं
अस्तित्व तो दोकभां सदा काल रहे छे न ।

प्रश्न-(नैगमव्यवहाराणं अवत्तगदव्वं अंतरं कालो केवच्चिरं होई ?)
नैगम अने व्यवहार नयसंमत अवक्तव्यक द्रव्येने पोतानी ते अवक्तव्यक
अवस्थानो परित्याग कर्थां आद इरीथी अवक्तव्यक अवस्थाभां आवी नवामां
केटला कालतुं अंतर पडे छे ? अटले के द्रव्यतुं रकध रूप अवक्तव्यक
द्रव्येने विरहकाल कालनी अपेक्षाये केटवो कथो छे ?

उत्तर-(एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं,

अयं भावः—द्विप्रदेशिकस्कन्धरूपमवक्तव्यकद्रव्यं विघटितं स्वतन्त्रं परमाणुद्वयं जातम् । समयमेकं विघटितमेव स्थित्वा पुनः एतदेव परमाणुद्वयं परस्परं मिलित्वा द्विप्रदेशिकः स्कन्धो जातः । यद्वा—विघटित एव द्विप्रदेशिकः स्कन्धः स्वतन्त्र परमाणुरूपतां प्राप्य, अन्येन परमाण्वादिना समयमेकं संयुज्य—समयाद्ध्वं ततो वियुज्य पुनस्तदेव परमाणुद्वयं परस्परं मिलित्वा द्विप्रदेशिकः स्कन्धो निष्पन्नः, इत्थमवक्तव्यकद्रव्याणां जघन्यत एकं समयमन्तरं बोध्यम्,

नाणाद्वाहं पडुच्च णस्थि अंतरं) एक अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय का, और उत्कृष्ट अंतर अनंत काल का है। तथा नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा अंतर नहीं है। इस कथन का तात्पर्य इस प्रकार से है—कि एक द्विप्रदेशी स्कंध द्रव्य विघटित हो गया और वह स्वतंत्ररूप से दो परमाणु रूप बन गया। अब वे दो परमाणु एक समय तक परस्पर जुड़े रहे। फिर एक समय बाद आपस में संश्लिष्ट हो गये और उनके श्लेष से वही द्विप्रदेशी स्कंध पुनः उत्पन्न हो गया। अथवा—द्विप्रदेशी स्कंध विघटित हो गया और उससे दो परमाणु उत्पन्न हो गये। वे परमाणु अन्य परमाणु आदि के साथ एक समय तक संयुक्त रहे और बाद में उससे विघटित होकर वे ही परमाणु परस्पर मिलकर उसी द्विप्रदेशिक स्कंध रूप में परिणत हो

नाणाद्वाहं पडुच्च णस्थि अंतरं) एक अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य (अ.छ.मां ओछु) अंतर एक समयतुं अने उत्कृष्ट (वधारेमां वधारे) अंतर अनंत कालतुं छे, तथा विविध अवक्तव्यक द्रव्योनी अपेक्षा अंतरने। सहलाव ज नथी आ कथनने। लावाधं नीये प्रमाणु छे—कोछे एक द्विप्रदेशी स्कंध इप अवक्तव्यक द्रव्य धारे के विघटित (विलकत) थधने जे स्वतंत्र परमाणु इप अवस्थाने प्राप्त करे छे। त्यार भाह ओछामां ओछा एक समय सुधी तो ते जंने परमाणु एक भीजथी अलग ज रहे छे, पणु त्यार भाह तेओ एक भीजनी साथे संश्लिष्ट (संयुक्त) थधं जधने करीथी द्विप्रदेशी स्कंध इप जनी जाय छे अथवा—द्विप्रदेशी स्कंध विघटित थधं जधने तेमांथी जे परमाणु उत्पन्न थधं जाय छे ते परमाणुओ अन्य परमाणु आदिनी साथे एक समय सुधी संश्लिष्ट रहे छे, पणु त्यार भाह तेओ तेनाथी वियुक्त थधने परस्परनी साथे संयुक्त थधं थधने करीथी द्विप्रदेशिक स्कंध इपे परिणत थधं जाय छे। आ रीते जेज द्विप्रदेशी स्कंधतुं तेमना द्वारा निर्माणु थधं जाय छे। आ प्रकारे द्विप्रदेशी स्कंध इप अवस्थाने।

यदा च तदेव विघटितं स्वतन्त्रं परमाणुभिरनन्तैर्द्वयणुकव्यणुक यावदनन्ताणुकस्कन्धैः सह क्रमेण संयोगमासाद्य प्रत्येकस्मिन् स्कन्धेऽसकृदुत्कृष्टां स्थितिमनुभूय कालस्यानन्त्यात्पुनरपि तथैव द्वयणुकस्कन्धतया परिणतं भवति, तदाऽवक्तव्यकद्रव्यत्वं प्रतिपद्यते । इत्थं वियोगानन्तरं पूर्वस्वरूपप्राप्तौ अनन्तकालः प्राप्यते,

गये-इस प्रकार वही प्रथम स्कंध बन गया । इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कंध अवस्था विघटित होने से पुनः वही द्विप्रदेशी स्कंध बनने के बीच में यह अवक्तव्यक द्रव्य का एक समय का अन्तर जघन्य जनना चाहिये । तथा जब वही द्विप्रदेशी स्कंध विघटित होते ही दो परमाणु रूप में आजाता है और वे परमाणु स्वतंत्र रूप से अनंत परमाणुओं के साथ अनंत द्वयणुकों, त्रयणुकों यावत् अनन्ताणुक स्कंधों के साथ क्रम से संयोग को प्राप्त करके, जब प्रत्येक स्कंध में बार २ अपनी उत्कृष्ट स्थिति को समाप्त कर देते हैं तो इस प्रकार काल की अनंतता के बाद जब वे अपनी उसी पूर्व अवस्था रूप द्विप्रदेशिक स्कंध रूप में परिणत हो जाते हैं, तो इसके बीच में यह अनंत काल का उत्कृष्ट समय निकल आता है । नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा काल का अंतर नहीं है ऐसा जो कहा गया है उसका भाव यह है कि लोक में ऐसा

परित्याग करीने-द्विप्रदेशी स्कंध रूप अवस्थाभांथी विघटित थधने इरीथी ओन द्विप्रदेशी स्कंध रूप अवस्था प्राप्त करवाभां ओक समयप्रमाणु काणतुं जघन्य अंतर पडे छे. तेथी न अवक्तव्यक द्रव्य रूप अवस्था पुनः प्राप्त करवाभां तेने ओछाभां ओछे ओक समय लागतो. होवाथी जघन्य अंतर ओक समयतुं कहुं छे.

उत्कृष्टनी अपेक्षाओ ते अंतर अनंतकाणतुं केवी रीते थाय छे ? ते डवे स्पष्ट करवाभां आवे छे-

ओन द्विप्रदेशी स्कंध विघटित थधने ओ परमाणु रूप णनी जय छे ते णने परमाणु स्वतंत्र रूपे अनंत परमाणुओनी साथे अनंत द्वयणुक स्कंधो, त्रयणुक स्कंधो आदि अनंत अणुक पर्यन्तना स्कंधो साथे कुमे कुमे संयोग प्राप्त करीने न्यारे प्रत्येक स्कंधभां वारवार पोतानी उत्कृष्ट स्थिति समाप्त करी नाओ छे, अने आ रीते अनंत काण भाद न्यारे ते पोतानी ओन पूर्व अवस्था रूप द्विप्रदेशिक स्कंध रूपे परिणत थध जय छे, तो आभ थवाभां अनंत काणने उत्कृष्ट समय व्यतीत थध जय छे आ रीते उत्कृष्ट अंतर (विरडकाण) अनंत काणने थाय छे.

अत उत्कृष्टतोऽनन्तं काळमन्तरं भवति । नानाद्रव्याण्याश्रित्य पूर्वोक्तवदेवान्तरं न भवतीति ॥सू० ८७॥-

अथ सप्तमं भागद्वारमाह-

मूलम्—जेगमववहाराणं आणुपुर्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइ-
भागे होज्जा ? किं संखिज्जइभागे होज्जा ? असंखिज्जइभागे
होज्जा ? संखेज्जेसु भागेषु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा ?
नो संखिज्जइभागे होज्जा, नो असंखिज्जइभागे होज्जा, नो
संखेज्जेसु भागेषु होज्जा, निधमा असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा ।
जेगमववहाराणं अणुपुर्वी दव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे
होज्जा ? किं संखिज्जइभागे होज्जा ? असंखिज्जइभागे होज्जा ?
संखेज्जेसु भागेषु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा ? नो
संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु
भागेषु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा । एवं अवत्त-
व्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि ॥सू० ८८॥

छाया—नैगमववहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कियद्भागे भवन्ति ?

कोई साभी समय नहीं है कि जिसमें कोई न कोई अवक्तव्यक द्रव्य
की सत्ता न बनी रहती हो । ॥ सू० ८७ ॥

अब सप्तम भाग नामक द्वार का सूत्रकार कथन करते हैं-

“जेगमववहाराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(जेगमववहाराणं) नैगमव्यवहानय संमत संमस्त आनु-

“विविध अवक्तव्यक द्रव्योनी अपेक्षाये काणतुं अंतरं नथी,” आ
कथननो भावार्थ एवेो छे के लोकमां एवेो केछ पणु समय डोतो नथी के
न्यारे लोकमां केछने केछ अवक्तव्यक द्रव्य विद्यमान न डोय अटके के
केछने केछ अवक्तव्य द्रव्य तो लोकमां सर्वदा विद्यमान डोय छे न् । ॥सू० ८७ ॥

इवे सूत्रकार अनुगमना लागद्वार नामना सातमां लोकतुं निरूपणु करे छे.

“जेगमववहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(जेगमववहाराणं) नैगम अने व्यवहार नयसंमत संमस्ते

किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? संख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? नो संख्येयतमभागे भवन्ति, नो असंख्येयतमभागे भवन्ति, नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नियमात् असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति । नैगमव्यवहारयोरेनानुपूर्वीं द्रव्याणि शेषद्रव्याणां कियद्भागे भवन्ति ? किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? संख्येयेषु भागेषु

पूर्वीं द्रव्य (सेसदव्वाणं) शेष द्रव्यो म् (कइभागे) कितने भाग में (होज्जा) है । (किं) कया (संखेज्जइ भागे होज्जा) संख्यातवे भाग में हैं ? (संखेज्जेसु भागेषु होज्जा) अथवा संख्यात भागो में हैं ? अथवा (असंखिज्जइ भागे होज्जा) या असंख्यातवे भाग में हैं (असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा) या संख्यात भागो में हैं ? (नो संखिज्जइभागे होज्जा नो असंखिज्जइभागे होज्जा) न संख्यातवे भाग में हैं न असंख्यातवे भाग में हैं (नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा) और न संख्यात भागो में हैं, किन्तु (नियमा) नियम से वे (असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा) असंख्यात भागो में हैं । (नेगमव्यवहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं) नैगम व्यवहारनय समत समस्त अनानुपूर्वीं द्रव्य (सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा) शेष द्रव्यो की कितने भाग में हैं ? (किं) कया (संखिज्जइ भागे होज्जा) संख्यातवे भाग में हैं ?

अनुपूर्वीं द्रव्य (सेसदव्वाणं) आधीना द्रव्येना (कइभागे होज्जा ?) डेटला लागमां छे ? (किं संखेज्जइभागे होज्जा ?) शुं स'प्यातमां लागमां छे ? (असंखेज्जइ भागे होज्जा) के अस'प्यातमां लागमां छे ? (संखेज्जेसु भागेषु होज्जा) के स'प्यात लागोमां छे ? (असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा ?) के अस'प्यात लागोमां छे ?

उत्तर-(नो संखिज्जइभागे होज्जा, नो असंखिज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा) समस्त अनुपूर्वीं द्रव्य आधीना द्रव्येना स'प्यातमां लागमां पणु होतुं नथी, अस'प्यातमां लागमां पणु होतुं नथी, स'प्यात लागोमां पणु होतुं नथी, परन्तु (नियमा असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा) नियमधी न ते समस्त अनुपूर्वीं द्रव्ये आधीना द्रव्येना अस'प्यात लागोमां होय छे.

(नेगमव्यवहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं) नैगम अने व्यवहार नयसमत समस्त अनानुपूर्वीं द्रव्य (सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ?) आधीना द्रव्येना डेटलामां लागनुं होय छे ? (किं संखिज्जइभागे होज्जा) शुं स'प्यातमां लागमां होय छे ? (असंखिज्जइभागे होज्जा) के अस'प्यातमां

भवन्ति ? असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? नो संख्येयतमभागे भवन्ति, असंख्येय-
तमभागे भवन्ति, नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ।
एवमवक्तव्यकद्रव्याण्यपि भणितव्यानि ॥सू० ८८॥

टीका—‘ नैगमव्यवहारणं ’ इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि=त्र्यणुकस्कन्धप्रभृत्यनन्ताणुकस्क-
न्धपर्यन्तानि सर्वाण्यपि आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणाम्=अनानुपूर्व्यवक्तव्यक-
द्रव्यलक्षणानां कियति भागे भवन्ति ? किं संख्येयतमभागे भवन्ति, यथा—अस-

या(असंखिज्जइभागे होज्जा) असंख्यातवे भाग में हैं ? या (संखे-
ज्जेसु भागेषु होज्जा) संख्यात भागों में हैं ? या (असंखेज्जेसु भागेषु
होज्जा) असंख्यात भागों में हैं !

उत्तर— (नो संखेज्जइभागे होज्जा) संख्यातवे भाग में नहीं
है—(असंखेज्जइभागे होज्जा) किन्तु असंख्यातवे भाग में हैं । (नो
संखेज्जेसु भागेषु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा) संख्यात
भागों में नहीं हैं ’ और न असंख्यात भागों में हैं । (एवं अवत्तव्वग-
दव्वाणि वि भाणियव्वाइ’) इसी प्रकार से अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय
में भी ऐसा ही कथन जानना चाहिये

भावार्थ—त्र्यणुक स्कन्ध आदि से लेकर अनन्त परमाणु स्कन्ध पर्य-
न्त जितने भी स्कन्ध हैं वे सब आनुपूर्वीद्रव्य हैं । अनन्त एक २ परमा-
णु और अनन्त द्व्यणुक स्कन्ध क्रमशः अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य
हैं । पूछने वाले का यह अभिप्राय है कि आनुपूर्वी द्रव्य अनानुपूर्वी और

भागमां डोय छे ? (संखिज्जेसु भागेषु होज्जा) के संप्यात भागोमां डोय छे ?
(असंखिज्जेसु भागेषु होज्जा) के असंप्यात भागोमां डोय छे ?

उत्तर—(नो संखिज्जइ भागे होज्जा, असंखेज्जइ भागे होज्जा) संप्या-
तमां भागमां नथी, पणु असंप्यातमां भागमां छे, (नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा,
नो असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा) संप्यात भागोमां पणु नथी अने असंप्यात
भागोमां पणु नथी. (एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाइ’) अवक्तव्यक
द्रव्येना विषयमां पणु अनानुपूर्वी द्रव्येना जेपुं न कथन
अहीं अहणु करवुं जेधंअ.

भावार्थ—त्रयुथी लधने अनन्त परमाणुवाणा जेटला रकधो छे, तेमने
आनुपूर्वी द्रव्ये कडे छे जे अनन्त अेक अेक स्वतंत्र परमाणु छे तेमने अनानु-
पूर्वी द्रव्य कडे छे. जे परमाणुवाणा जे अनन्त रकधो छे तेमने अनानुपूर्वी अने
अवक्तव्यक द्रव्ये कडे छे आ सूत्रमां प्रश्नकर्ता अे प्रश्न पूछे छे के आनुपूर्वी

त्कल्पनया शतस्य विंशतिमिताः?, किमसंख्याततमे भागे भवन्ति, यथा शतस्यैव दश?, किं संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, यथा शतस्यैव चत्वारिंशत् षष्टिर्वा?, किमसंख्येयेषु भागेषु भवन्ति, यथा शतस्यैव अशीतिः?, इति प्रश्नः। उत्तरमाह— आनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया हीनानि न भवन्ति, प्रत्युत अधिकान्येव भवन्ति, अधिकत्वं चाप्येषां नो संख्येयतमभागेन, नो असंख्येयतमभागेन, नापि संख्येयैर्भागैः, अपि तु असंख्येयैर्भागैरधिकानि भवन्तीति बोध्यम्,

अवक्तव्यक द्रव्यों से अधिक हैं या कम ? तब सिद्धान्तकारों ने इसका उत्तर अधिक रूप में दिया है। तब पुनः शंकाकार ने पूछा कि यदि ये शेष द्रव्यों की अपेक्षा अधिक हैं, तो उनके किस भाग से अधिक हैं। क्या संख्यातवे भाग से अधिक हैं ? या असंख्यातवे भाग से अधिक हैं ? या संख्यात असंख्यात भागों से अधिक हैं ? तब सूत्रकार ने उसे समझाया कि ये शेष द्रव्यों के असंख्यात भागों से ही अधिक हैं इतर तीन भागों से नहीं। क्योंकि ये आनुपूर्वीद्रव्य अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा हीन नहीं हैं। किन्तु अधिक ही हैं। यह अधिकता इनमें शेष द्रव्यों के संख्यातवे असंख्यातवे एवं संख्यात भागों से मानी गई है। इसका तात्पर्य यह है कि सब आनुपूर्वी-द्रव्य अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात

द्रव्य, अनानुपूर्वी द्रव्य अने अवक्तव्यक द्रव्य करतां अधिक प्रमाणमां छे के अल्पप्रमाणमां छे ? त्यारे तेना उत्तर इये सिद्धांतकारोअे कहुं छे के आनुपूर्वी द्रव्य, अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्य करतां अधिक प्रमाणमां छे.

वणी प्रश्नकर्ता अेवो प्रश्न करे छे के जे ते आनुपूर्वी द्रव्य भाकीना द्रव्यो करतां अधिक छे, तो केटलांमां लाग जेटलुं अधिक छे ? शुं संख्यातमां लाग जेटलुं अधिक छे ? के संख्यात लागो जेटलुं अधिक छे ? के असंख्यात लागो जेटलुं अधिक छे ?

त्यारे सूत्रकारे तेना अेवो उत्तर आय्यो छे के आनुपूर्वी द्रव्य भाकीना द्रव्योना असंख्यात लागो प्रमाणे न अधिक छे, संख्यातमां लाग प्रमाणे अधिक नथी, कारणे के ते आनुपूर्वी द्रव्यो, अनानुपूर्वी द्रव्यो अने अवक्तव्यक द्रव्यो करतां न्यून प्रमाणमां होतां नथी—पणु अधिक प्रमाणमां न होय छे ते आनुपूर्वी द्रव्योमां आ अधिकता भाकीना द्रव्योना संख्यातमां लागप्रमाणे पणु कही नथी, असंख्यातमां लागप्रमाणे पणु कही नथी, संख्यात लागोप्रमाणे पणु कही नथी, परंतु असंख्यात लागो प्रमाणे न

अयं भावः—आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्यापेक्षया असंख्येयगुणानि सन्ति, यथा शतस्याऽशीतिः । आनुपूर्वीद्रव्याणि, अनानुपूर्वीद्रव्याणि, अवक्तव्यकद्रव्याणि, एतत्त्रयमसत्कल्पनया शतस्वरूपं, तन्नाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि-अशीतिसंख्यातुल्यानि, शेषद्रव्याणि=अनानुपूर्ववक्तव्यकरूपाणि मत्त्येकं दश-दश गणनया त्रिंशतिसंख्या-तुल्यानीति ।

ननु शेषद्रव्यापेक्षयाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि स्तोकान्यपि भवन्तु, का हानिः ? इति चेदुच्यते—अनानुपूर्वीद्रव्याणि परमाणुरूपाण्येव, अवक्तव्यकद्रव्याणि तु द्वयणुक-

गुणे-अधिक-है । जैसे मान लिया जावे कि ये तीनों द्रव्य १००, संख्या के स्थानापन्न हैं । इनमें अस्सी संख्या के तुल्य आनुपूर्वी द्रव्य हैं । और शेष संख्या २०, बीस के तुल्य अर्थात् १०-१० दस संख्या के बराबर-अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य हैं । शेष द्रव्यों के संख्यातवे असंख्यातवे भाग से अथवा संख्यात भागों की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्यों को अधिक मानने पर उनमें असंख्यात गुणी अधिकता नहीं आसकने से हीनता आती है ।

शंका-यदि शेष द्रव्यों की अपेक्षा समस्त आनुपूर्वी द्रव्यस्तोक-अल्प कम भी मानलिये जावे तो इसमें क्या हानि है ?

कही छे अेटे के समस्त आनुपूर्वी द्रव्ये अने अवक्तव्यक द्रव्ये करतां असंख्यात गणां वधादे छे. धादे के आ त्रणे द्रव्ये मणीने १००तुं प्रमाणु थाय छे, तेमाथी ८० लाग प्रमाणु आनुपूर्वी द्रव्ये होय अने १०-१० लाग प्रमाणु अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्ये होय तो ञाकीना द्रव्ये २० लागप्रमाणु होवाधी तेमना करतां आनुपूर्वी द्रव्ये चार गणुं होवाधी तेमां असंख्यातगणी अधिकता गणी शकय नहीं परन्तु सूत्रकादे तेमां अप्रंख्यातगणी अधिकता कही छे तेथी आ प्रहारतुं कथन करवामां असंख्यात गणी अधिकता नहीं आवी शकवाने कारणे हीनता आवी नथ छे. कारण के आनुपूर्वी द्रव्येने ञाकीना द्रव्ये करतां संख्यातमां लागप्रमाणु पणु कह्या नथी, असंख्यातमां लागप्रमाणु पणु कह्या नथी, संख्यात लागोप्रमाणु (संख्यात गणां) पणु कह्यां नथी, पणु असंख्यात लागोप्रमाणु (असंख्यात गणां न्) कह्यां छे.

शंका-जे ञाकीनां द्रव्ये करतां समस्त आनुपूर्वी द्रव्येने अल्प मान-वामां आवे तो तेमां शी उरकत छे ?

रूपाण्येव, आनुपूर्वीद्रव्याणि तु त्र्यणुकचतुरणुकप्रभृत्यनन्ताणुकपर्यन्तानि, अतः शेषद्रव्यापेक्षयाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि असंख्येयभागैरधिकानि बोध्यानि। उक्तं चापि—
 “एएसिणं भन्ते ! परमाणुपोग्गलाणं संखेज्जपएसियाणं असंखेज्जपएसियाणं अणंतपएसियाणं अणंतपएसियाण य खंधाणं कयरे कयरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा ! सव्वत्थो वा अणंतपएसिया खंधा, परमाणुपोग्गला अणंतगुणा, संखेज्जपएसिया खंधा संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा असंखेज्जगुणा”

छाया—एतेषां खलु भदन्त ! परमाणुपुद्गलानां संख्येयप्रदेशिकानाम् असंख्येयप्रदेशिकानाम् अनन्तप्रदेशिकानां च स्कन्धानां के केभ्योऽस्या वा बहुका वा तुल्या वा विशेषाधिका वा ?, गौतम ! सर्वस्तोका अनन्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः,

उत्तर—अनानुपूर्वीं द्रव्य परमाणुरूप ही है और अवक्तव्यक द्रव्य द्रव्यणुक रूप ही है। तथा आनुपूर्वीं द्रव्य त्र्यणुक आदि स्कंध से लेकर अनन्ताणुक स्कंध पर्यन्त है—इसलिये ये आनुपूर्वीं द्रव्य शेष द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यातभागों से अधिक है ऐसा जानना चाहिये। अन्यत्र भी इसी बात को यों कहा है—हे भदन्त ! परमाणु रूप पुद्गलों में संख्यात प्रदेश वाले स्कंधों में, असंख्यात प्रदेश वाले स्कंधों में और अनन्त प्रदेश वाले स्कंधों में कौन किनसे अल्प है ? कौन किनसे-बहुत है ? कौन किनसे तुल्य है ? अथवा कौन किनसे विशेष अधिक है ?

उत्तर—हे गौतम सबसे कम अनन्तप्रदेशी स्कंध है, परमाणु पुद्गल इनसे अनन्त गुणित है संख्यात प्रदेशी स्कंध संख्यात गुणित है।

उत्तर—अनानुपूर्वीं द्रव्य परमाणु इय न्ने अने अपक्तव्यक द्रव्य द्रव्यणुक स्कंध इय न्ने परंतु आनुपूर्वीं द्रव्य त्रिअणुक, आदि अनन्त अणुक पर्यन्तना स्कंध इय न्ने। ते कारणे ते आनुपूर्वीं द्रव्य भाङ्गीना द्रव्ये करतां असंख्यात गणुं वधारे डोय छे, ते कारणे तेने भाङ्गीना द्रव्ये करतां अल्प कडी शकय नही वणी अन्यत्र पणु अपुं न्ने कलुं छे के—“हे भगवन् ! परमाणुइय पुद्गलो, संख्यात प्रदेशोवाणा स्कंधो, असंख्यात प्रदेशोवाणा स्कंधो अने अनन्त प्रदेशोवाणा स्कंधोमां डोणु डोनाथी अल्प छे, डोणु डोनाथी अधिक छे, डोणु डोनी परापर छे अने डोणु डोना करतां विशेषाधिक छे ?

उत्तर—हे गौतम ! अनन्तप्रदेशी स्कंध सीथी अल्पपरमाणुमां छे, परमाणुपुद्गल तेमनां करतां अनन्त गणुं छे, संख्यात प्रदेशी स्कंध

પરમાણુપુદ્ગલા અનન્તગુણાઃ, સંખ્યેયપ્રદેશિકાઃ સ્કન્ધાઃ સંખ્યેયગુણાઃ, અસંખ્યેય-
પ્રદેશિકાઃ સ્કન્ધા અસંખ્યેયગુણાઃ, ઇતિ ।

અત્ર સૂત્રે સર્વસ્યા અપિ પુદ્ગલજાતેરપેક્ષયાઽસંખ્યાતપ્રદેશિકાઃ સ્કન્ધા અસં-
ખ્યાતગુણા ઉક્તાઃ । અસંખ્યાતપ્રદેશિકાઃ સ્કન્ધાસ્તુ આનુપૂર્વ્યાપેવાન્તર્ભવન્તિ,
અતસ્તદપેક્ષયા આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ શેષસમસ્તદ્રવ્યેભ્યોઽપિ અસંખ્યાતગુણાનિ કિં
પુનરનાનુપૂર્વ્યવક્તવ્યકદ્રવ્યમાત્રાત્ । ‘અધિકાની’તિ અર્થસ્વારસ્યાદાક્ષિપ્યતે ।

તથા-નૈગમવ્યવહારસમ્મતાનિ અનાનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ=પરમાણુરૂપાણિ દ્રવ્યાણિ
શેષદ્રવ્યાણામ્=આનુપૂર્વ્યવક્તવ્યકદ્રવ્યાણામપેક્ષયા કિયતિભાગે ભવન્તિ ? કિં સંખ્યે-
યેષુ ભાગેષુ ભવન્તિ ? કિમસંખ્યેયેષુ ભાગેષુ ભવન્તિ ? ઇતિ પ્રશ્નઃ । ઉત્તરયતિ-નો
સંખ્યેયતમભાગે ભવન્તિ, કિંતુ અસંખ્યેયતમભાગે ભવન્તિ, નો સંખ્યેયેષુ ભાગેષુ
ભવન્તિ, નો અસંખ્યેયેષુ ભાગેષુ ભવન્તિ । અનાનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ-શેષદ્રવ્યાણામ્

और असंख्यात प्रदेशी स्कंध असंख्यात गुणित है । इस सूत्र में सम-
स्त पुद्गल जाति की अपेक्षा से उसके असंख्यात प्रदेशी स्कंध असं-
ख्यात गुणे कहे हैं । सो ये असंख्यात प्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी में ही
अन्तर्भूत हो जाते हैं । इसलिये इस अपेक्षा से सब आनुपूर्वी द्रव्य
शेष समस्त द्रव्यों से भी जब असंख्यात गुणित हैं तो कि अनानुपूर्वी
और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से ये असंख्यात गुणे हैं इसमें तो
कहना ही क्या है । सूत्र में “ अधिक ” पद नहीं कहा गया है फिर
भी यहां उसका आक्षिप्त अर्थ के अनुसार किया गया है । तथा
नैगमव्यवहारनय संमत जो अनानुपूर्वी द्रव्य-परमाणु रूप द्रव्य हैं वे
आनुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से उनके असंख्यात

અસંખ્યાત ગણાં છે. અને અસંખ્યાત પ્રદેશી સ્કન્ધ અસંખ્યાતગણા છે.
આ સૂત્રમાં સમસ્ત પુદ્ગલ જાતિની અપેક્ષાએ તેના અસંખ્યાત પ્રદેશી સ્કન્ધો
અસંખ્યાત ગણાં કહ્યા છે. તે અસંખ્યાત પ્રદેશી સ્કન્ધોનો આનુપૂર્વીમાં જ
સમાવેશ થઈ જાય છે આ રીતે વિચાર કરતાં, જે સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય
ખાકીના સમસ્ત દ્રવ્યો કરતાં પણ અસંખ્યાત ગણાં છે, તે અનાનુપૂર્વી અને
અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં તે તે અસંખ્યાત ગણાં હોય એમાં શંકા કરવા
જેવું જ નથી. સૂત્રમાં “ અધિક ” પદ વાપર્યું નથી, છતાં પણ અહીં તેના
અર્થનો સ્પષ્ટ ખ્યાલ આપવા માટે તે પદનો પ્રયોગ કર્યો છે.

તથા નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત જે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય (પરમાણુ
દ્રવ્ય) છે તે આનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાતમાં ભાગ-
પ્રમાણ છે. તે ખાકીના દ્રવ્યોના સંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ નથી, સંખ્યાત

असंख्येयतमभागे भवन्ति-सन्ति, न तु शेषभागेषु त्रिषु । असत्कल्पनया यथा शतस्य दश, भवन्ति । न तु शेषेषु त्रिषु भागेषु भवन्ति । तदेवाह-‘एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि’ इति । एवमवत्तव्यकद्रव्याण्यपि भणितव्यानि=अवत्तव्यकद्रव्याण्यपि अनानुपूर्वीवदेव शतस्य दशवद् विज्ञेयानि ॥सू० ८८॥

अथाष्टमं भाष्यद्वारमाह—

मूलम्—णोगमववहाराणं आणुपुठ्वीदव्वाइं कतरम्मि भावे होज्जा ? किं उदइए भावे होज्जा ? उवसमिए भावे होज्जा ? खइए भावे होज्जा ? खओवसमिए भावे होज्जा पारिणामिए भावे होज्जा ? संनिवाइए भावे होज्जा ? णियसा साइपारिणामिए भावे होज्जा । अणाणुपुठ्वीदव्वाणि अवत्तव्वगदव्वाणि य एवं चेव भाणियव्वाणि ॥सू० ८९॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि कतमस्मिन् भावे भवन्ति ? किमौदयिके भावे भवन्ति ? औपशमिके भावे भवन्ति ? क्षायिके भावे भवन्ति ?

भाग हैं । शेष तीन भागों से अधिक नहीं हैं । जैसे मान लिया जावे कि ये तीनों द्रव्य १०० संख्यात रूप में हैं—इनमें शेष द्रव्यों की अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य ८० और अनानुपूर्वी द्रव्य १०, दश हैं । इसी प्रकार अवत्तव्यक द्रव्य भी आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा सौ के दश की तरह उनके असंख्यातवे भाग जानना चाहिये शेष तीन भागों से नहीं । ॥ सू० ८८ ॥

गल्लुं पल्लुं नथी अने असंख्यात गल्लुं पल्लुं नथी. धारे के आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी अने अवत्तव्यक, आ त्रल्ले द्रव्ये मणीने १०० सो नी संख्या इपे छे. तेमां भाडीना द्रव्येनी अपेक्षाये आनुपूर्वी द्रव्य ८० अने अनानुपूर्वी द्रव्य दशनी संख्या इपे छे जेज प्रमाणे अवत्तव्यक द्रव्य पल्लु आनुपूर्वी अने अनानुपूर्वी द्रव्येनी अपेक्षाये १०मांथी १०० नी जेम तेमना असंख्यातमां लागइप ज समज्जुं तेने तेमना संख्यातमां लागइप अथवा तेमना करतां संख्यात गल्लुं के असंख्यात गल्लुं समज्जुं जेधये नही. ॥सू० ८८॥

क्षायोपशमिके भावे भवन्ति? पारिणामिके भावे भवन्ति? सान्निपातिके भावे भवन्ति? नियमात् सादि पारिणामिके भावे भवन्ति । अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च एवमेव भणितव्यानि ॥सू० ८९॥

अब सूत्रकार अष्टम जो भावद्वार है—उसका कथन करते हैं—

“जेगमववहाराणं” इत्यादि

शब्दार्थ—(जेगमववहाराणं आणुपुर्वीदव्वाहं कतरम्मि भावे होज्जा)

प्रश्न—नैगमववहारनय संमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य किस भाव में वर्तते हैं? (किं उदहए भावे होज्जा?) क्या औद्यिक भाव में वर्तते हैं? (उवसमिये भावे होज्जा) या औपशमिक भाव में वर्तते हैं? (खइए भावे होज्जा?) या क्षायिक भाव में वर्तते हैं? (खओवसमिये भावे होज्जा?) या क्षायोपशमिक भाव में वर्तते हैं? (पारिणामिए भावे होज्जा) या पारिणामिक भाव में वर्तते हैं? (संनिवाइए भावे होज्जा) या सान्निपातिक भाव में वर्तते हैं? (णियमा साइ परिणामिए भावे होज्जा)

समस्त आनुपूर्वी द्रव्य नियम से सादि पारिणामिक भाव में वर्तते हैं । द्रव्य का उस-उस रूपसे जो परिणाम होता है उसका नाम परिणाम है । इस परिणाम का नाम ही पारिणामिक है । अथवा परिणाम होता हो या परिणाम से जो बनता हो उसका नाम पारिणामिक है ।

इसे सूत्रकार अनुगमना अठमां लेह इय भावद्वारतुं कथन करे छे—

“जेगमववहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(जेगमववहाराणं आणुपुर्वी दव्वाहं कतरम्मि भावे होज्जा?)

प्रश्न—नैगम अने व्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्यो क्या भावमां रहे छे? (किं उदहए भावे होज्जा) थुं औद्यिक भावमां रहे छे? (उवसमिए भावे होज्जा?) के औपशमिक भावमां रहे छे? (खइए भावे होज्जा?) के क्षायिक भावमां डोय छे? (खओवसमिए भावे होज्जा?) के क्षायोपशमिक भावमां डोय छे? (पारिणामिए भावे होज्जा?) के पारिणामिक भावमां डोय छे? (संनिवाइए भावे होज्जा?) के सान्निपातिक भावमां डोय छे?

उत्तर—(णियमा साइपरिणामिए भावे होज्जा) समस्त आनुपूर्वी द्रव्य नियमथी न सादिपारिणामिक भावमां रहे छे द्रव्यनुं ते ते इये न परिणामन थाय छे तेनुं नाम परिणाम छे अ परिणामनुं नाम न पारिणामिक

यह परिणाम दो प्रकार का होना है—एक सादि और दूसरा अनादि । धर्मास्तिकाय आदि जो अरूपी द्रव्य हैं उसका जो उस-उस रूप से स्वाभाविक परिणमन है वह अनादि परिणाम है । क्यों कि अनादि काल से ही इन द्रव्यों का परिणमन इसी रूप से होता चला आरहा है । तात्पर्य कहने का यह है कि इन द्रव्यों का जो स्वाभाविक स्वरूप परिणमन है वही अनादि परिणाम है । परन्तु जो रूपी द्रव्य-पुद्गल द्रव्य है उनका उस उस प्रकार का जो परिणमन होता है वह सादि परिणाम है । क्योंकि अभ्र, इन्द्रधनुष आदि पौद्गलिक द्रव्यों के उस उस प्रकार के परिणमन में अनादिता होती है । इसलिये समस्त आनुपूर्वी द्रव्य सादि पारिणामिक भाव में वर्तते हैं । अर्थात् आनुपूर्वी द्रव्यों में जो आनुपूर्वी रूप विशिष्ट परिणाम है वह अनादि कालीन नहीं है । कारण-पुद्गलों का जो एक विशिष्ट रूप से परिणाम होता है वह उत्कृष्ट की अपेक्षा असंख्यात कालतक ही स्थायी माना गया है । इसी प्रकार से समस्त आनुपूर्वी द्रव्य और समस्त अवक्तव्य भी सादि पारिणामिक भाव में ही रहते हैं । औदयिक भावों की व्याख्या आगे की जावेगी इसलिये यहां नहीं की गई है ।

छे. ते परिणाम जे प्रकारनुं डोय छे—(१) सादि परिणाम, (२) अनादि परिणाम. धर्मास्तिकाय आदि जे अरूपी द्रव्ये छे तेमनुं ते ते इपे जे स्वाभाविक परिणमन थाय छे तेनुं नाम अनादि परिणाम छे, कारणु के अनादि कालीन जे ते द्रव्येनुं आ इपे परिणमन थतुं आवे छे. आ कथननो भावार्थ जे छे के आ द्रव्येनुं जे स्वाभाविक स्वरूप परिणमन छे, जेअ अनादि परिणाम छे. परंतु जे इपी द्रव्य (पुद्गल द्रव्य) छे तेमनुं ते ते प्रकारनुं जे परिणमन थाय छे ते सादि परिणाम छे, कारणु के वादणां, मेघधनुष आदि पौद्गलिक द्रव्येना ते ते प्रकारना परिणमनमां अनादिता होती नथी तेथी जेनुं कडेवामां आव्युं छे के समस्त आनुपूर्वी द्रव्ये सादिपरिणामिक भावमां रडे छे. जेटवे के आनुपूर्वी द्रव्येमां जे आनुपूर्वी इपे विशिष्ट परिणाम छे ते अनादि कालिन नथी कारणु के पुद्गलेनुं जे जेक विशिष्ट इपे परिणमन थाय छे ते वधारेमां वधारे असंख्यात काल सुधी जे स्थायी रडे छे, जेम मानवामां आवे छे. जेअ प्रमाणे समस्त अनादुपूर्वी द्रव्य अने समस्त अवक्तव्यके द्रव्य पथु सादिपरिणामिक भावमां जे रडे छे औदयिक आदि भावोनुं स्पष्टीकरणु आगण करवामां आवशे.

टीका—‘जेगमववहारणं’ इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि कतमस्मिन् भावे भवन्ति? इति सामान्यतः पृष्ठा विशेषतः पृच्छति—किमौदयिके भावे भवन्ति? किमौपशमिके भावे भवन्ति? क्षायिके भावे भवन्ति क्षायोपशमिके भावे भवन्ति? पारिणामिके भावे भवन्ति?, साक्षिपातिके भावे भवन्ति? इति उत्तरमाह—नियमात्=अवश्यतया—आनुपूर्वीद्रव्याणि सादिपारिणामिके—भावे—भवन्ति। तत्र—परिणमनं द्रव्यस्य तेन तेन रूपेण भवनं परिणामः, स एव पारिणामिकः, परिणामे भवः, परिणामेन निवृत्त इति वा पारिणामिकः। स च द्विविधः—सादिरनादिश्च तत्र—धर्मास्तिकायाधरूपिद्रव्याणामनादिः परिणामः। अनादिकाळात् तत्तद्रव्यत्वेन तेषां परिणतत्वात्। रूपिद्रव्याणां तु सादिः परिणामः, अभ्रेन्द्रधनुरादीनां तथा परिणामस्यानादित्वाभावात्। सादिश्चासौ पारिणामिकश्च सादि पारि-

भावार्थ— आनुपूर्वी आदि द्रव्य कौन से भाव वाले हैं यह यहां प्रश्न किया गया है तब इसका उत्तर सूत्रकार ने यों दिया है कि ये सब आनुपूर्वी आदि पौद्गलिक द्रव्य सादि पारिमाणिक भाव वाले हैं। पारिमाणिक भाव द्रव्य का वह परिणाम है जो सिर्फ द्रव्य के अस्तित्व से आप ही आप हुआ है। औपशमिक भाव कर्मों के उपशम से होता है। जैसे मल के नीचे बैठ जाने पर जलमें स्वच्छता होती है। क्षायिक भाव कर्मों के क्षय से पैदा होता है। जैसे कीचड़ के सर्वथा नष्ट हो जाने पर जल में स्वच्छता आती है। क्षय और उपशम इन दोनों के संबन्ध से जो भाव उत्पन्न होते हैं वे क्षायोपशमिक भाव हैं—जैसे कोढ़ों—कोढ़कर्म घोने पर कुछ मादक शक्ति नष्ट हो जाती है और कुछ

भावार्थ—आनुपूर्वी आदि द्रव्यो कथा भाववाणां होय छे, जेवो अही प्रश्न पूछवामां आये छे आ प्रश्नो सूत्रकारे जेवो उत्तर आये छे के समस्त आनुपूर्वी आदि पौद्गलिक द्रव्यो सादिपारिणामिक भाववाणां होय छे. पारिणामिक भावद्रव्यनुं जे परिणाम छे के जे मात्र द्रव्यना अस्तित्वमां जे आये. आप थया करे छे. औपशमिक भाव कर्मोना उपशमथी उत्पन्न थाय छे. जेम पाणीमां रहेले. क्यरो नीचे जेसी जधने पाणी स्वच्छ थाय छे जे प्रमाणे कर्मोना उपशमथी औपशमिक भाव पैदा थाय छे. कर्मोना क्षयथी क्षायिक भाव पैदा थाय छे जेम कादवनेो सर्वथा नाश थधे जवाथी पाणी स्वच्छ जनी जाय छे जे प्रमाणे कर्मोना क्षय थवाथी क्षायिक भाव उत्पन्न थाय छे. क्षय अने उपशम, आ जनेना संबधथी जे भाव उत्पन्न थाय छे तेमने क्षायोपशमिक भाव कहे छे. जेम कादराने पाणीमां घावाथी तेनी थोडी मादकशक्ति नष्ट थधे जाय छे अने थोडी

णामिकः, तस्मिन् भावे भवन्ति, अनुपूर्वीद्रव्याणामानुपूर्वीत्वेन परिणामस्याना-
दित्राऽसंभवात्, उत्कर्षतो विशिष्टैकरिणामेन पुद्गलानामसंख्येयकालमेवावस्था-
नात् । एवमनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च सादिपारिणामिके भावे, एव
भवन्ति । औदयिकादीनां व्याख्याऽत्र न कृता, अग्रे करिष्यमाणत्वात् ॥ सू० ८९ ॥

मूलम्—एषसि णं भंते ! णेगमववहाराणं आणुपुवीदवाणं
अणाणुपुवीदवाणं अवत्तवगदवाणं य दवट्टयाए पएसट्टयाए
दवट्टपएसट्टयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा
विसेसाहिया वा ? गोयमा ! सवत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्त-
वगदवाइं दवट्टयाए, अणाणुपुवीदवाइं दवट्टयाए विसेसाहियाइं,
आणुपुवीदवाइं दवट्टयाए असंखेज्जगुणाइं १ । पएसट्टयाए सव-
त्थोवाइं णेगमववहाराणं अणाणुपुवीदवाइं अपएसट्टयाए ।
अवत्तवगदवाइं पएसट्टयाए विसेसाहियाइं । आणुपुवीदवाइं
पएसट्टयाए अणंतगुणाइं २ । दवट्टपएसट्टयाए सवत्थोवाइं णेग-
मववहाराणं अवत्तवगदवाइं दवट्टयाए । अणाणुपुवीदवाइं दव-

शेष बची रहती है । कर्मों के उदय से होने वाले भाव औदयिक भाव
हैं । जैसे कीचड़ के संबन्ध से जलमें मलिनता होती है । पारिणामिक
भाव के दो भेद हैं १ एक सादि पारिणामिक भाव और—दूसरा अनदि
पारिणामिक भाव । अनादि पारिणामिक भाव धर्मास्तिकायादिक असू-
र्त पदार्थों में होता है । और सूत पौद्गलिक द्रव्यों में सादि पारिणामिक
भाव होता है । ॥ सू० ८९ ॥

भाडी रही जाय છે એજ પ્રમાણે ક્ષય અને ઉપશમને કારણે પણ કર્મોની
સ્થિતિ થાય છે કર્મોના ઉદયથી ઉત્પન્ન થતાં ભાવને ઔદયિક ભાવ કહે છે
જેમ કાઠવને લીધે પાણી મલિન બને છે, એજ પ્રમાણે કર્મોના ઉદયથી
આત્મા પર કર્મોરૂપી ભેદ જામે છે પારિણામિક ભાવના નીચે પ્રમાણે બે
ભેદ છે—(૧) સાદિ પારિણામિક ભાવનો સદ્ભાવ ધર્માસ્તિકાય આદિ અમૂર્ત
દ્રવ્યોમાં હોય છે અને મૂર્ત પૌદ્ગલિક દ્રવ્યોમાં સાદિપારિણામિક ભાવનો
સદ્ભાવ હોય છે. ॥સૂ० ૮૯॥

द्वयाए अपएसद्वयाए विसेसाहियाइं । अवत्तव्वगदव्वाइं पएसद्वयाए
विसेसाहियाइं । आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वद्वयाए असंखेज्जगुणाइं,
ताइं चेव पएसद्वयाए अणंतगुणाइं ३ । से तं अणुगमे, से तं
नेगमव्ववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ॥सू० १०॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त । नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणामनानुपूर्वी-
द्रव्याणामवक्तव्यकद्रव्याणां च द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया
कानि केभ्योऽल्पानि वा बहुकानि वा तुल्यानि वा विशेषाधिकानि वा ? गौतम !
सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोरवक्तव्यकद्रव्याणि द्रव्यार्थतया, अनानुपूर्वीद्रव्याणि

अथ सूत्रकार नववे अल्प बहुत्व द्वार की प्ररूपणा करते हैं—

“एएसि णं भंते ।” इत्यादि

शब्दार्थ—(भंते ! नेगमव्यवहाराणं एएसि आणुपुव्वी दव्वाणं अणु-
पुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाणं य दव्वद्वयाए पएसद्वयाए, दव्वद्वपए-
सद्वयाए कयरे कयरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसा-
हिया वा ?) हे भदन्त ! नैगम व्यवहारनय संमत इन आनुपूर्वी द्रव्यों
के अनानुपूर्वी द्रव्यों के, और अवक्तव्यक द्रव्यों के बीच में द्रव्यार्थता
प्रदेशार्थता और द्रव्यार्थ प्रदेशार्थता की अपेक्षा करके कौन २ द्रव्य
किन २ द्रव्यों से अल्प हैं ? कौन २ द्रव्यों से अधिक है ? कौन २ किन-
२ के समान हैं ? कौन २ किन २ द्रव्यों से विशेष अधिक हैं ?

७वे सूत्रकार नवमां अल्पबहुत्व द्वारनी प्ररूपणा करे छे—

“ एएसि णं भंते ! ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(भंते ! नेगमव्यवहाराणं एएसि आणुपुव्वीदव्वाणं अणुपुव्वी-
दव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाणं य दव्वद्वयाए पएसद्वयाए, दव्वद्वपएसद्वयाए कयरे
कयरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?) हे भगवन् !
नैगम अने व्यवहार नयसंमत आ आनुपूर्वी द्रव्यो, अनानुपूर्वी द्रव्यो
अने अवक्तव्यक द्रव्योनी द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता अने द्रव्यार्थप्रदेशार्थ-
तानी अपेक्षाये सरभामणी करवमां आवे, तो क्या क्या द्रव्यो करतां न्यून
छे ? क्या क्या द्रव्यो क्या क्या द्रव्यो करतां अधिक छे ? क्या क्या द्रव्यो
क्या क्या द्रव्योनी परापर छे ? अने क्या क्या द्रव्यो क्या क्या द्रव्योथी
विशेषाधिक छे ?

द्रव्यार्थतया विशेषाधिकानि । आनुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि ।
प्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि अप्रदेशार्थतया

उत्तर— (गोयमा दव्वट्टयाए णैगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं सव्वत्थोवाइं) हे गौतम ! द्रव्यार्थता की अपेक्षा से नैगम व्यवहारनय संमत अवक्तव्यक द्रव्य सर्वस्तोक हैं—अनानुपूर्वी द्रव्यों से भी अल्प हैं । (अणाणुपुव्वी दव्वाइं दव्वट्टयाए विसेसाहियाइं) तथा अनानुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा से विशेषाधिक हैं—अवक्तव्यक द्रव्यों से कुछ अधिक हैं । विशेषाधिकता इनमें वस्तुस्थिति के स्वभाव से है । “तदुक्तम्” इन परमाणु पुद्गलों के और द्विप्रदेशी स्कंधों के बीच में कौन किससे अधिक है ? गौतम ! द्विप्रदेशिक स्कंधों से परमाणु पुद्गल अधिक हैं । इस कथन के अनुसार अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा परमाणुरूप पुद्गल अधिक प्रमाणित होते हैं । (दव्वट्टयाए आणुपुव्वी दव्वाइं असंखेज्जगुणाइं) तथा द्रव्यार्थता की अपेक्षा से आनुपूर्वीद्रव्य असंख्यात गुणित हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि जो अनानुपूर्वी द्रव्य हैं उनमें परमाणुरूप एक एक ही स्थान लभ्य है, एवं जो अवक्तव्यक द्रव्य हैं उनमें भी द्विप्रदेशी स्कंध रूप एक एक स्थान ही लभ्य हैं परन्तु जो

उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (दव्वट्टयाए णैगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं सव्वत्थोवाइं) द्रव्यार्थतानी अपेक्षाये नैगम अने व्यवहार नय संमत अवक्तव्यक द्रव्य सौथी अल्प छे—अट्टे के अनानुपूर्वी द्रव्येथी पणु ते अल्पप्रमाणुमां डेय छे. (अणाणुपुव्वीदव्वाइं, दव्वट्टयाए विसेसाहियाइं) तथा द्रव्यार्थतानी अपेक्षाये अवक्तव्यक द्रव्ये करतां अनानुपूर्वी द्रव्ये विशेषाधिक छे. तेमां आ विशेषाधिकता वस्तुस्थितिना स्वभावनी अपेक्षाये समज्जी. “तदुक्तम्” कलुं पणु छे के “डे लगवन् ! परमाणु पुद्गले अने द्विप्रदेशी स्कंधे, आ जन्नेमांथी डेणु डेना करतां अधिक छे? उत्तर—डे गौतम ! द्विप्रदेशीक स्कंधे करतां परमाणु पुद्गले अधिक डेय छे.” आ कथन अनुसार द्विप्रदेशी स्कंधे इप अवक्तव्यक द्रव्ये करतां परमाणुपुद्गले इप अनानुपूर्वी द्रव्ये अधिक छे, अे वात प्रमाणित थाय छे. (दव्वट्टयाए आणुपुव्वीदव्वाइं असंखेज्जगुणाइं) तथा द्रव्यार्थतानी अपेक्षाये आनुपूर्वी द्रव्ये, अनानुपूर्वी द्रव्ये करतां असंख्यात गणां छे. आ कथनतुं स्पष्टीकरण नीचे प्रमाणे छे जे अनानुपूर्वी द्रव्ये छे तेमां परमाणु इप अेक अेक स्थान जे लभ्य डेय छे, अने जे अवक्तव्यक द्रव्ये छे तेमां पणु द्विप्रदेशी स्कंध इप अेक अेक जे स्थान लभ्य डेय छे. परन्तु जे

अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि । आनुपूर्वीद्रव्याणि प्रदेशार्थतयाऽनन्तगुणानि २ । द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोरावक्तव्यद्रव्याणि द्रव्यार्थतया । अनानुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया, अप्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि आनुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि, तान्येव प्रदेशार्थतया अनन्तगुणानि । स एषोऽनुगमः । सैषां नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ॥ सू० ९० ॥

आनुपूर्वी द्रव्य है उनमें व्यणुक्त स्कंध से लगाकर एकोत्तर वृद्धि से एक एक प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि होने से अनन्ताणुक स्कंध पर्यन्त अनन्त स्थान हैं इसलिये स्थान की बहुत विवक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यातगुणे कहे गये हैं ।

शंका— यदि आनुपूर्वी द्रव्यों के स्थान पूर्व की अपेक्षा अनन्त हैं इसलिये आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यात गुणों पूर्व की अपेक्षा लेकर कहे गये हैं, सो ये कहना ठीक नहीं है क्यों कि इस प्रकार के कथन से तो उन आनुपूर्वी द्रव्यों में उनकी अपेक्षा असंख्यातगुणता न आकर अनन्त गुणता ही आती है ?

उत्तर—अनन्ताणुक जो स्कंध हैं वे तो अनानुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा से अनन्त भागवर्ती होने के कारण स्वभावतः ही स्तोक-कम-हैं । इसलिये अनन्ताणुक स्कंधों को लेकर आनुपूर्वी द्रव्यों में—आनुपूर्वी के स्थानों में कुछ वृद्धि नहीं होती है । इसलिये यथार्थरूप में उनमें—आनुपूर्वीद्रव्यों

आनुपूर्वी द्रव्यो छे तेमां तो त्रिआणुक स्कंधथी लधने कमे कमे अेक अेक प्रदेशनी उत्तरोत्तर वृद्धि थतां थतां अनन्ताणुक स्कंध पर्यन्तनी अनन्त स्थान होय छे तेथी स्थानना अहुत्तनी अपेक्षाअे आनुपूर्वी द्रव्यो, अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्यो करतां असंख्यात गणुं कडेवाभां आव्यां छे

शंका—अे आनुपूर्वी द्रव्योना स्थान अनन्त होय, अने अनानुपूर्वी द्रव्योना तथा अवक्तव्यक द्रव्योनां स्थान अेक अेक होय तो अही आनुपूर्वी द्रव्योने अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्यो करतां अनन्त गणुं कडेवा नोछता उतां छतां अहीं तेमने असंख्यात गणुं शा कारणे कथां छे ?

उत्तर—अनन्ताणुक अे स्कंधो छे तेअो अनानुपूर्वी द्रव्यो करतां अनन्तमां लागप्रमाणु होवाने कारणे स्वाभाविक रीते अे स्तोक (आछां, न्यून) छे, तेथी अनन्ताणुक स्कंधोने लीधे आनुपूर्वी द्रव्योमां—आनुपूर्वी द्रव्योनां स्थानोमां आस कौछ वृद्धि थती नथी, तेथी यथार्थ इये तो ते आनुपूर्वी

टीका—‘एएसि णं’ इत्यादि—

हे भदन्त ! नैगमव्यवहारसम्मतानामेतेषामानुपूर्वीद्रव्याणामनानुपूर्वी द्रव्याणामवक्तव्यकद्रव्याणां च मध्ये द्रव्यार्थतया=द्रव्यमेवार्थो द्रव्यार्थस्तस्यभावो द्रव्यार्थता तया, द्रव्यत्वेनेत्यर्थः, द्रव्यत्वमपेक्ष्य, प्रदेशार्थतया=प्रदेशत्वमपेक्ष्य, द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया=द्रव्यत्वं-प्रदेशत्वं-चापेक्ष्य-कानि केभ्यः अल्पानि विशेषहीनत्वादिनां स्तोकानि वा भवन्ति ? बहुकानि=असंख्येयगुणत्वादिनां अधिकानि वा भवन्ति ? तुल्यानि=समसंख्यत्वेन समानि वा, किञ्चिदाधिक्येन विशेषाधिकानि वा भवन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—हे गौतम ! द्रव्यार्थतया=द्रव्यार्थत्वमपेक्ष्य नैगमव्यवहारसम्मतानि अवक्तव्यकद्रव्याणि सर्वस्तोकानि=अनानुपूर्वीद्रव्येभ्य आनुपूर्वीद्रव्येभ्यश्च अल्पानि । अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु द्रव्यार्थतया विशेषाधिकानि=अवक्तव्यकद्रव्येभ्यः किञ्चिदधिकानि । विशेषाधिक्यं तस्य वस्तुस्थितिस्वभावात् । तदुक्तम्—

‘एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं दुप्पएसियाणं खंधाणं कयरे कयरेहितो बहुया ? गोयमा ! दुप्पएसिएहितो खंधेहितो परमाणुपोग्गला बहुया ॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त ! परमाणुपुद्गलानां द्विप्रदेशिकानां स्कन्धानां मध्ये के केभ्यो बहुकाः; ३ गौतम ! द्विप्रदेशिकेभ्यः स्कन्धेभ्यः परमाणुपुद्गला बहुकाः ० ३ इति ।

में- असंख्यात गुणित ही स्थान बनते हैं और उन्हीं स्थानों को लेकर उनमें असंख्यात गुणता आती है । अनंतगुणता नहीं । यह सब विषय अनुगम के भाग नाम के सप्तमद्वार में कथित “एएसि णं भंते !” इत्यादि सूत्रपाठ से जान लेना चाहिये ॥ इस प्रकार द्रव्यार्थता की अपेक्षा लेकर बहुत्व का कथन करके अब सूत्रकार प्रदेशत्व की अपेक्षा से आनुपूर्वी भादि

द्रव्येभ्यो असंख्यात गणनां न स्थान भवेत्ते, अने अने स्थानोनी अपेक्षाये तेभ्योनामां (आनुपूर्वीं द्रव्येभ्यो) असंख्यात गुणितता न संभवती शक्ये—अनंत गुणितता संभवती शक्यती नथी. ८८भां सूत्रभां अनुगमना भागद्वार नामना सातभां लेखनुं प्रतिपादन करती वपते सूत्रकारे “एएसि णं” इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा आ विषयनुं विशेष वर्णन कथुं छे. तो ते सूत्रभांथी ते वांथी लेवुं. आ रीते द्रव्यार्थतांनी अपेक्षाये आनुपूर्वीं द्रव्ये आदिनी अल्पबहुत्वानुं कथन करीने हवे सूत्रकार प्रदेशत्वनी अपेक्षाये आनुपूर्वीं आदि द्रव्येना अल्पबहुत्वनुं कथन करे छे—

तथा—द्रव्यार्थतया आनुपूर्वीद्रव्याणि असंख्येयगुणानि ।

अयं भावः—अनानुपूर्वीद्रव्येषु परमाणुलक्षणं स्थानमेकैकमेव लभ्यते, अवक्तव्यकद्रव्येषु द्व्यणुकस्कन्धलक्षणं स्थानमेकैकमेवलभ्यते । आनुपूर्वीद्रव्येषु तु त्र्यणुकस्कन्धप्रभृतीनि एकोत्तरवृद्ध्याऽनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तानि अनन्तानि स्थानानि

द्रव्यों में अल्प बहुत्व का कथन करके अब सूत्रकार प्रदेशत्व की अपेक्षा से आनुपूर्वी आदि द्रव्यों में अल्प बहुत्वका कथन करते हैं—(नेगमववहाराणं अणाणुपुञ्जीदव्वाइं पएसट्टयाए सव्वत्थोवाइं) नेगम व्यवहारनय संमत समस्त अनानुपूर्वी द्रव्य प्रदेशत्व की अपेक्षा करके अवक्तव्यक द्रव्यों से एवं आनुपूर्वी द्रव्यों से अल्प हैं । क्यों कि (अपएसट्टयाए) अनानुपूर्वी द्रव्यों में प्रदेशरूप अर्थका अभाव है । तात्पर्य कहने का यह है कि परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्यों में भी यदि द्वितीय आदि प्रदेश हो तो द्रव्यार्थता की तरह प्रदेशार्थता में भी अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से उनकी अधिकता हो जावे परन्तु ऐसा तो है नहीं क्यों कि परमाणु अप्रदेशी होता है—ऐसा सिद्धान्त का वचन है । इसलिये प्रदेशार्थता की अपेक्षा से ये आनुपूर्वी-द्रव्य सर्वस्तोक—थोड़े कहे गये हैं । निष्कर्षार्थ इसका यह है कि अनानुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा लेकर अवक्तव्यक द्रव्यों से कुछ अधिक कहे गये हैं और अवक्तव्यक द्रव्य इनसे कम । सो यदि परमाणुरूप इन अनानुपूर्वी द्रव्यों में भी यदि द्वितीयादिक प्रदेश मान लिये जावे

(नेगमववहाराणं अणाणुपुञ्जीदव्वाइं पएसट्टयाए सव्वत्थोवाइं) नेगम अने व्यवहार नयसंमत समस्त अनानुपूर्वी द्रव्यो प्रदेशत्वनी अपेक्षाओ अवक्तव्यक द्रव्यो करतां अने आनुपूर्वी द्रव्यो करतां अल्प होय छे, कारण के (अपएसट्टयाए) अनानुपूर्वी द्रव्योमां प्रदेश रूप अर्थनो अभाव होय छे, आ कथननुं तात्पर्य ओ छे के ने परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्योमां पणु द्वितीय आदि प्रदेशोना सदभाव होत तो द्रव्यार्थतानी नेम प्रदेशार्थतामां पणु अवक्तव्यक द्रव्यो करतां तेमनी अधिकता न होत परन्तु ओवी काई वातनो तो सदभाव न नथी, कारण के परमाणु अप्रदेशी होय छे, ओवुं सिद्धांतनुं वचन छे, ते कारणे प्रदेशार्थतानी अपेक्षाओ अनानुपूर्वी द्रव्योने सौथी अल्प कडेवामां आवेल छे आ समस्त कथननो भावार्थ ओ छे के द्रव्यार्थतानी अपेक्षाओ तो अनानुपूर्वी द्रव्योने अवक्तव्यक द्रव्यो करतां विशेषाधिक कडेवामां आवेल छे, ओटवे के अनानुपूर्वी द्रव्यो करतां अवक्तव्यक-द्रव्यो अल्प कडेवामां आव्यां छे, पणु प्रदेशत्वनी अपेक्षाओ तो आनुपूर्वी

प्राप्यन्ते, अतः स्थानबहुत्वात् आनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्वीद्रव्येभ्योऽवक्तव्यक-
द्रव्येभ्यश्चाऽसंख्येयगुणानि ।

ननु-आनुपूर्वीद्रव्याणां स्थानानि यद्यनन्तानि, तर्हि आनुपूर्वीद्रव्याणि
पूर्वापेक्षयाऽनन्तगुणानि भवन्तीतिवक्तव्यम्, कथनमसंख्यातगुणानीत्युक्तम् ? इति
चेत्, उच्यते-अनन्ताणुकस्कन्धास्तु अनानुपूर्व्यपेक्षयाऽनन्तभागवर्तित्वात् स्व-
भावादेव स्तोका इति-अनन्ताणुकस्कन्धैरानुपूर्वीद्रव्येषु न किञ्चिद् वर्धते, अतो
वस्तुवक्ष्या असंख्यातान्येव तेषु स्थानानि प्राप्यन्ते । तदपेक्षया तु असंख्यात-
गुणान्येव तानि भवन्ति, नन्वनन्तगुणानीति । एतच्चानुगमस्य सप्तमे भागनामके द्वारे
प्रदर्शितात्-‘एएसि णं भंने’ इत्यादिकान् सूत्रपाठान् सर्वभाषनीयम् १ । इत्थं
द्रव्यार्थतयाऽल्पबहुत्वमभिधाय सम्प्रति प्रदेशार्थतया तदाह-‘एएसट्टयाए, इत्यादि ।
नैगमव्यवहारसम्मतानि अनानुपूर्वीद्रव्याणि प्रदेशार्थतया=प्रदेशत्वमपेक्ष्य सर्वस्तो-
कानि=अवक्तव्यद्रव्येभ्य आनुपूर्वीद्रव्येभ्यश्चाल्पानि । एषां सर्वस्तोकत्वे हेतुमाह-
‘अपएसट्टयाए’ इति । अप्रदेशार्थतया=अप्रदेशार्थत्वात्, अनानुपूर्वी द्रव्येषु प्रदे-
शरूपस्यार्थस्य अभावात् । अयं भावः-यदि हि अनानुपूर्वी द्रव्येष्वपि प्रदेशाः स्यु-
स्तदा द्रव्यार्थतायामिव प्रदेशार्थतायामपि अवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया तेषामाधिक्यं
स्यात्, नचैतदस्ति, ‘परमाणुरप्रदेशः’ इति वचनात्, अतः सर्वस्तोकानि एतानि ।

ननु यद्यनानुपूर्वीद्रव्येषु प्रदेशार्थता नास्ति, तर्हि अत्र तस्या विचारोऽनुपयुक्त
एवे? ति चेत्, उच्यते-‘प्रदेश’ शब्दस्य प्रकृष्टः-सर्वसूक्ष्मः देशः=पृद्गलास्ति-

तो प्रदेशार्थता से भी उनकी अवक्तव्यकद्रव्यों की अपेक्षा अधिकता
मानी जानी चाहिये । परन्तु ऐसा नहीं है । क्योंकि परमाणु अप्रदेशी
है । अतः अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वस्तोक हैं यही सिद्धान्त युक्तियुक्त है ।

शंका—यदि अनानुपूर्वी द्रव्यों में प्रदेशार्थता नहीं है, तो यहाँ पर
प्रदेशार्थता को लेकर उनकी विचार करना अनुपयुक्त ही है ?

द्रव्योने अवक्तव्य द्रव्ये करतां पञ्च अल्प मानवामां आवेक्ष्ये, एतच्च हे
परमाणु इय अनानुपूर्वी द्रव्य अप्रदेशी होय छे ले आ परमाणु इय अनानुपूर्वी
द्रव्योमां पञ्च द्वितीय आवेक्ष्ये प्रदेशोने सदृशाव मानवामां आवे, तो
प्रदेशार्थतानी अपेक्षाये पञ्च अवक्तव्यक द्रव्ये करतां अनानुपूर्वी द्रव्योनी
अधिकता संभवी शक्ये छे. परन्तु परमाणु इय अनानुपूर्वी द्रव्योने सर्वस्तोक
(सौथी अल्प) मानवानो सिद्धोत न युक्तियुक्त लागे छे.

शंका-ले अनानुपूर्वी द्रव्योमां प्रदेशार्थतानो सदृशाव न होय, तो
अन्धी प्रदेशार्थतानी अपेक्षाये तेमनो विचार करवो अे वात न शुं
अनुचित लागती नथी ?

कायस्य निरंशो भागः, इति व्युत्पत्त्या परमाणुद्रव्येऽपि प्रदेशत्वमस्त्येव, अतः प्रदेशार्थतया एषां विचारो नानुपयुक्त इति । तथा—अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतयाऽनानुपूर्वीद्रव्येभ्यो विशेषाधिकानि अवक्तव्यकद्रव्येषु एकैकस्य द्विप्रदेशत्वात् । अनानुपूर्वीद्रव्यापेक्षयाऽवक्तव्यकद्रव्याणां प्रदेशार्थत्वमाश्रित्य विशेषाधिक्यं बोध्यमिति । आनुपूर्वीद्रव्याणि तु प्रदेशार्थतया अवक्तव्यकद्रव्येभ्योऽनन्तगुणानि ।

उत्तर—ऐसा नहीं है—क्योंकि 'प्रकृष्टदेशः प्रदेशः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सर्व सूक्ष्मदेश का नाम प्रदेश, अर्थात् पुद्गलास्तिकाय का निरंश भाग है वह प्रदेश है । ऐसा प्रदेशपन परमाणु द्रव्य है ही । इसलिये प्रदेशार्थता की अपेक्षा इनका विचार अनुपयुक्त नहीं है तथा—(अवक्तव्यकद्रव्याणामपेक्षयाऽवक्तव्यकद्रव्येषु एकैकस्य द्विप्रदेशत्वात्) अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्यों से विशेषाधिक—कुछ अधिक—हैं । अर्थात् अवक्तव्यक द्रव्यों में एक २ अवक्तव्यकद्रव्य द्विप्रदेशवाला होता है और अनानुपूर्वी द्रव्यों में एक एक अनानुपूर्वीद्रव्य एक प्रदेशवाला होता है इसी कारण अनानुपूर्वी द्रव्यों से अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थता को लेकर कुछ अधिक कहे गये हैं । (आणुपुन्वीद्व्याणामपेक्षयाऽवक्तव्यकद्रव्येषु एकैकस्य द्विप्रदेशत्वात्) जो आनुपूर्वी द्रव्य हैं वे अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं । क्यों कि इनके प्रदेश अवक्तव्यकद्रव्यों के प्रदेशों

उत्तर—ये बात धराधर नहीं, कारण के " प्रकृष्टदेशः प्रदेशः " आ व्युत्पत्ति अनुसार सौथी सूक्ष्म देशानुं नाम प्रदेश छे अटले के पुद्गलास्तिकायनो ने निरंश भाग छे ते प्रदेशइय न छे. अेषु प्रदेशत्व तो परमाणु द्रव्यमां न होय छे. तेथी प्रदेशार्थतानी अपेक्षाअे तेमनो विचार करनामां अनुपयुक्तता नष्ठाती नथी.

तथा—(अवक्तव्यकद्रव्याणामपेक्षयाऽवक्तव्यकद्रव्येषु एकैकस्य द्विप्रदेशत्वात्) अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थत्वनी अपेक्षाथी विशेषाधिक होय छे. अटले के अवक्तव्यक द्रव्येमाना प्रत्येक अवक्तव्यक द्रव्य अणुप्रदेशवाणां होय छे, अने अनानुपूर्वी द्रव्येमानां प्रत्येक अनानुपूर्वी द्रव्य अेक अेक प्रदेशवाणुं होय छे. ते कारणे प्रदेशार्थतानी अपेक्षाअे अनानुपूर्वी द्रव्ये करतां अवक्तव्यक द्रव्येने विशेषाधिक (अमुक प्रमाणमां धारे) कहां छे.

(आणुपुन्वीद्व्याणामपेक्षयाऽवक्तव्यकद्रव्येषु एकैकस्य द्विप्रदेशत्वात्) प्रदेशार्थतानी अपेक्षाअे अवक्तव्यक द्रव्ये करतां आनुपूर्वी द्रव्ये अनन्त गुणां होय छे, कारण के

द्रव्यार्थतयाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्वीद्रव्येभ्योऽवक्तव्यकद्रव्येभ्यश्चाऽसंख्यात-
गुणान्युक्तानि, तदपेक्षयाऽऽनुपूर्वीद्रव्यस्कन्धानामसंख्यातगुणत्वात् । प्रदेशार्थताऽ-
पेक्षया तु आनुपूर्वीद्रव्याण्यनन्तगुणानि सन्ति, तत्प्रदेशानां पूर्वापेक्षयाऽनन्तगुण-
त्वादिति । इत्थं प्रदेशार्थतयाऽल्पबहुत्वमुक्त्वा, इदानीमुभयार्थतामाश्रित्य तदुच्यते-
'द्वन्द्वपएसद्वयाए' इत्यादि । नैगमव्यवहारसम्मतानि अवक्तव्यकद्रव्याणि द्रव्यार्थ-
प्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानि, सर्वस्तोक्तत्वे हेतुमाह—'द्वन्द्वयाए' इति । अवक्तव्यक-
द्रव्याणां—द्रव्यार्थतया—द्रव्यार्थत्वात् सर्वस्तोक्तत्वं बोध्यम् । तथा अनानुपूर्वीद्रव्याणि

से अनन्त गुणे हैं । यह पहिले कहा जा चुका है कि आनुपूर्वीद्रव्या-
र्थता को आश्रित करके अनानुपूर्वी द्रव्यों से अवक्तव्यकद्रव्यों से असं-
ख्यातगुणे हैं क्यों कि इनकी अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य स्कन्ध असंख्यात
गुणे होते हैं । परन्तु प्रदेशों की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य अनन्त गुणे हैं ।
क्यों कि इनके प्रदेश पूर्व की अपेक्षा अनन्तगुणे कहे गये हैं । इस प्रकार
प्रदेशार्थता की अपेक्षा अल्प बहुत्व का कथन करके अब सूत्रकार उभ-
यार्थता की अपेक्षा लेकर अल्प बहुत्व का कथन करते हैं—

(नैगमव्यवहाराणं अवक्तव्यगदन्वाहं द्वन्द्वपएसद्वयाए सव्वत्थो-
वाहं) नैगमव्यवहारनय संमत अवक्तव्यक द्रव्य द्रव्यार्थता और प्रदे-
शार्थता रूप उभयार्थता की अपेक्षा लेकर सर्वस्तोक हैं । क्योंकि (द्वन्द्व-
द्वयाए) अवक्तव्यक द्रव्यों में द्रव्यार्थता की अपेक्षा लेकरके पहिले सर्व-

तेमना प्रदेशो अवक्तव्यक द्रव्येना प्रदेशो करतां अनन्त गणां होय छे.
पडेलां ओ वात तो प्रकट करवाभां आवी युकी छे के द्रव्यार्थतानी अपेक्षाओ
अनानुपूर्वी द्रव्ये अने अवक्तव्यक द्रव्ये करतां आनुपूर्वी द्रव्ये असंख्यात
गणां छे, कारण के तेमना करतां आनुपूर्वी द्रव्यस्कन्ध असंख्यात गणां होय
छे परन्तु प्रदेशोनी अपेक्षाओ आनुपूर्वी द्रव्ये अनन्त गणां छे, कारण के
तेमना प्रदेशो अवक्तव्यक द्रव्येना प्रदेशो करतां अनन्त गणां कक्षां छे आ
रीते प्रदेशार्थतानी अपेक्षाओ आनुपूर्वी आदि द्रव्येना अल्प-बहुत्वनुं कथन
करीने हुवे सूत्रकार उभयार्थता (द्रव्यार्थता अने प्रदेशार्थता)नी अपेक्षाओ
तेमना अल्पबहुत्वनुं कथन करे छे—(नैगमव्यवहाराणं अवक्तव्यगदन्वाहं द्वन्द्व-
पएसद्वयाए सव्वत्थोवाहं) नैगम अने व्यवहार नयसंमत अवक्तव्यक द्रव्य
द्रव्यार्थता अने प्रदेशार्थता इप उभयार्थतानी अपेक्षाओ सर्वस्तोक सौथी ओछुं-
छे, कारण के (द्वन्द्वद्वयाए) द्रव्यार्थतानी अपेक्षाओ अवक्तव्यक द्रव्येभां सर्वस्तोक-
तानुं प्रतिपादन पडेलां करवाभां आयुं छे, तथा (अगाणुपूर्वी दन्वाहं द्वन्द्वद्वयाए

उभयार्थत्वमाश्रित्यावक्तव्यकद्रव्यापेक्षया विशेषाधिकानि बोध्यानि । अत्र हेतुमाह—
 'द्वन्द्व्याए अपएसद्व्याए' इति । द्रव्यार्थतयाऽप्रदेशार्थतया च अनानुपूर्वीद्रव्या-
 णामवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया विशेषाधिक्यं बोध्यम् । 'अवक्तव्यगद्व्वाइं' इत्यादि,
 अवक्तव्यकद्रव्याणां त्विह प्रत्येकं द्विप्रदेशत्वाद्विगुणितानां तेषामन्येभ्यः=अनानु-
 पूर्वीद्रव्येभ्यः प्रदेशार्थतया विशेषाधिकत्वं बोध्यम् । उभयार्थत्वमाश्रित्यानुपूर्वी
 द्रव्याणि असंख्येयगुणान्यनन्तगुणानि च सन्तीति सूचयितुमाह—'आणुपुव्वीद्व्वाइं'
 इत्यादि । आनुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि बोध्यानि, च=पुनः
 तान्येव=आनुपूर्वीद्रव्याण्येव प्रदेशार्थतया अनन्तगुणानि बोध्यानि । प्रत्येकचिन्ता-
 स्तोक्ता कही गई है । तथा " अणाणुपुव्वीद्व्वाइं द्वन्द्व्याए अपएसद्व-
 याए विसेसाहियाइं) अनानुपूर्वी द्रव्य उभयार्थत्व को आश्रित करके
 अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा से कुछ अधिक हैं । यहाँ कुछ अधिकता
 द्रव्यार्थता और अप्रदेशार्थता से जाननी चाहिये । (अवक्तव्यगद्व्वाइं
 पएसद्व्याए विसेसाहियाइं) तथा अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थता की अपे-
 क्षा लेकर अनानुपूर्वी द्रव्यों से विशेषाधिक है । सो यह विशेषाधिकता
 इनमें प्रत्येक अवक्तव्यक द्रव्य द्विप्रदेशी होने के कारण जाननी चाहिये ।
 क्यों कि ये प्रत्येक अनानुपूर्वी द्रव्यों के प्रदेशों की अपेक्षा द्विगुणित
 प्रदेशवाले हैं । तब कि अनानुपूर्वी द्रव्यों में प्रदेश एक एक है । इस
 प्रकार इनमें द्विगुणित जानना चाहिये । (आणुपुव्वीद्व्वाइं द्वन्द्व्याए
 असंखेज्जगुणाइं ताइं चैव पएसद्व्याए अणंतगुणाइं) उभयार्थता
 को आश्रित करके द्रव्यार्थता की अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यात

अपएसद्व्याए विसेसाहियाइं) अनानुपूर्वी द्रव्य उभयार्थत्वनी अपेक्षाये अव-
 क्तव्यक द्रव्य करतां विशेषाधिक डोय छे अड्डीं द्रव्यार्थता अने अप्रदेशार्थ-
 तानी अपेक्षाये आ अधिकता समञ्ची. (अवक्तव्यगद्व्वाइं पएसद्व्याए
 विसेसाहियाइं) तथा अवक्तव्यक द्रव्ये प्रदेशार्थतानी अपेक्षाये अनानुपूर्वी
 द्रव्ये करतां विशेषाधिक छे. तेमनी आ विशेषाधिकता प्रत्येक अवक्तव्यक
 द्रव्य द्विप्रदेशी डोवाने कारणे समञ्ची, कारणे के प्रत्येक अनानुपूर्वी द्रव्य
 करतां प्रत्येक अवक्तव्यक द्रव्य अमण्णु प्रदेशवाणुं डोय छे अनानुपूर्वी द्रव्य
 ओक ओक प्रदेशवाणुं डोय छे अने अवक्तव्यक द्रव्य अण्णे प्रदेशवाणुं डोय
 छे, ते कारणे अवक्तव्यक द्रव्यने अनानुपूर्वी द्रव्य करतां अमण्णु प्रदेशवाणुं कहुं छे.

(आणुपुव्वीद्व्वाइं द्वन्द्व्याए असंखेज्जगुणाइं ताइं चैव पएसद्व्याए
 अणंतगुणाइं) उभयार्थतानी अपेक्षाये डेवे तेमना अल्पमहुत्वनो विचार

यथादुभयार्थतया चिन्तायामयमेव विशेषः—अनानुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतामाश्रित्य अवक्तव्यद्रव्यापेक्षया विशेषाधिकानि भवन्ति, तत्र प्रदेशरहितत्वात् प्रदेशार्थताया असंभवात् सर्वस्तोकत्वं न गृहीतम् । प्रत्येकचिन्तायां तु प्रदेशार्थतापक्षे तदपि गृहीतम् । एतदर्थमेव उभयार्थता पक्षोपादानम् । इत्थं नवविधमनुगममुक्त्वा सम्प्रति प्रकरणमुपसंहरन्नाह—‘से तं’ इत्यादि । स एषोऽनुगमः । सैषा नैगमव्यवहार-योरनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीति ॥ सू० ९० ॥

गुणे हैं और प्रदेशार्थता की अपेक्षा करके आनुपूर्वीद्रव्य अनन्तगुणा हैं । इस प्रकार प्रत्येक पक्ष से विचार करने की अपेक्षा जो यह उभयार्थ पक्ष की अपेक्षा लेकर विचार करने में आया है उसमें यही विशेषता है —कि जैसे इस पक्ष में अनानुपूर्वी द्रव्य, द्रव्यार्थता को आश्रित करके अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा विशेषाधिक कहे गये हैं । वैसे वे प्रदेश होने के—कारण सर्वस्तोक प्रदेशार्थता असंभवता से नहीं लाये गये हैं । परन्तु जब प्रत्येक पक्षको लेकर इनका विचार होता है तब यह सर्वस्तोकता भी उनमें प्रकट की जाती है । इसी निमित्त से यहां यह तृतीय पक्षरूप उभयार्थता गृहीत की गई है । इस प्रकार नव-विध अनुगम कह करके अब सूत्रकार इस प्रकरण का उपसंहार करने के अभिप्राय से (से तं अनुगमे, से तं नैगमव्यवहाराणं अणोवणि-हिया द्रव्यानुपूर्वी) इन पदों द्वारा यह प्रकट कर रहे हैं कि इस प्रकार

करवामां आवे छे—द्रव्यार्थतानी अपेक्षांछे आनुपूर्वी द्रव्य असंभवात् गणुं अने प्रदेशार्थतानी अपेक्षांछे आनुपूर्वी द्रव्य अनन्त गणुं छे. आ प्रकारे प्रत्येक पक्षने अनुलक्षीने विचार करवानी अपेक्षांछे जे अडीं उलयार्थपक्षनी अपेक्षांछे विचार करवामां आंछे छे तेमां अज विशेषता छे के—जेम द्रव्यार्थिकतानी दृष्टिंछे विचार करीने अनानुपूर्वी द्रव्ये अवक्तव्यक द्रव्ये करतां विशेषाधिक प्रकट करवामां आंछे छे, अे प्रमाणे प्रदेशार्थतानी अपेक्षांछे अनानुपूर्वी द्रव्येने विशेषाधिक अताववामां आंछे नथी, कारणे के तेओ प्रदेशरहित होवाने कारणे अवक्तव्यक द्रव्ये करतां अल्पप्रमाणुवाणा छे. परन्तु जे प्रत्येक पक्षनी अपेक्षांछे तेमने विचार करवामां आवे तो आ सर्वस्तोकता (सौ करतां अल्पप्रमाणुता) पणु तेमनामां प्रकट करी शक्य छे. अेज निमित्तने लीधे अडीं तृतीय पक्ष रूप उलयार्थता गृहीत करवामां आवी छे आ प्रमाणे नव प्रकारना अनुगमनुं निरूपण करीने हवे सूत्रकार आ प्रकरणेने उपसंहार करता कहे छे के—(से तं अनुगमे से तं नैगमव्य-हाराणं अणोवणिहिया द्रव्याणुपूर्वी) अनुगमनुं आ प्रकारनुं रूप छे. आ

इत्थं नैगमव्यवहारनयमतेन अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी व्याख्याय संग्रह-
नयमतेन सम्प्रति तामेव व्याख्यातुमाह—

मूलम्—से किं तं संग्रहस्स अणोवणिहिया द्वाणुपुव्वी ?
संग्रहस्स अणोवणिहिया द्वाणुपुव्वी पंचविहा पणत्ता, तं जहा-
अट्ठपयपरूवणया१, भंगसमुक्कित्तणया२ भंगोवदंसणया३ समो-
यारे४ अणुगमे५ ॥सू० ९१॥

छाया—अथ का सा संग्रहस्य अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ? संग्रहस्य अनौ-
पनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अर्थपदप्ररूपणता१, भङ्गसमुक्ती-
र्तनता२, भङ्गोपदर्शनता३, समवतारः४, अनुगमः५ ॥सू० ९१॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

व्याख्या निगद सिद्धा ॥सू० ९१॥

से यह अनुगम का स्वरूप है। इस प्रकार यहां तक नैगम व्यवहारनय
संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का कथन किया ॥ सू० ९० ॥

अथ सूत्रकार संग्रहनय के मतानुसार इस अनौपनिधि की द्रव्या-
नुपूर्वी का कथन करते हैं—‘से किं तं’ इत्यादि ।

शब्दार्थ— हे भदन्त! (से किं तं संग्रहस्स अणोवणिहिया द्वाणु-
पुव्वी) ‘संग्रहनय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(संग्रहस्स अणोवणिहिया द्वाणुपुव्वी पंचविहा पणत्ता)
संग्रहनय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पांच प्रकार कही गई है। (तं
जहा) उसके वे प्रकार ये हैं— (अट्ठपयरूपवणया१ भंगसमुक्कित्तणया५
भंगोवदंसणया३ समोयारे ४, अणुगमे ५,) अर्थपद प्ररूपणता १, भंग

प्रकारे ँडीं सुधीमां सूत्रकारे नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी
द्रव्यानुपूर्वीना स्वइपत्तुं निरूपयुं कथुं छे ॥सू०९०॥

इवे सूत्रकार संग्रहनयना मतानुसार आ अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीना
स्वइपत्तुं कथन करे छे—“से किं तं” इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—(से किं तं संग्रहस्स अणोवणिहिया द्वाणुपुव्वी ?) हे
भगवन्! संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीतुं स्वइप कथुं छे ?

उत्तर—(संग्रहस्स अणोवणिहिया द्वाणुपुव्वी पंचविहा पणत्ता) संग्रह-
नयसंमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पांच प्रकारनी कही छे. (तंजहा)
ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(अट्ठपयरूपवणया१, भंगसमुक्कित्तणया२, भंगोवदंस
णया३, समोयारे४ अणुगमे५) (१)अर्थपदप्ररूपणता, (२) भंगसमुक्तीर्तनता

अथ संग्रहनयेनार्थपदप्ररूपणतामाह—

मूलम्—से किं तं संग्रहस्स अट्टपयपरूवणया ? संग्रहस्स अट्ट-
पयपरूवणया तिप्पएसिए आणुपुव्वी चउप्पएसिए आणुपुव्वी
जाव दसपएसिए आणुपुव्वी संखिज्जपएसिए आणुपुव्वी असं-
खिज्जपएसिए आणुपुव्वी अणंतपएसिए आणुपुव्वी परमाणु-
पोग्गले अणाणुपुव्वी, दुप्पएसिए अवत्तव्वए । से तं संग्रहस्स
अट्टपयपरूवणया ॥सू० ९२॥

छाया—अथ का सा संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता ? संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता—त्रिप-
देशिक आनुपूर्वी चतुष्पदेशिक आनुपूर्वी यावद् दशप्रदेशिक आनुपूर्वी संख्येयप्रदेशि-

समुत्कीर्त्तनतार २ भंगोपदर्शनतार ३ समवतार ४ और अनुगम ५ । इस सूत्र
की व्याख्या ७४ वे सूत्रकीव्याख्या के अनुसार जाननी चाहिये ॥सू० ९१॥

संग्रहनय के मतानुसार अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है ? इस
बात को सूत्रकार प्रकट करते हैं । “से किं तं संग्रहस्स” इत्यादि ..

शब्दार्थ—हे भदन्त ! (से किं तं संग्रहस्स अट्टपयपरूवणया) पूर्व प्रक्रान्त
उस संग्रहनय मान्य अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(संग्रहस्स अट्टपयपरूवणया) संग्रहनय मान्य अर्थपद
प्ररूपणता का स्वरूप इस प्रकार से है—(तिप्पएसिए आणुपुव्वी चउप्प-
एसिए आणुपुव्वी, जाव दसपएसिए आणुपुव्वी संखिज्जपएसिए

(३) भंगोपदर्शनता, (४) समवतार अने (५) अनुगम आ सूत्रनी
व्याख्या ७४ मां सूत्रनी व्याख्या प्रभाषे समन्वी. ॥सू० ९१॥

संग्रहनयना मतानुसार अर्थपदप्ररूपणतानुं स्वरूप डेवुं डोय छे ते
डेवे सूत्रकार प्रकट करे छे—“से किं तं संग्रहस्स” इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—(से किं तं संग्रहस्स अट्टपयपरूवणया ?) डे भगवन् !
पूर्वप्रस्तुत संग्रहनयसंभत अर्थपदप्ररूपणतानुं स्वरूप डेवुं कहुं छे ?

उत्तर—(संग्रहस्स अट्टपयपरूवणया) संग्रहनयसंभत अर्थपद प्ररूपणतानुं
स्वरूप आ प्रकारनुं छे—

(तिप्पएसिए आणुपुव्वी, चउप्पएसिए आणुपुव्वी, जाव दस पएसिए
आणुपुव्वी, संखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, अंसंखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, अणंतप-

क आनुपूर्वी असंख्येयप्रदेशिक आनुपूर्वी, अनंतप्रदेशिक आनुपूर्वी परमाणुपुद्गलः
अनानुपूर्वी, द्विप्रदेशिकः अवक्तव्यकम् । सैषा संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता ॥ सू० ९२ ॥

आणुपुञ्जी असंखिज्जपएसिए आणुपुञ्जी, अणंतपएसिए आणुपुञ्जी,
परमाणुपुग्गळे अणणुपुञ्जी; दुप्पएसिए अवक्तव्वए) त्रिप्रदेशवाला स्कंध
आनुपूर्वी है, चार प्रदेशवाला स्कंध आनुपूर्वी है, यावत् दश प्रदेशवाला
स्कंध आनुपूर्वी है' संख्यात प्रदेशवाला स्कंध आनुपूर्वी है, असंख्यात
प्रदेश वाला स्कंध आनुपूर्वी है, अनन्त प्रदेश वाला स्कंध आनुपूर्वी है,
परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी द्रव्य है, द्विप्रदेश वाला स्कंध अवक्तव्यक
व्य है यही संग्रहनय मान्य अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप है । तात्पर्य
इसका यह है कि पहिले नेगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा करके
एक त्रिप्रदेशिक स्कंध एक आनुपूर्वी द्रव्य है, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कंध
अनेक आनुपूर्वी द्रव्य है इस प्रकार आनुपूर्वी में एकत्व और अने-
कत्व का निर्देश किया गया है । परन्तु सामान्यत्ववादी होने के कारण
इस संग्रहनय के मतानुसार समस्त त्रिप्रदेशिक स्कंध एक ही आनु-
पूर्वी हैं । इस नय की मान्यता इस विषय में ऐसी है कि जितने भी
त्रिप्रदेशिक स्कंध हैं वे यदि अपने त्रिप्रदेशिकत्व रूप सामान्य से भिन्न
हैं तो द्विप्रदेशिक आदि स्कंध की तरह वे त्रिप्रदेशिक स्कंध ही नहीं

येंदिए आणुपुञ्जी, परमाणुपुग्गळे अणणुपुञ्जी, दुप्पएसिए अवक्तव्वए) त्रि
प्रदेशवाणे। स्कंध आनुपूर्वीं छे, चार प्रदेशवाणे। स्कंध आनुपूर्वीं छे, जेण
प्रमाणे हस पर्यन्तना प्रदेशवाणे। स्कंध आनुपूर्वीं छे संख्यात प्रदेशवाणे।
स्कंध आनुपूर्वीं छे, असंख्यात प्रदेशवाणे। स्कंध आनुपूर्वीं छे अने अनंत
प्रदेशवाणे। स्कंध आनुपूर्वीं छे. परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वीं द्रव्य छे अने
जे प्रदेशवाणे। स्कंध अवक्तव्यक द्रव्य छे. संग्रहनय द्वारा मान्य अर्थपद
प्ररूपणतानुं आ प्रकारनुं स्वइय छे. आ कथननुं तात्पर्य नीचे प्रमाणे छे-
नेगम अने व्यवहार नयनी मान्यताने आधारे पडैलां जेनुं कथन करवाभां
आण्युं छे के जेक त्रिप्रदेशी स्कंध जेक आनुपूर्वीं द्रव्य इय छे, अने अनेक
त्रिप्रदेशी स्कंधो अनेक आनुपूर्वीं द्रव्यो इय छे. आ रीते आनुपूर्वींभां
जेकत्व अने अनेकत्वने। त्यां निर्देश करवाभां आण्यो छे. परन्तु सामान्य
त्ववादी होवाने कारणे आ संग्रहनयनी मान्यता अनुसार समस्त त्रिप्र-
देशी स्कंध जेक न आनुपूर्वीं इय छे. आ विषयने अनुलक्षिने आ नयनी

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा संग्रहनयसम्मता अर्थप्ररूपणता? इति पश्चः। उत्तरमाह—संग्रह-
नयसम्मता अर्थपदप्ररूपणता तु त्रिप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी चतुष्प्रदेशिकः
स्कन्ध आनुपूर्वी यावद् दशप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी, संख्येयप्रदेशिकः स्कन्ध
आनुपूर्वी, असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी, अनन्तप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी,
परमाणुपुद्गलः आनुपूर्वी, द्विप्रदेशिकः स्कन्धः अवक्तव्यकमिति। अत्रेदं बोध्यम्—
पूर्वत्र नैगमव्यवहारनयात्रपेक्ष्य ‘त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी—त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः’
इत्येवमेकत्वेन बहुत्वेन च निर्देशः कृतः। संग्रहनये तु संग्रहस्य सामान्यवादित्वात्
सर्वेऽपि त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धा एकैवानुपूर्वी। अत्र को हेतुः?—त्रिप्रदेशिकाः स्क-
न्धाः त्रिप्रदेशिकत्वसामान्याद् भिन्नाः, अभिन्ना वा?। यदि भिन्नास्तर्हि त्रिप्र-
देशिकाः स्कन्धास्त्रिप्रदेशिका एव न स्युः, द्विप्रदेशिकादिवत्। अथऽभिन्नास्तर्हि
यावन्त्रिप्रदेशिकाः सन्ति, ते सर्वेऽप्येक स्वरूपा एव च सर्वेऽपि त्रिप्रदेशिकाः
स्कन्धा एकैवानुपूर्वी। तथा चतुष्प्रदेशिकतया सर्वेऽपि चतुष्प्रदेशिकाः स्कन्धा
एकैवानुपूर्वी। एवं पञ्चप्रदेशिकादयः स्कन्धा अपि एका-एका आनुपूर्वी बोध्या।
इदं च अविशुद्धसंग्रहनयमतेन बोध्यम्। विशुद्धसंग्रहनयमतेन तु सर्वेषां त्रिप्रदे-

कहला सकते हैं। यदि त्रिप्रदेशिकत्व रूप सामान्य से वे अभिन्न हैं, तो वे सब त्रिप्रदेशिक स्कन्ध एक स्वरूप ही हैं। इस प्रकार सब भी त्रिप्रदेशिक स्कन्ध एक ही आनुपूर्वी हैं अनेक आनुपूर्वी नहीं। इसी प्रकार चतुष्प्रदेशिकत्व रूप सामान्य की अपेक्षा समस्त चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध एक ही आनुपूर्वी हैं। इसी प्रकार से पञ्च प्रदेशिक आदि स्कन्ध भी एक एक आनुपूर्वी हैं ऐसा जानना चाहिये। यह कथन अविशुद्ध संग्रहनय के मत से हैं। परन्तु जो विशुद्ध संग्रहनय हैं उसके मतानुसार तो

मान्यता એવી છે કે જેટલા ત્રિપ્રદેશી સ્કંધો છે તેઓ ભે પોતાના ત્રિપ્રદે-
શિકત્વ રૂપ સામાન્યથી ભિન્ન હોય તો તેમને ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધો જ કહી
શકાય નહીં ભે તેઓ ત્રિપ્રદેશિકત્વ રૂપ સામાન્યથી અભિન્ન હોય, તો તે
બધા ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધો એક રૂપ જ છે આ રીતે બધા ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધો
એક જ આનુપૂર્વી રૂપ છે—અનેક આનુપૂર્વી રૂપ નથી એજ પ્રમાણે ચતુષ્પ્ર-
દેશિકત્વ રૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ સમસ્ત ચતુષ્પ્રદેશિક સ્કંધ એક જ
આનુપૂર્વી રૂપ છે, એજ પ્રમાણે પાંચ આદિ પ્રદેશોવાળા સ્કંધો પણ એક
એક આનુપૂર્વી રૂપ છે, એમ સમજવું આ કથન તો અવિશુદ્ધ સંગ્રહનયની
માન્યતા પ્રકટ કરે છે. પરન્તુ વિશુદ્ધ સંગ્રહનયની માન્યતા અનુસાર તો

शिकाघनन्तप्रदेशिकपर्यन्तानां स्कन्धानाम् आनुपूर्वीत्वसामान्याऽभेदात् सर्वाऽप्यानुपूर्वी एकैव । एवमनानुपूर्वीत्वसामान्याव्यतिरेकात् सर्वेऽपि परमाणुपुद्गला एकैवानानुपूर्वी, अवक्तव्यकरूपसामान्याव्यतिरेकात् सर्वे द्विप्रदेशिकाः स्कन्धा अपि एकमेवावक्तव्यकम्, अतोऽत्र—‘तिप्पएसिए आणुपुञ्जी’ इत्यादि एकत्वेनैव निर्दिष्टम्, न तु बहुत्वेनेति । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—‘से तं’ इत्यादि । सैवा संग्रहनयसम्मतार्थपदप्ररूपणतेति १ ॥सू० ९२॥

समस्त त्रिप्रदेशिकादि स्कंध से लेकर अनंत प्रदेशिक स्कंध पर्यन्त के स्कंधों की जीतनी भी आनुपूर्वियां हैं वे सब आनुपूर्वीत्व रूप सामान्य से अभिन्न होने के कारण एकही अनानुपूर्वीरूप है । इसी प्रकार अनानुपूर्वीत्व रूप सामान्य से अभिन्न होने के कारण समस्त परमाणु पुद्गल रूप अनानुपूर्वियां एकही अनानुपूर्वी रूप हैं । इसी प्रकार से अवक्तव्यकरूप सामान्य से अव्यतिरिक्त होने के कारण समस्त द्विप्रदेशिक स्कंध भी एकही अवक्तव्यकरूप हैं । इसलिये यहां सूत्र में “तिप्पएसिए आणुपुञ्जी” इत्यादि रूप से एकत्व का निर्देश सूत्रकारने किया है । बहुत्व का नहीं । (से तं संग्रहस्स अट्टपयपरूवणया) इस प्रकार यह संग्रहनय मान्य अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप है ।

भावार्थ—संग्रहनय दो प्रकार का है— १ अविशुद्ध संग्रहनय और दूसरा विशुद्ध संग्रहनय । अविशुद्ध संग्रहनय की मान्यतानुसार जितने भी त्रिप्रदेशिक वाले स्कंध हैं वे एक आनुपूर्वी हैं तथा जितने भी

समस्त त्रिप्रदेशिक आदि स्कंधी लधने अनंत प्रदेशिक पर्यन्तना स्कंधीनी जेटली आनुपूर्वीओ छे, ते अधी आनुपूर्वीओ पणु आनुपूर्वीत्व इप सामान्यनी अपेक्षाओ अभिन्न होवाथी ओक न आनुपूर्वी इप छे. ओण प्रभाणु अनानुपूर्वीत्व इप सामान्यनी अपेक्षाओ अभिन्न होवाने कारणे समस्त परमाणु पुद्गलइप अनानुपूर्वीओ पणु ओक न अनानुपूर्वी इप छे. ओण प्रभाणु अवक्तव्यक इप सामान्यनी अपेक्षाओ अभिन्न होवाने कारणे समस्त द्विप्रदेशी स्कंधी पणु ओक न अवक्तव्यक इप छे. तेथी न सूत्रकारे आ सूत्रमा “ तिप्पएसिए आणुपुञ्जी ” त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी इत्यादि इपे ओकत्वने निर्देश कर्यो छे, पणु बहुत्वने निर्देश कर्यो नथी. (से तं संग्रहस्स अट्टपयपरूवणया) आ प्रकारनु संग्रहनयसंमत अर्थपदप्ररूपणतानुं स्वइप छे.

भावार्थ—संग्रहनय के प्रकारने छे—(१) अविशुद्ध संग्रहनय अने (२) विशुद्ध संग्रहनय अविशुद्ध संग्रहनयनी मान्यता अनुसार समस्त त्रिप्रदेशी स्कंधी ओक आनुपूर्वी इप छे, ओण प्रभाणु जेटली आर प्रदेशीथी लधने

सम्प्रति भङ्गसमुत्कीर्तनतां निरूपयति—

मूलम्—एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?
 एयाएणं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्त-
 णया कज्जइ। से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया? संगहस्स
 भंगसमुक्कित्तणया—अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २
 अत्थि अवत्तव्वए ३, अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी
 य ४, अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५, अहवा अत्थि
 अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ६, अहवा अत्थि आणुपुव्वी य

चतुष्प्रदेशिक यावत् अनन्ताणुक्क स्कंध हैं वे सब स्वतंत्र २ भिन्न २
 चतुष्प्रदेशी आदि आनुपूर्विकां हैं। परन्तु विशुद्ध संग्रहनय की मान्य-
 तानुसार ये सब जुड़ी २ अनेक आनुपूर्विकां भी एक आनुपूर्वित्व रूप
 सामान्य की अपेक्षा से एक ही हैं। इसी बान को प्रदर्शित करने के लिये
 सूत्रकार ने इस सूत्र में त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी आदि पदों में एकवचन
 का प्रयोग किया है। त्र्यणुक्क स्कंध आदिरूप अर्थ से युक्त अथवा त्र्यणुक्क
 स्कंध आदि रूप अर्थ को विषय करने वाले पद की प्ररूपणा करना यही
 अर्थपदप्ररूपणता है। नैगम और व्यवहारनय मान्य अनेकत्व का यह
 नय आनुपूर्वी में निषेध करके एकत्व स्थापन करता है। ॥सू० ९२॥

अनंत प्रदेशी पर्यन्तना स्कंधा छे ते प्रत्येक पणु ओक ओक स्वतंत्र चतु-
 ष्प्रदेशी, पंचप्रदेशी आदि आनुपूर्वी इप छे. विशुद्ध संग्रहनयनी मान्यता
 अनुसार तो त्रिप्रदेशिक स्कंध इप आनुपूर्वीथी लधने अनंत प्रदेशिक स्कंध-
 इप आनुपूर्वी पर्यन्तनी समस्त आनुपूर्वीओ। पणु आनुपूर्वीत्व इप
 सामान्यनी अपेक्षाओ ओक न आनुपूर्वी इप छे. आ वातने प्रदर्शित
 करवाने भाटे सूत्रकारे त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी आदि पदोमां ओकवचननो
 प्रयोग कर्यो छे. त्रिअणुक्क स्कंध आदि इप अर्थथीयुक्त त्रिअणुक्क स्कंध आदि
 इप अर्थतुं प्रतिपादन करनारा पहनी प्रइपणु करवी तेतुं न नाम अर्थपद
 प्रइपणुता छे. नैगम अने व्यवहार नयसंमत अनेकत्वनो आ नय (संग्रह
 नय) आनुपूर्वीओमां निषेध करी ओकत्वतुं प्रतिपादन करे छे. ॥सू० ९२॥

अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य७। एवं सत्त भंगा। से तं संगहस्स
भंगसमुक्कित्तणया ॥सू० १३॥

छाया—एतया खलु संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनम्? एतया
खलु संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणतया संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनता क्रियते। अथ का सा
संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनता? संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनता-अस्ति आनुपूर्वी^१,
अस्ति अनानुपूर्वी^२ अस्ति अवक्तव्यकम्^३, अथवा-अस्ति आनुपूर्वी च अनानु-

अब सूत्रकार सप्तमभंगसमुत्कीर्तनता का निरूपण करते हैं-

“एयाए णं संगहस्स” इत्यादि।

शब्दार्थ-(एयाएणं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?)
हे भदन्त! संग्रहनय मान्य इस अर्थपदप्ररूपणता से कौनसा प्रयो-
जन सिद्ध होता है?

उत्तर-(एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमु-
क्कित्तणया कज्जइ) संग्रहनय मान्य इस अर्थपद प्ररूपणता से संग्रह-
नय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है। “से किं तं संगहस्स भंग-
समुक्कित्तणया?” संग्रहनय मान्य वह भंगसमुत्कीर्तनता क्या है?

उत्तर-(संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया) संग्रहनय मान्य वह भंग-
समुत्कीर्तनता इस प्रकार से है-(अत्थि आणुपुव्वी अत्थि अणाणुपुव्वी)
? एक आनुपूर्वी है, दूसरा अनानुपूर्वी है (अत्थि अवत्तव्वए) तीसरा
अवक्तव्यक है (अहवा अत्थि आणुपुव्वीय अणाणुपुव्वीय) चौथा

इये सूत्रकार सातमा लंग, लंगसमुत्कीर्तनतानुं निरूपणु करे छे-

“एयाएणं संगहस्स” इत्यादि-

शब्दार्थ-(एयाएणं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?) हे लंग-
वन्! संग्रहनयमान्य आ अर्थपदप्ररूपणता वडे कथुं प्रयोजन सिद्ध थाय छे?

उत्तर-(एयाएणं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया
कज्जइ) संग्रहनय संभत आ अर्थपदप्ररूपणता वडे संग्रहनयमान्य लंगस-
मुत्कीर्तनतानुं स्वरूप जाली शक्य छे.

“से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया” संग्रहनय मान्य लंगसमुत्की-
र्तनतानुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर-(संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया?) संग्रहनयसंभत ते लंगसमुत्की-
र्तनता आ प्रकारनी कही छे-

(अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी) (१) ओक आनुपूर्वी छे. (२)
ओक अनानुपूर्वी छे, (अत्थि अवत्तव्वए) (३) ओक अवक्तव्यक छे. (अहवा-
अत्थि आणुपुव्वी य, अणाणुपुव्वी य) (४) आनुपूर्वी छे, अनानुपूर्वी छे,

पूर्वी च ४, अथवा-अस्ति आनुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ५, अथवा-अस्ति अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ६, अथवा-अस्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ७। एवं सप्त भङ्गाः। सैषा संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनता ॥ सू० ९३ ॥

आनुपूर्वी है. अनानुपूर्वी है (अहवा-अत्थिआणुपुव्वीय अवत्तव्वएय) अथवा ५ आनुपूर्वी है अवक्तव्यक है (अहवा-अत्थि अणाणुपुव्वीय अवत्तव्वए य) अथवा-६ अनानुपूर्वी है अवक्तव्यक है, (अहवा-अत्थि आणुपुव्वीय अणाणुपुव्वी अवत्तव्वए य) अथवा ७ आनुपूर्वी है अनानुपूर्वी है अवक्तव्यक है। (एवं सत्त भंगा) इस प्रकार ये सात भंग हैं। (से तं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणया) इस प्रकार संग्रहनेय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता है।

भावार्थ-संग्रहनेय मान्य अर्थपद परूपणता से क्या प्रयोजन सधता है? यह बात सूत्रकार ने इस सूत्रद्वारा स्पष्ट की है। इसमें उन्होंने ने भंग समुत्कीर्तनता का प्रयोजन कहा है, इस भंगसमुत्कीर्तनता में मूल में ३ पद हैं? आनुपूर्वी, २ अनानुपूर्वी और तीसरा अवक्तव्यक। आनुपूर्वी का वाच्यार्थ क्या है? यह सब पहिले स्पष्ट कर दिया गया है।

(अहवा-अत्थिआणुपुव्वी य अवत्तव्वए य) अथवा (५) आनुपूर्वी छे. अवक्तव्यक छे. (अहवा-अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य) अथवा (६) अनानुपूर्वी छे, अवक्तव्यक छे. (अहवा-अत्थि आणुपुव्वी य, अणाणुपुव्वी य, अवत्तव्वए य) अथवा (७) आनुपूर्वी छे, अनानुपूर्वी छे अने अवक्तव्यक छे. (एवं सत्त भंगी) आ प्रकारे अही सात भांगा (विक्कयो) अने छे. (से तं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणया) आ प्रकारे तु संग्रहनेयसंभत भंगसमुत्कीर्तनता तुं स्वइय छे.

भावार्थ-संग्रहनेयसंभत अर्थपदप्रूपणतानुं प्रयोजनः आ सूत्रद्वारा सूत्रकारे प्रकट कयुं छे. तेभ्ये आ सूत्रमां एवुं प्रतिपादन कयुं छे के अर्थपद प्रूपणता वडे भंगसमुत्कीर्तनता इय प्रयोजन सिद्ध थाय छे. आ भंगसमुत्कीर्तनामां मूला त्रय पद छे. ते त्रय पद आ प्रभावे छे- (१) आनुपूर्वी, (२) अनानुपूर्वी अने (३) अवक्तव्यक आनुपूर्वी आदिना वाच्यार्थ परेदां स्पष्ट करवामां आये छे. आ त्रये पदोने स्वतंत्र इये

ટીકા—‘ ઇયાણં ’ ઇત્યાદિ—

અન્ન—એકપદમાશ્રિત્ય ત્રયો મજ્ઞાઃ, પદદ્વયસંયોગમાશ્રિત્ય ત્રયો મજ્ઞાઃ, પદત્રય-સંયોગમાશ્રિત્ય એકો મજ્ઞાઃ । ઇત્યં સપ્ત મજ્ઞા બોદ્ધવ્યાઃ । મજ્ઞસ્થાપના મૂલોક્તક્રમે-જૈવ બોધ્યા । અસ્ય સૂત્રસ્ય વ્યાખ્યા કૃતપ્રાયા ॥સૂ૦ ૧૩॥

મજ્ઞોપદર્શનતાં પ્રદર્શયતિ—

મૂલમ્—ઇયાણં સંગહસ્સ મંગસમુક્ષિત્તણયાણ કિં પઓ-ચણં ? ઇયાણં સંગહસ્સ મંગસમુક્ષિત્તણયાણ સંગહસ્સ મંગો-વદંસણયા કીરિડ । સે કિં તં સંગહસ્સ મંગોવદંસણયા ? સંગહસ્સ મંગોવદંસણયા-તિપ્પણસિયા આણુપુઠ્ઠવી ? પરમાણુપોગ્ગલા અણા-ણુપુઠ્ઠવી ૨ દુપ્પણસિયા અવત્તઠ્ઠવણ ૩ । અહવા તિપ્પણસિયા ય પર-માણુપોગ્ગલા ય આણુપુઠ્ઠવી ય અણાણુપુઠ્ઠવી ય ૪ । અહવા તિપ્પ-ણસિયા ય દુપ્પણસિયા ય આણુપુઠ્ઠવી ય અવત્તઠ્ઠવણ ય ૫ । અહવા પરમાણુપોગ્ગલા ય દુપ્પણસિયા ય અણાણુપુઠ્ઠવી ય અવત્તઠ્ઠવણ ય ૬ । અહવા—તિપ્પણસિયા ય પરમાણુપોગ્ગલા ય દુપ્પણસિયા ય આણુ-પુઠ્ઠવી ય અણાણુપુઠ્ઠવી ય અવત્તઠ્ઠવણ ય ૭ । સે તં સંગહસ્સ મંગોવદંસણયા ॥સૂ૦ ૧૪॥

इनमें १ एक आनुपूर्वी २ अनानुपूर्वी और तीसरा अवक्तव्यक इन तीन पदों को स्वतंत्ररूप से आश्रित हो करके ३ भंग हो जाते हैं । तथा आनुपूर्वी अनानुपूर्वी, आनुपूर्वी अवक्तव्यक और अनानुपूर्वी अवक्तव्यक ये तीन भंग दो दो पदों के संयोग को लेकर बने हैं । और आनु-पूर्वी, अनानुपूर्वी’ अवक्तव्यक यह सातवां भांगा तीन पदों के संयोग से बना है । इस प्रकार तीन पदों के स्वतंत्रता और संयोग से ये ७ भंग बने हुए हैं । ॥ सू० १३ ॥

લઈને ત્રણ ભાંગા બને છે. દ્વિસંયોગી ત્રણ ભાંગા નીચેના બખ્ખે પઢોના સંયોગથી બને છે—આનુપૂર્વી અને અનાનુપૂર્વી, આનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી, અને અવક્તવ્યક, ત્રણ પઢોના સંયોગી સાતમે ભાંગે બને છે. આ રીતે ત્રણ પઢોના અસં-યોગી ત્રણ ભાંગા, દ્વિસંયોગી ત્રણ ભાંગા અને ત્રિસંયોગી એક ભાંગે મળીને કુલ સાત ભાંગા બને છે. ॥સૂ૦૬૩॥

छाया—एतया खलु संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनतया किं प्रयोजनम्? एतया खलु संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनतया संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता क्रियते। अथ का सा संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता? संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता त्रिप्रदेशिका आनुपूर्वी^१ परमाणुपुद्गला अनानुपूर्वी^२, द्विप्रदेशिका अवक्तव्यम्^३। अथवा—त्रिप्रदेशिकाश्च पर-

अथ सूत्रकार भङ्गोपदर्शनता का कथन करते हैं—

“एयाएणं संगहस्स” इत्यादि।

शब्दार्थ— (एयाएणं संगहस्स भङ्गसमुत्कीर्तणयाए किं पओयणं) हे भदन्त संग्रहनय मान्य इस भङ्गसमुत्कीर्तनता से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ?

उत्तर— (एयाएणं संगहस्स समुत्कीर्तणयाए भङ्गोवदंसणया कीरइ) संग्रहनय मान्य इस भङ्ग समुत्कीर्तनता से संग्रहनय मान्य भङ्गोपदर्शनता दिखलाह जाती है। (से किं तं संगहस्स भङ्गोवदंसणया ?) हे भदन्त ! संग्रहनय मान्य भङ्गोपदर्शनता क्या है ?

उत्तर—(संगहस्स भङ्गोवदंसणया) संग्रहनय मान्य भङ्गोपदर्शनता यह है (तिप्पएसिए आणुपुब्बी) यावन्मात्र त्रिप्रदेशी स्कन्ध है वे एक ? आनुपूर्वी हैं। इस प्रकार आनुपूर्वी इस शब्द के वाच्यार्थ से यावन्मात्र त्रिप्रदेशी स्कन्ध हैं वे सब संगृहीत हो जाते हैं। (परमाणुपुद्गला अणाणुपुब्बी) यावन्मात्र परमाणु पुद्गल हैं वे एक अनानुपूर्वी हैं— इस प्रकार

इवे सूत्रकार भङ्गोपदर्शनतानुं निरूपयु करे छे—

“ एयाएणं संगहस्स ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(एयाएणं संगहस्स भङ्गसमुत्कीर्तणयाए किं पओयणं ?) हे भगवन् ! संग्रहनयमान्य आ भङ्गसमुत्कीर्तनता वडे कथुं प्रयोजन सिद्ध थाय छे ?

उत्तर—(एयाएणं संगहस्स भङ्गसमुत्कीर्तणयाए संगहस्स भङ्गोवदंसणया कीरइ) संग्रहनयमान्य आ भङ्गसमुत्कीर्तनता वडे संग्रहनय मान्य भङ्गोपदर्शनता अताववाभां आवे छे. (से किं तं संगहस्स भङ्गोवदंसणया ?) हे भगवन् ! संग्रहनयमान्य भङ्गोपदर्शनतानुं केवुं स्वइय छे ?

उत्तर—(संगहस्स भङ्गोवदंसणया) संग्रहनयमान्य भङ्गोपदर्शनतानुं स्वइय आ प्रकारनुं छे—

(तिप्पएसिया आणुपुब्बी) जेटला त्रिप्रदेशी स्कंधो छे, तेओ ओक न आनुपूर्वी इय छे. आ रीते जेटला त्रिप्रदेशी स्कंधो छे तेभने अही आनुपूर्वी शब्दना वाच्यार्थ इपे अडधु करवा जेधये. (परमाणुपुद्गला अणाणु-

માણુપુદ્ગલાશ્ચ આનુપૂર્વીંચ અનાનુપૂર્વીંચ ૪ । અથવા-ત્રિપ્રદેશિકાશ્ચ દ્વિપ્રદેશિકાશ્ચ આનુપૂર્વીંચ અવક્તવ્યકંચ ૫ । અથવા-પરમાણુપુદ્ગલાશ્ચ દ્વિપ્રદેશિકાશ્ચ અનાનુપૂર્વીંચ અવક્તવ્યકંચ ૬ । અથવા-ત્રિપ્રદેશિકાશ્ચ પરમાણુપુદ્ગલાશ્ચ દ્વિપ્રદેશિકાશ્ચ આનુપૂર્વીંચ અનાનુપૂર્વીંચ અવક્તવ્યકંચ ૭ । સૈવા સંગ્રહસ્ય મત્નોપદર્શનતા ॥ સૂ૦ ૧૪ ॥

ટીકા—‘ણ્યાણં’ इत्यादि ।

अत्रापि सप्त भङ्गा बोध्याः । अस्य सूत्रस्य व्याख्याकृतमाया ३ ॥ सू० १४ ॥

अथ समवतारं प्रदर्शयति—

मूलम्—से किं तं संगहस्स समोयारे? संगहस्स समोयारे—
संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वी-
दव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्त-
व्वगदव्वेहिं समोयरंति? संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वी-
दव्वेहिं समोयरंति नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो

अनानुपूर्वीं इस शब्द के वाच्यार्थ से यावन्मात्र परमाणु पुद्गल हैं वे सब अनानुपूर्वीं इस एक पद से संगृहीत हो जाते हैं । (दुष्पणसिया अवत्तव्वए) इसी प्रकार यावन्मात्र द्विप्रदेशी स्कंध हैं वे एक अवक्तव्यक हैं इस प्रकार अवक्तव्यक इस शब्द के वाच्यार्थ से यावन्मात्र द्विप्रदेशी स्कंध हैं वे सब अवक्तव्यक इस एक शब्द से संगृहीत हो जाते हैं । इसी प्रकार से द्विसंयोगी तीन पदों का और त्रिसंयोगी १ एक पद का भी वाच्यार्थ समझ लेना चाहिये । इसी विषय को सूत्रकार ने ‘अहवा’ आदि पदों द्वारा कहा है इन समस्त पदों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है । ॥ सू० १४ ॥

પુવ્વી) જેટલાં પરમાણુ પુદ્ગલો છે, તેઓ એક અનાનુપૂર્વીંચ રૂપ છે. આ રીતે સમસ્ત પરમાણુ પુદ્ગલોને અહીં અનાનુપૂર્વીંચ પદના વાચ્યાર્થ રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. (દુષ્પણસિયા અવ્વત્તવ્વણ) જેટલાં દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો છે, તેઓ એક અવક્તવ્યક રૂપ છે. આ રીતે “અવક્તવ્યક” આ પદનો વાચ્યાર્થ સમસ્ત દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો છે તેથી “અવક્તવ્યક” આ એક પદના પ્રયોગ દ્વારા સમસ્ત દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો ગ્રહણ થઈ જાય છે. એજ પ્રમાણે દ્વિસંયોગી ત્રણ ભાગાઓનો અને ત્રિસંયોગી એક ભાગાનો વાચ્યાર્થ પણ સમજી લેવો જોઈએ. આ વિષયનું સૂત્રકારે “અહવા” આદિ પૂર્વોક્ત પદો દ્વારા કથન કર્યું છે. આ બધા પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં આપવામાં આવી ચુકી છે. ॥સૂ૦૧૪॥

अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति । एवं दोन्नि वि सट्टाणे सट्टाणे
समोयरंति । से तं समोयारे ॥सू० ९५॥

छाया—अथ कः स संग्रहस्य समवतारः? संग्रहस्य समवतारः—संग्रहस्य
आनुपूर्वीद्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति? क्रिमानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अनानुपूर्वी-
द्रव्येषु समवतरन्ति? अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति? संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि

अथ सूत्रकार संग्रहनय मान्य समवतार का स्वरूप कहेते हैं—

“से किं तं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं संग्रहस्य समोयारे) हे भदन्त संग्रहनय मान्य
समवतार का क्या स्वरूप है ?

उत्तर— (संग्रहस्य समोयारे) संग्रहनय मान्य समवतार का स्वरूप
इस प्रकार से है समवतार का अर्थ समावेश- मिलना है । अर्थात्
आनुपूर्वी आदि जो द्रव्य है उनका अन्तर्भाव मिलना स्वस्थान में होता
है या परस्थान में होता है ? इस प्रकार चिन्तन प्रकार का जो उत्तर
है वह समावेश है । यह विचार प्रकार इस प्रकार से होता है कि संग्रह
नय संग्रह आनुपूर्वी द्रव्य कहाँपर समाविष्ट होते हैं ? (किं आणुपुव्वेहिं
समोयरंति ? अणाणुपुव्वेहिं-समोयरंति, अवत्तव्वगदव्वेहिं समोय-
रंति ?) क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ? या अनानुपूर्वीद्रव्यों
में समाविष्ट होते हैं या अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ।

इवे सूत्रकार संग्रहनयसंमत समवतारना स्वरूपं निरूपयुं करे छे—

“से किं तं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं संग्रहस्य समोयारे ?) हे भगवन् ! संग्रहनय
संमत समवतारनुं स्वरूपं केषुं छे ?

उत्तर—“संग्रहस्य समोयारे” संग्रहनयमान्य समवतारनुं स्वरूप
आ प्रकारनुं छे—(समवतार अट्ठे समावेश अथवा मिलन) अट्ठे के
“आनुपूर्वी आदि के द्रव्यो छे तेभनो अन्तर्भाव (समावेश) स्वस्थानमां
थाय छे के परस्थानमां थाय छे ?” आ प्रकारनी विचारधारानो के उत्तर
छे, तेनुं नाम समवतार छे अ. विचारधारा आ प्रमाणे आदी छे—संग्रहनयसंमत
आनुपूर्वी द्रव्येनो कथां समावेश थाय छे ? (किं आणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति ? ,
अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ? अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति ?) शुं आनुपूर्वी
द्रव्येमां समाविष्ट थछं नय छे—अणी नय छे ? के अनानुपूर्वी द्रव्येमां
समाविष्ट थछं नय छे ? के अवक्तव्यक द्रव्येमां समाविष्ट थछं नय छे.

आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति नो अवक्तव्यक-
द्रव्येषु समवतरन्ति । एवं द्वावपि स्वस्थाने स्वस्थाने समवतरतः । स एष
समवतारः ॥सू० ९५॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अस्य सूत्रस्य व्याख्या कृतमायैवेति ४ ॥सू० ९५॥

अथ पञ्चमं भेदमनुगमं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं अणुगमे ? अणुगमे अट्टविहे पणत्ते, तं
जहा—‘संतपयपरुवणया, दव्वप्पमाणं च खित्तं फुसणा य । कालो
य अंतरं भाग भावे अप्पावहुं नत्थि ॥१॥’ संगहस्स आणुपुव्वी-
दव्वाइं किं अत्थि णत्थि ? नियमा अत्थि, एवं दोन्नि वि ॥१॥
संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ?
नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं नो अणंताइं, नियमा एगो

उत्तर—संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो
अणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति) संग्रह-
नय संमत समस्त आनुपूर्वीद्रव्य स्वस्थान रूप आनुपूर्वीद्रव्यो में ही
समाविष्ट होते हैं । परस्थान रूप अनानुपूर्वीद्रव्यो में या अवक्तव्यक
द्रव्यो में समाविष्ट नहीं होते हैं । (एवं दोन्नि वि सट्टाणे सट्टाणे समोय-
रंति) इसी प्रकार से संग्रहनय संमत अनानुपूर्वीद्रव्य और अवक्तव्यक
द्रव्य भी क्रमशः अपने अपने स्थानरूप अनानुपूर्वीद्रव्यो में और अव-
क्तव्यकद्रव्यो में समाविष्ट होते हैं । इसकी व्याख्या ८० सूत्र के समा-
नजाननी चाहिये ॥ सू० ९५ ॥

उत्तर—(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो
अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति नो अणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति) संग्रहनयसंमत
समस्त आनुपूर्वी द्रव्यो स्वस्थान रूप आनुपूर्वी द्रव्योमां न समाविष्ट थाय
छे, परस्थान रूप अनानुपूर्वी द्रव्योमां के अवक्तव्यक द्रव्योमां समाविष्ट
थतां नथी. (एवं दोन्नि वि सट्टाणे सट्टाणे समोयरंति) अत्र प्रभाषे संग्र-
हनयसंमत अनानुपूर्वी द्रव्य अने अवक्तव्यक द्रव्य पणु अनुक्रमे चोत्तपो-
लाना स्थानरूप अनानुपूर्वी द्रव्योमां अने अवक्तव्यक द्रव्योमां समाविष्ट
थाय छे तेनुं स्पष्टीकरण्णु ८०मां सूत्रमां कट्ठा प्रभाषे समञ्जुं. ॥सू०६५॥

रासी, एवं दोन्नि वि ॥२॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स
 कइभागे होज्जा ? किं संखेज्जइभागे होज्जा असंखेज्जइभागे
 होज्जा संखेज्जेसु भागेषु होज्जा असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा ?
 सव्वलोए होज्जा ? नो संखेज्जइभागे होज्जा नो असंखेज्जइ
 भागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा नो असंखेज्जेसु
 भागेषु होज्जा, नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं दोन्नि वि ॥३॥
 संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति ?
 असंखेज्जइभागं फुसंति ? संखिज्जे भागे फुसंति ? असंखिज्जे
 भागे फुसंति ? सव्वलोगे फुसंति ? नो संखेज्जइभागं फुसंति
 जाव नियमा सव्वलोगं फुसंति । एवं दोन्नि वि ॥४॥ संगहस्स
 आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होति ? सव्वद्धा । एवं दोण्णि
 वि ॥५॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाणं कालओ केवच्चिरं अंतरं होई ?
 नत्थि अंतरं, एवं दोण्णि वि । ६ । संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं
 सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ? किं संखेज्जइभागे होज्जा ?
 असंखेज्जइभागे होज्जा ? संखेज्जेसु भागेषु होज्जा ? असंखे-
 ज्जेसु भागेषु होज्जा ? नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखे-
 ज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा नो असंखेज्जेसु
 भागेषु होज्जा, नियमा तिभागे होज्जा । एवं दोन्नि वि । ७ ।
 संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कयरंमि भावे होज्जा ? नियमा साइ-
 पारिणासिण्ण भावे होज्जा । एवं दोन्नि वि । ८ । अप्पावहुं नत्थि ।
 से तं अणुगमे । से तं संगहस्स अणोदणिहिया दव्वाणुपुव्वी ।
 से तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ॥सू० ९६॥

आया—अथ कोऽसौ अनुगमः ? अनुगमः षष्टविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—‘सत्पद-
प्ररूपणता द्रव्यप्रमाणं च क्षेत्रं स्पर्शना च । कालश्च अन्तरं भागो भावः, अल्प-
बहुत्व नास्ति ॥१॥’ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात्
सन्ति । एवं द्वे अपि ॥१॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि असंख्येयानि
अनन्तानि ? नो संख्येयानि नो असंख्येयानि नो अनन्तानि । नियमात् एको
राशिः । एवं द्वे अपि ॥२॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य कतिभागे भवन्ति ?
किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? संख्येयेषु भागेषु
भवन्ति ? असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? सर्वलोके भवन्ति ? नो संख्येयतमभागे,
भवन्ति नो असंख्येयतमभागे भवन्ति, नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असं-
ख्येयेषु भागेषु भवन्ति । नियमात् सर्वलाकं भवन्ति । एवं द्वे अपि ॥३॥ संग्रहस्य
आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? असंख्येयतमभागं स्पृ-
शन्ति ? संख्येयान् भागान् स्पृशन्ति ? असंख्येयान् भागान् स्पृशन्ति ? सर्वलोकं
स्पृशन्ति ? नो संख्येयतमभागं स्पृशन्ति यावत् नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति । एवं
द्वे अपि ॥४॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति ? सर्वाद्वा ।
एवं द्वे अपि ॥५॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणां कालतः कियच्चिरमन्तरं भवति ?
नास्ति अन्तरम् । एवं द्वे अपि ॥६॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कति-
भागे भवन्ति ? किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? संख्येयेषु
भागेषु भवन्ति ? असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? नो संख्येयतमभागे भवन्ति, नो असं-
ख्येयतमभागे भवन्ति नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति,
नियमात् त्रिभागे भवन्ति । एवं द्वे अपि ॥७॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि कतर-
स्मिन् भावे भवन्ति ? नियमाम् सादिपारिणामिके भावे भवन्ति । एवं द्वे अपि ॥८॥
अल्पबहुत्वं नास्ति । स एषोऽनुगमः । सैषाऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ॥सू० ९६॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ कोऽसौ अनुगमः ? =संग्रहनयसम्मतोऽनुगमः कः ? इति प्रश्नः । उत्तर-
माह—अनुगमोऽष्टविधः प्रज्ञप्तः । तद्यथा—सत्पदप्ररूपणता, द्रव्यप्रमाणं क्षेत्रं स्पर्शना-

अथ सूत्रकार पांचवे भेद अनुगम का निरूपण करते हैं—

“से किं तं अणुगमे” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं अणुगमे) हे भदन्त ! संग्रहनयसंमत अनु-
गम का क्या स्वरूप है ?

इये सूत्रकार संग्रहनयसंमत अनुगमना स्वरूपं निरूपणुं करे छे—

“से किं तं अणुगमे” इत्यादि

शब्दार्थ—(से किं तं अणुगमे ?) हे भगवन् ! संग्रहनयमान्य अनुगमं
स्वरूपं केषुं केषुं छे ?

कालः अन्तरं भागो भावश्चेति । अल्पबहुत्वरूपोऽनुगमस्तु संग्रहनयमते नास्ति, अस्य नयस्य सामान्यवादित्वात् । सम्प्रति सत्पदप्ररूपणतां प्ररूपयति—‘संगहस्स आणुपुञ्जी दब्बाइं किं अत्थि नत्थि’ इत्यादि । संग्रहसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि

उत्तर—(अणुगमे अट्टविहे पणत्ते) अनुगम आठ प्रकार का कहा गया है (तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(संतपयपरुवणया दब्बपमाणं च खित्तं फुसणा य, कालोय अंतरं भाग भावे अप्पाबहुं नत्थि) सत्पदप्ररूपणता १, द्रव्यप्रमाण २, क्षेत्र ३, स्पर्शना ४, काल ५, अन्तर ६, भाग ७ और भाव ८ अल्पबहुत्व अनुगम का प्रकार यहां नहीं है क्योंकि संग्रहनय सामान्यवादी है। “संगहस्स आणुपुञ्जी दब्बाइं किं अत्थि णत्थि णियमा अत्थि एवं दोन्नि वि” सत्पदप्ररूपणता के निमित्त सूत्रकार कहते हैं कि इस सत्पद प्ररूपणता में यह प्ररूपित किया जाता है कि जिस प्रकार से शशशृंग आदिपद असदर्थ को विषय करने वाले होते हैं उस प्रकार से ये आनुपूर्वी आदि पद असदर्थ विषयक नहीं हैं, किन्तु जैसे स्तंभ आदि पद स्तंभ रूप अपने वास्तविक अर्थ को विषय करते हैं उसी प्रकार से ये आनुपूर्वी आदिपद भी वास्तविक आनुपूर्वी आदि को विषयक करते हैं, इसलिये (संगहस्स आणुपुञ्जीदब्बाइं किं अत्थि ण-

उत्तर—(अणुगमे अट्टविहे पणत्ते) अनुगम आठ प्रकारने कहा छे। (तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—

(संतपयपरुवणया, दब्बपमाणं च खित्तं फुसणा य, कालो य अंतरं भाग भावे अप्पाबहुं नत्थि) (१) सत्पदप्ररूपणता, (२) द्रव्यप्रमाण, (३) क्षेत्र, (४) स्पर्शना, (५) काल, (६) अन्तर, (७) भाग अने (८) भाव. अल्पबहुत्व इय अनुगमने। प्रकार अही नथी, कारण के संग्रहनय सामान्यवादी छे। (संगहस्स आणुपुञ्जीदब्बाइं किं अत्थि णत्थि ? णियमा अत्थि एवं दोन्नि वि) इवे सूत्रकार सत्पदप्ररूपणतानुं स्वइय समजवे छे— सत्पदप्ररूपणतामां अवातनी प्ररूपण करवामां आवे छे के जे प्रकारे शशशृंग (ससलाना शिं गडां) आदि पद असदर्थ (अविद्यमान पदार्थ)नुं प्रतिपादन करनारा होय छे, जे प्रकारे आ आनुपूर्वी आदि पदो असदर्थनुं प्रतिपादन करनारा नथी परन्तु जेम स्तंभ आदि पदो स्तंभइय पोटाना वास्तविक अर्थने प्रतिपादित करे छे, जेज प्रमाणे आनुपूर्वी आदि पद पण वास्तविक आनुपूर्वी आदि सदर्थनुं (विद्यमान पदार्थ)नुं प्रतिपादन करे छे। तेथी (संगहस्स आणुपुञ्जी दब्बाइं किं अत्थि णत्थि ?) “संग्रहनयसंभत आनुपूर्वी द्रव्ये छे के नही?”

કિં સન્તિ ? ન વા સન્તિ ? इति प्रश्नः । उत्तरमाह—नियमात् सन्ति=आनुपूर्वी-द्रव्याणां सद्भावः संग्रहनयमतेऽस्त्येवेत्यर्थः ।

નનુ સંગ્રહવિચારે પ્રક્રાન્તે 'આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ' इति बहुत्वेन निर्देशोऽनुपपन्नः, संग्रहनयमते आनुपूर्वीसामान्यस्यैवाऽभ्युपगमादितिचेत्, उच्यते—संग्रहनयमते मुख्यतया सामान्यमेवाभ्युपगम्यते, तथापि गौणरीत्या व्यवहारनयमते द्रव्यबहुत्वमपेक्ष्य बहुत्वेन निर्देशः कृत इति नास्ति कश्चिद् दोषः । एवं संग्रहनयमते द्वयोरनानुपूर्व्यवक्तव्यकयोर्विषयेऽपि बोध्यम् । अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां सद्भावो नियमादस्तीत्यर्थः । अथ द्रव्यप्रमाणंनिरूपयितुमाह—'संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं' इत्यादि—संग्रहनयसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि सन्ति ? किमसंख्येयानि सन्ति ? किंवा—अनन्तानि सन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरमाह—

त्थि" संग्रहनय संमत आनुपूर्वी द्रव्य हैं या नहीं हैं, इस प्रकार की शंका का समाधान यह है कि ये (नियमा अत्थि) नियम से हैं । इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी यही समझना चाहिये कि ये दोनों द्रव्य नियम से हैं । द्रव्यप्रमाण में आनुपूर्वी आदि पदों द्वारा जिन द्रव्यों को कहा गया है उनकी संख्या का निर्धारण होता है—जैसे (संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ?) संग्रहनय संमत आनुपूर्वीद्रव्य क्या संख्यात हैं या असंख्यात या अनंत हैं ?

उत्तर (नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं नो अणंताइं) न संख्यात हैं न असंख्यात हैं, और न अनंत हैं किन्तु (नियमा एगो रासी) नियम से एक राशिरूप हैं

આ પ્રશ્નનો આ પ્રમાણે ઉત્તર આપી શકાય. (નિયમા અત્થિ) “ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અવશ્ય છે જ એજ પ્રમાણે અનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ એવું સમજવું જોઈએ કે એ બંને દ્રવ્યો પણ અવશ્ય વિદ્યમાન છે.

દ્રવ્યપ્રમાણમાં એ વાતનો વિચાર કરવામાં આવે છે કે આનુપૂર્વી આદિ પદો દ્વારા જે દ્રવ્યોનું કથન કરવામાં આવે છે તે દ્રવ્યોની સંખ્યા કેટલી છે. જેમ કે (સંગહસ્સ આણુપુવ્વીદવ્વાઈં કિં સંખિજ્જાઈં અસંખિજ્જાઈં અણંતાઈં ?) હે ભગવન્! સંગ્રહનયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું સંખ્યાત છે, કે અસંખ્યાત છે કે અનંત છે ?

ઉત્તર—(નો સંખિજ્જાઈં, નો અસંખિજ્જાઈં નો અણંતાઈં) સંગ્રહનયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો સંખ્યાત પણ નથી, અસંખ્યાત પણ નથી અને અનંત પણ નથી, પરંતુ (નિયમા એગો રાસી) નિયમથી એક જ રાશિરૂપ છે.

संग्रहणये आनुपूर्वीद्रव्याणि नो संख्येयानि नो असंख्येयानि नो अनन्तानि सन्ति ।
किन्तु नियमात् एको राशिरस्ति ।

ननु आनुपूर्वीद्रव्याणां संख्येयादित्वाभावादेकराशित्वमपि नोपपद्यते, द्रव्य-
बाहुल्ये सत्येव तस्योपपद्यमानत्वात्, दृश्यते च लोके व्रीहिबाहुल्ये 'व्रीहिराशिः'
इति व्यवहारः, ? इतिचेत्, उच्यते—संख्येयादित्वाभावेऽपि स्व स्वरूपात् आनुपूर्वी-
द्रव्यबाहुल्यं विद्यते । तेषामानुपूर्वीत्वसामान्यमाश्रित्य यदेकत्वं तदपेक्षया एक-
राशित्वमिति 'एकोराशिः' इत्यस्याभिप्रायः, इति नास्तिकश्चिद् दोषः । यद्वा—

शंका—जब आनुपूर्वीद्रव्य संख्यात आदिरूप नहीं हैं तो उनमें एक-
राशि रूपता भी कैसे बनसकती है ? क्योंकि यह राशिरूपता द्रव्य बहु-
लता में ही होती है । लोक में भी ऐसा ही देखा जाना है की जब धान्य
बहुत होता है तब "यह व्रीहिराशि" है ऐसा व्यवहार होता है ।

उत्तर—संख्यात आदि रूपता के अभाव में भी अपने स्वरूप को
लेकर आनुपूर्वीद्रव्यों में बहुलता है । अतः आनुपूर्वीत्व सामान्य का
आश्रय करके इनमें जो एकता है उसकी अपेक्षा ये एक राशिरूप है
ऐसा कहने का अभिप्राय सूत्रकार का है । इसमें कोई दोष नहीं है ।
तात्पर्य कहने का यह है कि त्रिप्रदेशिक एक आनुपूर्वी है, चतुष्प्रदे-
शिक एक आनुपूर्वी है पंचप्रदेशिक एक आनुपूर्वी है इत्यादि अनंत
प्रदेशिक एक आनुपूर्वी है । इस प्रकार से सब आनुपूर्वियों के स्वरूप

शंका—जे आनुपूर्वी द्रव्य संख्यात आदि रूप न होय तो तेमां अेक
राशि रूपता डेवी रीते संभवी शके छे ? कारण के आ राशि रूपता तो द्रव्यनी
अहुलतामां न संभवी शके छे. लोकमां पषु अेवुं न जेवामां आवे छे
के न्यारे धान्य धणुं न होय छे त्यारे अेम कडेवामां आवे छे के "आ
आभाने ढगदो (राशि) छे.

उत्तर—संख्यात आदि रूपताने अभाव होवा छतां पषु चोताना
स्वरूपनी दृष्टिअे आनुपूर्वी द्रव्येमां अहुलता (विपुलता) छे. तेथी आनु-
पूर्वीत्व सामान्यनी अपेक्षाअे ते द्रव्येमां जे अेकता छे ते अेकताने अनु-
सक्षीने सूत्रकारे अही अेवुं कछुं छे के "आनुपूर्वी द्रव्येमां अेकराशि रू-
पता छे." तेथी आ प्रकारना कथनमां केछि दोष नथी आ कथननुं तात्पर्य
अे छे के त्रिप्रदेशिक अेक आनुपूर्वी आर प्रदेशिक अेक अ.नुपूर्वी छे, पांच
प्रदेशिक पर्यन्तना सक्षीनी अेक अेक आनुपूर्वी छे. आ प्रकारे भधी
आनुपूर्वीअेना स्वरूप भिन्न भिन्न छे, परन्तु ते सक्षणी आनुपूर्वीअेमां

યથા-યથા વિશિષ્ટૈકપરિણામપરિણતે સ્કન્ધે તદારમ્ભકપરમાણૂનાં બાહુલ્યેઽપિ તદ્ગતૈકત્વમેવ મુખ્યતયા વિવક્ષ્યતે, તથૈવાત્રાઽપિ આનુપૂર્વીદ્રવ્યબાહુલ્યેઽપિ એકમાનુપૂર્વીત્વસામાન્યમાશ્રિત્ય એકત્વમેવ મુખ્યતયા વિવક્ષિતમ્, અતો મુખ્યમેકત્વમાશ્રિત્યૈવ સંખ્યેયત્વાદયો નિષિધ્યતે । ગુણભૂતાનિ દ્રવ્યાણ્યાશ્રિત્ય તુ રાશિત્વમપિ ન વિરુદ્ધ્યતે ઇતિ ન કશ્ચિદ્ દોષઃ । એવમનાનુપૂર્વ્યવક્તવ્યકદ્રવ્યવિષયેઽપિ બોધ્યમ્ ।

મિન્ન ૨ હૈ-સો इन सब में आनुपूर्वीत्वरूप सामान्य की अपेक्षा करके एकता मान ली जाती है-इस अपेक्षा इनमें एकराशिरूपता मानी गई है ? अथवा-जैसे विशिष्ट एक परिणाम स्कंध द्रव्य में तदारम्भक परमाणुओं की बहुलता होने पर भी तद्गत एकता ही मुख्य रूप से विवक्षित रूप से होती है, उसी प्रकार यहाँपर भी राशिरूपता में भी आनुपूर्वीद्रव्यों की बहुलता होने पर भी एक आनुपूर्वीत्व रूप सामान्य को आश्रित करके एकत्व ही मुख्यतया विवक्षित हुआ है । और इसी कारण इस मुख्य एकत्व को लेकर के संख्येयत्व आदि निषिद्ध हुए हैं । अतः आनुपूर्वीद्रव्य में एक राशिरूपता विरुद्ध नहीं है । तथा गौण हुए व्यक्तिरूप द्रव्यों को आश्रित करके एक राशिपना भी विरुद्ध नहीं होता है । (एवं दोन्निवि) इसी प्रकार से आनुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य में भी एकराशिता का उद्भवन कर लेना चाहिए ।

આનુપૂર્વીત્વરૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ એકતા મानी લેવામાં આવી છે. તેથી તે અપેક્ષાએ આનુપૂર્વીઓમાં એકરાશિરૂપતા મानी લેવામાં આવી છે. અથવા:-જેમ કોઈ એક વિશિષ્ટ પરિણામ સ્કન્ધદ્રવ્યમાં તદારમ્ભક (તેનો આરંભ કરનારા) પરમાણુઓની બહુતા હોવા છતાં પણ તદ્ગત એકતા જ મુખ્ય રૂપે વિવક્ષિત થાય છે, એજ પ્રમાણે અહીં પણ-રાશિરૂપતામાં પણ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની બહુતા હોવા છતાં પણ એક આનુપૂર્વીત્વ રૂપ સામાન્યને આધારે એકત્વ જ મુખ્યત્વે વિવક્ષિત થયું છે, અને એજ કારણે આ મુખ્ય એકત્વને લીધે સંખ્યેયત્વ, અસંખ્યેયત્વ આદિનો નિષેધ થયો છે. તેથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં એકરાશિરૂપતા માનવામાં કોઈ દોષ નથી. તથા ગૌણ પદાર્થ રૂપ દ્રવ્યોને આશ્રિત કરીને એકરાશિત્વ પણ વિરુદ્ધ પડતું નથી. (એવં દોન્નિ વિ) એજ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં પણ એકરાશિત્વ શક્ય કરવું જોઈએ અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યમાં પણ એકરાશિત્વ સમજી લેવું જોઈએ હવે સૂત્રકાર અશ્વત્થામયસંમત ક્ષેત્રનું નિરૂપણ કરે છે—

अथ क्षेत्रं निरूपयितुमाह—‘संगहसस आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा?’ इत्यादि—संग्रहनयसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य कतिभागे=कियद्भागे भवन्ति? किं संख्येयतमभागे भवन्ति? किमसंख्येयतमभागे भवन्ति? किं संख्ये-येषु भागेषु भवन्ति? किमसंख्येयेषु भागेषु भवन्ति? किं सर्वलोके भवन्ति? इति प्रश्नः। उत्तरमाह—संग्रहनयसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य संख्येयतमभागे नो भवन्ति, असंख्येयतमभागे नो भवन्ति, संख्येयेषु भागेषु नो भवन्ति, असंख्ये-येषु भागेषु चापि नो भवन्ति, किन्तु नियमात् सर्वलोके भवन्ति। आनुपूर्वी-सामान्यस्यैकत्वात् सर्वलोकव्यापित्वाच्च नियमात् सर्वलोके तत्सत्ता बोध्या।

अब सूत्रकार क्षेत्र का निरूपण करते हैं—

प्रश्न— (संगहसस आणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा?) संग्रहनय समत समस्त आनुपूर्वीद्रव्य लोक के कितने भाग में हैं? (किं संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, संखेज्जेसु भा-गेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा? सव्वलोए होज्जा?) क्या लोक के संख्यातवे भाग में हैं? या लोक के असंख्यातवे भाग में हैं? या लोक के संख्यात भागों में हैं? या लोक के असंख्यात भागों में हैं? या सर्वलोक में हैं?

उत्तर—(नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, निय-मा सव्वलोए होज्जा, एवं दोन्नि वि) समस्त आनुपूर्वी द्रव्य लोक के न संख्यातवे भाग में हैं न असंख्यातवे भाग में हैं, न संख्यात भागों में हैं और न असंख्यात भागों में हैं किन्तु नियम से समस्त लोक में है।

प्रश्न—(संगहसस आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा?) डे लो-ग-वन्। संग्रहनयमान्य आनुपूर्वी द्रव्यो लोकना केटला भागमां छे? (किं संखे-ज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, असं-खेज्जेसु भागेसु होज्जा, सव्वलोए होज्जा? थुं लोकना संप्यातमां भागमां छे? डे असंप्यातमां भागमां छे? डे लोकना संप्यातलागोमां छे? डे लोकना असंप्यात लागोमां छे? डे सर्व लोकमां छे?

उत्तर—(नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं दोन्नि वि) समस्त आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संप्यातमां भागमां पणु नथी, असंप्यातमां भागमां पणु नथी, संप्यात लागोमां पणु नथी, असंप्यात लागोमां पणु नथी, परन्तु नियमथी न समस्त लोकमां छे, कारणे डे आनु-

अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यविषयेऽप्येवमेव बोध्यम् । स्पर्शनाद्वारेऽपि एवमेव बोध्यम् । कालद्वारे तु—कालतः आनुपूर्वीत्वानानुपूर्वीत्वावक्तव्यत्वानामव्यवच्छिन्नत्वेन सर्वदाऽवस्थायित्वात् कालत्रयेऽप्येषां सर्वाद्धाऽवस्थानं बोध्यम् । अत एवैषां कालतोऽन्तरमपि न भवति, आनुपूर्वीत्वादीनां कालत्रयेऽपि सत्त्वेन व्यवच्छेदाभावात्, इत्यन्तरद्वारे भावनीयम् । भागद्वारे त्वेवं विज्ञेयम्—आनुपूर्वीद्रव्येषु प्रत्येकद्रव्याणि=

क्योंकि आनुपूर्वीत्वरूप सामान्य एक है और वह सर्वलोक व्यापी है इसलिये नियमतः आनुपूर्वीद्रव्य की सत्ता सर्वलोक में हैं । इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में इसी प्रकार का कथन जानना चाहिये । तथा स्पर्शना द्वार में भी ऐसा ही मंतव्य जानना चाहिये । अर्थात् आनुपूर्वी आदि समस्त द्रव्य सर्वलोक का नियम से स्पर्श करते हैं । यही विषय प्रश्नोत्तर पूर्वक (संगहस्स आणुपुव्वीद-व्वाहं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति ? असंखेज्जइभागं फुसंति संखेज्जे भागे फुसंति, असंखेज्जे भागे फुसंति ? सव्वलोगं फुसंति ? नो संखेज्जइभागं फुसंति, जाव नियमा सव्वलोगं फुसंति, एवं दो-न्निवि) सूत्रकार ने इन पदों द्वारा स्पष्ट किया है । (संगहस्स आणुपुव्वी-दव्वाहं कालभो केवच्चिरं होंनि ? सव्वद्धा एवं दोन्निवि)

प्रश्न—संग्रहनय मान्य समस्त आनुपूर्वी द्रव्य काल को आश्रित करके कितने समय तक आनुपूर्वी रूप से रहते हैं ।

पूर्वीत्व इय सामान्य अेक छे अने ते सर्वलोकव्यापी छे, तेथी नियमथी न आनुपूर्वी द्रव्यनी सत्ता (अस्तित्व) सर्व लोकमां छे. आ प्रकारनुं कथन अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्य विषे पणु समजवुं अेटले के ते अन्नेनुं अस्तित्व पणु नियमथी न समस्त लोकमां छे. स्पर्शाने अनुलक्षिने पणु अेवुं न कथन समज लेवुं. अेटले के आनुपूर्वी आदि समस्त द्रव्य नियमथी न सर्वलोकने स्पर्श करे छे. अेव विषयनुं सूत्रकारे नीयेना प्रश्नोत्तरे द्वारा स्पष्टीकरण कथुं. छे—

(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाहं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति ? असंखेज्जइ भागं फुसंति, संखिज्जे भागे फुसंति, असंखिज्जे भागे फुसंति, सव्वलोगं फुसंति ? नो संखेज्जइभागं फुसंति, जाव नियमा सव्वलोगं फुसंति, एवं दोन्न वि.)

प्रश्न—हे लगवन् । संग्रहनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्ये शुं लोकना संख्या-तमां लागने स्पर्शे छे के, असंख्यातमां लागने स्पर्शे छे, के समस्त-लोकने स्पर्शे छे ?

त्रिप्रदेशिकचतुष्प्रदेशिकादीनि-अनन्तप्रदेशिकपर्यन्तानि, नियमात् शेषद्रव्याणाम्= अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां त्रिभागे=त्रयाणां राशीनामेको राशिरूपो भागस्त्रि- भागस्तस्मिन् भवन्ति । अयमर्थः-अनानुपूर्वीद्रव्याणां सर्वेषां संकलनेन यावत्

उत्तर- आनुपूर्वीत्व अनानुपूर्वीत्व और अवक्तव्यकत्व सामान्य का कभी भी विच्छेद नहीं होता है इसलिये इनका अवस्थान सर्वाद्धा- सार्व कालिक- है । इसीलिए काल की अपेक्षा इनका विरह काल भी नहीं है । तात्पर्य कहने का यह है कि आनुपूर्वीत्व आदिकों का काल- प्रथ में भी सत्व होने के कारण व्यवच्छेद नहीं होता है, इस कारण इनमें अन्तर नहीं माना जाता है ऐसा विचार अन्तरद्वार में किया गया जानना चाहिये । यही बात सूत्रकारने (संगहस्स आणुपुव्वीदव्वा- णं कालओ केवच्चिरं अंतरं होई ? नत्थि अंतरं) इन पदों द्वारा कही गई है (संगहस्स आणुपुव्वी दव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा)

प्रश्न-संग्रहनयमान्य समस्त आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के कौन से भाग में हैं ? (किं संखेज्जइभागे होज्जा ? असंखेज्जइभागे होज्जा

उत्तर-आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोकने ज स्पशे' छे, लोकना स'भ्या- तमां लागने, अस'भ्यातमां लागने, स'भ्यात लागोने के अस'भ्यात लागोने स्पश'तुं नथी आ प्रकारनुं कथन अनानुपूर्वी द्रव्यो अने अवक्तव्यक द्रव्योनी स्पश'ना विषे पणु समज्जुं.

(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होति ? सव्वज्जा, एव' दोन्नि वि) प्रश्न-डे लगवन् ! संग्रहनयमान्य समस्त आनुपूर्वी द्रव्य काणनी अपेक्षाओ केटला समय सुधी आनुपूर्वी इपे रडे छे ?

उत्तर-आनुपूर्वीत्व, अनानुपूर्वीत्व अने अवक्तव्यकत्वसामान्यने। कडि पणु विच्छेद थतो नथी तेथी तेमनुं अवस्थान (अस्तित्व) सार्वकालिक डोय छे ते कारणे काणनी अपेक्षाओ तेमने। विरहकाण पणु नथी. आ कथननुं तात्पर्य ओ छे के आनुपूर्वी आदिने। त्रणे काणमां सद्धलाव डोवाने कारणे व्यवच्छेद (विनाश) संलवी शकतो नथी. ते कारणे काणनी अपेक्षाओ तेमना अन्तर (विरहकाण) ने। पणु सद्धलाव डोतो नथी. आ प्रकारे सूत्रकारे अंत- रद्वारनी प्रइपणु करी छे, ओम समज्जुं ओज वात सूत्रकारे नीयेना सूत्रपाठ द्वारा व्यक्त करी छे—

(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाणं कालओ केवच्चिरं अंतरं होई ? नत्थि अंतरं) आ सूत्रपाठने। भावार्थ उपर आ'प्या प्रमाणे समज्जो.

डवे लागद्वारनुं निइपणु करवाभां आवे छे-(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं

राशिर्भवति तस्य भागत्रयकरणेन यस्त्वृतीयो भागः संपद्यते तत्संख्यकानि आनु-
पूर्वीद्रव्याणां प्रत्येकद्रव्याणि भवन्ति, संग्रहस्यानुपूर्वीद्रव्याणि कस्मिन् भावे
भवन्ति?, इति प्रश्नः। उत्तरमाह—नियमात् सादिपारिणामिके भावे भवन्ति।

संखेज्जेषु भागेषु होज्जा? असंखेज्जेषु भागेषु होज्जा?) क्या संख्यातवे
भाग में हैं या असंख्यातवे भाग में हैं?—या संख्यात भागों में हैं? या
असंख्यात भागों में हैं? —

उत्तर—(नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा,
नो संखेज्जेषु भागेषु होज्जा, नो असंखेज्जेषु भागेषु होज्जा, नियमा
तिभागे होज्जा) संग्रहनय मान्य समस्त आनुपूर्वी द्रव्यों में से प्रत्येक
आनुपूर्वीद्रव्य—त्रिप्रदेशिक, चतुष्प्रदेशिक आदि अनन्त प्रदेशिक द्रव्य-
नियम से शेष द्रव्यों के त्रिभाग में हैं। अर्थात् अनानुपूर्वी द्रव्यों और
अवक्तव्यकद्रव्यों को मिलाकर जो राशि उत्पन्न हो उस राशि के ३
भाग करो—इनमें जो तृतीय भाग आवे तत्प्रमाण आनुपूर्वी द्रव्यों में
प्रत्येक आनुपूर्वी द्रव्य हैं। (एवं दोन्निवि)—इसी प्रकार आनुपूर्वी और
अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में जानना चाहिये। (संग्रहस्त आणुपुन्वी

सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा?) प्रश्न—हे लगवान्! संग्रहनयसंभत समस्त
आनुपूर्वी द्रव्य षाकीना द्रव्येना डेटलांभां लागप्रभाणु डोय छे? (किं संखे-
ज्जइभागे होज्जा? असंखेज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेषु भागेषु होज्जा? असं-
खेज्जेषु भागेषु होज्जा?) शुं संख्यातभां लागप्रभाणु छे? के असंख्यातभां
लागप्रभाणु छे? के संख्यात लागप्रभाणु संख्यात गणुं छे? के असंख्यात
लागप्रभाणु—असंख्यात गणुं छे?

उत्तर—(नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा, नो
संखेज्जेषु भागेषु होज्जा, नो असंखेज्जेषु भागेषु होज्जा, नियमा तिभागे होज्जा)
संग्रहनयमान्य समस्त आनुपूर्वी द्रव्येभांथी प्रत्येक आनुपूर्वी द्रव्य—त्रिप्रदे-
शिक चतुष्प्रदेशिक पंचप्रदेशिक आदि अनन्त प्रदेशिक पर्यन्तना प्रत्येक आनु-
पूर्वी द्रव्य-नियमथी न षाकीना द्रव्येना त्रीण लाग प्रभाणु न डोय छे.
ओटले के अनानुपूर्वी द्रव्ये अने अवक्तव्यक द्रव्येने ओकत्र करवाथी ने
राशि अने छे ते राशिना ने त्रणु लाग करवाभां आवे तो ते प्रत्येक
लागप्रभाणु (ते षाकीना द्रव्येनी राशिना राशिना त्रीण लागप्रभाणु)
आनुपूर्वी द्रव्येभांना प्रत्येक आनुपूर्वी द्रव्य डोय छे (एवं दोन्नि वि) ओन
प्रभाणु अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्येना विषयभां पणु समणुं.

द्ववाइं कयरमि भावे होजजा ?) संग्रहनय मान्य आनुपूर्वी द्रव्य किस भाव वाले हैं ?

उत्तर— (नियमा साद्वारिणामए भावे होजजा) संग्रहनय मान्य आनुपूर्वीद्रव्य नियम से साद्वारिणामिक भाववाले हैं । (एवं दोन्निवि) इसीप्रकार से दोनों आनुपूर्वी और अवक्तव्यकद्रव्यों के विषय में जानना चाहिये । (अप्पा बहुनत्थि) राशिगत द्रव्यों में अल्प बहुत्व नहीं माना गया है । क्योंकि इस संग्रहनय में राशिगत द्रव्यों का अस्तित्व व्यवहारनयरूप कल्पना मात्र से ही मान्य हुआ है । तात्पर्य कहने का यह है कि संग्रहनय की दृष्टि आनुपूर्वी द्रव्यों में अनेकत्व काल्पनिक हैं । क्यों कि व्यवहारनय इस बात को स्वीकार करता है कि आनुपूर्वी द्रव्य प्रत्येक अनेक हैं । इसलिये यह अनेकत्व सामान्यरूप आनुपूर्वीत्व की दृष्टि में विलीन के कारण है ही नहीं ।

शंका—यदि यही बात है तो फिर सूत्रकार ने इस संग्रहनय मान्य अनुगमके प्रकरण में “संग्रहस्य आनुपूर्वी द्रव्याणि किं संख्येयानि ” आदि बहुवचनान्त पद में आनुपूर्वीद्रव्य को क्यों रखा है ? “आनुपूर्वी-

प्रश्न—(संग्रहस्य आणुपूर्वी द्ववाइं कयरमि भावे होजजा ?) संग्रहनय-मान्य आनुपूर्वी द्रव्यो कया भावथी युक्त होय छे ?

उत्तर—(नियमा साद्वारिणामिए भावे होजजा) संग्रहनयसंभत आनुपूर्वी द्रव्यो नियमथी न स द्वारिणामिक भाववाणां होय छे. (एवं दोन्नि वि) अने प्रमाणे संग्रहनयसंभत अनानुपूर्वी द्रव्यो अने अवक्तव्यक द्रव्यो पणु नियमथी न साद्वारिणामिक भाववाणां होय छे (अप्पा बहु नत्थि) राशिगत द्रव्योमां अल्पबहुत्व मानवामां आणु नथी, कारण के आ संग्रहनयमां राशिगत द्रव्योनु अस्तित्व व्यवहार नयरूप कल्पना मात्रथी न मान्य थयुं छे. आ कथेननु तात्पर्य अे छे के संग्रहनयनी दृष्टिअे आनुपूर्वी द्रव्योमां अनेकत्व काल्पनिक छे, कारणुं के व्यवहार नय अे वातने स्वीकार करे छे, के प्रत्येक आनुपूर्वी द्रव्य अनेक छे. अने ते अनेकत्व सामान्य रूप आनुपूर्वीत्वनी दृष्टिमां विलीन थछे नवाने कारणे छे न नही.

शंका—अे अेवी उक्तीकत होय तो सूत्रकारे आ संग्रहनयमान्य अनुगमना प्रकरणमां “संग्रहस्य आनुपूर्वी द्रव्याणि किं संख्येयानि ” इत्यादि बहुवचनान्त पदमां आनुपूर्वी द्रव्यने केन भूकथुं छे ? “ “ आनुपूर्वी द्रव्य ”

अन्यद् द्वयमपि पूर्ववद् बोध्यम् । राशिगतद्रव्याणां पूर्वोक्तमल्पबहुत्वमत्र नाश्री-
यते, द्रव्याणां प्रस्तुतनये व्यवहारसंबृत्तिमात्रेणैव सत्त्वादिति । एवमनानुपूर्व्यवक्त-
व्यकद्रव्यविषयेऽपि बोध्यम् । अनुगमं समापयन्नाह—‘ से तं अणुगमे ’ इति । स

द्रव्यम्” ऐसा एक वचनान्त पद प्रयुक्त करना चाहिये । क्योंकि संग्रहनय
मुख्यतया सामान्यत्व ही मानता है ।

उत्तर—शंका ठीक है—परन्तु सूत्रकारने जो बहुवचनान्त आनुपूर्वी
पद को रखा है उसका कारण यह है कि वे यह प्रकट करना चाहते हैं
व्यवहारनय से द्रव्यबहुत्व भी हैं । इसी बात की अपेक्षा करके उन्होंने
यहां आनुपूर्वी में बहुवचन का निर्देश किया है ।

शंका—व्यवहारनय की अपेक्षा सूत्रकारने जब नैगम व्यवहारसंमत
अनुगम का प्रकरण प्रारंभ किया है तब वहां द्रव्यबहुत्व दिखला ही
दिया है फिर इसे यहां इस एकत्व के प्रकरण में प्रदर्शित करने की क्या
आवश्यकता थी ?

उत्तर—ठीक है—नहीं दिखलाना चाहिये, परन्तु जो शिष्य विस्मरण
शील है उन्हे इस विषय को पुनः स्मृत कराना कोई पुनरुक्ति दोष की
बात नहीं है । अतः सूत्रकारने ऐसा किया है । शिष्यजन जिस प्रकार से
घस्तु का स्वरूप समझ सके उसी प्रकार से उन्हे समझाना गुरुका कर्त-

आ एक वचनान्त पढ़नेो प्रयोग केम क्यो नथी ? संग्रहनय मुख्यत्वे
सामान्यतत्त्वने न माने छे तेथी अही’ एकवचनना पढ़नेो प्रयोग
थये लेधतो डतो.

उत्तर—शंकाकर्तानी शंका व्याजणी छे. परंतु सूत्रकारे ने बहुवचनान्त
पढ़नेो प्रयोग क्यो छे—‘ आनुपूर्वी’ द्रव्यो’ अयेो प्रयोग क्यो छे—तेनुं कारण
अे छे के तेओ अे वात प्रकट करवा भागे छे के व्यवहार नयनी अपेक्षाअे
द्रव्यबहुत्व पणु छे. अेन वातने अनुलक्षीने सूत्रकारे अही’ आनुपूर्वी’ पढमां
अहुवचननेो निर्देश क्यो छे.

शंका—नैगमव्यवहार नयसंमत अनुगमना प्रकरणमां न सूत्रकारे व्यव-
हारनयनी अपेक्षाअे द्रव्यबहुत्व प्रकट क्युं छे. छतां अही’ इरीथी तेने
अेकत्वना प्रकरणमां प्रदर्शित करवानी शी आवश्यकता डती ?

उत्तर—विस्मरणशील शिष्यने आ विषयनुं इरी स्मरणु करवावा भाटे
सूत्रकारे अही’ तेनेो इरी उल्लेख क्यो छे तेथी आ प्रमाणे करवामां पुन-
रुक्ति दोषनी संभावना रहेनी नथी शिष्यो ने प्रकारे वस्तुना स्वरूपने
समझ शके अे प्रकारे तेमने समझववानुं तो गुरुनुं कर्तव्य थध पडे छे.

एषोऽनुगमः । इत्थं संग्रहसम्मताऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी समाप्तेति सूचयितुमाह—
‘से तं संग्रहस्स’ इत्यादि । सैषा संग्रहसम्मताऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी । अनौप-
निधिकी द्रव्यानुपूर्वी समाप्तेति सूचयितुमाह—‘से तं अणोवणिहिया’ इत्यादि—
सैषाऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीति ॥ सू० ९६ ॥

इत्थमनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी निरूप्य सम्प्रति प्राङ्निर्दिष्टामौपनिधिकीं
द्रव्यानुपूर्वीं प्राह—

मूलम्—से किं तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ? ओवणिहिया
दव्वाणुपुव्वी तिविहा पणत्ता, तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी१, पच्छा-
णुपुव्वी२, अणाणुपुव्वीय३ ॥ सू० ९७ ॥

व्य हो जाता है । (से तं अणुगमे । से तं संग्रहस्स अणोवणिहिया
दव्वाणुपुव्वी, से तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) इस प्रकार अनुगम के
प्रकरण को समाप्त करते हुये सूत्रकार कहते हैं कि यह पूर्वोक्तरूप से
संग्रहनय मान्य अनुगम का स्वरूप है । इसकी समाप्ति में संग्रहनय
संमत अनौपनिधि की द्रव्यानुपूर्वी का कथन समाप्त हो चुका । यही प्र-
क्रान्त अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है । इसका विशेषरूप से
खुलाशा अर्थ नैगम व्यवहारनय संमत अनुगम के प्रकरण में लिखा
जा चुका है । ॥ सू० ९६ ॥

इस प्रकार से अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का निरूपण करके अब
सूत्रकार पूर्व कथित औपनिधि की द्रव्यानुपूर्वी का कथन करते हैं

(से तं अणुगमे ! से तं संग्रहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी, से तं
अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) इवे अनुगमना प्रकरणुने णपसंहार करतां सूत्र-
कार उडे छे के आ प्रकारनुं (णपर वव्वंया प्रभाणेतुं) संग्रहनयमान्य अनु-
गमनुं स्वइय छे. अनुगमना स्वइयनुं निइयणु थध जवाथी संग्रहनयमान्य
अनुगमनुं स्वइय छे. अनुगमना स्वइयनुं निइयणु थध जवाथी संग्रहनय-
संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीनुं कथन अही पूइं थाय छे. आ प्रकारनुं
पूर्वप्रस्तुत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीनुं स्वइय छे. तेने विशेष खुलासा
नैगमव्यवहार नयसंमत अनुगमना प्रकरणुमां आपवाभां आवेदो छे, ॥ सू० ९६ ॥

आ प्रभाणेतुं अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीनुं निइयणु करीने इवे सूत्रकार
पूर्वकथित औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीनुं निइयणु करे छे—

છાયા—અથ કા સા ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી? ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી ત્રિવિધા પ્રજ્ઞા, તદ્વથા—પૂર્વાનુપૂર્વી૧, પશ્ચાનુપૂર્વી૨, અનાનુપૂર્વી૩૨ ॥મૂ० ૧૭॥

ટીકા—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ—

અથ કા સા ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી? ઇતિ શિષ્ય પ્રશ્નઃ । ઉત્તરમાહ— ઔપનિધિકી=ઉપનિધિઃ=સ્થાપનં નિર્માણમિત્યર્થઃ, સ પ્રયોજનમસ્યા સા, દ્રવ્યાનુપૂર્વી—દ્રવ્યવિષયાઽનુપૂર્વી ત્રિપ્રકારા પ્રોક્તા । તદ્વથા—પૂર્વાનુપૂર્વી=વિવક્ષિત-ધર્માસ્તિકાયાદિદ્રવ્યવિશેષસમુદાયે યઃ પૂર્વઃ=પ્રથમસ્તસ્માદારમ્બ્ય યા આનુપૂર્વી=અનુક્રમઃ પરિપાટી ત્રા નિક્ષિપ્યતે સા પૂર્વાનુપૂર્વી? । પશ્ચાનુપૂર્વી—તત્રૈવ દ્રવ્યવિશેષ-

“સે કિં તં ઓવણિહિયા” ઇત્યાદિ

શબ્દાર્થ—સે કિં તં ઓવણિહિયા દ્વાણુપુઠ્વી) હે ભદન્ત ! ઔપનિધિ દ્રવ્યાનુપૂર્વી કા કયા સ્વરૂપ હૈ ?

ઉત્તર—(ઓવણિહિયા દ્વાણુપુઠ્વી તિવિહા પળ્ણત્તા) ઔપનિધિ દ્રવ્યાનુપૂર્વી ત્રીન પ્રકાર કી કહી ગઈ હૈ । (તંજહા) વે ઉસકે ૩ પ્રકાર યે હૈ—(પુઠ્વાણુપુઠ્વી ૧, પચ્છાણુપુઠ્વી૨, અણાણુપુઠ્વી ૩ ય) ૧ પૂર્વાનુપૂર્વી૨ પશ્ચાનુપૂર્વી ઓર ૩,અનાનુપૂર્વી ઉપનિધિ કા અર્થ સ્થાપન યા નિર્માણ હૈ । યહ જિસકા પ્રયોજન હો ઉસકા નામ ઔપનિધિકી હૈ । યહ દ્રવ્ય વિષયક ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી—પૂર્વોક્તરૂપ સે ૩તીન પ્રકાર કી હૈ । વિવક્ષિત ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્ય વિશેષ કે સમુદાય મેં જો પૂર્વ પ્રથમ દ્રવ્ય હૈ ઉસસે લેકર જો આનુપૂર્વી—અનુક્રમ—પરિપાટી નિક્ષિપ્ત કી

“સે કિં તં ઓવણિહિયા” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં ઓવણિહિયા દ્વાણુપુઠ્વી ?) હે ભગવન ! ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(ઓવણિહિયા દ્વાણુપુઠ્વી તિવિહાં પળ્ણત્તા) ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. (તંજહા) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(પુઠ્વાણુપુઠ્વી, પચ્છાણુપુઠ્વી, અણાણુપુઠ્વી ય) (૧) પૂર્વાનુપૂર્વી, (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી, અને (૩) અનાનુપૂર્વી.

ઉપનિધિ એટલે સ્થાપના અથવા નિર્માણ તે સ્થાપના અથવા નિર્માણ બેનું પ્રયોજન હોય છે તેને ઔપનિધિકી કહે છે. આ દ્રવ્યવિષયક ઔપનિધિકીના ઉપર મુજબ ત્રણ પ્રકાર છે. વિવક્ષિત ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યવિશેષના સમુદાયમાં જે પૂર્વ (પ્રથમ દ્રવ્ય) છે ત્યાંથી શરૂ કરીને જે આનુપૂર્વી (અનુક્રમ, પરિપાટી) નિક્ષિપ્ત કરવામાં આવે છે—રાખવામાં આવે છે

समुदाये यः पाश्चात्यः=अन्तिमस्तस्मादारभ्य व्यतिक्रमेण या ऽऽनुपूर्वीं निक्षिप्यते सा पश्चानुपूर्वी २। अनानुपूर्वीं-पूर्वानुपूर्वीं पश्चानुपूर्वीभ्यां भिन्नस्वरूपा या ऽऽनुपूर्वीं साऽनानुपूर्वीं ॥ सू० ९७॥

पूर्वानुपूर्व्यादिभेदत्रयं निरूपयितुमाह—

मूढम्—से किं तं पुव्वानुपुव्वी ? पुव्वानुपुव्वी—धम्मत्थिकाये अधम्मत्थिकाये, आगासत्थिकाये, जीवत्थिकाये, पोग्गलत्थिकाये, अद्धासमये । से तं पुव्वानुपुव्वी । से किं तं पच्छानुपुव्वी ? पच्छानुपुव्वी—अद्धासमए, पोग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, आगासत्थिकाए, अहम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकाए । से तं पच्छानुपुव्वी । से किं तं अणानुपुव्वी ? अणानुपुव्वी—एयाए चेषेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अणमण्ण-कभासो दुरुव्वणो । से तं अणानुपुव्वी ॥सू० ९८॥

छाया—अथ का सा पूर्वानुपूर्वी ? पूर्वानुपूर्वी—धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायः आकाशास्तिकायो जीवास्तिकायः पुद्गलास्तिकायः अद्धासमयः । सैषा पूर्वा-

की जाती है—रखी जाती है वह पूर्वानुपूर्वी है । तथा उसी द्रव्य विशेष के समुदाय में जो पाश्चात्य-अन्तिमद्रव्य है—उससे लेकर व्यक्तिक्रम से जो आनुपूर्वी निक्षिप्त की जाती है वह पश्चानुपूर्वी है । पूर्वानुपूर्वी एवं पश्चानुपूर्वी इन दोनों से भिन्न स्वरूप वाली जो आनुपूर्वी है वह अनानुपूर्वी है । ॥ सू० ९७ ॥

पूर्वानुपूर्वी आदि जो तीन भेद हैं उनका स्वरूप क्या है इस बात को सूत्रकार प्रकट करते हैं—“से किं तं पुव्वानुपुव्वी” इत्यादि ।

तेनुं नाम पूर्वानुपूर्वीं छे. तथा अणं द्रव्यविशेषना समुदायमां ने पाश्चात्य-अन्तिम द्रव्य छे, त्यांथी शङ्करीने अटले के उदटा कम्मथी ने आनुपूर्वीं राभवामां आवे छे तेने पश्चानुपूर्वीं कडे छे. पूर्वानुपूर्वीं पश्चानुपूर्वीं, आ-अन्नेथी भिन्न स्वरूपवाणी ने आनुपूर्वीं छे तेने अनानुपूर्वीं कडे छे. ॥सू० ९७॥

इवे सूत्रकार पूर्वानुपूर्वीं आदि त्रय्ये वेदोना स्वरूपं निरूपय् करे छे—

“से किं तं पुव्वानुपुव्वी” इत्यादि—

नुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-अद्वासमयः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, धर्मास्तिकायः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां षड्गच्छतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोऽनानुपूर्वीः॥सू.९८॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह—‘पुष्पाणुपुष्वी’ इत्यादि। पूर्वानुपूर्वी-धर्मास्तिकायः१, अधर्मास्तिकायः२, आकाशास्तिकायः३, जीवास्तिकायः४, पुद्गलास्तिकायः५, अद्वासमयः६। धर्मास्तिकायादीनां व्याख्याऽऽचाराङ्गसूत्रस्य प्रथमश्रुतस्कन्धे मत्कृताचारचिन्तामणिटीकायां द्रष्टव्या। तथा-अद्वासमयः-अद्धारूपः समय इति समासः। अद्दाशब्दः कालवीचकः।

शब्दार्थ- (से किं तं पुष्पानुपुष्वी?) हे भदन्त। पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर-(पुष्पाणुपुष्वी) पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है— (धम्मत्थिकाये, अधम्मत्थिकाये, आगासत्थिकाये जीवत्थिकाये, पोग्गलत्थिकाये’ अद्वासमये) १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय ५ पुद्गलास्तिकाय और ६ अद्दा समय इस प्रकार की परिपाटी से इन छह द्रव्यों का निक्षेपण करना यह पूर्वानुपूर्वी है। इन धर्मास्तिकाय आदि कों का क्या स्वरूप है इस बात को जानने के लिये आचाराङ्ग-सूत्र के प्रथम स्कंध में मत्कृत आचारचिन्तामणि टीका देखनी चाहिये। अद्धारूप जो समय है उसका नाम अद्दा समय है। अद्दा शब्द

शब्दार्थ-(से किं तं पुष्पानुपुष्वी?) हे भगवन्। पूर्वानुपूर्वीनु स्वरूप केवुं छे?

उत्तर-(पुष्पाणुपुष्वी) पूर्वानुपूर्वीनु स्वरूप आ प्रकारनुं छे। (धम्मत्थिकाये, अधम्मत्थिकाये, आगासत्थिकाये, जीवत्थिकाये, पोग्गलत्थिकाये, अद्वासमये) (१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) जीवास्तिकाय, (५) पुद्गलास्तिकाय अने (६) अद्दासमय (काण), आ प्रकारनी परिपाटीथी (अनुकमथी) छ द्रव्येनुं निक्षेपणु करवुं तेनुं नाम पूर्वानुपूर्वीं छे।

आचाराङ्ग सूत्रनी आचारचिन्तामणि नामनी भे जे टीका लथी छे तेना पड़ेला स्कंधमां धर्मास्तिकाय आदिना स्वरूपनुं निक्षेपणु करवामां आंथुं छे तो जिज्ञासु पाठकेअे त्यांथी ते वांथी लेवुं. अद्दा रूप जे समय छे तेनुं नाम अद्दासमय छे, अद्दा शब्द काणवाचक छे, अने समय शब्द

समयशब्दोऽनेकार्थकः शपथादिष्वपि वर्तते, अतः कालमर्थं बोधयितुम्—‘अद्धा’ इति विशेषणोपादानम् । पट्टसाटिकादिपाटनदृष्टान्तसिद्धः सर्वसूक्ष्मः पूर्वापरकोटि-विप्रमुक्तो वर्तमानः एकः कालांश इति ‘अद्धासमय’ शब्दार्थो बोध्यः, अत एवात्र अस्तिकायत्वाभावः, बहुप्रदेशवति द्रव्य एव तस्य सद्भावात् । इह तु नास्ति प्रदेशबाहुल्यम्,—अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन एकमात्रस्य वर्तमानरूपस्य समयस्य प्रदेशस्य सद्भावात् । ननु समयबहुत्वाभावे ‘समया वलियमुहुत्ता

काल वाचक है और समय शब्द अनेकार्थक है । क्योंकि समय शब्द का प्रयोग शपथ आदि अनेक अर्थों में भी होता है । अतः कालरूपार्थ का वह यहाँ बोधक है, इस ध्यान को बोध कराने के निमित्त सूत्रकार ने उसका विशेष अद्धापद रखा है । वर्तमान एक कालांश का नाम अद्धा समय है । यह अत्यंत सूक्ष्म है । पूर्व और अपर कोटि से यह रहित होता है । इसकी सिद्धि पट्ट साटिकादि के फाड़ने रूप दृष्टान्त से होती है । अर्थात् सर्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म जो वर्तमान कालांश है वही अद्धा समय का वाच्यार्थ है । इसे अस्तिकाय में परिगणित नहीं किया गया है । क्यों कि इसमें बहुप्रदेशत्व का अभाव है । जो बहुप्रदेश वाले-होते हैं उन्हें ही अस्तिकाय कहा गया है । अतीतकाल विनष्ट हो जाने के और भविष्यत् काल अनुत्पन्न होने के कारण एकमात्र वर्तमानरूपसमय प्रदेश का सद्भाव है इसलिये उसमें प्रदेशबाहुल्य नहीं है ।

शंका—समय की बहुता के आभाव में “समयावलियमुहुत्ता दिव-

अनेकार्थक छे, काश्लु के समय शब्दने प्रयोग शपथ आदि अनेक अर्थोंमां पणु थाय छे. तेथी ते पट्ट अद्धीं काणइय अर्थानुं बोधक छे, ते वातने समंभववाने भाटे सूत्रकारे तेनुं विशेष अद्धापद राप्थुं छे. वर्तमान अेक समयनुं नाम अद्धासमय छे. ते अत्यंत सूक्ष्म छे. पूर्व अने अपर कोटिथी ते रहित होय छे. तेनी सिद्धिने भाटे पट्ट साटिका आदि काडवानुं दृष्टान्त आपवामां आवे छे अेटले के सर्वसूक्ष्मातिसूक्ष्म जे वर्तमान कालांश छे अेज अद्धासमयना वाच्यार्थ इय छे. तेने अस्तिकायमां गण्णाववामां आवेल नथी कारणे के तेमां बहु प्रदेशत्वने अभाव छे. जे बहु प्रदेशवाणां होय छे तेमने जे अस्तिकाय कडेवाय छे. अतीतकाण (व्यतीत थर्ष गयेले काण) विनष्ट थर्ष जवाने कारणे अने भविष्यकाण अनुत्पन्न होवाने कारणे अेक मात्र वर्तमान इय समयप्रदेशने जे सद्भाव छे, तेथी तेमां प्रदेशबाहुल्य नथी.

शंका—समयनी बहुताने जे अभाव मानवामां आवे, तो “समयाव-

दिवसमहोरत्तपक्खमासा य' इत्यागमसिद्ध आवलिकादिकालः कथमुपपद्येत ? इति चेत्, उच्यते-व्यवहारनयमाश्रित्य-आवलिकादिसत्ता स्वीक्रियते । निश्चय-नयमते तु तदसत्त्वमेव । नहि पुद्गलस्कन्धे परमाणुसङ्घात इवावलिकादिषु समय-सङ्घातः कश्चिदवस्थितोऽस्ति, अतो व्यवहारनयमतेन तत्कथनमस्तीति न कश्चिद् दोष इति । तदेतदुपसंहरन्नाह-‘से तं’ इत्यादि, सैषा पूर्वानुपूर्वीति । अय पश्चानुपूर्वीं निरूपयित्तुमाह-‘से किं तं’ इत्यादि । अथ का सा पश्चानुपूर्वी ? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरमाह-‘पच्छानुपुव्वी’ इत्यादिना । पश्चानुपूर्वीहि-‘अद्धासमयः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, अधर्मास्ति-

स महोरत्तपक्खमासाय” इत्यादि आवलिकारूप काल जो कि आगम सिद्ध है कैसे संगत माना जा सकता है ?

उत्तर—व्यवहारनय को लेकर ही आवलिकारूप की सत्ता स्वी-कृत हुई है । निश्चयनय के मत को लेकर नहीं । क्योंकि इस मत में तो आवलिकादि रूप कालका सत्त्व नहीं माना गया है । जिस प्रकार से पुद्गलस्कंध में परमाणुओं का संघात अवस्थित है उस प्रकार से आव-लिकादिकों में कोई समय संघात अवस्थित नहीं है । इसलिये मानना चाहिये यह आवलिकारूप काल का कथन व्यवहारनय के मत से है । इसलिये इसमें कोई दोष नहीं है । (से तं पुव्वानुपुव्वी) इस प्रकार यह पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप है । “से किं तं पच्छानुपुव्वी” पश्चानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर-(पच्छानुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार से हैं-(अद्धासमय

लियमुद्धत्ता दिवसमहोरत्तपक्खमासा य” आवलिका, मुद्धूत, दिवस, रात, पक्ष, भास आदि इप काण के जे आगम द्वारा सिद्ध थयेव छे, तेने केवी नीते संगत भानी शक्य ?

उत्तर-व्यवहार नयनी दृष्टिये ज आवलिकादि इप काणनी सत्ता (समयनुं अस्तित्व) स्वीकृत थछ छे-निश्चयनयनी मान्यता अनुसार तो आव-लिका आदि इप काणनुं अस्तित्व ज स्वीकारवामां आंथुं नथी जे प्रकारे पुद्गलस्कंधमां परमाणुओमो संघात (सथेग) अवस्थित (विद्यमान) छे, ओ प्रमाणे आवलिकादिकोमां कोरि समयने संघात अवस्थित नथी तेथी-ओवुं भानवुं जेथ्ये के आ आवलिकादि इप काणनुं कथन व्यवहार नयना भतानुसारनुं कथन छे. ते कारणे आ प्रकारना कथनमां कोरि दोष नथी. (से तं पुव्वानुपुव्वी) आ प्रकारनुं पूर्वानुपूर्वीनुं स्वइप छे.

प्रश्न-डे लगवन् ! पश्चानुपूर्वीनुं केवुं स्वइप छे ?

उत्तर-(पच्छानुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी आ प्रकारनी कडी छे-(अद्धासमय,

कायः, धर्मास्तिकायः, इति व्युत्क्रमेण निर्दिष्टा । तदेतदुपसंहरन्नाह—‘से तं’ इत्यादि, सैषा पश्चानुपूर्वीति । अथानानुपूर्वीं निरूपयति—‘से किं तं’ इत्यादिना । अथ का सा अनानुपूर्वी?—न विद्यते आनुपूर्वी=पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वीद्वयरूपा यस्यां सा तथा विवक्षितपदानामनन्तरोक्तक्रमद्वयमुमुल्लङ्घ्य परस्परसादृशैः संभवद्भिर्भङ्गकैर्यस्यां विरचना क्रियते साऽनानुपूर्वीत्यर्थः । सा हि—एतस्याम्=अनन्तराधिकृतधर्मास्तिकायादिसम्बन्धिन्याम्, एकादिकायाम्=एक आदिर्यस्यां सा तथा तस्याम्, पुनः—एकोत्तरिकायाम्—एकैक उत्तरः प्रवर्धमानो यस्यां सा तथा पोगलत्थिकाए, जीवत्थिकाए आगासत्थिकाए, अहमत्थिकाए धम्मत्थिकाए) अद्धासमय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय । इस प्रकार जो धर्मादिक द्रव्यों का व्युत्क्रम से निर्देश है (से तं पच्छाणुपुव्वी) वह पश्चानुपूर्वी है । (से किं अणाणुपुव्वी) हे भदन्त ! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ? (अणाणुपुव्वी)

उत्तर—अनानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है— (एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए सेढीए अणमणव्भासो दूरुव्वणो) जिसमें पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी ये दोनों नहीं हैं उसका नाम अनानुपूर्वी है । इसमें विवक्षित धर्मादिक पदों के अनन्तरोक्त क्रमद्वय को उल्लंघन करके परस्पर सम्भवित भंगों से उन पदों की विरचना की जाती है इस अनानुपूर्वी में जो श्रेणी स्थापित की जाती है उसमें सबसे पहिले एक संख्या रखी जाती हैं । बाद में एक एक की उत्तरोत्तर वृद्धि

पागलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, आगासत्थिकाए, अहम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकाए) अद्धासमय (काण), पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय अने धर्मास्तिकाय, आ प्रकारे धर्मास्तिकाय आदि द्रव्येना ने उल्लङ्घनपूर्वक निर्देश थाय छे, (से तं पच्छाणुपुव्वी) तेनुं नाम पश्चानुपूर्वी छे ?

अथ—(से किं अणाणुपुव्वी) हे भगवन् ! अनानुपूर्वीतुं स्वरूप केतुं छे ?

उत्तर—(अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वीतुं स्वरूप आ प्रकारतुं छे—(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अणमणव्भासो दूरुव्वणो) नेमां पूर्वानुपूर्वी अने पश्चानुपूर्वी अने अन्ने नथी, तेनुं नाम अनानुपूर्वी छे. तेमां धर्मास्तिकाय आदि पढोना उपयुक्त अन्ने कम्मनुं उल्लङ्घन करीने परस्पर संभवित लंगो वडे ते पढोनी विरचना कराय छे. आ अनानुपूर्वीमां ने श्रेणी स्थापित करवामां आवे छे तेमां सौथी पडेदां अेक संप्या राभवामां आवे छे, त्थार भाद छ संप्या सुधी उत्तरोत्तर अेकनी वृद्धि

તસ્યામ્, પુનઃ-પદ્મગચ્છગતાયામ્-વર્ણાં ગચ્છઃ=સમુદાયઃ-પદ્મચ્છસ્તં ગતા=માત્રા
 વર્ણગચ્છગતા તસ્યાં-ધર્માસ્તિકાયાદિદ્રવ્યષટ્કવિષયાયાં, શ્રેણ્યાં=પદ્મકૌ અન્યોન્યા-
 ભ્યાસઃ-અન્યોઽન્યં પરસ્પરમ્-અભ્યાસો=ગુણનમ્, અન્યોઽન્યાંભ્યાસઃ-પરસ્પરગુણ-
 નરૂપઃ, તથા-દ્વિરૂપોનઃ=આદ્યન્તવિવક્ષારહિતઃ, એવંરૂપાઽનાનુપૂર્વીં બોધ્યા |
 અયમભિપ્રાયઃ-પ્રથમં વ્યવસ્થાપિતૈકક્રાયા અન્તે ચ સ્થાપિતષટ્કસંખ્યાયાઃ
 (૧-૨-૩-૪-૫-૬) ધર્માસ્તિકાયાદિ દ્રવ્યષટ્કવિષયાયાઃ પદ્મે યાં પરસ્પર-
 ગુણને મદ્મકસંખ્યા ભવતિ, સા આદ્યન્તમદ્મકદ્વયરહિતા અનાનુપૂર્વીં બોધ્યેતિ |
 અસ્ય સૂત્રસ્યેદં તાત્પર્યમ્-પૂર્વાનુપૂર્વીં હિ-પ્રથમં તાવદ્ ધર્માસ્તિકાયઃ સ્થાપયિ-
 તવ્યઃ, તદનુ-અધર્માસ્તિકાયઃ તત આકાશાસ્તિકાયઃ, इत्येवं क्रमेण 'अद्धासमयः'
 इत्येतत्पर्यन्तं स्थापना कर्तव्या । पश्चानुपूर्वीं तु प्रथमम् अद्धासमयो व्यवस्थापनीयः,
 तदनु पुद्गलास्तिकायः, ततो जीवास्तिकायः, इत्येवं व्युत्क्रमेण 'धर्मास्तिकायः'

છહ સંખ્યા તક હોતી ચલી જાતી હૈ, જૈસે ૧-૨-૩-૪-૫-૬, ફિર ઇનમેં
 પરસ્પર મેં ગુણા ક્રિયા જાતા હૈ જૈસે $1 \times 2 = 2 \times 3 = 6$ $6 \times 4 = 24$, $24 \times 5 = 120$,
 $120 \times 6 = 720$, હસ પ્રકાર અન્યોન્યાભ્યસ્તરાશિ બન જાતી હૈ | હસમેં સે
 આદિ અન્ત કે દો ભંગ કરને પર અનાનુપૂર્વીં બન જાતી હૈ | હસ સૂત્ર કો
 તાત્પર્ય યહ હૈ ફિ પૂર્વાનુપૂર્વીં મેં પહિલે ધર્માસ્તિકાય સ્થાપિત હો જાતા
 હૈ, ઉસકે બાદ અધર્માસ્તિકાય, ઉસકે બાદ આકાશાસ્તિકાય' ઉસકે
 બાદ જીવાસ્તિકાય, ફિર પુદ્ગલાસ્તિકાય ઓર ફિર અદ્ધા સમય | હસ
 ક્રમસે યહાં છહ દ્રવ્યોં કા સ્થાપન હોતા હૈ | તથા પશ્ચાનુપૂર્વીં મેં પહિલે અદ્ધા
 સમય 'ફિર પુદ્ગલાસ્તિકાય, બાદ મેં જીવાસ્તિકાય, ફિર આકાશાસ્તિકાય

થતી રહે છે, જેમ કે ૧-૨-૩-૪-૫-૬ ત્યાર બાદ તેમાં પરસ્પરનો ગુણાકાર
 કરવામાં આવે છે. જેમ કે $1 \times 2 = 2$ | $2 \times 3 = 6$ | $6 \times 4 = 24$ |, $24 \times 5 = 120$;
 $120 \times 6 = 720$ આ રીતે અન્યોન્યાભ્યસ્ત રાશિ બની જાય છે. તેમાંથી શરૂ-
 આતનો એક ભંગ અને અન્ત્ય એક ભંગ ઓછો કરી નાખવાથી અનાનુ-
 પૂર્વીં બની જાય છે આ સૂત્રનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

પૂર્વાનુપૂર્વીંમાં પહેલાં ધર્માસ્તિકાય સ્થાપિત થાય છે, ત્યાર બાદ
 અધર્માસ્તિકાય, ત્યારબાદ આકાશાસ્તિકાય, ત્યાર બાદ જીવાસ્તિકાય, ત્યાર
 બાદ પુદ્ગલાસ્તિકાય અને ત્યાર બાદ અદ્ધાસમય (કાળ) સ્થાપિત થાય છે.
 આ ક્રમે છ દ્રવ્યોં પૂર્વાનુપૂર્વીંમાં સ્થાપન થાય છે.

પશ્ચાનુપૂર્વીંમાં પહેલાં અદ્ધા સમય, ત્યાર બાદ પુદ્ગલાસ્તિકાય, ત્યાર
 બાદ જીવાસ્તિકાય, ત્યાર બાદ આકાશાસ્તિકાય, ત્યાર બાદ અધર્માસ્તિકાય

इत्येतत्पर्यन्तं स्थापना कर्तव्या । अनानुपूर्व्यां तु पूर्वानुपूर्वीपश्चानुपूर्वीस्यक्रमः
व्युत्क्रमोभयं परित्यज्य यथारुचि स्थापनाकर्तव्येति । प्रस्तुतसूत्रमपसंहरन्नाह—
'से तं' इत्यादि । सैषानानुपूर्वीति ॥सू० ९८॥

इत्थं धर्मास्तिकायादीनि षडपि द्रव्याणि पूर्वानुपूर्व्यादित्वेनोदाहृतानि ।
सम्प्रत्येकं पुद्गलास्तिकायमधिकृत्याह—

मूलम्—अहवा ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पणत्ता,
तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी । से किं तं
पुव्वाणुपुव्वी ? पुव्वाणुपुव्वी परमाणुपोग्गले दुप्पएसिए तिप्प-
एसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए
अणंतपएसिए । से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?
पच्छाणुपुव्वी अणंतपएसिए असंखिज्जपएसिए संखिज्जपएसिए
जाव दसपएसिए जाव तिप्पएसिए दुप्पएसिए परमाणुपोग्गले ।
से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ? अणाणुपुव्वी एयाए
चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेठीए अण-
मणव्भासो दुरूव्वणो । से तं अणाणुपुव्वी । से तं ओवणिहिया
दव्वाणुपुव्वी । से तं जाणयसरीरंभवियसरीरवइरित्ता

बाद अधर्मास्तिकाय और फिर धर्मास्तिकाय इस व्युत्क्रम से ६ द्रव्यों
का स्थापन किया जाता है । परन्तु अनानुपूर्वी में इन दोनों प्रकार के
पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वीरूप क्रम व्युत्क्रम का परित्यागकर यथारुचि ६ द्रव्य
स्थापित किये जाते हैं । (से तं अणाणुपुव्वी) इस प्रकार यह अनानुपूर्वी
का स्वरूप है । ॥ सू० ९८ ॥

अने त्पार षाड धर्मास्तिकाय, आ प्रकारना उदटा कुमथी ६ द्रव्येानुं स्थापन
कराय छे परन्तु अनानुपूर्वींभां तो पूर्वानुपूर्वींनी जेम छ द्रव्येाना सीधा
कुमनो अने पश्चानुपूर्वींनी जेम तेमना उदटा कुमनो अने यथारुचि
(मनने गमे ते रीते) छ द्रव्येानुं स्थापन करवाभां आवे छे (से तं अणाणु-
पुव्वी) आ प्रकारनुं अनानुपूर्वींनुं स्वरूप छे ॥सू०६८॥

द्वानुपूर्वी । से तं नो आगमओ द्वानुपूर्वी । से तं
द्वानुपूर्वी ॥सू० ९९॥

ज्ञाया—अथवा—औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा मज्ञप्ता, तद्यथा—पूर्वानु-
पूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी—परमाणु-
पुद्गलो द्विप्रदेशिकः त्रिप्रदेशिको यावत् दशप्रदेशिकः संख्येयप्रदेशिकः असंख्येय-
प्रदेशिकः अनन्तप्रदेशिकः । सैषा पूर्वानुपूर्वी । अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानु-

अथ सूत्रकार एक पुद्गलास्तिकाय के ऊपर तीनोंकी घटना करते हैं—
“अहवा ओवणिहिया” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(अहवा) अथवा—(ओवणिहिया द्वानुपूर्वी)औपनिधि-
की द्रव्यानुपूर्वी (त्रिविधा पणत्ता) तीन प्रकार की कही गई हैं । (तं जहा)
के प्रकार ये हैं—(पुव्वानुपूर्वी) पूर्वानुपूर्वी (पच्छानुपूर्वी) पश्चानुपूर्वी
(अणानुपूर्वी) और अनानुपूर्वी । (से किं तं पुव्वानुपूर्वी?) हे भदन्त !
पूर्व प्रकान्त पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ? (पुव्वानुपूर्वी)

उत्तर—पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से हैं—(परमाणुपुग्गळे दुप्पएसिए तिप्प-
एसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंत-
पएसिए) परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् दशप्रदेशी, संख्या-
तप्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी, अनन्तप्रदेशी स्कंध—इस क्रमसे यह पुद्गला-

इसे सूत्रकार एक पुद्गलास्तिकाय ऊपर आ त्रिणेनी घटना (स्थापना) करे छे—

“अहवा ओवणिहिया” इत्यादि—

शब्दार्थ—(अहवा) अथवा (ओवणिहिया द्वानुपूर्वी) औपनिधिकी
द्रव्यानुपूर्वी (त्रिविधा पणत्ता) त्रिणु प्रकारनी कही छे । (तंजहा) ते त्रिणु प्रकारे-
नीये प्रभाण्णे छे—(पुव्वानुपूर्वी, पच्छानुपूर्वी अणानुपूर्वी) (१) पूर्वानुपूर्वी (२)
पश्चानुपूर्वी (३) अनानुपूर्वी ।

प्रश्न—(से किं तं पुव्वानुपूर्वी?) हे भगवन् ! पूर्वानुपूर्वीनुं स्वइप केवुं छे?

उत्तर—(पुव्वानुपूर्वी) पूर्वानुपूर्वीनुं स्वइप आ प्रकारनुं पण्णु कहुं छे—
(परमाणुपुग्गळे, दुप्पएसिए तिप्पएसिए जाव दसपएसिए, संखिज्जपएसिए, असंखि-
ज्जपएसिए, अणंतपएसिए) परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशीस्कंध, त्रिप्रदेशीस्कंध,
दश प्रदेशी पयन्तना स्कंध, संख्यात प्रदेशीस्कंध, असंख्यात प्रदेशी स्कंध
अने अनन्त प्रदेशी स्कंध आ कम्मपूर्वकनी पुद्गलास्तिकाय संबन्धी ने आनु-
पूर्वी छे, (से तं पुव्वानुपूर्वी) तेने पूर्वानुपूर्वी कहे छे ।

पूर्वी-अनन्तप्रदेशिकः असंख्येयप्रदेशिकः संख्येयप्रदेशिको यावत् दशप्रदेशिको यावत् त्रिप्रदेशिको द्विप्रदेशिकः परमाणुपुद्गलः । सैषा पश्चानुपूर्वी । अथ का सा अनानुपूर्वी ? अनानुपूर्वी एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायामनन्तगच्छगतायां श्रेण्याम् अन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः । सैषाऽनानुपूर्वी । सैषा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी । सैषा ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वी । सैषा नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी । सैषा द्रव्यानुपूर्वी ॥ सू० ९९ ॥

टीका—‘अहवा’ इत्यादि—

अथवा=पुनः पुद्गलास्तिकायमाश्रित्य औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्व्यनानुपूर्वीभेदैस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता । तत्र-परमाणुपुद्गलो द्विप्रदेशिक इत्यादिक्रमेण—‘अनन्तप्रदेशिकः’ इति पर्यन्तं पूर्वानुपूर्वी । तथा-व्युक्रमेण ‘अनन्तप्रदेशिकः’ इत्यारभ्य ‘परमाणुपुद्गलः’ इति पर्यन्तं पश्चानुपूर्वी । अनानु-

स्तिकाय संबंधी (से तं पुच्छाणुपुष्वी) पूर्वानुपूर्वी है । (से किं तं पच्छाणुपुष्वी) हे भदन्त ! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(पच्छाणुपुष्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार से है—(अणंतपएसिए असंखिज्जपएसिए, संखिज्जपएसिए जाव दसपएसिए जाव तिप्पएसिए दुप्पएसिए परमाणुपोग्गळे) जब पुद्गलास्तिकाय अनंत प्रदेशिक, असंख्यात प्रदेशिक, संख्यात प्रदेशिक, यावत् दशप्रदेशिक यावत् त्रिप्रदेशिक द्विप्रदेशिक और परमाणुपुद्गल इस व्युत्क्रम से परिगणित हो तब (से तं पच्छाणुपुष्वी) वह पश्चानुपूर्वी है । (से किं तं अणाणुपुष्वी) हे भदन्त ! अनानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर—(अणाणुपुष्वी) अनानुपूर्वी इस प्रकार से हैं—(एयाएचेव एगाहयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेटीए-अणमण्णव्भासो दुरु-

प्रश्न—(से किं तं पच्छाणुपुष्वी?) हे भगवन् ! पश्चानुपूर्वीं नुं स्वरूपं केवुं छे ?

उत्तर—(पच्छाणुपुष्वी) पश्चानुपूर्वीं नुं आ प्रकारनुं स्वरूपं छे—(अणंतपएसिए, असंखिज्जपएसिए, संखिज्जपएसिए जाव दसपएसिए जाव तिप्पएसिए, दुप्पएसिए, परमाणुपोग्गळे) न्यारे पुद्गलास्तिकायने अनंत प्रदेशिक, असंख्यात प्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, दसप्रदेशिक, नवप्रदेशिक आदि तेषु प्रदेशिक पर्यन्तना स्कन्धेषु अने द्विप्रदेशिक स्कंध अने परमाणु पुद्गल, आ प्रकारे उदटा क्कमथी परिगणित थाय छे, त्त्यारे (से तं पच्छाणुपुष्वी तेने पश्चानुपूर्वीं कडेवाय छे.

प्रश्न—(से किं तं अणाणुपुष्वी?) हे भगवन् ! अनानुपूर्वीं नुं स्वरूपं केवुं होय छे ?

उत्तर—(अणाणुपुष्वी) अनानुपूर्वीं नुं स्वरूपं आ प्रकारनुं छे—(एयाए चेव

પૂર્વી તુ એકાદિકાયમેકોત્તરિકાયામ્ અનન્તગચ્છગતાયામ્-એકોત્તરવૃદ્ધિમત્સ્કં-
ન્ધાનામનન્તત્વાત્ સ્કન્ધા અનન્તાસ્તેષાં ગચ્છઃ સમુદાયસ્તં ગતા=પ્રાપ્તા તસ્યાં
તથાભૂતાયામ્ એતસ્યાં=પરમાણુપુદ્ગલાદારભ્ય અનન્તપ્રદેશપર્યન્તાયામેવ શ્રેણ્યાં=
પંક્તૌ, સા અન્યોઽન્યાભ્યાસઃ=પરસ્પરગુણનરૂપા દ્વિરૂપોનઃ=આદ્યન્તસ્થમજ્જદ્વય-
રહિતા ચ વોધ્યા ।

નુ યથૈકઃ પુદ્ગલાસ્તિકાયઃ પૂર્વાનુપૂર્વ્યાદિત્વૈનોદાહૃતઃ, તથૈવાન્યેઽપિ કથં
નોદાહૃતાઃ ? इति चेत्, उच्यते-इह पूर्वानुपूर्व्यादिविचारे परमाणादिद्रव्याणां

વૃણો) जिसमें पुर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी ये दोनों नहीं हैं उसका
नाम अनानुपूर्वी है यह बात पहिले कह दी गई है । इसमें विवक्षित
पदों के अनन्तरोक्त क्रमद्वय को उलंघन करके परस्पर संभवित भंगों
से उन पदों की विरचना की जाती है । उसमें सबसे पहिले एकप्रदेशी
परमाणुपुद्गल की स्थापना की जाती है । फिर बादमें द्विप्रदेशी स्कंध
आदि की । इस प्रकार एक एक २ प्रदेश की वृद्धि करते २ जब अनंत
प्रदेशी स्कंधतक स्थापना हो चुकती है-तब इन सबकी श्रेणी बन जाती
है । इस श्रेणी-पंक्ति में एकोत्तर वृद्धिवाले स्कंध अनंत हो जाते हैं । फिर
इनमें परस्पर में गुणा किया जाता है । जो महाराशिरूप संख्या आती
है उसमें आदि और अन्त के दो भंग करनेपर अनानुपूर्वी बन जाती है ।

शंका-जैसे एक पुद्गलास्तिकाय पूर्वानुपूर्वी आदि रूपसे उदाहृत

एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेदीए अणमण्णञ्जासो दुरूवूणो) જેમાં
પૂર્વાનુપૂર્વી અને પશ્ચાનુપૂર્વી, એ બન્ને નથી, તેનું નામ અનાનુપૂર્વી છે, એ વાત
પહેલાં પ્રકટ કરવામાં આવી ચુકી છે તેમાં વિવક્ષિત પદોના (પરમાણુ પુદ્ગલ
આદિના) ઉપચુકત બન્ને ક્રમનો પરિત્યાગ કરીને પરસ્પર સંભવિત ભંગો
વડે તે પદોની વિરચના કરવામાં આવે છે. તેમાં સૌથી પહેલાં એક પ્રદેશી
પરમાણુ પુદ્ગલની સ્થાપના કરવામાં આવે છે અને ત્યારબાદ દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ
આદિની સ્થાપના કરાય છે. આ રીતે એક એક પ્રદેશની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં
ન્યારે અનંત પ્રદેશી સ્કંધ સુધીની સ્થાપના થઈ જાય છે, ત્યારે તે બધાની એક
શ્રેણી બની જાય છે. આ શ્રેણી-પંક્તિમાં ઉત્તરોત્તર એકની વૃદ્ધિવાળા સ્કંધ
અનેક થઈ જાય છે. ત્યાર બાદ પરસ્પરનો ગુણાકાર કરવામાં આવે છે. આ
આ રીતે જે મહારાશિ રૂપ સંખ્યા આવે છે તેમાંથી પહેલો અને છેલ્લો, એ
જે ભંગ કરી કરવાથી અનાનુપૂર્વી બની જાય છે.

પ્રશ્ન-જે રીતે એક પુદ્ગલાસ્તિકાયને ઉદાહરણ રૂપે લઈને તેની પૂર્વા-

परिपाटयादिलक्षणः क्रमः प्रक्रान्तः । स च द्रव्यबाहुल्ये सत्येव संभवति । न चास्ति धर्मास्तिकाये, अधर्मास्तिकाये, आकाशास्तिकाये च पुद्गलास्तिकायवद् द्रव्यबाहुल्यम्, एकैकद्रव्यत्वात्तेषाम् । जीवास्तिकाये तदनन्तजीवद्रव्याणां सत्त्वाद गद्यप्यस्ति द्रव्यबाहुल्यम्, तथापि परमाणुद्विप्रदेशिकादिषु यथा पूर्वानुपूर्वीत्वादिहेतुः पूर्वपश्चाद्भावो विद्यते, न तथा जीवद्रव्येषु, प्रत्येकजीवस्यासंख्येयप्रदेशवत्त्वेन सर्वजीवानां तुल्यप्रदेशत्वात् । परमाणुद्विप्रदेशिकादिद्रव्याणां तु विषमप्रदेशिकत्वात् पूर्वपश्चाद्भावो विद्यते । तथा—अद्वासमयस्यापि एकसमयरूपत्वादेव

हुआ है—उदाहरण से उपस्थित किया गया—है वैसे ही अन्य धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य क्यों नहीं उदाहृत किये गये हैं ।

उत्तर—यहां पूर्वानुपूर्वी आदि के विचार में परमाणु आदि द्रव्योंका परिपाटीरूपक्रम प्रक्रान्त कथन में चल रहा—है, सो वह क्रम द्रव्यकी बहुलता में संभवित होता है—बन सकता है धर्मास्तिकाय में, अधर्मास्तिकाय में और आकाशास्तिकाय में पुद्गलास्तिकाय की तरह यह द्रव्यबाहुल्य नहीं है क्योंकि सब एकएक द्रव्यरूप माने गये हैं । यह यद्यपि जीवास्तिकाय में अनंत जीवद्रव्यों की सत्ता होने के कारण द्रव्यबाहुल्य है, परन्तु फिर भी परमाणुओं में एवं द्विप्रदेशी स्कंध आदिकों में जैसा पूर्वानुपूर्वी आदि कारणभूत पूर्व पश्चाद्भाव विद्यमान है वैसे जीवद्रव्यों में नहीं है । क्योंकि प्रत्येक जीव असंख्यात प्रदेशवाला है । इसलिये समस्त जीवों में तुल्य प्रदेशता है परमाणुओं एवं द्विप्रदेशिक

नुपूर्वी आदिनु निरूपण करवाना आव्युं छे, अने प्रमाणे धर्मास्तिकाय आदि अन्य द्रव्येने उदाहरणरूपे केम लेवाना आव्यां नथी ?

उत्तर—अधी पूर्वानुपूर्वी आदिने विचार करतां परमाणु आदि द्रव्येने परिपाटी रूप क्रम (अनुक्रम) प्रस्तुत कथनमां प्रतिपादित थर्छ रह्यो छे. तेथी आ कथन द्रव्यनी बहुतामां न संलवी शके छे धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय अने आकाशास्तिकायमां पुद्गलास्तिकायनी नेम आ द्रव्यबाहुल्येने सहलाव नथी. कारणे के तेमने तो अके अके द्रव्यरूप मानवाना आवेव छे जे के अवास्तिकायमां अनंत अवद्रव्येनी सत्ता (अस्तित्व) होवाने कारणे द्रव्यबाहुल्य छे, परन्तु परमाणुओमां अने द्विप्रदेशी स्कंध आदिकेमां नेयो पूर्वानुपूर्वी आदिने कारणभूत पूर्वपश्चात् भाव विद्यमान छे, अवेओ अव द्रव्येमां नथी, कारणे के प्रत्येक अव असंख्यात प्रदेशवाणे छे तेथी समस्त अवोमां तुल्य (समान) प्रदेशता छे. परमाणुओ अने द्विप्रदेशिक आदि द्रव्येमां तो विषम

પૂર્વાનુપૂર્વીત્વાદ્યસંભવઃ, અતોऽत्र पुद्गलास्तिकाय एव पूर्वानुपूर्वीत्वादिकोदाहृतः, नत्वन्ये धर्मास्तिकायादय इति ।

तदेतदुपसंहरन्नाह—‘ से तं ’ इत्यादि । सैषा अनानुपूर्वीति । औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी सम्पूर्णति सूचयितुमाह—‘ से तं ओवणिहिया ’ इत्यादि । सैषा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीति । ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वीसंपूर्णति सूचयितुमाह—‘ से तं जाणयसरीरभवियसरीर वहरित्ता ’ इत्यादि—सैषा ज्ञायक-

આદિ દ્રવ્યોં મેં તો વિષમપ્રદેશિકતા હૈં હસલિયે વહાં પૂર્વપશ્ચાદ્ભાવ હૈં । તથા જો અદ્વાસમય હૈં વહ એકસમયરૂપ હૈં હસલિયે ડસમેં ઢી પૂર્વાનુ પૂર્વી આદિ સંભવિત નહીં હૈં હસલિયે પુગદ્લાસ્તિકાય હી પૂર્વાનુપૂર્વી આદિરૂપ સે ઉદાહૃત ક્રિયે ગયે હૈં અન્ય ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્ય નહીં । (સે તં અણાણુપુઁવી) હસ પ્રકાર યહ અનાનુપૂર્વી હૈં । (સે તં ઓવણિ-હિયા દ્વાણુપુઁવી) યહાંતક પૂર્વ પ્રક્રાન્ત ઓપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી કા કથન કિયા ગયા હૈં । (સે તં જાણયસરીરભવિયસરીરવહરિત્તા દ્વાણુપુઁવી) હસ પ્રકાર ઓપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી કા કથન સમાપ્ત હોતે હી જ્ઞાયક શરીર ભવ્ય શરીરવ્યતિરિક્ત દ્રવ્યાનુપૂર્વી સમાપ્ત હો જાતી હૈં । (સે તં નો આગમઓ દ્વાણુપુઁવી-સે તં દ્વાણુપુઁવી) હસ કથન કી સમાપ્તિ હોતે હી નોઆગમ કો આશ્રિત કરકે જાયમાન દ્રવ્યાનુપૂર્વીકા સ્વરૂપ સમાપ્ત હો જાતા હૈં । હસપ્રકાર યહ દ્રવ્યાનુપૂર્વી હૈં ।

પ્રદેશિકતા છે, તેથી ત્યાં પૂર્વપશ્ચાદ્ભાવ છે. તથા જે અદ્વા સમય સંભવિત નથી તેથી પુદ્ગલાસ્તિકાયનું જે પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ રૂપે ઉદાહરણ આપવામાં આવ્યું છે, અન્ય ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોનું તે પ્રકારે ઉદાહરણ આપવામાં આવ્યું નથી (સે તં અણાણુપુઁવી) આ પ્રકારનું અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે. (સે તં ઓવણિહિયા દ્વાણુપુઁવી) અહીં સુધીમાં પૂર્વપ્રસ્તુત ઓપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. (સે તં જાણયસરીરભવિયસરીર-વહરિત્તા દ્વાણુપુઁવી) આ રીતે ઓપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું કથન પૂરું થતાં જે, જ્ઞાયક શરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું વર્ણન પણ અહીં સમાપ્ત થાય છે.

(સે તં નોઆગમઓ દ્વાણુપુઁવી-સે તં દ્વાણુપુઁવી) આ કથનની સમાપ્તિ થઈ જવાથી નોઆગમને આધારે જે દ્રવ્યાનુપૂર્વી અને છે તેના સ્વરૂપના નિરૂપણની પણ સમાપ્તિ થઈ જાય છે. આ પ્રકારનું આ દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

शरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वीति । नोभागमतो द्रव्यानुपूर्वी सम्पूर्णेति सूचयितुमाह—‘ से तं नो आगमभो ’ इत्यादि—सैषा नो आगमतो द्रव्यानुपूर्वीति । द्रव्यानुपूर्वी सम्पूर्णेति सूचयितुमाह—‘ से तं ’ इत्यादि—सैषा द्रव्यानुपूर्वीति ॥ सू. ९९ ॥

भावार्थ—इस सूत्रद्वारा सूत्रकारने पुद्गल द्रव्य को लक्ष्य करके औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की त्रिविधता उसपर घटित की है । यह तो पहिले से ही ज्ञात हो चुका है कि विवक्षित द्रव्य विशेष के समुदाय में जो प्रथम द्रव्य है उससे लेकर क्रमशः अन्तिम द्रव्यतक जो परिपाटी स्थापित की जाती है वह आनुपूर्वी है । यहां पुद्गलद्रव्य के ऊपर सूत्रकार को यह घटित करनी है, अतः वे उसके एकप्रदेश से लेकर क्रमशः अनन्त प्रदेशी स्कंध तक बनाते हैं । इस प्रकार एकप्रदेशी पुद्गलपरमाणु यह पुद्गलास्तिकाय द्रव्य का प्रथम द्रव्य जानना चाहिये । इसके बाद एक प्रदेशोत्तर वृद्धि करते चला जाना चाहिये । इससे द्विप्रदेशी स्कंध त्रिप्रदेशी स्कंध, चतुष्प्रदेशी स्कंध पंच प्रदेशी स्कंध, आदि अनन्त प्रदेशी स्कंध तक अनन्त पौद्गलिक स्कंध बन जाते हैं । तब इनकी स्थापना इस प्रकार से की जाती है—एक प्रदेशी परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी स्कंध द्व्यणुक, त्रिप्रदेशी त्र्यणुक चतुष्प्रदेशी स्कंध चतुरणुक इत्यादि । इस प्रकार की यथाक्रम की गई यह स्थापना पूर्वानुपूर्वी है । तथा इसी स्थापना

भावार्थ—आ सूत्रमां सूत्रकारे पुद्गल द्रव्येने अनुवक्षीने औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीनी त्रिविधतानुं प्रतिपादन कथुं छे ओ वात तो पडेलां प्रकट थर्ध युकी छे के विवक्षित द्रव्यसमुदायमां ने पडेलां द्रव्य डोय ते द्रव्यथी शङ् करीने अनुकमे छेवला द्रव्य सुधीनी ने परिपाटी (अनुकम) स्थापित करवामां आवे छे, तेनुं नाम आनुपूर्वी छे. अकीं पुद्गल द्रव्य साथे सूत्रकार ते आनुपूर्वीने घटाववा भागे छे तेथी तेमणे तेना ओक प्रदेशथी लघनि अनन्तप्रदेश सुधीना अनन्त स्कंध जनाव्यां छे. आ रीते ओक प्रदेशी पुद्गल परमाणुने पुद्गलास्तिकायनुं प्रथम द्रव्य समजवुं नेधये त्यार पाठ ओक ओक प्रदेशनी वृद्धि करतां करतां आगण वधवुं नेधये. आ रीते द्विप्रदेशी स्कंध, त्रिप्रदेशी स्कंध, चार प्रदेशी स्कंध, पांच प्रदेशी स्कंध आदि अनन्त प्रदेशी पर्यन्तना अनन्त पौद्गलिक स्कंध जनी जय छे. त्यारे तेमनी स्थापना आ प्रमाणे करवामां आवे छे—ओक प्रदेशीपरमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी स्कंध द्व्यणुक, त्रिप्रदेशी स्कंध त्रिअणुक, चतुष्प्रदेशी स्कंध चतुरणुक, इत्यादि.

आ प्रकारना सीधा कमपूर्वक ने स्थापना करवामां आवे छे तेनुं नाम पूर्वानुपूर्वी छे. ओज स्थापनामां छेवला द्रव्येने (अनन्तप्रदेशी स्कंधने) पडेला

में जब अन्तिमादि द्रव्य को प्राथमिक रूप देकर व्युत्क्रम से स्थापित किया जाता है तो वही पश्चानुपूर्वी कहलाती है तथा स्वेच्छानुसार क्रम-व्युत्क्रम का उल्लंघन करके पुद्गलास्तिकाय के द्रव्यों का जो स्थापना करना होता है वह अनानुपूर्वी है। जैसे इसे यों समझना चाहिये कि चतुरणुक के बाद एकप्रदेशीपुद्गल परमाणु का, इसके बाद षट्प्रदेशी पुद्गलस्कंध का इसके बाद असंख्यात प्रदेशी स्कंध आदि का स्थापन करना आदि। ज्ञायकशरीरभोग्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी पहिले दो प्रकार की सूत्रकार ने कही है इसमें अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के विषय में सूत्रकार ने बहुत अधिक विस्तृत विवेचन किया है। औपनिधि की द्रव्यानुपूर्वी पूर्वानुपूर्वी आदि के भेद से यह तीन प्रकार की कही गई है। एक पुद्गलास्तिकाय के ऊपर जो पूर्वानुपूर्वी आदि की घटना सूत्रकार ने कही है उसका कारण यह है कि उनमें ही द्रव्यबहुलता है। "आकाशादेकद्रव्याणि" अर्थात्-आकाश पर्यन्तके तीन द्रव्य-अर्थात् धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय ये तीनों द्रव्य एक द्रव्य वाले होते हैं, तदनुसार धर्मास्तिकाय आदि तीन

भूमीने उल्टा कमथी न्यारे द्रव्योने स्थापित करवामां आवे छे, त्यारे तेने पश्चानुपूर्वी कडे छे तथा उपरना भन्ने कमतुं उल्लंघन करीने पोतानी छिच्छानुसार पुद्गलास्तिकायना द्रव्योनी जे स्थापना करवामां आवे छे तेने अनानुपूर्वी कडे छे. जेम के चतुरणुक स्कंधनी पडेलां स्थापना करवी, त्यार भाद ओक प्रदेशी पुद्गल परमाणुनी, त्यार भाद छ प्रदेशी पुद्गल स्कंधनी स्थापना करवी, त्यार भाद असंख्यात प्रदेशी स्कंध आदिनी स्थापना करवी तेनुं नाम अनानुपूर्वी छे. ज्ञायक शरीर अने लभ्यशरीरथी सिद्ध ओवी द्रव्यानुपूर्वीना सूत्रकारे जे प्रकार पडेलां प्रकट कर्या छे. तेमांता अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी नामना भील प्रकारनुं तो भूषण विस्तारपूर्वक पडेलां वर्णन करवामां आव्युं छे.

औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीना पूर्वानुपूर्वी आदि त्रयुं लेहोनुं निरूपणुं पणुं पडेलां सूत्रोमां करवामां आव्युं छे. त्यार भाद सूत्रकारे ओक पुद्गलास्तिकायना पूर्वानुपूर्वी आदि स्वइपोनुं निरूपणुं कर्युं छे, पणुं धर्मास्तिकाय आदि द्रव्योमां जे प्रमाणे करवामां आव्युं नथी, कारणुं के पुद्गलास्तिकायमां न द्रव्यभाहुल्येना सद्भाव-धर्मास्तिकाय आदिमां द्रव्यभाहुल्ये नथी. "आकाशादेकद्रव्याणि" आ कथन अनुसार धर्मास्तिकाय आदि त्रयुं द्रव्योमां

इत्थं द्रव्यानुपूर्वीमुक्त्वा सम्प्रति क्षेत्रानुपूर्वीमाह—

मूलम्—से किं तं खेत्ताणुपुञ्जी ? खेत्ताणुपुञ्जी द्विविहा पण-
त्ता, तं जहा—ओवणिहिया य अणोवणिहिया य । तत्थ णं जा सा
ओवणिहिया सा ठप्पा । तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सां दुविहा
पणत्ता, तं जहा—णोगमववहाराणं १, संगहस्स २ य ॥सू० १००॥

छाया—अथ का सा क्षेत्रानुपूर्वी ? क्षेत्रानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
औपनिधिकी च अनौपनिधिकी च । तत्र खलु या सा औपनिधिकी सा स्थाप्या ।

द्रव्यों में द्रव्य बहुलता नहीं है । जीवास्तिकाय में यद्यपि द्रव्य बाहुल्य है—
परन्तु पुद्गल की तरह वह द्रव्य बाहुल्य एक २ जीव द्रव्य में क्रमशः नहीं
है, क्योंकि प्रत्येक जीवद्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं । इस प्रकार इस कथन
के समाप्त होते ही नो आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप
कथन समाप्त हो जाता है ॥ सू० ९९ ॥

अथ सूत्रकार क्षेत्रानुपूर्वी का कथन करते हैं—

“से किं तं खेत्ताणुपुञ्जी” इत्यादि ।

शब्दार्थ— (से किं तं खेत्ताणुपुञ्जी) हे भदन्त ! क्षेत्रानुपूर्वी का
क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(खेत्ताणुपुञ्जी द्विविहा पणत्ता) क्षेत्रानुपूर्वी दो प्रकार की कही
गई है । (तं जहा) जैसे (ओवणिहिया य अणोवणिहिया य) ? औपनिधिकी

द्रव्यबाहुल्येना अभाव छे. उवास्तिकायमां ने के द्रव्यबाहुल्य छे अरु,
परन्तु पुद्गलनी नेम ते द्रव्यबाहुल्य अेक अेक अवद्रव्यमां क्रमशः नथी,
कारणु के अवद्रव्य असंख्यात प्रदेशी छे. आ रीते आ कथन
समाप्त यध्विता नोआगमनी अपेक्षाअे द्रव्यानुपूर्वीना स्वरूपनु कथन
समाप्त यध्व नय छे. ॥सू०९९॥

इवे सूत्रकार क्षेत्रानुपूर्वीनु निरूपणु करे छे—

“ से किं तं खेत्ताणुपुञ्जी ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं खेत्ताणुपुञ्जी ?) हे भगवन् ! क्षेत्रानुपूर्वीनु
स्वरूपु केनु छे ?

उत्तर—(खेत्ताणुपुञ्जी द्विविहा पणत्ता) क्षेत्रानुपूर्वी अे प्रकारनी कही छे—
(तं जहा) ते अे प्रकारे नीअे प्रमाणु छे—(ओवणिहिया य अणोवणिहिया) (१)

तत्र खलु या सा अनौपनिधिकी सा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-नैगमव्यवहारयोः १, संग्रहस्य २ च ॥सू० १००॥

टीका—' से किं तं ' इत्यादि-

व्याख्या पूर्ववद् बोध्या ॥सू० १००॥

क्षेत्रानुपूर्वी, दूसरी अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी। (तत्थ णं जा सा ओवणिहियासा ठप्पा) इनमें जो औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है वह अल्प विषय-वाली होने के कारण अर्थात् उसका विषय विशेष विवेचना करने के योग्य न होने से-इस समय व्याख्या नहीं की जाती है। तात्पर्य कहने का यह है कि प्रथम नंबर की होने के कारण सूत्रकार को सबसे पहिले औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का विवेचन करना कर्तव्य है। परन्तु ऐसा न करके वे पहिले अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का जो विवेचन करेंगे उसका कारण यह है कि औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी को विषय विशेष वक्तव्य के योग्य नहीं है। क्यों कि उसका विषय अल्प है। इसलिये (तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा इविहा पणत्ता) इनदोनों आनुपूर्वियों में जो अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है उसका विस्तृत विवेचन करने के अभिप्राय से सूत्रकार कहते हैं कि वह दो प्रकार की कही गई है। (तं जहा) वे उसके प्रकार ये हैं-(नैगमव्यवहारणं १ संग्रहस्य २) एक

औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी, अने (२) अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी (तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा) तेषां च औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी छे ते अल्प विषयवाणी डोवाने कारणे अट्ठे के तेना विषय, विशेष विवेचन करवा योग्य नही डोवाने कारणे, तेनुं निरूपण सूत्रकार आ सूत्रमां करशे नही पण पाछणना सूत्रमां करशे जे के कम अनुसार तो ते पडेली डोवाथी तेनुं निरूपण पडेलां थपुं जेथजे परन्तु सूत्रकारे अही अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीनुं निरूपण पडेलां थपुं छे कारणे के औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीना विषय अल्प डोवाथी तेनुं विशेष वक्तव्य करवानुं नही, परन्तु अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीना विषय विस्तृत विवेचन करवा योग्य छे, तेथी सूत्रकार अही पडेलां अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीनुं निरूपण कडे छे के-(तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा इविहा पणत्ता) ते जन्ने आनुपूर्वीओमांणी जे अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी छे तेना जे प्रकार कथा छे, (तंजहा) ते प्रकार नीचे प्रभाषे छे-(नैगमव्यवहारणं, संग्रहस्य) (१) नैगमव्यवहार नयसंभत अनौपनिधिकी क्षेत्रा-

તત્ર નૈગમવ્યવહારસમ્મતાં ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનિરૂપયિતુમાહ-

મૂલમ્-સે કિં તં ણૈગમવવહારાણં અણોવણિહિયા खेत्ताणु-
પુર્વી? ણૈગમવવહારાણં અણોવણિહિયા खेत्ताणुપુર્વી પંચવિહા
પણ્ણત્તા, તંજહા-અત્થપય રૂવણયા ૧, ભંગસમુક્કિત્તણયા ૨, ભંગો-
વદંસણયા ૩, સમોયારે ૪, અણુગમે ॥સૂ. ૧૦૧॥

છાયા—અથ કા સા નૈગમવ્યવહારયોઃ અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી? નૈગમ-
વ્યવહારયોઃ અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી પંચવિધા પ્રજ્ઞપ્તા, તદ્વથા-અર્થપદપરૂપ-
ણતા ૧, ભંગસમુક્તીર્તનતા ૨, ભંગોપદર્શનતા ૩, સમયતારઃ ૪, અનુગમઃ ૫ ॥સૂ. ૧૦૧॥

ટીકા—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ-

અથ કા સા નૈગમવ્યવહારસમ્મતા અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી? ઇતિ શિષ્ય
પ્રશ્નઃ । ઉત્તરમાહ-‘નૈગમવવહારાણં અણોવણિહિયા’ ઇત્યાદિ । નૈગમવ્યવહારયોઃ

નૈગમવ્યવહારનયસંમત અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી ઓર દૂસરી
સંગ્રહનયસંમત અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી । ઇસ સૂત્ર કી વ્યાખ્યા
પહિલે કી તરહ જાનની ષાહિયે ॥ સૂ. ૧૦૦ ॥

અથ નૈગમવ્યવહારનયસંમત ક્ષેત્રાનુપૂર્વી કા કથન સૂત્રકાર કરતે હૈ-
‘સે કિં તં ણૈગમવવહારાણં’ ઇત્યાદિ ।

શબ્દાર્થ-હે અહન્ત ! નૈગમ ઓર વ્યવહારનય સંમત અનોપનિધિ
કી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી કા કયા સ્વરૂપ હૈ ?

ઉત્તર-(અણોવણિહિયા खेत्ताणुपुर्वी) અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુ-
પૂર્વીકા સ્વરૂપ ઇસ પ્રકાર સે હૈ-(પંચવિહા પણ્ણત્તા) યહ નૈગમવ્યવ-
હારનયસંમત અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી પાંચ પ્રકાર કી કહી ગઈ હૈ ।
(તં જહા) વે પ્રકાર વે હૈ-(અત્થપયપરૂવણયા ૧ ભંગસમુક્કિત્તણયા

નુપૂર્વી (૨) સંગ્રહનયસંમત અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી આ સૂત્રની વ્યાખ્યા
આગળ કહ્યા પ્રમાણે સમજવી. ॥સૂ. ૧૦૦॥

હવે સૂત્રકાર નૈગમવ્યવહારસંમત ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરે છે-

‘સે કિં તં ણૈગમવવહારાણં’ ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ-પ્રશ્ન-હે ભગવન્ ! નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અનોપનિ-
ધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(અણોવણિહિયા खेत्ताणुपुर्वी) અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ
આ પ્રકારનું છે-(પંચવિહા પણ્ણત્તા) આ નૈગમ અને વ્યવહારનયસંમત
અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી પાંચ પ્રકારની કહી છે. (તંજહા) તે પ્રકારો નીચે
પ્રમાણે છે-(અત્થપયપરૂવણયા, ભંગસમુક્કિત્તણયા, ભંગોવદંસણયા, સમોયારે, અણુ-

अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी=क्षेत्रविषया आनुपूर्वी पञ्चविधा मङ्गला, तद्यथा-अर्थ-
पदप्ररूपणता १, भङ्गसमुत्कीर्तनता २, भङ्गोपदर्शनता ३, समवतारः ४, अनु-
गम ५, इति ॥सू० १०१॥

मूलम्—से किं तं णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया ? णैगम-
ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी जाव
दसपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी
असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी । एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी ।
दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव
दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव असंखिज्जपएसोगाढा आणु-
पुव्वीओ । एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ । दुप्पएसोढा अवत्त-
व्वयाइं । से तं णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया ॥सू० १०२॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहाराणाम् अर्थपदप्ररूपणता ? नैगमव्यवहा-
राणाम् अर्थपदप्ररूपणता—त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी यावद् दशप्रदेशावगाढ आनु-
२, भङ्गोपदर्शनता ३, समोयारे ४, अनुगमे) अर्थपदप्ररूपणता भङ्गस-
समुत्कीर्तनता, भङ्गोपदर्शनता, समावतार और अनुगम इन सब शब्दों
की व्याख्या पीछे ७४ वे सूत्रमें की जा चुकी है ॥ सू० १०१ ॥

अथ सूत्रकार नैगमव्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का
जो प्रथम भेद अर्थपदप्ररूपणता है उसका कथन करते हैं—

“से किं तं णैगमववहाराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—‘से किं तं णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया?’ हे भदन्त !
नैगमव्यवहारनय संमत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है ?

गमे) (१) अर्थपद प्ररूपणता, (२) भङ्गसमुत्कीर्तनता, (३) भङ्गोपदर्शनता,
(४) समवतार, अने (५) अनुगम आ पांचे शब्दोंनी व्याख्या आगत ७४भां
सूत्रमां आपवामां आवी छे तो त्यांथी वांथी देवी ॥सू० १०१॥

इवे सूत्रकार नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीना
अर्थपदप्ररूपणता नामना पड़ेला लेहनुं निरूपण करे छे—

“से किं तं णैगमववहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया ?) हे भगवन् !
नैगम अने व्यवहार नयसंमत अर्थपदप्ररूपणतानुं स्वरूप केवुं छे ?

पूर्वी यावत्संख्येयप्रदेशावगाढः—आनुपूर्वी असंख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी । एक-
प्रदेशावगाढः अनानुपूर्वी । द्विप्रदेशावगाढः अवक्तव्यकम् । त्रिप्रदेशावगाढा आनु-
पूर्व्यो यावद् दशप्रदेशावगाढा आनुपूर्व्यो यावद् असंख्येयप्रदेशावगाढा आनुपूर्व्यः ।

(जोगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया)

उत्तर-नैगमव्यवहारनयसंमत अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप इस प्रकार से है—(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसो-
गाढे आणुपुव्वी) त्र्यणुक स्कंध आदि रूप अर्थ से युक्त अथवा त्र्यणुक स्कंध आदिरूप अर्थ को विषय करनेवाला जो पद है उसका नाम अर्थ-
पद है । इस अर्थकी प्ररूपणता करने का नाम अर्थपदप्ररूपणा है । तीन आकाश प्रदेश में स्थित द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है । यावत् दश आकाश प्रदेशों में स्थित द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है यावत् संख्यात आकाश प्रदेशों में स्थित द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है । असंख्यात आकाश प्रदेशों में स्थित द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है । (एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे-
अवक्तव्वए) एक प्रदेश में स्थित परमाणु द्रव्य अनानुपूर्वी है । दो प्रदेश में स्थित त्र्यणुक स्कंध अवक्तव्यक द्रव्य हैं । (तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वी-
ओ जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव असंखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ) तीन आकाश प्रदेशों में स्थित समस्त द्रव्यस्कंध तीन

उत्तर—(जोगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया) नैगमव्यवहार नयसंमत अर्थ-

पदप्ररूपणानुं स्वरूप आ प्रकारानुं छे—

(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव संखिज्ज-
पएसोगाढे आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) त्रिआणुक स्कंध आदि
रूप अर्थ (विषय) थी युक्त अथवा त्रिआणुक स्कंध आदि रूप अर्थानुं प्रति-
पादन करनाइं जे पद छे तेनुं नाम अर्थपदप्ररूपणता छे. त्रय आकाश
प्रदेशोमां रहैले। द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी रूप छे. जे परमाणु दश पर्यन्तना,
संख्यात पर्यन्तना अने असंख्यात पर्यन्तना आकाशप्रदेशोमां रहैले द्रव्य-
स्कंध पणु आनुपूर्वी रूप छे. (एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे अवक्त-
व्वए) जेक आकाशप्रदेशोमां स्थित परमाणु द्रव्य अनानुपूर्वी रूप छे. जे
आकाशप्रदेशोमां स्थित परमाणु स्कंध अवक्तव्यक द्रव्य रूप छे.

(तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ, जाव असं-
खिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ) त्रय आकाशप्रदेशोमां रहैले समस्त द्रव्य-

एकप्रदेशावगाढा अनानुपूर्व्यः । द्विप्रदेशावगाढा अवक्तव्यकानि । सैषा नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणता ॥सू० १०२॥

टीका-तत्रार्थपदप्ररूपणतां निरूपयितुमाह-‘से किं तं’ इत्यादि-अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मताऽर्थपदप्ररूपणता ? इति । उत्तरमाह-‘नेगमव्यवहारणं’ इत्यादि । नैगमव्यवहारयोरर्थपदप्ररूपणता-‘त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी यावद् दशप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी’ इत्यारभ्य ‘द्विप्रदेशावगाढा अवक्तव्यकानि’ इत्यन्ता बोधया । द्रव्यानुपूर्वीवदत्रापि व्याख्या विज्ञेया । अयमत्र विशेषः-त्रिप्रदेशावगाढः= त्रिषु नभः प्रदेशेषु अवगाढः=स्थितः, त्रिप्रदेशावगाढः-त्रिप्रदेशावगाढी द्रव्यस्कन्धः । स त्र्यणुकादिकोऽनन्ताणुरपर्यन्तो द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी ।

ननु यदि द्रव्यस्कन्ध एवानुपूर्वी, कथं तर्हि तस्य क्षेत्रानुपूर्वीत्वम् ? इति चेत्, उच्यते-क्षेत्रप्रदेशत्रयावगाढपर्यायविशिष्टोऽसौ द्रव्यस्कन्धो गृह्यते, न तु आनुपूर्वी है । यावत् दश प्रदेशों में स्थित समस्त द्रव्यस्कंध दश आनुपूर्वियां हैं । यावत् असंख्यात प्रदेशों में स्थित द्रव्यस्कंध असंख्यात आनुपूर्वियां हैं । (एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ ! दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं) आकाश के एक २ प्रदेश में स्थित एक पुद्गलपरमाणु संघात आदि अनानुपूर्वियां हैं । दो प्रदेश में स्थित त्र्यणुक द्रव्यस्कंध आदि अवक्तव्यक द्रव्य हैं । यह सूत्रपदों का अर्थ है इनकी व्याख्या के लिये देखो ७५ वां सूत्र ।

शंका-त्रिप्रदेशावगाढी द्रव्यस्कंध से लेकर अनन्ताणुक पर्यन्त स्कंध-द्रव्य आदि अनानुपूर्वी रूप है तो उसमें क्षेत्रानुपूर्वी रूपता कैसे बन

स्कंधो त्रणु आनुपूर्वीओ इप डोय छे, ओञ् प्रमाणे दस पर्यन्तना प्रदेशोमां स्थित समस्त द्रव्यस्कंधो दश पर्यन्तनी आनुपूर्वीओ इप डोय छे, संप्र्यात प्रदेशोमां स्थित समस्त द्रव्यस्कंधो संप्र्यात आनुपूर्वीओ इप अने असंप्र्यात आकाशप्रदेशोमां स्थित समस्त द्रव्यस्कंधो असंप्र्यात आनुपूर्वीओ इप डोय छे. (एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं) आकाशना ओक ओक प्रदेशमां स्थित प्रत्येक पुद्गलपरमाणु इप समुदाय अनानुपूर्वीओ इपछे. जे आकाशप्रदेशोमां रहेला द्रव्यलुक द्रव्य स्कंधो अवक्तव्यक द्रव्यो इप छे. आ प्रकारनो सूत्रपढोनो अर्थ थाय छे. तेमनी व्याख्या ७५मां सूत्रमां आपी छे.

शंका-त्रिप्रदेशावगाढी द्रव्यस्कंधी लधने अनन्ताणुक पर्यन्तना द्रव्य-स्कंधो आनुपूर्वी इप डोय तो तेमां क्षेत्रानुपूर्वी इपता केवी रीते संभवी

तदविशिष्टः, अतोऽत्र क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारात् क्षेत्रावगाहपर्यायस्य प्राधान्यात् सोऽपि क्षेत्रानुपूर्वीति न दोषः । अयं भावः-क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारादेवात्र प्रदेशत्रयलक्षणस्य क्षेत्रस्यैव मुख्यं क्षेत्रानुपूर्वीत्वम् । एवं च तदवगाहं द्रव्यमपि तत्पर्यायस्य प्राधान्येन विवक्षितत्वात् क्षेत्रानुपूर्वीत्वेन न विरुध्यते, इति ।

सकती है ? क्योंकि क्षेत्रानुपूर्वी रूपता तो प्रदेश ज्यादिरूप क्षेत्रके साथ संबन्ध रखती है ज्यणुकादि पुद्गल स्कंधों के साथ नहीं । शंकाकार का अभिप्राय यह है क्षेत्रानुपूर्वीका जब यहां प्रकरण चल रहा है तो उसमें पुद्गल द्रव्यानुपूर्वी के विचार करने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर-यहां जो त्रिप्रदेशावगाह द्रव्यस्कंध को अनानुपूर्वी कहा है । सो उसका तात्पर्य आकाश के तीन प्रदेशों में अवगाहरूप पर्याय से विशिष्ट द्रव्यस्कंध से हैं । तीन पुद्गलपरमाणुवाले द्रव्यस्कंध अकाशरूप क्षेत्र के तीन प्रदेशों को रोक कर रहते हैं । अतः आकाशके तीन प्रदेश-में अवगाही द्रव्यस्कंध अनुपूर्वी है, ऐसा जानना चाहिये । वैसे तो क्षेत्रानुपूर्वी का अधिकार चला आ रहा है इसलिये मुख्य रूप से क्षेत्रानुपूर्वी तो तीन प्रदेशरूप क्षेत्र ही है । इस प्रकार मुख्यरूप से क्षेत्रानुपूर्वी रूपता तीन प्रदेशरूप क्षेत्र में विवक्षित होने पर भी जो तदवगाह-तीन प्रदेश रूप क्षेत्रावगाही-द्रव्य को क्षेत्रानुपूर्वी कहा है वह क्षेत्रावगाह रूप पर्याय

शके छे ? क्षेत्रानुपूर्वीरूपता तो प्रदेशत्रयादिरूप क्षेत्रनी साथे संबन्ध राखे छे-त्रिअणुक पुद्गलस्कंधोनी साथे संबन्ध राखती नथी शंकाकर्ताने। अवे। अभिप्राय छे के अही' न्यारे क्षेत्रानुपूर्वीने अधिकार आली रह्यो छे, त्यारे पुद्गल द्रव्यानुपूर्वीने विचार करवानी शी आवश्यकता छे ?

उत्तर-अही' ने त्रणु प्रदेशनी अवगाहनावाणा द्रव्यस्कंधने आनुपूर्वी' रूप कहेवामां आंव्यो छे, तेने अर्थ अही' आ प्रमाणे समजवे। जेधअ-त्रणु प्रदेशोमां अवगाहना रूप पर्यायथी युक्त द्रव्यस्कंधने अही' आनुपूर्वी' रूप कहेल छे-त्रणु पुद्गल परमाणुवाणा द्रव्यस्कंधने नही' ते त्रणु पुद्गल परमाणुवाणा द्रव्यस्कंधे आकाश रूप क्षेत्रना त्रणु प्रदेशोने रोकने रहे छे। तेथी आकाशना त्रणु प्रदेशोमां अवगाही (रहेले।) द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी' रूप छे, अम समजवुं. जे के अत्यारे तो अही' क्षेत्रानुपूर्वीने अधिकार आली रह्यो छे, अने मुष्यत्वे क्षेत्रानुपूर्वी' तो त्रणु प्रदेशरूप क्षेत्र न छे. आ रीते क्षेत्रानुपूर्वी' रूपता मुष्यत्वे त्रणु प्रदेश रूप क्षेत्रमां विवक्षित होवा छतां पणु ने त्रणु प्रदेशरूप क्षेत्रावगाही द्रव्यने क्षेत्रानुपूर्वी' रूप कहेवामां आंव्युं छे, ते

ननु यदि क्षेत्रस्यैव मुख्यं क्षेत्रानुपूर्वीत्वं तर्हि कथं तत् परित्यज्य तदवगाढ द्रव्यस्यानुपूर्वीत्वादिकं चिन्त्यते ? इति चेत्, उच्यते—‘संतपयपरुवणया’ इत्यादि वक्ष्यमाणबहुतरविचारविषयत्वेन द्रव्यस्य शिष्यमतिव्युत्पादनार्थत्वात्, क्षेत्रस्य तु नित्यत्वेन सदावस्थितमानत्वादचलत्वाच्च प्रायस्तत्रानुपूर्व्यादिकल्पनाकरणे शिष्यबुद्धेः सम्यक् प्रवेशाभावात् तत्रानुपूर्वीत्वादिकं न चिन्त्यते, अतोऽत्र क्षेत्रावगाढद्रव्यमेव क्षेत्रानुपूर्वीत्वेनोक्तमिति नास्ति कश्चिद् दोषः । एवं चतुष्प्रदेशाऽवगाढद्रव्यादिष्वपि बोध्यम् । ‘असंख्येयप्रदेशावगाढानुपूर्वी’ इत्यस्य असंख्येय-

को प्रधानता से विवक्षित होनेके कारण से कहा है । अतः द्रव्य में भी उपचार से क्षेत्रानुपूर्वी रूपता विरुद्ध नहीं पड़ती है ।

शंका—जब क्षेत्र में ही मुख्य रूप से क्षेत्रानुपूर्वी रूपता है तो फिर क्या ऐसा कारण है जो इस मुख्य रूपता का परित्याग कर उपचार को शरण करके तदवगाही द्रव्य में क्षेत्रानुपूर्वी का विचार किया जा रहा है ?

उत्तर (संतपयपरुवणया) आदि रूप वक्ष्यमाण बहुतर विचार का विषय द्रव्य होता है और इसी के विचार से शिष्यों की मति व्युत्पन्न बनती है । क्षेत्र तो नित्य है तथा सदा अवस्थित है अचल है इसलिये प्रायः करके उसमें आनुपूर्वी आदि की कल्पना करने में शिष्यजन की बुद्धिका अच्छी तरह प्रवेश नहीं हो सकता है । इसलिये वहां पर आनुपूर्वी आदि का विचार नहीं किया है । अतः यहाँ पर क्षेत्रावगाही द्रव्य

क्षेत्रावगाढ इय पर्याय मुष्यत्वे विवक्षित होवाने कारणे कलुं छे. तेथी द्रव्यमां पणु औपचारिक इये क्षेत्रानुपूर्वी इयता विरुद्ध पडती नथी.

शंका—जे क्षेत्रमां न मुष्यत्वे क्षेत्रानुपूर्वीताने सद्वलाव होय तो शा कारणे आ मुष्यइयताने परित्याग करीने औपचारिकताने आधार लधने तदवगाही (तेमां अवगाहित थयेला-रडेला) द्रव्यमां क्षेत्रानुपूर्वीने विचार करवामां आवी रह्यो छे ?

उत्तर—सत्पदप्रयत्नता आदि इय नीचे दशाविला धणु विचाराने विषय द्रव्य होय छे, अने तेना न विचारथी शिष्योनी मति व्युत्पन्न अने छे. क्षेत्र तो नित्य छे तथा सदा अवस्थित छे, अने अचल छे. तेथी सामान्यतः तेमां आनुपूर्वी आदिनी कल्पना करवाथी अे वात शिष्योना भगवमां सारी रीते उतरी सकती नथी तेथी तेने अनुलक्षिने आदिने विचार करवांमां आव्यो नथी अही तो क्षेत्रावगाही द्रव्यने क्षेत्रानुपूर्वी इये प्रकट करवांमां

प्रदेशेषु अवगाढोऽसंख्येयाणुकोऽनन्ताणुको वा द्रव्यस्कन्धः, इत्यर्थो बोद्धव्यः ।
अत्रेदं बोध्यम्—एकः परमाणुः आकाशस्य एकस्मिन्नेव प्रदेशेष्ववगाहते, द्विप्रदेशिका-
दयोऽसंख्यातप्रदेशिकान्तास्तु स्कन्धाः प्रत्येकं जघन्यत एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे-
ऽवगाहन्ते, उत्कृष्टतस्तु यत्र स्कन्धे यावन्तः परमाणवो भवन्ति स स्कन्धस्ताव-
त्स्वेव नभः प्रदेशेष्ववगाहते । अनन्ताणुकस्कन्धोऽपि जघन्यत एकस्मिन्नभःप्रदेशे-
ऽवगाहते, उत्कृष्टतस्तु—असंख्येयेष्वेव आकाशप्रदेशेष्ववगाहते, नत्वनन्तेषु,
लोकाकाशस्यासंख्येयप्रदेशत्वात्, अलोकाकाशे च द्रव्यस्यावगाहाभावादिति । तथा

ही क्षेत्रानुपूर्वी से कहा है । इसमें कोई दोष नहीं है । इसी प्रकार से
चतुष्प्रदेशावगाढ द्रव्य आदिकों के विषयमें भी ऐसा ही जानना चाहिये ।

“असंख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी” इस पद का अर्थ आकाश के
असंख्यात प्रदेशों में असंख्यात अणुवाला अथवा अनन्त अणुवाला द्रव्य-
स्कन्ध आनुपूर्वी है ऐसा जानना चाहिये । तात्पर्य इसका यह है कि एक
पुद्गलपरमाणु आकाश के एकही प्रदेश में अवगाही होता है । परन्तु दो
प्रदेशवाले पुद्गलस्कन्ध से लेकर असंख्यात प्रदेशवाले जो पुद्गलस्कन्ध
है उनमें प्रत्येक पुद्गल स्कन्ध कमसे कम एक आकाश प्रदेश में रहता
है और अधिक से अधिक जिस स्कन्ध में जितने प्रदेश हैं—जितने परमा-
णुओं का बना हुआ है—वह उतने ही आकाश के प्रदेशों में ठहरता है ।
अनन्त आकाश प्रदेशों में नहीं । क्योंकि द्रव्यों का अवगाह असंख्यात
प्रदेशवाले लोकाकाश में ही है । अनन्त प्रदेश वाले अलोकाकाश में

आवेद छे तेथी ते कथनमां केछि दोष नथी अेज प्रमाणे चार प्रदेशावगाढ-
द्रव्य वजेरेना विषयमां पणु अेम ज समजपुं जेधिये.

“असंख्येय प्रदेशावगाढ आनुपूर्वी” आ पदने अर्थ नीचे प्रमाणे
समजवो—आकाशना असंख्यात प्रदेशोमां असंख्यात अणुवाणो अथवा
अनन्त अणुवाणो द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी छे अेम समजपुं आ कथनने
भावार्थ नीचे प्रमाणे छे—अेक पुद्गलपरमाणु आकाशना अेक ज प्रदेशमां
अवगाही होय छे. परन्तु जे प्रदेशवाणा पुद्गलस्कन्धथी लधने असंख्यात
प्रदेशवाणा जे पुद्गल स्कन्धो छे, तेमाने प्रत्येक पुद्गल स्कन्ध ओछामां
ओछा अेक आकाशप्रदेशमां रडे छे अने वधारेमां वधारे ते स्कन्धना जेटला
प्रदेशो होय—जेटला परमाणुअेनो ते स्कन्ध अनेदो होय—जेटलाज आकाश-
प्रदेशोमां ते रडे छे, अनन्त आकाशप्रदेशोमां ते रडेते नथी, कारणु के
द्रव्येनो अवगाह असंख्यात प्रदेशावाणा लोकाकाशमां ज छे—अनन्त प्रदेश-

एकप्रदेशावगाढः-एकस्मिन्नेव नभःप्रदेशे अवगाढः=स्थितः परमाणुसङ्घातः
स्कन्धसङ्घातश्च क्षेत्रतोऽनानुपूर्वीति । तथा-द्विप्रदेशावगाढः-आकाशस्य प्रदेश-
द्वयेऽवगाढः=स्थितो द्विप्रदेशिकादिस्कन्धः क्षेत्रतोऽवक्तव्यकमिति । प्रकृतमुपसं-
रन्नाह-‘से तं’ इत्यादि । सैषा नैगमव्यवहारयोरर्थप्ररूपणतेति ॥ सू० १०२ ॥

नहीं । तात्पर्य यह है कि आधारभूत क्षेत्र के प्रदेशों कि संख्या आधेय-
पुद्गल द्रव्य के परमाणुओं की संख्या से न्यून या उसके बराबर हो
सकती है, अधिक नहीं । इसलिये एक परमाणु एकही आकाश प्रदेश
स्थित रहता है पर द्रव्यणुक एक प्रदेश में भी ठहर सकता है और दो में
भी इसी प्रकार उत्तरोत्तर संख्या बढ़ते २ द्रव्यणुक चतुरणुक-यावत्
संख्याताणुक स्कंध एक प्रदेश दो प्रदेश तीन प्रदेश यावत् संख्यात प्रदे-
श क्षेत्र में ठहर सकते हैं संख्याताणुक द्रव्य की स्थिति के लिए असं-
ख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती । असंख्याताणुक
स्कंध एक प्रदेश से लेकर अधिक से अधिक अपने बराबर की अधिक
संख्यावाले प्रदेश के क्षेत्र में ठहर सकता है । अनन्ताणुक और अनंता-
नंताणुक स्कंध भी एकप्रदेश दो प्रदेश इत्यादि क्रम से बढ़ते २ संख्या-
त प्रदेश और असंख्यात प्रदेशवाले क्षेत्र में ठहर सकते हैं, उनकी स्थिति
के लिये अनंत प्रदेशात्मक क्षेत्र जरूरी नहीं है । तथा एकही आकाश-

वाणा अलोकाकाशमां नथी आ कथननुं तात्पर्यं ये छे के आधारभूत क्षेत्रना
प्रदेशोनी संप्र्या आधेयभूत पुद्गलद्रव्यना परमाणुओनी संप्र्या करतां
ओधी पणु डोःध शके छे अने भराभर पणु डोःध शके छे, परन्तु अधिक
डोःध शकती नथी तेथी ओक परमाणु ओक न आकाशप्रदेशमां रही शके छे
पणु ये आणुवाणा स्कंध ओक आकाशप्रदेशमां पणु रही शके छे अने ये
आकाशप्रदेशोमां पणु रही शके छे ओन प्रमाणु उत्तरोत्तर आणुओनी संप्र्या
वधतां वधतां न त्रिआणुक, चतुराणुक आदि संप्र्याताणुक पर्यन्तना स्कंधो
पणु ओक प्रदेशमां, ये प्रदेशमां, त्रणुप्रदेशमां अने संप्र्यात सुधीना आका-
शप्रदेशोमां रही शके छे. संप्र्याताणुक द्रव्यने रडेवाने भाटे असंप्र्यात
प्रदेशोवाणा क्षेत्रनी नर पडती नथी असंप्र्याताणुक स्कंध ओक प्रदेशथी
वधने वधारेमां वधारे पोताता भराणरनी अधिक संप्र्यावणा प्रदेशना क्षेत्रमां
रही शके छे. अनंताणुक स्कंध अने अनंतानताणुक स्कंध पणु ओक प्रदे-
शमां, ये प्रदेशमां, त्रणु प्रदेशमां अने ओन कुमे वधतां वधतां संप्र्यात
प्रदेशवाणा क्षेत्रमां रही शके छे. तेभनी स्थितिने भाटे (तेभने रडेवाने भाटे)
अनंत प्रदेशवाणा क्षेत्रनी नर पडती नथी तथा ओक न आकाशप्रदेशमां

મૂલમ્—(एयाए णं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं?) एयाए णं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णेगम-
ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ ॥सू० १०३॥

છાયા—(एतया खलु नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनम्? एतया खलु नैगमव्यवहारयोर्अर्थपदप्ररूपणताया नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते ॥सू० १०३॥

ટીકા—‘एयाए णं’ इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतया एतया अर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनम्? इति प्रश्नः। एतया हि भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते इत्युत्तरम् ॥सू० १०३॥

પ્રદેશ મેં સ્થિત પરમાણુ સંઘાત ઓર સ્કંધ સંઘાત ક્ષેત્રકી અપેક્ષા અના-
નુપૂર્વી હૈ તથા દ્વિપ્રદેશાગાઠ-આકાશકે દો પ્રદેશોં મેં સ્થિત-દ્વિપ્રદેશિક
આદિ સ્કંધ, ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા અવક્તવ્યક હૈ । ઇસ પ્રકાર ઘહ નૈગમવ્યવ-
હારનય સંમત અર્થપદ પ્રરૂપણતા હૈ ॥ સૂ૦ ૧૦૨ ॥

“एयाएणं णेगमववहाराणं” इत्यादि ।

શબ્દાર્થ—(एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं?)
हे भदन्त! नैगम व्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के प्रथम
भेद रूप इस अर्थपदप्ररूपणता से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ?

ઉત્તર—(एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णेगमववहा-
राणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत अनौप-
निधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के प्रथम भेद रूप इस अर्थपद प्ररूपणता से भंग-

સ્થિત પરમાણુ સંઘાત અને સ્કંધ સંઘાતક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી છે
તથા દ્વિપ્રદેશાવગાઠ (આકાશના એ પ્રદેશોમાં રહેલા) દ્વિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધ
ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક છે, એમ સમજવું નૈગમવ્યવહાર નયસંમત
અર્થપદપ્રરૂપણતાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ૦ ૧૦૨॥

“एयाएणं णेगमववहाराणं” इत्यादि—

શબ્દાર્થ—(एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं?) हे
भगवन्! नैगम व्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीना प्रथम भेद
रूप आ अर्थपदप्ररूपणताथी क्युं प्रयोजन सिद्ध थाय છે ?

ઉત્ત—(एयाए णं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगस-
मुक्कित्तणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीना
प्रथम भेद रूप आ अर्थपदप्ररूपणता वडे भंगसमुत्कीर्त्तनता रूप प्रयोजन

मूलम्—से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया ? णेग-
मववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया—अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणा-
णुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वए । एवं द्वाणुपुव्विगमेणं खेत्ताणुपुव्वीए
वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा, जाव से तं भंगसमुक्कित्त-
णया ॥सू० १०४॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्तनता ? नैगमव्यवहारयोः
भङ्गसमुत्कीर्तनता—अस्ति आनुपूर्वी, अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकम् ।
एवं द्रव्यानुपूर्वीगमेन क्षेत्रानुपूर्व्यामपि त एव षड्विंशतिर्भङ्गा भणितव्याः, यावत्
सैषा नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता ॥सू० १०४॥

टीका—अथ भङ्गसमुत्कीर्तनतां प्ररूपयितुमाह—‘ से किं तं ’ इत्यादि । अथ
का सा नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गसमुत्कीर्तनता ? इति प्रश्नः । उत्तरमाह—‘ णेगम-
ववहाराणं ’ इत्यादि । नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गसमुत्कीर्तनता—अस्ति आनुपूर्वी,

समुत्कीर्तनता रूप प्रयोजन सिद्ध होता है । इसके भावार्थ के लिये पीछे
७६ वें सूत्र के भावार्थ को देखो । ॥ १०३ ॥

अब सूत्रकार इसी भंगसमुत्कीर्तनता का निरूपण करते हैं—
“से किं तं णेगमववहाराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ— (से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया ?) हे
भदन्त ! नैगमव्यवहारनयसंमत वह भंग समुत्कीर्तनता क्या है ?

उत्तर—(णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी अत्थि
अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वए) नैगमव्यवहारनयसंमत वह भंग-
समुत्कीर्तनता इस प्रकार से है—आनुपूर्वी है, अनानुपूर्वी है अवक्त-

सिद्ध थाय छे आ पटना भावार्थ भाटे आगणना ७६भां सूत्रने
भावार्थ वाची जवे। ॥सू०१०३॥

इवे सूत्रकार जेज भंगसमुत्कीर्तनतानुं निरूपण करे छे—

“ से किं तं णेगमववहाराणं ” इत्यादि—

उत्तर—(णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि
अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वए) नैगमव्यवहारनयसंमत ते भंगसमुत्कीर्तनतानुं
आ प्रकारनुं स्पश्य छे—आनुपूर्वी छे, अनानुपूर्वी छे, अने अवक्तव्यक छे,

अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकम् । एवं द्रव्यानुपूर्वीगमेन=द्रव्यानुपूर्वीपाठवत् क्षेत्रानुपूर्वीमपि त एव=द्रव्यानुपूर्वीप्रकरणे ७७-७८ सूत्रे प्रोक्ता एव, पञ्चविंशति भङ्गा भणितव्याः । किमवधि भणितव्याः ? इत्याह- 'जाव से तं' इत्यादि । यावत् सैषा नैगमव्यवहारसम्प्रता भङ्गसमुत्कीर्तनतेति ॥सू० १०४॥

मूलम्-एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ? एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवेदंसणया कज्जइ ॥सू० १०५॥

छाया—एतया खलु नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्तनतया किं प्रयोजनम् ? एतया खलु नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्तनतया नैगमव्यवहारयो भङ्गोपदर्शनता क्रियते ॥सू० १०५॥

व्यक्त है । (एवं द्रव्याणुपुव्विगमेणं खेत्ताणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगाभाणियव्वा अत्थि से तं भंगसमुक्कित्तणया) इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह क्षेत्रानुपूर्वी में भी द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरण में कहे गये २६ भंग जानना चाहिये । इन भंगों के विषय को स्पष्ट करनेवाला पाठ ७७-७८ सूत्रों में पीछे कहा गया है—सो वहां तक इस भंग विषयक पाठ को ग्रहण करना चाहिये । यह पाठ "से तं भंगसमुक्कित्तणया" यहीं तक है । इस सूत्र की व्याख्या के लिये इन्हीं सूत्रों की व्याख्या को देखनी चाहिये । ॥ सू० १०४ ॥

अब सूत्रकार इस भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ? इस बात को स्पष्ट करते हैं—'एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए' इत्यादि ।

शब्दार्थ—(एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओ-

(एवं द्रव्याणुपुव्विगमेणं खेत्ताणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगाभाणियव्वा जाव से तं भंगसमुक्कित्तणया) आ प्रकारे द्रव्यानुपूर्वीना पाठनी जेभ क्षेत्रानुपूर्वीमां पणु द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां उडेवामां आवेत्ता २६ भांगाओ उडेवा जेधओ. आ लंगोना (लांगाओना) विषयनी स्पष्टता ७७ तथा ७८ मां सूत्रोमां करवामां-आवी युडी छे, "से तं भंगसमुक्कित्तणया" आ सूत्रपाठ पर्यन्तने। सूत्रपाठ त्यांथी अडुणु करवे। जेधओ. आ सूत्रनी व्याख्याने भाटे उपयुक्त णन्ने सूत्रोनी व्याख्या वांथी लेवी. ॥सू० १०४॥

"एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए" इत्यादि—

शब्दार्थ—(एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ? हे लगवन् । नैगम अने व्यवहारनयसंभत आ लंगसमुत्कीर्तनतानुं शुं प्रयोजन छे।

ટીકા—‘एयाए णं’ इत्यादि । व्याख्या सुगमा सा अष्ट सप्ततितम ७८ सूत्रे विलोकनीया ॥सू. १०५॥

मूलम्—से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया ? णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया तिप्पएसोगाढे आणुपुवी, एगपएसो-गाढे अणाणुपुवी, दुप्पएसोगाढे अवत्तवए, तिप्पएसोगाढा आणुपुवीओ, एगपएसोगाढा अणाणुपुवीओ, दुप्पएसोगाढा अवत्तवयाइं ॥सू० १०६॥

छाया—अथ कां सा नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता ? नैगमव्यवहारयोर्भङ्गोप-दर्शनता—त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, एकप्रदेशावगाढः अनानुपूर्वी, द्विप्रदेशावगाढः यणं ?) हे भदन्त ! नैगमव्यवहारनय संमत इस भंगसमुत्कीर्तनता का कथा प्रयोजन है ?

उत्तर—(एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनय संमत इस भंगसमुत्कीर्तनता से नैगमव्यवहारनय संमत भंगों को दिखाया जाता है—अर्थात् उनकी प्ररूपणा की जाती है । इसलिये भंगसमुत्कीर्तनताका भंगों को दिखलाना यही प्रयोजन है । इसकी व्याख्या के लिये पीछे का ७८ अठहत्तर वां सूत्र देखो । ॥ सू० १०५ ॥

“से किं तं णेगमववहाराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) हे भदन्त ! नैगमव्यवहारनय संमत वह भंगोपदर्शनता क्या है ?

उत्तर—(णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) नैगमव्यवहारनय संमत

उत्तर—(एयाएणं णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत आ भंगसमुत्कीर्तनता वडे नैगमव्यवहारनयसंमत लांगाओ अताववाभां आवे छे, ओटवे के तेमनी प्रइपणा करवाभां आवे छे. तेथी लंगोने (लांगाओने) प्रकट करवानुं न प्रयोजन छे. आ सूत्रनी व्याख्याने भाटे आगणुं ७८सुं सूत्र वांची नुं. ॥सू०१०५॥

“से किं तं णेगमववहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया?) हे भदन्त ! नैगमव्यवहार नयसंमत ते लंगोपदर्शनतां स्वइप केवुं छे?

उत्तर—(णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) नैगमव्यवहारनयसंमत लंगोपदर्शनतां स्वइप आ प्रकारनुं छे—

अवक्तव्यकम् । त्रिप्रदेशावगाढा आनुपूर्व्यः, एकप्रदेशावगाढा अनानुपूर्व्यः, द्विप्रदेशावगाढा अवक्तव्यकानि ॥ सू० १०६ ॥

टीका—सम्प्रति भङ्गोपदर्शनतां निरूपयितुमाह—‘से किं तं’ इत्यादि । टीका सुगमा ॥ सू० १०६ ॥

भङ्गोपदर्शनता इस प्रकार से है—(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी एगपएसो-गाढे अणाणुपुव्वी दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए) आकाश के तीन प्रदेशों में रहा हुआ त्र्यणुक आदि स्कंध आनुपूर्वी इस शब्दका वाच्यार्थ है । एकप्रदेश में स्थित परमाणु संघात, और स्कंध संघात क्षेत्र की अपेक्षा अनानुपूर्वी है तथा आकाश के दो प्रदेशों में स्थित द्विप्रदेशिक आदि स्कंध-क्षेत्र की अपेक्षा अवक्तव्यक है । (तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वीओ, एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं) आकाश के तीन प्रदेशों में रहे हुए बहुत से त्र्यणुक आदि स्कंध आनुपूर्वियां इस बहुवचनान्त शब्द के वाच्यार्थ हैं । आकाशके एक प्रदेश में रहे हुए अनेक परमाणु संघात आदि द्रव्य, अनानुपूर्वियां इस शब्दके वाच्यार्थ हैं । तथा द्विप्रदेश में स्थित अनेक द्विप्रदेशिक आदि स्कंध अवक्तव्यक इस बहुवचनान्त शब्द के वाच्यार्थ हैं । इसकी व्याख्या के लिये पीछे ७९ वें सूत्र की व्याख्या देखनी चाहिये ॥ सू० १०६ ॥

(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी दुप्पएसोगाढे अवत्त-व्वए) आकाशना त्रयु प्रदेशोभां रडेला त्र्यणुक .(त्रयु अणुनाणा) आदि स्कंध ‘आनुपूर्वी’ आ शब्दना वाच्यार्थ इप छे. अेकप्रदेशभां स्थित परमाणु संघात, अने स्कंध संघात क्षेत्रनी अपेक्षाअे अनानुपूर्वी छे तथा आकाशना अे प्रदेशोभां रडेला द्विप्रदेशिक आदि स्कंध क्षेत्रनी अपेक्षाअे अवक्तव्यक छे (तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वीओ एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं) धणुं न त्रिअणुक आदि स्कंधो “आनुपूर्वीओ” आ बहुवचनान्त शब्दना वाच्यार्थ इप छे. आकाशना अेक प्रदेशभां रडेला अनेक परमाणु संघात आदि द्रव्यो “अनानुपूर्वीओ” आ पदना वाच्यार्थ इप छे. अे प्रदेशोभां स्थित अनेक द्विप्रदेशिक आदि स्कंधो “अवक्तव्यक” आ बहुवचनान्त पदना वाच्यार्थ इप छे. आ सूत्रनी व्याख्या समजवा भाटे ७९ भां सूत्रनी व्याख्या वांसी लेवी. ॥ सू. १०६ ॥

अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक आदि पदों के वाच्यार्थ में त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध एक प्रदेशी पुद्गल परमाणु और द्विप्रदेशी स्कंध आदि आते हैं। तब कि इस क्षेत्रानुपूर्वी के प्रकरण गत भङ्गोपदर्शनता में आकाश के तीन प्रदेशों में स्थित त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध ही आनुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ माने गये हैं। एक दो आकाश के प्रदेशों में स्थित त्रिप्रदेशिक स्कंध आनुपूर्वी शब्दके वाच्यार्थ नहीं माने गये हैं। क्योंकि यह पहिले कहा जा चुका है कि त्रिप्रदेशिक स्कंध आकाशके एकप्रदेश में भी अवगाही हो सकता है, दो प्रदेश में भी अवगाही हो सकता है और तीन प्रदेशों में भी ठहर सकता है। त्रिप्रदेशिक स्कंध के लिये आकाश के चार प्रदेशों की ठहरने के लिये आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार जो चतुष्प्रदेशिक स्कंध होगा उसे अपने को अवगाहित होने के लिये आकाश के एक दो, तीन, एवं चार प्रदेश आपेक्षिक होंगे। पांच प्रदेश नहीं। इसलिये क्षेत्रानुपूर्वी में यदि त्रिप्रदेशिक स्कंध आकाश के एक प्रदेश में अथवा दो प्रदेश में स्थित है, तो वह क्षेत्र की अपेक्षा अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक शब्द का वाच्यार्थ होगा। क्षेत्रकी अपेक्षा आनुपूर्वी तीनप्रदेश से ही प्रारंभ होती है। इसी तरह जो असंख्यात प्रदे-

पुद्गलपरमाणु अने द्विप्रदेशी स्कंध आदि आवे छे. परन्तु आ क्षेत्रानुपूर्वीना प्रकरणगत भङ्गोपदर्शनतामां आकाशना त्रिप्रदेशीमां स्थित त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध न आनुपूर्वी शब्दना वाच्यार्थ इपे मानवामां आवेल छे. अेक प्रदेशमां के अे प्रदेशीमां स्थित त्रिप्रदेशिक स्कंधने अही आनुपूर्वी शब्दना वाच्यार्थ इपे मानवामां आवेल नथी, कारण के अे वात तो आगण प्रकट करवामां आवी चुकी छे के त्रिप्रदेशी स्कंध आकाशना अेकप्रदेशमां पणु अवगाही थर्न शके छे—रही शके छे, अे प्रदेशीमां पणु अवगाही थर्न शके छे अने त्रिप्रदेशीमां पणु अवगाही थर्न शके छे. त्रिप्रदेशी स्कंधने रहेवा भाटे आकाशना चार प्रदेशीनी आवश्यकता रहेती नथी. अेअ प्रमाणे चार प्रदेशिक स्कंधने रहेवा भाटे आकाशना अेक अे, त्रिप्रदेशी अथवा चार प्रदेशीनी आवश्यकता रहे छे. तेने रहेवा भाटे पांच प्रदेशीनी नइर पडती नथी. तेथी न अेवुं कहेवामां आव्युं छे के ' अे त्रिप्रदेशिक स्कंध आकाशना अेक प्रदेशमां अथवा अे प्रदेशीमां रहेलो डोय, तो क्षेत्रनी अपेक्षाअे तेने अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक शब्दना वाच्यार्थ इपे न गणुवे. अेअे क्षेत्रनी अपेक्षाअे आनुपूर्वीना प्रारंभ त्रिप्रदेशी न थाय छे, अेअ प्रमाणे अे

मूलम्—से किं तं समोयारे? समोयारे णेगमववहाराणं
 आणुपुवीदवाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुवीदवेहिं समो-
 यरंति अणाणुपुवीदवेहिं समोयरंति? अवत्तव्वगदवेहिं समोय-
 रंति?, आणुपुवीदवाइं आणुपुवीदवेहिं समोयरंति नो अणाणु-
 पुवीदवेहिं नो अवत्तव्वयदवेहिं समोयरंति । एवं तिणिण वि
 सट्ठाणे समोयरंति ति भाणियच्चं । से तं समोयारे ॥सू० १०८॥

छाया—अथ कोऽसौ समवतारः? समवतारो नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वी
 द्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति? किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अनानुपूर्वीद्रव्येषु

शवाला—स्कंध होगा—वह भी आकाशके एक, दो, तीन आदि प्रदेशों में
 अवगाही हो सकता है और असंख्यात प्रदेशों में भी अवगाही हो स-
 कता है । अतः क्षेत्र की अपेक्षा यह असंख्याताणुक स्कंध भी एकप्रदेश
 में स्थित होनेपर अनानुपूर्वी और दो प्रदेश में अवक्तव्यक अवगाहित
 होने पर माना जावेगा । तथा तीन आदि असंख्यात प्रदेशों में स्थित
 होनेपर आनुपूर्वी माना जावेगा । इस प्रकार से चित्तमें अवधारित कर
 २६ भंगों का वाच्यार्थ क्षेत्रकी अपेक्षा आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्त-
 व्यक इन एकवचनान्त बहुवचनान्त पदों के असंयोग और संयोग पक्ष में
 द्रव्यानुपूर्वी के भंगोपदर्शन की तरह कर लेना चाहिये । ॥सू० १०७॥

असंख्यात प्रदेशवाणो स्कंध उशे ते पणु आकाशना अेक, णे, त्रणु आदि
 प्रदेशोभां पणु अवगाही डोय शके छे, अने असंख्यात प्रदेशोभां पणु
 अवगाही डोय शके छे, न्यारे ते असंख्याताणुक स्कंध आकाशना अेक न
 प्रदेशभां रडेते। डोय त्यारे क्षेत्रनी अपेक्षाअे तेने अनानुपूर्वी इप गणुवे।
 नेधअे, परन्तु न्यारे ते त्रणुथी लधने असंख्यात पर्यन्तना आकाशना
 प्रदेशोभां रडेते। डोय त्यारे क्षेत्रनी अपेक्षाअे तेने आनुपूर्वी इप गणुवे।
 नेधअे, आ प्रकारने। अर्थ मनभां धारणु करीने २६ भांगोने। वाच्यार्थ
 समल देवे। नेधअे, क्षेत्रनी अपेक्षाअे आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी अने अव-
 क्तव्यक आ अेकवचनान्त अने बहुवचनान्त पदोना असंयोग अने संयोग
 पक्षे द्रव्यानुपूर्वीना भांगोपदर्शननी नेम अही पणु २६ भांगाअे।
 समल देवे। नेधअे. ॥ सू० १०७ ॥

समवतरन्ति ? अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति ? आनुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वीद्रव्येषु नो अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति । एवं त्रीण्यपि स्वस्थाने समवतरन्तीति भणितव्यम् । स एष समवतारः ॥सू० १०८॥

टीका—अथ समवतारं प्ररूपयितुमाह—‘से किं तं’ इत्यादि । अथ कोऽसौ समवतारः ? इत्यारभ्य ‘स एष समवतारः’ इति पर्यन्तस्य पाठस्य व्याख्या अशीतिसूत्रवद् द्रव्यानुपूर्वीवद् बोध्या ॥सू० १०८॥

अब सूत्रकार समवतार की प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं समोघारे ?” इत्यादि ।

शब्दार्थ—हे भदन्त ! (से किं तं समोघारे) पूर्वप्रक्रान्त समवतार का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(समोघारे) पूर्वप्रक्रान्त समवतार का स्वरूप इस प्रकार से है—(नेगमव्यवहाराणं आणुपुन्वीदव्वाइं कर्हि समोघरन्ति ?) शिष्य पूछता है कि नेगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य कहां समाविष्ट होते हैं (किं आणुपुन्वी दव्वेहिं समोघरन्ति ? अणाणुपुन्वीदव्वेहिं समोघरन्ति) क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ? या अनानुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ? या (अवत्तव्वगदव्वेहिं समोघरन्ति) अवक्तव्यकद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ?

उत्तर—(आणुपुन्वीदव्वाइं आणुपुन्वीदव्वेहिं समोघरन्ति) नेगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यों में ही समाविष्ट होते हैं ।

इसे सूत्रकार समवतारनी प्रश्नया करे छे—

“से किं तं समोघारे ?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं समोघारे ?) हे भगवन् ! आगण ने समवतार नामने प्रकार कही छे तेनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(समोघारे) समवतारनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे—(नेगमव्यवहाराणं आणुपुन्वी दव्वाइं कर्हि समोघरन्ति ?)

शिष्यने प्रश्न—नेगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्ये कथां समाविष्ट थाय छे ? (किं आणुपुन्वीदव्वेहिं समोघरन्ति ? अणाणुपुन्वीदव्वेहिं समोघरन्ति, अवत्तव्वगदव्वेहिं समोघरन्ति ?) शुं आनुपूर्वी द्रव्येमां समाविष्ट थाय छे ? के अनानुपूर्वी द्रव्येमां समाविष्ट थाय छे ? के अवक्तव्यकद्रव्येमां समाविष्ट थाय छे ?

उत्तर—(आणुपुन्वीदव्वाइं आणुपुन्वीदव्वेहिं समोघरन्ति) नेगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्ये आनुपूर्वी द्रव्येमां न समाविष्ट थाय छे, (नो

यावत् अल्पबहुत्वं चैवेति । इह—यावच्छब्देन—द्रव्यप्रमाणं २, क्षेत्रं ३, स्पर्शना ४, कालः ५, अन्तरं ६, भागः ७, भावः ८ इति बोध्यम् । व्याख्या एकाशीति सूत्रवत् द्रव्यानुपूर्वीवत् बोध्या ॥सू० १०९॥

मूलम्—जेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ? णियमा अत्थि । एवं दुण्णि वि ॥सू० ११०॥

छाया—नैगमववहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति । एवं द्वे अपि ॥सू० ११०॥

टीका—तत्र—सत्पदप्ररूपणताद्वारं प्ररूपयति—‘ जेगमववहाराणं ’ इत्यादि । अस्य द्वारस्य व्याख्या द्वयतीति सूत्रवत् द्रव्यानुपूर्वीवद् बोध्या ॥सू० ११०॥

हा) जैसे—(संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं चैव) सत्पदप्ररूपणता यावत् अल्प बहुत्व ,। यहां यावत् शब्द से इस अनुक्तपाठका संग्रह हुआ है— “द्रव्यप्रमाणं खित्त, फुसणा, कालोय, अंतरं, भाग, भाव,” द्रव्य प्रमाण क्षेत्र स्पर्शना, काल, अंतर, भाग और भाव, इस सूत्र की व्याख्या के लिये देखो पीछेका ८१, वां सूत्र ॥ १०९ ॥

अब सूत्रकार अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के अनुगम के भेदरूप प्रथम सत्पदप्ररूपणता का कथन करते हैं—

“जेगमववहाराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(जेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ? णियमा अत्थि । एवं दुण्णि वि) नैगमववहारनय संमत आनुपूर्वीद्रव्य हैं या नहीं ?

(तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं चैव) सत्पदप्ररूपणताथी लधने अल्पबहुत्व पर्यन्तना नव प्रकारे अही पर्यन्त पद द्वारा “द्रव्यप्रमाणं खित्त, फुसणा, कालोय, अंतरं, भाग, भाव” द्रव्य-प्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अंतर, भाग अने भाव, आ सात प्रकारे अरुण करवाभां आया छे. आ सूत्रनी व्याख्या भाटे ८१सुं सूत्र वांथी ञ्पुं ॥सू०१०९॥

इसे सूत्रकार अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीना अनुगमना प्रथम लेह इय सत्पदप्ररूपणतानुं निरूपण करे छे—

“जेगमववहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(जेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ? णियमा अत्थि, एवं दुण्णि वि)

प्रश्न—नैगमववहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्ये छे के नही ?

मूलम्—नेगमव्यवहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ? नो संखिज्जाइं असंखिज्जाइं नो अणंताइं । एवं दुण्णिण वि ॥सू० १११॥

छाया—नेगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि ? नो संख्येयानि, असंख्येयानि, नो अनन्तानि । एवं द्वे अपि ॥सू० १११॥

टीका—अथ द्रव्यप्रमाणद्वारं प्ररूपयितुमाह—‘नेगमव्यवहाराणं’ इत्यादि । नेगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि भवन्ति ? किं वा असंख्येयानि भवन्ति ? उत वा अनन्तानि भवन्ति ? इति त्रिविधः प्रश्नः । उत्तरमाह—‘नो संखिज्जाइं’ इत्यादि । नो संख्येयानि भवन्ति, नो अनन्तानि भवन्ति, अपि तु असंख्येयानि भवन्तीत्यर्थः । इति । अयं भावः—त्रिप्रदेशावगाढादीनि द्रव्याणि

उत्तर—नियमतः हैं । इसी प्रकार नेगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य भी नियम से हैं । इस सूत्र की व्याख्या के लिये देखो पीछे का ८२, वां ॥ सू० ११० ॥

“नेगमव्यवहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(नेगमव्यवहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, अणंताइं ?) हे भदन्त ! नेगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं ? या असंख्यात हैं ? या अनंत हैं ?

उत्तर—(नो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, नो अणंताइं । एवं दुण्णिणवि) नेगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वीद्रव्य न संख्यात हैं न अनंत हैं किन्तु असंख्यात हैं । इसका तात्पर्य यह है—आकाश के तीन प्रदेश में स्थित

उत्तर—अवश्य छे न् ओन् प्रमाणे नेगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्ये पणु अवश्य छे न् आ सूत्रनी व्याख्या सम-
ज्वा भाटे ८२मां सूत्रनी व्याख्या वांयी लेवी. ॥सू०११०॥

“नेगमव्यवहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(नेगमव्यवहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, अणंताइं ?) हे भगवन् ! नेगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्ये शुं संख्यात छे, के असंख्यात छे, के अनंत छे ?

उत्तर—(नो संखिज्जाइं असंखिज्जाइं, नो अणंताइं, एवं दुण्णिण वि) नेगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्ये संख्यात पणु नथी, अनंत पणु नथी, परन्तु असंख्यात न् छे.

क्षेत्रत आनुपूर्वीत्वेन निर्दिष्टानि, त्रिप्रदेशादि स्कन्धाधारभूताः क्षेत्रविभागाश्च असंख्येयप्रदेशात्मके लोकेऽसंख्याता भवन्ति, अतो द्रव्यतया बहूनामप्यानुपूर्वी-द्रव्याणां क्षेत्रावगाहमपेक्ष्य क्षेत्रैक्यमाश्रित्य तुल्यप्रदेशावगाहानामेकत्वात् क्षेत्रानुपूर्वीमसंख्यातान्येवानुपूर्वी द्रव्याणि भवन्तीति । अथानानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यविषये प्राह—‘ एवं ’ इत्यादि । एवम्=आनुपूर्वीद्रव्यवत् द्वे अपि=अनानुपूर्व्यवक्तव्यक द्रव्याणि असंख्येयानि बोधयानि । अयं भावः—एकैकप्रदेशावगाहं बहूपि द्रव्यं क्षेत्रत एकैवानुपूर्वी । लोकस्य प्रदेशा असंख्याताः सन्ति, अतस्तत्तुल्यमसंख्य-

हुए द्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा आनुपूर्वीरूप से कहे गए हैं । तीन आदि प्रदेशवाले स्कन्धों के आधारभूत क्षेत्र विभाग असंख्यात प्रदेशी लोक में असंख्यात हैं । इसलिये द्रव्य की अपेक्षा बहुत भी आनुपूर्वीद्रव्य तुल्य प्रदेशवाले क्षेत्र में अवगाह की अपेक्षा करके एक मान लिये जाते हैं—अर्थात् आकाशरूप क्षेत्र के तीन प्रदेशों में त्रिप्रदेशवाले, चार प्रदेशवाले, पांच प्रदेशवाले छह आदि अनंत प्रदेशवाले अनेक आनुपूर्वीद्रव्य अवगाहित होकर रहते हैं । परन्तु ये सब द्रव्य तुल्यप्रदेशावगाही होने के कारण एक हैं । क्षेत्रानुपूर्वी में लोक के ऐसे त्रिप्रदेशात्मक विभाग असंख्यात हैं । इसलिये आनुपूर्वीद्रव्य भी तत्तुल्य संख्यावाले होने के कारण असंख्यात होते ही हैं । इसी प्रकार—आनुपूर्वी द्रव्य की तरह—अनानुपूर्वी, अवक्तव्यक द्रव्य भी असंख्यात ही हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि लोक के एक एक प्रदेश में अवगाही अनेक द्रव्य क्षेत्र की

आ कथनतो लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—आकाशना त्रय आदि प्रदेशोभां रडेला द्रव्योने क्षेत्रनी अपेक्षाये आनुपूर्वीं रूप कडेवामां आवे छे. त्रय आदि प्रदेशोवाणा स्कन्धाना आधारभूत क्षेत्रविलागो असंख्यात प्रदेशी लोकभां असंख्यात छे. तेथी द्रव्यनी अपेक्षाये धरुं न आनुपूर्वीं द्रव्योने तुल्य-प्रदेशवाणा क्षेत्रभां अवगाहनी अपेक्षाये एक मानवामां आवेल छे अटवे के आकाशरूप क्षेत्रना त्रय प्रदेशोभां त्रय प्रदेशवाणां, चार प्रदेशवाणां, पांच प्रदेशवाणां अने छ आदि अनंत प्रदेशवाणां अनेक आनुपूर्वीं द्रव्यो अवगाहित थधने रडे छे, परन्तु ते सधणां द्रव्यो तुल्यप्रदेशावगाही होवाने कारणे एक छे. क्षेत्रानुपूर्वींभां लोकना अेषां त्रिप्रदेशात्मक विलाग असंख्यात छे. आनुपूर्वीं द्रव्यो पणु तेना जेटली न संख्यावाणा होवार्थी असंख्यात न होय छे. अेष प्रमाणे (आनुपूर्वीं द्रव्योनी जेस) अनानुपूर्वीं द्रव्यो अने अवक्तव्यक द्रव्यो पणु असंख्यात न छे. आ कथननुं तात्पर्य अे छे के लोकना एक एक प्रदेशभां अवगाही अनेक द्रव्यो पणु क्षेत्रनी अपेक्षाये

त्वादनानुपूर्वीं द्रव्याण्यपि असंख्येयानि भवन्ति । तथा—प्रदेशद्वयेऽवगाढं बहूपि द्रव्यं क्षेत्रत एकमेवावक्तव्यकद्रव्यम् । लोकस्य द्विप्रदेशात्मका विभागा असंख्याताः सन्ति, अतो द्विप्रदेशात्मकान्यवक्तव्यकद्रव्याण्यप्यसंख्यातानि भवन्तीति ॥सू० १११॥

अपेक्षा एक ही अनानुपूर्वीरूप हैं । ये असंख्यात इसलिए माने गये हैं कि इस प्रकार से असंख्यात प्रदेशवाले लोक में एक एक प्रदेश में ये एक २ रहते हैं । तथा आकाश के दो प्रदेशों में स्थित बहुत भी द्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा एक ही अवक्तव्यक द्रव्य हैं । आकाश के दो प्रदेश रूप विभाग असंख्यात होते हैं इसलिये तदवगाहीद्रव्य भी असंख्यात हैं ।

भावार्थ—नैगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य कितने हैं ? सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा इन प्रश्नों का समाधान किया है । उन्होंने कहा है कि—आकाश के त्रिप्रदेशात्मक, द्विप्रदेशात्मक और एकप्रदेशात्मक विभाग असंख्यात हैं । क्योंकि आकाश स्वयं असंख्यात प्रदेश वाला है । यद्यपि आकाश के प्रदेश अलोकाकाश की अपेक्षा अनंत कहे गये हैं, फिर भी इस अनंत अलोकाकाश में कोई द्रव्य नहीं रहता है । असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाश—में ही द्रव्योंका अवगाह है । लोकाकाशके उन विभागों में आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, और अवक्तव्यक द्रव्य प्रत्येक असंख्यात २ रहते हैं ।

એક જ અનાનુપૂર્વીં રૂપ છે. તેમને અસંખ્યાત માનવાનું કારણ એ છે કે આ પ્રકારે અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા લોકના એક એક પ્રદેશમાં એક એક અનાનુપૂર્વીં દ્રવ્ય રહે છે. તથા આકાશના એ પ્રદેશોમાં સ્થિત ઘણાં દ્રવ્યો પણ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ એક જ અવક્તવ્ય દ્રવ્ય રૂપ છે. આકાશના એ પ્રદેશ રૂપ વિભાગ અસંખ્યાત હોય છે, તે કારણે તેમાં અવગાહી દ્રવ્યો પણ અસંખ્યાત છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા એ પ્રશ્નનું સમાધાન કર્યું છે કે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વીં, અનાનુપૂર્વીં અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કેટલાં છે. સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં એ વાતનું પ્રતિપાદન કર્યું છે કે આકાશના ત્રિપ્રદેશાત્મક, દ્વિપ્રદેશાત્મક અને એક પ્રદેશાત્મક વિભાગ અસંખ્યાત છે, કારણ કે આકાશ પોતે જ અસંખ્યાત પ્રદેશવાળું છે. જો કે અલોકાકાશની અપેક્ષાએ આકાશના પ્રદેશો અનંત કહ્યા છે, પરંતુ આ અનંત અલોકાકાશમાં તો કોઈ પણ દ્રવ્યનો સદ્ભાવ જ નથી અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા લોકાકાશમાં જ દ્રવ્યોનો અવગાહ છે. લોકાકાશના તે વિભાગોમાં અસંખ્યાત આનુપૂર્વીં દ્રવ્યો, અસંખ્યાત અનાનુપૂર્વીં દ્રવ્યો અને અસંખ્યાત અવક્તવ્યક

क्योंकि यहांपर क्षेत्र की अपेक्षा-आनुपूर्वी आदि का विचार चल रहा है। अतः एक प्रदेशात्मक असंख्यात विभागों में एक एक विभागों में एक २ आनुपूर्वी आदि द्रव्य रहता है। यद्यपि एक प्रदेश में द्रव्य की अपेक्षा अनेक आनुपूर्वी आदि द्रव्य रहते हैं-परन्तु वे सब एक प्रदेश में आधारभूत होने के कारण एक माने जाते हैं। अतः इस प्रकार से एक प्रदेशरूप विभाग में रहे हुए ये अनेक द्रव्य एक प्रदेशरूप आधार की अपेक्षा एक प्रदेशावगाही होने के कारण एक अनानुपूर्वी द्रव्य रूप पड़ते हैं। इस प्रकार लोक के एकप्रदेशात्मक असंख्यात विभागों में अनानुपूर्वी द्रव्य असंख्यात ही हो जाते हैं। इसी प्रकार से अवक्तव्यक द्रव्य और अनानुपूर्वी द्रव्य भी असंख्यात सब जाते हैं। क्योंकि लोक के द्विप्रदेशात्मक विभाग जब असंख्यात हैं तो इनमें जितने भी द्विप्रदेशी आदि द्रव्य रहेंगे वे सब द्विप्रदेशावगाही होने के कारण एक द्विप्रदेशात्मक विभाग में एक अवक्तव्यक द्रव्य रूप से स्वीकृत माने जावेंगे। इस द्विप्रदेशात्मक एक विभाग में जब अवक्तव्यक द्रव्य रहता है तो द्विप्रदेशात्मक असंख्यात विभागों में असंख्यात ही अवक्तव्यक द्रव्य रहेंगे।

द्रव्यो रडे छे. अडीं क्षेत्रनी अपेक्षाये आनुपूर्वी आदिने विचार यादी रह्यो छे, तेथी ऐकप्रदेशात्मक असंख्यात विभागोमांना प्रत्येक विभागमां ऐक ऐक आनुपूर्वी आदि द्रव्य रडे छे. जे के प्रत्येक प्रदेशमां द्रव्यनी अपेक्षाये अनेक आनुपूर्वी आदि द्रव्यो रडे छे, परन्तु तेयो अधां ऐक प्रदेशमां आधारभूत होवाने कारणे तेभने ऐक मानवामां आवेल छे. आरीते ऐकप्रदेश इप विभागमां रडेलां अनेक द्रव्यो ऐक प्रदेशइप आधारनी अपेक्षाये ऐक प्रदेशावगाही होवाने कारणे ऐक अनानुपूर्वी द्रव्य इप गणुवाने योग्य भने छे. आरीते लोकना ऐक प्रदेशात्मक असंख्यात विभागोमां अनानुपूर्वी द्रव्यो असंख्यात होवानी वात सिद्ध थछ नय छे. ऐज प्रमाणे अवक्तव्यक द्रव्यो अने आनुपूर्वी द्रव्यो पणु असंख्यात होवानी वात सिद्ध थछ नय छे, कारणे के लोकना द्विप्रदेशात्मक विभाग असंख्यात होवाथी तेमां नेटला द्विप्रदेशी आदि द्रव्यो रडेशे ते सौ पणु द्विप्रदेशावगाही होवाने कारणे ऐक द्विप्रदेशात्मक विभागमां ऐक अवक्तव्यक द्रव्य इपे स्वीकृत थयेलां मानी शकशे. आ द्विप्रदेशात्मक ऐक विभागमां जे ऐक अवक्तव्यक द्रव्य रडेतुं होय, ते द्विप्रदेशात्म असंख्यात प्रदेशोमां असंख्यात अवक्तव्यक द्रव्यो रही शके, जे वात पणु सिद्ध थछ नय छे. आरीते अवक्तव्यक द्रव्यो असंख्यात होवानुं कथन पणु सिद्ध थछ नय छे.

मूलम्—णैगमववहाराणं खेत्ताणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं
 संखिज्जइभागे होज्जा ? असंखिज्जइभागे होज्जा ? जाव सव्व-
 लोए होज्जा ?, एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखिज्जइभागे वा होज्जा,
 असंखिज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा,
 असंखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा । नाणा-
 दव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा । णैगमववहाराणं
 अणाणुपुव्वीदव्वाणं पुच्छा एगद्वं पडुच्च नो संखेज्जइभागे
 होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा नो
 असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा नो सव्वलोए होज्जा, नाणादव्वाइं
 पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा । एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि
 भाणियव्वाणि ॥सू० ११२॥

इसी प्रकार अवक्तव्यकद्रव्य भी असंख्यात-सधजाते हैं । इसी प्रकार
 से लोक के जद्य त्रिप्रदेशात्मक विभाग असंख्यात हैं तो इनमें जितने
 भी त्रिप्रदेशी आदि द्रव्य रहेंगे वे सब त्रिप्रदेशावगाही होने के कारण
 एक त्रिप्रदेशात्मक विभाग में एक आनुपूर्वी द्रव्य रूप से स्वीकृत हुए
 माने जावेंगे । इस त्रिप्रदेशात्मक एक विभाग में जब एक आनुपूर्वी-
 द्रव्य रहता है तो लोक के त्रिप्रदेशात्मक असंख्यात विभागों में द्रव्य
 कितने आनुपूर्वी रहेंगे । इस प्रकार गणना के अनुसार आनुपूर्वी द्रव्य
 असंख्यात सध जाते हैं ॥ सू० १११ ॥

अथ प्रमाणे लोकना त्रिप्रदेशी विभागो पद्यु नो असंख्यात डोय
 तो तेषां नेट्वां त्रिप्रदेशी आदि द्रव्ये रडेते तेषां अथां पद्यु त्रिप्रदेशाव-
 गाही होवाने कारणे अक त्रिप्रदेशात्मक विभागमां अक आनुपूर्वी द्रव्य इये
 स्वीकृत थयेला मनासे आ त्रिप्रदेशात्मक अक विभागमां नो अक आनुपूर्वी
 द्रव्य रडेतुं डोय, तो लोकना त्रिप्रदेशात्मक असंख्यात विभागोमां असं-
 ख्यात आनुपूर्वी द्रव्ये रडेता इशे आ प्रकारे आनुपूर्वी द्रव्योनी संख्यां
 पद्यु असंख्यात होवानी वात सिद्ध थठ अय छे ॥सू० १११॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः क्षेत्रानुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयभागे भवन्ति यावत् सर्वलोके भवन्ति ? । एकं द्रव्यं प्रतीत्य लोकस्य संख्येयतमभागे वा भवति, असंख्येयतमभागे वा भवति, संख्येयेषु भागेषु वा भवति, असंख्येयेषु भागेषु वा भवति, देशोने वा लोके भवति । नाना द्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति । नैगमव्यवहारयोः अत्रानुपूर्वीद्रव्याणां पृच्छा-यापेकद्रव्यं प्रतीत्य नो संख्येयतमभागे भवति, असंख्येयतमभागे भवति, नो संख्येयेषु भागेषु भवति, नो सर्वलोके भवति । नाना द्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति । एवम् अत्रक्तव्यक्तद्रव्याण्यपि भणितव्यानि ॥मू० ११२॥

टीका—अथ क्षेत्रद्वारं निरूपयितुमाह—‘ नैगमव्यवहाराणं ’ इत्यादि ।

नैगमव्यवहारसम्मतानि क्षेत्रानुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? यावत् सर्वलोके भवन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरमाह—एकं द्रव्यं प्रतीत्य आनुपूर्वी द्रव्यं लोकस्य संख्येयतमभागे वा भवति, असंख्येयतमभागे वा भवति, संख्येयेषु वा भागेषु भवति, असंख्येयेषु वा भागेषु भवति ।

(नैगमव्यवहाराणं खेत्ताणुपुर्वी) इत्यादि ।

शब्दार्थ—(नैगमव्यवहाराणं खेत्ताणुपुर्वी—द्वन्वाहं लोगस्स किं संखि-ज्जहभागे होज्जा ?)

प्रश्न—नैगमव्यवहारनय संमत क्षेत्रानुपूर्वी-द्रव्यं कया लोक के संख्यातवे भाग में होते हैं ? (असंखिज्जहभागे होज्जा ?) या असंख्यातवे भागमें रहते हैं ? (जाव स्रव्वलोए होज्जा) यावत् समस्त लोकमें होते हैं ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखिज्जहभागे वा होज्जा असंखेज्जहभागे वा होज्जा संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा, असंखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा देसूणे वा लोए होज्जा) एकद्रव्यकी अपेक्षा लेकर आनुपूर्वीद्रव्यं लोक के संख्यातवे भाग में भी रहता है असंख्यातवे

“ नैगमव्यवहाराणं खेत्ताणुपुर्वी ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(नैगमव्यवहाराणं खेत्ताणुपुर्वीद्वन्वाहं लोगस्स किं संखिज्जहभागे होज्जा) हे भगवन् । नैगमव्यवहार नयसंमत क्षेत्रानुपूर्वी द्रव्ये श्रुं लोकना संख्यातमां लागमां छे ? हे (असंखिज्जहभागे होज्जा ?) असंख्यातमां लागमां छेय छे ? (जाव स्रव्वलोए होज्जा ?) हे समस्त लोकमां छेय छे ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखिज्जहभागे वा होज्जा, असंखिज्जहभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा, असंखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा) एक द्रव्यनी अपेक्षाये विचार करवामां आवे तो आनुपूर्वी द्रव्यं लोकना संख्यातमां लागमां पणु रडे छे, असंख्यातमां

સ્કન્ધદ્રવ્યાણાં વિચિત્રપરિણમનશક્તિમત્વાત્ સંખ્યેયાદિપ્રદેશાવગાહિત્વં बोध्यम् ।
વિશિષ્ટક્ષેત્રાવગાહોપલક્ષિતાનાં સ્કન્ધદ્રવ્યાણામેવ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીત્વેનોક્તત્વાત્ । તથા
एकं द्रव्यं प्रतीत्य देशोने वा लोके आनुपूर्वीद्रव्यं भवति ।

નનુ-અચિત્તમહાસ્કન્ધસ્ય સર્વલોકવ્યાપકત્વં પૂર્વમુક્તમ્ । તસ્ય ચ સમસ્ત-
લોકવર્ત્યસંખ્યેયપ્રદેશલક્ષણાયાં ક્ષેત્રાનુપૂર્વ્યામવગાહત્વાત્ પરિપૂર્ણસ્યાપિ ક્ષેત્રાનુ-
પૂર્વીત્વં ન કિંચિદ્ વિરુદ્ધયતે, અતસ્તદપેક્ષયા ક્ષેત્રતોડપ્યાનુપૂર્વીદ્રવ્યં સર્વલોકવ્યાપિ

भाग में भी रहता है, संख्यात भागों में भी रहता है असंख्यात भागों
में भी रहता है । क्योंकि स्कंध द्रव्यों की परिणमन शक्ति विचित्र
प्रकार की है । अतः विचित्रप्रकार की परिणमन शक्तिवाले होने के
कारण स्कंध द्रव्योंका अवगाहलोक के संख्यातवें आदि भागों में होता
है । क्यों कि विशिष्ट क्षेत्र में अवगाह से उपलक्षित हुए स्कंध द्रव्यों
को ही क्षेत्रानुपूर्वीरूप से कहा गया है । तथा एक द्रव्य की अपेक्षा लेकर
आनुपूर्वी द्रव्य कुछ कम-देशोन लोक में भी अवगाहित होता है ।

શંકા-પહિલે દ્રવ્યાનુપૂર્વી મેં અચિત્ત મહાસ્કંધ, કિ જો પુદ્ગલદ્રવ્ય
સવસે બડા સ્કંધ હોતા હૈ ઓર જો અનંતાનંત પરમાણુઓ સે નિષ્પન્ન
હોતા હૈ । સર્વ લોક વ્યાપી કહા હૈ । ઇસ પ્રકાર અચિત્ત મહાસ્કંધ કી
અપેક્ષા ઇક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સમસ્ત લોક મેં વ્યાપક હોકર જબ રહતા
હૈ-તથ યહ વાત આપકી કૈસે માની જા સકતી હૈ કિ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય

ભાગમાં પણ રહે છે, સંખ્યાત ભાગોમાં પણ રહે છે, અસંખ્યાત ભાગોમાં
પણ રહે છે, કારણ કે સ્કંધ દ્રવ્યોની પરિણમનશક્તિ વિચિત્ર હોય છે.
વિચિત્ર પ્રકારની પરિણમનશક્તિવાળા હોવાને કારણે સ્કંધ દ્રવ્યોનો અવગાહ
લોકના સંખ્યાતમાં આદિ ભાગોમાં હોય છે. કારણ કે વિશિષ્ટ ક્ષેત્રમાં
અવગાહથી ઉપલક્ષિત થયેલાં સ્કંધદ્રવ્યોને જ ક્ષેત્રાનુપૂર્વી રૂપે ગણવામાં
આવે છે. તથા એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો આનુપૂર્વી
દ્રવ્ય અમુક ન્યૂન દેશપ્રમાણ-દેશોન-લોકમાં પણ અવગાહિત હોય છે.

શંકા-દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરતાં પહેલાં આપે એવું કહ્યું છે કે
“ પુદ્ગલ દ્રવ્યનો સૌથી મોટો સ્કંધ કે જે અનંતાનંત પરમાણુઓમાંથી બને
છે, અને જેને અચિત્ત મહાસ્કંધ કહેવામાં આવે છે, તે સર્વલોકવ્યાપી છે.”
આ પ્રકારે આ અચિત્ત મહાસ્કંધની અપેક્ષાએ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય જે
સમસ્ત લોકમાં વ્યાપક હોય તો આપની એ વાત કેવી રીતે માની શકાય
કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યનો એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે
અમુક દેશોન (દેશ ન્યૂન) લોકમાં વ્યાપીને રહે છે ? કારણ કે સમસ્ત લોક-

प्राप्यते, कथं तर्हि देशोलोकव्यापिता प्रोच्यते ? इति चेत्, उच्यते— अयं लोक आनुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यैः सर्वदैवाशून्य एव भवतीति सिद्धान्तः । यदिचात्राऽऽनुपूर्व्याः सर्वलोकव्यापिता निर्दिश्येत, तदाऽनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां निरवकाशतयाऽभावः प्रतीयेत, अतश्च—अचित्तमहास्कन्धपूरितेऽपि लोके जघन्यतोऽप्येकः प्रदेशोऽनानुपूर्वीविषयत्वेन विवक्षितः । प्रदेशद्वयं चावक्तव्यकद्रव्यविषय-

एक द्रव्य की अपेक्षा करके कुछ कम लोक में व्यापक होकर रहता है । क्योंकि समस्त लोकवर्ती असंख्यात प्रदेशरूप क्षेत्रानुपूर्वी है सो उसमें अवगाढ-अवगाही होने से- परिपूर्ण अचित्त महास्कन्ध का क्षेत्रानुपूर्वीपना भी कुछ भी विरुद्ध नहीं पड़ता है । इसलिये आनुपूर्वी द्रव्य में एक आनुपूर्वी, द्रव्य की अपेक्षा करके जो देशोऽन लोक में अवगाहिता प्रकट की है वह ठीक नहीं है ।

उत्तर—यह सिद्धान्त है कि यह लोक आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों से सदा ही अशून्य है । यदि आनुपूर्वी द्रव्य को—सर्वलोक व्यापी माना जावे तो फिर अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को ठहरने के लिये स्थान नहोने के कारण उनका अभाव प्रसक्त होगा । और जब देशोऽन लोक में एक आनुपूर्वीद्रव्य व्यापक होकर रहता है । ऐसा माना जाता है तो इस प्रकार से अचित्त महास्कन्ध से पूरित हुए भी लोक में कम से कम एक प्रदेश ऐसा भी आजाता है कि जो अनानुपूर्वीद्रव्य का विषय रूप से विवक्षित हो जाता है । तथा दो प्रदेश

वर्ती असंख्यात प्रदेशरूप क्षेत्रानुपूर्वी छे, अने तेमां अवगाही (रहेलो) होवाथी परिपूर्ण अचित्त महास्कन्धमां पण क्षेत्रानुपूर्वीत्व मानवामां कोर्ध पण वांधो जणुतो नथी.

उत्तर—अवे। सिद्धान्त छे के आ लोक आनुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्येथी रहित कही होतो नथी ने आनुपूर्वी द्रव्यने सर्वलोकव्यापी मानवामां आवे, तो अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्येने रहेवानुं स्थान न पाकी न रहे ! अने ते कारणे तेमने असाव न मानवाने प्रसंग उपस्थित थशे ने अेषु मानवामां आवे के देशोऽन (देश न्यून) लोकमां अक आनुपूर्वी द्रव्य व्यापीने रहे छे, तो अचित्त महास्कन्ध वडे पूरित थथेला लोकमां पण ओछामां ओछे अक प्रदेश अवे पण पाकी रहेशे के नेमां अनानुपूर्वी द्रव्यने सहसाव कोर्ध शके, तथा ते लोकमां जे प्रदेश अवे

त्वेन विवक्षितम्, आनुपूर्वीद्रव्यस्य तत्र सत्त्वेऽपि तस्याऽप्राधान्येन विवक्षणात्, अनानुपूर्व्यवक्तव्यकयोस्तु प्राधान्येन विवक्षणादिति, अतोऽत्र देशो नो लोकोऽत्र विवक्षितइति उक्तं च—

“महाखंधापुण्ये वि य अवक्तव्यगणाणुपुण्विदन्वाइं ।

जदेशोगाढाइं तद्देशेणं स लोगूणो ” ॥१॥

छाया—महास्कन्धाऽऽपूर्णेऽपि च अवक्तव्यकाऽनानुपूर्वीद्रव्याणि ।

यदेशादगाढानि तद्देशेन स लोकानः ॥इति ।

ननु यद्येवं तर्हि द्रव्यानुपूर्व्यामपि सर्वलोकव्यापित्वमानुपूर्वीद्रव्यस्य यदुक्तं तद् विरुध्यते, अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणामनवकाशत्वेन तत्राप्यभाव प्रतीति-

ऐसे भी आ जाते हैं कि जो अवक्तव्यक द्रव्य के विषयरूप से विवक्षित हो जाते हैं । इन एक और दो प्रदेशों में आनुपूर्वी द्रव्य का भी सद्भाव रहता है तो भी अप्रधान होने से उसकी वहाँ विवक्षा नहीं होती है । अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक इन द्रव्यों की ही प्रधानता होने से विवक्षा की जाती है । इसलिये आनुपूर्वी द्रव्य एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा से देशोन लोकमें अवगाहित कहा गया है । यही बात उक्तच— “महाखंधा पुण्येविद्य इत्यादि” करके इस गाथा द्वारा प्रकट की गई है ।

शंका—यदि यही बात है कि एक अनानुपूर्वी द्रव्य क्षेत्रानुपूर्वी में देशोन लोक व्यापी है फिर द्रव्यानुपूर्वीमें भी यही बात माननी चाहिये-परन्तु वहाँ ऐसी बात नहीं मानी गई है वहाँ तो आनुपूर्वी द्रव्य को सर्व लोक व्यापी कहा गया है । क्षेत्रानुपूर्वी में अनानुपूर्वी द्रव्य को सर्व-

पणु णाडी रडेशे डे जेमां अवक्तव्यक द्रव्येना अवगाढ संलवी शकशे ते अेक अने जे प्रदेशोमां आनुपूर्वी द्रव्येना पणु सद्भाव रडे छे, छतां पणु ते त्यां अप्रधन होवाने कारणे तेनी विवक्षा अडीं करी नथी अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक, आ जे द्रव्येनी ज त्यां प्रधानता होवाथी तेमनी ज विवक्षा करवामां आवी छे. तेथी ज अेवुं कडेवामां आंयुं छे डे आनुपूर्वी द्रव्येना अेक आनुपूर्वी द्रव्येनी अपेक्षाअे विचार करवामां आवे तो तेनी अवगाढना देशोन लोकमां छे. अेज वातने “ महाखंधा पुण्येविद्य ” इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा अडीं प्रकट करवामां आवी छे.

शंका—जे अेक आनुपूर्वी द्रव्य क्षेत्रानुपूर्वीमां देशोन (देश न्यून) लोकव्यापी होय, तो द्रव्यानुपूर्वीमां पणु अेवी ज वातने स्वीकार थवे। जेधअे परन्तु द्रव्यानुपूर्वीमां अेवी वातने स्वीकार करवाने जद्वे आनुपूर्वी द्रव्येने सर्वलोकव्यापी कडेवामां आवेले छे. क्षेत्रानुपूर्वीमां आनुपूर्वी द्रव्येने

प्रसङ्गात्, सर्वकालं च तेषामप्यवस्थितिप्रतिपादना? इति चेत्? उच्यते-
द्रव्यानुपूर्व्यां हि द्रव्याणामेवानुपूर्व्यादिभाव उक्तः, न तु क्षेत्रस्य, तस्य तत्रानधि-
कृतत्वात्। आनुपूर्व्यादिद्रव्याणां परस्परभेदेऽपि एकस्मिन्नपि क्षेत्रे तदवस्थानं न
किञ्चिद् विरुध्यते, यथा एकापवरकान्तर्गतानेक प्रदीपप्रमाणामवस्थितिर्न विरुध्यते।
इत्थं च द्रव्यानुपूर्व्यामानुपूर्व्याद्रव्याणां समस्तलोके विद्यमानत्वेऽपि न तत्र कस्या

लोक व्यापी मानने में जो आपने अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यको
ठहरने के लिये स्थान होने के कारण उनमें अभाव के प्रसंग प्राप्त होने
का कथन किया है, सो वही अभाव के प्रसंग प्राप्त होने के कारण उन
अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्योंके लिये द्रव्यानुपूर्वी में भी आनुपूर्वी
द्रव्य को सर्वलोकव्यापी मानने पर उपस्थित होता है। परन्तु ऐसा तो
है नहीं-क्योंकि सर्वकाल उन दोनों का भी अवस्थान माना गया है।

उत्तर-द्रव्यानुपूर्वी में द्रव्यों के ही आनुपूर्वी आदि भाव का कथन
किया गया है। आकाश रूप क्षेत्र को आनुपूर्वी आदि भाव का नहीं।
क्योंकि वहाँ पर द्रव्यानुपूर्वी में-आकाश रूप क्षेत्र का विचार अधिकृत
नहीं है। आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का परस्पर में भेद होने पर भी उनका
अवस्थान एक भी आकाश प्रदेश रूप क्षेत्र में थोड़ा सा भी विरुद्ध नहीं
पड़ता है, जैसे एक कोठे के अन्तर्गत अनेक प्रदीप प्रभाओं की अवस्थिति
में कोई विरोध नहीं होता है। इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी से आनुपूर्वीद्रव्यों

सर्वलोकव्यापी मानवामां आवे अवेः प्रसंग प्राप्त धवानो लय गताव्ये छे
के अे प्रकारनी मान्यतानो स्वीकार करवामां आवे तो अनानुपूर्वी अने
अवक्तव्यक द्रव्य ने रहेवाना स्थाननो न अलाव रहेवाने कारणे ते द्रव्येनो
अलाव मनवानो प्रसंग प्राप्त धशे. तो आनुपूर्वी द्रव्यने सर्वलोकव्यापी
मानवामां आवे तो अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्येनो पण अलाव
मानवानुं कारणे अहीं पण उपस्थित धशे परन्तु अेवी वात तो संलवित
नथी, कारणे के ते अन्ननेनो सहलाव सदा मानवामां आवेदो न छे.

उत्तर-द्रव्यानुपूर्वीमां द्रव्येना न आनुपूर्वी आदि लावनुं कथन करवामां
आव्युं छे-आकाशरूप क्षेत्रना आनुपूर्वी आदि लावनुं कथक धयुं नथी,
कारणे के द्रव्यानुपूर्वीमां आकाश रूप क्षेत्रनो विचार अधिकृत नथी. आनु-
पूर्वी आदि द्रव्येनो परस्परमां भेद होवा छतां पण तेमनुं अवस्थान अेक
पण आकाशप्रदेश रूप क्षेत्रमां सहैण पण विरुद्ध पडतुं नथी. वेवी रीते
अेक कोठानी अंदर प्रदीपो (दीवा) नी प्रलाओनी अवस्थितिमां कोछ विरोध
पडतो नथी, अेण प्रमाणे द्रव्यानुपूर्वीमां आनुपूर्वी द्रव्येनो समस्त लोकमां

प्यनवकाश इति, न कश्चिद् दोषः । क्षेत्रानुपूर्व्यां तु द्रव्याणामौपचारिक एवानु-
पूर्व्यादिभावः, मुख्यतस्तु क्षेत्रस्यैवानुपूर्व्यादिभावो विवक्षितः, तस्यैवाधिकारात् ।
तस्मादत्र यदि सर्वेऽपि लोकप्रदेशा आनुपूर्व्या व्याप्ता भवेयुस्तर्हि अनानुपूर्व्यवक्त-
व्यकतया किमन्यत् क्षेत्रं क्षेत्रानुपूर्वीस्यात् ? । येषु नमःप्रदेशेष्वानुपूर्व्यस्तेष्वेवाना-
नुपूर्व्यवक्तव्यययोरपि सद्भाव स्यादिति तु न वक्तुं शक्यते, द्रव्यावगाहभेदेन

को समस्त लोक में व्यापक मानने पर भी वहाँ अनानुपूर्वी और अव-
क्तव्यक द्रव्यों के ठहरने में अनवकाश रूप दोष की आपत्ति का प्रसंग
प्राप्त थोड़ा भी नहीं होता है । परन्तु क्षेत्रानुपूर्वी में जो द्रव्यों का आनु-
पूर्वी आदि भाव कहा गया है वह तो औपचारिक ही हैं । क्योंकि इस
क्षेत्रानुपूर्वी में क्षेत्र में, ही आनुपूर्वी आदि रूप भाव मुख्य रूप से विव-
क्षित हुआ है, इसका कारण यह है कि उसका यहाँ अधिकार चल रहा है,
इसलिये क्षेत्रानुपूर्वी में यदि सब भी लोक के प्रदेश आनुपूर्वी से व्या-
प्त हो जावे तो फिर अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक रूप से और कौन से
दूसरे प्रदेशरूपी क्षेत्र क्षेत्रानुपूर्वी रूप से व्यवहृत होंगे कि जिससे जिन
आकाश के प्रदेशों में आनुपूर्वियों का सद्भाव है उन्हींमें अनानुपूर्वी
और अवक्तव्यकों का सद्भाव हो सके ? नहीं हो सकेगा । अतः फिर
यह कैसे कहा जा सकता है, कि जिन आकाश प्रदेशों में आनुपूर्वी का
सद्भाव है उन्हींमें अनानुपूर्वियों और अवक्तव्यकों का भी सद्भाव है ।
यदि इसपर यों कहा जावे कि इस प्रकार से मानने में कि जिन आकाश

व्यापक मानना छतां पण त्यां अनानुपूर्वीं अने अवक्तव्यक द्रव्येने रडेवामां
अवकाश इय दोषनी आपत्तिने प्रसंग भित्तुल प्राप्त थयो नथी. परन्तु
क्षेत्रानुपूर्वीमां द्रव्येना जे आनुपूर्वीं आदि लाव कडेवामां आव्या छे ते तो
औपचारिक न छे, कारण के आ क्षेत्रानुपूर्वीमां क्षेत्रमां न आनुपूर्वीं आदि.
इय लाव मुख्य इये विवक्षित थया छे तेनुं कारण जे छे के तेने न
अधिकार अहीं आली रह्यो छे तेथी क्षेत्रानुपूर्वीमां जे लोकना समस्त प्रदेशो
आनुपूर्वीं वडे व्याप्त थयं जय, तो अनानुपूर्वीं अने अवक्तव्यक द्रव्येना
जेमां सद्भाव होय जेवां अन्य प्रदेशो इय क्षेत्रने सद्भाव न
क्याथी रडे । आ प्रकारनी परिस्थितिमां जेवुं केवी रीते कही सकाय के जे
आकाशप्रदेशोमां आनुपूर्वींजोने सद्भाव छे, जेन आकाशप्रदेशोमां अनानु-
पूर्वींजो अने अवक्तव्यकेने पण सद्भाव छे । जे आ आपत्ते अनुल-

क्षेत्रभेदस्य विवक्षणात् । तस्मादनानुपूर्व्यवक्तव्यकयो विषयं प्रदेशत्रयं विहाय शेष-
प्रदेशा एवानुपूर्व्या विषयो भवतीति प्रदेशत्रयलक्षणेन देशेन लोकस्योनता विव-
क्षिता, अतः क्षेत्रानुपूर्व्यामेकं द्रव्यं प्रतीत्य आनुपूर्वीद्रव्यं देशोने लोके भवति ।

प्रदेशों में आनुपूर्वी द्रव्य अवगाहित होते हैं, उन्हीं प्रदेशों में शेष दो
द्रव्य भी अवगाहित होते हैं। अतः अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों
से अधिष्ठित वे कुछ प्रदेश अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक रूप से कहे
जावेंगे। सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है कारण इस प्रकार के कथन
से द्रव्य के अवगाह की भिन्नता से क्षेत्र में भेद आजाता है। जिसकी
यहां विवक्षा है। तात्पर्य कहने का यह है कि द्रव्यानुपूर्वी में आनुपूर्वी
द्रव्यों का समस्त लोक में अवस्थान न होने पर भी अनानुपूर्वी और
अवक्तव्यक द्रव्यों के अवस्थान होनेपर वहां कोई दोष नहीं आता है।
परन्तु क्षेत्रानुपूर्वी में यदि आनुपूर्वीद्रव्य को समस्त लोक व्यापी माना
जावे अर्थात् लोक के समस्त प्रदेश आनुपूर्वी रूप मान लिये जावें तो
इस स्थिति में अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक प्रदेश कौनसे माने जावेंगे
कि जिनमें अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य ठहर सकें। अतः यह
मानना चाहिये कि इस क्षेत्रानुपूर्वी में एक प्रदेश अनानुपूर्वी क्षेत्रानु-
पूर्वी का विषय है और दो प्रदेश अवक्तव्यक क्षेत्रानुपूर्वी के विषय

क्षीने ज्येवी हवील करवामां आवे के “ जे आकाशप्रदेशोमां आनुपूर्वी द्रव्ये
अवगाहित होय छे, जेज प्रदेशोमां आकीना जन्ने द्रव्ये अवगाहित होय
छे, जने ते कारणेने लीधे अनानुपूर्वी जने अवक्तव्यक द्रव्येथी अधिष्ठित
ज्येवां जेज अमुक प्रदेशोने अनानुपूर्वी जने अवक्तव्यक इपे कही शकेशे. ”
आ प्रहारनी भान्यता पषु जराजर नथी, कारणे के आ प्रहारनी भान्यताने
स्वीकार करवाथी द्रव्यना अवगाहनी भिन्नताने लीधे क्षेत्रमां पषु भिन्नता
आवी जाय छे. तेनी ज अही विवक्षा आवी रही छे आ समस्त कथननुं
तात्पर्य जे छे के द्रव्यानुपूर्वीमां आनुपूर्वी द्रव्येनुं समस्त लोकमां अवस्थान
होवा छतां पषु अनानुपूर्वी जने अवक्तव्यक द्रव्येनुं त्यां अवस्थान
मानवामां कोठ दोष नथी परन्तु क्षेत्रानुपूर्वीमां जे आनुपूर्वी समस्त लोक-
व्यापी मानवामां आवे जेटवे के लोकना समस्त प्रदेशोने जे आनुपूर्वी इप
मानवामां आवे, तो अनानुपूर्वी जने अवक्तव्यक द्रव्ये जेमां अवगाहित
थरुं शके ज्येवां अनानुपूर्वी प्रदेशो काने मानवा ? तेथी जेवुं ज मानवुं
पडशे के आ क्षेत्रानुपूर्वीमां जेकप्रदेश अनानुपूर्वी क्षेत्रानुपूर्वीना
विषय छे जने जे प्रदेश अवक्तव्यक क्षेत्रानुपूर्वीना विषय छे. आ

તથા-નાનાદ્રવ્યાણિ પ્રતીત્ય આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ નિયમાત્ સર્વલોકે ભવન્તિ । ડ્યાદિપ્રદેશાવગાઠ ભેદતો નાનાવિધૈઃ=વિભિન્નપ્રકારૈરાનુપૂર્વીદ્રવ્યૈઃ સર્વોડપિ લોકો વ્યાપ્ત ઇતિ ભાવઃ ।

હૈં । ઇસ પ્રકાર અનાનુપૂર્વી ઓર અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં કો ઠહરને કે લિધે યે તીન પ્રદેશ લોક કે હૈં । ઇન પ્રદેશોં મેં યદ્યપિ આનુપૂર્વીદ્રવ્ય ઓ અવગાહિત હોકર રહતા હૈ-પરન્તુ ડસકી યહાં ગોળતા હૈ, ઓર શેષ દો દ્રવ્યોં કી સુરુપતા હૈ, ઇસ પ્રકાર અવગાહિયોં કે ભેદ સે અવગાહરૂપ આકાશ મેં ભેદ આજાના હૈ । અતઃ અનાનુપૂર્વી ઓર અવક્તવ્યકદ્રવ્યોં કે વિષય-મૂળ પ્રદેશત્રય કો છોડ કર બાકી કે સમસ્ત પ્રદેશલોક કે આનુપૂર્વી રૂપ હૈં । તથા ઇકપ્રદેશ અનાનુપૂર્વી ઓર દો પ્રદેશ અવક્તવ્યક હૈં । ઇસી કારણ તીન પ્રદેશરૂપ દેશરૂપ દેશ સે ન્યૂનતા લોક મેં વિવક્ષિત કી ગઈ હૈ । અર્થાત્ લોક કે યે ૩ પ્રદેશ આનુપૂર્વી નહીં હૈં ઓર બાકી કે સમસ્ત પ્રદેશ આનુપૂર્વીરૂપ હૈં । ઇસ પ્રકાર ક્ષેત્રાનુપૂર્વી મેં ઇક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય કો આશ્રિત કરકે તીન પ્રદેશ ન્યૂન સમસ્ત લોક મેં આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અવગાહી હૈં । યહ કથન સિદ્ધ હો જાતા હૈ । તથા (નાનાદવ્વાહં પંડુચ્ચ નિયમા) નાના દ્રવ્યોં કી અપેક્ષા લેકર સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય નિયમ સે સર્વલોક મેં અવગાહી હૈ । અર્થાત્ લોક કે ડ્યાદિપ્રદેશોં મેં

રીતે અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોને રહેવા માટે લોકના આ ત્રણ પ્રદેશો છે. તે પ્રદેશોમાં જો કે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય પણ અવગાહિત થઇને રહે છે, પરન્તુ તેની ત્યાં ગોળતા છે અને બાકીના બે દ્રવ્યોની પ્રધાનતા છે. આ પ્રકારે અવગાહિત દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અવગાહરૂપ આકાશમાં પણ ભેદ આવી જાય છે. તેથી અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના વિષય રૂપ ત્રણ પ્રદેશો સિવાયના લોકના બાકીના સમસ્ત પ્રદેશો આનુપૂર્વીરૂપ છે. તથા એક પ્રદેશ અનાનુપૂર્વી રૂપ અને બે પ્રદેશો અવક્તવ્યક રૂપ છે. આ કારણે ત્રણ પ્રદેશરૂપ દેશની અપેક્ષાએ લોકમાં ન્યૂનતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. એટલે કે લોકના તે ત્રણ પ્રદેશો આનુપૂર્વી રૂપ નથી અને બાકીના સમસ્ત પ્રદેશો આનુપૂર્વી રૂપ છે. આ રીતે એ કથન સિદ્ધ થાય છે કે ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યને આશ્રિત કરીને ત્રણ પ્રદેશ ન્યૂન સમસ્ત લોકમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યની અવગાહના છે.

તથા (નાનાદવ્વાહં પંડુચ્ચ નિયમા) વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય નિયમથી જ સર્વલોકમાં અવગાહી

तथा-नैगमव्यवहारसम्मतानाम् अनानुपूर्वीद्रव्याणां पृच्छार्यां=प्रश्ने तु एवं विज्ञेयम्-एकं द्रव्यं प्रतीत्य अनानुपूर्वीद्रव्यं नो संख्येयतमभागे भवति, नो संख्ये-
येषु भागेषु भवति, नो असंख्येयेषु भागेषु भवति, नापि च सर्वलोके भवति,
किन्तु-असंख्येयतमभागे भवति। अयं भावः-एकं द्रव्यमाश्रित्यानानुपूर्वीद्रव्यं

स्थित आनुपूर्वी द्रव्यों के भेद से विभिन्न प्रकार के आनुपूर्वी द्रव्यों से समस्त लोक व्याप्त हैं। (नेगमव्यवहाराणं) नेगम व्यवहारनयसंमत (अणाणुपुव्वीदव्वाहं) अनानुपूर्वी द्रव्यों के (पुच्छाए) प्रश्नों में तो इस प्रकार समझना चाहिये (एगं दव्वं) एक द्रव्य की (पडुच्च) प्रतीति करके अर्थात् एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा करके-(नो संखेज्जइभागे होज्जा) अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यातवे भाग में अवगाही नहीं हैं (नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा संख्यात भागों में अवगाही नहीं हैं)(नो असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा)असंख्यात भागों में अवगाही नहीं हैं (नो सव्वलोए होज्जा)और न सर्वलोक में अवगाही हैं किन्तु (असंखेज्जइ भागे होज्जा) लोक के असंख्यातवे भाग में अवगाही हैं। अयं भावः-एक आनानुपूर्वीद्रव्य को लेकर जब यह विचार किया जाता है कि अनानु-पूर्वीद्रव्य लोक के कौन से भाग में अवगाहित है? तब यह उत्तर मिलता है कि असंख्यातवे भाग में ही अवगाही है। क्योंकि अनानुपूर्वी द्रव्य

(रडेधु) छे. अेटत्ते के लोकना त्थु आदि प्रदेशोमां रडेदा आनुपूर्वी द्रव्योना केदथी विभिन्न प्रकारना आनुपूर्वी द्रव्यो वडे समस्त लोक व्याप्त छे. (नेगम-व्यवहाराणं) नैगमव्यवहार नयसंमत (अणाणुपुव्वी दव्वाणं) अनानुपूर्वी द्रव्योना (पुच्छाए) प्रश्नोमां (विषयमां) तो आ प्रमाणे समज्जुं नेधअे- (एगं दव्वं पडुच्च) ने अेक अनानुपूर्वी द्रव्यनी अपेक्षाअे विचार करवामां आवे, तो (नो संखेज्जइभागे होज्जा) अनानुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यातमां भागमां अवगाही नथी, (नो संखेज्जेसु भागेषु होज्जा), लोकना संख्यात भागोमां पणु अवगाही नथी, (नो असंखेज्जेसु भागेषु होज्जा) असंख्यात भागोमां पणु अवगाही नथी, (नो सव्वलोए होज्जा) अने समस्त लोकमां पणु अवगाही नथी, पर-तु (असंखेज्जइभागे होज्जा) लोकना असंख्यातमां भागमां अवगाही छे. आ सधणा कथननो भावार्थं अे छे के अेक अनानु-पूर्वी द्रव्यनी भागतमां अेवो विचार करवामां आवे के "अेक अनानुपूर्वी द्रव्य लोकना केददा भागमां अवगाही छे? आ प्रश्ननो उत्तर अे छे के ते लोकना असंख्यातमां भागमां न अवगाही छे. कारणु के अनानुपूर्वी द्रव्य

लोकस्य संख्येयतमे भाग एव वर्तते, एकप्रदेशावगाढस्यैवानानुपूर्वीत्वेन विवक्षणात्, एकप्रदेशस्य च लोकाऽसंख्येयभागवर्तित्वादिति । नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु अनानुपूर्वीद्रव्याणि नियमात् सर्वलोकव्यापीनि भवन्ति, एकैकप्रदेशावगाढद्रव्यभेदानां समस्तलोकव्यापित्वादिति भावः ।

एवम्=अनानुपूर्वीद्रव्यवत् अवक्तव्यकद्रव्याण्यपि भणितव्यानि=वक्तव्यानि । अयं भावः—एकं द्रव्यमाश्रित्यावक्तव्यकद्रव्यमपि असंख्येयतमभागे एव भवति, द्विप्रदेशावगाढस्यैवावक्तव्यकद्रव्यत्वेनाभिधानात् प्रदेशद्वयस्य च लोकासंख्येय-

रूप से वही द्रव्य विवक्षित हुआ है, जो लोक के एकप्रदेश में ही-अवगाढ होता है । लोक का एकप्रदेश लोक के असंख्यातवे भाग में रहने वाला है । इसलिये अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के असंख्यातवे भाग में ही अवगाही माना गया है । (नाणा द्वाइं) नाना अनानुपूर्वीद्रव्यों की (पडुच्च) अपेक्षा लेकर अनेक अनानुपूर्वी द्रव्य (णियमा) नियम से (सव्वलोए होज्जा) सर्वलोक व्यापी माने गये हैं । क्योंकि एक एकप्रदेश में अवगाढ अनानुपूर्वीद्रव्यों के भेद समस्त लोक को व्याप्त किये हुए रहते हैं । (एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि) इसी प्रकार अनानुपूर्वी द्रव्य की तरह अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी जानना चाहिये । तात्पर्य कहने का यह है कि एक अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा से एक अवक्तव्यकद्रव्य भी लोक के असंख्यातवे भाग में ही अवगाही रहता है, क्योंकि लोक के प्रदेशद्वय में अवगाडहुए द्रव्य को अवक्त-

इये अनेक द्रव्य विवक्षित थयुं छे के जे लोकना अेक प्रदेशमां जे रडेहुं होय छे लोकना अेक प्रदेश लोकना असंख्यातमां भागमां रडेवै होय छे । ते कारणे अनानुपूर्वी द्रव्यने लोकना असंख्यातमां भागमां जे अवगाही मानवामां आव्युं छे ।

(नाणाद्वाइं पडुच्च) विविध अनानुपूर्वी द्रव्योंनी अपेक्षाये विचार करवामां आवे, तो (णियमा सव्वलोए होज्जा) तो तेभने नियमथी जे सर्वलोकव्यापी मानवामां आवेल छे, कारणे के अेक अेक प्रदेशमां अवगाढ अनानुपूर्वी द्रव्योंना लेहे समस्त लोकने व्याप्त करीने रडेवां होय छे । (एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि) अनानुपूर्वी द्रव्योंना जेपुं जे कथन अवक्तव्यक द्रव्यों विषे यथुं अहीं अडुथुं करवुं जेथं अे अेटले के अेक अवक्तव्यक द्रव्योंनी अपेक्षाये विचार करवामां आवे, तो अेभं कडेहुं जेथं अे के अेक अवक्तव्यक द्रव्य लोकना असंख्यातमां भागमां जे अवगाही होय छे, कारणे के लोकना जे प्रदेशमां जे अवगाहित थयेला द्रव्यने अवक्तव्यक

भागवर्तित्वात्। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु अवक्तव्यकद्रव्याणि सर्वलोके सन्ति, नाना-
द्रव्यापेक्षया द्विप्रदेशावगाढानामवक्तव्यकद्रव्याणां समस्तलोकव्यापित्वादिति भावः।

ननु—आनुपूर्वादीनि त्रीण्यपि द्रव्याणि सर्वलोकव्यापीनि प्रोच्यन्ते, इत्थं च
येष्वकाशप्रदेशेषु आनुपूर्वी, तेष्वेवाकाशप्रदेशेषु अनानुपूर्व्यवक्तव्यहृद्रव्यद्वयोरपि
सद्भावः प्रतिपादितो भवति, एवं च कथमेकस्यैव क्षेत्रस्य परस्परविरुद्धं भिन्न-
विषयम् आनुपूर्व्यादिव्यपदेशत्रयं स्यात्? इति चेत्, अत्रोच्यते—व्यादिप्रदेशाव-

व्यक द्रव्यरूप से कहा गया है। लोक के असंख्यात प्रदेशों की अपेक्षा
से असंख्यातवे भाग रूप पड़ते हैं। इसलिये अवक्तव्यक द्रव्य को लोक
के असंख्यातवे भागवर्ती माना गया है। तथा नाना अवक्तव्यकद्रव्यों
की अपेक्षा से जितने भी अवक्तव्यक द्रव्य हैं, वे सब लोक के दो २
प्रदेशों में व्यापक रहने के कारण सर्वलोकव्यापी माने गये हैं।

शंका—आनुपूर्वी आदि जो द्रव्य हैं वे सब ही लोकव्यापी हैं ऐसा
आप कहते हैं। सो जिन आकाश प्रदेशों में आनुपूर्वी द्रव्य रहते हैं।
उन्हीं आकाश प्रदेशों में इतर दो अनानुपूर्वी अवक्तव्यक द्रव्य भी रहते
हैं। यही बात इस कथन से प्रतिपादित होनी है। अतः इस प्रकार के
कथन से एक ही क्षेत्र में परस्पर विरुद्ध आनुपूर्वी आदि व्यपदेशत्रय
जो कि भिन्न भिन्न विषय से संबंधित है, कैसे संगत हो सकता है?

द्रव्य कडेवामां आवे छे. लोकना ते जे प्रदेशोने लोकना असंख्यात प्रदेशोनी
साथे सरभाववामां आवे तो लोकना असंख्यातमां लागनी परापर न होय
छे. ते कारणे न ओके अवक्तव्यक द्रव्यने लोकना असंख्यातमां लागमां न
रहेछुं मानवामां आव्युं छे. विविध अवक्तव्यक द्रव्योनी अपेक्षाये विचार-
वामां आवे तो ते सधनां अवक्तव्यक द्रव्यो लोकना अपजे प्रदेशोमां व्याप्त
होवाने कारणे तेमने सर्वलोकव्यापी मानवामां आव्यां छे.

शंका—आपे अहीं ओबुं प्रतिपादन कथुं छे के आनुपूर्वी आदि जे
द्रव्यो छे तेओ समस्त लोकव्यापी छे आपना आ कथन वडे तो ओबुं
प्रतिपादित थाय छे के जे आकाशप्रदेशोमां आनुपूर्वी द्रव्यो रहे छे, ओज
प्रदेशोमां अनानुपूर्वी द्रव्यो अने अवक्तव्यक द्रव्यो पशु रहे छे, आ प्रकारनुं
कथन संगत लागतुं नथी, कारणे के ओके न क्षेत्रमां परस्परथी विरुद्ध ओवां
आनुपूर्वी आदि द्रव्योना अवगाह केवी रीते संलपी शके? भिन्न भिन्न
विषयो साथे संबंधित आ न्होने ओके न क्षेत्रमां केवी रीते सदृभाव होई

गाढाद् द्रव्याद् भिन्नमेव तावदेकप्रदेशावगाढम्, ताभ्यां च भिन्नं द्विप्रदेशावगाढम् । इत्थं च आधेयस्यावगाहकद्रव्यस्य भेदादाधारस्याप्यवगाहस्य क्षेत्रस्य भेदः

शंकाकार की इस शंका का भाव यह है कि एकही क्षेत्र में आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक इन तीनों की संगति कैसे हो सकती है? क्योंकि यह आनुपूर्वी आदिका भाव एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि इनका विषय अपना २ भिन्न २ है। यदि ये तीनों व्याप्त रूप होते तो एक क्षेत्र में घटित भी हो जाते—परन्तु ऐसे तो ये—नहीं हैं। ये तो तीनों व्यापक द्रव्य हैं। इस प्रकार जो आकाशप्रदेश आनुपूर्वी रूप से कहे जावेंगे वे ही अनानुपूर्वी और अवक्तव्यकरूप से कैसे व्यपदिष्ट हो सकते हैं? इसलिये अनानुपूर्वी आदिभाव को व्यापक मानने पर एक ही आकाशरूप क्षेत्र में आनुपूर्वी आदि व्यपदेश भिन्न विषयवाला होने के कारण परस्पर विरुद्ध पडता है।

उत्तर—आकाशरूप क्षेत्र यदि एकही माना जाता तो इस प्रकार की शंका संगत हो सकती—परन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि व्यादिप्रदेशों में अवगाढ जो आनुपूर्वीद्रव्य है उससे एक प्रदेशागाढ द्रव्य भिन्न है, और इन दोनों से द्विप्रदेशावगाढ द्रव्य भिन्न है। इस प्रकार आधेय रूप जो

शके? शंकाकारनी शंकानो लावार्थं अवेो छे के आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्योनुं अस्तित्व अेक न क्षेत्रमां डेवी रीते संलवी शके? आ आनुपूर्वी आदि लावेो परस्परथी जिलकुल-विद्ध शुण्धर्मा धरावे छे, ते प्रत्येकनो विषय परस्परथी लिन्न लिन्न छे, छतां तेमने आप सर्वदोक् व्यापी डेवी रीते कडे छे? ने ते त्रणे व्याप्य इप डेत तो अेक क्षेत्रमां तेमनो सद्वलाव मानी शकत, परन्तु तेओ व्याप्य इप नथी ते त्रणे व्यापक द्रव्य इप छे. आ परिस्थितिमां ने आकाशप्रदेशोने आनुपूर्वी इपे ओणभवामां आवशे, अेन आकाशप्रदेशोने आनुपूर्वी अने अवक्तव्यक इपे डेवी रीते कडी शकशे? तेथी अनानुपूर्वी आदि लावेोने व्यापक मानवामां आवे तो अेक न आकाशइप क्षेत्रमां आनुपूर्वी आदि व्यपदेश लिन्न विषयवाणेो डोवाने कारणे परस्परथी विद्ध पडे छे.

उत्तर—आकाश इप क्षेत्र ने अेक न मानवामां आण्युं डेत तो आ प्रकारनी शंका संगत गणी शकत. परन्तु अेबुं नथी कारणे के त्रणे आदि प्रदेशोमां अवगाढ ने आनुपूर्वी द्रव्य छे, तेना करतां अेक प्रदेशावगाढ अनानुपूर्वी द्रव्य लिन्न छे अने ते अने करतां द्विप्रदेशावगाढ अवक्तव्यक द्रव्य लिन्न छे. आ रीते आधेय इप ने अवगाहक द्रव्य छे, तेना लेदथी

स्यादेव । तथा च व्यपदेशभेदो युक्त एव । दृश्यते चानन्तधर्माध्यासिते वस्तूनि तत्सहकारि सन्निधानात्तत्तद्धर्माभिव्यक्तौ समकालं व्यपदेशभेदः, यथा खड्गकुन्त-कवचादियुक्ते देवदत्ते खड्गी कुन्ती कवचीत्यादिव्यपदेशभेद इति नास्ति कश्चिद् दोषः । इति क्षेत्रद्वारम् ॥सू० ११२॥

अथ स्पर्शनाद्वारं प्ररूपयितुमाह—

मूलम्—गेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखे-ज्जइभागं फुसंति ? असंखिज्जइभागं फुसंति ? संखेज्जे भागे फुसंति जाव सव्वलोयं फुसंति ? एगं दव्वं पडुच्च संखिज्जइभागं वा फुसइ, असंखिज्जइभागं वा संखेज्जे भागे वा असंखेज्जे भागे वा देसूणं वा लोगं फुसइ । नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोयं फुसंति । अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च जहा खेत्तं नवरं फुसणा भाणियव्वा ॥सू० ११३॥

अवगाहकद्रव्य है उसके भेद से आधाररूप अवगाह्य क्षेत्रमें भेद हो जाता ही है । इसप्रकार होने से व्यपदेश भेद वहां होना युक्त ही है । असंगत नहीं । भिन्न २ सहकारियों की सन्निधानता से तत्तद्धर्म की अभिव्यक्ति होनेपर अनन्त धर्मात्मक एक ही वस्तु में युगपत् व्यपदेश भेद होना देखा जाता है । जैसे खड्ग, कुन्त, कवच, आदि से युक्त एक ही-देवदत्त व्यक्ति में खड्गी, कुन्ती कवची इत्यादि व्यपदेश भेद देखा जाता है अतः अनानुपूर्वी आदि भाव को एक क्षेत्र में व्यापक माननेपर उसमें आनुपूर्वी आदिरूप से व्यपदेश निर्दोष है । ॥ सू० ११२ ॥

आधाररूप अवगाह्य क्षेत्रमां लेह आवी न नय छे. आ प्रमाणे थवाथी त्यां व्यपदेश लेह थवे ते युक्त न लागे छे—असंगत लागतो नथी लुदा लुदा सहकारीआनी सन्निधानता वडे ते ते धर्मनी अलिव्यक्ति थाय त्यारे अनन्त धर्मात्मक अेक न वस्तुमां युगपत् (अेक साथे) व्यपदेश लेह थतो लेवामां आवे छे, लेमके अड्ग, कुन्त, कवच आदि वडे युक्त अेक न देवदत्त आदि व्यक्तिमां अड्गी, कुन्ती, कवची इत्यादि व्यपदेश—लेह लेवामां आवे छे. तेथी अनानुपूर्वी आदि लावोने अेक क्षेत्रमां व्यापक मानवामां आवे तो तेमां आनुपूर्वी आदि रूप्ते व्यपदेश निर्दोष छे. ॥ सू० ११२ ॥

छाया — नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? असंख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? संख्येयान् भागान् स्पृशन्ति ? यावत् सर्वलोकं स्पृशन्ति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य संख्येयतमभागं वा स्पृशति, असंख्येयतमभागं वा संख्येयान् भागान् वा असंख्येयान् भागान् वा देशोऽनं वा लोकं स्पृशति । नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति । अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्य-कद्रव्याणि च यथाक्षेत्रं नवरं स्पर्शना भणितव्या ॥ सू० ११३ ॥

टीका — 'नेगमव्यवहाराणं' इत्यादि । नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं लोकस्य संख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? असंख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? इत्येवं पूर्व-वदेन प्रश्ना विज्ञेयाः । उत्तरमाह — 'एगं दव्वं' इत्यादि । एकं द्रव्यं प्रतीत्य आनुपूर्वी द्रव्यं संख्येयतमभागं वा स्पृशति, असंख्येयतमभागं वा स्पृशति, संख्येयान् वा भागान्, असंख्येयान् वा भागान् स्पृशति, देशोऽनं वा

अब सूत्रकार स्पर्शनाद्वार की प्रपरुणा करते हैं

“नेगमव्यवहाराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ-प्रश्न- (नेगमव्यवहाराणं आणुपुञ्जी दव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति ?) नैगमव्यवहारनय संमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवे भाग का स्पर्श करते हैं ? (असंखेज्जइभागं फुसंति ?) या असंख्यातवे भाग का स्पर्श करते हैं ? (संखेज्जेभागे फुसंति) या संख्यात भागों का स्पर्श करते हैं ? (जाव सव्वलोयं फुसंति) या यावत् सर्वलोक का स्पर्श करते हैं ? (एगं दव्वं पडुच्च)

उत्तर-एक द्रव्य को आश्रित करके (संखिज्जइभागं वा) आनुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यातवे भाग को (फुसइ) स्पर्श करता है — (असंखिज्जइभागं वा) असंख्यातवे भाग का स्पर्श करता है (संखिज्जे

इसे सूत्रकार स्पर्शनाद्वारनी प्ररुपणा करे छे —

“नेगमव्यवहाराणं” इत्यादि —

शब्दार्थ-प्रश्न- (नेगमव्यवहाराणं आणुपुञ्जीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति, असंखिज्जइभागं फुसंति, संखेज्जे भागे फुसंति, जाव सव्वलोयं फुसंति ?) नैगमव्यवहारनयसंमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्ये शुं लोकना संख्यातमा लागेना स्पर्श करे छे ? के असंख्यातमा लागेना स्पर्श करे छे ? के संख्यात लागेना स्पर्श करे छे ? के असंख्यात लागेना स्पर्श करे छे ? के समस्त लोकना स्पर्श करे छे ?

उत्तर-(एगं दव्वं पडुच्च) अके द्रव्यनी अपेक्षाये विचार करवाभा आवे, तो (संखिज्जइभागं वा फुसइ) आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यातमा लागेना पडु स्पर्श करे छे, (असंखिज्जइभागं वा) असंख्यातमा लागेना पडु

लोकं स्पृशति । अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्योर्निरवकाशताप्रसङ्गात् पूर्ववत् लोकस्य देशोनानुपूर्वीद्रव्यस्पर्शना बोध्येति भावः । नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु आनुपूर्वीद्रव्याणि नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति । अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां स्पर्शना तु अत्रैवाव्यवहितपूर्वोक्तक्षेत्रद्वारवद् बोध्या । इति स्पर्शनाद्वारम् ॥सू० ११३॥

भागे वा असंखेज्जे भागे वा) संख्यात भागों को स्पर्श करता है, असंख्यात भागों को स्पर्श करता है' (देसूणं वा लोगं फुसइ) देशोन लोक का भी स्पर्श करता है । (नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वल्लोयं फुसंति) नाना द्रव्यों की अपेक्षा करके तो आनुपूर्वीद्रव्य नियम से सर्वलोक का स्पर्श करते हैं (अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च जहा खेत्तं नवरं फुसणा भाणियव्वा) अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की स्पर्शना तो यहीं पर अव्यवहित पूर्वोक्त क्षेत्रद्वार की तरह जानना चाहिये ।

भावार्थ—नैगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यातवे भाग की कोई एक लोक के असंख्यातवे भाग की कोई एक लोक के संख्यात भागों की, कोई एक असंख्यात भागों की, और कोई एक देशोन सर्वलोक की स्पर्शना करते हैं । यहाँ पर जो कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य को देशोन लोक की स्पर्शना करने का कथन किया है सो उसका कारण यह है कि यदि आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोक की स्पर्शना करे तो अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को अवकाश प्राप्ति का अभाव होगा ।

स्पर्शं करे छे, (संखेज्जे भागे वा, असंखेज्जे भागे वा) संख्यात लागोने पणु स्पर्शं करे छे, असंख्यात लागोने पणु स्पर्शं करे छे, (देसूणं वा लोगं फुसइ) अने देशोन लोकने पणु स्पर्शं करे छे. (नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वल्लोयं फुसंति) विविध द्रव्योनी अपेक्षाये विचार करवामां आवे, तो आनुपूर्वी द्रव्यो नियमथी सर्वलोकने स्पर्शं करे छे. (अणाणुपुव्वी दव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च जहा खेत्तं नवरं फुसणा भाणियव्वा) अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्योनी स्पर्शना विषेनुं कथन पूर्वोक्त क्षेत्रद्वारना कथन सुज्ज ७ समज्जुं लेधये.

भावार्थ—नैगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्योमांतुं केधं अेक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यातमां लागनी, केधं अेक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यात लागोनी, केधं अेक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना असंख्यात लागोनी अने केधं अेक आनुपूर्वी द्रव्य देशोन सर्वलोकनी स्पर्शना करे छे. अही " अेक आनुपूर्वी द्रव्य देशोन सर्वलोकनी स्पर्शना करे छे." आ प्रकारनुं जे कथन थयुं छे तेनुं कारण अे छे के ले अेक आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोकनी स्पर्शना करतुं होय, तो अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक

અથ કાલદ્વારપ્રરૂપયતિ—

મૂલ્મ—નેગમવવહારાણં આણુપુવ્વીદ્વાઈં કાલઓ કેવચ્ચિરં
હોઈ ? ઇગં દઢ્વં પડુચ્ચ જહન્નેણં ઇગં સમયં ઉક્કોસેણં અસં-
ચ્ચિજ્જં કાલં । નાનાદઢ્વાઈં પડુચ્ચ ણિયમા સઢ્વંદ્ધા । ઇવં
દોણિણ વી ॥સૂ૦ ૧૧૪॥

હાયા—નેગમવવહારયોઃ આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ કાલતઃ કિયચ્ચિરં ભવન્તિ ?
ઇકં દ્રવ્યં પ્રતીત્ય જઘન્યેન ઇકં સમયમ્, ઉત્કર્ષેણ અસંખ્યેયં કાલમ્ । નાના-
દ્રવ્યાણિ પ્રતીત્ય નિયમાત્ સર્વાદ્ધા । ઇવં દ્વે અપિ ॥મૂ૦ ૧૧૪॥

ટીકા—‘નેગમવવહારાણં’ ઇત્યાદિ ।

નેગમવવહારસમ્મતાનિ આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ કાલતઃ કિયચ્ચિરં ભવન્તિ ? ઇતિ
પ્રશ્નઃ । ક્ષેત્રાવગાહપર્યાયસ્ય પ્રાધાન્યવિવક્ષયા ત્ર્યાદિપ્રદેશાવગાહદ્રવ્યાણામેવાનુ-

અતઃ ઇન દોનોં દ્રવ્યોં કો ઓ અવકાશ પ્રાપ્ત હો ઇસલિયે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય
કો સ્પર્શના દેશોન લોક કો કહી ગઈ હૈ । નાનાં દ્રવ્યોં કો અપેક્ષા યે
તોનોં હી દ્રવ્ય નિયમ સે સર્વલોક કો સ્પર્શના કરતે હૈ ॥સૂ૦ ૧૧૩॥

અથ સૂત્રકાર કાલદ્વાર કો પ્રરૂપણા કરતે હૈ—

“નેગમવવહારાણં આણુપુવ્વી” ઇત્યાદિ ।

શબ્દાર્થ—(નેગમવવહારાણં) નેગમવવહારનયસંમત (આણુપુવ્વી-
દઢ્વાઈં) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય (કાલઓ) કાલકો અપેક્ષા (કેવચ્ચિરં
હોઈ) કિતને સમયતક આનુપૂર્વી રૂપ સે રહતે હૈ ? પૂછને ઘાલે કા યહ
આશય હૈ કિ અનાનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો કા ક્ષેત્ર મેં ત્ર્યાદિ પ્રદેશોં મેં અવ-

દ્રવ્યોને સ્પર્શના કરવા માટેના સ્થાનનો અવકાશ જ ન રહે. તે બંને દ્રવ્યની
સ્પર્શના પણ અવકાશ મળી રહે તે માટે આનુપૂર્વી દ્રવ્યની સ્પર્શના સમસ્ત
લોકમાં કહેવાને બદલે દેશોન લોકમાં કહી છે. વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ
વિચાર કરવામાં આવે, તો આનુપૂર્વી આદિ ત્રણે દ્રવ્યો નિયમથી જ
સર્વલોકની સ્પર્શના કરે છે. ॥સૂ૦ ૧૧૩॥

હવે સૂત્રકાર કાળદ્વારની પ્રરૂપણા કરે છે—

“નેગમવવહારાણં આણુપુવ્વી” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(નેગમવવહારાણં) નેગમવવહાર નયસંમત (આણુપુવ્વીદઢ્વાઈં)
સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો (કાલઓ) કાળની અપેક્ષાએ (કેવચ્ચિરં હોઈ ?) કેટલા
સમય સુધી આનુપૂર્વી રૂપે રહે છે ? એટલે કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનો ક્ષેત્રમાં-
ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થઈને રહેવાનો કાળ કેટલો છે ? કારણ કે

पूर्वादिभावः पूर्वमुक्तः, तेषामानुपूर्व्यादिद्रव्याणामवगाहस्थितिकालः क्रियान् भवतीति प्रभुराशयः । उत्तरमाह—‘एगं द्रव्यं’ इत्यादि । एकं द्रव्यं प्रतीत्य कालतः= कालमाश्रित्य आनुपूर्वीद्रव्यं जघन्येन एकं समयं वर्तते । इह द्विप्रदेशावगाहरपवा एक प्रदेशावगाहस्य वा द्रव्यस्य परिणामवैचित्र्यात् प्रदेशत्रयाद्यवगाहभवने आनुपूर्वीद्रव्यप्रवेशः संजातः । एकं समयं तद्भावेन स्थित्वा पुनः पूर्ववदेव द्विप्रदेशावगाहमेकप्रदेशावगाहं वा तद् द्रव्यं संजातम्, अतो जघन्यत आनुपूर्वीद्रव्याणामेकं समयमवस्थितिं बोधयेति भावः । तथा—उत्कर्षेण असंख्येयं कालं भवति । अयं

गाह रूप से रहने का समय कितना है ? क्यों कि यह पहिले कहा जा चुका है कि क्षेत्र में अवगाह पर्याय की प्रधानता रूप से विवक्षा है । और इसलिये ज्वादि प्रदेशोंमें अवगाह हुए द्रव्योंमें ही आनुपूर्वी आदि भाव का कथन क्षेत्रानुपूर्वी में किया गया है । अतः पूछने वाले ने यहाँ यह पूछा है कि वे आनुपूर्वी आदि द्रव्य ज्वादि प्रदेश रूप क्षेत्रमें कितने समय तक आनुपूर्वी आदि रूप से अवगाहित रहते हैं ?

उत्तर—(एगं) एक द्रव्य की (पहुँच) अपेक्षा लेकर (जहन्नेणं) कम से कम (एगं समयं) एकसमय तक और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट-ज्वादा से ज्वादा (असंखिज्जं कालं) असंख्यात काल तक एक आनुपूर्वीद्रव्य क्षेत्र में अवगाहित रहता है । तात्पर्य कहने का यह है कि द्विप्रदेश में अवगाहित या एक प्रदेश में अवगाहित हुआ द्रव्य परिणामन की विचित्रता से जब प्रदेश आदि में अवगाहित होता है उस समय उसमें आ-

ये बात तो पहले ही प्रकट करवाया आनी सुधी छे के क्षेत्रमा अवगाह पर्यायनी प्रधान रूपे विवक्षा छे, अने तेथी न त्रयु आदि प्रदेशोमा अवगाहित थयेलां द्रव्योमां न आनुपूर्वी आदि बावनुं कथन क्षेत्रानुपूर्वीमां करवायां आबुं छे, तेथी अही प्रश्नकर्तानो ज्येवो प्रश्न छे के ते आनुपूर्वी आदि द्रव्य त्रयु आदि प्रदेशरूप क्षेत्रमां केटला समय सुधी आनुपूर्वी आदि रूपे अवगाहित रहे छे ?

उत्तर—(एगं द्रव्यं पहुँच) ओके द्रव्यनी अपेक्षाजे विचार करवायां आवे, तो (जहन्नेणं एग समयं) ओके आनुपूर्वी द्रव्य ओछांमां ओछा ओके समय सुधी अने (उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं) वधारेमां वधारे असंख्यात काल सुधी क्षेत्रमां अवगाहित रहे छे, आ कथननो बावार्थ नीचे प्रमाणे छे—जे प्रदेशोमां अवगाहित थयेलुं अथवा ओके प्रदेशमां अवगाहित थयेलुं द्रव्य परिणामननी विचित्रताथी न्यारे त्रयु आदि प्रदेशोमां अवगाहित थाय छे,

भावः—यदा तदेव द्रव्यमसंख्येयं कालं तद्भावेन स्थित्वा पुनस्तथैव - द्विप्रदेशाव-
गाढमेकप्रदेशावगाढं वा जायते तदाऽऽनुपूर्वीद्रव्यस्य उत्कर्षतोऽसंख्येयं कालं
स्थितिर्भवति । अनन्तं कालं तु स्थितिर्न भवति, एकप्रदेशावगाढस्यैकद्रव्यस्य
उत्कर्षतोऽसंख्येयकालमेवावस्थानात् । तथा नानाद्रव्याणि प्रतीत्य आनुपूर्वीद्रव्याणि
नियमात् सर्वाद्वा=सर्वकालमेव भवन्ति-वर्तन्ते इत्यर्थः । त्र्यादिप्रदेशावगाढद्रव्य-

नुपूर्वीं ऐसा व्यपदेश हो जाता है । सो वह द्रव्य एक समय तक आनु-
पूर्वीं रूप से वहां अवगाहित रहकर बाद में पहिले की तरह ही या तो
द्विप्रदेश में अवगाहित हो जाता है या एक प्रदेश में अवगाहित हो
जाता है इसलिये आनुपूर्वीं द्रव्यों की त्र्यादि प्रदेशों में रहने की स्थिति
एक समय की कही गई है । इसी प्रकार से जब आनुपूर्वीं द्रव्य—
असंख्यात काल तक तद्भाव से स्थित रहकर पुनः द्विप्रदेशावगाही बन
जाता है तब आनुपूर्वीं द्रव्य की उत्कृष्ट रूप से असंख्यात काल की स्थिति
होती है ऐसा जानना चाहिये । अनन्त काल तक वहाँ पर रहने की,
उसकी स्थिति नहीं होती है । क्योंकि एक अवगाहमें एक द्रव्य असं-
ख्यात काल तक ही ज्यादा से ज्यादा रह सकता है । तथा (जाणा-
दव्वाहं पडुच्च) अनेक आनुपूर्वीं द्रव्यों की अपेक्षा से आनुपूर्वीं द्रव्यों
का अवस्थान (नियमा सव्वद्वा) नियम से सार्वकालिक है । अर्थात्

त्यारे तेमां 'आनुपूर्वीं' पदने व्यपदेश थाय छे-तेने आनुपूर्वीं रूपे कही
शक्य छे. ते द्रव्य ओछामां ओछुं ओक समय सुधी त्यां आनुपूर्वीं रूपे
अवगाहित रहिने त्यार भाद पडेलानी नेम न जे प्रदेशामां के ओक प्रदेशमां
अवगाहित थई नय छे. तेथी आनुपूर्वीं द्रव्योनी त्रयु आदि प्रदेशामां
रहेवानी नवन्य स्थिति ओक समयनी कही छे. ओन् प्रमाणे आनुपूर्वीं
द्रव्य असंख्यात काल सुधी आनुपूर्वीं द्रव्य रूपे अवगाहित रहिने त्यार
भाद जे प्रदेशावगाही के ओक प्रदेशावगाही अनि नय छे. आ प्रकारे
आनुपूर्वीं द्रव्यनी आनुपूर्वीं द्रव्य रूपे रहेवानी उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात
कालनी थई नय छे. ते अनंत काल सुधी त्यां आनुपूर्वीं द्रव्य—रूपे रही
शक्तुं नथी, कारण के ओक द्रव्य ओक अवगाहमां वधादेमां वधादे असंख्यात
काल सुधी न रही शके छे.

तथा (जाणादव्वाहं पडुच्च) अनेक आनुपूर्वीं द्रव्योनी अपेक्षाओ
विचार करवामां आवे, तो आनुपूर्वीं द्रव्योनी आनुपूर्वीं द्रव्यो रूपे रहे-
वानी स्थिति (नियमा सव्वद्वा) नियमथी सार्वकालिक कही छे. ओटले के

भेदानां सर्वदैवावस्थानात् । एवं द्वे अपि । अयं भावः—यदा एकं द्रव्यमेकस्मिन् प्रदेशेऽवगाढमेकं समयं स्थित्वा ततो द्रव्यादिप्रदेशावगाढं भवति, तदा अनानुपूर्वी-द्रव्यस्य जघन्यत एकं समयं स्थितिः । यदा तु तदेवासंख्यातं कालं तद्रूपेण स्थित्वा ततो द्रव्यादिप्रदेशावगाढं भवति, तदा—उत्कर्षतोऽसंख्येयोऽवगाहस्थितिकालः ।

द्रव्यादिप्रदेशों में अवगाढ आनुपूर्वीद्रव्यों के जो भेद हैं उनका अवस्थान सर्वदा ही रहता है । (एवं दोष्णिचि) इसी प्रकार से जब एक अनानुपूर्वी द्रव्य एक प्रदेश में एक समय तक अवगाढ रहकर बाद में द्रव्यादिप्रदेशों में अवगाढ हो जाता है तब उस अनानुपूर्वी द्रव्य की जघन्य से एक समय की स्थिति मानी जाती है । तथा जब वही अनानुपूर्वीद्रव्य असंख्यात समय तक अनानुपूर्वी द्रव्यरूप से एक प्रदेश में अवगाढ रहकर बाद में द्रव्यादि प्रदेशों में अवगाढ-स्थित-हो जाता है तब उत्कृष्ट से असंख्यात काल तक ही उस अनानुपूर्वीद्रव्यकी उस एक प्रदेश में रहने की स्थिति मानी जाती है, तथा अनेक अनानुपूर्वी द्रव्योंकी अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्यों की स्थिति का काल एकप्रदेश में अवगाढ हुए अनानुपूर्वी द्रव्यके भेदों का सर्वदा ही सद्भाव होने से सार्वकालिक माना गया है । द्विप्रदेश में अवगाढ अवक्तव्यकद्रव्य का एक समय के बाद एक प्रदेश में अथवा त्रयादि प्रदेशों में अवगाहित हो जाने पर जघन्य से अवगाह

त्रय आदि प्रदेशोभां अवगाहित न् अनानुपूर्वी द्रव्येना भेदो छे तेमनु' अस्तित्व सदा रहे छे न (एवं दोष्णिचि) अत्र प्रमाणे अत्र अनानुपूर्वी द्रव्यनी जघन्य स्थिति पणु अत्र समयनी कडी छे. अटवे के अत्र अनानुपूर्वी द्रव्य आछाभां आछु' अत्र समय सुधी अत्र प्रदेशभां अवगाहित रहिने त्थार भाद अत्र आदि प्रदेशोभां अवगाहित थर्ष लय छे. तेथी न अत्र अनानुपूर्वी द्रव्यनी जघन्य स्थिति अत्र समयनी कडी छे. परन्तु त्थारे अत्र अनानुपूर्वी द्रव्य असंख्यात समय सुधी अत्र प्रदेशभां अवगाहित रहिने त्थार भाद अत्र आदि प्रदेशोभां अवगाढ (स्थित) थर्ष लय छे, त्थारे ते अनानुपूर्वी द्रव्यनी ते अत्र प्रदेशभां रहवानी उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात कालनी मनाय छे. न् अनेक अनानुपूर्वी द्रव्येनी अपेक्षाअत्र विचार करवामां आवे, तो अनेक अनानुपूर्वी द्रव्येनी अपेक्षाअत्र अनानुपूर्वी द्रव्येनी स्थितिने काल अत्र प्रदेशभां अवगाहित थयेदा अनानुपूर्वी द्रव्येना भेदोःनो सर्वदा सद्भाव होवाथी सार्वकालिक मानवामां आव्यो छे

अत्र प्रदेशोभां अवगाढ (स्थित) अवक्तव्यक द्रव्य अत्र समय पछी अत्र प्रदेशभां अथवा त्रय आदि प्रदेशोभां अवगाहित थर्ष लय, तो जघन्यनी

નાનાદ્રવ્યાણ્યાશ્રિત્ય તુ સર્વકાલમ્, એક પ્રદેશાવગાઠદ્રવ્યભેદાનાં સર્વદૈવ સદ્ભાવાત્ ।

અવક્તવ્યકદ્રવ્યસ્ય તુ દ્વિપ્રદેશાવગાઠસ્ય સમયાદૂર્ઘ્વમેકસ્મિન્ પ્રદેશે ઝ્યાદિષુ વા પ્રદેશેષ્વવગાહપ્રતિપત્તૌ જઘન્યત એકઃ સમયોઽવગાહસ્થિતિકાલઃ અસંખ્યેય-કાલાદૂર્ઘ્વ દ્વિપ્રદેશાવગાહં પરિત્યજતસ્તસ્યાવક્તવ્યકદ્રવ્યસ્ય ઉત્કર્ષતોઽસંખ્યેયો-ઽવગાહસ્થિતિકાલઃ સિધ્યતિ । નાના દ્રવ્યાણ્યાશ્રિત્ય તુ સર્વકાલં, દ્વિપ્રદેશાવગાઠ-દ્રવ્યભેદાનાં સદૈવ સદ્ભાવાદિતિ । સમાનવક્તવ્યત્વાદાહ—‘એવં દોષિણિ વિ’—ત્તિ—એવં દ્વે અપિ વોધ્યે ॥સૂ૦ ૧૧૪॥

સ્થિતિ કા કાલ એક સમય હૈ । તથા અસંખ્યાત કાલ કે બાદ દ્વિપ્રદેશોં મેં અપને અવગાહ કો છોડને વાલે ઉસ અવક્તવ્યકદ્રવ્ય કા ઉત્કૃષ્ટ રૂપ સે અવગાહ સ્થિતિ કા કાલ અસંખ્યાતકાલ હૈં । તથા નાના અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં કી અપેક્ષા દ્વિપ્રદેશ મેં અવગાઠ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય કે ભેદોં કા સર્વદા હી સદ્ભાવ રહને કે કારણ ઉનકા અવગાહ—સ્થિતિકા કાલ સર્વ-કાલ માના ગયા હૈ । હસપ્રકાર આનુપૂર્વોં દ્રવ્ય કી તરહ હન દોનોં દ્રવ્ય કી અવગાહ—સ્થિતિ કા સમય જાનના ચાહિયે ।

ભાવાર્થ—હસ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકાર ને યહ સ્પષ્ટ કિયા હૈ કિ આનુ-પૂર્વોં આદિ દ્રવ્ય ઝ્યાદિ પ્રદેશરૂપ ક્ષેત્ર મેં અપને ૨ રૂપ મેં કબ તક સ્થિત રહતે હૈં । હન બારોં કા ઉત્તર ઉન્હોંને એક દ્રવ્ય ઓર અનેક દ્રવ્ય કો આશ્રિત કરકે દિયા હૈ । જિસકા નિષ્કર્ષાર્થ યહ હૈ કિ આનુપૂર્વોં દ્રવ્ય ઝ્યાદિ પ્રદેશોં મેં એક સમય તક સ્થિત રહકર યદિ એક યા દ્વિપ્રદેશ

અપેક્ષાએ તેની અવગાહસ્થિતિનો કાળ એક સમયનો કહ્યો છે. તથા અસં-ખ્યાત કાળ બાદ એ પ્રદેશોમાંના પોતાના અવગાહને છોડનારા તે અવક્ત-વ્યક દ્રવ્યની વધારેમાં વધારે અવગાહસ્થિતિ અસંખ્યાતકાળની કહી છે. તથા અનેક અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો એ પ્રદે-શોમાં અવગાઠ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના લેદોનો સર્વદા સદ્ભાવ જ રહેવાને કારણે તેમની અવગાહસ્થિતિ સાર્વકાલિક માનવામાં આવી છે. આ પ્રકારે આ બંને દ્રવ્યોની અવગાહસ્થિતિનો કાળ આનુપૂર્વોં દ્રવ્યોની અવગાહસ્થિતિ કાળ પ્રમાણે જ સમજવો જોઈએ.

ભાવાર્થ—આ સૂત્રમાં સૂત્રકારે એ વાત સ્પષ્ટ કરી છે કે આનુપૂર્વોં આદિ દ્રવ્યો ત્રણ આદિ પ્રદેશોરૂપ ક્ષેત્રમાં પોતપોતાના મૂળ રૂપે કેટલા કાળ સુધી અસ્તિત્વમાં રહે છે? આ વાતનો ઉત્તર સૂત્રકારે એક દ્રવ્ય અને અનેક દ્રવ્યોને અનુલક્ષીને આપ્યો છે. આ સમસ્ત સૂત્રનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—આનુપૂર્વોં દ્રવ્ય ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં એક સમય સુધી આનુપૂર્વોં દ્રવ્ય-

अथान्तरद्वारं प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्—णोगमववहाराणं आणुपुर्वीद्विषणमंतरं कालओ केवच्चिरं
होई? तिणहंपि एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं
असंखेज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं ॥सू० ११५॥

में अवगाहित हो जाता है तो वहाँ पर एक अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा
आनुपूर्वी द्रव्य का स्थिति काल माना जाता है। और यही एक आनुपू-
र्वीद्रव्य उन त्र्यादि प्रदेशों में असंख्यात काल तक अवगाहित रहकर
षाद में एकप्रदेश या दो प्रदेश में अवगाहित हो जाता है तो इस स्थिति
में इसका समय असंख्यात काल का माना जाता है। यह संख्यात
काल का समय उत्कृष्ट है। और एक समय का काल जघन्य है, नाना
आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा से यह समय सर्वदा का है क्योंकि त्र्यादि
में ऐसा कोई सा भी समय नहीं है कि जिसमें कोई न कोई आनुपूर्वी
द्रव्य का भेद अवगाहित न हो। इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और
अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी ऐसा ही वक्तव्य निर्धारित
कर लेना चाहिये ॥ सू० ११४ ॥

इपे स्थित रहीने जे ओक प्रदेशमां अथवा जे प्रदेशोमां अवगाहित थछ
जाय छे, तो जे परिस्थितिमां ओक आनुपूर्वी द्रव्यनी अपेक्षाजे आनुपूर्वी
द्रव्यने। स्थितिकाण ओक समयने। गणाय छे, परन्तु ओज आनुपूर्वी द्रव्य
जे ते त्रणु आदि प्रदेशोमां असंख्यात काण सुधी अवगाहित रहीने त्यर
भाह ओक प्रदेशमां अथवा जे प्रदेशोमां अवगाहित थछ जाय, तो जेवी
परिस्थितिमां तेने। स्थितिकाण असंख्यातकाणने। मानवामां आवे छे आ
असंख्यातकाणना समयने तेने। उकृष्ट काण समजवे। अने ओक समयना
पूरेकित काणने तेने जघन्य काण समजवे। अनेक आनुपूर्वी द्रव्योनी
अपेक्षाजे विचार करवामां आवे तो ते समय सार्वकालिक छे, कारण के
त्रणु आदि प्रदेशोमां जेवे। केछ पणु समय नथी के जेमां केछने केछ
आनुपूर्वी द्रव्यने। लेह अवगाहित न होय अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक
द्रव्योना ओक अने जे प्रदेशोमां रहेवाना काणना संबंधमां पणु आनुपूर्वी
द्रव्योना काणना जेवुं जे कथन समजवुं ॥सू० ११४॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ? त्रयाणामपि एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् ॥सू० ११५॥

टीका—‘नेगमव्यवहाराणं’ इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मतानामानुपूर्वीद्रव्याणाम् अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह—‘तिण्हं पि’ इत्यादि। त्रयाणाम्=आनुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणाम् एकं समयं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयमन्तरम्। उत्कर्षेण असंख्येयं कालमन्तरम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु नास्ति अन्तरम्। प्रश्नकोटौ आनुपूर्वीद्रव्याण्याश्रित्य प्रश्नः क्रियते

अत्र सूत्रकार अन्तरद्वार का प्रतिपादन करते हैं—

“नेगमव्यवहाराणं” इत्यादि।

शब्दार्थ—(नेगमव्यवहाराणं) नैगम व्यवहारसंमत (आणुपुञ्जी-द्वाराणं) आनुपूर्वी द्रव्यों का (अंतरं) अन्तर-व्यवधान-(कालभो) कालकी अपेक्षा (कियच्चिरं होई) कितने समय का होता है?

उत्तर—(तिण्हं पि एगं द्रव्यं पडुच्च) आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, और अवक्तव्यक इन द्रव्यों के एक समय को आश्रित करके (जहन्ने णं) जघन्य से (एकं समयं) एक समयका अंतर है (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (असंखेज्जं कालं) असंख्यातकाल का अंतर है। (नाणा द्रव्वाइं पडुच्च) तथा नाना द्रव्यों की अपेक्षा करके (णत्थि अंतरं) कोई अन्तर नहीं है।

शंका—प्रश्न कोटि में आनुपूर्वी द्रव्यों को आश्रित करके प्रश्न किया गया

इसे सूत्रकार अन्तरद्वारतुं निरूपण करे थे—

“नेगमव्यवहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(नेगमव्यवहाराणं) नैगमव्यवहार संमत (आणुपुञ्जी द्रव्याणं) आनुपूर्वी द्रव्योतुं (अन्तरं) अन्तर (व्यवधान, आंतरं) (कालभो कियच्चिरं होई) कालकी अपेक्षाके कितना समयतुं डोय थे ?

उत्तर—(तिण्हं पि एगं द्रव्यं पडुच्च) आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक आ त्रयेना अेक अेक द्रव्यनी अपेक्षाके विचार करवामां आवे तो (जहन्नेणं एकं समयं) ओछामां ओछुं अेक समयतुं अने (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) उत्कृष्टथी असंख्यात कालतुं अंतर डोय थे. (नाणाद्रव्वाइं पडुच्च) अनेक द्रव्योनी अपेक्षाके विचार करवामां आवे, तो (णत्थि अंतरं) केई अन्तर नथी.

शंका—प्रश्नमां तो आनुपूर्वी द्रव्यो विषे प्रश्न पूछवामां आव्ये थे.

परन्तु त्रयाणामपि द्रव्याणां समानान्तरत्वेन प्रतिपाद्यतया उत्तरकोटी ' तिण्हं पि ' इति प्रोक्तम् । अस्य द्वारस्यायं भावः—यदा त्र्यादिप्रदेशावगाढं किमप्यानुपूर्वी-द्रव्यम् एकस्माद् विवक्षितक्षेत्रात् समयमेकम् अन्यत् क्षेत्रमवगाह्य पुनरपि केवलम्, अन्यद्रव्यसंयुक्तं वा भूत्वा तमेव विवक्षितत्र्याधाकाशप्रदेशम् अवगाहते, तदैकानुपूर्वी द्रव्यस्य समयमेकं जघन्यतोऽन्तरकालो बोध्यः । तथा—तदव द्रव्यं यदाऽन्येषु क्षेत्रप्रदेशेषु असंख्येयं कालं परिभ्रम्य केवलम्, अन्यद्रव्यसंयुक्तं वा भूत्वा प्रथममेव क्षेत्रप्रदेशमवगाहते, तदा उत्कृष्टतोऽसंख्येयं कालमन्तरं भवति । न च पुन-

है, परन्तु उत्तरकोटि में "तिण्हं पि" तीनों द्रव्यों को क्यों पकड़ा गया है ?

उत्तर—इसका कारण यह है कि इन तीनों द्रव्यों का अन्तर समान है । इस द्वार का भाव इस प्रकार से है—जिस समय कोई एक त्र्यादि प्रदेशावगाढ आनुपूर्वी द्रव्य किसी एक विवक्षित क्षेत्र से एक समय तक किसी दूसरे क्षेत्र में अवगाहित होकर पुनः अकेला या किसी दूसरे द्रव्य से संयुक्त होकर उसी विवक्षित त्र्यादि आकाशरूप प्रदेश में अवगाढ होता है तो उस समय उस एक आनुपूर्वी द्रव्य का अन्तर काल—विरहकाल जघन्य से एक समय का है—ऐसा जानना चाहिये । तथा जब वही द्रव्य अन्य क्षेत्र प्रदेशों में असंख्यातकाल तक घूमकर केवल या अन्य द्रव्यों से संयुक्त होकर पहिले के ही अवगाहित प्रथम क्षेत्र प्रदेश में अवगाहित होता है तब विरहकाल उत्कृष्ट से असंख्यात

परन्तु उत्तर इये तो त्र्ये द्रव्योनी वात करवाभां आवी छे तेनुं कारण्य शुं छे ?

उत्तर—ते त्र्ये द्रव्योनुं अन्तर समान होवधी त्र्ये द्रव्योना अन्तरनी वात साथे न करवाभां आवी छे.

उत्तर—आ अन्तरद्वारने भावार्थ नीचे प्रभाषे छे—आ सूत्रमां अन्तर अटवे विरहकाण थडण्य करवे न्नेधमे केध अके त्र्ये आदि प्रदेशावगाढ आनुपूर्वी द्रव्य केध अके विवक्षित (अमुक) क्षेत्रमांथी नीकणीने अके समय सुधी केध पील क्षेत्रमां अवगाहित थधने करीथी पोते अकेलुं अथवा केध अन्य द्रव्यनी साथे संयुक्त थधने अेण विवक्षित त्र्ये आदि आकाश इप प्रदेशोमां अवगाढ थाय, तो ते परिस्थितिमां ते अके आनुपूर्वी द्रव्यनुं अंतर काणनी अपेक्षाअे (विरहकाण) अके समयनुं गणाय छे, आ अन्तरने काणनी अपेक्षाअे नघन्य अन्तर समणपुं तथा अेण द्रव्य अन्य क्षेत्र प्रदेशोमां असंख्यातकाण सुधी करीने पोते अकेलुं अथवा अन्य द्रव्यो साथे संयुक्त थधने पडेसां न क्षेत्रमां अवगाहित थयुं डतुं अेण क्षेत्रमां अवगाहित थध लाय, तो ते परिस्थितिमां तेने उत्कृष्ट विरहकाण असंख्यातकाणने गणाय

દ્રવ્યાનુપૂર્વ્યામિવ અનન્તં કાલમન્તરં ભવતિ, યતો દ્રવ્યાનુપૂર્વ્યાં વિવક્ષિતદ્રવ્યાદન્યે દ્રવ્યવિશેષા અનન્તા ભવન્તિ । તૈશ્ચ સહ ક્રમેણ તસ્ય સંયોગે પુનઃસ્વરૂપપ્રાપ્તૌ અનન્તં કાલમન્તરં ભવતિ । અત્ર તુ ત્રિવક્ષિતાવગાહક્ષેત્રાદન્યત્ ક્ષેત્રમસંખ્યેયમેવ । પ્રતિસ્થાનં ચ અવગાહનામાશ્રિત્ય અસંખ્યેયકાલં સંયોગસ્થિતિઃ । તતશ્ચાસંખ્યેયે ક્ષેત્રે પરિભ્રમદ્ દ્રવ્યં પુનરપિ કેવલમ્, અન્યસંયુક્તં વાઽસંખ્યેયકાલાનન્તરં તસ્મિન્ વિવક્ષિત-પ્રદેશ એવાવગાહનાં કુર્યાત્ ।

કાલ કા માના જાતા હૈ । જિસ્ પ્રકાર દ્રવ્યાનુપૂર્વી મેં વિરહકાલ માના ગયા હૈ ઉસ પ્રકાર સે યહાં વિરહકાલ અનન્ત કાલકા નહીં માના ગયા હૈ । કયોં કિ દ્રવ્યાનુપૂર્વી મેં વિવક્ષિત દ્રવ્ય સે દૂસરે જો દ્રવ્ય હૈ વે અનન્ત હૈ । અતઃ ઉનકે સાથ ક્રમ ક્રમ સે ઉસકા સંયોગ હોને પર ફિર સે અપને સ્વરૂપ કી પ્રાપ્તિ મેં ઉસે અનન્ત કાલ લગ જાતા હૈ । ઇસ પ્રકાર પુનઃ સ્વરૂપ પ્રાપ્તિ મેં અન્તર અનન્ત કાલ કા સધ જાતા હૈ । પરન્તુ યહાં વિવક્ષિત-અવગાહ ક્ષેત્ર સે અન્ય ક્ષેત્ર અસંખ્યાતપ્રદેશ પ્રમાણ હી હૈ, અનન્ત પ્રદેશ પ્રમાણ નહીં । ઇસલિયે પ્રતિસ્થાન મેં, અવગાહના કો આશ્રિત કરકે જો ઉસકી સંયોગ સ્થિતિ હૈ વહ અસંખ્યાતકાલ કી હૈ । અતઃ વિવક્ષિત પ્રદેશ સે અન્ય અસંખ્યાત ક્ષેત્ર મેં પરિભ્રમણ કરતા હુઆ દ્રવ્ય પુનઃ ઉસી વિવક્ષિત પ્રદેશ મેં અન્ય દ્રવ્ય સે સંયુક્ત હોકર યા એકાકી હી અસંખ્યાતકાલ કે બાદ અવગાહિત હો જાતા હૈ ।

એ. અહીં એ વાત ધ્યાનમાં રાખવા જેવી છે કે દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં ઉત્કૃષ્ટ (વધારેમાં વધારે) અનન્ત કાળનો વિરહકાળ કહ્યો છે, પરન્તુ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં ઉત્કૃષ્ટ વિરહકાળ અનન્તકાળનો કહેવાને બદલે અસંખ્યાતકાળનો કહ્યો છે. તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—

દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં વિવક્ષિત દ્રવ્ય સિવાયના જે અન્ય દ્રવ્યો છે તે અનન્ત છે. તેથી તેમની સાથે તેનો ક્રમશઃ સંયોગ થઈને ફરીથી પોતાના સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થવામાં તેને અનન્તકાળનું અન્તર પડી જાય છે. આ પ્રકારે પુનઃ સ્વરૂપ પ્રાપ્તિમાં અનન્તકાળનું અન્તર પડવાની વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે. પરન્તુ અહીં (ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં) વિવક્ષિત અવગાહક્ષેત્ર સિવાયનાં અન્યક્ષેત્રો તો અસંખ્યાતપ્રદેશ પ્રમાણે જ છે—અનન્ત પ્રદેશપ્રમાણ નથી તેથી પ્રત્યેક સ્થાનમાં અવગાહનાને આશ્રિત કરીને જે તેની સંયોગસ્થિતિ છે, તે અસંખ્યાતકાળની જ છે તેથી કોઈ વિવક્ષિત પ્રદેશમાંથી નીકળીને અન્ય અસંખ્યાત ક્ષેત્રોમાં પરિભ્રમણ કરીને તે દ્રવ્ય પોતે એકલું અથવા અન્ય દ્રવ્યની સાથે સંયુક્ત થઈને તે વિવક્ષિત પ્રદેશમાં અસંખ્યાતકાળ વ્યતીત થયા બાદ જ અવગાહિત થઈ જાય છે.

નનુ ભવત્વસંખ્યેયઃ પ્રદેશઃ, પરન્તુ તત્રૈવ પ્રદેશે દ્રવ્યસ્ય પુનઃ પુનઃ પરિભ્રમણેન અનન્તકાલાન્તર્યમપિ પ્રાપ્યતે, તદેહ કથમનન્તકાલમન્તરં નોચ્યતે ? इति चेत्, उच्यते, विवक्षितप्रदेशादसंख्येयप्रदेशे क्षेत्रेऽसंख्येयकालमेव द्रव्यं परिभ्रमति, तदनन्तरं पुनर्विवक्षितक्षेत्र एव तद् द्रव्यं नियमादागच्छति, वस्तुस्थितिस्वभाव्यादिति । अतो नास्ति कश्चिद्दोषः । यद्वा ज्यादि प्रदेशलक्षणाद् विवक्षितक्षेत्रात् तदानुपूर्वीद्रव्यमन्यत्रगतं, ततस्तत् क्षेत्रम् असंख्येयकालादूर्ध्वं स्वभावादेव तेनैव आनुपूर्वीद्रव्येण, वर्णगन्धरसस्पर्शसंख्यादिधर्मैः सर्वथा तुल्येन अन्येन वा आनुपूर्वी-

શંકા—અવગાહના ક્ષેત્ર સે અન્યક્ષેત્ર ભલે હી અસંખ્યાતપ્રદેશ-
વાલા હો-હસ મેં કોઈ બાધા નહીં હૈ। પરન્તુ ઉસી પ્રદેશોં મેં વાર ૨
પરિભ્રમણ કરને સે દ્રવ્ય કો હસ પરિભ્રમણ મેં અનન્ત કાલ કા ભી
અન્તર લગ સકતા હૈ । અતઃ સૂત્રકારને યહાં અનન્તકાલ કા અન્તર
કયોં નહીં કહ્યા ?

ઉત્તર—વિવક્ષિત પ્રદેશરૂપ ક્ષેત્ર સે અન્ય અસંખ્યાત પ્રદેશરૂપ
ક્ષેત્ર મેં દ્રવ્ય કા પરિભ્રમણ અસંખ્યાતકાલ તક હી હોતા હૈ । હસકે
બાદ બહુ દ્રવ્ય નિયમ સે ફિર વિવક્ષિત ક્ષેત્ર મેં હી આજાતા હૈ । કયોં
કિ એસા હી વસ્તુસ્થિતિ કા સ્વભાવ હૈ । અથવા—જબ ज्यादि પ્રદેશરૂપ
વિવક્ષિત ક્ષેત્ર સે બહુ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અન્ય પ્રદેશ મેં ખલા જાતા હૈ '
બાદ મેં વહુ ક્ષેત્ર સ્વભાવ સે હી અસંખ્યાતકાલ કે પશ્ચાત્ ઉસી આનુ-
પૂર્વી દ્રવ્ય સે યા વર્ણ, ગંધ, રસ, સ્પર્શ, એવં સંખ્યા આદિ ધર્મોં સે

શંકા—અવગાહના ક્ષેત્ર સિવાયનું જે અન્ય ક્ષેત્ર છે તે ભલે અસંખ્યાત
પ્રદેશોવાળું હોય તે વાત માનવામાં અમને કોઈ વાંધા નથી પરન્તુ એજ
પ્રદેશોમાં વારંવાર પરિભ્રમણ કરવામાં તે દ્રવ્યને અનન્તકાળનું અન્તર પણ
લાગી શકે છે. છતાં સૂત્રકારે અહીં અનન્તકાળના અન્તરને બદલે અસં-
ખ્યાતકાળનું અન્તર શા માટે કહ્યું છે ?

ઉત્તર—વિવક્ષિત પ્રદેશરૂપ ક્ષેત્રમાંથી નીકળીને અન્ય અસંખ્યાત પ્રદેશ
રૂપ ક્ષેત્રમાં દ્રવ્યનું પરિભ્રમણ અસંખ્યાત કાળ સુધી જ થાય છે. ત્યાર બાદ
તે દ્રવ્ય નિયમથી જ તે વિવક્ષિત ક્ષેત્રમાં જ આવી જાય છે, કારણ કે તેનો
એવો જ સ્વભાવ છે.

અથવા—ત્રણ આદિ પ્રદેશો રૂપ કોઈ વિવક્ષિત ક્ષેત્રમાંથી નીકળીને તે
આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અન્ય પ્રદેશમાં ચાલ્યું જાય છે, અને ત્યારબાદ તે ક્ષેત્ર
સ્વભાવથી જ અસંખ્યાતકાળ બાદ એજ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સાથે, અથવા વધુ,

द्रव्येण संयुज्यते इति नियमात् असंख्येयकालोत्तरं, तथाविधानुपूर्वीद्रव्येण तत्क्षेत्रं संयुज्यते एवेति असंख्येयकालमेव अन्तरं भवतीति नास्ति कश्चिद् दोषः । तथा-
नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् । व्यादिप्रदेशावगाढानि सर्वाण्यपि आनु-
पूर्वीद्रव्याणि युगपत् स्वभावं विहाय पुनस्तथैव जायन्ते इति तु न कदाचिदपि संभ-
वति, असंख्येयानां तेषां सर्वदैव विद्यमानत्वादिति नानाद्रव्याश्रयपक्षे नास्ति अन्तर-
मिति भावः । एवमनानुपूर्व्यवक्तव्यक द्रव्यविषयेऽपि अन्तरभावना कर्तव्या । सू. ११५।

उसी के तुल्य किसी दूसरे आनुपूर्वी द्रव्य से संयुक्त हो जाता है। ऐसा नियम है। इस नियम के अनुसार असंख्यात काल का ही अन्तर होता है। नाना द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है ऐसा जो कहा गया है उसका तात्पर्य यह है कि व्यादिप्रदेशों में अवगाढ हुए समस्त भी आनुपूर्वी द्रव्य एक साथ अपने स्वभाव को छोड़कर पुनः उन्हीं व्यादि-
प्रदेशों में अवगाहित हो जाते हों ऐसी बात किसी भी समय में संभ-
वित नहीं होती है। क्यों कि असंख्यात आनुपूर्वी द्रव्य सदा ही विद्य-
मान रहते हैं। इसलिये नाना द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है। इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य के विषय में भी अन्तर भावना जाननी चाहिये ॥सू० ११५॥

गंध, रस, स्पर्श अने संख्या आदि धर्मोनी अपेक्षासे तेना जेनां न डोढ
भील आनुपूर्वी द्रव्य साथे संयुक्त थछ जय छे जेवे। नियम छे, आ
नियम प्रमाणे असंख्यातकालानु अन्तर भयतीत तथा भाद ते प्रकारना
आनुपूर्वी द्रव्य वडे ते क्षेत्र अवश्य संयुक्त थछ जय छे, आ रीते असं-
ख्यातकालानु न अन्तर पडवानी बात सिद्ध थछ जय छे।

अनेक द्रव्योनी अपेक्षासे विचार करवामा आवे तो कालनी अपेक्षासे
डोढ अन्तर न पडतुं नथी, आ कथनने। भावार्थ नीये प्रमाणे छेत्रण
आदि प्रदेशोभां अवगाहित थयेतां समस्त आनुपूर्वी द्रव्यो ओक साथे
पोताना स्वभावने छोडीने इरी जेन त्रण आदि प्रदेशोभां अवगाहित थछ
जतां छेय जेवी बात डोढ पणु समये संभनी शकती नथी, कारणु के
असंख्यात आनुपूर्वी द्रव्यो सदा विद्यमान रहे न छे, ते कारणे अनेक
द्रव्योनी अपेक्षासे अन्तरने। अभाव कछो छे, जेन प्रमाणे अनानुपूर्वी अने
अवक्तव्यक द्रव्योना विषयभां पणु अन्तर (विरहकाल)नुं कथन
समय लेवुं जेछे, ॥सू० ११५॥

इत्थमन्तरद्वारं व्याख्याय सम्प्रति भागद्वारं व्याख्यातुमाह—

मूलम्—जेगमववहाराणं आणुपुव्वीदवाइं सेसदव्वाणं कइ-
भागे होज्जा ? तिण्णि वि जहा दव्वाणुपुव्वीए ॥सू० ११६॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कियद् भागे
भवन्ति ? त्रीण्यपि यथा द्रव्यानुपूर्व्याम् ॥सू० ११६॥

टीका—‘ जेगमववहाराणं ’ इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणाम्=अनानुपूर्व्यवक्तव्यक
द्रव्याणां कतिभागे=कियति भागे भवन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—त्रीण्यपि यथा
द्रव्यानुपूर्व्याम् । यथा द्रव्यानुपूर्व्यां भागद्वारे प्रतिपादितं तथैवात्रापि त्रयाणामपि
द्रव्याणां विषये बोध्यम् । अर्थ भावः—आनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्व्यवक्तव्यकरूप-
शेषद्रव्येभ्योऽसंख्येयैर्भागैरधिकानि । शेषद्रव्याणि तु तेषामसंख्येयभागे वर्तन्ते ।

अब सूत्रकार भागद्वार का व्याख्यान करते हैं—

“जेगमववहाराणं इत्यादि”

शब्दार्थ— (जेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनय संमत (आणुपुव्वी-
दवाइं) समस्त आनुपूर्वीद्रव्य (सेसदव्वाणं) शेष द्रव्यों के—अनानुपूर्वी
और अवक्तव्यक द्रव्यों के (कइभागे) कितने भागों में हैं ? (तिण्णिवि-
जहा दव्वाणुपुव्वीए)

उत्तर—जिस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी में भागद्वार में प्रतिपादन किया है
उसी प्रकार से यहां पर तीनों ही द्रव्यों के विषय में जानना चाहिये ।
इसका भाव यह है—अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा
आनुपूर्वी द्रव्य उनके असंख्यात भागों से अधिक है । तथा शेष द्रव्य
आनुपूर्वीद्रव्यों के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

इसे सूत्रकार भागद्वारतुं निरूपणु करे छे—

(जेगमववहाराणं) नैगमव्यवहार नयसंमत (आणुपुव्वीदवाइं) समस्त
आनुपूर्वी द्रव्ये (सेसदव्वाणं) भागीनां द्रव्येना (अनानुपूर्वीं) अने अवक्त-
व्यक द्रव्येना (कइभागे) केटलाभां लागप्रमाणु डोय छे ?

उत्तर—(तिण्णिवि जहा दव्वाणुपुव्वीए) द्रव्यानुपूर्वीं भाग द्वारमां जेषुं
प्रतिपादन करवामां आणुं छे, जेषुं ज कथन अडीं पणु त्रल्ले द्रव्ये विषे
समज्जुं जेटले के अनानुपूर्वीं अने अवक्तव्यक द्रव्ये करतां आनुपूर्वीं
द्रव्य तेमना असंख्यातमां लागप्रमाणु वधारे छे तथा भागीना द्रव्ये आनु-
पूर्वीं द्रव्ये करतां असंख्यातमां लागप्रमाणु छे.

નનુ 'ઢ્યાદિપ્રદેશાવગાઢાનિ દ્રવ્યાણિ આનુપૂર્વ્યઃ, ઇકૈકપ્રદેશાવગાઢાનિ દ્રવ્યાણિ અનાનુપૂર્વ્યઃ, દ્વિ દ્વિ પ્રદેશાવગાઢાનિ દ્રવ્યાણિ અવક્તવ્યકાનિ' ઇતિ પૂર્વ પ્રતિપાદિતમ્ । તાન્યેતાનિ ત્રિવિધાન્યપિ દ્રવ્યાણિ સર્વલોકવ્યાપીનિ । તેષાં મધ્યે યુક્ત્યા વિચારણાયાં કૃતાયામાનુપૂર્વીદ્રવ્યાણાં સર્વસ્તોકતા પ્રાપ્યતે । તથાહિ-લોકે કિલ અસત્કલ્પનયા ત્રિંશત્પ્રદેશાઃ કલ્પ્યન્તે । તેષુ ત્રિંશત્પ્રદેશેષુ અનાનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ ત્રિંશત્સંખ્યકાનિ ભવન્તિ ઇકૈકપ્રદેશાવગાઢત્વાત્ । અવક્તવ્યકદ્રવ્યાણિ તુ પચ્ચદશ, દ્વિ દ્વિ પ્રદેશાવગાઢત્વાત્ । આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ તુ યદિ ત્રિપ્રદેશનિષ્પન્નાન્યેવ ગણ્યન્તે

શંકા-ઘહ પહિલે હી કહા જા ચુકા હૈ । કિ ઢ્યાદિપ્રદેશોં મેં સ્થિત દ્રવ્ય આનુપૂર્વી હૈં ઇક ઇક પ્રદેશોં મેં સ્થિત અનાનુપૂર્વી હૈં, ઓર દો દો પ્રદેશોં મેં સ્થિત દ્રવ્ય અવક્તવ્યક દ્રવ્ય હૈં । યે તીનોં હી દ્રવ્ય સર્વલોક વ્યાપી હૈં । ઇનકે વીચ મેં, યુક્તિ સે વિચારણા હોને પર આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સવસે થોઢે આતે હૈં । ઇસકા ઁલુલાસા ઇસ પ્રકાર સે હૈ-
“લોક અસંખ્યાત પ્રદેશી હૈ-સો અસંખ્યાત પ્રદેશ કો અસત્કલ્પના સે ૩૦, માનકર ડનપ્રદેશોં કે સ્થાનપર ૩૦,તીસ રલ્લેના ચાહિયે-ઇન ૩૦, પ્રદેશોં મેં ઇક ઇક પ્રદેશ પર અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અવગાહિત હૈં ઇસલિયે અનાનુપૂર્વીદ્રવ્ય ૩૦ હો જાતે હૈં । તથા અવક્તવ્યક દ્રવ્ય લોક કે દો દો પ્રદેશોં મેં ઇકર અવગાઢ હોને કે કારણ ૧૫,આતે હૈં । તથા આનુપૂર્વીદ્રવ્ય લોક કે ૩-૩ તીન ૨ પ્રદેશોં મેં અવગાઢ હૈં ઇસલિયે ડનકી સંખ્યા ૧૦

શંકા-આગળ ઁવું પ્રતિપાઢન કરવામાં આંયું છે કે ત્રણ, ચાર આદિ પ્રદેશોમાં સ્થિત દ્રવ્યને આનુપૂર્વી કહો છે, ઁક ઁક પ્રદેશમાં સ્થિત દ્રવ્યને અનાનુપૂર્વી કહો છે અને ગળ્મે પ્રદેશોમાં સ્થિત દ્રવ્યને અવક્તવ્યક કહો છે. આ ત્રણે દ્રવ્ય સર્વલોક વ્યાપી છે જો બુદ્ધિપૂર્વક વિચાર કરવામાં આવે તો તે ત્રણે દ્રવ્યોમાંથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યનું પ્રમાણ સૌથી ઁછું હોવું જોઈએ તેનો ખુલાસો આ પ્રમાણે છે-“લોક અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળો છે.” હવે અહીં અસત્કલ્પનાનો આધાર લઈને ઁવું મારી લઈએ કે લોકના ૩૦ પ્રદેશો છે. આ ૩૦ પ્રદેશોમાંના પ્રત્યેક પ્રદેશ પર અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અવગાહિત છે. તેથી ૩૦ પ્રદેશોમાં ૩૦ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અવગાહના મારી લઈએ. લોકના ગળ્મે પ્રદેશોમાં ઁક ઁક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય અવગાહિત હોવાથી ૩૦ પ્રદેશોમાં અવગાહિત અવક્તવ્ય દ્રવ્યોની સંખ્યા ૧૫ મારી લઈએ તથા આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના ઁછામાં ઁછા ત્રણ ત્રણ પ્રદેશોમાં અવગાહિત હોવાથી ૩૦ પ્રદેશોમાં અવગાહિત આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની

तानि दशसंख्यकान्येव भवन्ति त्रिप्रदेशावगाढत्वात् । अत एव तानि सर्वस्तोका-
न्येव वाच्यानि । इति चेदाह—यदि ये नमःप्रदेशा एरुस्मिन्ननुपूर्वीद्रव्ये उपयुक्ता
भवन्ति ते यद्यस्मिन्नोपयुक्ता भवेयुस्तदैव स्यात्, नचैवमस्ति, यतः त्रिभिःप्रदेशैः
सम्पद्यमाने एकस्मिन् आनुपूर्वीद्रव्ये ये त्रयः प्रदेशा उपयुक्ता भवन्ति, त एव त्रयः
प्रदेशा अन्यान्यरूपतया परिणतैरन्यैरप्यानुपूर्वीद्रव्यैरुपयुज्यन्ते । अत एकैकः प्रदे-
शोऽनेकेषां त्रिक संयोगानामानुपूर्वीद्रव्याणामाधारो भवति । एवं चतुष्कसंयोग-
पञ्चकसंयोग यावत्संख्येयसंयोगानुपूर्वीद्रव्यविषयेऽपि बोध्यम् । ततश्च एकैको नमः

आती है । आनुपूर्वीद्रव्य तीनप्रदेशों से प्रारंभ होकर निष्पन्न होते हैं ।
इसलिये इन्हे त्रिप्रदेशावगाढ माना गया है । इस प्रकार ये अनानुपूर्वी
और अवक्तव्यकद्रव्यों की अपेक्षा पूर्वोक्तरीति से विचार करनेपर कम
ही आते हैं” यदि कोई इस प्रकार से कहे तो इसका उत्तर इस प्रकार
से है कि जो आकाशप्रदेश एक आनुपूर्वीद्रव्य में उपयुक्त होते हैं, वे यदि
अन्य आनुपूर्वी द्रव्य में उपयुक्त नहीं होते तो ऐसा कहना बन सकता
था परन्तु ऐसा नहीं है । क्योंकि तीन प्रदेशों से जायमान एक आनुपू-
र्वीद्रव्य में जो तीनप्रदेश उपयुक्त होते हैं, वे ही तीन प्रदेश अन्य अन्य
रूप से परिणत हुए अन्य आनुपूर्वी द्रव्यों द्वारा भी अपने २ उपयोग में
लाये जाते हैं । इसलिये लोक का एक २ प्रदेश अनेक त्रिक संयोगी
आनुपूर्वी द्रव्यों का आधार होता है । इसी प्रकार से चतुष्क संयोगी
यावत् असंख्यात संयोगी आनुपूर्वी द्रव्यों के विषय में भी जानना

संख्या १० मानी लघुमे आनुपूर्वीं द्रव्य त्रिषुधी लघुने असंख्यात पर्यन्तना
प्रदेशोभांथी निष्पन्न थाय छे. तेथी अही तेने त्रिप्रदेशावगाढ मानीने उपर
प्रमाणेनी गणुतरी करवामां आवी छे. आ रीते विचार करवामां आवे तो
अनानुपूर्वीं अने अवक्तव्यक द्रव्ये करतां तेनुं प्रमाणे आछुं देणाय छे.

आ प्रकारनी मान्यता परापर नथी ते हवे स्पष्ट करवामां आवे छे—
जे आकाशप्रदेशो अेक आनुपूर्वीं द्रव्यमां उपयुक्त थाय छे तेओ ले अन्य
आनुपूर्वीं द्रव्यमां उपयुक्त थता न होत तो ओवुं णनी शकत. परन्तु ओवुं
तो णनतुं नथी कारणे के त्रिषु प्रदेशोभां अवगाहित अेक आनुपूर्वीं द्रव्यमां
जे त्रिषु प्रदेशो उपयुक्त थाय छे, ओण त्रिषु प्रदेशो अन्य अन्य इपे
परिणत थयेला अन्य आनुपूर्वीं द्रव्ये द्वारा पणु पोतपोताना उपयोगमां
देवामां आवे छे. आ रीते लोकनेा प्रत्येक प्रदेश अनेक त्रिकसंयोगी आनु-
पूर्वीं द्रव्येना आधार थाय छे, ओण प्रमाणे अतुष्क संयोगीथी लघुने

प्रदेशः अनेकेषु ज्यादि संयोगात्मकेषु आनुपूर्वीद्रव्येषु उपयुज्यते । इत्थं च ज्यादि संयोगात्मकानुपूर्वीद्रव्यरूपाधेयभेदेन प्रतिप्रदेशरूपाधारस्यापि भेदो विवक्षितो भवति । नहि नभःप्रदेशा येन स्वरूपेणैकस्मिन् आधेये उपयुक्ता भवन्ति, तेनैव स्वरूपेण आधेयान्तरेऽपि । तथा सत्यैकस्मिन् आधारस्वरूपे तदवगाहनात् आधेयानाम् एकता प्रसज्येत, घटे तत्स्वरूपवत् । ततश्च असंख्येयप्रदेशात्मके स्वस्थित्या व्यवस्थिते लोके यावन्तस्त्रिकसंयोगाद्यसंख्येयसंयोगपर्यन्ता संयोगा जायन्ते तावन्त्यानुपूर्वीद्रव्याणि भवन्ति । तानि च ज्यादि संयोगानां बहुत्वाद् बहुसंख्य-

चाहिये । इस प्रकार एक २ आकाश प्रदेश अनेक ज्यादि संयोगात्मक आनुपूर्वीद्रव्यों में उपयुक्त होता है । अतः ज्यादि संयोगात्मक आनुपूर्वीद्रव्य रूप आधेय के भेद से, हर एक प्रदेश रूप आधार का भी भेद, विवक्षित हो जाता है । क्योंकि आकाश प्रदेश जिस स्वरूप से एक आधेय में उपयुक्त होते हैं । उसी स्वरूप से वे दूसरे आधेय में उपयुक्त नहीं होते हैं । यदि ऐसी ही बात धानी जाये कि आकाश प्रदेश जिस स्वरूप से एक आधेय में उपयुक्त होते हैं उसी स्वरूप से वे अन्य आधेय में भी उपयुक्त होते हैं तो एक आधार स्वरूप में उनकी अवगाहना होने से उन अनेक आधेयों में घट में घट के स्वरूप की तरह एकता प्रसक्त होगी । इसलिये अपने स्वरूप की अपेक्षा से असंख्यात प्रदेशी लोक में जितने भी त्रिक संयोगादि रूप असंख्यात संयोग पर्यन्त तक के संयोग हैं उतनेही आनुपूर्वीद्रव्य हैं । ये आनुपूर्वीद्रव्य ज्यादिसंयोगों

असंख्यात संयोगी पर्यन्तना आनुपूर्वीद्रव्येणा विषयमां पणु समञ्जसु
आ प्रकारे प्रत्येक आकाशप्रदेश अनेक त्रिआदि संयोगात्मक आनुपूर्वी
द्रव्येणां उपयुक्त थाय छे. तेथी त्रिआदि संयोगात्मक आनुपूर्वी द्रव्य रूप
आधेयना लेहने लीधे हरेक प्रदेश रूप आधारना पणु लेह पडी नाय छे.
कारणु के जे स्वरूपे आकाशप्रदेशो अक आधेयमां उपयुक्त थाय छे, अज
स्वरूपे तेओ भीज आधेयमां पणु उपयुक्त थता नथी जे जेवी वात मान-
वामां आवे के आकाशप्रदेशो जे स्वरूपे अक आधेयमां उपयुक्त थाय छे
अज स्वरूपे तेओ अन्य आधेय वस्तुमां पणु उपयुक्त थाय छे, तो अक
आधारस्वरूपमां तेमनी अवगाहना होवाथी ते अनेक आधेयोमां पणु घटमां
घटना स्वरूपनी जेम अकता मानवानो प्रसंग प्राप्त थशे, तेथी पाताना
स्वरूपनी अपेक्षाजे असंख्यात प्रदेशी लोकमां त्रिकसंयोगथी लछने असंख्यात
संयोग पर्यन्तना जेटला संयोगो छे जेटलां न आनुपूर्वी द्रव्यो छे त्रि

कानि बोध्यानि । अवक्तव्यकद्रव्याणि तु द्विकसंयोगानां स्तोकत्वात् स्तोकानि । अनानुपूर्वीद्रव्याण्यपि लोकप्रदेशसंख्यासमानसंख्यत्वात् स्तोकान्येव । अत्र सुखेनावबोधार्थं किञ्चिन्निर्दिश्यते । तथाहि—लोके किञ्च पञ्चाकाशप्रदेशाः कल्प्यन्ते, तद्यथा— :: इति । अत्र अनानुपूर्वीद्रव्याणि तावत् पञ्चैव भवन्ति ।

यथा— :: इति ।

अवक्तव्यकद्रव्याणि तु अष्टौ, अष्टानामेव द्विकसंयोगानामिहाभ्युपगमात् ।

यथा—  इति ।


आनुपूर्वीद्रव्याणि तु षोडश संभवन्ति । तत्र—दशत्रिकसंयोगाः, पञ्च चतुष्कसंयोगाः,



को बहूत होने के कारण बहुसंख्यक हैं । और जो अवक्तव्यक द्रव्य हैं वे द्विक संयोगों के कम होने के कारण कम हैं । तथा जो अनानुपूर्वी द्रव्य हैं । वे भी लोक प्रदेशों की संख्या के बराबर होने के कारण—कम ही हैं । यह बात अच्छी तरह से समझ में आ जावे इसलिये यों समझना चाहिये—लोक में पाँच आकाशप्रदेश कल्पित करो, और उसका आकार :: इस प्रकार से करो । प्रत्येक आकाश प्रदेश में एक अनानुपूर्वी द्रव्य है इसलिये इस हिसाब से पाँच अनानुपूर्वी द्रव्य हैं । ऐसा मान लो तथा द्विप्रदेश संयोगी जो अवक्तव्यक द्रव्य हैं वे द्विकप्रदेश संयोगों को यहाँ आठ ही होनेसे आठ आते हैं । जैसे—संस्कृत टीका में आकार देकर कहा गया है । आनुपूर्वीद्रव्य १६, संभवित होते हैं—वे इसप्रकार से १०, त्रिक प्रदेश संयोग के १०, ५ चतुष्प्रदेश संयोग के पाँच, और

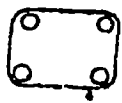
आदि संयोगो वषुा होवाने कारणे ते आनुपूर्वी द्रव्ये बहुसंख्यक छे, अने द्विकसंयोगो आछां होवाने कारणे अवक्तव्यक द्रव्ये तेना करतां अल्प संख्यामां छे. तथा जे अनानुपूर्वी द्रव्ये छे तेओ पषु लोकना प्रदेशोनी संख्यानी अराअर होवाथी आनुपूर्वी द्रव्ये करतां अल्प संख्यामां छे. आ वातने स्पष्ट रीते समजवा माटे आ प्रमाणेनी कल्पना करे—धारे के आकाशप्रदेशो पांच छे अने तेमने आकार आ प्रमाणे छे— :: प्रत्येक प्रदेशमां जेक जेक अनानुपूर्वी द्रव्ये रही शके छे. तेथी पांच प्रदेशोमां पांच अनानुपूर्वी द्रव्ये रही शके जेम मानी हो.

तथा द्विप्रदेश संयोगी जे अवक्तव्यक द्रव्ये छे, तेमनी संख्या अही आठनी आवे छे, कारणे के अही द्विकप्रदेश संयोगो आठ आवे छे ते वात टीकांमां आपवामां आवेत्त आकृति द्वारा स्पष्ट करवामां आवी छे.

आ पांच प्रदेशोमां आनुपूर्वी द्रव्ये १६ संखवी शके छे. तेना हिसाब आ प्रमाणे समजवे—त्रिकप्रदेश संयोगना १०, चतुष्प्रदेश संयोगना


पञ्चकसंयोगस्त्वेक इति षोडश । तत्र दशत्रिकसंयोगा एवं बोध्याः—षट् तावत्त्रिक-
संयोगा मध्यव्यवस्थापितेन सह लभ्यन्ते, यथा—  इति ।

तथा मध्यनिरपेक्षैर्दिग्ब्यवस्थापितैश्चतुर्भिश्चत्वारस्त्रिकसंयोगाः, यथा— 
इति । इत्थं दश त्रिकसंयोगा भवन्ति ।
पञ्च च चतुष्कसंयोगा एवं विज्ञेयाः—चत्वारस्तावन्मध्यव्यवस्थापितेन सह भवन्ति,
यथा—  इति ।

एकस्तु चतुष्कसंयोगो मध्यनिरपेक्षैर्दिग्ब्यवस्थापितैश्चतुर्भिः, यथा— 
इति । इत्थं पञ्च चतुष्कसंयोगा भवन्ति ।

एक पांच प्रदेश संयोगका एक । इनमें त्रिकप्रदेश संयोग जो दस हैं—
वे इस प्रकार हैं—मध्य में जो प्रदेश व्यवस्थापित है, उसके साथ त्रिकप्रदेश
संयोग ६ आते हैं—जैसे टीका में आकार देकर कहे गये हैं—तथा मध्य
प्रदेश निरपेक्ष जो दिग्ब्यवस्थापित चारप्रदेश हैं उनके साथ त्रिकप्रदेश
संयोग ४ चार आते हैं जो टीका में दिये हुए चित्र द्वारा स्पष्ट किये गये
हैं इस प्रकार से तीन २ प्रदेशों के संयोग दश होते हैं—ये तीन तीन
प्रदेशों के संयोग ही १० अनानुपूर्वी द्रव्यों के आधार क्षेत्र हैं । तथा
चार २ प्रदेशों के संयोग ५ इसप्रकार हैं—मध्य में जो प्रदेश व्यवस्थापित
है उसके साथ चतुष्क संयोग चार होते हैं, ये चतुष्क संयोग ही चार
आनुपूर्वी द्रव्यों के आधाररूप क्षेत्र हैं । जो टीका में दिये हुये चित्र
द्वारा कहे गये हैं । तथा मध्य प्रदेश निरपेक्ष जो चार दिग्ब्यवस्थापित
चारप्रदेश हैं उनसे एक चतुष्कसंयोगरूप आधार चारप्रदेशी आनुपूर्वी
द्रव्य निष्पन्न होता है । जो संस्कृत टीका में दिया हुआ चित्रद्वारा स्पष्ट

५, अने पांचप्रदेश संयोगानुं १, आ रीते कुल ११ आनुपूर्वी द्रव्ये थछ जय
छे. तेमना जे १० त्रिकप्रदेश संयोग कक्षा छे ते नीचे प्रमाणे समजवा—मध्यमां
जे प्रदेश व्यवस्थापित (रहेला) छे, तेनी साथे त्रिकप्रदेश संयोग ६ आवे
छे. जेज वात टीकाभां आपवामां आवेल आकृतिद्वारा समजववामां आवी छे.
मध्यप्रदेश सिवायना जे चार प्रदेशो चार दिशाभां आवेला छे. तेमनी साथे
त्रिकप्रदेशसंयोग चार आवे छे तेमने पञ्च आ आकृति द्वारा स्पष्ट कर-
वामां आवेल छे. आ प्रकारे आ त्रय त्रय प्रदेशोना संयोग १० थाय छे
आ त्रय त्रय प्रदेशोना संयोग ज १० आनुपूर्वी द्रव्योना आधारक्षेत्र छे.
तथा चार चार प्रदेशोना पांच संयोग आ प्रमाणे थाय छे—मध्यमां जे
प्रदेश व्यवस्थापित छे तेनी साथे चतुष्कसंयोग चार थाय छे. ते चतुष्कसं-
योग ज चार आनुपूर्वी द्रव्योना आधाररूप क्षेत्र छे. तेमने संस्कृत टीकाभां
आपवामां आवेल आकृति द्वारा अताववामां आवेल छे तथा मध्यप्रदेश
सिवायना चार दिशाभां व्यवस्थापित जे चार प्रदेशो छे तेमना द्वारा चार

पञ्चकसंयोगस्तु सुगम एव यथा—  इति

इत्थं पञ्चप्रदेशप्रस्तारेऽप्यानुपूर्वीद्रव्याणाम् अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया बाहुल्यं दृश्यते । ततः स्वस्थित्या व्यवस्थितेऽसंख्येयप्रदेशात्मके लोके आनुपूर्वी-द्रव्याणाम् अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यापेक्षयाऽसंख्यातगुणत्वं स्पष्टमेवेति ॥ सू० ११६ ॥

किया गया है। इस प्रकार चतुष्कसंयोग रूप आधार क्षेत्र के आनुपूर्वी द्रव्य पांच होते हैं। तथा इन पांच प्रदेशों के संयोग से जायमान एक पांच प्रदेशी आनुपूर्वी द्रव्य का समझना सुगम है। जो संस्कृत टीका में दिया हुआ चित्र में समझाया गया है। इस प्रकार से पांच प्रदेशों के प्रस्तार में भी इन आनुपूर्वी द्रव्यों का अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा बाहुल्य देखा जाता है। तब इससे अपनी स्थिति के अनुसार सुव्यवस्थित इस असंख्यात प्रदेशवाले लोक में आनुपूर्वी द्रव्यों में अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से असंख्यात-गुणता स्पष्ट ही है।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा यह समझाया है कि नैगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात गुणे अधिक हैं और शेष द्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यों के असंख्यातत्वे भाग प्रमाण हैं। इस बात को सुनते ही किसी शंकाकार ने इस-

प्रदेशी आनुपूर्वी द्रव्यना एक चतुष्कसंयोग रूप आधार निष्पन्न थाय छे, तेने पण्य संस्कृत टीकाभां आपवाभां आवेल आकृति द्वारा स्पष्ट करवाभां आवेल छे. आ प्रकारे चतुष्कसंयोग रूप आधार क्षेत्रना आनुपूर्वी द्रव्य पांच थाय छे. तथा ते पांच प्रदेशना संयोगथी निष्पन्न पांचप्रदेशी एक आनुपूर्वी द्रव्यने समन्वय सुगम छे. टीकाभां आपवाभां आवेल आकृतिभां तेने समन्वयवाभां आवेल छे. आ प्रकारे पांच प्रदेशोना प्रस्तारभां पण्य अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्यो करतां आनुपूर्वी द्रव्योनी अधिकता जेवाभां आवे छे, तो पछी असंख्यात प्रदेशोवाणा लोकभां अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्यो करतां आनुपूर्वी द्रव्यो असंख्यात गण्यो होय जेभां नवाध पामवा जेवुं शुं छे ?

भावार्थ—आ सूत्र द्वारा सूत्रकारे जे वातनुं प्रतिपादन कथुं छे के नैगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्यो अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्यो करतां अनेक गण्यो वधारे छे. अने आनुपूर्वी द्रव्य सिवायना द्रव्यो आनुपूर्वी द्रव्यो करतां असंख्यातभां भागप्रमाण्य छे. सूत्रकारना आ कथन सामे कोर्ध व्यक्ति जेवी शंका प्रकट करे के आपनुं आ कथन पुद्दिगम्य

पर शंका की—कि आपका यह कथन युक्ति से संगत नहीं बैठता है—कारण असंख्यात प्रदेशी इस लोक में सबसे अधिक संख्या आनुपूर्वी द्रव्यों की ही आती है बाद में इनसे कम अवक्तव्यक द्रव्यों की और इनसे भी कम आनुपूर्वीद्रव्यों की। इस बात को हम इसप्रकार से समझा सकते हैं। लोक असंख्यातप्रदेशी माना गया है—सो लोकके असंख्यात प्रदेशों के स्थान में ३० संख्या रख लो—ये ३० ही असंख्यात प्रदेश हैं। अनानुपूर्वीद्रव्य लोकाकाश के एक २ प्रदेश रूप आधार पर अवगाहित हैं इस अपेक्षा से अनानुपूर्वी द्रव्यों की संख्या ३० आती है। और अवक्तव्यक द्रव्य जो द्विप्रदेशी होता है, वह दो दो प्रदेशों में अवगाहित होता है—इसलिये उसकी संख्या १५ आती है। तथा आनुपूर्वी द्रव्य त्रिप्रदेशावगाढ होता है। इसलिये इनकी संख्या दश आती है। तब सिद्धान्तकार ने इस शंका का उत्तर बहुत सुन्दररिति से किया है—उन्होंने उसे समझाया कि जैसा तुम कह रहे हो वैसा नहीं है। क्योंकि आकाशका एक २ प्रदेश भिन्न २ रूपसे परिणत अनेक व्यणुकादि रूप अनानुपूर्वीद्रव्यों का आधारस्थल है एक आनुपूर्वीद्रव्य में आकाश

लागतुं नथी पोतानी शंकांना समर्थनमां ते अेवी द्दलील करे के—असंख्यात प्रदेशोवाणा आ लोकाकाशमां अनानुपूर्वी द्रव्योनी संख्या सौथी वधारै छे, अवक्तव्यक द्रव्योनी संख्या अनानुपूर्वी द्रव्यो करतां ओछी छे अने आनुपूर्वी द्रव्योनी संख्या तो अवक्तव्यक द्रव्यो करतां पणु ओछी छे. नीचेनी कल्पना द्वारा ते पोतानी आ मान्यतानुं समर्थन करे छे. लोकाकाशमां असंख्यात प्रदेशो मानवामां आंच्यो छे. धारे के लोकाकाश ३० प्रदेशो छे अनानुपूर्वी द्रव्य लोकाकाशना ओक ओक प्रदेश रूप आधार पर अवगाहित छे. तेथी ३० प्रदेशोमां अवगाहित अनानुपूर्वी द्रव्योनी संख्या ३० त्रीस थाय छे अवक्तव्यक द्रव्य के ७ प्रदेशी होय छे ते लोकाकाशना अण्णे प्रदेशोमां अवगाहित होय छे. तेथी तेमनी संख्या १५ नी थाय छे तथा आनुपूर्वी द्रव्य लोकाकाशना त्रणु त्रणु प्रदेशोमां अवगाहित होवाथी ३० प्रदेशोमां अवगाढ आनुपूर्वी द्रव्योनी संख्या आडीना अन्ने द्रव्यो करतां ओछी थवा छतां आप शा कारणे अेवुं कडो छे के आनुपूर्वी द्रव्यो आडीना अन्ने द्रव्यो करतां असंख्यात गणुं होय छे ?

आ शंकांनुं अडी नीचे प्रमाणे समाधान करवामां आंच्युं छे—तमे कडो छे अेवी वात नथी, कारणे के आकाशना ओक ओक प्रदेश भिन्न भिन्न रूपे परिणत थयेत अनेक त्रणु आदि अणुरूप आनुपूर्वी द्रव्योनुं आधारस्थान छे. ओक आनुपूर्वी द्रव्यमां आकाशना ७ त्रणु प्रदेशो उपयुक्त थाय

के जो तीन प्रदेश उपयुक्त होते हैं वे यदि अन्य अनानुपूर्वी द्रव्यों के उपयोग में न आते, तो यह बात बल भी जाती कि आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों की अपेक्षा बहुत कम है, परन्तु जो आकाश के त्र्यादि प्रदेश एक आनुपूर्वी द्रव्य में काम आते हैं, वे ही अन्य आनुपूर्वी द्रव्यों के भी उपयोग में आते हैं। जो आकाश के ३ प्रदेश जिस स्वभाव से त्र्यणुक्र रूप एक आनुपूर्वी द्रव्य के उपयोग में आते हैं। वे तीन प्रदेश उसी स्वभाव से त्र्यणुकादि एवं चतुष्प्रदेशिक आदि अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों के उपयोग में नहीं आते हैं। उनके स्वभाव में भिन्नता आजाती है। इसलिये आकाश को स्वभाव की भिन्नता के कारण असंख्यात प्रदेशी माना गया है। त्र्यणुकादिरूप आनुपूर्वीद्रव्य भी तो एक २ की ही संख्या में नहीं हैं किन्तु एक २ आनुपूर्वी द्रव्य अनेक हैं। तभी तो ये समस्त आनुपूर्विद्यां लोकव्यापी हैं। अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य भी इसी प्रकार से हैं। इनमें आनुपूर्वी द्रव्य ही इन दो द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात गुणा है। क्योंकि अनानुपूर्वी द्रव्य के लिये एकप्रदेश रूप आधार की और अवक्तव्यक द्रव्य के लिये दो प्रदेशरूप आधार की ही

छे, ते त्रणु प्रदेशो जे अन्य आनुपूर्वी द्रव्येना उपयोगमां आवी शकता न होत तो जेवी वात संलवी शकत के आनुपूर्वी द्रव्ये जाझीना जन्ने द्रव्ये करतां जहु न अल्प संख्यामां छे, परन्तु परिस्थिति जेवी छे के आकाशना जे त्रणु आदि प्रदेशो जेक आनुपूर्वी द्रव्यना काममां आवे छे, जेन प्रदेशो अन्य आनुपूर्वी द्रव्येना उपयोगमां पणु आवे छे, जे आकाशना त्रणु प्रदेशो जे स्वभावने लीधे त्रणु अणुवाणी जेक आनुपूर्वीना उपयोगमां आव्या छे, ते त्रणु प्रदेशो जेन स्वभावथी त्रणु अणुवाणां, जने चार प्रदेशवाणां आदि अनेक आनुपूर्वी द्रव्येना उपयोगमां आवतां नथी, तेमना स्वभावमां आधेयनी लिन्नताने लीधे लिन्नता आवी जय छे, तेथी आकाशने स्वभावनी लिन्नताने कारणे असंख्यात प्रदेशी मानवामां आवेल छे, त्रि अणुक आदि इप आनुपूर्वी द्रव्ये पणु जेक जेकनी संख्यामां न नथी, परन्तु प्रत्येक आनुपूर्वी द्रव्य अनेक होय छे.—त्रि अणुक आदि ५ आनुपूर्वी अनेक होय छे—अने तेथी न ते समस्त आनुपूर्वीजो आठ, छे, अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्ये पणु लोकव्यापी, पंच अने आनुपूर्वी द्रव्य न ते जन्ने द्रव्ये करतां असंख्यायोग इप आधार अनानुपूर्वी द्रव्यने साठे जेक प्रदेश इप आधार द्वारा स्पष्ट करवामां

આવશ્યકતા પડતી છે, તબ કિ આનુપૂર્વીદ્રવ્ય કે લિયે એક દો ત્રીન આદિ સમસ્ત રૂપ આધાર કી અપેક્ષા પડતી છે-તથા એક ૨ પ્રદેશ મેં ઓ અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અવગાહિત હૈં । તબ કિ અનેક અનાનુપૂર્વી ઓર અનેક અવક્તવ્યકદ્રવ્ય એક પ્રદેશ ઓર દો દો પ્રદેશોં મેં હી અવગાહિત હૈં । હસી વિષય કો લોક મેં પાંચપ્રદેશોં કી કલ્પના કર નિર્ણય કિયા ગયો છે । હનમેં ચારોં દિશાઓં મેં ચાર પ્રદેશ સ્થાપિત- કરના ચાહિયે ઓર એક પ્રદેશ વીચ મેં । અનાનુપૂર્વીદ્રવ્ય જૈસા કી કહા ગયા છે, કિ એક પ્રદેશાવગાહી હોતા છે હસલિયે એક ૨ પ્રદેશ મેં એક એક રહને કે કારણ પાંચપ્રદેશ રૂપ આધાર સંબન્ધી વે ૫ હી જ્ઞાત હોતે હૈં । ન્યૂન ઓર અધિક નહીં । હન પાંચ પ્રદેશોં મેં જબ દો ૨ પ્રદેશોં કા સંયોગ-કિયા જાતા છે તો વે દ્વિક સંયોગ યહાં આઠ બનતે હૈં-જૈસે ટીકામેં દિયા હુવા ચિત્ર મેં પ્રદર્શિત કિયે ગયે હૈં । યહાં જો એક દો આદિ અંક-લિખે હુએ હૈં વે દો દો પ્રદેશોં કે સંયોગ કે પ્રદર્શક હૈં । હસ પ્રકાર યે દો દો પ્રદેશોં કે સંયોગરૂપ જો આધાર હૈં વે ઉતને હી અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં કે આધાર હૈં ।

માટે જે પ્રદેશ રૂપ આધારની આવશ્યકતા પડે છે, પરન્તુ આનુપૂર્વી દ્રવ્યને માટે એક, બે, ત્રણ આદિ સમસ્ત પ્રદેશરૂપ આધારની આવશ્યકતા રહે છે. તથા એક એક પ્રદેશમાં પણ અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અવગાહિત છે, ન્યારે અનેક અનાનુપૂર્વી અને અનેક અવક્તવ્યક દ્રવ્યો તો અનુક્રમે એક એક પ્રદેશમાં અને બપ્પે પ્રદેશોમાં જ અવગાહિત છે. હવે સૂત્રકાર લોકના પાંચ પ્રદેશો હોવાની કલ્પના કરીને આ વિષયનું સ્પષ્ટીકરણ કરે છે-ચાર દિશાઓમાં ચાર પ્રદેશની અને વચ્ચે એક પ્રદેશની સ્થાપના કરવી જોઈએ. તેની આકૃતિ આ પ્રમાણે બનશે-૦૦:

અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય એક પ્રદેશાવગાહી હોય છે, તેથી એક એક પ્રદેશમાં એક એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય હોવાને કારણે પાંચ પ્રદેશ રૂપ આધારમાં પાંચ જ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો સંભવી શકે છે. તેથી ઓછાં કે વધારે સંભવી શકતાં નથી. આ પાંચ પ્રદેશોમાં જે બપ્પે પ્રદેશોનો સંયોગ કરવામાં આવે, તો એવાં દ્વિકસંયોગ અહીં આઠ બને છે તે ઉપરની સંસ્કૃત ટીકામાં આપવામાં આવેલ આકૃતિમાં બતાવવામાં આવેલ છે-

આ આકૃતિમાં જે એક, બે આદિ અંકો લખ્યા છે, તે બપ્પે પ્રદેશોના સંયોગના પ્રદર્શક છે. આ રીતે તે બપ્પે પ્રદેશોના સંયોગ રૂપ જે આધાર છે, તેઓ એટલાં જ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના આધાર રૂપ છે આ રીતે

इत्थं भागद्वारमभिधाय सम्पत्ति भावद्वारमाह—

मूलम्—णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कयरंमि भावे
होज्जा? णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा। एवं
दोणिण वि ॥सू० ११७॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि कतरस्मिन् भावे भवन्ति? निय-
मात् सादिपारिणामिके भावे भवन्ति। एवं द्वयोरपि ॥सू० ११७॥

इस प्रकार से यहां द्विकप्रदेश संयोगरूप आधारवर्ती ८ अवक्तव्यकद्रव्य हैं। यह बोध हो जाता है। क्योंकि जितने आधार हैं उतने ही वहां अनानुपूर्वी आदि द्रव्य हैं ऐसा यहां कहा गया है। आनुपूर्वी द्रव्य इन पांच प्रदेशों के संयोग रूप आधार १६ होने से १६ होते हैं। चतुष्क-संयोग पांच और पांच प्रदेशों का एक संयोग यहां होता है। इन चतुष्क (चार) संयोग रूप पांच आधारों में पांच आनुपूर्वी द्रव्य और पांच प्रदेशों के संयोगरूप एक आधार में एक पांच प्रदेशवाला आनुपूर्वी द्रव्य रहता है। पांच प्रदेशों में दो दो प्रदेशों के संयोग ८, तीन तीन प्रदेशों के संयोग १०, चार चार प्रदेशों के संयोग—से पांच बनते हैं। और पांच प्रदेशोंका संयोग एक ये सब द्विकादि संयोगरूप आधार कैसे बने यह सब संस्कृत टीकामें दिया हुआ चित्रोंद्वारा स्पष्ट किया गया है ॥सू. ११६॥

अहीं द्विकप्रदेश संयोगरूप आधारवर्ती आठ अवक्तव्यक द्रव्यो होवानो
बोध थई जय छे, कारणु के नेटला आधार छे अेटलां न त्यां आनुपूर्वी
आदि द्रव्यो छे अेषुं अहीं कडेवामां आव्युं छे.

आ पांच प्रदेशोना संयोगरूप आधार १६ होवाथी आनुपूर्वी द्रव्य
अहीं १६ होय छे. चतुष्कसंयोग पांच अने पांच प्रदेशोना अेक संयोग
अहीं थाय छे. आ चतुष्कसंयोग रूप पांच आधारोमां पांच आनुपूर्वी
द्रव्यो अने पांच प्रदेशोना संयोग रूप अेक आधारमां पांच प्रदेशवाणुं
अेक आनुपूर्वी द्रव्य रहे छे. पांच प्रदेशोमां षण्णे प्रदेशोना संयोग आठ,
त्रणु त्रणु प्रदेशोना संयोग १०, चार चार प्रदेशोना संयोग पांच अने
पांच प्रदेशोना संयोग अेक अने छे, आ षषां द्विकादि संयोग रूप आधार
केवी रीते अने छे, ते षषुं सूत्रार्थमां आकृतियो द्वारा स्पष्ट करवामां
आव्युं छे ॥सू० ११६॥

टीका—‘ जोगमववहारणं ’ इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि कतरस्मिन् भावे भवन्ति ? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरयति—आनुपूर्वीद्रव्याणि नियमात् सादिपारिणामिके भावे भवन्ति । एवं द्वे अपि=अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याण्यपि सादिपारिणामिके भावे भवन्तीति । अयं भावः—ऋषिप्रदेशावगाहपरिणामस्य एकप्रदेशावगाहपरिणामस्य द्विप्रदेशावगाहपरिणामस्य चेति त्रयाणामपि द्रव्याणां सादिपारिणामिकत्वात् सादिपारिणामिकभाववर्तित्वं बोध्यमिति ॥ सू० ११७ ॥

अब सूत्रकार भावद्वार का कथन करते हैं—

“ जोगमववहारणं ” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(जोगमववहारणं आणुपुव्वी दव्वाइं) नैगम व्यवहारनयसंमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य—(कयरंमि भावे होज्जा) कौन से भाव में वर्तते हैं ।

उत्तर—(णिगमा) नैगमव्यवहारनयसंमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य नियम से (साहपारिणामिए भावे होज्जा) सादि पारिणामिक भाव में-वर्तते हैं । (एवं दोणिगवि) इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी-जानना चाहिये । तात्पर्य इसका यह है कि ऋषिप्रदेशों में आनुपूर्वी द्रव्यों का अवगाह, परिणाम एक प्रदेश अनानुपूर्वी द्रव्यों का अवगाह परिणाम और अवक्तव्यक द्रव्यों का द्विप्रदेशों में अवगाह परिणाम सादि है । इसलिये—ये सब द्रव्य सादि पारिणामिक भाववर्ती- हैं । ॥ सू० ११७ ॥

इवे लावद्वारतुं कथन करवामां आवे छे.—

“ जोगमववहारणं ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(जोगमववहारणं आणुपुव्वी दव्वाइं) नैगमव्यवहारनयसंमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्ये (कयरंमि भावे होज्जा ?) क्या लावमां वर्तमान डाय छे ? उत्तर—(णिगमा साहपारिणामिए भावे होज्जा) नैगमव्यवहार नयसंमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्ये नियमथी न सादिपारिणामिक लाववर्ती डाय छे (एवं दोणिग वि) अेषुं न कथन अनानुपूर्वी द्रव्ये अने अवक्तव्यक द्रव्येना विषयमां पणु समजवुं आ कथनने। लावार्थ नीचे प्रमाणे छे— त्रणु आदि प्रदेशोमां आनुपूर्वी द्रव्येनुं अवगाहपरिणाम, अेक प्रदेशमां अनानुपूर्वी द्रव्येनुं अवगाहपरिणाम अने जे प्रदेशोमां अवक्तव्यक द्रव्येनुं अवगाहपरिणाम सादि (आदि सहित) डाय छे. तेथी न आ त्रणु द्रव्येने सादिपारिणामिक लाववर्ती कथां छे. ॥ सू० ११७ ॥

इत्थं भावद्वारमभिधाय अल्पबहुत्वद्वारं प्ररूपयति—

मूलम्—एएसिणं भन्ते ! णेगमववहारणं आणुपुव्वीद्व्वाणं अणा-
णुपुव्वीद्व्वाणं अवत्तव्वगदव्व्वाणं य दव्वट्टयाए पएसट्टयाए दव्व-
ट्टपएसट्टयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुगा वा तुल्ला वा विसे-
साहिया वा ? गोयमा ! सव्वत्थोवाइं णेगमववहारणं अवत्तव्वग-
दव्वाइं दव्वट्टयाए, अणाणुपुव्वीद्व्वाइं दव्वट्टयाए विसेसाहियाइं,
आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्टयाए असंखेज्जगुणाइं । पएसट्टयाए
सव्वत्थोवाइं णेगमववहारणं आणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्टयाए ।
अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्टयाए विसेसाहियाइं । आणुपुव्वीदव्वाइं
पएसट्टयाए असंखेज्जगुणाइं । दव्वट्टपएसट्टयाए सव्वत्थोवाइं
णेगमववहारणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्टयाए । अणाणुपुव्वी-
दव्वाइं दव्वट्टयाए अपएसट्टयाए विसेसाहियाइं । अवत्तव्वगदव्वाइं
पएसट्टयाए विसेसाहियाइं । आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्टयाए असंखे-
ज्जगुणाइं ताइं चैव पएसट्टयाए असंखेज्जगुणाइं । से तं अणुगमे ।
से तं णेगमववहारणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ॥सू० ११८॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त ! नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणाम् अनानु-
पूर्वीद्रव्याणाम् अवक्तव्यकद्रव्याणां च द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया कानि केभ्यः
अल्पानि वा बहुकानि वा तुल्यानि वा विशेषाधिकानि वा ? । गौतम ! सर्वस्तो-
कानि नैगमव्यवहारयोः अवक्तव्यकद्रव्याणि द्रव्यार्थतया । अनानुपूर्वीद्रव्याणि
द्रव्यार्थतया विशेषाधिकानि । आनुपूर्वी द्रव्याणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि ।
प्रदेशार्थतया—सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि अप्रदेशार्थतया ।
अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि । आनुपूर्वीद्रव्याणि प्रदेशार्थतया
असंख्येयगुणानि । द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोः अवक्तव्यक
द्रव्याणि द्रव्यार्थतया । अनानुपूर्वी-द्रव्याणि द्रव्यार्थतया अप्रदेशार्थतया

विशेषाधिकानि । अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि । आनुपूर्वी
द्रव्याणि द्रव्यार्थतयाऽसंख्येयगुणानि तान्येव प्रदेशार्थतया असंख्येयगुणानि । स
एषोऽनुगमः । सैषा नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी क्षेप्रानुपूर्वी ॥सू० ११८॥

टीका—‘एएसि णं’ इत्यादि ।

हे भदन्त ! एतेषां खलु नैगमव्यवहारसम्मतानाम् आनुपूर्वीद्रव्याणाम् अना-
नुपूर्वीद्रव्याणाम् अवक्तव्यकद्रव्याणां मध्ये कानि द्रव्याणि कतरेभ्यो द्रव्येभ्यो
द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया च अल्पानि वा बहुकानि वा तुल्यानि
वा विशेषाधिकानि वा भवन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—‘गोयमा’ इत्यादिना ।
अस्य व्याख्या नवतितमसंख्यकसूत्रवद् बोध्या ।

अब सूत्रकार अल्प बहुत्व द्वार की प्ररूपणा करते हैं—

“एएसि णं भंते” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(भंते) हे भदन्त ! (नेगमव्यवहाराणं एएसि आणुपुव्वी
दव्वाणं) नैगमव्यवहारनय-संमत इन आनुपूर्वी द्रव्यों के (अणुपुव्वी
दव्वाणं) अनानुपूर्वी द्रव्यों के (य) और (अवत्तव्वगदव्वाणं) अवक्त-
व्यकद्रव्य के बीच (कयरे कयरेहिंतो) कौन कौन से द्रव्यों से (दव्वट्टयाए,
पएसट्टयाए, दव्वट्टपएसट्टयाए) द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता और द्रव्यार्थता
प्रदेशार्थता की अपेक्षा (अप्पावा बहुगावा तुल्लावा विसेसाहियावा) अल्प
हैं—कौन २ किन २ द्रव्यों से बहुत हैं कौन २ किन २—के समान हैं और कौन २
किन २ द्रव्यों से विशेष अधिक हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (नेगमव्यव-
हाराणं) नैगमव्यवहारनय संमत (अवत्तव्वगदव्वाइं) अवक्तव्यक

हे सूत्रकार अव्यपभुत्व द्वारनी प्ररूपणा करे छे—

“एएसि णं भंते !” इत्यादि—

शब्दार्थ—(भंते) हे भगवन् ! (नेगमव्यवहाराणं एएसि आणुपुव्वीदव्वाणं
अणुपुव्वीदव्वाणं, अवत्तव्वगदव्वाणं) नैगमव्यवहार नयसंमत आ आनु-
पूर्वी द्रव्ये, अनानुपूर्वी द्रव्ये अने अवक्तव्यक द्रव्येभानां (कयरे कयरेहिंतो)
क या क या द्रव्ये (दव्वट्टयाए, पएसट्टयाए, दव्वट्टपएसट्टयाए) द्रव्यार्थता, प्रदे-
शार्थता अने द्रव्यार्थता प्रदेशार्थतानी अपेक्षाये (अप्पा वा बहुगा वा, तुल्ला
वा, विसेसाहिया वा ?) क या क या द्रव्ये करतां अव्य प्रभाषु छे ? क या क या
द्रव्ये क या क या द्रव्ये करतां अधिक छे, क या क या द्रव्ये क या क या द्रव्येना
नेटतां न छे अने क या क या द्रव्ये क या क या द्रव्ये करतां विशेषाधिक छे ?

उत्तर—(गोयमा ।) हे गौतम ! (नेगमव्यवहाराणं) नैगमव्यवहार नयसंमत
(अवत्तव्वगदव्वाइं) अवक्तव्यक द्रव्ये (दव्वट्टयाए) द्रव्यार्थतानी अपेक्षाये

द्रव्य (द्वन्द्वद्वयाए) द्रव्यार्थता की- अपेक्षा (सव्वत्थोवाइं) सर्वस्तोक हैं । (अणाणुपुव्वीदव्वाइं) अनानुपूर्वीद्रव्य (द्वन्द्वद्वयाए) द्रव्यार्थता की अपेक्षा (विसेसोहिआइं) विशेष अधिक हैं । (आणुपुव्वीदव्वाइं) आनुपूर्वी-द्रव्य (द्वन्द्वद्वयाए) द्रव्यार्थता की अपेक्षा (असंखेज्जगुणाइं) असंख्यात गुणे हैं । (पएसद्वयाए) प्रदेशार्थताकी अपेक्षा (णेगमववहाराणं) नैगम-व्यवहारनय संमत (अणाणुपुव्वी दव्वाइं) अनानुपूर्वी द्रव्य (सव्वत्थो-वाइं) सर्वस्तोक हैं । क्योंकि (अपएसद्वयाए) अनानुपूर्वीद्रव्य में प्रदेशरूप अर्थ का अभाव है । तात्पर्य यह है, कि परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्यों में भी यदि द्वितीय आदि प्रदेश हो तो द्रव्यार्थता की तरह प्रदेशार्थता में भी अवक्तव्यकद्रव्यों की अपेक्षा से उनकी अधिकता हो जाती । परन्तु ऐसा तो है नहीं, क्योंकि परमाणु अप्रदेशी होता है । ऐसा सिद्धान्त का वचन है इसलिये प्रदेशता की अपेक्षा से ये अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वस्तोक कहे गये हैं । (अवत्तव्वगदव्वाइं) अवक्तव्यक द्रव्य (पएसद्वयाए) प्रदेशार्थता की अपेक्षा (विसेसाहियाइं) विशेष अधिक हैं । (आणु पुव्वी दव्वाइं) आनुपूर्वीद्रव्य (पएसद्वयाए) प्रदेशार्थता की अपेक्षा (असं-खेज्जगुणाइं) असंख्यात गुणे हैं । (द्वन्द्वद्वयाए) द्रव्यार्थता और-

(सव्वत्थोवाइं) -सौथी अल्प प्रमाणुमां छे. (अणाणुपुव्वी दव्वाइं द्वन्द्वद्वयाए विसेसाहियाइं) द्रव्यार्थतानी अपेक्षाअे विचार करवामां आवे तो अनानुपूर्वी द्रव्ये अवक्तव्यक द्रव्ये करतां विशेषाधिक छे. (आणुपुव्वीदव्वाइं द्वन्द्वद्वयाए असंखेज्जगुणाइं) अने द्रव्यार्थतानी अपेक्षाअे आनुपूर्वी द्रव्ये अनानुपूर्वी द्रव्ये करतां पणु अत्रंभ्यात गणुं छे. (पएसद्वयाए) प्रदेशार्थतानी अपेक्षाअे विचार करवामां आवे तो (णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहार नयसंमत (अणाणुपुव्वीदव्वाइं) अनानुपूर्वी द्रव्ये (सव्वत्थोवाइं) सौथी आछां छे, कारण के (अपएसद्वयाए) अनानुपूर्वी द्रव्यमां प्रदेशरूप अर्थने अभाव छे. आ कथनेने भावार्थे अे छे के परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्यमां पणु ने ने आदि प्रदेशेनेने सदृभाव होत तो द्रव्यार्थतानी नेम प्रदेशार्थतानी अपेक्षाअे पणु अवक्तव्यक द्रव्ये करतां अनानुपूर्वी द्रव्येनी अधिकता न संभवी शकत, परन्तु अेवी वातनेने तो अहीं अवकाश नथी, कारण के परमाणु अप्रदेशी होय छे, अेवुं सिद्धान्तनुं वचन छे. तेथी न प्रदेशार्थतानी अपेक्षाअे अनानुपूर्वी द्रव्यने सर्वस्तोक (सौथी अल्प प्रमाणु) कहुं छे. (अवत्तगदव्वाइं) अवक्तव्यक द्रव्ये (पएसद्वयाए) प्रदेशार्थतानी अपेक्षाअे आनुपूर्वी द्रव्ये करतां विशेषाधिक छे. (आणुपुव्वीदव्वाइं पएसद्वयाए असंखेज्जगुणाइं) प्रदे-

પ્રદેશાર્થતા ઇન દોનોં કી અપેક્ષા સે (જેગમવવહારાણં) નૈગમ વ્યવહારનય સંમત-(અવક્તવ્યક દ્રવ્ય (સવ્વત્થોવોઈ) સર્વસ્તોક હૈં । ક્યોંકિ (દ્વવટ્ટયાએ) અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં મેં દ્રવ્યાર્થતા કી અપેક્ષા પહિલે- સર્વસ્તોકતા પ્રકટ કી ગઈ હૈ । (અણાણુપુવ્વી દ્વવાઈં દ્વવટ્ટયાએ અપે- સટ્ટયાએ વિસેસાહિયાઈં) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય દ્રવ્યાર્થતા સે ઓર અપ્રદેશાર્થતા સે અવક્તવ્યક દ્રવ્ય કી અપેક્ષા કુછ અધિક હૈં । (અવક્તવ્યક દ્રવ્ય (સવ્વત્થોવોઈ) પેસટ્ટયાએ વિસેસાહિયાઈં ।) અવક્તવ્યક દ્રવ્ય પ્રદેશાર્થતા કી અપેક્ષા- અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોં સે કુછ અધિક હૈં । (આણુપુવ્વી દ્વવાઈં દ્વવટ્ટયાએ અસંલેજ્જગુણાઈં) ઉભયાર્થતા કો આશ્રિત કરકે દ્રવ્યાર્થતા કી અપેક્ષા સે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અસંલ્યાત ગુણેં હૈં ઓર (પેસટ્ટયાએ) પ્રદેશાર્થતા કી અપેક્ષા સે ઓ (તાઈં ચેવ) તે હી આનુપૂર્વીદ્રવ્ય (અસંલેજ્જગુણાઈં) અસં- લ્યાત ગુણેં હૈં (સે તં અણુગમે) ઇસ પ્રકાર યહ અનુગમ કા સ્વરૂપ હૈ (સે તં જેગમવવહારાણં અણોવણિહિયા લેત્તાણુપુવ્વી) ઇસ પ્રકાર યહાં તક નૈગમ વ્યવહારનય સંમત અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીં કે સ્વરૂપ કા કથન કિયા । સૂત્ર પદોં કા યહ અર્થ હૈ । ઇસકી વ્યાખ્યા ૯૦ વેં સૂત્ર કે

શાર્થતાની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વીં દ્રવ્યોં અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં કરતાં અસંલ્યાત ગણાં છે. (દ્વવટ્ટપેસટ્ટયાએ) દ્રવ્યાર્થતા અને પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો (જેગમવવહારાણં) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (અવક્તવ્યક દ્રવ્યાઈં) અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં સૌથી ઓછાં છે, કારણ કે (દ્વવટ્ટયાએ) દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોંમાં પહેલાં સર્વસ્તોકતા (સૌથી અલ્પ પ્રમાણ) ખતાવવામાં આવેલ છે. (અણાણુપુવ્વીદ્વવાઈં દ્વવટ્ટયાએ અપેસટ્ટયાએ વિસેસાહિયાઈં) દ્રવ્યાર્થતા અને અપ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વીં દ્રવ્યોં અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં કરતાં વિશેષાધિક છે. (આણુપુવ્વીદ્વવાઈં દ્વવટ્ટયાએ અસંલેજ્જગુણાઈં) દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો આનુપૂર્વીં દ્રવ્યોં અસંલ્યાત ગણાં છે. (પેસટ્ટયાએ) પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો (તાઈં ચેવ) તે આનુપૂર્વીં દ્રવ્યોં જ (અસંલેજ્જગુણાઈં) અસંલ્યાત ગણાં છે. (સે તં અણુગમે) આ પ્રકારનું અનુગમનું સ્વરૂપ છે. (સે તં જેગમવવહારાણં અણોવણિહિયા લેત્તાણુપુવ્વી) આ રીતે અહીં સુધીનાં સૂત્રોમાં નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનોપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીંના સ્વરૂપનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. સૂત્રપદોંનો આ અર્થ છે તેની વ્યાખ્યા ૬૦માં સૂત્ર પ્રમાણે સમજવી.

अत्रेदं बोध्यम्-द्रव्यगणनं द्रव्यार्थता, प्रदेशगणनं प्रदेशार्थता, उभय-
गणनं तूभयार्थता। तत्रानुपूर्व्यां विशिष्टद्रव्यावगाहोपलक्षितास्त्वादिनभः-
प्रदेशसमुदाया द्रव्याणि, समुदायारम्भकास्तु प्रदेशाः। अनानुपूर्व्यां तु एकैक-
प्रदेशावगाहद्रव्योपलक्षिताः सकलनभःप्रदेशाः प्रत्येकं द्रव्याणि, प्रदेशा-
स्त्वत्र न संभवन्ति, एकैकप्रदेशद्रव्ये हि प्रदेशान्तरायोगात्। अवक्तव्यकेषु तु

समान जाननी चाहिये। “अत्रेदं बोध्यं-द्रव्यों की गिनती करना इसका
नाम द्रव्यार्थता है। प्रदेशों की गिनती करना इसका नाम प्रदेशार्थता
है। द्रव्यों और प्रदेशों की दोनों की गिनती-गणना करना उभयार्थता
है। आनुपूर्वी में विशिष्ट द्रव्यों के अवगाह से उपलक्षित हुए जो नभः-
प्रदेश हैं उन नभःप्रदेशों के यह तीन नभःप्रदेशों का समुदाय है यह
चार नभःप्रदेशों का समुदाय है “इत्यादि जो समुदाय हैं-वे समस्त
व्यादि नभःप्रदेश समुदाय द्रव्य हैं। और इस समुदायों के जो आरं-
भक हैं वे प्रदेश हैं। अनानुपूर्वी में, एक एकप्रदेश अवगाही हुए द्रव्य
से उपलक्षित जो सकल आकाशप्रदेश हैं वे अलग २ प्रत्येक द्रव्य हैं।
प्रदेश यहां संभवित नहीं हैं। क्योंकि एक २ प्रदेश रूप द्रव्य में अन्य
प्रदेशों का रहना असंभव है अवक्तव्यकों में लोक में जितने द्विक-दो
दो प्रदेशों के योग हैं उतने वे प्रत्येक द्रव्य हैं। और इन द्विक योगों को

“अत्रेदं बोध्यं”-अहीं जेवुं समजवानुं छे के द्रव्योनी गणतरी करवी
तेनुं नाम द्रव्यार्थता छे अने प्रदेशोनी गणतरी करवी तेनुं नाम प्रदेशार्थता
छे. द्रव्योनी अने प्रदेशोनी (उलयनी) गणतरी करवी तेनुं नाम उलयार्थता
छे. आनुपूर्वींमां, विशिष्ट द्रव्योना अवगाहथी उपलक्षित (युक्त) जेवां जे
आकाशप्रदेशोना “आ त्रणु आकाशप्रदेशोना समुदाय छे, आ आर आका-
शप्रदेशोना समुदाय छे,” इत्यादि इप जे समुदायो छे ते समस्त त्रणु आदि
आकाशप्रदेशोमां रडेलां द्रव्यसमुदायो आवी जय छे. अने ते समुदायोना
जे आरंलके छे तेमनुं नाम प्रदेश छे.

अनानुपूर्वींमां, जेक जेक प्रदेशमां अवगाहित थयेला द्रव्यथी उपलक्षित
जे समस्त आकाशप्रदेशो छे तेजो अलग अलग प्रत्येक द्रव्य छे अहीं
प्रदेश संभवित नथी, कारण के जेक जेक प्रदेश इप द्रव्यमां अन्य प्रदेशोनुं
अस्तित्व असंभवित छे. अवक्तव्यकोनी अपेक्षाजे विचार करवामां आवे,
ते लोकमां जेटलां द्विकयोग (अज्जे प्रदेशोना योग) छे, जेटलां ते प्रत्येक
द्रव्य छे, अने ते द्विकयोगोना आरंल करवारा प्रदेशो छे.

यावन्तो लोके द्विकयोगाः संभवन्ति तावन्ति प्रत्येकं द्रव्याणि, तदारम्भ-
कास्तु प्रदेशा इति। किंच 'सर्व्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं
इत्यादि यदुक्तं तत्रोच्यते-ननु यदा पूर्वोक्तयुक्त्या एकैको नभःप्रदेशोऽनेकेषु
द्विकसंयोगेषूपयुज्यते, तदा अनानुपूर्वीं द्रव्येभ्योऽवक्तव्यकद्रव्याणामेव बाहुल्य-
मुपलभ्यते, पञ्चप्रदेशनभःकल्पनायामपि पञ्चसंख्यकेभ्योऽनानुपूर्वीं द्रव्येभ्योऽष्ट-
संख्यकानामवक्तव्यकद्रव्याणामेव आधिक्यदर्शनात्, तत् कथमिहोक्तं 'सर्व्वत्थो-
वाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं' इति? अत्रोच्यते-लोकमध्यमात्रमाश्रित्य
अवक्तव्यकद्रव्याणामाधिक्यमुक्तम्। परन्तु लोकपर्यन्तस्थितनिष्कुटगता ये कण्ट-

आरंभ करने वाले प्रदेश हैं। किंच-“ सर्व्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं
अवत्तव्वगदव्वाइं” इत्यादि जो कहा है उसके विषय में शंकाकार का
ऐसा कहना है कि पहिले प्रदर्शित युक्तिके अनुसार जथ एक एक
आकाशप्रदेश अनेक द्विक संयोगों में उपयुक्त होता है तथ
अनानुपूर्वीं द्रव्यों से अवक्तव्यक द्रव्यों की ही बहुलता मालुम
देती है जैसा पहिले कहा गया है कि आकाश के कल्पित पांच
प्रदेशों में एक २ प्रदेश पर अनानुपूर्वीं द्रव्य रहता है और आठ अवक्त-
व्यक द्रव्य रहते हैं। अतः इस कथन से अनानुपूर्वीं द्रव्यों की अपेक्षा
अवक्तव्यक द्रव्यों की बहुलता पाई जाती है। तो फिर यहां ऐसे कैसे
कहा कि नैगमव्यहारनय संमत अवक्तव्यक द्रव्य सर्वस्तोक हैं ?

उत्तर-लोकके मध्यभाग मात्र को आश्रित करके अवक्तव्यक द्रव्यों
में अधिकता कही गई है। परन्तु जो एक २ प्रदेश लोक के अन्त तक

शंका-“ सर्व्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं ” आपे ओबु
ने कहुं छे के नैगमव्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्यो सौथी ओछां छे,
परन्तु आपनुं आ कथन भराभर लागतुं नथी पड़ेलां आपे न ओ वातनुं
प्रतिपादन क्युं छे के ओक ओक आकाशप्रदेश अनेक द्विकसंयोगोमां उपयुक्त
थाय छे, अने तेथी न अनानुपूर्वीं द्रव्यो करतां अवक्तव्यक द्रव्योनी न
अधिकता होवी ओछो आपे पड़ेलां ओबुं कहुं छे के लोकना पांच प्रदेशो
होय तो हरेक प्रदेशमां ओक ओक अनानुपूर्वीं द्रव्यनी अवगाहना होय तो
पांच प्रदेशोमां पांच अनानुपूर्वीं द्रव्यो होछ शकै अने ते पांच प्रदेशोमां
आठ अवक्तव्यक द्रव्यो रही शकै आपना पूर्वोक्त आ कथन द्वारा तो अव-
क्तव्यक द्रव्यो अनानुपूर्वीं द्रव्यो करतां अधिक होवानी वातने न पुष्टि
भणे छे. छतां अहीं आपे शा कारणे ओबुं कथन क्युं छे के नैगमव्यवहार
नयसंमत अवक्तव्यक द्रव्यो सर्वस्तोक छे ?

उत्तर-लोकना मध्यभाग मात्रने अनुवर्क्षिने अवक्तव्य द्रव्योनी अधि-
कता भताववामां आवी छे. परन्तु ने ओक ओक प्रदेश लोकना अन्त पर्यन्त

काकृतयो विश्रेण्या निर्गता एकाकिनः प्रदेशास्ते विश्रेणिव्यवस्थितत्वादवक्तव्यक-
त्वादवक्तव्यकत्वायोग्या इति तेषामनानुपूर्वीसंख्यायामेवान्तर्भावो भवति । अतो
लोकमध्यस्थितां निष्कुटगतां च अनानुपूर्वीद्रव्यसंख्यां मीलयित्वा यदा केवली
निर्दिशति, तदाऽवक्तव्यकद्रव्याण्येव स्तोकानि, अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु ततो विशे-
षाधिकानि । अत्र निष्कुटस्थापना ४४४ इति । अत्र विश्रेणिलिखितौ द्वौ अव-
क्तव्यकायोग्यौ द्रष्टव्यौ । इत्थम्भूताश्रामी सर्वलोकपर्यन्तेषु तु बहवः सन्ति,
इत्यनानुपूर्वीद्रव्याणाम् अवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया बाहुल्यं बोध्यम् । अतएवोक्तम्-
'सवत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं' इति । आनुपूर्वीद्रव्याणां तु तेभ्यो-

स्थित एवं निष्कुट स्थान में हैं और जिनका आकार कण्टक जैसा है,
श्रेणि से जो निकले हुए नहीं हैं, ऐसे वे प्रदेश विश्रेणि में व्यवस्थित
होने के कारण अवक्तव्यक के योग्य नहीं माने गये हैं । अतः इनका
अन्तर्भाव अनानुपूर्वी की संख्या में ही हुआ है । इसलिये लोक के
मध्य में स्थित और निष्कुट जो अनानुपूर्वी द्रव्यों की संख्या है उसको
मिलाकर जिस समय-केवली भगवान् इसका कथन करते हैं । तब वे-
ऐसा ही कहते हैं कि अवक्तव्यक द्रव्यही स्तोक हैं और अनानुपूर्वीद्रव्य
उनसे कुछ अधिक हैं । निष्कुट की स्थापना यहाँ ४ ४ ४ इस प्रकार से
है । इसमें विश्रेणि लिखित दो अवक्तव्यक के अयोग्य हैं । इस प्रकार के
तो ये समस्त लोक के अन्त तक बहुत हैं । इसलिये अवक्तव्यक द्रव्यों
की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्यों की अधिकता जाननी चाहिये ?

स्थित (रुडेवो) छे अने निष्कुटस्थानमां छे अने जेना आकार कंटक (कांटा) जेवो
छे, श्रेणिमांथी जेओ नीकणेला नथी, जेवा ते प्रदेशो विश्रेणिमां व्यवस्थित
डोवाने कारणे. तेमने अवक्तव्यक कडेवाने योग्य गणया नथी तेथी तेमने
समावेश अनानुपूर्वीनी संख्यामां न थये छे. तेथी लोकनी मध्यमां स्थित
अनानुपूर्वी द्रव्ये अने निष्कुटगत अनानुपूर्वी द्रव्येनी संख्याने सरवाणो
करीने ज्यारे केवलीभगवान तेमनुं कथन करे छे त्यारे तेओ जेपुं न कडे
छे के अवक्तव्यक द्रव्ये न जेओछां छे अने अनानुपूर्वी द्रव्ये. तेमना करतां
विशेषाधिक छे निष्कुटनी स्थापना (आकृति) अही आ प्रमाणे छे- '४४४'
तेमां विश्रेणि लिखित जे अवक्तव्यकने योग्य नथी. आम तो तेओ समस्त
लोकना अन्त सुधीमां घणुं न छे. आ प्रकारनी परिस्थितिने कारणे न
अवक्तव्यक द्रव्ये करतां अनानुपूर्वी द्रव्येनी अधिकता समजवी लेभ्ये.

ડાંહાતપૂણત્વમુક્તેવ । વિશેષસ્વત્ર-ઉભયાર્થતાવિચારે આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ સ્વદ્રવ્યે-
 મ્બયઃ પ્રદેશાર્થતયાડસંખ્યેયગુણાનિ, એકેઋસ્ય તાવદ્ દ્રવ્યસ્ય ઝ્યાંદિભિરસંખ્યેયૈર્નમઃ
 પ્રદેશૈરાવધત્વાત્, નમઃપ્રદેશાનાં ચ સંમિલિતાનામપિ અસંખ્યેયત્વાદિતિ । પ્રસ્તુત-
 વિષયમુપસંહરન્નાહ-‘સે તં’ इत्यादि स एषोऽनुगमः-अनुगमविषयोऽत्रसम्पूर्णः ।
 तत्समाप्तौ नैगमव्यवहारसम्मताऽनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी उपसंहृतेति तदुपसंहार-
 माह-‘से तं जेगम०’ इत्यादि-सैषा नैगमव्यवहारसम्मताऽनौपनिधिकी क्षेत्रानु-
 पूर्वी सम्पूर्णा ॥सू० ११८॥

इसलिये अब सूत्रकारने “सव्वत्थोवाइं जेगमववहाराणं अवत्तव-
 गदव्वाइं” ऐसा कहा है । अनानुपूर्वी द्रव्य उनसे असंख्यात गुणे हैं
 यह बात पहिले स्पष्ट की जा चुकी है । यहां इतनी विशेषता और है
 कि जिस प्रकार आनुपूर्वी द्रव्य अनानुपूर्वी द्रव्यों से असंख्यात गुणे
 हैं । उसी प्रकार वे उभयार्थता से विचरित होने पर प्रदेशार्थता की
 अपेक्षा अपने २ द्रव्यों से भी असंख्यात गुणे हैं । क्योंकि एक २ आनु-
 पूर्वी द्रव्य नीन आदि असंख्यात नमः प्रदेशों (आकाश) से निष्पन्न
 होता है और संमिलित हुए भी वे नमःप्रदेश असंख्यात ही होते हैं ।
 इस प्रकार अनुगम का विषय समास होते ही नैगमव्यवहारनयसंमत
 अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का कथन समास हो गया-इस विषय की
 सूचना “से तं”, इत्यादि पदों द्वारा सूत्रकार ने दी है ॥ सू० ११८ ॥

तेथી જ સૂત્રકારે એવું કહ્યું છે કે “ સવ્વત્થોવાઈં જેગમવવહારાણં અવ્વ-
 ત્તવ્વગદ્વ્વાઈં ” “ નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અવકતવ્યક દ્રવ્યો સૌથી ઓછાં
 છે. ” આનુપૂર્વી દ્રવ્યો તેમના કરતાં (અનુપૂર્વી દ્રવ્ય કરતાં) અસંખ્યાત
 ગણાં છે, એ વાત તો પહેલાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવી ચુકી છે. અહીં એટલી
 વધુ વિશેષતા છે કે જે પ્રકારે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં
 અસંખ્યાત ગણાં છે, એજ પ્રમાણે ઉભયાર્થતાની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં
 આવે તો પણ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણાં
 જ છે કારણ કે પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ પણ એજ પ્રકારની પરિસ્થિતિ છે
 કારણ કે પ્રત્યેક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ત્રણ આદિ અસંખ્યાત આકાશપ્રદેશો વડે
 નિષ્પન્ન થાય છે, અને તે આકાશપ્રદેશોની એકંદર સંખ્યા પણ અસંખ્યાત
 જ થાય છે. આ પ્રકારે અનુગમનું વિષય નિરૂપણ અહીં સમાપ્ત થાય છે.
 અને અનુગમનું વર્ણન સમાપ્ત થવાથી નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનૌપનિધિકી
 ક્ષેત્રાનુપૂર્વીકું કથન પણ પૂરું થાય છે. “ સે તં ” ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકારે
 એજ વાત સૂચિત કરી છે. ॥સૂ० ૧૧૮॥

इत्थं नैगमव्यवहारसम्मतानौपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीमुक्त्वा सम्प्रति संग्रहनय-
संमतानौपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीमाह-

मूलम्-से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुवी ?
संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुवी पंचविहा पणत्ता, तं जहा
अत्थपयपरुवणया१, भंगसमुक्कित्तणया२, भंगोवदंसणया३, समो-
यारे४, अणुगमे५। से किं तं संगहस्स अत्थपयपरुवणया ?,
संगहस्स अत्थपयपरुवणया-तिप्पएसोगाढे आणुपुवी, चउप्पए-
सोगाढे आणुपुवी, जाव दसपएसोगाढे आणुपुवी, संखिज्ज-
पएसोगाढे आणुपुवी, असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुवी,
एगपएसोगाढे अणाणुपुवी, दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए । से तं
संगहस्स अत्थपयपरुवणया । एयाए णं संगहस्स अत्थपयपरुव-
णयाए किं पओयणं ?, संगहस्स अत्थपयपरुवणयाए संगहस्स
भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ । से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्त-
णया ?, संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुवी, अत्थि
अणाणुपुवी अत्थि अवत्तव्वए । अहवा अत्थि आणुपुवी
अणाणुपुवी य, एवं जहा दव्वाणुपुवीए संगहस्स तहा भाणि-
यत्वं जाव से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया । एयाए णं संग-
हस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ? एयाए णं संगहस्स
भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कज्जइ । से किं
तं संगहस्स भंगोवदंसणया ?, संगहस्स भंगोवदंसणया-तिप्पए-
सोगाढे आणुपुवी, एगपएसोगाढे अणाणुपुवी, दुप्पएसोगाढे
अवत्तव्वए । अहवा तिप्पएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणु-

पुव्वी य अणाणुपुव्वी य, एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स
 तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणियव्वं जाव से तं संगहस्स भंगो-
 वदंसणया। से किं तं समोयारे? समोयारे—संगहस्स आणु-
 पुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोय-
 रंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं? अवत्तव्वगदव्वेहिं? तिण्णिवि
 सट्टाणे समोयरंति। से तं समोयारे। से किं तं अणुगमे? अणु-
 गमे अट्ठविहे पणत्ते, तं जहा—संतपयपरूवणया जाव अप्पा-
 वहुं नत्थि। संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?
 णियमा अत्थि। एवं तिण्णि वि। सेसगदाराइं जहा दव्वाणु-
 पुव्वीए संगहस्स तहां खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणियव्वाइं जाव से
 तं अणुगमे। से तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी। से
 तं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ॥सू० ११९॥

छात्रा—अथ का सा संग्रहस्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी? संग्रहस्य अनौप-
 निधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अर्थपदप्ररूपणता १, भंगसमुत्कीर्त-

इस प्रकार नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का
 कथन करके अब सूत्रकार संग्रहनय मान्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का
 कथन करते हैं— से किं तं इत्यादि-

शब्दार्थ—(से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?)

प्रश्न—हे भदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त पहिले प्रारंभ की हुई उस संग्रहनय
 मान्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

आ प्रकारे नैगमव्यवहार नयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वींनुं निरूप-
 ष्य करीने हुवे सूत्रकार संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वींनुं
 निरूपष्य करे छे—“ से किं तं ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?) हे भगवन् !
 पूर्वप्रक्रान्त-पहेला जेना प्रारंभ थछ युक्त्ये छे ओवी—संग्रहनयसंमत अनौ-
 पनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वींनुं स्वरूप हेवुं छे ?

नतार, भंगोपदर्शनतार, समवतारः४, अनुगमः ५ । अथ का सा संग्रहस्य अर्थपद-
प्ररूपणता ? संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता—त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, चतुष्प्रदेशावगाढ-
आनुपूर्वी, यावद् दशप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, संख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी,

उत्तर—(संग्रहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता)
संग्रहनयमान्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गई है ।
(तं जहा) उसके वे प्रकार ये हैं—(अत्थपयपरूवणया) १ अर्थपदप्ररूप-
णता (भंगसमुक्कित्तणया) २ भंगसमुत्कीर्तनता (भंगोवदंसणया) ३
भंगोपदर्शनता (समोयारे) ४ समवतार (अणुगमे) और अनुगम ।

प्रश्न—(से किं तं संग्रहस्स अत्थपयपरूवणया) संग्रहनय मान्य अर्थ-
पदप्ररूपणता क्या है ?

उत्तर (संग्रहस्स अत्थपयपरूवणया) संग्रहनयमान्य अर्थपदप्ररूपणता
इस प्रकार से है—(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी) तीन प्रदेश में अवगाढ-
स्थित—त्र्यणुक आदि द्रव्य आनुपूर्वी है (चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी)
चार प्रदेशों में अवगाढ चतुरणुक आदि आनुपूर्वी है—

(जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी) यावत् दशप्रदेशावगाढ द्रव्य
आनुपूर्वी है (संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) संख्यात प्रदेशावगाढ
द्रव्य आनुपूर्वी है । (असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) असंख्यात प्रदे-

उत्तर—(संग्रहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) संग्रहनय-
मान्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पांच प्रकारनी ढही छे. (तंजहा) ते प्रकारे
नीचे प्रमाणे छे—(अत्थपयपरूवणया) (१) अर्थपदप्ररूपणता, (भंगसमुक्कित्तणया)
(२) भंगसमुत्कीर्तनता, (भंगोवदंसणया) (३) भंगोपदर्शनता, (समोयारे)
(४) समवतार अने (अणुगमे) (५) अनुगम.

प्रश्न—(संग्रहस्स अत्थपयपरूवणया ?) संग्रहनयमान्य अर्थपदप्ररूपणता
क्या है ?

उत्तर—(संग्रहस्स अत्थपयपरूवणया) संग्रहनयमान्य अर्थपदप्ररूपणता
प्रकारनी छे—(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी) त्रय प्रदेशोमां अवगाढ (रडेहु) त्रय
अणुवाणुं द्रव्य आनुपूर्वी ३५ छे, (चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी) चार प्रदेशोमां
अवगाढ चार अणुवाणुं द्रव्य पणु आनुपूर्वी छे, (जाव दसपएसोगाढे आणु-
पुव्वी) दश पर्यन्तना प्रदेशोमां अवगाढ द्रव्य आनुपूर्वी छे, (संखिज्जप-
एसोगाढे आणुपुव्वी) संख्यात प्रदेशोमां अवगाढ द्रव्य आनुपूर्वी छे, (अस-
खिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) अने असंख्यात प्रदेशोमां अवगाढ द्रव्य पणु

અસંખ્યેયપ્રદેશાવગાઠ આનુપૂર્વી, એકપ્રદેશાવગાઠ અનાનુપૂર્વી, પ્રદેશાવગાઠઃ
અવક્તવ્યક્રમ્ । સૈવા સંગ્રહસ્ય અર્થપદમરૂપણતા । એતસ્યાઃ સ્વલુ સંગ્રહસ્ય અર્થ-
પ્રરૂપણતાયાઃ કિં પ્રયોજનમ્ ? સંગ્રહસ્ય અર્થમરૂપણતયા સંગ્રહસ્ય ભંગસમુત્કીર્તનતા
ક્રિયતે । કોઽસૌ સંગ્રહસ્ય ભંગસમુત્કીર્તનતા ? ભંગસમુત્કીર્તનતા અસ્તિ આનુપૂર્વી,
અસ્તિ અનાનુપૂર્વી, અસ્તિ અવક્તવ્યક્રમ્ । અથશ્ચ અસ્તિ આનુપૂર્વી ચ અનાનુપૂર્વી ચ ।

શાવગાઠ દ્રવ્ય આનુપૂર્વી હૈ । (એગપ્પેસોગાઠે અણાણુપુઁવી) એક પ્રદેશાવ-
ગાઠ દ્રવ્ય અનાનુપૂર્વી હૈ । (દુપ્પેસોગાઠે અવત્તવ્વે) દો પ્રદેશાવગાઠ
દ્રવ્ય અવક્તવ્યક્રમ્ હૈ । (સે તં સંગ્રહસ્સ અત્થપયપરૂવણયા) હસ પ્રકાર-
યહ સંગ્રહનય માન્ય અર્થપદમરૂપણતા હૈ । (એયાએણં સંગ્રહસ્સ અત્થપય-
પરૂવણયાએ કિં પઓયણં) હસ સંગ્રહનયમાન્ય અર્થપદમરૂપણતા સે
કયા પ્રયોજન સિદ્ધ હોતા હૈ ? (સંગ્રહસ્સ અત્થપયપરૂવણયાએ સંગ્રહસ્સ
ભંગસમુક્ષિત્તણયા ક્કજ્જઈ)

ઉત્તર-હસ સંગ્રહનયમાન્ય અર્થપદમરૂપણતા સે સંગ્રહનયમાન્ય ભંગ-
સમુત્કીર્તનતા કી જાતી હૈ । યહી હસકા પ્રયોજન હૈ (સે કિં તં સંગ્રહ-
સ્સ ભંગસમુક્ષિત્તણયા) હે ભદન્ત ! સંગ્રહનય માન્ય યહ ભંગસમુત્કીર્ત-
નતા કયા હૈ ? (સંગ્રહસ્સ ભંગસમુક્ષિત્તણયા અત્થિ આણુપુઁવી અત્થિ અણા-
ણુપુઁવી અત્થિ અવત્તવ્વે) સંગ્રહનય માન્ય ભંગસમુત્કીર્તનતા એસી હૈ કિ
આનુપૂર્વી હૈ અનાનુપૂર્વી હૈ અવક્તવ્યક્રમ્ દ્રવ્ય હૈ । (અહવા અત્થિ આણુ

આનુપૂર્વી છે. (એગપ્પેસોગાઠે અણાણુપુઁવી) એક પ્રદેશમાં અવગાઠ દ્રવ્ય અના-
નુપૂર્વી રૂપ છે, (દુપ્પેસોગાઠે અવત્તવ્વે) બે પ્રદેશોમાં અવગાઠ દ્રવ્ય અવ-
ક્તવ્યક્રમ છે. (સે તં સંગ્રહસ્સ અત્થપયપરૂવણયા) સંગ્રહનયમાન્ય અર્થપદમરૂપણ-
તાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(એયાએણં સંગ્રહસ્સ અત્થપયપરૂવણયાએ કિં પઓયણં?) આ સંગ્રહનય-
માન્ય અર્થપદમરૂપણતા વડે કયા પ્રયોજનની સિદ્ધિ થાય છે ?

ઉત્તર-(સંગ્રહસ્સ અત્થપયપરૂવણયાએ સંગ્રહસ્સ ભંગસમુક્ષિત્તણયા ક્કજ્જઈ)
આ સંગ્રહનયસંમત અર્થપદમરૂપણતા દ્વારા સંગ્રહનયમાન્ય ભંગસમુત્કીર્ત-
નતા કરવામાં આવે છે. એટલું જ તેનું પ્રયોજન છે.

પ્રશ્ન-(સે કિં તં સંગ્રહસ્સ ભંગસમુક્ષિત્તણયા ?) હે ભદન્ત ! સંગ્રહનયસં-
મત તે ભંગસમુત્કીર્તનતાનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(સંગ્રહસ્સ ભંગસમુક્ષિત્તણયા અત્થિ આણુપુઁવી, અત્થિ અણાણુપુઁવી
અત્થિ અવત્તવ્વે) સંગ્રહનયસંમત ભંગસમુત્કીર્તનતા આ પ્રકારની છે-આનુ-
પૂર્વી છે, અનાનુપૂર્વી છે અને અવક્તવ્યક્રમ દ્રવ્ય છે. (અહવા અત્થિ આણુપુઁવી,

एवं यथा द्रव्याणुपूर्व्याः संग्रहस्य तथा भणितव्यं यावत् सैषा संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनता । एतस्याः खलु संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनतायाः किं प्रयोजनम् ? एतया खलु संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्तनतया संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता क्रियते । अथ काऽसौ संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता ? संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता-त्रिप्रदेशावगाढः

पुन्वी, अणाणुपुन्वीय एवं जहा दव्वाणुपुन्वीए संग्रहस्स तहा भाणियव्वं जाव से तं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणया) अथवा-आनुपूर्वी है अनानुपूर्वी है इस प्रकार जिस रीति से द्रव्याणुपूर्वी के प्रकरण में संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप कहा गया है, उसी प्रकार से इस क्षेत्रानुपूर्वी में भी संग्रहनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप जानना चाहिये । यह स्वरूप कथन का संग्रह "से तं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणया" इसपाठ तक करना चाहिये । (एयाएणं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणयाए किं पओयणं ? कज्जह) इस संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता को क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—(एयाएणं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणयाए संग्रहस्स भंगो वदंसणया कज्जह) इस संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता से संग्रहनय मान्य भंगोपदर्शनता की जाती है । (से किं तं संग्रहस्स भंगोवदंसणया ?) हे भदन्त ! संग्रहनय मान्य वह भंगोपदर्शनता क्या है ?

अणाणुपुन्वी य, एवं जहा दव्वाणुपुन्वीए संग्रहस्स तहा भाणियव्वं जाव से तं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणया) अथवा "आनुपूर्वी" छे, अनानुपूर्वी छे" इत्यादि के प्रकारतुं कथन द्रव्याणुपूर्वीना प्रकारतुं संग्रहनयसंभत भंगसमुत्कीर्तनता विषयमां करवामां आणुं छे जेह प्रकारतुं कथन आ क्षेत्रानुपूर्वीमां पणु संग्रहनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनताना विषयमां पणु समज्जपुं जेधञ्जे आ कथन "से तं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणया" आ सूत्रपाठ पर्यन्त करवुं जेधञ्जे.

प्रश्न—(एयाएणं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणयाए किं पओयणं ?) आ संग्रहनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनतानुं प्रयोजनं शुं छे ?

उत्तर—(एयाएणं संग्रहस्स भंगसमुत्कीर्तणयाए संग्रहस्स भंगोवदंसणया कज्जह) आ संग्रहनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनता वडे संग्रहनयमान्य भंगोपदर्शनता करवामां आवे छे.

प्रश्न—(से किं तं संग्रहस्स भंगोवदंसणया ?) हे भगवन् ! संग्रहनयसंभत से भंगोपदर्शनतानुं स्वरूपं केवुं छे ?

आनुपूर्वी, एकपदेशावगाढः आनुपूर्वी द्विप्रदेशावगाढः अवक्तव्यकम् ।
 अथवा—त्रिप्रदेशावगाढश्च एकप्रदेशावगाढश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी
 च, एवं यथा द्रव्यानुपूर्व्या संग्रहस्य तथा क्षेत्रानुपूर्व्यामपि भणितव्यं
 यावत् सैषा संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता । अथ कोऽसौ समवतारः ? समवतारः—
 संग्रहस्य आनुपूर्वी द्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति ? किमानुपूर्वी द्रव्येषु समवतरन्ति ?
 अनानुपूर्वी द्रव्येषु ? अवक्तव्यकद्रव्येषु ? त्रीण्यपि स्वस्थाने समवतरन्ति, सोऽसौ
 समवतारः । अथ कोऽसावनुगमः ? अनुगमः अष्टविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—यावत्
 अल्पबहुत्वं नास्ति । संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात्
 सन्ति । एवं त्रीण्यपि । शेषकद्वाराणि यथा द्रव्यानुपूर्व्या संग्रहस्य तथा क्षेत्रानु-
 पूर्व्यामपि भणितव्यानि यावत् स एषोऽनुगमः । सैषा संग्रहस्य अनौपनिधिकी
 क्षेत्रानुपूर्वी । सैषा अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी ॥ सू० ११९ ॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि । संग्रहनयामिमत् द्रव्यानुपूर्वीवदेव प्राय इदमपि
 सूत्रम् । अतो व्याख्यातमायमेव, अस्य व्याख्या चतुर्नवतितमसूत्रादारभ्य सप्त-
 नवतिपर्यन्तसूत्रे विलोकनीया ॥ सू० ११९ ॥

इत्थमनौपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीमभिधाय सम्प्रत्यौपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीमाह—
 मूलम्—से किं तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ? ओवणिहिया
 खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पणत्ता, तं जहा, पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणु-
 पुव्वी, अणाणुपुव्वी । से किं तं पुव्वानुपुव्वी ? पुव्वाणुपुव्वी—
 अहोलोए तिरियलोए उड्डलोए । से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं

उत्तर—(संग्रहस्स भंगोवदंसणया) संग्रहनय मान्य भंगोपदर्श-
 नताइस प्रकार से है—(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी) त्रिप्रदेशावगाढ आनु-
 पूर्वी इत्यादि आगेके समस्त पदों का अर्थ संग्रहनय मान्य द्रव्यानुपूर्वी
 में कथित भंगसमुत्कीर्तनता आदि के सूत्रों की व्याख्या के अनुसार ही
 है । इसलिये इनमें पदों की व्याख्या के लिये पिछे ९४ वें सूत्र से लेकर
 ९७ वें तक के सूत्रों को देखना चाहिये ॥ सू० ११९ ॥

उत्तर—(संग्रहस्स भंगोवदंसणया) संग्रहनयमान्य भंगोपदर्शनतानु-
 स्वप्प आ प्रकारनुं छे—

(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी) त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी इत्यादि पूर्वोक्त
 समस्त पदोंको अर्थ संग्रहनयमान्य द्रव्यानुपूर्वीना प्रकारणुमां कड्डेवामां
 आवेत्त भंगसमुत्कीर्तनता आदिना सूत्रोनी व्याख्या प्रमाणे न छे, तेथी
 तेमां न पडो आवे छे तेमनी व्याख्या नणुवा भाटे ६४ थी ६७ सुधीना
 सूत्रो वांथी नवानी ललाभणु करवामां आवे छे, ॥ सू० ११९ ॥

पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी उड्डलोए तिरियलोए अहोलोए ।
से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी
एयाए च्चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए तिगच्छगयाए सेठीए
अन्नमन्नभासो दुरूव्वणो । से तं अणाणुपुव्वी ॥सू० १२०॥

छाया—अथ का सा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी? औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी
त्रिविधा भज्जता, तद्यथा—पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानु-
पूर्वी? पूर्वानुपूर्वी—अधोलोकः, तिर्यग्लोकः ऊर्ध्वलोकः । सैषा पूर्वानुपूर्वी । अथ का

इस प्रकार अनौपनिधि की क्षेत्रानुपूर्वी का कथन करके अब सूत्र-
कार औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का कथन करते हैं—

“से किं तं ओवणिहिया” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी?) हे भदन्त !
संग्रहनय मान्य औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?—

उत्तर—(ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पणत्ता) औपनिधिकी
क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है—(तं जहा) वे उसके प्रकार ये
हैं—(पुव्वणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी) १ पूर्वानुपूर्वी २ पश्चानु-
पूर्वी (३) अनानुपूर्वी (हे किं तं पुव्वणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर—(पुव्वणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से है—(अहो लोए,
तिरियलोए, उड्डलोए) अधोलोक तिर्यग्लोक ऊर्ध्वलोक । (से तं पुव्वणु-
पुव्वी) यह पूर्वानुपूर्वी है । (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी क्या है ?

आ प्रभाणु अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वींनुं कथन करीने इवे सूत्रकार
औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वींनुं कथन करे छे—“से किं तं ओवणिहिया” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी?) हे भगवन् ! संग्रह-
नयमान्य औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वींनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पणत्ता) औपनिधिकी क्षेत्रानु-
पूर्वी त्रयु प्रकारनी कही छे. (तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रभाणु छे—(पुव्वणु-
पुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) (१) पूर्वानुपूर्वी, (२) पश्चानुपूर्वी (३) अनानुपूर्वी.

अथ—(से किं तं पुव्वणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी अटवे थुं ?

उत्तर—(पुव्वणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वींनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे—(अहोलोए,
तिरियलोए, उड्डलोए) अधोलोक, तिर्यग्लोक अने ऊर्ध्वलोक, (से तं पुव्वणुपुव्वी)
आ कमे कडेवुं तेनुं नाम पूर्वानुपूर्वी छे.

આ પશ્ચાત્પૂર્વી-પશ્ચાત્પૂર્વી ઉર્ધ્વલોકઃ, તિર્યગ્લોકઃ, अधोलोकः। सैषा पश्चात्पू०।
अथ वा मा अनपू०? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां
विच्छिन्नतां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपन्यूनः। सैषा अनानुपूर्वी ॥ सू० १२० ॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि। व्याख्याकृतमाया। उर्ध्वलोकादि लोकत्रय-
विषये किंचिदुच्यते—औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीप्रस्तावे द्रव्यानुपूर्व्यधिकाराद् धर्मा-

उत्तर—(पञ्चाणुपुर्वी) पश्चात्पૂર્વી हसप्रकार से है—उड्डोए तिरि-
यलोए अहोलोए) उर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक, अधोलोक, (से सं पञ्चा-
णुपुर्वी) यह पश्चात्पू० है। (से किं तं अणाणुपुर्वी) अनानुपूर्वी क्या है?

(अणाणुपुर्वी) अनानुपूर्वी हस प्रकार से हैं। (एयाएचेव एगइयाए एगु
त्तरियाए तिगच्छगयाए सेढीए अणमणवभासो दुरुवणो—से तं अणा-
णुपुर्वी) जिसमें पूर्वानुपूर्वी और पश्चात्पू० ये दोनों नहीं हैं उसका नाम
अनानुपूर्वी है इसमें विवक्षित अधोलोक आदि क्लमद्वय को उल्लंघनकरके
परस्पर संलवित भंगों से उन पदों की विरचना की जाती है। इस अनानु-
पूर्वी में जो श्रेणी स्थापित की जाती है, उसमें सब से पहिले १ एक संख्या
स्थापित की जाती है—बाद में एक २ की उत्तरोत्तर वृद्धि तीन संख्या
तक होती चली जाती है। फिर इनमें परस्पर में गुणा किया जाता है।
इन प्रकार अन्योन्याभ्यस्त राशि बन जाती है। इसमें से आदि अंत के

प्रश्न—(से किं तं पञ्चाणुपुर्वी) पश्चात्पू० केने कडे છે?

ઉત્તર—(પન્ચાણુપુર્વી) પશ્ચાત્પૂર્વી આ પ્રકારની હોય છે—(ઉડ્ડોએ, તિરિ-
યલોએ, અહોલોએ) ઉર્ધ્વલોક, તિર્યગ્લોક અને અધોલોક, આ પ્રમાણે ઊલટા
ક્રમે કહેવું (સે તં પન્ચાણુપુર્વી?) તેનું નામ, પશ્ચાત્પૂર્વી છે.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં અણાણુપુર્વી) અનાનુપૂર્વી એટલે શું?

ઉત્તર—(અણાણુપુર્વી) અનાનુપૂર્વી આ પ્રકારની હોય છે—(એયાએ ચેવ
એગાઇયાએ એગુત્તરિયાએ તિગચ્છગયાએ સેઢીએ અણમણવભાસો દુરુવણો—સે તં અણા-
ણુપુર્વી) તેમાં પૂર્વાનુપૂર્વી અને પશ્ચાત્પૂર્વી એ બન્નેનો અભાવ હોય છે,
એવા ક્રમપૂર્વક કથન કરવું તેનું નામ અનાનુપૂર્વી છે. તેમાં ઉપર્યુક્ત બન્ને
ક્રમનું ઉલ્લંઘન કરીને પરસ્પરની સાથે સંલવિત ભંગો (ભાંગાઓ) વડે તે
પદોની વિરચના કરવામાં આવે છે. આ અનાનુપૂર્વીમાં જે શ્રેણી સ્થાપિત
કરવામાં આવે છે, ત્યાર બાદ ત્રણ સંખ્યા સુધી ઉત્તરોત્તર એક એક
સંખ્યાની વૃદ્ધિ થતી રહે છે. ત્યાર બાદ તેમનો પરસ્પરમાં ગુણાકાર કરાય છે.
આ પ્રકારે અન્યોન્ય અભ્યસ્ત રાશિ બની જાય છે તેમાંથી આદિ અને

स्तिकायादीनि द्रव्याणि पूर्वानुपूर्व्यादित्वेन ९८ अस्त्यति इदं उदाहृतानि
अत्र तु क्षेत्रानुपूर्व्याः प्रस्तावात् अधोलोकादयः पूर्वानुपूर्व्यादित्वेनोक्ताः । अर्ध-
लोकादिविभागास्तु—ऊर्ध्वाधश्चतुर्दशरज्ज्वायतस्य अनियतविस्तारस्य एव स्ति-

दो भंग कम कर ने पर अनानुपूर्वी बन जाती है । यही अनानुपूर्वी है ।
इस सूत्र की व्याख्या के लिये ९८ वां सूत्र देखो । ऊर्ध्वलोक आदि जो
तीन लोक हैं, उनके विषय में यहां कुछ-कहा जाता है ।—औपनिधिकी
द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरण में द्रव्यानुपूर्वी का अधिकार होने से जहां धर्मा-
स्तिकाय आदि द्रव्यों को पूर्वानुपूर्वी आदिरूप से उदाहृत किया गया
है । परन्तु यहां क्षेत्रानुपूर्वी का प्रकरण चल रहा है इसलिये अधोलोक
आदि पूर्वानुपूर्वी आदिरूप से उदाहृत हुए हैं । लोक के वे जो ऊर्ध्व-
लोक अधोलोक आदि तीन विभाग किये गये हैं लो उसका कारण
यह है कि मध्यलोक के बीचो-बीच मेरु पर्वत है । इसके नीचे का भाग
अधोलोक और ऊपर का भाग ऊर्ध्वलोक है । तथा बराबर देखा में
तिरछा फैला हुआ मध्यलोक है । मध्यलोक का तिरछा विस्तार अधिक
है इसलिये इसे तिर्यग्लोक भी कहते हैं । लोक ऊपर से नीचे तक-
लंबाई में १४ राजू है । विस्तार इसका अनियत है । यह पांच अस्ति-

अन्तना मे लगे आछां करी नाणवाधी अनानुपूर्वीं णनी जय छे. अना
नुपूर्वीनुं आ प्रकारनुं रूप छे. आ सूत्रनी व्याख्या समजवा भाटे ६८भुं
सूत्र वांथी जपुं.

ऊर्ध्वलोक आदि जे त्रय लोक छे तेमना विषे डवे अहीं थोडुं
कथन करवाभां आवे छे—

औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां द्रव्यानुपूर्वीना अधिकार उदाहरी
त्यां धर्मास्तिकाय आदि द्रव्येनुं पूर्वानुपूर्वीं आदि इपे कथन करवाभां आबुं
छतुं. परन्तु अहीं क्षेत्रानुपूर्वीना अधिकार यादी रह्यो छे तेथी आदीं
अधोलोक आदि क्षेत्रानु पूर्वानुपूर्वीं आदि इपे कथन करवाभां आबुं छे. तेमना
ऊर्ध्वलोक अधोलोक (तिर्यग्लोक) आदि जे त्रय विभाग करवाभां आव्या छे तेनुं
कारणुं मे छे के मध्यलोकनी वनशेषय मेरुपर्वत छे. तेनी नीचेना भाग
अधोलोक अने उपरना भागने ऊर्ध्वलोक कडे छे तथा मध्यलोक तेमना
तिरछो फैलायेयो मध्यलोक छे. मध्यलोकने तिरछो विस्तार अधिक
कारणुं तेने तिर्यग्लोक पद्य कडे छे लोकनी उपरथी नीचे सुधीनी लम्बाई
१४ राजूप्रमाणुं छे. अने तेना विस्तार अनियत छे ते पांच अस्तिकायेथी

कायमपस्य त्रिधा परिकल्पनया सम्पद्यन्ते । तत्रास्यां रत्नप्रभायां बहुसमभूभागे मेरुमध्ये नभःप्रदेशद्वयेऽष्टप्रदेशो रुचकोऽस्ति । तस्य प्रतरद्वयस्य मध्ये एकस्मादधस्तनप्रतरादारभ्याधोऽभिमुखं नव योजनशतानि परिहृत्य परतः सातिरेकसप्त-रज्ज्वायतोऽधोलोकः । अथवा-अधः शब्दोऽशुभार्थकः तत्र च क्षेत्रप्रभावाद् बाहु-ल्येनाशुभएव द्रव्याणां परिणामो भवति । अशुभपरिणामिद्रव्यवत्त्वादेव स लोकः अधोलोक इत्युच्यते । उक्तं च-

‘अहव अहोपरिणामो खेत्ताणुभावेण जेण ओसण्णं प्रायः ।

असुभो अहोत्ति भणिओ दव्वाणं तेणऽहोलोणो ॥”

छाया-अथवा अधः परिणामः क्षेत्रानुभावेन येनोत्सन्नम् ।

अशुभोऽध इति भणितो द्रव्याणां तेनाधोलोकः ॥इति॥

कार्यों से व्याप्त है लोक के अधः मध्य और ऊर्ध्व इस प्रकार से ये तीन विभाग हैं । इस रत्नप्रभा पृथिवीपर बहु समभूभागवाले मेरु पर्वत के मध्य में आकाश के दोप्रतरों में अर्थात् दो दो प्रदेशों के वर्ग में आठ रुचक प्रदेश हैं । उस प्रतरद्वय में से एक अधस्तन प्रतर से लेकर नीचे की नौ सौ योजन की गहराई को छोड़कर उसके आगेनीचे कुछ अधिक सात राजू विस्तारवाला अधोलोक है । अथवा-अधः शब्द अशुभ अर्थ का वाचक है । उस अधोलोक में क्षेत्र के प्रभाव से अधिकतर अशुभ ही द्रव्यों का परिणाम होता है । इसलिये अशुभ परिणामवाले द्रव्यों से युक्त होने से कहा जाता है यही बात उक्तच करके “अहव अहो परिणामो” इत्यादि गाथा द्वारा निर्दिष्ट की गई है । तथा उसी प्रकार द्रव्यमें से एक उपरितन प्रतर से लेकर ऊंचे नौ सौ

व्याप्त छे. लोकना त्रयु विभाग नीचे प्रमाणे छे-(१) अधः (२) मध्य अने (३) ऊर्ध्व आ रत्नप्रभा पृथ्वी पर बहुसमभूभागवाला मेरु पर्वतना मध्यमां आकाशना जे प्रतरां-अष्टके के अण्णे प्रदेशाना वर्गमां आठ रुचकप्रदेश छे. ते जे प्रतरांना एक अधस्तन प्रतरथी लधने नीचे ६०० योजननी लंटाधने पार करवाथी सात राजू करतां अधिक विस्तारवाला अधोलोक आवे छे अथवा ‘अधः’ पद अशुभ अर्थनु वाचक छे. ते अधोलोकमां क्षेत्रना प्रभावने लीधे अधिकतर अशुभ द्रव्यपरिणाम जे होय छे. आ रीते अशुभ परिणामवालां द्रव्येथी युक्त होवाने कारणे ते लोकने अधोलोकने नामे आणभवामां आवे छे. अज वात सूत्रकारे “अहव अहो परिणामो” इत्यादि गाथा द्वारा प्रकट कवी छे,

तथा च—तस्यैव रुचकप्रतरद्वयस्य मध्ये एकस्मादुपरितनप्रतरादारभ्योर्ध्वं नव योजन-
शतानि परिहृत्य परतः किञ्चिन्न्यूनसप्तरज्ज्वायतऊर्ध्वलोकः । ऊर्ध्वम्—उपरि-
व्यवस्थापितो लोक ऊर्ध्वलोकः । अथवा—ऊर्ध्वशब्दः शुभपर्यायः । तत्र क्षेत्रप्रभा-
वाद् द्रव्याणां प्रायः शुभाएव परिणामा भवन्ति । अतः शुभपरिणामि द्रव्ययो-
गादूर्ध्वः शुभो लोकः—

उक्तंच—‘ उडुंति उवरि जंचिय सुभखित्तं खेत्तओ य दव्वगुणा ।

उप्पज्जंति सुभा वा तेण तओ उडुलोगोत्ति ॥ ”

छाया—ऊर्ध्वमिति उपरि यदेव शुभं क्षेत्रं क्षेत्रतश्च द्रव्यगुणाः ।

उत्पद्यन्ते शुभा वा तेन स ऊर्ध्वलोक इति ॥ इति ।

तथा च—पूर्वोक्तयोरधोलोकोर्ध्वलोकयोरन्तरालेऽष्टादश योजनशतानि तिर्यग्लोकः ।
समयपरिभाषया तिर्यग् मध्ये व्यवस्थितो लोकः तिर्यग्लोकः । अथवा—तिर्यक्छन्दो

योजन छोड़कर ऊसके आगेऊपर कुछ कम सात राजू लंबा ऊर्ध्वलोक
है । ऊपर रहा हुआ जो लोक है उसका नाम ऊर्ध्वलोक है । अथवा—
ऊर्ध्वशब्द यहां शुभ अर्थ का वाचक है । उस ऊर्ध्वलोक में क्षेत्र के
प्रभाव से द्रव्यों के परिणाम प्रायः शुभ ही होते हैं इसलिये शुभ
परिणामवाले द्रव्यों के संबन्ध से शुभलोक का नाम ऊर्ध्वलोक है ।
यही बात यहा उक्तंच करके “ उडुंति उवरि ” इत्यादि गाथा द्वारा
प्रकट की गई है । इन पूर्वोक्त अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के बीच में १८
सौ योजन प्रमाणवाला तिर्यग्लोक-मध्यलोक है । सिद्धान्त की परि-
भाषा के अनुसार यहां तिर्यग् शब्द का अर्थ मध्य है । इसलिये मध्य
में व्यवस्थित हुए लोक का नाम तिर्यग् मध्य-लोक है । अथवा—तिर्यग्

ઉપર જે બે પ્રતરની વાત કરી છે તેમાંના એક ઉપરિતન પ્રતરથી લઈને
૬૦૦ યોજન ભીંચે જવાથી સાત રાજૂ કરતાં સહેજ ઓછા વિસ્તારવાળો
ઉર્ધ્વલોક આવે છે. તે લોક ભીંચે આવેલો હોવાથી તેનું નામ ઉર્ધ્વલોક
છે. અથવા ‘ ઉર્ધ્વ ’ શબ્દ અહીં શુભ અર્થનો વાચક છે તે ઉર્ધ્વલોકમાં
ક્ષેત્રના પ્રભાવથી દ્રવ્યોનું પરિણામ સામાન્ય રીતે શુભ જ હોય છે આ
રીતે શુભ પરિણામવાળાં દ્રવ્યોથી યુક્ત હોવાને કારણે તે લોકનું નામ
ઉર્ધ્વલોક પડ્યું છે. એજ વાત સૂત્રકારે નીચેની ગાથા દ્વારા વ્યક્ત કરી છે—
“ ઉડુંતિ ઉવરિ ” ઇત્યાદિ આ પૂર્વોક્ત અધોલોક અને ઉર્ધ્વલોકની વચ્ચે
૧૮ સો યોજનના પ્રમાણવાળો તિર્યગ્લોક-મધ્યલોક છે. સિદ્ધાંતની પરિભાષા
પ્રમાણે અહીં ‘ તિર્યગ્ ’ પદનો અર્થ ‘ મધ્ય ’ થાય છે. તેથી મધ્યમાં રહેલા
લોકનું નામ તિર્યગ્ (મધ્ય) લોક પડ્યું છે અથવા ‘ તિર્યગ્ ’ આ પદ

મધ્યમપર્યાયઃ । તત્ર ચ ક્ષેત્રપ્રભાવાત્ પ્રાયો મધ્યમપરિણામવન્ત્યેવ દ્રવ્યાણિ સંજાયન્તે, અતસ્તદ્યોગાત્ તિર્યક્-મધ્યમો લોકસ્તિર્યગ્લોકઃ । યદ્વાઽસ્ય લોકસ્ય ऊर्ध्वाधो-ભાગાપેક્ષયા તિર્યગ્લોક એવ વિશાલતયા પ્રધાનમ્ । ‘પ્રાધાન્યેન વ્યપદેશા ભવન્તિ’ । ઇતિ ન્યાયમનુસૂત્યાયં લોકોઽપિ ‘તિર્યગ્લોકઃ’ ઇત્યુચ્યતે । ઉક્તંચ-

“મજ્જણુભાવં ચેત્તં જં તં તિરિયંતિ વ્યણપજ્જવઓ ।

મણ્ણઇ તિરિયં વિસાલં અતો વ તં તિરિયલોમોત્તિ ॥”

છાયા-મધ્યાનુભાવં ક્ષેત્રં યત્ તત્તિર્યગિતિ વચનપર્યવાત્ ।

મળ્યતે તિર્યગ્ વિશાલમતો વા સ તિર્યગ્લોક ઇતિ ॥ ઇતિ ।

અત્ર જચન્યપરિણામિ દ્રવ્યયોગાત્ જચન્યતયા ચત્તુર્દશગુણસ્થાનકેષુ મિધ્યાદષ્ટે-રિવ આદાવેવ અધોલોકસ્યોપન્યાસઃ । તતો મધ્યમપરિણામિ દ્રવ્યયોગાન્મધ્યમત્વેન

શબ્દ યહાં મધ્યમ પર્યાય કા વાચક હૈ । ઇસ મધ્યલોક મેં ક્ષેત્ર કે પ્રભાવ સે પ્રાયઃ મધ્ય પરિણામવાલે હી દ્રવ્ય હોતે હૈં । ઇસલિયે ઇન મધ્યમ પરિણામવાલે દ્રવ્યોં કે સંયોગ સે તિર્યગ્-મધ્યમ-જો લોક હૈં ઉસકા નામ તિર્યગ્લોક હૈં । અથવા-ઇસ લોક મેં અપને ऊर्ध्व और अधो ભાગ કી અપેક્ષા સે તિર્યક્ લોક હી વિશાલ હૈં ઇસલિયે વિશાલતા કી અપેક્ષા વહી પ્રધાન હૈં । ઓર એસા ન્યાય હૈં કિ જો પ્રધાન હોતા હૈં ઉસી કે અનુસાર વ્યપદેશ-નામ ચલતા હૈં । ઇસલિયે ઇસ લોક કો તિર્યગ્ લોક ઇસ નામ સે કહ દિયા ગયા હૈં । ઉક્તંચ કરકે યહી વાત “મજ્જણુભાવં ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા સ્પષ્ટ ક્રિયા ગયા હૈં । યહાં જો સૂત્ર મેં સર્વપ્રથમ અધો-લોક કા ઉપન્યાસ ક્રિયા ગયા હૈં સો ઉસકા કારણ ઘહ હૈં કિ વહાંપર પ્રાયઃ જચન્ય પરિણામ વાલે દ્રવ્યોં કા હી સંબંધ રહા કરતા-હૈં । ઇસલિયે

મધ્યમપર્યાયનું વાચક છે આ મધ્યલોકમાં ક્ષેત્રના પ્રભાવથી સામાન્ય રીતે મધ્યમ પરિણામવાળાં દ્રવ્યોં જ હોય છે. આ મધ્યમ પરિણામવાળાં દ્રવ્યોંથી યુક્ત હોવાને કારણે તિર્યગ્-મધ્યમ જે લોક છે તેનું નામ તિર્યગ્લોક પડ્યું છે. અથવા આ લોકના ઉર્ધ્વ અને અધોભાગ કરતાં તિર્યગ્લોક જ વધારે વિશાળ છે તે કારણે તિર્યગ્લોકને જ મુખ્ય ગણી શકાય એવો નિયમ છે કે જે પ્રધાન હોય તેને નામે જ વ્યવહાર ચાલે છે. તેથી આ લોકને “તિર્યગ્લોક” આ પ્રકારનું નામ આપવામાં આવ્યું છે. સૂત્રકારે “મજ્જણુ ભાવં” ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા એજ વાત વ્યક્ત કરી છે.

અહીં સૂત્રકારે સૌથી પહેલાં અધોલોકનું કથન કર્યું છે, કારણ કે અધોલોકમાં સામાન્યતઃ જચન્ય પરિણામવાળાં દ્રવ્યોંનો જ સદ્ભાવ રહે છે.

तिर्यग्लोकस्योपन्यासः । ततश्च उत्कृष्ट द्रव्यत्रत्वाद्ध्वलोकस्योपन्यासः, इति
पूर्वानुपूर्व्याः क्रमो बोध्यः । पश्चानुपूर्व्यां तु पूर्वानुपूर्व्यां व्युत्क्रमो बोध्यः ।
अनानुपूर्व्यां तु पदत्रयस्य पद्मभङ्गा भवन्ति, ते च पूर्व दर्शिता एव । शेषभावना
त्विह प्राग्वदेव बोध्या ॥सू० १२०॥

सम्प्रति शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थम् अधोलोक क्षेत्रानुपूर्व्यादि दर्शयितुमाह-

मूलम्-अहोलोअ खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पणत्ता, तं जहा-
पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी । से किं तं पुव्वाणुपुव्वी !
पुव्वाणुपुव्वी-रयणप्पभा सक्करप्पभा वालुअप्पभा पंकप्पभा
धूमप्पभा तमप्पभा तमतमप्पभा । से तं पुव्वाणुपुव्वी ?
से किं तं पच्छाणुपुव्वी ! पच्छाणुपुव्वी-तमतमा जावं

जिस प्रकार चौदह गुण स्थानों में जघन्य होने से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान
का सर्व प्रथम उपन्यास करने में आया है इसीप्रकार यहांपर भी जघ-
न्य होने से अधोलोक का उपन्यास करने में आया है । तथा मध्यम
परिणाम वाले द्रव्यों के संबंध को लेकर मध्यम होने के कारण तिर्यग्
लोक का और उत्कृष्ट द्रव्यवाला होने के कारण ऊर्ध्वलोक का क्रमशः
उपन्यास किया गया है यह पूर्वानुपूर्वी का क्रम है । और जो पश्चानुपूर्वी
है उसमें पूर्वानुपूर्वी का व्युत्क्रम रहा करता है । तथा अनानुपूर्वी में इन
तीन पदों के ६ भंग होते हैं ये पहिले दिखला ही दिये गये हैं । शेष
भावना यहां पहिले की तरह ही जाननी चाहिये ॥ सू० १२०॥

जेवी रीते १४ गुणुस्थानानुं वणुंन करती वणते जघन्य जेवां मिथ्यादृष्टि
गुणुस्थाननुं वणुंन सौथी पडेलां करवाभां आवे छे, जेज प्रभाणु जघन्य डोवाने
कारणु अधोलोकनुं वणुंन पणु सौथी पडेलां करवाभां आणुं छे, मध्य परि-
णुभवाणां द्रव्येथी युक्त डोवाने कारणु तिर्यग्लोकने उपन्यास (वणुंन) त्यार भाद
करवाभां आणुं छे, अने उत्कृष्ट द्रव्यपरिणुभवाणा उर्ध्वलोकने उपन्यास (वणुंन)
त्यार भाद करवाभां आणुं छे. आ पूर्वानुपूर्वीने क्रम छे पश्चानुपूर्वीभां
पूर्वानुपूर्वीं करतां उदो क्रम रडे छे, तथा अनानुपूर्वीभां आ त्रणु पडोना
६ लंग (विकल्पे) थाय छे, ते लगे पडेला अतापवभां आणुं छे
आधीनुं कथन पडेलाना कथन प्रभाणु जे अहीं समजवुं जेछुंजे. ॥सू० १२०॥

રયણપ્પમા । સે તં પચ્છાણુપુઠ્ઠી । સે કિં તં અણાણુપુઠ્ઠી ?
અણાણુપુઠ્ઠી ઇયાણ ચેવ ઇગાઙ્ગયાંણ ઇગુત્તરિયાણ સત્તગચ્છગયાણ
સેઠીણ અન્નમન્નભાસો દુરૂઠ્ઠુણો । સે તં અણાણુપુઠ્ઠી ॥સૂ૦ ૧૨૧॥

છાયા—અધોલોક ક્ષેત્રાનુપૂર્વી ત્રિવિધા પ્રજ્ઞપ્તા, તથા-પૂર્વાનુપૂર્વી, પશ્ચા-
નુપૂર્વી અનાનુપૂર્વી । અથ કા સા પૂર્વાનુપૂર્વી ? પૂર્વાનુપૂર્વી-રત્નપ્રમા શર્કરાપ્રમા
વાલુકાપ્રમા પંક્રપ્રમા ધૂમપ્રમા તમઃપ્રમા તમસ્તમઃપ્રમા । અથ કા સા પશ્ચાનુ-
પૂર્વી ? પશ્ચાનુપૂર્વી-તમસ્તમા યાવદ્ રત્નપ્રમા સૈષા પશ્ચાનુપૂર્વી । અથ કા સા અના-
નુપૂર્વી ? અનાનુપૂર્વી એતસ્યામેવ એકાદિકાયામેકોત્તરિકાયાં સપ્તગચ્છગતાયાં
શ્રેણ્યામ્ અન્યોઽન્યાભ્યાસો દ્વિરૂપોનઃ ॥સૂ૦ ૧૨૧॥

અવ સૂત્રકાર શિષ્યજનોં કી બુદ્ધિ કી વિશદતા કે નિમિત્ત અધોલોક
ક્ષેત્રાનુપૂર્વી આદિ કો દિશ્વ લાતે હૈ—‘અહોલોએ સેત્તાણુપુઠ્ઠી’ ઇત્યાદિ ।

શબ્દાર્થ—(અહોલોએ સેત્તાણુપુઠ્ઠી ત્રિવિધા પળ્લતા) અધોલોક
ક્ષેત્રાનુપૂર્વી ત્રીન પ્રકાર કી કહી ગઈ હૈ—(તંજહા) જૈસે (પુઠ્ઠાણુપુઠ્ઠી,
પચ્છાણુપુઠ્ઠી, અણાણુપુઠ્ઠી) પૂર્વાનુપૂર્વી પશ્ચાનુપૂર્વી ઓર અનાનુપૂર્વી
(સે કિં તં પુઠ્ઠાણુપુઠ્ઠી) હૈ ભદન્ત । પૂર્વાનુપૂર્વી કયા હૈ ?

ઉત્તર—(પુઠ્ઠાણુપુઠ્ઠી) અધોલોક પૂર્વાનુપૂર્વી ઇસ પ્રકાર હૈ—(રયણ-
પ્પમા, સક્કરપ્પમા, વાલુઅપ્પમા, પંક્રપ્રમા, ધૂમપ્પમા, તમપ્પમા,
તમ તમપ્પમા) રત્નપ્રમા, શર્કરાપ્રમા, વાલુકાપ્રમા, પંક્રપ્રમા, ધૂમ-
પ્રમા, તમઃપ્રમા, ઓર તમસ્તમઃપ્રમા, ઇનમે જો પહિલી નરક પૃથ્વી

શિષ્યોને આ વાત બરાબર સમજાય તે ઉદ્દેશથી સૂત્રકાર હવે અધોલોક
ક્ષેત્રાનુપૂર્વી આદિનું નિરૂપણ કરે છે—“અહોલોએ સેત્તાણુપુઠ્ઠી” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(અહોલોએ સેત્તાણુપુઠ્ઠી ત્રિવિધા પળ્લતા) અધોલોક ક્ષેત્રાનુપૂર્વી
ત્રણ પ્રકારની કહી છે (તંજહા) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(પુઠ્ઠાણુપુઠ્ઠી,
પચ્છાણુપુઠ્ઠી, અણાણુપુઠ્ઠી) પૂર્વાનુપૂર્વી, પશ્ચાનુપૂર્વી, અને અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં પુઠ્ઠાણુપુઠ્ઠી?) હે ભગવન્ । અધોલોક પૂર્વાનુપૂર્વી કવી છે?

ઉત્તર—(પુઠ્ઠાણુપુઠ્ઠી) અધોલોક પૂર્વાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે—(રયણપ્પમા
સક્કરપ્પમા, વાલુઅપ્પમા, પંક્રપ્પમા, ધૂમપ્પમા, તમપ્પમા, તમતમપ્પમા) રત્નપ્રમા,
શર્કરાપ્રમા, વાલુકાપ્રમા, પંક્રપ્રમા, ધૂમપ્રમા, તમઃપ્રમા તમસ્તમઃપ્રમા, આ
ક્રમે સાતે પૃથ્વીઓને ઉપન્યાસ કરવો તેનું નામ અધોલોક પૂર્વાનુપૂર્વી છે.
પહેલી નરકપૃથ્વીનું નામ રત્નપ્રમા પડવાનું કારણ એ છે કે ત્યાં નારકોનાં

टीका— 'अहोलोअखेत्ताणुपुत्री' इत्यादि ।

अधोलोक क्षेत्रानुपूर्वी हि-पूर्वानुपूर्व्यादि भेदस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता । तत्र पूर्वानु-
पूर्वी-नारकजीवनिवासस्थानातिरिक्तस्थानेषु इन्द्रनीलादि बहुविधरत्नानां प्रभायाः
सत्वात् प्रथमा नरकपृथिवी रत्नप्रभेत्युच्यते । द्वितीया शर्कराप्रभा । इयं हि शर्क-
रणाम्-उपलखण्डानां प्रभावत् प्रभावत्त्वेन शर्कराप्रभेत्युच्यते । तृतीया-वालुकाप्रभा ।
वालुकायाः-सिकतायाः प्रभावत् प्रभावत्त्वेनैषा वालुकाप्रभेत्युच्यते । एवमेव--
पङ्कस्य='कीचड' इति लोकप्रसिद्धस्य, धूमस्य='धूआ' इति लोकप्रसिद्धस्य,
तमसः=अन्धकारस्य कृष्णद्रव्यस्य, तमस्तमसः=महान्धकारस्य-निविडकृष्णवर्ण-
द्रव्यस्य च प्रभावत् प्रभावत्त्वेन तत्तत्पृथिवी पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तम-

है उसका नाम रत्नप्रभा इसलिये हुआ है कि नारक जीवों के निवास
स्थानों के अतिरिक्त स्थानों में वहाँ इन्द्रनील आदि अनेक प्रकार के
रत्नों की कान्तिका सद्भाव है । शर्कराप्रभा, नाम की जो द्वितीय भूमि
है उसकी प्रभा शर्करों-पाषाण खंडों की प्रभा जैसी है । वालुकाप्रभा
नाम की जो तृतीय भूमि है उसकी कान्ति रेत की प्रभा के समान है ।
पंकप्रभा नाम की चौथी भूमि है उसकी प्रभा कीचड़ की प्रभा के समा-
न है । धूमप्रभा नाम की पाँचवीं भूमि की प्रभा धूआं की प्रभा जैसी
है । तमः प्रभा नामकी छठी भूमि की प्रभा कृष्ण द्रव्यरूप जो अंधकार
है उसकी प्रभा के जैसी है । और जो सातवीं भूमि तमस्तमःप्रभा है,
उसकी कान्तिगाढ कृष्ण द्रव्यरूप जो महांधकार है उसकी कान्ति जैसी
है इस प्रकार पूर्वानुपूर्वी में रत्नप्रभा शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंक

निवासस्थाने सिंघायनां स्थानोमां इन्द्रनील आदि अनेक प्रकारनां रत्नोनी
कान्तिनो सद्भाव छे. भी७ नरकपृथ्वीनी कान्ति शर्कराओनी कान्ति
जेवी डोवाथी तेनुं नाम शर्कराप्रभा छे. त्री७ नरकपृथ्वीनी कान्ति रेतनी
कान्तिना जेवी डोवाथी तेनुं नाम वालुकाप्रभा छे. चौथी पृथ्वीनी प्रभा
पंक (काँठ)ना जेवी डोवाथी तेनुं नाम पंकप्रभा पड्युं छे. पाँचमी पृथ्वीनी
प्रभा धुमाडाना जेवी डोवाथी तेनुं नाम धूमप्रभा पड्युं छे. छठी पृथ्वीनी
प्रभा कृष्णद्रव्य इय अंधकारना जेवी डोवाथी तेनुं नाम तमःप्रभा छे. सातमी
पृथ्वीनी कान्ति गाढ-अतिशय कृष्णद्रव्य इय महांधकारनी कान्ति जेवी
डोवाथी तेनुं नाम तमस्तमःप्रभा छे आनुपूर्वीमां आ इमे साते पृथ्वीओनो
उप-यास थाय छे.

રત્નમઃ—પ્રભેતિ ક્રમેણ નામ્ના વ્યપદિશ્યતે । एषा पूर्वानुपूर्वी । पश्चानुपूर्व्या तु तम-
स्तमा इत्यारभ्य रत्नप्रभेत्त्यन्तं व्युत्क्रमेण व्यवस्थापना बोध्या । अनानुपूर्व्या तु
एषां सप्तानां पदानामन्योन्याभ्यासे चत्वारिंशदधिकाः पञ्चसहस्रसंख्यकाः पूर्वानु-
पूर्वी पश्चानुपूर्वीरूपाऽऽद्यन्तभङ्गद्वयविवक्षारहिता भङ्गा बोध्याः ॥सू० १२१॥

મૂલમ્—તિરિયલોય સ્વેતાણુપુઘ્વી તિવિહા પળ્ળત્તા, તં જહા-
પુઘ્વાણુપુઘ્વી પચ્છાણુપુઘ્વી અણાણુપુઘ્વી । સે કિં તં પુઘ્વાણુપુઘ્વી ?
પુઘ્વાણુપુઘ્વી—“જંબુદ્વીવે લવણે, ધાયઙ્ કાલોય પુત્રસરે વરુણે ।
સીર ઘય સ્વોય નંદી, અરુણવરે કુંડલે રુઙ્ગે ॥૧॥ આભરણવત્થ-
ગંધે, ઉપ્પલતિલ્લ ય પુઠ્ઠવિનિહિરયણે । વાસહરદહનઈઓ,
વિજયાવત્સારકર્પિપદા ॥૨॥ કુરુમંદર આવાસા, કૂડા નક્ષત્ત-

પ્રમા, ધૂમપ્રમા, તમઃપ્રમા ઓર તમસ્તમઃ પ્રમા, ઇસ પ્રકાર ઇન સાત
ભૂમિયોં કા ઉપન્યાસ હોના હૈ । તથા પશ્ચાનુપૂર્વી મેં તમસ્તમઃપ્રમા સે
લેકર રત્નપ્રમા તક વ્યુત્ક્રમ સે ઇન ભૂમિયોં કા ઉપન્યાસ કિયા જાતા
હૈ । અનાનુપૂર્વી મેં ઇન સાત પદોં કા ૧-૨-૩-૪-૫-૬-૭ ઇસ રૂપ સે
ઉપન્યાસ કિયા જાતા હૈ । ફિર બાદ મેં ઓપસ મેં ઇનકા ગુણા કિયા
જાતા હૈ । ઇસ પ્રકાર ગુણા કરને પર જો રાશિ ઉત્પન્ન હોતી હૈ ડસમેં સે
આદિ અન્ત દો ભંગ કર દિયે જાતે હૈ । ઇન સાત પદોં કા પરસ્પર ગુણા
હોને પર ૫૦૪૦ ભંગ હોતે હૈ । ઇનમેં સે પૂર્વાનુપૂર્વી ઓર પશ્ચાનુપૂર્વીરૂપ
દો આદિ અન્ત કે ભંગ કર દિયે જાતે હૈ । ઇસ પ્રકાર યહ અધો-
લોક સંબંધી અનાનુપૂર્વી હૈ । ॥ સૂ૦ ૧૨૧ ॥

પશ્ચાનુપૂર્વીમાં તમસ્તમઃપ્રમાથી લઇને રત્નપ્રમા સુધીનાં ઊલટા ક્રમે
સાતે પૃથ્વીઓનો ઉપન્યાસ કરવામાં આવે છે. અનાનુપૂર્વીમાં આ સાત
પદોનો ૧, ૨, ૩, ૪, ૫, ૬, ૭ આ રૂપે વર્ણન કરવામાં આવે છે,
ત્યાર બાદ પરસ્પરમાં તેમનાં ગણાં કરવામાં આવે છે આ પ્રમાણે ગણાં
કરવાથી જે રાશિ ઉત્પન્ન થાય છે તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભંગો
(વિકલ્પો) બાદ કરવામાં આવે છે આ સાત પદોનો પરસ્પર ગુણાકાર થવાથી
૫૦૪૦ ભંગ થાય છે તેમાંથી પૂર્વાનુપૂર્વી અને પશ્ચાનુપૂર્વી રૂપ આદિ
અન્તના બે ભંગ ઓછાં કરવામાં આવે છે. અધોલોક સંબંધી અનાનુપૂર્વી
આ પ્રકારની છે. ॥સૂ૦ ૧૨૧॥

शब्दसूराय । देवे नागे जक्खे भूएय सयंभूरमणे य ॥३॥ से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी ? पच्छाणुपुव्वी—सयंभूरमणेय जाव जंबुद्दीवे । से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ? अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखेज्जगच्छगयाए सेढीए अपणमणणवभासो दुरूवूणो । से तं अणाणुपुव्वी ॥सू० १२२॥

छाया—तिर्यग्लोक क्षेत्रानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता तद्यथा—पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानुपूर्वी ? पूर्वानुपूर्वी जम्बुद्वीपो लवणो धातकी कालोदः पुष्करः वरुणः । क्षीरः घृतः क्षोदः नन्दी अरुणवरः कुण्डलः रुक्कः । आभरणवस्त्रगन्धाः उत्पलतिलकं च पृथिवीनिधिरत्नम् । वर्षधरहृदनद्यो विजया

“तिरियल्लोयखेत्ताणुपुव्वी” इत्यादि

शब्दार्थ—(तिरियल्लोयखेत्ताणुपुव्वी त्रिविहा पणत्ता) तिर्यग्लोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है । (तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी । (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?) हे भदन्त ! पूर्वानुपूर्वी क्या है ? (पुव्वाणु पुव्वी)

उत्तर—पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से है—जंबुद्वीवे लवणे, धायई कालोय पुक्खरे वरुणे । खीर-घय-खोय नन्दी-अरुणवरे कुण्डले रुअगे ॥ १ ॥

“आभरणवत्थगंधे, उत्पलतिलए य पुढवि निहिरयणे । वासहरदहनईओ, विजया वक्खारकप्पिदा ॥ २ ॥ जंबुद्वीप, लवणसमुद्र धातकी

“ तिरियल्लोयखेत्ताणुपुव्वी ” इत्यादि

शब्दार्थ—(तिरियल्लोयखेत्ताणुपुव्वी त्रिविहा पणत्ता) तिर्यग्लोक क्षेत्रानुपूर्वी त्रय प्रकारनी कही छे । (तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी अने अनानुपूर्वी । प्रश्न—(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?) हे भगवन् ! पूर्वानुपूर्वीतुं स्वल्प कहे छे ?

उत्तर—(पुव्वाणुपुव्वी) तिर्यग्लोक सम्बन्धी पूर्वानुपूर्वी आ प्रकारनी छे—

(जंबुद्वीवे लवणे, धायई कालो य पुक्खरे वरुणे ।

खीर-घयखोय-नन्दी-अरुणवरे कुण्डले रुअगे ॥१॥

आभरणवत्थगंधे, उत्पलतिलए य पुढविनिहिरयणे ।

वासहर दहनईओ, विजयावक्खारकप्पिदा ॥२॥

जंबुद्वीप, लवणसमुद्र, धातकी अंश, क्षोदसमुद्र, पुष्करद्वीप,

વક્ષસ્કારકલ્પેન્દ્રાઃ । કુરુમન્દરભાવાસા કૂટા નક્ષત્રવન્દ્રસૂર્યાશ્ચ । દેવો નાગો યજ્ઞો
 ભૂતશ્ચ સ્વયંભૂરમણશ્ચ । સૈષા પૂર્વાનુપૂર્વી । અથ કા સા પશ્ચાનુપૂર્વી પશ્ચાનુપૂર્વી-
 સ્વયંભૂરમણશ્ચ યાવજ્જમ્બૂદ્વીપઃ । સૈષા પશ્ચાનુપૂર્વી । અથ કા સા અનાનુપૂર્વી ?
 અનાનુપૂર્વી-એતસ્યામેવ એકાદિકાયામેકોત્તરિકાયામસંખ્યેયગચ્છગતાયાં શ્રેણ્યા-
 મન્યોન્યાભ્યાસો દ્વિરૂપોનઃ । સૈષા અનાનુપૂર્વી ॥ સૂ. ૧૨૨ ॥

ટીકા — ‘તિરિયલોઅ’ इत्यादि ।

તિર્યંગ્લોકક્ષેત્રાનુપૂર્વી અપિ પૂર્વાનુપૂર્વ્યાદિભેદેન ત્રિવિધા વિજ્ઞેયા । તत्र
 જમ્બૂદ્વીપેત્યારમ્ય સ્વયંભૂરમણેત્યન્તં પૂર્વાનુપૂર્વી બોધ્યા । તत्र-જમ્બૂદ્વીપો જમ્બૂ-
 વૃક્ષોપલક્ષિતો દ્વીપો બોધ્યઃ તતસ્તં પરિવેષ્ટય સ્થિતો લઘ્વણસવજ્જલ-
 પૂરિતો લઘ્વણસમુદ્રઃ । લઘ્વણસમુદ્રં પરિવેષ્ટય ધાતકીવૃક્ષોપલક્ષિતો ધાતકી-
 દ્વીપઃ । તતસ્તં પરિવેષ્ટય શુદ્ધજલરસાસ્વાદવાન્ કાલોદઃ સમુદ્રઃ । તં પરિ-
 વેષ્ટય સ્થિતઃ પુષ્કરૈરુપલક્ષિતઃ પુષ્કરદ્વીપઃ । પુષ્કરદ્વીપં પરિવેષ્ટય સ્થિતઃ શુદ્ધ
 જલરસાસ્વાદવાન્ પુષ્કરોદઃ સમુદ્રઃ । તં પરિવેષ્ટય સ્થિતો વરુણો દ્વીપઃ । તતો
 વારુણીરસાસ્વાદો વારુણોદઃ સમુદ્રઃ । તતઃ ક્ષીરદ્વીપઃ । તતશ્ચ ક્ષીરોદઃ સમુદ્રઃ ।
 તતશ્ચ ઘૃતદ્વીપઃ । તતો ઘૃતોદઃ સમુદ્રઃ । તત ઇક્ષુદ્વીપઃ । તતશ્ચ ઇક્ષુરસાસ્વાદ ઇક્ષુ-
 રસોદઃ સમુદ્રઃ । તતો નન્દી-નન્દીશ્વરદ્વીપઃ । તતો નન્દીશ્વરસમુદ્રઃ । તતોઽરુણવરો

લ્લંડ, કાલોદસમુદ્ર પુષ્કરદ્વીપ, પુષ્કરોદસમુદ્ર, વરુણદ્વીપ, વારુણોદસમુદ્ર
 ક્ષીરદ્વીપ, ક્ષીરોદસમુદ્ર, ઘૃતદ્વીપ ઘૃતોદસમુદ્ર, ઇક્ષુદ્વીપ, ઇક્ષુરસોદ-
 સમુદ્ર, નન્દીદ્વીપ નન્દીસમુદ્ર અરુણવરદ્વીપ અરુણવરસમુદ્ર કુણ્ડલદ્વીપ,
 કુન્ડલસમુદ્ર, રુચ્કદ્વીપ, રુચ્કસમુદ્ર, । इसके बाद असंख्यातद्वीप
 और असंख्यात समुद्र हैं । सब से अन्तिम द्वीप स्वयंभूर-
 मण द्वीप और सबसे अन्तिमसमुद्र स्वयंभूरमण समुद्र हैं । अनुक्त इन
 द्वीपसमुद्रों के नाम आभरण, वस्त्र, गंध, उत्पल तिलक आदि से उप-
 लक्षित हैं अर्थात् स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त जो और द्वीप और समुद्र

પુષ્કરોદસમુદ્ર, વરુણદ્વીપ, વારુણોદસમુદ્ર, ક્ષીરદ્વીપ, ક્ષીરોદસમુદ્ર, ઘૃત-
 દ્વીપ, ઘૃતોદસમુદ્ર, ઇક્ષુદ્વીપ, ઇક્ષુરસોદસમુદ્ર, નન્દીદ્વીપ, નન્દીસમુદ્ર, અરુ-
 ણવરદ્વીપ, અરુણવરસમુદ્ર, કુંડલદ્વીપ, કુંડલસમુદ્ર, રુચ્કદ્વીપ, રુચ્કસમુદ્ર,
 ત્યાર બાદ અસંખ્યાત દ્વીપો અને અસંખ્યાત સમુદ્રો છે. સૌથી છેલ્લો દ્વીપ
 સ્વયંભૂરમણદ્વીપ, અને સૌથી છેલ્લો સમુદ્ર સ્વયંભૂરમણસમુદ્ર છે. અનુક્ત
 (નેનાં નામે અહીં કદ્યાં નથી એવા) દ્વીપસમુદ્રોનાં નામ આભરણ, વસ્ત્ર,
 ગંધ, ઉત્પલ, તિલક આદિથી ઉપલક્ષિત છે. એટલે કે રુચ્કસમુદ્રથી લઈને
 સ્વયંભૂરમણ સમુદ્ર સુધીનાં અનુક્રમે આભરણદ્વીપ આભરણસમુદ્ર, વસ્ત્રદ્વીપ,
 વસ્ત્રસમુદ્ર, ગંધદ્વીપ, ગંધસમુદ્ર, ઉત્પલદ્વીપ, ઉત્પલસમુદ્ર, તિલકદ્વીપ, તિલક-

द्वीपः । ततश्चारुणवरसमुद्रः । ततः कुण्डलद्वीपः । ततश्च कुण्डलसमुद्रः । ततो रुचक-
द्वीपः । ततश्च रुचकसमुद्रः । तथा-असंख्येयानाम् असंख्येयानाम् द्वीपानामन्ते
आभरणवस्त्रगन्धोत्पलतिलकाद्युपलक्षिताः आभरणवस्त्रगन्धोत्पलतिलकादि स्वयम्भू-
रमणान्ताः द्वीपाः, तत्तन्नामानः समुद्राश्च सन्ति । स्वयम्भूरमणसमुद्रः-शुद्धोदक-
रसास्वादः । मूले पुष्कराधारभ्य स्वयम्भूरमणान्ताः शब्दा द्वीपसमुद्रोभयवाचका

हैं उनके नाम आभरण आदिके ऊपर हैं । जो द्वीप का नाम है वही
नाम बेटे हुए समुद्र का है । स्वयंभूरमण समुद्र के जलका स्वाद शुद्धो-
दक रसास्वाद जैसा है मूल में-पुष्कर से लेकर स्वयंभूरमण तक के
शब्द द्वीप और समुद्र के वाचक हैं । तात्पर्य कहनेका यह है । कि रुचक-
द्वीप और रुचकसमुद्र के आगे आभरण द्वीप और आभरणसमुद्र
है । इसके बाद-वस्त्र द्वीप और वस्त्र समुद्र है । इसके आगे गंध द्वीप
और गंध समुद्र है इसी प्रकार से उत्पल, तिलक पृथिवी निधि, रत्न वर्ष-
धर, हृद, नदी, विजय वक्षस्कार, कल्पेन्द्र (कुरु मंदर आवासा कूडा-
नक्खत्तचंद्रसूरा य देवे नागे जक्खे भूए य स्वयंभूरमणे य ३) कुरु, मन्दर
आवासकूट, नक्षत्र, चन्द्र सूर्य देव, नाग यक्ष भूत, और स्वयंभूरमण इन
नामों वाले असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र है । जंबूद्वीप नाम का
जो द्वीप है, वह जंबूवृक्ष से युक्त है । इसलिये इसका नाम जंबूद्वीपहुआ है ।
इस जंबूद्वीप को वेष्टित हुए गोल चूड़ी के आकार के आकार जैसा लवण-

समुद्र आदि असंख्यात द्वीपसमुद्रो आवेला छे. द्वीपानां ने नामो छे,
ओज नामो तेमने वी'टणायेला समुद्रोना माटे पणु वपरायां छे.

स्वयंभूरमणु समुद्रतुं पाणी शुद्ध पाणीना नेवां स्वादवाणुं छे. पुष्करभी
लक्ष्मि स्वयंभूरमणु पर्यन्तना शब्दो द्वीपो अने समुद्रो-अन्तेनां वाचक छे
ओम समज्जुं आ कथनतुं तात्पर्यं ओ छे के रुचकद्वीप अने रुचकसमुद्रथी
आगण जतां आभरणद्वीप अने आभरणसमुद्र आवे छे, त्थार भाह वस्त्रद्वीप
अने वस्त्रसमुद्र आवे छे, त्थार भाह गंधद्वीप अने गंधसमुद्र आवे छे,
त्थार भाह उत्पल, तिलक, पृथ्वीनिधि, रत्नवर्षधर, हृदनदी, विजयवक्षस्कार,
कल्पेन्द्र (कुरुमंदर आवासा कूडानक्खत्तचंद्रसूरा य, देवे नागे जक्खे भूए य
स्वयंभूरमणे य ॥३॥) कुरु, मन्दर, आवासकूट, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, देव,
नाग, यक्ष, भूत अने स्वयंभूरमणु आ नामोवाणां असंख्यात द्वीपो अने
असंख्यात समुद्रो आवे छे. जंबूद्वीप नामने ने द्वीप छे ते जंबूवृक्षथी
युक्त होवाने करणु तेतुं नाम जंबूद्वीप छे. आ जंबूद्वीपने घेरीने वलयना

बोध्याः ननु मूले असंख्येयानसंख्येयान् द्वीपसमुद्रानुल्लङ्घ्य ये ये द्वीपसमुद्रादयः सन्ति, तेषां नामानि निर्दिष्टानि, किन्त्वन्तरालस्थिता अतिक्रम्यमाणा ये द्वीपा उक्तास्ते किं नामकाः ? इति चेदाह—लोके पदार्थानां शब्दध्वजकलशस्वस्तिक

समुद्र हैं, इस समुद्र का जल लवण के स्वाद जैसा खारा है। लवणसमुद्र को घेरे हुये धातकी खंडद्वीप है। यह धातकी वृक्ष से उपलक्षित है। इस धातकी द्वीप को घेरे हुए कालोदसमुद्र है। इस जल का स्वाद शुद्ध जल के स्वाद जैसा है, खारा नहीं हैं। इस समुद्र को घेर कर पुष्कर-द्वीप है। यह पुष्करद्वीप को घेर कर उत्त की चारों ओर पुष्करोद-समुद्र है इसके जल का स्वाद शुद्ध जल के स्वाद जैसा है। इस समुद्र को वेष्टितहुए वरुणद्वीप है। वरुणद्वीप को घेरकर स्थित हुआ वारुणोद समुद्र है। इसके जलका स्वाद वारुणी रस के भास्वाद जैसा है। इसके बाद क्षीरद्वीप है, क्षीरसमुद्र को घेरे हुए घृतद्वीप है। इसके बाद घृतोद-समुद्र है। घृतोदसमुद्र को घेरे हुए इक्षु-द्वीप है। इसके बाद इक्षुरसोद समुद्र है। इक्षुरसोद समुद्र के बाद नन्दीश्वर द्वीप है। और उस द्वीप को घेरे हुए नन्दीश्वरसमुद्र है। फिर अरुणवरद्वीप और अरुणवरसमुद्र है। फिर कुण्डलद्वीप और कुण्डल समुद्र है। बाद में रुचक द्वीप और रुचक समुद्र है। इस प्रकार से आभरण वस्त्र आदि-शुभनाम वाले असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र स्वयंभूरक्षण समुद्र पर्यन्त-तक है।—

आकारेण लवणसमुद्र आवेदो छे. ते समुद्रं पाष्णी लवण (मीठा)ना जेवां पारा स्वादवाणुं छे लवणसमुद्रने घेरीने धातकीअंड द्वीप आवेदो छे ते धातकीद्वीप धातकी नामना वृक्षनी युक्त होवाने कारणे तेनुं नाम धातकीद्वीप पडथुं छे. आ धातकीद्वीपने घेरीने काशोदसमुद्र रहेदो छे. तेनुं पाष्णी पारुं नथी पणु शुद्ध जण जेवा स्वादवाणुं छे लवणसमुद्रने घेरीने पुष्कर-द्वीप आवेदो छे पुष्करेशी युक्त होवाने कारणे तेनुं नाम पुष्करद्वीप पडथुं छे. पुष्करद्वीपने घेरीने तेनी तारे तरङ्ग पुष्करोदसमुद्र आवेदो छे. तेना जणने स्वाद शुद्ध जणना स्वाद जेवो छे आ समुद्रने घेरीने वरुणद्वीप रहेदो छे अने वरुणद्वीपने घेरीने वारुणोद समुद्र आवेदो छे. तेना जलने स्वाद वारुणीरसना स्वाद जेवो छे त्यार पाह क्षीरद्वीप छे, तेने घेरीने क्षीरोदसमुद्र आवेदो छे क्षीरसमुद्रने घेरीने घृतद्वीप आवेदो छे अने घृतद्वीपने घेरीने घृतोद समुद्र रहेदो छे. त्यार पाह घृतोद समुद्रने घेरीने इक्षुद्वीप आवेदो छे अने इक्षुद्वीपने घेरीने इक्षुरसोद समुद्र आवेदो छे. इक्षु-सोद समुद्रने घेरीने नन्दीश्वर द्वीप रहेदो छे अने नन्दीश्वर द्वीपनी चोभेर नन्दीश्वर समुद्र रहेदो छे त्यार पाह अरुणवरद्वीप अने अरुणवर समुद्र आवे छे. त्यार पाह कुण्डलद्वीप अने कुण्डलसमुद्र आवे छे त्यार पाह रुचकद्वीप अने रुचक समुद्र आवे छे त्यार पाह आलरणु द्वीप, आलरणु-

श्रीवत्सादीनि यावन्ति शुभनामानि सन्ति तैः सर्वैरप्युपलक्षिता अन्तरालस्थिता द्वीपसमुद्राः सन्ति ।

उक्तं च—“दीवसमुद्राणं भन्ते । केवइया नामधिज्जेहिं पणत्ता ? गोयया ! जावइया लोए सुभा नामा सुभा रूवा सुभा गंधा सुभा रसा सुभा फासा एवइया णं दीवसमुद्रा नामधिज्जेहिं पणत्ता ।” (जीवा. ३ प्र. ४ उ.)

छाया—द्वीपसमुद्राः खलु भदन्त ! कियन्तो नामधेयैः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! यावन्ति लोके शुभानि नामानि शुभानि रूपाणि शुभाः गन्धाः शुभा रसाः शुभाः स्पर्शाः इयन्तो द्वीपसमुद्रा नामधेयैः प्रज्ञप्ताः । इति । एते हि—असंख्येयसंख्यकाः अनुपदवक्ष्यमाणगाथया प्रतिपादिता द्रष्टव्याः ।

शंका—मूल में असंख्यात २ द्वीप समुद्रों को उल्लंघन करके जो जो द्वीप और समुद्र आदि हैं उनके नाम तो कहे हैं परन्तु जो अन्तराल में स्थित द्वीप कहे हैं उनके क्या नाम हैं ?

उत्तर—लोक में पदार्थोंके शंख, ध्वज, कलश स्वतिक, श्रीवत्स आदि जितने शुभ नाम हैं—उन सबसे उपलक्षित अन्तराल में स्थित हुए द्वीप और समुद्र हैं । उक्तं च करके “दीवसमुद्राणं इत्यादि” जो सूत्र पाठ दिया गया है उसका यही भाव है—इसमें यही कहा गया है कि लोक में जितने शुभ नाम हैं जितने शुभ रूप हैं, जितने शुभ गंध हैं जितने शुभ रस हैं और जितने शुभ स्पर्श हैं इतने ही द्वीप समुद्र इतने ही

समुद्र, वस्त्रद्वीप, वस्त्रसमुद्र, आदि शुभनामवाणा असंख्यात द्वीपों અને समुद्रों आवे छे छेवटे लवणुद्वीप અને लवणुसमुद्र आवे छे.

अश्र-भूणमां अश्रभ्यात समुद्रोने पार करिने आगण वधतां छेवटे स्वयंभूरमणु द्वीप અને स्वयंभूरमणु समुद्र आवे छे, अबुं कडेवामां आणुं छे तेमांथी केटलाक द्वीपो અને समुद्रोनां नाम आपे आ सूत्रमां प्रगट कर्यां छे. परन्तु त्यार पछीना स्वयंभूरमणुद्वीप पर्यन्तमां के द्वीपसमुद्रो छे तेमनां नामो आपे अहीं प्रगट कर्यां नथी तेमना नामो जणुववा कृपा करशो ?

उत्तर—लोकमां पदार्थोनां शंख, ध्वज, कलश, स्वरितक, श्रीवत्स आदि केटलां शुभ नामो छे, अे सधनां नामोथी उपलक्षित (आणभाता) ते अन्तरालमां रहेला द्वीपो અને समुद्रो छे. कहुं पणुं छेके—“ दीवसमुद्राणं ” इत्यादि आ सूत्रपाठ द्वारा अे वात प्रगट करवामां आवी छे के लोकमां केटला शुभ नाम छे, केटलां शुभ रूप छे, केटला शुभ गंधो छे, केटलां शुभ स्पर्श छे, तेमनां वडे आ द्वीपसमुद्रो उपलक्षित छे. तेयो अश्रभ्यात होवाने कारणे प्रत्येकनां नाम अहीं आपी शक्य अेम नथी द्वीपसमुद्रो

तथाहि—“ उद्धारसागराणं अड्ढाऽज्जाण जत्तिया समया ।

दुगुणादुगुणपवित्थर दीवोदहि रज्जु एवइया ॥ ”

छाया—उद्धारसागराणामर्धवृतीयानां यावन्तः समयाः ।

द्विगुणद्विगुणप्रविस्ताराः द्वीपोदधयो रज्ज्वामियन्तः ॥ इति

तदेवा पूर्वानुपूर्वी । पश्चानुपूर्वी तु व्युत्क्रमेण बोध्या । अनानुपूर्वी तु—अमीषाम-
संख्येयानां पदानामन्योऽन्याभ्यासे ये ऽसंख्येया भङ्गा भवन्ति, तत आद्यन्त
विवक्षारहिता भङ्गा बोध्याः ॥ सू० १२२ ॥

नाम वाले हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि द्वीप और समुद्र असंख्यात संख्या वाले हैं । द्वीप समुद्र कितने हैं ? इसका उत्तर, उद्धारसागराणं” गाथा द्वारा दिया गया है जिसका भावार्थ ऐसा है कि अढाह उद्धार सागरो के जितने समय होते हैं उतने एक दूसरे से दूने५ विस्तार वाले द्वीप और समुद्र हैं । इस प्रकार जंबूद्वीप आदि के क्रम से स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त द्वीप समुद्रों का उपन्यास करना सो पूर्वानुपूर्वी है । तथा इन्हीं द्वीपसमुद्रों का व्युत्क्रम से अर्थात् स्वयंभूरमण से प्रारंभ कर जंबूद्वीप तक—न्यास—उपन्यास—करना सो पश्चानुपूर्वी है । और इन्हीं असंख्यात पदोंका स्थापन करके फिर उनका परस्पर में गुणा करना और प्राप्त गुणन राशि में से आदि अन्त के दो भंग कल कर—देना इस प्रकार करने से असंख्यात भंग—होते हैं वह अनानुपूर्वी है । ॥ सू० १२२ ॥

केटलां छे ? आ प्रश्नो उत्तर नीचेनी गाथा द्वारा आपवाभां आब्ये छे—
“ उद्धार सागराणं ” छत्याहि— आ गाथाने लावार्थ अबे छे के “ अढी उद्धार सागरोना जेटला समय थाय छे जेटला जेक भीजथी जमण्ठां जमण्ठां विस्तारवाणा द्वीपो अने समुद्रो छे. ” आ प्रकारे जंबूद्वीपथी शङ् करीने स्वयंभूरमणु द्वीप अने स्वयंभूरमणु समुद्र पर्यन्तता द्वीपो अने समुद्रोने उपन्यास करवे तेनु नाम तिर्यग्भेद संबन्धी पूर्वानुपूर्वी छे.

उपर्युक्त द्वीपसमुद्रोने जितटा कमभां जेटले के स्वयंभूरमणु समुद्रथी लधने जंबूद्वीप पर्यन्तता पहोने उपन्यास करवे तेनु नाम पश्चानुपूर्वी छे. अने जेज असंख्यात पहोनु स्थापन करीने तेमने परस्परनी साथे गुणाकार करवे अने जे रीते जे गुणनराशि (गुणाकार) प्राप्त थाय तेभांथी आदि अने अन्तता जे लंगोने काढी नाथवा आ प्रमाणे करवाथी जे असंख्यात लंगो थाय छे तेमने अनानुपूर्वी इय समजवा. ॥ सू० १२२ ॥

सम्प्रति ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वीं निरूपयति—

मूलम्—उडूलोयखेत्ताणुपुवी तिविहा पणत्ता, तं जहा-पुवाणुपुवी
 पच्छाणुपुवी अणाणुपुवी । से किं तं पुवाणुपुवी ? पुवाणुपुवी
 सोहम्मे१, ईसाणे२, सणकुमारे३, माहिंदे४, बंभलोए५, लंतए६,
 महासुके७, सहस्सारे८, आणए९, पाणए१०, आरणे११ अच्चुए१२,
 गेवेजगत्रिमाणे१३, अणुत्तरविमाणे१४, ईसिपवभारा१५, से तं
 पुवाणुपुवी । से किं तं पच्छाणुपुवी ? पच्छाणुपुवी ईसिपवभारा
 जाव सोहम्मे । से तं पच्छाणुपुवी । से किं तं अणाणुपुवी ?
 अणाणुपुवी—एयाए चैव एगाइयाए एगुत्तरियाए पन्नरसगच्छ-
 गयाए सेढीए अन्नमन्नवभासो दुरूवूणो । से णं अणाणुपुवी ।
 अहवा ओवणिहिया खेत्ताणुपुवी तिविहा पणत्ता, तं जहा—
 पुवाणुपुवी, पच्छाणुपुवी, अणाणुपुवी । से किं तं पुवाणुपुवी ?
 पुवाणुपुवी—एगपएसोगाढे, दुप्पएसोगाढे, दत्तपएसोगाढे संखि-
 ज्जपएसोगाढे जाव असंखिज्जपएसोगाढे । से तं पुवाणुपुवी ।
 से किं तं पच्छाणुपुवी ? पच्छाणुपुवी—असंखिज्जपएसोगाढे
 संखिज्जपएसोगाढे जाव एगपएसोगाढे । से तं पच्छाणुपुवी ।
 से किं तं अणाणुपुवी ? अणाणुपुवी—एयाए चैव एगाइयाए
 एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नवभासो दुरू-
 वूणो । से तं अणाणुपुवी से तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुवी से तं
 खेत्ताणुपुवी ॥सू० १२३॥

छाया—ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वीं त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पूर्वानुपूर्वीं पश्चानुपूर्वीं,
 अनानुपूर्वीं । अथ का सा पूर्वानुपूर्वीं ? पूर्वानुपूर्वीं—सौधर्मः१, ईशानः२, सनत्कु-
 मारो३, माहेन्द्रो४, ब्रह्मलोऽः५, छान्तको६, महाशुकः७, सहस्रारः८, आनतः९,

प्राणतः १०, आरणः ११, अच्युतो १२, ग्रैवेयकविमानं १३, अनुत्तरविमानं १४, ईषणमारामारा १५। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-ईषणमारामारा यावत्सौधर्मः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां पञ्चदशगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। अथवा-औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-एकप्रदेशावगाढो द्विप्रदेशावगाढो दशप्रदेशावगाढः संख्येयप्रदेशावगाढो यावत् असंख्येयप्रदेशावगाढः। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-असंख्येयप्रदेशावगाढः संख्येयप्रदेशावगाढो यावत् एकप्रदेशावगाढः। सैषा पश्चानुपूर्वी? अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायामसंख्येयगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी सैषा क्षेत्रानुपूर्वी ॥सू० १२३॥

टीका—'उद्धृणोयखेत्ता०' इत्यादि।

ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वी हि पूर्वानुपूर्व्यादिभेदैस्त्रिविधा विज्ञेया। तत्र-पूर्वानुपूर्वी सौधर्मादीषणमारामारान्ता। प्रज्ञापकप्रत्यासत्त्या प्रथमं सौधर्मोपन्यासः। ततस्तत्त

अथ सूत्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी का-निरूपण करते हैं:—

“उद्धृणोयखेत्ताणुपुत्रा” इत्यादि।

शब्दार्थ—(उद्धृणोयखेत्ताणुपुत्रा त्रिविहा पणत्ता) ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। (तं जहा) जैसे—(पुत्राणुपुत्रा) पूर्वानुपूर्वी (पच्छाणुपुत्रा) पश्चानुपूर्वी (अणाणुपुत्रा) और अनानुपूर्वी (से किं तं पुत्राणुपुत्रा?) हे भदन्त। पूर्वानुपूर्वी क्या है?

(पुत्राणुपुत्रा) पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से हैं। (सोहम्मे १) सौधर्म १ ईसाणे २, सणंहुमारे ३, माहिंदे ४, वंभलोए ५, लंतए ६, महासु-

हवे सूत्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वीतुं निरूपण करे थे—

“उद्धृणोयखेत्ताणुपुत्रा” इत्यादि—

शब्दार्थ—(उद्धृणोयखेत्ताणुपुत्रा त्रिविहा पणत्ता) ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी त्रय प्रकारनी कही थे। (तं जहा) ते त्रय प्रकारे नीचे प्रभासे थे—(पुत्राणुपुत्रा, पच्छाणुपुत्रा, अणाणुपुत्रा) (१) पूर्वानुपूर्वी (२) पश्चानुपूर्वी અને (३) अनानुपूर्वी।

प्रश्न—(से किं तं पुत्राणुपुत्रा?) हे भगवन्! पूर्वानुपूर्वीतुं स्वरूप हेतु होय थे?

उत्तर—ऊर्ध्वलोक सौधर्मी पूर्वानुपूर्वीतुं स्वरूप आ प्रकारतुं थे (सोहम्मे) (१) सौधर्म, ईसाणे, सणंहुमारे, माहिंदे, वंभलोए, लंतए, महासुक्क, सहस्सारे,

लोकप्रत्यासत्त्या तत्क्षेत्रोपन्यासः । सौधर्मनामकं विमानं हि तत्क्षेत्रविमानेषु सर्वतः श्रेष्ठम्, अतः सः लोकः सौधर्मेति व्यपदिश्यते । एवमेव ईशानाद्यच्युत-विमानानां तत्क्षेत्रे श्रेष्ठत्वमनस्तत्क्षेत्रास्नास स लोको व्यपदिश्यते । लोकपुरुषस्य ग्रीवाविभागे भवति विमानानि त्रैवेयकविमानानीत्युच्यन्ते । अनुत्तरविमानस्य-लोकापेक्षयाऽन्यानि उत्तराणि विमानानि न सन्तीति तानि विमानानि अनुत्तर-

वके ७, सहस्रारे ८, आणए ९, पाणए १०, आरणे ११, अच्युए १२, गेवेज्जगविमाणे १३, अणुत्तरविमाणे १४, ईसिपवभारा १५) ईशान २ सनत्कुमार ३, माहेद्र ४ ब्रह्मलोक ५, लान्तक ६, महाशुक ७, सहस्रार-८, आनत ९, प्राणत १०, आरण ११ अच्युन १२, त्रैवेयकविमान १३, अनुत्तरविमान १४, और ईषत्प्राग्भारा १५ (से तं पुव्वाणुपुव्वी) यह पूर्वानुपूर्वी है । यहाँ पर प्रज्ञापक-की प्रत्यासत्तिसे सबसे पहिले सौधर्म का उपन्यास किया गया है । बाद में तत्क्षेत्र लोक की प्रत्यासत्ति से उन ५ लोगों का उपन्यास हुआ है । सौधर्म नाम का विमान है । यह विमान तत्क्षेत्र सबन्धी विमानों में सर्वश्रेष्ठ है इसलिये उसके संबन्ध से उस लोक का नाम सौधर्मलोक हुआ है । इसी प्रकार ईशान से लेकर अच्युत तक के विमानों में उन २ लोकों में श्रेष्ठता है । इसलिये उस २ नाम से वह २ लोक कहा गया है । लोक रूप पुरुष की ग्रीवा के स्थानापन्न जो विमान हैं वे त्रैवेयक विमान कहलाते हैं ।

आणए, पाणए, आरणे, अच्युए) (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक, (६) लान्तक, (७) महाशुक, (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण, (१२) अच्युत (गेवेज्जगविमाणे, अणुत्तरविमाणे ईसिपवभारा) (१३) त्रैवेयक विमाने, (१४) ईषत्प्राग्भारा. (से तं पुव्वाणुपुव्वी) आ कमे ऊर्ध्वलोकगत क्षेत्राने उपन्यास करवाते तु नाम पूर्वानुपूर्वीं छे. अही प्रज्ञापकनी वधारे नष्टकमां आवेला ईशानकल्पने उपन्यास पडेलां करवामां आये छे. त्थार भाद त्यांघी वधारेने वधारे हर आवेलां क्षेत्राने उपन्यास अनुकमे करवामां आये छे. सौधर्म कल्पमां ले विमाने छे तेमां सर्वश्रेष्ठ सौधर्म नामनुं विमान डोवाधी ते देवलोकनुं नाम सौधर्मकल्प पड्युं छे. ऐज प्रमाणे ईशानथी लधने अच्युत पर्यन्तता कल्पेमां पणु ऐज नामनां (ईशान, सनत्कुमार) विमानेनी श्रेष्ठता छे, ऐम समज्जुं के धारणुं तेमनां नामे पणु ते विमाने जेवां ज राषणमां आव्यां छे. लोकरूप पुरुषनी ग्रीवाता स्थानमां ले विमाने रडेलां छे तेमने त्रैवेयक विमाने कडे छे.

વિમાનાન્યુચ્યન્તે । ઈષત્પ્રાગ્ભારા-ભારાક્રાન્તપુરુષવદીષન્નતત્વાત્ ઇષા ઈષત્પ્રાગ્ભારે-
ત્યુચ્યતે । ઇયં સૌધર્મીદીષત્પ્રાગ્ભારાન્તા પૂર્વાનુપૂર્વી । તથા-ઈષત્પ્રાગ્ભારા યાવત્
સૌધર્મ ઇતિ પશ્ચાનુપૂર્વી । તથા-અનાનુપૂર્વ્યા તુ સૌધર્મીદિપશ્ચદશપદાનામન્યોડન્યા-

અનુત્તરવિમાનસ્થ લોક કી-અપેક્ષા ઓર દૂસરે વિમાન-ઉત્તર-શ્રેષ્ઠ
નહીં હૈ-હસલિયે વે વિમાન અનુત્તર વિમાન કહે ગયે હૈં । ભાર આક્રાન્ત
પુરુષ કી તરહ કુછ ડૂકી હુઈ હોને-સે યહ ઈષત્પ્રાગ્ભારા હસ નામ સે
કહી ગઈ હૈ । સૌધર્મ સે લેકર ઈષત્ પ્રાગ્ભારા ભૂમિ તક પૂર્વાનુપૂર્વી હૈ ।
(સે કિં તં પચ્છાણુપુવ્વી) હે ભદન્ત પશ્ચાનુપૂર્વી કયા હૈ ?

ઉત્તર-(પચ્છાણુપુવ્વી) પશ્ચાનુપૂર્વી હસ પ્રકાર હૈં-(ઈસિપન્મારા જાવ
સોહમ્મે) ઈષત્ પ્રાગ્ભારા ભૂમિ સે લેકર જો સૌધર્મ દેવલોક તક વ્યુ-
ત્ક્રમ સે ગણના હૈ । (સે તં પચ્છાણુપુવ્વી) વહ પશ્ચાનુપૂર્વી હૈ । (સે કિં
તં અણાણુપુવ્વી ?) હે ભદન્ત ઝર્ધ્વલોક સબન્ધી અનાનુપૂર્વી કયા હૈ ?

ઉત્તર-(અણાણુપુવ્વી) ઝર્ધ્વલોક સબન્ધી અનાનુપૂર્વી હસ પ્રકાર
સે હૈં । (ઇયા ઇ ચેવ ઇગાઈયા ઇગુત્તરિયા ઇ પન્નરસગચ્છગયા ઇ
સેઠી ઇ અન્ન મન્ન વ્માસો દૂરૂવૂણો) હસ અનાનુપૂર્વી મેં જો શ્રેણી સ્થા-

અનુત્તર વિમાનસ્થ લોકના કરતાં અન્ય કોઈ પણ વિમાન શ્રેષ્ઠ નથી તે
કારણે તે શ્રેષ્ઠ વિમાનેને અનુત્તર વિમાને કહ્યાં છે. જેમ કે ભારને વહન
કરતો પુરુષ સહેજ ઝૂકી બચ છે એજ પ્રમાણે આ ઈષત્પ્રાગ્ભારા પૃથ્વી
પણ સહેજ ઝૂકેલી હોવાને કારણે તેનું નામ ઈષત્પ્રાગ્ભારા પડ્યું છે. સૌધ-
ર્મથી લઇને ઈષત્પ્રાગ્ભારા પર્યન્તનાં પદોને ક્રમપૂર્વક ઉપન્યાસ કરવો તેનું
નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે

પ્રશ્ન-(સે કિં તં પચ્છાણુપુવ્વી?) હે ભગવન્ ! પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(પચ્છાણુપુવ્વી) પશ્ચાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે-(ઈસિપન્મારા જાવ
સોહમ્મે) ઈષત્પ્રાગ્ભારા ભૂમિથી શરૂ કરીને સૌધર્મકલ્પ પર્યન્તના ક્ષેત્રોને
ઉભટા ક્રમમાં જે ઉપન્યાસ કરવામાં આવે છે-ગણતરી કરવામાં આવે છે
(સે તં પચ્છાણુપુવ્વી) તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે

પ્રશ્ન-(સે કિં તં અણાણુપુવ્વી?) ઉર્ધ્વલોક સંબંધી અનાનુપૂર્વીનું
સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(અણાણુપુવ્વી) ઉર્ધ્વલોક સંબંધી અનાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે-
(ઇયા ઇ ચેવ ઇગાઈયા ઇગુત્તરિયા ઇ પન્નરસગચ્છગયા ઇ સેઠી ઇ અન્નમન્નવ્માસો
દૂરૂવૂણો) આ અનાનુપૂર્વીમાં જે શ્રેણી સ્થાપિત કરવામાં આવે છે તેમાં સૌથી

भ्यासे यावन्तो भङ्गका भवन्ति, ते आद्यन्तविवक्षारहिता भङ्गा बोध्याः सम्प्रति-
औपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीं प्रकारत्रयेण प्रदर्शयितुमाह—‘अहवा’ इत्यादि । अथवा-
औपनिधिकीक्षेत्रानुपूर्वीं पूर्वानुपूर्व्यादिभेदैस्त्रिविधा विज्ञेया । तत्र-पूर्वानुपूर्वीं

पित की जाती है उसमें सबसे प्रथम में १ संख्या रखी जाती है बाद में
एक २ की उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती इस प्रकार की वृद्धि यहां
१५ संख्या तक होती है । फिर इनमें परस्पर में गुणा किया जाता है ।
जो गुणन फल आता है उसमें आदि अन्त के दो भंग कम कर दिये
जाते हैं । क्योंकि आदिका भङ्ग आनुपूर्वीं में आजाता है और अन्तका
भङ्ग पश्चानुपूर्वीं में आजाता है । इसलिये अनानुपूर्वीं में आदि अन्त के
दो भंग छोड़ने को कहा है । इस प्रकार (से णं अणाणुपुव्वी) यह
ऊर्ध्वलोक संबन्धी अनानुपूर्वीं बन जाती है । (अहवा) अथवा—ओव-
णिहिया-खेत्ताणुपुव्वी त्रिविहा पणत्ता) औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीं—तीन
प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है । (तं जहा) जैसा—(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी,
अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वीं पश्चानुपूर्वीं और अनानुपूर्वीं (से किं तं
पुव्वाणुपुव्वी) पुर्वानुपूर्वीं क्या है ?

उत्तर—(पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वीं इस प्रकार से है—(एगपएसोगाढे
दुप्पएसोगाढे दसपएसोगाढे संखिज्जपएसोगाढे जाव असंखिज्जपएसो

पडेतां अेक सञ्ज्या राभवाभां आवे छे, त्थारभाह उत्तरोत्तर अेक
अेकनी वृद्धि थती जय छे. आ प्रकारनी वृद्धि अही १५ सञ्ज्या सुधी
ठराय छे. त्थार भाह तेभां परस्परने। गुण्ठाकार आवे छे. जे शुशुनङ्गण
आवे तेभांथी आदिने। अेक अने अन्तने। अेक अेम मे लंग भाह कर-
वाभां आवे छे. केमके—आदिने। लंग आनुपूर्वींभां आवी जय छे, अने
अन्तने। लंग पश्चानुपूर्वींभां आवी जय छे. तेथी अनानुपूर्वींभां आदि अने
अन्तने। अेम मे लंगे। छोडवानुं कथं छे. (से णं अणाणुपुव्वी) आ प्रकारे
ऊर्ध्वलोक सञ्जधी अनानुपूर्वीं अनी जय छे. (अहवा) अथवा—(ओवणिहिया-
खेत्ताणुपुव्वी त्रिविहा पणत्ता) औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीं त्रय प्रकारनी कही छे.
(तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रभाषे छे—(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी)
(१) पूर्वानुपूर्वीं, (२) पश्चानुपूर्वीं अने (३) अनानुपूर्वीं.

प्रश्न—(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) डे भगवन् । पूर्वानुपूर्वीं तुं स्वर्प केवुं छै
उत्तर—(पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वीं आ प्रकारनी छे. (एगपएसोगाढे, दुप्प
एसोगाढे, दसपएसोगाढे, संखिज्जपएसोगाढे जाव असंखिज्जपएसोगाढे) अेक

एकप्रदेशावगाढादारभ्यासंख्येयप्रदेशावगाढान्ता बोध्या । पश्चानुपूर्वी तु असंख्ये-
यप्रदेशावगाढमारभ्य एकप्रदेशावगाढान्ता बोध्या । अनानुपूर्वी तु—एकप्रदेशाव-
गाढादारभ्य असंख्येयप्रदेशावगाढानान्योऽन्याभ्यासेऽसंख्येया भङ्गा भवन्ति ।
तेषु आद्यन्तविवक्षा नास्ति, औपनिधिकीक्षेत्रानुपूर्वी समाप्तेति सूचयितुमाह—

गाढे) एक प्रदेशावगाढ, दो प्रदेशावगाढ, दशपण्चावगाढ संख्यात प्रदे-
शावगाढ यावत् असंख्यात प्रदेशावगाढ (से किं तं पच्छाणुपुव्वी)
पश्चानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर— (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार से है । (असंखिज्ज
पण्णोगाढे संखिज्जपण्णोगाढे जाव एगपण्णोगाढे) असंख्यातप्रदे-
शावगाढ, संख्यात प्रदेशावगाढ यावत् एकप्रदेशावगाढ (से तं पच्छा-
णुपुव्वी) इस प्रकार यह पश्चानुपूर्वी है । (से किं तं अणानुपुव्वी) हे
भदन्त ! अनानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर— (अणानुपुव्वी) अणानुपूर्वी इस प्रकार से है—(एगाए चैव
एगाइयाए एगुत्तरियाए संखिज्जगच्छगयाए सेट्ठीए अन्नमन्नवभासो
दूख्खूणो) इन पदों का अर्थ पहले दिया गया है । तात्पर्य यह है कि
यहां जो श्रेणी खंडी जावेगी वह एक से प्रारंभ कर एक की वृद्धि होते
२ असंख्यात तक होती जावेगी फिर उन सबका परस्पर में गुणा करने
पर जो असंख्यात भंग रूप सहाराशि उत्पन्न होगी उससे से आदि

प्रदेशावगाढ, अे प्रदेशावगाढ, इस पर्यन्तना प्रदेशावगाढ, संख्यात प्रदेशा-
वगाढ अने असंख्यात प्रदेशावगाढ (से तं पुव्वानुपुव्वी) आ कम्मनी अे
क्षेत्रानुपूर्वी अे तेने पूर्वानुपूर्वी कडे अे.

प्रश्न—(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) अे लगवत् ! पश्चानुपूर्वी क्वेणी डोय अे!

उत्तर—(पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी आ प्रकारनी डोय अे—(असंखिज्जप-
ण्णोगाढे, संखिज्जपण्णोगाढे जाव एगपण्णोगाढे) असंख्यात प्रदेशावगाढ,
संख्यात प्रदेशावगाढ अने अे प्रकारना उट्टा कम्ममां अेकप्रदेशावगाढ पर्य-
न्तना पढोने उपायाअ करवे। (से तं पच्छाणुपुव्वी) तेनु नाम पश्चानुपूर्वी अे.

प्रश्न—(से किं तं अणानुपुव्वी) अनानुपूर्वी आ प्रकारनी डोय अे—(एगाए
चैव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेट्ठीए अन्नमन्नवभासोदूख्खूणो)
आ पढोने अर्थ पडेलां आप्पामां आण्ये अे अेट्ठे अे अट्ठी अे श्रेणी
स्थापित करवामां आवशे ते अेकथी शरु करीने अेक अेकनी वृद्धि करतां
करतां असंख्यात पर्यन्तनी थअ जशे त्थार गाढ ते सौने परस्परनी साथे
शुद्धाकार करवाथी अे असंख्यात लंगइय सहाराशि उत्पन्न थश तेमांथी

‘से तं ओवणिहिया’ इत्यादि । सैषा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी । इत्थं क्षेत्रानुपूर्वी समाप्तेति सूचयितुमाह—‘से तं’ इत्यादि । सैषा क्षेत्रानुपूर्वी ॥सू० १२३॥

उक्ता क्षेत्रानुपूर्वी, सम्प्रति पूर्वोद्दिष्टाप्रेरु क्रमशात् कालानुपूर्वी विवृणोति—
मूलम्—से किं तं कालानुपूर्वी? कालानुपूर्वी द्विविहा पणत्ता, तं जहा—ओवणिहिया अणोवणिहियाय ॥सू० १२४॥

छाया—अथ का ता कालानुपूर्वी? कालानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
औपनिधिकी अनौपनिधिकी च ॥सू० १२४॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि । व्याख्या स्पष्टा ॥सू० १२४॥

मूलम्—तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा हप्पा । तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पणत्ता, तं जहा—णैगम-
ववहाराणं संगहस्स य ॥सू० १२५॥

छाया—तत्र खलु या सा औपनिधि सा स्थाप्या । तत्र खलु या सा अनौपनिधिकी सा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—नैगमव्यवहारयोः संग्रहस्य च ॥सू० १२५॥

टीका—‘तत्थ णं’ इत्यादि । व्याख्यातमायमिदं सूत्रम् ॥सू० १२५॥

अंत के दो भंग कम कर दिये जात्रेजे—(से तं अणानुपूर्वी) हस प्रकार से क्षेत्र संबन्धी अनानुपूर्वी बनती है । (से तं ओवणिहिया खेत्तानु-
पूर्वी) इस प्रकार औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है इस प्रकरण के समाप्त-
होते ही क्षेत्रानुपूर्वी का स्वरूप समाप्त हो जाता है ॥ सू० १२३ ॥

अब सूत्रकार पूर्वोद्दिष्ट ही क्रमशात् कालानुपूर्वी का कथन करते हैं—
“से किं तं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट की है ॥ सू० १२४ ॥

आदिने ओक लं ग अने अन्तमे ओक लं ग ओम जे लं ग कभी करवामां
आवशे (से किं तं अणानुपूर्वी) आ प्रकारे क्षेत्रसंबन्धी अनानुपूर्वी अने छे.
(से तं ओवणिहिया खेत्तानुपूर्वी) आ प्रकारे औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीनुं स्व-
रूप छे. (से तं खेत्तानुपूर्वी) औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीनुं कथन समाप्त थवाथी
क्षेत्रानुपूर्वीना स्वरूपनुं निरूपणुं अही पूरं थाय छे. ॥सू० १२३॥

उवे सूत्रकार पूर्वोद्दिष्ट क्रमशात् कालानुपूर्वीनुं कथन करे छे—

“से किं तं” इत्यादि—

शब्दार्थ—आ सूत्रनी व्याख्या स्पष्ट छे. ॥सू० १२४॥

મૂલ્ય—સે કિં તં ણેગમવવહારાણં અણોવણિહિયા કાલાણુપુઢ્વી ?
અણોવણિહિયાકાલાણુપુઢ્વી પંચવિહા પળ્ણત્તા, તં જહા—અત્થ-
પયપરૂવળયા, મંગસમુક્કિત્તળયા, મંગોવદંસળયા, સમોયારે,
અણુગમે ॥સૂ૦ ૧૨૬॥

છાયા—અથ કા સા નૈગમવ્યવહારયોરનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી ? અનોપનિ-
ધિકી કાલાણુપૂર્વી પંચવિહા પ્રજ્ઞતા, તથથા—અર્થપદપ્રરૂપળતા, મજ્ઞસમુત્કીર્ત્નતા,
મજ્ઞોપદર્શનતા, સમવતારઃ, અનુગમઃ ॥સૂ૦ ૧૨૬॥

ટીકા—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ । વ્યાખ્યાસ્ય સ્પષ્ટા ॥સૂ૦ ૧૨૬॥

‘તત્થળં’ ઇત્યાદિ ।

શબ્દાર્થ—હન મેં જો ઓપનિધિ કાલાણુપૂર્વી હૈ વહ અલ્પવક્તઘ્ય
વિષય વાલી હોને સે સ્થાપ્ય હૈ—અઘી ઉસકા વિષય પ્રતિપાદન કરને
યોગ્ય નહીં હૈ । તથા જો અનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી હૈ વહ દો પ્રકાર કી
હૈ । ઇક નૈગમવ્યવહારનયસંમત અનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી ઓર
દૂસરી સંગ્રહનયસંમત અનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી । યહ સૂત્ર પહલે
વ્યાખ્યાત હો ચુકા હૈ । ॥ સૂ૦ ૧૨૫ ॥

“સે કિં તં ણેગમવવહારાણં” ઇત્યાદિ ।

(સે કિં તં ણેગમવવહારાણં અણોવણિહિયા કાલાણુપુઢ્વી ?) હે
મદન્ત । નૈગમવ્યવહારનયસંમત અનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી કયા હૈ ?
(અણોવણિહિયા કાલાણુપુઢ્વી પંચવિહા પળ્ણત્તા)

“ તત્થળં ” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—તેમાં જે ઓપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી છે, તે અહ્ય વક્તઘ્યવિષય-
વાળી હોવાથી સ્થાપ્ય છે—એટલે કે હમણાં તેના વિષયનું પ્રતિપાદન કરવું
તે યોગ્ય નથી તેમાંની જે અનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી છે તેના ઠે પ્રકાર છે—
(૧) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી અને (૨) સંગ્રહન-
યસંમત અનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વી આ સૂત્રના વિષયની પ્રરૂપણા પહેલાં
થઈ ચુકી છે. ॥સૂ૦ ૧૨૫॥

“ સે કિં તં ણેગમવવહારાણં ” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં ણેગમવવહારાણં અણોવણિહિયા કાલાણુપુઢ્વી?) હે
મગવન્ ! નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનોપનિધિકી કાલાણુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?
ઉત્તર—(અણોવણિહિયા કાલાણુપુઢ્વી પંચવિહા પળ્ણત્તા) અનોપનિધિકી

मूलम्—से किं तं णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया ? णैगम-
ववहाराणं अत्थपयपरूवणया—तिसमयाट्टिइए आणुपुव्वी जाव
दससमयाट्टिइए आणुपुव्वी संखिज्जसमयाट्टिइए आणुपुव्वी,
असंखिज्जसमयाट्टिइए आणुपुव्वी। एगसमयाट्टिइए अणाणुपुव्वी।
दुसमयाट्टिइए अवत्तव्वंगं। तिसमयाट्टिइयाओ आणुपुव्वीओ।
एगसमयाट्टिइयाओ अणाणुपुव्वीओ। दुसमयाट्टिइयाओ अवत्तव्व-
गाइं। से त्तं णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया। एया ए णं
णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं ? एयाए णं
णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णैगमववहाराणं भंगसमु-
क्कित्तणया कज्जइ ॥सू० १२७॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणता? नैगमव्यवहारयोः
अर्थपदप्ररूपणता—त्रिसमयस्थितिक आनुपूर्वी यावद् दशसमयस्थितिक आनुपूर्वी,

उत्तर—अनौपनिधि की कालानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गई है।
(तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(अत्थपयपरूवणया भंगसमुक्कित्तणया, भंगो
वदंसणया, समोयारे अणुगमे) अर्थपदप्ररूपणता भंगसमुत्कीर्तनता
समवतार और अनुगम। इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है। ॥सू० १२६॥

“से किं तं णैगमववहाराणं” इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया ?) हे भदन्त !
नैगमव्यवहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता क्या है ? (णैगमववहाराणं
अत्थपयपरूवणया)

कालानुपूर्वी पांच प्रकारनी कही छे. (तंजहा) ते पांच प्रकारे नीचे प्रमाणे
छे—(अत्थपयपरूवणया, भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया समोयारे अणुगमे) (१)
अर्थपदप्ररूपणता, (२) भंगसमुत्कीर्तनता, (३) भंगोपदर्शनता, (४) समव-
तार अने (५) अनुगम आ सूत्रनी व्याख्या स्पष्ट छे. ॥सू० १२६॥

“से किं तं णैगमववहाराणं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं णैगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया ?) हे भगवान् !
नैगमव्यवहार नयसंमत अर्थपद प्ररूपणतानुं स्पष्ट केषुं छे ?

સંખ્યેયસમયસ્થિતિક આનુપૂર્વી, અસંખ્યેયસમયસ્થિતિકઆનુપૂર્વી । એકસમય-
સ્થિતિક અનાનુપૂર્વી । દ્વિસમયસ્થિતિક અવક્તવ્યકમ્ । ત્રિસમયસ્થિતિકા આનુ-
પૂર્વ્યઃ । એકસમયસ્થિતિકા અનાનુપૂર્વ્યઃ । દ્વિસમયસ્થિતિકા અવક્તવ્યકાનિ ।
સૈવા નૈગમવ્યવહારયોઃ અર્થપદપ્રરૂપણતા । એતસ્યાઃ સ્વહુ નૈગમવ્યવહારયોઃ
અર્થપદપ્રરૂપણતાયાઃ કિં પ્રયોજનમ્ ? એતસ્યાઃ સ્વહુ નૈગમવ્યવહારયોરર્થપદપ્રરૂપણ-
તાયા નૈગમવ્યવહારયોર્મંજ્જસમુત્કીર્તનતા ક્રિયતે ॥સૂ૦ ૧૨૭॥

ટીકા—‘સે કિં તે’ ઇત્યાદિ—

અથ કા સા નૈગમવ્યવહારસમ્પતા અર્થપદપ્રરૂપણતા? ઇતિ પ્રશ્નઃ । ઉત્તરયતિ-
ઇત્યં ચ પર્યાયપર્યાયિણોરભેદોષ્ચારમાશ્રિત્ય, તત્ર ચ કાલપર્યાયસ્યૈવ પ્રાધાન્ય-
માશ્રિત્ય કાલપર્યાયવિશિષ્ટસ્ય દ્રવ્યસ્યાપિ કાલાનુપૂર્વીત્વં બોધ્યમ્ । અનન્તસમ-
યાવધિદ્રવ્યસ્ય સ્થિતિઃ સ્વભાવાદેવ ન ભવતિ, અતોऽનન્તસમયસ્થિતિકઃ

ઉત્તર—નૈગમવ્યવહારનયસંમત અર્થપદપ્રરૂપણતા હસ પ્રકાર સે હૈ—
(તિ સમયદ્વિદ્વે આણુપુઠ્વી, જાવ દસસમયદ્વિદ્વે આણુપુઠ્વી) જિસ
દ્રવ્ય વિશેષ કી સ્થિતિ તીન સમય કી હૈ—અર્થાત્ તીન સમય કી સ્થિતિ-
વાલા જો દ્રવ્ય વિશેષ હૈ—વહ ત્રિસમયસ્થિતિક હૈ । એસા ત્રિસમય સ્થિતિ-
ક જો દ્રવ્ય વિશેષ હૈ વહ આનુપૂર્વી હૈ, એસા દ્રવ્ય વિશેષ એકપરમાણુ
ઓ હો સકતા હૈ દ્વિપરમાણુક સ્કંધ ઓ હો સકતા તીન પરમાણુ વાલા
સ્કંધ ઓ હો સકતા હૈ, ચાર પરમાણુ વાલા ઓ સ્કંધ હો સકતા હૈ,
પાંચ આદિ પરમાણુ વાલે સ્કંધ સે લેહર અનંત પરમાણુઓ વાલા સ્કંધ તક
ઓ હો સકતા હૈ । હસ પ્રકાર એક પરમાણુ રૂપ દ્રવ્ય સે લેકર દ્વિપરમા-
ણુક ત્રિપરમાણુક આદિ અનન્ત પરમાણુક સ્કંધ પર્યન્ત જિતને ઓ દ્રવ્ય

ઉત્તર—(નૈગમવ્યવહારાણં અત્યપયપરૂવણયા) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અર્થપ-
દપ્રરૂપણતા આ પ્રકારની છે—(ત્રિસમયદ્વિદ્વે આણુપુઠ્વી, જાવ દસસમયદ્વિદ્વે
આણુપુઠ્વી) જે દ્રવ્યવિશેષની સ્થિતિ ત્રણ સમયની હોય છે, તે દ્રવ્યવિશેષને
ત્રિસમયસ્થિતિ કહે છે એવું ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળું જે દ્રવ્યવિશેષ છે,
તેને આડીં આનુપૂર્વી રૂપ સપન્વુ’ નોઈએ એવું દ્રવ્યવિશેષ એક પરમાણુ
પણ હોઈ શકે છે, બે પરમાણુવાળો સ્કંધ પણ હોઈ શકે છે, ત્રણ પરમાણુ-
વાળો સ્કંધ પણ હોઈ શકે છે, ચાર પરમાણુવાળો સ્કંધ પણ હોઈ શકે છે,
અને પાંચથી લઈને અનંત સુધીના પરમાણુઓવાળા સ્કંધો પણ હોઈ શકે છે.

આ રીતે એક પરમાણુ રૂપ દ્રવ્યથી લઈને દ્વિપરમાણુક, ત્રિપરમાણુક
અનંત પરમાણુક સ્કંધ પર્યન્તના જેટલાં દ્રવ્યવિશેષ છે, તે ત્રણ સમયની સ્થિતિ-

कालानुपूर्वी न प्रोक्ता। तथा—एकसमयस्थितिकः परमाण्वाद्यनन्तपरमाणुकस्कन्धपर्यन्तो द्रव्यविशेषः अनानुपूर्वी। द्विसमयस्थितिकः परमाण्वाद्यनन्तपरमाणुकस्कन्धपर्यन्तो द्रव्यविशेषः अशक्तव्यक्तम्। तथा त्रिसमयस्थितिकाः परमाण्वाद्यनन्तपरमाणुकस्कन्धात्मका द्रव्यविशेषा यावदसंख्येयसमयस्थितिकाः पूर्वोक्तद्रव्यविशेषा

विशेष तीन समय की स्थिति वाले हैं वे सब अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी के भेद रूप अर्थपदप्ररूपणा के विषय भूत हैं। और ये सब एक २ अनानुपूर्वी है। इसी प्रकार से चार समय की स्थिति वाला—जितना भी द्रव्य है उससे लेकर असंख्यान समय—की स्थिति वाले द्रव्यों तक जितने द्रव्य विशेष हैं उन में प्रत्येक द्रव्यविशेष आनुपूर्वी है।

शंका—यदि द्रव्य विशेष को ही यहाँ आनुपूर्वी पना है तो फिर कालानुपूर्वी ऐसा कहना विरुद्ध पड़ता है। क्योंकि कालानुपूर्वी में काल में आनुपूर्वीपना कहना चाहिये द्रव्य विशेष में नहीं। यहाँ तो आनुपूर्वीपना द्रव्यविशेषों में कहा जा रहा है।

उत्तर—यहाँ जो द्रव्य विशेषों में आनुपूर्वी पना कहा जा रहा है सो केवल—द्रव्यों में नहीं कहा जा रहा है किन्तु जो—द्रव्य समयत्रय आदि रूप काल पर्याय से विशिष्ट है उसमें ही कहा जा रहा है। इसलिये—यहाँ समयत्रय आदिरूप कालपर्याय से युक्त ही द्रव्य ग्रहण किया गया है। इस प्रकार काल की पर्याय जो समयत्रय आदि

वाणं छे, ते सधणा अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीना लेद इय अर्थपदप्ररूपणताना विषयइय छे. अने तेओ जधां ओक ओक अनानुपूर्वी इय छे ओज प्रभाणे चार समयनी स्थितिवाणं जेटलां द्रव्ये छे ते द्रव्येथी लधने असंख्यात पर्यन्तनी स्थितिवाणं जेटलां द्रव्ये छे, तेमांतुं प्रत्येक द्रव्यविशेष पणु आनुपूर्वी इय ज छे.

शंका—जे द्रव्यविशेषमां ज आनुपूर्वीता मानवामां आवे, तो “कालानुपूर्वी” आ प्रकारतुं कथन विरुद्ध पडे छे, कारण के कालानुपूर्वीना कथनमां तो कालमां आनुपूर्वीता कडेवी जेठजे—द्रव्यविशेषमां आनुपूर्वीता कडेवी जेठजे नही. अही तो आवे द्रव्यविशेषेमां आनुपूर्वीता जतावी छे. तो आ जाणतने आप शे जुदासे करे छे ?

उत्तर—अही जे द्रव्यविशेषेमां आनुपूर्वीता प्रकट करवामां आवी छे, ते केवण द्रव्येमां ज प्रकट करवामां आवी नथी, परन्तु जे द्रव्य समयत्रय आदि इय कालपर्यायथी विशिष्ट (युक्त) छे तेमां ज प्रकट करवामां आवेद छे. तेथी अही समयत्रय आदि इय कालपर्यायथी युक्त द्रव्य ज ग्रहण कर-

पर्यायी जो तद्विशिष्ट द्रव्य हैं सो इन दोनों में अभेद के उपचारका आश्रय करके और कालपर्यायकी ही प्रधानता-मानकर के काल पर्याय विशिष्ट द्रव्य में भी कालानुपूर्वीपना जानना चाहिये। अनन्त समय तक रहनेवाले द्रव्य की स्थिति स्वभाव से ही नहीं होती है। अर्थात् कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं है कि जिसकी स्थिति स्वभाव से अनन्त समयवाली हो। इसीलिये अनन्त समय की स्थितिवाली कालानुपूर्वी नहीं कही है। (संखिज्जसमयद्विहए आणुपुव्वी असंखिज्जसमयद्विहए आणुपुव्वी) इन पदोंका अर्थ विषयक खुलासा भी इसी कथन में हो चुका है। (एगसमयद्विहए अणुपुव्वी) तथा जो परमाणुरूप द्रव्य, द्वयणुक द्रव्य, त्रयणुकद्रव्य यावत् संख्याताणुक द्रव्य, असंख्याताणुक और अनंताणुक द्रव्य एक समय की स्थितिवाला है वह अनानुपूर्वी है। (दुसमयद्विहए अवत्तव्वगं) तथा जो दो समयकी स्थितिवाला परमाणुरूप द्रव्य, द्वयणुक द्रव्य त्रयणुक द्रव्य यावत् संख्याताणुक द्रव्य, असंख्याताणुक द्रव्य और अनंताणुक पर्यन्त तक का द्रव्य है वह सय अवत्तव्यक द्रव्य है। (तिसमयद्विहयाओ आणुपुव्वीओ) तीन समयकी

वामां आवेल छे. आ प्रकारे काणनी त्रषु पर्यायी अने ते त्रषुपर्यायीवाणा द्रव्यमां अभेदने उपचार करीने अने काणपर्यायनी न प्रधानता मानीने काणपर्यायविशिष्ट द्रव्यमां पणु कालानुपूर्वीता समजवी जेधये द्रव्यनी अनन्त समय भुधी रहैवानी स्थिति स्वभावथी न होती नथी ओटले के केध पणु द्रव्य ओपुं नथी के जेनी स्थिति स्वभावथी न अनंत समयनी होय तेथी न अनंत समयनी स्थितिवाणी कालानुपूर्वी होती नथी ते कारणे अनंत समयनी स्थितिवाणी कालानुपूर्वी अहीं प्रकट करवामां आवी नथी.

(संखिज्जसमयद्विहए आणुपुव्वी असंखिज्जसमयद्विहए आणुपुव्वी) आ सूत्रपाठने अर्थ पणु उपर्युक्त कथनमां स्पष्ट थध युक्तये छे.

(एगसमयद्विहए अणुपुव्वी) तथा जे परमाणु इप द्रव्य, जे अणुवाणुं द्रव्य, त्रषु अणुवाणुं द्रव्य, चारथी लधने संख्यात पर्यन्तना अणुवाणुं द्रव्य, असंख्यात अणुक द्रव्य अने अनंताणुक द्रव्य ओक समयनी स्थितिवाणुं होय छे, तेने अनानुपूर्वी इय समजवुं. (दुसमयद्विहए अवत्तव्वगं) तथा जे समयनी स्थितिवाणुं जे परमाणु इप द्रव्य, जे अणुवाणुं द्रव्य, त्रषुथी लधने संख्यात पर्यन्तना अणुवाणुं द्रव्य, असंख्यात अणुक द्रव्य अने अनंत अणुक द्रव्य होय छे तेने अवत्तव्यक द्रव्यइय समजवुं.

आनुपूर्व्यः । एकसमयस्थितिका अनानुपूर्व्यः । द्विसमयस्थितिका अवक्तव्यकानि ।
 सेवा नैगमव्यवहारसंमता—अर्थपदप्ररूपणता । एतस्याः खलु नैगमव्यवहारयोरर्थ
 प्ररूपणतायाः किं प्रयोजनम् ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—एतया खलु नैगमव्यवहार-
 सम्मतयाऽर्थप्ररूपणतया नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्तनता क्रियते ॥ सू० १२७ ॥

स्थितिवाले जितने भी परमाणु आदि से लेकर अनंताणुक पर्यन्त तक के
 स्कन्धात्मक द्रव्य विशेष हैं वे तथा संख्यात असंख्यातसमयकी स्थिति-
 वाले परमाणुरूप द्रव्य से लेकर अनंताणुक पर्यन्त तक के जितने भी
 द्रव्य विशेष हैं वे सब बहुवचनान्त आनुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ हैं ।
 (एकसमयद्विहयाओ अणुपुन्वीओ) तथा जितने भी एक परमाणुरूप
 द्रव्य से लेकर अनंताणुक पर्यन्त तक के द्रव्य विशेष एक समय की
 स्थितिवाले हैं वे सब बहुवचनान्त अनानुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ हैं ।
 (दुसमयद्विहयाओ अवक्तव्यगाइं) तथा दो समय की स्थितिवाले जितने
 भी ये पूर्वोक्त द्रव्य हैं वे सब बहुवचनान्त अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ
 हैं, (से तं नैगमव्यवहाराणं अत्यपयपरूषणया) इस प्रकार नैगमव्यवहार-
 नयसंमत अर्थपदप्ररूपणता है । (एयाएणं नैगमव्यवहाराणं अत्यपयपरूष-
 णाय किं पओचणं)

प्रश्न—इस नैगमव्यवहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है ?

(ति समयद्विहयाओ अणुपुन्वीओ) त्रयु समयनी स्थितिवाणां जेटलां
 परमाणु आदिथी लधने अनंताणुक पर्यन्तना स्कन्धात्मक द्रव्यविशेषो छे,
 तेमने तथा संख्यात, असंख्यात समयनी स्थितिवाणा परमाणुरूप द्रव्यथी
 लधने अनंताणुक पर्यन्तना जेटलां द्रव्यविशेषो छे तेओ बहुवचनान्त
 आनुपूर्वी शब्दना वाच्यार्थ इय छे.

(एक समयद्विहयाओ अणुपुन्वीओ) तथा ओक परमाणुरूप द्रव्यथी
 लधने अनंताणुक पर्यन्तना जेटलां द्रव्यविशेषो ओक समयनी स्थितिवाणा
 छे, तेओ अधां बहुवचनान्त अनानुपूर्वी शब्दना वाच्यार्थ इय छे.

(दुसमयद्विहयाओ अवक्तव्यगाइं) तथा ओ समयनी स्थितिवाणां जेटलां
 पूर्वोक्त द्रव्यो छे, तेओ अधां बहुवचनान्त अवक्तव्यक शब्दना वाच्यार्थ
 इय छे. (से तं नैगमव्यवहाराणं अत्यपयपरूषणया) नैगमव्यवहार नयसंमत
 अर्थपदप्ररूपणतानुं आ प्रकारनुं स्वइय छे.

प्रश्न—(एयाएणं नैगमव्यवहाराणं अत्यपयपरूषणाय किं पओचणं ?) आ नैगम-
 व्यवहार नयसंमत अर्थपदप्ररूपणतानुं प्रयोजन शुं छे ?

उत्तर—एयाएणं णेगमववहारणं अत्थपयपरुवणाए णेगमववहारणं भंगसमुत्कीर्तणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत इत्थ अर्थपदप्ररूपणता से नैगमव्यवहारनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है।

भावार्थ—सूत्रकार यहाँ कालानुपूर्वी का कथन कर रहे हैं। अतः उस विषयका सांगोपांग वर्णन करने के लिये उन्होंने इस आनुपूर्वी को औपनिधिकी और अनौपनिधिकी इस प्रकार के दो विभागों में विभक्त किया है। इन का शब्दार्थ क्या है? यह सब पीछे द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरणमें स्पष्ट कर दिया गया है। औपनिधिकी आनुपूर्वी के स्वरूप आदिका कथन सूत्रकार अनौपनिधिकी आनुपूर्वी के कथन करने के बाद करेंगे। अतः उसे पहिले न कहकर वे अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का सर्व प्रथम विवेचन करने के अभिप्राय से उसे नैगम-व्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी और संग्रहनय संमत अनौपनिधिकी इन दो विभागों में विभक्त कर रहे हैं। इन में जो नैगमव्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है वह अर्थपदप्ररूपणता, भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शनता, समवतार और अनुगम के भेद से ५ पांच प्रकार की है। अर्थपदप्ररूपणता में तीन समय से लेकर असंख्यात

उत्तर—(एयाएणं णेगमववहारणं अत्थपयपरुवणाए णेगमववहारणं भंगसमुत्कीर्तणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत आ अर्थपद प्ररूपणताने आधारे नैगमव्यवहार नयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता कराय छे.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रमां कालानुपूर्वीनुं कथन कर्युं छे. आ विषयनुं सांगोपांग वर्णन करवाने माटे सूत्रकारे कालानुपूर्वीना औपनिधिकी अने अनौपनिधिकी नामना छे विलाग पाडयां छे आ अन्नेने अर्थ द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां पडैलां अतावी देवामां आवेस छे अनौपनिधिकी आनुपूर्वीना स्वरूपनुं कथन कर्यां माटे सूत्रकार औपनिधिकी आनुपूर्वीना स्वरूपनुं कथन करशे आ प्रकारे सूत्रकार पडैलां ते अनौपनिधिकी आनुपूर्वीनुं निरूपण करे छे—ते माटे तेमछे अनौपनिधिकी आनुपूर्वीने नीयेता छे विलागोमां विभक्त करी नाभी छे—(१) नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी अने (२) संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी तेमांनी ७ नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी छे तेना नीये प्रमाणे पांच भेद पडे छे—(१) अर्थपद प्ररूपणता, (२) भंगसमुत्कीर्तनता, (३) भंगोपदर्शनता, (४) समवतार अने (५) अनुगम.

समय तक की स्थितिवाला जितना भी एक परमाणु आदि द्रव्य है— वह सब आनुपूर्वी शब्द का वाच्यार्थ है। क्योंकि यहां कालानुपूर्वीका प्रकरण है इसलिये तीन आदि समयों में रहनेवाले द्रव्य को ही आनुपूर्वी माना गया है। एक परमाणु भी तीन समयकी स्थितिवाला होता है, दो आदि परमाणुवाला द्रव्य भी तीन समय की स्थितिवाला होता है। अतः ये सब आनुपूर्वी शब्द के वाच्य हैं। इसी प्रकार से चार आदि समयों से लेकर संख्यात समय और असंख्यात समय तक की भी स्थितिवाले ये पूर्वोक्त द्रव्य होते हैं। इसलिये ये सब स्वतंत्र आनुपूर्वी हैं। एक समयकी स्थितिवाला एक पुद्गलपरमाणु द्रव्य और द्वयणुक आदि अनंत परमाणुक पर्यन्त तक का द्रव्य अनानुपूर्वी है। दो समयकी स्थितिवाला एक पुद्गलपरमाणुरूप द्रव्य और द्वयणुक आदि अनंत परमाणु युक्त तकका द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्य हैं। यहां एक वचनान्त और बहुवचनान्त जो आनुपूर्वी आदिपद सूत्रकारने कहे हैं उन का कारण यह है कि तीन आदि समयों की स्थितिवाले आनुपूर्वी द्रव्य एक र व्यक्तिरूप भी है और अनेक अनंत-व्यक्तिरूप भी हैं। इसी

अर्थपद प्रपञ्चतामां त्रयु समयथी लधने असंख्यात समय पर्यन्तनी स्थितिवाणां जेटलां एक परमाणुथी लधने अनंत पर्यन्तना परमाणुवाणां द्रव्ये छे, ते अधा द्रव्येने आनुपूर्वी इप गणुवामां आवे छे, कारणु के अही कालानुपूर्वीने अधिकार आही रह्यो छे तेथी त्रयु आदि समयोनी स्थितिवाणां द्रव्येने न आनुपूर्वी इप मानवामां आव्यां छे. एक परमाणु पणु त्रयु समयनी स्थितिवाणुं डोर्छ शके छे, जे आदि परमाणुवाणुं द्रव्य पणु त्रयु समयनी स्थितिवाणुं डोर्छ शके छे. तेथी जेवां त्रयु समयनी स्थितिवाणां द्रव्ये आनुपूर्वी इप छे जे प्रमाणु आरथी लधने संख्यात समयो, अने असंख्यात पर्यन्तना समयोनी स्थितिवाणां एक परमाणुवाणां, अने जेथी लधने अनंत पर्यन्तना परमाणुवाणां द्रव्ये पणु डोर्छ शके छे जेवां अधां द्रव्ये पणु स्वतंत्र आनुपूर्वी इप न गणुय छे. एक समयनी स्थितिवाणुं एक पुद्गल परमाणु इप द्रव्य अने जे अणुकथी लधने अनंत अणुक पर्यन्तनुं द्रव्य अनानुपूर्वी इप गणुय छे. जे समयनी स्थितिवाणुं एक पुद्गलपरमाणु इप द्रव्य अने जे अणुवाणाथी लधने अनंत पर्यन्तना अणुवाणुं द्रव्य अवक्तव्यक इप गणुय छे. अही सूत्रकारे जे एकवचनान्त अने बहुवचनान्त आनुपूर्वी आदि पद अताव्यां छे तेनुं कारणु जे छे के त्रयु आदि समयोनी स्थितिवाणां आनुपूर्वी द्रव्ये एक एक व्यङ्गित (पदार्थ)

મૂલ્ય—સે કિં તં ણેગમવવહારાણં મંગસમુક્તિત્તણયા? ણેગમવવહારાણં મંગસમુક્તિત્તણયા—અત્થિ આણુપુટ્વી, અત્થિ અજાણુપુટ્વી, અત્થિ અવત્તવ્વગં। एवं दव्वाणुपुट्वीममेणं कालाणुपुट्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं मंगसमुक्त्तिणया। एयाएणं णेगमववहाराणं मंगसमुक्त्तिणयाए किं पओयणं? एयाए णं णेगमववहाराणं मंगसमुक्त्तिणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ॥सू०१२८॥

પ્રકાર સે અવત્તવ્યક ઓર અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોં કે દ્વિષય મેં મી જાનના વ્હાહિયે । ઇસકે સ્તુલાસા કે લિયે દ્રવ્યાનુપૂર્વી કે પ્રકરણમેં નૈગમવ્યવહારનયસંમત અર્થપદપ્રરૂપણતારૂપ આનુપૂર્વીં કા અર્થ દેખના વ્હાહિયે । ઘહાં દ્રવ્યાનુપૂર્વીં કા પ્રકરણ હોને સે તીન આદિ પ્રદેશવાલે દ્રવ્ય કો આનુપૂર્વીં, એક પ્રદેશવાલે દ્રવ્ય કો અનાનુપૂર્વીં ઓર દો પ્રદેશવાલે દ્રવ્ય કો અવત્તવ્યક દ્રવ્ય કહા હૈ । તથ ક્કિ યહાં કાલાનુપૂર્વીં કે સબન્ધ સે તીન આદિ સમય સ્થિત દ્રવ્યકો આનુપૂર્વીં, એક સમય સ્થિત દ્રવ્ય કો અનાનુપૂર્વીં ઓર દો સમયસ્થિત દ્રવ્ય કો અવત્તવ્યક દ્રવ્ય કહા હૈ । ઇસ એક વચનાન્ત ઓર વહુવચનાન્ત આનુપૂર્વીં આદિ અર્થપદ પ્રરૂપણતા કા પ્રયોજન વ્હા હૈ ? ઇસ વાત કો સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ ॥સૂ० ૧૨૭॥

૩૫ પશુ હોય છે. એજ પ્રમાણે અવક્રતવ્યક અને અનાનુપૂર્વીં દ્રવ્યોના વિષયમાં પશુ સમજવું તેના સ્પષ્ટીકરણ માટે દ્રવ્યાનુપૂર્વીંના પ્રકરણમાં નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અર્થપદપ્રરૂપણા ૩૫ આનુપૂર્વીંનું પ્રકરણ વાંચી જવાની લક્ષામણ કરવામાં આવે છે તે પ્રકરણમાં દ્રવ્યાનુપૂર્વીંનું નિરૂપણ કરેલું હોવાથી, ત્રણ આદિ પ્રદેશોવાળાં દ્રવ્યોને આનુપૂર્વીં ૩૫, એક પ્રદેશવાળા દ્રવ્યને અનાનુપૂર્વીં ૩૫ અને બે પ્રદેશવાળા દ્રવ્યને અવક્રતવ્યક ૩૫ કહેવામાં આવેલ છે. પરન્તુ અહીં કાલાનુપૂર્વીંનું કથન ચાલતું હોવાથી ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળા દ્રવ્યને આનુપૂર્વીં ૩૫, એક સમયની સ્થિતિવાળા દ્રવ્યને અનાનુપૂર્વીં ૩૫ અને બે સમયની સ્થિતિવાળા દ્રવ્યને અવક્રતવ્યક ૩૫ કહેવામાં આવેલ છે. આ એકવચનાન્ત અને બહુવચનાન્ત અર્થપદપ્રરૂપણતાનું પ્રયોજન શું છે ? તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે. ॥સૂ० ૧૨૭॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयो भङ्गसमुत्कीर्तनता? नैगमव्यवहारयो भङ्गसमुत्कीर्तनता—अस्ति आनुपूर्वी, अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकम्। एवं सप्तसप्ततिद्वयोक्तद्रव्यानुपूर्वीगमेन कालानुपूर्व्यामपि त एव पङ्क्तिविंशतिर्भङ्गा भणितव्या यावत् सैषा नैगमव्यवहारयोर्भङ्गसमुत्कीर्तनता। एतस्याः खलु भङ्ग-

“ से किं तं णैगमववहाराणं ” इत्यादि।

शब्दार्थः—(से किं तं णैगमववहाराणं भंगसमुत्कीर्तनताया?) हे भदन्त! नैगमव्यवहारनयसंमत वह भंगसमुत्कीर्तनता क्या है?

उत्तरः—(णैगमववहाराणं भंगसमुत्कीर्तनताया) नैगमव्यवहारनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता इस प्रकार से है—(अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी अत्थि अवत्तव्वगं) आनुपूर्वी है, अनानुपूर्वी है, अवक्तव्यक है (एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं कालाणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा) इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी में कथित भंगसमुत्कीर्तनता के अनुरूप इस कालापूर्वी में भी वे ही २६ भंग बना लेना चाहिये। और—इस पाठ को “ से तं णैगमववहाराणं भंगसमुत्कीर्तनताया ” इस पाठ तक समाप्त हुआ जानना चाहिये। (एयाए णं णैगमववहाराणं भंगसमुत्कीर्तनतायाए किं पओयणं?) नैगमव्यवहारनयसंमत इस भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

“ से किं तं णैगमववहाराणं ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं णैगमववहाराणं भंगसमुत्कीर्तनताया?) हे भगवन्! नैगमव्यवहार नयसंमत ते भंगसमुत्कीर्तनतानुं स्वइप देवुं छे?

उत्तर—(णैगमववहाराणं भंगसमुत्कीर्तनताया) नैगमव्यवहार नयसंमत भंगसमुत्कीर्तनतानुं स्वइप आ प्रकारनुं छे—

(अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वगं) आनुपूर्वी छे, अनानुपूर्वी छे अने अवक्तव्यक छे, (एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं कालाणुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा) आ प्रकारे द्रव्यानुपूर्वीना प्रकारणुमां जेवां २६ भंग (सांगाओ) छडेवामां आओया छे, जेवां ७ २६ सांगाओ आ कालानुपूर्वीना विषयमां पणु छडेवा जेधओ. “ से तं णैगमववहाराणं भंगसमुत्कीर्तनताया ” आ सूत्रपाठ पर्यन्तनुं समस्त कथन अही पणु करवुं जेधओ.

प्रश्न—(एयाएणं णैगमववहाराणं भंगसमुत्कीर्तनतायाए किं पओयणं?) नैगमव्यवहार नयसंमत आ भंगसमुत्कीर्तनतानुं शुं प्रयेजनं छे?

સમુન્નીર્તનતાયાઃ કિં પ્રયોજનમ્? એતયા સ્વહુ નૈગમવ્યવહારયોઃ મજ્જસમુત્કીર્તન-
તયા નૈગમવ્યવહારયોર્મજ્જોપદર્શનતા ક્રિયતે ॥સૂ૦ ૧૨૮॥

ટીકા—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ । વ્યાખ્યાસ્ય સ્પષ્ટા ॥સૂ૦ ૧૨૮॥

ઉત્તર—(એવાએ જં ળેગમવવહારાણં મંગસમુક્તિત્તણયાએ ળેગમવ-
વહારાણં મંગોવદંસળયા કજ્જહ) હસ નૈગમવ્યવહારનયસંમત મંગસમુ-
ત્કીર્તનતા સે નૈગમવ્યવહારનયસંમત મંગોપદર્શનતા કી જાતી હૈ ।
હસ સૂત્ર કી વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ હૈ ।—

માત્રાર્થઃ—યહાં હસ પ્રકાર સે જાનના ચાહિયે—કિ જો યે આનુપૂર્વી
આદિ તીન પદ એકવચનાન્ત હૈં ઉનસે તીન મંગ બનતે હૈં । ઓર જો
આનુપૂર્વી આદિ તીન પદ બહુવચનાન્ત હૈં ઉનસે મી તીન મંગ બનતે હૈં ।
હસ પ્રકાર અસંયોગ પક્ષ મેં યે જુદે ૨ છ મંગ હો જાતે હૈં । ઓર
સંયોગ પક્ષ મેં હન તીન પદોં કે દ્વિસંયોગી મંગ તીન હોતે હૈં । હનમેં
એક ૨ મંગ મેં દો દો કા સંયોગ હોને પર એકવચન ઓર બહુવચન કો
લેકર ચાર ચાર મંગ હો જાતે હૈં । હસ પ્રકાર તીન મંગ કે દ્વિકસંયોગી
મંગ ચાર ૨ હોને સે યે ૧૨ બન જાતે હૈં । તથા ત્રિકસંયોગ મેં એકવચન
ઓર બહુવચન કો લેકર ૮ મંગ બનતે હૈં । હસ પ્રકાર સઘ મંગ મિલકર
૨૬ મંગ હોતે હૈં । હન મંગોં કી સ્થાપના કે લિયે દ્રવ્યાનુપૂર્વી કે પ્રકરણ
કા ૭૭ વાં સૂત્ર દેખના ચાહિયે । ॥સૂ૦ ૧૨૮॥

ઉત્તર—(એવાએ જં ળેગમવવહારાણં મંગસમુક્તિત્તણયાએ ળેગમવવહારાણં મંગોવ-
દંસળયા કજ્જહ) આ નૈગમવ્યવહાર નયસંમત મંગસમુત્કીર્તનતાને આધારે
નૈગમવ્યવહાર નયસંમત મંગોપદર્શનતા કરવામાં આવે છે. આ સૂત્રની
વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ છે.

ભાવાર્થ—અહીં ૨૬ મંગ કેવી રીતે બને છે, તે હવે સમજાવવામાં
આવે છે—આનુપૂર્વી આદિ ત્રણ એકવચનાન્ત પદોના ત્રણ મંગ (ભાંગા)
બને છે. અને જે આનુપૂર્વી આદિ બહુવચનાન્ત ત્રણ પદો છે તેમના પણ
ત્રણ મંગ બને છે આ રીતે કુલ ૬ મંગ અસંયોગ પક્ષમાં થાય છે.

સંયોગ પક્ષમાં આ ત્રણ પદના દ્વિસંયોગી મંગ ત્રણ થાય છે. તેમાં
પ્રત્યેક ભાંગમાં બખેને સંયોગ થવાથી એકવચન અને બહુવચનવાળા
ચાર ચાર મંગ બને છે. આ રીતે ત્રણ ભાંગોના દ્વિસંયોગી ચાર ચાર મંગ
થતા હોવાથી કુલ દ્વિકસંયોગી મંગ ૧૨ થાય છે. અને ત્રિકસંયોગમાં એક-
વચન અને બહુવચનાન્ત પદોનાં કુલ ૮ મંગ થાય છે. આ પ્રકારે કુલ ૨૬
મંગ થઈ જાય છે આ ભાંગોની રચના સ્પષ્ટ રીતે સમજવા માટે દ્રવ્યાનુ-
પૂર્વીના પ્રકરણનું ૭૭મું સૂત્ર વાંચી લેવાની ભલામણ કરવામાં આવે છે. ॥સૂ૦ ૧૨૮॥

मूलम्—से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया ? णेगम०
भंगोवदंसणया—तिसमयट्टिइए आणुपुवी, एगसमयट्टिइए अणा-
णुपुवी, दुसमयट्टिइए अवत्तव्वगं । तिसमयट्टिइया अणाणुपुवीओ
एगसमयट्टिइया अणाणुपुवीओ, दुसमयट्टिइया अवत्तव्वयाइं,
अहवा—तिसमयट्टिइए य एगसमयट्टिइए य आणुपुवी य अणा-
णुपुवी य । एवं तथा चेव दव्वाणुपुवी गभेणं छव्वीसं भंगा भाणि-
यव्वा जावसे तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया ॥सू० १२९॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयो भङ्गोपदर्शनता ? नैगम. भङ्गोपदर्श-
नता—त्रिसमयस्थितिक आनुपूर्वी, एकसमयस्थितिक अनानुपूर्वी, द्विसमयस्थितिक
अवक्तव्यकम् । त्रिसमयस्थितिका आनुपूर्व्यः । एकसमयस्थितिका आनुपूर्व्यः ।

“ से किं तं णेगमववहाराणं ” इत्यादि ।

शब्दार्थः—(णेगमववहाराणं) हे भदन्त ! नैगमव्यवहारनयसंमत
(तं) पूर्वप्रक्रान्त (से) वह—(भंगोवदंसणया) भंगोवपदर्शन्ता (किं) कया है?

उत्तरः—(णेगम. भंगोवदंसणया) नैगमव्यवहारनयसंमत भंगोप-
दर्शनता इस प्रकार से है—(तिसमयट्टिइए आणुपुवी) तीन समय की
स्थितिवाला एक एक परमाणु आदि द्रव्य आनुपूर्वी है । (एगसमयट्टिइए
अणाणुपुवी) एक समय की स्थितिवाला एक परमाणु आदि द्रव्य
अनानुपूर्वी है । (दुसमयट्टिइए अवत्तव्वगं) दो समय की स्थितिवाला
एक परमाणु आदि द्रव्य अवक्तव्यक है । (तिसमयट्टिइया आणुपुवीओ)

“ से किं तं णेगमववहाराणं ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(णेगमववहाराणं) हे भगवन् ! नैगमव्यवहार नयसंमत (तं)
पूर्वप्रक्रान्त (से) ते (भंगोवदंसणया) भंगोपदर्शनतानुं (किं) केषुं स्वइयं छे ?

उत्तर—(णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) नैगमव्यवहारनयसंमत भंगो-
पदर्शनता आ प्रकारनी छे—

(तिसमयट्टिइए आणुपुवी) त्रयु समयनी स्थितिवाणुं प्रत्येक परमाणु
आदि द्रव्य आनुपूर्वीं इयं छे. (एगसमयट्टिइए अणाणुपुवी) अेक समयनी
स्थितिवाणुं अेक परमाणु आदि द्रव्य अनानुपूर्वीं इयं छे. (दुसमयट्टिइए
अवत्तव्वगं) ये समयनी स्थितिवाणुं अेक परमाणु आदि द्रव्य अवक्तव्यक
इयं छे. (तिसमयट्टिइया आणुपुवीओ) त्रयु समयनी स्थितिवाणां अनेक

द्विसमयस्थितिज्ञा अवक्तव्यकानि । अथवा-त्रिसमयस्थितिकश्च एकसमयस्थितिकश्च
आनुपूर्वीच अनानुपूर्वीच । एवं तथैव द्रव्यानुपूर्वीगमेन षड्विंशतिर्भङ्गा भणितव्याः,
यावत् सैषा नैगमव्यवहारयो भङ्गोपदर्शनता ॥ सू० १२९ ॥

टीका-‘से किं तं इत्यादि । व्याख्या द्रव्यानुपूर्वीवदभ्युहनीया । सू० १२९ ॥

तीन समय की स्थितिवाले अनेक अपनी २ एक ही जातिवाले पदार्थ
आनुपूर्वियां हैं । (एगसमयद्विइया अणाणुपुठ्वीओ) एक समय में स्थिति-
वाले अनेक अपनी २ एक ही जातिवाले पदार्थ अनानुपूर्वियां हैं ।
(दुसमयद्विइया अवत्तव्ययाइं) दो समय की स्थितिवाले अनेक अपनी
२ एक ही जातिवाले पदार्थ अवक्तव्यक हैं । इस प्रकार ये एकवचनान्त
बहुवचनान्त पक्ष में २-३ भंग हैं । इस प्रकार से असंयोग पक्ष में इन
छ भंगों का अर्थ कथन है । संयोगपक्ष में एकवचन और बहुवचन
संबन्धी प्रथम और द्वितीय भंग को संयुक्त करने पर त्रिसमय की
स्थितिवाला पदार्थ एक आनुपूर्वी और एक समय की स्थितिवाला
पदार्थ एक अनानुपूर्वी का वाच्यार्थ जानना चाहिये । यही बात (अहवा
तिसमयद्विइए य एगसमयद्विइए य आणुपुठ्वी य अणाणुपुठ्वी य) इस
पाठ द्वारा स्पष्ट की गई है । यह प्रथम चतुर्भंगी का प्रथम भंग है
(एवं तहाचेव द्रव्याणुपुठ्वीगमेणं छव्वीसं भंगा आणियव्वा जाव से
तं णेगमव्यवहाराणं भंगोवदसणया) इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी के पाठ के

पोतपोतानी ओक सरणी लतिवाणा पदार्थो अनानुपूर्वीओ ३प छे. (दुसम-
यद्विइया अवत्तव्ययाइं) ओ समयनी स्थितिवाणा अनेक पोतपोतानी ओक
सरणी लतिवाणा पदार्थो अवक्तव्यके ३प छे. आ प्रकारे ओकवचनान्त
असंयोग पक्षमां त्रणु भंग अने बहुवचनान्त असंयोग पक्षमां पणु त्रणु
भंग अने छे. आ रीते असंयोगपक्षे कुल ६ भंग अने छे. संयोगपक्षे
ओकवचन अने बहुवचन संबन्धी प्रथम अने द्वितीय भंगने संयुक्त
करवाथी त्रणु समयनी स्थितिवाणा पदार्थ ओक आनुपूर्वी ३प अने ओक
समयनी स्थितिवाणा पदार्थ ओक अनानुपूर्वी ३प समयवे लोपओ, ओ
बात नीचेना सूत्रपाठ द्वारा प्रकट करवाभां आवी छे-

(अहवा तिसमयद्विइए य एगसमयद्विइए य आणुपुठ्वी य अणाणुपुठ्वी य)
आ प्रकारे पछेदी चतुर्भंगीने पछेदी भंग उपर प्रकट करवाभां आव्ये छे.
(एवं तहा चेव द्रव्याणुपुठ्वीगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्या जाव से तं णेग-
मव्यवहाराणं भंगोवदसणया) आ प्रकारे द्रव्यानुपूर्वीना पाठमां इथांया अनुसा-

अनुसार यहाँ पर 'से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया' इस पाठ पर्यन्त २६ भंग जानना चाहिये। यही भंगोपदर्शनता है। यहाँ २६ भंग इस प्रकार से बनते हैं—

(१) त्रिसमयस्थितिक-एकपरमाणु आदि से लेकर अनंताणुक स्कंध पर्यन्त द्रव्य विशेष आनुपूर्वी, (२) एक समय स्थितिक-एक परमाणु आदि से लेकर अनंताणुक स्कंध पर्यन्त द्रव्यविशेष अनानुपूर्वी (३) द्विसमयस्थितिक-एकपरमाणु द्रव्य आदि से लेकर अनंताणुक स्कंध पर्यन्त द्रव्य विशेष-अवक्तव्यक ये ३ तीन भंग एकवचनान्त हैं—

(१) त्रिसमयस्थितिक-अनेक एक २ परमाणु आदि से लेकर अनेक अनंताणुक स्कंधद्रव्यविशेष-आनुपूर्वियां, (२) एक समयस्थितिक-अनेक एक २ परमाणु आदि द्रव्य से लेकर अनेक अनंताणुक स्कंध पर्यन्त अनानुपूर्वियां, (३) द्विसमयस्थितिक-अनेक एक २ परमाणु आदि से लेकर अनेक अनंताणुक स्कंध पर्यन्त समस्त अवक्तव्यक ये तीन भंग बहुवचनान्त हैं।

दो २ भंगों के संयोग से प्रथम चतुर्भंगी इस प्रकार से बनती है—
(१) आनुपूर्वी अनानुपूर्वी (२) आनुपूर्वी अनानुपूर्वियां (३) आनुपूर्वियां

रना २६ भंग अर्थात् यद्यु समञ्जसा लोभये. "से तं णेगमववहाराणं भंगो-
वदंसणया" नैगमव्यवहार नयसंमत भंगोपदर्शनतानुं स्वल्प आ प्रकारनुं
३, आ सूत्रपाठ पर्यन्तनुं समस्त कथन अर्थात् अर्द्धं करतुं लोभये. आ
प्रकारनुं भंगोपदर्शनतानुं स्वल्प समञ्जसुं अर्थात् आ प्रकारना २६ भंग भन्ने छे—

अेकवचनान्त त्रयु भंगो—

(१) त्रिसमयस्थितिक-अेक परमाणु द्रव्यथी लधने अनंताणुक स्कंध
पर्यन्तना द्रव्यविशेषरूप-आनुपूर्वी (२) अेक समयस्थितिक अेक परमाणु द्रव्य
आदिथी लधने अनंत आणुक स्कंध पर्यन्तना द्रव्यविशेष रूप आनुपूर्वी
(३) अे समयनी स्थितिवाणा अेक परमाणु द्रव्य आदिथी लधने अनंताणुक
स्कंध पर्यन्तना द्रव्यविशेष रूप अवक्तव्यक बहुवचनान्त त्रयु भंगो—

(१) त्रयु समयनी स्थितिवाणां अनेक अेक अेक परमाणु रूप द्रव्येथी
लधने अनेक अनंताणुक स्कंध पर्यन्तना द्रव्यविशेष आनुपूर्वीअे। छे.

(२) अेक समयनी स्थितिवाणां अेक अेक परमाणु रूप द्रव्येथी लधने
अनेक अनंताणुक स्कंधे। पर्यन्तना द्रव्यविशेषे अनानुपूर्वीअे। छे.

(३) अे समयनी स्थितिवाणां अनेक अेक अेक परमाणु रूप द्रव्येथी
लधने अनेक अनंताणुक स्कंधे। पर्यन्तना द्रव्यविशेषे अवक्तव्यके रूप छे.
अे पदोना संयोगथी पडेली चतुर्भंगी (चारभांगा) नीचे प्रमाणे भन्ने छे—

(१) आनुपूर्वी अनानुपूर्वी, (२) आनुपूर्वी अनानुपूर्वीअे, (३) आनु-

અનાનુપૂર્વી, (૪) આનુપૂર્વિયાં અનાનુપૂર્વિયાં । દ્વિતીય ચતુર્ભંગી-ઇસ પ્રકાર સે હૈ (૧) આનુપૂર્વી અવક્તવ્યક (૨) આનુપૂર્વી બહુ અવક્તવ્યક (૩) આનુપૂર્વિયાં એક અવક્તવ્યક (૪) અનેક આનુપૂર્વિયાં અનેક અવક્તવ્યક । તૃતીય ચતુર્ભંગી ઇસ પ્રકાર સે હૈ-(૧) અનાનુપૂર્વી અવક્તવ્યક (૨) અનાનુપૂર્વી બહુ અવક્તવ્યક (૩) અનાનુપૂર્વિયાં એક અવક્તવ્યક (૪) અનેક આનુપૂર્વિયાં અનેક અવક્તવ્યક । ઇસ પ્રકાર દો ૨ કે સંયોગ પક્ષ મેં દ્વિસંયોગી ભંગ ઇન એકવચનાન્ત બહુવચનાન્ત આનુપૂર્વી આદિ પદોં કે યે ૧૨ ભંગ હૈ । તીન ૨ કે સંયોગ સે જો આઠ ભંગ બનતે હૈ વે ઇસ પ્રકાર સે હૈ-(૧) એક આનુપૂર્વી એક અનાનુપૂર્વી એક અવક્તવ્યક, (૨) એક આનુપૂર્વી એક અનાનુપૂર્વી અનેક અવક્તવ્યક (૩) એક આનુપૂર્વી અનેક અનાનુપૂર્વિયાં એક અવક્તવ્યક (૪) એક આનુપૂર્વી અનેક અનાનુપૂર્વી અનેક અવક્તવ્યક (૫) અનેક આનુપૂર્વિયાં એક અનાનુપૂર્વી એક અવક્તવ્યક, (૬) અનેક આનુપૂર્વિયાં એક અનાનુપૂર્વી અનેક અવક્તવ્યક (૭) અનેક આનુપૂર્વિયાં અનેક અનાનુપૂર્વિયાં એક અવક્તવ્યક (૮) અનેક આનુપૂર્વિયાં અનેક અનાનુપૂર્વિયાં અનેક અવક્ત-

પૂર્વીઓ અનાનુપૂર્વી અને (૪) આનુપૂર્વીઓ અનાનુપૂર્વીઓ.

એ પદોના સંયોગથી બીજી ચતુર્ભંગી નીચે પ્રમાણે બને છે-

(૧) આનુપૂર્વી અવક્તવ્યક, (૨) આનુપૂર્વી ઘણા અવક્તવ્યકો, (૩) આનુપૂર્વીઓ એક અવક્તવ્યક, (૪) અનેક આનુપૂર્વીઓ અનેક અવક્તવ્યકો.

એ પદોના સંયોગથી ત્રીજી ચતુર્ભંગી આ પ્રમાણે બને છે-

(૧) એક આનુપૂર્વી એક અવક્તવ્યક, (૨) એક અનાનુપૂર્વી ઘણા અવક્તવ્યકો, (૩) ઘણી અનાનુપૂર્વી એક અવક્તવ્યક (૪) ઘણી અનાનુપૂર્વીઓ ઘણા અવક્તવ્યકો.

આ પ્રકારે એકવચનાન્ત અને બહુવચનાન્ત આનુપૂર્વી આદિ પદોનાં સંયોગથી કુલ ૧૨ દ્વિસંયોગી ભંગો થાય છે. હવે ત્રણ પદોના સંયોગથી જે ૮ ભંગો બને છે, તે પ્રકટ કરવામાં આવે છે,

(૧) એક આનુપૂર્વી એક અનાનુપૂર્વી અને એક અવક્તવ્યક (૨) એક આનુપૂર્વી, એક અનાનુપૂર્વી અને ઘણા અવક્તવ્યકો (૩) એક આનુપૂર્વી, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ અને એક અવક્તવ્યક (૪) એક આનુપૂર્વી, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ અને અનેક અવક્તવ્યકો (૫) અનેક આનુપૂર્વીઓ, એક અનાનુપૂર્વી અને એક અવક્તવ્યક (૬) અનેક આનુપૂર્વીઓ, એક અનાનુપૂર્વી અને અનેક અવક્તવ્યકો (૭) અનેક આનુપૂર્વીઓ, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ અને એક અવક્તવ્યક (૮) અનેક આનુપૂર્વીઓ, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ

मूलम्—से किं तं समोयारे? समोयारे णेगमववहाराणं
आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समो-
यरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वगदव्वेहिं
समोयरंति? एवं तिणिणवि सट्ठाणे समोयरंति भाणियच्चं से तं
समोयारे ॥सू० १३०॥

छाया—अथ कोऽसौ समवतारः? नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि कुत्र
समवतरन्ति? किमानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति
व्यक्त । इस प्रकार ये सब भंग २६ हो जाते हैं । इनकी विशेष जान-
कारी के लिये द्रव्यानुपूर्वी प्रकरणगत भंगोपदर्शनता को देखना
चाहिये । ॥सू० १२९॥

“ से किं तं समोयारे ? ” इत्यादि ।

शब्दार्थः—(से किं तं समोयारे) हे भदंत ! पूर्वप्रक्रान्त समवतार का
क्या स्वरूप है ?—

उत्तर—(समोयारे) पूर्वप्रक्रान्त (पहले प्रारंभ किया हुआ) समवतार
का स्वरूप इस प्रकार से है ।—(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं
समोयरंति) नैगमव्यवहारनयसंभत जो अनेक आनुपूर्वी द्रव्य हैं उनका
अन्तर्भाव कहां होता है ? इस प्रकार के चिन्तन प्रकार का जो उत्तर
देता है वही समवतार है । यह विचार इस प्रकार से होना है कि

अने अनेक अव्यक्तव्यक्तो आ प्रकारे असंयोगी ६, द्विकसंयोगी १२ अने
त्रिकसंयोगी ८ लांगाओ मणीने कुल २६ लांगा यथं ज्ञय छे. तेमना विषे
वधु भाडिती नेगववी डोय तो द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां ने लंगोपदर्शनतां
निश्चय करवामां आव्युं छे ते वांयी जवानी ललाभय करवामां आवे छे. ॥सू १२६॥

“ से किं तं समोयारे ” इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—(से किं तं समोयारे?) हे भगवन् ! पूर्वप्रक्रान्त (अनी-
पनिधिही कालानुपूर्वीना अेक प्रकार ३५) समवतारतुं स्वयं केवुं छे ?

उत्तर—(समोयारे) पूर्वप्रक्रान्त समवतारतुं स्वयं आ प्रकारतुं छे—
(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति) नैगमव्यवहार नयसंभत
ने अनेक आनुपूर्वी द्रव्यो छे तेमना अन्तर्भाव (समावेश) कथां धाय छे ?
शुं स्वस्थानमां तेमना समावेश थाय छे के परस्थानमां धाय छे ? आ
प्रकारनी विचारधारानो ने उत्तर देवो तेनुं नाम समवतार छे. अही आ

અવક્તવ્યકદ્રવ્યેષુ સમવતરન્તિ ? एवं त्रीण्यपि स्वस्थाने समवतरन्ति इति भणित-
व्यम् । स एष समवतारः ॥सू० १३०॥

ટીકા—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ । અશીતિતમસૂત્રે દ્રવ્યાનુપૂર્વીવદસ્ય સૂત્રસ્ય
વ્યાખ્યા વોધ્યા ॥સૂ० ૧૩૦॥

નૈગમવ્યવહારનયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય (કિં આણુપુઠ્વીદવ્વેહિં
સમોયરંતિ, અણાણુપુઠ્વી દવ્વેહિં-સમોયરંતિ, અવક્તવ્યગદવ્વેહિં સમો-
યરંતિ) કયા આનુપૂર્વી દ્રવ્યોં મેં અન્તર્ભૂત હોતે હેં ? યા અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોં
મેં અન્તર્ભૂત હોતે હેં ? યા અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં મેં અન્તર્ભૂત હોતે હેં ? (એવં
તિણિગવિ સદ્ગણે સમોયરંતિ ઇતિ ભાણિયવં)

ઉત્તર-નૈગમવ્યવહારનયસંમત જો આનુપૂર્વી દ્રવ્ય હેં વે આનુપૂર્વી
દ્રવ્યોં મેં હી સમાવિષ્ટ નહીં હોતે હેં ઓર ન અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં મેં
સમાવિષ્ટ હોતે હેં । હસી પ્રકાર સે જિતને મી નૈગમવ્યવહારનયમાન્ય
અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય હેં વે અપની જાતિ મેં અન્તર્ભૂત હોતે હેં, મિન્ન જાતિ
મેં નહીં । નૈગમવ્યવહારનયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્ય મી અવક્તવ્યક
દ્રવ્યોં મેં હી અન્તર્ભૂત હોતે હેં અન્ય આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોં મેં નહીં ।
હસ પ્રકાર આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી ઓર અવક્તવ્યક યે તીનોં મી દ્રવ્ય

પ્રકારની વિચારધારા ચાલે છે-નૈગમવ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી
દ્રવ્ય (કિં આણુપુઠ્વીદવ્વેહિં સમોયરંતિ, અણાણુપુઠ્વીદવ્વેહિં સમોયરંતિ, અવક્ત-
વ્યગદવ્વેહિં સમોયરંતિ ?) શુ' આનુપૂર્વી દ્રવ્યોંમાં અન્તર્ભૂત થાય છે ? કે અના-
નુપૂર્વી દ્રવ્યોંમાં અન્તર્ભૂત થાય છે ? કે અવક્તવ્યક દ્રવ્યોંમાં અન્તર્ભૂત થાય છે ?

ઉત્તર-(એવં તિણિગ વિ સદ્ગણે સમોયરંતિ ઇતિ ભાણિયવં) નૈગમવ્યવહાર
નયસંમત જે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોં છે તેઓ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોંમાં જ સમાવિષ્ટ
થાય છે, તેઓ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોંમાં સમાવિષ્ટ થતાં નથી અને અવક્તવ્યક
દ્રવ્યોંમાં પણ સમાવિષ્ટ થતાં નથી. એજ પ્રમાણે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત
જેટલાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોં છે, તેઓ પણ પોતાની જાતિમાં જ (અનાનુપૂર્વી
દ્રવ્યોંમાં જ) સમાવિષ્ટ થાય છે, તેમનાથી ભિન્ન એવાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યોંમાં
અથવા અવક્તવ્યક દ્રવ્યોંમાં સમાવિષ્ટ થતાં નથી એજ પ્રમાણે નૈગમવ્યવહાર
નયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્યોં પણ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોંમાં જ સમાવિષ્ટ થાય
છે-અન્ય આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોંમાં સમાવિષ્ટ થતાં નથી આ પ્રકારે આનુ-
પૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક, આ ત્રણે પ્રકારનાં દ્રવ્યોં પોતપોતાના

मूलम्—से किं तं अणुगमे? अणुगमे णवविहे पणत्ते, तं जहा—संतपयपरूवणया जाव अप्पावहुं चैव। णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ३? नियमा तिण्णि वि अत्थि। णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ३? तिण्णि वि नो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, नो अणंताइं ॥ सू० १३१ ॥

छाया—अथ कोऽसावनुगमः? अनुगमो नवविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सत्पद-प्ररूपणता यावदल्पवहुत्वं चैव। नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीं द्रव्याणि किं सन्ति न

अपने २ स्थान रूप जाति में हीं अन्तर्भूत होते हैं इस सूत्र की व्याख्या के लिये देखो पीछे का ८० वां सूत्र ॥ ॥ सू० १३० ॥

“ से किं तं अणुगमे ” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं अणुगमे?) हे भदंत ! अनुगम का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(अणुगमे णवविहे पणत्ते) अनुगम नौ प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) जैसे (संतपयपरूवणया, जाव अप्पावहुं चैव) संतपद-प्ररूपणता से लेकर अल्पबहुत्व तक—

अर्थात्—(१) सत्पदप्ररूपणता, (२) द्रव्यप्रमाण, (३) क्षेत्र (४) स्पर्शना (५) काल (६) अन्तर, (७) भाग (८) भाव (९) अल्पबहुत्व। विद्यमान पदार्थ विषयक पद की प्ररूपणता का नाम सत्पदप्ररूपणता है। इस में (णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ३) जो

स्थान इय जातिमां न अन्तर्भूत थाय छे. आ सूत्रनी व्याख्या माटे पाछण ८०सुं सूत्र वांची नवुं जेधये ॥सू०१३०॥

“ से किं तं अणुगमे ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं अणुगमे?) हे लगवन् ! अनुगमनुं स्वइय केवुं छे?

उत्तर—(अणुगमे णवविहे पणत्ते) अनुगम नव प्रकारेणो दह्यो छे. (तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—

(संतपयपरूवणया, जाव अप्पावहुं चैव) संतपद प्ररूपणताथी लधने अल्पबहुत्व पर्यन्तना नव प्रकारे अहीं अडुणु करवा जेधये. ते नव प्रकारे हुवे गणुववामां आवे छे—

(१) सत्पद प्ररूपणता, (२) द्रव्यप्रमाण, (३) क्षेत्र, (४) स्पर्शना, (५) काल, (६) अन्तर, (७) भाग (८) भाव अने (९) अल्पबहुत्व.

विद्यमान पदार्थविषयक पदनी प्ररूपणतानुं नाम सत्पदप्ररूपणता छे. तेमां (णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?) केधयेवे। प्रश्न

સન્તિ? નિયમાત્ ત્રીણ્યપિ સન્તિ । નૈગમવ્યવહારયોરાનુપૂર્વી દ્રવ્યાણિ કિં સંખ્યે-
યાનિ અસંખ્યેયાનિ અનન્તાનિ? ત્રીણ્યપિ નો સંખ્યેયાનિ, અસંખ્યેયાનિ, નો
અનન્તાનિ ॥મુ. ૧૩૧॥

ટીકા—‘સે કિં તં’ इत्यादि—

શિષ્યઃ પૂચ્છતિ—અથ કોઽસ્માવનુગમઃ? इति । उत्तरयति—अनुगमो नवविधः
प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सत्पदप्ररूपणतेत्याद्यल्यबहुत्वान्तः । तथाहि—सत्पदप्ररूपणता १,
द्रव्यप्रमाणं २, क्षेत्रं ३, स्पर्शना ४, कालः ५, अन्तरम् ६, भागः ७, भावः ८, अल्प-
बहुत्वं ९ चेति । तत्र—सत्पदप्ररूपणतां निरूपयितुमाह—‘णैगमव्यवहाराणं’ इत्यादि-
नैगमव्यवहारसम्मतान्याऽऽनुपूर्वी द्रव्याणि किं सन्ति ? न सन्ति वा ? एवमना-
नुपूर्ववक्तव्यकविषयेऽपि प्रश्नो बोध्यः । उत्तरयति—नियमात् त्रીण्यपि=आनु-

कोई ऐसा प्रश्न करते हैं कि “नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य
हैं या नहीं हैं” इसी प्रकार का प्रश्न अनानुपूर्वी द्रव्यों और अवक्त-
व्यक द्रव्यों के भी विषय में होता है—तब इसका उत्तर—(णियमा तिण्णि
वि अत्थि) “नियमतः ये तीनों द्रव्य हैं” ऐसा दिया जाता है । (णैगमवव-
हाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ३?)
द्रव्यप्रमाण में आनुपूर्वी आदि पदों द्वारा जिन द्रव्यों को कहा जाता
है उनकी संख्या कितनी है इसका विचार होता है—जिसे इस पाठ
द्वारा वक्त किया गया है—प्रश्नकर्ता पूछता है कि नैगमव्यवहार-
नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं, या असंख्यात हैं या
अनंत हैं? इसी प्रकार का प्रश्न प्रश्नकर्ता का अनानुपूर्वी और
अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी है । इसका उत्तर सूत्रकार ने (तिण्णि

પૂછે કે “નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે કે નથી? અનાનુ-
પૂર્વી દ્રવ્યો છે કે નથી? અવક્તવ્યક દ્રવ્યો છે કે નથી?” તે તે પ્રશ્નનો
ઉત્તર આ પ્રમણે આપવામાં આવે છે—(ણિયમા તિણ્ણિ વિ અત્થિ) “આ
ત્રણે દ્રવ્યો અવશ્ય વિદ્યમાન છે. આ પ્રકારે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોના
અસ્તિત્વ વિષયક જે પ્રશ્નણા કરવામાં આવે છે તેનું નામ સત્પદપ્રરૂપણતા છે.

હવે દ્રવ્યપ્રમાણનું સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવે છે—જે દ્રવ્યોને આનુપૂર્વી
આદિ રૂપે ઓળખવામાં આવે છે, તે દ્રવ્યોની સંખ્યાનો દ્રવ્યપ્રમાણમાં
વિચાર કરવામાં આવે છે એજ વાતને નીચેના સૂત્રપાઠ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે—

પ્રશ્ન—(ણેગમવવહારાણં આણુપુવ્વીદવ્વાઈં કિં સંખિજ્જાઈં, અસંખિજ્જાઈં,
અણંતાઈં?), નૈગમવ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શુ’ સંખ્યાત
છે, અસંખ્યાત છે, કે અનંત છે? આ પ્રકારનો પ્રશ્ન અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો
અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો વિષે પણ પૂછવો જોઈએ.

पूर्वनानुपूर्व्यवक्तव्यकाभिधेयानि त्रीण्यपि सन्ति । अथ द्रव्यप्रमाणं निरूपयति-
'णोगमव्यवहाराणं' इत्यादि । नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्ये-
यानि असंख्येयानि अनन्तानि ? एवमनानुपूर्वीद्रव्यावक्तव्यरुद्रव्यविषयेऽपि
प्रश्नो बोध्यः । उत्तरयति-त्रीण्यपि नो संख्येयानि नो अनन्तानि, किन्तु असं-
ख्येयानि । अत्रेदं बोध्यम्-द्रवादिसमयस्थितिकानि परमाण्वादि द्रव्याणि यद्यपीद
ल्लोके प्रत्येकमनन्तानि, तथापि समयत्रयलक्षणस्थितिरेकैव, कालस्य प्राधान्याद्
द्रव्यबहुत्वस्य गुणीभूतत्वाच्च । एवं च त्रिसमयस्थितिकैरनन्तैरपि एकमेवानुपूर्वी
द्रव्यम् । इत्थमेव चतुःसमयादि स्थितिकानन्तेषु यावद्दशसमयसंख्येयसमया

वि नो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, नो अणंताइं) यों दिया है । वे कहते हैं
कि ये तीनों ही द्रव्य न संख्यात हैं और न अनंत हैं, किन्तु असं-
ख्यात हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि-तीन समय की स्थितिवाले
प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य यद्यपि इसलोक में अनंत हैं तो भी उनकी
समयत्रयरूपस्थिति एक ही है । क्योंकि काल की यहाँ प्रधानता है और
द्रव्यबहुत्व की गौणता है । इसलिये समयत्रय की स्थितिवाले जितने
भी वे परमाणु आदि अनंत द्रव्य हैं वे सब अपनी २ तीन समय की
स्थितिकी अपेक्षा से एक ही आनुपूर्वी द्रव्य रूप हैं । इसी प्रकार से
यद्यपि चार समय आदि की स्थितिवाले प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य
अनंत हैं, यावत् दश समय की स्थितिवाले, संख्यात समय की

उत्तर-(तिणिण वि नो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, नो अणंताइं) आनुपूर्वी
आदि त्रये प्रकारना द्रव्ये संख्यात पणु नथी, अनंत पणु नथी, परन्तु
असंख्यात छे. आ कथनने बावार्थं ओ छे के त्रयु समयनी स्थितिवाणां
प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्ये ने के आ लोकमां अनंत छे, छतां पणु तेमनी
समयत्रय इप स्थिति ओक न छे, कारणु के काणनी अही प्रधानता शङ्क
करवानी छे अने द्रव्यबहुत्वनी गौणता समजवानी छे तेथी त्रयु समयनी
स्थितिवाणां नेटलां परमाणुथी लछने अनंत पर्यन्तना पुद्गल परमाणुवाणां
स्कन्ध इप द्रव्ये छे, तेओ अधां पोतपोतानी त्रयु समयनी स्थितिनी
अपेक्षाओ ओक न आनुपूर्वी द्रव्य इप छे ओन प्रमाणु ने के चार आदि
समयनी स्थितिवाणां प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य अनंत छे, इस समय
पर्यन्तनी स्थितिवाणां, संख्यात समयनी स्थितिवाणां अने असंख्यात
समयनी स्थितिवाणां परमाणु आदि द्रव्ये अनंत छे, छतां पणु तेओ
पोतपोतानी चार आदि समय, इस पर्यन्तना समय, संख्यात अने असं-

संख्येयसमयस्थितिकानन्तेषु एकैकेषामेकैकानुपूर्वीत्वं बोध्यम् । द्रव्यस्यानन्त-
समयस्थितिरेव न भवति तथाविधस्व-भावत्वात् । एवमेव अनानुपूर्वीं द्रव्याणि
अवक्तव्यकद्रव्याणि चाप्यसंख्येयानि बोध्यानि । ननु एकसमयस्थितिकस्य द्रव्यस्य
अनानुपूर्वीत्वं, द्विसमयस्थितिकस्य द्रव्यस्यावक्तव्यकत्वमुच्यते, तत्र यद्यपि लोके

स्थितिवाले, असंख्यात समय की स्थितिवाले परमाणु आदि द्रव्य अनंत
हैं तो भी वे अपनी २ चार आदि समय, दश समय, संख्यात समय,
और असंख्यात समयरूप स्थिति को एक होने की अपेक्षा से एक एक
आनुपूर्वीरूप हैं । अर्थात् चार आदि समय की स्थितिवाले जितने भी
अनन्त परमाणु द्रव्य एवं अनन्त स्कंध द्रव्य हैं वे अपनी चार समय
की स्थिति को एक होने के कारण एक आनु पूर्वी द्रव्य हैं । इसी प्रकार
से दश आदि समयोंकी स्थितिवाले अनंत परमाणु द्रव्य से लेकर अनंत
परमाणुक्त स्कंधों में भी एक २ को एक २ आनुपूर्वीरूपता अपनी २
स्थितिको एक होने की अपेक्षा से जानना चाहिये । द्रव्य की स्थिति
अनंत समय की नहीं होती है, क्योंकि ऐसा कोई द्रव्य ही नहीं है कि
जिसकी स्थिति अनन्त समय की हो । इसलिये आनुपूर्वी द्रव्यों को
असंख्यात माना गया है । इसी प्रकार से अनानुपूर्वी द्रव्य और अव-
क्तव्यक द्रव्य भी असंख्यात २ हैं ऐसा जानना चाहिये ।

शंका-एक समय की स्थितिवाला द्रव्य अनानुपूर्वी है और दो
समय की स्थितिवाला द्रव्य अवक्तव्यक है । इनमें यद्यपि लोक में एक

ख्यात समय रूप स्थिति एक सरणी डोवाने कारणे एक एक आनुपूर्वी
रूप छे. जेटले के चार समयनी स्थितिवाणां जेटलां अनंत परमाणु द्रव्यो
अने अनंत स्कंध द्रव्यो छे. तेजो चार समयनी एक सरणी स्थितिवाणां
डोवाने कारणे एक आनुपूर्वी द्रव्यरूप छे जेज प्रमाणे पांचथी लधने इअ
पर्यन्तना समयनी स्थितिवाणां, संख्यात समयनी स्थितिवाणां अने
असंख्यात समयनी स्थितिवाणां अनंत परमाणु द्रव्योथी लधने अनंत
परमाणु स्कंधोमां पषु, ते प्रत्येकनी चेतपोतानी स्थितिनी एकैरूपताने
कारणे ते प्रत्येकमां पषु एक एक आनुपूर्वी रूपता समजवी जेधजे द्रव्यनी
स्थिति अनंत समयनी डोती नथी-जेटले के जेजुं डोई पषु द्रव्य नथी
के जेनी स्थिति अनंत समयनी डोय तेथी आनुपूर्वी द्रव्योने असंख्यात
ज मानवामां आवेस छे. जेज प्रमाणे अनानुपूर्वी द्रव्यो पषु असंख्यात
ज छे अने अवक्तव्यक द्रव्यो पषु असंख्यात ज छे जेम समजवुं.

शंका-जेक समयनी स्थितिवाणुं द्रव्य अनानुपूर्वी छे, अने जे समयनी
स्थितिवाणुं द्रव्य अवक्तव्यक से जे के लोकमां जेक समयनी स्थितिवाणां

एकसमयस्थितिकानि द्विसमयस्थितिकानिच परमाण्वादिद्रव्याणि प्रत्येकमनन्तानि सन्ति, तथापि पूर्वोक्तरीत्या एकसमयलक्षणया द्विसमयलक्षणयाश्च स्थितिरेकैकरूपत्वाद् द्रव्यबाहुल्यस्य च गुणीभूत्वादेकमेवानानुपूर्वीद्रव्यमेकमेव चावक्तव्यकद्रव्यं वक्तुमुचितं, न तु प्रत्येकमसंख्येयम् । ननु यदि च द्रव्यभेदेन भेदोऽङ्गीक्रियते तर्हि प्रत्येकमनन्तं वक्तुमुचितम्, एकसमयस्थितीनां द्विसमयस्थितीनां च द्रव्याणां

एक समय की स्थितिवाले और दो समय की स्थितिवाले परमाणु आदि प्रत्येक द्रव्य अनन्त हैं, तो भी पूर्वोक्त रीति से एक समय की और दो समय की स्थिति को एक रूप होने से और द्रव्यबाहुल्य को गौण होने से एक ही अनानुपूर्वी द्रव्य और एक ही अवक्तव्यक द्रव्य है ऐसा कथन करना ही-उचित है । प्रत्येक असंख्यात है ऐसा कहना उचित नहीं है । शंकाकार का तात्पर्य यह है कि कालानुपूर्वी में द्रव्य बाहुल्य गौण माना गया है और काल प्रधान-इसलिये एकसमय की स्थितिवाले जितने द्रव्य होंगे वे सब अपनी अपनी एक २ समय की स्थिति में एकरूपता होने के कारण एक ही अनानुपूर्वी द्रव्य कहे जावेंगे भिन्न २ असंख्यात अनानुपूर्वी द्रव्य नहीं । इस प्रकार जितने भी दो समय की स्थितिवाले द्रव्य होंगे वे सब अपनी २ दो २ समय की स्थिति को एक रूप होने से एक ही अवक्तव्यक द्रव्य माने जावेंगे भिन्न भिन्न असंख्यात अवक्तव्यक द्रव्य नहीं । यदि द्रव्य के भेद से इनमें भेद माना जावे तो फिर

अने जे समयनी स्थितिवाणां परमाणु आदि प्रत्येक द्रव्य अनन्त छे, छतां पक्ष पूर्वोक्त रीते जेक समयनी अने जे समयनी स्थितिनी जेकरूपता होवाथी अने द्रव्यबाहुल्यनी गौणता होवाथी “जेक ज अनानुपूर्वी” द्रव्य अने जेक ज अवक्तव्यक द्रव्य छे,” जेवुं कथन करवुं उचित गण्यत प्रत्येक असंख्यात छे, जेवुं कथन करवुं उचित लागतुं नथी शंकाकरनारना कथनना भावार्थ नीचे प्रभाषे छे- कालानुपूर्वीमां द्रव्यबाहुल्यने गौण मानवामां आण्युं छे अने कालने प्रधान मानवामां आवेत्त छे, तेथी जेक समयनी स्थितिवाणां जेटलां द्रव्यो हशे, तेमनामां जेक जेक समयनी स्थिति इप जेकता होवाने कारणे, जेक ज अनानुपूर्वी द्रव्य इप गण्यवा जेधजे- भिन्न भिन्न असंख्यात अनानुपूर्वी द्रव्यो इप गण्यवा जेधजे नहीं जेज प्रभाषे जे समयनी स्थितिवाणां जेटलां द्रव्यो हशे ते प्रधाने पक्ष, यात-यातानी जणजे समयनी स्थितिनी जेकरूपताने कारणे, जेक ज अवक्तव्यक द्रव्य इप मानवा पठशे-भिन्न भिन्न असंख्यात अवक्तव्यक द्रव्यो इप मानी

પ્રત્યેકમાનન્યાદિતિચેદાહ-લોકે હિ અસંખ્યેયા અવગાહભેદાઃ સન્તિ । એવં ચ
 એકસમયસ્થિતિકદ્વિસમયસ્થિતિકયોર્દ્રવ્યયોઃ એકેકસ્ય અવગાહનાભેદેન ભિન્ન-
 તયા વિવક્ષિતત્યાત્પ્રત્યેકમસંખ્યેયં ધોધ્યમ્ । પ્રત્યવગાહંચ એકસમયસ્થિતિક-
 દ્વિસમયસ્થિતિકાનેકદ્રવ્યસંભવાદનાનુપૂર્વ્યવક્તવ્યકદ્રવ્યાણામાધારક્ષેત્રભેદાત્પ્રત્યેક-
 મસંખ્યેયત્વં ન વિરુદ્ધ્યતે ॥૩૧૧॥

इस प्रकार से तो इनमें प्रत्येक में असंख्यातता न कहकर यहाँ सूत्रकार-
 को अनंतता प्रत्येक में कहना उचित था क्यों कि एक समय की
 स्थितिवाले द्रव्यों में और दो समय की स्थितिवाले द्रव्यों में प्रत्येक
 द्रव्य अनन्त है ?

उत्तर-लोक में अवगाह भेद असंख्यात हैं । इसलिये एक समय
 की स्थितिवाले जितने द्रव्य हैं और दो समय की स्थितिवाले जितने
 द्रव्य हैं उनमें से एक २ द्रव्य में अवगाहना के भेद से भिन्नता है ।
 इस भिन्नता की विवक्षा की वजह से प्रत्येक द्रव्य असंख्यात है-ऐसा
 जानना चाहिये । हर एक अवगाहमें एक समय की स्थितिवाले और दो
 समय की स्थितिवाले अनेक द्रव्यों का रहना संभवित होता है । इस-
 लिये असंख्य अवगाह में अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के रहने
 के कारण उनके आधारभूत क्षेत्र में भेद हो जाता है । इसलिये इनमें

શકાશે નહીં જે દ્રવ્યના ભેદને લીધે તેમની વચ્ચે ભેદ માનવામાં આવે, તે
 તે પ્રત્યેકમાં અસંખ્યાતતા આવવાને બદલે અનંતતા જ આવવાને પ્રસંગ
 ઉપસ્થિત થશે તેથી સૂત્રકારે અહીં જે અસંખ્ય તતા કહી છે તેને બદલે
 પ્રત્યેકમાં અનંતતા જ કહેવી જોઈતી હતી, કારણ કે એક સમયની સ્થિતિ-
 વાળાં દ્રવ્યોમાં અને બે સમયની સ્થિતિવાળાં દ્રવ્યોમાં-એ પ્રત્યેકમાં-
 અનંતતા જ હોય છે.

ઉત્તર-લોકમાં અવગાહભેદ અસંખ્યાત છે તેથી એક સમયની સ્થિતિ-
 વાળાં બેટલાં દ્રવ્યો છે અને બે સમયની સ્થિતિવાળાં બેટલાં દ્રવ્યો છે,
 તેમાંના પ્રત્યેક દ્રવ્યમાં અવગાહનાના ભેદને લીધે ભિન્નતા છે. આ ભિન્નતાની
 અપેક્ષાએ પ્રત્યેક દ્રવ્ય અસંખ્યાત છે, એમ સમજવું જોઈએ. દરેક
 અવગાહમાં એક સમયની સ્થિતિવાળાં અને બે સમયની સ્થિતિવાળાં અનેક
 દ્રવ્યોની વિદ્યમાનતા (રહેવાનું) સંભવિત હોય છે. તેથી અસંખ્ય અવગાહમાં
 અનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના રહેવાને કારણે તેમના આધારભૂત ક્ષેત્રમાં
 ભેદ પડી જાય છે તેથી તે દ્રવ્યોમાં-પ્રત્યેકમાં-અસંખ્યાતતાનું કથન વિરુદ્ધ

अथ क्षेत्रद्वारं स्पर्शनाद्वारं च वक्तुमाह—

मूलम्—गेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा? असंखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा? सव्वलोए वा होज्जा? आणुपुव्वीदव्वाइं एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइ भागे वा होज्जा, संखेज्जेसु वा, भागेषु होज्जा, असंखेज्जेसु वा भागेषु होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा? नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा । एवं अणाणुपुव्वीदव्वाइं । आएसंतरेण वा सव्वपुच्छासु

प्रत्येक में असंख्यातता का कथन विरुद्ध नहीं है। निर्दोष है। तात्पर्य कहने का यह है कि लोक में एक समय की स्थितिवाले द्रव्यों को रहने के स्थान असंख्यात है क्योंकि लोकाकाश स्वयं असंख्यात प्रदेशी है। इन द्रव्यों को रहने का एक ही एक प्रदेश रूप या दो प्रदेश रूप आधार स्थान नहीं है। अतः एक प्रदेश रूप और दो आदि रूप आधार अनेक होने के कारण उन असंख्यात आधार रूप स्थानों में ये प्रत्येक द्रव्य असंख्यात रूप में रहते हैं इसलिये ये प्रत्येक असंख्यात ही हैं अतः भिन्न २ स्थानों में रहे हुए इन एक समय की और दो समय की स्थिति वाले द्रव्यों में प्रत्येक में असंख्यातता का कथन निर्दोष है। ॥सू०१३१॥

पडुत्तुं नथी, पणुं निर्दोषं कथनं इयं न गण्णी शक्यं छे. आ कथननो बावार्थं अे छे के लोकमां अेक समयनी स्थितिवाणां द्रव्येने तथा अे समयनी स्थितिवाणां द्रव्येने रहेवानां स्थान असंख्यात छे, कारणे के लोकाकाश पोते न असंख्यात प्रदेशोवाणुं छे आ द्रव्येने रहेवानुं अेक न प्रदेश इयं अथवा अे प्रदेशइयं आधारस्थान होत्तुं नथी तेथी अेक प्रदेशइयं अने अे प्रदेश आदि इयं आधार अनेक होवाने कारणे ते असंख्यात आधार इयं स्थानोमां ते प्रत्येक द्रव्य असंख्यात इये रहे छे. (तेथी ते प्रत्येक असंख्यात न छे. आ रीते भिन्न भिन्न स्थानोमां रहेवा अेक समयनी अने अे समयनी स्थितिवाणां ते प्रत्येक द्रव्यमां असंख्यातनुं कथनं होपरहितं न छे) ॥सू०१३१॥

હોજ્જા । એવં અવત્તવ્વગદ્વાણિ વિ જહા સ્વેત્તાણુપુઠ્ઠીણ । ફુસણા
કાલાણુપુઠ્ઠીણ વિ તહા સ્વેવ ભાણિયવ્વા ॥સૂ૦ ૧૩૨॥

છાયા— નૈગમવ્યવહારયોઃ આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ અનાનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ અવક્તવ્યક-
દ્રવ્યાણિ લોકસ્ય કિં સંખ્યેયભાગે ભવન્તિ ? અસંખ્યેયભાગે ભવન્તિ ? સંખ્યેયેષુ
ભાગેષુ વા ભવન્તિ ? અસંખ્યેયેષુ ભાગેષુ વા ભવન્તિ ? સર્વલોકે વા ભવન્તિ ?
આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ એકં દ્રવ્યં પ્રતીત્ય સંખ્યેયભાગે વા ભવન્તિ, અસંખ્યેયભાગે
વા ભવન્તિ, સંખ્યેયેષુ વા ભાગેષુ ભવન્તિ ? અસંખ્યેયેષુ વા ભાગેષુ ભવન્તિ ?
દેશેને વા લોકે ભવન્તિ । નાનાદ્રવ્યાણિ પ્રતીત્ય નિયમાત્ સર્વલોકે ભવન્તિ ।
એવમનાનુપૂર્વીદ્રવ્યમ્ । આદેશાન્તરેણ વા સર્વપૃચ્છાસુ ભવન્તિ । એવમવક્તવ્યકદ્રવ્યા-
ણ્યપિ યથા ક્ષેત્રાનુપૂર્વ્યામ્ । સ્પર્શનાકાલાનુપૂર્વ્યામપિ તથૈવ મણિતવ્યા ॥સૂ૦ ૧૩૨॥

ટીકા—‘ ળેગમવ્વહારાણં ’ ઇત્યાદિ—

નૈગમવ્યવહારસમ્પત્તાનિ આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ લોકસ્ય કિં સંખ્યેયભાગે ભવન્તિ=
તિષ્ઠન્તિ ? ઇત્યાદિ પ્રશ્નઃ । ઉત્તરયતિ—‘ એકં દ્રવ્યં ’ ઇત્યાદિ । આનુપૂર્વીદ્રવ્યાણિ એકં

અથ સૂત્રકાર ક્ષેત્રદ્વાર ઓર સ્પર્શનદ્વાર કા કથન કરતે હૈ—

“ ળેગમવ્વહારાણં ” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(ળેગમવ્વહારાણં) નૈગમવ્યવહારનયમાન્ય (આણુપુઠ્ઠી
દ્વાઈ) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય (અણાણુપુઠ્ઠી દ્વાઈ) સમસ્ત અનાનુ-
પૂર્વી દ્રવ્ય (અવત્તવ્વગદ્વાઈ) ઓર સમસ્ત અવક્તવ્યક દ્રવ્ય (લોગસ્સ)
લોક કે (કિં) કયા (સંસ્થિજ્જહ ભાગે હોજ્જા) સંખ્યાત ભાગ મેં રહતે હૈ ?
(અસંસ્થિજ્જહ ભાગે હોજ્જા) યા અસંખ્યાત ભાગ મેં રહતે હૈ (સંસ્થેજ્જેસુ-
ભાગેસુ વા હોજ્જા) યા સંખ્યાત ભાગોં મેં રહતે હૈ ? (અસંસ્થેજ્જેસુ ભા-
ગેસુ વા હોજ્જા) યા અસંખ્યાત ભાગોં મેં રહતે હૈ ? (સ્વ્વલોપ વા હોજ્જા)
યા સમસ્ત લોક મેં રહતે હૈ ?

હવે સૂત્રકાર ક્ષેત્રદ્વાર અને સ્પર્શનદ્વારનું કથન કરે છે.—

“ ળેગમવ્વહારાણં ” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(ળેગમવ્વહારાણં) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (આણુપુઠ્ઠીદ્વાઈ)
સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો, (અણાણુપુઠ્ઠીદ્વાઈ) સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો,
(અવત્તવ્વગદ્વાઈ) અને સમસ્ત અવક્તવ્યક દ્રવ્યો (લોગસ્સ કિં સંસ્થિજ્જહ
ભાગે હોજ્જા) થું લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં રહે છે, (અસંસ્થિજ્જહ ભાગે
હોજ્જા) કે અસંખ્યાત ભાગમાં રહે છે, (સંસ્થેજ્જેસુ ભાગેસુ વા હોજ્જા) કે

द्रव्यं प्रतीत्य=आश्रित्य लोकस्य संख्येयभागे 'होज्जा' भवन्ति=तिष्ठन्ति, असंख्येयभागे वा तिष्ठन्ति, संख्येयेषु भागेषु वा तिष्ठन्ति, असंख्येयेषु भागेषु वा तिष्ठन्ति, देशोने वा लोके तिष्ठन्ति । अत्र ज्यादिसमयस्थितिकद्रव्यस्य संख्येयादिभागवर्तित्वं तत्तदवगाहसंभवाद् बोध्यम् । तथा-यदा ज्यादिसमयस्थितिकः सूक्ष्मपरिणामः स्कन्धो देशोने लोकेऽवगाहते, तदा एकस्य आनुपूर्वीद्रव्यस्य

उत्तर-(आणुपुव्वीदव्वाहं एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइ भागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा, असंखेज्जेसु वा भागेषु होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा) एक द्रव्य की अपेक्षा करके कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के संख्यात भाग में रहता है, कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के असंख्यात भाग में रहता है, कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य लोकके संख्यात भागों में रहता है और कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के असंख्यात भागों में रहता है । तथा कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य देशोने लोक में रहता है । यहाँ पर जो ज्यादि समय की स्थितिवाले द्रव्य का लोक के इन संख्यात आदि भागों में रहना कहा गया है वह उन २ भागों में अवगाह उनका संभवित है इस अपेक्षा से कहा गया है ऐसा जानना चाहिये । तथा-जिस समय ज्यादि समय की स्थितिवाला सूक्ष्म परिणाम युक्त स्कन्ध देशोने लोक में अवगाहित होता है-ठहरता है उस समय एक आनुपूर्वीद्रव्य देशोने लोकवर्ती होता है ऐसा समझना चाहिये ।

संख्यात लागोभां रडे छे, (असंखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा) के असंख्यात लागोभां रडे छे, (सव्वलोए वा होज्जा ?) के समस्त लोकभां रडे छे ?

उत्तर-(आणुपुव्वीदव्वाहं एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेषु वा होज्जा, असंखेज्जेसु वा भागेषु होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा) एक द्रव्यनी अपेक्षाअे विचार करवाभां आवे ते कौं अेक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यात लागभां रडे छे, कौं अेक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना असंख्यात लागभां रडे छे, कौं अेक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यात लागोभां रडे छे, तथा कौं अेक आनुपूर्वी द्रव्य देशोनेलोकभां रडे छे ।

अही " आनुपूर्वी द्रव्य (त्रणु आदि समयनी स्थितिवाणुं द्रव्य) लोकना संख्यात आदि लागोभां रडे छे. " अेवुं जे कथन करवाभां आव्युं छे तेनुं कारणु अे छे के ते संख्यात आदि उपयुक्त लागोभां तेनी अवगाहना संभवित होय छे. तथा जे समये त्रणु आदि समयनी स्थितिवाणो सूक्ष्म परिणामयुक्त स्कन्ध देशोनेलोकभां अवगाहित थाय छे-रडे छे-ते समये अेक आनुपूर्वी द्रव्य देशोनेलोकवर्ती होय छे, अेवुं समज्जुं जेधअे.

देशोनलोकवर्तित्वं भावनीयम् । ननु सम्पूर्णेऽपि लोके कस्मादिदं न तिष्ठति ? इति चेदुच्यते—सर्वलोकव्यापी अचित्तमहास्कन्ध एव भवति, स च सर्वलोकव्यापितया एकमेव समयमेव तिष्ठते, ततःपरं तदुपसंहारात् । न चैकसमयस्थितिकमानुपूर्वीद्रव्यं भवति, त्र्यादिसमयस्थितिकत्वेनैव तत्संभवात् । तादृशं द्रव्यं तु नियमादेकेनापि प्रदेशेनो न एव लोकेऽवगाहते । अतः त्र्यादिसमयस्थितिकद्रव्यस्य देशोनव्यापित्वं बोध्यम् । ननु—अचित्तमहास्कन्धस्यैकसमयस्थितिकत्वं नोपपद्यते,

शंकाः—आप जो सूक्ष्म परिणाम युक्त त्र्यादि समय की स्थितिवाले स्कन्ध रूप एक आनुपूर्वीद्रव्य को देशोन लोक व्यापी बतला रहे हो सो यह समस्त लोक में क्यों नहीं रहता है ?

उत्तरः—यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि सर्वलोक व्यापी अचित्त महास्कन्ध ही होता है और यह अचित्त महास्कन्ध सर्वलोक में व्यापक रूप से एक ही समय तक रहता है—बाद में उसका संकोच-उपसंहार-हो जाता है । एक समय की स्थितिवाला तो आनुपूर्वीद्रव्य होता नहीं है । वह तो त्र्यादि समय की स्थितिवाला ही होता है । अतः ऐसा जो द्रव्य होता है वह नियम से एक प्रदेश ऊन ही लोक में अवगाहित होता है । इसलिये त्र्यादि समय की स्थितिवाला जो द्रव्य होता है वह देशोनलोक व्यापी होता है ऐसा समझना चाहिये ।

शंका—आपने जो अचित्त महास्कन्ध को एक समय की स्थितिवाला प्रकट किया है, सो वह एक समय की स्थितिकता उसमें घटित नहीं

शंका—आप ने सूक्ष्म परिणामयुक्त त्रय त्र्यादि समयनी स्थितिवाला स्कन्ध रूप एक आनुपूर्वी द्रव्यने देशोनलोकव्यापी कथो छे, तो अमारे प्रश्न अे छे के ते समस्त लोकमां केम व्यापेदो (अवगाहित) नथी ?

उत्तर—अे वात तो पडेलां स्पष्ट थध युकी छे के अचित्त महास्कन्ध न सर्व लोकव्यापी डोय छे, अने ते अचित्त महास्कन्ध सर्व लोकमां व्यापक रूपे एक समय सुधी न रहे छे. त्र्यार आह तेने स'केय (उपसंहार) थध लय छे. आनुपूर्वी द्रव्य अेक समयनी स्थितिवाणुं हेतुं नथी. ते तो त्रय त्र्यादि समयनी स्थितिवाणुं डोय छे. तेथी अेपुं ने द्रव्य डोय छे ते तो देशोन लोकमां (अेक प्रदेश प्रमाणु न्यून लोकमां) न अवगाहित डोय छे, अेयो नियम छे. तेथी न अेपुं कडेवामां आणुं छे के त्रय त्र्यादि समयनी स्थितिवाणुं ने द्रव्य डोय छे, ते द्रव्य देशोन लोकमां अवगाहित डोय छे.

शंका—आपे कथुं ते अचित्त महास्कन्धनी स्थिति अेक समयनी डोय छे, परन्तु आपनुं ते कथन डोययुक्त लागे छे, कारण के दंड, कपाट, मन्थान

दण्डकपाटमन्थानाद्यवस्थागणनेन तस्याप्यष्टसमयस्थितित्वात् । असौ हि—केवलिसमुद्घातन्यायेन विश्वसापरिणामवशाच्चतुर्भिः समयैर्लोकस्य पूरणं करोति । संहरणमपि प्रतिलोमं—तस्याचित्तमहास्कन्धस्य तैरेव चतुर्भिः समयैर्द्रष्टव्यम् । एवं च सत्यष्टौ समयान् कालमानेन भवतीति । एवं चाचित्तमहास्कन्धस्याप्यानुपूर्वीत्वात् आनुपूर्वीद्रव्यस्यापि सर्वलोकव्यापित्वं वक्तव्यं, न तु देशोलोकव्यापित्वमिति चेदाह—अत्र हि दण्डकपाटमन्थानाद्यभिन्ना भिन्ना अवस्थाः । अवस्थाभेदेन वस्तुनोऽपि भेदः । इत्थं च दण्डकपाटमन्थानाद्यवस्थद्रव्येभ्यो भिन्न एवाचित्त-

होती है । क्यों कि दण्ड, कपाट और मन्थान आदि अवस्था की गणना से उसमें भी आठ समय की स्थितिकता आती है । यह अचित्त महास्कन्ध केवलिसमुद्घातन्याय से विश्वसापरिणामवशात् चार समयों में लोक को पूरित करता है । अर्थात् सकल लोक को व्याप्त करलेना है और चार ही समयों में फिर वह अपना संहार करता है—अर्थात् अपने आपमें समाजाता है । इस प्रकार इसकी स्थिति आठ समय की कालप्रमाण से होनी है । फिर एक समय की स्थिति आप इसकी कैसे कहते हो ? तथा यह अचित्त महास्कन्ध भी आनुपूर्वी रूप है और जब यह इस प्रकार से सर्वलोक व्यापी है तो आनुपूर्वीद्रव्य को जो आप देशोलोक व्यापी कह रहे हो वह कैसे संगत माना जा सकता है ? अतः आनुपूर्वी द्रव्य सर्वलोक व्यापी है ऐसा कहना चाहिये ?—

उत्तर—दण्ड, कपाट और मन्थान आदि अवस्थाएँ हैं वे भिन्ना २ हैं। और अवस्थाओं के भेद से अवस्थावाली वस्तु में भी भेद होना है । इस

आदि अवस्थाओंनी गणतरी करतां तेनी स्थिति आठ समयनी थाय छे आ आ अचित्त महास्कन्ध, केवलिसमुद्घातने न्याये विश्वसापरिणामने लीधे चार समयोभां सकल लोकने व्याप्त करी दे छे, अने त्यार आठ चार समयोभां न ते पोताने। उपसंहार करे छे अटवे के पोतानी अंदर न समाप्त नय छे. आ रीते काणप्रमाणने। विचार करवामां आवे तो तेनी स्थिति आठ समयनी थाय छे. छातां आप तेनी स्थिति अेक समयनी शा करणे कडे छे ? आ अचित्त स्कन्ध आठ समयोनी स्थितिवाणे। होवाथी आनुपूर्वीं इय न छे ने आनुपूर्वीं द्रव्य इय आ अचित्त स्कन्ध सर्वलोकव्यापी होय, तो आनुपूर्वीं द्रव्यने आप केवी रीते देशोल लोकव्यापी अतावे छे ? आ रीते आनुपूर्वीं द्रव्यने देशोल लोकव्यापी कडेवुं ते संगत लागतुं नथी. तेने सर्वलोकव्यापी न कडेवुं नेछे.

उत्तर—दंड, कपाट अने मन्थान आदि ने अवस्थाओ छे ते बिन बिन छे, अने अवस्थाओना लेहने लीधे अवस्थावाणी वस्तुभां पशु बिनता आवी

महास्कन्धः । स चैकसमयस्थितिक एव । एवं च तस्यानुपूर्वीत्वाभावादानुपूर्वी-
द्रव्यस्य देशोनलोकव्यापित्वं न विरुध्यते, इति । यद्वा-यथा क्षेत्रानुपूर्व्या
तथाऽत्रापि सर्वलोकव्यापिनोऽप्यचित्तमहास्कन्धस्य विवक्षया एकस्मिन्नमःप्रदेशे-
ऽप्राधान्याश्रयणेन देशोनलोकवर्तित्वं बोध्यम् । तत्र प्रदेशे हि एकसमयस्थितिकस्य

प्रकार दण्ड, कपाट और लन्थान अवस्थावाले द्रव्यों से भिन्न ही अचित्त
महास्कन्ध है । एक समय की स्थितिवाला द्रव्य आनुपूर्वी रूप नहीं माना
गया है । अतः इसमें आनुपूर्वीत्व का अभाव है । इसलिये जो आनु-
पूर्वीद्रव्य में अचित्त महास्कन्ध को लक्षित करके सर्वलोक व्यापिता बन-
लाने की शंका उठाई है वह निर्मूल है । अतः यही कथन सत्य है कि
आनुपूर्वीद्रव्य देशोनलोकव्यापी होता है यद्वा-क्षेत्रानुपूर्वी की तरह
यहां पर भी सर्वलोक व्यापी भी अचित्त महास्कन्ध की विवक्षा से एक
आनुपूर्वीद्रव्य को एक आकाश के प्रदेश में अप्रधानता के आश्रय से
उसे देशोन लोकवर्ती जानना चाहिये-तात्पर्य कहने का यह है कि
अचित्त महास्कन्ध रूप एक आनुपूर्वीद्रव्य को देशोन लोकव्यापी न
मानकर यदि केवल सर्वलोकव्यापी ही माना जावे तो फिर अनानु-
पूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को ठहरने के लिये स्थान न होने के कारण
उनका अभाव प्रसक्त होगा और जब देशोन लोक में अचित्त महा-
स्कन्ध रूप एक आनुपूर्वीद्रव्य व्यापक होकर रहता है ऐसा माना जाता

लय छे. आ प्रकारे ढंड, कपाट अने लन्थान अवस्थावाणां द्रव्येथी अचित्त
महास्कन्धमां भिन्नता छे. अने ते अेक न समयनी स्थितिवाणे। छे. अेक
समयनी स्थितिवाणा द्रव्यने आनुपूर्वी इप गण्णायुं नथी पण्ण अनानुपूर्वी
इप न गण्णाय छे. आ प्रकारे ते अचित्त महास्कन्धमां आनुपूर्वीताने। अभाव
न छे तेथी शंका कर्ताअे अेवी न शंका उठावी छे के “ अचित्त महास्कन्ध
सर्वलोकव्यापी होवाथी आनुपूर्वी द्रव्यने पण्ण सर्वलोकव्यापी कहेवुं न्नेधअे ”
ते वात उचित्त नथी ते साभित थर्ध लय छे. अचित्त महास्कन्ध अनानु-
पूर्वी इप होवथी तेनी सर्वलोकव्यापिताने। आधार लधने आनुपूर्वी
द्रव्यमा सर्वलोकव्यापिता मानी शकय नही. तेथी अेन कथन सत्य सिद्ध
थाय छे के आनुपूर्वी द्रव्य देशोनलोकव्यापी होय छे.

अथवा-क्षेत्रानुपूर्वीनी न्नेम अही पण्ण सर्वलोकव्यापी अचित्त महा-
स्कन्धनी विवक्षानी अपेक्षाअे अेक आनुपूर्वी द्रव्यने अेक आकाशना प्रदेशमां
अप्रधानताने। आश्रय लधने देशोन लोकव्यापी समज्जुं न्नेधअे आ कथनवं
तात्पर्य अे छे के अचित्त महास्कन्ध इप अेक आनुपूर्वी द्रव्यने देशोन लोकव्यापी
मानवाने षड्दे सर्व लोकव्यापी मानवामां आवे, ते अनानुपूर्वी अने
अवक्तव्यक द्रव्यने रडेवानुं स्थान न रहेवाने कारणे तेमने अभाव
मानवाने। प्रसंग उपस्थित थसे अने न्ने अेवुं मानवामां आवे के अचित्त
महास्कन्ध इप अेक आनुपूर्वी द्रव्य देशोन लोकमां व्याप्त थर्धने रडेवुं होय

अनानुपूर्वीद्रव्यस्य द्विसमयस्थितिकस्यावक्तव्यकद्रव्यस्य च प्राधान्यात् । एवम-
न्यदपि आगमाविरोधतो वक्तव्यम् । तथा-नानाद्रव्याणि=अनेकानुपूर्वीद्रव्याणि
प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति । ज्यादिसमयस्थितिकद्रव्याणां सर्वलोकेऽपि
सत्त्वानानाद्रव्याणि नियमात् सर्वलोकव्यापीनि भवन्तीति भावः । एवमेव मनानु-

है तो इस प्रकार से अचित्त महा स्कंध से पूरित हुए भी लोक में कम से
कम एकप्रदेश ऐसा भी आजाता है कि जिसमें अनानुपूर्वी और अव-
क्तव्यक द्रव्य को ठहरने के लिये स्थान मिलजाता है यद्यपि इस एक
प्रदेश में भी आनुपूर्वीद्रव्य रहता है-तो भी उसकी प्रधान रूप से वहां
विवक्षा नहीं मानी जाती है । वहां तो एक समय की स्थितिवाले अना-
नुपूर्वीद्रव्य और दो समय की स्थितिवाले अवक्तव्यक द्रव्य की ही प्रधा-
नता मानी जाती है इस प्रकार और भी बातें आगम में विरोध न आवे
इस प्रकार से समझ लेनी चाहिये । तथा-(नाणादव्वाहं पडुच्च नियमा
सव्वलोए होज्जा) अनेक आनुपूर्वीद्रव्यों की विवक्षा करके नियम से
आनुपूर्वीद्रव्य समस्त लोक में रहते हैं अर्थात् ज्यादि समय की स्थिति-
वाले अनेक आनुपूर्वीद्रव्यों की सत्ता समस्त लोक में भी पायी जाती
है इसलिये नाना आनुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा से अनेक आनुपूर्वीद्रव्य
समस्त लोक व्यापी होकर रहते हैं । (एवं अणाणुपुव्वीद्ववं) इसी प्रकार

छे, तो आ रीते अचित्त महास्कंध वडे पूरित (व्याप्त) थयेला लोकमां पण
आछामां आछे अेक प्रदेश अेवा डोय छे के जेमां अनानुपूर्वीं अने
अवक्तव्यक द्रव्यने रहेवाने भाटे स्थान भणी जाय छे. जे के ते अेक प्रदेशमां
पण आनुपूर्वीं द्रव्य रहे छे, छतां पण तेमां तेमने प्रधानरूपे गणी शक्य
नहीं ते अेक प्रदेशमां तो अेक समयनी स्थितिवाणा अनानुपूर्वीं द्रव्यनी
अने जे समयनी स्थितिवाणा अवक्तव्यक द्रव्यनी जे प्रधानता मानवी पडे
छे. अेज प्रमाणे भील वाताने पण आगमनी विरुद्ध न पडे अेवी रीते
समल देवी जेधअे.

तथा-(नाणादव्वाहं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा) अनेक आनुपूर्वीं
द्रव्योनी अपेक्षाअे विचार करवामां आवे तो तेअो नियमथी जे सर्वलोकमां
रहेलां डोय छे, अेम समजवुं जेधअे. अेटवे के त्रण आदि समयनी
स्थितिवाणां अनेक आनुपूर्वीं द्रव्योनुं अस्तित्व समस्त लोकमां पण डोय छे.
तेथी जे अनेक आनुपूर्वीं द्रव्योनी अवगाहना भागतमां अेवुं कथन करवामां
आवुं छे के अनेक आनुपूर्वीं द्रव्यो समस्त लोकमां व्याप्त थधने रहे छे.

पूर्वीं द्रव्यमाश्रित्य अनानुपूर्वीद्रव्यमपि लोकस्यासंख्येयभागव्यापि भवति ।
अत्रेदं बोध्यम्—यथा क्षेत्रानुपूर्व्यामनानुपूर्वीद्रव्यं लोकस्यासंख्येयभागे भवति,
तथा कालानुपूर्व्यामपि तस्यासंख्येयभागवर्तित्वं बोध्यम् । यतो यत्कालत एक-
समयस्थितिकं तत्क्षेत्रतोऽप्येकप्रदेशावगाढं भवति । तच्च लोकस्यासंख्येयभागे एव
भवति । प्रकारान्तरमुपश्रित्याह—‘आएसंतरेण वा’ इत्यादि । आदेशान्तरेण=प्रका-
रान्तरमाश्रित्य अनानुपूर्वीं द्रव्यं सर्वपृच्छासु=संख्येयभागे, असंख्येयभागे,
संख्येयभागेषु असंख्येयभागेषु सर्वलोके वा, भवति । अयं भावः—अचित्तमहास्कं-

से अनानुपूर्वीद्रव्य के विषय में भी जानना चाहिये—अर्थात् एक अनानु-
पूर्वीद्रव्य को आश्रित करके एक अनानुपूर्वीद्रव्य भी लोक के असं-
ख्यात भाग में रहता है—यहां ऐसा समझना चाहिये—जैसे क्षेत्रानुपूर्वी
में एक अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के असंख्यातवे भाग में रहता है, उसी
प्रकार से कालानुपूर्वी में भी वह लोक के असंख्यातवे भाग में रहता
है । क्यों कि कालकी अपेक्षा जिसकी एकसमय की स्थिति है वह
क्षेत्र की अपेक्षा भी एक प्रदेश में स्थित होता है । यह एकप्रदेश में
रहना ही लोक के असंख्यातवे भाग में उसका रहना है । (आएसंतरेण
वा सर्वपृच्छासु होज्जा) अथवा सूत्रकार प्रकारान्तर को आश्रित
करके अनानुपूर्वीद्रव्य के विषय में इस प्रकार से कहते हैं कि यदि कोई
ऐसा पूछे कि अनानुपूर्वीद्रव्य लोक के संख्यात भाग में अथवा असं-
ख्यातभाग में अथवा संख्यात भागों में अथवा सर्वलोक में रहता

(एवं अणानुपूर्वी द्रव्यं) अथवा न कथन अनानुपूर्वीं द्रव्यना विषयमां
पद्य समज्जुं लेख्ये अटले के एक अनानुपूर्वीं द्रव्यनी अपेक्षाये विचार
करवाभां आवे, तो एक अनानुपूर्वीं द्रव्य पद्य लोकना असंख्यात भागमां
रहे छे. आ कथनना भावार्थ नीचे प्रमाणे समज्जवो—जेवी रीते क्षेत्रानुपूर्वींमां
एक अनानुपूर्वीं द्रव्य लोकनां असंख्यात भागमां रहे छे, ओज प्रमाणे
कालानुपूर्वींमां पद्य ते लोकना असंख्यातभां भागमां रहे छे, कारण के कारणनी
अपेक्षाये जेनी एक समयनी स्थिति होय छे, ते क्षेत्रनी अपेक्षाये पद्य
एक प्रदेशमां अवगाहित (रहेहुं) होय छे आ एक प्रदेशमां रहेहुं, तेहुं
नाम न लोकना असंख्यातभां भागमां रहेहुं छे.

(आएसंतरेण वा सर्वपृच्छासु होज्जा) अथवा सूत्रकार अन्य प्रकारे
आनुपूर्वीं द्रव्यना विषयमां नीचे प्रमाणे कथन करे छे—जे कोई अथवा प्रश्न
पूछे के अनानुपूर्वीं द्रव्य लोकना संख्यात भागमां रहे छे, के असंख्यात
भागमां रहे छे, के समस्त लोकमां रहे छे ?

न्धस्य दण्डाद्यवस्थाः परस्परं भिन्नाः, आकारादि भेदात्, द्वित्रिचतुःप्रदेशिकादि स्कन्धवत् । ततश्च ता दण्डाद्यवस्था एकैकसमयवृत्तित्वात् पृथगनानुपूर्वीद्रव्याणि । तेषु च मध्ये किमपि कियत्यपि क्षेत्रे वर्तते, इत्यनया विवक्षया किल एकमनानुपूर्वीद्रव्यं प्रकारान्तरेण एतत्सूत्रोक्तसंख्येयभागादिकासु पञ्चस्वपि पृच्छासु लभ्यते । तथा नानाद्रव्याणि प्रतीत्याऽनानुपूर्वीद्रव्याणि सर्वस्मिन्नपि लोके भवन्ति । एक

है? तो उसका उत्तर इस प्रकार से है—दो तीन चारप्रदेशवाले स्कंध आदि की तरह अचित्त महास्कंध की दण्ड, कपाट और मन्थान अवस्थाएँ आकार आदि के भेद से परस्पर में भिन्न २ हैं । इस प्रकार वे दण्डादिक अवस्थाएँ एक एक समयवर्ती होने के कारण पृथक् २ अनानुपूर्वी द्रव्य हैं । इनके बीच में कोई एक अनानुपूर्वीद्रव्य लोक के किनारे भी क्षेत्र में रहता है जब इस प्रकार की विवक्षा होती है तब—इस विवक्षा से एक अनानुपूर्वी द्रव्य प्रकारान्तर से इस सूत्रोक्त संख्येय भागादिक पांचों ही पृच्छाओं में लभ्य हो जाता है—तात्पर्य कहने का यह है कि एक समय की स्थितिवाला अनानुपूर्वी द्रव्य होता है और इस अनानुपूर्वी द्रव्य में से कोई एक द्रव्य लोक के संख्यात भाग में रहता है कोई एक द्रव्य असंख्यात भाग में रहता है, कोई एक द्रव्य संख्यात भागों में रहता है । कोई एक असंख्यात भागों में रहता है और कोई एक सर्वलोक में रहता है । तथा नाना अनानुपूर्वीद्रव्यों

तो आ प्रश्नको जेवो उत्तर आपी शक्य के अे, तए, चार प्रदेशवाला स्कन्ध आदिनी जेस अचित्त महास्कन्धनी दंड, कपाट अने मन्थान अवस्थाओ आकार आदिनी अपेक्षाओ ओक भीलथी लिप्त लिप्त होय छे. आ प्रकारे ते दंडादिक अवस्थाओ ओक ओक समयवर्ती होवाने कारणे अलग अलग अनानुपूर्वी द्रव्य रूप होय छे. तेमांतुं केअ ओक अनानुपूर्वी द्रव्य लोकना केटला य क्षेत्रमां रहे छे. न्यारे आ प्रकारनी विवक्षा थाय छे, त्यारे आ विवक्षानी अपेक्षाओ ओक अनानुपूर्वी द्रव्य प्रकारान्तरनी अपेक्षाओ आ सूत्रोक्त संख्येय भागादि पांचे प्रकारना लागेमां उपलब्ध थाय छे. आ कथनको लावार्थ अे छे के ओक समयनी स्थितिवाला अनानुपूर्वी द्रव्यनी अवगाहनानो विचार करवामां आवे, तो केअ ओक अनानुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यात भागमां रहे छे, केअ ओक अनानुपूर्वी द्रव्य लोकना असंख्यात भागमां रहे छे, केअ ओक अनानुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यात भागमां रहे छे, केअ ओक अनानुपूर्वी द्रव्य लोकना असंख्यात भागमां रहे छे अने केअ ओक अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वलोकमां यए रहे छे, अनेक अनानुपूर्वी द्रव्यनी

समयस्थितिकानां द्रव्याणां सर्वत्र सत्त्वादिति । एवम्-अवक्तव्यकद्रव्याण्यपि यथा क्षेत्रानुपूर्व्याम् । अयं भावः-अवक्तव्यकद्रव्यं क्षेत्रानुपूर्व्यामिव कालानुपूर्व्यामपि लोकस्यासंख्येयभागे एव भवति । यतो यत्कालतो द्विसमयस्थितिकं तत्क्षेत्रतो ऽपि द्विप्रदेशावगाढम्, तच्च लोकस्यासंख्येयभागमेव व्याप्नोति । अथवा-द्विसमयस्थितिकं द्रव्यं स्वभावादेव लोकासंख्येयभागव्यापि भवति, न ततोऽधिकव्यापि । तथा-आदेशान्तरेण वा-‘महाखंडवज्जमन्नद्वेषु आइल्लचउपुच्छामु होज्जा ” इति प्रोक्तम् ।

की अपेक्षा करके नाना अनालुपूर्वी द्रव्य सर्वलोक में भी रहते हैं । क्योंकि एक समय की स्थितिवाले अनालुपूर्वीद्रव्यों का सर्वत्र सत्त्व रहता है । (एवं अवक्तव्यकद्रव्याणि वि जहा खेत्ताणुपुव्वीए) इसी प्रकार क्षेत्रानुपूर्वी की तरह अवक्तव्यक द्रव्य भी हैं । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से क्षेत्रानुपूर्वी में अवक्तव्यक द्रव्य लोक के असंख्यात भागवर्ती बतलाया गया है उसी प्रकार से यहां कालानुपूर्वी में भी वह लोक के असंख्यातवे भाग में रहनेवाला बतलाया गया है । क्यों कि कालकी अपेक्षा जिसकी स्थिति दो समय की होती है वह लोक के दो प्रदेशों में ही अवगाढ होता है । दो प्रदेशों में अवगाढ होना ही लोक के असंख्यातवे भाग में व्याप्त करना है । अथवा दो समय की स्थितिवाला द्रव्य स्वभाव से ही लोक के असंख्यातवे भाग में व्याप्त होता है इस से अधिक भाग को

अपेक्षाये विचार करवामां आवे तो तेज्जे सर्वलोकव्यापी होय छे, जेभ समज्जुं, कारणु के जेक समयनी स्थितिवाणां अनालुपूर्वीं द्रव्येणुं अस्तित्व सर्वत्र होय छे. (एवं अवक्तव्यकद्रव्याणि वि जहा खेत्ताणुपुव्वीए) क्षेत्रानुपूर्वींभां अवक्तव्यक द्रव्येणी अवगाढना विषे जेवुं कथन करवामां आव्युं छे, जेवुं न कथन अहीं पणु समज्जुं जेधजे आ कथनने लावार्थ नीचे प्रमाणे छे- क्षेत्रानुपूर्वींभां अवक्तव्यक द्रव्यने लोकना असंख्यात भागवर्तीं भताव्युं छे, जेव प्रमाणे अहीं कालानुपूर्वींभां पणु तेने लोकना असंख्यात भागभां रडेवुं न भताववामां आव्युं छे, कारणु के कारणनी अपेक्षाजे जेनी स्थिति जे समयनी होय छे, ते द्रव्य लोकना जे प्रदेशोभां न अवगाढ होय छे. आ प्रकारे जे प्रदेशभां रडेवुं तेनुं नाम न लोकना असंख्यातभां भागने व्याप्त करवे. अथवा जे समयनी स्थितिवाणुं द्रव्य स्वभावथी न लोकना असंख्यातभां भागने व्याप्त करे छे, तेनां करतां अधिक भागने ते व्याप्त करतुं नथी.

अत्रेदमनुसन्धेयम्—किमपि द्विसमयस्थितिकं द्रव्यं लोकस्य संख्येयतमभाग-
मवगाहते, किमप्यसंख्येयतमभागम् किमपि संख्येयान् भागान्, किमपि तु
असंख्येयान् भागान् न तु सर्वलोकमवगाहते । सर्वलोकव्यापित्वं तु महास्कन्धस्य ।
स चाष्टसमयै निष्पद्यते, न तु द्वाभ्यां समपाभ्याम् । अतो द्विसमयस्थितिकत्वा-
भावेन महास्कन्धस्यावक्तव्यकत्वाभावादवक्तव्यकद्रव्य विषये पञ्चमपृच्छा न भवति ।
अत एव—‘महाखंधवज्ज’ इत्युक्तम् । नानाद्रव्याणि तु सर्वलोकव्यापीनि भव-
न्तीति । इति क्षेत्रद्वारम् । स्पर्शनाद्वारं निरूपयितुमाह—‘फुसणा’ इत्यादि । स्पर्शना-
द्वारमपि तथैव=क्षेत्रानुपूर्वीवदेव विज्ञेयम् ॥सू०१३२॥

वह व्याप्त नहीं करता है । तथा—“आदेशान्तरेण वा—महाखंधवज्जमन्न-
दव्वेषु आइल्लचउ पुच्छासु होज्जा” ऐसा जो कहा है उसका भाव
इस प्रकार से है—कि दो समय की स्थितिवाला कोई एक अवक्तव्यक
द्रव्य लोक के संख्यातवें भाग में अवगाह होता है कोई असंख्यातवें
भाग में अवगाह होता है, कोई संख्यात भागों में अवगाह होता है,
और कोई असंख्यात भागों में अवगाह होता है परन्तु सर्वलोक में
अवगाह नहीं होता है । सर्वलोक में अवगाहतो महास्कंध होता है । यह
महास्कंध आठ समयों से निष्पन्न होता है । दो समयों से नहीं । इस-
लिये इस महास्कंधमें द्विसमयस्थितिकता का अभाव होने से अवक्तव्यक-
द्रव्यत्व का अभाव है । इसलिये अवक्तव्यक द्रव्य के विषय में पांचवां
प्रश्न नहीं होता है । इसीलिये “महाखंधवज्ज” ऐसा कहा है । तथा
नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा करके नाना अवक्तव्यक द्रव्य सर्व-

तथा—“आदेशान्तरेण वा—महाखंधवज्जमन्नदव्वेषु आइल्लचउपुच्छासु
होज्जा” आ प्रमाणे जे कहुं छे तेना लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—जे समयनी
स्थितिवाणुं केछ अक्कतव्यक द्रव्य लोकना संख्यात लागमां अवगाह
(रहेछुं) होय छे, केछ असंख्यातमां लागमां अवगाह होय छे, केछ संख्यात
लागोमां अवगाह होय छे, केछ असंख्यात लागोमां अवगाह होय छे,
परन्तु केछ पणु अक्कतव्यक द्रव्य समस्त लोकमां अवगाह होतुं नथी.
महास्कंध जे सर्वलोकमां अवगाह होय छे. आ महास्कंध आठ समयोमां
निष्पन्न थाय छे—जे समयोमां निष्पन्न थतो नथी आ रीते आ महास्कंधमां
जे समयनी स्थितिना अलाव होवाने कारणे तेने अक्कतव्यक द्रव्य रुप गणी
शकय नही आ रीते अक्कतव्यक द्रव्यनी अवगाहनानां गणितमां पांचमी
वात (सर्वलोकव्यापता) संलवी शकती नथी तेथी जे “महाखंधवज्ज”
आ सूत्रांश भूकवामां आये छे. अनेक अक्कतव्यक द्रव्योनी अपेक्षाये विचार
करवामां आवे तो जेपुं कथन अहणुं करवुं जेछे जे-

अथ कालद्वारमाह—

सूत्रम्—जेगमववहाराणं आणुपुवीदवाइं कालओ केवच्चिरं
होति ? एगं दवं पडुच्च जहणणेणं तिणिण समया उक्कोसेणं
असंखेज्जं कालं । नाणादवाइं पडुच्च सवद्धा । जेगमववहाराणं
आणुपुवीदवाइं कालओ केवच्चिरं होइ ? एगं दवं पडुच्च
अजहन्नमणुक्कोसेणं एकं समयं, नाणादवाइं पडुच्च सवद्धा ।
अवत्तगदवाणं पुच्छा, एगं दवं पडुच्च अजहणमणुक्कोसेणं दो
समया, नाणादवाइं पडुच्च सवद्धा ॥सू० १३३॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीं द्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति ?
एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन त्रीन् समयान् उत्कर्षेण—असंख्येय कालम् । नानाद्रव्याणि
प्रतीत्य सर्वाद्धा । नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीं द्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भव-
न्ति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य अजघन्यानुत्कर्षेण एकं समयं, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य
सर्वाद्धा । अवक्तव्यकद्रव्याणां पृच्छा । एकं द्रव्यं प्रतीत्य अजघन्यानुत्कर्षेण द्वौ
समयौ, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य सर्वाद्धा ॥सू० १३३॥

टीका—‘ जेगमववहाराणं ’ इत्यादि ।

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीं द्रव्याणि-कालतः कियच्चिरं भवन्ति ?
इति प्रश्नः । उत्तरयति—एकं द्रव्यं प्रतीत्य आनुपूर्वीं द्रव्याणां जघन्यतः त्रीन्

लोक व्यापी होते हैं । इस प्रकार यहां तक क्षेत्रद्वार की प्ररूपणा हुई है ।
(फुमणा कालाणुपुवीए वि तहा चेव भाणियव्वा) स्पर्शना द्वार भी
इसका कालानुपूर्वीं में क्षेत्रानुपूर्वीं की तरह जानना चाहिये ॥सू० १३२॥

अथ सूत्रकार कालद्वार का कथन करते हैं—

‘ जेगमववहाराणं ’ इत्यादि ।

शब्दार्थ—(जेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनयसंमत (आणुपुवी-
दवाइं) समस्त आणुपूर्वीद्रव्य (कालओ) कालकी अपेक्षा करके (केव-
च्चिरं होई) कितने समयतक रहते हैं ?—

अनेक अवज्ञाव्यक्त द्रव्ये सर्वथैः क्व्यापी होय छे. आ प्रकारे आ
सूत्रमां क्षेत्रद्वारनी प्ररूपणा करवामां आवी छे. (फुमणा कालाणुपुवीए वि तहा-
चेव भाणियव्वा) आ कालानुपूर्वीमां स्पर्शना द्वारनुं कथन पणु क्षेत्रानुपूर्वीनी
नेम न समजवुं लेधये. ॥सू० १३२॥

समयान् स्थितिः, उत्कर्षेण चासंख्येयं कालं स्थितिः। अयं भावः आनुपूर्वी
द्रव्याणां मध्ये त्रिसमयस्थितिकं द्रव्यं सर्वतो जघन्यं, तच्च त्रीन् समयानेव
तिष्ठति। अतो जघन्यतस्त्रिसमयं यावदानुपूर्वीद्रव्याणां स्थितिः। उत्कृष्टतस्तु
असंख्येयं कालं स्थितिर्बोध्या। ततः परमेकेन तद्रूपेण परिणामेन द्रव्यावस्थान-

उत्तर—(एगं द्रव्यं पङ्क्तुच्च) एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा करके
आनुपूर्वीद्रव्यों की (जहण्णेणं) जघन्य से (तिणिण समया) तीन समयकी
स्थिति है, और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (असंखेज्जं कालं) असंख्यात-
काल की स्थिति है। इसका तात्पर्य यह है। आनुपूर्वीद्रव्यों के बीच में
तीन समय की स्थितिवाला द्रव्य सब से कम है यह तीन समय
तक ही ठहरता है—रहता है। इसलिये आनुपूर्वीद्रव्यों की स्थिति
जघन्य से तीन समय तक की कही गई है। और उत्कृष्ट से
जो असंख्यात काल की स्थिति कही गई है उसका तात्पर्य यह है कि
द्रव्य असंख्यात काल के बाद आनुपूर्वीरूप परिणाम से परिणमित

इसे सूत्रकार कालद्वारानुं कथन करे छे—

“नेगमववहाराणं” धत्यादि—

शब्दार्थ—(नेगमववहाराणं) नेगंमव्यवहार नयसंभत (आणुपुव्वीदव्वाइं)
सभस्त आनुपूर्वीं द्रव्ये (कालो) काणनी अपेक्षाये (केवच्चिरं होई ?) केटला
समय सुधी रहे छे ?

उत्तर—(एगं द्रव्यं पङ्क्तुच्च) एक आनुपूर्वीं द्रव्यनी अपेक्षाये विचार
करवामां आवे, तो आनुपूर्वीं द्रव्यनी (जहण्णेणं तिणिण समया) जघन्य
(ओछामां ओछी) स्थिति त्रसु समयनी कही छे अने (उक्कोसेणं असंखेज्जं
कालं) उत्कृष्ट (वधारेमां वधारे) स्थिति असंख्यात काणनी कही छे. आ
कथनने भावार्थ नीचे प्रम षे छे—ने आनुपूर्वीं द्रव्ये छे तेमां त्रसु समयनी
स्थितिवाणुं द्रव्य सौथी ओछुं छे. ते त्रसु समय सुधी न रहे छे, ते कारणे
आनुपूर्वीं द्रव्येनी जघन्य स्थिति त्रसु समयनी कही छे. तेनी उत्कृष्ट स्थिति
असंख्यात काणनी कहेवातुं कारणे छे के ते द्रव्य असंख्यात काण भाइ
आनुपूर्वीं इय परिष्णाम इये परिष्णमित रहेतुं न नथी.

स्यैवाभावादिति । नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु आनुपूर्वीद्रव्याणां सर्वाद्वा=सर्वकालं स्थिति भवति । लोकरस्य प्रत्येकस्मिन् प्रदेशे तेषां सर्वदा सद्भावत् । तथा-नैगमव्यवहारसम्मतानि अनानुपूर्वीद्रव्याणि काळतः कियच्चिरं भवन्ति=तिष्ठन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरयति-एकं द्रव्यं प्रतीत्य अजघन्यानुत्कर्षेण एकं समयं तिष्ठन्ति ।

रहता ही नहीं है । (नाणादव्वाहं पडुच्च सव्वदा) तथा नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा को आश्रित करके आनुपूर्वीद्रव्योंकी स्थिति सार्वकालिक है । क्योंकि लोक के प्रत्येक प्रदेश में नाना आनुपूर्वी द्रव्योंका सद्भाव रहता है (नैगमव्यवहाराणं) नैगमव्यवहारनयसंमत (अणाणुपुव्वीदव्वाहं) समस्त अनानुपूर्वीद्रव्य (कालओ) काल की अपेक्षा से (केचच्चिरं) कितने समय तक रहते हैं ।

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च) एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा करके—(अजहन्नमणुक्कोसेण) अनानुपूर्वीद्रव्य अजघन्य और अनुत्कर्ष से एक समय तक रहते हैं (नाणादव्वाहं पडुच्च सव्वदा) और नाना-द्रव्यों की अपेक्षा करके समस्त अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वकाल रहते हैं । क्योंकि लोक के हर एक प्रदेश में इनका सद्भाव रहता है । (अवत्तव्वगद-व्वाणं पुच्छा) अवक्तव्यकद्रव्यों के विषय में भी इसी प्रकार से प्रश्न है कि नैगमव्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्य काल की अपेक्षा से कितने समय तक रहते हैं ?

(नाणादव्वाहं पडुच्च सव्वदा) अनेक आनुपूर्वी द्रव्योंकी अपेक्षासे विचार करवामां आवे, तो आनुपूर्वी द्रव्योंकी स्थिति सार्वकालिक छे, कारण के लोकना प्रत्येक प्रदेशमां विविध आनुपूर्वी द्रव्योंको सदा सद्भाव न रहे छे.

प्रश्न—(नैगमव्यवहाराणं) नैगमव्यवहार नयसंमत (अणाणुपुव्वीदव्वाहं) समस्त अनानुपूर्वी द्रव्यों (कालओ) कालकी अपेक्षासे (केचच्चिरं) कितना समय सुधी रहे छे ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च) एक अनानुपूर्वी द्रव्योंकी अपेक्षासे विचार करवामां आवे, तो (अजहन्नमणुक्कोसेण) अनानुपूर्वी द्रव्य अजघन्य अने अनुत्कर्ष कालकी अपेक्षासे एक समय सुधी रहे छे. (नाणा दव्वाहं पडुच्च सव्वदा) अने अनेक द्रव्योंकी अपेक्षासे विचार करवामां आवे तो अनानुपूर्वी द्रव्योंकी स्थिति सार्वकालिक छे, कारण के लोकना हर एक प्रदेशमां तेभनो सद्भाव रहे छे.

प्रश्न—(अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा) अवक्तव्यक द्रव्योंका विषयमां पद्य अयेवा प्रश्न पूछवामां आव्यो छे के नैगमव्यवहार नयसंमत अवक्तव्यक द्रव्य कालकी अपेक्षासे कितना समय सुधी रहे छे ?

नानाद्रव्याणि तु प्रतीत्य सर्वकालम्, लोकस्य प्रतिप्रदेशे तेषां सद्भावात् । अव-
क्तव्यकद्रव्याणि तु एकं द्रव्यं प्रतीत्य अजघन्यानुत्कर्षेण द्वौ समयौ तिष्ठन्ति ।
नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु सर्वकालम् । लोकस्य प्रतिप्रदेशे तेषां सर्वादावस्थानात् ॥
एकसमयस्थितिकस्यैवानानुपूर्वीत्वं, द्विसमयस्थितिकस्यैवावक्तव्यकत्वमभ्युपगम्य-
तेऽतो नानयोर्द्वयोर्विषये जघन्योत्कृष्टचिन्तासंभव इति भावः ॥ सू० १३३ ॥

अथान्तरद्वारमाह—

मूलम्—णोगभववहाराणं आणुपुर्वीद्व्याणमंतरं कालओ केव-
च्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो
समया । नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं । णोगभववहाराणं
अणाणुपुर्वीद्व्याणमंतरं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं
पडुच्च जहन्नेणं दो समया, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं णाणा-
दव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं । णोगभववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया णाणा
दव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा) एक द्रव्य की अपेक्षा करके अजघन्य और अनु-
त्कृष्ट से अवक्तव्यक द्रव्य दो समय तक रहते हैं । और नाना द्रव्यों
की अपेक्षासे सर्वकाल रहते हैं । क्योंकि लोक के प्रतिप्रदेश में इनका
सर्वदा अवस्थान रहता है । एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानुपू-
र्वी है और दो समय की स्थिति वाला द्रव्य अवक्तव्यक है इसलिये इन
दोनों के विषय में जघन्य और उत्कृष्ट को लेकर विचार नहीं किया
गया है ॥ सू० १३३ ॥

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया, णाणा दव्वाइं
पडुच्च सव्वद्धा) ओक द्रव्यनी अपेक्षाओ विचार करवाभां आवे तो अजघन्य
अने अनुत्कृष्ट काणनी अपेक्षाओ अवक्तव्यक द्रव्य ओ समय सुधी रहे छे.
अने जे अनेक द्रव्योनी अपेक्षाओ विचार करवाभां आवे तो अवक्तव्यक
द्रव्योनी स्थिति सार्वकालिक छे, कारण के लोकना हरेक प्रदेशभां तेमने सदा
सद्भाव रहे छे. ओक समयनी स्थितिवाणुं द्रव्य अनानुपूर्वीं इप छे अने
ओ समयनी स्थितिवाणुं द्रव्य अवक्तव्यक इप छे. ते कारणे ते अने जघन्य
अने उत्कृष्टनी अपेक्षाओ विचार करवाभां आवे नथी. ॥सू० १३३॥

पुच्छा, एगं दव्वं पडुच्च जहणणेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असं-
खेज्जं कालं । णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं । भाग भाव
अप्पाबहुं चेव जहा खेत्ताणुपुव्वीए तहा भाणियव्वाइं जाव से
तं अणुगमे । से तं णेगमववहारणं अणोवणिहिया काला-
णुपुव्वी ॥सू० १३४॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ?
एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण द्वौ समयौ । नानाद्रव्याणि
प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् । नैगमव्यवहारयोरनानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः किय-
च्चिरं भवति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन द्वौ समयौ उत्कर्षेण असंख्येयं कालम् ।
नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् । नैगमव्यवहारयोरवक्तव्यकद्रव्याणां पृच्छा ।
एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येनैकं समयम्, उत्कर्षेणासंख्येयं कालम् । नानाद्रव्याणि
प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् । भागोभावोऽल्पबहुत्वं चैव यथा क्षेत्रानुपूर्व्या तथा भणितं-
व्यानि, यावत्सोऽसावनुगमः । सैषा नैगमव्यवहारानौपनिधिकीकालानुपूर्वी । सू. १३४।

टीका—‘ णेगमववहारणं ’ इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानामानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ?
इति प्रश्नः । उत्तरयति—एकं द्रव्यं प्रतीत्यानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतो जघन्ये-

अथ सूत्रकार अन्तरद्वार की प्ररूपणा करते हैं ।

“णेगमववहारणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(णेगमववहारणं) नैगमव्यवहारनयसंमत (आणुपुव्वी
दव्वाणं) समस्त आनुपूर्वीद्रव्यों का (अंतरं) अंतर (कालओ) कालकी
अपेक्षा से (कियच्चिरं) कितने समयका होता है ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च) एक द्रव्य की अपेक्षा लेकर (जहण्णेणं)
आनुपूर्वीद्रव्यों का अंतर-विरहकाल—जघन्य से (एगं समयं) एक समय का

इसे सूत्रकार अन्तरद्वारनी प्ररूपणा करे छे—

“ णेगमववहारणं ” इत्यादि—

शब्दार्थ (णेगमववहारणं) नैगमव्यवहार नयसंमत (आणुपुव्वी दव्वाणं)
समस्त आनुपूर्वी द्रव्येणुं (अंतरं) अंतर (विरहकाल) (कालओ) कालकी
अपेक्षाओ (कियच्चिरं) कितना समयनुं डाय छे ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च) ओक द्रव्यनी अपेक्षाओ विचार करवाभां आवे
ते। (जहण्णेणं) आनुपूर्वी द्रव्येणुं जघन्य अंतर-जघन्य विरहकाल—(एगं

नैकं समयं भवति, उत्कर्षेण तु द्वौ समयौ । नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु नास्ति अन्तरम् । अयं भावः—व्यादिममयस्थितिकं विवक्षितं किञ्चिदेकमानुपूर्वीद्रव्यं तं परिणामं परित्यज्य परिणामान्तरेण समयमेकं स्थित्वा पुनःपूर्वोक्तनैव परिणामेन व्यादि समयस्थितिकं जायते तदा जघन्यत एकं समयमन्तरं भवति । यदा तदेव द्रव्यं द्वौ समयौ परिणामान्तरेण स्थित्वा पुनस्तेनैव परिणामेन व्यादि समयस्थितिकं जायते तदा तत्रोत्कर्षणो द्वौ समयौ अन्तरं भवति । यदि पुनः परिणामान्तरेण क्षेत्रादिभेदत समयद्वयात् परतोऽपि तिष्ठेत् तदा तत्राऽप्यानु-

और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (दो समय) दो समय का होता है । (नाणादव्वाइं षडुच्च) तथा नाना द्रव्यों की अपेक्षा लेकर इनमें (णत्थि अंतरं) अंतर नहीं है) तात्पर्य इसका इस प्रकार से है कि व्यादि समय की स्थितिवाला कोई विवक्षित एक आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीरूप अपने परिणाम को छोड़कर के किसी दूसरे परिणाम से एक समय तक परिणमित रहकर पुनः उसी परिणाम से व्यादिसमय की स्थितिवाला बन जाता है तो ऐसी स्थिति में जघन्य से वहां अंतर एक समय का होता है । और जिस समय वही द्रव्य दो समय तक परिणामान्तर से परिणमित बना रहकर फिर बाद में उसी परिणाम से व्यादिसमय की स्थितिवाला बनता है तो ऐसी दशा में वहां उत्कृष्ट से दो समय का अन्तर माना जाता है । यदि परिणामान्तर से परिणमित बना हुआ वह द्रव्य क्षेत्रादि संबन्ध के भेद से दो समय से अधिक

समय) एक समयनुं अने (उक्कोसेणं) वधारेभां वधारे अंतर (दो समय) के समयनुं होय छे. (नाणादव्वाइं षडुच्च) अनेक द्रव्येनी अपेक्षाये विचार करवाभां आवे तो (णत्थि अंतरं) अंतर (विरडकाण) नथी आ कथननुं तात्पर्य अे छे के त्रणु आदि समयनी स्थितिवाणुं द्रव्य पोताना अनुपूर्वी रूप परिणामने छोडीने केछ अन्य परिणाम इपे एक समय सुधी परिणमित रहीने इरी त्रणु आदि समयनी स्थितिवाणा अनुपूर्वी द्रव्य इपे परिणमित थछ न्तुं होय, तो अेवी परिस्थितिभां त्यां जघन्य अन्तर (विरडकाण) एक समयनेो गणाय छे. त्रणु त्रणु आदि समयनी स्थितिवाणुं केछ अनुपूर्वी द्रव्य पोताना अनुपूर्वी रूप परिणामने छोडीने केछ अन्य परिणाम इपे के समय सुधी परिणमित रहीने इरी त्रणु आदि समयनी स्थितिवाणा अनुपूर्वी द्रव्य इपे परिणमित थछ न्तुं होय, तो अेवी परिस्थितिभं त्यां उत्कृष्ट अन्तर के समयनुं गणाय छे. के अन्य परिणाम इपे परिणमित थयेतुं ते अनुपूर्वी द्रव्य क्षेत्रादि संबन्धना लेवथी के समय

પૂર્વીત્વમનુમવેત્, તતોऽન્તરમેવ ન સ્યાત્ । નાનાદ્રવ્યાણિ પ્રતીત્ય તુ નાસ્ત્યન્તરમ્, ત્રિસમયસ્થિતિક્કદ્રવ્યાણાં લોકે સર્વદા સદ્ધાવાદિતિ । તથા—નૈગમવ્યવહારસમ્મતાનામનાનુપૂર્વીદ્રવ્યાણાં કાલતઃ ક્રિયચ્ચિરમન્તરં ભવતિ ? ઇતિ પ્રશ્નઃ । ઉત્તરયતિ—એકં દ્રવ્યં પ્રતીત્ય જઘન્યેન દ્વૌ સમયૌ અન્તરમ્, ઉત્કર્ષતઃ અસંખ્યેયં કાલમ્ । નાનાદ્રવ્યાણિ પ્રતીત્ય તુ નાસ્તિ અન્તરમ્ । અયં ભાવઃ—એકં દ્રવ્યં પ્રતીત્ય એકસમય-

સમય તક્ર ખી રહતા હૈ તો ઉસ સમય વહ ઉસ સ્થિતિ મેં ખી આનુ-પૂર્વીત્વક્રા અનુભવન કરતા હૈ ઓર હસ સ્થિતિ મેં વહાં અન્તર હી નહીં આતા હૈ । નાના દ્રવ્યોં કી અપેક્ષા સે જો અન્તર નહીં કહા હૈ ઉસકા કારણ યહ હૈ કિ ત્રિસમય કી સ્થિતિવાલે કોઈ ન કોઈ દ્રવ્ય લોક મેં સર્વદા રહતે હી હૈ ।

પ્રશ્ન—(નેગમવ્યવહારાણં અણાણુપુઁવીદ્રવ્યાણં અંતરં કાલઓ કે વચ્ચિરં હોઈ) નૈગમવ્યવહારનયસંમત અનાનુપૂર્વીદ્રવ્યોં કા અન્તર કાલ કી અપેક્ષા કિતનેક સમય કા હોતા હૈ ?

ઉત્તર—(એકં દ્રવ્યં પહુચ્ચ) એક દ્રવ્ય કી અપેક્ષા લેકર (જહન્યેણં) જઘન્ય સે (દો સમયા) દો સમય કા ઓર (ઉક્ષોસેણં) ઉત્કૃષ્ટ સે (અસંખ્યેજ્જં કાલં) અસંખ્યાતકાલ કા અન્તર હોતા હૈ । (ણાણાદ્રવ્યાણં પહુચ્ચ ણત્થિ અંતરં) તથા નાનાદ્રવ્યોં કી અપેક્ષા કરકે અન્તર નહીં

કરતાં અધિક સમય સુધી પણ રહે તે તે પરિસ્થિતિમાં પણ ત્યારે તે આનુ-પૂર્વીત્વનો અનુભવ કરે છે, અને આ સ્થિતિમાં ત્યાં અંતર જ સંભવી શકતું નથી વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અંતર (વિરહકાળ)નો અભાવ જ કહેવાનું કારણ એ છે કે ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળાં કાઈને કાઈ દ્રવ્યો લોકમાં સર્વદા મોજૂદ જ રહે છે.

પ્રશ્ન—(નેગમવ્યવહારાણં અણાણુપુઁવી દ્રવ્યાણં અંતરં કાલઓ કેવચ્ચિરં હોઈ?) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અંતર કાળની અપેક્ષાએ કેટલા સમયનું હોય છે ?

ઉત્તર—(એકં દ્રવ્યં પહુચ્ચ) એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તે (જહન્યેણં દો સમયા) જઘન્ય અન્તર (ઓછામાં ઓછો વિરહકાળ) એ સમયનું (ઉક્ષોસેણં અસંખ્યેજ્જં કાલં) ઉત્કૃષ્ટ અંતર (વધારેમાં વધારે વિરહકાળ) અસંખ્યાત કાળનું હોય છે. (ણાણાદ્રવ્યાણં પહુચ્ચ ણત્થિ અંતરં) અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તે અંતર (વિરહકાળ) હોતું નથી આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—એક સમયની સ્થિતિ-

स्थितिकान्यनानुपूर्वीद्रव्याणि यदा परिणामान्तरेण समयद्वयमनुभूय पुनः पूर्वामेव स्थितिं लभेरन् तदा जघन्यतः समयद्वयमन्तरं लभ्यते । यदि तु परिणामान्तरेण एकमेव समयं तिष्ठेयुस्तदा अन्तरमेव न भवति, तत्राप्यनानुपूर्वीत्वस्यैव सद्भावात् । अथ समयद्वयात्परतो यदि परिणामान्तरेण तिष्ठेयुस्तदा जघन्यत्वमेव न स्यात् ॥ यदा तु तान्येव द्रव्याणि असंख्येयं कालं परिणामान्तरेण स्थित्वा पुनरेकस्थितिकं परिणामं लभेरन्, तदा उत्कृष्टतोऽसंख्येयं कालमान्तरं भवति । ननु अन्यान्यद्रव्य-क्षेत्रसम्बन्धेऽनन्तमपि कालम् अन्तरं भवितुमर्हति, ततः कथमुक्तम् 'उक्तोसेण

होता है । इसका भाव यह है कि एक समय की स्थितिवाले अनानु-पूर्वीद्रव्य जिस समय दूसरे परिणाम से दो समय तक परिणमित बने रहते हैं और बादमें पुनः उसी अपनी पूर्व स्थिति में आजाते हैं तब वहां जघन्य से दो समय का अन्तर माना जाता है । और यदि वे परिणामान्तर से परिणमित बने हुए एक समय तक ही रहते हैं तो ऐसी दशा में वहां अन्तर ही नहीं होता है क्यों कि उसस्थिति में भी वहां अनानुपूर्वीत्व का सद्भाव है । और यदि वे दो समय के बाद तक भी परिणामान्तर से परिणमित बने रहते हैं तो वहां जघन्यता नहीं मानी जाती है । और जब वे ही द्रव्य असंख्यात काल तक परिणामान्तर से परिणमित रहकर पुनः एक स्थिति वाले अपने परिणाम को पाते हैं— तब उत्कृष्ट से असंख्यात काल अन्तर होता है ।—

वाणुं डोळ अेक अनानुपूर्वीं द्रव्ये न्यारे अन्य परिणाम इपे परिणमित थर्धने जे समय सुधी ते परिणाम इपे परिणमित थयेलुं रळीने त्यार णाद पोतानी अेक पूर्वस्थितिमां आवी नय, ते अेवी स्थितिमां त्यां नधन्य विरडकाण जे समयने गणाय छे. अने जे ते अेक समय सुधी न अन्य परिणाम इपे परिणमित थयेलुं रडे छे, ते अेवी परिस्थितिमां त्यां अंतर न डोळुं नथी, कारणे के अेवी दशामां ते द्रव्यमां अनानुपूर्वीत्वने सद्भाव न रडे छे. अने जे समय णाद पणु जे अन्य परिणाम इपे परिणमित थयेलुं न रडे, ते त्यां नधन्यता मानवामां आवती नथी परन्तु जे ते द्रव्य असंख्यात काळ सुधी अन्य परिणाम इपे परिणमित थयेलुं रळीने, त्यार णाद अेक समयनी स्थितिवाणा पोताना पूर्व परिणामने प्राप्त करे ते अेवी परिस्थितिमां ते अनानुपूर्वीं द्रव्यने उत्कृष्ट विरडकाण असंख्यातकाणने गणाय छे.

અસંખેજ્જં કાલં' ઇતિ? ઇતિ ચેદાહ—કાલાનુપૂર્વીપ્રક્રમાત્ કાલસ્યૈવાત્ર પ્રાધાન્યં વિવક્ષિતમ્, યદિ ચાત્ર અન્યાન્યદ્રવ્યક્ષેત્રસંબન્ધાદન્તરકાલબાહુલ્યં ક્રિયતે, તદા તદ્ દ્વારેણૈવાન્તરકાલસ્ય વહુત્વં સ્યાત્, તદા દ્રવ્યક્ષેત્રયોરેવ પ્રાધાન્યં સ્યાત્, ન તુ કાલસ્ય । તસ્માદેકસ્મિન્નેવ પરિણામન્તરે યાવાન્ કશ્ચિદુત્કૃષ્ટઃ કાલો લભ્યતે સ એવાન્તરે ચિન્ત્યતે, સ ચાસંખ્યેય એવ । તતઃ પરમેકેન પરિણામેન વસ્તુનોઽવસ્થાનસ્યૈવ નિષિદ્ધત્વાત્ । ઇદં ચ સૂત્રસ્ય વિવક્ષાૈવિચિત્ર્યાત્ સર્વં પૂર્વમુત્તરત્ર

શંકા—અન્ય ૨ દ્રવ્ય ઓર ક્ષેત્ર કે સાથ સંબન્ધ હોને પર અનન્ત-કાલ કા મી અન્તર હો સકતા હૈ, તો ફિર સૂત્રકાર ને “ઉક્કોસેણં અસંખેજ્જં કાલં” એસા ક્યોં કહા?

ઉત્તર—કાલાનુપૂર્વી કે પ્રકરણ સે કાલ મેં હી યહાં પ્રધાનતા વિ-વક્ષિત હુઈ હૈ, યદિ યહાં પર અન્ય ૨ દ્રવ્ય ઓર ક્ષેત્ર કે સંબન્ધ સે અન્તરકાલ મેં બાહુલ્ય ક્રિયા જાના હૈ તો યહ બાહુલ્ય ઉસમેં દ્રવ્ય ઓર ક્ષેત્ર કે દ્વારા હી આયા માના જાવેગા તથતો દ્રવ્ય ઓર ક્ષેત્ર કી હી પ્ર-ધાનતા હો જાવેગી કાલ કી નહીં । ઇસલિયે એક હી પરિણામાન્તર મેં જિનના કુછ ઉત્કૃષ્ટ કાલ લભ્ય હોતા હૈ વહી અન્તર મેં વિચારા જાતા હૈ ઓર વહ ઇસ પ્રકાર સે અસંખ્યાત હી લભ્ય હોતા હૈ । ઇસકે બાદ વ-સ્તુ કા એક પરિણામ રૂપ સે અવસ્થિત રહના હી નિષિદ્ધ હૈ । યહ સથ કથન સૂત્ર કી વિવક્ષા કી વિચિત્રતા સે આગે પીછે આગમ મેં વિરોધ ન

શંકા—જુદાં જુદાં દ્રવ્ય અને ક્ષેત્રની સાથે સંબંધ થતો હોય તો અનન્તકાળનું પણ અંતર સંભવી શકે છે. છતાં સૂત્રકારે ઉત્કૃષ્ટ અંતર અસંખ્યાતકાળનું શા કારણે કહ્યું છે?

ઉત્તર—કાલાનુપૂર્વીનું પ્રકરણ ચાલતું હોવાને કારણે અહીં કાળમાં જ પ્રધાનતા માનીને કથન કરવામાં આવ્યું છે. જો અહીં જુદાં જુદાં દ્રવ્ય અને ક્ષેત્રના સંબંધને લીધે અંતરકાળમાં બાહુલ્ય માનવામાં આવે, તો તે બાહુલ્ય તેમાં દ્રવ્ય અને ક્ષેત્રના દ્વારા જ આવેલું માનવું પડશે જો એ પ્રમાણે કરવામાં આવે તો કાળની પ્રધાનતાને બદલે દ્રવ્ય અને ક્ષેત્રની જ પ્રધાનતા માનવાનો પ્રસંગ ઉપરિથત થશે તેથી એક જ પરિણામાન્તરમાં જેટલો ઉત્કૃષ્ટકાળ થાય છે, તેને જ ઉત્કૃષ્ટ અંતર રૂપ માનવામાં આવે છે, અને તે ઉત્કૃષ્ટ અંતર ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે અસંખ્યાતકાળનું જ હોય છે. ત્યાર બાદ (અસંખ્યાત કાળ બાદ) વસ્તુ એક પરિણામ રૂપે અવસ્થિત (મોજુદ) રહેવાનો જ નિષેધ છે. આ સમસ્ત કથન, સૂત્રની વિવક્ષાની વિચિત્રતાને લીધે, એવી રીતે અહીં લગાડવું જોઈએ કે આગમના આગળપાછળના કથન

चागमाविरोधेन भावनीयम् । नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु नास्त्यन्तरम्, लोकस्य प्रतिप्रदेशे सर्वदा तस्य सद्भावादिति । तथा-नैगमव्यवहारसम्मतानामवक्तव्यक-द्रव्याणामपि अन्तरविषये पृच्छा=प्रश्नोऽनानुपूर्वीवद् बोध्यः । उत्तरस्तु-एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येनैकं समयमन्तरम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम् । नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरमिति । अयं भावः-द्विसमयस्थितिकं किंचिदवक्तव्यकद्रव्यं परिणामान्तरेण समयमेकं स्थित्वा ततः पुनर्द्विसमयस्थितिकत्वमेव यदा लभते तदा

आवे इस प्रकार लगा लेना चाहिये । नानाद्रव्यों की अपेक्षा करके जो अन्तर नहीं कहा गया है उसका कारण यह है कि लोक के प्रति प्रदेश में सर्वदा उसका सद्भाव रहा करता है । (नैगमव्यवहाराणं अवक्तव्यकद्रव्याणं पुच्छा) नैगमव्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्यों के अन्तर के विषय में प्रश्न-अनानुपूर्वीद्रव्य की तरह ही जानना चाहिये ।

उत्तर—उसका इस प्रकार से हैं—(एगं दर्व्वं पडुच्च) एक अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा करके (जहण्णेणं) जघन्य से अन्तर (एगं समयं) एक समय का है और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से अन्तर (असंखेज्जं कालं) असंख्यात काल का है । तथा (णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) नाना द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है । इसका तात्पर्य यह है कि दो समय की स्थितिवाला कोई अवक्तव्यक द्रव्य परिणामान्तर से परि-

नमां केाळ विरोध संलवे नहीं अनेक अनानुपूर्वीं द्रव्येनी अपेक्षाअे अंतर-विरहकाण-नेा अलाव कडेवानुं कारणु अे छे के लोकना प्रत्येक प्रदेशमां तेनेा सहा सद्भाव न रक्षा करे छे.

प्रश्न—(नैगमव्यवहाराणं अवक्तव्यकद्रव्याणं पुच्छा) नैगमव्यवहार नयसंमत अवक्तव्यक द्रव्येना अंतरना विषयमां पणु अनानुपूर्वीं द्रव्येना जेवे न प्रश्न समजवे।

उत्तर—(एगं दर्व्वं पडुच्च) अेक अवक्तव्यक द्रव्येनी अपेक्षाअे विचार करवामां आवे, तेा (जहण्णेणं एगं समयं) नघन्येनी अपेक्षाअे अेक समयनुं, अने (उक्कोसेण असंखेज्जं कालं) उ-कृष्टेनी अपेक्षाअे असंख्यात कालनुं अंतर डोय छे. अेटवे के ओछ.मां ओछे अेक समयनेा अने वधारेमां वधारे असंख्यात कालनेा विरहकाण डोय छे. (णाणादव्वाइ पडुच्च णत्थि अंतरं) विविध अवक्तव्यक द्रव्येनी अपेक्षाअे विचार करवामां आवे, तेा विरहकाण इप अंतरनेा अलाव डोय छे.

डवे आ कथननेा लावार्थं अताववामां आवे छे, धारे के अे समयनी स्थितिवाणुं केाळ अवक्तव्यक द्रव्येना परिणामनेा त्याग करीने केाळ

जघन्यत एकं समयमन्तरम् । यदा च परिणामान्तरेणासंख्येयं कालं स्थित्वा ततः पुनर्द्विममयस्थितिकृत्यं लभते तदा उत्कर्षेण असंख्येयं कालमन्तरं भवति । अनानुपूर्व्यां यथाऽऽक्षेपपरिहारौ तथाऽत्रापि बोध्यौ । तथा—नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु नास्ति अन्तरम्, लोके सर्वदा तेषां सद्भावात् । इत्थमन्तरद्वारमुक्त्वा सम्प्रति—भागद्वारं भावद्वारमल्पबहुत्वद्वारं च वक्तुकाम आह—‘भाग—भाव अल्पाबहुं चैव’ इत्यादि । अयं भावः—अत्रापि भागद्वारं क्षेत्रानुपूर्वीवद् बोध्यम् । क्षेत्रानुपूर्व्यां यथाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्यापेक्षयाऽसंख्येयैर्भागैरधिकानि, शेषद्रव्याणि तदपेक्षयाऽसंख्येयभागन्यूनानि तथाऽत्रापि बोध्यम् । इदमत्र बोध्यम्—अनानुपूर्वीद्रव्यं

णमित हुआ एक समय तक रहता है और बाद में फिर वह दो समय की अपनी पूर्वस्थिति को प्राप्त करलेता है तब इस स्थिति में विरहकाल जघन्यरूप से एक समय का माना जाता है और जब दो समय की स्थितिवाला कोई अवक्तव्यक द्रव्य परिणामान्तर से परिणमित असंख्यात काल तक बना रहकर फिर दो समय की अपनी पूर्वस्थिति में आ जाता है तब इस दशा में वहाँ उसका अन्तर असंख्यात काल का माना जाता है । अनानुपूर्वी में जिस प्रकार से आक्षेप और उसका परिहार किया गया है उसी प्रकार से यहीं पर भी आक्षेप और उसका परिहार उसी पद्धति से किया गया जानना चाहिये । तथा नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा जो अन्तर नहीं कहा गया है उसका कारण यह है कि लोक में सर्वदा अवक्तव्यक द्रव्यों का सद्भाव रहता है । (भाग, भाव, अप्पावहुं चैव जहा खेत्ताणुपुर्व्वीए तहा भाणिषव्वाइं

अन्य परिणाम इपे परिणमित थर्ध जय छे. त्यार भाद ते ओक समय सुधी ओज दशामां रहीने इरी जे समयनी पोतानी पूर्वस्थितिने प्राप्त करी ले छे. तो ओवी परिस्थितिमां जघन्य विरहकाण ओक समयनो गणाय छे. परन्तु केध अवक्तव्यक द्रव्य अन्य परिणाम इपे परिणमित थर्धने असंख्यात काण सुधी ते अन्य परिणाम इपे ज रहीने त्यार भाद जे समयनी पोतानी पूर्वस्थितिमां आवी जय छे, तो ओवी परिस्थितिमां ते अवक्तव्यक द्रव्यनुं उत्कृष्ट अंतर असंख्यात काणनुं मानवामां आवे छे. अनानुपूर्वीमां जे प्रकारनी शंका उठाववामां आवी छे ते प्रकारनी शंका अहीं पणु उठावी शकय छे आ शंकानुं त्यां जे प्रकारे निवारणु करवामां आव्युं छे ओज प्रकारे अहीं पणु निवारणु करी शकय छे,

विविध द्रव्योनी अपेक्षाजे अंतरनो अभाव कडेवानुं कारणे जे छे के लोकमां अवक्तव्यक द्रव्योने सदा सद्भाव रहे छे. (भाग, भाव, अप्पावहुं

हि एकसमयस्थितिलक्षणमेकं स्थानं लभते, अवक्तव्यद्रव्यं तु द्विसमयस्थितिलक्षणमेकं स्थानं लभते । आनुपूर्वीद्रव्यं तु त्रिसमयचतुःसमयपञ्चसमयस्थितिलक्षणानि स्थानान्यारभ्यासंख्येयस्थितिलक्षणपर्यन्तेषु स्थानेषु एकैकं स्थानं लभते । इत्थं आनुपूर्वीद्रव्यं शेषद्रव्यापेक्षयाऽसंख्येयभागाधिकम् । शेषद्रव्याणि तदपेक्षयाऽसं-

जाव से तं अणुगमे) भागद्वार, भावद्वार और अल्पबहुत्वद्वार क्षेत्रानुपूर्वी की तरह यहाँ पर भी जानना चाहिये । अर्थात् क्षेत्रानुपूर्वी में जैसे समस्त आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात भागों से अधिक-असंख्यातगुणित-स्थाने गये हैं और शेष द्रव्य-अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्यक द्रव्य-इनकी अपेक्षा असंख्यातभागन्यून माने हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी भागद्वार के विषय में कथन जानना चाहिये । यहाँ ऐसा जानना-अनानुपूर्वी द्रव्य एक समय की स्थितिरूप एक स्थान को प्राप्त करता है और जो अवक्तव्यक द्रव्य है वह द्विसमय की स्थितिरूप एक स्थान को पाता है, तथा जो आनुपूर्वी द्रव्य है, वह तीन समय, चार समय पांच समय की स्थितिरूप स्थानों से लेकर असंख्यात समय तक की स्थितिरूप स्थानों में एक एक स्थान को प्राप्त करता है । इस प्रकार आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात भागों से अधिक

वेव जहा क्षेत्रानुपूर्वीए तहा भागियच्चाहं जाव से तं अणुगमे) भागद्वार, भावद्वार अने अवक्तव्यक द्रव्यद्वारतुं कथन क्षेत्रानुपूर्वीनी जेम न अहीं पणु समज्जुं लेधजे अट्ठे के क्षेत्रानुपूर्वीमां जेवी रीते समस्त आनुपूर्वीं द्रव्येने भाङ्गीनां द्रव्ये करतां असंख्यातगणुं कहेवामां आणुं छे, अने भाङ्गीनां द्रव्येने (अनानुपूर्वीं अने अवक्तव्यक द्रव्येने) आनुपूर्वीं द्रव्ये करतां असंख्यात भागप्रमाणुं कहेवामां आवेल छे, अज्ज प्रमाणुं अहीं पणु भागद्वारना विषयमां कथन अणुं यणुं लेधजे आ कथननुं वणुं रूपटीकरणुं नीथे प्रमाणुं समज्जुं ।

अनानुपूर्वीं द्रव्ये अेक समयनी स्थिति इप अेक स्थानने प्राप्त करे छे, अने जे अवक्तव्यक द्रव्ये छे ते जे समयनी स्थिति इप अेक स्थानने प्राप्त करे छे, तथा जे आनुपूर्वीं द्रव्ये छे ते त्रणु, चार, पांच आदि समयनी स्थिति इप स्थानोथी लधने असंख्यात समय पर्यन्तनी स्थिति इप स्थानोमांना अेक अेक स्थानने प्राप्त करे छे । आ प्रकारे आनुपूर्वीं द्रव्ये भाङ्गीनां जे द्रव्ये करतां असंख्यातगणुं अधिक संभवी शके छे अने भाङ्गीना

संख्येयभागन्यूनानीति । तथा-भावद्वारे आनुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकानां त्रयाणामपि द्रव्याणां सादिपारिणामिकभाववर्तित्वं पूर्ववद् बोध्यम् । तथा-एषां त्रयाणां द्रव्याणामल्पबहुत्वद्वारमेवं बोध्यम्-अवक्तव्यकद्रव्याणि हि सर्वस्तोकानि, तेषां स्वभावत एव स्तोक्रत्वात् । अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु ततो विशेषाधिकानि, अनानुपूर्वीद्रव्याणामवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया विशेषाधिकत्वात् । आनुपूर्वीद्रव्याणि तु उक्तो-भयद्रव्यापेक्षया असंख्येयभागाधिकानि । असंख्येयभागाधिकत्वं त्वेषाम् उपरि-भागद्वारे निर्दिष्टं तथैवात्राऽपि बोध्यम् । भागादि विषये क्षेत्रानुपूर्वीवत् सर्वं बोध्यमिति । इत्थं नैगमव्यवहारसम्मतताऽनौपनिधिकी कालानुपूर्वीवत् उपसंहृतेति

लभ्य होता है । और शेष दो द्रव्य उसकी अपेक्षा अमंख्यातभागन्यून लभ्य होते हैं । भावद्वार में आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक ये तीनों भी द्रव्य पूर्व के जैसे सादि पारिणामिक भाववर्ती हैं । तथा- इन तीनों द्रव्यों का अल्पबहुत्वद्वार इस प्रकार से जानना चाहिये-समस्त अवक्तव्यक द्रव्य स्वभाव से ही कम होने से शेष दो द्रव्यों की अपेक्षा से कम हैं । अनानुपूर्वी द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से कुछ-विशेष अधिक हैं । तथा जो आनुपूर्वी द्रव्य हैं वे इन दोनों द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात गुणा अधिक हैं । असंख्यात भागाधिकता जिस प्रकार से ऊपर भागद्वार में प्रकट की गई है उसी प्रकार से यहां पर भी जानना चाहिये । तात्पर्य कहने का यह है कि इन भागादिद्वारों के विषय में सब कथन क्षेत्रानुपूर्वी की तरह ही जानना चाहिये । इस प्रकार (जाव से तं अ.) यावत् यह अनुगम का स्वरूप

के प्रकारनां द्रव्ये आनुपूर्वीं द्रव्ये करतां असंख्यात भागप्रमाणं न्यूनं होय शके छे.

भावद्वारमां आनुपूर्वीं अने अवक्तव्यक, आ त्रये द्रव्येने आगणे कथा प्रमाणे सादिपारिणामिक भाववर्तीं कथां छे.

आ त्रयेना अल्पबहुत्वद्वारतुं कथन आ प्रमाणे समञ्जसुं-समस्त अवक्तव्यक द्रव्य स्वाभाविक रीते न ओष्ठुं होवाने कारणे पाडीनां अन्ने द्रव्ये करतां ओष्ठुं छे. अवक्तव्यक द्रव्ये करता अनानुपूर्वीं द्रव्ये विशेषाधिक छे अनानुपूर्वीं द्रव्ये अने अवक्तव्यक द्रव्ये करतां आनुपूर्वीं द्रव्य असंख्यात भागप्रमाणं अधिकतानुं स्पष्टीकरणे उपर भागद्वारमां न्ने प्रमाणे करवामां आंयुं छे ते प्रमाणे अहीं पणु समञ्ज हेवुं आ समस्त कथननुं तात्पर्यं ओ छे के आ भागादि द्वारेना विषयमां समस्त कथन क्षेत्रानुपूर्वीनां न्नेपुं न समञ्जसुं (जाव से तं अनुगमे) “ आ प्रकारनुं अनुगमनुं स्पष्टप

सूचयितुमाह—‘से तं’ इत्यादि। सैषा नैगमव्यवहारसम्भता अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी ॥सू० १३४॥

अथ संग्रहनयमतेन अनौपनिधिकीं कालानुपूर्वीमाह—

मूलम्—से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ? संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पणत्ता, तं जहा—अत्थपयपरुवणया, भंगसमुक्कित्तणया, भंगोददंसणया, समोयारे, अणुगमे ॥सू० १३५॥

छाया—अथ का सा संग्रहस्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी ? संग्रहस्य अनौ है। इसको समाप्त होते ही नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीका यह प्रकरण समाप्त हो रहा है इस बात को सूचित करने के लिये सूत्रकार कहते हैं कि (से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी) इस प्रकार से यह नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है ॥सू०-१३४॥

अब सूत्रकार संग्रहनय के मन्तव्यानुसार अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का कथन करते हैं—“से किं तं संगहस्स” इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी) हे भदंत। संग्रहनयमान्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर—(संगहस्स अणोवणिहिया) संग्रहनय मान्य अनौपनिधिकी (कालाणुपुव्वी) कालानुपूर्वी (पंचविहा पणत्ता) पांच प्रकार की

छे.” आ कथन पर्यन्ततुं क्षेत्रानुपूर्वीना प्रकरणमांतुं समस्त कथन अह्मी अह्मि करतुं जेधये तेनी समाप्ति यतां न नैगमव्यवहार नयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीतुं आ प्रकरण समाप्त यध रहुं छे, ये वातने सूचित करवाने भाटे सूत्रकार आ प्रमाणे कहे छे—(से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी) “नैगमव्यवहार नयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीतुं उपर गताण्या प्रमाणेतुं स्वइप छे.” ॥सू० १३४॥

इसे सूत्रकार संग्रहनयना मंतव्य अनुसार अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीतुं कथन करे छे—“से किं तं संगहस्स” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ?) हे भदंत। संग्रहनयमान्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीतुं स्वइप केतुं छे ?

उत्तर—(संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पणत्ता) संग्रहनय-

पनिधिकी कालानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तथा-अर्थपदप्ररूपणता, भङ्गसमुत्कीर्तनता, भङ्गोपदर्शनता, समवतारः अनुगमः ॥सू० १३५॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि । व्याख्याऽस्य पूर्ववद् बोध्या ॥सू० १३५॥

अर्थपदप्ररूपणतादीनां निरूपणायाह—

मूलम्—से किं तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया ? एयाइं पंच वि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स तहा कालाणुपुव्वीए वि भाणियव्वाणि, णवरं ठिई अभिलावो, जाव से तं अणुगमे से तं संगहस्स अणौवणिहिथा कालाणुपुव्वी ॥सू० १३६॥

छाया—अथ का सा संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता ? एतानि पञ्चापि द्वाराणि यथा क्षेत्रानुपूर्व्या संग्रहस्य तथा कालानुपूर्व्यामपि भणितव्यानि, नवरं स्थित्यभिलापः, यावत्स एषोऽनुगमः । सैषा संग्रहस्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी ॥सू० १३६॥

टीका—“से किं तं” इत्यादि ।

अथ का सा संग्रहसम्मतार्थपदप्ररूपणता ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—एतानि=अर्थप्ररूपणतादीनि पञ्चापि द्वाराणि संग्रहमते क्षेत्रानुपूर्व्यामेकौत्तरशततमे सूत्रे

कही गई है (तं जहा) जैसे—(अट्टपयपरूवणया भंगसमुत्कीर्तनया, भंगोवदंसणया ‘समोयारे’ अणुगमे) अर्थपदप्ररूपणता, भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शनता समवतार और अनुगम इत्यस्य सूत्र की व्याख्या पहिले की गई व्याख्या के अनुसार ही जाननी चाहिये ॥सू० १३५॥

“से किं तं संगहस्स” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं संगहस्स अट्टपयपरूवणया) हे भदंत ! संग्रहनयमान्य अर्थपद प्ररूपणता क्या है ? (एयाइं पंच वि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स तहा कालाणुपुव्वीए वि भाणियव्वाणि)

संमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी पांच प्रकारनी कही छे. “तं जहा” ते पांच प्रकारे नीचे प्रभावे छे—(अट्टपयपरूवणया भंगसमुत्कीर्तनया, भंगोवदंसणया, समोयारे, अणुगमे) (१) अर्थपद प्ररूपणता, (२) भंगसमुत्कीर्तनता, (३) भंगोपदर्शनता, (४) समवतार अने (५) अनुगम आ सूत्रनी व्याख्या पहिले कही प्रभावे समजवी ॥सू० १३५॥

“से किं तं संगहस्स” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं संगहस्स अट्टपयपरूवणया ?) हे भगवन् ! संग्रहनयमान्य अर्थपद प्ररूपणतानुं कइयुं छे ?

उत्तर—(एयाइं पंच वि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स तहा कालाणुपुव्वीए वि भाणियव्वाणि) संग्रहनयमान्य क्षेत्रानुपूर्व्यां आ पांचे दारेणुं

यथा सन्ति तथा कालानुपूर्व्यामपि संग्रहमते भणितव्यानि । नवरं=विशेषस्त्वयमेव-
यदत्र स्थित्यभिलाषः कर्तव्यः । अयं भावः-क्षेत्रानुपूर्व्यां “तिप्पएसोगाढे आणु-
पुव्वी, चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी” इत्याद्युक्तम्, एवमिह-“ तिसमयट्टिहए
आणुपुव्वी, चउसमयट्टिहए आणुपुव्वी ” इत्यादि वक्तव्यमिति । क्षेत्रानुपूर्वोवत्
कियंदवधिवक्तव्यम् ? इत्याह-‘ जाव से तं ’ इति । यावत्स एणोऽनुगम इति
पर्यन्तं क्षेत्रानुपूर्वोवदेव वक्तव्यमिति । प्रकृतमुपसंहरन्नाह-‘ से तं संगहस्स ’
इत्यादि । सैषा संग्रहनयसम्पत्ता अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीति ॥सू० १३६॥

उत्तर--संग्रहनय मान्य इन पांचों द्वारों का कथन जिस प्रकार का
क्षेत्रानुपूर्वी में किया गया है उसी प्रकार का कथन संग्रहनयसंमत इन
पांचों द्वारों का इस कालानुपूर्वी में भी जानना चाहिये । (जवरं ठिई
अभिलाषो जाव से तं अणुगमे) परन्तु विशेषता केवल इतनी है कि
क्षेत्रानुपूर्वी में “त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी चतुष्प्रदेशावगाढ आनुपूर्वी ”
इस प्रकार से भंगों का आलाप करने में आया है तब यहां पर ” ति
समयट्टिहए आणुपुव्वी चउसमयट्टिहए आणुपुव्वी ” इत्यादि प्रकार से
भंगों का आलाप करना चाहिये । क्षेत्रानुपूर्वी की तरह इन आनुपूर्वी
आदि भंगों का संग्रह कहां तक करना चाहिये इसके लिये सूत्रकार क-
हते हैं कि “से तं अणुगमे” इस प्रकार यह क्षेत्रानुपूर्वी संबन्धी अनु-
गम का स्वरूप है ” यहां तक संग्रह करना चाहिये । (सेतं संगहस्स अ-
णोवणिहिया कालानुपुव्वी) इस प्रकार यह संग्रहनय संमत अनौप-
निधिकी कालानुपूर्वी है ।

नेपुं कथन करवामां आब्धुं छे, जेपुं न कथन संग्रहनयसंमत आ काला-
नुपूर्वीना पाये द्वारेना विषयमां यणु समल्ल देपुं, (जवरं ठिई अभिलाषो
जाव से तं अणुगमे) परन्तु क्षेत्रानुपूर्वीना कथन करतां आ कथनमां नीये
प्रमाणे विशिष्टता रहेली छे-क्षेत्रानुपूर्वीना प्रकरणमां “ त्रिप्रदेशावगाढ
आनुपूर्वी, चतुष्प्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, ” (आ प्रकारे लंगोतुं कथन करवामां
आब्धुं छे, त्यादे संग्रहनयसंमत कालानुपूर्वीमां “ तिसमयट्टिहए आणुपुव्वी,
चउसमयट्टिहए आणुपुव्वी, ” इत्यादि प्रकारे लंगोतुं कथन करवुं लेधये
क्षेत्रानुपूर्वीना प्रकरणगत पाठतुं कथन, “ से तं अणुगमे ” “ आ प्रकारतुं
अनुगमतुं स्वरूप छे. आ सूत्रपाठ पर्यन्त करवुं लेधये. (से तं संगहस्स
अणोवणिहिया कालानुपुव्वी) आ प्रकारतुं संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी
कालानुपूर्वीनु स्वरूप छे.

अथ औपनिधिकीं कालानुपूर्वीं प्ररूपयितुमाह—

मूळम्—से किं तं ओवणिहिया कालाणुपुर्वी ? ओवणिहिया कालाणुपुर्वी तिविहा पणत्ता, तं जहा—पुवाणुपुर्वी पच्छाणुपुर्वी अणाणुपुर्वी । से किं तं पुवाणुपुर्वी ? पुवाणुपुर्वी समए, आव-
लिया, आण, पाणू, थोवे, लवे, मुहुत्ते, अहोरत्ते, पक्खे, मासे,
उऊ, अयणे, संवच्छरे, जुगे, वाससए, वाससहस्से, वाससय-
सहस्से, पुव्वंगे, पुव्वे, तुडियंगे, तुडिए, अडडंगे, अडडे, अव-
वंगे, अववे, हुहुअंगे, हुहुए, उप्पलंगे, उप्पले, पउमंगे, पउमे,
णलिंगे, णलिंगे, अत्थनिऊरंगे, अत्थनिऊरे, अउअंगे, अउए,
नउअंगे, नउए, पउअंगे, पउए, चूलिअंगे, चूलिया, सीसपहेलि-
अंगे, सीसपहेलिया, पलिओवमे, सागरोवमे, ओस्सप्पिणी,

भावार्थ— सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा संग्रहनय मान्य अनौपनि-
धिकी कालानुपूर्वी के अर्थप्ररूपणता आदि पांच द्वारों के स्वरूप कथन
के विषय में यह समझाया है कि इन पांच द्वारों के स्वरूप का कथन
क्षेत्रानुपूर्वी में संग्रहनय की मान्यता के प्रकरण में जिस प्रकार से किया
गया है वैसा ही स्वरूप कथन इनका इस कालानुपूर्वी में इस प्रकरण में
जानना चाहिये। परन्तु उस प्रकरण में प्रदेशों को लेकर आनुपूर्वी आदि
भंगों का स्वरूप कथन करने में आया है—तब कि यहां पर समयों को
लेकर आनुपूर्वी आदि भंगों का स्वरूप दिखाया गया है । सू० १३६॥

लाव.थं—सूत्रकारे आ सूत्रमां संग्रहनयसंभत अनौपनिधिकी कालानुपू-
र्वीना अर्थप्ररूपणता आदि पांच द्वाराना स्वरूपतुं निरूपयितुं कथुं छे—
संग्रहनयसंभत क्षेत्रानुपूर्वीना प्रकरणमां आ पांच द्वारे विषे जेवुं कथन
करनामां आणुं छे, जेवुं न कथन अहीं पणु अहणु करवानुं कथुं छे. ते
प्रकरणता कथन करतां आ प्रकरणता कथनमां अटली न विशेषता छे के ते
प्रकरणमां प्रदेशोनी अपेक्षाजे लंगेनुं कथन करवामां आणुं छे, परन्तु अहीं
समये.नी अपेक्षाजे आनुपूर्वी आदि भंगोना लंगेनुं कथन करवामां आणुं
छे, जेम समजवुं ॥सू०१३६॥

उत्सर्पिणी, पोग्गलपरियट्टे, अईयद्धा, अणागयद्धा, सव्वद्धा ।
 से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी—सव्वद्धा अणागयद्धा जाव
 समए । से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ? अणाणु-
 पुव्वी—एयाए च्चेव एगाइयाए इगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए
 सेठीए अणमण्णव्भासो दुरूव्वणो । से तं अणाणुपुव्वी । अहव्वा
 ओवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहा पणत्ता, तं जहा—पुव्वाणु-
 पुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी । से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?
 पुव्वाणुपुव्वी—एगसमयट्ठिइए, दुसमयट्ठिइए, तिसमयट्ठिइए
 जाव दससमयट्ठिइए संखिज्जसमयट्ठिइए असंखिज्जसमयट्ठिइए
 से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी ? पच्छाणुपुव्वी—
 असंखिज्जसमयट्ठिइए जाव एगसमयट्ठिइए । से तं पच्छाणुपुव्वी ।
 से किं तं अणाणुपुव्वी ? अणाणुपुव्वी—एयाए च्चेव एगाइयाए
 एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेठीए अन्नमन्नव्भासो
 दुरूव्वणो, से तं अणाणुपुव्वी । से तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी ।
 से तं कालाणुपुव्वी ॥सू० १३७॥

छाया—अथ का सा औपनिधिकी कालानुपूर्वी ? औपनिधिकी कालानुपूर्वी
 त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानु-
 पूर्वी ? पूर्वानुपूर्वी—समयः आवलिका आनः प्राणः स्तोकः लवः मुहूर्तः अहोरात्रः पक्षः
 मासः ऋतुः अयनं संवत्सरः युगं वर्षशतं वर्षसहस्रं वर्षगतसहस्रं पूर्वार्द्धं पूर्वं त्रुटिताङ्गं
 त्रुटितम् अटटाङ्गम् अटटम् अववाङ्गम् अववम् हुहुकाङ्गं हुहुकम् उत्पलाङ्गम् उन्पलं
 पघाङ्गं पघं, नलिनाङ्गं नलिनम् अर्थनिपूराङ्गम् अर्थनिपूग्म् अयुताङ्गम् अयुतं नयुताङ्गं
 नयुतं प्रयुताङ्गं प्रयुतं चूलिकाङ्गं चूलिका शीर्षप्रदेलिकाङ्गं शीर्षप्रदेलिका पल्पोपमं
 सागरोपमम् अवसर्पिणी उत्सर्पिणी पुद्गलपरिवर्तः अतीताद्धा अनागताद्धा सर्वाद्धा ।
 तेषां पूर्वानुपूर्वी । अथ का सा पश्चानुपूर्वी ? पश्चानुपूर्वी—सर्वाद्धा अनागताद्धा

यावत् समयः । सैषा पश्चानुपूर्वी । अथ का सा अनानुपूर्वी ? अनानुपूर्वी-एतस्या-
मेव एकादिकायामेकोत्तरिकायामनन्तगच्छगतायां श्रेण्यामन्योऽन्याभ्यासो द्विरू-
पोनः । सैषाऽनानुपूर्वी । अथवा-औपनिधिकी कालानुपूर्वी त्रिविधा मज्ञप्ता,
तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानुपूर्वी ? पूर्वानुपूर्वी-
एकसमयस्थितिको द्विसमयस्थितिकः त्रिसमयस्थितिको यावद् दशसमयस्थितिकः
संख्येयसमयस्थितिकः असंख्येयतमस्थितिकः । सैषा पूर्वानुपूर्वी । अथ का सा
पश्चानुपूर्वी ? पश्चानुपूर्वी-असंख्येयसमयस्थितिको यावत् एकसमयस्थितिकः । सैषा
पश्चानुपूर्वी । अथ का सा अनानुपूर्वी ? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामे-
कोत्तरिकायामसंख्येयगच्छगतायां श्रेण्यामन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः । सैषा
अनानुपूर्वी । सैषा औपनिधिकी कालानुपूर्वी । सैषा कालानुपूर्वी ॥सू० १३७॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा औपनिधिकी कालानुपूर्वी ? इति प्रश्नः । उत्तरयति-औपनिधिकी
कालानुपूर्वी पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्व्यनानुपूर्वीभेदेन त्रिविधा मज्ञप्ता । तत्र पूर्वानु-
पूर्वी-समयः=वक्ष्यमाणस्वरूपः सर्वसूक्ष्मः कालांशः एष हि सर्वप्रमाणानां प्रभव-

अथ सूत्रकार औपनिधिकी कालानुपूर्वी की प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं ओवणिहिया” इत्यादि ।

शब्दार्थ — (से किं तं ओवणिहिया कालानुपूर्वी ?) हे भदन्त ।
औपनिधिकी कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर— (ओवणिहिया कालानुपूर्वी) औपनिधिकी कालानुपूर्वी
(त्रिविधा पणत्ता) तीन प्रकार की कही गई हैं (तं जहा) वे प्रकार ये हैं
(पुत्राणुपुन्वी, पच्छाणुपुन्वी, अणाणुपुन्वी) ? पूर्वानुपूर्वी ? पश्चानुपूर्वी ?
अनानुपूर्वी । (से किं तं पुत्राणुपुन्वी) हे भदन्त । पूर्वानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर—“समए, आवलिया, आण, पाणू, थोवे, लवे, मुहुत्ते, अहो

इवे सूत्रकार औपनिधिकी कालानुपूर्वी की प्ररूपणा करे थे—

“से किं तं ओवणिहिया” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं ओवणिहिया कालानुपूर्वी ?) हे भगवन् ! औपनि-
धिकी कालानुपूर्वी का स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—(ओवणिहिया कालानुपूर्वी) औपनिधिकी कालानुपूर्वी (त्रिविधा
पणत्ता, तंजहा) नीचे प्रमाणों के प्रकार कहे हैं—(पुत्राणुपुन्वी, पच्छाणु-
पुन्वी, अणाणुपुन्वी) (१) पूर्वानुपूर्वी, (२) पश्चानुपूर्वी, (३) अनानुपूर्वी ।

प्रश्न—(से किं तं पुत्राणुपुन्वी) हे भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—(समए, आवलिया, आण, पाणू, थोवे, लवे, मुहुत्ते, अहोत्ते,

रत्ने, पक्खे, मासे, उऊ, अयणे", समय आवलिका, आन, प्राण, स्तोक लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन (संवच्छरे) संवत्सर (जुगे) युग, (वाससए) वर्षशत (वाससहस्से) वर्ष सहस्र, (वाससयसहस्से) वर्षशतसहस्र, (पुव्वंगे) पूर्वाङ्ग (पुव्वे) पूर्व (तुडियंगे) त्रुटितांग (तुडिए) त्रुटित, (अडडंगे) अटटाङ्ग (अडडे) अटट (अववंगे) अववाङ्ग (अववे) अवव (हुहुअंगे) हुहुकाङ्ग (हुहुए) हुहुक (उप्पलंगे) उत्पलाङ्ग (उप्पले) उत्पल (पउमंगे) पद्माङ्ग (पउमे) पद्म (णलिंगे) नलिनाङ्ग (णलिणे) नलिन (अत्थनिऊरंगे) अर्थ निपूराङ्ग (अत्थनिऊरे) अर्थ निपूर (अउअंगे) अयुताङ्ग (अउए) अयुत (नउअंगे) नयुताङ्ग (नउए) नयुत (पउअंगे) प्रयुताङ्ग (पउए) प्रयुत (चूलिअंगे) चूलिकांग (चूलिया) चूलिका (सीसपहेलिअंगे) शीर्षप्रहेलिकाङ्ग (मीसपहेलिया) शीर्षप्रहेलिका (पलिओवमे) पल्योपम (सागरोवमे) सागरोपम (ओसप्पिणी) अवसर्पिणी (उस्सप्पिणी) उत्सर्पिणी (पोग्गलपरियट्टे) पुद्गलपरिवत्त (अईयद्धा) अतीताद्धा (अणागयद्धा) अनागताद्धा (सव्वद्धा) सर्वाद्धा । यह पूर्वानुपूर्वी हैं । समय का स्वरूप आगे स्वयं सूत्रकार कहेंगे । यह काल का सप्त से सूक्ष्म अंश है । इससे ही समस्त प्रमाणों की आवलिका आदिकों की - उ-

पक्खे, मासे, उऊ, अयणे,) समय, आवलिया, आन, प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, (संवच्छरे, जुगे) संवत्सर, युग, (वाससए) वर्षशत, (वाससहस्से) वर्षसहस्र, (वाससयसहस्से) वर्षशतसहस्र (वाससवर्ष) (पुव्वंगे, पुव्वे) पूर्वांग, पूर्व (तुडियंगे, तुडिए) त्रुटितांग, त्रुटित, (अडडंगे, अडडे) अटटांग, अटट, (अववंगे, अववे) अववांग, अवव, (हुहुअंगे, हुहुए) हुहुकांग, हुहुक, (उप्पलंगे, उप्पले) उत्पलांग, उत्पल (पउमंगे, पउमे) पद्मांग, पद्म, (णलिंगे, णलिणे) नलिनांग, नलिन, (अत्थनिऊरंगे) अर्थनिपूरांग, (अत्थनिऊरे) अर्थनिपूर, (अउअंगे) अयुतांग, (अउए) अयुत, (नउअंगे, नउए) नयुतांग, नयुत, (पउअंगे) प्रयुतांग, (पउए) प्रयुत, (चूलिअंगे) चूलिकांग, (चूलिया) चूलिका, (सीसपहेलिअंगे) शीर्षप्रहेलिकांग, (सीसपहेलिया) शीर्षप्रहेलिका, (पलिओवमे) पल्योपम, (सागरोवमे) सागरोपम, (ओसप्पिणी) अवसर्पिणी, (उस्सप्पिणी) उत्सर्पिणी, (पोग्गलपरियट्टे) पुद्गलपरिवत्त, (अईयद्धा) अतीताद्धा, (अणागयद्धा) अनागताद्धा, (सव्वद्धा) सर्वाद्धा, आ कमे पट्टेने उप्पन्यास करेते तेनुं नाम पूर्वानुपूर्वीं छे. काणना सौथी सूक्ष्म अंशतुं नाम 'समय' छे. सूत्रकार पोते ५ तेनुं स्वइय आगण समन्तावाणा छे. ते समयने आधारे ५ आवलिका आदि ६.७ प्रमाणोनी

ત્વાત્ પ્રથમં નિર્દિષ્ટઃ, આવલિકા इयं हि असंख्येयैः समयैर्निष्पद्यते । आन = एक
 उच्छ्वासः संख्येयाऽऽवलिकारूपः, उपलक्षणारसंख्येयावलिकारूपो निःश्वासोऽपि-
 ब्राह्मः । प्राणः = संख्येयावलिकारूपयोरुच्छ्वासनिःश्वासयोः कालः, स्तोत्रकः = सप्त-
 प्राणात्मकः, लवः = सप्तस्तोकात्मकः, मुहूर्त्तः = सप्तसप्ततिलवात्मकः, अहोरात्रः =
 त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकः, पक्षः = पञ्चदशाहोरात्ररूपः, मासः = पक्षद्वयरूपः, ऋतुः = मास-
 द्वयरूपः, अयनम् = ऋतुत्रयात्मकम्, संवत्सरः = अयनद्वयात्मकः, युगं = पञ्चवर्षात्म-
 कम्, वर्षशतं = विंशतियुगात्मकम्, वर्षसहस्रम्, वर्षशतसहस्रम् - शतगुणितं सहस्र-
 शतसहस्रं - वर्षाणां शतसहस्रं वर्षशतसहस्रं - लक्षवर्षाणि, पूर्वाङ्गम् = चतुरशीतिलक्ष-

ત્પત્તિ હોતી હૈ હસલિયે સૂત્રકાર ને સર્વ પ્રથમ હસલા ઉપન્યાસ કિયા હૈ ।
 અસંખ્યાન સમયો કોં એક આવલિકા હોતી હૈ । સંખ્યાન આવલિકાઓ
 કા એક ઉચ્છ્વાસ હોના હૈ । હસી પ્રકાર સંખ્યાન આવલિકા રૂપ એક
 નિશ્વાસ હોતા હૈ । સંખ્યાત આવલિકા રૂપ જો ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસ
 કા કાલ હૈ વહી પ્રાણ હૈ સાત પ્રાણોં કા એક સ્તોત્ર હોતા હૈ । સાત સ્તો-
 ત્રોં કા એક લવ હોતા હૈ । સતહત્તરલવોં કા એક મુહૂર્ત્ત હોતા હૈ । તી-
 સ મુહૂર્ત્તોં કા એક અહોરાત્ર હોતા હૈ । ૧૫ અહોરાત્ર કા એક પક્ષ હો-
 તા હૈ । દો પક્ષોં કા એક માસ હોતા હૈ । દો મહીનોં કી એક ઋતુ હોતી
 હૈ । ત્રીન ઋતુઓં કા એક અયન હોતા હૈ । દો અયનોં કા એક સંવત્સર
 હોતા હૈ । પાંચ વર્ષ કા એક યુગ હોતા હૈ । વીસ યુગોં કા એક સૌ વર્ષ
 હોતા હૈ । દશસૌ વર્ષોં કા એક વર્ષસહસ્ર હોતા હૈ । સૌ હજાર વર્ષોં કા
 એક લાખ વર્ષ હોતા હૈ । ચૌરાસી લાખ વર્ષોં કા ૧ પૂર્વાઙ્ગ હોતા હૈ ।

ગણતરી કરી શકાય છે, તેથી જ સૂત્રકારે સૌથી પહેલાં સમયનો ઉપન્યાસ
 કર્યો છે. અસંખ્યાત સમયોની એક આવલિકા થાય છે. સંખ્યાત આવલિ-
 કાઓનો એક નિઃશ્વાસ (નિઃશ્વાસ પ્રમાણ કાળ) થાય છે. સંખ્યાત આવલિ-
 કાઓ ૩૫ જે ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસનો કાળ છે. તેનું નામ જ પ્રાણ છે. સાત
 પ્રાણોનો એક સ્તોત્ર થાય છે સાત સ્તોત્રનો એક લવ થાય છે. ૭૭ લવનું
 એક મુહૂર્ત્ત થાય છે. ૩૩ મુહૂર્ત્તનું એક અહોરાત્ર (દિનરાત્રિ) થાય છે ૧૫
 અહોરાત્રનું એક પક્ષ (પખવાડિયું) થાય છે. બે પક્ષોનો એક માસ થાય
 છે. બે માસની એક ઋતુ થાય છે. ત્રણ ઋતુનું એક અયન થાય છે. બે
 અયનોનું એક સંવત્સર (વર્ષ) થાય છે પાંચ સંવત્સરનો એક યુગ થાય છે.
 વીસ યુગના શતવર્ષ થાય છે દસ સો વર્ષપ્રમાણ કાળને વર્ષસહસ્ર કહે છે.
 એ દસ (લાખ) વર્ષપ્રમાણ કાળને લાખવર્ષ કહે છે ૮૪ લાખ વર્ષોનું એક

वर्षात्मकम्, पूर्वम्=चतुरशीत्यालक्षैर्गुणिते चतुरशीतिलक्षात्मकेऽङ्के यावती संख्या-
लभ्यते तत्प्रमाणम्, सा संख्याच-सप्ततिकोटिलक्षाणि षट्पञ्चाशच्चकोटिसहस्राणि
(७०५६००००००००००) वर्षाणाम् । उक्तं च—

“ पुण्ड्रस्स उ परिमाणं, सयरी खलु हुंति कोटिलखाउ ।

छप्पणं च सहस्सा, वोद्धव्या वासकोडीणं ॥”

छाया—पूर्वस्य तु परिणामं सप्ततिः खलु भवन्ति कोटिलक्षाः ।

षट्पञ्चाशच्च सहस्राणि वोद्धव्या वर्षकोटीनाम् ॥ इति ॥

इदमपि चतुरशीत्यालक्षैर्गुणितं त्रुटिताङ्गं भवति । त्रुटिताङ्गं हि चतुरशीत्यालक्षै-
र्गुणितं सदेकं त्रुटितं भवति । त्रुटितं च चतुरशीत्यालक्षैर्गुणितं सदेकम् अटटाङ्गं
भवति । चतुरशीत्यालक्षैर्गुणितं च अटटाङ्गमेकमटटं भवति । एवमेव इतः प्रभृति

चौरासी लाखपूर्वाङ्ग का? पूर्व होता है । इसमें वर्षों की संख्या ७०५६०००,
०००,०००० इतनी आती है । यही बात “पुण्ड्रस्स उ परिमाणं” इत्यादि
गाथा द्वारा प्रकट की है । इन वर्षों में ८४ लाख का गुणा करने पर जो
संख्या आती है वह त्रुटिताङ्ग का परिमाण है । त्रुटिनांग परिमाण में
चौरासीलाख का गुणा करने पर एक त्रुटित होता है । एक त्रुटित को
८४ लाख से गुणा करने पर १ अटटाङ्ग होता है । एक अटटाङ्ग को चौरा-
सी लाख से गुणा करने पर एक अटट होता है । १ अटट प्रमाण में
चौरासी लाख से गुणा करने पर १ एक अववाङ्ग होता है । १ अववाङ्ग
में ८४ लाख का गुणा करने पर एक अवव होता है । इसी प्रकार आगे २
शीर्षप्रहेलिका तक के प्रमाणों में ऐसे ही करते चले जाना चाहिये ।
अर्थात् १ अवव में चौरासी लाख से गुणा करने पर १ हुहुकाङ्ग, १ हु-
हुकाङ्ग में चौरासी लाख से गुणा करने पर १ हुहुक, १ हुहुक में चौरासी

पूर्वांग थाय छे, अने ८४ लाख पूर्वांगानुं अेक पूर्व थाय छे. अेक पूर्वना
७०५६०००००००००००० वर्ष थाय छे अेज वात सूत्रकारे “ पुण्ड्रस्स उ
परिमाणं” इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा प्रकट करी छे. ८४ लाख पूर्वानुं अेक
त्रुटितांग थाय छे अेटले के ७०५६०००००००००००० वर्षने ८४ लाख वडे
शुशुवाथी नेटलां वर्ष आवे छे, तेटलां वर्षप्रमाणु काणने अेक त्रुटितांग छे
छे ८४ लाख त्रुटितांगानुं अेक त्रुटित थाय छे. ८४ लाख त्रुटितानुं अेक
अटटांग थाय छे. ८४ लाख अटटानुं अेक अववांग थाय छे ८४ लाख
अववांगानुं अेक अवव थाय छे. अेक अववना ८४ लाख गछां करवाथी
अेक हुहुकांगप्रमाणु काण अने छे. ८४ लाख हुहुकांगानुं अेक हुहुक अने छे

पूर्व पूर्व चतुरशीत्यालक्षैश्चतुरशीत्यालक्षैश्च गुणितम् उत्तरोत्तरमेकैकंकालप्रमाणं यावत् शीर्षप्रहेलिकान्तं बोध्यम् । शीर्षप्रहेलिकायाः स्वरूपमङ्कत एवं बोध्यम्-७५,८२-

લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ ઉત્પલાઙ્ગ એક ઉત્પલાઙ્ગ મેં ચૌરાસી લાખ સે ગુણા કરને પર એક ઉત્પલ, ૧ ઉત્પલ મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર ૧-પદ્માઙ્ગ, ૧ પદ્માઙ્ગ મેં ચૌરાસી લાખ સે ગુણા કરને પર એક પદ્મ એક પદ્મ મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ નલિનાઙ્ગ, ૧ નલિનાઙ્ગ મેં ચૌરાસી લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ નલિન ૧ નલિન મેં ૮૪ સે ગુણા કરને પર ૧ અર્થ નિપૂરાઙ્ગ એક અર્થ નિપૂરાઙ્ગ મેં ચૌરાસી લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ અર્થ નિપૂર ૧ અર્થનિપૂર મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર એક અયુતાંગ ૧ અયુતાંગ મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ અયુત, ૧ અયુત મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ નયુતાંગ ૧ નયુતાઙ્ગ મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ નયુત ૧ નયુત મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ પ્રયુતાઙ્ગ ૧-૧ પ્રયુતાઙ્ગ મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ પ્રયુત, ૧ પ્રયુત મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર એક ચૂલિકાઙ્ગ, ૧ ચૂલિકાઙ્ગ મેં ચૌરાસી લાખ સે ગુણા કરને પર ચૂલિકા એક એક ચૂલિકા મેં ૮૪ લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ શીર્ષ પ્રહેલિકાઙ્ગ ઓર એક શીર્ષ પ્રહેલિકાઙ્ગ મેં ચૌરાસી લાખ સે ગુણા કરને પર ૧ શીર્ષ પ્રહેલિકા કા પ્રમાણ હોતો હૈ । હસ શીર્ષ પ્રહેલિકા કા અંકો

કુહુકને ૮૪ લાખ વડે ગુણવાથી એક ઉત્પલાંગ થાય છે. ૮૪ લાખ ઉત્પલાંગના એક ઉત્પલ કાળ થાય છે ૮૪ લાખ ઉત્પલનું એક પદ્માંગ થાય છે અને ૮૪ લાખ પદ્માંગનું એક પદ્મ થાય છે. તેના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક નલિનાંગ થાય છે. એક નલિનાંગના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક નલિન આવે છે. નલિનના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક અર્થનિપૂરાંગ આવે છે એક અર્થનિપૂરાંગના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક અર્થનિપૂર આવે છે. એક અર્થનિપૂરના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક અયુતાંગ, એક અયુતાંગના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક અયૂત, એક અયૂતના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક નયુતાંગ, એક નયુતાંગના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક નયુત, એક નયુતના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક પ્રયુતાંગ, એક પ્રયુતાંગના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક પ્રયુત, એક પ્રયુતના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક ચૂલિકાંગ, એક ચૂલિકાંગના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક ચૂલિકા, એક ચૂલિકાના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક શીર્ષ પ્રહેલિકાંગ અને એક શીર્ષ પ્રહેલિકાંગના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક શીર્ષ પ્રહેલિકા નામના કાળનું પ્રમાણ આવે છે.

६३, २५, ३०, ७३०, १०, २४, ११, ५७, ९७, ३५, ६९, ९७, ५६, ०६, ४०, ६२, १८, ९६, ६८, ४८०, ८०१८, ३२, ९६, एतदग्रे चत्वारिंशदुत्तरैकशतसंख्यकानि शून्यानि (१४०) निक्षेप्तव्यानि। तदेवं शीर्षप्रहेलिकायां चतुर्नवत्यधिकशतसंख्यकानि अङ्कस्थानानि भवन्ति। अनेन पूर्वोक्तेन कालमानेन केषांचिद् रत्नप्रभानारकाणां भवनपतिव्यन्तरसुराणां सुषमदुष्पमारकसम्भक्तिनां नरतिरश्वां च यथासंभवमायुषो मानं भवति। एतस्मान्च परतोऽपि संख्येयः कालोऽस्ति, किन्तु तस्य अतिशयज्ञानवर्जितानां छद्मस्थानामसंख्यवहार्यत्वात्, सर्पपाशुपमयाऽत्रैव वक्ष्यमाणत्वाच्च नेहोक्तः। किं तर्हि? उपमाभाप्रतिपाद्यानि पत्योपमादीन्येव। तत्र पत्योपमसा-

का प्रमाण ७५८२६३२५३०७३०१०१४११, ५७९७३५६९, ०७५६९६४-०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६, और इसके १४० शून्य रखने से इतना होता है। इस समस्त अंको की संख्या का योग १९४ अंक प्रमाण होता है। इस पूर्वोक्त काल प्रमाण से कितनेक रत्नप्रभागत नारकों की तथा भवनपति, व्यन्तर देवों की और सुषमदुष्पमारक हैं उत्पन्न हुए मनुष्य तिर्यञ्चो की यथासंभव आयु का प्रमाण कहा जाता है। इससे आगे भी संख्यात काल है। परन्तु वह यदां जो नहीं कहा गया है। उसका कारण यह है कि एकतो वह अतिशयज्ञान वर्जित जो छद्मस्थ प्राणी हैं उनके द्वारा असंख्यवहार्य है। तथा दूसरे सर्प आदि की उपमा देकर सूत्रकार आगे उसे इसी शास्त्र में स्वयं कहेंगे भी। उपमा मात्र देकर जिनका स्वरूप समझाया जा सकता है ऐसे पत्योपम

उपरना केष्टकने आधारे एक शिर्षप्रहेलिकानां वर्षोनी गणतरी करवाभां आवे तो १६४ आंकडानी सँख्या आवे छे. ते सँख्या नीचे प्रमाणे छे- ७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७६७३५६६७५६६६४०६२१८६६६८४८०८ ०१८३२९६ आ ५४ आंकडा उपर नमणी तरङ् १४० शून्य मूकवाधी जे १६४ आंकडानी सँख्या आवे छे, ते सँख्या एक शिर्षप्रहेलिकानां वर्षो गतावे छे. आ पूर्वोक्त काणप्रमाणने आधारे डेटलाड रत्नप्रसा नरकना नारकेना, भवनपति देवोना, व्यन्तर देवोना, अने सुषमदुष्पम आरामां उत्पन्न थयेसा मनुष्योना यथासंभव आयुतुं प्रमाणे कही शक्य छे. शिर्षप्रहेलिकानी आगण पशु सँख्यात काण छे. परन्तु अहीं तेतुं कथन करवाभां आव्युं नथी कारणे के ते अतिशय ज्ञानवर्जित छद्मस्थ लोको द्वारा असंख्यवहार्य छे-छद्मस्थ लोको द्वारा तेनो व्यवहारभां उपयोग थर्ष शकें तेम नथी सूत्रकार सर्प (सरसव) आदिनी उपमा द्वारा ते काणप्रमाणेनुं आगण उपर निरूपण करवाना छे. उपमा द्वारा न जेना स्वइपने समजवी शक्य

गरोपमे वक्ष्यमाणस्वरूपे। दशमागरोपमकोटाकोटिममाणात्ववसर्पिणी, तावन्मानैव उत्सर्पिणी। अनन्ता अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यः पुद्गलपरिवर्तः। अनन्ताः पुद्गलपरावर्त्ता अतीताद्धा। अनागताद्धाऽप्यनन्तपुद्गलपरावर्त्तमानैव बोध्या। अतीताऽनन्तवर्त्तमानकालस्वरूपा सर्वाद्धा। इयं पूर्वानुपूर्वी। पश्चानुपूर्वी तु 'सर्वाद्धा' इत्यारभ्य 'समयः' इत्यन्ता बोध्या। अतानुपूर्वी तु—'समयः' इत्याद्यारभ्य 'सर्वाद्धा'

और सागरोपम जो काल हैं उन्हें सूत्रकार आगे प्रगट करेंगे। दश सागरोपम कोटि कोटि का १ एक अवसर्पिणी काल और इतने ही प्रणाम वाला एक उत्सर्पिणी काल होना है। एक पुद्गल परावर्त काल अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल का होता है। तथा जो अतीताद्धा-काल होना है उसमें अनन्त पुद्गल परावर्त होते हैं। अर्थात् अनन्त पुद्गलपरावर्तों का एक अतीताद्धा काल होता है। इसी प्रकार जो अनागताद्धा काल होता है वह भी अनन्त पुद्गल परावर्तों का होना है। तथा जो सर्वाद्धा काल है वह अतीत अनागत और वर्तमान काल इन तीनों का संमिलित रूप होता है। इस प्रकार यह पूर्वानुपूर्वी है। तथा सर्वाद्धा से लेकर समय पर्यन्त जो व्युत्क्रम से इनकी स्थापना-विन्यास-करना है वह पश्चानुपूर्वी है। यही बात (से किं तं पच्छाणुपुञ्जी?) हे भदन्त ! पश्चानुपूर्वी क्या है इस प्रश्न के उत्तर में (सव्याद्धा अनागतद्धा जाव समर) इन पदों द्वारा प्रगट की गई है। (से तं पच्छाणुपुञ्जी) इस प्रकार

એમ છે એવાં પદ્યોપમકાળ અને સાગરોપમ કાળનું સ્વરૂપ સૂત્રકાર આગળ પ્રકટ કરવાના છે. દસ સાગરોપમ કોટિકોટિનો એક અવસર્પિણીકાળ થાય છે અને ઉત્સર્પિણી કાળનું પણ એટલું જ પ્રમાણ કહ્યું છે. અનંત અવસર્પિણીકાળનો એક પુદ્ગલપરાવર્ત કાળ થાય છે. અનંત પુદ્ગલપરાવર્તનો એક અતીતાદ્ધા-કાળ થાય છે એટલે કે અતીતાદ્ધામાં અનંત પુદ્ગલપરાવર્તકાળ હોય છે. એજ પ્રમણે અનંત પુદ્ગલપરાવર્તનો એક અનાગતાદ્ધા-કાળ થાય છે. જે સર્વાદ્ધા કાળ છે તે અતીત, અનાગત અને વર્તમાન, આ ત્રણે કાળના સંમિલિતકાળ રૂપ હોય છે. આ પ્રકારનું 'પૂર્વાનુપૂર્વી'નું સ્વરૂપ છે. હવે 'પશ્ચાનુપૂર્વી'નું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

પ્રશ્ન—(સે કિં પચ્છાણુપુજ્વી?) હે ભગવન્ ! પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—(સવ્યાદ્ધા, અનાગયદ્ધા જાવ સમર) સર્વાદ્ધા, અનાગતાદ્ધા ઇત્યાદિ શિત્રતા ક્રમે સમય પર્યન્તના પદોનો વિન્યાસ (સ્થાપના) કરવો, તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે. (સે તં પચ્છાણુપુજ્વી) આ પ્રકારનું પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

इत्यन्तानामन्योऽन्याभ्यासे ये अनन्ता भङ्गा भवन्ति, तेषु आद्यन्तरूपभङ्गकद्वय-
विवक्षामपहाय सर्वभङ्गगुणनास्मिन्ना बोध्या। अत्र कालविचारस्य प्रस्तुतत्वात्
समयादेशकालत्वेन प्रसिद्धत्वात् अनुषङ्गतो विनेयानां समयादिकालज्ञानं भवतु,
इति प्रकारान्तरेण कालानुपूर्वीमाह—‘अहवा’ इत्यादिना। अथवा औपनिषिक्को
कालानुपूर्वी पूर्वानुपूर्व्यादिभेदेन त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र—पूर्वानुपूर्वी—एकसमय-
यह पश्चानुपूर्वी का स्वरूप है। (से किं तं अणाणुपुन्वी?) हे भदन्त? अना-
नुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(एयाए चेव एगाहयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए
सेहीए अणमणगभासो दूरवृणो) अनानुपूर्वी में समयादि पदों का एकर
की वृद्धि पूर्वक उपन्यास किया जाता है, फिर बाद में आपस में इनका
गुणा किया जाता है। इस प्रकार गुणा करने पर जो अनन्त भंगरूप रा-
शि उत्पन्न होती है उसमें से आदि और अन्त के दो भंग घटा दिये
जाते हैं। इस प्रकार से अनानुपूर्वी अनन्त भंगात्मक होती है। यहाँ
काल का विचार प्रस्तुत है और समयादिक कालरूप से प्रसिद्ध हैं। इस
लिये शिष्यों को समयादिरूप कालका आनुषंगिकरूप से ज्ञान हो जावे
इसलिये सूत्रकार प्रकारान्तर से कालानुपूर्वीका कथन करते हैं—(अहवा
ओवणिहिया कालाणुपुन्वी तिविहा पणत्ता) अथवा औपनिषिक्की
कालानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है (तं जहा) जैसे (पुन्वाणुपुन्वी
पच्छाणुपुन्वी, अणाणुपुन्वी) पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, और अनानुपूर्वी।

उत्तर—(एयाए चेव एगाहयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेहीए अण-
मणगभासो दूरवृणो) अनानुपूर्वीमां समयादि पदोना एक ऐदनी वृद्धिथी
उपन्यास करवामां आवे छे. त्पार णाह आपसमां (अंदरे अंदर) तेमना
गणां (तेमना गुणाकार) करवामां आवे छे. आ प्रकारे गुणाकार करवाथी ने
अनंत भंगरूप राशि उत्पन्न थ.य छे तेमांथी शङ्खातना अने अन्तना
एक, ऐम जे लंगो ओछां करवामां आवे छे. आ प्रकारे अनानुपूर्वी
अनंत भंगरूप होय छे. अदीं काणना अधिकर यादी रह्यो छे अने सम-
यादिक काणरूपे प्रसिद्ध छे तेथी शिष्योने समयादि रूप काणनु आनुषंगिक
रूपे ज्ञान थछे जय ते हेतुथी सूत्रकार कालानुपूर्वीना स्वरूपनु अन्य प्रकारे
निरूपण करे छे—(अहवा ओवणिहिया कालाणुपुन्वी तिविहा पणत्ता) अथवा—
औपनिषिक्की कालानुपूर्वी त्रय प्रकारनी छही छे. (तंजहा) ते त्रय प्रकारे
नीये प्रभाणे छे—(पुन्वाणुपुन्वी, पच्छाणुपुन्वी, अणाणुपुन्वी) पूर्वानुपूर्वी,
पश्चानुपूर्वी अने अनानुपूर्वी.

स्थितिकः—एकः समयः स्थितिर्यस्य द्रव्यविशेषस्य स तथाभूतो द्रव्यविशेषो बोध्यः । एवमेव—द्विसमयस्थितिकस्त्रिसमयस्थितिको यावद्दशसमयस्थितिकः संख्येयसमयस्थितिकोऽसंख्येयसमयस्थितिकश्च द्रव्यविशेषः पूर्वानुपूर्वीं बोध्या । पश्चानुपूर्वीतु—असंख्येयसमयस्थितिको यावदेकसमयस्थितिकश्च । अनानुपूर्वीं तु—एकसमयस्थितिकाधारस्य असंख्येयसमयस्थितिकानामन्योन्याभ्यास्तेऽसंख्येया भङ्गा भवन्ति, तेषु आद्यन्तरूपभङ्गकद्रव्यविवक्षामपहाय सर्वभङ्गगुणनात्मिका बोध्या । इयमौपनिधिकी कालानुपूर्वीं बोध्या । एतदेवाह—‘से तं ओवणिहिया’ इत्यादि । सैषा औपनिधि-

(से किं तं पुत्राणुपुत्री) हे भदन्त ! पूर्वानुपूर्वीं का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(पुत्राणुपुत्री) पूर्वानुपूर्वीं का स्वरूप इस प्रकार से है—(एगसमयद्विहए, दुसमयद्विहए, तिसमयद्विहए जाव दस समयद्विहए संखिज्जसमयद्विहए असंखिज्जसमयद्विहए) एक समय की स्थितिवाला, दो समय की स्थितिवाला, तीन समय की स्थितिवाला यावत् दश समय की स्थितिवाला संख्यातसमय की स्थितिवाला असंख्यातसमय की स्थितिवाला जितना भी द्रव्य विशेष है वह सब पूर्वानुपूर्वीं है । (से किं तं पच्छाणुपुत्री) हे भदन्त ! पश्चानुपूर्वीं का क्या स्वरूप है ? (असंखिज्जसमयद्विहए जाव एगसमयद्विहए पच्छाणुपुत्री) असंख्यातसमय की स्थितिवाले द्रव्य से लेकर एकसमय तक की स्थितिवाला जो द्रव्य विशेष है वह पश्चानुपूर्वीं है । (से तं पच्छाणुपुत्री) यह पश्चानुपूर्वीं का स्वरूप है । (से किं तं अणाणुपुत्री?) हे भदन्त अनानुपूर्वीं का

प्रश्न—(से किं तं पुत्राणुपुत्री) हे भगवन् ! पूर्वानुपूर्वीं तु स्वरूपं केतुं छे ?

उत्तर—(पुत्राणुपुत्री) पूर्वानुपूर्वीं तु स्वरूपं आ प्रकारतुं छे—(एगसमयद्विहए, दुसमयद्विहए, तिसमयद्विहए जाव दससमयद्विहए, संखिज्जसमयद्विहए, असंखिज्जसमयद्विहए) एक समयनी स्थितिवाणां, दो समयनी स्थितिवाणां, त्रयुथी लधने दस पर्यन्तनी स्थितिवाणां, संख्यात समयनी स्थितिवाणां अने असंख्यात समयनी स्थितिवाणां नेटलां द्रव्यविशेषो तेओ पूर्वानुपूर्वीं इप छे.

प्रश्न—(से किं तं पच्छाणुपुत्री?) हे भगवन् ! पश्चानुपूर्वीं तु स्वरूपं केतुं छे ?

उत्तर—(असंखिज्जसमयद्विहए जाव एगसमयद्विहए पच्छाणुपुत्री) असंख्यात समयनी स्थितिवाणथी लधने एक समय पर्यन्तनी स्थितिवाणां ने द्रव्यविशेषो छे, ते पश्चानुपूर्वीं इप छे (से तं पच्छाणुपुत्री) आ प्रकारतुं पश्चानुपूर्वीं तु स्वरूपं छे.

प्रश्न—(से किं तं अणाणुपुत्री?) हे भगवन् ! अनानुपूर्वीं तु स्वरूपं केतुं छे ?

की कालानुपूर्वी । इत्थं कालानुपूर्वी समाप्तेति सूत्रयितुमाह—‘ से तं ’ इत्यादि—
सैषा कालानुपूर्वीति ॥सू० १३७॥

अथ पूर्वोक्तामुत्कीर्तनानुपूर्वीं प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्—से किं तं उक्त्तित्वाणुपुर्वी ? उक्त्तित्वाणुपुर्वी तिविहा
पणत्ता, तं जहा—पुवाणुपुर्वी पच्छाणुपुर्वी अणाणुपुर्वी । से किं
तं पुवाणुपुर्वी ? पुवाणुपुर्वी—उसभे अजिए संभवे अभिणंदणे
सुमई पउमप्पहे सुपासे चंदप्पहे सुविहा सीयले सेज्जसे वासु-

क्या स्वरूप है ? (एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छ-
गयाए सेठीए अन्नमन्नव्भासो दुरूवूणो अणाणुपुर्वी)

उत्तर—एक से लेकर असंख्यात तक एकर की वृद्धि करते हुए
असंख्यानश्रेणि मांडो, फिर इन श्रेणियों में परस्पर में गुणा कर दो
और उस उत्पन्न असंख्यात भंग रूप महाराशि में से आदि अंत के
दो भंगों—पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी रूप दो भंगों और अवक्तव्यक
भंगों को कम कर दो—यही अनानुपूर्वी का स्वरूप है । (से तं ओवणि-
हिया कालाणुपुर्वी—से तं कालाणुपुर्वी) इस प्रकार औपनिधिकी काला-
नुपूर्वी है । इसके समाप्त होते ही पूर्वप्रक्रान्त कालानुपूर्वी का कथन
समाप्त हो गया ॥सू० १३७॥

उत्तर—(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छायाए सेठीए
अन्नमन्नव्भासो दुरूवूणो अणाणुपुर्वी) ऐकथी लधने असंख्यात पर्यन्त ऐक
ऐकनी वृद्धि करतां करतां असंख्यात श्रेणी सुधीनां द्रव्येने। उपन्यास धर-
वामां आवे छे त्थार णाद ते श्रेणीयेने। परस्परमां गुणाकार करवामां आवे
छे अने आ प्रकारे वे असंख्यात लंज इप महाराशि उत्पन्न थाय छे,
तेमांथी आदि अने अन्तना ये लांगाओ—पूर्वानुपूर्वीं अने पश्चानुपूर्वीं इप
ये लांगाओ—आद करवामां आवे छे आ प्रकारतुं अनानुपूर्वीतुं स्वइप छे
(से तं अणाणुपुर्वी) आ औपनिधिकी अनानुपूर्वीं छे (से तं ओवणिहिया
कालाणुपुर्वी—से तं कालाणुपुर्वी) आ प्रकारतुं औपनिधिकी कालानुपूर्वीतुं
स्वइप छे. तेना स्वइपतुं कथन समप्त थतानी साथे वे पूर्वप्रक्रान्त काला-
नुपूर्वीना स्वइपतुं कथन पणु समाप्त थाय छे. ॥सू० १३७॥

पुञ्जे विमले अणंते धम्मे संती कुंथू अरे मल्ली मुणिसुव्वए
णमी अरिद्धणेमी पासे वद्धमाणे । से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं
तं पच्छाणुपुव्वी ? पच्छाणुपुव्वी-वद्धमाणे जाव उखभे । से तं
पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ? अणाणुपुव्वी-एयाए
चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए चउवीसगच्छगयाए सेढीए अण-
मणवभासो दुरूव्वणो । से तं अणाणुपुव्वी । से तं उक्कित्तणा-
णुपुव्वी ॥सू० १३८॥

छाया—अथ का सा उत्कीर्तनानुपूर्वी ? उत्कीर्तनानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता,
तद्यथा—पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानुपूर्वी ? पूर्वानुपूर्वी-
ऋषभः अजितः संभवः अभिनन्दनः सुमतिः पद्मप्रभः सुपार्श्वः चन्द्रप्रभः सुविधिः
शीतलः श्रेयांसः वासुपूज्यः विमलः अनन्तः धर्मः शान्तिः कुन्थुः अरः मल्लिः
मुनिसुव्वतः नमिः अरिष्टनेमिः पार्श्वो वद्धमानः । सैषा पूर्वानुपूर्वी । अथ का सा
अनानुपूर्वी ? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां चतुर्विंशति-
गच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः । सैषा अनानुपूर्वी । सैषा उत्की-
र्तनानुपूर्वी ॥मू० १३८॥

टीका—‘ से किं तं ’ इत्यादि—

अथ का सा उत्कीर्तनानुपूर्वी ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—उत्कीर्तनं=कथ-
नम् अभिधानोच्चारणमिति यावत्, तस्य आनुपूर्वी=अनुपरिपाटिः पूर्वानुपूर्वादि-

अथ सूत्रकार पूर्वोक्त उत्कीर्तनानुपूर्वी का प्रतिपादन करते हैं—

‘ से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ? इत्यादि ।

शब्दार्थ—हे भदन् ! (से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ?) पूर्व प्रकान्त
उत्कीर्तनानुपूर्वी का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(उक्कित्तणाणुपुव्वी त्रिविहा पणत्ता) उत्कीर्तनानुपूर्वी तीन

हुवे सूत्रकार पूर्वोक्त उत्कीर्तनानुपूर्वीना स्वरूपं निरूपणु करे छे—

“ से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ?) हे भदन् ! पूर्वप्रकान्त उत्की-
र्तनानुपूर्वीनु स्वरूपं केषुं छे ?

उत्तर—(उक्कित्तणाणुपुव्वी त्रिविहा पणत्ता-तंजहा) उत्कीर्तनानुपूर्वीना

भेदेन त्रिविधा प्रज्ञप्ता । तत्र-पूर्वानुपूर्वी-ऋषभादि वर्द्धमानान्ता । सर्वप्रथमोत्पन्नाद् ऋषभस्य प्रथममुपादानम् । तदनन्तरं क्रमेण अजितादय उक्ताः । पश्चानुपूर्वी तु-

प्रकार की कही गई है । (तं जहा) उसके वे प्रकार ये हैं-(पुत्राणुपुत्री, पच्छाणुपुत्री, अणाणुपुत्री) पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी । उत्कीर्तन शब्द का अर्थ नाम का उच्चारण करना ऐसा है । इस उत्कीर्तन की जो परिपाटी है उसका नाम उत्कीर्तनानुपूर्वी है । (से किं तं पुत्राणुपुत्री) पूर्व प्रक्रान्त पूर्वानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर—(उसमे अजिए संभवे अभिर्णंदणे, सुमई, पद्मप्पहे, सुपासे, चंद्रप्पहे, सुविही, सीयले, सेज्जंसे, वासुपुज्जे, विमले, अणंते, धम्मे, संती, कुंथू, अरे, मल्ली, सुणिसुव्वए, णमी, अरिट्ठणेमी, पासे, वद्धमाणे, से तं पुत्राणुपुत्री) ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्ली, सुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व, और वर्द्धमान । इस प्रकार परिपाटिरूप से नामोच्चारण करना इसका नाम उत्कीर्तनानुपूर्वी का प्रथम भेद पूर्वानुपूर्वी है । ऋषभनाथ सब से प्रथम उत्पन्न हुए हैं । इसलिये उनका प्रथम नामोच्चारण किया है । तदनन्तर क्रमशः अन्य अजित आदि हुए हैं इसलिये उनका नामोच्चारण हुआ है । पश्चानुपूर्वी में वर्द्धमान को

नीचे प्रमाणे त्रय प्रकार कहे छे—(पुत्राणुपुत्री, पच्छाणुपुत्री, अणाणुपुत्री) (१) पूर्वानुपूर्वी, (२) पश्चानुपूर्वी अने (३) अनानुपूर्वी ।

“ नामतुं उत्थारणु करवुं ” अेटवे उत्कीर्तन आ उत्कीर्तननी (नामतुं उत्थारणु करवानी) ने परिपाटी (पद्धति) छे, तेतुं नाम उत्कीर्तनानुपूर्वी छे ।

प्रश्न—(से किं तं पुत्राणुपुत्री) डे लगवन् ! पूर्वानुपूर्वीतुं स्वइप डेवुं छे ?

उत्तर—(उसमे, सभवे, चंद्रप्पहे, सुविही, सीयले, सेज्जंसे, वासुपुज्जे, विमले, अणते, धम्मे, संती, कुंथू, अरे, मल्ली, सुणिसुव्वए, णमी, अरिट्ठणेमी, पासे, वद्धमाणे, से तं पुत्राणुपुत्री) ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्ली, सुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व अने वर्द्धमान, आ प्रकारे परिपाटी इपे नामोत्थारणु करवुं तेतुं नाम पूर्वानुपूर्वी छे । ते उत्कीर्तनानुपूर्वीना प्रथम लेह इप छे । ऋषभनाथ लगवान सौथी पडेदां थछ गथां होवाथी तेमना नामतुं उत्थारणु सौथी पडेदां करवामां आव्युं छे । त्थार णाद अजित आदि तीधं करे कभशः थछ गथां होवाथी तेमनां नामतुं कभशः उत्थारणु करायुं छे ।

વર્દમાનાદિ ઋષભાન્તા વોધ્યા । અનાનુપૂર્વી તુ-ઋષભાદિવર્ધમાનાન્તાનાં ચતુર્વિ-
શતિપદાનામન્યોઽન્યાભ્યાસે આઘન્તરૂપમજ્જકદ્વયવિવક્ષામપહાય મજ્જા વિધાતવ્યા-
સ્તદાત્મિકા વોધ્યા । નનુ ઔપનિધિક્યા દ્રવ્યાનુપૂર્વ્યા અસ્યાશ્ચ કો ભેદઃ ? ઉચ્યતે,
તત્ર હિ દ્રવ્યાણાં વિન્યાસમાત્રમેવ પૂર્વાનુપૂર્વ્યાદિભાવેન ચિન્તિતમ્ । અત્ર તુ તેષામેવ
તથૈવોત્કીર્તનં ક્રિયતે-इत्येतावन्मात्रेण एतयोर्भेदो बोध्यः । ननु अस्त्येवं तथाऽ-
प्यत्र शास्त्रे आवश्यकस्य प्रस्तुतत्वादत्रापि सामायिकाद्यध्ययनानामेवोत्कीर्तनं युक्तम्,

આદિ કરકે-ઋષભપદ કો અન્ત મેં ઉચ્ચરિત ક્રિયા જાતા હૈ । તથા
અનાનુપૂર્વી આદિ કે ઋષભપદ સે લેકર અન્તિમ વર્દમાન તક કે ચૌ-
વીસ પદોં કા પરસ્પર મેં ગુણા કરને પર ઔર ગુણિતરાશિ મેં સે આદિ
અન્ત રૂપ ભંગ દ્રય કો વિવક્ષા કો કમ કરને પર જિતને ભંગ બચતે હૈ
ઉન ભંગ સ્વરૂપ હોતી હૈ ।

શંકા—ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી સે હસ મેં ક્યા ભેદ હૈ ?

ઉત્તર—ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી મેં દ્રવ્યોં કા કેવલ વિન્યાસ હી
પૂર્વાનુપૂર્વી આદિરૂપ સે વિચારિત હોતા હૈ ઔર હસ ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વી
મેં ઉન્હી દ્રવ્યોં કા આનુપૂર્વી આદિરૂપ સે નામોચ્ચારણ કિયા જાતા હૈ ।

શંકા—હસ શાસ્ત્ર મેં આવશ્યક કા પ્રકરણ હોને સે હસ આનુપૂર્વી
મેં મી સામાયિક આદિ અધ્યયનોં કા હી ઉત્કીર્તન કરના ઉચિત થા-

પશ્ચાનુપૂર્વી'તુ' સ્વરૂપ આ પ્રકારતુ' છે-ઉપર જે ક્રમે નામોચ્ચારણ
કરાયું છે તેના કરતાં ઊલટા ક્રમે નામોચ્ચારણ કરવાથી પશ્ચાનુપૂર્વી'બને છે.
તેમાં વર્ધમાનથી લઈને ઋષભ પર્યન્તના પદોનું ઉચ્ચારણ કરાય છે આ રીતે
'વર્ધમાન' પદ પહેલું અને 'ઋષભ' પદ છેલ્લું આવે છે અનાનુપૂર્વી'માં
શરૂઆતના ઋષભ પદથી લઈને છેલ્લા વર્ધમાન પર્યન્તના ૨૪ પદોનો પર-
સ્પરની સાથે ગુણાકાર કરવામાં આવે છે અને તેથી જે મહારાશિ આવે છે
તેમાંથી આદિ અને અન્ત ૩૫ જે ભંગોને બાદ કરવામાં આવે છે. આ જે
ભંગો બાદ કરવાથી જે ભંગો બાકી રહે છે, તે ભંગો૩૫ અનાનુપૂર્વી' હોય છે.

શંકા—ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી' કરતાં આ ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વી'માં શો તંકાવત છે ?

ઉત્તર—ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી'માં દ્રવ્યોનો કેવળ વિન્યાસ જ પૂર્વાનુ-
પૂર્વી' આદિ રૂપે કરવામાં આવે છે, પરન્તુ આ ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વી'માં તે એજ
દ્રવ્યોનું આનુપૂર્વી' આદિ રૂપે ઉચ્ચારણ કરવામાં આવે છે

શંકા—આ શાસ્ત્રમાં આવશ્યકનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી આ આનુ-
પૂર્વી'માં સામાયિક આદિ અધ્યયનોનું જ ઉત્કીર્તન (ઉચ્ચારણ) કરાયું હોત

कथमपक्रान्तानामृषभादीनामुत्कीर्तनं कृतम् ? इति चेदाह—इदं शास्त्रं सर्वव्यापक-
मित्यादावेवम् उक्तम् । तत्समर्थयितुमेव ऋषभादीनामुपादानं कृतम् । ऋषभादीनां
तीर्थकर्तृत्वात्तन्नामोच्चारणे सकलमपि श्रेयः प्राप्नोति जन इति युक्तमेव तेषां
भगवतां नामोच्चारणम् । एवं विधस्थलेऽन्यत्राप्येवमेव समाधेयमिति । प्रकृतमृष
संहरन्नाह—‘ से तं ’ इत्यादि । सैषा उत्कीर्तनानुपूर्वी ॥सू० १३८।

अथ पूर्वोक्तामेव गणनानुपूर्वीं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं गणणाणुपुर्वी ? गणणाणुपुर्वी तिविहा पण्णत्ता,
तं जहा—पुव्वाणुपुर्वी पच्छाणुपुर्वी अणाणुपुर्वी। से किं तं पुव्वा-
णुपुर्वी ? पुव्वाणुपुर्वी—एगो, दस, सयं, सहस्सं, दस सहस्साइं,

तो फिर अपक्रान्त-प्रकरण बाह्य-ऋषभ आदिकों का उत्कीर्तन
सूत्रकारने क्यों किया ?

उत्तर—यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि यह शास्त्र सर्व
व्यापक है । सो इसी बात का समर्थन करने के लिये यहां ऋषभादिकों
का उत्कीर्तन किया है । ये ऋषभ आदि तीर्थ कर्ता हैं । इनके नाम का
उच्चारण करने वाला मनुष्य समस्त श्रेयको पा लेता है । अतः उनके
नाम का उच्चारण करना युक्त ही है । दूसरे और भी इसी प्रकार के
स्थलों में ऐसा ही समाधान समझना चाहिये । इस प्रकार से यह
उत्कीर्तनानुपूर्वी है । सूत्रस्य बाकी पद सुगम्य हैं अतः उनका भिन्न
भिन्न रूप से अर्थ नहीं लिखा है ॥सू० १३८॥

ते उचित गणना तेने जेव्हे अपक्रान्त (प्रकरणना विषयथी णाह्य जेवां)
ऋषभ आदिकेतुं उत्कीर्तन सूत्रकारे शा कारणे क्युं छे ?

उत्तर—जे वात तो पडेलां जे कडेवाभां आवी चुकी छे जे शास्त्र
सर्वव्यापक छे जे वातनुं समर्थन करवाने भाटे अहीं ऋषभादिकेतुं
उत्कीर्तन (नामोतुं उच्चारण) करवाभां आव्युं छे. आ ऋषभ आदि तीर्थ-
करोजे तीर्थनी स्थापना करी छती. तेमनां नामनुं उच्चारण करनार मनुष्यनुं
दरेक प्रकारे श्रेय जे थाय छे. तेथी तेमनां नामोतुं उच्चारण करनुं उचित जे
गणी शक्य आ प्रकरनां पीजं स्थानोभां पणु आ प्रकारनुं जे समाधान समजनुं.

आ प्रकारनुं उत्कीर्तनानुपूर्वीनुं स्वरूप छे आ सूत्रभां आवेलां णाडीनां
पटोने। अर्थ सुगम होवाथी अहीं तेमनुं, वधु स्पष्टीकरण करवाभां
आव्युं नथी. ॥सू० १३८॥

सयसहस्रं, दस सयसहस्राइं, कोडी, दस कोडीओ, कोडीसयं,
दस कोडिसयाइं । से तं पुञ्जाणुपुञ्ची । से किं तं पच्छाणुपुञ्ची?
पच्छाणुपुञ्ची—दस कोडिसयाइं जाव एगो से तं पच्छाणुपुञ्ची ।
से किं तं अणाणुपुञ्ची? अणाणुपुञ्ची—एयाए चेव एगाइयाए
एगुत्तरिया । दसकोडिसयगच्छगयाए सेहीए अन्नमन्नवभासो
दुरूवणो । से तं अणाणुपुञ्ची । से तं गणणाणुपुञ्ची ॥सू० १३९॥

छाया—अथ का सा गणनानुपूर्वी? गणनानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—
पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी—एको,
दश, शतं, सहस्रं, दश सहस्राणि, शतसहस्रं, दश शतसहस्राणि, कोटिः, दशकोटयः,
कोटिशतं, दशकोटिशतानि । सैषा पूर्वानुपूर्वी । अथ का सा पश्चानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी
दशकोटिशतानि यावदेकः । सैषा पश्चानुपूर्वी । अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानु-
पूर्वी एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां दशकोटिशतगच्छगतायां श्रेण्याम-
न्योन्याभ्यासो द्विरुभोनः । सैषा अनानुपूर्वी । सैषा गणनानुपूर्वी ॥सू० १३९॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा गणनानुपूर्वी? इति प्रश्नः । उत्तरयति—गणनानुपूर्वी पूर्वानु-
पूर्व्यादिभेदेन त्रिविधा । तत्र—एकादिदशकोटिशतान्तापूर्वानुपूर्वी । दशकोटिशताद्ये-

गणनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है—इस बात को अब सूत्रकार स्पष्ट
करते हैं —“से किं तं गणणाणुपुञ्ची?” इत्यादि ।

शब्दार्थ— (से किं तं गणणाणुपुञ्ची)

प्रश्न— हे भदन्त ? गणनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(गणणाणुपुञ्ची त्रिविधा पणत्ता) गणनानुपूर्वी तीन प्रकार
की कही गई है । (तंजहा) जैसे (पुञ्जाणुपुञ्ची पच्छाणुपुञ्ची, अणाणुपुञ्ची)

इसे सूत्रकार गणनानुपूर्वीना स्वरूपतु निरूपणु करे छे—

“से किं तं गणणाणुपुञ्ची” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं गणणाणुपुञ्ची?) छे अथवन्! गणनानुपूर्वीतु
स्वरूपु केषुं छे ?

उत्तर—(गणणाणुपुञ्ची त्रिविधा पणत्ता) गणनानुपूर्वी त्रणु प्रकारनी कही
छे—(तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(पुञ्जाणुपुञ्ची, पच्छाणुपुञ्ची, अणाणु-
पुञ्ची) (१) पूर्वानुपूर्वी, (२) पश्चानुपूर्वी अने (३) अनानुपूर्वी ।

कान्ता पश्चानुपूर्वी । तथा—एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां दशकोटिशत-
गच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः—अनानुपूर्वी, व्याख्या पूर्ववत् ।

पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी. (से किं तं पुञ्वाणुपुञ्ची) हे भदन्त !
पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर— (पुञ्वाणुपुञ्ची) पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है—
(एगो) एक (दस) दश, (सयं) सौ (सहस्रं) हजार (दससहस्राहं) दश
हजार (सयसहस्राहं) लाख (दससयसहस्राहं) दश लाख (कोडी)
करोड़ (दस कोडीओ) दस करोड़ (कोडीसयं) अर्ब, (दस कोडिसयाहं) दस
अर्ब (से तं पुञ्वाणुपुञ्ची) यह पूर्व प्रकान्त पूर्वानुपूर्वी है । (से किं तं पञ्चाणु-
पुञ्ची?) हे भदन्त ! गणनानुपूर्वी के भेद रूप पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर— (पञ्चाणुपुञ्ची) पश्चानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है ।
(दस कोडिसयाहं जाव एगो) दस अर्ब से लेकर व्युत्क्रम से एक नक
गिनना (से तं पञ्चाणुपुञ्ची) सो पश्चानुपूर्वी है । (से किं तं अणाणुपुञ्ची)
हे भदन्त ! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ? (अणाणुपुञ्ची) अनानुपूर्वी
का स्वरूप इस प्रकार से है—(एयाए चैव एगाइयाए एगुत्तरियाए दस
कोडिसयगच्छगयाए सेटीए अन्नमन्नभ्यासो दूरुवृणो) एक से लेकर

प्रश्न—(से किं तं पुञ्वाणुपुञ्ची?) हे भगवन् ! पूर्वानुपूर्वीनुं स्वइयं केवुं छे?

उत्तर—(पुञ्वाणुपुञ्ची) पूर्वानुपूर्वीनुं स्वइयं आ प्रकारनुं छे—(एगो) ओक,
(दस) दस, (सयं) सौ, (सहस्रं) हजार, (दससहस्राहं) दस लाख, (सयसह-
स्राहं) लाख, (दससयसहस्राहं) दस लाख, (कोडी) करोड़, (दस कोडीओ)
दस करोड़, (कोडीसयं) अर्ब, (दस कोडीसयाहं) दस अर्ब, (से तं
पुञ्वाणुपुञ्ची) धत्यादि इपे गणना करवी तेनुं नाम पूर्वानुपूर्वी छे.

प्रश्न—(से किं तं पञ्चाणुपुञ्ची?) हे भगवन् गणनानुपूर्वीना भीम लेद
इय पश्चानुपूर्वीनुं स्वइयं केवुं छे ?

उत्तर—(पञ्चाणुपुञ्ची) पश्चानुपूर्वीनुं स्वइयं आ प्रकारनुं छे—(दसकोडी-
सयाहं जाव एगो, दस अर्बथी लधने त्रिंशटा कमे ओक सुधीनी गणुतरी
करवी (से तं पञ्चाणुपुञ्ची) तेनुं नाम पश्चानुपूर्वी छे.

प्रश्न—(से किं तं अणाणुपुञ्ची?) हे भगवन् ! गणनानुपूर्वीना त्रीम लेद
इय अनानुपूर्वीनुं स्वइयं केवुं छे ?

उत्तर—(अणाणुपुञ्ची) अनानुपूर्वीनुं स्वइयं आ प्रकारनुं छे—(एयाए चैव
एगाइयाए एगुत्तरियाए दसकोडिसयगच्छगयाए सेटीए अन्नमन्नभ्यासो दूरुवृणो)

अत्रोक्ताः संख्या उपलक्षणमात्रम्, अत इतोऽन्या अपि संभाव्यमानाः संख्या
अवगन्तव्याः । उत्कीर्तनानुपूर्व्या नाममात्रोत्कीर्तनं कृतम्, अत्र गणनानुपूर्व्यां तु-
एकादि संख्यानामभिधानं कृतमिति बोध्यम् । प्रकृतमुपसंहरन्नाह- 'से तं'
इत्यादि । सैषा गणनानुपूर्वी ॥सू० १३९॥

अथ प्रागुद्दिष्टामेव संस्थानानुपूर्वीमाह-

मूलम्-से किं तं संठाणाणुपुर्वी ? संठाणाणुपुर्वी त्रिविधा पणत्ता,
तं जहा-पुट्वाणुपुर्वी पच्छाणुपुर्वी अणाणुपुर्वी । से किं तं
पुट्वाणुपुर्वी ? पुट्वाणुपुर्वी-समचउरंसे निग्गोहमंडले सादी
खुज्जे वामणे हुंडे । से तं पुट्वाणुपुर्वी । से किं तं पच्छाणुपुर्वी ?
पच्छाणुपुर्वी-हुंडे जाव चउरंसे । से तं पच्छाणुपुर्वी । से किं
तं अणाणुपुर्वी ? अणाणुपुर्वी एयाए चेत्र एगाइयाए एगुत्तरि-
याए छ गच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नवभासो दुरुवूणो । से तं
अणाणुपुर्वी । सा एसा संठाणाणुपुर्वी ॥सू० १४०॥

छाया-अथ का सा संस्थानानुपूर्वी ? संस्थानानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-
पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानुपूर्वी ? पूर्वानुपूर्वी-समच-
तुरसं न्यग्रोधमण्डलं सादि कुब्जं वामनं हुण्डम् । सैषा पूर्वानुपूर्वी । अथ का सा
पश्चानुपूर्वी ? पश्चानुपूर्वी-हुण्डं यावत् समचतुरस्रम् । सैषा पश्चानुपूर्वी । अथ का

दश कोटिशतक की एक एक की वृद्धिवाली श्रेणी में स्थापित संख्या
का परस्पर जें गुणा करने पर और उत्पन्न उस महाराशि में से भंग
द्वय की विवक्षा को काम करने पर अवशिष्टभंगात्मक (से तं अणाणुपु-
र्वी) अनानुपूर्वी है (से तं गणणाणुपुर्वी) इस प्रकार यह गणनानुपूर्वी
का स्वरूप है ॥सू० १३९॥

એકથી લઇને દસ અબજ પર્યન્તની એક એકની વૃદ્ધિવાળી શ્રેણીમાં સ્થાપિત
સંખ્યાનો પરસ્પરની માથે ગુણાકાર (સંયોજન) કરીને જે ભંગોની મહારાશિ
ઉત્પન્ન થાય છે તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભંગોને બાદ કરવાથી જે ભંગો
બાકી રહે છે, તે ભંગોને (સે તં અણાણુપુર્વી) અનાનુપૂર્વી રૂપ ગણવામાં આવે
છે. (સે તં ગણણાણુપુર્વી) આ પ્રકારનું ગણનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ. ૧૩૯॥

सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी—एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां च गच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्वाभ्यासो द्विरूपोऽनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा संस्थानानुपूर्वी॥सू. १४०॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा संस्थानानुपूर्वी? इति प्रश्नः। उत्तरयति—संस्थानानुपूर्वी संस्थानानि-
=आकृतिविशेषः, तेषामानुपूर्वी=रिपाटी संस्थानानुपूर्वी आकृतिविशेषरूपाणि।
संस्थानानि जीवाजीवभेदेन यद्यपि द्विविधानि तथापि ‘समचउरंसे’ इत्याद्यभि-
धानेन जीवसम्बन्धीन्येतानि बन्ध्यानि। इयं संस्थानानुपूर्व्यपि पूर्वानुपूर्व्यादि-
भेदेन त्रिविधा प्रोक्ता। तत्र-पूर्वानुपूर्वी-समचतुरस्रम्-समं=नाभेरुपर्यधश्च सकल-
पुरुषलक्षणोपेतानयत्तया चतुरस्रम् अन्युनाधिकाश्चतस्रः अक्षयः—कोणा यस्य तत्

अथ सूत्रकार पूर्वोक्त संस्थानानुपूर्वी का स्वरूप कथन करते हैं—

“से किं तं संठाणाणुपुञ्जी” इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं संठाणाणुपुञ्जी?) हे भद्रे! पूर्वप्रकान्त संस्थानानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(संठाणाणुपुञ्जी त्रिविधा पणत्ता) संस्थानानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है (तं जहा) वे प्रकार ये हैं -- (पुञ्जाणुपुञ्जी, पच्छाणुपुञ्जी, अणाणु पुञ्जी,) पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी (से किं तं पुञ्जाणुपुञ्जी) पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(पुञ्जाणुपुञ्जी) पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप हस्त प्रकार से है—(सम-
चउरंसे, निग्गोहमंडले, सादी खुज्जे वामणे हुंडे) समचतुरस्र संस्थान,
न्यग्रोधमंडल संस्थान, सादिसंस्थान, कुब्ज संस्थान, वामन संस्थान,

इसे सूत्रकार पूर्वोक्त संस्थानानुपूर्वीनुं निरूपण करे छे—

“से किं तं संठाणाणुपुञ्जी?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं संठाणाणुपुञ्जी?) हे भगवन्! पूर्वोक्त संस्थानानुपूर्वीनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर—(संठाणाणुपुञ्जी त्रिविधा पणत्ता) संस्थानानुपूर्वी त्रय प्रकारनी कही छे. (तं जहा) ते त्रय प्रकार नीचे प्रभावे छे—(पुञ्जाणुपुञ्जी पच्छाणुपुञ्जी अणाणुपुञ्जी) (१) पूर्वानुपूर्वी (२) पश्चानुपूर्वी अने (३) अनानुपूर्वी

प्रश्न—(से किं तं पुञ्जाणुपुञ्जी?) हे भगवन्! पूर्वानुपूर्वीनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर—(पुञ्जाणुपुञ्जी) पूर्वानुपूर्वीनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे—(समचउरंसे, निग्गोहमंडले, सादी, खुज्जे, वामणे, हुंडे) समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधमंडल संस्थान, सादिसंस्थान, कुब्ज संस्थान, वामन संस्थान अने हुंड संस्थान,

चतुरस्रम् । अतयोः कर्मधारयः । तुल्यारोहपरिणाहः सम्पूर्णलक्षणोपेताङ्गोपाङ्गावयवः
स्वाङ्गुष्ठाष्टाधिकशतोच्छ्रायः सर्वसंस्थानेषु मुख्यः पञ्चेन्द्रियजीवशरीराकारविशेष

और हुंड संस्थान । आकृति विशेष का नाम संस्थान है । इन संस्थानों की जो परिपाटी है उसका नाम आनुपूर्वी है । यद्यपि ये संस्थान जीव और अजीव के संबन्धी होने से दो प्रकार के हैं तो भी ” इस प्रकार के कथन से यहाँ जीवसंबन्धी ही ग्रहण किये गये हैं । जिस संस्थान में नाभि से ऊपर के और नीचे के समस्त अवयव सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अपने २ प्रमाण से युक्त हों, हीनाधिक न हों उसका नाम समचतुस्र है, ” समं चतुस्रम् यस्य तत् समचतुरस्रम् ” यह इसकी व्युत्पत्ति है । इसका तात्पर्य यह है कि इस संस्थान में जितने भी शरीर के नाभि से ऊपर नीचे के अंग उपांग रूप अवयव होते हैं वे सब समस्त लक्षणों से सहित होते हैं । न्यूनाधिक भाव इनमें नहीं होता है शरीर के चारों कोने इसमें बराबर होते हैं । इस संस्थान में आरोह और परिणाह-उतार चढाव-एकसा होता है । सामुद्रिक शास्त्र में सुहावने शरीर के जितने भी लक्षण कहे गये हैं वे सब लक्षण इस संस्थान वाले शरीर के अंग और

આ ક્રમે સંસ્થાનોના વિન્યાસ કરવો તેને સંસ્થાનાનુપૂર્વીના પ્રથમ ભેદ રૂપ પૂર્વાનુપૂર્વી કહે છે.

સંસ્થાન એટલે આકાર આ આકારોની જે પરિપાટી તેનું નામ આનુ-પૂર્વી છે તે કે આ સંસ્થાન જીવ અને અજીવ વિષયક હોવાને કારણે મુખ્ય બે પ્રકારનું હોય છે, પરંતુ “ સમચતુસ્રે ” ઇત્યદિ પદો દ્વારા અહીં જીવસંબંધી સંસ્થાનોને શ્રેણી કરવામાં આવેલ છે,

સમચતુસ્ર સંસ્થાન જે સંસ્થાનમાં (આકાર વિશેષમાં) નાભિની નીચેના અને નાભિની ઉપરનાં સમસ્ત અવયવો સામુદ્રિક શાસ્ત્રમાં ળતાવ્યા પ્રમાણેના પોતપોતાનાં પ્રમાણવાળાં હોય છે—હીન અથવા અધિક પ્રમાણવાળાં હોતાં નથી, તે સંસ્થાનને સમચતુસ્ર સંસ્થાન કહે છે. તેની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે—

“ સમં ચતુસ્રમ્ यस્ય તત્ સમચતુસ્રમ્ ” આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—આ સંસ્થાનમાં નાભિની ઉપરનાં અને નીચેનાં સમસ્ત અંગ ઉપાંગો સમસ્ત લક્ષણોથી યુક્ત હોય છે. કોઈ પણ અંગ ઉપાંગ ન્યૂન અથવા અધિક પ્રમાણવાળું હોતું નથી. પણ સપ્રમાણ હોય છે તેમાં શરીરના ચારે ખૂણા બરાબર હોય છે આ સંસ્થાનમાં આરોહ અને અવરોહ—ચઢાવ અને ઉતાર—એક સરખો હોય છે સામુદ્રિક શાસ્ત્રમાં સુંદર શરીરના જેટલાં લક્ષણો કહ્યાં છે, તે બધાં લક્ષણો આ શરીરના અંગઉપાંગોનાં જોવામાં આવે છે આ સંસ્થા-

इत्यर्थः । न्यग्रोधमण्डलम्=न्यग्रोधो वटवृक्षरतद्वन्मण्डलं परच तत्तथा, यथा-न्यग्रोध उपरि सम्पूर्णावयवोऽधस्तनभागे पुनर्न तथा, तथेदमपि नाभेरुपरि विस्तरवहुलं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभागम्, अधस्तु हीनाधिकप्रमाणं विज्ञेयम्। सादि-आदिरिह उत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते। आदिना=नाभेरधस्तनकायलक्षणेन सह वर्तते इति सादिः। यद्यपि सर्वशरीरमादिना सह वर्तते तथापि सादित्वविशेषणान्यथाऽनुपपत्त्या विशिष्ट एव प्रमाणलक्षणोपपन्न आदिरिह गृह्यते, तत

उपांगों में रहा करते हैं। अपने अंगुल से इस संस्थान वाला शरीर १०८ अंगुल की ऊँचाईवाला होता है। यह संस्थान समस्त संस्थानों में मुख्य होता है। और यह पंचेन्द्रिय जीव के शरीरका एक विशेष आकाररूप होता है। न्यग्रोधमण्डल-न्यग्रोध नाम वटवृक्ष का है। इसके समान जिसका मंडल हो-अर्थात् जिस प्रकार न्यग्रोध-वटवृक्ष-ऊपर में संपूर्ण अवयवोंवाला होता है और नीचे वैसा नहीं होता, उसी प्रकार यह संस्थान भी नाभि से ऊपर में बहुत विस्तारवाला होता है और नाभि से नीचे हीनाधिक प्रमाणवाला होता है ऐसे संस्थान का नाम न्यग्रोध मंडल है। सादि-नाभि से नीचे का जो उत्सेध नाम का देह भाग है वह यहाँ आदि से ग्रहण किया है। नाभि से नीचे का भाग कायरूप आदि के साथ जो रहता है उसका नाम सादि है। यद्यपि समस्त शरीर आदि सहित होते हैं तो भी संस्थान का जो सादि विशेषग

नवाणा मनुष्यनी विंशति तेना १०८ आंगणप्रमाणे ङाय छे. आ संस्थान षधां संस्थानोमां मुष्प (श्रेष्ठ) गणाय छे. अने आ संस्थान पंचेन्द्रिय लवना शरीरना अेक आकारविशेष रूप ङाय छे.

न्यग्रोधमंडलसंस्थान-वडना वृक्षने न्यग्रोध कडे छे. ते वडना जेपुं जे संस्थान (आकार) ङाय छे ते संस्थाननुं नाम न्यग्रोधमंडलसंस्थान छे. जेम वडनेा उपरनेा लाग संपूर्ण अवयवोवाणेा ङाय छे, पणु नीचे अेवो ङातो नथी, अेज प्रमाणे आ संस्थान नालिथी उपरना लागमां धणुा विस्तारवाणुं ङाय छे, परन्तु नालिनी नीचेनेा लागमां न्यूनाधिक प्रमाणवाणुं ङाय छे. भाटे आ प्रकारना संस्थाननु नाम न्यग्रोधमंडल संस्थान छे

सादिसंस्थान-नालिनी नीचेनेा जे उत्सेध नामनेा शरीरनेा लाग छे, तेने अही "आदि" पद वडे अडणु करवामां आवेल छे. नालिथी नीचेनेा जे लाग कायरूप आदिनी साथे रडे छे तेनुं नाम 'सादि' छे. जे के समस्त शरीर आदि सहित जे ङाय छे, छतां पणु अही जे सादि विशेषण लगा-

ઉક્તમ્-ઉત્સેધવહુલમિતિ। અત્રેદમુક્તં ભવતિ-યત્સ્થાનં નાભેરધઃ પ્રમાણોપપન્ન-
મુખ્યૈ ચ હીનં તત્સાદીતિ બોધ્યમ્। કુબ્જ-યત્ર સંસ્થાને શિરો ગ્રીવં હસ્તપાદા-
દિકં ચ યથોક્તપ્રમાણલક્ષણોપેતમ્, ઉદરાદિમણ્ડલં ચ યથોક્તપ્રમાણરહિતં તત્
કુબ્જમિત્યુચ્યતે। વામનમ્-યત્ર તુ હૃદયોદરપૃષ્ઠં સર્વલક્ષણોપેતં શેષં તુ હીનલક્ષણં
તદ્ વામનમ્-કુબ્જવિપરીતમિત્યર્થઃ। હુણ્ડમ્=યત્ર સંસ્થાને સર્વેઽપ્યવયવાઃ પ્રાયો
લક્ષણવિરુદ્ધા ભવન્તિ, તત્સંસ્થાનં હુણ્ડમિત્યુચ્યતે। ચતુરસ્રસંસ્થાનસ્ય સમસ્તલક્ષ-

રત્વા હૈ વહ અન્યથાનુપપત્તિ કે બલ સે વિશિષ્ટ પ્રમાણલક્ષણોપેત આદિ
સે હી સંબંધિત હોતા હૈ। હસીલિયે ઉત્સેધવહુલ એસા કહા હૈ। હસકા
તાત્પર્ય યહ હૈ ક્ષિ નાભિ સે નીચે કા ભાગ જિસ સંસ્થાન મેં ઘટુત
વિસ્તારવાલા હોતા હૈ ઓર નાભિ સે ડપર કા ભાગ હીન હોતા હૈ વહ
સંસ્થાન સાદિ હૈ। કુબ્જ જિસ સંસ્થાન મેં શિર, ગ્રીવા, હાથ, પગ આદિ
યથોક્ત પ્રમાણવાલે હોં ઓર ઉદર આદિ કા મંડલ યથોક્ત પ્રમાણ સે વિહીન
હો વહ કુબ્જ સંસ્થાન હૈ। વામન-જિસ સંસ્થાન મેં હૃદય, ઉદર ઓર પીઠ
યે સમસ્ત લક્ષણોં સે યુક્ત હોં ઓર બાકી કે અવયવ હીન લક્ષણવાલે
હોં ઉસકા નામ વામન સંસ્થાન હૈ। યહ સંસ્થાન કુબ્જ સે વિપરીત હોતા
હૈ। હુણ્ડ સંસ્થાન-જિસ સંસ્થાન મેં સમસ્ત અવયવ પ્રાયઃ લક્ષણહીન હોતે
હૈં ઉસકા નામ હુણ્ડ સંસ્થાન હૈ। સમચતુસ્ર સંસ્થાન સમસ્ત લક્ષણોં સે

ડવામાં આંબુ' છે, તે અન્યથાનુપપત્તિના બળથી વિશિષ્ટ પ્રમાણ લક્ષણોપેત
આદિ વડે જ સંબંધિત હોય છે. તેથી જ તેને ઉત્સેધ બહુલ કહ્યું છે. આ
કથનનો ભાવર્થ નીચે પ્રમાણે છે-જે સંસ્થાનમાં નાભિની નીચેનો ભાગ
ઘણા વિસ્તારવાળો હોય, પરંતુ નાભિની ઉપરનો ભાગ હીનપ્રમાણવાળો
હોય છે, તે સંસ્થાનને સાદિ સંસ્થાન કહે છે.

કુબ્જસંસ્થાન-જે સંસ્થાનમાં શિર, ગ્રીવા, હાથ, પગ આદિ અંગો
શાસ્ત્રોક્ત પ્રમાણવાળાં હોય, પરંતુ ઉદર આદિ અંગો યથોક્ત પ્રમાણથી
વિહીન હોય છે, તે સંસ્થાનને કુબ્જસંસ્થાન કહે છે.

વામનસંસ્થાન-જે સંસ્થાનમાં હૃદય, પેટ, અને પીઠ, આ અંગો સમસ્ત
લક્ષણોથી યુક્ત હોય છે, પરંતુ બાકીનાં અવયવો હીન લક્ષણવાળાં હોય છે,
તે સંસ્થાનને વામનસંસ્થાન કહે છે. આ સંસ્થાન કુબ્જસંસ્થાન કરતાં
વિપરીત લક્ષણોવાળું હોય છે.

હુણ્ડસંસ્થાન-જે સંસ્થાનમાં શરીરનાં બધા અવયવો યથોક્ત લક્ષણો-
વાળાં હોવાને બદલે વિપરીત લક્ષણોવાળાં હોય છે, તે સંસ્થાનને
હુણ્ડસંસ્થાન કહે છે.

ળોપેત્ત્વાત્ મુખપત્ત્વમ્ । તતઃ શેઝાણાં યથાક્રમં હીનત્વાદ્ દ્વિતીયાદિત્વં વોધ્યમ્ । સૈષા પૂર્વાનુપૂર્વી વોધ્યા । પશ્ચાનુપૂર્વી તુ, હુળ્ડાદિવતુરસ્થાન્તા વોધ્યા । તથા-ચતુર-સ્રાદિ હુળ્ડાન્તાનાં પદાનામન્યોન્યામ્બ્યાસો દ્વિરૂપોનઃ । આઘન્તરૂપદ્વયમ્બ્રજકવિવ-ક્ષામપહાય યે મજ્ઞાસ્તે-અનાનુપૂર્વીતિ । નતુ યદીત્યં સંસ્થાનાનુપૂર્વી યોચ્યતે, તર્હિ સંહનનવર્ણરસસ્પર્શાદ્યાનુપૂર્વોઽપિ વક્તવ્યાઃ સ્યુઃ, તથા સતિ આનુપૂર્વ્યાઃ પ્રાગ્ દ્વાસપ્તતિતમસૂત્રોક્તદશસંખ્યકત્વમેવ પરિહીયેત, એવં ચ આનુપૂર્વગઃ દશવિધન્વ

યુક્ત હોતા હૈ હસલિયે ઉસ મેં મુખ્યતા હૈ । શેષ પ્રમાણોપેત-લક્ષણોં સે યથાક્રમ હીન હૈં હસલિયે ઉન મેં અમુખ્યતા દ્વિનીયતા આદિ હૈ । યદી પૂર્વપ્રક્રાન્ત પૂર્વાનુપૂર્વી હૈ । હુળ્ડ સંસ્થાન સે લેકર સમચતુરસ્ર સંસ્થાન તક પશ્ચાનુપૂર્વી હોતી હૈ । તથા સમચતુરસ્ર સે લેકર હુળ્ડ સંસ્થાન તક કે પદોં ક્રા પરસ્પર મેં ગુણાકરને પર ઓર ઉસ ગુણિન રાશિ મેં આદિ અંત કે મંગદ્વય કી વિવક્ષા કમ કરને પર જો મંગ હોતે હૈં ઉન મંગ સ્વરૂપ અનાનુપૂર્વી હોતી હૈ । શંકા-યદિ હસ પ્રકાર સે સંસ્થાનાનુપૂર્વી આપ કહતે હૈં તો સંહનન, વર્ણ, રસ, સ્પર્શ આદિ કોં કી મી આનુપૂર્વિયાં આપકો કહની ચાહિયે । હસ પ્રકાર સે આનુપૂર્વિયાં કહને પર જો ૭૨ વે સૂત્ર મેં " આનુપૂર્વિયાં દશ હોતી હૈં " એસા કહા હૈ સો ઉસ સંખ્યા મેં હી આતી હૈ ।

સમચતુરસ્ર સંસ્થાન સમસ્ત લક્ષણોથી યુક્ત હોય છે. તેથી તેમાં પ્રધાનતા માનીને તેનું કથન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે. બાકીનાં સંસ્થાનો શાસ્ત્રોક્ત લક્ષણો કરતાં ક્રમશઃ ઓછાં ઓછાં લક્ષણો ધરાવે છે તેથી તે સંસ્થાનોને ગૌણ ગણીને તેમનું કથન સમચતુરસ્રસંસ્થાનનું કથન કર્યા બાદ કરવામાં આવ્યું છે. આ પ્રકારનો કથનનો જે ક્રમ છે તેને જ અહીં પૂર્વાનુપૂર્વી રૂપ ગણવામાં આવેલ છે. હુંડ સંસ્થાનથી લઈને ઊલટા ક્રમે સમચતુ સ્ર પર્યન્તના સંસ્થાનોનો ક્રમ રાખવાથી પશ્ચાનુપૂર્વી રૂપ બીજી સંસ્થાનનુપૂર્વી બને છે

અનાનુપૂર્વી-સમચતુરસ્ર સંસ્થાનથી લઈને હુંડસંસ્થાન પર્યન્તની એક એકની વૃદ્ધિવાળી શ્રેણિમાં સ્થાપિત સંસ્થાનોનો પરસ્પરની સાથે ગુણાકાર (સંયોજન) કરવાથી જે ગુણિતરાશિ આવે તેમાંથી આદિ અને અન્તના જે ભંગોને બાદ કરવાથી જે ભંગસમૂહ બાકી રહે છે, તે ભંગસમૂહ રૂપ અનાનુપૂર્વી હોય છે.

શંકા-જે આ પ્રકારે આપ સંસ્થાનાનુપૂર્વીનું કથન કરો છો, તો સંહનન, વર્ણ, રસ, સ્પર્શ આદિકોની આનુપૂર્વીઓનું આપે કથન કરવું જોઈએ આ પ્રકારે આનુપૂર્વીઓ કહેવામાં આવે તો ૭૨માં સૂત્રમાં " આનુપૂર્વીઓ દસ હોય છે, " આ પ્રકારનું જે કથન કર્યું છે તે કેવી રીતે સંમત માની શકાય ?

कथनमसंगतम् ? इति चेदाह पूर्वोक्तमानुपूर्व्या दशविधत्वं नो संख्याया नियाम-
कम् अपि तु उपलक्षणमात्रम् । अतो दशविधानुपूर्व्यतिरिक्ता अन्या अपि
संभाव्यमाना आनुपूर्व्यः सुधिया स्वधिया विभावनीयाः ॥सू० १४०॥

अथ सामाचार्यानुपूर्वीमाह-

मूलम्—से किं तं सामायारी आणुपुव्वी ? सामायारी आणुपुव्वी
तिविहा पणत्ता, तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छानुपुव्वी अणाणु-
पुव्वी । से किं तं पुवानुपुव्वी ? पुव्वाणुपुव्वी—इच्छागारो, मिच्छा-
गारो, तहकारो, आवस्सिया, निसीहिया, आपुच्छणा, पडिपुच्छणा,
छन्दणा, निमंतणा, उवसंपया । से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं
पच्छाणुपुव्वी ? पच्छाणुपुव्वी—उवसंपया जात्र इच्छागारो । से तं
पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ? अणाणुपुव्वी—एयाए चव
एगाइयाए एगुत्तरियाए दसगच्छगयाए सेठीए अन्नमन्नब्भासो
दुरूवूणो । से तं अणाणुपुव्वी । से तं सामायारी आणुपुव्वी । सू. १४१।

छाया—अथ का सा सामाचार्यानुपूर्वी ? सामाचार्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता,
तद्यथा—पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी । अथ का सा पूर्वानुपूर्वी—इच्छाकारः,
मिथ्याकारः, तथाकारः, आवश्यकी, नैषेधिकी, आपच्छना, प्रतिपच्छना, छन्दना,

उत्तर — पहिले जो आनुपूर्वीं में दश प्रकारता प्रकट की है वह
संख्याय की नियामकता रूप से प्रकट की है, किन्तु वह तो उपलक्षण
मात्र से कही है । इसलिये दश प्रकार की आनुपूर्वियों से भी अतिरिक्त
और भी आनुपूर्वियां संभवित होती हैं ऐसा इससे भाव निकलना है ।
हमलिये ऐसी आनुपूर्वियों को बुद्धि शाली जन अपनी बुद्धि से उद्भा-
वित करलें । सूत्र " १४० "

उत्तर—पडेलां आनुपूर्वींभां जे दस विधता प्रकट करवाभां आवी छे
ते संख्यायती नियामकता इपे प्रकट करवाभां आवी नथी, यद्यु ते तो उप-
लक्षण मात्रनी अपेक्षाये प्रकट करवाभां आवेल छे, तेथी दस प्रकारनी
आनुपूर्वींओ सिवायनी णीछ आनुपूर्वींओ पद्यु संभवित छेय छे, जेवे
ते कथनमे लावार्ध समजवे तेथी बुद्धिशाली भाषुसेओ जेनी आनुपूर्वीं-
ओने पोतानी बुद्धिथी जे उद्भावित करी देवी जेछेओ, ॥सू०१४०॥

निमन्त्रणा, उपसंपत् । सैषा पूर्वानुपूर्वी । अथ का सा पश्चानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी-
उपसंपद् यावदिच्छाकारः । सैषा पूर्वानुपूर्वी । अथ का सा अनानुपूर्वी ? अनानु
पूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां दशगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्या-
भ्यासो द्विरूपोनः । सैषा अनानुपूर्वी । सैषा सामाचार्यानुपूर्वी ॥सू० १४१॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा सामाचार्यानुपूर्वी ? इति शिष्यप्रश्नः । सामाचार्यानुपूर्वी-
समाचरणं समाचारः शिष्टजनाचरितः क्रियाकलापः, स एव सामाचारी, स्वार्थे-
ष्यञ्, षित्वान्डीष्, तद्रूपा आनुपूर्वी सामाचार्यानुपूर्वी । सा हि पूर्वानुपूर्व्यादि

अब सूत्रकार सामाचारी आनुपूर्वी का कथन करते हैं --

“से किं तं सामाचारी आणुपुर्वी” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं सामाचारी आणुपुर्वी) हे भदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त
सामाचारी आनुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(सामाचारी आणुपुर्वी तिविहा पणत्ता) सामाचारी आनुपूर्वी
का तात्पर्य है शिष्यजनों द्वारा आचरित क्रियाकलाप रूप समाचार । यह
समाचार ही स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय और डीष् होने से सामाचारी ऐसा बन
जाता है । इस सामाचारी रूप जो आनुपूर्वी है । वह सामाचारी आनुपूर्वी
कही जाती है । यह आनुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है । (तं जहा)
जैसे (पुव्वाणुपुर्वी, पच्छाणुपुर्वी, अणाणुपुर्वी) पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी और
अनानुपूर्वी । (से किं तं पुव्वाणुपुर्वी) हे भदन्त ! पूर्वापूर्वी सामाचारी क्या है ?

इसे सूत्रकार सामाचारी आनुपूर्वीनुं निरूपण करे छे—

“से किं तं सामाचारी आणुपुर्वी” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं सामाचारी आणुपुर्वी ?) हे भगवन् ! पूर्वोक्त
सामाचारी आनुपूर्वीनुं स्वइप डेवुं छे ?

उत्तर—(सामाचारी आणुपुर्वी तिविहा पणत्ता, तंजहा) शिष्यजनों द्वारा
आचरित क्रियाकलाप रूप समाचारने सामाचारी आनुपूर्वी कडे छे. ते समा-
चार न सामाचारी रूप डोवाथी तेनुं नाम सामाचारी पड्युं छे. आ
सामाचारी रूप न आनुपूर्वी छे तेने सामाचारी आनुपूर्वी कडे छे. तेना
नीचे प्रमाणे त्रय प्रकार कहे छे—(पुव्वाणुपुर्वी पच्छाणुपुर्वी, अणाणुपुर्वी)
(१) पूर्वानुपूर्वी, (२) पश्चानुपूर्वी अने (३) अनानुपूर्वी.

प्रश्न—(से किं तं पुव्वाणुपुर्वी ?) हे भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी सामाचारीनुं
स्वइप डेवुं छे ?

भेदेन त्रिविधा प्रज्ञप्ता । तत्र पूर्वानुपूर्वी इच्छाकारः, मिथ्याकारः, तथाकारः, तत्र-इच्छाकारः-इच्छाया बलाभियोगमन्तरेण करणम् ॥१॥ मिथ्याकारः=मिथ्या= यदेनमयाऽऽचरितं तदसदिति मनसि करणम् । कस्मिंश्चिदकृत्ये कर्मणि कृते सति भव्येनैवं विचिन्त्यते-यदिदं मया कृतं तद् भगवताऽनुक्तत्वात् मिथ्याभूतम्, अतो मयेदं दुष्कृतं कृतमित्येवं यदसत्क्रियातो निवृत्तिः स मिथ्याकार इति भावः ॥२॥

उत्तर — (पुञ्जाणुपुञ्जी) पूर्वानुपूर्वी सामाचारी इस प्रकार से है— (इच्छागारो मिच्छागारो, तद्वक्कारो आवस्सिया निसीहिया, आपुच्छणा' पडिपुच्छणा छंदणा' निमंतणा, उवसंपया) इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, आवश्यकी, नैषेधिकी, आप्रच्छना, प्रतिप्रच्छना, छन्दना, निमंत्रणा, और उपसंपत् । किसी की जवर्दस्ती बिना व्रतादिक आचरण करने की इच्छा करना इसका नाम इच्छाकार है । मेरे प्रमाद आदि से अकृत्य का सेवन हो गया है वह मेरा निष्फल हो-असत् हो ऐसा मन में विचार करना इसका नाम मिथ्याकार है । कोई अकृत्य कर्म जब बन जाता है । तब अन्वयपुरुष मन में ऐसा चिन्तन करता है कि जो यह मैंने किया है वह भगवान् द्वारा अनुक्त होने से मिथ्याभूत है । इसलिये यह दुष्कृत्य है और यह मैंने किया है-अब भागे नहीं करूंगा-इस प्रकार

उत्तर-(पुञ्जाणुपुञ्जी) पूर्वानुपूर्वी सामाचारीतुं स्वरूप आ प्रकारतुं छे- (इच्छागारो, मिच्छागारो, तद्वक्कारो, आवस्सिया, निसीहिया, आपुच्छणा, पडिपुच्छणा, छंदणा, निमंतणा, उवसंपया) इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, आवश्यकी, नैषेधिकी, आप्रच्छना, प्रतिप्रच्छना, छन्दना, निमंत्रणा अने उपसंपत्, आ कमे पढेनो विन्यास (स्थापना) करवे। तेतुं नाम पूर्वानुपूर्वी सामाचारी छे हवे इच्छाकार आदि पढेनो अर्थ स्पष्ट करवामां आवे छे- द्वाधनी अणभरी विना-अडारना कोध पणु दणाणु विना-वनादिक आचरवानी इच्छा करवी तेतुं नाम इच्छाकार छे।

“ मारा द्वारा प्रमाद आदिने कारणे आ अकृत्यतुं ने सेवन थर्थ गयुं छे, ते मारुं अकृत्य निष्फल (मिथ्या) छे, ” आ प्रकारनो मनमां विचार करवे तेतुं नाम मिथ्याकार छे. ज्यारे कोध अकृत्यतुं सेवन थर्थ जय छे त्यारे अन्वयपुरुष मनमां तेतुं चिन्तवन करे छे छे “ आ में ने कयुं छे ते भगवान् द्वारा अनुक्त हेवाथी मिथ्याभूत छे, तेथी ते दुष्कृत्य रूप न छे. ज्येते दुष्कृत्य मारा वडे नेतार्थ गयुं छे, परन्तु हवेथी हुं तेतुं सेवन नहीं करुं, ” आ प्रकारनो विचार करीने असत् क्रियाज्येथी इर रडेते- ज्येथी क्रियाज्ये करवां पाछां दडुं, तेतुं नाम मिथ्याकार छे

तथाकारश्च-सूत्रव्याख्यानादौ प्रस्तुते गुरुभिः कर्मिभ्यिद् वचस्युदीरिते सति यथा
 भवन्तः प्रतिपादयन्ति तथैवैत" इत्येवं करणम्-वितर्कमकृत्यैव गुर्वाज्ञाऽभ्युपगमि
 इत्यर्थः ॥३॥ आवश्यकी-ज्ञानाद्यर्थमुपाश्रयादवश्यं बहिर्गमने समुपस्थिते 'अवश्यं
 मिदं कर्तव्यमतोऽहं गच्छामि' इत्येवं या गुरुं प्रति निवेदना सा आवश्यकीति
 तात्पर्यम् ॥५॥ नैषेधिकी-निषेधे भाग-नैषेधिकी=उपाश्रयाद् बहिः कर्तव्यव्यापारं
 परिसमाप्य पुनस्तत्रैव प्रविशतः साधुः शेषसाधूनामुत्त्रासादि-दोषपरिजिहीर्षया
 बहिर्व्यापारनिषेधेन उपाश्रयप्रवेशमुच्यते ॥५॥ आपच्छना="भदन्त ! करोमीद"

विचार कर भस्त्र क्रियाओं से पीछे इटना उनसे दूर रहना इसका नाम
 मिथ्याकार है। सूत्र व्याख्यान आदि जब हो रहा हो तब उस समय
 गुरुजन जो कोई भी वचन उच्चरित करें तब ऐसा कहना कि जिस
 प्रकार आप कहते हैं वह वैसा ही है। इसका नाम तथाकार है। तात्पर्य
 यह है कि वितर्क किये बिना ही गुरुदेव की आज्ञा का स्वीकार करना
 तथाकार है। आवश्यक कर्तव्य करने के लिये उपाश्रय से बहिर्गमन यदि
 अवश्य कर्तव्य रूप में उपस्थित हो तब "अवश्यं कर्तव्यमिदम् अतो
 गच्छामि" ऐसा ख्याल बरके गुरु से बाहर जाने की आज्ञा प्राप्त करने के
 लिये निवेदन करना इसका नाम आवश्यकी है। उपाश्रय से बाहिर कर्तव्य
 कर्म को समाप्त करके जब साधु उपाश्रय में प्रवेश करे, तब शेष साधु
 जनों को मेरे द्वारा कोई उत्त्रास आदि न हो इस प्रकार के ख्याल से
 उपाश्रय में अपने प्रवेश की सूचना देना इसका नाम नैषेधिकी है।

सूत्रनुं व्याख्यान आदि न्यारे याही-इहं-डेयु, त्पारे गुरुने-उच्यते।
 कडे तेने स्वीकारी-तेवां-“डे-गुरुदेव! आपु ने-कडे-छे-ते-प्रवे-
 आपनी-प्रात यथार्थ-छे” आ-प्रकारना-“वचनोतुं-उत्तरारणु-करवुं-तेनुं-
 नाम तथाकार छे. अत्र-के-वितर्क-कर्या-विना-ए-गुरुनी-अज्ञानो, स्वीकार
 करवुं-तेनुं-नाम, तथाकार छे

आवश्यकी-आवश्यक कर्तव्य करवाने-माटे उपाश्रयभांथी-अडार-जवानुं
 ने-अवश्यक-कर्तव्य-इरे-उपस्थित-थाय, तो “अवश्यं-कर्तव्यमिदम्-अतो-गच्छामि”
 “आ-कार्य-अवश्य-करवा-योग्य-छे,” आ-प्रकारने-विचार-करीने-अडार-
 जवानी-आज्ञा-प्राप्त-करवा-माटे-गुरुनी-आगत-निवेदन-करवुं-तेनुं-नाम,
 आवश्यकी-छे. उपाश्रयनी-अडारना-कार्यने-पनावीने-न्यारे-साधु-उपाश्रयभां
 प्रवेश-करे, त्पारे-ते-पेताना-उपाश्रयभां-पेछां-करवानी-सूचना-आपे-छे.
 आ-पकारे-उप-श्रमां-पुनः-प्रवेशनी-ने-सूचनां-अपाय-छे-तेने-नैषेधिकी-कडे
 छे. आ-प्रकारने-करवानी-कारण-अ-छे-के-तेना-आगतनेनी-प्रतीक्षा-करतां-आकीनां

मित्येवं गुरुं प्रति प्रच्छन्नम् ॥६॥ प्रतिप्रच्छना=किञ्चित्कर्तव्यमुद्दिश्य शिष्येण पृष्ठो गुरुः तत्कार्यं कर्तुं दत्ताज्ञोऽपि पुनः कार्यारंभसमये कथयति-सा प्रतिप्रच्छना । अथवा-ग्रामान्तरगमनाय गुरुणादिष्टः शिष्यो गमनकाले यत्पुनर्गुरुं प्रतिपृच्छति सा प्रतिप्रच्छना 'एवं प्रत्येककार्येऽपि बोध्यम्' । ७॥ छन्दना=साधुः स्वानीताशनाद्युपभोगविषये सुवर्जया 'परिच्छुद्धचेदं कुरु मयि कृपाम्' इत्येवं-यथारत्निकमन्यसाधून् प्रति आग्रहं करोति, सा छन्दना ॥८॥ निमन्त्रणा='इमं-पदार्थमुप-

हे भदन्त । मैं यह काम करता हूँ इस प्रकार से गुरु महाराज से पूछना इसका नाम आप्रच्छना है । किसी कर्तव्य कार्य को उद्देश्य करके जब शिष्य गुरुजन से उस कार्य को करने की आज्ञा प्राप्त करने के लिये पूछता है, और कार्य की आज्ञा होने पर भी कार्य करने के समय में गुरु से पुनः पूछना इसका नाम प्रतिप्रच्छना है । अथवा दूसरे ग्राम में जाने के लिये गुरुद्वारा आदिष्ट हुआ शिष्य जब जाने लगे तो उसका कर्तव्य है कि वह जाते समय पुनः गुरु महाराज से पूछे-इस प्रकार के पूछने का नाम भी प्रतिप्रच्छना है । यह प्रतिप्रच्छना प्रत्येक कार्य में भी हो सकती है । साधु अपने ज्ञान का आहार आदि के लिये यथा रत्निक अन्य साधुओं से गुरु की आज्ञा प्राप्त कर जो ऐसा आग्रह

साधुजोने तेना आगमननी भणर पडे छे अने तेना द्वारा डोपने उत्पन्न उत्पन्न धवानी संलावना रहेती नथी.

आप्रच्छना-"हे लगवन्! हुं आ काम करूं छुं" आ प्रकारे गुरु महाराजने पूछवुं तेनुं नाम आप्रच्छना छे.

प्रतिप्रच्छना-कोई काम करवा भाटे शिष्य गुरु पामे आज्ञा भागे, अने ते कार्यनी गुरुजे आज्ञा आप्या छतां पषु कार्य करती वणते आ प्रमाणे गुरुने इरीथी पूछवुं तेनुं नाम प्रतिप्रच्छना छे

अथवा-णीजे गाम जनानी गुरु द्वारा आज्ञा भणी डोय, छतां पषु जीजे गाम गमन करती वणते शिष्ये इरीथी गुरुनी आज्ञा लेनी लेछन्ने आ प्रकारे पूर्वे आज्ञा प्राप्त थड गया आठ गमन करती वणते गुरुने इरी ने पूछनामां आवे छे तेनुं नाम प्रतिप्रच्छना छे प्रत्येक कार्यनां पषु आ प्रतिप्रच्छना संलवी रहे छे.

छन्दना-पोताना लजना आदार दिने लेजनादि उपे अदाम उवानी अन्य संयोगिक साधुजोने विनंति करवी तेनुं नाम छन्दना छे. गुरुनी आज्ञा लधने ते साधु यथारत्निक अन्य साधुजोने या प्रमाणे आग्रह करे

लभ्याहं तुभ्यं दास्यामीति मे भावो वर्तते ' इत्येवं पदार्थप्राप्तेः पूर्वमेव यत्ताप-
नामामन्त्रणं सा निमन्त्रणा । उक्तं च —

“पुञ्जगहिण्ण छंदण निमन्त्रणा होई अगहिण्णं”

छाया—पूर्वगृहीतेन छन्दना निमन्त्रणा भवत्यगृहीतेनेति ॥९॥

तथा-उपसम्पत्=“त्वदीयोऽह” मित्येवं रूपेण श्रुताद्यर्थमन्यदीवसत्ताऽभ्युपगमः
॥१०॥ इह धर्मस्य परानुपतापमूलत्वात् इच्छाकारस्य आज्ञाबलाभियोगलक्षणपरो-
पतापवर्जकत्वात् प्राधान्येन प्रथममुपन्यासः । परानुपतापकेनापि च कथंचित्स्खलने

करता है कि मुझ पर कृपा करके इसे आप ग्रहण करिये—अपने उप-
योग में लाइये उसका नाम छंदना है । पदार्थ प्राप्ति के पहिले ही जो
अन्य साधुजनों से ऐसा कहना कि इस पदार्थ को लाकर मैं तुम्हें दूँगा
इसका नाम निमन्त्रणा है । उक्तं च करके (पुञ्जगहिण्ण) इत्यादि गाथा
द्वारा यही बात कही गई है । श्रुतादिके अर्थ को सीखने के लिये मैं
आपका ही हूँ इस प्रकार से अन्य साधु आदि की आधीनता स्वीकार
करना इसका नाम उपसंपत् है । धर्म परानुपतापमूलक होता है—
अर्थात् धर्म वही है कि जिस से—किसी भी प्राणी को कष्ट न हो ।
इच्छाकार इसी प्रकार का धर्म है । क्योंकि इसमें जिनव्रतादिकों को
आचरण करनेकी इच्छा की जाती है उसमें पर की आज्ञा और बला-
भियोग काम नहीं करता है । क्योंकि इन से दूसरे प्राणियों को संताप

छे—“कृपा करीने आप आ आहारादिने ग्रहण करो आने तेना उपयोग
करो.” आ प्रकारनी साधु सामाचारीतुं नाम छंदना छे.

निमन्त्रणा—पदार्थनी प्राप्ति थयां पडेलां केध पणु साधुने केध पणु
अन्य साधु द्वारा अपुं ने कडेवामां आवे छे के अमुक पदार्थ वडोरी
लावीने हुं आपने आपीश, आ प्रभाणे केध पणु वस्तु लावी आपवाने
भाव छे तेम कडेवुं तेनुं नाम निमन्त्रणा छे. “पुञ्जगहिण्ण” इत्यादि
सूत्रपाठ द्वारा आ बात न प्रकट करवामां आवी छे.

उपसंपत्-श्रुतादिने अर्थ शीभवाने माटे “हुं आपने न छुं,”
आ प्रकारनां वचने द्वारा अन्य साधुनी आधीनताने स्वीकार करवे तेनुं
नाम उपसंपत् छे.

धर्म परानुपतापमूलक होय छे अटले के धर्म तेने न कही शक्य के
नेना द्वारा केध पणु प्राणीने कष्ट न थाय इच्छाकार अण प्रकारने धर्म
छे, कारण के तेमां ने व्रतादिकेनुं आचरण करवानी इच्छा कराय छे, तेमां
अन्यनी आज्ञा अथवा अणअणरी आवी शकती नथी, कारण के अवी आज्ञा

मिथ्यादुष्कृतं दातव्यमिति तदनन्तरं मिथ्याकारस्योपन्यासः । एतौ य गुरुवचन-
प्रतिपत्तावेव ज्ञातुं शक्यौ, गुरुवचनं च तथाकारकरणेनैव सम्यक् प्रतिपन्नं भवतीति
तदनन्तरं तथाकारस्योपन्यासः । गुरुवचनं स्वीकृत्यापि शिष्य उपाश्रयाद् बहि-
र्निर्गमनकाले गुरुं पृष्ट्वैव निर्गच्छेत्, अतस्तथाकारानन्तरं गुरुपृच्छारूपाया आव-
श्यकस्याः कथनम् । बहिर्निर्गतः शिष्यो नैषेधिकां पूर्वकमेवोपाश्रये प्रविशेदिति आव-
श्यक्याः अनन्तरं नैषेधिकाः कथनम् । उपाश्रये प्रविष्टः साधुर्गुरुमापृच्छयैव सर्व-

होता है या हो सकता है । अतः व्रतादिकों की चाहना में आत्मा की
निज इच्छा ही काम करती है । इसलिये इच्छाकार में प्रधानता होने से
उसका यहाँ सर्व प्रथम उपन्यास किया है । दूसरों को अनुपतापक होने
वाले भी गुरुजन द्वारा कथंचित् व्रतादिक से स्वलित होने पर शिष्या-
दिजनों के लिये मिथ्यादुष्कृत दिया जाता है इसलिये इच्छाकार के
बाद में मिथ्या दुष्कृत का पाठ रखा है । इच्छाकार और मिथ्यादुष्कृत
से दोनों गुरुवचनों पर विश्वास रखने पर या उनकी स्वीकृति करने पर
ही ज्ञातुं शक्य हैं इसलिये गुरुमहाराज के वचनों का स्वीकार किया
जाना तथाकार से ही जाना जाना है इसलिये मिथ्याकारके बाद
तथाकार का पाठ रखा है । गुरुवचन को स्वीकार करके भी शिष्य
का कर्तव्य है कि जब वह उपाश्रय से बाहर जावे तो गुरु से पूछकर
ही ज्ञानेन वात को स्पष्ट करने के लिये तथाकार के बाद आवश्यक

अने, पुण, अपरी, करवाभां आवे तो अन्य लवने संताप थाय छे के थर्
शके छे. तेथी व्रतादिकेनी याडनाभां आत्मानी पोतानी न छिछा कार्यसाधक
पुते छे, आ, मुझरे छिछाकारभां प्रधानता डोवाने कारले अही सौथी पडेलां
छिछाकारने, उपन्यास करवाभां आये छे. न्यारे केछ साधु केछ अकृत्यनुं
नेरु, करे छे, अथवा व्रतादिकेने लंग करे छे त्यारे अन्य लवने कण्ट
हीके, आपमा, अने, गुरुने द्वारा मिथ्यादुष्कृत देवाभां आवे छे, तेथी
छिछाकारने उपन्यास कर्या बाद मिथ्याकारने उपन्यास करवाभां आये छे.
छिछाकारने, मिथ्यादुष्कृत आ पन्नेने सदभाव त्यारे न केछ शके छे
हे, अने, गुरुतां, पथने, शिष्यने विश्वास डोय छे गुरुना वचनेने शिष्य
स्वीकार करे छे, अ वात तथाकार वडे न लणी शक्य छे. ते कारले मिथ्या-
कार, अथी तथाकारने पीके राभवामां आये छे.

गुरुना वचनेने तथाकार द्वारा स्वीकार करनार शिष्ये उपाश्रयमांथी केछ
आवश्यक कार्य निमित्ते गदार नवा माटे गुरुनी आज्ञा देवी लेछे, अने
वातने केछे करवाभेमाटे तथाकार पथी आवश्यकने पाठ राभवामां आये

मनुतिष्ठेदिति नैषेधिक्या अनन्तरमाप्रच्छनायाः कथनम् । किञ्चित्कार्यं कर्तुमध्यव-
सितः प्राप्ताज्ञोऽपि शिष्यः कार्यकरणसमये गुरुं पुनः पृच्छेदिति गुरोरनुमतिं
प्राप्तुकामः कारणप्रदर्शनपूर्वकं पुनःपृच्छेदिति आप्रच्छनानन्तरं प्रतिप्रच्छनायाः
कथनम् । प्रतिपृष्टेन गुरुणाऽनुज्ञातः शिष्यो स्वसंविभागप्राप्ताज्ञनाद्याहारपरिमोगार्थं
पर्यायज्येष्ठक्रमेण साधूनामन्त्रयेदिति प्रतिप्रच्छनानन्तरं छन्दनाया उपन्यासः ।

का पाठ रखा है। बाहर गया हुआ शिष्य नैषेधिकीपूर्वक ही उपाश्रय
में प्रवेश करे इस विषय को बताने के लिये आवश्यक की के बाद नैषे-
धिकी का पाठ रखा है। उपाश्रय में प्रविष्ट हुआ शिष्य जो कुछ भी
करे वह गुरुमहाराज की आज्ञा लेकर ही करे इस विषय को कहने के
लिये नैषेधिकी के बाद आप्रच्छना का पाठ रखा है। किसी कर्तव्य
कार्य को करने के लिये शिष्य गुरु महाराज से पूछे परन्तु वे यदि उस
कार्य को करने की आज्ञा देवे शिष्य तत्पश्चात् पुनः आवश्यक कार्य
को करने के लिये गुरु महाराज से आवेदन करे और उस
कार्य को करने की उनसे आज्ञा प्राप्त करने के लिये पूछे यह संबंध
बताने के लिये आप्रच्छना के बाद प्रतिप्रच्छना का पाठ रखा है। गुरु
महाराज से आज्ञा प्राप्त कर अज्ञानादिक को लाया हुआ शिष्य उसके
परिभोग के लिये सादर अन्य साधुओं को आमंत्रित करे इस बात को

छे. उपाश्रयनी षडार गयेला साधुं नैषेधिकीपूर्वक न उपाश्रयमां प्रवेश
करवे। नैषेधिकी, अने वातने प्रकट करवा भाटे आवश्यकतीना पाठ पछी नैषेधि-
कीना पाठ राखवामां आव्ये। छे. उपाश्रयमां प्रविष्ट थयेले। शिष्य ने काम
करे ते काम तेले गुरुमहाराजनी आज्ञा लधने न करवुं नैषेधिकी, अने वात
प्रकट करवाने भाटे नैषेधिकीना पाठ पछी आप्रच्छनाने पाठ राखवामां आव्ये।
छे. कांथ पथु कार्य करवा भाटे शिष्य गुरुनी आज्ञा मागे अने गुरु ते कार्य
करवानी आज्ञा आवे, ते पछी थोडीवार थोडीने तेले इरीथी कार्यने
आरंभ करती वधते गुरुनी इरीथी आज्ञा मागवी ते थताववा भाटे
प्रतिप्रच्छना (इरी पूछना)ने। प्रसंग उपस्थित थाय छे, ते कारले सूत्रकारे
आप्रच्छना पछी प्रतिप्रच्छनाने पाठ भूक्ये छे गुरु महाराजनी आज्ञा लधने
ने आहारादि साधु लाव्ये होय तेना उपलोगने भाटे अन्य साधुंअने
मानपूर्वक थोलाववा नैषेधिकी, अने वातने प्रकट करवा भाटे प्रतिप्रच्छना पछी
छन्दनाने पाठ राखवामां आव्ये छे.

છન્દના તુ ગૃહીત एदाशनादौ संभवेत्, अगृहीते तु निमन्त्रणैव, अतच्छन्दनाया अनन्तरं निमन्त्रणाया उपन्यासः । १ गुरुपसत्तिमन्तरेण=गुरुपामीप्यं विना इच्छाकारादिनिमन्त्रणान्ता सर्वाऽपि सामाचारी गुरुपसत्तिमन्तरेण=गुरुसामीप्यं विना न ज्ञायते इति सर्वान्ते उपसम्पद उपन्यासः ? । इति पूर्वानुपूर्वीत्वे हेतुर्बोध्यः । उपसंहरन्नाह—सैषा पूर्वानुपूर्वीति । पश्चानुपूर्वी तु उपसम्पदादीच्छाकारान्ता बोध्या ।

કહને કે લિયે પ્રતિપ્રચ્છના કે બાદ છન્દના કા પાઠ રખા હૈ । ગૃહીત અશનાદિક મેં હી છન્દના હોતી હૈ પરન્તુ જો અગૃહીત અશનાદિક હૈં ઉનમેં તો નિમંત્રણા હી હોતી હૈ । હસલિયે છન્દના કે બાદ નિમંત્રણા કા પાઠ રખા હૈ । ઇચ્છાકાર સે લગાકર નિમંત્રણા તરુ કી જિતની મી સામાચારી હૈં વે સવ ગુરુ મહારાજ કો નિકટના કે વિના નહીં જાની જા સકતી હૈ હસ વાત કો કહને કે લિયે અન્ત મેં ઉપસંપત્ કા ઉપન્યાસ ક્રિયા હૈ । હસ પ્રકાર હસ સામાચારી કે પૂર્વાનુપૂર્વીત્વ મેં યહ સવ હેતુ જાનના ચાહિયે ।

(સે તં પુવ્વાણુપુવ્વી) હસ પ્રકાર યહ પૂર્વાનુપૂર્વી હૈ । (સે કિં તં પચ્છાણુપુવ્વી) હે ભદન્ત ! પશ્ચાનુપૂર્વી સામાચારી કયા હૈ ?

ઉત્તર—(ઉપસંપયા જાવ ઇચ્છાગારો) ઉપસંપદા સે ઇચ્છાકાર પર્યન્ત (પચ્છાણુપુવ્વી) પશ્ચાનુપૂર્વી હૈ । (સે કિં તં અણાણુપુવ્વી ?) હે ભદન્ત !

ગૃહીત અશનાદિના વિષયમાં જ છન્દના સંભવી શકે છે, પરન્તુ અગૃહીત અશનાદિકના વિષયમાં નિમંત્રણા સંભવી શકે છે, તે કારણે છન્દનાના પાઠ પછી નિમંત્રણાનો પાઠ રાખવામાં આવ્યો છે ઇચ્છાકારથી લઈને નિમંત્રણા પર્યન્તની જેટલી સામાચારી છે, તેમને જાણવાને માટે ગુરુની નિકટતાની જરૂર રહે છે, એ વાતને પ્રકટ કરવા માટે ક્રૌથી છેલ્લે ઉપસંપત્નો ઉપન્યાસ કરવામાં આવ્યો છે. સામાચારીમાં ઇચ્છાકાર આદિ ક્રમે પદોની જે સ્થાપના કરવામાં આવે છે તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે. આ પદોને આ પ્રકારનો ક્રમ આપવાનું કારણ ઉપર પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે. (સે ત પુવ્વાણુપુવ્વી) આ પ્રકારનું પૂર્વાનુપૂર્વી સામાચારીનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં પચ્છાણુપુવ્વી ?) હે ભગવન્ ! પશ્ચાનુપૂર્વી સામાચારીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(ઉપસંપયા જાવ ઇચ્છાગારો) ઉપસંપદાથી લઈને ઇચ્છાકાર પર્યન્તના ક્રમમાં પદોનો ઉપન્યાસ (સ્થાપના) કરવો (પચ્છાણુપુવ્વી) તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે.

तथा—इच्छाकाराद्युपसंपदन्तानां पदानामन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोत्तः—आद्यन्तपद-
द्वयविवक्षामपहाय ये भङ्गास्ते—अनानुपूर्वी बोध्याः । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—सैषा
सामाचार्यानुपूर्वीति ॥सू० १४१॥

अथ भावानुपूर्वीमाह—

मूत्रम्—से किं तं भावाणुपुट्वी? भावाणुपुट्वी तिविहा पणत्ता,
तं जहा—पुट्वाणुपुट्वी पच्छाणुपुट्वी अणाणुपुट्वी । से किं तं
पुट्वाणुपुट्वी? पुट्वाणुपुट्वी—उदए १, उवसस्मिए २, खाइए ३,
खओवसस्मिए ४, पारिणामिए ५, संनिवाइए ६, । से तं पुट्वाणु-
पुट्वी । से किं तं पच्छाणुपुट्वी? पच्छाणुपुट्वी संनिवाइए जाव
उदइए । से तं पच्छाणुपुट्वी । से किं तं अणाणुपुट्वी? अणा-

अनानुपूर्वी क्या है? (अणाणुपुट्वी) अनानुपूर्वी सामाचार्यी इस प्रकार
से है (एयाए चैव एगाइयाए एगुत्तरियाए दसगच्छगयाए सेढीए अणमन्नव्मासोदुरूवणो)
इच्छाकार से लेकर उपसंपदा तक के दश पदों
का एक एक अधिक संख्या कर के परस्पर में गुणा करना चाहिये और
इस प्रकार से जो राशि उत्पन्न होवे उसमें से यदि अन्त के भंग द्वय
की विवक्षा को कम कर देना चाहिये । अन्त में जितने भंग बचते हैं
उन भंगात्मक वह अनानुपूर्वी सामाचार्यी होती है । (से तं सामाचार्यी
आणुपुट्वी) इस प्रकार वह सामाचार्यी आनुपूर्वी है ॥सू० १४१॥

प्रश्न—(से किं त अणाणुपुट्वी) डे लगवन्! अनानुपूर्वी सामाचार्यीनुं
स्वइप डेपुं छे?

उत्तर—(अणाणुपुट्वी) अनानुपूर्वी सामाचार्यीनुं स्वइप आ प्रकारनुं छे—
(एयाए चैव एगाइयाए एगुत्तरियाए दसगच्छगयाए सेढीए अणमन्नव्मासोदुरूवणो)
इच्छाकारथी लधने उपसंपदा पर्यन्तना दस पदोना ओक ओक अधिक संख्या
लधने परस्परमां गुणाकार करवो लोडये आ प्रकारे जे राशि प्राप्त थाय
तेमांथी अ हि अने अन्तना जे लंगोनी विवक्षा आह करी नाथवी लोडये
आ जे लंगो आह जतां जेटवा लंगो आडी रडे छे तेदवा लंगोइप आ
अनानुपूर्वी सामाचार्यी डोय छे. (से तं सामाचार्यी आणुपुट्वी) सामाचार्यी
आनुपूर्वीनुं आ प्रकारनुं स्वइप छे. ॥सू० १४१॥

णुपुञ्जी-एयाए चेत् एगाइयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए
सेढीए अन्नमन्नवभासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुञ्जी। से तं
भावाणुपुञ्जी। से तं आणुपुञ्जी। आणुपुञ्जीति पयं समत्तं ॥सू. १४२॥

छाया—अथ का सा भावानुपूर्वी? भावानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तथा—
पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-औद-
यिकः१, औपशमिकः२, क्षायिकः३, क्षायोपशमिकः४, पारिणामिकः५, सान्नि-
पातिकः६। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-सान्निपातिको
यावदौदयिकः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एत-
स्यामेव एकादिकायाम् एकोत्तरिकायां पद्मगच्छगतायां श्रेण्यामन्योऽन्याभ्यासो
द्विरूपोऽनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा भावानुपूर्वी। सैषा आनुपूर्वी। आनुपूर्वीति
पदं सनाप्तम् ॥सू० १४२॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ का सा भावानुपूर्वी? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति—भावानुपूर्वी-
भावाः=भाव्यन्ते विन्त्यन्ते पदार्था यैस्ते भावाः-अन्तःकरणपरिणतिविशेषाः।
भूयते तेन तेन रूपेणाऽऽत्मना यैस्ते भावाः जीवस्य परिणामविशेषा औदयिकादयः,
तेषामानुपूर्वी=भावानुपूर्वी। सा पूर्वानुपूर्व्यादिभेदैस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र-पूर्वानु-

अथ सूत्रकार भावानुपूर्वी का कथन करते हैं—

‘से किं तं भावाणुपुञ्जी?’ इत्यादि

शब्दार्थ—(से किं तं भावाणुपुञ्जी?) हे भदन्त! पूर्वप्रक्रान्त भावा-
नुपूर्वी क्या है?

उत्तर—(भावाणुपुञ्जी) भावानुपूर्वी (त्रिविधा) तीन प्रकार की
(पणनत्ता) कही गई है। (तं जहा) उसके वे तीन प्रकार ये हैं—(पुञ्जाणु-
पुञ्जी) १ पूर्वानुपूर्वी (पच्छाणुपुञ्जी) २ पश्चानुपूर्वी और (अणाणुपुञ्जी)

इसे सूत्रकार भावानुपूर्वी-सुत्र-निर्देशक करते थे—

“से किं तं भावाणुपुञ्जी?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं भावाणुपुञ्जी?) हे भदन्त! पूर्वप्रक्रान्त भावानुपूर्वी-सु-
त्ररूप में है—

उत्तर—(भावाणुपुञ्जी त्रिविधा-पणनत्ता-संज्ञा) भावानुपूर्वी-ना-तीन प्रभेदों
वाले प्रकार कही-छे—(पुञ्जाणुपुञ्जी) (१) पूर्वानुपूर्वी, (पच्छाणुपुञ्जी) (२)
पश्चानुपूर्वी अने (अणाणुपुञ्जी) (३) अनानुपूर्वी—

पूर्वा-औदयिकः औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः पारिणामिकः सान्निपा-
तिकश्चेति षट् । औदयिकादिस्वरूपस्य पुरस्ताद् वक्ष्यमाणत्वेनात्र तेषां स्वरूप-
निरूपणं न क्रियते । अत्र शास्त्रे नारकादिगतिरौदयिको भाव इति वक्ष्यते ।

३ अनानुपूर्वी । जिनके द्वारा पदार्थों का विचार किया जाता है उनका नाम भाव है । और ये भाव अन्तःकरण की परिणति विशेषरूप हैं । अथवा आत्मा उस २ रूप से होता है वे भाव हैं । ऐसे वे भाव जीव के परिणाम विशेषरूप हैं । और ये परिणाम विशेष औदयिक आदि रूप होते हैं । इन परिणाम रूप भावों की आनुपूर्वी का नाम भावानुपूर्वी है । (से किं तं पुत्राणुपुत्री?) हे भदन्त ! भावानुपूर्वी का भेद जो पूर्वानुपूर्वी है उसका क्या स्वरूप है अर्थात् वह क्या है ?

उत्तर--(पुत्राणुपुत्री) वह पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से है--(उदहए) औदयिक (उवसमिए) औपशमिक (खाइए) क्षायिक (खओवसमिए) क्षायोपशमिक (पारिणामिए) पारिणामिक (संनिवाइए) और सान्निपा-
तिक इन औदयिक आदिकों का स्वरूप आगे कहा जायगा, इसलिये यहाँ उसका स्वरूप निरूपण नहीं किया है । इस शास्त्र में नारकादि रूप चारों गतियाँ औदयिक भाव रूप से कही जावेंगी इसलिये औद-

भेदना द्वारा पदार्थोंको विचार करवायां आवे छे, तेमनु' नाम भाव छे, आ भावो अन्तःकरणे परिणतिविशेष इप (परिणाम इप) डोय छे, अथवा आत्मा ते ते इपे डोय छे ते ते इपनु' नाम भाव छे, जेवां ते भावो ज्वना परिणामविशेष इप डोय छे, अने ते परिणामविशेष औदयिक आदि इप डोय छे ते परिणामो इप भावोनी आनुपूर्वीनु' नाम भावानुपूर्वी छे.

प्रश्न--(से किं तं पुत्राणुपुत्री?) हे भगवन् ! भावानुपूर्वी'को ते पूर्वानुपूर्वी नामको पडेको लेह छे, तेनु' स्वइप डेवु डोय छे ?

उत्तर--(पुत्राणुपुत्री) ते पूर्वानुपूर्वी आ प्रकारनी छे (उदहए) औदयिक, (उवसमिए) औपशमिक, (खाइए) क्षायिक, (खओवसमिए) क्षायोपशमिक, (पारिणामिए) परिणामिक, (संनिवाइए) अने सान्निपातिक, आ डमे पदोने उपन्यास करवे तेनु' नाम पूर्वानुपूर्वी भावानुपूर्वी छे.

आ औदयिक आदि पदोने अर्थ सूत्रकर द्वारा आगण प्रकट करवायां आवशे, तेथी अही तेमना स्वइपनु' निइपय ड्यु' नथी आ शास्त्रमां नरकादि इप चारे गतिओनु' औदयिक भाव इपे प्रतिपदन करवायां आवशे तेथी औदयिक भाव इप नरकादि गतिओने सदभाव डोय, तो ज पाठीना

ઔદાયિકભાવરૂપનારકાદિગતૌ સત્યામેવ ઔપશમિકાદયઃ શેષભાવા યથાસમ્ભવં પ્રાદુર્ભવન્તીતિ શેષભાવાધારત્વેન ઔદયિકસ્ય પ્રાધાન્યમ્ । અત એવ પ્રથમં તદુપ-
ન્યાસઃ । તતઃ શેષાણાં પશ્ચાનામપિ ભાવાનાં મધ્યે ઔપશમિકસ્ય સ્તોકવિષયત્વાત્
સ્તોકતયા પ્રતિપાદયિષ્યતે इति सूचीकटाहन्यायेन ઔદાયિકાનન્તરમવશિષ્ટેષુ
પશ્ચસુ મધ્યે પૂર્વમૌપશમિકસ્યોપન્યાસઃ । ઔપશમિકાપેક્ષયાઽધિકવિષયત્વાત્ક્ષાયિક-
કસ્ય તદનન્તરમુપન્યાસઃ । તતશ્ચ વિષયાણાં તારતમ્યમાશ્રિત્ય ક્રમેણ ક્ષાયોપશ-
મિકસ્ય પારિણામિકસ્ય ચોપન્યાસઃ । સાન્નિપાતિકભાવો હિ પૂર્વોક્તભાવાનાં
દ્વિકાદિસંયોગેન સમુત્પદ્યતે इति सर्वान्ते સાન્નિપાતિકભાવોપન્યાસઃ । इयं भावानां

યિક ભાવરૂપ નરકાદિ ગતિયોં કે હોને પર હી શેષ ઔપશમિક આદિ
ભાવ યથાસંભવ ઉત્પન્ન હોતે હૈં । હસલિયે શેષ ભાવોં કા આધારભૂત
હોને સે ઔદયિક ભાવ મેં પ્રધાનતા હૈ । હસી કારણ ઉસકા સર્વપ્રથમ
સૂત્રકારને વિન્યાસ ક્રિયા હૈ । હસ કે વાદ અવશિષ્ટ પાંચોં ભાવોં કે
વીચ મેં ઔપશમિક ભાવ સ્તોક વિષયવાલા હૈ હસલિયે વહ સ્વયં
સ્તોક હૈ હસ પ્રકાર સે આગે પ્રતિપાદિત ક્રિયા જાવેગા, અતઃ સૂચીક-
ટાહન્યાય સે ઔદયિક કે અનન્તર અવશિષ્ટ પાંચ ભાવોં કે વીચમેં
સે પહિલે ઔપશમિક કા પાઠ ક્રિયા ગયા હૈ । ઔપશમિક કી અપેક્ષા
અધિક વિષયવાલા હોને સે ક્ષાયિક કા પાઠ ઔપશમિક કે વાદ ક્રિયા
ગયા હૈ । હસ કે અનન્તર વિષયોં કી તરતમતા કા આશ્રય કરકે ક્રમ
સે ક્ષાયોપશમિક ઔર પારિણામિક કા પાઠ ક્રિયા ગયા હૈ । હન પૂર્વોક્ત
ભાવોં કે દ્વિકાદિ સંયોગ સે સાન્નિપાતિક ભાવ ઉત્પન્ન હોતા હૈ હસલિયે

ઔપશમિક આદિ ભાવો ઉત્પન્ન થઈ શકે છે આ પ્રકારે ખાકીના ભાવોના
અધાર રૂપ હોવાને લીધે ઔદયિક ભાવમાં પ્રધાનતા છે. તેથી જ સૂત્રકારે
તેનો વિન્યાસ સૌથી પહેલાં કર્યો છે—એટલે કે તેને સૌથી પહેલું સ્થાન
અપ્યું છે. ખાકીના પાંચ ભાવોમાંનો ઔપશમિક ભાવ સ્તોક (અદ્ય) વિષય-
વાળો હોવાથી તે પોતે જ સ્તોક છે. (આ વાતનું સૂત્રકાર આગળ પ્રતિપા-
દન કરશે) તેથી સૂચીકટાહ ન્યાયે ઔદયિક ભાવ પછી ઔપશમિક ભાવને
મૂકવામાં આવ્યો છે. ઔપશમિક ભાવ કરતાં અધિક વિષયવાળો હોવાને
કારણે ક્ષાયિકભાવને ઔપશમિક ભાવ પછી મૂકવામાં આવેલ છે. વિષયોની
અધિકતરતા અને અધિકતમતાને કારણે ક્ષાયિક ભાવ પછી અનુક્રમે ક્ષાયો
પશમિક અને પારિણામિક ભાવોને મૂકવામાં આવ્યા છે. આ પૂર્વોક્ત ભાવોના
દ્વિનયોગ આદિથી સાન્નિપાતિક ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી સૌથી છેલ્લે

पूर्वानुपूर्वी। सैषां पूर्वानुपूर्वीति। पश्चानुपूर्वी तु सान्निपातिकाद्यौदयिकान्ता बोध्या। तथा—औदयिकादि सान्निपातिकान्तानां षण्णां पदानामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः—आद्यन्तपदद्वयविवक्षामपहाय ये भङ्गास्तदात्मिकाऽनानुपूर्वी बोध्या।

सब के अन्त में सान्निपातिक भाव का उपन्यास किया गया है। (से तं पु०) इस प्रकार यह भावों की पूर्वानुपूर्वी है। (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) हे भदन्त ! पश्चानुपूर्वी क्या है ? (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार से है—(संनिवाहए जाव उदहए) सान्निपातिक भाव से लेकर औदयिक भाव तक पश्चानुपूर्वी है। (से तं पच्छाणुपुव्वी) यही पूर्वप्रक्रान्त भावों की पश्चानुपूर्वी है। (से किं तं अणाणुपुव्वी?) हे भदन्त ! भावों की अनानुपूर्वी क्या है ? (एयाए चैव एगाहयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नवभासो दुरूवूणो) औदयिकादि सान्निपातिकान्त छह पदों को परस्पर में गुणा करना और गुणित राशिरूप भागों में से आदि अन्त के पदद्वय की विवक्षा को कम करना इस प्रकार जो भंग बचते हैं उन भंग स्वरूप यह भावों की (अणाणु पु०) अनानुपूर्वी है। (से तं अणाणुपुव्वी) यही पूर्वप्रक्रान्त अनानुपूर्वी है। (से तं भावाणुपुव्वी) इस प्रकार यह भावानुपूर्वी है। (से तं आणुपुव्वी)

सान्निपातिक लावनेो उपन्यास करवामां आण्ये छे. (से तं पुव्वणुपुव्वी) आ प्रकारनी आ लावोनी पूर्वानुपूर्वी छे.

प्रश्न—(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) हे भगवन्! लावानुपूर्वीनी पश्चानुपूर्वीतुं स्वइप डेवुं छे ?

उत्तर—(पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वीतुं स्वइप आ प्रकारतुं छे—(संनिवाहए जाव उदहए) पूर्वानुपूर्वीं करतां जितटा कमता—अेटवे डे सान्निपातिक लावथी लधने औदयिकलाव पर्यन्तना—लावे ने पश्चानुपूर्वीं डडे छे.

प्रश्न—(से किं तं अणाणुपुव्वी?) हे भगवन्! लावोनी अनानुपूर्वीतुं स्वइप डेवुं छे ?

उत्तर—(एयाए चैव एगाहयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नवभासो दुरूवूणो) औदयिकथी लधने सान्निपातिक पर्यन्तना छ पढोने। परस्परनी साथे गुणाकार करवो, अने तेने लीधे ने राशिइप लांगाओ आवे तेमांथी आदि अने अन्तना ये लांगाओ आह करवथी ने लांगाओ आकी रडे छे, ते लांगाओ इप (अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वीं समञ्जवी.

(से तं भावाणुपुव्वी) आ प्रकारनी लावानुपूर्वीं डोय छे (से तं आणुपुव्वी) आ प्रकारे नामानुपूर्वींथी लधने लावानुपूर्वीं पर्यन्तनी हसे आनुपूर्वींओना स्वइपतुं निइपशु अडीं पूइं धाय छे, ओ वात सूचित करवा भाटे

प्रकृतमुपसंहरन्नाह-सैषा भावानुपूर्वीति । नामानुपूर्वादि भावानुपूर्व्यन्ता दशा-
ऽप्यानुपूर्व्यः समुद्दिष्टा इति सूचयितुमाह-सैषा आनुपूर्वीति । इत्थमुपक्रमस्य
आनुपूर्वीनामकः प्रथमो भेदः समुद्दिष्ट इति सूचयितुमाह-आनुपूर्वीति पदं
समाप्तमिति ॥सू० १४२॥

सम्प्रत्युपक्रमस्य नामाभिधेयं द्वितीयं भेदं व्याख्यातुमाह—

मूलम्-से किं तं णामे ? णामे दसविहे षण्णत्ते, तं जहा-
एगणामे, दुणामे तिणामे, चउणामे, पंचणामे, छणामे, सत्त-
णामे, अट्टणामे, नवणामे, दसगामे ॥सू० १४३॥

छाया-अथ किं तन्नाम? नाम दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-एकनाम, द्विनाम, त्रिनाम,
चतुर्नाम, पञ्चनाम, षण्णाम, सप्तनाम, अष्टनाम, नवनाम, दशनाम ॥सू० १४३॥

टीका—‘ से किं तं ’ इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति—अथ किं तन्नाम? इति । उत्तरयति-नाम-जीवगतज्ञानादिप-
र्यायाजीवगतरूपादिपर्यायानुसारेण प्रतिवस्तुभेदेन नमति=तदभिधायकत्वेन वत्तेते

यहां तक नामानुपूर्वी से लेकर भावानुपूर्वी तक जो दश आनुपूर्वियां हैं
वे सब प्रतिपादित हो चुकी इसकी सूचना के लिये सूत्रकारने “ से तं
आणुपुव्वी ” यह कहा है। (आणुपुव्वीतिपयं समत्तं) इस प्रकार यहां
तक उपक्रम का यह आनुपूर्वी नाम का प्रथम भेद कथित हो चुका
अर्थात् समाप्त हुआ ॥सू० १४२॥

अथ सूत्रकार उपक्रम का जो द्वितीय भेद नाम नाम का है उसकी
व्याख्या करने के लिये कहते हैं कि-“से किं तं णामे ?” इत्यादि ।

शब्दार्थ — (से किं तं णामे) हे अदन्त ! पूर्वप्रकान्त नाम क्या
है ? (णामे दसविहे षण्णत्ते)

सूत्रकारे “ से तं आणुपुव्वी ” आ प्रकारने सूत्रपठ भूयो छे (आणुपुव्वी-
त्पयं समत्तं) आ प्रकारे उपक्रमना आनुपूर्वी नामना प्रथम भेदतुं निरूपयु
अस्तीं समाप्त थाय छे ॥सू० १४२॥

उपक्रमने पीले भेद ‘ नाम ’ छे हुवे सूत्रकार ते नामतुं निरूपयु करे छे-
“ से किं तं णामे ? ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं णामे ?) हे अदन्त ! उपक्रमना पीले प्रकार ३५
नाम शुं छे ।

इति नाम-वस्त्वभिधानमित्यर्थः । उक्तंच-

“जं वत्थुणोऽभिहाणं पज्जयभेयाणुत्तारि तं णामं ।

पइभेअं जं नमई, पइभेयं जाइ जं भणिअं” ॥१॥

छाया—यद्वस्तुनोऽभिधानं, पर्ययभेदानुत्तारि तन्नाम ।

प्रतिभेदं यन्नमति, प्रतिभेदं याति यद् भणितम् ॥इति॥

एवंविधमिदं नाम दशविधं प्रज्ञप्तम् । दशविधत्वमाह-तद्यथा-एकनाम द्विनाम त्रिनामेत्यादि । तत्र-येन केन एकेनापि सता नाम्ना सर्वेऽपि विवक्षितपदार्था अभिधातुं शक्यन्ते, तदेकनाम बोध्यम् । एवं याभ्यां द्वाभ्यां नामभ्यां सर्वेऽपि

उत्तर — यह नाम दश प्रकार का कहा गया है । जीवगत ज्ञानादिक पर्यायों और अजीवगत रूपादिक पर्यायों के अनुसार जो प्रतिवस्तु के भेद से नमता है — झुकना है — अर्थात् उनका अभिधायक-वाचक होना है वह नाम है । उक्तंच-करके “ जं वत्थुणोऽभिहाणं” इत्यादि गाथा द्वारा यही नाम शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट की है । (तं जहा) नाम के दस प्रकार ये हैं — (एगणामे दुणामे तिणामे चउणामे, पंचणामे, छणामे, सत्तणामे, अट्टणामे 'नवणामे, दसणामे) एक नाम, दो-नाम, तीन नाम, चार नाम, पांच नाम, छह नाम, सात नाम, आठ-नाम, नौ नाम, और दश नाम । जिस एक नाम से समस्त पदार्थों का कथन हो जाता है वह एक नाम है । जैसे सत्, सत् इस नाम से समस्त पदार्थों का युगपत् कथन हो जाता है क्योंकि ऐसा कोई भी पदार्थ

उत्तर-(णामे दसविधे षण्णत्ते) ते नामना दस प्रकार कहा छे अजीवगत ज्ञानादिक पर्यायि अने अजीवगत रूपादिक पर्यायि प्रमाणे जे प्रत्येक वस्तुना लक्ष्ठी नये छे-भूके छे-अट्टे के तेमनुं अलिधायक (वाचक) होय छे, तेनुं नाम “ नाम ” छे “ जं वत्थुणोऽभिहाणं ” इत्यादि गाथा द्वारा ‘ नाम ’ शब्दनी उपर प्रमाणेनी व्युत्पत्ति जे प्रकट करवामा आवी छे.

(तंजहा) नामना दस प्रकारे नीचे प्रमाणे छे-(एगणामे, दुणामे, तिणामे, चउणामे, पंचणामे, छणामे, सत्तणामे, अट्टणामे, नवणामे, दसणामे) (१) एकनाम, (२) दो नाम, (३) त्रि नाम, (४) चार नाम, (५) पांच नाम, (६) छ नाम, (७) सात नाम, (८) आठ नाम, (९) नव नाम अने (१०) दस नाम.

जे एक नामथी समस्त पदार्थोनुं कथन थर्थ जाय छे, तेने “ एकनाम ” कहे छे. जेभ के “ सत् ” “ सत् ” आ नामथी समस्त पदार्थोनुं एक साथे कथन थर्थ जाय छे, ऊरभु के जेवो केछ पछु पदार्थ नथी के जे आ सत्

विवक्षितपदार्था अभिधातुं शक्यन्ते तद् द्विनाम । तथा—यैस्तु त्रिभिर्नामभिः सर्वेऽपि विवक्षितपदार्था अभिधातुं शक्यन्ते तत् त्रिनाम । एवं रीत्या चतुर्नामादि-दशनामान्तविषयेऽपि बोध्यम् ॥सू० १४३॥

तत्रोद्देशक्रमेण निर्दिशन् प्रथममेकनामस्वरूपं निर्दिशति—

मूलम्—से किं तं एगणामे? एगणामे—णामाणि जाणि काणि वि, द्रव्याण गुणाण पञ्जवाण च । तेसिं आगमनिहसे, नामानि परूविया सण्णा ॥१॥ से तं एगणामे ॥सू० १४४॥

छाया—अथ किं तदेक नाम? एकनाम—नामानि यानि कान्यपि द्रव्याणां गुणानां पर्यवाणां च । तेषामागमनिकषे—नामेति परूपिता संज्ञा । तदेत-देकनाम ॥सू० १४४॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि

अथ किं तदेकनाम? इति शिष्यपश्च । उत्तरयति—एकनाम—एकं सद् नामेति विग्रहः । तत्स्वरूपमेवाह—‘णामाणि जाणि’ इति गाथया । अयं भावः=द्रव्याणां=

नहीं है जो इस सत् नाम रहित हो । अतः सत् यह एक नाम है । इसी प्रकार जिन दो नामों से समस्त विवक्षित पदार्थ अभिधातुं शक्य होते हों वह दो नाम हैं । तथा जिन तीन नामों से समस्त विवक्षित पदार्थ कहने में आ जाते हों वह त्रि नाम हैं । इसी प्रकार से चतुर्नामादि से लेकर दशनाम तक के विषय में भी जानना चाहिये । सू० १४३॥

उद्देश क्रम से निर्देश करने वाले सूत्रकार सर्व प्रथम एक नाम के स्वरूप का कथन करते हैं—“से किं तं एगणामे?” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं एगणामे) हे अदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त एक नाम क्या है ?

नामोत्थी रक्षित डोय तेथी ‘सत्’ ओक नामरूप छे. ओज प्रमाणे ओ जे नामोत्थी समस्त विवक्षित पदार्थानुं कथन थय जय छे, तेमने जे नाम रूप समञ्जस तथा ओ त्रयु नामोत्थी समस्त विवक्षित पदार्थानुं कथन थय जय छे, ते त्रयु नामोने त्रिनाम कहे छे. ओज प्रमाणे चतुर्नामोत्थी लभने दस नाम पर्यन्तना नामना प्रकारो विषे पणु समञ्जसुं. ॥सू० १४३॥

पूर्वसूत्रमां नामना प्रकारो प्रकट करवासां आव्यां हुवे सूत्रकार नामना प्रथम प्रकार रूप ओकनामना स्वरूपनुं निरूपणु करे छे—

“से किं तं एगणामे?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं एगणामे?) हे लगवन् ! पूर्वप्रक्रान्त ओकनाम शुं छे ? ओउदे के ओकनामनुं स्वरूप केवुं छे ?

जीवाजीवभेदानां, गुणानां=ज्ञानादीनां रूपादीनां च, तथा-पर्यायाणां=नारकत्वादीनामेकगुणकृष्णत्वादीनां च नामानि=अभिधानानि यानि कानिचिल्लोके रूढानि, तद्यथा-जीवो जन्तुरात्मा प्राणीत्यादि, आकाशं नभस्तारापथो व्योमाम्बरमित्यादि । तथा-ज्ञानं बुद्धिर्बोध इत्यादि, तथा-रूपं रसो गन्ध इत्यादि, तथा-नारकस्तिर्यङ्मनुष्य इत्यादि, एकगुणकृष्णो द्विगुणकृष्ण इत्यादि । तेषां सर्वेषामप्यभिधानानाम्-आगमनिकषे-आगम एव निकषः=हेमरजतसदृश जीवादिपदार्थस्वरूपपरिज्ञानहेतुत्वात् कपपट्टस्तस्मिन् 'नाम' इत्येवंरूपा संज्ञा=आख्या

उत्तर — (णामाणि जाणि काणि वि, दब्बाण, गुणाण, पज्जवाण च । तेसिं आगमनिहसे नामंति परुविद्या सण्णा "१" से तं एगणामे) एक होकर जो नाम होता है वह एक नाम है । इसी का स्वरूप इस गाथा द्वारा सूत्रकार ने कहा है—जीव अजीव भेद विशिष्ट द्रव्यों के, ज्ञानादिक गुणों के, रूपादि गुणों के तथा नारकत्व आदि पर्यायों के लोक में जितने भी नाम रूढ हैं — जैसे-जीव-जन्तु, आत्मा' प्राणी इत्यादि, आकाश, नभस तारापथ, व्योमन् (व्योम) अम्बर इत्यादि तथा ज्ञान बुद्धि, बोध इत्यादि, तथा रूप, रस, गंध, इत्यादि तथा नारक तिर्यङ् मनुष्य इत्यादि एक गुण कृष्ण, दो गुण कृष्ण इत्यादि—इन सब अभिधानों की "नाम" ऐसी एक संज्ञा आगम रूप निकष (कसौटी) कही गई है । सो ये सब जीव जन्तु आदि अभिधान एक नामत्व

उत्तर-(णामाणि जाणिकाणि वि, दब्बाण, गुणाण, पज्जवाण च तेसिं आगम निहसे' नामंति परुविद्या सण्णा ॥१॥ से तं एगणामे) एक व अर्थने प्रकट करनाइं जे नाम डोय छे तेने 'एकनाम' कडे छे. ते एकनामनुं स्वइय सूत्रकारे उपरनी गाथा द्वारा प्रकट क्युं छे. तेने लोकार्थ नीचे प्रमाणे छे-

एव अथ इय लेखवाणां द्रव्येना ज्ञानादिक गुणेना, उपादि गुणेना, तथा नारकत्व आदि पर्यायेना लोकमां जेटलां नामो इठ (प्रयत्नित) छे, ते षधां अलिधानानी (नामानि) 'नाम' एवी एक संज्ञा आगम इय निकष (कसौटी) कडेनामां आवी छे जेम के एव-जन्तु, आत्मा, प्राणी इत्यादि. तथा ज्ञान, बुद्धि, बोध इत्यादि तथा नभ, तारापथ, व्योम, आकाश, अम्बर इत्यादि तथा इय, रस, गंध इत्यादि तथा नारक, तिर्य'य, मनुष्य इत्यादि एक गणुं कृष्ण, जे गणुं कृष्ण इत्यादि आ षधां अलिधानानी " नाम " एवी एक संज्ञा-आगमइय कसौटी-कही छे. तेथी ते सधणा एव-जन्तु आदि अलिध नने एक नामत्व सामान्यनी अपेक्षाये "एकनाम"

प्ररूपिता=व्यवस्थापिता । अयं भावः—सर्वाण्यपि जीवो जन्तुरित्याद्यभिधानानि नामत्वसामान्यमाश्रित्यैकेन नाम शब्देनोच्यन्ते इति । इत्थं च एकेनाप्यनेन नामशब्देन लोकरूढाभिधानानि सर्वाण्यपि वस्तूनि प्रतिपाद्यन्ते इत्येतदेकनामोच्यते । तदेव उपसंहारनाह तदेतदेकनामेति ॥सू० १४४॥

सामान्य के आश्रय से एक नाम शब्द से कहे जाते हैं । इस प्रकार एक भी इस नाम शब्द से वस्तुओं के, गुणों के और पर्यायों के जो भी लोक रूढ नाम हैं वे सब "नामत्व" इस एक सामान्य पद से गृहीत हो जाते हैं । इसलिये इस एक भी नाम शब्द से लोकरूढाभिधान वाली सब भी वस्तुएँ प्रतिपादित हो जाती हैं । अतः एक नाम कहलाना है । (से तं एगगामे) इस प्रकार यह एक नाम है ।—

भावार्थ— एक नाम क्या है इस जिज्ञासा का समाधान करने के निमित्त सूत्रकार ने यहाँ उसी का वर्णन किया है । इसमें उन्होंने समझाया है की जिनने संसार में द्रव्यों के, पर्यायों के और गुणों के लोक रूढ नाम हैं—यद्यपि वे सब जुड़े २ हैं । फिर भी नामत्व सामान्य के आश्रयभूत होने के कारण वे सब एक ही हैं । इस प्रकार नामत्व सामान्य की दृष्टि से ये सब नाम एक है—क्यों कि जितने अभिधानरूप व्यक्ति हैं उन सब में नामत्व रूप सामान्य रहता है । यही बात आगमरूप

शब्द द्वारा प्रकट करवाया आवे छे आ रीते ओक पणु आ नाम वडे—शब्द वडे—वस्तुओना गुणुओनां अने पर्यायिनां ने नामो लोकमां इठ थयेला डोय छे, ते अधाने " नामत्व " आ ओक सामान्य पद वडे थडुणु करी शकय छे. तेथी आ ओक नाम शब्दधी पणु लोकमां इठ ओवा अभिधानवाणी अधी वस्तुओ प्रतिपादित थडु जय छे. तेथी तेने ओक नाम कडे छे (से तं एगगामे) आ प्रहारतुं ओक नामतुं स्वरूप छे

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रमां, ' ओक नाम शुं छे, ' आ प्रश्नतुं स्पष्टीकरणु कथुं छे. तेमणु आ सूत्रमां ओ वात समजवी छे के संसारमां द्रव्येनां, पर्यायिनां अने गुणुओनां नेटलां लोकइठ (लोकमां प्रयुक्ति) नामो छे, ते नामो ने के जुदां जुदां छे, छतां पणु नामत्व सामान्यना आश्रयभूत होवाने कारणे तेओ सौ ओक न छे. आ रीते नामत्व सामान्यनी दृष्टिओ विचार करवाया आवे तो ते अधां नामो ओकनाम इप न छे, कारणे के नेटलां अभिधान इप पदार्थो छे, ते संघणा पदार्थोमां नामत्व इप सामान्यनो सहभाव रहे छे, ओन वात आगम इप कसोटीनी उपमा द्वारा

मूलम्—से किं तं दुनामे? दुनामे दुविहे पणत्ते, तं जहा—
एगक्खरिण् य अणोगक्खरिण् य । से किं तं एगक्खरिण्? एग-
क्खरिण् अणोगविहे पणत्ते, तं जहा—ही, सी, धी, थी, । से तं
एगक्खरिण् । से किं तं अणोगक्खरिण्? अणोगक्खरिण् अणोग-
विहे पणत्ते, तं जहा—कन्ना वीणा लया माला । से तं अणोग-
क्खरिण् । अहवा—दुनामे दुविहे पणत्ते, तं जहा—जीवनामे य
अजीवनामे य । से किं तं जीवनामे? जीवनामे अणोगविहे
पणत्ते, तं जहा—इददत्तो उददत्तो विणहुदत्तो सोमदत्तो । से
तं जीवनामे । से किं तं अजीवनामे? अजीवनामं अणोगविहे
पणत्ते, तं जहा—घडो पडो कडो रहो । से तं अजीवनामे ।
अहवा दुनामे दुविहे पणत्ते, तं जहा विसेसिण् य अविसेसि-
ण् य । अविसेसिण् इद्वे, विसेसिण् जीवदव्वे अजीवदव्वे य ।
अविसेसिण् जीवदव्वे, विसेसिण् णैरइण् तिरिक्खजोणिण् मणु-

कसौटी से प्रसिद्ध की गई है । यहाँ पर आगम को जो कसौटी की उपमा
दी गई है उसका कारण यह है कि जिस प्रकार हेम रजत आदि के वास्त-
विक स्वरूप का परिज्ञान निरूपण से होता है उसी प्रकार हेम रजत के
सदृश जो जीवादि पदार्थ हैं उन के स्वरूप का परिज्ञान शास्त्र-आगम
-से ही होना है । अतः उनके स्वरूप के परिज्ञान का हेतु होने से आगम
को यहाँ सूत्रकार ने निरूपण की उपमा से उपमित किया है ॥सू० १४४॥

व्यक्त करवायां अ वी छे अही आगमने कसे टी उपमा देवानुं कारण् अ
छे के वेवी रीने ने तु, यही आदिना वास्तविक स्वइपनुं परिज्ञान निकप-
पट्ट (कसौटी करवाने पध्दर) वडे थाय छे, अणु प्र-अणु सेनायांती वेवां
अवादि पदार्थो छे तेमना वास्तविक स्वइपनुं परिज्ञान आगम (शास्त्र) वडे
अ थाय छे. तेथी तेमना स्वइपना परिज्ञानना हेतुभूत होवाने कारण् सूत्र-
कारे आगमने अही निरूपण (कसौटी पध्दर)नी उपमा आपी छे ॥सू० १४४॥

स्से देवे । अविसेसिए णेरइए, विसेसिए रयणप्पहाए सक्करप्पहाए
 वालुअप्पहाए पंकप्पहाए धूमप्पहाए तमाए तमतमाए । अविसे-
 सिए रयणप्पहापुढवीणेरइए, विसेसिए पज्जत्तए य अपज्जत्तए य ।
 एवं जाव अविसेसिए तमतमापुढवी नेरइए, विसेसिए पज्जत्तए य
 अपज्जत्तए य । अविसेसिए तिरिक्खजोणिए, विसेसिए एगिंदिए
 वेइंदिए तेइंदिए चउरिंदिए पंचिंदिए । अविसेसिए एगिंदिए,
 विसेसिए पुढविकाइए आउकाइए तेउकाइए वाउकाइए वणस्सइ-
 काइए । अविसेसिए पुढविकाइए, विसेसिए सुहुमपुढविकाइए य
 बादरपुढविकाइए य । अविसेसिए सुहुमपुढविकाइए, विसेसिए
 पज्जत्तयसुहुमपुढविकाइए य अपज्जत्तयसुहुमपुढविकाइए य ।
 अविसेसिए य बादरपुढविकाइए, विसेसिए पज्जत्तयबादरपुढ-
 विकाइए य अपज्जत्तयबादरपुढविकाइए य । एवं आउकाइए
 तेउकाइए वाउकाइए वणस्सइकाइए अविसेसिए, विसेसिए य
 पज्जत्तय अपज्जत्तय भेएहिं भाणियव्वा । अविसेसिए वेइंदिए,
 विसेसिए पज्जत्तय वेइंदिए य अपज्जत्तय वेइंदिए य । एवं तेइंदिय-
 चउरिंदियावि भाणियव्वा । अविसेसिए पंचिंदियतिरिक्खजो-
 णिए, विसेसिए जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए थलयरपंचिंदिय-
 तिरिक्खजोणिए खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए । अविसेसिए
 जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए विसेसिए संमुच्छिमजलयर-
 पंचिंदियतिरिक्खजोणिए य गढभवक्कंतियजलयरपंचिंदियतिरि-
 क्खजोणिए य । अविसेसिए संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्ख-
 जोणिए, विसेसिए पज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्ख-

जोणिए य। अपञ्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिदियतिरिक्खजो-
 णिए य। अविसेसिए गढभवक्कंतियजलयरपंचिदियतिरिक्ख-
 जोणिए, विसेसिए पञ्जत्तयगढभवक्कंतियजलयरपंचिदियतिरि-
 क्खजोणिए य, अपञ्जत्तगढभवक्कंतियजलयरपंचिदियतिरिक्खजो-
 णिए य। अविसेसिए थलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए
 चउप्पयथलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए य परिसप्पथलयरपंचि-
 दियतिरिक्खजोणिए य अविसेसिए चउप्पयथलयरपंचिदियति-
 रिक्खजोणिए, विसेसिए सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिदियतिरि-
 क्खजोणिए य गढभवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिदियतिरिक्खजो-
 णिए य। अविसेसिए सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिदियतिरि-
 क्खजोणिए, विसेसिए पञ्जत्तयसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचि-
 दियतिरिक्खजोणिए य अपञ्जत्तयसंमुच्छिमचउप्पयथलयर-
 पंचिदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए गढभवक्कंतियचउप्प-
 यथलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पञ्जत्तयगढभवक्कं-
 तियचउप्पयथलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए य अपञ्जत्तयगढभ-
 वक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए
 परिसप्पथलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए उरपरिसप्प-
 थलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए य भुयपरिसप्पथलयरपंचिदिय-
 तिरिक्खजोणिए य। एए वि सम्मुच्छिमा पञ्जत्तगा अपञ्जत्तगा
 य, गढभवक्कंतिया वि पञ्जत्तगा अपञ्जत्तगा य भाणियव्वा।

अविसेसिए खहयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए सम्मु-
 च्छिमखहयरपंचिदियतिरिक्खजोणिए य गढभवक्कंतियखहयर-
 पंचिदियतिरिक्खजोणिए य । अविसेसिए संमुच्छिमखहयरपंचि-
 दियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयसंमुच्छिमखहयरपंचि-
 दियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयसंमुच्छिमखहयरपंचिदियति-
 रिक्खजोणिए य । अविसेसिए गढभवक्कंतियखहयरपंचिदियति-
 रिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयगढभवक्कंतियखहयरपंचिदिय-
 तिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयगढभवक्कंतियखहयरपंचिदियति-
 रिक्खजोणिए य । अविसेसिए मणुस्से, विसेसिए संमुच्छिमम-
 णुस्से गढभवक्कंतियमणुस्से । अविसेसिए संमुच्छिममणुस्से,
 विसेसिए पज्जत्तगसंमुच्छिममणुस्से य अपज्जत्तसंमुच्छिममणुस्से
 य । अविसेसिए गढभवक्कंतियमणुस्से, विसेसिए कम्मभूमिओ
 य अकम्मभूमिओ य अंतरदीवओ य संखिज्जवासाउय असं-
 खिज्जवासाउय पज्जत्तापज्जत्तओ । अविसेसिए देवे विसेसिए
 भवणवासी वाणमंतरे जोइसिए वेमाणिए य । अविसेसिए भव-
 णवासी, विसेसिए असुरकुमारे नागकुमारे सुवण्णकुमारे विज्जु-
 कुमारे अग्गिकुमारे दीवकुमारे उदहिकुमारे दिसीकुमारे वाउ-
 कुमारे थणियकुमारे । सव्वेसिंपि अविसेसियविसेसिय पज्जत्तग
 अपज्जत्तगभेया भाणियव्वा । अविसेसिए वाणमंतरे, विसेसिए
 पिसाए, भूए, जक्खे, रक्खसे, किन्नरे, किंपुरिसे, महोरगे, गंधव्वे,
 एएसिं पि अविसेसियविसेसियपज्जत्तयअपज्जत्तयभेया भाणि-

यत्वा । अविसेसिए जोइसिए, विसेसिए चंद्रसूरे गहगणे तत्रस्वते
 ताराह्वे । एएसिं पि अविसेसियविसेसियपज्जत्तयअपज्जत्तय-
 भेया भाणियत्वा अविसेसिए वेसाणिए, विसंसिए कप्पोवगे य
 कप्पातीयगे य । अविसेसिए कप्पोवगे, विसेसिए सोहम्मए ईसा-
 णए सणंकुमारए माहिंदए बंभलोए लंतयए महासुक्कए सह-
 स्सारए आणयए पाणयए आरणए अच्चुयए । एएसिंपि अवि-
 सेसियविसेसियपज्जत्तगअपज्जत्तगभेया भाणियत्वा । अविसे-
 सिए कप्पातीयए, विसेसिए गेवेज्जगे य अणुत्तरोववाइए य
 अविसेसिए गेवेज्जए, विसेसिए हेट्ठिमे, मज्झिमे, उवरिमे । अवि-
 सेसिए हेट्ठिमगेवेज्जए, विसेसिए हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जए, हेट्ठिम-
 मज्झिमगेवेज्जए, हेट्ठिम उवरिमगेवेज्जए । अविसेसिए मज्झि-
 मगेविज्जए, विसेसिए मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जए, मज्झिममज्झिम-
 गेवेज्जए, मज्झिम उवरिमगेवेज्जए । अविसेसिए उवरिमगेवेज्जए,
 विसेसिए उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जए उवरिममज्झिमगेवेज्जए उव-
 रिमउवरिमगेवेज्जए य । एएसिंपि सव्वेसिं अविसेसियविसंसि-
 यपज्जत्तगापज्जत्तगभेया भाणियत्वा । अविसेसिए अणुत्तरोव-
 वाइए, विसेसिए विजयए वेजयंतए जयंतए अपराजियए
 सव्वट्ठसिद्धए य । एएसिंपि सव्वेसिं अविसेसियविसेसियपज्ज-
 त्तापज्जगभेया भाणियत्वा । अविसेसिए अजीवदव्वे, विसेसिए
 धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए
 अद्धासमए य । अविसेसिए पोग्गलत्थिकाए, विसेसिए

परमाणुपोग्गले दुप्पएसिए तिप्पएसिए जाव अणंतपएसिए
य । से तं दुनामे ॥सू० १४५॥

छाया—अथ किं तद् द्विनाम ? द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकाक्ष-
रिकं च अनेकाक्षरिकं च । अथ किं तदेकाक्षरिकम् ? एकाक्षरिकम् अनेकविधं
प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—हीः श्रीः धीः स्त्री । तदेतदेकाक्षरिकम् । अथ किं तदनेकाक्षरिकम् ?
अनेकाक्षरिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—कन्या वीणा लता माला । तदेतदनेका-
क्षरिकम् । अथवा—द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा जीवनाम च अजीवनाम च ।
अथ किं तद् जीवनाम ? जीवनाम अनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—देवदत्तो यज्ञदत्तो
विष्णुदत्तः सोमदत्तः । तदेतद् जीवनाम । अथ किं तदजीवनाम ? अजीवनाम
अनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—घटः पटः कटो रथः । तदेतदजीवनाम । अथवा—
द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—विशेषितं च अविशेषितं च । अविशेषितं द्रव्यम्,
विशेषितं जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च । अविशेषितं जीवद्रव्यम्, विशेषितम्—नैरयिकः,
तिर्यग्योनिकः, मनुष्यो देवः । अविशेषितम् नैरयिकः, विशेषितम् रत्नप्रभाकः,
शर्कराप्रभाको, बालुकाप्रभाकः, पङ्कप्रभाको, धूमप्रभाकः, तमस्कः, तमस्तमस्कः ।
अविशेषितम्—रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकः, विशेषितम्—पर्याप्तकश्च अपर्याप्तकश्च ।
एवं यावत् अविशेषितम्—तमस्तमः पृथिवी—नैरयिको, विशेषितम्—पर्याप्तकश्च
अपर्याप्तकश्च । अविशेषितम्—तिर्यग्योनिकः, विशेषितम्—एकेन्द्रियो द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रि-
यश्चतुरिन्द्रियः पञ्चेन्द्रियः । अविशेषितम्—एकेन्द्रियः, विशेषितम्—पृथिवीकायिकः,
अष्कायिकः, तेजस्कायिकः, वायुकायिकः, वनस्पतिकायिकः । अविशेषितम्—
पृथिवीकायिकः, विशेषितम्—सूक्ष्मपृथिवीकायिकश्च वादरपृथिवीकायिकश्च । अवि-
शेषितम्—सूक्ष्मपृथिवीकायिकः, विशेषितम्—पर्याप्तकसूक्ष्मपृथिवीकायिकश्च अप-
र्याप्तकसूक्ष्मपृथिवीकायिकश्च । अविशेषितं च—वादरपृथिवीकायिकः, विशेषितम्—
पर्याप्तकवादरपृथिवीकायिकश्च अपर्याप्तकवादरपृथिवीकायिकश्च । एवम्—अष्का-
यिकः, तेजस्कायिको वायुकायिको वनस्पतिकायिकः, अविशेषितं विशेषितं पर्याप्त-
कापर्याप्तकभेदाभ्याम् भणितव्ये अविशेषितम्—द्वीन्द्रियः, विशेषितम्—
पर्याप्तकद्वीन्द्रियश्च अपर्याप्तकद्वीन्द्रियश्च । एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियावपि भणितव्यौ ।
अविशेषितम्—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्—जलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः,
स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः । खेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः । अविशेषितम्—जलचर-
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्—संपूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च गर्भ-
व्युत्क्रान्तिरुजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च । अविशेषितम्—संपूर्च्छिमजलचरपञ्चे-

न्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम् पर्याप्तक-संमूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च
 अपर्याप्तकसंमूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च । अविशेषितम्-गर्भव्युत्क्रान्ति-
 कजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-पर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरपञ्चे-
 न्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च ।
 अविशेषितम् स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-चतुष्पदस्थलचरपञ्चे-
 न्द्रियतिर्यग्योनिकश्च परिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च । अविशेषितम्-चतु-
 ष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-संमूर्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपञ्चे-
 न्द्रियतिर्यग्योनिकश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियग्योनिकश्च ।
 अविशेषितम्-संमूर्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-
 पर्याप्तकसंमूर्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकसंमू-
 र्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च । अविशेषितम्-गर्भव्युत्क्रान्तिकचतु-
 ष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-पर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पद-
 स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपञ्चे-
 न्द्रियतिर्यग्योनिकश्च । अविशेषितम्-परिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषे-
 पितम्-उरःपरिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च भुजपरिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रिय
 तिर्यग्योनिकश्च । एतेऽपि संमूर्च्छिमाः पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, गर्भव्युत्क्रान्तिका अपि
 पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च भणितव्याः । अविशेषितम् खेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकविशे-
 पितम् संमूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्य-
 ग्योनिकश्च । अविशेषितम्-संमूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-पर्या-
 प्तकसंमूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च । अपर्याप्तकसंमूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रिय-
 तिर्यग्योनिकश्च । अविशेषितम्-गर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः विशे-
 पितम् पर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकगर्भव्यु-
 त्क्रान्तिकखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च । अविशेषितम्-मनुष्यः, विशेषितम्-संमू-
 र्च्छिममनुष्यश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यश्च । अविशेषितम्-संमूर्च्छिममनुष्यः, विशे-
 पितम्-पर्याप्तकसंमूर्च्छिममनुष्यश्च अपर्याप्तकसंमूर्च्छिममनुष्यश्च । अविशेषितम्-
 गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यः, विशेषितम्-कर्मभूमिजश्च अकर्मभूमिजश्च अन्तरद्वीपजश्च,
 संख्येयवर्षायुष्कः असंख्येयवर्षायुष्कः पर्याप्तकः अपर्याप्तकः । अविशेषितम्-देवः,
 विशेषितम्-भवनवासी वानव्यन्तरः ज्योतिषिको वैमानिकश्च । अविशेषि-
 तम्-भवनवासी, विशेषितम्-असुरकुमारो नागकुमारः सुपर्णकुमारो विद्युत्कुमारः
 अग्निकुमारो द्वीपकुमारः उदधिकुमारो दिक्कुमारो वायुकुमारः सन्नितकुमारः । सर्वेषा-
 मपि अविशेषितविशेषितपर्याप्तापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितवानव्यन्तरः,

विशेषितम्—पिशाची भूलो यक्षो राक्षसः किन्नरः किंपुरुषो महोद्गो गन्धर्व ।
एतेषामपि अविशेषितविशेषितपर्याप्तापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम्—
ज्योतिषिकः, विशेषितम्—चन्द्रः सूर्यः ग्रहगणः नक्षत्रं तारारूपम् । एतेषामपि
अविशेषितविशेषितपर्याप्तापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम्—वैमानिकः,
विशेषितम्—कल्पोपगश्च कल्पतीतरुश्च । अविशेषितम्—कल्पोपगः, विशेषितम्—
सौधर्मकः ईशानकः सनत्कुमारको माहेन्द्रको ब्रह्मलोकको लान्तकको महाशुक्रकः
सहस्रारक आनतकः प्राणतकः आरणकः अच्युतकः । एतेषामपि अविशेषितविशे-
षितपर्याप्तकापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम्—कल्पतीतरुः, विशेषितम्—
ग्रेवैयकश्च अनुत्तरोपपातिकश्च । अविशेषितम्—ग्रेवैयकः, विशेषितम्—अधस्तनः,
मध्यस्तनः, उपरितनः । अविशेषितम्—अधस्तनग्रेवैयकः, विशेषितम्—अधस्तनाधस्तन-
ग्रेवैयकः, अधस्तनमध्यमग्रेवैयकः, अधस्तनोपरितनग्रेवैयकः । अविशेषितम्—मध्य-
मग्रेवैयकः, विशेषितम्—मध्यमाधस्तनग्रेवैयकः, मध्यममध्यमग्रेवैयकः, मध्यमोपरि-
तनग्रेवैयकः । अविशेषितम्—उपरितनग्रेवैयकः, विशेषितम्—उपरितनाधस्तनग्रेवैयकः,
उपरितनमध्यमग्रेवैयकः, उपरितनोपरितनग्रेवैयकश्च । एतेषामपि सर्वेषां अविशे-
षितविशेषितपर्याप्तकापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम्—अनुत्तरोपपातिकः,
विशेषितम्—विजयको वैजयन्तको जयन्तकः अपराजितकः सर्वार्थसिद्धकश्च । एतेषा-
मपि सर्वेषाम् अविशेषितविशेषितपर्याप्तकापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषि-
तम्—अजीवद्रव्यम्, विशेषितम्—धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्ति-
कायः, पुद्गलास्तिकायः, अद्वासमयश्च । अविशेषितम्—पुद्गलास्तिकायः, विशेषि-
तम्—परमाणुपुद्गलो द्विप्रदेशिकः त्रिप्रदेशिको यात्रदनन्तप्रदेशिकश्च । तदेतद्
द्विनाम ॥ सू० १४५ ॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अयं किं तद् द्विनाम ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—द्विनाम—द्विविधं नाम—
द्विनाम । द्विनामत्वादेवेदं द्विप्रकारकं बोध्यम् । द्विप्रकारकत्वमेवाह—तद्यथा—एका-

अथ सूत्रकार द्विनाम की प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं दुनामे ?” इत्यादि

शब्दार्थ—(से किं तं दुनामे) हे भदन्न ! वह द्विनाम क्या है ?

इसे सूत्रकार द्विनामना स्वरूपतुं निरूपणु करे छे—

“से किं तं दुनामे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं दुनामे ?) हे भगवन् ! नामना भीज्य प्रहार इय
द्विनामनुं स्वरूप डेपुं छे ?

एकाक्षरिकं च अनेकाक्षरिकं च । तत्रैकाक्षरिकम्—एकं च तदक्षरं चेति एकाक्षरम्, तेन निर्वृत्तमेकाक्षरिकम्, तद्धि—हीः—लज्जा, श्रीः—लक्ष्मीः, धीः—बुद्धिः, इत्यादिकमेकाक्षरिकं द्विनाम बोध्यम् । तथा—अनेकाक्षरिकम्—अनेकानि च तान्यक्षराणि—अनेकाक्षराणि तैर्निर्वृत्तमनेकाक्षरिकम्, तद्धि—कन्या वीणा लता मालेत्यादिकमनेकाक्षरिकं द्विनाम बोध्यम् । एवं 'बलाका पताका' इत्यादि त्र्याक्षरनिष्पन्नमपि

उत्तर—(द्विनामे दुविहे पणत्ते) द्विनाम—द्विविधनाम—दो प्रकार का है । यहां द्विनाम का तात्पर्य दो प्रकार के नाम से है । दो प्रकार का जो नाम है वह द्विनाम है (तं जहा) नाम के दो प्रकार ये हैं—(एगक्खरिए य अणेगक्खरिए य) एकाक्षरिक और अनेकाक्षरिक एक अक्षर से जो नाम निष्पन्न हो वह एकाक्षरिक नाम है और जो अनेक अक्षरों से निष्पन्न होता है वह अनेकाक्षरिक नाम है । जैसे 'ही' लज्जा, 'श्री' लक्ष्मी, 'धी' बुद्धि, स्त्री, ये सब एकाक्षरिक द्विनाम हैं । कन्या, वीणा, लता, माला ये सब अनेकाक्षरिक द्विनाम हैं । यही बात (से किं तं एगक्खरिए ? एगक्खरिए अणेगविहे पणत्ते,) तं जहा—ही, सी, धी, धी, से तं एगक्खरिए—से किं तं अणेगक्खरिए ? अणेगक्खरिए—अणेगविहे पणत्ते—तं जहा—कण्णा, वीणा, लया, माला, से तं अणेगक्खरिए) इस सूत्रपाठ द्वारा प्रश्नोत्तरपूर्वक सूत्रकारने प्रदर्शित की है । इसी प्रकार "बलाका पताका" इन तीन अक्षरों से निष्पन्न हुआ नाम

उत्तर—(द्विनामे दुविहे पणत्ते) द्विनाम—द्विविधनाम जे प्रकारतुं छे—अही' द्विनाम पह जे प्रकारना अर्थभां वपरायुं छे. तेथी जे प्रकारतुं जे नाम जे तेतुं नाम द्विनाम छे. (तंजहा) नामना जे प्रकारे नीचे प्रभाणे छे—(एगक्खरिए य अणेगक्खरिए य) (१) अेकाक्षरिक अने (२) अनेकाक्षरिक जे नाम अेक अक्षर वडे निष्पन्न थाय छे, ते नामने अेकाक्षरिक नाम कडे छे. अने जे नाम अनेक अक्षरों वडे निष्पन्न थाय छे, तेने अनेकाक्षरिक नाम कडे छे.

जेम के "ही" (लज्जा), "श्री" (लक्ष्मी), "धी" बुद्धि, 'स्त्री' आदि अेकाक्षरिक द्विनाम छे. कन्या, वीणा, लता, माला, आदि अनेकाक्षरिक द्विनाम छे. अेज वात सूत्रकारे आ सूत्रपाठ द्वारा प्रश्नोत्तरपूर्वक प्रकट करी छे—

(से किं तं एगक्खरिए ? एगक्खरिए अणेगविहे पणत्ते, तंजहा—ही, सी, धी, धी, से तं एगक्खरिए । से किं तं अणेगक्खरिए ? अणेगक्खरिए अणेगविहे पणत्ते—तंजहा—कण्णा, वीणा, लया, माला, से तं अणेगक्खरिए) आ सूत्रपाठने भावार्थ उपर प्रश्न उत्तराभां आये छे. अेज प्रभाणे "बलाका,

બોધ્યમ્ । इत्यमेकाक्षरानेकाक्षरेति द्विप्रकारेण नाम्ना विवक्षितस्य समस्तस्यापि वस्तुजातस्य प्रतिपादनाद् द्विनामेत्युच्यते । द्विरूपं सत् सर्वस्य नामेति द्विनाम । द्वयोर्नाम्नोः समाहार इति पक्षे तु द्विनामेतिच्छाया बोध्या । अथ प्रकारान्तरेण द्विनाम निरूपयति—अथवा—द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—जीवनाम च अजीवनाम चेति । तत्र—देवदत्तयज्ञदत्तादिभेदेन जीवनाम अनेकविधम् । तथा—घटपटादिभेदेना-

भी अनेकाक्षरं निष्पन्न नाम में अन्तर्हित जानना चाहिये । इस प्रकार एकाक्षर और अनेकाक्षर से निष्पन्न दो प्रकारवाले नाम से, विवक्षित समस्त भी वस्तु समूह का प्रतिपादन होता है इससे दो नाम ऐसा कहा जाता है । “द्विरूपं सत् सर्वस्य नामेति द्विनाम” सर्व का नाम दो रूपवाला होता है । इसलिये वह द्विनाम है । एकाक्षरिक और अनेकाक्षरिक ये ही नाम के दो रूप हैं । “द्वयोः नाम्नोः, समाहारः इति द्विनाम” इस पक्ष में भी द्विनाम ऐसी ही छाया जाननी चाहिये ।

अब सूत्रकार प्रकारान्तर से द्विनाम का निरूपण करते हैं—(अहवा-दुनामे दुविहे पण्णत्ते) अथवा—द्विनाम दो प्रकार का प्रज्ञप्त-हुआ है (तं जहा) जैसे (जीव नामे य अजीव नामे य) जीव नाम और अजीव नाम (से किं तं जीवनामे ?) हे भदन्त ! जीव नाम क्या है ?—(जीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते) जीव नाम अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ

पताका” આ ત્રણ અક્ષરોથી નિષ્પન્ન થતા નામનો અનેકાક્ષર નિષ્પન્ન નામમાં જ સમાવેશ કરવો જોઈએ આ પ્રકારે એકાક્ષર અને અનેકાક્ષર વડે નિષ્પન્ન થતા બે પ્રકારવાળા નામ વડે વિવક્ષિત સમસ્ત વસ્તુસમૂહનું પ્રતિપાદન થાય છે, તેથી તેને દ્વિનામ રૂપ ગણવામાં આવે છે. “દ્વિ રૂપં સત્ સર્વસ્ય નામેતિ દ્વિનામ” સર્વનું નામ બે રૂપવાળું હોય છે, તેથી તે દ્વિનામ રૂપ છે એકાક્ષરિક અને અનેકાક્ષરિક, આ બે જ, નામનાં બે રૂપો છે. “દ્વયોઃ નામ્નોઃ સમાહારઃ ઇતિ દ્વિનામ” આ પક્ષે પણ ‘દ્વિનામ’ એવી જ છાયા સમજવી જોઈએ હવે સૂત્રકાર બીજી રીતે દ્વિનામનું નિરૂપણ કરે છે—

(અહવા-દુનામે દુવિહે પણ્ણત્તે) અથવા—દ્વિનામ બે પ્રકારના કદ્યા છે—(તં જહા) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(જીવનામે ય, અજીવનામે ય) (૧) જીવનામ અને (૨) અજીવ નામ.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં જીવનામે ?) હે ભગવન્ ! જીવનામ એટલે શું ?

ઉત્તર—(જીવનામે અણેગવિહે પણ્ણત્તે) જીવનામના અણેક પ્રકાર કદ્યા છે. (તં જહા) જેમ કે... (દેવદત્તો જણદત્તો વિષ્ણુદત્તો સોમદત્તો) દેવદત્ત, યજ્ઞદત્ત, વિષ્ણુદત્ત, સોમદત્ત, વગેરે.

जीवनामाप्यनेकविधम् । जीवाजीवेति द्वाभ्यां नामभ्यामेव विप्रक्षितसमस्तपदार्थानां संग्रहाद् द्विनामेत्युच्यते । पुनरेतदेव प्रकारान्तरेणाह—अथवा द्विनाम द्विविधं प्रज्ञसम्—अविशेषितं च विशेषितं च । तत्र—अविशेषितं द्रव्यम् । विशेषितं—जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च । प्रत्येकमिदमविशेषितविशेषितभेदात् पुनर्भेदान्तराच्चानेकप्रकारकं भवतीति मूलादेव विज्ञेयम् । सौगम्याच्च मूलस्य व्याख्या न क्रियते । अत्रेदं बोध्यम्—

है। (तं जहा) जैसे (देवदत्तो जण्णदत्तो विण्हुदत्तो सोमदत्तो) देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुदत्त, सोमदत्त आदि। (से किं तं अजीव नामे) वह अजीव नाम क्या है? (अजीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते)

उत्तर—अजीव नाम अनेक प्रकार का प्रज्ञस हुआ है (तं जहा) जैसे (घडो, पडो, कडो, रहो) घट, पट, कट, रथ, आदि। (से तं अजीव नामे) यह अजीव नाम है। (अहवा दुनामे हुविहे पण्णत्ते) अथवा—द्विनाम दो प्रकार का प्रज्ञस हुआ है। (तं जहा) जैसे (विसेसिए य अविसेसिए य) विशेषित और अविशेषित (अविसेसिए द्रव्ये विसेसिए जीवद्रव्ये अजीवद्रव्ये य) अविशेषित द्रव्य कहलाता है और विशेषित उसके भेद कहलाते हैं। द्रव्य ऐसा नाम अविशेषित द्विनाम है। और द्रव्य दो प्रकार का होता है—१ जीव द्रव्य और दूसरा अजीव द्रव्य ऐसा नाम विशेषित द्विनाम है। इनमें जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य ये अविशेषित और विशेषित के भेद से तथा और भी भेदान्तरों से अनेक प्रकार के हो जाते हैं यह बात मूल से

प्रश्न—(से किं तं अजीवनामे?) डे लगवन्। अण्वनाम अेटवे शुं ?

उत्तर—(अजीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते) अण्वनामना अनेक प्रकारे क्ख्हा छे. (तं जहा) जेम के (घडो, पडो, कडो, रहो) घट पट, कट (अटाठ), रथ वगेरे (से तं अजीवनामे) आ प्रकारतुं अण्वनाम डोय छे. (अहवा दुनामे हुविहे पण्णत्ते) अथवा द्विनामना जे प्रकार क्ख्हा छे. (तं जहा) जेम के.... (विसेसिए य अविसेसिए य) (१) विशेषित अने (२) अविशेषित (अविसेसिए द्रव्ये, विसेसिए जीवद्रव्ये अजीवद्रव्ये य) द्रव्यने विशेषित इप क्खेवाय छे अने द्रव्यना अण्व अण्व इप लेहोने विशेषित क्खेवाय छे. 'द्रव्य' अण्वुं नाम अविशेषित द्विनाम छे. द्रव्य जे प्रकारतुं डोय छे—(१) अण्व द्रव्य अने (२) अण्वद्रव्य आ अण्वद्रव्य अने अण्वद्रव्य इप नामने विशेषित द्विनाम क्खे छे. वणी अण्व द्रव्य अने अण्व द्रव्यना अविशेषित अने अविशेषित नामना जे लेहो तथा भीलं पणु घणु लेहो पडता डोवाथी ते द्रव्येना अनेक प्रकार डोय छे, आ बात मूल सूत्रमांथी न न्णणी देवी जेम के—

ये तु संमूर्च्छन्ति=तथाविधकर्मोदयाद् गर्भमन्तरेणैवोत्पद्यन्ते ते सम्मूर्च्छिमाः । येषां तु गर्भे व्युत्क्रान्तिः=उत्पत्तिस्ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः । परिसर्पन्ति ये ते परिसर्पाः । ते हि-उरःपरिसर्प-भुजपरिसर्पभेदाभ्यां द्विप्रकाराः । तत्र-उरःपरिसर्पाः-सर्पादयः । भुजपरिसर्पास्तु गोधानकुलादयः । इति । प्रकृतमुपसंहरन्नाह-तदेतद् द्विनामेति ॥सू० १४५॥

ही जान लेनी चाहिये जैसे— (अविसेसिए जीवदब्बे, विसेसिए णेरइए तिरिक्खजोणिए, मणुस्से देवे) जीव द्रव्य ऐसा नाम अविशेषित द्विनाम है तथा नारक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य, देव ये विशेषित द्विनाम हैं । (णेरइए अविसेसिए) नैरयिक यह अविशेषित द्विनाम है और (रयणप्पहाए सक्करप्पहाए, वालुअप्पहाए, पंकप्पहाए, धूमप्पहाए तमाए, तमतमाए विसेसिए) रत्नप्रभागत नैरयिक, शर्करा प्रभागत नैरयिक, वालुका प्रभागत नैरयिक, पंक प्रभागत नैरयिक, धूम प्रभागत नैरयिक, तमःप्रभागत नैरयिक तमस्तमःप्रभागत नैरयिक ये विशेषित द्विनाम हैं । आगे भी इसी प्रकार से सूत्र के अन्त तक प्रत्येक भेद में अविशेषित और विशेषित द्विनाम की योजना कर लेनी चाहिये । सूत्र सुगम होने से आगे के पदों की व्याख्या नहीं की है । संमूर्च्छिम वे जीव हैं जो तथाविध कर्म के उदय से गर्भ के विना ही उत्पन्न हो जाते हैं । व्युत्क्रान्ति का तात्पर्य उत्पत्ति है । जिन जीवों की उत्पत्ति

(अविसेसिए जीवदब्बे, विसेसिए णेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से, देवे) 'अवद्रव्य' आ नाम अविशेषित द्विनाम छे, तथा नारक, तिर्य'य, मनुष्य अने देव, आ आरे विशेषित द्विनामो छे.

(णेरइए अविसेसिए) 'नारक' आ नामने ले अविशेषित द्विनाम कडे-
 वामां आवे, तो (रयणप्पहाए, सक्करप्पहाए, वालुअप्पहाए, पंकपहाए धूमप्प-
 हाए, तमाए, तमतमाए विसेसिए) रत्नप्रलाना नारक, शर्कराप्रलाना नारक,
 वालुकाप्रलाना नारक, पंकप्रलाना नारक, धूमप्रलाना नारक, तमःप्रलाना
 नारक, अने तमस्तमःप्रलाना नारकने विशेषित द्विनाम कडे छे. अण प्रकारे
 सूत्रना अन्त सुधीना प्रत्येक लेहमां अविशेषित अने विशेषित द्विनामनी
 येणना करी लेवी लेछअे सूत्र सुगम होवाथी पछीनां पढोनी व्याख्या
 आपवामां आपी नथी ले अवे। तथाविध कर्मना उदयथी गर्भ विना न
 उत्पन्न थछ जय छे, ते अवेने संमूर्च्छिम अवे कडे छे. 'व्युत्क्रान्ति'
 पढेने अर्थ 'उत्पत्ति' थाय छे. ले अवेनी उत्पत्ति गर्भजन्मथी थाय छे,

त्रिनाम निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं तिनामे ? तिनामे तिविहे पणत्ते, तं जहा द्वणामे गुणणामे पज्जवणामे य। से किं द्वणामे ? द्वणामे छविहे—पणत्ते, तं जहा—धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगा-सत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अच्चासमए य। से तं द्वणामे । से किं तं गुणणामे ? गुणणामे पंचविहे पणत्ते, तं जहा—वणणामे गंधणामे रसणामे फासणामे संठाणणामे । से किं तं वणणामे ? वणणामे पञ्चविहे पणत्ते, तं जहा—काल-वणणामे नीलवणणामे लोहियवणणामे हालिद्ववणणामे सुक्खिलवणणामे । से तं वणणामे । से किं तं गंधणामे—गंध-णामे दुविहे पणत्ते, तं जहा—सुरभिगंधणामे य दुरभिगंधणामे य । से तं गंधणामे । से किं तं रसणामे ? रसणामे पंचविहे पणत्ते, तं जहा—तित्तरसणामे कडुयरसणामे कसायरसणामे अंबिलरसणामे महुररसणामे य । से तं रसणामे । से किं तं

गर्भ जन्म से होती है वे गर्भव्युत्क्रान्ति जीव हैं । जो सरकते हैं वे परिसर्प हैं । उरःपरिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से परिसर्प जीव दो प्रकार के हैं । सर्पादिक जीव जो कि छाती से सरकते हैं—उरः परि-सर्प हैं । और गोधा, नकुल आदि जीव जो भुजाओं से सरकते—चलते हैं वे भुजपरिसर्प हैं । इस प्रकार यह द्विनाम है ॥सू० १४६॥

ते भवोने गर्भव्युत्क्रान्तिक भवो कडे छे, ने भवो सरकतां सरकतां यावे छे ते भवोने परिसर्प कडे छे. परिसर्प भवोना उरःपरिसर्प अने भुजप-रिसर्प नामना भे लेद पडे छे. सर्पादिक ने भवो छातीना भणथी सरके ते भवोने उरःपरिसर्प कडे छे. गरोणी, नोणिया आदि भवो भुजभोना भणथी सरके (यावे) छे, तेथी तेभने भुजपरिसर्प कडे छे. आ प्रकारनुं आ द्विनामनुं स्वइप छे. ॥सू० १४५॥

फासणामे ? फासणामे अट्टविहे पणत्ते, तं जहा—कक्खडफास-
णामे मउयफासणामे गरुयफासणामे लहुयफासणामे सीयफा-
सणामे उसिणफासणामे णिद्धफासणामे लुक्खफासणामे । से तं
फासणामे । से किं तं संठाणनामे ? संठाणनामे—पंचविहे पणत्ते
तं जहा परिमंडलसंठाणनामे वट्टसंठाणनामे तंसंठाणनामे
चउरंसंठाणनामे आययसंठाणनामे । से तं संठाणनामे से
तं गुणनामे ॥सू० १४६॥

छाया—अथ किं तत् त्रिनाम ? त्रिनाम त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यनाम,
गुणनाम पर्यवनाम च । अथ किं तद् द्रव्यनाम ? द्रव्यनाम षड्विधं प्रज्ञप्तम्,
तद्यथा—धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायः आकाशास्तिकायो जीवास्तिकायः पुद्गला-
स्तिकायः अद्वासमयश्च । तदेतद् द्रव्यनाम । अथ किं तद् गुणनाम ? गुणनाम
पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—वर्णनाम गन्धनाम रसनाम स्पर्शनाम संस्थाननाम ।
अथ किं तद् वर्णनाम ? वर्णनाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—कालवर्णनाम नील-
वर्णनाम लोहितवर्णनाम हारिद्रवर्णनाम शुक्लवर्णनाम तदेतद्वर्णनाम । अथ किं तत्
गन्धनाम ? गन्धनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सुरभिगन्धनामच दुरभिगन्धनाम
च । तदेतद् गन्धनाम । अथ किं तद् रसनाम ? रसनाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
तिक्तरसनाम, कटुकरसनाम, कषायरसनाम अम्लरसनाम मधुररसनाम च ।
तदेतद् रसनाम । अथ किं तत् स्पर्शनाम ? स्पर्शनाम—अष्टविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
कर्कशस्पर्शनाम मृदुकस्पर्शनाम गुरुकस्पर्शनाम लघुकस्पर्शनाम शीतस्पर्शनाम उष्ण-
स्पर्शनाम स्निग्धस्पर्शनाम रूक्षस्पर्शनाम । तदेतत् स्पर्शनाम । अथ किं तत् संस्थान-
नाम ? संस्थाननाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—परिमण्डलसंस्थाननाम वृत्तसंस्था-
ननाम त्र्यसंस्थाननाम चतुरसंस्थाननाम आयतसंस्थाननाम । तदेतत् संस्थान-
नाम । तदेतद् गुणनाम ॥सू० १४६॥

टीका—‘से किं तत् त्रिनाम ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—त्रिनाम=त्रिरूपं
नाम त्रिनाम तत् त्रिविधं प्रज्ञप्तम् । यत एवेदं त्रिनाम अत एवेदं त्रिविधं

अथ त्रिनाम का सूत्रकार निरूपण करते हैं—

“से किं तं त्रिनामे ” इत्यादि ।

इवे सूत्रकार त्रिनामनुं निरूपणुं करे छे—

“से किं तं त्रिनामे ” इत्यादि—

बोधम् । त्रैविध्यमेवाह-तद्यथा-द्रव्यनाम-द्रवति=गच्छति तांस्तान् पर्यायान्
 प्राप्नोतीति द्रव्यं, तस्य नाम-द्रव्यनाम । गुणनाम-गुण्यन्ते=संख्यायन्ते इति
 गुणास्तेषां नाम-गुणनाम । तथा-वर्णनाम-वर्ण्यते=अलङ्क्रियते वस्त्वनेनेति वर्णः,
 तस्य नाम वर्णनाम । एषु त्रिविधेषु नामसु प्रथमं द्रव्यनाम जिज्ञासमानः शिष्यः
 पृच्छति-अथ किं तद् द्रव्यनाम ? उत्तरयति-द्रव्यनाम हि धर्मास्तिकायादिभेदैः
 षड्विधम् । धर्मास्तिकायादीनां व्याख्या पूर्वं कृता । गुणनामतु वर्णगन्धरसस्पर्श-

शब्दार्थ—(से किं तं त्रिनामे ?) हे भदन्त ! त्रिनाम क्या है ?

उत्तर—(त्रिनामे त्रिविधे पण्णत्ते) त्रिनाम तीन प्रकार का कहा गया
 है तीन रूप वाला जो नाम है वह त्रिनाम है । त्रिनाम से ही यह
 त्रिविध है । (तं जहा) वे तीन प्रकार ये हैं—(द्ववणामे, गुणनामे, पञ्ज-
 वणामे) द्रव्यनाम, गुणनाम, पर्याय नाम । उन २ पर्यायों को जो प्राप्त
 करता है उसका नाम द्रव्य है । इस द्रव्य का जो नाम है वह द्रव्यनाम
 है । जो गिने जावें उनका नाम गुण है यह गुण शब्द की व्युत्पत्ति है ।
 इनका जो नाम है वह गुण नाम हैं । पर्याय का जो नाम है वह पर्याय
 नाम है । पर्याय नाम का वर्णन सूत्रकार १४७ वे सूत्र में करेंगे । (से-
 किं तं द्ववणामे) वह द्रव्य नाम क्या है ?

उत्तर—(द्ववणामे छव्विहे पण्णत्ते) द्रव्य नाम ६ प्रकार का कहा
 है । (तं जहा) जैसे—(धम्मत्थिकाए, अ धम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए

शब्दार्थ—(से किं तं त्रिनामे ?) डे लगवन् । त्रिनाम अटले शु ?

उत्तर—(त्रिनामे त्रिविधे पण्णत्ते) त्रिनामना त्रणु प्रकार क्खा छे. त्रणु ३प-
 वाणुं जे नाम छे, तेने त्रिनाम क्खे छे त्रिनाम डोवाने लीधे ज ते त्रणु
 प्रकारनुं छे. (तंजहा) ते त्रणु प्रकारे नीये प्रमाणे छे—(द्ववणामे, गुणनामे,
 पञ्जवणामे) (१) द्रव्यनाम, (२) शुणुनाम अने (३) पर्यायनाम (पर्यायनाम.)

शुद्धी शुद्धी पर्यायाने जे प्राप्त करे छे, तेनुं नाम द्रव्य छे. आ द्रव्यनुं
 जे नाम छे तेने द्रव्य नाम क्खे छे. शुणु शब्दनी व्युत्पत्ति आ प्रमाणे छे.
 “जे गणाय ते शुणु छे.” ते शुणुनुं जे नाम छे तेने शुणुनाम क्खे छे.
 पर्यायनुं जे नाम छे, तेनुं नाम पर्यायनाम छे. आगण १४७मां सूत्रमां
 सूत्रकार आ पर्यायनामनुं वणुं न करवाना छे.

प्रश्न—(से किं तं द्ववणामे?) ते द्रव्यनाम शुं छे ?

उत्तर—(द्ववणामे छव्विहे पण्णत्ते) द्रव्यनाम छ प्रकारनुं क्खुं छे. (तंजहा)
 जेभ के... (धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थि-

સંસ્થાનભેદૈઃ પञ્ચવિધમ્ । તત્ર વર્ણનામ-કૃષ્ણનીલલોહિતહારિદ્રશુક્લનામભેદૈઃ પञ્ચ-
વિધમ્ । ધૂસરાશુભ્રુણરૂપ કપિશાદયસ્તુ વર્ણાં સંયોગેનૈવોત્પદ્યન્તે, નત્વેતે તેભ્યો મિન્ના
इति न पृथगुपात्ताः । तथा-ગન્ધનામ-ગન્ધ્યતે=આગ્રાયતે इति गन्धस्तस्य नाम=
गन्धनाम । तद्धि-सुरभिदुरभिभेदाद् द्विविधम् । तत्र-सौमुख्यकृत् सुरभिः, वैमुख्य-

जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमए य) धर्मास्तिकाय, अधर्मा-
स्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा
समय । इन सबकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है । अतः यहाँ नहीं
की है । (से तं दब्बनामे) इस प्रकार यह द्रव्य नाम है । (से किं तं गुण-
नामे) वह गुण नाम क्या है ?

उत्तर—(गुणनामे पंचविहे पणत्ते) गुणानाम पांच प्रकार का कहा
गया है । (तं जहा) जैसे— (वण्णणामे, गंधणामे रसणामे, फासणामे,
संठाणणामे) वर्णनाम, गंध नाम, रस नाम, स्पर्श नाम, संस्थान नाम ।
वस्तु जिससे अलंकृत की जाती है वह वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति है । इस
वर्ण का जो नाम है वह वर्ण नाम है । जो सूंघी जावे वह गंध है । इस
गंध का जो नाम है वह गंधनाम है । जो चखा जाता है वह रस है । रस
का जो नाम है वह रस नाम है । जो स्पर्श से जाना जाता
है वह स्पर्श है । संस्थान नाम आकार का है । इस संस्थान का जो नाम
है वह संस्थान नाम है ।

काए, अद्धासमए य) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिका-
य, पुद्गलास्तिकाय અને અદ્ધાસમય (કાળ) આ અર્થાં પદોની વ્યાખ્યા
પહેલાં આપવામાં આવી છે, તેથી અહીં તેમની વ્યાખ્યા આપવામાં આવી
નથી (સે તં દબ્બનામે) આ પ્રકારનું તે દ્રવ્યનામ છે.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં ગુણનામે?) હે ભગવન્ ! ગુણનામ કોને કહે છે ?

ઉત્તર—(ગુણનામે પંચવિહે પણત્તે-તંજહા) ગુણનામ પાંચ પ્રકારનું કહ્યું
છે. તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(વણ્ણણામે, ગંધણામે, રસણામે, ફાસણામે,
સંઠાણણામે) વર્ણનામ, ગંધનામ, રસનામ, સ્પર્શનામ અને સંસ્થાનનામ
વસ્તુને જેના વડે અલંકૃત કરાય છે, તેને વર્ણ કહે છે. તે વર્ણનું જે નામ
છે તેને વર્ણનામ કહે છે. સૂંઘવાથી જેના અનુભવ થાય છે, તે ગંધ છે.
આ ગંધનું જે નામ છે તેને ગંધનામ કહે છે. ચાખવાથી જેના અનુભવ
થાય તે રસ છે. એવા રસનું જે નામ છે, તે રસનામ છે. કોઈ પણ વસ્તુને
અડકવું તેનું નામ સ્પર્શ છે. આ સ્પર્શનું જે નામ છે તેને સ્પર્શનામ કહે
છે. સંસ્થાન એટલે આકાર આ સંસ્થાનના નામને સંસ્થાનનામ કહે છે.

कृददुरभिः । तथा-रसनाम-रस्यते=भास्वाद्यते इति रसस्तस्य नाम-रसनाम ।
तच्च-तिक्तकटुककषायाम्लमधुरनाम भेदात् पञ्चविधं प्रज्ञप्तम् । तत्र-तिक्तरसनाम-
-श्लेष्मादिदोषहन्ता रसः, तस्य नाम तिक्तरसनाम । तिक्तरससेवनफलमुक्तमायु-
र्वेदशास्त्रे-“श्लेष्मामरुचिः पित्तं तृषं कुष्ठं विषं ज्वरम् । हन्यात्तिक्तो रसो बुद्धेः कर्त्तुं

(से किं तं वण्णणामे) वह वर्णनाम क्या है ?

उत्तर-(वण्णणामे पंचविहे पण्णत्ते) वर्णनाम पांच प्रकार का कहा गया है । (तं जहा) जैसे-(कालवण्णणामे, नीलवण्णणामे, लोहियवण्णणामे, हालिहवण्णणामे, सुक्किल्लवण्णणामे) काल कृष्ण-वर्णनाम, नीलवर्णनाम, लोहितवर्णनाम, हारिद्रवर्णनाम, शुक्लवर्णनाम। घूसर, अरुण रूप जो कपिशादि वर्ण हैं-वे संयोग से ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये ये स्वतंत्रवर्ण नहीं हैं इसलिये इनका स्वतंत्र रूप से सूत्र में पाठ नहीं किया है । सुरभिगंध और दुरभिगंध के भेद से गन्ध गुण दो प्रकार का है । जो गंध अपनी ओर आकृष्ट करती है वह सुरभि गंध और जो अपने से विमुख करती है वह दुरभिगंध है । तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर नाम के भेद से रस पांच प्रकार है । श्लेष्म आदि दोषों को नष्ट करनेवाला जो रस है वह तिक्त रस है । तिक्त रस के सेवन का फल आयुर्वेद शास्त्र में ऐसा कहा है-मात्रा से

प्रश्न-(से किं तं वण्णणामे) डे लगवन् । वण्णुनामनुं स्वइयुं डेवुं डोय छे ?

उत्तर-(वण्णणामे पंचविहे पण्णत्ते) वण्णुनाम पांच प्रकारना कइयां छे ।

(तंजहा) जेभ डे....(कालवण्णणामे, नीलवण्णणामे, लोहियवण्णणामे, हालिहवण्णणामे, सुक्किल्लवण्णणामे) (१) कृष्णवण्णुनाम, (२) नीलवण्णुनाम, (३) लोहित (रक्त) वण्णुनाम, (४) हारिद्र (पीणो) वण्णुनाम, अने (५) शुक्लवण्णुनाम ।

आ सिवायना जे घूसर आदि वण्णुं छे, तेओ उपर्युक्त वण्णुना संयोगथी ज उत्पन्न थाय छे, तेथी तेभने स्वतंत्र वण्णुं इय गणी शकय नही, तेथी अही तेभने स्वतंत्र प्रकारे इये अताववाभां आवेल नथी सुरभिगंध (सुगंध) अने दुरभिगंध (दुर्गंध)ना लेखथी गंधगुणना जे प्रकार पडे छे, जे गंध जेवने चेतानी तरइ आकर्षे छे ते गंधने सुरभिगंध अने जे गंध जेवने चेतानी तरइ भेयवाने अडवे विमुख करे छे जेवी गंधने दुरभिगंध कडे छे । रसना नीचे प्रभाणे पांच प्रकार छे-(१) तिक्त (तीणो), (२) कटुक (कडवा), (३) कषाय (तुरो), (४) अम्ल (आटो) अने (मधुर) कइ आदि दोषानो नाश करनार जे रस छे तेनुं नाम तिक्तरस छे । आयुर्वेद शास्त्रमां तिक्तरसना सेवनना नीचे प्रभाणे ताबो अताव्या छे-योग्य मात्राभां

मात्रोपसेवितः” । इति तथा—कटुकरसनाम—गळरोगप्रशमनो मरिचनागराद्याश्रितो रसः—कटुकरसः—तस्य नाम—कटुकरसनाम । कटुकरससेवनफलमुक्तमायुर्वेदे—कटुर्गलामयं शोफं, हन्ति युक्त्योपसेवितः । दीपनः पाचको रुच्यो बृंहणोऽतिक्फापहः । इति॥ तथा—कषायरसनाम—रक्तदोषाघपनेताविभीतकामलककपित्थाद्याश्रितो रसः—कषायरसः, तस्य नाम कषायरसनाम । उक्तंचास्य सेवनफलम्—“रक्तदोषं कफं पित्तं, कषायो हन्ति सेवितः । रुक्षः शीतो गुणग्राही रोचकश्च स्वरूपतः” ॥ इति॥

सेवन किया तिक्तरस श्लेष्मा—कफ अरुचि, पित्त, तृषा, कुष्ठ, विष, ज्वर, इनका नाश करता है और बुद्धि को बढाता है । इस तिक्तरस का जो नाम है वह तिक्तरस नाम है । गले के रोग को प्रशान्त करनेवाला एवं मरिच और नागर आदि में—रहनेवाला जो रस है वह कटुकरस है । इस कटुकरस के सेवन का फल आयुर्वेदशास्त्र में ऐसा कहा है—युक्ति से सेवन किया गया कटुक रस.... शोफ—सूजन को नष्ट करता है, दीपक, पाचक, रुच्य और बृंहण होता है । बढे हुए कफ को नष्ट करता है । रक्त दोष आदि का नाशक—विभीतक—बहेड़ा आमलक—आँवला एवं कपित्थ आदि के आश्रित जो रस है वह कषाय रस है । इसका जो नाम है वह कषाय रस नाम है । इसके सेवन का फल ऐसा कहा है—सेवित हुआ यह कषाय रस रक्तदोष, कफ, पित्त, को नाश करता है । यह स्वरूप से रुक्ष, शीत और गुणग्राही होता है तथा

तिक्तरसनुं जे सेवन करवामां आवे, ते कटु, अरुचि, पित्त, तृषा, कुष्ठ, विष अने ज्वरनेो नाश थाय छे अने बुद्धिनी वृद्धि थाय छे. आ तिक्तरसनुं जे नाम छे, ते तिक्तरस नाम छे.

गणाना रोगाने प्रशान्त करनारो अने मरिच अने नागर आदिमां रडेनारो जे रस छे, ते रसनुं नाम कटुकरस (कटुवेस्वाद) छे. आयुर्वेद शास्त्रमां आ कटुक रसना सेवननुं इण नीचे प्रमाणे कहुं छे—योग्य मात्रामां जे कटुक रसनुं सेवन करवामां आवे, ते शरीरना केरि पणु लागनेो सोने उत्तरी जय छे, दीपक (पाचनक्रियामां मदद इप) डाय छे, रुच्य अने बृंहण (शक्तिवर्धक) डाय छे ते वधाराना कइनेो नाश करे छे.

रक्तदोष आदिनेो नाशक, बहेडा, आमणां, केठां आदिमां रडेलो जे रस छे तेने कषाय (तुरो) रस कडे छे. तेनुं जे नाम छे ते कषायरस नाम छे. आयुर्वेदमां कषायरसना सेवननुं इण नीचे प्रमाणे कहुं छे—जे योग्य रीने सेवन करवामां आवे तो कषायरस रक्तदोष, कटु, अने पित्तनेो नाश करे छे. ते रुक्ष, शीत, गुणग्राही अने रोचक डाय छे.

तथा-अम्लरसनाम-अग्निदीपनादिकृदम्लीकाद्याश्रितो रसः-अम्लरसः, तस्य नाम-अम्लरसनाम । उक्तं चास्य फलम्-“अम्लोऽग्निदीपितकृत् स्निग्धः, शोफ-पित्तकफापहः । क्लेदनः पाचनो रुच्यो, गूढवातानुलोमकः ॥इति॥ तथा-मधुररसनामपित्तादिप्रशमनः खण्डशर्कराद्याश्रितो रसो मधुररसः, तस्य नाम-मधुररसनाम । उक्तं चास्य फलम्-“पित्तं वातं विषं हन्ति, धातुवृद्धिकरो गुरुः । जीवनः केशकृद् बालवृद्ध क्षीणौजसां हितः” ॥इति॥ अन्यत्र हि सिन्धुलवणाद्याश्रितो लवणरोचक होता है । अम्लीक-इमली आदि में रहा हुआ जो रस है वह अम्लरस है । यह अग्निदीपन आदि का करने वाला होता है । इस रस का जो नाम है वह अम्ल रस नाम है । इसका फल इस प्रकार कहा है—यह रस अग्निदीपक होता है, स्निग्ध होता है । शोफ, पित्त और कफ को नाश करता है । क्लेदन, (पसीना उत्पन्न करनेवाली शरीरका अग्निविशेष) पाचन करता है—और रुच्य होता है तथा गूढ वायु का अनुलोमक होता है । पित्तादिका प्रशमन करने वाला जो रस है वह मधुर रस है । यह मधुर रस खांड, शकर आदि का आश्रित रहता है । इसका जो नाम है वह मधुररसनाम है । इसका फल ऐसा कहा है कि मधुररस पित्त, वात, और विषका नाशक होता है, धातु की वृद्धि करता है गुरु होता है । बालक, वृद्ध और क्षीण शक्ति वालों का यह हित कर्ता होना है । जीवनप्रद और केशवर्धक होता है । दूसरी जगह सिन्धु लवणसैन्धव-आदि के आश्रित लवण रस भी

आमली आदिमां रडेला रसने अम्लरस (आटोस्वाद) कडे छे. ते अग्निदीपन (खडराग्निने सतेज करनारे) आदि करनारे डोय छे. आ रसनुं जे नाम छे ते अम्लरस नाम छे. अम्लरसना सेवननुं क्षण आ प्रकारनुं कहुं छे—आ रस अग्निदीपक अने स्निग्ध डोय छे. सोण पित्त अने कङ्को नाशक डोय छे क्लेदन, पाचन करे छे. अने रुच्य (रुचिकर) डोय छे वणी आ रस गूढ वायुने अनुलोमक डोय छे.

[पित्तादिकनुं शमन करनारे जे रस छे तेनुं नाम मधुररस छे. ते भांड, साकर, गोण आदिमां रडेला डोय छे. तेनुं जे नाम छे ते मधुररसनाम छे तेना सेवननुं क्षण आ प्रकारनुं कहुं छे—मधुररस वात, पित्त अने विषने नाशक डोय छे, धातुनी वृद्धि करनारे अने गुरु डोय छे बालके, वृद्धो अने कमजोर माणुसेने लालकारी डोय छे, लवनप्रद अने केशवर्धक डोय छे डेटलाक बौके लवणुरस (आरेां स्वाड) ने पणु अेक प्रकारना स्वतंत्र रस

रसोऽपि पठ्यते । अयं रसो हि स्तम्भिताहारबन्धविध्वंसादिकर्ता भवति । अयं रसो हि मधुरादिरससंसर्गजत्वात्तदभिन्तत्वेन विवक्ष्यते । यतो लवणरसयोगादेवान्येऽपि रसाः स्वादीयस्त्वं भजन्ते, अतस्तिक्तादिषु पञ्चसु रसेषु लवणरसस्यान्तर्भावः, अत एव न तस्य पृथगुपादानम् । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—तदेतद्रसनामेति । अथ गुणनाम्नश्चतुर्थभेदं जिज्ञासितुकामः पृच्छति—अथ किं तत् स्पर्शनाम ? इति । उत्तरयति—स्पर्शनाम—स्पृश्यते=त्वग्निन्द्रेणावबुध्यते इति स्पर्शः, तस्य नाम स्पर्शनाम । तद्धि अष्टविधम्=अष्टसंख्यकं बोध्यम् । अष्ट विधत्वमेवाह—तद्यथा—कर्कश स्पर्शनाम-

एक—एक स्वतंत्र रस कहा गया है । यह रस स्तम्भित आहार आदि का विध्वंस कर्ता होता है आहार वर्धक एवं मलबद्धता नाशक होता है । यह रस मधुर आदि रस के संसर्ग से उत्पन्न होने के कारण उनसे—अभिन्न ही माना गया है । क्योंकि लवण रस के भोग से ही अन्य दूसरे रस स्वादिष्ट लगते हैं । इसलिये तिक्तादि पांच रसों में ही लवण रस का अन्तर्भाव हो जाता है । इसलिये इस रस का स्वतंत्र रूप से सूत्रकार ने कथन नहीं किया है । यह अर्थ “से किं तं गंधनामे” यहां से लेकर “महुररसणामे” यहां तक के पाठ का किया है । (से तं रसणामे) इस प्रकार यह रस नाम है । (से किं तं फासणामे) हे भदन्त ! गुणनाम का जो चतुर्थ भेद स्पर्श नाम है वह क्या है ?

उत्तर—(फासणामे अट्टविहे पणत्ते) स्पर्श नाम आठ प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है । स्पर्शन इन्द्रिय से जो जाना जाता है वह स्पर्श है ।

इये गण्ठावे छे, सिधाद्युषु, नभक, आदिमां आ रसने। सहलाव डोय छे, आ रस स्तम्भित आहार आदिने विध्वंस करवावाणा डोय छे, आहारवर्धक अने अंधकोशने नाशक डोय छे, आ रस मधुर आदि रसना संसर्गथी उत्पन्न थतो डोवाने कारणे, ते रसोथी अभिन्न न गण्ठीने अही तेने स्वतंत्र प्रकार इये गण्ठवामां आवेद नथी कारणे के लवणरसना योगथी न अन्य रसो स्वादिष्ट लागे छे, तेथी तिक्तादि पांच रसोमां लवणरसने समावेश थथ नय छे, तेथी न सूत्रकारे आ रसनु स्वतंत्र इये कथन कथुं नथी “से किं तं गंधनामे” आ सूत्रथी लघने “महुररसणामे” आ सूत्र पर्यन्तना सूत्रपाठने भावार्थे उपर प्रकट करवामां आये छे, (से तं रसणामे) आ प्रकारनु रसनामनु स्वइय समन्युं ।

प्रश्न—(से किं तं फासणामे ?) हे भगवन् ! गुणनामना योथा लेह इय न स्पर्शनाम छे, तेनु स्वइय केवुं छे ?

उत्तर—(फासणामे अट्टविहे पणत्ते) स्पर्शनाम आठ प्रकारनु प्रज्ञप्त थयुं छे, स्पर्शेन्द्रियनी भेदथी न अनुभव थाय छे, तेनु नाम स्पर्श छे

स्तब्धताकारणं पाषाणादिगतः स्पर्शः—कर्कशस्पर्शः—तस्य नाम कर्कशस्पर्शनाम ।
 मृदुकस्पर्शनाम—कोमलस्पर्शकारणं तिनिशलतादिगतः स्पर्शः—मृदुकस्पर्शस्तस्य
 नाम । गुरुकस्पर्शनाम—अधःपतनहेतुर्योगोलकादिगतः स्पर्शः—गुरुकस्पर्शस्तस्य
 नाम । लघुकस्पर्शनामप्रायस्तिर्यग्ध्वार्धोगमनहेतुरर्कनूलादि निश्चितः स्पर्शः—लघु-
 इस स्पर्श का जो नाम है वह स्पर्श नाम है । (तंजहा) इसके आठ
 प्रकार ये हैं—(कक्खडफासणामे, मउयफासणामे, गरुयफासणामे, लहुय-
 फासणामे, सीयफासणामे, उसिणफासणामे, णिद्धफासणामे, लुक्ख-
 फासणामे) कर्कश स्पर्श नाम मृदुक स्पर्श नाम, गुरुकस्पर्श नाम, लघु-
 कस्पर्श नाम, शीतस्पर्श नाम, उष्णस्पर्श नाम, स्निग्धस्पर्श नाम, रूक्ष-
 स्पर्श नाम । कर्कशस्पर्श पाषाण आदि में रहता है । यह स्पर्श स्तब्धता
 का कारण होता है । इसका जो नाम है वह कर्कशस्पर्श नाम है ।
 कोमलस्पर्श का जो कारण होता है तथा तिनिशलता—वेत्र लता आदि
 में जो रहता है वह मृदुकस्पर्श है । इसका जो नाम है वह मृदुकस्पर्श
 नाम है । जो अधःपतन का कारण होता है और अयोगोलक आदि में
 रहता है वह गुरुकस्पर्श है । इसका जो नाम है वह गुरुकस्पर्श नाम है ।
 जो स्पर्श प्रायः तिर्यग् ऊर्ध्व, अधः गमन में कारण होता है और जो
 अर्कनूल आदि के आश्रय रहता है वह लघुक स्पर्श है । उसका जो

आ स्पर्शानुं जे नाम छे ते स्पर्शनाम छे. (तंजहा) ते स्पर्शनामना आठ
 प्रकार नीचे प्रमाणे छे—(कक्खडफासणामे, मउयफासणामे, गरुयफासणामे, लहु-
 यफासणामे, सीयफासणामे, उसिणफासणामे, णिद्धफासणामे, लुक्खफासणामे)
 (१) कर्कशस्पर्शनाम, (२) मृदुस्पर्शनाम, (३) गुरुस्पर्शनाम, (४) लघुस्पर्श-
 नांम, (५) शीतस्पर्शनाम, (६) उष्णस्पर्शनाम, (७) स्निग्धस्पर्शनाम
 (८) रूक्षस्पर्शनाम.

पाषाणु आदिमां कर्कश स्पर्शना सहभाव डोय छे. आ स्पर्श स्तब्ध-
 ताना कारणभूत अने छे. तेनुं जे नाम छे ते कर्कशस्पर्शनाम छे कोमल-
 स्पर्शना अनुभव करावनार तिनिशलता (वेत्रलता) आदिना स्पर्शने मृदु-
 स्पर्श कडे छे तेनुं जे नाम छे. ते मृदुकस्पर्शनाम छे जे वस्तुना
 अधःपतनमां कारणभूत अने छे अथवा दोढाना गोणा आदिना स्पर्शने
 गुरुकस्पर्श कडे छे. आ स्पर्श द्वारा वस्तु लारे छे अथवा अनुभव धाय छे.
 आ गुरुक स्पर्शानुं जे नाम छे ते गुरुकस्पर्शनाम छे. आंउडा तेव आदि
 उलकी वस्तुआना स्पर्शने लघुकस्पर्श कडे छे आ स्पर्श वस्तुना तिर्यग्ग-
 मन, उर्ध्वगमन अने अधोगमनमां कारणभूत अने छे, तेनुं जे नाम छे ते

કસ્પર્શસ્તસ્ય નામ । શીતસ્પર્શનામ-દેહસ્તમ્ભાદિ હેતુઃ હિમાદ્યાશ્રિતઃ સ્પર્શઃ શીત-
સ્પર્શસ્તસ્ય નામ । ઉષ્ણસ્પર્શનામ-આહારપાકાદિકારણં વહન્યાદ્યનુગતઃ સ્પર્શઃ
ઉષ્ણસ્પર્શસ્તસ્ય નામ । સ્નિગ્ધસ્પર્શનામ-પુદ્ગલદ્રવ્યાણાં મિથઃ સંયુજ્યમાનાનાં બન્ધ-
નિવન્ધનં તૈલાદિસ્થિતઃ સ્પર્શઃ સ્નિગ્ધસ્પર્શસ્તસ્ય નામ । તથા-રૂક્ષસ્પર્શનામપુદ્ગલ-
દ્રવ્યાણામવન્ધનિવન્ધનં ભસ્માદિસ્થિતઃ સ્પર્શઃ રૂક્ષસ્પર્શસ્તસ્ય નામ । इत्यष्टविधं
સ્પર્શનામ બોધ્યમ્ । તદેતદુપસંહરન્નાહ-તદેતત્સ્પર્શ નામેતિ । અથ કિં તત્ સંસ્થાન-
નામ ? इति प्रश्नः । उत्तरयति-संस्थाननाम हि परिमण्डलसंस्थाननामादिभेदैः

નામ હૈ વહ લઘુક સ્પર્શ નામ હૈ । દેહસ્તમ્ભ આદિ કા જો હેતુ
હોતા હૈ એવં જો હિમ આદિ કે સહારે રહતા હૈ વહ શીતસ્પર્શ હૈ ।
इसका जो नाम है वह शीतस्पर्श नाम है । आहार के पकाने आदि का
जो कारण होता है ऐसा अग्नि आदि के सहारे रहा हुआ जो स्पर्श
है वह उष्णस्पर्श है । इसका जो नाम है वह उष्णस्पर्श नाम है । परस्पर
मिले हुए पुद्गल द्रव्यों के संश्लिष्ट होने का कारण होता है ऐसा तैला
दिक पदार्थ के सहारे रहा हुआ स्पर्श-स्निग्धस्पर्श है । इसका जो
नाम है वह स्निग्धस्पर्श नाम है । जो पुद्गल द्रव्यों के अवन्ध का कारण
होना है ऐसा भस्मादि स्थित स्पर्श रूक्षस्पर्श है । इसका जो नाम है
वह रूक्षस्पर्श नाम है । (से तं फासणामे) इस प्रकार यह आठ प्रकार
का स्पर्शनाम है । (से किं तं संठाणणामे) वह संस्थान नाम क्या है ?

લઘુકસ્પર્શનામ છે હિમ, ધરક આદિના સ્પર્શથી જે સ્પર્શનો અનુભવ થાય
છે તે સ્પર્શને શીતસ્પર્શ કહે છે. શરીર ઠુંઠવાઈ જવામાં કે અકડાઈ જવામાં
આ સ્પર્શ કારણભૂત બને છે. તેનું જે નામ છે, તે શીતસ્પર્શનામ છે.
આહારને રાંધવા આદિમાં જે કારણભૂત થાય છે અને અગ્નિ આદિમાં જેનો
સદ્ભાવ હોય છે, તે સ્પર્શને ઉષ્ણસ્પર્શ કહે છે તેનું જે નામ છે તે ઉષ્ણ-
સ્પર્શનામ છે. તેલ, ઘી આદિ પદાર્થોમાં જે સ્પર્શનો સદ્ભાવ હોય છે તે
સ્પર્શને સ્નિગ્ધસ્પર્શ કહે છે. પરસ્પર મળેલાં પુદ્ગલ દ્રવ્યોના એક બીજા
સાથે સંશ્લિષ્ટ રહેવામાં આ સ્પર્શ કારણભૂત બને છે. તેનું જે નામ છે તે
સ્નિગ્ધસ્પર્શનામ છે જે સ્પર્શ પુદ્ગલ દ્રવ્યોના સંબન્ધમાં કારણભૂત બને છે
તે સ્પર્શને રૂક્ષસ્પર્શ કહે છે ભસ્મ આદિમાં આ સ્પર્શનો સદ્ભાવ હોય છે.
તેનું જે નામ છે તે રૂક્ષસ્પર્શનામ છે (સે તં ફાસણામે) આ પ્રકારનું આઠ
પ્રકારના સ્પર્શનામનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(સે કિં તં સંઠાણણામે ? હે ભગવન્ ! સંસ્થાન નામનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

पंचविधं प्रज्ञप्तम् । संस्थानमाकारविशेषस्तत्स्वरूपं प्रसिद्धमेव । तदेतदुपसंहरन्नाह-
तदेतत् संस्थाननामेति । इत्थं गुणनाम प्ररूपितमिति सूचयितुमाह-तदेतत्
गुणनामेति ॥सू० १४६॥

मूलम्—से किं तं पञ्जवणामे ? पञ्जवणामे अणैगविहे
पण्णत्ते, तं जहा-एगगुणकालए दुगुणकालए तिगुणकालए
जाव दसगुणकालए संखिज्जगुणकालए असंखिज्जगुणकालए
अणंतगुणकालए । एवं नीललोहियहालिहसुक्खिहा वि भाणि-
यत्त्वा । एगगुणसुरभिगंधे दुगुणसुरभिगंधे तिगुणसुरभिगंधे

(संठाणनामे पंचविहे पण्णत्ते) संस्थान नाम पांच प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ
है (परिमंडलसंठाणनामे, वट्टसंठाणनामे, तंस संठाणनामे, चउरंस-
संठाणनामे आययसंठाणनामे) संस्थान नाम आकार विशेष का है ।
यह संस्थान नाम परिमंडल संस्थान नाम आदि के भेद से पांच प्रकार
का है । इन संस्थानों का स्वरूप प्रसिद्ध ही है । संस्थान के नाम इस
प्रकार से हैं—परिमंडल संस्थान, वृत्त संस्थान, त्र्यस्रसंस्थान, चतुरस्र-
संस्थान, और आयतसंस्थान । (से तं संठाणनामे) इस प्रकार यह
संस्थान नाम है । (से तं गुणनामे) इस प्रकार से यहाँतक यह गुणनाम
का वर्णन है । द्रव्यों के नाम द्रव्यनाम, वर्ण रस आदिकोंके नाम
गुणनाम है । ॥सू० १४६॥

उत्तर—(संठाणनामे पंचविहे पण्णत्ते) संस्थाननामना पांच प्रकार कइया
छे. (तंजहा) ते प्रकारे नीथे प्रभाण्णे छे—(परिमंडलसंठाणनामे, वट्टसंठाणनामे,
तं संस्थाणनामे, चउरंससंठाणनामे, आययसंठाणनामे) आकार विशेषतुं नाम
संस्थान छे आ संस्थाननामना परिमंडल संस्थान नाम आदि पांच प्रकारे
छे. आ संस्थानेतुं स्वइप जण्णितुं डोवाथी अहीं तेमनुं वण्णुं करवामां
आण्णुं नथी संस्थाननां नाम आ प्रभाण्णे छे—(१) परिमंडलसंस्थान (२)
वृत्तसंस्थान, (३) त्र्यस्रसंस्थान, (४) चतुरस्रसंस्थान अने (५) आयत-
संस्थान. (से तं संठाणनामे) आ प्रकारतुं संस्थान नामतुं स्वइप छे. (से तं
गुणनामे) वण्णुं, रस, गंध, स्पर्श अने संस्थाननाम इप गुणनामतुं आ
प्रकारतुं स्वइप छे द्रव्येनां नामने द्रव्यनाम कडे छे अने वण्णुं रस गंध,
स्पर्श अने संस्थानना नामने गुणनाम कडे छे. ॥सू० १४६॥

जाव अणंतगुणसुरभिगंधे । एवं दुरभिगंधोऽपि भाणियव्वो ।
एगगुणतित्ते जाव अणंतगुणतित्ते । एवं कडुयकसाय अंबिल-
महुरावि भाणियव्वा । एगगुणकक्खडे । जाव अणंतगुणकक्खडे
एवं मउथगरुयलहुयसीतउसिणणिच्चलुक्खावि- भाणियव्वा ।
से तं पज्जवणामे ॥सू. १४७॥

छाया—अथ किं तत् पर्यवनाम ? पर्यवनाम अनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तथा—
एकगुणकालकः, द्विगुणकालकः, त्रिगुणकालको यावद् दशगुणकालकः संख्येय-
गुणकालकः असंख्येयगुणकालकः अनन्तगुणकालकः । एवं नीललोहितहारिद्रथुक्का
अपि भणितव्याः । एकगुणसुरभिगन्धो द्विगुणसुरभिगन्धः त्रिगुणसुरभिगन्धो
यावदनन्तगुणसुरभिगन्धः । एवं दुरभिगन्धोऽपि भणितव्यः । एकगुणतित्तो
यावदनन्तगुणतित्तः । एवं कटुककषायाम्लमधुरा अपि भणितव्याः । एकगुणकर्कशो
यावदनन्तगुणकर्कशः । एवं मृदुकगुरुकलघुकशीतोष्ण स्निग्धरुक्षा अपि भणितव्याः ।
तदेतत् पर्यवनाम ॥सू० १४७॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

सम्प्रति पर्यवनाम परिज्ञातुं पृच्छति—अथ किं तत् पर्यवनाम ? इति । उत्तर-
यति—पर्यवनाम—परि=समन्तात् अवन्ति=अपगच्छन्ति न तु द्रव्यवत् सर्वदैवावति-
ष्ठन्ते इति पर्यवाः । अथवा—परि=समन्तात् अवनानि=गमनानि=द्रव्यस्यावस्था-
न्तरप्राप्तिरूपाणीति पर्यवाः=एकगुणकालत्वादयस्तेषां नाम—पर्यवनाम । पर्याय-

“से किं तं पज्जवणामे” ? इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं पज्जवणामे) हे भदन्त ! पर्यव नाम क्या है ?

उत्तर—(पज्जवणामे अणेगविहे पणत्ते) पर्यवनाम अनेक प्रकार
का प्रज्ञप्त हुआ है । द्रव्य के जैसी जो सर्वदा नहीं ठहरती हैं—किंतु
बदलती रहती हैं वे पर्यव हैं । अथवा जो द्रव्य की भिन्न २ अवस्थारूप
हों वे पर्यव हैं । ये पर्यव एक गुणकालत्व आदि हैं । इनका नाम पर्यव-

हवे पर्यवनामनी प्रज्ञपणा करवाभां आवे छे—

“से किं तं पज्जवणामे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं पज्जवणामे?) हे भगवन् ! पर्यवनामनुं स्वइप डेपुं इधुं छे।

उत्तर—(पज्जवणामे अणेगविहे पणत्ते) पर्यवनाम अनेक प्रकारना कर्त्तव्यां
छे. द्रव्यनी जेम जेनुं अस्तित्व सदा रहितुं नथी, पण जे बदलाती ज रहते
छे तेनुं नाम पर्याय अथवा पर्यव छे अथवा ते द्रव्यनी विज्ञ विज्ञ अव-

नामेति पाठान्तरपक्षे-परि=समन्तात् अयन्ते=अपगच्छन्तीति पर्यायाः । यद्वा-
परि=सामस्त्येन यन्ति=अभिगच्छन्ति वस्तुतामिति पर्यायास्तेषां नामपर्यायनाम ।
अत्रपक्षेऽप्यर्थः पूर्वोक्त एव बोध्यः । पर्यवनाम हि अनेकविधं प्रज्ञप्तम् । अनेक-
विधत्वमेवाह-तद्यथा-एकगुणकालकः-अत्र गुणशब्दोऽशार्थकः । एकगुणेन=एकां-
शेन कालकः=कृष्णः परमाण्वादिरेकगुणकालक इत्युच्यते । समस्तस्यापि त्रैलोक्य-

नाम हैं । जब “ पञ्जवणामे ” इसकी संस्कृत छाया पर्यायनाम ऐसी
होती है तब इस पाठान्तर पक्ष में भी यही पर्यवनामोक्त अर्थ ही
निकलता है (तंजहा) यह पर्यवनाम अनेक प्रकार का इस प्रकार से है-
(एकगुणकालक, द्विगुणकालक, त्रिगुणकालक, यावत् दशगुणकालक
संखिज्जगुणकालक, असंखिज्जगुणकालक अणंतगुणकालक) एक
गुणकालक, द्विगुणकालक, त्रिगुणकालक, यावत् दशगुणकालक, संख्या-
तगुणकालक, असंख्यातगुणकालक, अनंतगुणकालक । यहां गुण
शब्द अंश का वाचक है । जिस परमाणु आदि द्रव्य में कृष्ण गुण का
एक अंश हो वह परमाणु आदि द्रव्य एक गुणकालक है । इसी प्रकार
जिस परमाणु आदि द्रव्य में कृष्ण गुण के दो अंश हैं वह द्विगुणका-
लक है तीन अंश कृष्ण गुण के हैं वह त्रिगुणकालक है यावत्
संख्यात अंश कृष्णगुण के हैं वह संख्यातगुणकालक है असंख्यात

स्थाओं ३५ होय छे. द्रव्यनी ओक गणी, जे गणी काणाश आदि ३५ आ
पर्याय होय छे. “ पञ्जवणामे ” आ पहनी संस्कृत छाया ‘ पर्यायनाम ’
थाय छे. ते पर्यायनामनो अर्थ पणु पर्यवनाम थाय छे. आ रीते पर्याय
अने पर्यव, आ अन्ने समान अर्थी पदो छे.

(तंजहा) ते पर्यवनामना अनेक प्रकारो छे जेभ के (एकगुणकालक,
द्विगुणकालक, त्रिगुणकालक, यावत् दशगुणकालक, संखिज्जगुणकालक, असंखि-
ज्जगुणकालक, अणंतगुणकालक) ओक शुष्ककालक, द्विशुष्ककालक, त्रिशुष्ककालक लधने
दशशुष्क पर्यन्तनुं कालक, संख्यात शुष्ककालक, असंख्यात शुष्ककालक अने
अनंतशुष्ककालक अही ‘ शुष्क ’ शब्द अंशनो वाचक छे. जे परमाणु आदि
द्रव्यमां काणाशनो ओक अंश होय छे ते परमाणु आदि द्रव्यने ओकशुष्क
कालक द्रव्य कहे छे. ओज प्रमाणे जे परमाणु आदि द्रव्यमां काणाशना जे
अंश होय छे ते परमाणु आदि द्रव्यने द्विशुष्ककालक द्रव्य कहे छे ओज प्रमाणे
दशशुष्ककालक पर्यन्तना द्रव्येनो अर्थ पणु समजवो जे द्रव्यमां काणाशना
संख्यात अंश होय छे ते द्रव्यने संख्यात शुष्ककालक कहे छे जे द्रव्यमां

गतकालकस्य असत्कल्पनया पिण्डितस्य च एकः=सर्वजघन्यो गुणः=अंशस्तेन कालकः-एकगुणकालकः-सर्वजघन्य-कृष्ण इत्यर्थः। एवं द्विगुणकालकप्रभृत्यनन्त-गुणकालकान्ताः परमाणवो बोध्याः। एवमेव एकगुणनीलकादय एकगुणलोहित-

अंश कृष्णगुण के हैं वह असंख्यात गुणकालक है और अनंत अंश कृष्ण गुण के हैं वह अनंतगुणकालक है। एक गुण से जो काला है ऐसा परमाणवादि द्रव्य एक गुणकालक शब्द का वाच्यार्थ है। इसी प्रकार से अन्यत्र भी-द्विगुणकालक आदि में भी समझना चाहिये। तात्पर्य कहने का यह है कि तीन लोक में जितना भी कालक गुण है उसको असत् कल्पना से एकत्रित करलो, फिर उसमें से उस कृष्ण वर्ण का सबसे जघन्य अंश लेलो-इस जघन्य कृष्णांश से जो काला हो-वह एक गुणकालक परमाणु आदि द्रव्य है। (एवं) इसी प्रकार (नीललोहियहालिदसुक्किला वि भाणियन्वा) एक गुण-अंश नीलवर्ण का जिसमें है वह एक गुणनीलक परमाणु आदि द्रव्य है। दो गुण-अंश-नीलवर्ण के जिसमें हैं वह द्विगुणनीलक है। इसी प्रकार से तीन चार आदि संख्यात, असंख्यात और अनन्त अंश नीलवर्ण के जिसमें हैं वे तीन गुणनीलक, चार गुणनीलक यावत् संख्यात गुणनीलक

काणाशना असंख्यात अंश डोय छे, ते द्रव्यने असंख्यात गुणु कालक कडे छे अने जे द्रव्यमां काणाशना अनंत अंश डोय छे ते द्रव्यने अनंतगुणु कालक कडे छे. आ रीते काणाशना ओक गुणु अथवा अंशवाणु परमाणु आदि द्रव्य " ओकगुणुकालक "नुं समानाथी पद छे. ओज प्रमाणु द्विगुणु-कालक आदिना विषयमां यणु समजवुं आ कथनने लावार्थ नीचे प्रमाणु छे-त्रणु लोकमां जेटलो कालकगुणु (काणाश) छे तेने धारे के असत्कल्पनाने आधारे ओकत्र करवामां आवे त्यार भाद तेमांथी ते कृष्ण वणुना जघन्य (सौथी नाने) अंश लछ बो. आ जघन्य कृष्णअंश प्रमाणु काणा द्रव्यने ओक गुणु कालक परमाणु आदि द्रव्य कडे छे. (एवं) ओज प्रमाणु (नील, लोहिय, हालिदसुक्किला वि भाणियन्वा) जे परमाणु आदि द्रव्यमां नील वणुना ओक अंश डोय छे तेने ओक गुणु नीलक परमाणु आदि द्रव्य कडे छे जेमां नीलवणुना जे अंश डोय छे तेने द्विगुणुनीलक द्रव्य कडे छे ओज प्रमाणु त्रणु, चार आदि दस पर्यन्तना नीलवणुना अंश जेमां डोय छे ते द्रव्यने त्रणुगुणु नीलक, चारगुणुनीलक, (यावत्) दस गुणुनीलक द्रव्य कडे छे ओज प्रमाणु संख्यात, असंख्यात अने अनंत अंश नीलवणु धरावतां द्रव्यने

कादय एकगुणहारिद्रादय एकगुणशुक्लादयश्च परमाणवो बोध्याः । तथा-एकगुणसुरभिगन्धाच्चनन्तगुणसुरभिगन्धान्ताः परमाणवो बोध्याः । एवमेकगुणदुरभिगन्धाद्य-

असंख्यात गुणनीलक एवं अनन्त गुणनीलक परमाणु आदि द्रव्य हैं । इसी प्रकार एक आदि अंश लोहितवर्ण का जिसमें है वह एक गुण लोहितक परमाणु आदि द्रव्य है, एक गुण आदि पीतवर्ण का जिसमें है वह एक गुण पीतवर्णवाला दो गुण पीत वर्णवाला परमाणु आदि द्रव्य है । इसी प्रकार से एक गुण आदि शुक्ल वर्णवाले परमाणु आदि द्रव्य भी जानना चाहिये । (एकगुणसुरभिगंधे दुगुणसुरभिगंधे, तिगुणसुरभिगंधे जाव अणंतगुणसुरभिगंधे-एवं दुरभिगंधोऽपि भाणियन्वो) एक -जघन्य-अंश सुरभिगंधवाला परमाणु आदि दो अंश सुरभिगंधवाले परमाणु आदि यावत् अनंत अंश सुरभि गंधवाले परमाणु आदि भी जानना चाहिये ! एक जघन्य अंश दुरभिगंध का जिसमें है वह एक गुण दुरभिगंधवाला परमाणु आदि द्रव्य है यावत् अनंत अंश दुरभिगंध के जिसमें हैं वे अनन्त गुण दुरभिगंधवाले परमाणु आदि हैं ।

अनुक्रमे संख्यात शुक्लीकल, असंख्यात शुक्लीकल अने अनंतशुक्लीकल द्रव्यो कडे छे. ओज प्रमाणे जे परमाणु आदि द्रव्यमां लालवर्णाने ओक अंश डोय छे, ते परमाणु आदि द्रव्यने ओक शुक्ल लोहितक द्रव्य कडे छे ओज प्रमाणे द्विशुक्ललोहितकथी लधने अनंतशुक्ल लोहितक पर्यन्तना पढेने अर्थ लते जे समञ्ज शक्य अवे छे जे परमाणु आदि द्रव्यमां पीतवर्णाने ओक अंश डोय छे, तेने ओक शुक्ल पीतवर्णवाणुं कडे छे ओज प्रमाणे द्विशुक्ल पीत वर्णवाणां द्रव्योथी लधने अनंतशुक्लपीतवर्णवाणां द्रव्यो विषे पञ्चसमञ्जसुं ओज प्रमाणे शुक्ल वर्णना ओकथी लधने अनंत पर्यन्तना अंशवाणा परमाणु आदि द्रव्य विषे पञ्च समञ्जसुं.

पर्यवनामना वधु प्रकारेने डवे प्रकट करवामां आवे छे—

(एकगुणसुरभिगंधे, दुगुणसुरभिगंधे, तिगुणसुरभिगंधे, जाव अणंतगुण सुरभिगंधे, एवं दुरभिगंधोऽपि भाणियन्वो) ओक सुरलिशुक्लवाणुं परमाणु आदि (ओछामां ओछा सुरलिना अंशवणुं परमाणु आदि द्रव्य), सुरलिना जे अंशवाणुं, अने त्रशुक्ली लधने अनंत पर्यन्तना सुरलिगंधना अंशोवाणां परमाणु आदि द्रव्यो पञ्च डोय छे ओज प्रमाणे ओकथी लधने अनंत पर्यन्तना दुरलिगन्धना अंशोवाणां परमाणु आदि द्रव्यो डोय छे जे परमाणु आदि द्रव्यमां दुर्गंधनो ओछामां ओछो अंश-ओक अंश-डोय ते द्रव्यने ओक शुक्ल दुरलिगंधवाणुं कडे छे. ओज प्रमाणे षाड्डीनां पढेने अर्थ पञ्च समञ्ज लेवे.

नन्तगुणदुरभिगन्धान्ताः परमाणवो बोध्याः । तथा—एकगुणतिक्ताद्यनन्तगुणतिक्त-
पर्यन्ताः परमाणवो बोध्याः । एवमेव—एकगुणकटुकादयः, एकगुण कषायादयः,
एकगुणाम्लादयः, एकगुणमधुरादयश्चापि परमाणवो बोध्याः । तथा—एकगुणकर्कश-
प्रभृत्यनन्तगुणकर्कशान्ताः बोध्याः । एवमेव—एकगुणमृदुकादयः, एकगुणगुरुका-
दयः, एकगुणलघुकादयश्च—कर्कशमृदु—गुरुलघुस्पर्शाः परमाणुषु न लभ्यन्ते, एषां
वादरानन्तप्रदेशिस्कन्धेष्वेव सद्भावात्, ततोऽत्रपरमाणवो न ग्राह्य इति । तथा
एकगुणशीतादयः, एकगुणोष्णादयः, एकगुणस्निग्धादयः, एकगुणरूक्षादयश्च

तथा एक गुण तिक्त का जिसमें है वह एक गुण तिक्तवाला परमाणु
आदि है यावत् अनंत अंश तिक्त गुण के जिसमें हैं वे अनंत गुण
तिक्तवाले परमाणु आदि हैं ऐसा जानना चाहिये । इसी प्रकार से एक
गुण कटुकादिवाले, एक गुण कषाय आदिवाले, एक गुण अम्लादिवाले
और एक गुण मधुरादि रसवाले परमाणु आदि भी जानना चाहिये
तथा एक गुण कर्कश स्पर्शवाले से लेकर अनंत कर्कशांशवाले भी ऐसे
ही जानना चाहिये ! इसी प्रकार एक गुण मृदुक आदिवाले, एक गुण
गुरु स्पर्श आदिवाले एक गुण लघु स्पर्श आदिवाले भी जानना चाहिये।
कर्कश मृदु—गुरु लघु ये चार स्पर्श परमाणु में नहीं होते हैं, क्यों कि ये
चार स्पर्श बादर अनन्तप्रदेशी स्कंध में ही होते हैं । तथा एक गुण

रसनी अपेक्षाये पर्यायना नीचे प्रमाणे प्रकारे छे—एक शुष्मतिक्त
रसवाणं परमाणु आदि द्रव्येण प्रमाणे अनंत पर्यन्तना तिक्तशुष्मवाणां
परमाणु आदि द्रव्ये पक्षे डोय छे. एण प्रमाणे एक शुष्म कटुकथी लधने
अनंतशुष्म कटुक पर्यन्तना, एक शुष्म कषायथी लधने अनंत शुष्म कषाय
एक शुष्म अम्लरसथी लधने अनंतशुष्म पर्यन्तना अम्ल रसवाणां अने
एक शुष्म मधुरथी लधने अनंत पर्यन्तना मधुरशुष्मवाणां द्रव्ये पक्षे डोय छे.

स्पर्शनी अपेक्षाये पर्यायना नीचे प्रमाणे प्रकारे छे—एक शुष्म कर्कश
स्पर्शवाणथी लधने अनंतशुष्म कर्कश स्पर्शवाणा, एण प्रमाणे एक शुष्म
मृदुकथी लधने अनंत शुष्म मृदुक पर्यन्तना, एक शुष्मथी लधने अनेक शुष्म
पर्यन्तना गुरु स्पर्शवाणां, एक शुष्मथी अनेक शुष्म पर्यन्तना लघु स्पर्शवाणां,
एक शुष्मथी लधने अनेक शुष्म शीतरस्पर्शवाणां, एकथी लधने अनेक शुष्म उष्ण-
स्पर्शवाणां, एकथी लधने अनेक शुष्म पर्यन्तना स्निग्ध स्पर्शवाणां अने
एकथी अनेक शुष्म पर्यन्तना रूक्षस्पर्शवाणां, द्रव्ये पक्षे डोय छे कर्कश, मृदु,

बोध्याः । ननु-गुणपर्याययोः को भेदः ? इति चेदुच्यते-सर्वदा सहवर्त्तिनो गुणाः, क्रमवर्त्तिनः पर्यायाः, एवं च-सदैव सहवर्त्तित्वाद् वर्णगन्धरसादयः सामान्येन गुणा उच्यन्ते, न हि मूर्ते वस्तुनि कदाचिदपि वर्णगन्धरसादयो निवर्त्तन्ते । एकगुण-कालकत्वादयस्तु पर्यायाः । द्विगुणकालकत्वावस्थायामेकगुणकालत्वस्याभावेन

शीतादिवाले, एक गुण उष्णादिवाले, एक गुणस्निग्धादिवाले और एक गुण रूक्षादिवाले भी जानना चाहिये ।

शंका-गुण और पर्याय में क्या भेद हैं ? शंकाकार का यह अभि-प्राय है कि द्रव्य में गुण और पर्यायें युगपत् रहा करती हैं तब ये दोनों एक ही हैं-फिर गुण और पर्यायों को सूत्रकार ने अलग अलग क्यों कहा ?

उत्तर-गुण और पर्यायें यद्यपि द्रव्य में एकसाथ रहती हैं-फिर भी इनमें यह भेद है कि गुण तो द्रव्य के सहवर्ती होते हैं और पर्यायें क्षण विध्वंसी होने के कारण द्रव्य की सहवर्ती नहीं होती हैं । ये तो क्रमवर्तिनी ही होती हैं । इसलिये सर्वदा सहवर्ती होने के कारण वर्ण गंध, और रसादिक सामान्य से गुण कहे जाते हैं और उनकी एक गुण कालकत्वादि क्रमवर्ती अवस्थाएँ पर्याय कही जाती हैं । ये वर्ण, गंध, आदि गुण मूर्त वस्तु जो पुद्गल हैं उससे कभी भी निवृत्त नहीं होते हैं ।

गुरु अने लघु, आ चार स्पर्शाना परमाणुमां सहभाव डोता नथी, कारणु के ते चार स्पर्शाना सहभाव आदर अनंत प्रदेशी रकन्धमां न डोय छे.

शंका-गुण अने पर्याय वच्ये शे लेद छे ? (आ प्रश्नने लावार्थ अे छे के द्रव्यमां गुण अने पर्यायि अेक साथे न रहेतां डोय छे आ रीते ते अने अेक न डोवा छतां पणु सूत्रकारे गुण अने पर्यायितुं जुदा जुदा विषय इये शा भाटे कथन कथुं छे ?)

उत्तर-गुण अने पर्यायि ने के द्रव्यमां अेक साथे रहे छे, छतां पणु ते अनेमां आ प्रमाणे लेद छे-

गुणतो द्रव्येना सहवर्ती डोय छे, परन्तु पर्यायि क्षण विध्वंसी डोवाने कारणे द्रव्यना सहवर्ती डोता नथी वर्युं, गंध, रस आदि सर्वदा सहवर्ती डोवाने कारणे तेमने गुण कडेवामां आवे छे. पणु तेमनी अेक गुणकालत्व आदि क्रमवर्ती अवस्थाअेने पर्याय कडेवामां आवे छे. वर्युं, गंध आदि ने गुणो छे तेमने मूर्त वस्तुमांथी-पुद्गलमांथी-कही पणु नाश (नवृत्ति) थतो नथी गुणोना अंशानुं नाम पर्याय छे, गुणतो अेक अंश अे अंशानि

एकगुणकालकत्वावस्थायां द्विगुणकालकत्वस्याभावेन च एकगुणकालकत्वादीनां क्रमवृत्तित्वात् पर्यायत्वं बोध्यम् । उक्तंच—

“सहवर्त्तिनो गुणाः, यथा जीवस्य चैतन्यामूर्त्तत्वादयः ।

क्रमवर्त्तिनः पर्यायाः यथा तस्यैव नारकत्वतिर्यक्त्वादयः ॥” इति ।

ननु यद्येवं तर्हि वर्णादिसामान्यस्य भवतु गुणत्वम्, तद्विशेषाणां कृष्णादीनां तु गुणत्वं न स्यात्, तेषामनियमितत्वात्, इति चेदाह—कृष्णादीनां वर्णसामान्यभेदा-

गुणों के गुणांश पर्याय हैं । गुण का एक अंश दो अंशों की अवस्था में निवृत्त हो जाती—हैं । इसलिये ये गुणांश पर्याय हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि जब परमाणु द्रव्य में सर्व जघन्य रूप कृष्णादि गुण रहते हैं तब वे, दो अंश कृष्णादि गुणों के आने पर निवृत्त हो जाते हैं । इसी प्रकार कृष्णादि गुणों के दो अंश एक अंश कृष्णादि गुणों की अवस्था में निवृत्त हो जाते हैं । इसलिये कृष्णादि गुणों के ये एक, दो तीन यावत् संख्यात असंख्यात और अनंत अंश सब पर्याय हैं । क्योंकि ये क्रमवर्ती हैं । उक्तंच—“सहवर्ती” इत्यादि गुण सहवर्ती होते हैं—जैसे जीव के चैतन्य अमूर्त्तत्व आदि । पर्याये क्रमवर्ती होती हैं—जैसे जीव की नारक तिर्यक् आदि पर्याये ।

शंका—यदि यही बात है तो फिर वर्णादि सामान्य में ही गुणपना होना चाहिये—वर्णादिकों के विशेष जो कृष्ण आदि हैं उनमें गुणपना

अवस्थायां निवृत्त यद्य ज्ञय छे अने जे अंश अेक अंशनी अवस्थायां पणु निवृत्त यद्य ज्ञय छे. तेथी ते गुणांशने पर्याय रूप गुणवामां आवे छे. आ कथननुं तात्पर्य नीचे प्रमाणे छे—धारे के केछ द्रव्यमां ओछामां ओछा प्रमाणवाणा अेटके के अेक गुणु (अंश) काणाश आदि गुणु रहेले होय परन्तु जे अंश (गुण) कृष्णादि गुणानुं ते द्रव्यमां आगमन यतां न ते अेक गुणु कृष्णादि गुणानि निवृत्ति यद्य ज्ञय छे अेक प्रमाणे कृष्णादि गुणाना जे अंश रहेला होय, ते अेक गुणुकृष्णादि अवस्थानी प्राप्ति यतां न ते जे अंशानी निवृत्त यद्य ज्ञय छे तेथी कृष्णादि गुणाना अेक, जे, त्रय, चार, आदिथी लघने संख्यात, असंख्यात अने अनंत पर्यन्तना जधा अंशो पर्याय रूप छे, कारण के तेओ क्रमवर्ती होय छे. कहुं पणु छे के—(“सहवर्ती”) इत्यादि आ कथन द्वारा जे वात प्रकट करवामां आवी छे के गुण सहवर्ती होय छे. जेभ के जवना चैतन्य, अमूर्त्तत्व आदि गुणो सहवर्ती छे. पर्याये क्रमवर्ती होय छे. जेभ के जवनी नारक, तिर्यक आदि पर्याये.

शंका—जे जेवुं होय, ते वर्णादि सामान्यमां न गुणपणु हे.पुं जेधजे परन्तु काणाश आदि जे वर्णविशेषो छे तेमां गुणपणुना अभाव होवे जेधजे,

नामपि प्रभूतकालं प्रायः सहावस्थायित्वमिति तेषामपि गुणत्वं बोध्यम् । नन्वेते गुणपर्यायाः पुद्गलास्तिकायस्यैव भवताऽभिहिताः, न तु धर्मास्तिकायादीनाम् । दृश्यन्ते च धर्मास्तिकायादीनामपि गुणा गतिस्थित्यवगाहोपयोगवर्त्तनादयः, पर्यायाश्च प्रत्येकमनन्ता अगुरुलघ्वादय इति चेदाह—इन्द्रियप्रत्यक्षगम्यत्वात् सुप्रति-

नहीं होना चाहिये । क्योंकि ये अनियमित हैं । शंकाकार की इस शंका का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार गुण के एक अंश दो-अंश आदि अनियमित है इसलिये ये पर्याय हैं उसी प्रकार कृष्णादि भी अनियमित है अतः इन्हे भी-पर्याय ही मानना चाहिये-गुण नहीं । सो इस शंका का उत्तर यह है कि वर्ण सामान्य के भेद जो ये-कृष्णादि हैं वे प्रायः बहुत समय तक द्रव्य के साथ अवस्थित रहते हैं । इसलिये इनमें गुणता मानी गई है । पर्यायों इस प्रकार से द्रव्य के साथ नियमित प्रभूतकाल तक-नहीं रहती हैं । इसलिये अचिरस्थायी होने से उनमें गुणता नहीं मानी गई है ।

शंका—ये गुण पर्यायों आपने पुद्गलास्तिकाय की ही कही हैं धर्मास्तिकायादिकों की नहीं कहीं हैं । सो ऐसा तो है नहीं क्योंकि पुद्गलास्तिकाय के जैसा धर्मास्तिकायादिकों में भी गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहहेतुत्व, उपयोग एवं वर्त्तनादि गुण और इनमें प्रत्येक में अनन्त अगुरुलघु आदि रूप पर्यायों देखी जाती हैं—

कारण्ये तेऽप्ये अनियमिते, अर्ही शंका करनार व्यक्ति अपुं कडेवा भागे छे के जेम गुणना अक अंश, जे अंश आदि अनियमित डोवाथी तेमने पर्याय इप गणवामां आवे छे, जेज प्रभाण्ण कृष्णादि गुणो पणु अनियमित डोय छे, तेथी तेमने पणु गुणइप मानवाने षड्दे पर्याय इप ज मानवा लेधजे.

आ शंकातुं समाधान आ प्रभाण्ण करी शकाय—

पणुसामान्यना लेद इप जे कृष्णादि वणो छे, तेऽप्ये सामान्य रीते धणु समय सुधी द्रव्यनी साथे अवस्थित रडे छे (विद्यमान रडे छे) तेथी कृष्णादि वणुने द्रव्यना गुणइप मानवामां आवेल छे परन्तु पर्यायो अ रीते द्रव्यनी साथे दांभा समय सुधी रडेता नथी आ रीते अचिरस्थायी डोवाने कारण्ण तेमने द्रव्यना गुणइप मानवाते षड्दे द्रव्यनी पर्यायो इप मानवामां आवे छे.

शंका—आपे अर्ही पुद्गलास्तिकायना ज गुणो अने पर्यायोतुं प्रतिपादन कथुं छे. धर्मास्तिकाय आदिना गुणो अने पर्यायोतुं तो आपे कथन ज कथुं नथी पुद्गलास्तिकायनी जेम धर्मास्तिकाय आदिकेमां पणु गति हेतुत्व, स्थिति-हेतुत्व, अवगाहहेतुत्व, उपयोग अने वर्त्तनादि गुणोना अने अनन्त अगुरु लघु आदि पर्यायोना अर्ही शा कारण्ण उदलेण कराये नथी ?

पाद्यतया पुद्गलद्रव्यस्यैव गुणपर्याया उक्ताः, न तु शेषाणां धर्मास्तिकायादीनाम् । तस्माद् यत् किमपि नाम तेन सर्वेणापि द्रव्यनाम्ना गुणनाम्ना पर्यायनाम्ना वा भवितव्यम्, नातः परं किमपि नामास्ति । ततः सर्वस्यैवानेन संग्रहात् त्रिनामै- तदुच्यते इति ॥ सू० १४७ ॥

उत्तर-पुद्गल द्रव्य को गुण पर्याये हन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा गम्य होने से सुप्रतिपाद्य हैं इसलिये सूत्रकारने उसकी ही गुण और पर्याये यहाँ कही हैं शेष धर्मास्तिकायादिकों की नहीं । इसलिये जो भी कोई नाम है वह या तो द्रव्य का नाम होगा, या पर्याय का नाम होगा या गुण का नाम होगा । इससे आगे और कोई नाम नहीं होगा अतः समस्त नामों का इस त्रिनाम से संग्रह हो जाने से यह त्रिनाम कहलाता है ।

भावार्थ-सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा त्रिनाम की व्याख्या की है- उसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि तीन प्रकार का जो नाम है वह त्रिनाम है । नाम के तीन प्रकार द्रव्य गुण और पर्याय नाम हैं । जो भी नाम होगा वह या तो द्रव्य को लेकर होगा, या गुण को लेकर होगा या पर्याय को लेकर होगा । धर्मास्तिकाय आदि जो नाम हैं वे द्रव्याश्रित नाम हैं । अर्थात्-द्रव्यों के जो नाम हैं वे द्रव्य नाम हैं । गुणों के जो

उत्तर-पुद्गलद्रव्यनां गुणोऽने पर्यायो हन्द्रियप्रत्यक्ष द्वारा अनुभव्य शक्यत्वात् तेषां होवाथी तेषामुं प्रतिपादनं सरणतापूर्वकं करी शक्यं च परन्तु धर्मास्तिकायादिनां गुणु पर्यायिनो हन्द्रियप्रत्यक्ष द्वारा अनुभव करी शक्यो नथी तेथी न सूत्रकारे अही पुद्गल द्रव्यनां न गुणोऽने पर्यायिनो प्रतिपादनं कथुं च, आकीनां धर्मास्तिकाय आदिकोनां गुणोऽने पर्यायिनो प्रतिपादनं कथुं नथी तेथी न के कोर्ध पञ्च नाम हशे तं कां तो द्रव्यनुं नाम हशे, कां तो गुणुनुं नाम हशे कां तो पर्यायनुं नाम हशे तेनां करतां आगण भीनुं कोर्ध पञ्च नाम नही होय तेथी समस्त नामोनां आ त्रिनाम वडे अंशुं थर्ध नवाथी, तेषामे अही त्रिनाम इप कडेवामां आवेल च ।

भावार्थ-सूत्रकारे आ सूत्र द्वारा त्रिनामनुं निरूपणं कथुं च आ सूत्रमां तेषामे अे वात स्पष्ट करी च के त्रणु प्रकारनुं न नाम च ते त्रिनाम च । नामना त्रणु प्रकार नीचे प्रमाणे च-(१) द्रव्यनाम, (२) गुणनाम, अने (३) पर्यायनाम न के कोर्ध पञ्च नाम हशे कां तो द्रव्यने आधारे हशे, कां तो गुणुने आधारे हशे, कां तो पर्यायने आधारे हशे धर्मास्तिकाय आदि न नामो च तेषां द्रव्याश्रित नामो च अेटले के द्रव्येनां न नाम

नाम हैं वे गुणनाम हैं—इसलिये गुणनाम पांच प्रकार का कहा गया है। यद्यपि गुण रूप रसादि के भेद से चार प्रकार का होता है परन्तु संस्थान को भी पुद्गल द्रव्याश्रित सर्वदा होने के कारण गुणरूप मान लिया गया है इसलिये गुणनाम में पंचविधता कही गई है। पांच प्रकार के वर्णों का, दो प्रकार के गंधों का, पांच प्रकार के रसों का और आठ प्रकार के स्पर्शों का तथा पांच प्रकार के परिमंडल आदि आकारों का जो २ नाम है वह गुण नाम होकर भी भिन्न २ रूप से वर्णादि नाम है। इस प्रकार ये गुणनाम २५ प्रकार के होकर भी एक गुणनाम में ही अन्तर्भूत हैं। पर्याय नाम नियमित नहीं हैं।—क्योंकि पर्याये स्वयं अनेकविध हैं। रूप, रस, गंध आदि जितने भी गुण हैं उन सब में उनके एक दो तीन चार आदि संख्यान, असंख्यात अनंत अंश हैं एक कृष्ण गुण को ही ले लीजिये—कोई पदार्थ कम कृष्ण है, कोई उससे अधिक कृष्ण है और कोई उससे भी अधिक कृष्ण है। यह कृष्ण गुण की तरतमता उसके अंशों के ऊपर निर्भर है। कृष्ण गुण का सबसे कम जो एक

छे ते द्रव्यनाम छे. गुणानां जे नाम छे ते गुणनाम छे. ते गुणनाम पांच प्रकारना कहे छे जे के वर्ण, रस, गंध, अने स्पर्श इप चार गुण होय छे, परन्तु संस्थान (आकार)नो पणु पुद्गल द्रव्यमां सदा सदृभाव रहे छे, ते कारणे अही संस्थानने पणु गुण इप गणीने गुणनाममां पंचविधता प्रकट करवामां आवी छे. पांच प्रकारना वर्णानां, जे प्रकारना गंधानां, पांच प्रकारना रसानां, आठ प्रकारना स्पर्शानां अने पांच प्रकारना संस्थानानां (आकारानां) जे जे नामो छे ते गुणनाम होवा छतां पणु जुदां जुदां वर्णादि नाम इप छे. आ प्रकारे आ गुणनाम २५ प्रकारना होवा छतां पणु ओक गुणनाममां जे समाविष्ट थरु जय छे. पर्यायनाम नियमित नथी, कारणे के पर्याये अनेकविध होय छे इप, रस, गंध आदि जेटला गुणो छे तेमां वर्णादिना ओक, जे, त्रय, चार, आदिथी लधने १० पर्यन्तना अंशानो, संख्यात अंशानो, असंख्यात अंशानो अने अनेक अंशानो सदृभाव होथ शके छे. ओकला कृष्ण वर्ण इप गुणनो जे दाणवो लधजे कोरु पदार्थमां घणी ओधी काणश होय छे, कोरुमां अधिक काणश होय छे, कोरुमां अधिकतर काणश होय छे, ते कोरुमां अधिकतम काणश होय छे. आ कृष्ण गुणनी न्यूनधिकतानो आधार तेमां रहेली काणशना अंशो पर आधार राजे छे. कृष्ण गुणनो जे सौथी जघन्य (न्यूनमां न्यून) अंश छे ते ओक अंश इप

पुनःप्रकारान्तरेण त्रिनाम प्रोच्यते-

मूळम्-तं पुण णामं तिविहं, इत्थी पुरिसं णपुंसगं चव ।

एएसिं तिण्हंपि य, अंतंमि य परूवणं वोच्छं ॥१॥

तत्थ पुरिसस्स अंता, आई ऊओ हवंति चत्तारि ।

ते चव इत्थियाओ, हवंति ओकारपरिहीणा ॥२॥

अंश है वह कृष्ण गुण का जघन्य अंश है । यह कृष्ण गुणांश कृष्ण-गुण का पर्याय है । इस पर्यायवाला जो परमाणु आदि द्रव्य है वह कृष्ण गुण की एक अंश रूप पर्यायवाला होने से एक गुण कृष्णवाला-एक गुणकालक-परमाणु आदि इस नाम से कहा जाता है । इसी प्रकार से अन्य द्विगुण आदि कालक द्रव्य पर्याय नाम में जानना चाहिये । इसी प्रकार से अन्य गंधादि गुणों के एकादि अंशोपेत परमाणु आदि द्रव्यों के नाम के विषय में जानना चाहिये । यहां पर कृष्णादि गुणों की एक अंश दो अंश आदि पर्यायें कही हैं और इन पर्यायों के आश्रित एक गुण कालक परमाणु ऐसा जो नाम है वह पर्यायाश्रित नाम है । पर्यायाश्रित नाम में पर्याय की मुख्यता रहती है । गुण और पर्यायों में सहवर्तित्व और क्रमवर्तित्व अनियमितत्व-को लेकर भेद है । तात्पर्य यह है कि सहवर्ती गुण और क्रमवर्ती पर्यायें हैं । ॥सू०१४७॥

गणाय छे ते कृष्णु गुणुंश कृष्णु गुणुनी पर्याय इप गणाय छे. आ पर्याय-वाणुं ने परमाणु आदि द्रव्य डाय छे ते कृष्णु गुणुना ओक अंश इप पर्याय-वाणुं डोवाथी तेने ओक गुणु कृष्णुतावाणुं अथवा ओक गुणु कालक परमाणु आदि इप कडेवामा आवे छे. द्विगुणु आदि कालक द्रव्यपर्यायना विषयमां पणु ओण प्रकारनु स्पष्टीकरणु समणवुं ओण प्रमाणु अन्य गंधादि गुणुना ओक आदि अंशोवाणा परमाणु आदि द्रव्योना नाम विषेनुं कथन पणु समणवुं नेधओ.

अही कृष्णादि गुणुना ओक अंश, ओ अंश आदिने पर्यायि इप कडे-वामां आवेल छे. अने ते पर्यायिने आधारे ओक गुणु कालक परमाणु, आदि ने नामो आपवामां आव्यां छे, ते पर्यायाश्रित नामो छे पर्यायाश्रित नामना पर्यायनी प्रधानता रहे छे गुणु अने पर्यायमां सहवर्तित्व अने क्रमवर्तित्व (अनियमितत्व)नी अपेक्षाओ लेद डाय छे ओटदे के गुणु सहवर्ती डाय छे अने पर्याय क्रमवर्ती डाय छे. ॥सू०१४७॥

अंतिअ इंतिय उंतिय—अंताउ णपुंसकस्स वोद्धव्वा ।

एएसिं तिण्हंषिय, वोच्छामि निदंसणे एत्तो ॥३॥

आगारंतो राया, ईगारंतो गिरी य सिहरी य ।

ऊगारंतो विण्हू, दुमो य अंतो उ पुरिसाणं ॥४॥

आगारंता माला, ईगारंतो सिरी य लच्छी य ।

ऊंगारंता जंबू, बहू य अंता उ इत्थीणं ॥

अंकारंतं धन्नं, इंकारंतं नपुंसकं अत्थि ।

उंकारंतं पीलुं महुं च अंता णपुंसाणं॥से चंतिणामे॥सू.१४८॥

छाया—तत्पुनर्नाम त्रिविधम्, स्त्री पुरुषो नपुंसकं चैव ।

एतेषां त्रयाणामपि च, अन्ते च प्ररूपणां वक्ष्ये ॥

तत्र पुरुषस्य अन्ताः, आईऊओ भवन्ति चत्वारः ।

तएव स्त्रियाः, भवन्ति ओकारपरिहीनाः ॥

अं इति च इं इति च, उं इति च अन्तास्तु नपुंसकस्य बोधव्याः ।

एतेषां त्रयाणामपि, वक्ष्यामि निदर्शनमितः ॥

आकारान्तो 'राया' ईकारान्तो 'गिरी' च 'सिहरी' च ।

ऊकारान्तो 'विण्हू' 'दुमो' च अन्तस्तु पुरुषाणाम् ॥

आकारान्ता 'माला' ईकारान्ता 'सिरी' च 'लच्छी' च ।

ऊकारान्ता 'जंबू' 'बहू' च अन्यस्तु स्त्रीणाम् ॥

अंकारान्तं 'धन्नं' इंकारान्तं नपुंसकम् 'अत्थि' ।

उंकारान्तः 'पीलुं' 'महुं' च अन्तो नपुंसकानाम् ॥

तदेतत् त्रिनाम ॥सू० १४८॥

टीका—'तं पुण' इत्यादि—

द्रव्यसम्बन्धि तत्पुनर्नाम स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन त्रिविधं त्रिज्ञेयम् । एषां त्रयाणामपि च नाम्नाम् अन्ते यान्याकारादीन्यक्षराणि तद्द्वारा नाम्नः प्ररूपणां करि-

प्रकारान्तर से पुनः इसी त्रिनाम को सूत्रकार कहते हैं—

“तं पुण णामं तिविह” इत्यादि—

७वे सूत्रकार त्रिनामतुं णीण प्रकारे इथन उदे छे—

“ तं पुण णामं तिविह ” इत्यादि—

व्यामि ॥१॥ तत्र=त्रिविधनाम्नो मध्ये पुरुषस्य=पुल्लिङ्गनाम्नः अन्ताः=अन्त-
स्थिता वर्णा 'आई ऊओ' इति भवन्ति । तथा-स्त्रीलिङ्ग नाम्नः अन्तस्थिता वर्णा
ओकारवर्जिताः पूर्वोक्ता एव वर्णा बोध्याः । आकारान्ता ईकारान्ता ऊकारान्ताश्च
शब्दा स्त्रीलिङ्गा बोध्याः ॥२॥ तथा-नपुंसकशब्दानाम् 'अं' इति च 'इं' इति च
'उं' इति च अन्ता बोध्याः । अयं भावः-अंकारान्ता ईकारान्ता उंकारान्ताश्च शब्दा
नपुंसकलिङ्गे बोध्याः । इतोऽग्रे एतेषां त्रयाणामपि निदर्शनम्=उदाहरणं वक्ष्यामि=

शब्दार्थ—द्रव्य संबन्धी (तं पुण्णामं) वह नाम (तिविहं) तीन
प्रकारका है (इत्थी पुरिसं णपुंसगं चैव) स्त्रीनाम पुरुषनाम और नपुंसक
नाम । (एएसिं तिण्हं पि अंतमियपरुवणं वोच्छं) मैं इन तीनों भी नामों
की अन्त में आगत आकारादि अक्षरों द्वारा प्ररूपणा करूंगा । (तत्थ)
तीन प्रकार के नाम के बीच में (पुरिसस्स) पुल्लिङ्ग नाम के (अंतो)
अन्त में (आईउ ओ चत्तारि हवन्ति) आ ई ऊ, ओ, ये चार वर्ण होते हैं ।
(इत्थियाओ) स्त्रीलिङ्ग नाम के अन्त में (ओकार परिहीणा) ओकार वर्ण
से रहित ये पूर्वोक्त ही वर्ण (हवन्ति) होते हैं । अर्थात् आकारान्त,
ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्गवाले होते हैं । तथा (अन्ताः)
जिनके अन्त में (अंतिअ इंतिय उंतिय) अं, इं, उं ये वर्ण होते हैं वे
(णपुंसगस्स) शब्द नपुंसकलिङ्ग, के (बोद्धव्वा) जानना चाहिये । तात्पर्य
यह है कि प्राकृत भाषा में अं, इं, उं, अन्तवाले शब्द नपुंसकलिङ्ग,

शब्दार्थ—द्रव्य विषयक (तं पुण्णामं) ते नाम (तिविहं) त्रय प्रकारनुं
डोय छे जेम के (इत्थी पुरिसं णपुंसगं चैव) (१) स्त्रीनाम, (२) पुरुषनाम
(३) नपुंसकनाम (एएसिं तिण्हं पि अंतमियपरुवणं वोच्छं) डुवे आ त्रये
प्रकारनां नामेनी तेमना अंत्याक्षरे द्वारा प्ररूपणा करवामां आवे छे अेटवे
के स्त्रीलिङ्ग, आदिनां नामेने अन्ते कथा कथा अक्षरे आवे छे, ते प्रकट
करवामां आवे छे—(तत्थ पुरिसस्स अंता आ, ई, ऊ, ओ चत्तारि हवन्ति) पुरु-
षनामे (पुलिङ्गनामे, नरजतिनां नामे) ने अन्ते आ, ध, ङ के ओ, आ
आरमांने केध पणु वणु (अक्षर) डोय छे. (इत्थियाओ ओकारपरिहीणा)
स्त्रीनामे (नारी जतिनां नामे) ने अन्ते 'ओ' सिवायना पूर्वोक्त-वर्णो
अेटवे के आ, ई के ऊ (हवन्ति) डोय छे अेटवे के आकारान्त, ईकारान्त अने
ऊकारान्त शब्दो नारी जतिनां (स्त्रीलिङ्ग) डोय छे, तथा (अन्ताः) जे शब्दने
अन्ते (अंतिअ इंतिय उंतिय) अं, इं के उं डोय छे, ते शब्दोने (णपुंस-
गस्स) नपुंसक लिङ्गना (नान्येतर जतिना) (बोद्धव्वा) समजवा आ कथनुं
तात्पर्य अे छे के प्राकृत भाषांमां अं, धं अने उं अन्तवाणा पदोने नपुं-

कथयिष्यामि ॥३॥ अथ पुँल्लिङ्गशब्दोदाहरणमाह—‘राया’ इति आकारान्तः शब्दो बोध्यः । ‘गिरी’ ‘सिहरी’ च शब्दौ ईकारान्तौ, । ‘विण्हु’ इति ऊकारान्तः ‘दुमो’ इति ओकारान्तः । एते पुँल्लिङ्गशब्दाः ॥४॥ अथ स्त्रीलिङ्गशब्दोदाहरणान्याह—‘माला’ इति आकारान्तः शब्दः । ‘सिरीलच्छी’ शब्दौ ईकारान्तौ । ‘जंबू बहू’ शब्दौ च ऊकारान्तौ । आकारान्ता ईकारान्ता ऊकारान्ताश्च मालादयः शब्दाः स्त्रीलिङ्गा बोध्याः ॥५॥ अथ नपुंसकलिङ्गशब्दोदाहरणान्याह—‘अंकारं तं धन्नं’

माने गये हैं । (एतेसिं तिण्हंपि य एतो णिदंसणे वोच्छामि) अब मैं यहां से आगे इन तीनों के उदाहरण कहता हूँ—(आगारंतो राया, ईगारंतो गिरी, य सिहरी य, ऊगारंतो विण्हू दुमो य अंतो उ पुरिसाणं) “राया” यह पुल्लिङ्गके आकारान्त शब्द का उदाहरण है “गिरी” एवं “सिहरी” ये दो शब्द पुल्लिङ्ग, के ईकारान्त शब्द के उदाहरण हैं । “विण्हू” यह पुल्लिङ्ग के ओकारान्त शब्द का उदाहरण है । और “दुमो” यह पुल्लिङ्गके ऊकारान्त शब्द का उदाहरण है । (इत्थीण) स्त्रीलिङ्ग शब्द के उदाहरण ये हैं—(आगारंता माला) आकारान्त “माला” शब्द (ईगारंता) ईकारान्त (सिरी य लच्छी य) “सिरी” और “लच्छी” ये दो शब्द (ऊगारंता जंबू बहूय) ओकारान्त “जंबू” और “बहू” ये दो शब्द । इस प्रकार आकारान्त, ईकारान्त और ऊकारान्त मालादिकशब्द स्त्रीलिङ्ग जानना चाहिये । अब सूत्रकार नपुंसकलिङ्ग शब्दों के उदाहरण

सकल्लिङ्गना नामो गणुवामां आवे छे. (एतेसि तिण्हंपि य एतो णिदंसणे वोच्छामि) डवे आ त्रणे लिङ्गना पढेना उदाहरणे आपवामां आवे छे—(आगारंतो राया, ईगारंतो गिरी, य सिहरी य, ऊगारंतो विण्हू, ओगारंतो दुमो, अतो उ पुरिसाणं) पुद्विङ्गना आकारान्त पढनुं उदाहरणु “ राया ” (राज), छे. “ गिरी ” (गिरि) अने “ सिहरी ” (शिअरी) आ ये पढे धकारान्त नरनतिनां पढे छे. “ विण्हू (विण्णु) ” आ पढे उकारान्त नरनतिनुं पढे छे. “ दुमो (वृक्ष, दुम) ” आ प्राकृत पढे ओकारान्त नरनतिनुं पढे छे. (इत्थीण) स्त्रीलिङ्ग (नारीनतिनां) पढेना नीचे प्रभाणे उदाहरणु छे—(आगारंता माला) “ माला ” आ पढे आकारान्त नारीनतिनुं छे, (ईगारंता सिरी य लच्छी य “ सिरी ” अने “ लच्छी ” आ ये प्राकृत पढे धकारान्त-नारी नतिनां पढे छे, (ऊगारंता जंबू, बहूय) “ जंबू ” अने “ बहू ” आ ये पढे उकारान्त नारीनतिनां पढे छे. आ प्रकारे आकारान्त, धकारान्त अने उकारान्त माला आदि पढेने स्त्रीलिङ्ग समजवा नेधंछे डवे सूत्रकार नपुंसक

अंकारान्तः शब्दः 'धन्नं' इति विज्ञेयः । 'अत्थि' इति शब्द इंकारान्तो बोध्यः । 'पीलुं महुं' चेति शब्द द्वयं उंकारान्तं बोध्यम् । एते अंकारान्तादयः शब्दा नपुंसकलिङ्गा बोध्याः । लिङ्गत्रये य एते शब्दा उक्तास्ते सविभक्तिकाः प्राकृतशब्दा विज्ञेयाः प्रकृतमुपसंहरन्नाह—तदेतत् त्रिनामेति ॥सू० १४८॥

कहते हैं—(अंकारान्तं धन्नं) अंकारान्त शब्द "धन्नं" हैं । (इंकारान्तं नपुंसगं अत्थि) इंकारान्त शब्द "अत्थि" है (उंकारान्तं पीलुं महुं च) और उंकारान्त "पीलुं" "महुं" हैं ये अंकारान्तादि शब्द (अन्ता) कि जिनके अन्त में "अं" "इं" "उं" ये बर्ण हैं वे (नपुंसगाणां) नपुंसकलिङ्ग हैं । तीनों लिङ्गों में जो ये उदाहरण कहे गये हैं वे विभक्तियुक्त प्राकृत शब्द हैं । (से तं तिणामे) इस प्रकार यह त्रिनाम है ।

भावार्थ—प्राकृत भाषा में तीन लिङ्ग हैं । उनमें जिन शब्दों के अन्त में "आ ई ऊ ओ" ये चार वर्ण हों वे पुल्लिङ्ग हैं—जैसे "राया" यह शब्द "संस्कृत में "राया" की छाया "राजन्" है । और यह वहां हलन्तपुल्लिङ्ग में नकारान्त शब्द है । "गिरी और सिहरी" ये दो शब्द इकारान्तपुल्लिङ्ग के उदाहरण हैं । संस्कृत में इन की छाया "गिरि"

दिङ्गना (नान्यतर ङतिनां) पदोना उदाहरणो आपे छे—(अंकारान्तं धन्नं) "धन्नं" आ प्राकृत पद अंकारान्त नपुंसक दिङ्गनुं पद छे (इंकारान्तं नपुंसगं अत्थि) "अत्थि" आ प्राकृत पद इंकारान्त नपुंसक दिङ्गनुं पद छे । (उंकारान्तं पीलुं महुं च) "पीलुं" अने "महुं" आ पदो उंकारान्त नपुंसक दिङ्गना पदो छे । जे शब्दोने अन्ते "अं, ईं, ऊं उं" छे ते पदो (नपुंसगाणां) नपुंसकदिङ्गना होय छे, आ वात तो पडैलां प्रकट करवाभां आवी युकी छे । त्रणे दिङ्गोनां (ङतिना) आ जे पदोना उदाहरणो आपवाभां आव्या छे, ते विलक्षितयुक्त प्राकृत शब्दो छे । (से तं तिणामे) आ प्रकारनुं त्रिनामनुं स्वइय समञ्जुं ।

भावार्थ—प्राकृत भाषाभां उपयुक्त त्रणु दिङ्ग होय छे । जे शब्दोने अन्ते "आ, ई, ऊ के ओ" आ चार वर्णुंभांनो केछि पणु वर्णुं होय छे ते पदो पुद्विङ्ग होय छे जेभ के आकारान्त "राया" पद आ शब्दनी संस्कृत छाया "राजन्," थाय छे तेने गुजरातीभां "राज" कुडे छे । आ शब्द आकारान्त पुद्विङ्गनुं उदाहरणु छे । "गिरी" अने "सिहरी" आ जे पदो ईकारान्त पुद्विङ्गना उदाहरणो इपे अही वपरायां छे । "गिरी" आ प्राकृत पदनी संस्कृत छाया "गिरी" थाय छे, "सिहरी" आ पदनी

और “शिखरी” ऐसी होती है—गिरि शब्द वहाँ अजन्त पुल्लिङ्ग और शिखरिन् शब्द हलन्तपुल्लिङ्ग है। “विण्हु” यह शब्द उकारान्त पुल्लिङ्ग का है। इसकी संस्कृत छाया “विष्णु” ऐसी है। विष्णु शब्द यहाँ अजन्त पुल्लिङ्ग है। “द्रुमो” यह शब्द ओकारान्त पुल्लिङ्ग का है। इसकी छाया “द्रुमः” ऐसी है। यह शब्द वहाँ अकारान्त पुल्लिङ्ग है। स्त्रीलिङ्ग में प्राकृत आकारान्त माला शब्द है। संस्कृत छाया इसकी माला ही है। संस्कृत में भी यह शब्द अजन्त स्त्रीलिङ्ग ही है। प्राकृत भाषा में ओकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं माना जाता है। जैसे देवो आदि शब्द। ओकारान्त शब्द सब ही पुल्लिङ्ग है। लच्छी सिरी—कि जिनकी संस्कृत छाया लक्ष्मीः और श्री ऐसी होती है दोनों शब्द ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग हैं। उकारान्त जंबू बहू शब्द प्राकृत में स्त्रीलिङ्ग हैं। संस्कृत में भी ये दोनों स्त्रीलिङ्ग में हैं। प्राकृत भाषा में नपुंसकलिङ्ग की निशानी अं इं उं है। जिनके अन्त में ये अं इं उं होते हैं वे नपुंसकलिङ्ग माने जाते हैं। जैसे अत्थि=अस्थि, महुं=मधु पीलुं=पीलु। इस प्रकार

संस्कृत छाया “शिखरी” थाय छे, गुजरातीमां तेने अर्थ पर्वत थाय छे “विण्हु” आ पद उकारान्त पुल्लिङ्गना उदाहरणु इप छे. तेनी संस्कृत छाया “विष्णु” थाय छे. “द्रुमो” आ पद ओकारान्त पुल्लिङ्गना उदाहरणु इप छे. तेनी संस्कृत छाया “द्रुमः” थाय छे तेने गुजरातीमां “वृक्ष” कडे छे संस्कृतमां ‘द्रुम’ पद अकारान्तपुल्लिङ्ग छे. आकारान्त स्त्रीलिङ्ग पदतु उदाहरणु “माला” पद छे. तेनी संस्कृत छाया पणु ‘माला’ न थाय छे संस्कृतमां पणु आ शब्द आकारान्त स्त्रीलिङ्ग न छे प्राकृतमां ओकारान्त शब्दने स्त्रीलिङ्गवाणे गणुवाभां आवतो नथी जेम के “देवो” मधां ओकारान्त पदो पुल्लिङ्ग न डोय छे “सिरी अने लच्छी” आ अन्ने पदो उकारान्त स्त्रीलिङ्गनां उदाहरणु छे तेमनी संस्कृत छाया अनुक्रमे “श्री” अने “लक्ष्मी” छे. संस्कृतमां पणु आ अन्ने पदो स्त्रीलिङ्गनां न पदो छे. उकारान्त “जंबू” अने “बहू” आ अन्ने प्राकृतमां स्त्रीलिङ्गना शब्दो छे संस्कृत भाषामां पणु आ अन्ने शब्दो स्त्रीलिङ्ग न छे. जे शब्दोना अन्त्याक्षरो “अं” “इं” “उं” डोय छे, ते शब्दो नपुंसकलिङ्गना डोय छे जेम के “अत्थि” आ पद इंकारान्त, “महुं” पद उंकारान्त अने “पीलुं” आ पद उंकारान्त अने ‘घनं’ आ पद अंकारान्त नपुंसकलिङ्गना पदो छे संस्कृतमां तेमना अर्थना वाग्रक अनुक्रमे “मधु”, ‘पीलु’

अथ चतुर्नाम निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं चउणामे? चउणामे चउव्विहे पणत्ते,
तं जहा—आगमेणं लोवेणं पयईए विगारेणं । से किं तं आगमेणं?
आगमेणं वंकं, वयंसे, अइमुत्तए । से तं आगमेणं । से किं तं
लोवेणं? लोवेणं ते एत्थ=तेऽत्थ, पडो एत्थ=पडोऽत्थ, घडो
एत्थ=घडोऽत्थ । से तं लोवेणं । से किं तं पगईए? पगईए—
होइ इह गड्डे आवडंती, आलिक्खामो एण्हि, अहो अच्छरियं ।
से तं पगईए । से किं तं विगारेणं? विगारेणं—दंडस्स अग्गं=
दंडग्गं, सा आगया=साऽऽगया, दहि इणं=दहीणं, नईइह=नईह,
महु उदगं=महूदगं वहु ऊहो=वहूहो । से तं विगारेणं । से तं
चउणामे ॥सू० १४९॥

छाया—अथ किं तच्चतुर्नाम? चतुर्नाम चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आगमेन,
लोपेन, प्रकृत्या, विकारेण । अथ किं तदागमेन? आगमेन—वक्रम्, वयस्यः,
अतिप्रुक्तकः । तदेतदागमेन । अथ किं तद् लोपेन? लोपेन—ते अत्र=तेऽत्र, पटो
अत्र=पटोऽत्र, घटो अत्र=घटोऽत्र । तदेतद् लोपेन । अथ किं तत् प्रकृत्या?
प्रकृत्या—भवति—इह, गर्त्ते आपतन्ती आलेक्ष्याम इदानीम्, अहो आश्चर्यम् तदेतत्
प्रकृत्या । अथ किं तद् विकारेण विकारेण दण्डस्य अग्रम्=दण्डाग्रम्, सा आगता=
साऽऽगता, दधि इदम्=दधीदम्, नदी इह=नदीह, मधु उदकम्=मधूदकम्, वधू
ऊहः=वधूहः । तदेतद् विकारेण । तदेतच्चतुर्नाम ॥सू० १४९॥

स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग संबन्धी शब्दों से निष्पन्न स्त्रीनाम-
पुलिङ्ग नाम और नपुंसक नाम हैं । इस प्रकार लिङ्गानुसार यह त्रिनाम
स्वरूप है ॥सू० १४८॥

अने “ वन ” छे आ प्रकारनां स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग अने नपुंसकलिङ्गना
शब्दोभांथी अनतां नामेने अनुक्रमे स्त्रीनाम, पुलिङ्गनाम अने नपुंसकनाम कडे
छे. लिङ्ग (वति) अनुस्मार त्रिनामनुं आ प्रकारनुं स्वइय समञ्जसुं. ॥सू० १४८॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति—अथ किं तच्चतुर्नाम ? इति उत्तरयति—चतुर्नाम—चतुष्प्रकारकं नाम—चतुर्नाम, तद्धि चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् । चतुर्विधत्वमेवाह—आगमेन, लोपेन, प्रकृत्या, विकारेण चेति । आगमेनेत्यादिषु सर्वत्र ‘निष्पन्न’—मित्यध्याहार्यम् । तत्र—आगमेन निष्पन्नम्—‘वंकं, वयसे, अइमुंतए’ वक्रं, वयस्यः, अतिमुक्तकः, अत्र प्राकृते आगमरूपोऽनुस्वारः, “वक्रादावन्तः” (८।१।२६) तथा लोपेन निष्पन्नं नाम—‘ते

अब सूत्रकार चार प्रकार के नाम की प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं चउणामे” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं चउणामे) हे भदन्त ! वह चतुर्नाम क्या है ।

उत्तर—(चउणामे चउव्विहे पणत्ते) चतुर्नाम—चार प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है । (तं जहा) जैसे (आगमेण, लोवेणं पयईए, विगारेणं) एक आगम निष्पन्न नाम, दूसरा लोपनिष्पन्न नाम तीसरा प्रकृत निष्पन्न नाम और चौथा विकार निष्पन्न नाम । (से किं तं आगमेणं) हे भदन्त ! आगम निष्पन्न नाम क्या है ?

उत्तर—(आगमेणं वंकं वयसे, अइमुंतए) आगमनिष्पन्न नाम वक्र वयस्य और अतिमुक्तक हैं । (से तं आगमेणं) इस प्रकार ये सब आगम से निष्पन्न नाम हैं । (से किं तं लोवेणं) हे भदन्त ! लोप निष्पन्न नाम क्या है ?

इसे सूत्रकार चतुर्नामनी प्ररूपणा करे छे—

“से किं तं चउणामे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं चउणामे) हे भदन्त ! नामना चोथालेह इय चतुर्नामनुं स्वइय डेवुं छे ?

उत्तर—(चउणामे चउव्विहे पणत्ते) चतुर्नाम चार प्रकारनुं कहुं छे— (तं जहा) ते चार प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(आगमेण, लोवेणं, पयईए, विगारेणं) (१) आगमनिष्पन्न नाम, (२) लोपनिष्पन्न नाम, (३) प्रकृतिनिष्पन्न नाम (४) विकारनिष्पन्न नाम.

प्रश्न—(से किं तं आगमेणं) हे भदन्त ! आगमनिष्पन्न नाम कौने कहे छे ?
उत्तर—(आगमेणं वंकं, वयसे, अइ मुंतए) वक्र, वयस्य अने अतिमुक्तक, आ पद्दे आगमनिष्पन्न नामो छे. (से तं आगमेणं) चार प्रकारनां आगमनिष्पन्न नामो डोय छे

प्रश्न—(से किं तं लोवेणं) हे भदन्त ! लोपनिष्पन्न नाम कौने कहे छे ?

एत्थ तेत्थ, पडो एत्थ पडोत्थ' ते अत्र=तेऽत्र, पटो अत्र=पटोऽत्र इत्यादि, अत्र प्राकृतप्रयोगे 'एत्थ' इत्यस्य एकारस्य लोपः "त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक्" (८।१।४०) । तथा-प्रकृत्या निष्पन्नं नाम- 'गद्दे-आवडंती, आलेखामो-एणिह, होइ-इह' गर्त्ते आपतन्ती, आलेक्ष्याम इदानीम्, भवति-इह, इत्यादि । अत्र "एदोतोःस्वरे" (८।१।७) "त्यादेः" (८।१।९) एतत्सूत्रानुसारेण प्राकृते प्रकृति-भावो भवति । तथा-विकारेण निष्पन्नं नाम- 'दंडस्स अग्गं दंडग्गं, सा आगया-

उत्तर—(लोवेणं) लोप निष्पन्न नाम इस प्रकार से हैं—(ते एत्थ=तेऽत्थ, पडो एत्थ=पडोऽत्थ, घडो एत्थ=घडोऽत्थ) ते अत्र=तेऽत्र पटो अत्र=पटोऽत्र घटो अत्र=घटोऽत्र (से तं लोवेणं) इस प्रकार ये लोपसे निष्पन्न नाम हैं। (से किं तं पगईए?) हे भदन्त! प्रकृति भाव से निष्पन्न नाम क्या है? (पगईए) प्रकृति भाव से निष्पन्न नाम इस प्रकार से है (होइ इह, गद्दे आवडंती आलिखामो एणिह अहो अच्छरियं) भवति इह गर्त्ते आपतन्ती, आलेक्ष्याम इदानीम्, अहो आश्चर्यम् (से तं पगईए) इस प्रकार ये प्रयोग प्रकृति भाव से निष्पन्न नाम हैं। (से किं तं विगारेणं) हे भदन्त! विकार से निष्पन्न नाम क्या है?

उत्तर—(विगारेणं) विकार से निष्पन्न नाम इस प्रकार से है—(दंडस्स+अग्गं=दंडग्गं, सा+आगया=साऽऽगया, दहि+इणं=दहीणं, नई+

ઉત્તર—(લોવેણં) લોપનિષ્પન્ન નામ આ પ્રકારના હોય છે—(તે એત્થ=તેઽત્થ, પડો એત્થ=પડોઽત્થ, ઘડો એત્થ=ઘડોઽત્થ) તેઅત્ર=તેઽત્ર(તેત્ર, તે અને ત્ર વચ્ચે 'ડ' આર્ધુ જે નિશાન છે તેને અવગ્રહચિહ્ન કહે છે. આ પ્રકારનું નિશાન પછીના પદના 'અ' નો લોપ થયો છે એમ સૂચવે છે) પટોઅત્ર=પટોઽત્ર, અને ઘટોઅત્ર=ઘટોઽત્ર (આ પદોમાં અત્રના અનો લોપ થવાથી અવગ્રહચિહ્ન મૂકવામાં આવ્યાં છે. (સે તં લોવેણં) આ પ્રકારે લોપથી નિષ્પન્ન જે નામો હોય છે તેમને લોપનિષ્પન્ન નામો કહે છે.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં પગઈએ?) હે ભગવન્! પ્રકૃતિલાવથી નિષ્પન્ન નામ કેવું હોય છે?

ઉત્તર—(પગઈએ) પ્રકૃતિલાવથી નિષ્પન્ન નામ આ પ્રકારનું હોય છે—(હોइ इह, गद्दे आवडंती, आलिखामो एणिह, अहो अच्छरियं) ભવતિ ઇહ, ગર્ત્તે આપતન્તી, આલેક્ષ્યામ ઇદાનીમ્, અહો આશ્ચર્યમ્ (સે તં પગઈએ), આ પ્રકારના આ પ્રયોગો પ્રકૃતિલાવનિષ્પન્ન નામના ઉદાહરણો પૂરાં પાડે છે.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં વિગારેણં) હે ભગવન્! વિકારનિષ્પન્ન નામ કેવું હોય છે?

ઉત્તર—(વિગારેણં) વિકારનિષ્પન્ન નામ આ પ્રકારનું હોય છે—(દંડસ્સx

सागया' दण्डस्य—अग्र दण्डाग्रम्, सा—आगता साऽऽगता' इत्यादि बोध्यम् । विकारी हि वर्णस्य स्थाने वर्णान्तरापादनरूप । नामत्वंचात्र तेन तेन रूपेण नमनात्= परिणमनाद् बोध्यम् । लोके हि यावन्तः शब्दास्ते आगमाद्यन्यतमनिष्पन्ना एव सन्ति । ये च डित्थ डवित्थादयः कैश्चिदव्युत्पन्नत्वेनाभिमतास्तेऽपि शाकटायनमते व्युत्पन्ना एव । उक्तं च—

“नाम च धातुजमाह निरुक्ते, व्याकरणे शरुटस्यच स्तोकम् (अपत्यम्) ।

यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं, प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्” ॥इति॥

इत्थं च सर्वेषां शब्दानामागमादिभिश्चतुर्भिः संग्रहादिदमागमादिकं चतुर्नामेत्युच्यते । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—तदेतच्चतुर्नामेति ॥सू० १४९॥

इह=नर्इह महु+उदगं+महूदगं, बहू+ऊहो=बहूहो । दण्ड+अग्र=दण्डाग्र सा+आगता=सागता दधि+इदं=इधीदं नदी+इह=नदीह, मधु+उदक=मधूदक, वधू+ऊह वधूहः (से तं विगारेणं) इत्य प्रकार के ये शब्द विकार निष्पन्न नाम हैं । (से तं चउणामे) ये पूर्वोक्त चतुर्नाम हैं ।

भावार्थ—आगम निष्पन्न, लोप निष्पन्न, प्रकृति निष्पन्न और विकार निष्पन्न इस प्रकार से चतुर्नाम चार प्रकार के होते हैं । आगम रूप अनुस्वार से जो शब्द निष्पन्न होते हैं वे आगम निष्पन्न चतुर्नाम हैं+जैसे प्राकृत भाषा में वंकं, वयंसे, अई सुंतए ये शब्द हैं । “वक्रादावन्तः” इस सूत्र से प्राकृत भाषा में वक्रादि शब्दों में आगमरूप अनुस्वार होता है । “वंकं” शब्दकी संस्कृत छाया “वक्रम्” है । वयंसे “शब्द की

अगं=दंडगं, सा+आगया=साऽऽगया, दहि+इणं=इहीणं, नर्इ×इह=नर्इह, महु×उदगं=महूदगं, बहू×ऊहो=बहूहो) ढंड+अग्र=दंडाग्र, सा+आगता=सागता, दधि×इदं=इधीदं, नदी×इह=नदीह, मधु+उदक=मधूदक, वधू×ऊह=वधूहः (से तं विगारेणं) आ अथां शब्दो विकारनिष्पन्न नामो छे. (से तं चउणामे) आ अथां नामो पूर्वोक्त चतुर्नाम इय गणाय छे.

लावार्थ—चतुर्नामना चार प्रकार छे—आगमनिष्पन्न, लोपनिष्पन्न, प्रकृतिनिष्पन्न, अने विकारनिष्पन्न आगम इय अनुस्वार वडे ले ले शब्दो अने तेमने आगमनिष्पन्न चतुर्नाम इय समजवा लेम के प्राकृत लाषाना “वंकं, वयंसे अने अइसुतए” आ शब्दो आगमनिष्पन्न चतुर्नामो छे. “वक्रादावन्तः” आ सूत्र ओ वात प्रकट करे छे के प्राकृत लाषामां वक्रादि शब्दोमां आगम इय अनुस्वार डोय छे. “वंकं” आ प्राकृत शब्दनी संस्कृत छाया “वक्रम्” छे. “वयंसे” आ प्राकृत पदनी संस्कृत छाया

संस्कृत छाया" वयस्यः" है। "अइमुंतए की जगह पर अइमुत्तए भी रूप होते हैं। परन्तु वंकं आदि जो ये नाम-प्रतिपादिक संज्ञक शब्द हैं वे आगम निष्पन्न नाम हैं अर्थात् अनुस्वार के आगम से बने हुए नाम हैं। ते+एत्थ, पडो+एत्थ, इन प्राकृत प्रयोगों में "एत्थ" शब्द के एकार का लोप "त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लृक्" इसे सूत्र से होता है। इसलिये "तेत्थ पडोत्थ" ये लोप निष्पन्न नाम हैं। "गड्डे आवडंती, आलेक्खमो ऐहि होइ इह" इन प्रकृतिभाव निष्पन्न नामों में "एदेतोः स्वरे त्यादेः इन सूत्रों के अनुसार प्राकृत भाषा में प्रकृतिभाव होता है। जो प्रयोग जैसे हैं उनका वैसा ही रूप रहना इसका नाम प्रकृति भाव है। प्रकृति भाव में मूल रूप में कोई विकार नहीं होता है। गर्त्ते+आपतन्ती यहां पर संस्कृत व्याकरण के अनुसार ए के स्थान में अच् होना चाहिये, आलेक्ष्याम+इदानीम् यहाँ पर "आद्गुण" से ए गुण होना चाहिये, भवति+इह यहाँ पर अकः सवर्णे दीर्घः" से दीर्घ होना चाहिये-परन्तु प्रकृति भाव होने पर इन नामों में कोई भी संधिरूप विकार नहीं हुआ है।

"वयस्यः" छे. "अइमुंतए" आ प्राकृत पदनी संस्कृत छाया "अतिमुक्तकः" छे. "वंकं" आ पदनी जग्याये "वत्कं," "वयसे" आ पदनी जग्याये "वयसे" अने "अइमुंतए" आ पदनी जग्याये "अइमुत्तए" आ इपोनो पणु प्रयोग थाय छे. परन्तु वंकं आदि उपर्युक्त नामो-प्रतिपादन करनारा उदाहरणु इय शब्दो-आगमनिष्पन्न नामो छे, कारणु के आ नामो अनुस्वारना आगमथी भनेलां छे. "त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लृक्" आ सूत्रमां षतावेला नियम अनुसार "ते+एत्थ" अने "पडो+एत्थ" आ प्राकृत पदोमां "एत्थ" पदना "ए" नो लोप थवाथी "तेत्थ" अने "पडोत्थ", आ लोपनिष्पन्न नामो अन्यां छे. "एदेतोः स्वरे त्यादेः" आ सूत्रमां षतावेला नियम प्रमाणु "गड्डे आवडंती" अने "आलेक्खमो ऐहि, होइ इह" आ प्रकृतिभाव निष्पन्न नामोमां प्रकृतिभावनो सहलाव रडे छे प्रकृतिभावमां भूणइपमां केअ पणु प्रकारनो विकार थतो नथी परन्तु जे प्रयोग जेवा स्वइपे डोय जेवां ज स्वइपे रडे छे. "गर्त्ते+आपतन्ती" आ जे पदोनी सन्धि थतां संस्कृत व्याकरणना नियम प्रमाणु "ए" नो 'अच्' थवो लेअं, अने "आलेक्ष्याम+इदानीम्" आ पदोनी सन्धि करतां अ+इ=ए आ नियम अनुसार "आलेक्ष्यामेदानीम्" थवु लेअं, "भवति+इह" आ पदोमां इ+इ=ई थवाथी 'भवतीह' थवु लेअं; परन्तु आ पदो प्रकृतिभाव निष्पन्न नामो डोवाथी, ते नामोमां केअ पणु प्रकारनो सन्धि इय विकार थयो नथी.

अथ पञ्चनाम निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं पञ्चनामे? पञ्चनामे—पञ्चविहे पणत्ते, तं
जहा—नाभियं जेवाइयं अक्खाइयं ओवस्सहिगयं मिसं। आसे

दण्ड+अग्गं दण्ड+अग्रम् सा आगया, दहि+इणं, नई+ईह महु+उदगं, बहू+ऊहो, इन विकार निष्पन्न नामों में सर्वत्र दीर्घरूप विकार हुआ है। वर्ण के स्थान में दूसरे वर्ण का होना इसका नाम विकार है तथा उस उस रूप से परिणमन होना इसका नाम नाम है। विकार होने पर इनका “दंडगं साऽऽगया, दहीणं, नईह महुदगं, बहूहो” ऐसा रूप हो जाता है। लोक में जितने भी शब्द हैं वे आगम आदि किसी एक से निष्पन्न हुए ही होते हैं। तथा “डित्थ डवित्थ आदि जो शब्द अव्युत्पन्न किन्हीं के द्वारा माने हुए हैं वे भी शाकटायन के मत में व्युत्पन्न ही माने गये हैं। उक्तं च—नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्। यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं, प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्” इस प्रकार समस्त शब्दों का इन आगमादि चारों से संग्रह हो जाता है इसलिये आगमादिक चतुर्नाम कहे जाते हैं ॥सू० १४९॥

“दंड+अग्गं सा+आगया दहि+इणं, नई+ईह, महु+उदगं, अने बहू+ऊहो”
आ अधां पद्दोभां सन्धि इप विकार यधने “दंडाग्रम्, सागया, दहीणं,
नईह, महुदगं, बहूहो” धत्यादि विकारनिष्पन्न नामो अन्यां छे. डोधं ओक
वर्णुने स्थाने भीम वर्णुने प्रयोग यथे तेनुं नाम विकार छे. जे नामोभां
आ प्रकारनुं परिणमन यथुं डोय छे, ते नामोने विकारनिष्पन्न नामो कहे
छे. “दंड+अग्गं” आदि उपयुक्त पद्दोभां सन्धिने डारणे विकार यधं जवाधी
“दण्डाग्र, साऽऽगया, दहीणं, नईह, महुदगं बहूहो आ प्रकारनां इपे अनि
गयां छे. लोउभां जेटलां शब्दो छे, तेओ आगम आदि पूर्वोक्त चार
प्रकारोभांना डोधं ओक प्रकारे निष्पन्न यथेलां डोय छे. तथा ‘डित्थ डवित्थ’
आदि जे शब्दोने डोधं डोधं डोके द्वारा अव्युत्पन्न मानवामां आवे छे,
परन्तु शाकटायनना मत अनुसार तेमने पणु व्युत्पन्न ज मानवामां आवेल
छे. कहुं पणु छे डे—“नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च
तोकम् यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं, प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्” आ प्रकारे
समस्त पद्दोभो आ आगम आदि चारेभां समावेश यधं जय छे. तेधी आगमादि
इप चतुर्नाम इपे अही तेमने प्रतिपादित करवामां आवेल छे. ॥सू० १४९॥

त्ति नामियं, खलु त्ति नेवाइयं, धावइत्ति अक्खाइयं, परित्ति ओवसग्गियं, संजए त्ति मिस्सं। से तं पंचनाम ॥सू० १५०॥

छाया—अयं किं तत् पञ्चनाम? पञ्चनाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-नामिकं, नैपातिकम्, आख्यातिकम्, औपसर्गिकं, मिश्रम्। अश्व इति नामिकम्। 'खलु' इति नैपातिकम्। 'धावति' इति आख्यातिकम्। 'परि' इति औपसर्गिकम्। संयत इति मिश्रम्। तदेतत् पञ्चनाम ॥सू० १५०॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति—अथ किं तत् पञ्चनाम? इति। उत्तरयति—पञ्चनाम—पञ्च-प्रकारकं नाम—पञ्चनाम, तद्धि पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्। पञ्चविधत्वमेवाह—नामिकमित्यादि। तत्र—अश्व इति नामिकम्—वस्तुवाचकत्वात्। 'खलु' इति नैपातिकम्—निपातेषु पठितत्वात्। धावतीति आख्यातिकं क्रियाप्रधानत्वात्। 'परि' इति

अथ सूत्रकार पञ्चनाम का निरूपण करते हैं—

“से किं तं पंचनामे” इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं पंचनामे?) हे भदन्त! पंचनाम क्या है?

उत्तर—(पंचनामे पंचविहे पणत्ते) पंच नाम पांच प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। (तं जहा) उस के पांच प्रकार ये हैं—(नामियं, नेवाइयं, अक्खाइयं, ओवसग्गियं मिस्सं) नामिक नैपातिक, आख्यातिक, औपसर्गिक, और मिश्र। वस्तु का वाचक होने से (आसेत्ति नामियं)—अश्व यह शब्द नामिक है। (खलुत्ति नेवाइयं) खलु शब्द निपातों में पठित होने के कारण नैपातिक है। क्रियाप्रधान होने से (धावइत्ति अक्खाइयं) धावति” यह तिङ्गन्त पद आख्यातिक है। (परित्ति ओवसग्गियं) परि

इये सूत्रकर पंचनामनुं निरूपर करे छे—

“से किं तं पंचनामे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं पंचनामे?) हे भगवन्! पंचनाम केने कडे छे?

उत्तर—(पंचनामे पंचविहे पणत्ते) पंचनाम पांच प्रकारना कइया छे। (तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(नामियं, नेवाइयं, ओवसग्गियं, मिस्सं)

(१) नामिक, (२) नैपातिक, (३) आख्यातिक, (४) औपसर्गिक अने (५) मिश्र.

वस्तुतुं वाचक होवाने कारणे (आसेत्ति नामियं) “अश्व” पद नामिकना उदाहरणु इयं समञ्जसुं (खलुत्ति नेवाइयं) “खलु” पद निपातोमां वपरातुं होवाने कारणे नैपातिकना उदाहरणु इयं समञ्जसुं (धावइत्ति अक्खाइयं) “धावति” आ पद क्रियाप्रधान होवाने कारणे आख्यातिकना उदाहरणु

औपसर्गिकम् उपसर्गेषु पठितत्वात् । 'संयतः' इति मिश्रम्-उपसर्गनामोभयनिष्पन्नत्वात् । एतैर्नामिकादिभिः पञ्चभिः सकलशब्दसंग्रहणात् पञ्चनामत्वं बोध्यम् । प्रकृतमुपसंहरन्नाह-तदेतत् पञ्चनामेति ॥सू० १५०॥

अथ षण्णामं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं छण्णामे? छण्णामे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-उदइए, उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामिए संनिवाइए ॥सू० १५१॥

छाया—अथ किं तत् षण्णाम ? षण्णाम षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-औदयिकः, औपशमिकः, क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, पारिणामिकः, सान्निपातिकः ॥सू० १५१॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ किं तत् षण्णाम ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति-षण्णाम षट्-प्रकारकं नाम-षण्णाम, तद्धि-औदयिकादिभेदेन षड्विधं विज्ञेयम् । नन्वत्र प्रकृतं

यह उपसर्ग, उपसर्गों में पठित होने से औपसर्गिक है । (संज्ञए त्ति मिरसं) संयत यह सुबन्त पद उपसर्ग और नाम इन दोनों से निष्पन्न होने के कारण मिश्र है । इन नामिक आदि पांचों से समस्त शब्दों का संग्रह हो जाता है इसलिये ये पांच नाम कहे जाते हैं । (से तं पंचनाम) इस प्रकार यह पंचनाम का स्वरूप है ॥सू० १५०॥

अब सूत्रकार छहनाम का निरूपण करते हैं—'से किं तं छण्णामे' इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं छण्णामे?) हे भदन्त ! छह नाम क्या है ?

उत्तर—(छण्णामे छव्विहे पण्णत्ते) छह नाम छह प्रकार का प्रज्ञप्त

इयं छे. (परित्ति ओवसगियं) "परि" आ उपसर्ग छे. उपसर्ग इये तेने। प्रयोग थाय छे, ते कारणे तेने औपसर्गिक कडे छे (संज्ञए त्ति मिरसं) संयत यह 'सम्' उपसर्ग अने 'यत' पढ़ना संयोगथी गन्थु डोवाथी तेने मिश्रना उदाहरणु इयं गच्छी शक्य आ नामिक आदि पांचे पंचनामो वडे समस्त शब्दोने। संग्रह यथं ज्ञय छे, तेथी तेमने पंचनाम कडे छे. (से तं पंचनाम) आ प्रकारनुं पंचनामनुं स्वइयं समञ्जसुं ॥सू० १५०॥

इये सूत्रकार छनामनी प्रइपण्णा करे छे—

"से किं तं छण्णामे" इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं छण्णामे?) हे भगवन् ! नामना छट् प्रकार इयं छनामनुं स्वइयं डेवुं कथुं छे ?

उत्तर—(छण्णामे छव्विहे पण्णत्ते) छनामना ६ प्रकारे कथा छे (तेनामना

नाम, न तु पदार्थाः, एवं च नाम्नः प्रकरणे तदर्थानां भावलक्षणानां प्ररूपणमयुक्तमिति चेदाह, नाम नामवतोरभेदोपचाराद् नामार्थप्ररूपणमय्यदुष्टमेवेति न कश्चिद् दोषः । तत्र ज्ञानावरणादीनामष्टानां स्व स्वरूपेण विपाकतोऽनुभवनम् उदयः, स एव औदयिकः । अथवा—उदयेन निष्पन्न औदयिकः । औदयिकश्च भाव एव सामर्थ्याद् गम्यते । एवमग्रेऽपि भाव इत्याक्षेप्यः सामर्थ्यात् । उपशम-

हुआ है । छह प्रकारवाला जो नाम है वह छह नाम है । यह नाम छह प्रकारवाला है इसीलिये यह छह भेदवाला है । (तं जहा) उसके वे छह प्रकार ये हैं—(उदइए, उवसमिए, खइए, खओवसमिए, पारिणामिए, संनिवाइए) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक पारिणामिक और सान्निपातिक ।

शंका—यहां प्रकरण नाम का चल रहा है । नाम के अर्थों का नहीं इस प्रकार नामके प्रकरणमें उसके अर्थरूप भावों की प्ररूपणा करना युक्त नहीं है?

उत्तर—नाम और नामवाले अर्थ में अभेद के उपचार से नामार्थ की प्ररूपणा करना अयुक्त नहीं है । औदयिक भाव—ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के अपनेरूप से विपाक का अनुभव करना इस का उदय है । इस उदय का नाम ही औदयिक हैं । अथवा उदय से निष्पन्न हुआ जो भाव है वह औदयिक है । औदयिक पद की सामर्थ्य से यहां औदयिक भाव ही लिया गया है । इसी प्रकार से आगे भी

६ प्रकारे होवाने लीधे न अहीं तेने पइनाम (छनाम कहुं छे) ते ६ लेहे नीचे प्रभाणु छे—

(उदइए, उवसमिए खइए, खओवसमिए, पारिणामिए, संनिवाइए) (१) औदयिक, (२) औपशमिक, (३) क्षायिक, (४) क्षायोपशमिक, (५) पारिणामिक अने (६) सान्निपातिक.

शंका—अहीं नामनुं प्रकरणु आली रहुं छे. नामना अर्थीनुं आ प्रकरणु नथी आ प्रकारना नामना प्रकरणुमां तेना अर्थइप भावोनी प्रइपणा करी ते उचितं लागतुं नथी छतां आपे शा कारणु अहीं अर्थइप भावोनी प्रइपणा करी छे ?

उत्तर—नामं अने नामवाणा अर्थमां अलेह भानीने आ प्रकारे नामार्थनी प्रइपणा करवी अयुक्त नथी.

औदयिकभाव—ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारना कर्मना इण इप विपाकनो—अनुभव करवो, तेनुं नाम उदय छे आ उदयनुं नाम न औदयिक छे. अथवा उदयथी निष्पन्न थयेतो नो भाव छे तेनुं नाम औदयिक छे. औदयिक पद अहीं औदयिक भावनुं न वाचक छे. अने प्रभाणु औपश-

नम्-उपशमः-कर्मणोऽनुदयाक्षीणावस्था भस्मराश्यन्तरालस्थितवह्निवत्, स एव,
तेन वा निर्वृत्त औपशमिकः । क्षयः=कर्मणोऽपगमः, स एव तेन वा निर्वृत्तः-
क्षायिकः । क्षायोपशमिकः-क्षय उपशमश्च उक्त एव, तदेव भावः क्षायोपशमिकः,
तेन निर्वृत्तो वा क्षायोपशमिकः । अयं च-ईषद्विध्यातभस्मवह्निवद् बोध्यः ।

औपशमिक भाव क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, पारिणामिक
भाव, और सान्निपातिक भाव उन २ पदों से जानना चाहिये । औप-
शमिक-कर्मों का उदय में नहीं रहना, किन्तु उनकी उपशमावस्था का
होना इसी का नाम अनुदयाक्षीणावस्था है । इसी अवस्था का नाम
उपशम है । जैसे भस्मराशि के भीतर अग्नि छुपी रहती है उसी
प्रकार से इस उपशम अवस्था में कर्मों का उदय नहीं है किन्तु वे
सत्ता में बैठे रहते हैं । इस उपशम का नाम ही औपशमिक भाव है ।
अथवा इस उपशम से जो भाव निवृत्त (बनता) होता है वह औप-
शमिक भाव है । कर्मों का अत्यंत विनाश होना इसका नाम क्षय है ।
यह क्षय ही क्षायिक है । अथवा इस क्षय से जो उत्पन्न होता है-वह
क्षायिक है । कर्मों का क्षय और उपशम होना इसका नाम क्षयोपशम
है । यह क्षयोपशम ही क्षायोपशमिक है । अथवा क्षयोपशम से जो भाव
उत्पन्न होता है वह क्षायोपशमिक भाव है । यह भाव कुछ बुझी हुई
अग्नि के जैसा जानना चाहिये । तात्पर्य कहने का यह है कि इस क्षयो-

भिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, पारिणामिकभाव अने सान्निपातिक
भावने पण्य औपशमिक आदि पदो वडे निष्पन्न थयेला समजवा जेधये.

औपशमिक-कर्मो उदयावस्थाभां रडेलां न डोय, पण्य उपशमावस्थाभां
'रडेलां डोय, त्यारे ते अवस्थाने अनुदयाक्षीणावस्था कडे छे जे अवस्थानुं
नाम उपशम छे. जेम राखना ढगला नीचे अग्नि छुपायेला रडे छे, जे
प्रमाणे 'उपशम अवस्थाभां कर्मोना उदय डोतो नथी पण्य तेमनुं अस्तित्व
तो डोय छे न आ उपशमनुं नाम न औपशमिक भाव छे अथवा आ उपशम
वडे जे लाव निष्पन्न थाय छे ते लावनुं नाम औपशमिक भाव छे कर्मोना
अत्यंत विनाश थये। तेनुं नाम क्षय छे. ते क्षय न क्षायिक इप समजये,
अथवा आ क्षयथी जे लाव उत्पन्न थाय छे ते लावने क्षायिकभाव कडे छे
कर्मोना क्षय अने उपशम थये। तेनुं नाम क्षयोपशम छे. ते क्षयोपशम न
क्षायोपशमिक छे. अथवा क्षयोपशम वडे जे लाव उत्पन्न थाय छे, ते लावनुं
नाम क्षायोपशमिक भाव छे आ लावने थोडी थोडी पुजायेली अग्नि जेवे

પરિણામઃ—તેન તેન રૂપેણ વસ્તૂનાં પરિણમનં—ભવનમ્, સ એવ, તેન વા નિર્વૃત્તઃ
પારિણામિકઃ । સન્નિપાતઃ=અનન્તરોક્તાનાં ભાવાનાં દ્રવ્યાદિરૂપેણ મેલનં સ એવ,
તેન વા નિર્વૃત્તઃ સાન્નિપાતિકઃ ॥૬૮૨॥

સમ્પત્તિ एतेषां भावानां स्वरूपं निरूपयितुमाह—

મૂલમ્—સે કિં તં ઉદ્દૈષ્ય? ઉદ્દૈષ્ય દુવિહે પળ્લણત્તે, તં જહા-
ઉદ્દૈષ્ય ય ઉદયનિષ્કળ્ણે ય । સે કિં તં ઉદ્દૈષ્ય? ઉદ્દૈષ્ય-
અટૂળ્હં કમ્મપયડીણં ઉદ્દૈષ્યં સે તં ઉદ્દૈષ્ય । સે કિં તં ઉદય-
નિષ્કળ્ણે? ઉદયનિષ્કળ્ણે—દુવિહે પળ્ણત્તે, તં જહા—જીવોદય-

પશમ મેં કિતનેક સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોં (અંશો) કા ઉદયાભાવી ક્ષય
ઔર કિતનેક સર્વઘાતિસ્પર્દ્ધકોં કા સદવસ્થારૂપ ઉપશમ હોતા હૈ
ઔર દેશઘાતિ પ્રકૃતિરૂપ જો સમ્યક્ પ્રકૃતિ હૈ ઉસકા ઉદય રહતા હૈ ।
હસલિયે હસ ભાવ કો કુછ બુઝી હુઈ ઔર કુછ નહીં બુઝી હુઈ અગ્નિ
કી ઉપમા દી ગઈ હૈ । ઉસ ૨ રૂપ સે વસ્તુઓં કા જો પરિણમન હોતા
હૈ વહ પરિણામ હૈ । વહ પરિણામ હી પારિણામિક ભાવ હૈ । અથવા હસ
પરિણામ સે જો ભાવ ઉત્પન્ન હોતા હૈ વહ પારિણામિક ભાવ હૈ । હન
પાંચ ભાવોં કા દ્રવ્યાદિ સંયોગરૂપ સે જો મિલના હૈ વહ સન્નિપાત હૈ ।
યહ સન્નિપાત હી સાન્નિપાતિક ભાવ હૈ । અથવા હસ સન્નિપાત સે જો
ભાવ ઉત્પન્ન હોતા હૈ વહ સાન્નિપાતિક ભાવ હૈ ॥સૂ. ૧૫૧॥

સમજવો : આ) કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે આ- ક્ષયોપશમમાં કેટલાક સર્વઘાતિ
સ્પર્દ્ધકોનો (અંશોનો) ઉદયાભાવી ક્ષય અને કેટલાક સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોનો
સદવસ્થા રૂપ (વિદ્યમાનતા રૂપ) ઉપશમ થાય છે, અને દેશઘાતિ પ્રકૃતિ રૂપ
ને સમ્યક્ પ્રકૃતિ છે તેનો ઉદય રહે છે તેથી આ ભાવને થોડી ખુબીથી
અને થોડી ન ખુબીથી અગ્નિની ઉપમા આપવામાં આવી છે. તે તે રૂપે
વસ્તુઓનું જે પરિણમન થાય છે તેને પરિણામ કહે છે. તે પરિણામ-જ
પારિણામિક ભાવ છે. અથવા તે પરિણામ વડે જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે,
તેને પારિણામિકભાવ કહે છે આ પાંચ ભાવોનું જે દ્વિકસંયોગ આદિ સંયોગ
રૂપે મિલન (સંયોગ) થાય છે, તેનું નામ સન્નિપાત છે. તે સન્નિપાત-જ
સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ છે અથવા તે સન્નિપાત વડે જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય
છે, તેનું નામ સાન્નિપાતિક ભાવ છે. ॥સૂ. ૧૫૧॥

निष्फणने य अजीवोदयनिष्फणने य। से किं तं जीवोदयनिष्फणने ? जीवोदयनिष्फणने-अणेगविहे पणत्ते, तं जहा-णेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से देवे पुढविकाइए जाव तसकाइए कोहकसाई जाव लोहकसाई, इत्थीवेदए पुरिसवेदए णपुंसगवेदए कणहलेसे जाव सुकलेसे मिच्छादिट्ठी सम्मदिट्ठी मीसदिट्ठी अविरए असण्णी अण्णाणी आहारए छउमत्थे सजोगी संसारत्थे असिद्धे । से तं जीवोदयनिष्फणने । से किं तं अजीवोदयनिष्फणने ? अजीवोदयनिष्फणने-अणेगविहे पणत्ते, तं जहा-उरालियं वा सरीरं, उरालियसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं, वेउव्वियं वा सरीरं, वेउव्वियसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं, एवं आहारगं सरीरं, तेयगं सरीरं, कम्मगं सरीरं च भाणियव्वं । पओगपरिणामिए वण्णे गंधे रसे फासे । से तं अजीवोदयनिष्फणने । से तं उदयनिष्फणने से तं उदइए ॥सू० १५२॥

छाया—अथ कोऽसौ औदयिकः ? औदयिको द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औदयिकश्च उदयनिष्पन्नश्च । अथ कोऽसौ औदयिकः ? औदयिकः—अष्टानां कर्म-प्रकृतीनामुदयः खलु । स एष औदयिकः । अथ कोऽसौ उदयनिष्पन्नः ? उदयनिष्पन्नो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—जीवोदयनिष्पन्नश्च अजीवोदयनिष्पन्नश्च । अथ कोऽसौ जीवोदयनिष्पन्नः ? जीवोदयनिष्पन्नः अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—नैरयिकः तिर्यग्योनिको मनुष्यो देवः पृथिवीकायिको यावत् त्रसकायिकः क्रोधकषायी यावद् लोभकषायी स्त्रीवेदकः पुरुषवेदको नपुंसकवेदकः कृष्णलेश्यो यावत् शुक्ललेश्यो मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिः मिश्रदृष्टिः अविरतः असंज्ञी अज्ञानी आहारकः छन्नस्थः सयोगी संसारस्थः असिद्धः । स एष जीवोदयनिष्पन्नः । अथ कोऽसौ अजीवोदयनिष्पन्नः ? अजीवोदयनिष्पन्नः—अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औदारिकं वा शरीरम्, औदारिकशरीरप्रयोगपरिणामितं वा द्रव्यम्, वैकुर्विकं वा शरीरं वैकुर्विकशरीरप्रयोगपरिणामितं वा एवम्द्रव्यम्, —आहारकं शरीरम्, तैजस्कं

શરીરં કાર્મકં શરીરં ચ મણિતવ્યમ્ । પ્રયોગપરિણામિતો વર્ણો ગન્ધો રસઃ સ્પર્શઃ ।
સ એવોઽજીવોદયનિષ્પન્નઃ । સ એષ ઉદયનિષ્પન્નઃ । સ એષ ઔદયિકઃ ॥સૂ० ૧૫૨॥

ટીકા—‘સે કિં તં’ ઇત્યાદિ.

અથ કોઽસૌ ઔદયિકઃ ? ઇતિ પ્રશ્નઃ । ઉત્તરયતિ—ઔદયિકો દ્વિવિધઃ
પ્રજ્ઞસઃ । દ્વૈવિધ્યમેવાહ—ઔદયિકઃ ઉદયનિષ્પન્નશ્ચ । તત્ર ઔદયિકઃ—જ્ઞાનાવરણી-
યાદીનામષ્ટકર્મપ્રકૃતીનામુદયઃ । ‘જં’ ઇતિ વાક્યાલક્ષ્ણે । અયં પ્રથમો ભેદઃ ।
દ્વિતીયશ્ચ ભેદ ઉદયનિષ્પન્નઃ । સ હિ—જીવોદયનિષ્પન્નઃ, અજીવોદયનિષ્પન્નશ્ચ ।

અવ સૂત્રકાર ઇન્हीं भावों का स्वरूपनिरूपण करते हैं—

‘સે કિં તં ઉદ્દેહ’ ઇત્યાદિ ।

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં ઉદ્દેહ ?) હે ભદન્ત ! પૂર્વપ્રક્રાન્ત ઔદયિક
ભાવ કયા હૈ ?

ઉત્તર—(ઉદ્દેહ દુવિહે પળ્લત્તે) ઔદયિક ભાવ દો પ્રકાર કા
પ્રજ્ઞસ હુઆ હૈ । (તં જહા) ઉસકે વે દો પ્રકાર યે હૈ—(ઉદ્દેહ ય ઉદય
નિષ્કળ્લે ય) એક ઔદયિક ઓર દૂસરા ઉદયનિષ્પન્ન (સે કિં તં ઉદ્દેહ ?)
હે ભદન્ત ! ઔદયિક ભાવ કયા હૈ ? (અદ્દુષ્ઠં કમ્મપયડીણં ઉદ્દેહં ઉદ્દેહ)

ઉત્તર—જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મ પ્રકૃતિયોં કા ઉદય ઔદ-
યિક હૈ । (સે તં ઉદ્દેહ) ઇસ પ્રકાર યહ ઔદયિક હૈ ।

(સે કિં તં ઉદયનિષ્કળે ?) હે ભદન્ત ! ઉદયનિષ્પન્ન કયા હૈ ?

આગલા સૂત્રમાં ઔદયિક આદિ જે ભાવો પ્રકટ કરવામાં આન્યા છે,
તે ભાવોના સ્વરૂપનું હવે સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે—

“સે કિં તં ઉદ્દેહ” ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(સે કિં તં ઉદ્દેહ ?) હે ભગવન્ ! નામના છ ભેદમાંના
પહેલા ભેદ રૂપ ઔદયિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે ?

ઉત્તર—(ઉદ્દેહ દુવિહે પળ્લત્તે) ઔદયિક ભાવ જે પ્રકારનો કહ્યો છે.
(તં જહા) તે જે પ્રકાર નીચે પ્રમાણે સમજવા—(ઉદ્દેહ ય ઉદયનિષ્કળે ય) (૧)
—ઔદયિક અને (૨) ઉદયનિષ્પન્ન.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં ઉદ્દેહ ?) હે ભગવાન્ ! ઔદયિકનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે.

ઉત્તર—(અદ્દુષ્ઠં કમ્મપયડીણં ઉદ્દેહં ઉદ્દેહ) જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ
કર્મ પ્રકૃતિઓનો ઉદય ઔદયિક રૂપ સમજવો (સે તં ઉદ્દેહ) આ રીતે ઔદયિકનું
સ્વરૂપ સમજવું.

પ્રશ્ન—(સે કિં તં ઉદયનિષ્કળે ?) હે ભગવન્ ! ઉદયનિષ્પન્નનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે ?

तत्र—जीवोदयनिष्पन्नः—जीवे उदयेन निष्पन्नः । औदयिकभावोऽनेकविधः प्रज्ञप्तः । अनेकविधत्वमेवाह—‘णेरइए’ इत्यादि । नैरयिकादिरसिद्धान्तो जीवोदयनिष्पन्न औदयिको भावो बोध्यः । नैरयिकादयः शब्दा भावपरा बोध्याः । नारकत्वादयः पर्यायाः कर्मणामुदयेनैव जीवे निष्पद्यन्ते इत्यत एते जीवोदयनिष्पन्ना इति भावः ।

उत्तर—(उदयनिष्फण्णे—दुविहे पणत्ते) उदयनिष्पन्न दो प्रकार का कहा गया है । (तं जहा) वे दो प्रकार ये हैं—(जीवोदयनिष्फण्णे य अजीवोदयनिष्फण्णे य)—एक जीवोदय निष्पन्न और दूसरा अजीवोदयनिष्पन्न । (से किं तं जीवोदयनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! जीव में उदय से जो भाव निष्पन्न होता है वह क्या है ?

उत्तर—(जीवोदयनिष्फण्णे अणेगविहे पणत्ते) जीव में उदय से जो औदयिक भाव निष्पन्न होता है वह अनेक प्रकार का कहा है (तं जहा) जैसे—(णेरइए, तिरिक्खजोणीए, मणुस्से, देवे, पुढविकाइए जाव तसकाइए, कोहकसाई, जाव लोहकसाई, इत्थीवेदए, पुरिसवेदए, णपुंसगवेदए, कण्हलेसे, जाव सुक्कलेसे मिच्छादिट्ठी, सम्मदिट्ठी, मीसदिट्ठी, अविरए, असण्णी, अण्णाणी, आहारए, छउमत्थे, सजोगी, संसारत्थे, असिद्धे) नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य, देव, पृथिवीकायिक यावत् त्रसकायिक, क्रोधकषायी, यावत् लोभकषायी, स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक, कृष्णलेश्या, यावत् शुक्ललेश्या, मिथ्यादृष्टि, सम्यक्दृष्टि,

उत्तर—(उदयनिष्फण्णे दुविहे पणत्ते) उदयनिष्पन्नना ये प्रकार पडे छे. (तंजहा) ते प्रकारे नीचे प्रभाषे छे—(जीवोदयनिष्फण्णे य, अजीवोदयनिष्फण्णे य) (१) अणोदय निष्पन्न, (२) अणोदय निष्पन्न.

प्रश्न—(से किं तं जीवोदयनिष्फण्णे?) हे भगवान् ! अणुभां उदयथी ने भाव निष्पन्न थाय छे, ते भावतुं स्वइय डेपुं डोय छे ?

उत्तर—(जीवोदयनिष्फण्णे अणेगविहे पणत्ते) अणुभां उदयथी ने औदयिक-भाव उत्पन्न थाय छे, ते अनेक प्रकारेना डोय छे (तंजहा) नेम डे... (णेरइए, तिरिक्खजोणीए, मणुस्से, देवे, पुढविकाइए जाव तसकाइए, कोह कसाई जाव लोहकसाई, इत्थीवेदए, पुरिसवेदए, णपुंसगवेदए, कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे, मिच्छादिट्ठी, सम्मदिट्ठी, मीसदिट्ठी, अविरए, असण्णी, अण्णाणी, आहारए, छउमत्थे, सजोगी, संसारत्थे, असिद्धे) नारक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य, देव, पृथ्वीकायिक आदि स्थावर, त्रसकायिक, क्रोधकषायीथी लधने लोभकषायी पर्यन्तना, स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक, कृष्णलेश्याथी लधने शुक्ललेश्या

ननु नारकत्वादिभ्योऽन्येऽपि निद्रापञ्चक वेदनीयहास्यादयो बहवः कर्मोदयजन्याः पर्यायाः सन्ति, कथं तर्हि नारकत्वादयः कतिपय एवोदाहृताः ? इति वेदाह-
नारकत्वादयोऽत्रोपलक्षणत्वेनोदाहृताः, अत एभ्योऽन्येऽपि सम्भविनः पर्याया
बोध्याः । ननु कर्मोदयजनितानां नारकत्वादीनां भवत्वत्रोपन्यासः, परन्तु लेश्यास्तु

मिश्रदृष्टि अविरत, असंज्ञी, अज्ञानी, आहारक, छद्मस्थ, सयोगी
संसारस्थ, असिद्ध । ये सब नैरयिक से लेकर असिद्ध पर्यन्त जीवोदय-
निष्पन्न औदयिक भाव हैं । नैरयिक आदि शब्द भाव परक जानना
चाहिये । नारकत्व आदि पर्यायों कर्मों के उदय से ही जीव में निष्पन्न
होती हैं इसलिये ये जीवोदय निष्पन्न हैं ।

शंकाः—नारकत्व आदि से भिन्न और भी निद्रापञ्चक-निद्रा
निद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला, स्त्यानगृद्धि वेदनीय और हास्यादि अनेक
कर्मोदय जन्य पर्यायों हैं । तो फिर सूत्रकार ने यहां इन नारक आदि
थोड़ी सी पर्यायों को ही उदाहृत क्यों किया है ?

उत्तरः—सूत्रकार ने जो यहां इन नारक आदि पर्यायों को उदाहृत
किया है वह केवल उपलक्षण रूप से किया है । इसलिये इन से भी
अतिरिक्त जितनी भी पर्यायें कर्मोदय जन्य हैं वे सब इनसे गृहीत
हो जाती हैं ।

शंका—कर्मोदय जनित इन नारक आदि पर्यायों का औदयिक भाव

पर्यन्तमी लेश्यावाणा, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, मिश्रदृष्टि, असंज्ञी, अज्ञानी,
आहारक, छद्मस्थ, सयोगी, संसारस्थ अने असिद्ध, आ अर्थां एवोदय-
निष्पन्न औदयिक भावो छे. नैरयिक आदि शब्दोने भावपरक समजवा लेश्यो
नारकत्व आदि पर्यायो कर्मोना उदयथी न एवमां निष्पन्न (उत्पन्न) थाय
छे, तेथी तेमने एवोदयनिष्पन्न ठडेवामां आवेल छे.

शंका—नारकत्व आदि उपर्युक्त पर्यायो सिवायनी निद्रापञ्चक (निद्रा,
निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि), वेदनीय अने हास्यादिक अनेक
कर्मोदय जन्य पर्यायो छे. छतां सूत्रकारे ते पर्यायोने गण्णाववाने अद्वे मात्र
नारकादि पर्यायोने न केम गण्णावेल छे ?

उत्तर—सूत्रकारे तो अही उदाहरणु इये नारकादि पर्यायोने एवोदय-
निष्पन्न औदयिक भाव इये गण्णावेल छे. केवण उपलक्षणु इये न आ प्रभाषे
करवामां आण्थुं छे. परन्तु ते सिवायनी कर्मोदय जन्य नेटला पर्यायो छे,
तेमने पणु अही अद्वे करी शकाय छे.

शंका—कर्मोदय जनित आ नारक आदि पर्यायोने औदयिक भावमां लेशे

कस्यचित् कर्मण उदये भवन्तीत्येतन्नप्रसिद्धम्, तत् कथमिह कृष्णलेश्यादयः पठ्यन्ते ? इति चेदाह—लेश्यास्तु योगपरिणामः त्रिविधोऽपि योगः कर्मोदयजन्य एव, ततो लेश्यानामपि योगकर्मोदयेत्युभयजन्यत्वं न विरुध्यते इति नास्ति लेश्यानाम पाठे कश्चिद् दोषः। केचित्त्वेवं मन्यन्ते—यथा कर्माण्टकोदयात् संसारस्थत्वमसिद्धत्वं च जायते, तथैव लेश्यावत्त्वमपि जायते, इति। प्रकृतमुप-
सहरन्नाह—स एष जीवोदयनिष्पन्न इति। अथ कोऽसौ अजीवोदयनिष्पन्नः ?

में उपन्यास भले रहो, परन्तु लेश्याएँ औदयिक हैं यह बात संभवित नहीं होती, क्योंकि लेश्याएँ किसी कर्म के उदय से होनी हों यह बात प्रसिद्ध नहीं है। अतः जब ऐसी बात है, तो फिर सूत्रकार ने औदयिक भाव में इनका पाठ क्यों रखा है ?

उत्तरः—लेश्याएँ योगों के परिणाम-प्रवृत्ति रूप हैं। और तीनों प्रकार का जो योग है वह शरीर नाम कर्मोदय जन्य है। इसलिए लेश्याओं को योग और शरीर नामकर्मोदय इन दोनों द्वारा जन्य के होने के कारण इनका पाठ-औदयिक भाव में रखना निर्दोष है। कोई २ इस विषय में ऐसा मानते हैं—कि जैसे आठ कर्मों के उदय से संसार-स्थत्व और असिद्धत्व होता है, उसी प्रकार लेश्यावत्त्व भी होता है, (से तं जीवोदयनिष्फण्णे) इस प्रकार यह जीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव हैं। (से किं तं अजीवोदय-निष्फण्णे) हे भदन्त ! अजीवोदय-निष्पन्न औदयिक भाव क्या है ?।

समाविष्ट कश्चामां आवे, परन्तु लेश्याञ्चो औदयिक होवानुं संभवी शक्युं नथी, कारणे के लेश्याञ्चोने कर्मोदयजन्य मानवामां आवती नथी छतां पशु सूत्रकारे-शा कारणे औदयिक भावमां तेनो समावेश कथी छे ?

उत्तर—लेश्याञ्चो योगोना परिणाम-प्रवृत्ति-रूप होय छे अने त्रये प्रकारना योग-शरीरनाम कर्मजन्य होय छे. तेथी योग अने शरीरनाम कर्मोदय आ-गन्ने द्वारा जन्य होवाने कारणे लेश्याञ्चोने उपर्युक्त औदयिक भावमां समावेश करवामां कोछ होष न्छातो नथी कोछ कोछ लोको अणुं भाने छे के-जेवी रीते आठ कर्मोना उदयथी संसारीपशुानी अने असिद्ध-त्वनी प्राप्ति थाय छे, अण प्रमाणे लेश्यायुक्तत्व पशु प्राप्त थाय छे. (से तं जीवोदयनिष्फण्णे) आ प्रकारनुं लोवोदय निष्पन्न औदयिक भावनुं स्वरूप छे.

प्रश्न—(से किं तं अजीवोदयनिष्फण्णे?) छे अणवन् ! अणवोदय निष्पन्न औदयिक भावनुं स्वरूप केवुं होय छे ?

इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—अजीवोदयनिष्पन्नः—अजीवे उदयेन निष्पन्न औद-
यिक भावः अनेकविधः प्रज्ञप्तः । अनेकविधत्वमेवाह—तद्यथा—औदारिकं वा शरीरम्=
विशिष्टाकारपरिणतं तिर्यङ्मनुष्यदेवरूपमौदारिकं शरीरकम् । औदारिकशरीरप्रयो-
गपरिणामितं वा द्रव्यम्—औदारिकशरीरस्य प्रयोगेण=व्यापारेण परिणामितं=
निष्पादितं वा द्रव्यम् । एतद्द्रव्यमपि अजीवे=पुद्गलद्रव्ये औदारिकशरीरनाम-
कर्मोदयेन निष्पद्यते, अत एतद् द्रव्यम् अजीवोदयनिष्पन्न औदयिको भाव उच्यते ।
एवं वैकुण्ठिकादिवतुःशरीरविषयेऽपि बोध्यम् । औदारिकादि शरीरप्रयोगेण यत्

उत्तर—(अजीवोदयनिष्पण्णे अणैगविहे पण्णत्ते) अजीव में उदय
से निष्पन्न औदयिक भाव अनेक प्रकार का कहा गया है । (तं जहा)
जैसे—(उरालियं वा सरीरं उरालियसरीरं पभोगपरिणामियं
वा दव्वं) विशिष्ट आकार परिणत हुआ तिर्यञ्चो और मनुष्यो
का देहरूप औदारिक शरीर, अथवा औदारिक शरीर के
व्यापार से निष्पादित द्रव्य, ये दोनों भी अजीवपुद्गलद्रव्य-
में औदारिक शरीर नामकर्म के उदय से निष्पन्न होते हैं ।
इसलिये ये दोनों अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव कहे जाते हैं ।
(वेडव्वियं वा सरीरं, वेडव्वीयसरीरपभोगपरिणामियं वा दव्वं एवं
आहारगं सरीरं, तेयगं सरीरं कम्मगं सरीरं च भाणियव्वं) इसी प्रकार से
वैक्रिय शरीर, अथवा वैक्रिय शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य, आहारक
शरीर अथवा आहारक शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य, तेजस
शरीर अथवा तेजस शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य, कामाण

उत्तर—(अजीवोदयनिष्पण्णे अणैगविहे पण्णत्ते) अणुवमां उदयथी निष्पन्न
औदयिकभाव अनेक प्रकारना उद्यो छे. (तं जहा) जेम के... (उरालियं वा सरीरं
उरालियसरीरं—पभोगपरिणामियं वा दव्वं) विशिष्ट आकारमां परिणत थयेथुं
तिर्यञ्चो अने मनुष्येना देहरूप औदारिक शरीर, अथवा औदारिक शरीरना
व्यापारथी निष्पादित द्रव्य आ अन्ने अणुव—पुद्गल द्रव्य—मां औदारिक शरीर
नामकर्मना उदयथी निष्पन्न (उत्पन्न) थाय छे. तेथी ते अणुवेदय
निष्पन्न औदयिकभाव उडेवामां आवे छे. (वेडव्वियं वा सरीरं, वेडव्विय-
सरीरपभोगपरिणामियं वा दव्वं, एवं आहारगं सरीरं, तेयगं सरीरं, कम्मगं
सरीरं च भाणियव्वं) अणु प्रकारे वैक्रिय शरीर, अथवा वैक्रिय शरीरना व्या-
पारथी निष्पादित द्रव्य, आहारक शरीर अथवा आहारक शरीरना व्यापारथी
निष्पादित द्रव्य, तेजस शरीर अथवा तेजस शरीरना व्यापारथी निष्पादित

परिणम्यते द्रव्यं तत् स्वयमेव दर्शयति सूत्रकारः—‘पयोगपरिणामिण’ इत्यादि । प्रयोगपरिणामितो वर्णो गन्धो रसः स्पर्शः । अयं भाव-औदारिकादीनां पञ्चानामपि शरीराणां प्रयोगेण निष्पादितं वर्णगन्धरसस्पर्शस्वरूपं द्रव्यं बोध्यम् । एतद्भिन्नमानप्राणादिकमपि यच्छरीरे उत्पद्यते तदप्युपलक्षणत्वाद् ग्राह्यमिति । ननु यथा नारकत्वादयः पर्याया जीवे भवन्तीति जीवोदयनिष्पन्ने औदारिके पठ्यन्ते, एवं शरीराण्यपि जीवे एव भवन्ति, अत एतान्यपि जीवोदयनिष्पन्ने औदारिक एव पठनीयानि, कथं पुनरजीवोदयनिष्पन्ने औदारिके पठ्यन्ते ? इति

शरीर अथवा कार्माण शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य के विषय में भी जानना चाहिये । औदारिकादि शरीर के व्यापार से जो द्रव्य औदारिकादि रूप परिणामित होता है उसे सूत्रकार स्वयं दिखलाते हैं—(पयोगपरिणामिण वर्णे, गंधे, रसे, फासे,) प्रयोग परिणामित वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श हैं । इसका तात्पर्य यह है—कि औदारिक आदि पार्ष्णों भी शरीरों के व्यापार से जो द्रव्य निष्पादित होता है वह वर्ण, गंध, रस, और स्पर्शरूप है । इनसे भिन्न आन प्राण आदिक भी जो शरीर में उत्पन्न होते हैं वे भी उपलक्षण से यहाँ ग्रहण कर लेना चाहिये !

शंका—जैसे नारकत्व आदि पर्यायों जीव में होती हैं इस अभिप्राय से वे जीवोदय निष्पन्न औदारिक भाव में कही गई हैं, इसी प्रकार शरीर भी जीव में ही होते हैं—अतः वे भी जीवोदयनिष्पन्न औदारिक

द्रव्य अने कार्माण शरीर अथवा कार्माण शरीरना व्यापारथी निष्पादित द्रव्यना विषयमां पणु समञ्जसु औदारिक आदि शरीरना व्यापारथी ने द्रव्य औदारिक आदि इये परिणामित थाय छे, तेने सूत्रकार पोते न भतावे छे—(पयोगपरिणामिण वर्णे, गंधे, रसे, फासे) प्रयोगपरिणामित वर्ण, गंध, रस अने स्पर्श छे. आ कथनने लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—औदारिक आदि पार्ष्ण शरीरना व्यापारथी ने द्रव्य निष्पादित थाय छे, ते वर्ण, गंध, रस अने स्पर्श इय होय छे. आ सिवाय ने आन, प्राण आदिकनी शरीरमां उत्पत्ति थाय छे तेमने पणु उपलक्षणनी अपेक्षाये आडीं ग्रहण करवा लेधये.

शंका—जेवी रीते नारकत्व आदि पर्यायेना लवमां सद्वलाव होय छे, अने ते धारणे तो ते पर्यायेना लवोदय निष्पन्न औदारिक लावमां समावेश करवामां नये छे, अने प्रमणे शरीरना पणु लवमां सद्वलाव होय छे, तेथी तेमने पणु लवोदय निष्पन्न औदारिक लावोमां समावेश थवे लेधते हते।

चेदाह-यद्यप्यौदारिकादिशरीराणि जीवे भवन्ति, तथापि औदारिकादिशरीर नाम-
कर्मोदयस्य मुख्यतया शरीरपुद्गलेष्वेव विपाको भवति, अत एतानि औदारि-
कादीनि पञ्चशरीराणि अजीवोदयनिष्पन्ने औदयिक एव भावे पठ्यन्ते, अतो
नास्ति कश्चिद् दोषः । इत्थमजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभावः प्ररूपित इति सूच-
यितुमाह-स एषोऽजीवोदयनिष्पन्न इति । उदयनिष्पन्नो भावः सकलोऽपि
प्ररूपित इति सूचयितुमाह-स एष उदय निष्पन्न इति । एतावता औदयिको भावः
प्ररूपित इति सूचयितुमाह-स एष औदयिक इति । इत्थं द्विविधोऽप्यौदयिक-
भावः प्ररूपित इति विज्ञेयम् ॥सू० १५२॥

भाव में ही कहना चाहिये थे, फिर क्यों-उन्हे अजीवोदयनिष्पन्न औद-
यिक भाव में रखा है ?

उत्तर-यद्यपि औदारिक आदि शरीर जीव में होते हैं, तो भी
औदारिक आदि शरीर नाम कर्मका विपाकमुख्यतया शरीर पुद्गलों में
ही होता है, इसलिये इन औदारिक आदि पांच शरीरों को अजीवोदय
निष्पन्न औदारिक भाव में ही रखा है । इसलिये इसमें कोई दोष नहीं
है । (से तं अजीवोदयनिष्पण्णे) इस प्रकार से यह अजीवोदय निष्पन्न
औदयिक भाव का कथन है । (से तं उदयनिष्पण्णे, से तं उदइए)
एतावता औदयिक भाव प्ररूपित हो चुका । और इस प्ररूपणा से दोनों
प्रकार का भी औदयिक भाव कथित हो चुका ऐसा जानना चाहिये ।

भावार्थ-सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा औदयिक भाव का कथन किया
है । इसमें उन्होंने यह समझाया है कि अष्टविध कर्मों का जो उदय है

छतां अहीं तेने अल्लोवोदय निष्पन्न औदयिक लाव इपे शा कारणे
गणुववाभां आवेल छे ?

उत्तर-जे के औदारिक आदि शरीरानां लवभां सद्भाव डाय छे,
छतां पणु औदारिक आदि शरीर नामकर्मना विपाक मुख्यतवे शरीर पुद्ग-
लाभां न थाय छे. तेथी औदारिक आदि पांच शरीराने अल्लोवोदय निष्पन्न
औदयिक लाव इपे कडेवाभां आवेल छे. तेथी ते प्रकारतुं कथन निर्दोष न
गणु शक्य. (से तं अजीवोदयनिष्पण्णे) आ प्रकारतुं अल्लोवोदय निष्पन्न
औदयिक लावतुं स्वइप समजतुं (से तं उदयनिष्पण्णे, से तं उदइए) आ प्रकारे
औदयिक लावनी प्रइपणु अहीं समाप्त थाय छे आ प्रइपणु द्वारा अन्ने
प्रकारना औदयिक लावानी प्रइपणु समाप्त थर्ध नय छे.

भावार्थ-सूत्रकारे आ सूत्र द्वारा औदयिक लावतुं कथन कथुं छे. आ
सूत्र द्वारा तेमणु अे वाततुं प्रतिपादन कथुं छे के आठ प्रकारनां कर्मनां

एक तो वह औदयिक भाव है, दूसरा अष्टविध कर्मों के उदय से जो भाव उत्पन्न होता है वह औदयिक भाव है। यह कर्मोदय निष्पन्न औदयिकभाव जीवोदय निष्पन्न और अजीवोदय निष्पन्न के भेद से दो प्रकार का कहा गया है। कर्मों के उदय से जो भाव जीव में उदित होता है वह जीवोदय निष्पन्न और जो अजीव में उदित होता है वह अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव है। वह जीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव में चारों गतियां चारों कषाय, तीनों वेद मिथ्या दर्शन अज्ञान छहों लेश्याँ असंयम, असिद्धभाव आदि परिणमित किये गये हैं। क्योंकि ये सब जीव में ही विवक्षित अपने कर्म के उदय से निष्पन्न होते हैं—जैसे मनुष्यगति नाम के उदय से मनुष्य गति, तिर्यञ्चगतिनामकर्म के उदय से तिर्यञ्चगति, देवगति नामकर्म के उदय से देवगति और नरकगति नामकर्म के उदय से नरक गति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार से चारों कषाय वेदनीय के उदय से होता है। तात्पर्य यह है कि मोहनीय कर्म-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के भेद से दो प्रकार का है।

ये उदय छे ते औदयिक लाव इप छे अने भीजुं अे पणु प्रकट कथुं छे के आठ प्रकारना कर्मोना उदयथी ने लाव उत्पन्न थाय छे ते पणु औदयिक लाव इप छे ते कर्मोदय निष्पन्न औदयिक लावना नीचे प्रभाणु के लेह कछा छे—(१) जिवोदय निष्पन्न अने (२) अजिवोदय निष्पन्न. कर्मोना उदयथी ने लाव जिवमां उदित थाय छे तेने जिवोदयनिष्पन्न औदयिक लाव कडे छे. अने कर्मोना उदयथी ने लाव अजिवोमां उत्पन्न (उदित) थाय छे, तेने अजिवोदय निष्पन्न औदयिक लाव कडे छे. जिवोदयनिष्पन्न औदयिक लावमां आरे गतिओ, आरे कषायो, त्रणु वेद, मिथ्यादर्शन अज्ञान, छओ लेश्याओ, असंयम, असिद्धलाव आदिने गणुनामां आवेल छे, कारणु के अे अंधां लावोना जिवमां न सद्लाव डोय छे. अने ज्ञानावरणु आदि कर्मोना उदयथी आ लावो निष्पन्न थता डोय छे नेम के मनुष्यगति नामकर्मना उदयथी मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति नाम कर्मना उदयथी तिर्यञ्चगति, देवगति नामकर्मना उदयथी देवगति अने नरकगति नामकर्मना उदयथी नरकगति उत्पन्न थाय छे. आरे कषायोनी उत्पत्ति पणु कषायवेदनीयना उदयथी थाय छे आ कथननुं तात्पर्य अे छे के—मोहनीय कर्मना जे प्रकार छे—चारित्र-मोहनीय अने दर्शनमोहनीय दर्शनमोहनीयना नीचे प्रभाणु त्रणु लेह पडे

दर्शन मोहनीय के, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और तदुभय-सम्यक्त्व मिथ्यात्व ये तीन भेद हैं। चारित्र मोहनीय के कषाय वेदनीय और नो कषाय वेदनीय ये दो भेद हैं। इनमें जो कषाय वेदनीय है, उसके उदय होने पर क्रोध मान, माया और लोभ ये चारों कषायें उत्पन्न होते हैं। और नोकषाय चारित्र मोहनीय के उदय होने पर तीन वेद निष्पन्न होते हैं। मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से मिथ्या दर्शन होता है। किसी ज्ञानावरण कर्म के उदय से अज्ञान भी होता है। लेश्याएँ योग परिणाम रूप हैं। इसलिये ये योग जनक शरीर नामकर्म उदय के फल हैं। चारित्रमोहनीय के सर्वघाति स्पर्धकों (कर्मों के अंश) के उदय से असंयत भाव होता है। किसी भी कर्म के उदय से असिद्ध भाव होता है इस प्रकार जो भी जीव में कर्मोदय से पर्याय निष्पन्न होती है वह सब औदयिक भाव है ऐसा जानना चाहिए। अजीव में उदय से निष्पन्न जो भाव है वह अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव है। यह अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव अनेक प्रकार का कहा गया है। जैसे औदारिक आदि शरीर अथवा औदारिक शरीर आदि के व्यापार से निष्पादित द्रव्य। ये शरीरादि अजीवोदय निष्पन्न औद-

छे-सम्यक्त्व, मिथ्यात्व अने तदुभय (सम्यक्त्व मिथ्यात्व) चारित्र मोहनीयना नीचे प्रमाणे ये लेह पडे छे-(१) कषायवेदनीय अने (२) नोकषायवेदनीय न्यारे कषायवेदनीयने उदय थाय छे त्यारे क्रोध, मान, माया अने लोभ इप न्यारे कषायो उत्पन्न थाय छे अने नोकषायचारित्र मोहनीयने उदय थाय त्यारे त्रषु वेद (स्त्री, पुरुष अने नपुंसक इप त्रषु वेद) निष्पन्न थाय छे मिथ्यात्व मोहनीयना उदयथी मिथ्यादर्शन उत्पन्न थाय छे. ज्ञानावरणीय कर्मना उदयथी अज्ञानभाव उत्पन्न थाय छे देश्याओ योगपरिणाम इप गणाय छे तेथी योगजनक शरीर-नामकर्मना उदयना इल-इप तेमने गणी शक्य छे. चारित्रमोहनीयना सर्वघाति स्पर्धकोना (कर्मना अंशना) उदयथी असंयत भाव उत्पन्न थाय छे कौर्ध पणु कर्मना उदयथी असिद्धभाव उत्पन्न थाय छे. आ रीते कर्मोदयने कारणे अणवमां ने पर्यायो उत्पन्न थाय छे ते अधी पर्यायोने औदयिक भाव इप समजवी लेहये.

अणवमां कर्मोदयने लीधे ने भाव उत्पन्न थाय छे ते भावने अणवोदय निष्पन्न औदयिक भाव कडे छे. आ अणवोदय निष्पन्न औदयिकभाव अनेक प्रकारने अताव्यो छे नेम के औदारिक आदि शरीरो अथवा औदारिक आदि शरीरोना व्यापारथी निष्पादित द्रव्य आ शरीरादिने अणवोदय

अथ औपशमिकं भावं निर्दिशति—

मूलम्—से किं तं उवसमिण्? उवसमिण् दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उवसमे य उवसमनिप्फण्णे य । से किं तं उवसमे? उवसमे—मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं । से तं उवसमे । से किं तं उवसमनिप्फण्णे? उवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—उवसंतकोहे जाव उवसंतलोहे उवसंतपेजे उवसंतदोसे उवसंतदंसणमोहणिजे उवसंतमोहणिज्ज उवसमिया सम्मत्तलद्धी उवसमिया चरित्तलद्धी उवसंतकसाय छउमत्थवीथरागे । से तं उवसमनिप्फण्णे । से तं उवसमिण् ॥सू० १५३॥

छाया—अथ कोऽसौ औपशमिकः? औपशमिको द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—उपशमश्च उपशमनिष्पन्नश्च । अथ कोऽसावुपशमः—मोहनीयस्य कर्मण उपशमः खलु । सोऽसावुपशमः । अथ कोऽसावुपशमनिष्पन्नः? उपशमनिष्पन्नः अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—उपशान्त—क्रोधो यात्रदुपशान्तलोभ, उपशान्तप्रेम उपशान्तद्वेष उपशान्तदर्शनमोहनीय उपशान्तमोहनीयः औपशमिकी सम्यक्तलब्धिः औपशमिकी चारित्रलब्धिः उपशान्तकषायछद्मस्थवीतरागः । स एष उपशमनिष्पन्नः । स एष औपशमिकः ॥सू० १५३॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि ।

यिक भाव इसलिये कहे गये हैं कि औदारिक आदि शरीर नाम कर्म का विपाक मुख्यतया इन शरीर पुद्गलों में ही होता है । इसीलिये इन्हे पुद्गल विपाकी प्रकृतियों में परिणमित किया गया है । ॥सू० १५२॥

अब सूत्रकार औपशमिक भाव का कथन करते हैं—

“से किं तं उवसमिण्” इत्यादि ।

निष्पन्न औद्ययिक भाव इये प्रकट करवानुं कारण्णे अे छे के औदारिक आदि शरीर नामकर्मना विपाक मुख्यतये आ शरीरपुद्गलोभां न् थाय छे. तेथी तेभने पुद्गलविपाकी प्रकृतिओभां परिणुमित करायेत्त छे ॥सू० १५२॥

इये सूत्रकार औपशमिक भावनुं प्रतिपादन करे छे—

“से किं तं उवसमिण्” इत्यादि—

શિષ્યઃ પૃચ્છતિ-અથ કોડસૌ ઔપશમિકઃ ? इति । उत्तरयति-औपशमिकः-
 उपशमोपशमनिष्पन्नभेदेन द्विविधः प्रज्ञप्तः । तत्र-मोहनीयस्य कर्मण उपशम एव
 उपशम इत्युच्यते । 'णं' इति वाक्यालङ्कारे । अयं प्रथमो भेदोऽष्टाविंशतिविधस्य
 मोहनीयस्यैव कर्मण उपशमश्रेण्यां द्रष्टव्यः, 'मोहस्सेवोवसमो' (मोहस्यैवोपशमः)
 इति वचनात् । अथ द्वितीयं भेदमाह-अथ कौडसौ उपशमनिष्पन्नः ? इति प्रश्नः ।
 उत्तरयति-उपशमनिष्पन्न उपशान्तक्रोधाद्युपशान्तकषायच्छन्नस्थवीतरागान्तो

हे भदन्त ! (से किं तं उवसमि ए ?) वह औपशमिकभाव क्या है ?
 (उवसमि ए दुविहे पणत्ते).

उत्तर-औपशमिक भाव दो प्रकार का कहा गया है । (तंजहा)
 उसके वे दो प्रकार ये हैं-(उवसमे य उवसमनिष्फण्णे य) एक उपशम
 और दूसरा उपशम निष्पन्न है । (से किं तं उवसमे ?) हे भदन्त ! वह
 उपशम क्या है ?

उत्तर-(उवसमे मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं) अट्ठाईस प्रकार
 के समस्त मोहनीय कर्मका जो उपशम है वही उपशम है ।

यह उपशम ८ वे ९ वे १० वे ११ वे गुणस्थान रूप उपशमश्रेणी
 में होता है । (से तं उवसमे) इस प्रकार यह उपशम है । (से किं तं
 उवसमनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! वह उपशम निष्पन्न क्या है ?

उत्तर-(उवसमनिष्फण्णे अणेगविहे पणत्ते) उवशम निष्पन्न

શબ્દાર્થ-(સે કિં તં ઉવસમિ એ ?) હે લગવન્ । તે ઔપશમિકભાવનું
 સ્વરૂપ કેવું કહ્યું ?

ઉત્તર-(ઉવસમિ એ દુવિહે પણત્તે) ઔપશમિક ભાવ બે પ્રકારનો કહ્યો છે
 (તંજહા) તે પ્રકારો આ પ્રમાણે છે-(ઉવસમે ય ઉવસમનિષ્ફણ્ણે ય) (૧) ઉપશમ
 અને (૨) ઉપશમનિષ્પન્ન.

પ્રશ્ન-(સે કિં તં ઉવસમે ?) હે લગવન્ । તે ઉપશમનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(ઉવસમે મોહણિજ્જસ્સ કમ્મસ્સ ઉવસમેણં) ૨૮ પ્રકારના સમસ્ત
 મોહનીય કર્મના ઉપશમને જ અહીં ઉપશમ ભાવ કહેવામાં આવ્યો છે.
 આઠ, નવ, દસ અને અગિયારમાં ગુણસ્થાન રૂપ ઉપશમ શ્રેણીમાં આ ઉપ-
 શમ ભાવનો સદ્ભાવ રહે છે (સે તં ઉવસમે) આ પ્રકારનું ઉપશમનું સ્વરૂપ હોય છે.

પ્રશ્ન-(સે કિં તં ઉવસમનિષ્ફણ્ણે ?) હે લગવન્ । ઔપશમિક ભાવના
 ખીજા ભેદ રૂપ ઉપશમનિષ્પન્નનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(ઉવસમનિષ્ફણ્ણે અણેગવિહે પણત્તે) ઉપશમ નિષ્પન્ન ઔપશમિક

बोध्यः । अत्रेदं बोध्यम्—मोहनीयस्योपशमेन दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं चोप-
शान्तं भवति, एतद्द्वये उपशान्ते क्रोधादय उपशान्ता भवन्तीति । स एषोऽनन्त
रोक्तो द्वितीयो भेदो बोध्यः । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—स एष औपशमिक इति । इत्थं
निर्दिष्टो द्विविधोऽप्यौपशमिको भावः ॥ सू० १५३ ॥

औपशमिक भाव अनेक प्रकार का कहा गया है । (तंजहा) जैसे—(उव-
संत कोहे) क्रोध का उपशान्त होना (जाव उवसंतलोहे) यावत् लोभ
का उपशान्त होना, (उवसंतपेमे) प्रेम-राग-का उपशान्त होना
(उवसंत दोसे) द्वेष का उपशान्त होना (उवसंत दंसणमोहणिज्जे)
दर्शनमोहनीय का उपशांत होना (उवसंतमोहणिज्जे) मोहनीय कर्म
का उपशान्त होना (उपसमिया सम्मत्तलद्धी) औपशमिकी सम्यक्त्व
लब्धि, (उवसमिया चरित्तलद्धी) औपशमिकी चारित्रलब्धि (उवसंत
कसाय छउमत्थवीयरगे) उपशान्त कषाय, छद्मस्थवीत राग (से तं
उपसमनिष्फण्णे) इस प्रकार यह उपशम निष्पन्न औपशमिक
भाव हैं । (से तं उवसमिए) इस प्रकार दोनों प्रकार का औपशमिक
निर्दिष्ट हो चुका ।

भावार्थ—इस सूत्र द्वारा सूत्रकारने औपशमिक भाव का स्वरूप
दिखलाया है । उसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि उपशम से होनेवाला
औपशमिक भाव दो प्रकार का होता है । एक प्रकार का औपशमिक

भाव अनेक प्रकारना कइया छे. (तंजहा) जेम के—(उवसंते कोहे जाव उवसंते
लोहे) क्रोध उपशान्त थवे, मानउपशान्त थवुं, मायाउपशान्त थवी, दोस
उपशान्त थवे, (उवसंत पेमे) प्रेम (राग) उपशान्त थवे, (उवसंतदोसे) द्वेष
उपशान्त थवे, (उवसंत दंसण मोहणिज्जे) दर्शनमोहनीयनुं उपशान्त थवुं,
(उवसंतमोहणिज्जे) मोहनीय कर्मनुं उपशान्त थवुं, (उपसमिया सम्मत्तलद्धी)
औपशमिकी सम्यक्त्वलब्धि, (उवसमिया चरित्तलद्धी) औपशमिकी चारित्रलब्धि
(उवसंत कसाय छउमत्थवीयरगे) उपशान्त कषाय, छद्मस्थवीतराग, (से तं
उपसमनिष्फण्णे) धत्यादि रुप आ उपशमनिष्पन्न औपशमिक भाव छे (से तं
उवसमिए) आ प्रकारनुं अन्ने प्रकारना औपशमिक भावोनुं स्वरूप समज्जुं.

भावार्थ—आ सूत्र द्वारा सूत्रकारे औपशमिक भावना स्वरूपनुं निरूपण
कयुं छे. सूत्रकारे उपशम जनित औपशमिक भावना जे प्रकारे गताव्या छे.
अेक प्रकारना औपशमिक भाव अेवे होय छे के जे मात्र मोहनीयकर्मना

ભાવ વહ હૈ જો કેવલ મોહનીય કર્મ કે હી ઉપશમ સ્વરૂપ હોતા હૈ । તાત્પર્ય ઇસ કથન કા યહ હૈ કિ કર્મોં કી દસ અવસ્થાઓં મેં એક ઉપશાન્ત અવસ્થામી હૈ । જિન કર્મ પરમાણુઓં કી ઉદીરણા સંભવ નહીં અર્થાત્ જો ઉદીરણા કે અયોગ્ય હોતે હૈં વે ઉપશાન્ત કહલાતે હૈં । યહ અવસ્થા આઠોં કર્મોં મેં સમ્ભવિત હૈ । પ્રકૃત મેં ઇસ ઉપશાન્ત અવસ્થા સે પ્રયોજન નહીં હૈ । કિન્તુ અધઃ કરણ આદિ પરિણામોં સે જો મોહનીય કર્મ કા ઉપશમ હોતા હૈ પ્રકૃત મેં ડસી સે પ્રયોજન હૈ । ઇસીલિયે “મોહનીયસ્યૈવોપશમઃ” એસા પાઠ યહાં જાનના ચાહિયે વ્યોં કિ અન્યત્ર એસા હી પાઠ હૈ । મોહનીય કર્મ દર્શનમોહનીય કે ૩ ભેદોં ઓર ચરિત્રમોહનીયને ૨૫ ભેદોં કો લેકર ૨૮ પ્રકાર કા હૈ, ઇસ સમ્પૂર્ણ મોહનીય કર્મ કા ઉપશમ, ઉપશમ શ્રેણી મેં હોતા હૈ, ઇસલિયે મોહનીય કર્મ કા ઉપશમ રૂપ ઔપશમિક ભાવ ઉપશ્રેણી મેં હોના કહા ગયા હૈ । દૂસરા-ઉપશમ નિષ્પન્ન ઔપશમિક ભાવ અનેક પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ સો ડસકા તાત્પર્ય યહ હૈ કિ મોહનીય કે ઉપશમ સે દર્શન મોહનીય ઓર ચારિત્ર મોહનીય વે ડોનોં ઉપશાન્ત હો જાતે હૈં । ઇનકે ઉપશાન્ત હોને પર ક્રોધાદિક મી ઉપશાન્ત હો જાતે હૈં ઇસ પ્રકાર યહ ઔપશમિક ભાવ કા વિવેચન હૈ । ॥સૂ૦૧૫૩॥

ઉપશમ રૂપ હોય છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે-કર્મોની દસ અવસ્થાઓમાંની એક ઉપશમ અવસ્થા પણ છે. જે કર્મપરમાણુઓની ઉદીરણા શક્ય હોતી નથી, એટલે કે જે કર્મપરમાણુઓ ઉદીરણાને માટે અયોગ્ય હોય છે, તેમને ઉપશાન્ત કહે છે આ અવસ્થાને આઠ પ્રકારનાં કર્મોમાં સંભવ હોય છે. પ્રકૃતમાં (અહીં) આ ઉપશાન્ત અવસ્થાનું પ્રયોજન નથી, પરંતુ અધઃકરણ આદિ પરિણામોથી જે મોહનીય કર્મને ઉપશમ થાય છે, તેનું જ અહીં પ્રયોજન છે તેથી જ “મોહનીયસ્યૈવોપશમઃ” આ પ્રકારનો પાઠ અહીં સમજવો ભેદથી કારણ કે અન્યત્ર એવો જ પાઠ આવે છે.

દર્શન મોહનીયકર્મના ત્રણ ભેદો અને ચારિત્રમોહનીયના પચીસ ભેદો મળીને મોહનીયકર્મના કુલ ૨૮ પ્રકાર છે આ સંપૂર્ણ મોહનીયકર્મને ઉપશમ, ઉપશમ શ્રેણીમાં થાય છે તેથી મોહનીય કર્મના ઉપશમ રૂપ ઔપશમિક ભાવ ઉપશમ શ્રેણીમાં હોવાનું કહેવામાં આવ્યું છે. બીજા પ્રકારનો જે ઉપશમનિષ્પન્ન ઔપશમિક ભાવ છે, તે અનેક પ્રકારનો કહ્યો છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે-મોહનીયના ઉપશમથી દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીય, એ બંને ઉપશાન્ત થઈ જાય છે તેઓ ઉપશાન્ત થઈ જવાથી ક્રોધાદિક પણ ઉપશાન્ત થઈ જાય છે આ પ્રકારનું ઔપશમિક ભાવના સ્વરૂપનું વિવેચન અહીં કરવામાં આવ્યું છે. ॥સૂ૦૧૫૩॥

अथ क्षायिकं नाम निरूपयति-

मूलम्-से किं तं खइए? खइए दुविहे पणत्ते, तं जहा-
 खइए य खयनिप्फण्णे य । से किं तं खइए? खइए-अट्टण्हं
 कम्मपयडीणं खए णं से तं खइए। से किं तं खयनिप्फण्णे ?
 खयनिप्फण्णे अणेगविहे पणत्ते, तं जहा-उप्पण्णणाणदंसणधरे
 अरहा जिणे केवली, खीण आभिणिबोहियणाणावरणे, खीण
 सुयणाणावरणे, खीण ओहिणाणावरणे, खीणमणपज्जवणाणाव-
 रणे, खीणकेवलणाणावरणे, अणावरणे, निरावरणे, खीणावरणे,
 णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के, केवलदंसी, सब्बदंसी, खीणनिहे,
 खीणनिहानिहे, खीणपयले, खीणपयलापयले, खीण थीणगिद्धी,
 खीणचक्खुदंसणावरणे, खीणअचक्खुदंसणावरणे खीण-
 ओहिदंसणावरणे, अणावरणे, निरावरणे, खीणावरणे,
 दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणसायावेयणिजे खीण-
 असायावेयणिजे, अवेयणे, निव्वेयणे खीणवेयणे,
 सुभासुभवेयणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणकोहे, जाव खीण-
 लोहे, खीणपेजे, खीणदोसे, खीणदंसणमोहाणिजे, खीण-
 चरित्तमोहाणिजे, अमोहे, निम्मोहे, खीणमोहे, मोहाणिज्जकम्म-
 विप्पमुक्के, खीणणेरइयाउए, खीणतिरिक्खजोणिआउए,
 खीणमणुस्साउए, खीणदेवाउए, अणाउए, निराउए, खीणा-
 उए, आउकम्मविप्पमुक्के, गइजाइसरीरंगोवंगबंधणसंघायण-
 संघयणसंठाण अणेगबोदि विंदसंघायविप्पमुक्के, खीणसुभणामे,
 खीण असुभणामे, अणामे निण्णामे, खीणनामे, सुभासुभ-

णामकर्मविप्पमुक्के, खीणउच्चागोए, खीणणीयागोए, अगोए,
 निग्गोए, खीणगोए, उच्चणीयगोत्तकम्मविप्पमुक्के, खीणदाणं-
 तराए, खीणलाभंतराए, खीणभोगंतराए, खीणउवभोगंतराए,
 खीणवीरियंतराए, अणंतराए, णिरंतराए, खीणंतराए, अंतराय-
 कम्मविप्पमुक्के, सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, परिणिव्वुए, अंतगडे, सव्व-
 दुक्खप्पहीणे । से तं खयनिष्फण्णे । से तं खइए ॥सू०१५४॥

छाया—अथ कोऽसौ क्षायिकः ? क्षायिको द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—क्षायि-
 कश्च क्षयनिष्पन्नश्च । अथ कोऽसौ क्षायिकः ? क्षायिकः—अष्टानां कर्मप्रकृतीनां
 क्षयः खलु । सोऽसौ क्षायिकः । अथ कोऽसौ क्षयनिष्पन्नः ? क्षयनिष्पन्नोऽनेक-
 विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अरहा जिनः केवली क्षीणाभिनिबो-
 धिकज्ञानावरणः क्षीणश्रुतज्ञानावरणः क्षीणावधिज्ञानावरणः क्षीणमनःपर्यवज्ञाना-
 वरणः क्षीणकेवलज्ञानावरणः अनावरणः निरावरणः क्षीणावरणो ज्ञानावरणीयकर्म-
 विप्रमुक्तः केवलदर्शी सर्वदर्शी, क्षीणनिद्रः क्षीणनिद्रानिद्रः क्षीणप्रचलः क्षीणप्रचला
 प्रचलः क्षीणस्त्यानगृद्धिः, क्षीणचक्षुदर्शनावरणः क्षीणाचक्षुदर्शनावरणः क्षीणावधि-
 दर्शनावरणः क्षीणकेवलदर्शनावरणः अनावरणः निरावरणः क्षीणावरणः दर्शनावर-
 णीयकर्मविप्रमुक्तः । क्षीणसातावेदनीयः क्षीणासातावेदनीयः अवेदनो निर्वेदनः
 क्षीणवेदनः शुभाशुभवेदनीयकर्मविप्रमुक्तः । क्षीणक्रोधो यावत् क्षीणलोभः क्षीणप्रेमा
 क्षीणद्वेषः क्षीणदर्शनमोहनीयः क्षीणचारित्रमोहनीयः अमोहो निर्मोहः क्षीणमोहो
 मोहनीयकर्मविप्रमुक्तः । क्षीण नैरयिकायुष्कः क्षीणतिर्यग्योनिकायुष्कः क्षीणमनुष्या-
 युष्कः क्षीणदेवायुष्कः अनायुष्को निरायुष्कः क्षीणायुष्कः आयुर्कर्मविप्रमुक्तो, गति
 जातिशरीराङ्गोपाङ्गबन्धनसंघातनसंहननसंस्थानानेकशरीरवृन्दसंघातविप्रमुक्तः क्षी-
 णशुभनामा क्षीणाशुभनामा अनामा निर्नामा क्षीणनामा शुभाशुभनामकर्मविप्रमुक्तः ।
 क्षीणोच्चगोत्रः क्षीणनीचगोत्रः अगोत्रः निर्गोत्रः उच्चनीचगोत्रकर्मविप्रमुक्तः । क्षीणदा-
 नान्तरायः क्षीणलाभान्तरायः क्षीणभोगान्तरायः क्षीणवीर्यान्तरायः अनन्तरायो
 निरन्तरायः क्षीणान्तरायः अन्तरायकर्मविप्रमुक्तः । सिद्धो बुद्धो मुक्तः परिनिवृत्तः
 अन्तकृतः सर्वदुःखप्रहीणः । सोऽसौ क्षयनिष्पन्नः । सोऽसौ क्षायिकः ॥सू०१५४॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ कोऽसौ क्षायिकः? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरयति—क्षायिकः क्षय एव, क्षयेण निष्पन्नो वा क्षायिकः। स द्विविधः प्रज्ञप्तः। द्वैविध्यमेवाह—तद्यथा—क्षायिकश्च क्षयनिष्पन्नश्च। तत्र—क्षायिकः खलु अष्टानां कर्मप्रकृतीनां=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध-कर्मप्रकृतीनां क्षयः। क्षयनिष्पन्नस्तु अनेकविधः प्रज्ञप्तः। अनेकविधत्वमाह—

अथ सूत्रकार क्षायिक भाव का निरूपण करते हैं—

“से किं तं खइए ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं खइए ?) हे भदन्त ! वह क्षायिक क्या है ?

उत्तर—(खइए दुविहे पणत्ते) क्षायिक दो प्रकार का कहा गया है—
(तंजहा) (जैसे—खइए य खयनिष्फण्णे य) एक क्षय रूप क्षायिक और दूसरा क्षय निष्पन्न। (से किं तं खइए) हे भदन्त ! वह क्षायिक क्या है? (अट्टण्हं कम्मपयडीणं खएणं) आठ कर्म प्रकृतियों का जो क्षय है वही क्षायिक है। (से तं खइए) इस प्रकार वह यह क्षायिक है (से किं तं खयनिष्फण्णे) हे भदन्त ! वह क्षयनिष्पन्न क्षायिक क्या है? (खयनिष्फण्णे अणेगविहे पणत्ते)।

उत्तर—क्षय निष्पन्न क्षायिक भाव अनेक प्रकार का है। (तंजहा) जैसे—(उत्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली) उत्पन्न ज्ञान दर्शन को

७वे सूत्रकार क्षायिक लावनुं निरूपणु करे छे—

“से किं तं खइए ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं खइए ?) हे भगवन् ! पूर्वप्रश्नान्त क्षायिक लावनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(खइए दुविहे पणत्ते) क्षायिक लाव जे प्रकारने क्खी छे. (तंजहा) ते जे प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(खइए य खयनिष्फण्णे य) (१) क्षय रूप क्षायिक अने (२) क्षयनिष्पन्न.

प्रश्न—(से किं तं खइए ?) हे भगवन् ! ते क्षायिक लावनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर—(अट्टण्हं कम्मपयडीणं खएणं) आठ कर्मप्रकृतिओना क्षयनुं नाम ज क्षायिक छे. (से तं खइए) क्षायिकनुं आ प्रकारनुं स्वरूप छे.

प्रश्न—(से किं तं खयनिष्फण्णे ?) हे भगवन् ! क्षायिक लावना णीला लेह रूप क्षयनिष्पन्न क्षायिक लावनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(खयनिष्फण्णे अणेगविहे पणत्ते) क्षयनिष्पन्न क्षायिकलाव अनेक प्रकारने क्खी छे. (तंजहा) जेम के... (उत्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली) उत्पन्न ज्ञानदर्शनधारी अर्हंत जिन केवली क्षयनिष्पन्न क्षायिक लाव रूप छे. जेवी

तद्यथा-उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः-उत्पन्नयोः-अपनीतमलादर्शमण्डलप्रभावात् सकल-
तदावरणापगमादभिव्यक्तयोः ज्ञानदर्शनयोर्धरः=धारकः, अरहाः-नास्ति रहः=
रहस्यं यस्यासौ अरहाः-अविद्यमानरहस्यः, नास्य किंचिदपि गोप्यमस्तीति भावः,
जिनः-आवरणशत्रुजेतृत्वात्, केवली-केवलं=संपूर्णं ज्ञानमस्यास्तीति केवली-
केवलज्ञानवान्, क्षीणाभिनिबोधिकज्ञानावरणः-क्षीणमाभिनिबोधिकज्ञानावरणं

धारण करनेवाले अर्हंत जिन केवली-जिस प्रकार-मल के अपगम से
आदर्श मण्डल की प्रभा में पदार्थ प्रतिबिम्बित होने लगते हैं, उसी
प्रकार-मूलरूप ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों के विनाश से उत्पन्न
निर्मल अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन में त्रिकालवर्ति समस्त ज्ञेय
झलकने लगते हैं ऐसे ज्ञान और दर्शन को जो धारण करते हैं तथा जो
अरहा-जिनके लिये-कोई भी जगत का पदार्थ गोप्य नहीं हैं। आवरण
रूप शत्रु के विजेता होने से जो जिन हैं, तथा जिनका ज्ञान संपूर्ण है,
इसलिये जो केवली हैं, यहां केवल शब्द का अर्थ सम्पूर्ण ज्ञान है। इस
सम्पूर्ण ज्ञान रूप केवल ज्ञान से जो युक्त हैं ऐसे वे उत्पन्न ज्ञानदर्शन
को धारण करनेवाले अरहा जिन केवली क्षयनिष्पन्न क्षायिक भावरूप हैं।

अब सूत्रकार प्रत्येक कर्म के नष्ट होने से जो २ नाम होते हैं उनका यहाँ
से कथन करते हैं-यह कथन सिद्धपरमैष्टी की अपेक्षा से जानना चाहिये-
क्यों कि वे ही प्रत्येक कर्म के क्षय से क्षायिकभाव रूप निष्पन्न होते हैं-

रीते अरीसा उपरनो भेद हर करी नाभ्रवामां आवे तो अरीसाभां पदार्थनुं
रूपप्र प्रतिभिंभ देभाय छे, अेज प्रभाणु ज्ञानावरणु अने दर्शनावरणु इप
कर्म मण हर थछ नवाने दीधे उत्पन्न थयेला निर्भण, अनंत ज्ञान अने
अनंत दर्शनभां त्रिकाणवतीं समस्त ज्ञेय पदार्थी रूपप्र इपे देभवा भांडे छे.
अेवा ज्ञान अने दर्शनना धारक अर्हंत जिन केवली क्षयनिष्पन्न क्षायिक
भाव इप छे. 'अरहा'-जेमने भाटे जगतनो केाँ पणु पदार्थ गोप्य
(अदृश्य) नथी अथवा जेमणु काम, क्रोधादि शत्रुअेनो नाश करी नाभ्रये
छे अेवां तीर्थंकर लगवानेने अरहा अथवा अर्हंत कहे छे. कर्मारि इप
शत्रुअे पर विजय भेणवनारा डोवाथी तेमने जिन कहा छे- तेमनुं ज्ञान
संपूर्णु डोवाथी तेमने केवली कहा छे केवलज्ञान अेटले संपूर्णुज्ञान.

इसे सूत्रकार प्रत्येक कर्मनो नाश थवाथी जे जे नाम थाय छे, तेमनुं
निष्पणु करे छे आ कथन सिद्ध परमात्मानी अपेक्षाअे करवामां आण्युं छे
अेम समजपुं, कारणु के तेमना प्रत्येक कर्मनो क्षय थवाने कारणु तेअो न
क्षायिक भाव इपे निष्पन्न थाय छे.

यस्य स तथा, एवं-क्षीणश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणरूपाणि चत्वारि पदानि बोधयानि । तथा-अनावरणः-अविद्यमानमावरणं यस्य त तथा, विमलप्रकाशवत्वात् निर्मलाकाशस्थितचन्द्रवत् । निरावरणः-निर्गतम् आवरणं यस्य स तथा समस्तावरण-

ज्ञानावरण कर्म पांच प्रकार का है—

१ मति ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यव-ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण जीव जब अहंत जिन केवली बनता है, तब उसका सम्पूर्ण ज्ञानावरणकर्म नष्ट हो जाता है—इसलिये (स्त्रीण आभिनिवोहियणाणावरणे) क्षीण हो गया है आभिनिवोधिक ज्ञानावरण जिसका (स्त्रीणसुयणाणावरणे) क्षीण हो गया है श्रुतज्ञाना-वरण कर्म जिसका (स्त्रीणओहियणाणावरणे) क्षीण हो गया है अवधि ज्ञानावरण कर्म जिसका (स्त्रीण मणपज्जवणाणावरणे) क्षीण हो गया है मनःपर्यवज्ञानावरण जिसका, (स्त्रीणकेवलणाणावरणे) क्षीण हो गया है केवलज्ञानावरण जिसका, ऐसा होने के कारण क्षीणाभिनिवोधिक ज्ञानावरण, क्षीण श्रुतज्ञानावरण, क्षीणावधिज्ञानावरण, क्षीण मनःपर्यव-ज्ञानावरण, क्षीण केवलज्ञानावरण ये भिन्न २ नाम समस्त ज्ञानावर-णीय कर्म के क्षय हो जाने की अपेक्षा से निष्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार से (अणावरणे निरावरणे, स्त्रीणावरणे, णाणावरणिज्जकम्मविप्प-मुक्के) जब समस्त आवरण कर्म नष्ट हो जाता है तब वह आत्मा

ज्ञानावरण-कर्म पांच प्रकारनां छे—

(१)- मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरण, (४) मनःपर्यवज्ञानावरण अने (५) केवलज्ञानावरण.

एव न्यादे अहंत जिन केवली अने छे, त्यादे तेना समस्त ज्ञानाव-रण कर्मोना नाश थछ जय छे, तेथी ते (स्त्रीण आभिनिवोहिय णाणावरणे) क्षीण आभिनिवोधिक ज्ञानावरणवाणे, (स्त्रीण सुयणाणावरणे) क्षीण श्रुतज्ञानावरण कर्मवाणे, (स्त्रीण ओहियणावरणे) क्षीण अवधिज्ञानावरण कर्मवाणे, (स्त्रीण मणपज्जवणाणावरणे) क्षीण मनःपर्यवज्ञानावरण कर्मवाणे अने (स्त्रीण केवल-णाणावरणे) क्षीण केवलज्ञानावरण कर्मवाणे थछ जय छे ते कारणे समस्त ज्ञानावरणीय कर्मोना क्षय थछ जवाने कारणे तेना आ पांच नामो निष्पन्न थय छे. (१) क्षीण आभिनिवोधिकज्ञानावरण, (२) क्षीण श्रुतज्ञानावरण, (३) क्षीण अवधिज्ञानावरण, (४) क्षीण मनःपर्यवज्ञानावरण अने (५) क्षीण केवलज्ञानावरण अने प्रभाण्णे (अणावरणे, निरावरणे, स्त्रीणावरणे, णाणावरणिज्जकम्म-विप्पमुक्के) न्यादे समस्त आवरण कर्मोना नाश थछ जय छे त्यादे ते आत्मा

रहितत्वात् । विगतमलस्वर्णवत्, क्षीणावरणः—क्षीणो निःसत्ताकीभूतः आवरणो यस्य स तथा, अपुनर्भावावरणरहितत्वात् । अपोकृतमलावरणजात्यमणिवत् । उपसंहरन्नाह-ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्तः—ज्ञानावरणीयेन कर्मणा विविधैः=अनेकप्रकारैः प्रकर्षेण मुक्तः । एषां पदानां नयमतभेदेन भेदो बोध्यः । इत्थं ज्ञानावरणीयक्षयापेक्षाणि नामान्युक्तानि ।

निर्मल आकाश में स्थितपूर्ण चन्द्र के जैसा निर्मल प्रकाशवाला हो जाता है इसलिये अविद्यमान आवरणवाला होने से उसका “अनावरण” ऐसा नाम हो जाता है । अतः अनावरण यह उसकी नाम रूप अवस्था आवरण के क्षय से निष्पन्न होने के कारण क्षायिक भाव रूप है । आगे किसी भी प्रकार के आवरण कर्म का संबन्ध फिर उस आत्मा से होता नहीं है इसलिये वह निरावरण अवस्था विशिष्ट बन जाता है । तब उसका नाम “निरावरण” ऐसा हो जाता है । इसी प्रकार वह निःसत्ता की भूत आवरणवाला होने के कारण क्षीण मलावरणवाले जात्यमणि के जैसा “क्षीणावरण” इस नामवाला बनजाता है । इस प्रकार विविध प्रकार से ज्ञानावरणीय कर्म द्वारा विप्रमुक्त बने हुए उस आत्मा के ये पूर्वोक्त सप्त नाम ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय की अपेक्षा से कहे गये हैं । यद्यपि शब्दत्रय की अपेक्षा से इनमें कोई भी भेद नहीं है इसलिये

निर्मल आकाशमां रहेला पूर्णचन्द्रता समान विमल प्रकाशवाणे अनी नय छे. आ रीते अविद्यमान आवरणवाणे डोवाने लीधे तेतु “अनावरण” नाम निष्पन्न थाय छे आ ‘अनावरण’ नाम रूप तेनी अवस्था आवरणना क्षयथी उत्पन्न थयेकी डोवाने कारणे क्षायिक लावरण गणाय छे.

अविद्यमानां केअ पणु प्रकारनु आवरण कर्म ते आत्माने लागवातुं नथी, तेथी ते आत्मा निरावरण अवस्था संपन्न अनी नय छे. तेथी तेतुं ‘निरावरण’ नाम निष्पन्न थय नय छे अेअ प्रमाणे ते आत्मा निःसत्ता-भूत आवरणवाणे (आवरणना अस्तित्व विनाने) अनी नवाने कारणे क्षीण मलावरणवाणे उत्कृष्ट मणिनी जेम “क्षीणावरण” आ नामवाणे अनी नय छे आ प्रकारे विविध प्रकारे ज्ञानावरणीय कर्ममांथी विप्रमुक्त थयेला ते आत्माने पूर्वोक्त सप्त नाम ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयनी अपेक्षाअे कडे-वामां आव्यां छे जे के शब्दनयनी अपेक्षाअे ते नामे वरअे केअ पणु लेड न डोवाने कारणे आ शब्दने पर्यायवाची शब्दे न गणी शकय छे, परंतु

अथ दर्शनावरणीयक्षयापेक्षाणि नामान्याह- केवलदर्शी-केवलेन=क्षीणावरणेन दर्शनेन पश्यतीतिकेवलदर्शी-सर्वं पश्यतीति सर्वदर्शी-क्षीणदर्शनावरणत्वात् सकल-पदार्थदर्शी । एवं क्षीणनिद्रादीनि पञ्चनामानि तथा दर्शनावरणचतुष्कक्षयसम्भ-वीन्यपराण्यपि क्षीणचक्षुर्दर्शनावरणादीनि नामानि बोध्यानि । तत्र निद्रापञ्चक लक्षणमेवमवगन्तव्यम्-

ये पर्यायवाची शब्द हैं । फिर भी समभिरूढनय की अपेक्षा से इनके वाच्यार्थ में भिन्नता होने से इनमें भेद है, ऐसा जानना चाहिये ।

अब सूत्रकार दर्शनावरणीय कर्म के क्षय की अपेक्षा से जायमान नामों को कहते हैं-(केवलदंसी) आत्मा से जब दर्शनावरणीय कर्म सर्वथा निर्मूल हो जाता है, तब वह आत्मा, क्षीणावरणवाले दर्शन से, सामान्यरूप में समस्त ज्ञेयों को देखता है, इसलिये केवलदर्शी वह कहलाने लगता है । (सव्वदंसी) क्षीण दर्शनावरणवाला होने से समस्त पदार्थों का वह दृष्टा बन जाता है । इसलिये वह सर्वदर्शी कहलाता है । (क्षीणनिहे, क्षीणनिहानिहे, क्षीणपयले, क्षीणपयलापयले, क्षीणधीण-गिद्धी, क्षीणचक्खुदंसणावरणे, क्षीण अचक्खुदंसणावरणे, क्षीण ओहि-दंसणावरणे क्षीण केवलदंसणावरणे अणावरणे, निरावरणे, क्षीणा-वरणे) निद्रादर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने से वह क्षीण निद्र हो जाता है; निद्रानिद्रा दर्शनावरणीयकर्म निर्मूल होने से क्षीणनिद्रानिद्र, प्रचला दर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने से क्षीण प्रचल,

संभलिइठ नयनी अपेक्षाये तेमना वाच्यार्थमां लिन्तता डोवाना कारणे तेमनी वच्ये लेह (अंतर-तक्षावत) छे, अम समजवु जेधअे.

इसे सूत्रकार दर्शनावरणीय कर्मना क्षयनी अपेक्षाये जे नामो निष्पन्न थाय छे तेमनुं कथन करे छे-(केवलदंसी) आत्मा परथी ज्यारे दर्शनावरणीय कर्मो सर्वथा निर्मूल थय जय छे त्यारे ते आत्मा, क्षीणावरणवाणा दर्शन वडे सामान्य इये समस्त ज्ञेय पदार्थोने हेभी शडे छे, तेथी तेने 'केवलदर्शी' कडेवाभां आवे छे. (सव्वदंसी) क्षीणदर्शनावरणवाणे थय जवाने कारणे ते आत्मा समस्त पदार्थोने द्रष्टा जनी जय छे, तेथी तेने "सर्वदर्शी" कडे-वाभां आवे छे. (क्षीणनिहे, क्षीणनिहा निहे, क्षीणपयले, क्षीणपयलापयले, क्षीण धीणगिद्धी, क्षीण चक्खुदंसणावरणे, क्षीण अचक्खुदंसणावरणे, क्षीण ओहिदंसणावरणे, क्षीण केवलदंसणावरणे, अणावरणे निरावरणे, क्षीणावरणे) ते आत्माना निद्रा-वरणीय कर्मना नाश थय जवाने लीधे ते 'क्षीणनिद्र' कडेवाय छे, तेना निद्रानिद्रा दर्शनावरणीय कर्म निर्मूल थय जवाथी ते 'क्षीणनिद्रानिद्र' कडेवाय छे. तेना प्रचला दर्शनावरणीय कर्म नष्ट थय जवाथी तेने 'क्षीण-

“सुह पडिबोहा निदा दुहपडिबोहा य निदनिदाय ।
पयला होइ ठियस्स उ, पयलापयला य चंक्रमओ ॥१॥
अइसंक्लिद्धकम्माणु वेयणो होइ थीणगिद्धी य ।
महनिदा दिणचितियवावार पसाहणी पायं ॥२॥”

छाया—सुखप्रतिबोधा निद्रा दुःखप्रतिबोधा च निद्रानिद्रा च ।
प्रचला भवति स्थितस्य प्रचलाप्रचला च चङ्गमतः ॥१॥
अतिसंक्लिष्टकर्मानुवेदनो भवति स्त्यानगृद्धिस्तु ।
महानिद्रा दिनचिन्तितव्यापार प्रसाधनीप्रायः ॥२॥इति ।

प्रचला प्रचला दर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने से क्षीण प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणीय कर्म क्षीण होने से क्षीण स्त्यानगृद्धि चक्षुर्दर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने से क्षीण चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण कर्मनष्ट होने से क्षीण अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण कर्म नष्ट होने से क्षीणावधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण कर्म नष्ट होने से क्षीण केवलदर्शनावरण कहलाने लगता है । अर्थात् दर्शनावरण कर्म के सर्वथा विगम क्षय हो जाने से उस आत्मा के ये पूर्वोक्त नाम निष्पन्न हो जाते हैं । निद्रा पंचक का लक्षण इस प्रकार से है—सुहपडिबोहा—इत्यादि—जिस कर्म के उदय से सुख पूर्वक जाग सके ऐसी निद्रा आवे वह निद्रा दर्शनावरण कर्म है । जिसके उदय से निद्रा से जागना अत्यन्त दुष्कर हो वह निद्रानिद्रा दर्शनावरण-

प्रचल' कडेवाय छे. तेना प्रचलाप्रचला दर्शनावरणीय कर्म नष्ट थछ जवाथी तेने क्षीणप्रचलाप्रचल' कडेवाय छे, तेना स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणीय कर्मने क्षय थछ जवाथी तेने 'क्षीणस्त्यानगृद्धि' कडेवाय छे. ते आत्माना चक्षुर्दर्शनावरणीय कर्मने नाश थछ जवाथी तेने 'क्षीणचक्षुर्दर्शनावरण' कडेवाय छे. तेना अचक्षुर्दर्शनावरण कर्मने नाश थछ जवाथी तेने 'क्षीणअचक्षुर्दर्शनावरण' कडेवाय छे. तेना अवधिदर्शनावरण कर्मने क्षय थछ जवाथी तेने 'क्षीणावधिदर्शनावरण' कडेवाय छे तेना केवल दर्शनावरण कर्मने नाश थछ जवाथी तेने 'क्षीणकेवलदर्शनावरण' कडेवाय छे अटले के दर्शनावरण कर्मने संपूर्णतः नाश थछ जवाने कारणे ते आत्माना पूर्वोक्त नामो निष्पन्न थाय छे.

निद्रापंचकनां लक्षण नीचे प्रमाणे समजवां—

“सुहपडिबोहा” इत्यादि—जे कर्मना उदयथी सुखपूर्वक जगी शक्या अथी निद्रा आवी जय छे, ते कर्मने निद्रादर्शनावरण कर्म कडे छे जे कर्मना उदयथी निद्रामांथी जगवानुं अत्यन्त दुष्कर थछ जय छे, ते कर्मने निद्रानिद्रा

तथा-अनावरणादिशब्दाः पूर्वं ज्ञानावरणाभावापेक्षया प्रोक्ताः, अत्रतु दर्शनावरणा-
भावापेक्षया बोध्याः । उपसंहरन्नाह-दर्शनावरणीयकर्मविप्रमुक्त इति ।

कर्म है । जिस कर्म के उदय से बैठे २ या खड़े २ ही नींद आ जावे वह प्रचलादर्शनावरण कर्म है । जिस कर्म के उदय से चलते २ ही निद्रा आ जावे वह प्रचला प्रचला दर्शनावरण कर्म है । स्त्यानगृद्धि यह महानिद्रा है । इस निद्रावस्था में, जागृत अवस्था में सोचे हुए काम करने का सामर्थ्य प्रकट हो जाता है । जिस जीव को अति संक्लिष्ट कर्मका उदय होता है उसी जीव के यह स्त्यानगृद्धि होती है । इस निद्रा में सहज बल से कई अनेक गुण अधिक बल प्रकट होता है ।— पहिले जिस प्रकार ज्ञानावरण कर्म के अभाव को लेकर अनावरण निरावरण, क्षीणावरण, इन शब्दों का अर्थ प्रकट किया गया है उसी प्रकार यहां पर दर्शनावरण कर्म के अभाव की अपेक्षा लेकर इन शब्दों का अर्थ लगा लेना चाहिये । (दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के इस प्रकार ये पूर्वोक्त नाम दर्शनावरणीय कर्म के क्षय की अपेक्षा से सूत्रकार ने कहे हैं ।

दर्शनावरण कर्म कडे छे जे कर्मना उदयथी जेहां जेहां छे जिलां जिलां निद्रा आवी जय छे, ते कर्मने प्रचलादर्शनावरण कर्म कडे छे. जे कर्मना उदयथी आलतां आलतां निद्रा आवी जय छे, ते कर्मने प्रचलाप्रचला दर्शनावरण कर्म कडे छे 'स्त्यानगृद्धि' आ यह महानिद्रानुं वाचक छे. आ प्रकारनी निद्रावस्थाभां जगृत अवस्थाभां जे कामे करवाने विचार करवाभां आये होय ते काम करवानुं सामर्थ्य प्रकट थर जय छे. जे जवमां अति संक्लिष्ट कर्मना उदय होय छे, जेज जवमां आ स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणने सहलाव रडे छे स्वाभाविक भण करतां डेटलाय गणुं अधिक भणने आ प्रकारनी निद्राभां अनुभव थाय छे.

आगण ज्ञानावरण कर्मना अलावनी अपेक्षाजे अनावरण, निरावरण अने क्षीणावरण, आ पहाने अर्थ प्रकट करवाभां आये छे जेज प्रकारे अही दर्शनावरण कर्मना अलावने अनुलक्षीने अनावरण, निरावरण अने क्षीणावरणने अर्थ समज लेवे जेधजे.

(दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के) सूत्रकारे दर्शनावरणीय कर्मना क्षयनी अपेक्षाजे केवणदर्शीथी लरने निरावरण पर्यन्तना उपर्युक्त नामो प्रकट कर्यां छे.

इत्थं दर्शनावरणीयक्षयापेक्षया नामान्युक्त्वा सम्प्रति वेदनीयकर्मक्षयापेक्षाणि नामानि प्रतिपादयितुमाह—‘खीणसायावेयणिज्जे’ इत्यादि। वेदनीयं द्विविधं भवति—सातम् असातं च, तत्र—सातं प्रीत्युत्पादकम्, असातम् अप्रीत्युत्पादकम्, सत्क्षये क्षीणसातावेदनीयः क्षीणासातावेदनीयश्च भवति। तथा—अवेदनः=वेदना-रहितः—अयम् अल्पवेदनोऽपि व्यवह्रीयते। तथा—निर्वेदनः=सर्ववेदनाभ्यो रहितः। कालान्तरेऽपि वेदना न भवतीति सूचयितुमाह—क्षीणवेदनः—क्षीणा=अपुनर्भाविताया

अब वे वेदनीय कर्म के क्षय की अपेक्षा से जायमान नामों को कहते हैं—

(खीणसायावेयणिज्जे खीण असायावेयणिज्जे) वेदनीय कर्म दो प्रकार का है—एक साता वेदनीय कर्म और दूसरा असाता वेदनीय कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को सुख का अनुभव हो वह साता वेदनीय और जिसके उदय से प्राणी को दुःख का अनुभव हो वह असाता वेदनीय है। इन दोनों प्रकार के वेदनीय कर्म के क्षय होने पर जीव क्षीणसातावेदनीय और क्षीणासातावेदनीय हो जाता है। (अवेयणे, निव्वेयणे) वेदनारहित हो जाता है। अवेदन शब्द का अर्थ अल्प वेदनावाला ऐसा भी होता है। क्योंकि अवेदन में जो “अ” है वह ईषदर्थ—में भी प्रयुक्त होता है। इसलिये निर्वेदन—सर्व प्रकार की वेदना से वह रहित बन जाता है। (खीणवेयणे) कालान्तर में भी वेदना इस जीव को नहीं होती है—इसलिये क्षीणवेदन अर्थात् अपुनर्भाविवेदन हो

હવે વેદનીય કર્મના ક્ષયની અપેક્ષાએ જે નામે નિષ્પન્ન થાય છે, તે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—(ખીણસાયાવેયણિજ્જે ખીણ અસાયાવેયણિજ્જે) વેદનીય કર્મના બે પ્રકાર પડે છે—(૧) સાતાવેદનીય કર્મ અને (૨) અસાતાવેદનીય કર્મ જે કર્મના ઉદયથી જીવને સુખનો અનુભવ થાય છે, તે કર્મને સાતાવે-નીય કર્મ કહે છે જે કર્મના ઉદયથી જીવને દુઃખનો અનુભવ થાય છે, તે કર્મને અસતાવેદનીય કર્મ કહે છે આ બંને પ્રકારના વેદનીય કર્મોના ક્ષય થઈ જવાથી જીવ “ક્ષીણસાતાવેદનીય” અને “ક્ષીણાસાતાવેદનીય” બની જાય છે. (અવેયણે, નિવ્વેયણે) વેદનીય કર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી આત્મા વેદનારહિત બની જાય છે. “અવેદન” પદ અલ્પવેદનાનું પણ વાચક છે, કારણ કે ‘અવેદન’ પદમાં જે ‘અ’ ઉપસર્ગ છે તે અલ્પતાના અર્થમાં પણ પ્રયુક્ત થાય છે તેથી સૂત્રકારે ‘નિર્વેદન’ પદના પ્રયોગ દ્વારા એ વાત પ્રકટ કરી છે કે વેદનીય કર્મનો સર્વથા ક્ષય થવાથી આત્મા સર્વપ્રકારની વેદનાથી રહિત થઈ જાય છે. (ખીણવેયણે) કાલાન્તરે (ભવિષ્યમાં) પણ તે જીવને વેદનાનો અનુભવ કરવો પડતો નથી તેથી તે જીવને “ક્ષીણવેદન” કહ્યો છે.

सर्वथा विनष्टा वेदना यस्य स तथा । एतदुपसंहरन्नाह—शुभाशुभवेदनीयकर्मविप्रमुक्त इति । अथ मोहनीयक्षयापेक्षाणि नामानि ग्रहणयितुमाह—‘खीणक्रोहे’ इत्यादि । मोहनीयं द्विविधं भवति—दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं च । तत्र—दर्शनमोहनीयं सम्यक्तन्मिश्र मिथ्यात्वभेदात् त्रिविधं भवति । चारित्रमोहनीयं तु क्रोधादिकषाय हास्यादि नोकषायभेदात् द्विविधं भवति । एतत्क्षये यानि नामानि भवन्ति तान्याह सूत्रकारः—क्षीणक्रोधो यावत् क्षीणलोभः । एतानि नामानि सुबोध्यानि । तथा—क्षीणप्रेमा—क्षीणं प्रेम=मायालोभो यस्य स तथा—अपगतमायालोभ इत्यर्थः ।

जाता है, (सुभासुभवेयणिज्जकम्मविप्पमुक्के) शुभ और अशुभवेदनीय कर्म से विप्रमुक्त हुए उस जीव के ये पूर्वोक्त क्षीण सातावेदनीय आदि नाम हैं ।

अब सूत्रकार मोहनाय कर्म के क्षय से जो नाम होते हैं उन्हें कहते हैं—

(खीण क्रोहे जाव खीणलोहे) मोहनीय कर्म दो प्रकार का होता है एक दर्शन मोहनीय और दूसरा चारित्र मोहनीय—इनमें मिथ्यात्व, सम्यक्तन्मिथ्यात्व और मिश्र के भेद से दर्शन मोहनीय तीन प्रकार का है—तथा चारित्र मोहनीय, क्रोधादिकषाय और हास्यादिक नोकषाय के भेद से दो प्रकार का है—इस दोनों प्रकार के मोहनीय के क्षय होने पर जो नाम होते हैं उन्हें सूत्रकारने क्षीण क्रोध यावत् क्षीण लोभ इन शब्दों द्वारा प्रकट किया है । ये नाम सुबोध्य हैं । (खीणपेज्जे) प्रेम शब्द

(सुभासुभवेयणिज्ज कम्मविप्पमुक्के) शुभ अने अशुभ वेदनीय कर्मथी विमुक्ता थयेला ते श्रवणा क्षीणसातावेदनीय आदि पूर्वोक्ता नामो समज्वां.

इवे सूत्रकार मोहनीय कर्मना क्षयथी आत्मानां जे जे नामो निष्पन्न थाय छे तेभनुं निरूपण करे छे—

(खीण क्रोहे जाव खीण लोहे) मोहनीय कर्मना नीचे प्रमाणे जे प्रकारे पडे छे—(१) दर्शनमोहनीय अने (२) चारित्र मोहनीय मिथ्यात्व, सम्यक्तन्मिथ्यात्व अने मिश्रता लेहथी दर्शनमोहनीय कर्म त्रय प्रकारना कक्षां छे. क्रोधादिक कषाय अने हास्यादिक नोकषायना लेहथी चारित्र मोहनीय कर्म जे प्रकारनुं कहुं छे. आ जन्ने प्रकारना मोहनीय कर्मना आत्मानांथी क्षय थछ ज्वाथी आत्मानां नीचेनां नामो निष्पन्न थाय छे—क्षीणक्रोध, क्षीणमान, क्षीणमाया अने क्षीणलोभ आ नामना अर्थ सुगम होवाथी तेभना विषे वधु स्पष्टता करवानी जरूर तथी. (खीण पेज्जे) प्रेम

ક્ષીણદ્વેષઃ=ક્ષીણો દ્વેષઃ=ક્રોધમાનો यस્ય સ તથા-અપગત ક્રોધમાન इत्यर्थः । तथा-
 અમોહઃ-અપગતમોહનીયકર્મા, અયં ચ અલ્પમોહોદયોઽપિ લોકે વ્યવહ્રિયતે ।
 તથા-નિર્મોહઃ-નિર્ગતો મોહાન્નિર્મોહઃ । યતોઽમોહઃ, અત એવ નિર્મોહો બોધ્યઃ ।
 નિર્મોહસ્તુ કાલાન્તરે મોહોદયયુક્તોઽપિ સ્યાદુપશાન્તમોહવદિતિ પ્રત્યયો મા ભવ-
 ત્વિતિ હેતોરાહ-ક્ષીણમોહઃ-અપુનર્ભાવિમોહોદયઃ इत्यर्थः, एतदुपसंहरन्नाह-મોહ-

માયા ઓર લોભ કા બોધક હૈ । મોહનીય કર્મ કે-નષ્ટ હોને પર માયા
 ઓર લોભ નષ્ટ હો જાતે હૈ । (ક્ષીણ દોસે) હસી પ્રકાર દ્વેષ-માન ઓર
 ક્રોધ-ભી નષ્ટ હો જાતો હૈ । અતઃ ક્ષીણ પ્રેમા, ક્ષીણ દ્વેષ યે નામ-
 હોતે હૈ । (અમોહે નિમ્મોહે, ક્ષીણમોહે) અમોહ નિર્મોહ ક્ષીણ મોહ-યે
 નામ ભી મોહનીય કર્મ કે અભાવ મે હોતે હૈ । અલ્પ મોહવાલે મેં ભી
 અમોહ શબ્દ કા પ્રયોગ હોતા હૈ સો એસા અમોહ યહાં નહીં લિયા ગયા
 હૈ કિન્તુ મોહનીય કર્મ સે જો અપગત હૈ વહી અમોહ હૈ, એસા અમોહ
 હી યહાં ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ । જિસ કારણ યહ અમોહ હૈં હસલિયે
 નિર્મોહ હૈ । કોઈ એસી શંકા ભી કર સકતા હૈ કિ જો નિર્મોહ હોતા
 હૈ, વહ કાલાન્તર મેં મોહોદય સે યુક્ત ભી બન સકતા હૈ-જૈસે ઉપશાન્ત
 મોહવાલા બન જાતા હૈ । સો હસ આશંકા કો નિર્મૂલ કરને કે લિયે
 સૂત્રકાર ને ક્ષીણમોહ યહ પદ રહ્યા હૈ । હસસે ઊન્હોને, યહ સ્પષ્ટ કિયા
 હૈ કિ અપુનર્ભાવ મોહોદય જિસ જીવ કે હોતે હૈં, વહી યહાં અમોહ

શબ્દ માયા અને લોભનો બોધક છે. મોહનીય કર્મનો નાશ થઈ જવાથી
 જીવના માયા અને લોભ નષ્ટ થઈ જાય છે, તેથી તે જીવને 'ક્ષીણપ્રેમા'
 કહેવાય છે. (ક્ષીણ દોસે) એજ પ્રમાણે મોહનીય કર્મનો નાશ થઈ જવાથી
 આત્માનો દ્વેષ ભાવ પણ નષ્ટ થઈ જાય છે તેથી તે આત્માનું "ક્ષીણદ્વેષ"
 નામ નિષ્પન્ન થાય છે. (અમોહે નિમ્મોહે, ક્ષીણમોહે) મોહનીય કર્મનો અભાવ
 થઈ જવાથી આત્માનાં 'અમોહ,' 'નિર્મોહ,' અને ક્ષીણમોહ નામો પણ
 નિષ્પન્ન થાય છે અલ્પ મોહવાળામાં પણ અમોહ શબ્દનો પ્રયોગ થાય છે.
 પરંતુ અમોહ શબ્દનો એવો અર્થ અહીં ગ્રહણ કરવાનો નથી અહીં તે
 મોહનીય કર્મનો સર્વથા ક્ષય થઈ જવાને લીધે આત્મામાં મોહનો સર્વથા
 અભાવ જ ગ્રહણ કરવાનો છે. જે કારણે તે આત્મામાં આ અમોહનો સદ્-
 ભાવ છે એજ કારણે નિર્મોહનો પણ સદ્ભાવ છે. કદાચ કેઈ એવી શંકા
 ઉઠાવે કે કાલાન્તરે નિર્મોહી આત્મામાં મોહનો ઉદય થઈ જવાથી તે મોહો-
 દયયુક્ત પણ બની શકે છે, તો તે આશંકાનું નિવારણ કરવાને માટે સૂત્રકારે
 'ક્ષીણમોહ' પદનો પ્રયોગ કર્યો છે, આ પદ દ્વારા સૂત્રકારે એ વાત પ્રકટ

नीयकर्मविप्रमुक्त इति । नारकायुष्कादिभेदेन आयुष्कर्म चतुर्विधं बोध्यम् । सम्प्रति तत्क्षयोद्भवानि नामानि प्ररूपयति—क्षीणनैरयिकायुष्कः, क्षीणतिर्यग्यो-
निकायुष्कः, क्षीणमनुष्यायुष्कः, क्षीणदेवायुष्कः । एतानि चत्वार्यपि पदानि सुगमानि । तथा—अनायुष्कः=अविद्यमानायुष्कः । अविद्यमानायुष्कस्तु तद्भविकायुः

निरमोह नामवाला ग्रहण कियो गया है । इस प्रकार (मोहणिज्जकम्म विप्पमुक्के) मोहनीय कर्म से विप्रमुक्त बने हुए जीव के ये क्षीण क्रोध से लेकर क्षीण मोह तक के नाम हैं । अब आयुकर्म के क्षयापेक्ष जो नाम होते हैं, उन्हें सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—आयु कर्म चार प्रकार का है—नरक आयु तिर्यगायु, मनुष्य आयु देव आयु सो इनमें से (स्त्रीण-
णेरइयाउए, स्त्रीणतिरिक्खजोणिआउए, स्त्रीण मणुस्साउए स्त्रीण-
देवाउए) नरकायुष्क के क्षय होने से क्षीण नरकायुष्क, तिर्यग्योनिक आयुष्क के क्षय होने से क्षीणतिर्यग्योनिकायुष्क, मनुष्य आयुष्क-के नष्ट होने से क्षीण मनुष्यायुष्क और देवायुष्क के नष्ट होने से क्षीण देवायुष्क ये नाम होते हैं (अणाउए, नीराउए, स्त्रीणाउए) अनायुष्क, निरायुष्क और और क्षीणायुष्क ये नाम भी होते हैं तद्भवसंबन्धी आयु

करी छे के जे लवमां अपुनर्भाविभोडोदय (लविष्यमां करी उदयमां न आवे अवेो अमोड) डोय छे, ते लवने ज अही 'अमोड' अने 'निर्भोड' नामनाजो कही छे. (मोहणिज्जकम्मविप्पमुक्के) मोहनीय कर्मथी संपूर्णतः विमुक्त थयेला लवना क्षीणक्रोधथी लधने क्षीणमोह पर्यन्तनां उपयुक्त नामो समजवां.

इवे सूत्रकार आयुकर्मना क्षयथी आत्माना जे जे नामो निष्पन्न थाय छे, तेमनुं निश्चय करे छे—

आयुकर्मना चार प्रकार छे—(१) नरकायु, (२) तिर्यगायु, (३) मनुष्यायु अने (४) देवायु. (स्त्रीणणेरइयाउए, स्त्रीणतिरिक्खजोणि आउए, स्त्रीणमणु-
स्साउए, स्त्रीण देवाउए) नरकायुष्कनो क्षय थध जवाने लीधे लव 'क्षीणनरकायुष्क' अपनी जय छे, तिर्यग्योनिक आयुष्कनो क्षय थध जवाथी लव "क्षीणतिर्यग्यो-
निकायुष्क" अपनी जय छे, मनुष्य आयुष्कनो क्षय थध जवाथी लव "क्षीणमनुष्यायुष्क" थध जय छे अने देवायुष्कनो क्षय थध जवाथी लव "क्षीणदेवायुष्क" थध जय छे. आ प्रकारे चारे गतिना आयुष्कनो क्षय थध जवाथी लवना उपयुक्त चार नामो निष्पन्न थाय छे. (अणाउए, निराउए, स्त्रीणाउए) आयुकर्मनो क्षय थध जवाथी लवनां "अनायुष्क," "निरायुष्क" अने "क्षीणायुष्क" आ त्रय नामोपयु निष्पन्न थाय छे. तद्भव संबन्धी (ते

ક્ષયમાત્રેऽપિ ભવતી, ત્યત્રાહ-નિરાયુષ્કઃ-નિર્ગતાયુષ્ક इति । નિરાયુષ્કસ્તુ શૈલે-
શીમવસ્થાં કિંવિદવત્તિષ્ઠમાનાયુઃ-શેષોऽપિ ઉપચારતઃ સ્યાદત આહ-ક્ષીણાયુષ્ક
इति । एतदुपसंहरन्नाह-आयुष्कर्मविप्रमुक्त इति । नामकर्मसामान्येन शुभाशुभमेदतो
द्विविधम्, विशेषतस्तु गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गादि भेदाद् द्विचत्वारिंशदादिभेद-

जिस जीव की नष्ट हो गई हो ऐसा जीव भी अनायुष्क कहलाता है-
अतः ऐसा अनायुष्क यहां गृहीत नहीं है किन्तु जिसका आयुर्कर्म
समाप्त हो चुका है ऐसा ही निरायुष्क अनायुष्क यहां लिया गया है ।
यदि इस पर ऐसी आशंका की जावे कि ऐसी निरायुष्क
अवस्था जीव की शैलेशी अवस्था में हो जाती है-परन्तु
यहां सम्पूर्णरूप से वह जीव निरायुष्क तो नहीं बनता है-फिर भी
निरायुष्क इस नाम से किंचित आयु अवशिष्ट होने पर भी उपचार से
कहा ही जाता है । अतः इस आशंका को दूर करने के लिये सूत्रकारने
क्षीणायुष्क यह पद रखा है । इसलिये अनायुष्क निरायुष्क ये नाम तब
ही जानना चाहिये कि जब सम्पूर्णरूप से आयुर्कर्म नष्ट हो चुका होता
है । (आयुर्कर्मविप्रमुक्के) इस प्रकार से आयुर्कर्म के सर्वथा अभाव
होने पर क्षीणनरकायुष्क आदि ये नाम निष्पन्न होते हैं । (गण्डजाह

ભવતુ) જેનું આયુષ્ય નષ્ટ થઈ ગયું હોય છે એવા જીવને પણ અનાયુષ્ક
કહી શકાય છે. પરન્તુ એવા અનાયુષ્કની વાત અહીં કરવામાં આવી નથી
અહીં તો એવા અનાયુષ્કની વાત કરવામાં આવી છે કે જેના આયુર્કર્મનો
સદંતર ક્ષય થઈ ચુક્યો હોવાને કારણે જે નિરાયુષ્ક બની ગયેલો છે એટલે
કે અહીં નિરાયુષ્ક (આયુષ્યરહિત) જીવને જ અનાયુષ્ક પદ વડે ગ્રહણ કર-
વામાં આવેલ છે. કદાચ અહીં કેઈ એવી શંકા ઉઠાવે કે એવી નિરાયુષ્ક
અવસ્થા તો જીવની શૈલેશી અવસ્થામાં થઈ જાય છે, પરન્તુ આ અવસ્થાવાળો
જીવ સંપૂર્ણ રૂપે નિરાયુષ્ક બનતો નથી; છતાં પણ 'નિરાયુષ્ક' આ નામનો
પ્રયોગ, થોડું આયુ બાકી હોવા છતાં પણ ઔપચારિક રૂપે કરવામાં આવે
છે. આ આશંકાને દૂર કરવાને માટે સૂત્રકારે "ક્ષીણાયુષ્ક" પદ મૂક્યું છે
તેથી આત્માને અનાયુષ્ક, અને નિરાયુષ્ક રૂપે ત્યારે જ ગણી શકાય કે ત્યારે
આયુર્કર્મનો સંપૂર્ણપણે ક્ષય થઈ ગયો હોય છે. (આયુર્કર્મવિપ્રમુક્કે) આ
પ્રકારે આયુર્કર્મનો સર્વથા અભવ થઈ જવાથી આત્માનાં ક્ષીણનરકાયુષ્ક
અઃદિ ઉપર્યુક્ત નામો નિષ્પન્ન થાય છે.

હવે નામકર્મના ક્ષયથી આત્માના જે જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે, તે
નામોની સૂત્રકાર પ્રકરણ કરે છે—

स्थानान्तराद् विज्ञेयम् । अत्र तु तत्क्षयभावीनि क्रियन्त्यपि तन्नामानि प्राह-गति
जातिशरीराङ्गोपाङ्गबन्धनसंघातनसंहननसंस्थानानेकशरीरवृन्दसंघातविप्रमुक्तः—तत्र
गतिः=नारकादिगतिचतुष्टयहेतुभूतं गतिनाम, जातिः—एकेन्द्रियादि जातिपञ्चक-
कारणं जातिनाम, शरीरम्—औदारिकादिशरीरपञ्चकनिबन्धनंशरीरनाम, अङ्गो-
पाङ्गम्=औदारिकवैक्रियाहारकशरीरत्रयाङ्गोपाङ्गनिवृत्तिकारणम् अङ्गोपाङ्गनाम,
बन्धनम्=काष्ठादिखण्डसंयोजकलाक्षादिद्रव्यमित्र शरीरपञ्चकपुद्गलानां परस्परं

सरीरंगोवंगबंधनसंघायणसंठाणअणेगर्बोदिविंदसंघायविप्पमुक्के) नाम-
कर्म सामान्य से शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म इस प्रकार
दो भेदवाला हैं और विशेषरूप से गति जाति शरीर अंगो-
पाङ्ग आदि के भेद से ४२ प्रकार के हैं । तथा ४२ प्रकार से भी और
अधिक भेदवाला है । इसके ये सब भेद अन्य शास्त्रों से जानलेना
चाहिये । यहां पर तो सूत्रकारने इस नामकर्म के क्षय से जो नाम
उत्पन्न होते हैं उन्हें कहा है । नारक आदि चार गतियों का हेतुभूत
जो कर्म है वह गति नामकर्म है । एकेन्द्रिय आदि पांच जाति का जो
कारण होता है वह जातिनामकर्म है । औदारिक आदि पांच
शरीर का जो कारण होता है वह शरीर नामकर्म है । औदारिक
अंगोपांग, वैक्रीय अंगोपांग और आहारक अंगोपांग की रचना का
जो हेतु हो वह अंगोपांग नामकर्म है । जिस प्रकार काष्ठादि खंडों

(गइजाइसरीरंगोवंगबंधनसंघायणसंठाणअणेगर्बोदिविंदसंघायविप्पमुक्के) नाम-
कर्मना नीचे प्रमाणे ये मुख्य लेख कहे हैं । (१) शुभनामकर्म अने
(२) अशुभनामकर्म । परन्तु विशेष इये विचार करवाभां आवे तो गति,
जाति, शरीर, अंगोपांग आदिना लेखी नाम कर्मना ४२ लेख पडे हैं, तथा
आ ४२ लेखे सिवायना डेटलाक वधु लेखे पण पडे हैं तेना आ सघणा
लेखे विषेनी भाडिती अन्य शास्त्रोभांथी भेजवी लेवी अही तो सूत्रकारे आ
नामकर्मना क्षय थड ज्वाथी आत्माना जे जे नामो निष्पन्न थाय छे तेमनुं
ज कथन कथुं छे । नारक आदि आर गतिओनी प्राप्तिना कारणभूत जे कर्म
छे तेनुं नाम गतिनामकर्म छे एकेन्द्रिय आदि पांच जातिना कारणभूत जे
कर्म छे तेने जातिनामकर्म कहे छे । औदारिक आदि शरीरना कारणभूत जे
कर्म छे तेनुं नाम शरीरनामकर्म छे । औदारिक अंगोपांग, वैक्रीय अंगो-
पांग अने आहारक अंगोपांगनी रचनाना कारणभूत जे कर्म छे तेने
अंगोपांग नामकर्म कहे छे । जेवी रीते काष्ठादिना टुकडोओने लाभ आदि

બન્ધહેતુર્વન્ધનનામ, સંઘાતનં=કાષ્ટસમુચ્ચયકારકઃ કર્મકર इव तेषामेव पुद्गलानां
 પરસ્પરં બન્ધનાર્થમન્યોऽन्य સાંનિધ્યરૂપ સઙ્ઘાતકારણં સઙ્ઘાતનામ, સંહનનમ્=
 કપાટાદીનાં લોહપટ્ટાદિરિવ ઔદારિકશરીરાસ્થનાં પરસ્પરબન્ધવિશેષનિબન્ધનં સંહ-
 નનનામ, સંસ્થાનમ્=સંસ્થાનનામ-સંતિષ્ઠન્તે વિશિષ્ટાવયવરચનાત્મિકયા શરીરા-
 કૃત્યા જન્તવો ભવન્તિ યેન તત્ સંસ્થાનનામ। इदं हि समचतुरस्रादिसंस्थान-
 કારણમ્। તથા-અનેકશરીરવૃન્દસંઘાતઃ-અનેકાનિ શરીરાણિ-અનેકશરીરાણિ-

કો પરસ્પર મેં જોડનેવાલા લાલ્ આદિ દ્રવ્ય હોતા હૈ ડસી પ્રકાર પાંચ
 ઔદારિક શરીર આદિ કે પુદ્ગલોં કો જો પરસ્પર મેં જોડતા હૈ । વહ
 બંધન નામકર્મ હૈ । કાષ્ટકો ચુન ચુન ૨ કર રલ્લને વાલે કર્મકર કી
 તરહ જો ડન્હોં પુદ્ગલોં કો પરસ્પર મેં બન્ધને કે લિયે અન્યોન્યસાંનિધ્ય-
 રૂપ સંઘાત કા કારણ હોતા હૈ । અર્થાત્ વદ્ધ પુદ્ગલોં કો શરીર કે નાનાં
 વિધ આકારોં મેં વ્યવસ્થિત કરને વાલા જો કર્મ હૈ વહ સંઘાત કર્મ હૈ ।
 જૈસે કપાટ આદિકોં કો લોહ પટ્ટ પરસ્પર મેં બાંધ દેતા હૈ ડસી પ્રકાર
 જો ઔદારિક શરીર કી હડ્ડિયોં કો પરસ્પર મેં બાંધ દેતા હૈ વહ સંહનન
 નામકર્મ હૈ । અર્થાત્ યહ નામકર્મ અસ્થિબંધ કી વિશિષ્ટ રચના રૂપ
 હોતા હૈ । જિસકર્મ સે અવયવોં કી વિશિષ્ટ રચનારૂપ શરીર કી આકૃતિ
 બને વહ સંસ્થાન નામકર્મ સમચતુરસ્રાદિ સંસ્થાન કા કારણ હૈ । તથા-
 અનેક શરીરોં કા જો સમૂહ રૂપ સંઘાત હૈ વહ અનેક શરીરવૃન્દ સંઘાત

દ્રવ્યો વડે પરસ્પરની સાથે જોડવામાં આવે છે, એજ પ્રમાણે પાંચ ઔદારિક
 શરીર આદિના પુદ્ગલોને પરસ્પરની સાથે જોડનારું જે કર્મ છે તેનું નામ
 બંધન નામ કર્મ છે, યોગ્ય કાષ્ટને વીણી વીણીને જોડવાના કારીગર (સુધાર)ની
 જેમ, એજ કર્મપુદ્ગલોને પરસ્પરની સાથે બાંધવાને માટે અન્યોન્ય સાંનિધ્ય
 રૂપ સંઘાતમાં જે કર્મ કારણભૂત બને છે-એટલે કે બદ્ધ પુદ્ગલોને શરીરના વિવિધ
 આકારોમાં જોડવાનારું (સ્થાપિત કરનારું) જે કર્મ છે તેનું નામ સંઘાત કર્મ છે.
 જેવી રીતે કમાડ આદિનાં પાટિયાંએને લોઢાની પાટી પરસ્પરની સાથે બાંધી
 દે છે, એજ પ્રમાણે ઔદારિક શરીરનાં હાડકાંએને પરસ્પરની સાથે બાંધી
 દેનારું જે કર્મ છે તેને સંહનન નામકર્મ કહે છે એટલે કે આ નામકર્મ
 અસ્થિબંધની વિશિષ્ટ રચના રૂપ હોય છે. જે કર્મ અવયવોની વિશિષ્ટ રચના
 રૂપ શરીરની આકૃતિ બનાવવામાં કારણભૂત બને છે તે કર્મનું નામ સંસ્થાન
 નામકર્મ છે. આ સંસ્થાન નામકર્મ સમચતુરસ્રાદિ સંસ્થાનમાં કારણભૂત બને

तेषां वृन्दं=समूहस्तदेव पुद्गलसंघातरूपत्वात् संघातः—अनेकशरीरवृन्दसंघातः, शरीरानेकत्वं जन्मान्तरीयशरीराण्यादाय । अस्मिन्नपि जन्मनि जघन्यत औदारिक-तैजसकार्मणरूपशरीरत्रयस्य सद्भावाद् वा शरीरानेकत्वं बोध्यम् । गत्यादिशब्दानां द्वन्द्वसमासः, तै विप्रमुक्तो यः स तथा । शरीरशब्देन शरीरनिबन्धनं नामकर्म गृहीतम्, 'शरीरवृन्दे' त्यत्र शरीरशब्देन तु तत्कार्यभूतशरीराण्येव गृह्यन्ते, इत्यनयोर्भेदः, अतो न पौनरुक्त्यम्, तथा—क्षीणशुभनामा—क्षीणं=विनष्टं शुभनाम=तीर्थकर

शरीर की अनेकता है । अथवा जीव के दूसरे जन्म में तैजस और कार्मण ये दो शरीर साथ रहते हैं, इसलिये इन जन्मान्तरीय शरीरों को लेकर कम से कम एक जीव में इस जन्म में भी औदारिक तैजस और कार्मण ये तीन शरीर रहते हैं । इस अपेक्षा से भी शरीर की अनेकता रूप-अनेक शरीर वृन्द संघात सधजाता है । इन गत्यादिक शब्दों में द्वन्द्व समास है, इन गत्यादिकों से जो विप्रमुक्त है वह गति जाति-शरीर-अंगोपांग बन्धन-संघात संहनन संस्थान-अनेक शरीरवृन्दसंघात विप्रमुक्त शब्द का वाच्यार्थ है । गति जाति शरीर आदि में जो यह शरीर शब्द है उसका अर्थ शरीर नामकर्म है, इस नामकर्म के उद्दय से औदारिक आदि शरीरों की रचना होती है तथा "अनेक शरीर वृन्द" में जो शरीर शब्द आया है, वह उस शरीर नामकर्म के कार्य-भूत उन औदारिक आदि शरीरों का वाचक है । इस प्रकार इनमें

छे अनेक शरीराना समूहइय जे संघात छे तेने अनेक शरीरवृन्द संघात कहे छे. ते अनेक शरीरवृन्द संघात शरीरनी अनेकता इय डोय छे अथवा लवनी साथे रहे छे. तेथी आ जन्मान्तरीय शरीराना अपेक्षाये विचार करवाभां आवे तो ओक लवभां औदारिक, तैजस अने कार्मण, आ त्रय शरीराना सद्भाव डोय छे आ दृष्टिअये विचार करवाभां आवे तो शरीरनी अनेकता इय अनेक शरीरवृन्द संघातनु' प्रतिपादन थछ नय छे उपर्युक्त गति आदि शब्दोभां द्वन्द्व सम स छे. आ गति आदिथी जे लव विप्रमुक्त थछ गयेलो डोय छे ते लवने गति, जति, शरीर, अंगोपांग, बन्धन, संघात, संहनन, संस्थान अने अनेक शरीरवृन्दसंघातविप्रमुक्त गणुवाभां आवे छे. ओइके के अवा लवना गतिविप्रमुक्त जतिविप्रमुक्त आदि नामो निष्पन्न धाय छे. गति, जति, शरीर आदिभां जे शरीर शब्द छे तेना अर्थ शरीरनामकर्म छे. आ नामकर्मना उद्दयथी औदारिक आदि शरीराना रचना धाय छे. तथा— "अनेक शरीरवृन्द" आ पदभां जे 'शरीर' शब्द आव्यो छे ते शरीर शब्द शरीर नामकर्मना कार्यभूत ते औदारिक आदि शरीराना वाचक छे.

શુભસુભગસુસ્વરાદેયયશઃકીર્ત્યાદિકં यस્ય સ તથા । ક્ષીણાશુભનામા-ક્ષીણમ્
 અશુભનામ=નરકગત્યશુભદુર્ભગદુઃસ્વરાનાદેયાયશઃકીર્ત્યાદિકં यस્ય સ તથા ।
 અનામા નિર્નામા ક્ષીણનામા ઇતિ ત્રયોઽપિ શબ્દાઃ, 'અમોહઃ' ઇત્યાદિવદ્ ભાવ-
 નીયાઃ । ઉપસંહરન્નાહ-શુભાશુભનામકર્મવિપ્રમુક્ત ઇતિ । ગોત્રમ્-ઉચ્ચનીચભેદેન
 દ્વિવિધં ભવતિ । સમ્પ્રતિ તત્ક્ષયસંભવીનિ નામાન્યાહ-'ક્ષીણોચ્ચગોત્રઃ' ઇત્યારમ્ય

ભિન્નતા જાનની ચાહિયે । (ક્ષીણ સુભણામે) નામકર્મ-કે નષ્ટ હોને પર
 તીર્થકર, શુભ, સુગમ, સુસ્વર, આદેય ઓર યશઃકીર્તિ આદિ-જો શુભ
 નામ હૈં યે સબ વિનષ્ટ હો જાતે હૈં ઇસલિયે " ક્ષીણશુભનામા " યહ
 નામ નિષ્પન્ન હોતા હૈં । (ક્ષીણ અસુભણામે) ઇસી પ્રકાર નામકર્મ કે
 નષ્ટ હોને પર નરકગતિ, અશુભ, દુર્ભગ, દુઃસ્વર અનાદેય, ઓર અયશઃ
 કીર્તિ આદિક અશુભ નામ નષ્ટ હો જાતે હૈં । ઇસલિયે ' ક્ષીણાશુભ-
 નામા " યહ નામ નિષ્પન્ન હો જાતા હૈં । (અણામે, નિષ્ણામે, ક્ષીણનામે)
 અનામ, નિર્નામ ઓર ક્ષીણનામ યે ત્રીનો શબ્દ ભી અમોહ આદિ
 શબ્દો કે જૈસે સમજના ચાહિયે । (સુભાસુભણામકર્મવિષ્ણમુક્તે)
 ઇસ પ્રકાર ગતિ વિપ્રમુક્ત સે લેકર ક્ષીણનામ તક કે યે નામ ઇસ
 શુભાશુભનામકર્મ સે સર્વથા રહિત હો જાને પર નિષ્પન્ન હોતે હૈં ।
 (ક્ષીણ ઉચ્ચાગોઽક્ષીણ નીચાગો) અબ સૂત્રકાર ગોત્રકર્મ સે વિપ્રમુક્ત

આ પ્રકારે તેમની વચ્ચે ભિન્નતા સમજવી ભેઠએ. (ક્ષીણસુભણામે) નામકર્મનો
 નાશ થતાં જ તીર્થકર, શુભ, સુલગ, સુસ્વર, આદેય, યશ કીર્તિ યુક્ત આદિ
 જે શુભ નામે હોય છે તેમનો પણ નાશ થઈ જાય છે, તેથી એવા જીવનું
 " ક્ષીણશુભનામા " આ નામ નિષ્પન્ન થાય છે. (ક્ષીણ અસુભણામે) એજ પ્રમાણે
 નામકર્મનો નાશ થતાં જ નરકગતિ, અશુભ, દુર્ભગ, દુઃસ્વર, અનાદેય,
 અયશઃકીર્તિક આદિ અશુભ નામોનો પણ નાશ થઈ જાય છે તેથી એવા
 જીવનું " ક્ષીણાશુભનામા " નામ નિષ્પન્ન થાય છે. (અણામે, નિષ્ણામે, ક્ષીણ-
 ણામે) વળી નામકર્મ નિર્મૂળ થઈ જવાથી જીવના " અનામ, નિર્નામ, અને
 ક્ષીણનામ " આ નામે પણ નિષ્પન્ન થાય છે. આ ત્રણે શબ્દોનો ભેદ અમોહ,
 નિર્મોહ અને ક્ષીણમોહના જેવો જ સમજવો. (સુભાસુભણામકર્મવિષ્ણમુક્તે)
 ત્યારે આત્મા શુભાશુભ નામકર્મથી સર્વથા રહિત થઈ જાય છે ત્યારે તેના
 ગતિવિપ્રમુક્તથી ક્ષીણનામ પર્યન્તના ઉપર્યુક્ત નામે નિષ્પન્ન થાય છે.
 હવે સૂત્રકાર ગોત્રકર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી આત્માના જે જે નામે નિષ્પન્ન
 થાય છે, તેમનું નિરૂપણ કરે છે—

‘उच्चनीचकर्मविप्रमुक्तः’ इत्यन्तैः पदैः । एषां व्याख्या पूर्ववद् भावनीया । अन्तरायकर्म हि दानान्तरायादिभेदैः पञ्चविधं बोध्यम् । सम्प्रति तत्क्षयनिष्पन्नानि नामानि प्राह—‘क्षीणदानान्तरायः’ इत्यारभ्य ‘अन्तरायकर्मविप्रमुक्तः’ इति । एषां

होने पर जो नाम निष्पन्न होते हैं उन्हें कहते हैं । गोत्र कर्म दो प्रकार का है—उच्च गोत्र और नीच गोत्र । संतान क्रम से चले आये हुए जीव के आचरण का नाम गोत्र है । प्रतिष्ठा प्राप्त हो ऐसे कुलमें जन्म दिलानेवाला कर्म उच्च गोत्र और शक्ति रहने पर भी प्रतिष्ठा न मिल सके ऐसे कुल में जन्म दाता कर्म, नीच गोत्र कहलाना है । गोत्र कर्म के अभाव होते ही उच्च और नीच दोनों प्रकार का गोत्र नष्ट हो जाता है—अतः क्षीणोच्चगोत्र और क्षीण नीचगोत्र ये नाम निष्पन्न होते हैं । (अगोत्र निगोत्र खीणगोत्र) इन अगोत्र निगोत्र क्षीणगोत्र शब्दों की व्याख्या पहिले जैसी ही जाननी चाहिये । अब सूत्रकार अन्तराय कर्म के अभाव में जो नाम निष्पन्न होते हैं उन्हें बताते हैं—दानान्तराय आदि के भेद से अन्तराय कर्म ५ प्रकार का है । इनमें (खीणदाणंतराय, खीणलाभंतराय, खीणभोगंतराय, खीणउवभोगंतराय, खीणवीरियंतराय) दानान्तराय के क्षय होने से क्षीण दानान्तराय,

(खीण उच्चागोत्र खीण नीचागोत्र) गोत्रकर्मना नीचे प्रमाणों के प्रकार पडे छे—(१) उच्चगोत्र, (२) नीचगोत्र के कुणमां जन्म तथा प्रतिष्ठा भणे छे, जेवा कुणमां जन्म अपावनार कर्मने उच्चगोत्र कर्म कडे छे शक्ति डोवा छतां पणु—योग्यता डोवा छतां पणु प्रतिष्ठा न भणे जेवा कुणमां जन्म अपावनार कर्मने नीच गोत्रकर्म कडे छे गोत्रकर्मने क्षय तथा नीचे ज उच्च अने नीच, आ अन्ने प्रकारना गोत्रने नाश थर्ष जय छे तेथी जेना गोत्रकर्मने नाश थर्ष जये छे जेवा एवना “क्षीणोच्चगोत्र” अने “क्षीणनीचगोत्र” नामो निष्पन्न थाय छे. (अगोत्र, निगोत्र, खीणगोत्र) वणी जेवा आत्माने “अगोत्र” “निगोत्र” अने “क्षीणगोत्र” पणु कडेवामां आवे छे. आ पढोनी व्याख्या ‘अभेद’ आदिनी व्याख्याने आधारे समस्त शक्य जेवी छे.

इसे सूत्रकार अन्तराय कर्मना अलावथी आत्माना जे जे नामो निष्पन्न थाय छे, तेमनु कथन करे छे—

दानान्तराय आदिना लेखथी अन्तरायकर्म पांच प्रकारना कथा छे. (खीणदाणंतराय, खीणलाभंतराय, खीणभोगंतराय, खीणउवभोगंतराय, खीणवीरियंतराय) एवना दानान्तरायकर्मने क्षय थर्ष जवाथी ‘क्षीणदानान्तराय,’

ख्याख्याऽपि पूर्ववदेव बोध्या । इत्थं ज्ञानावरणाद्यन्तरायकर्मान्ताष्टप्रकृतीनामेकैक-
 क्षयेण निष्पन्नानि नामान्यभिधाय सम्प्रति समुदिताष्टकर्म प्रकृतिस्रये यानि नामानि-
 निष्पद्यन्ते तान्याह—‘सिद्धे’ इत्यादि—सिद्धः=सिद्ध समस्तप्रयोजनत्वात् सिद्धः ।
 बुद्धः=बोधस्वरूपत्वाद् बुद्धः । मुक्तः=बाह्याभ्यन्तरग्रन्थबन्धन मुक्तत्वाद् मुक्तः । परि-

लाभान्तराय के क्षय होने से क्षीण लाभान्तराय, भोगान्तराय के क्षय होने से क्षीण भोगान्तराय उपभोगान्तराय के नष्ट होने से क्षीण उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय के नष्ट होने से क्षीण वीर्यान्तराय ये नाम निष्पन्न होते हैं (अणंतराय गिरंतराय स्त्रीणंतराय) तथा अनन्तराय निरन्तराय और क्षीणान्तराय ये नाम निष्पन्न होते हैं । इस प्रकार ये सब पूर्वोक्त नाम (अंतरायकर्मविष्य मुक्के) अन्तराय कर्म से विप्रमुक्त होने पर होते हैं । (सिद्धे बुद्धे मुक्ते परिणिव्वुए, अंतगडे, सब्बदुक्खप्पहीणे) अब सूत्रकार यह कहते हैं कि ये जो ज्ञानावरण आदि से लेकर अन्तराय कर्म पर्यन्त आठकर्म हैं उनमें से एक एक कर्म के नाश होने से जैसे ये भिन्न २ नाम कहे गये हैं उसी प्रकार से आठ कर्मों के सर्वथा नष्ट होने पर जो नाम होते हैं वे ये हैं—सिद्ध-समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाने से सिद्ध-यह नाम

लाभान्तराय कर्मोना क्षय थध ज्वाथी “क्षीणुलाभान्तराय,” भोगान्तरायोना क्षय थध ज्वाथी “क्षीणुभोगान्तराय,” उपभोगान्तरायोना क्षय थध ज्वाथी “क्षीणुउपभोगान्तराय,” अने वीर्यान्तरायोना क्षय थध ज्वाथी “क्षीणुवीर्यान्तराय” आ प्रकारनां उपनां नामो निष्पन्न थाय छे. (अणंतराय, गिरंतराय, स्त्रीणंतराय) तथा उपना अन्तराय कर्मोना क्षय थध ज्वाथी तेना “अनन्तराय,” ‘निरन्तराय’ अने ‘क्षीणान्तराय’ आ नामो निष्पन्न थाय छे. क्षीणुज्ञानान्तरायथी लधने क्षीणान्तराय पर्यन्तना उपयुक्त नामे आत्माने त्तारे ज् ओणभी शक्य छे के न्यारे तेना अन्तराय कर्मोना संपूर्णता क्षय थध ज्यो होय छे.

(सिद्धे, बुद्धे, मुक्ते, परिणिव्वुए, अंतगडे, सब्बदुक्खप्पहीणे) ज्ञानावरणथी लधने अन्तराय पर्यन्तना प्रत्येक कर्मोना नाश थवाथी उपना जे भिन्न भिन्न नामो निष्पन्न थाय छे. तेमनुं निष्पण्ण करीने हवे सूत्रकार, आठे कर्मोना सर्वथा विनाश थवाथी उपना जे जे नामो निष्पन्न थाय छे, ते नामोने प्रकट करे छे-

आठे प्रकारना कर्मोना न्यारे सर्वथा क्षय थध जय छे त्तारे उपना समस्त प्रयोजनो सिद्ध थध जय छे तेथी जेवा उपनुं “सिद्ध” ‘सिद्ध’

निर्वृतः=परि=समन्तात्-सर्वप्रकारैः निर्वृतः=शीतीभूतः परिवृत्तिः परिनिर्वृतत्वं च सर्वोत्कृष्टसकलसमीहितमोक्षरूपार्थप्राप्त्या बोध्यम् । अन्तकृतः-अन्तकृतत्वं तु समस्तसंसारान्तकारित्वाद् बोध्यम् । तथा-सर्वदुःखप्रहीणः । सर्वदुःखप्रहीणत्वं तु शारीरमानसदुःखानामात्यन्तिकक्षयेण बोध्यम् । सम्प्रति प्रकृतमुपसंहरन्नाह-स एष क्षयनिष्पन्न इति । निरूपितः क्षायिको भाव इति सूचयितुमाह-स एष क्षायिक इति ॥सू० १५४॥

निष्पन्न होता है ।-बुद्ध-बोध स्वरूप हो जाने से बुद्ध यह नाम निष्पन्न होता है । मुक्त-बाह्य और आभ्यन्तररूप परिग्रह बन्धन से छूटजाने से मुक्त यह नाम निष्पन्न होता है । परिनिर्वृत-सर्व प्रकार से, सब तरफ से शीती भूत हो जाने से परिनिर्वृत यह नाम निष्पन्न होता है । सकल समीहितो में सर्वोत्कृष्ट समीहित एक मोक्ष ही है-सो उसकी प्राप्ति से परिनिर्वृतपना-जानना चाहिये । अन्तकृत-समस्त संसार का अन्तकारी होने से अन्तकृत यह नाम निष्पन्न होता है सर्व दुःखप्रहीण-शारीरिक एवं मानसिक समस्त दुःखों के आत्यन्तिक क्षय हो जाने से सर्व दुःख प्रहीण यह नाम निष्पन्न होता है ।

अब सूत्रकार इस प्रकरण का उपसंहार करने के निमित्त कहते हैं

नाम निष्पन्न थाय छे. ओवे। एव डेवणज्ञान अने डेवणदर्शनथी मुक्त थध ज्वाने कारणे “ बुद्ध ” गणाय छे. ओवे। एव भाह्य अने आभ्यन्तर परि-अडरूप अन्धनभांथी मुक्त थध जय छे तेथी तेने “ मुक्त ” कडेवामां आवे छे. ओवे। एव सर्वप्रकारना परितापोथी निर्वृत थधने शीतलीभूत थध जय छे, तेथी तेनुं ‘ परिनिर्वृत ’ नाम निष्पन्न थाय छे. सकण समीहितोमां सर्वोत्कृष्ट समीहित तो मात्र मोक्ष ज गणाय छे, ते मोक्षनी प्राप्ति थध ज्वाना कारणे ते आत्माभां परिनिर्वृतता समजवी ओवे। एव समस्त संसा-रने अन्तकारी अने छे तेथी तेने “ अन्तकृत ” कडे छे. ओवा एवना शारीरिक अने मानसिक समस्त दुःखोने आत्यन्तिक (संपूण्यता) क्षय थध ज्वाने कारणे तेने सर्वदुःख प्रहीण कडे छे. आ प्रकारे आठे कर्मोने सर्वथा क्षय करी नाअनार एवता नीचे प्रभाणे नामो निष्पन्न थाय छे-(१) सिद्ध’ (२) बुद्ध, (३) मुक्त, (४) परिनिर्वृत, (५) अन्तकृत अने (६) सर्वदुःखप्रहीण.

इवे आ सूत्रने उपसंहार करता सूत्रकार कडे छे के—

(से तं स्वयनिष्पण्णे) आ प्रकारनुं क्षयनिष्पन्न क्षायिके लावतुं स्वइय छे.

कि (से तं स्वयनिष्पण्णे) इस प्रकार यह क्षय निष्पन्न है। (से तं स्वइए) इस प्रकार यह क्षायिक भाव का निरूपण है—

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा क्षायिक भाव का निरूपण किया है। उसमें उन्होंने यह कहा है कि ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों का जो क्षय है एक तो वह क्षायिक भाव है—और दूसरा क्षायिक भाव वह है जो इन कर्मों के क्षय से निष्पन्न होता है। कर्मों के क्षय से निष्पन्न हुआ क्षायिक अनेक प्रकार का कहा है। उनमें पांच प्रकार के ज्ञानावरण कर्म के क्षय से नौ प्रकार के दर्शनावरण कर्म के क्षय से दो प्रकार के वेदनीय कर्म के क्षय से, २८ प्रकार के मोहनीय कर्म के क्षय से चार प्रकार के आयु कर्म के क्षय से, ४२ प्रकार के नाम-कर्म के क्षय से, दो प्रकार के गोत्रकर्म के क्षय से और पांच प्रकार के अन्तराय के क्षय से सूत्र प्रदर्शित जितने भी नाम निष्पन्न होते हैं वे सब क्षायिक हैं। क्योंकि ये भिन्न २ प्रकार के कर्मों के क्षय से निष्पन्न होते हैं। यहाँपर क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव में क्षयनिष्पन्न क्षायिक नामों का कथन जो किया गया है वह अप्रासंगिक नहीं है, क्योंकि क्षायिक

(से तं स्वइए) क्षयनिष्पन्न क्षायिक लावनुं निष्पण्णु समाप्तं यथाथी क्षायिक लावना स्वइएतुं निष्पण्णु पण्णु अहीं पूइं थाय छे.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रद्वारा क्षायिक लावनुं निष्पण्णु कथुं छे. तेमां तेमण्णे क्षायिक लावना जे प्रकार जताञ्जा छे. ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारनां कर्मोना जे क्षय छे तेने क्षायिक इप पडेवे प्रकार गणुवामां आवे छे. ज्ञानावरणीय आदि कर्मोना क्षयथी निष्पन्न थनां क्षायिक लावने क्षय-निष्पन्न इप भीज्ज प्रकारना क्षायिक भाव कह्यो छे. कर्मोना क्षयथी निष्पन्न थतो क्षायिक लाव अनेक प्रकारना कह्यो छे. पांच प्रकारना ज्ञानावरण कर्मना क्षयथी, नव प्रकारना दर्शनावरण कर्मना क्षयथी, जे प्रकारना वेदनीय कर्मना क्षयथी, २८ प्रकारना मोहनीय कर्मना क्षयथी, चार प्रकारना आयु कर्मना क्षयथी, ४२ प्रकारना नामकर्मना क्षयथी, जे प्रकारना गोत्रकर्मना क्षयथी, अने पांच प्रकारना अन्तराय कर्मना क्षयथी सूत्रोक्त जेटवां नाम निष्पन्न थाय छे, तेमने क्षयनिष्पन्न क्षायिक लाव इपे गणुवा जेधजे, कारणु के ते नामो सिन्न सिन्न प्रकारनां कर्मोना क्षयथी निष्पन्न थाय छे.

आ सूत्रमां क्षयनिष्पन्न क्षायिक लावोमां क्षयनिष्पन्न क्षायिक नामोनुं जे कथन करवामां आञ्जुं छे, ते अप्रासंगिक नथी. तेनुं कारणु नीचे

भाव का तात्पर्य है क्षय से उत्पन्न हुई अवस्था के परिणाम। यह आत्मा की निज स्वाभाविक अवस्था है। इसमें जो भी परिणाम हैं वे सब शुद्ध आत्मस्वरूप हैं। इन्हीं परिणामों को लेकर-जो नाम कहे गये हैं। वे नाम, स्थापना या द्रव्यरूप नहीं हैं, किन्तु भावरूप हैं। कर्मों के नष्ट होने पर आत्मा का जो मौलिक रूप प्रकट हो जाता है, उसी मौलिकरूप के ये वाचक हैं इसलिये इन नामों का क्षायिकभाव के प्रकरण में विवेचन करना युक्ति युक्त ही है। अप्रासंगिक नहीं है। जैसे जब केवलज्ञानावरण नष्ट हो जाता है तब आत्मा में केवलज्ञानगुण प्रकट हो जाता है केवलज्ञानावरण के नष्ट होते ही क्षायोपशमिक चार ज्ञान क्षायिकरूप हो जाते हैं-अर्थात् केवल ज्ञान में अन्तर्हित हो जाते हैं। तब इस आत्मा का क्षीण केवल ज्ञानावरण ऐसा नाम जो होता है वह नाम, स्थापना या द्रव्यरूप नहीं है। किन्तु भावनिपेक्ष रूप है। कारण उस प्रकार की पर्याय उस आत्मा में निष्पन्न हो चुकी है, और उसी का यह वाचक है। इसी प्रकार से शेष कर्मों के क्षय से निष्पन्न हुए नामों में भी जनाना चाहिये। इसीलिये क्षायिक भाव के प्रकरण में सूत्रकार ने इनका निर्देशन किया है। ॥ सू० १५४ ॥

प्रमाणे छे-क्षयथी उत्पन्न थयेली अवस्थाना परिणामने क्षायिक भाव गणाय छे. ते आत्माना निज स्वाभाविक अवस्था छे. तेमां जे जे परिणामो छे, ते अथां परिणामो शुद्ध आत्मस्वरूप छे. ते परिणामोना विचार करीने जे नामो अताववामां आव्यां छे तेओ नाम, स्थापना के द्रव्यरूप नथी, परन्तु भावरूप छे. कर्मोना क्षय थछे जवाथी आत्मानुं जे मौलिक भूल रूप प्रकट थछे जय छे, ओज मौलिक रूपना तेओ वाचक छे. तेथी ते नामोनुं क्षायिक भावना प्रकरणमां विवेचन करवुं ते अनुचित अथवा अप्रासंगिक नथी, परन्तु उचित अने प्रासंगिक ज छे. जेम के केवलज्ञानावरण कर्मोना संपूर्ण क्षय थछे जतां ज आत्मां केवलज्ञानगुण प्रकट थछे जय छे. केवलज्ञानावरणो नाश थतां ज क्षायोपशमिक चार ज्ञान क्षायिक रूप थछे जय छे, ओटले के आ थारे ज्ञान केवलज्ञानमां ज समाविष्ट थछे जय छे. थारे ते आत्मानुं “क्षीणकेवलज्ञानावरण” आ नाम निष्पन्न थछे जय छे. ते नाम, स्थापना अथवा द्रव्यरूप होतुं नथी, परन्तु भावनिपेक्ष रूप ज होय छे, कारण के ते प्रकारनी पर्याय ते आत्मां निष्पन्न थछे चुकी होय छे, अने आ नाम तेनुं ज वाचक छे. ओज प्रमाणे आकीनां कर्मोना क्षयथी निष्पन्न थयेलां नामोना विषयमां पणु समजवुं. तेथी ज क्षायिक भावना प्रकरणमां सूत्रकारे तेमो निर्देश कर्यो छे. ॥ सू० १५४ ॥

अथ क्षायोपशमिकं नाम निरूपयति —

मूलम्—से किं तं खओवसमिष् ? खओवसमिष् दुविहे पणत्ते,
 तं जहा—खओवसमे य, खओवसमनिप्फण्णे य । से किं तं
 खओवसमे ? खओवसमे चउण्हं घाइक्कम्माणं खओवसमेणं,
 तं जहा—णाणावरणिज्जस्स, दंसणावरणिज्जस्स, मोहणिज्जस्स,
 अंतरायस्स, खओवसमेणं, से तं खओवसमे । से किं तं खओ-
 वसमनिप्फण्णे ? खओवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पणत्ते, तं जहा
 खओवसमिया आंभिणिबोहियणाणलद्धी, जाव खओवसमिया
 मणपज्जवणाणलद्धी, खओवसमिया मइअण्णाणलद्धी, खओव-
 समिया सुयअण्णाणलद्धी, खओवसमिया विभंगणाणलद्धी, खओ-
 वसमिया चक्खुदंसणलद्धी, अचक्खुदंसणलद्धी ओहिदंसणलद्धी,
 एवं सम्मदंसणलद्धी मिच्छादंसणलद्धी, सम्ममिच्छादंसणलद्धी,
 खओवसमिया सामाइयचरित्तलद्धी, एवं छेयोवट्टावणलद्धी,
 परिहारविसुद्धियलद्धी, सुहुमसंपरायचरित्तलद्धी, एवं चरित्ता-
 चरित्तलद्धी, खओवसमिया दाणलद्धी, एवं लाभलद्धी, भोगलद्धी,
 उवभोगलद्धी, खओवसमिया वीरियलद्धी, एवं पंडियवीरियलद्धी,
 बालवीरियलद्धी, बालपंडियवीरियलद्धी, खओवसमिया सोइं-
 दियलद्धी, जाव खओवसमिया फासिंदियलद्धी, खओवसमिष्
 आयारंगधरे, एवं सुयगडंगधरे, ठाणंगधरे, समवायंगधरे, विवा-
 हपणत्तिधरे, नायाधम्मकहाधरे, उवासगदसाधरे, अंतगडदसा-
 धरे, अणुत्तरोववाइयदसाधरे, पणहावागरणधरे, विवागसुयधरे

खओवसमिण दिट्ठिवायधरे, खओवसमिण णवपुव्वी, खओव-
समिण जाव चउदस्सपुव्वी, खओवसमिण गणी, खओवसमिण
वायए, से तं खओवसमनिष्फणणे, से तं खओवसमिण ॥सू० १५५॥

छाया—अथ कोऽसौ क्षायोपशमिकः ? क्षायोपशमिकः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-
क्षयोपशमश्च क्षयोपशमनिष्पन्नश्च । अथ कोऽसौ क्षयोपशमः ? क्षयोपशमः—चतुर्णां
घातिकर्मणां क्षयोपशमः खलु तद्यथा—ज्ञानावरणीयस्य, दर्शनावरीयस्य मोहनीयस्य,
अन्तरायस्य क्षयोपशमः खलु, स एष क्षयोपशमः । अथ कोऽसौ क्षयोपशमनिष्पन्नः ?
क्षयोपशमनिष्पन्नः अनेकविधः प्रज्ञप्तः—तद्यथा—क्षायोपशमिकी आभिनिवोधिक-
ज्ञानलब्धिः, यावत् क्षायोपशमिकी मनः पर्ययज्ञानलब्धिः, क्षायोपशमिकी मत्यज्ञान-
लब्धिः, क्षायोपशमिकी श्रुताज्ञानलब्धिः, क्षायोपशमिकी विभङ्गज्ञानलब्धिः,
क्षायोपशमिकी चक्षुर्दर्शनलब्धिः अचक्षुर्दर्शनलब्धिः, अवधिदर्शनलब्धिः, एवं
सम्यक्दर्शनलब्धिः, मिथ्यादर्शनलब्धिः, सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धिः, क्षायोपश-
मिकी सामायिकचारित्रलब्धिः, एवं छेदोपस्थापनलब्धिः परिहारविशुद्धिकलब्धिः,
सूक्ष्मसंपरायचारित्रलब्धिः, एवं चरित्राचरित्रलब्धिः क्षायोपशमिकी दानलब्धिः, एवं
लाभलब्धिः, भोगलब्धिः, उपभोगलब्धिः, क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धिः, एवं
पण्डितवीर्यलब्धिः, बालवीर्यलब्धिः बालपण्डितवीर्यलब्धिः, क्षायोपशमिकी श्रोत्रे-
न्द्रियलब्धिः, यावत् क्षायोपशमिकी स्पर्शेन्द्रियलब्धिः, क्षायोपशमिकः आचाराङ्गधरः,
एवं सूत्रकृताङ्गधरः, स्थानाङ्गधरः समवायाङ्गधरः, व्याख्याप्रज्ञप्तिधरः, ज्ञाताधर्म-
कथाधरः, उपासकदशाधरः, अन्तःकृद्दशाधरः, अनुत्तरोपपातिकदशाधरः, प्रश्नव्या-
करणधरः, विपाकश्रुतधरः, क्षायोपशमिको दृष्टिवादधरः, क्षायोपशमिको नवपूर्वीधरः,
क्षायोपशमिको यावत् चतुर्दशपूर्वीधरः, क्षायोपशमिको गणी, क्षायोपशमिको-
वाचकः । स एष क्षयोपशमनिष्पन्नः । स एष क्षायोपशमिकः ॥सू० १५५॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ कोऽसौ क्षायोपशमिकमः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—क्षायोपशमिकः

अथ सूत्रकार क्षायोपशमिकभावका निरूपण करते हैं—

‘से किं तं खओवसमिण’ इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं खओवसमिण ?) हे भदन्त ! वह क्षायोपश-
मिक क्या है ?

इसे सूत्रकार क्षायोपशमिक भावतुं निरूपण करे छे—

“से किं तं खओवसमिण” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं खओवसमिण ?) हे भदन्त ! वह क्षायो-
पशमिकतुं निरूपण करे छे ?

ક્ષયોપશમ-ક્ષયોપશમનિષ્પન્નેતિ દ્વિવિધઃ । તત્ર-ક્ષયોપશમઃ-કેવલજ્ઞાનપ્રતિબંધક-
સ્ય જ્ઞાનાવરણીયદર્શનાવરણીયમોહનીયાન્તરાયરૂપઘાતિકર્મચતુષ્ટયસ્ય ક્ષયોપશમો-
બોધ્યઃ । અયં ભાવઃ-વિવક્ષિતજ્ઞાનાદિગુણવિઘાતકસ્ય કર્મણઃ ઉદયપ્રાપ્તસ્ય ક્ષયઃ=
સર્વથાઽપગમઃ, અનુદીર્ણસ્ય તસ્યૈવ કર્મણ ઉપશમઃ=વિપાકત ઉદયાભાવઃ । તત્ત્વ
ક્ષયોપલક્ષિતઃ ઉપશમ ઇતિ । નનુ ઔપશમિકે ભાવે ઉદયપ્રાપ્તસ્ય કર્મણઃ સર્વથા

ઉત્તર-સ્વઓવસમિષ્ટ દુવિદ્ધે પળ્લત્તે) ક્ષયોપશમિક દો પ્રકાર
કા પ્રજ્ઞસ હુઆ હૈ । (તં જહા) જૈસે-સ્વઓવસમે ય સ્વઓવસમનિષ્ક-
ળ્લે ય) ઇક ક્ષયોપશમરૂપ ક્ષાયોપશમિક ઓર દુસરા ક્ષયોપશમનિષ્ક
ક્ષાયોપશમિક ।

(સે કિં તં સ્વઓવસમે ?) હે ભદન્ત ! વહ ક્ષાયોપશમ વ્યા હૈ ।

ઉત્તર-(સ્વઓવસમે ચરૂળ્લં ઘાઠ્ઠકર્મ્માણં સ્વઓવસમેણં) કેવલ
જ્ઞાન કે પ્રતિબંધક જ્ઞાનાવરણીય દર્શનાવરણીય મોહનીય ઓર અન્ત-
રાય ઇન ચાર ઘાતિક કર્મોં કાં જો ક્ષયોપશમ હૈ વહ ક્ષાયોપશમ હૈ ।
ઇસકા તાત્પર્યં યહ હૈ કિં વિવક્ષિત જ્ઞાનાદિક ગુણોં કો ઘાત કરને વાલે
ઉદય પ્રાપ્ત કર્મ કા ક્ષય-સર્વથા અપગમ-ઓર અનુદીર્ણ ઁસી કર્મ કા
ઉપશમ-વિપાક કી અપેક્ષા સે ઉદયાભાવ ઇસ પ્રકાર ક્ષય સે ઉપલક્ષિત
જો ઉપશમ હૈ વહી ક્ષયોપશમ હૈ ।

શંકા-ઔપશમિક ભાવ મેં ઉદય પ્રાપ્ત કર્મકા સર્વથા ક્ષય હૈ ઓર

ઉત્તર-(સ્વઓવસમિષ્ટ દુવિદ્ધે પળ્લત્તે, તંજહા) ક્ષાયોપશમિક ભાવના
નીચે પ્રમાણે જે પ્રકાર કહ્યા છે-(સ્વઓવસમે ય સ્વઓવસમનિષ્કળ્લે ય) (૧)
ક્ષયોપશમ ઇપ ક્ષાયોપશમિક અને (૨) ક્ષયોપશમ નિષ્પન્ન ક્ષાયોપશમિક.

પ્રશ્ન-(સે કિં તં સ્વઓવસમે ?) હે ભગવન્ ! તે ક્ષાયોપશમતુ સ્વરૂપ
કેવુ છે ?

ઉત્તર-(સ્વઓવસમે ચરૂળ્લં ઘાઠ્ઠકર્મ્માણં સ્વઓવસમેણં) કેવળજ્ઞાનના પ્રતિબ-
ન્ધક-કેવળજ્ઞાનને પ્રકટ થતુ રોકનારાં-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહનીય
અને અન્તરાય, આ ચાર ઘાતિયા કર્મોનો જે ક્ષયોપશમ ઇપ લાવ છે, તેને
ક્ષયોપશમ કહે છે. આ કથનતુ તાત્પર્યં નીચે પ્રમાણે છે-વિવક્ષિત જ્ઞાનાદિક
ગુણોનો ઘાત કરનારા ઉદય પ્રાપ્ત કર્મોનો ક્ષય (સર્વથા અપગમ) અને
અનુદીર્ણ અને કર્મોનો ઉપશમ (વિપાકની અપેક્ષાએ ઉદયાભાવ), આ પ્રકારનો
ક્ષયથી ઉપલક્ષિત જે ઉપશમ છે, તેનું નામ જ ક્ષયોપશમ છે.

શંકા-ઔપશમિક ભાવમાં ઉદયપ્રાપ્ત કર્મોનો સર્વથા ક્ષય થાય છે અને

क्षयः, अनुदयप्राप्तं तु कर्म न क्षीणं नापि तस्योदयोऽतस्तस्योपशमश्च उच्यते, क्षयोपशमिकेऽस्मिन्नपि भावे उदीर्णस्य क्षयः, अनुदीर्णस्य चोपशम इत्युच्यते, इत्थमनयोः को भेदः? इति चेदाह—कर्मणः क्षयोपशमे तु विपाकत एवोदयाभावः, प्रदेशस्तु अस्त्येवोदयः, औपशमिके भावे तु कर्मणः प्रदेशतोऽप्युदयो नास्तीत्यनयोर्भेदो बोध्यः। क्षयोपशमस्तु ज्ञानावरणादि कर्मचतुष्टयस्यैव भवति, नान्येषां

अनुदय प्राप्त जो कर्म है उसका न क्षय है और न उदय है, किन्तु उपशम है, इसी प्रकार इस क्षयोपशमिक भाव में भी उदीर्ण कर्मका क्षय है और अनुदीर्ण कर्मका उपशम है। तब औपशमिक और क्षयोपशमिक में क्या भेद है ?

उत्तर—क्षयोपशम भाव में जो कर्म का उपशम कहा गया है वह विपाक की अपेक्षा से ही उदयाभाव रूप उपशम कहा गया है, प्रदेश की अपेक्षा नहीं—प्रदेश की अपेक्षा से तो वहाँ कर्मका उदय है परन्तु औपशमिक भाव में जो उपशम कहा गया है वह विपाक और प्रदेश दोनों की अपेक्षा से कहा गया है। अर्थात् औपशमिक भाव में कर्म का न विपाकोदय है, और न प्रदेशोदय है। नीरस किये हुए कर्म दलिकों का वेदन प्रदेशोदय है और रस विशिष्ट दलिकों का विपाक वेदन विपाकोदय है। क्षयोपशम ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय इन चार कर्मों का ही होता है। निषिद्ध होने

अनुदय प्राप्त जे कर्म छे तेनो क्षय पछु थतो तथा अने उदय पछु थतो नथी परन्तु उपशम ज थाय छे. जेज प्रकारे क्षयोपशमिक लावमां पछु उदीर्ण कर्मनो क्षय अने अनुदीर्ण कर्मनो उपशम थतो डोय छे. तो पछी औपशमिक अने क्षयोपशमिकमां शेा लेह छे ?

उत्तर—क्षयोपशम लावमां कर्मनो जे उपशम कडेवामां आब्यो छे ते विपाकनी अपेक्षाजे ज उदयाभाव (उदयनो अभाव) इप उपशम गताववामां आब्यो छे, प्रदेशनी अपेक्षाजे गताववामां आब्यो नथी. प्रदेशनी अपेक्षाजे तो त्यां कर्मनो उदय ज छे. परन्तु औपशमिक लावमां जे उपशम गताववामां आब्यो छे, ते विपाक अने प्रदेश, आ गन्नेनी अपेक्षाजे गताववामां आब्यो छे जेट्ठे के औपशमिक लावमां कर्मनो विपाकोदय डोतो नथी, पछु प्रदेशोदय डोय छे. नीरस करायेलां कर्मदलिकेनु वेदन प्रदेशोदय इप छे अने रसविशिष्ट दलिकेनु विप कवेदन विपाकोदय इप छे. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोह-

કર્મણાં, નિષિદ્ધત્વાત્ । સમ્પ્રતિ પ્રથમં ભેદમુપસંહરન્નાહ—સ एष क्षयोपशम इति ।
 द्वितीयं भेदं पृच्छति—अथ कोऽसौ क्षयोपशमनिष्पन्नः ? इति । उत्तरयति—क्षयोपश-
 निष्पन्नः अनेकविधः प्रज्ञप्तः । अनेकविधत्वमेवाह—तद्यथा—क्षायोपशमिकी आभि-
 निबोधिकज्ञानलब्धिः क्षयोपशमेन निष्पन्ना क्षायोपशमिकी, सा का ? इत्याह—
 आभिनिबोधिकज्ञानलब्धिरिति । आभिनिबोधिकज्ञानं=मतिज्ञानं तस्य लब्धिः=प्राप्तिः
 इयं हि—स्वावरणकर्मक्षयोपशमेनोपसम्पद्यते, अत एवेयं क्षायोपशमिकीत्युच्यते ।
 इत आरभ्य क्षायोपशमिकी मनः पर्यवज्ञानलब्धिरिति यावद् वक्तव्यम् । तत्तज्ज्ञान

સે અન્ય કર્મો' કો નહીં' હોતા હૈ । (સે તં સ્વઓસમે) હસ પ્રકાર યહ-
 ક્ષયોપશમ હૈ (સે ' ક્ષિ તં સ્વઓવસમણિષ્કણ્ણે ?) હે મદંત । ક્ષયોપશમ
 નિષ્પન્ન ક્ષાયોપશમિક ભાવ કયા હૈ ?

ઉત્તર—(સ્વઓવસમણિષ્કણ્ણે અણેગવિહે પણ્ણત્તે) ક્ષયોપશમ નિષ્પન્ન
 ક્ષાયોપશમિક ભાવ અનેક પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ । (તં જહા) વે
 પ્રકાર યે હૈ—

(સ્વઓવ સમિયા આભિણિબોહિયાણણલહ્હી જાવ સ્વઓવસમિયા મળ-
 પજ્જવણાણલહ્હી) ક્ષયોપશમિકી આભિનિબોધિક જ્ઞાનલબ્ધિ—અભિનિ-
 બોધક નામ મતિજ્ઞાન હૈ । હસ મતિજ્ઞાન કી પ્રાપ્તિ કા નામ આભિનિબોધિક
 જ્ઞાનલબ્ધિ હૈ । યહ આભિનિબોધિકજ્ઞાનલબ્ધિ મતિજ્ઞાનાવરણ કર્મ કે
 ક્ષયોપશમ સે હોતી હૈ । હસલિયે હસે ક્ષાયોપશમિકી કહી હૈ, હસી પ્રકાર
 શ્રુતજ્ઞાનલબ્ધિ શ્રુતજ્ઞાનાવરણકર્મ કે ક્ષયોપશમ સે હોતી હૈ । અવધિ-

નીય અને અંતરાય, આ ચાર પ્રકારનાં કર્મોનો જ ક્ષયોપશમ થાય છે, અન્ય કર્મોનો
 ક્ષયોપશમ થતો નથી. (સે તં સ્વઓવસમે) આ પ્રકારનું ક્ષયોપશમનું સ્વરૂપ છે.
 પ્રશ્ન—(સે કિં તં સ્વઓવસમણિષ્કણ્ણે ?) હે ભગવન્ ! ક્ષયોપશમનિષ્પન્ન
 ક્ષાયોપશમિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(સ્વઓવસમણિષ્કણ્ણે અણેગવિહે પણ્ણત્તે) ક્ષયોપશમનિષ્પન્ન ક્ષાયો-
 પશમિક ભાવ અનેક પ્રકારનો કહ્યો છે. (તંજહા) જેમ કે....(સ્વઓવસમિયા
 આભિણિબોહિયાણણલહ્હી જાવ સ્વઓવસમિયા મળપજ્જવણાણલહ્હી) ક્ષાયોપશમિકી
 આભિનિબોધિક જ્ઞાનલબ્ધિ મતિજ્ઞાનને આભિનિબોધિક જ્ઞાન કહે છે. આ
 મતિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિનું નામ આભિનિબોધિક જ્ઞાનલબ્ધિ છે. મતિજ્ઞાનાવરણ
 કર્મના ક્ષયોપશમથી આ આભિનિબોધિક જ્ઞાનલબ્ધિની પ્રાપ્તિ થાય છે તેથી
 તેને ક્ષાયોપશમિકી કહેવામાં આવી છે. જે પ્રભાણે શ્રુતજ્ઞાનાવરણ કર્મના
 ક્ષયોપશમથી શ્રુતજ્ઞાનલબ્ધિની, અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી

प्राप्तिर्हि तत्तदावरणकर्मक्षयोपशमजन्या बोध्या । केवलज्ञानलब्धिस्तु तदावरण-
कर्मणः क्षय एवोत्पद्यते अतोऽत्र नोक्ता । तथा-क्षायोपशमिकी मत्यज्ञानलब्धिः-
अज्ञानं-कुत्सितं ज्ञानम्-भ्रजानम्, कुत्सार्थेऽपि नवोवृत्तिः, कुत्सितं-शीलम्-
अशीलम् इत्यादौ तथा दृष्टत्वात्, मतिरेवाज्ञानं मत्यज्ञानं तस्य लब्धिः=योग्यता
स्वावरणक्षयोपशमेनैव निष्पद्यते । कुत्सितत्वं चास्य मिथ्यादर्शनोदयदूषितत्वाद्
बोध्यम् । एवं क्षायोपशमिकी श्रुतज्ञानलब्धिरपि बोध्या । तथा-क्षायोपशमिकी
विभङ्गज्ञानलब्धिः-भङ्गप्रकारो भेदइति पर्यायाः । भङ्गशब्दस्त्विह प्रक्रमादवधिवाचकः ।

ज्ञानालब्धि अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है, और
मनःपर्यवज्ञानलब्धि मनः पर्यवज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती
है । इसलिये इन लब्धियों को क्षायोपशमिक कहा है । केवलज्ञानलब्धि को
सूत्रकार ने जो यहां नहीं कहा है उसका कारण यह है कि यह के-
वलज्ञानावरणकर्म के क्षय से होती है । (खओवसमिया मह अण्णाण
लद्धी, खओवसमिया सुय अण्णाणलद्धी, खओवसमिया विभंगणाण-
लद्धी) मतिअज्ञानावरण के क्षयोपशम से मति अज्ञान, श्रुतअज्ञाना-
वरण के क्षयोपशम से श्रुतज्ञान, विभंगज्ञानावरण के क्षयोपशम से
विभंगज्ञान की प्राप्ति होती है, इसलिये इन्हें क्षायोपशमिकी मत्यज्ञान
लब्धि, क्षायोपशमिकी श्रुताज्ञानालब्धि और क्षायोपशमिकी विभंग
ज्ञान लब्धि कहा है । कुत्सित ज्ञान का नाम अज्ञान है । कुत्सित अर्थ
में भी नञ् होता है । जैसे कुत्सितशील अशील आदि (खओवसमिया

अवधिज्ञान लब्धिनी अने मनःपर्यवज्ञानावरणुना क्षयोपशमथी मनःपर्यवज्ञान
लब्धिनी प्राप्ति थाय छे. ते कारणे ते लब्धिअने क्षयोपशमिक कडेवाभां
आवी छे अही सूत्रकारे केवणज्ञान लब्धिने उद्वेण कुर्ये नथी, कारणे के
केवणज्ञानावरणु कर्मना क्षयथी जे केवणज्ञान लब्धिनी प्राप्ति थाय छे,
क्षयोपशमथी तेनी प्राप्ति थती नथी.

(खओवसमिया मह अण्णाणलद्धी, खओवसमिया सुय अण्णाणलद्धी, खओ-
वसमिया विभंगणाणलद्धी) मति अज्ञानावरणुना क्षयोपशमथी मति अज्ञान,
श्रुतअज्ञानावरणुना क्षयोपशमथी श्रुताज्ञान अने विभंगज्ञानावरणुना क्षयोपश-
मथी विभंगज्ञाननी प्राप्ति थाय छे. तेथी तेमने क्षायोपशमिकी मत्यज्ञान-
लब्धि, क्षायोपशमिकी श्रुताज्ञानलब्धि अने क्षायोपशमिकी विभंगज्ञानलब्धि
कडेवाभां आवेल छे. कुत्सित ज्ञाननुं नाम अज्ञान छे. कुत्सितना अर्थभां पणु
नञ् (नकार वाचक) ने प्रयोग थाय छे. जेम के कुत्सितशील, अशील आदि.

विरूपः=कुत्सितो भङ्गो विभङ्गः, स एव ज्ञानं-विभङ्गज्ञानम्-ज्ञानत्वं चास्य अर्थपरिज्ञानात्मकत्वाद् बोध्यम् । मिथ्यादृष्टिदेवादेरवधिज्ञानं विभङ्गज्ञानमुच्यते । विभङ्गज्ञानस्वलब्धिः=विभङ्गज्ञानलब्धिः । इयमपि स्वावरणक्षयोपशमैर्नैव भवति, अतोऽस्या अपि क्षायोपशमिकीर्त्वं बोध्यम् । एवं मिथ्यात्वादिकर्मणः क्षयोपशमसाध्याः शेषा अपि सम्यग्दर्शनादिलब्धयो यथासम्भवं भावनीयाः । तथा-क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धिः-इयं हि वीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमाद् भवति । एवं-पण्डितवीर्यलब्धिः, बालवीर्यलब्धिः,

चक्रखुदंसणलद्धी) क्षायोपशमिकीचक्षुः दर्शन लब्धि, (अचक्रखुदंसणलद्धी, ओहिदंसणलद्धी) अचक्षुदर्शनलब्धि अवधिदर्शनलब्धि है । इनमें चक्षुर्दर्शनावरण के क्षयोपशम से चक्षुर्दर्शन लब्धि, अचक्षुर्दर्शनावरण के क्षायोपशम से अचक्षुर्दर्शनलब्धि और अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशम से अवधिदर्शनलब्धि होती है। (एवं सम्मदंसणलद्धी, मिच्छादंसणलद्धी सम्ममिच्छादंसणलद्धी) इसप्रकार से सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि (स्वओवसमिया सामाह्यचरित्तलद्धी, एवं छेयोवद्वावणलद्धी, परिहारविसुद्धिलद्धी सुहृमसंपरायचरित्तलब्धि एवं चरित्ताचरित्तलद्धी) क्षायोपशमिकी सामायिक चरित्रलब्धि छेदोपस्थापनालब्धि, परिहारविशुद्धिक लब्धि, सूक्ष्म संपरायचारित्रलब्धि, चारित्राचरित्रलब्धि (स्वओवसमिया दाणलद्धी, एवं लाभलद्धी, भोगलद्धी, उपभोगलद्धी) क्षायोपशमिकी दानलब्धि लाभलब्धि, भोगलब्धि उपभोगलब्धि, (स्वओवसमिया

(स्वओवसमिया चक्रखुदंसणलद्धी) क्षायोपशमिकी चक्षुः दर्शनलब्धि, (अचक्रखुदंसणलद्धी, ओहिदंसणलद्धी) अचक्षुदर्शनलब्धि अने अवधिदर्शनलब्धि पणु क्षयोपशम निष्पन्न क्षायोपशमिके लावण्ये छे, कारणे के चक्षुःदर्शनावरणे कर्मना क्षयोपशमथी चक्षुःदर्शनलब्धिनी प्राप्ति थाय छे, अचक्षुर्दर्शनावरणे कर्मना क्षयोपशमथी अचक्षुर्दर्शनलब्धिनी प्राप्ति थाय छे अने अवधिदर्शनावरणे कर्मना क्षयोपशमथी अवधिदर्शनलब्धिनी प्राप्ति थाय छे. (एवं सम्मदंसणलद्धी, मिच्छादंसणलद्धी, सम्ममिच्छादंसणलद्धी) अने प्रमाणे सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि, सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि, (स्वओवसमिया सामाह्यचरित्तलद्धी, एवं छेयोवद्वावणलद्धी, परिहारविसुद्धिलद्धी) क्षायोपशमिकी सामायिक चरित्रलब्धि, छेदोपस्थापनालब्धि, परिहारविशुद्धिकलब्धि, (सुहृमसंपराय चरित्तलद्धी, एवं चरित्ताचरित्तलद्धी) सूक्ष्म संपराय चरित्रलब्धि, चारित्राचरित्रलब्धि, (स्वओवसमिया दाणलद्धी, एवं लाभलद्धी, भोगलद्धी, उपभोगलद्धी) क्षायोपशमिकी दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि अने उपभोगलब्धि, (स्वओवसमिया वीरियलद्धी) क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धि, (एवं पण्डितवीरियलद्धी,

बालपण्डितवीर्यलब्धिरिति बोध्यम् । अयं भावः-पण्डिताः=साधवः, बालाः= अविरताः, बालपण्डिताः=देशविरताः । एषां स्वस्ववीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमेन स्वस्ववीर्यलब्धिः प्रादुर्भवतीति । तथा-क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धिः यावत् क्षायोपशमिकी स्पर्शेन्द्रियलब्धिः । अत्र-इन्द्रियाणि लब्ध्युपयोगरूपाणि भावेन्द्रियाणि बोध्यानि, तेषां लब्धिः=मतिश्रुतज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमजन्यत्वात् क्षायोपशमिकीति बोध्यम् । तथा-क्षायोपशमिक आचाराङ्गधर इत्यारभ्य क्षायोपशमिको वाचक इत्यन्तोऽपि श्रुतज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमजन्यो बोध्यः । आचाराङ्गधरत्वादि पर्याया हि श्रुतज्ञानप्रभवाः, श्रुतज्ञानं च तदावरणकर्मक्षयोपशमेन निष्पद्यते, अत आचाराङ्गधरादयः क्षायोपशमिका बोध्या इति भावः ।

वीरियलब्धी) क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धि, (एवं पण्डियवीरियलब्धी) पण्डित वीर्यलब्धि (बाल वीरियलब्धी) बालवीर्यलब्धि (बालपण्डियवीरियलब्धी) बालपण्डित वीर्यलब्धि (खओवसमिया सोइंदियलब्धी) क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धि (जाव) यावत् (खओवसमिया फासिंदियलब्धी) क्षायोपशमिकी स्पर्शन इन्द्रियलब्धि (खओवसमिए आयारंगधरे) क्षायोपशमिक आचारंगधारी, (एवं सुयगडंगधरे, ठाणंगधरे, समवायंगधरे, विवाहपण्णत्तिधरे, नायाधम्मकहाधरे) सूत्रकृताङ्गधारी, स्थानांगधारी, समवायाङ्गधारी, विवाहप्रज्ञसिधारी ज्ञाताधर्मकथाधारी (उवासगदसाधरे) उपासकदशाधारी, (अंतंगडदसाधरे) अन्तकृतदशाधारी, (अणुत्तरोववाइयदसाधरे) अनुत्तरौपपातिक दशाधारी, (पण्हावागरणधरे) प्रश्नव्याकरणधारी, (विवाग सुयधरे) विपाक श्रुतधारी (खओवसमिए दिट्ठिवायधरे) क्षायोपशमिक दृष्टिवादधारी (खओवसमिए णवपुब्धी) क्षायोपशमिक नव-

बालवीरियलब्धी, (बालपण्डियवीरियलब्धी) क्षायोपशमिकी पण्डितवीर्यलब्धि, बाल- वीर्यलब्धि अने बालपण्डितवीर्यलब्धि.

(खओवसमिया सोइंदियलब्धी जाव खओवसमिया फासिंदियलब्धी) क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धिथी लधने क्षायोपशमिकी स्पर्शेन्द्रियलब्धिपर्यन्तनी पांच प्रकारनी लब्धिओ, (खओवसमिए आयारंगधरे) क्षायोपशमिक आचारंगधारी, (एवं सुयगडंगधरे; ठाणंगधरे, समवायंगधरे, विवाह पण्णत्तिधरे, नायाधम्मकहाधरे, उवासगदसाधरे, अणुत्तरोववाइयदसाधरे, पण्हावागरणधरे, विवागसुयधरे,) अने प्रभाषे क्षायोपशमिक सूत्रकृतांगधारी, स्थानांगधारी, समवायांगधारी, विवाहप्रज्ञसि (व्याख्याप्रज्ञसि)धारी, उपासकदशाधारी, अन्तकृतदशाधारी; अनुत्तरौपपातिक दशाधारी, प्रश्नव्याकरणधारी विपाकश्रुतधारी, (खओवसमिए दिट्ठिवायधरे)

प्रकृतमुपसंहरन्नाह—स एष क्षायोपशमनिष्पन्न इति । क्षायोपशमिको भावः प्ररूपित इति सूचयितुमाह—स एष क्षायोपशमिक इति ॥सू० १५५॥

पूर्वधारी (खओवसमिए जाव चउदस पुव्वी) क्षायोपशमिक यावत् चतुर्दशपूर्वधारी (खओवसमिए गणी) क्षायोपशमिक गणी खाओवसमिए वायए) क्षायोपशमिकवाचक (से तं खओवसम्मनिष्फण्णे) इसप्रकार ये सब क्षायोपशम निष्पन्न हैं (से तं खओवसमिए) यह वह क्षायोपशमिक है । -

भावार्थ—इस सूत्र द्वारा सूत्रकारने क्षायोपशमिक क्या है इसका विवेचन किया है । उन्होंने कहा—है कि एक तो क्षायोपशम ही क्षायोपशमिक है और दूसरा क्षयोपशम निष्पन्न क्षायोपशमिक है । इनमें चार घातिक कर्मों का क्षय उपलक्षित जो उपशम है वह क्षायोपशमिक है । क्षायोपशमिक ज्ञान के आवारक जो कर्म हैं उनमें सर्वघातिस्पर्द्धक (कर्मांश) और देशघातिस्पर्द्धक ये दोनों प्रकार के स्पर्द्धक पाये जाते हैं । इसलिये उनका क्षयोपशम होता है । नव नोकषायों में केवल देशघातिस्पर्द्धक ही पाये जाते हैं इसलिये उनका क्षयोपशम नहीं होता केवल ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों में केवल सर्वघातिस्पर्द्धक पाये जाते हैं

क्षायोपशमिक दृष्टिवाहधारी, (खओवसमिए णवपुव्वी) क्षायोपशमिक नवपूर्वधारीथी लधने (खओवसमिए जाव चउदसपुव्वी) क्षायोपशमिक चौद पूर्वधारी पर्यन्तना लुवे, (खओवसमिए गणी) क्षायोपशमिक गणी, (खओवसमिए वायए) अने क्षायोपशमिक वाचक (से तं खओवसम्मनिष्फण्णे) आ अथा क्षायोपशम निष्पन्न भावे छे. (से तं खओवसमिए) क्षायोपशमिकनुं आ प्रकारनुं स्वइप छे.

भावार्थ—आ सूत्र द्वारा सूत्रकारने क्षायोपशमिक भावना स्वइपनुं विवेचन कथुं छे तेमां तेभण्णे अणुं प्रतिपादन कथुं छे के अक तो क्षायोपशम न क्षायोपशमिक छे अने णीणुं क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिक छे. चार घातिया कर्मांशा क्षयथी. उपलक्षित ने उपशम छे, तेनुं नाम क्षायोपशमिक छे. क्षायोपशमिक ज्ञाननुं आवरण करनारा ने कर्मां छे तेमां सर्वघाति स्पर्द्धकां अने देशघाति स्पर्द्धकां इप अन्ने प्रकारना स्पर्द्धकांने सदभाव रहे छे.

इसलिये उनका भी क्षयोपशम नहीं होता है। यद्यपि प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषाय सर्वघाति ही हैं—किन्तु उन्हें अपेक्षाकृत देशघाति मान लिया जाता है इसलिये अनंतानुबन्धी आदि का क्षयोपशम बन जाता है। अघातिया कर्मों में तो देशघाति और सर्वघाति यह विकल्प ही संभव नहीं, इसलिये उनके क्षयोपशम का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः सूत्रकारने यह तो क्षयोपशम की सामान्य योग्यता का विवेचन किया है। क्षयोपशम और उपशम में केवल अन्तर इतना ही है कि क्षयोपशम में कितनेक सर्वघातिस्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय रहता है और कितनेक उन्हीं सर्वघातिस्पर्द्धकों का सदवस्था रूप उपशम रहता है—तथा देशघातिस्पर्द्धकों का उदय रहता है। तब कि उपशम में किसी का भी उदय नहीं रहता है। सबका उपशम ही रहता है—

अब सूत्रकार यह कहते हैं कि किन २ कर्मों के क्षयोपशम से कौन २ से भाव प्रकट होते हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण अवधिज्ञानावरण, और मनःपर्यवज्ञानावरण के क्षयोपशम से मति, श्रुत,

तेथी तेमने क्षयोपशम थाय छे. नव नोऽपयोमां डेवण देशघाति स्पर्द्धको (कर्मदिको)ने न सद्भाव डाय छे, तेथी तेमने क्षयोपशम थतो नथी डेवणज्ञानावरण आदि प्रकृतिओमां डेवण सर्वघाति स्पर्द्धकोने न सद्भाव डाय छे, तेथी तेमने क्षयोपशम पण थतो नथी जे डे प्रत्याख्यानावरण अने अप्रत्याख्यानावरण कषाय सर्वघाति न छे, परन्तु तेमने अपेक्षाकृत देशघाति मानी देवामां आवेल छे, तेथी अनंतानुबन्धी आदिने क्षयोपशम संभवित जनी जय छे. अघातिया कर्ममां तो देशघाति अने सर्वघाति इय विकल्प न संलवी शकतो नथी, तेथी तेमना क्षयोपशमने तो प्रश्न न उद्भवतो नथी आ प्रकारे सूत्रकारे क्षयोपशमनी सामान्य योग्यतानुं अही विवेचन क्युं छे क्षयोपशम अने उपशम वच्चे नीचे प्रमाणेनुं अंतर समजवुं—क्षयोपशममां डेटलाक सर्वघाति स्पर्द्धकोने उदयाभावी क्षय रहे छे अने डेटलाक सर्वघाति स्पर्द्धकोना सदवस्थाइय उपशम रहे छे तथा देशघाति स्पर्द्धकोने उदय रहे छे परन्तु उपशममां तेमने उदय रहेतो नथी पण उपशम न रहे छे.

डेवे सूत्रकार ओ वात प्रकट करे छे डे कयां कयां कर्मोना क्षयोपशमथी कया कया भाव प्रकट थाय छे—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण अने मनःपर्यवज्ञानावरण कर्मोना क्षयोपशमथी अनुक्रमे मतिज्ञान, श्रुत-

અવધિ ઓર મનઃપર્યવજ્ઞાન પ્રકટ હોતે હૈં । સૂત્ર મેં લબ્ધિ શબ્દ કા અર્થ પ્રાપ્તિ હૈ । યહ સ્ત્રીલિંગ હૈં હસલિયે “ક્ષાયોપશમિકી” શબ્દ મી સ્ત્રીલિંગ મેં વ્યવહૃત કિયા ગયા હૈં । અપને ૨ આવારક કર્મોં કે ક્ષયોપશમ સે મતિજ્ઞાનાદિકોં કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈં । હસલિયે યહ પ્રાપ્તિ ક્ષાયોપશમિકી હૈં । કેવલજ્ઞાન કો ક્ષયોપશમિક નહીં માના ગયા હૈં । વહ તો ક્ષાયિક હૈં । કયોં કિ યહ કેવલજ્ઞાનાવરણ કે ક્ષય સે હોતા હૈં ।

શંકા—યદિ કેવલજ્ઞાન, કેવલજ્ઞાનાવરણ કર્મ કે ક્ષય સે હોતા હૈ—તો ફિર ઉસે એસા કયોં કહા જાતા હૈં કિ યહ જ્ઞાનાવરણ કર્મ કે ક્ષય સે હોતા હૈં ?

ઉત્તર—આત્મા કા સ્વભાવ કેવલજ્ઞાન હૈં । હસે કેવલજ્ઞાનાવરણ આવૃત કિયે હુણ હૈં । તથાપિ વહ પૂરા આવૃત નહીં હો—પાતા, અતિમન્દ જ્ઞાન પ્રકટ હી બના રહતા હૈં । જિસે મતિજ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ આવૃત ફરતે હૈં, હસસે સ્પષ્ટ હૈં કિ કેવલજ્ઞાન કો પ્રકટ ન હોને દેના જ્ઞાનાવરણ કે પાંચોં ભેદોં કા સાક્ષાત્ રોકતા હૈં ઓર મતિજ્ઞાનાવરણ આદિ પરંપરા સે । હસલિયે જ્ઞાનાવરણકર્મ કે ક્ષય સે કેવલજ્ઞાન હોતા હૈં

જ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાન પ્રકટ થાય છે. સૂત્રમાં જે ‘લબ્ધિ’ પદ વપરાયુ છે તેનો અર્થ ‘પ્રાપ્તિ’ સમજવો. ‘લબ્ધિ’ પદ સ્ત્રીલિંગમાં હોવાથી તેની સાથે ‘ક્ષાયોપશમિકી’ આ પદનો પણ સ્ત્રીલિંગમાં જ પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે. મતિજ્ઞાન આદિકેની પ્રાપ્તિ ત્યારે જ થાય છે કે જ્યારે તે પ્રત્યેક જ્ઞાનના આવારક (આવરણ કરનારાં) કર્મોનો ક્ષયોપશમ થાય છે. તેથી તેમની તે પ્રાપ્તિને ક્ષાયોપશમિકી કહી છે. કેવળજ્ઞાનને ક્ષયોપશમિક ગણવામાં આવતું નથી, તેને તો ક્ષાયિક જ ગણવામાં આવે છે, કારણ કે કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયથી જ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે.

શંકા—જે કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયને લીધે કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું હોય, તો એવું શા માટે કહેવામાં આવે છે કે જ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષય થવાથી કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે ?

ઉત્તર—આત્માનો સ્વભાવ કેવળજ્ઞાન છે તેના ઉપર કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મનું આવરણ હોય છે છતાં પણ તે પૂરેપૂરું આવૃત થઈ શકતું નથી અતિ મન્દ જ્ઞાન પ્રકટ જ થતું રહે છે, કે જેને મતિજ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ આવૃત કરે છે. તેથી એ વાત સ્પષ્ટ થાય છે કે કેવળજ્ઞાનને પ્રકટ ન થવા દેવામાં જ્ઞાનાવરણના પાંચે ભેદો કારણભૂત બને છે કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મ કેવળજ્ઞાનને સાક્ષાત્ રૂપે રોકે છે અને મતિજ્ઞાનાવરણ આદિ ચાર કર્મો તેને પરંપરા

ऐसा कहा जाता है। मतिअज्ञानावरण, श्रुतअज्ञानावरण, और विभंगज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मत्तज्ञान, श्रुताज्ञान, और विभंगज्ञान प्रकट होते हैं। यहां अज्ञान से तात्पर्य ज्ञानाभाव से नहीं है, क्योंकि ज्ञानावरण रूप अज्ञान औदयिक भाव है। यह ज्ञानावरण कर्म के उदय से होता है। किन्तु कुत्सित ज्ञान का नाम अज्ञान है। जब मतिज्ञान आदि मिथ्यादर्शन के उदय से दूषित होते तब वे कुत्सितज्ञान कहलाते हैं। विभंग में भंगशब्द प्रकरणवश अवधि वाचक है। वैसे तो यह प्रकार भेद-का वाचक है। और "वि" शब्द विरूप-कुत्सित अर्थ का वाचक है। इस तरह विरूपः भंगः विभंगः विभंग एव ज्ञानम्" ऐसी इसकी व्युत्पत्ति है। इस विभंग में जो ज्ञान पना है, वह अर्थ परिज्ञानात्मक होने से है। मिथ्यादृष्टि देवादिकों का अवधिज्ञान विभंगज्ञान कहलाता है। चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, और अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशम से चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन और अवधिदर्शन प्रकट होते हैं। इसलिये क्षयोपशमिक सम्पद्दर्शन

इये रेडे छे. तेथी " ज्ञानावरणकर्मना क्षयथी डेवणज्ञान उत्पन्न थाय छे. " अणुं कडेवामां आवे छे.

मतिअज्ञानावरण, श्रुतअज्ञानावरण अने विलंगज्ञानावरण कर्मना क्षयोपशमथी अनुकमे मत्तज्ञान, श्रुताज्ञान अने विलंगज्ञान प्रकट थाय छे. अही " अज्ञान " पद द्वारा ज्ञानाभाव समजवानो नथी कारण के ज्ञानाभाव इय अज्ञान तो औदयिक लावइय छे, अने ज्ञानावरण कर्मना उदयथी ते लाव उत्पन्न थाय छे. परन्तु कुत्सितज्ञानने अज्ञान कडे छे. ज्यारे मतिज्ञान आदि मिथ्यादर्शनना उदयथी दूषित डोय छे, त्यादे तेमने कुत्सित ज्ञानइय गणवामां आवे छे 'विलंग' पदमां जे "लंग" पद छे ते अही अवधिवाचक छे. आस तो ते पद प्रकारलेदनुं वाचक गणाय छे. अने "वि" पद विरूपकुत्सित अर्थनुं वाचक छे. विलंगज्ञाननी व्युत्पत्ति आ प्रमाणे थाय छे—"विरूपः भंगः विभंगः विभंग एव ज्ञानं विभंगज्ञानम्" आ विलंगमां जे ज्ञानपणु छे ते अर्थपरिज्ञानात्मकतानी अपेक्षाअे छे. मिथ्या-दृष्टि देवादिकेना अवधिज्ञानने विलंगज्ञान कडे छे अक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षु-दर्शनावरण अने अवधिदर्शनावरण कर्मना क्षयोपशमथी अनुकमे अक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अने अवधिदर्शन प्रकट थाय छे. तेथी तेमने पणु क्षयोपश-मिक कडेवामां आवेस छे. मिथ्यात्वकर्मना क्षयोपशमथी क्षयोपशमिक सम्पद्

કી પ્રાપ્તિ મિથ્યાત્વ કર્મ કે ક્ષયોપશમ સે હોતી હૈ । હસી પ્રકાર સે ઓર બી લલ્બિયો મેં યથાસંભવ ક્ષાયોપશમિકતા જાન લેની યાહિયે । વીર્ય લલ્બિ વીર્યાન્તરાય કર્મ કે ક્ષયોપશમ સે હોતી હૈ । હસી પ્રકાર સે પંડિતવીર્ય લલ્બિ બાલવીર્ય લલ્બિ, બાલપંડિતવીર્ય લલ્બિ કો બી જાનના યાહિયે । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ-પંડિત સે યહાં સાધુજન બાલ સે અવિરતિજન, ઓર બાલપંડિત સે દેશવિરતજન લિયે ગયે હૈં । હનકો અપને ૨ વીર્યાન્તરાય કર્મ કે ક્ષયોપશમ સે અપની ૨ વીર્યલલ્બિ પ્રકટ હોતી હૈ ।

સમ્યગ્મિથ્યાદર્શનલલ્બિ સમ્યક્ત્વ કા ભેદ હૈ । હસલિયે યહ લલ્બિ મિથ્યાત્વકર્મ કે ક્ષયોપશમ સે હોતી હૈ । સામાયિકચારિત્રલલ્બિ, હેદોપસ્થાપનલલ્બિ, પરિહારવિશુદ્ધિકલલ્બિ, સૂક્ષ્મ સંપરાયચારિત્રલલ્બિ ઓર ચારિત્રાચારિત્રલલ્બિ યે સબ ચારિત્ર-મોહનીય કર્મ કે ક્ષયોપશમ સે હોતી હૈ હસીલિયે હનમેં ક્ષાયોપશમિકતા હૈ । સંયત કે કર્મોં કો નિવારણ કરને કે લિયે જો અન્તરંગ ઓર બહિરંગ પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ વહ ચારિત્ર હૈ-અર્થાત્ આત્મિક શુદ્ધ દશા મેં સ્થિર રહને કા પ્રયત્ન કરના હી ચારિત્ર હૈ । પરિણામ શુદ્ધિ કે તરતમ ભાવ કી અપેક્ષા ઓર નિમિત્ત ભેદ સે

દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે. એજ પ્રમાણે બીજી બધી સૂત્રોક્ત લલ્બિઓમાં પણ યથાસંભવ ક્ષાયોપશમિકતા સમજી લેવી. વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી વીર્યલલ્બિ પ્રકટ થાય છે. એજ પ્રમાણે પંડિતવીર્ય લલ્બિ, બાલ વીર્યલલ્બિ અને બાલપંડિતવીર્ય લલ્બિને પણ ક્ષાયોપશમિક જ સમજવી જોઈએ. પંડિતપદ અહીં સાધુજનનું, બાલપદ અવિરતયુક્તજનનું અને બાલ-પંડિતપદ દેશવિરત જનનું વાચક છે. તેમને પોતપોતાના વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમ થવાથી પંડિતવીર્ય લલ્બિ આદિની પ્રાપ્તિ થાય છે.

સમ્યગ્મિથ્યાદર્શન લલ્બિ સમ્યક્ત્વના એક ભેદ રૂપ છે. તેથી મિથ્યાત્વ કર્મના ક્ષયોપશમથી તે લલ્બિની પ્રાપ્તિ થાય છે, સામાયિક ચારિત્ર લલ્બિ, હેદોપસ્થાપનલલ્બિ, પરિહાર વિશુદ્ધિક લલ્બિ, સૂક્ષ્મ સંપરાય લલ્બિ અને ચારિત્રાચારિત્ર લલ્બિ, આ બધી લલ્બિઓની પ્રાપ્તિ ચારિત્રમોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમને લીધે થાય છે, તેથી તેમનામાં ક્ષાયોપશમિકતા સમજવી જોઈએ. કર્મોદ્ નિવારણ કરવા માટે સંયત જે અન્તરંગ અને બહિરંગ પ્રવૃત્તિ કરે છે તેનું નામ ચારિત્ર છે. એટલે કે આત્મિક શુદ્ધ દશામાં સ્થિર રહેવાનો પ્રયત્ન કરવો તેનું જ નામ ચારિત્ર છે. પરિણામ શુદ્ધિના

चारित्र के सामायिक आदि पांच विभाग किये गये हैं। विशेष खुलासा इस प्रकार से है—सामायिक का अर्थ है सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम और तप इनके साथ ऐक्य स्थापित करने की अर्थात् समभाव में स्थिर रहने के लिये सम्पूर्ण अशुद्ध प्रवृत्तियों को त्याग करने की आत्मपरिणामों की वृत्ति बनाये रखना। इस सामायिक चारित्र की प्राप्ति सामायिक चारित्र लब्धि है। सामायिक चारित्र में रागद्वेष का निरोध कर के सब आवश्यक कर्तव्यों में समता बनाये रखना ही होता है। इसके नियतकाल और अनियतकाल ऐसे दो भेद होते हैं। जिनका समय निश्चित है ऐसे स्वाध्याय आदि नियतकाल सामायिक है। और जिन का समय नियत नहीं है ऐसे ईर्ष्यापथ आदि अनियतकाल सामायिक है। जैसे अहिंसाव्रत सब व्रतों का मूल है, वैसे ही सामायिक चारित्र सब चारित्रों का मूल है। मैं “सर्वसावद्योग से जीवन पर्यन्त विरत हूँ” इस एक व्रत में समावेश हो जाने से एक सामायिक व्रत माना है और वही एक व्रत पांच रूप से विवक्षित होने के कारण छेदोपस्थापना चारित्र कहलाता है। प्रथम दीक्षा लेने के बाद विशिष्ट श्रुत का अभ्यास

ततम लावनी अपेक्षाये अने निमित्त लेदनी अपेक्षाये चारित्रना सामायिक आदि पांच विभाग पाठवामां आव्या छे. तेनुं वधु स्पष्टीकरणे आ प्रमाणे छे—सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम अने तपनी साथे ऐक्य स्थापित करवानी—अटले के समभावमां स्थिर रहेवाने माटे समस्त अशुद्ध प्रवृत्तियोना त्याग करवानी आत्मपरिणामोनी वृत्ति राखवी तेनुं नाम सामायिक छे आ सामायिक चारित्रनी प्राप्तिनुं नाम सामायिक चारित्र लब्धि छे. सामायिक चारित्रनी आराधनामां रागद्वेषना निरोध करीने सधणां आवश्यक कर्तव्योमां सदा समभाव न राखवे पडे छे. तेना नियतकाल अने अनियतकाल इप जे लेदो छे जेमना समय निश्चित छे ओवां स्वाध्याय आदिने नियतकाल सामायिक कडे छे. जेमना समय नियत नथी जेवा इर्ष्यापथ आदिने अनियतकाल सामायिक कडे छे. जेम अहिंसाव्रतने सधणां व्रतोनुं भूण मानवामां आवे छे, जेन प्रमाणे सामायिक चारित्रने सधणां चारित्रोनुं भूण मानवामां आवे छे. “हुं एवनपर्यन्त सर्व सावद्योगोशी विरत थडि छुं” आ जेक व्रतमां समावेश थडि नवाने कारणे सामायिक व्रतने जेक न व्रत गणवामां आव्युं छे. अने जेन जेक व्रत पांच इपे विवक्षित थवाने कारणे छेदोपस्थापना चारित्र कडेवाय छे. प्रथम दीक्षा लीधा बाद विशिष्ट

कर चुकने पर विशेष शुद्धि के निमित्त जो जीवन पर्यन्त पुनः दीक्षा ली जाती है एवं प्रथम ली हुई दीक्षा का छेद करके फिर नयेसरे से जो दीक्षा का आरोपण किया जाता है—वह छेदोपस्थापन चारित्र्य है। जिसमें खास विशिष्ट प्रकार के तपः प्रधान आचार का पालन किया जाता है वह परिहारविशुद्धि चारित्र्य है। जिसमें क्रोध आदि कषायों का तो उदय नहीं होता, सिर्फ लोभ का अंश अति सूक्ष्मरूप में रहता है, वह सूक्ष्म संपराय चारित्र्य है। यह चारित्र्य केवल दशवे गुणस्थान में होता है। चारित्र्याचारित्र्य का नाम देश चारित्र्य है। यह अनन्तानुबन्धी आदि अष्टविध कषाय के क्षयोपशम आदि से आविर्भूत होता है। तथा सर्वविरति रूप चारित्र्य अनन्तानुबन्धी आदि १२ प्रकार के कषाय के क्षयोपशम आदि से आविर्भूत होता है। दान, लोभ, भोग, उपभोग और वीर्य इनकी लब्धि वीर्यन्तराय कर्म के दानान्तराय आदि के क्षयोपशम आदि से होती है,। श्रोत्रेन्द्रिय से लेकर जो स्पर्शान्द्रिय तक की लब्धियां कही हैं। वे द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा से नहीं कही हैं, किन्तु भावेन्द्रिय की अपेक्षा से कही हैं।

श्रुतानो अक्यास करी वीधा आह विशेषशुद्धिने निमित्ते जे जवनपर्यन्तनी पुनः दीक्षा लेवामां आवे छे अने प्रथम वीधेदी दीक्षानो छेद करीने (त्याग करीने) करी नवेसरथी जे दीक्षानुं आरोपणु करवामां आवे छे, तेनुं नाम छेदोपस्थापन चारित्र्य छे. जेमां विशिष्ट प्रकारना तपः प्रधान आचारनुं पालन करवामां आवे छे, तेनुं नाम परिहारविशुद्धि चारित्र्य छे. जे चारित्र्यमां क्रोधादि कषायानो उदय रहैतो नथी, परन्तु दोलनो अंश अति सूक्ष्म प्रमाणुमां भाकी रहै जय छे जेवा चारित्र्यनुं नाम सूक्ष्म संपराय चारित्र्य छे. इसमां गुणस्थानमां जे आ चारित्र्यो सदृसाव रहै छे अंशतः चारित्र्य अथवा देशचारित्र्यने चारित्र्याचारित्र्य कहै छे. अनन्तानुबन्धी आदि आठ प्रकारना कषायना क्षयोपशम आदिथी तेना आविर्भाव थाय छे. सर्वविरति रूप चारित्र्य अनन्तानुबन्धी आदि १२ प्रकारना कषायना क्षयोपशम आदिथी आविर्भूत (प्रकट) थाय छे. अन्तराय कर्मना प्रकार रूप दानान्तराय, लोभान्तराय, लोभान्तराय, उपलोकान्तराय अने वीर्यान्तराय कर्मना क्षयोपशमथी अनुक्रमे दानलब्धि, लोभलब्धि, उपलोकलब्धि अने वीर्यलब्धिनी प्राप्ति थाय छे. जेज प्रमाणे श्रोत्रेन्द्रियथी लब्धने स्पर्शेन्द्रियलब्धि पर्यन्तनी पञ्च पांच लब्धियां कहै छे. आ पांचे लब्धियां द्रव्येन्द्रियनी अपेक्षासे कहै नथी, पञ्च भावे-

सम्प्रति पारिणामिकं नाम निरूपयति—

मूलम्—से किं तं पारिणामि ए ? पारिणामि ए दुविहे पणत्ते,
तं जहा—साइपारिणामि ए य अणाइपारिणामि ए य। से किं तं
साइपारिणामि ए ? साइपारिणामि ए अणेगविहे पणत्ते तं जहा—
जुण्णसुरा, जुण्णगुलो जुण्णघयं जुण्णतंदुला चेव । अब्भा य
अब्भरुक्खा संझागंधवणगरा य ॥१॥ उक्कावाया दिसादाहा

भावेन्द्रियलब्धि उपयोग के भेद से दो प्रकार की है । इनकी लब्धि मति ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, के क्षयोपशम से होती है । तात्पर्य यह है कि मतिज्ञानावरणीय कर्म आदि का क्षयोपशम जो एक प्रकार का आत्मिक परिणाम है वह लब्धीन्द्रिय हैं । और लब्धि, निवृत्ति, तथा उपकरण इन तीनों के मिलने से जो रूपादि विषयों का सामान्य और विशेषबोध होता है वह उपयोगेन्द्रिय है । मतिज्ञान तथा चक्षु अचक्षुर्दर्शनरूप है । इसी प्रकार आचाराङ्ग, आदि १२ अंगों को धारण करने रूप तथा वाचकरूप पर्याये हैं वे सब श्रुतज्ञान प्रभव हैं । श्रुतज्ञान, श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होता है । इसलिये ये आचाराङ्गधर आदि पर्याये क्षयोपशमिक हैं । इस प्रकार क्षयोपशम निष्पन्न क्षयोपशमिक भाव का स्वरूप है ॥सू०१५५॥

न्द्रियनी अपेक्षाये कही छे. भावेन्द्रियो लब्धि उपयोगना लेदथी जे प्रकारनी छे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, चक्षुःदर्शनावरण अने अचक्षुःदर्शनावरणना क्षयोपशमथी तेमनी लब्धि थाय छे. आ कथनना भावार्थे जे छे. के मतिज्ञानावरणीय कर्म आदिना क्षयोपशम रूप जे जेक प्रकारनुं आत्मिक परिणाम छे, ते लब्धीन्द्रिय रूप छे अने लब्धि, निवृत्ति तथा उपकरण, आ त्रजे भणवाथी रूपादि विषयानो जे सामान्य अने विशेष बोध थाय छे ते उपयोगेन्द्रिय रूप छे उपयोगेन्द्रिय मतिज्ञान तथा चक्षु अचक्षु दर्शनरूप छे जेज प्रमाणे आचारांग आदि १२ अंगने धरण करवा रूप तथा वाचक रूप जे पर्याये छे ते श्रुतज्ञान स्वरूप छे श्रुतज्ञानावरण कर्मना क्षयोपशमथी श्रुतज्ञान प्राप्त थाय छे, तेथी आचारांगधर आदि १२ पर्याये यजे क्षयोपशमिक छे. आ प्रकारनुं क्षयोपशम निष्पन्न क्षयोपशमिक भावनुं स्वरूप छे. ॥सू०१५५॥

गज्जियं विज्जू णिग्घाया जूवया जक्खादिता धूमिया महिया
 रयुग्घाया चंदोवरागा सूरुवरागा चंदपरिवेसा सूरपरिवेसा पडि-
 चंदा पडिसूरा इंदधणू उदगमच्छा कविहसिया अमोहावासा
 वासधरा गाम्मा णगरा घरा पव्वया पायाला भवणा निरया
 रयणप्पहा सक्करप्पहा वालुयप्पहा पंकप्पहा धूमप्पहा तमप्पहा
 तमतमप्पहा सोहम्ममे जाव अच्चुए गेवेज्जे अणुत्तरे ईसिप्पभारा
 परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव अणंतपएसिए । से तं साइ-
 पारिणामए । से किं तं अणाइपारिणामए ? अणाइपारिणामिए
 धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए
 पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए लोए अलोए भवसिद्धिया अभव-
 सिद्धिया । से तं अणाइपारिणामिए । से तं पारिणामिए ॥सू०१५६॥

छाया—अथ कोऽसौ पारिणामिकः ? पारिणामिको द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-
 सादिपारिणामिकश्च अनादिपारिणामिकश्च । अथ कोऽसौ सादिपारिणामिकः
 सादिपारिणामिकः—अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—जीर्णसुरा जीर्णगुडः जीर्णघृतम्
 जीर्णतण्डुलाश्चैव । अभ्राणि च अभ्रवृक्षाः संध्या गन्धर्वनगराणि च ॥१॥ उल्का-
 पाताः, दिग्दाहाः, गर्जितं, विद्युत्, निर्घाताः, यूपकाः, यक्षा दीप्तकानि,
 धूमिका, मिहिका, रजउद्धाताः, चन्द्रोपरागाः, सूर्योपरागाः, चन्द्रपरिवेषाः,
 सूर्यपरिवेषाः, प्रतिचन्द्राः, प्रतिसूर्याः, इन्द्रधनुः, उदकमत्स्याः, कपिहसितानि,
 अमोघा, वर्षाणि, वर्षधराः, ग्रामाः, नगराणि, गृहाः, पर्वताः, पातालाः, भव-
 नानि, निरया, रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा,
 तमस्तःप्रभा, सौधर्मो, यावत् अच्युतः, ग्रैवेयकः, अनुत्तरः, ईषत्प्राग्भारा, परमाणु
 पुद्गलो, द्विप्रदेशिको, यावत् अनन्तप्रदेशिकः । सएष सादिपारिणामिकः । अथ को-
 ऽसौ अनादिपारिणामिकः ? अनादिपारिणामिकः—धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायः,
 आकाशास्तिकायः जीवास्तिकायः पुद्गलास्तिकायः अद्धासमयः, लोकाः, अलोकः,
 भवसिद्धिकाः, अभवसिद्धिकाः, सएष अनादि पारिणामिकः । सएष पारिणा-
 मिकः ॥ सू ० १५६ ॥

टीका- 'से किं तं' इत्यादि-

अथ कोऽसौ पारिणामिकः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति-पारिणामिकः-
परिणमनं=सर्वथाऽपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य यद्रूपान्तरेण भवनं स परिणामः, उक्तं च-

“परिणामो ह्यर्थान्तरगमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम् ।

न च सर्वथा विनाशः, परिणामस्तद्विदामिष्टः ॥ इति ।

स एव तेन वा निर्वृत्तः परिणामिकः । स सादि पारिणामिकानादि पारिणामिकेति भेद-
द्वयविशिष्टः । तत्र सादिपारिणामिकः अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-जीर्णसुरा, जीर्णगुडो,

अथ सूत्रकार पारिणामिक भाव का निरूपण करते हैं-

“से किं तं पारिणामिए ?” इत्यादि ।

शब्दार्थः- (से किं तं पारिणामिए) हे भदन्त ! पारिणामिक भाव
क्या है ?

उत्तर-(पारिणामिए, दुबिहे पणत्ते) पारिणामिक भाव दो प्रकार
का-कहा गया है । (तंजहा) वे प्रकार ये हैं-(साइपारिणामिए य अणाइ
पारिणामिए य सादि पारिणामिक और अनादि पारिणामिक । जिसमें
द्रव्य की पूर्वअवस्था का तो सर्वथा परित्याग हो नहीं और एक अवस्था
से दूसरी अवस्थाएँ होती रहें इसीका नाम परिणमन-परिणाम है ।
कहा भी है-“परिणामो” इत्यादि यही बात अन्यत्र कही है, कि
एक अवस्था से दूसरी अवस्था का होना यही परिणाम है । अर्थात् स्व-
रूप में स्थित रहकर उत्पन्न तथा नष्ट होना परिणाम है, सर्वथा व्यवस्थान

इवे सूत्रकार पारिणामिक भावना स्वइपनुं निइपणु करे छे-

“से किं तं पारिणामिए” इत्यादि-

शब्दार्थः-(से किं तं पारिणामिए ?) हे भगवन् ! पारिणामिक भावनुं
स्वइप केवुं छे ?

उत्तर-(पारिणामिए दुबिहे पणत्ते, तंजहा) पारिणामिक भावना नीचे प्रमाणे
के प्रकार कही छे-(साइ पारिणामिए य अणाइ पारिणामिए य) (१) सादि पारि-
णामिक अने (२) अनादि पारिणामिक के परिणाममां द्रव्यनी पूर्व अवस्थानो
सर्वथा परित्याग थतो न डोय जेवी रीते जेक अवस्थाभांथी भील अवस्थाजो
थती रहे, जेवा परिणमनने सादिपरिणाम कडे छे कहुं पणु छे के-“परिणामो”
इत्यादि जेव वात भील जग्याजे पणु आ प्रमाणे ज कही छे-जेक अव-
स्थाभांथी भील अवस्था इप परिणमन थवुं तेनुं नाम परिणाम छे

या सर्वथा विनाश परिणाम नहीं है। परिणाम का दूसरा नाम पर्याय है। जिस द्रव्य का जो स्वभाव है उसी के भीतर उसका परिणाम-परिवर्तन होता है। जैसे मनुष्य बालक से और युवा युवा से वृद्ध होता है पर वह मनुष्यत्व का परित्याग नहीं करता, वैसे ही प्रत्येक द्रव्य अपनी मर्यादा के भीतर रहता हुआ ही परिवर्तन करता रहता है। वह न तो सर्वथा नित्य है और न सर्वथा क्षणिक ही। नैयायिक आदि भेदवादी दर्शन जो गुण और द्रव्य का सर्वथा-एकान्त-भेद मानते हैं उनके मन्तव्यानुसार द्रव्य तो सर्वथा अविकृत रहता है और गुण उसमें उत्पन्न विनष्ट होते रहते हैं यही वह परिणाम है। तथा बौद्धलोग वस्तुमात्र को क्षणस्थायी और निरन्वय विनाशी मानते हैं, उनके मतानुसार परिणाम का अर्थ उत्पन्न होकर वस्तु का सर्वथा नाश हो जाना ऐसा निकलता है। इन्हीं मन्तव्यों का निराकरण करने के निमित्त “न च सर्वथा व्यवस्थानम्” न च सर्वथा विनाशः परिणामः” ऐसा कहा है। अतः ‘अर्थान्तरगमनपरिणामः’ यही परिणाम का लक्षण युक्ति युक्त है। ऐसा जो परिणाम है वही पारिणामिक है अथवा इस

अट्ठे के स्वप्नमां स्थित रक्षिने उत्पन्न तथा नष्ट थवुं तेनुं नाम परिणाम छे सर्वथा व्यवस्थान अथवा सर्वथा विनाशने परिणाम कही शक्य नहीं परिणामनुं णीणुं नाम पर्याय छे. जे द्रव्यने जे स्वभाव छे ते स्वभावमां रक्षिने ज तेनुं परिणामन (परिवर्तन) थाय छे. जेम के मनुष्य भाव कमांथी युवान अने युवानमांथी वृद्ध अने छे, परन्तु ते मनुष्यत्वने परित्याग करतो नथी. जेज प्रमाणे प्रत्येक द्रव्य पोतानी मर्यादामां रक्षिने ज परिणामन पामतुं रडे छे. ते सर्वथा नित्य पणु नथी अने सर्वथा क्षणिक पणु नथी. नैयायिक आदि भेदवादी दर्शन जे गुण अने द्रव्यने सर्वथा (अकान्ततः) भेद माने छे तेमनी मान्यता प्रमाणे द्रव्य तो सर्वथा अविकृत ज रडे छे, अने तेमां गुणनी उत्पत्ति तथा विनाश थतो रडे छे. तेनुं नाम ज परिणाम छे. णीद्ध मतवादीजो वस्तु मात्रने क्षणस्थायी अने निरन्वय विनाशी माने छे. तेमना मत प्रमाणे परिणामने अर्थ आ प्रमाणे थाय छे—“उत्पन्न थधने वस्तुने सर्वथा नाश थध जवे तेनुं नाम परिणाम छे” आ मान्यताजोनुं षंडन करवा माटे सूत्रकारे अही आ प्रकारनुं कथन कथुं छे—“न च सर्वथा विनाशः परिणामः” तेथी “अर्थान्तरगमनपरिणामः” आ परिणामनुं लक्षण ज युक्तियुक्त लागे छे. जेवुं जे परिणाम छे, जेज पारिणामिक छे. अथवा ते परिणामथी जे निष्पन्न छे, तेनुं नाम ज पारिणामिक छे.

जीर्णघृतं, जीर्णतण्डुला इति । अत्र जीर्णत्वपरिणामस्य सादित्वात् सादिपारिणा-
मिकता बोध्या सुरादि-द्रव्याणि नव्यजीर्णोभयावस्थयोरप्यनुगतानि । तत्र नव्य-
तायां निवृत्तायां जीर्णतारूपेण यः परिणामः स सुखावबोधो भवति, अतो जीर्णेति
विशेषणविशिष्टाः सुरादयः शब्दा उक्ताः । सुरादिद्रव्याणां तु नव्यावस्थायामपि
सादि पारिणामिकत्वमस्त्येव । कारणद्रव्यस्यैव नूतनसुरादिरूपेण परिणमनात्,

परिणाम से जो निर्वृत्ति (निष्पन्न) है वह पारिणामिक है । (से किं तं
सादिपारिणामिए ?) हे भदन्त ! सादिपारिणामिक क्या है ?

उत्तर—(सादिपारिणामिए अणेगविहे पणत्ते) सादि पारिणामिक
अनेक प्रकार का कहा गया है । (तं जहा) जैसे—(जुण्णसुरा जुण्णगुलो,
जुण्णघयं, जुण्णतंडुला चैव) जीर्णसुरा, जीर्णगुड़, जीर्णघृत, जीर्णतंडुल,
सुरा में, गुड़ में घृत में, एवं तंडुलों में जो जीर्णपर्यायरूप परिणाम आया
है वह सादि है । क्योंकि जीर्णता के काल की पूर्वकोटि ज्ञात हो सकती
है । सुरादि द्रव्य नव्य पर्याय और जीर्ण पर्याय इन दोनों अवस्थाओं में
भी अनुगतरूप से रहते हैं । जब नव्य-नवीनता-पर्याय इनसे निवृत्त
हो जाती है—तब जीर्णता पर्याय आजाती है यह बात सभी के लिये
स्पष्ट है । इसी कारण सूत्रकार ने यहां जीर्ण विशेषण से विशिष्ट इन
सुरा आदि शब्दों को रखा है ।

शंका—यह बात हम मानते हैं कि सुरादिक द्रव्यों में जीर्ण अवस्था
में सादि पारिणामिकता है क्योंकि इनमें जीर्णअवस्था के समय की

प्रश्न—(से किं तं सादि पारिणामिए ?) हे भदन्त ! सादि पारिणामिकत्वं
स्वइयं डेषुं छे ?

उत्तर—(सादिपारिणामिए अणेगविहे पणत्ते) सादि पारिणामिक भाव
अनेक प्रकारने कहा छे. (तं जहा) जेभ डे—(जुण्णसुरा, जुण्णगुलो, जुण्णघयं,
जुण्णतंडुला चैव) अर्थात् सुरा, अर्थात् गोण, अर्थात् घी, अने अर्थात् तंडुल. नूना
सुरामां, गोणमां, घीमां अने तंडुलमां जे अर्थात् पर्याय इय परिणाम आंअर्थात्
छे, ते सादि पारिणामिक भाव इय छे, कारण डे अर्थात् ताना काणनी पूर्व-
कोटि नाणी शक्य छे. सुरादि द्रव्य नवी पर्याय अने अर्थात् पर्याय, अने अने
अवस्थाओंमां पण अनुगत इये रडे छे न्यारे नवीनता पर्याय आ द्रव्यो-
मांथी निवृत्त थर्ध नय छे त्यारे ते द्रव्योमां अर्थात् ता पर्याय आवी नय छे,
आ वात सौने भाटे स्पष्ट छे. ते कारणे ज सूत्रकारे अर्थात् विशेषण युक्त
सुरादिक द्रव्योने सादि पारिणामिक भावना दृष्टान्ते इये अर्थात् प्रकट करैल छे.

शंका—अ वात तो अने मानी लधये छीअे डे सुरादिक द्रव्योमां
अर्थात् अवस्थांमां सादि पारिणामिकता डाय छे, कारण डे ते द्रव्योमां अर्थात्

અન્યથા કાર્યાનુત્પત્તિઃ પ્રસજ્યેત । તથા-અભ્રાણિ=મેઘાઃ । અભ્રવૃક્ષાઃ=વૃક્ષાકારેણ
પરિણતાન્યભ્રાણ્યેવ । સન્ધ્યા=કૃષ્ણ નીલાઘાકાશપરિણતિમાન્ અહોરાત્રસન્ધિ-

પૂર્વકોટિ જ્ઞાત હો જાતી હૈ । પરન્તુ 'ઇનકી જો નવ્ય અવસ્થા હૈ' વસમેં
સાદિપારિણામિકતા કૈસે માની જા સકતી હૈ ? ક્યોંકિ વસકેં
સમય કી પૂર્વકોટિ તો જ્ઞાત નહીં હૈ ?

ઉત્તર-એંસી ઘાત નહીં હૈ-ક્યોંકિ નવ્ય પર્યાય કે ઓ સમય કી
પૂર્વકોટિ જ્ઞાત હો જાતી હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર સે-કિ સુરાદિરૂપ જો નવ્ય
પર્યાય હૈ । વહ સુરાદિજનક કારણ દ્રવ્યોં સે હી ઉદ્ભૂત હુઈ હૈ । અતઃ
વસમેં ઓ સાદિ પારિણામિકતા હૈ । તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ, કિ સુરાદિ
જનક જો દ્રવ્ય હૈં વે હાં સુરાદિરૂપ પરિણામ સે પરિણમિત હો જાતે હૈં
અતઃ યહ સુરાદિરૂપ પર્યાય વનકી સાદિ પર્યાય હૈં ઓર જબ યહ સાદિ-
રૂપ પર્યાય વનમેં સે કાલાન્તર મેં નિવૃત્ત હો જાતી હૈ તબ વસકી નિવૃત્તિ
હોતેં હી વનમેં જીર્ણતારૂપ પર્યાય આ જાતી હૈ । ઇસ પ્રકાર સુરાદિદ્રવ્યોં
મેં નવ્યતા જીર્ણતા સાદિ પરિણામ હૈ । યદિ યહ ઘાત ન માની જાવે
કિ ઉપાદાન કારણ દ્રવ્ય હી કાર્યરૂપ સે પરિણમિત હોતા હૈ તો ફિર
કાર્ય કી ઉત્પત્તિ હી નહીં હો સકતી હૈ ।

અવસ્થાના સમયની પૂર્વકોટિ જ્ઞાત થઈ જાય છે, પરન્તુ તેમની જે નવ્ય
(નવીન) અવસ્થા છે, તેમાં સાદિ પારિણામિકતા કેવી રીતે માની શકાય તેમ
છે ? તેના સમયની પૂર્વકોટિ તો જ્ઞાત હોતી નથી ?

ઉત્તર—એવી વાત શક્ય નથી, કારણ કે નવીન પર્યાયના સમયની પૂર્વ
કોટિ પણ જ્ઞાત થઈ જાય છે. તે આ પ્રકારે સમજવું—સુરાદિ દ્રવ્ય રૂપ જે
નવીન પર્યાય છે તે સુરાદિજનક કારણ દ્રવ્યોમાંથી જ ઉદ્ભવી હોય છે. તેથી
તેમાં પણ સાદિ પારિણામિકતાનો સદ્ભાવ રહે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ
એ છે કે સુરાદિજનક જે દ્રવ્યો છે તેઓ જ સુરાદિરૂપ પરિણામમાં પરિણમિત
થઈ જાય છે, તેથી તેમની આ સુરાદિરૂપ પર્યાય સાદિ પર્યાય રૂપ જ છે,
અને બ્યારે કાલાન્તરે આ સાદિ રૂપ પર્યાય તે દ્રવ્યોમાંથી નિવૃત્ત થઈ જાય
છે, ત્યારે તેની નિવૃત્તિ થતાં જ તે દ્રવ્યોમાં જીર્ણતા રૂપ પર્યાય આવી
જાય છે, આ પ્રકારે સુરાદિ દ્રવ્યોમાં નવીનતા (નવ્યતા) અને જીર્ણતા સાદિ
પરિણામ રૂપ જ ગણી શકાય છે, જે એ વાત માનવામાં ન આવે કે ઉપા-
દાનકારણ દ્રવ્ય જ કાર્ય રૂપે પરિણમિત થાય છે, તો કાર્યની ઉત્પત્તિ જ થઈ શકે નહીં

તથા-(અન્મયા ય અન્મરુક્ત્વા, સંજ્ઞા, ગંધઞ્ચગરા ય) અબ્ર (મેઘ),

कालः। गन्धर्व नगराणि=उत्तमोत्तम प्रासादोपशोभित नगराकृतितया परिणतास्त-
थाविधनभःपुद्गलाः। उल्कापाताः=आकाशप्रदेशतस्तेजः पुञ्जपतनानि। दिग्दाहाः=
अन्यतरस्यां दिशि नभःप्रदेशे ज्वालामालाकरालित ज्वलनावभासनानि। तथा-गर्जितं
विद्युत् एतौ प्रसिद्धावेव। निर्घाताः=विद्युत्पाताः। तथा-यूपकाः=शुक्लपक्षीय-
दिनत्रयावस्थायिनः संध्याच्छेदावरणा बालचन्द्रेति प्रसिद्धाः=॥उक्तंचावश्यके-

“संज्ञाच्छेद्यावरणो य जूयओ सुकदिण तिन्नि” ॥

छाया—संध्याच्छेदावरणश्च यूपकः शुक्ले दिनानि त्रीणि-इति ॥

तथा-यक्षादीप्तानि=नभसि दृश्यमानाः पिशाचाकृतयोऽग्नयः धूमिका=नभसि
रूक्षः प्रविरलो धूम इव दृश्यमानो ‘धूमिका’ इत्युच्यते। महिका-जलकणयुता

तथा-(अब्भाय अब्भरुक्खा, संज्ञा गंधव्वणगराय)अभ्र-मेघ अभ्र-
वृक्ष-वृक्षाकार में परिणमित हुए मेघ, संध्या-अहोरात्रका संधिकाल कि
जिसमें आकाश कृष्ण, नीलादिरूप में परिणत हो जाता है। गंधर्व-
नगर-उत्तमोत्तम प्रासाद से शोभित नगर की आकृति जैसे बने हुए
आकाश पुद्गल (उल्कावाया) उल्कापात आकाश प्रदेश से गिरता हुआ
तेजः पुंज (दिसा दाहा) दिग्दाह-किसी एक दिशाकी ओर आकाश में
जलती हुई अग्नि का आभास-(दिखलाई देना) होना (गज्जिया) गर्जित
मेघ की गर्जना, (विज्जू) विजली (णिग्घाया) निर्घात-विजली का पात
(जूवया) यूपक-शुक्लपक्षसंबन्धी तीन दिनका बालचन्द्र, (जक्खादित्ता)
यक्षादीप्त-आकाश में दिखलाई देती हुई पिशाचाकृति जैसी अग्नि (धूमिया)
धूमिका-आकाश में रूक्ष एवं विरल दिखलाई पड़ती हुई धूमकी तरह
एक प्रकार की धूमस, (महिया) महिका-जलकण युक्त धूम जैसी भाप

अभ्रवृक्ष (वृक्षाकारे परिणमित थयेला मेघ) संध्या (दिवस अने रात्रिने)
संधिकाण के जेभां आकाश कृष्ण, नीलादि रूपे परिणमित थय जय छे),
गंधर्वनगर (उत्तमोत्तम प्रासादोथी शोभता नगरनी आकृति जेवां भनेलां
आकाशपुद्गलो), (उल्कावाया) उल्कापात (आकाशभंडमां सरकतो तेजःपुंज),
(दिसादाहा) दिग्दाह (कौंठ अेक दिशांमां आकाशनी अंदर प्रवृत्तित अग्निने
आभास थये), (गज्जिया) मेघनी गर्जना, (विज्जू) विजली, (णिग्घाया), निर्घात
(विजली पडवी), (जूवया) यूपक (शुक्ल पक्षने। त्रयु दिवसने। बालचन्द्र),
(जक्खादित्ता) यक्षादीप्त (आकाशमां देभाती पिशाचाकृति जेवी अग्नि), (धूमिया)
धूमिका (धूमस) (महिया) महिका (जलकण युक्त धुमाडा जेवे। घाड धूमस)

सैव । रजउद्धाताः=दिक्षु रजसामुत्थानानि । चन्द्रोपरागाः सूर्योपरागाः-चन्द्र-
सूर्याणां राहुग्रहणानि । अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रवर्तिनोऽनेके चन्द्रसूर्याः सन्ति, अतः
'चन्द्रोपरागाः सूर्योपरागाः' इति पदद्वयं बहुत्वेन निर्दिष्टम् । तथा-चन्द्रपरिवेषाः
सूर्यपरिवेषाः-चन्द्रसूर्ययोः परितोवलयकारपुद्गलपरिणामाः । प्रतिचन्द्रः प्रतिसूर्यः-
उत्पातसूचकं द्वितीयचन्द्रादित्यदर्शनम् । इन्द्रधनुः=नभसि नीलपीतादिवर्णविशिष्टं
धनुराकारं यद् दृश्यते तदिन्द्रधनुरित्युच्यते । इदं च लोके प्रसिद्धम् । उदकम-
त्स्याः=इन्द्रधनुः खण्डानि । कपिहसितानि=यदा कदाचिन्नभसि जायमाना
अन्युग्रशब्दाः श्रूयन्ते, त एव कपिहसितान्युच्यन्ते । अमोघाः=सूर्यस्य उदयास्त-
समये तत्किरणैः समुत्पद्यमाना रेखाविशेषाः । वर्षाणि भरतादीनि । वर्षधराः=

कुहरा-(रघुग्धाया) रजउद्धात-दिशाओं में धूलि का उड़ना, (चंदो-
वराग-चन्द्रोपराग-चंद्रग्रहण (सूरोवराग) सूर्यग्रहण (चंद्रपरिवेसा, सूर-
परिवेसा) चन्द्र परिवेष-चन्द्रमा की चारों ओर गोलाकार में परिणत
हुए पुद्गल परमाणुओं का चक्रवाल (गोल मंडल) सूर्य की चारों ओर
गोल चूड़ी के जैसे आकार में परिणत हुए पुद्गल परमाणुओं का चक्र-
वाल (पडिचंद्र) प्रतिचंद्र (पडिसूरा) प्रतिसूर्य-उत्पात सूचक द्वितीय चंद्र
की ओर सूर्यका दिखलाई पड़ना (इंद्रधनु) इन्द्रधनुष-आकाश में नीलपीत
आदि वर्ण विशिष्ट जो धनुष के आकार दिखलाई देता है वह कि जिसे
भाषा में "सदान" कहते हैं (उदगमच्छा) उदक मत्स्य इन्द्र धनुष के
खंड (कविहसिया) कपिहसित-यदा कदाचित्-जब कभी आकाश में
सुनाई पड़नेवाले अन्युग्रशब्द (अमोहा) अमोघ सूर्य के उदय और अस्त
के समय में उसकी किरणोंद्वारा उत्पन्न रेखा विशेष-(वासा) भरत

(रघुग्धाया) रजउद्धात (दिशाओंमें धूल उड़ती है) (चंदोवराग) चन्द्रोपराग (चन्द्र-
ग्रहण), (सूरोवराग) सूर्यग्रहण, (चंद्रपरिवेसा, सूरपरिवेसा) चन्द्रपरिवेष (चन्द्रने-
द्वरतुं गोलाकारमें परिणत थयेला पुद्गलपरमाणुओंमें गोलाकारतुं मंडल),
सूर्यपरिवेष (सूर्यनी आसपास आदि दिशाओंमें गोला चूडलीना आकारे परिणत
थयेला पुद्गलपरमाणुओंमें गोलाकारतुं मंडल (पडिचंद्र) प्रतिचन्द्र (उत्पात
सूचक भील चन्द्रतुं देखावु), (पडिसूरा) प्रतिसूर्य (उत्पात सूचक भील सूर्यतुं
देखावु), (इंद्रधनु) मेघधनुष (आकाशमें आभासामें जे सप्तर्गी कामडी
देखावु छे ते), (उदगमच्छा) उदक मत्स्य (मेघधनुषयना मंड), (कविहसिया)
कपिहसित (आकाशमेंथी क्यारेक संलगता अतिउग्र कडाका), (अमोहा)
अमोघ (सूर्योदय अने सूर्यास्त वधने सूर्यना किरणों द्वारा उत्पन्न थती

हिमवदादयः पर्वताः । ग्रामादयः प्रसिद्धाः । पातालाः=पातालकलशाः । शेषा भवनाद्यनन्तप्रदेशिकान्ताः प्रसिद्धा एव । ननु वर्षधरादयः शाश्वताः, न ते कदाचिदपि स्वकीयं भावं मुञ्चन्ति, तत्कथं पुनरेषां सादिपारिणामिकत्वमुक्तम् ? इति-चेदाह-वर्षधरादीनां शाश्वतत्वं तदाकारमात्रेणैवावतिष्ठमानत्वाद् बोध्यम् । पुद्गला-

आदि क्षेत्र (वासधरा) हिमवत् आदि पर्वत (गामा, णगरा, घरा, पव्वया, पायाला) ग्राम, नगर, घर, पर्वत, पातालकलश (भवणा) भवन (निरया) नरक, (रयणप्पहा) रत्नप्रभा (सक्करप्पहा) शर्कराप्रभा (वालुयप्पहा) वालुका प्रभा (पंकप्पहा) पंक प्रभा (धूमप्पहा) धूमप्रभा (तमप्पहा) तमःप्रभा (तम तमप्पहा) तमस्तमः प्रभा (सोहम्मै) सौधर्म (जावअच्चुए) यावत् अच्युत (गेवेज्जे अणुत्तरे) त्रैवेयक, अनुत्तर, (इसिप्पन्भारा) ईषत्प्राभारा (परमाणुपोग्गले) परमाणुपुद्गल (दुपएसिए) द्विप्रदेशिक (जाव अणंत पएसिए) यावत् अनंतप्रदेशिक (से तं साइपारिणामिए) इस प्रकार वह यह सादि पारिणामिक है ।

शंका-वर्षधरादिक तो शाश्वत हैं । क्योंकि ये कभी भी अपने अस्तित्व का परित्याग नहीं करते हैं । फिर इन्हे सादि परिणामवाला कैसे सूत्रकारने कहा है ?

उत्तर-वर्षधरादिकों में जो शाश्वतपना कहा है वह “वे अपने आकार मात्र से ही सदा अवस्थित रहते हैं” इसी खयाल से कहा गया

रेखाविशेष), (वासा) भरत आदि क्षेत्र. (वासधरा) हिमवान् आदि पर्वत, (गामा, णगरा, घरा, पव्वया पायाला) ग्राम, नगर, घर, पर्वत, पातालकलश, (भवणा) भवन, (निरया) नरक, (रयणप्पहा) रत्नप्रभा, (सक्करप्पहा) शर्कराप्रभा, (वालुयप्पहा) वालुकाप्रभा, (पंकप्पहा) पंकप्रभा, (धूमप्पहा) धूमप्रभा, (तमप्पहा) तमःप्रभा, (तमतमप्पहा) तमस्तमःप्रभा, (सोहम्मै जाव अच्चुए) सौधर्मथी लधने अच्युत पर्यन्तना उदयो, (गेवेज्जे अणुत्तरे) त्रैवेयको, अनुत्तर विभानो, (इसिप्पन्भारा) ईषत्प्राभारा, (परमाणु पोग्गले) परमाणु पुद्गल (दुपएसिए जाव अणंतपएसिए) द्विप्रदेशिकथी लधने अनंतप्रदेशिक पर्यन्तना उदयो, (से तं साइ पारिणामिए) आ अधाने सादिपारिणामिक भाव इय संभववा.

शंका-वर्षधर आदि पर्वतो तो शाश्वत छे, कारणु के तेओ उही पणु पोतपोताना अस्तित्वनो परित्याग करता नथी छतां सूत्रकारे तेभने सादि पारिणामिक शा कारणु कछा छे ?

उत्तर-वर्षधर आदिकोमां जे शाश्वतता प्रकट करवामां आवी छे तेनुं कारणु ओ छे के तेओ तेभना आकार मात्रणी अपेक्षाओ न सदा अवस्थित

स्तु असंख्येयकालाद्धर्मपरिणमन्त एव । साम्प्रति केषु वर्षधरादिषु ये पुद्गलाः सन्ति ते चोत्कृष्टतोऽसंख्येयकालाद्धर्मपगमिष्यन्त्येव (१) उक्तंचात्रविषयेऽत्रैवसूत्रे—“नेगमववहाराणं आणुपुन्वीदन्वाइं कालओ कियच्चिरं होइ? एगं दव्वं पडुच्च जहणणेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं” इति । सू० ६ पृ. ११३ मुद्रित पृष्ठ ५७ सू० ८५ तत्स्थाने अपरेऽपरे पुद्गलाः संगताः सन्तस्तद्भावेन परिणमिष्यन्ति, अतः पुद्गलपरिवृत्तिमादाय वर्षधरादीनां सादि पारिणामिकत्वं न विरुध्यते इति नास्ति दोषः । एतदुपसंहरन्नाह—स एष सादिपारिणामिक इति । द्वितीयभेदविषये शिष्यः पृच्छति—अथ कोऽसौ अनादिपारिणामिकः? इति । उत्तरयति—अनादिपारिणामिकः—धर्मास्तिकायाद्य-

है । इसका—तात्पर्य यह थोड़े ही हो सकता है कि उनमें परिणमन नहीं होता है । वर्षधरादिक पौद्गलिक हैं । पुद्गल असंख्यातकाल के बाद परिणमन करते हैं । इस समय के वर्षधरादिकों में जो पुद्गल हैं वे वहाँ ज्यादा से ज्यादा असंख्यात काल तक रहेंगे—बाद में वहाँ से च्युत हो जावेंगे । यह बात इसी सूत्र के ८५ वें सूत्र में पहिले स्पष्ट ही की जा चुकी है कि नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य कालकी अपेक्षा आनुपूर्वी रूप में जघन्य से एक द्रव्यको आश्रित करके एक समय तक और उत्कृष्ट से असंख्यात काल तक रहते हैं । च्युत हुए उन पुद्गलों के स्थान में और दूसरे दूसरे पुद्गल संगत होकर उस रूप से परिणम जावेंगे । इसलिये पुद्गल की इस परिवृत्ति—परिणमन को लेकर के वर्षधरादिकों में सादि पारिणामिकता का कथन विरुद्ध नहीं पडता है । (से कि. तं अणाहपारिणामिए) हे भदन्त ! वह अनादि पारिणामिक क्या है ?

रहे छे. तेनो अर्थ ओवो थतो नथी के तेमनामां परिष्मन न थतुं नथी तेमनामां परिष्मन तो नइर थतुं न रहे छे वर्षधरादिक पौद्गलिक छे पुद्गलो तो असंख्यात काल भाइ परिष्मन करे न छे. डालना वर्षधर आदिकोमां नै पुद्गलो डालमां छे. तेओ त्यां वधारेमां वधारे असंख्यात काल सुधी रहेशे, तयार भाइ तेओ त्यांथी यवीने नशे आगण ८५मां सूत्रमां आ वात स्पष्ट करवामां आवी छे ते सूत्रमां ओवुं प्रतिपादन करवामां आओं छे के “नेगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य कालनी अपेक्षाओ ओके द्रव्यनी दृष्टिओ विचार करवामां आवे तो ओछामां ओछा ओके समय सुधी अने वधारेमां वधारे असंख्यात काल सुधी आनुपूर्वी द्रव्य इये रहे छे.” यवेला थयेला ते पुद्गलोने स्थाने अन्य पुद्गलो संगत थधने ते इये परिष्मनी नशे तेथी पुद्गलोनी आ परिवृत्ति (परिष्मन)ने कारणे वर्षधरादिकोमां पधु सादि पारिष्मामिकतातुं कथन विरुद्ध पडतुं नथी.

भवसिद्धिकान्तो बोध्यः । धर्मास्तिकायादयोऽनादिकालादेव तत्तद्रूपतया परिणताः सन्ति, अत एषामनादिपारिणामिकत्वम् । एतदुपसंहरन्नाह—स एषोऽनादिपारिणामिक इति । पारिणामिको भावः प्ररूपित इति सूचयितुमाह—स एष पारिणामिक इति ॥ सू० १५६ ॥

अथ सान्निपातिकं नाम प्ररूपयति—

मूलम्—से किं तं सणिणवाइए ? सणिणवाइए एएसिं चैव उदइय उवसमिय—खइय—खओव समियपारिणामियाणं भावाणं दुगसंजोएणं तियसंजोएणं चउक्कसंयोएणं पंचगसंजोएणं जे

उत्तर—(अणाइपारिणामिए धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमए, लोए, अलोए, भवसिद्धिया अभवसिद्धिया) अनादि पारिणामिक धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धासमय, लोक, अलोक भवसिद्धिक अभवसिद्धिक है । (से तं अणाइपारिणामिए) यह अनादि पारिणामिक है । तात्पर्य इसका यह है कि धर्मास्तिकायादिक अनादि काल से ही उस २ रूप से परिणत हैं । इसलिये इनमें अनादि पारिणामिकता है । (से तं पारिणामिए) इसप्रकार पारिणामिक भाव का निरूपण है ॥ सू० १५६ ॥

प्रश्न—(से किं तं अणाइ पारिणामिए?) डे भगवन्! अनादि पारिणामिके लावतुं स्वइय डेपुं छे ?

उत्तर—(अणाइ पारिणामिए धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमए, लोए, अलोए, भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धासमय (काल), लोक, अलोक, भवसिद्धिक अने अभवसिद्धिक; आ लावे। अनादि पारिणामिके छे धर्मास्तिकाय आदि अनादि कालथी न धर्मास्तिकाय आदि इये परिणत होवाने कारणे तेभने अनादि पारिणामिके लावे। कइया छे. (से तं अणाइ पारिणामिए) आ प्रकारतुं अनादि पारिणामिके लावतुं स्वइय छे. (से तं पारिणामिए) सादि पारिणामिके अने अनादि पारिणामिके लावे। तुं निरूपण सभास थवाथी पारिणामिके लावतुं कथन अहीं पूइं थाय छे. ॥ सू० १५६ ॥

निष्फज्जइ सव्वे से सण्णिवाइए नामे । तत्थ णं दस दुयसंजोगा,
दस तियसंजोगा, पंच चउक्कसंजोगा, एगे पंचगसंजोगे ॥सू.१५७॥

छाया—अथ कोऽसौ सान्निपातिकः? सान्निपातिकः—एतेषामेव औदयिकौ-
पशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकानां भावानां द्विकसंयोगेन त्रिकसंयोगेन
चतुष्कसंयोगेन पञ्चकसंयोगेन यो निष्पद्यते सर्वः स सान्निपातिको नाम । तत्र खलु दश
द्विकसंयोगाः, दश त्रिकसंयोगाः, पञ्चचतुष्कसंयोगाः, एकः पञ्चकसंयोगः ॥सू.१५७॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ कोऽसौ सान्निपातिकः? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—सान्निपातिकः—
सान्निपतनम्=औदयिकादिभावानां द्वयादिसंयोगेन संयोजनं सान्निपातः, स एव
सैन निर्वृत्तो वा सान्निपातिकः । अमुमेवार्थमाह—सूत्रकारः—‘एएसि चैव’ इत्या-
दिना । एतेषामेव औदयिकादीनां पञ्चानां भावानां द्विकत्रिकचतुष्कपञ्चकसंयोगेन
यो यो भावः सम्पद्यते स सर्वोपि भावः सान्निपातिको बोध्यः । स सान्निपातिक-
भाव एव सान्निपातिकनामेत्युच्यते । तत्र हि दश द्विकसंयोगा भवन्ति, दश
त्रिकसंयोगाः, पञ्च चतुष्कसंयोगाः, एकः पञ्चकसंयोग इति ॥सू.१५७॥

अब सूत्रकार सान्निपातिक भावकी प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं सण्णिवाइए” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं सण्णिवाइए?) हे भदन्त ! वह सान्निपातिक
भाव क्या है ? (सण्णिवाइए एएसिचैव उदइए उवसमिय-खइय-
खओवसमिय पारिणामिघाणं भावाणं दुगसंजोएणं तिय संजोएणं चउ-
क्कसंजोएणं पंचकसंजोएणं जे निष्फज्जइ)।

उत्तर—इन औदयिक आदि पांच भावों के दो के, तीन के चार के
और पांच के संयोग से जो जो भाव निष्पन्न होते हैं वे सब भी भाव
सान्निपातिक भाव है । इस सान्निपातिक भावों में दश भाव द्विकसंयोगज,

इसे सूत्रकार सान्निपातिक भावनी प्ररूपणा करे छे—

“से किं तं सण्णिवाइए” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं सण्णिवाइए?) डेलगवन् ! पूर्वप्रकान्त सान्निपातिक
भावनुं चरूप केवुं छे ?

उत्तर—(सण्णिवाइए एएसि चैव उदइए उवसमिय-खइय-खओवसमिय-
पारिणामिघाणं भावाणं दुगसंजोएणं, तियसंजोएणं, चउक्कसंजोएणं, पंचकसंजो-
एणं जे निष्फज्जइ) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, अने पारि-
णामिक, आ पांच भावोना द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग चतुष्कसंयोग अने
पञ्चक संयोगथी जे भावो निष्पन्न थाय छे ते अथा भावोने सान्निपातिक
भावो उडे छे आ रीते द्विकसंयोग नन्य १० भावो, त्रिकसंयोग नन्य १०

द्विकादि पञ्चकान्ताः संयोगा ससंख्यका उक्ताः । तत्र द्विकादिसंयोगाः के? इति तान् प्रदर्शयितुमाह—

मूलम्—एत्थ णं जे ते दस दुगसंयोगा ते णं इमे—अत्थि णामे उदइयउवसमियनिष्फण्णे? अत्थि णामे उदइयखाइग-निष्फण्णे२, अत्थि णामे उदइयखओवसमियनिष्फण्णे३, अत्थि णामे उदइयपारिणामियनिष्फण्णे४, अत्थि णामे उवसमिय-खइयनिष्फण्णे५, अत्थि णामे उवसमिय खओवसमियनिष्फ-ण्णे६, अत्थि णामे उवसमियपारिणामियनिष्फण्णे७, अत्थि-णामे खइयखओवसमियनिष्फण्णे८, अत्थि णामे खइयपारि-णामियनिष्फण्णे९, अत्थि णामे खओवसमियपारिणामियनि-ष्फण्णे१० । कयरे से णामे उदइय उवसमियनिष्फण्णे? उदइय-उवसमियनिष्फण्णे-उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया । एत्तणं से णामे उदइय उवसमियनिष्फण्णे॥१॥ कयरे से णामे उदइयखाइयनिष्फण्णे? उदइयखाइयनिष्फण्णे—उदइएत्ति मणु-स्से खइयं सम्मत्तं । एत्त णं से णामे उदइयखइयनिष्फण्णे॥२॥ कयरे से णामे उदइयखओवसमियनिष्फण्णे? उदइयखओव-समियनिष्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से खओवसमियाइं इंदियाइं । एत्त णं से णामे उदइयखओवसमियनिष्फण्णे॥३॥ कयरे से

दशभाव त्रिकसंयोगज, पांचभाव चतुष्क संयोग, और एक भाव पंचक संयोगज बनते हैं । इस प्रकार ये २६ सात्त्विकात्मिक भाव हैं । ॥सू० १५७॥

लावो, चतुष्कसंयोग जन्य पांच लावो अने पंचकसंयोग जन्य एक भाव, निष्पन्न थाय छे. आ प्रकारे कुल २६ सात्त्विकात्मिक लावो थाय छे. ॥सू० १५७॥

णामे उदइयपारिणामियनिष्फण्णे ? उदइयपारिणामियनिष्फण्णे-
 उदइयत्ति मणुस्से पारिणामिए जीवे । एस णं से णामे उदइय-
 पारिणामियनिष्फण्णे ॥४॥ कयरे से णामे उवसमियखइयनिष्फ-
 ण्णे ? उवसमियखइयनिष्फण्णे—उवसंता कसाया-खइयं सम्मत्तं ।
 एस णं से णामे उवसमियखइयनिष्फण्णे ॥५॥ कयरे से णामे
 उवसमियखओवसमियनिष्फण्णे ? उवसमियखओवसमियनि-
 ष्फण्णे—उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं एस णं
 से णामे उवसमियखओवसमियनिष्फण्णे ॥६॥ कयरे से णामे
 उवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ? उवसमियपारिणामियनिष्फ-
 ण्णे—उवसंता कसाया पारिणामिए जीवे । एस णं से णामे उव-
 समियपारिणामियनिष्फण्णे ॥७॥ कयरे से णामे खइयखओव-
 समियनिष्फण्णे ? खइयखओवसमियनिष्फण्णे—खइयं सम्मतं
 खओवसमियाइं इंदियाइं । एस णं से णामे खइयखओवसमिय-
 निष्फण्णे ॥८॥ कयरे से णामे खइयपारिणामियनिष्फण्णे ? खइय-
 पारिणामियनिष्फण्णे—खइयं सम्मतं पारिणामिए जीवे । एस णं
 से णामे खइयपारिणामियनिष्फण्णे ॥९॥ कयरे से णामे खओवस-
 मियपारिणामियनिष्फण्णे ? खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे-
 खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे । एस णं णामे
 खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ॥१०॥ ॥सू० १५८॥

छाया—अत्र खलु ये ते दश द्विकसंयोगास्ते खलु इमे—अस्ति नाम औद-
 यिकौपशमिकनिष्पन्नम् ॥१॥ अस्ति नाम औदयिकक्षाधिकनिष्पन्नम् ॥२॥ अस्ति
 नाम औदयिकसायोपशमिकनिष्पन्नम् ॥३॥ अस्ति नाम औदयिकपारिणामिक

निष्पन्नम्॥४॥ अस्ति नाम औपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्॥५॥ अस्ति नाम औपश-
मिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥६॥ अस्ति नाम औपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥७॥
अस्ति नाम क्षायिक क्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥८॥ अस्ति नाम क्षायिकपारिणामिक-
निष्पन्नम्॥९॥ अस्ति नाम क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥१०॥ कतरत्तन्नाम
औदयिकौपशमिकनिष्पन्नम्? औदयिकमिति मानुष्यम्, उपशान्ताः कषायाः ।
एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपशमिकनिष्पन्नम्॥१॥ कतरत्तन्नाम औदयिकक्षायि-
कनिष्पन्नम्? औदयिकक्षायिकनिष्पन्नम् औदयिकमितिमानुष्यं, क्षायिकं सम्यक्-
त्वम् । एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायिकनिष्पन्नम्॥२॥ कतरत्तन्नाम औदयिक-
क्षायोपशमिकनिष्पन्नम्? औदयिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्—औदयिकमिति मानुष्यं
क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि । एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायोपशमिक-
निष्पन्नम्॥३॥ कतरत्तन्नाम औदयिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औदयिकपारिणामिक
निष्पन्नम् औदयिकमिति मानुष्यम् पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम
औदयिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥४॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम् ?
औपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्—उपशान्ताः कषायाः क्षायिकं सम्यक्त्वम् । एतत्
खलु तन्नाम औपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्॥५॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायोप-
शमिकनिष्पन्नम्? औपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्—उपशान्ताः कषायाः क्षायो-
पशमिकानि इन्द्रियाणि । एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥६॥
कतरत् तन्नाम औपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औपशमिकपारिणामिकनिष्प-
न्नम्—उपशान्ताः कषायाः, पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम औपशमिक-
पारिणामिकनिष्पन्नम्॥७॥ कतरत् तन्नाम क्षायिक क्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ?
क्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्—क्षायिकं सम्यक्त्वं क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि ।
एतत् खलु तन्नाम क्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥८॥ कतरत् तन्नाम क्षायिक-
पारिणामिकनिष्पन्नम्? क्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्—क्षायिकं सम्यक्त्वं पारि-
णामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम क्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥९॥ कतरत्
तन्नाम क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्—
क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम क्षायोप-
शमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ॥१०॥ सू० १५८॥

टीका—‘एत्थ णं’ इत्यादि—

अत्र=सान्निपातिके भावे दश द्विकसंयोगा उक्ताः, ते दश द्विकसंयोगाः

दो दो भावों के संयोग से जो १० भाव निष्पन्न होते हैं । सूत्र-
कार उन्हें कहते हैं—“एत्थ णं जे ते” इत्यादि

अथे लावेना संयोगथी ने १० लावे निष्पन्न थाय छे, तेमने
सूत्रकार प्रकट करे छे—“एत्थणं जे ते” इत्यादि—

भङ्गा-‘अस्ति नाम औदयिकौपशमिकनिष्पन्नम्’ इत्यारभ्य ‘अस्ति नाम
‘अस्ति नाम क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्’ इत्यन्ता बोध्याः । एषु
औदयिकेन सह औपशमिकादि भावचतुष्टयसंयोगात् चत्वारो भङ्गाः,
औपशमिकेन सह क्षायिकादिभावत्रयस्य संयोगात् त्रयो भङ्गाः, क्षायिकेण
सह क्षायोपशमिकादि भावद्वयसंयोगात् द्वौ भङ्गौ, तथा-क्षायोपशमिकेन सह

शब्दार्थ-(एत्थ णं जे ते दस दुगसंयोगा, ते णं इमे) यहाँ जो दो दो
भावों के संयोग से भाव निष्पन्न-होते हैं वे इस प्रकार से हैं-
(अत्थिणामे उदइयउवसमियनिष्फण्णे ?) पहिला औदयिक और औप-
शमिक के संयोग से निष्पन्न भाव एक, (अत्थिणामे उदइयखाइग
निष्फण्णे २) दूसरा औदयिक और क्षायिक के संयोग से निष्पन्न
भाव (अत्थिणामे उदइयखओवसमनिष्फण्णे) तीसरा-औदयिक
और क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थि-
णामे उदइयपारिणामियनिष्फण्णे) चौथा औदयिक और पारि-
णामिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थि णामे उवसमियखइय
निष्फण्णे) पांचवा-औपशमिक और क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव
(अत्थिणामे उवसमिय खओवसमियनिष्फण्णे) छठा-औपशमिक और
क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उवसमियपारि-
णामियनिष्फण्णे) सातवां-औपशमिक और पारिणामिक के संयोग से
निष्पन्नभाव (अत्थिणामे खइय, खओवसमियनिष्फण्णे) आठवां-क्षायिक
और क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्नभाव (अत्थिणामे खइय पारि-

शब्दार्थ-(एत्थ णं जे ते दस दुगसंयोगा, तेणं इमे) अण्णे भावेना संथे-
गथी जे दस भावे. निष्पन्न थ.य छे ते नीचे प्रमाणे छे-(अत्थिणामे उदइय
उवसमिय निष्फण्णे) (१) औदयिक अने औपशमिकना संथेगथी निष्पन्न भाव
(अत्थिणामे उदइयखाइयनिष्फण्णे २) (२) औदयिक अने क्षायिकना संथेगथी
निष्पन्न थयेत्ते भाव (अत्थिणामे उदइय खओवसमनिष्फण्णे ३) (३) औदयिक
अने क्षायोपशमिकना संथेगथी निष्पन्न थयेत्ते भाव (अत्थिणामे उदइय
पारिणामियनिष्फण्णे) (४) औदयिक अने पारिणामिकना संथेगथी निष्पन्न
भाव (अत्थिणामे उवसमियखइयनिष्फण्णे) (५) औपशमिक अने क्षायिकना
संथेगथी निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उवसमियखओवसमियनिष्फण्णे) (६)
औपशमिक अने क्षायोपशमिकना संथेगथी निष्पन्न थयेत्ते भाव (अत्थिणामे
उवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) (७) औपशमिक अने पारिणामिकना संथे-
गथी निष्पन्न भाव (अत्थिणामे खइयखओवसमियनिष्फण्णे) (८) क्षायिक

पारिणामिकभावस्य संयोगादेको भङ्गः । इति दश भङ्गा बोध्याः । इत्थं सामान्यतो दश भङ्गान् ज्ञात्वा विशेषतस्तान् जिज्ञासितुकामः शिष्यः पृच्छति—कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिकनिष्पन्नम्—औदयिकौपशमिकभावेन यन्निष्पद्यते तन्नाम किम् ? इति । उत्तरयति—औदयिकौपशमिकनिष्पन्नमेवं विज्ञेयम्—औदयिकमितिमानुष्यम्,

णामियनिष्फणे) ९वां-क्षाद्यक और पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अस्थिणामे खओवसमियपारिणामियनिष्फणे) १० वां-क्षायोपशमिक और पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न हुआ भाव । इस प्रकार ये औदायिक के साथ औपशमिक आदि चार भावों के संयोग से ४ भंग, औपशमिक के साथ क्षायिक आदि तीन भंगों के संयोग से तीन भंग, क्षायिक के साथ क्षायोपशमिक आदि दो भावों के संयोग से दो भंग तथा क्षायोपशमिक के साथ पारिणामिक भाव के संयोग से एक भंग ये दश भंग हो जाते हैं । इस प्रकार सामान्य से दश भंगों को जानकर विशेषरूप से शिष्य पूछता है । कि (कयरे से णामे उदहय उवसमिय निष्फणे ? हे भदन्त ! औदयिक एवं औपशमिक भाव के संयोग से जो सान्निपातिक भावरूप भंग निष्पन्न होता है वह कैसा है ?

उत्तर—(उदहयउवसमियनिष्फणे) औदयिक एवं औपशमिक

अने क्षयोपशमिकना संयोगथी निष्पन्न भाव (अस्थिणामे खइय पारिणामियनिष्फणे) (९) क्षायिक अने पारिणामिकना संयोगथी निष्पन्न भाव (अस्थिणामे खओवसमियपारिणामियनिष्फणे) (१०) क्षायोपशमिक अने पारिणामिकना संयोगथी निष्पन्न भाव आ प्रकारे औदयिकनी साथे औपशमिक आदि चारना संयोगथी ४ भंग, औपशमिक भावनी साथे क्षायिक आदि त्रय भावना संयोगथी ३ भंग, क्षायिकभावनी साथे क्षायोपशमिक आदि ये भावना संयोगथी २ भंग तथा क्षायोपशमिकनी साथे पारिणामिक भावना संयोगथी एक भंग अने छे आ रीते द्विकसंयोगी कुल १० भंग अने छे.

आ प्रकारे आ भंगोतुं सामान्यं कथनं करीने इये सूत्रकार द्वैक भंगना स्वरूपतुं विवेचनं करे छे—

प्रश्न—(कयरे से णामे उदहयउवसमियनिष्फणे?) हे भगवन् ! औदयिक अने औपशमिक भावना संयोगथी ये सान्निपातिक भाव रूप भंग निष्पन्न भाव छे, तेतुं स्वरूपं केतुं डोय छे ?

उपशान्ताः कषायाः, इति। अयं भावः—औदयिके भावे मनुष्यत्व=मनुष्यगति-
रूप्यते। उपलक्षणमिदम्—तिर्यगादिगतिजातिशरीरनामादिकर्मणामपि, तेषाम-
प्यत्र संभवात्। औपशमिके भावे तु कषाया उपशान्ता भवन्ति। इदमप्युदाहरण-
मात्रम्—दर्शनमोहनीयनोकषायमोहनीयावपि औपशमिके भावे समुत्पद्यते। एत-
दुपसंहरन्नाह—‘एस णं’ इत्यादि। एतत्=अनन्तरोक्तं, ‘खलु’ इति वाक्यालङ्कारे,
तत्—प्रसिद्धम् औदयिकोपशमिकनिष्पन्नं नाम बोध्यमिति प्रथमद्विकयोगे यदिद-
मृक्तं तद् विवक्षामात्रम्। न पुनरीदृशो भङ्गः क्विञ्जीवे संभवति तथाहि यस्य

भाव के संयोग से जो सान्निपातिक भावरूप भग उत्पन्न होता है वह
ऐसा है—(उदहृत्तिमणुस्से उवसंता कषाया) औदयिक भाव में मनुष्यत्व-
मनुष्यगति—उपशान्त कषाय यहाँ “मणुस्से” यह पद उपलक्षण है,
इससे तिर्यगादि चारों गतियाँ, जाति और शरीरनामादिकर्मों का भी
ग्रहण हुआ है। क्योंकि यहाँ पर उनका भी सद्भाव पाया जाता
है। औपशमिक भाव में कषाय उपशान्त होती है। सो यह भी—उदा-
हरण मात्र है। क्योंकि औपशमिक भाव में दर्शनमोहनीय और नो
कषायमोहनीय इन दोनों का भी उपशम रहता है। (एस णं से णामे
उदहृत्तिमणुस्से) इस प्रकार यह औदयिकोपशमिक-
नाम का प्रथम सान्निपातिक भावरूप भग है। इस प्रथम भगरूप सान्नि-
पातिक भाव में मनुष्यगति उपशान्त कषाय ऐसा जो कहा है वह केवल
विवक्षामात्र है। क्योंकि ऐसा सान्निपातिक भाव किसी भी जीव में

उत्तर—(उदहृत्तिमणुस्से) औदयिक अने औपशमिक भावना
संयोगથી જે સાન્નિપાતિક ભાવરૂપ ભંગ ઉત્પન્ન થાય છે તે આ પ્રકારનો
છે—(उदहृत्ति मणुस्से उवसंता कषाया) औदयिक भावમાં मनुष्यत्व—मनुष्य-
गति अने औपशमिक भावમાં उपशान्त कषायने गृहणी शक्य अर्थात्
‘मनुष्यगति’ आ पद उदाहरण इये वपरायेतुं होवाथी तेना द्वारा तिर्य-
गादि चारो गतियो, जाति अने शरीरनामादि कर्मोने पणु ग्रहण करवाभां
आवेत छे. कारण के अर्थात् तेमनो पणु सद्भाव रहे छे औपशमिक भावमां
कषाय उपशान्त होव छे आ वात पणु उदाहरण इये न आपवाभां आवी
छे, कारण के औपशमिक भावमां दर्शन मोहनीय अने नोकषायमोहनीय,
आ अने प्रकारना कर्मोना पणु उपशम रहे छे (एस णं से णामे उदहृत्ति
मणुस्से) आ प्रकारना आ औदयिकोपशमिक नामनो प्रथम सान्नि-
पातिक भाव रूप भंग छे. आ प्रथम भंगमां “मनुष्यगति अने उपशान्त
कषाय” आ प्रकारनुं जे कथन करवाभां आव्युं छे, ते कथन मात्र विवक्षारूप

जीवस्य औदयिकी मनुष्यगतिः, औपशमिकाः कषायाः भवन्ति, तस्य क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि पारिणामिकं जीवत्वं चापि भवन्ति । कस्यचित्तु क्षायिकं सम्यक्त्वमपि संभवति । एवं नवमभङ्गातिरिक्तसर्वेषु भङ्गेषु बोध्यम् । नवमो भङ्गस्तु सिद्धविषयो बोध्यः । सिद्धस्य क्षायिकं सम्यक्त्वं पारिणामिकं तु जीवत्वमित्येतद् भावद्वयं भवति । इतः परो न कोऽपि भावो भवति । तस्मात् सिद्धस्यायमेक एव भङ्गो भवतीति बोध्यम् । नवमातिरिक्ता नव भङ्गास्तु प्ररूपणामात्रमेव । यतः सिद्धाति-

संभवित नहीं होता है । जिस जीव को मनुष्यगति है और कषाय उपशमित हैं सो इस प्रकार से उसके औदयिक और औपशमिक इन दो भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिकोपशमिक नाम का प्रथम सान्निपातिक भाव माना जाता तब कि जब उसके और दूसरे भाव नहीं होते । औदयिकोपशमिकभाव के साथ वहाँ क्षायोपशमिक भाव रूप इन्द्रियां पारिणामिक भाव रूप जीवत्व भी है । किसी २ जीव को इस औदयिकोपशमिक के साथ क्षायिकसम्यक्त्व भी संभवित होता है इस प्रकार का विचार नौवें-भंग के सिवाय समस्त भंगों में जानना चाहिये । क्योंकि जो नौवां भंग है वह सिद्ध भगवान् की अपेक्षा से है । सिद्ध भगवान् में क्षायिक सम्यक्त्व और पारिणामिक भाव रूप जीवत्व रहता है । इनके अतिरिक्त और भाव वहाँ नहीं रहते हैं । इसलिये सिद्ध में यह नौवां भंगरूप एक सान्निपातिक भाव ही है ।

७ छे, कारण के अवे। सान्निपातिक भाव के। पण लवमां संलवित होतो नथी ७ लवमां मनुष्यगति छे अने कषाय उपशमित छे, आ प्रकारे तेना औदयिक अने औपशमिक, आ अने लावेना संयोगथी निष्पन्न औदयिकोपशमिक नामने। प्रथम सान्निपातिक भाव तो त्यारे ७ मानी शक्य के अ्यारे ते लवमां अन्य के। लावेना सद्भाव ७ न होय औदयिकोपशमिक लावनी साथे त्यां क्षायोपशमिक भाव इप इन्द्रिये अने पारिणामिक भाव इप लवत्वने। पण सद्भाव रहे छे. के। के। लवमां आ औदयिकोपशमिकनी साथे क्षायिक सम्यक्त्व पण संलवित होय छे. आ प्रकारने। विचार नवमां लंग सिवायना समस्त लंगेमां समजवे। जे। अे, कारण के ७ नवमां लंग छे ते सिद्ध भगवाननी अपेक्षाअे अहणु करवाने छे. सिद्ध भगवानमां क्षायिक सम्यक्त्व अने पारिणामिक भाव इप लवत्वने। सद्भाव रहे छे. ते सिवायना अन्य लावेना। तेमनामां सद्भाव होतो नथी तेथी ७ सिद्ध लवे।मां नवमां लंग इप अेक सान्निपातिक भावने। सद्भाव कहे छे ते सिवायना ७ नव

रिक्तानामन्येषां जीवानां न्यूनतोऽपि औदयिकी गतिः क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि
पां रिणामिकं तु जीवत्वम्, इत्येतद् भावत्रयं लभ्यते एवेति बोध्यम् ॥सू० १५८॥

इसके अतिरिक्त और जो नौ भंग हैं वे केवल प्ररूपणा मात्र ही हैं। क्योंकि सिद्धों के सिवाय जितने भी संसारी जीव हैं, उनको कम से कम तीन भाव तो होते ही हैं। जिस गति में वे हैं एक तो वह, तथा इन्द्रियां और जीवत्वगति औदयिक भाव है। इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव है और जीवत्व पारिणामिक भाव है।

भावार्थ—सूत्रकारने दो भावों के संयोग होने पर जो दश सान्निपातिक भाव होते हैं उनके विषय में इस सूत्रद्वारा विवेचन किया है। इसमें जहां पर औदयिक भाव प्रत्येक संयोग में प्रधान रूप से रहता है, और शेष औपशमिक आदि में से एक र छूटता चला जाता है वह पहिला द्वि भाव संयोगी भेद होता है। इसके चार भंग बनाये गये हैं। उनमें औदयिक औपशमिक—सान्निपातिक भाव नाम का पहिला भंग है। जैसे यह मनुष्य उपशान्त कषाय है। अर्थात् यह मनुष्य उपशान्त क्रोधी यावत् मनुष्य उपशान्त लोभी है— यहाँ पर उपशान्त क्रोध होने से तो औपशमिक भाव और मनुष्य कहने से मनुष्यगति कर्म के उदय से

लंगो छे तेमनो उद्वेगं तो मात्र प्ररूपणाणी अपेक्षाये न करवाभां आन्यो छे, कारण के सिद्ध लोवे सिवायना न संसारी लोवे छे ते लोवोभां तो आंछाभां आंछा त्रणु लावो अवश्य होय छे, न गतिभां तेमनो सदभाव छे ते गति तथा इन्द्रियो अने लवत्वगति औदयिक भाव छे इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव इय अने लवत्व पारिणामिक भाव इय छे.

भावार्थ—जन्मे लावोना संयोग यवाथी न दस सान्निपातिक लावो निष्पन्न थाय छे, तेमना विषयभां सूत्रकारे आ सूत्रभां विवेचन कथुं छे. पडेला चार द्विभाव संयोगी सान्निपातिक लावोभां औदयिक भाव प्रधान इये रहे छे. औदयिक भावनी साथे औपशमिकथी लधने पारिणामिक पर्यन्तना चार लावोना संयोग करीने पडेला चार लंग (लांगाओ) अने छे. तेभां औदयिक अने औपशमिक लावोना संयोगथी पडेला सान्निपातिक भाव इय लंग अन्थे छे नमं के...आ मनुष्य उपशान्त कषाय छे. अटवे के आ मनुष्य उपशान्त क्रोधी, उपशान्त भानी, उपशान्त भाथी अने उपशान्त लोभी छे. आ प्रकारनुं कथन करवाथी पडेला सान्निपातिक भाव आ प्रकारे अलक्ष थाय छे 'अडी' क्रोध उपशान्त थयेला लावाथी औपशमिक भावना, अने मनुष्य

औदयिक भाव घटित होता है। इसी प्रकार से मनुष्य उपशांत मानी, मनुष्य उपशांत मायी और मनुष्य उपशांत क्रोधी इन इन वचनों में भी घटित कर लेना चाहिये। औदयिक क्षायिक सान्निपातिक नाम का दूसरा भंग है—इसका दृष्टान्त इस प्रकार से जानना चाहिये कि जैसे यह मनुष्य क्षीणकषायी है। औदयिक क्षायोपशमिक नाम का तीसरा सान्निपातिक भंग है जैसे मनुष्य पंचेन्द्रिय है। औदयिक पारिणामिक नाम का चौथा सान्निपातिक भंग है जैसे मनुष्य जीव है। जहां पर औदयिक भाव को छोड़ कर औपशमिक भाव के साथ क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक भावों का संयोग कर भंग बनाये जाते हैं वहां ५वां ६ ठा और सातवां ये सान्निपातिक भाव बनते हैं। उनमें औपशमिक क्षायिक यह सान्निपातिक नाम का पहिला भंग है। जैसे यह उपशांत लोभी दर्शन मोहनीय के क्षीण होजाने से क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। औपशमिक क्षायिक नामका दूसरा भंग है जैसे यह उपशांत मानी आभिनिबोधिक ज्ञानी है। औपशमिक पारिणामिक नाम का तीसरा भंग है—जैसे उपशान्त मायाकषाय वाला मनुष्य। जहां पर औपशमिक

कडेवाथी मनुष्य गति कर्मना उदयने लीधे औदयिक लावने। सदृशाव अताव्ये छे. अेज प्रभाणे उपशान्त मानी मनुष्य, उपशान्त मायी मनुष्य अने उपशान्त दोली मनुष्य, आ त्रणे प्रकारना कथनमां पण्य औदयिक अने औपशमिक लावना स योगथी निष्पन्न सान्निपातिक लाव न घटित थध नय छे. “औदयिक क्षायिक सान्निपातिक लाव” नामना भील लंगनु’ दृष्टान्त नीचे प्रभाणे छे—“आ मनुष्य क्षीण कषाय छे.”

“औदयिक क्षायोपशमिक” नामना त्रील सान्निपातिक लंगनु’ दृष्टान्त— “मनुष्य पंचेन्द्रिय छे.” औदयिक पारिणामिक नामना चोथा सान्निपातिक लंगनु’ दृष्टान्त—“मनुष्य ७व छे.”

औपशमिक लावनी साथे अनुक्रमे क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक लावना सयोगथी पांचमां, छठा अने सातमां सान्निपातिक लाव ३प त्रण लंगो निष्पन्न थाय छे.

“औपशमिक क्षायिक” नामना पांचमां सान्निपातिक लंगनु’ दृष्टान्त— “आ उपशान्त दोली दर्शनमोहनीय कर्मने क्षय थध नवाथी क्षायिक सम्यग्दृष्टि छे.”

“औपशमिक क्षायोपशमिक” नामना छठा सान्निपातिक लंगनु’ दृष्टान्त—“आ उपशान्त मानी आभिनिबोधिक ज्ञानी छे.”

“औपशमिक पारिणामिक” नामना सातमां सान्निपातिक दृष्टान्त—“उपशान्त माया कषायवाणे लव्य.”

ભાવ મી છોડદિયાજાતા હૈ । વહાં ક્ષાયિકભાવ કે સાથ ક્ષાયોપશમિક ઓર પારિણામિક ભાવકા સંબન્ધ હોનેપર તીસરા દ્વિભાવ સંયોગી ભેદ હોતા હૈ—ઉસકે દો ભંગ હસપ્રકાર સે હૈ—ઉનમે ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક પ્રથમ સાન્નિપાતિકભાવ હૈ ઓર દૂસરા ક્ષાયિક પારિણામિક હૈ । ઇનમે પ્રથમ કા દૃષ્ટાન્ત ક્ષાયિક સમ્યગ્દૃષ્ટિ શ્રુતજ્ઞાની હૈ ઓર દૂસરે કા દૃષ્ટાન્ત ક્ષીણકષાયી ભવ્ય હૈ । જહાંપર ક્ષાયિકભાવ કા મી પરિત્યાગ હો જાતા હૈ કેવલ ક્ષાયોપશમિક પારિણામિક રૂપ સંયોગ રહતા હૈ, વહાં પર ઇક હી ક્ષાયોપશમિક પારિણામિક ઇસા ભંગ હોતા હૈ । હસકા દૃષ્ટાન્ત—જૈસે અવધિજ્ઞાની જીવ હૈ । હસપ્રકાર યે દ્વિભાવ સંયોગી ભંગ મિલકર ૧૦ હૈ । ઇનમે જો નૌર્વા ભંગ હૈ કિ જિસકા નામ ક્ષાયિક પારિણામિક હૈ વહ સિદ્ધજીવો કી અપેક્ષા સે હૈ ઓર વહી શુદ્ધનિર્દોષ હૈ ઘાકી કે અવશિષ્ટ નૌ ભંગ વિવક્ષા માત્ર હૈ—કયોંકિ ઉનમે અન્ય ભાવો કા મી સંબન્ધ ઘટિત હોતા હૈ । જૈસે યહ મનુષ્ય ઉપશાંત ક્રોધી હૈ યહાં પર મનુષ્ય કો મનુષ્યગતિનામ કર્મકો ઉદય હૈ હસલિયે ઔદયિક ભાવ હૈ । ક્રોધ કા ઉપશમ હૈ, હસલિયે ઔપશમિક ભાવ હૈ ।

ક્ષાયિક લાવની સાથે અનુક્રમે ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક લાવનો સંયોગ કરવાથી આઠમાં અને નવમાં સાન્નિપાતિક લાવ રૂપ બે ભંગો બને છે.

“ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક” નામના આઠમાં સાન્નિપાતિક ભંગનું દૃષ્ટાન્ત-ક્ષાયિક સમ્યગ્દૃષ્ટિ શ્રુતજ્ઞાની અને ‘ક્ષીણકષાયી ભવ્ય’ ક્ષાયિક પારિણામિક નામના નવમાં સાન્નિપાતિક ભંગના દૃષ્ટાન્ત રૂપ છે.

ક્ષાયોપશમિક લાવ અને પારિણામિકલાવના સંયોગથી ૧૦ મેં સાન્નિપાતિક ભંગ બને છે. “અવધિજ્ઞાની ભુવ,” આ ભંગના દૃષ્ટાન્ત રૂપ છે.

આ પ્રકારે બે લાવોના સંયોગથી કુલ ૧૦ ભંગ બને છે. તેમાં બે નવમે ભંગ (ક્ષાયિક પારિણામિક નામનો ભંગ) છે, તે સિદ્ધ ભવોને લાભ પડે છે. આ ભંગ જ ખરી રીતે સંભવી શકે છે તેથી આ ભંગ જ શુદ્ધ નિર્દોષ ભંગ રૂપ છે. ઘાકીના બે નવ ભંગો છે તેમનું તો અહીં વિવક્ષા માત્ર રૂપે જ (પ્રરૂપણા કરવા માટે જ) કથન કરવામાં આવ્યું છે, કારણ કે તે લાવોમાં અન્ય લાવોનો સંબંધ પણ શક્ય હોય છે જેમ કે “આ મનુષ્ય ઉપશાન્ત ક્રોધી છે.” અહીં મનુષ્યમાં મનુષ્યગતિ નામકર્મનો ઉદય છે, તેથી ઔદયિક લાવનો સદ્ભાવ છે, અને ક્રોધનો ઉપશમ હોવાથી ઔપશમિક ભાવનો પણ સદ્ભાવ છે. પરન્તુ સાથે સાથે તે મનુષ્યમાં બીજાં લાવો પણ

अथ त्रिकयोगान्निरूपयितुमाह—

मूलम्—तत्थ णं जे ते दस तिगसंजोगा ते णं इस्से—अत्थि णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे१ अत्थि णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे२, अत्थि णामे उदइय उवसमियपारिणामियनिप्फण्णे३, अत्थि णामे उदइय खइयखओवसमियनिप्फण्णे४, अत्थि णामे उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे५, अत्थि णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे६, अत्थि णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे७, अत्थि णामे उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे८, अत्थि णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे९, अत्थि णामे खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे१०। कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे ? उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं। एस णं से णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे ॥१॥ कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे ? उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं। एस णं से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे ॥२॥ कयरे से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे ? उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से उवसंता

परन्तु साथ २ उसके और भी भाव मौजूद हैं। क्योंकि समस्त संसारी जीवों में कम से कम तीन भाव तो होते ही हैं। ॥ सू० १५८ ॥

मौजूद होय छे, कारण के समस्त संसारी लोकोमां ओछामां ओछा त्रयु भावोना तो अवश्य सहलाय होय छे. ॥सू०१५८॥

कसाया पारिणामिए जीवे । एस णं से णामे उदइयउवसमियपारि-
 णामियनिष्फणणे ॥३॥ कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमिय-
 निष्फणणे ? उदइयखइयखओवसमियनिष्फणणे—उदइएत्ति मणुस्से
 खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं । एस णं से णामे उदइय-
 खइयखओवसमियनिष्फणणे ॥४॥ कयरे से णामे उदइयखइय-
 पारिणामियनिष्फणणे ? उदइयखइयपारिणामियनिष्फणणे—उदइ-
 एत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे । एस णं से णामे
 उदइएखइयपारिणामियनिष्फणणे ॥५॥ कयरे से णामे उदइय-
 खओवसमियपारिणामियनिष्फणणे ? उदइयखओवसमियपारि-
 णामियनिष्फणणे—उदइएत्ति मणुस्से खओवसमियाइं इंदियाइं
 पारिणामिए जीवे । एस णं से णामे उदइयखओवसमियपारि-
 णामियनिष्फणणे ॥६॥ कयरे से णामे उवसमियखइयखओव-
 समियनिष्फणणे ? उवसमियखइयखओवसमियनिष्फणणे—उव-
 संता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं । एस णं से
 णामे उवसमियखइयखओवसमियनिष्फणणे ॥७॥ कयरे से णामे
 उवसमियखइयपारिणामियनिष्फणणे ? उवसमियखइयपारिणा-
 मियनिष्फणणे—उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं पारिणामिए
 जीवे । एस णं णामे उवसमियखइयपारिणामियनिष्फणणे ॥८॥
 कयरे से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फणणे ?
 उवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फणणे—उवसंता कसाया
 खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे । एस णं से णामे उव-

समियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे॥९॥ कयरे से णामे खइय
खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ? खइयखओवसमियपारि-
णामियनिष्फण्णे—खइयं सम्भत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं
पारिणामिए जीवे । एस णं से णामे खइयखओवसमिय पारि-
णामियनिष्फण्णे॥१०॥सू०१५९॥

छाया—तत्र खलु ये ते दश त्रिकसंयोगास्ते खलु इमे—अस्ति नाम औदयिकौ-
पशमिकक्षायिकनिष्पन्नम् १, अस्ति नाम औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् २
अस्ति नाम औदयिकौपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ३, अस्ति नाम औदयिकक्षायि-
कक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ४, अस्ति नाम औदयिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ५,
अस्ति नाम औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ६, अस्ति नाम औपश-
मिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ७, अस्ति नाम औपशमिकक्षायिकपारिणामिक-
निष्पन्नम् ८, अस्ति नाम औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ९, अस्ति
नाम क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् १० । कतरत् तन्नाम औदयिकौ-
पशमिकक्षायिकनिष्पन्नम् ? औदयिकौपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्—औदयिकमिति
मानुष्यम् उपशान्ताः कषायाः क्षायिकं सम्यक्त्वं । एतत् खलु तन्नाम औदयिकौ-
पशमिकक्षायिकनिष्पन्नम् ॥१॥ कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकनि-
ष्पन्नम् ? औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्—औदयिकमिति मानुष्यं उप-
शान्ताः कषायाः क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि । एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपशमिक-
क्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ॥२॥ कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिकपारिणामिक-
निष्पन्नम् ? औदयिकौपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्—औदयिकमिति मानुष्यम्
उपशान्ताः कषायाः पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपशमिक-
पारिणामिकनिष्पन्नम् ॥३॥ कतरत् खलु औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ?
औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्—औदयिकमिति मानुष्यम्, क्षायिकं
सम्यक्त्वं क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि । एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायिकक्षायो-
पशमिकनिष्पन्नम् ॥४॥ कतरत् तन्नाम औदयिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ?
औदयिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्—औदयिकमिति मानुष्यं क्षायिकं सम्यक्त्वं
पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायिकपारिणामिकनिष्प-
न्नम् ॥५॥ कतरत् तन्नाम औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ? औदयि-
कक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्—औदयिकमितिमानुष्यं क्षायोपशमिकानि

इन्द्रियाणि पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायोपशमिक-
निष्पन्नम् ॥६॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ?
औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्—उपशान्ताः कषायाः क्षायिकं
सम्यक्त्वं क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि । एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायिक-
क्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ॥७॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायिकपारिणामिक-
निष्पन्नम् ? औपशमिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्—उपशान्ताः कषायाः
क्षायिकं सम्यक्त्वं पारिणामिको जीवः एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायिक-
पारिणामिकनिष्पन्नम् ॥८॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिक-
निष्पन्नम् ? औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्—उपशान्ताः कषायाः
क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम औपशमिक-
क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ॥९॥ कतरत् तन्नाम क्षायिकक्षायोपशमिक-
पारिणामिकनिष्पन्नम् ? क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्—क्षायिकं
सम्यक्त्वं क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम
क्षायिक क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् १० ॥ सू० १५९ ॥

टीका—‘तत्थ णं जे ते दस’ इत्यादि—

त्रिक संयोगेऽपि दश भङ्गा भवन्ति । तत्र आद्य भावद्वयं परिपाट्या निक्षिप्य
अवशिष्टानां त्रयाणां मध्ये क्रमेण एकैकस्य तत्र संयोगे कृते सति त्रयो भङ्गा

अथ सूत्रकार तीन भावों के संयोग से जो सान्निपातिक भाव बनते
हैं उनका कथन करते हैं—“तत्थणं जे ते” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(तत्थ णं जे ते दस त्रिग संजोगा ते णं इमे) इन सान्निपा-
तिक भावों में जो तीन २ भावों के संयोग से १० सान्निपातिक भाव के
दश भंग बनते हैं—वे इस प्रकार से हैं—(अत्थिणामे उद्वयउवसमिय
खद्वयनिष्फण्णे?) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, इन तीनों भावों के
संयोग से निष्पन्न औदयिकौपशमिक क्षायिक सान्निपातिक भाव
एक (अत्थि णामे उद्वयउवसमियखओवसमियनिष्फण्णे २) दूसरा—

त्रयु लावेना संयोगथी ने सान्निपातिक लावे अने छे तेभनुं सूत्रकार
डवे निरूपणु करे छे—“तत्थ णं जे ते” इत्यादि—

शब्दार्थ—(तत्थ णं जे ते दस त्रिग संजोगा ते णं इमे...) त्रयु त्रयु लावेना
संयोगथी ने दस सान्निपातिक लावे अने छे ते नीचे प्रमाणे छे—(अत्थि-
णामे उद्वयउवसमिय—खद्वयनिष्फण्णे?) (१) औदयिक, औपशमिक अने
क्षायिक, आ त्रयु लावेना संयोगथी अनते “ औदयिकौपशमिक क्षायिक
सान्निपातिक भाव,” (अत्थि णामे उद्वयउवसमियखओवसमियनिष्फण्णे) (२)

औदयिक औपशमिक, एवं क्षायोपशमिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव (अत्थिणामे उदइय उवसमिय पारिणामिय निष्फण्णे) तीसरा-औदयिक, औपशमिक और पारिणामिक, इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ औदयिक औपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव (अत्थिणामे उदइयखइयखओवसमियनिष्फण्णे) चौथा-औदयिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव (अत्थिणामे उदइय खइय पारिणामिय निष्फण्णे) पांचवां-औदयिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव (अत्थि णामे उदइय खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) छठा-औदयिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव (अत्थि णामे उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे) सातवां-औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औपशमिक, क्षायिक क्षायोपशमिक नाम का सान्निपातिक भाव

औदयिक, औपशमिक अने क्षायोपशमिक, आ त्रणु भावेना स'योगथी भनते।

“ औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव. ”

(अत्थिणामे उदइयउवसमियपारिणामियनिष्फण्णे३) (३) औदयिक, औपशमिक अने पारिणामिक आ त्रणु भावेना स'योगथी भनते। “औदयिकौपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव. ”

(अत्थि णामे उदइयखइयखओवसमियनिष्फण्णे) (४) औदयिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव. ”

(अत्थि णामे उदइयखइयपारिणामियनिष्फण्णे) (५) औदयिक, क्षायिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावेना स'योगथी निष्पन्न थते। “औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव. ”

(अत्थि णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) (६) औदयिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक भावेना स'योगथी भनते। “ औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव. ”

(अत्थि णामे उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे) (७) औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ त्रणु भावेना स'योगथी भनते। “ औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव. ”

(અસ્થિનામે ઉવસમિયસ્વહ્યપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) આઠવાં-ઔપશ-
મિક ક્ષાયિક ઔર પારિણામિક્ક ઇન તીન ભાવોં કે સંયોગ સે નિષ્પન્ન
ઔપશમિક ક્ષાયિક પારિણામિક નામ કા સાન્નિપાતિક ભાવ (અસ્થિ-
નામે ઉવસમિયસ્વઔવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) નૌવાં-ઔપશ-
મિક, ક્ષાયોપશમિક ઔર પારિણામિક્ક ઇન તીન ભાવોં કે સંયોગ સે
નિષ્પન્ન ઔપશમિક ક્ષાયોપશમિક પારિણામિક નામ કા સાન્નિપાતિક
ભાવ, અસ્થિનામે સ્વહ્યસ્વઔવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) દસવાં-
ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક, ઔર પારિણામિક્ક ઇન તીનોં ભાવોં કે સંયોગ
સે નિષ્પન્ન ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક પારિણામિક નામકા સાન્નિપાતિક
ભાવ । (કચરે સે નામે ઉદહ્યુવસમિયસ્વહ્યનિષ્કળ્ણે)

પ્રશ્ન-હે ભદન્ત ! ઔદયિકૌપશમિક ક્ષાયિક નામ કા જો પ્રથમ
ત્રિક ભાવ સંયોગી સાન્નિપાતિક ભાવ હૈ વહ કૈસા હૈ ?

ઉત્તર-(ઉદહ્ય ઉવસમિયસ્વહ્યનિષ્કળ્ણે) ઔદયિકૌપશમિક ક્ષાયિક-
નામ કા જો પ્રથમ ત્રિક સંયોગી સાન્નિપાતિક ભાવ હૈ-વહ એસા હૈ-
ઉદહ્યુત્તિમણુસે ઉવસંતા-કસાયા સ્વહ્ય સંમત્તં) મનુષ્યગતિ ઔદયિક
ભાવ સેં હૈ કષાયોં કા ઉપશમ ઔપશમિક ભાવ સેં હૈ ઔર ક્ષાયિક

(અસ્થિ નામે ઉવસમિયસ્વહ્યપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) (૮) ઔપશમિક,
ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતો “ ઔપશમિક
ક્ષાયિક પારિણામિક નામનો સાન્નિપાતિક ભાવ. ”

(અસ્થિનામે ઉવસમિય સ્વઔવસમિય પારિણામિય નિષ્કળ્ણે) (૯) ઔપશમિક,
ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતો
“ ઔપશમિક ક્ષાયોપશમિક પારિણામિક નામનો સાન્નિપાતિક ભાવ. ”

(અસ્થિનામે સ્વહ્યસ્વઔવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) (૧૦) ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશ-
મિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતો “ ક્ષાયિક ક્ષાયોપ-
શમિક પારિણામિક નામનો સાન્નિપાતિક ભાવ. ”

પ્રશ્ન-(કચરે સે નામે ઉદહ્યુવસમિયસ્વહ્યનિષ્કળ્ણે ?) હે ભગવન્ !
ઔદયિકૌપશમિક ક્ષાયિક નામનો જે પહેલો ત્રિકભાવ સંયોગી સાન્નિપાતિક
ભાવ છે તે કેવો છે ?

ઉત્તર-(ઉદહ્યુવસમિયસ્વહ્યનિષ્કળ્ણે) ઔદયિક ઔપશમિક ક્ષાયિક
નામનો જે પહેલો ત્રિકભાવસંયોગી સાન્નિપાતિક ભાવ છે તે આ પ્રકારનો
છે-(ઉદહ્યુત્તિ મણુસે ઉવસંતા કસાયા સ્વહ્ય સંમત્તં) મનુષ્ય ગતિ ઔદયિક
ભાવ છે, કષાયોનો ઉપશમ ઔપશમિક ભાવ છે અને ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ

सम्बन्धत्व क्षायिक भाव में है—(एसणं से णामे उदइयउवसमियखइय-
निष्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिक औपशमिक क्षायिक निष्पन्न नाम
सान्निपातिक भाव है। (कयरे से णामे उदइयउवसमियखओव-
समियनिष्फण्णे) हे भदन्त ! औदयिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक
भाव कैसा है ?

उत्तर—(उदइय उवसमियखओवसमियनिष्फण्णे) औदयिक औप-
शमिक क्षायोपशमिक नामका सान्निपातिकभाव ऐसा है (उदइए
त्तिमणुस्से उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं) मनुष्यगति औद-
यिक, उपशांतकषाये औपशमिक, और इन्द्रियां क्षायोपशमिक (एसणं
से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिष्फण्णे) इस प्रकार यह
औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव है। (कयरे
से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औद-
यिक औपशमिक पारिणामिक नाम का तीसरा सान्निपातिक भाव कैसा
है ? (उदइयउवसमियपारिणामियनिष्फण्णे)

उत्तर—औदयिक औपशमिक पारिणामिक नामका जो तीसरा सान्नि-
पातिक भाव है वह ऐसा है—(उदइयएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया पारि-

क्षायिक भाव छे. (एसणं से णामे उदइयउवसमियखइयनिष्फण्णे) आ प्रकारने
आ औदयिक औपशमिक क्षायिक निष्पन्न नामने सान्निपातिक भाव छे.

प्रश्न—कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिष्फण्णे ? हे लगवन् !
औदयिक औपशमिक सान्निपातिक भाव केवे छे ?

उत्तर—(उदइयउवसमियखओवसमियनिष्फण्णे) औदयिक औपशमिक—क्षायोपशमिक
नामने सान्निपातिक भाव आ प्रकारने छे—(उदएत्ति मणुस्से, उवसंता-
कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं) मनुष्य गति औदयिक भाव छे, उपशांत
कषाये औपशमिक भाव छे अने इन्द्रिये क्षायोपशमिक भाव छे. (एसणं से
णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिष्फण्णे) आ प्रकारने आ औदयिक औपशमिक
क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव छे.

प्रश्न—(कयरे से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ? हे लगवन् !
औदयिक औपशमिक पारिणामिक नामने तीजे सान्निपातिक भाव केवे छे ?

उत्तर—(उदइयउवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?) औदयिक औपशमिक पारिणामि-
क नामने तीजे सान्निपातिक भाव आ प्रकारने छे—(उदइयएत्ति
मणुस्से, उवसंता कसाया, पारिणामिय जीवे) मनुष्य गति औदयिक भाव छे,

णामिए जीवे) मनुष्यगति औदयिक भाव है कषायों की उपशान्ति औपशमिक भाव है और जीव पारिणामिक भाव है । (एसणं से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिकौपशमिकपारिणामिक नाम का सान्निपातिक भाव है । (कयरे से णामे-उदइयखइयखओवसमियनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औदयिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ औदयिक क्षायिकक्षायोपशमिक नाम का सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर—(उदइयखइयखओवसमियनिष्फण्णे) औदयिक, क्षायिक क्षायोपशमिक नाम का सान्निपातिक भाव ऐसा है—

(उदएत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं) मनुष्यगति औदयिक भाव में है । क्षायिक सम्यक्त्व यह क्षायिकभाव में है, और इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव में हैं । (एसणं से णामे उदइयखइयखओवसमियनिष्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिक नामका सान्निपातिक भाव है ।

(कयरे से णामे उदइयखइयपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औदयिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ? (उदइयखइयपारिणामियनिष्फण्णे)

क्षायोनी उपशान्ति औपशमिक भाव छे अने एव पारिष्ठाभिक भाव छे. (एसणं से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) आ प्रकारनुं औदयिकौपशमिक पारिष्ठाभिक नामना सान्निपातिक भावतुं स्वइय छे.

प्रश्न—(कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमियनिष्फण्णे) हे भगवन् ! औदयिक क्षायिक अने क्षायोपशमिक आ त्रणे भावोना संयोगथी जनता औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक नामना योथा सान्निपातिक भावतुं स्वइय केवुं छे ?

उत्तर—(उदइयखइयखओवसमियनिष्फण्णे) औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक नामना योथा सान्निपातिक भावतुं स्वइय आ प्रकारनुं छे—(उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं) मनुष्य गति औदयिक भाव इय छे, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव इय छे अने इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव इय छे. (एसणं से णामे उदइयखइयखओवसमियनिष्फण्णे) आ प्रकारनुं औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक नामना सान्निपातिक भावतुं स्वइय छे.

प्रश्न—(कयरे से णामे उदइयखइयपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे भगवन् ! औदयिक, क्षायिक अने पारिष्ठाभिक भावोना संयोगथी जनता पांचभां सान्निपातिक भावतुं स्वइय केवुं छे ?

उत्तर-औदयिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक नामका भाव इस प्रकार से है- (उदइएत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे) मनुष्य गति यह औदयिक भाव है, क्षायिक सम्प्रत्तव यह क्षायिक भाव है और जीव यह पारिणामिक भाव है। (एसणं से णामे उदइयखइयपारिणामियनिष्फण्णे) इसप्रकार यह औदयिकक्षायिक पारिणामिक नामका सान्निपातिक भाव है। (कयरे से णामे उदइय खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औदयिक क्षयोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर-(उदइय खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) औदयिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव ऐसा है-(उदइएत्तिमणुस्से खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) मनुष्यगति यह औदयिक भाव है। इन्द्रियां ये क्षायोपशमिक भाव हैं और जीव यह पारिणामिक भाव है। (एसणं से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) इस प्रकार से यह औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नाम का सान्निपातिक भाव है।

उत्तर-(उदइयखइयपारिणामियनिष्फण्णे) औदयिक क्षायिक अने पारिष्ठाभिक, आ त्रष्टु लावेना संयोगथी अनता पांचमे सान्निपातिक भाव आ प्रकारने। छे-(उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे) मनुष्य गति औदयिक भाव इय छे, क्षायिक सम्प्रत्तव क्षायिक भाव इय छे अने एव पारिष्ठाभिक भाव इय छे। (एसणं से णामे खइयपारिणामियनिष्फण्णे) आ प्रकारनुं औदयिक क्षायिक पारिष्ठाभिक नामना सान्निपातिक भावनुं स्वइय छे।

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे लगवन् ! औदयिक, क्षायोपशमिक अने पारिष्ठाभिक, आ त्रष्टु लावेना संयोगथी अनता छ्हा सान्निपातिक भावनुं स्वइय केवुं छे ?

उत्तर-(उदइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) औदयिक, क्षायोपशमिक अने पारिष्ठाभिक, आ त्रष्टु लावेना संयोगथी अनता छ्हा सान्निपातिक भावनुं स्वइय आ प्रकारनुं छे-(उदइए मणुस्से खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) मनुष्यगति औदयिक भावइय छे, इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव इय छे अने एव पारिष्ठाभिक भाव इय छे। (एसणं से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) आ प्रकारने औदयिक क्षायोपशमिक पारिष्ठाभिक नामने सान्निपातिक भाव छे।

(कयरे से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर—(उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे) औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भावों से निष्पन्न हुआ—सान्निपातिकभाव इसप्रकार से है—(उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाहं इंदियाइं) उपशमित हुई कषाये औपशमिक भाव हैं, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भावरूप है और इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव है। (एसणं से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे) इस प्रकार यह औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव है, (कयरे से णामे उवसमिय खइयपारिणामियनिष्फण्णे) हे भदन्त ! औपशमिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर—(उवसमियखइयपारिणामियनिष्फण्णे) औपशमिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव इसप्रकार से है। (उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारि-

प्रश्न—(कयरे से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ त्रयुं भावेना संयोगथी अनता सातमां सान्निपातिक भावतुं स्वइयं डेवुं छे ?

उत्तर—(उवसमिय खइयखओवसमियनिष्फण्णे) औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ त्रयुं भावेना संयोगथी अनता सातमां सान्निपातिक भावतुं स्वइयं आ प्रकारतुं छे—(उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं) उपशमित थयेत्ता कषाये औपशमिक भाव इयं छे, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव इयं छे अने इन्द्रिये क्षायोपशमिक भाव इयं छे. (एसणं से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे ?) आ प्रकारतो औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक नामतो सान्निपातिक भाव डोय छे.

प्रश्न—(कयरे से णामे उवसमिय खइयपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औपशमिक, क्षायिक अने पारिणामिक, आ त्रयुं भावेना संयोगथी अनता सातमां सान्निपातिक भावतुं स्वइयं डेवुं छे ?

उत्तर—(उवसमियखइयपारिणामियनिष्फण्णे) औपशमिक, क्षायिक अने पारिणामिक, आ त्रयुं भावेना संयोगथी अनतो सान्निपातिक भाव आ प्रकारतो छे—(उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे) उपशमित

णमिए जीवे) उपशमित हुई कषाये औपशमिक भाव हैं क्षायिक सम्प-
त्तव क्षायिकभाव है और जीव पारिणामिकभाव है । (एसणं से णामे
उवसमियखइयपारिणामियनिष्फण्णे) इसप्रकार यह औपशमिकक्षायिक
और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सन्नि-
पातिकभाव है । (कयरे से णामे उवसमियखओवसमिय पारिणामिय
निष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक
इनतीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिकभावकैसा है ?

उत्तर—(उवसमिय खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) औपश-
मिक, क्षायोपशमिक, और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से
निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव इस प्रकार से है—(उवसंता कसाया खओव-
समियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) उपशमित कषाय औपशमिक भाव
है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव हैं और जीव यह पारिणामिक भाव है ।
(एसणं से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) इस प्रकार
यह औपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों
के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव है । (कयरे से णामे खइय
खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) हे भदन्त ! क्षायिक क्षायोपशमिक

थयेता कषाये औपशमिक भाव इपुं छे, क्षायिक सम्पत्तव क्षयिकं भाव इपुं
छे अने एव पारिणामिक भाव इपुं छे. (एसणं से णामे उवसमियखइय-
पारिणामियनिष्फण्णे) आ प्रकारेने औपशमिक क्षायिक पारिणामिक नामेने
सान्निपातिक भाव छे.

प्रश्न—(कयरे से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?)
हे भगवन् ! औपशमिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रयुं लावेना
संयोग्थी निष्पन्न थतो नवमे सान्निपातिक भाव केवे छे ?

उत्तर—(उवसमिय खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) औपशमिक, क्षायोपशमिक
अने पारिणामिक, आ त्रयुं लावेना संयोग्थी अनतो नवमे सान्निपातिक भाव
आ प्रकारेने छे—(उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे)
उपशमित कषाये औपशमिक भाव इपुं छे, इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव इपुं
छे अने एव पारिणामिक भाव इपुं छे (एसणं से णामे उवसमियखओवस-
मियपारिणामियनिष्फण्णे) आ प्रकारेने औपशमिक क्षायोपशमिक अने पारिणामिक
नामने सान्निपातिक भाव छे.

प्रश्न—(कयरे से णामे खइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे
भगवन् ! क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रयुं लावेना
संयोग्थी अनतो दसमे सान्निपातिक भाव केवे छे ?

और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर—(खड्यखओवसमिय पारिणामियनिष्फण्णे) क्षायिक क्षायो-पशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव ऐसा है—(खड्यं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव है, इन्द्रियां क्षायो-पशमिक भाव हैं तथा जीव यह पारिणामिक भाव है। (एस णं से णामे खड्यखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) इस प्रकार यह क्षायिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ क्षायिकक्षायोपशमिक पारिणामिक नामका सान्निपातिक भाव है—

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा तीन भावों के संयोग से जो १० सान्निपातिक रूप भंग होते हैं उनका प्रदर्शन किया है। इनमें औद-यिक और औपशमिक इन दो भावों को परिपाटी से निक्षिप्त कर के अवशिष्ट क्षायिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीनों भावों में से एक एक भाव का उनके साथ संयोग किया है। इस प्रकार करने से तीन भंग निष्पन्न होते हैं, इनमें औदयिकौपशमिक क्षायिक सान्निपा-तिक भाव इस प्रकार से घटित करना चाहिये कि यह मनुष्य उपशान्त क्रोधादि कषायवाला होकर क्षायिक सम्यक् दृष्टि है। मनुष्य से यहाँ

उत्तर—(खड्य खओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावेना संयोगथी अनतो दसमां सान्निपातिक भाव आ प्रकारेणो छे—(खड्यं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव इप छे, इन्द्रिये क्षायोपशमिक भाव इप छे अने एव पारिणामिक भाव इप छे. (एसणं से णामे खड्य खओवस-मियपारिणामियनिष्फण्णे) आ प्रकारेणुं क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावेना संयोगथी अनता दसमां सान्निपातिक भावणुं स्वइप छे.

भावार्थ—त्रणु भावेना संयोगथी ने दस सान्निपातिक भाव इप १० लंग अने छे, तेमणुं सूत्रकारे आ सूत्रमां निइपणु कथुं छे औदयिक अने औपशमिक भावेनी साथे अनुकमे क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक भावेनो संयोग करवाथी पडेला त्रणु लंग अन्या छे.

(१) “ औदयिकौपशमिक सान्निपातिक भाव ” इप पडेला लंगणुं उदाहरणु आ प्रमाणे छे—“ आ मनुष्य उपशान्त क्रोधादि कषायवाणे छे अने क्षायिक सम्यक्दृष्टि छे. ” मनुष्य पद अही मनुष्यगतिणुं वाचक छे. मनुष्य गति औदयिक भाव इप होय छे, कारणे के मनुष्यगति नामकर्मना उदयथी

भवन्ति । तत आद्यं तृतीयं च परिपाट्या निक्षिप्य अवशिष्टयोर्द्वयोस्तत्र क्रमेण संयोगे भङ्गद्वयम् । ततः प्रथमचतुर्थपञ्चमभावानां संयोगे एको भङ्गः । इत्थं पद्म भङ्गाः । ततो द्वितीयं च मात्रपरिपाट्या निक्षिप्य तत्र चतुर्थपञ्चमयोः क्रमेण योगे भङ्गद्वयम् । ततो द्वितीयचतुर्थपञ्चमभावानां च योगे एको भङ्गः । तथा-तृतीयचतु-

मनुष्यगति ली गई है। मनुष्यगति यह औदयिक भाव है। क्यों कि मनुष्यगति नामकर्म के उदय से मनुष्य होता है। उपशान्त क्रोधादि कषायवाला कहने से औपशमिक भाव घटित होता है और क्षायिक सम्यक्त्व से क्षायिक भाव। इसी प्रकार से शेष दो भंगों में-औदयिक-औपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव में यह मनुष्य उपशान्त कषायवाला पंचेन्द्रिय है यथा औदयिकऔपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भंग में यह मनुष्य उपशान्त कषायवाला जीव है-घटित करलेना चाहिये। जहां पर औपशमिक भाव का परित्याग कर औदयिक और क्षायिक भाव का ग्रहण हो तथा क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक भावों में से एक २ का ग्रहण हो वह दूसरा त्रिभाव संयोगी सान्निपातिक भाव का भेद है-इसके दो भंग हैं-एक औदयिक क्षायिकक्षायोपशमिक और दूसरा औदयिक क्षायिक पारिणामिक, पहिलेका दृष्टान्त-क्षीण कषायी मनुष्य

मनुष्य गतिनी प्राप्ति थाय छे. उपशान्त क्रोधादि कषायवाणे कडेवाथी औपशमिक भाव घटित थाय छे अने क्षायिक सम्यक्त्व युक्त कडेवाथी क्षायिक भाव घटित थाय छे अने प्रमाणे भील अने त्रील ल'गोने भावार्थ' पणु समल शक्य अवे छे.

(२) "औदयिकऔपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव" इप भील ल'गनुं उदाहरणु आ प्रमाणे छे-

'आ मनुष्य उपशान्त कषायवाणे पंचेन्द्रिय लव छे.'

(३) औदयिकऔपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक ल'गनुं उदाहरणु.

"आ मनुष्य उपशान्त कषायवाणे लव छे."

त्यार पछीने योथे अने पांचमे ल'ग आ प्रमाणे अने छे-अही औदयिकभावनी साथे औपशमिक भाव देवाने णदवे क्षायिक भाव देवे अने औदयिक अने क्षायिक भावनी साथे अनुक्रमे क्षायोपशमिक अने पारिणामिक भावोने संयोग करवाथी योथे अने पांचमे ल'ग अने छे.

(४) औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भावनुं उदाहरणु "क्षीण कषायी मनुष्य श्रुतज्ञानि."

पञ्चमभावानां च योगे एको भङ्गः । इत्थं सर्वे भङ्गां दश संख्यका भवन्ति । एतेषामेव स्वरूपविवरणाय प्राह—‘कयरे से नामे’ इत्यादि । एषां व्याख्या पूर्ववद् बोध्या । तत्र पञ्चमो भङ्गः केवलानां संभवति । केवलानां हि—औदयिकी

श्रुतज्ञानी और दूसरे का दृष्टान्त जिसका दर्शन मोहनीयादि कर्म क्षीण हो गया है ऐसा वह मनुष्य जीव है । जहाँपर केवल औदयिक भावका ग्रहण है और औपशमिक एवं क्षायिक का परित्याग है वह तीसरा त्रिभाव संयोगी सान्निपातिकभाव है । उसका औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक एक—ऐसा छठा भंग है । इसका दृष्टान्त—जिस प्रकार मनुष्य मनोयोगी जीव है । जहाँ पर औदयिक भाव को छोड़कर शेष औपशमिकादि चार भावों में एक २ का परित्याग किया जावे वह चौथा त्रिभाव संयोगी भेद है और उसके इस प्रकार से चार भंग माने गये हैं—पहला भंग—औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक नाम का दूसरा भंग औपशमिक क्षायिकपारिणामिक सान्निपातिक नामका तीसरा भंग—औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक नाम का । चौथा—क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक नाम का । इस प्रकार ये सब भंग १० हो जाते हैं । इनमें जो औदयिक, क्षायिक एवं पारिणामिक भावों के संयोग से निष्पन्न ५वाँ सान्निपातिक भावका

(५) औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक लावनुं दृष्टान्त—“नेना दर्शनमोहनीय आदि कर्म क्षीणं यद्य गत्यां छे अवेो मनुष्य एव.”

ने सान्निपातिकलावमां औदयिक लावनी साथे औपशमिक अने क्षायिक, आ ये लावोने देवाने भद्वे भाडीना ये लावो देवामां आवे छे अवेो छट्टे लंग नीचे प्रमाणे छे—“ औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक लाव तेनुं दृष्टान्त नीचे प्रमाणे छे—“ मनुष्य मनोयोगी एव छे.”

भाडीना आर लंग आ प्रकारे भन्था छे—आ आरे लंगमां औदयिकलाव सिवायना आर लावोमांना त्रणु त्रणु लावोना संयोगथी आर लंग भन्था छे,

औपशमिक अने क्षायिक, आ ये लावो साथे क्षायोपशमिक लावना संयोगथी सातमे लंग अने पारिणामिकलावना संयोगथी आठमे लंग भन्था छे,

नवमां लंगमां औपशमिक क्षायोपशमिक अने पारिणामिक लावोना संयोगथी ने सान्निपातिक लाव भने छे ते अडणु करवेो अने दसमां लंगमां क्षायिक क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रणु लावोना संयोगथी भन्तो सान्निपातिक लाव अडणु थयो छे. आ प्रकारे कुल १० लंग भने छे.

औदयिक, क्षायिक अने पारिणामिक लावोना संयोगथी निष्पन्न पांचमा सान्निपातिक लावनेो तो मात्र केवलीयेमां न सद्भाव डोय छे, कारणे के

મનુષ્યગતિઃ ક્ષાયિકાણિ જ્ઞાનદર્શનચારિત્રાણિ પારિણામિકં જીવત્વમિતિ ત્રયો
ભાવા ભવન્તિ । ઔપશમિકસ્તુ તેષુ નાસ્તિ, ઔપશમિકસ્ય મોહનીયાશ્રયત્વાત્,
કેવલિષુ મોહનીયસ્યાસંભવાત્ । ક્ષાયોપશમિકો ભાવોઽપ્યેવાં નાસ્તિ, ક્ષાયોપશ-
મિકાનિ ઇન્દ્રિયાદિપદાર્થત્વેનાભિમતાઃ, ઇન્દ્રિયાદિપદાર્થાસ્તુ કેવલિષુ ન સન્તિ,
તેષામતીન્દ્રિયત્વાત્ । ઉક્તંચાપિ-‘અતીન્દ્રિયાઃ કેવલિનઃ’ ઇતિ । ઇત્યં ચ ઔદયિક-
ક્ષાયિકપારિણામિકેતિ ભાવત્રયનિષ્પન્નઃ પશ્ચમો ભક્તઃ કેવલિનાં સંભવતિ । ષષ્ઠો
ભક્તસ્તુ નારકાદિષુ ચતસ્રણુ ગતિષુ બોધ્યઃ । તથાહિ-નારકાદ્યન્યતમા ગતિઃ ઔદ-

ભંગ હૈ વહ કેવલિયોં કે સંભવતા હૈ-કયોંકિ કેવલિયોં કે ઔદયિક-
મનુષ્યગતિ હૈ જ્ઞાનદર્શન ઔર ચારિત્ર યે ક્ષાયિકરૂપ હૈ । ઔર પારિણા-
મિક રૂપ જીવત્વ હૈ । વહાં યે ત્રીન ભાવ હૈ । ઔપશમિક ભાવ ડનમેં
નહોં હૈ, કયોંકિ ઔપશમિક મોહનીય કે આશ્રય સે હોતા હૈ । ઔર મોહ-
નીય કેવલિયોં મેં હૈ નહોં । ક્ષાયોપશમિક ભાવ ખી કેવલિયોં મેં નહોં
હોતા હૈ । કયોંકિ ક્ષાયોપશમિક ભાવ ઇન્દ્રિય આદિ પદાર્થરૂપ માને ગયે હૈ ।
ઇન્દ્રિયાદિરૂપ પદાર્થ કેવલિયોં મેં નહોં હૈ । કયોં કિ બે ઇન્દ્રિયાતીત હૈ ।
“અતીન્દ્રિયા કેવલિનઃ” એસા અન્યત્ર કહા હૈ । તાત્પર્ય ઇસકા યહ હૈ
કિ કેવલિયોં કા જ્ઞાન ઇન્દ્રિયાતીત-અતીન્દ્રિય-હૈ । ઇસ પ્રકાર ઔદ-
યિક ક્ષાયિક ઔર પારિણામિક ઇન ત્રીન ભાવોં સે નિષ્પન્ન પંચમ ભંગ
કેવલિયોં મેં સંભવતા હૈ । તથા જો છઠા ઔદયિક ક્ષાયોપશમિક એવં

કેવલીઓમાં મનુષ્ય ગતિ રૂપ ઔદયિક ભાવનો, જ્ઞાનદર્શન રૂપ ક્ષાયિક
ભાવનો અને ઔપશમિક રૂપ પારિણામિક ભાવનો સદ્ભાવ રહે છે આ રીતે
કેવલીઓમાં આ ત્રણ ભાવોનો જ સદ્ભાવ રહે છે. તેમનામાં ઔપશમિક
ભાવનો સદ્ભાવ હોતો નથી કારણ કે ઔપશમિક ભાવ મોહનીય કર્મના
ઉપશમ પર આધાર રાખે છે. કેવલીઓમાં મોહનીય કર્મનો સદ્ભાવ જ
હોતો નથી કેવલીઓમાં ક્ષાયોપશમિક ભાવનો પણ સદ્ભાવ હોતો
નથી કારણ કે ક્ષાયોપશમિક ભાવ ઇન્દ્રિયાદિ પદાર્થ રૂપ મનાય છે
છે ઇન્દ્રિયાદિ રૂપ પદાર્થ કેવલીઓમાં હોતા નથી, કારણ કે
તેઓ ઇન્દ્રિયાતીત હોય છે. “અતીન્દ્રિયા કેવલિનઃ” એવું સિદ્ધાન્તકથન છે.
આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે કેવલીઓનું જ્ઞાન ઇન્દ્રિયાતીત (અતીન્દ્રિય)
હોય છે આ પ્રકારે ઔદયિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના
સંયોગથી નિષ્પન્ન થતો પાચમો ભંગ માત્ર કેવલીઓમાં જ સંભવી શકે છે.

ઔદયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી
નિષ્પન્ન થતા સાક્ષિપાતિક ભાવ રૂપ છઠો ભંગ નારકાદિ આદિ ગતિઓમાં

યિકી, ક્ષાયોપશમિકાનિ ઇન્દ્રિયાણિ, પારિણામિકં જીવત્વમ્, ઇતિ ઔદયિક-
ક્ષાયોપશમિકપારિણામિકેતિ ભાવત્રયનિષ્પન્નઃ ષષ્ઠો ભક્તો નારકાદિગતિચતુષ્ટયે
સંભવતિ । અત ઇતરેત્વષ્ઠૌ ભક્તઃ પ્રરૂપણામાત્રમ્, તેષાં ક્ષાડપ્યસંભવાત્ ॥સૂ.૧૫૧॥

અથ ચતુષ્કસંયોગાન્નિરૂપયિતુમાહ—

મૂલમ્—તત્થ ણં જે તે પંચ ચતુષ્કસંજોગા તે ણં ઇમે—અત્થિ
ણામે ઉદ્દય—ઉવસમિય—સ્વદય—સ્વઓવસમિયનિષ્કળે? અત્થિ
ણામે ઉદ્દય—ઉવસમિયસ્વદયપારિણામિયનિષ્કળે૨, અત્થિ
ણામે ઉદ્દયઉવસમિયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળે૩, અ-
ત્થિ ણામે ઉદ્દયસ્વદયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળે૪,
અત્થિ ણામે ઉવસમિયસ્વદયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળે૫।
'કયરે સે ણામે ઉદ્દયઉવસમિયસ્વદયસ્વઓવસમિયનિષ્કળે ?,
ઉદ્દયઉવસમિયસ્વદયસ્વઓવસમિયનિષ્કળે-ઉદ્દયત્તિ મણુસ્સે,

પારિણામિક ઇન ભાવોં સે—નિષ્પન્ન ભંગ હૈ વહ નારકાદિ ચારોં ગતિયોં
મેં હોતા હૈ ક્યોં કિ યે નારકાદિ ગતિયાં ઔદયિકી માની ગઈ હૈ ઓર
વહાં જો ઇન્દ્રિયાં હૈં વે ક્ષાયોપશમિક ભાવરૂપ હૈ ઓર જીવત્વ વહાં
પારિણામિક ભાવ રૂપ હૈ । હસ પ્રકાર ઔદયિક ક્ષાયોપશમિક ઓર
પારિણામિક ઇન ત્રીન ભાવોં સે નિષ્પન્ન યહ છઠા ભંગ નારક આદિ
ચારોં ગતિયોં મેં સંભવતા હૈ । તથા ઇનસે અતિરિક્ત ઓર જો આઠ ભંગ
હૈં વે કેવલ પ્રરૂપણા માત્ર હૈં । ક્યોં કિ ઇન ભંગોં કી કહીં પર મી
સંભાવના નહીં હૈ ! ॥સૂ.૦૧૫૧॥

સંભવી શકે છે, કારણ કે નારકાદિ ગતિઓને ઔદયિક માનવામાં આવે છે.
આ ગતિના જીવોમાં જે ઇન્દ્રિયો હોય છે તે ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ ગણાય
છે. અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ રૂપ ગણાય છે આ રીતે ઔદયિક, ક્ષાયો-
પશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતા છઠો
ભંગ નારકાદિ ચારે ગતિઓમાં સંભવી શકે છે.

પાંચમાં અને છઠા ભંગ સિવાયના આઠે ભંગોની કોઈ પણ જગ્યાએ
શક્યતા હોતી નથી તેથી માત્ર પ્રરૂપણા કરવા નિમિત્તે જ તે ભંગોનું કથન
અહીં કરવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું. ॥સૂ.૦૧૫૧॥

उवसंता कसाया, खइअं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं ।
 एस णं से णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे ?,
 कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयपरिणामियनिष्फण्णे ?,
 उदइयउवसमियखइयपारिणामियनिष्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से,
 उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे । एस णं
 से णामे उदइयउवसमियखइयपारिणामियनिष्फण्णे २ । 'कयरे
 से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे—
 उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे उदइएत्ति
 मणुस्से, उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं,
 पारिणामिए जीवे । एस णं से णामे उदइयउवसमियखओव-
 समियपारिणामियनिष्फण्णे ३ । कयरे से णामे उदइयखइयख-
 ओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ? उदइयखइयखओवसमिय-
 पारिणामियनिष्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, खओ-
 वसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे । एस णं से नामे उद-
 इयखइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ४ । कयरे से नामे
 उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ? , उवसमि-
 यखइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे—उवसंता कसाया,
 खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे ।
 एस णं से नामे उवसमियखइयखओवसमियपारिणामिय-
 निष्फण्णे ५ ॥ सू० १६० ॥

छाया—तत्र खलु ये ते पञ्च चतुष्कसंयोगाः, ते खलु इमे—अस्ति नाम औदयि-
 कौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ? अस्ति नाम औदधिकौपशमिकक्षायिक-
 पारिणामिकनिष्पन्नम् २, अस्ति नाम औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणा-

भिकनिष्पन्नम्३, अस्ति नाम औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्४,
अस्ति नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्५, कतरत्

अथ सूत्रकार—चार भावों के संयोग से निष्पन्न सान्निपातिक भावों की प्रस्तुतना करते हैं—“ तत्थ णं जे ते पंच ” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(तत्थ णं जे ते पंच चउक्कसंजोगा ते णं इमे) यहां जो चतुष्क संयोगी पांच भंग हैं वे इस प्रकार से हैं—(अत्थि णामे उदइय, उवसमिय—खइय—खओवसमियनिष्फण्णे१) औदयिक, औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न पहिला भंग है । (अत्थि णामे उदइय—उवसमिय—खइय—पारिणामियनिष्फण्णे२) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न दूसरा भंग है । (अत्थि णामे उदइय उवसमिय, खओवसमिय—पारिणामिय निष्फण्णे३) औदयिक, औपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न तीसरा भंग है । (अत्थि णामे उदइयखइयखओवसमिय पारिणामियनिष्फण्णे ४) औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न चौथा भंग है (अत्थि णामे उवसमियखइयखओव-

चार लावेना संधेगथी निष्पन्न थता सान्निपातिक लावेनु' सूत्रकार डवे निरूपणु करे छे—“ तत्थणं जे ते पंच ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(तत्थण जे ते पंच चउक्कसंजोगा तेणं इमे) चार लावेना संधेगथी भनता चतुष्कसंधेगी, पांच लंग लने छे, ते चतुष्कसंधेगी पांच लंगे नीचे प्रमाणे छे—(अत्थिणामे उदइय—उवसमिय—खइय—खओवसमियनिष्फण्णे) पडेवे लंग—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ चार लावेना संधेगथी भनते सान्निपातिक लाव (अत्थिणामे उदइय, उवसमिय, खइय, पारिणामिय, निष्फण्णे) नीले लंग—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक अने पारिणामिक, आ चार लावेना संधेगथी भनते सान्निपातिक लाव

(अत्थिणामे उदइय—उवसमिय—खओवसमिय—पारिणामियनिष्फण्णे) नीले लंग—औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार लावेना संधेगथी भनते सान्निपातिक लाव.

थेथे लंग—(अत्थिणामे उदइय—खइय—खओवसमिय—पारिणामियनिष्फण्णे) औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार लावेना संधेगथी निष्पन्न थता सान्निपातिक लाव.

पांचमे लंग—(अत्थिणामे उवसमिय—खइय खओवसमिय—पारिणामिय

तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ? औदयिकौपशमिकक्षायिक-
कक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्—औदयिकमिति मनुष्यम्, उपशान्ताः कषायाः
क्षायिकं सम्यक्त्वं, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि। एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपश-
मिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ? । कतरत् तन्नाम औदयिकोपशमिक क्षायिक-

समिय-पारिणामियनिष्फण्णे ?) औपशमिक क्षायिक, क्षायोपशमिक
और पारिणामिक इन चार भावो के संयोग से निष्पन्न ५वां भंग है।
(कयरे से नामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे) हे भदन्त !
औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन चार भंगो के
संयोग से जो सान्निपातिक भाव रूप भंग निष्पन्न होता है वह कैसा है ?

उत्तर—(उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे) औदयिक
औपशमिक-क्षायिक और क्षायोपशमिक इन चार भावों के संयोग से
जो सान्निपातिक भाव निष्पन्न होता है वह ऐसा है—(उदइएत्ति मणुस्से
उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं) यहां मनुष्य
गति यह औदयिक भावरूप है, उपशांत कषाय ये औपशमिक भावरूप
है, क्षायिक सम्यक्त्व यह क्षायिक भावरूप है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक
भाव रूप हैं। (एस णं से णामे उदइयउवसमिय, खइयखओवसमिय-
निष्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिकौपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक
नाम का इन भावों से निष्पन्न सान्निपातिक भाव का प्रथम भंग है।

निष्फण्णे) औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार
भावोना संयोगथी अनतो सान्निपातिक भाव.

प्रश्न—(कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे?) हे
भगवन् ! औदयिक, औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ चार भावोना
संयोगथी अनता सान्निपातिक भाव इप पडेला लंगनुं स्वइप डेवुं छे ?

उत्तर—(उदइय उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे) औदयिक, औप-
शमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ चार भावोना संयोगथी ने सान्नि-
पातिक भाव इप लंग अने छे ते आ प्रकारने छे—(उदइएत्ति मणुस्से, उवसंता
कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं) आ सान्निपातिक भावमां मनुष्य
गति औदयिक भाव इप छे, उपशान्त कषाय औपशमिक भाव इप छे, क्षायिक
सम्यक्त्व क्षायिक भाव इप छे अने इन्द्रियो क्षायोपशमिक भावइप छे.
(एस णं से णामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियनिष्फण्णे) आ प्रकारने
ते औदयिक, औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ चार भावोना
संयोगथी अनतो सान्निपातिक भाव छे.

પારિણામિકનિષ્પન્નમ્? ઔદયિકૌપશમિક્ષાયિકપારિણામિકનિષ્પન્નમ્—ઔદયિક-
મિતિ માનુષ્યં, ઉપશાન્તાઃ કષાયાઃ, ક્ષાયિકં સમ્યક્ત્વં, પારિણામિકો જીવઃ।
એતત્ સ્વલુ તન્નામ ઔદયિકૌપશમિક્ષાયિકપારિણામિકનિષ્પન્નમ્૨, કતસ્ત
તન્નામ ઔદયિકૌપશમિક્ષાયોપશમિકપારિણામિકનિષ્પન્નમ્?, ઔદયિકૌપશ-

(કયરે સે નામે ઉદહયુઽવસમિયસ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે?) હે મદન્ત !
ઔદયિક ઔપશમિક, ક્ષાયિક ઓર પારિણામિક ઇન ચાર ભાવોં કે
સંયોગ સે નિષ્પન્ન જો સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ ભંગ હૈ વહ કૈસા હૈ ?

ઉત્તર—(ઉદહયુઽવસમિયસ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે) ઔદયિક
ઔપશમિક, ક્ષાયિક, એવં પારિણામિક ઇન ચાર ભાવોં કે-સંયોગ સે
નિષ્પન્ન હુઆ ભંગ એસા હૈ—(ઉદહયુઽવસમિયસ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે)
સમ્મત્તં પારિણામિય જીવે) યહાં મનુષ્યગતિ યહ ઔદયિક હૈ, ઉપશાન્ત
હુઈ કષાયે ઔપશમિક ભાવરૂપ હૈ, ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ ક્ષાયિકરૂપ હૈ ।
તથા જીવત્વ યહ પારિણામિક રૂપ હૈ । (એમણં સે નામે ઉદહયુઽવસ-
મિય સ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે) ઇસ પ્રકાર ઔદયિક, ઔપશમિક,
ક્ષાયિક ઓર પારિણામિક ઇન ચાર ભંગોં સે નિષ્પન્ન હુઆ ઇસ નામ
કા યહ—દ્વિતીય ભંગ હૈ । (કયરે સે નામે ઉદહયુઽવસમિયસ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે ?) હે મદન્ત ! ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયો-

પ્રશ્ન—(કયરે સે નામે ઉદહયુઽવસમિયસ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે) હે
લગવન્ । ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના
સંયોગથી નિષ્પન્ન થતો જે સાન્નિપાતિક ભાવરૂપ બીજો ભંગ છે તેનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(ઉદહયુઽવસમિયસ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે) ઔદયિક, ઔપશ-
મિક ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતા
સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—(ઉદહયુઽવસમિયસ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે)
સમ્મત્તં, પારિણામિય જીવે) આ સાન્નિપાતિક ભાવમાં મનુષ્યગતિ ઔદ-
યિક ભાવ રૂપ છે, ઉપશાન્ત કષાયો ઔપશમિક ભાવ રૂપ છે, ક્ષાયિક
સમ્યક્ત્વ ક્ષાયિક ભાવ રૂપ છે અને સ્વલુ પારિણામિક ભાવ રૂપ છે,
(એમણં સે નામે ઉદહયુઽવસમિયસ્વહયપારિણામિયનિષ્કણ્ણે) આ પ્રકારનું ઔદયિક
ઔપશમિક ક્ષાયિક અને પારિણામિક આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનેલા
સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ બીજા ભંગનું સ્વરૂપ છે.

मिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्-औदयिकमितिमानुष्यम्, उपशान्ताः कषायाः, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणामिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम औदयिकोपशमिक क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् । कतरत् तन्नाम औदयिक क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ? औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिक-

पशमिक, और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ भंग कैसा है ?

उत्तर-(उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न तीसरा भंग ऐसा है-(उदएत्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) मनुष्य गति यह औदयिक भावरूप है, उपशांत हुई कषाये औपशमिक भाव हैं, इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव रूप है और जीवत्व यह पारिणामिक भाव रूप है । (एस णं से णामे उदइयउवसमियखओवसमिय पारिणामियनिष्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिक, औपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नामका तृतीय भंग है । (कयरे से णामे उदइय खइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे भदन्त ! औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न भंग कैसा है ?

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) हे भगवन् ! औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक अने पारिष्वाभिक, आ चार भावोना संयोगथी अनता सान्निपातिक भाव इय त्रीण भंगनुं स्वइय केवुं छे ?

उत्तर-(उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) औदयिक, औपशमिक क्षायोपशमिक अने पारिष्वाभिक, आ चार भावोना संयोगथी अनतो त्रीणे सान्निपातिक भाव आ प्रकारेणो छे-(उदइएत्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) त्रीण प्रकारेणो सान्निपातिक भावमां मनुष्यगति औदयिक भाव इय छे, उपशान्त कषाये औपशमिक भाव इय छे, इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव इय छे अने जीवत्व पारिष्वाभिक भाव इय छे. (एसणं से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) आ प्रकारेणो आ “ औदयिकोपशमिक क्षायोपशमिक पारिष्वाभिक ” नामेणो त्रीणे भंग छे.

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?) हे भगवन् ! औदयिक, क्षायिक क्षायोपशमिक अने पारिष्वाभिक, आ चार भावोना संयोगथी अनता यथा प्रकारेणो सान्निपातिक भावनुं स्वइय केवुं छे.

પારિણામિકનિષ્પન્નમ્-ઔદયિકમિતિ માનુષ્યં, ક્ષાયિકં સમ્યક્ત્વં, ક્ષાયોપશમિકાનિ ઇન્દ્રિયાણિ, પારિણામિકો જીવઃ । एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायिक-
ક્ષાયોપશમિકપારિણામિકનિષ્પન્નમ્ । कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायिकक्षायो-
પશમિકનિષ્પન્નમ્ ?, ઔપશમિકક્ષાયિકક્ષાયોપશમિકપારિણામિકનિષ્પન્નમ્-
उपशान्ताः कषायाः, ક્ષાયિકં સમ્યક્ત્વં, ક્ષાયોપશમિકાનિ ઇન્દ્રિયાણિ, પારિણા-

(ઉદહય સ્વહયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) ઔદયિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક-ઔર પારિણામિક હન ચાર ભાવો કે સંયોગ સે નિષ્પન્ન-હુઆ ભંગ એસા હૈ-(ઉદહરત્તિ મણુસ્સે સ્વહયં સમ્મત્તં, સ્વઓવસમિયાહં ઇન્દિયાહં, પારિણામિએ જીવે) મનુષ્યગતિ યહ ઔદયિક ભાવરૂપ હૈ, ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ યહ ક્ષાયિક ભાવરૂપ હૈ, ઇન્દ્રિયાં વે ક્ષાયોપશમિક ભાવરૂપ હૈ ઔર જીવત્વ યહ પારિણામિક ભાવરૂપ હૈ । (એસ ણ સે નામે ઉદહય સ્વહયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) હસ પ્રકાર યહ ઔદયિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક ઔર પારિણામિક હનચાર ભાવો સે નિષ્પન્ન હુઆ હસ નામકા ચતુર્થ ભંગ હૈ । (કયરે સે નામે ઉવસમિય સ્વહયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે ?) હૈ અદન્ત ! ઔપશમિક ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક ઔર પારિણામિક હન ચાર ભાવો કે સંયોગ સે નિષ્પન્ન હુઆ પાંચવાં ભંગ કેસા-હૈ ?

उत्तर—(उवसमियस्वहयस्वओवसमियपारिणामियनिष्कण्णे)

ઉત્તર-(ઉદહયસ્વહયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) ઔદયિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતા સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે, એટલે કે ચોથા ભંગ આ પ્રકારનો છે-(ઉદહરત્તિ મણુસ્સે, સ્વહયં સમ્મત્તં, સ્વઓવસમિયાહં ઇન્દિયાહં, પારિણામિએ જીવે) આ ચોથા પ્રકારના સાન્નિપાતિક ભાવમાં મનુષ્યગતિ ઔદયિક ભાવરૂપ છે, ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ ક્ષાયિક ભાવરૂપ છે, ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવરૂપ છે અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવરૂપ છે. (એસ ણ સે નામે ઉદહયસ્વહયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે) આ પ્રકારનું ઔદયિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતા “ ઔદયિક ક્ષાયોપશમિક પારિણામિક ” નામના ચોથા ભંગનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(કયરે સે નામે ઉવસમિયસ્વહયસ્વઓવસમિયપારિણામિયનિષ્કળ્ણે ?) હૈ અગવન્ ! ઔપશમિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતા પાંચમાં પ્રકારનો સાન્નિપાતિક ભાવ કેવો છે ?

मिको जीवः । एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक-
निष्पन्नम् ५ ॥ सू० १६० ॥

टीका—‘तत्थ णं जे ते पंच’ इत्यादि—

पञ्चसु भावेषु पञ्चमं भावं परिहाय अविशिष्टमात्रनिष्पन्नत्वेन प्रथमो भङ्गो
बोध्यः । चतुर्थं परिहाय शेषनिष्पन्नत्वेन द्वितीयो भङ्गः । तृतीयं परिहाय शेष-

औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों
के संयोग से निष्पन्न हुआ भंग ऐसा है—(उवसंता कसाया, खइयं सम्म-
त्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) उपशान्त हुई कषायों
औपशमिकभाव है, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव रूप है, इन्द्रियां
क्षायोपशमिक भावरूप है, और जीवत्व यह पारिणामिक भाव रूप है
(एस णं से नामे उवसमिय खइयखओवसमियपारिणामियनिष्कण्णे)
इस प्रकार यह औपशमिकक्षायिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन
चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नामका पांचवां भंग है ।

भावार्थ—इस सूत्रद्वारा सूत्रकारने चार २ भावों के संयोग
से ५ भंग निष्पन्न हुए हैं वे कहे हैं । इनमें पांचवां भाव
जो पारिणामिक भाव है उसे छोड़कर बाकी के चार भावों के
संयोग से प्रथम भंग निष्पन्न हुआ है । चौथा भाव जो क्षायोपशमिक
भाव है उसे छोड़कर शेष चार भावों के संयोग से द्वितीय भंग निष्प-

उत्तर—(उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिष्कण्णे) औपशमिक,
क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार लावेना संयोगथी अनतो
पांचमे लंग आ प्रकारने छे—(उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं
इंदियाइं’ पारिणामिए जीवे) आ सान्निपातिक लवमां उपशान्त कषायो
औपशमिक लाव इप छे, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक लाव इप छे, इन्द्रियो
क्षायोपशमिक लाव इप छे अने जीवत्व पारिणामिक लाव इप छे. (एसणं से
नामे उवसमियखइयखओवसमिय, पारिणामियनिष्कण्णे) आ प्रकारने
औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार लावेना
संयोगथी अनतो “ औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक ” नामने
पांचमे लंग समजये.

लावार्थ—चार चार लावेना संयोगथी अनता पांच लंगोतुं सूत्रकारे
आ सूत्र द्वारा निरूपण कयुं छे. पडेवे लंग आ प्रकारे अन्थे छे—पांच
लावेमांता छेइला पारिणामिक लाव सिवायना संयोगथी पडेवे लंग अन्थे छे.

निष्पन्नत्वेन तृतीयो भङ्गः । द्वितीयं परिहाय शेषनिष्पन्नत्वेन चतुर्थो भङ्गः । प्रथमं परिहाय अवशिष्टभावचतुष्टयनिष्पन्नत्वेन पञ्चमश्च भङ्गो बोध्यः । एतान् पञ्च भङ्गान् विवरीतुमाह—‘कयरे से णामे’ इत्यादि । एषां व्याख्या पूर्ववद् बोध्या । एषु पञ्चसु भङ्गेषु तृतीयो भङ्गो नारकादिगतिचतुष्टये भवति । तथाहि— औदयिकी नारकाद्यन्यतमा गतिः, नारकतिर्यग्देवगतिषु प्रथमसम्यक्त्वलाभकाले एव उपशमभावो भवति, मनुष्यगतौ तु तत्रोपशमश्रेण्यां चौपशमिकं सम्यक्त्वम्, क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणी, पारिणामिकं जीवत्वम्, इत्येवमयं भङ्गकः सर्वांशु

न्न हुआ है । तृतीय भाव जो क्षायिक भाव है उसे छोड़कर बाकी के चार भावों के संयोग से तृतीय भंग निष्पन्न हुआ है । द्वितीय जो औपशमिक भाव है उसे छोड़कर शेष भावों के संयोग से चतुर्थ भंग निष्पन्न हुआ है । प्रथम भाव जो औदयिक भाव है उसे छोड़कर शेष भावों के संयोग से पंचम भंग निष्पन्न हुआ है । इन पांच भंगों में से जो औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक इन चार भावोंके संयोग से निष्पन्न तृतीयभंग है वह नारक आदि चारगतियों में होता है । वहाँ विवक्षितगति औदयिकी है । इनमें प्रथम सम्यक्त्व के लाभकाल में ही उपशमभाव होता है । मनुष्यगति में उपशमश्रेणी में औपशमिक सम्यक्त्व होता है । इंद्रियां यहां क्षायोपशमिक भावरूप हैं । जीवत्व पारिणामिक भाव है इस प्रकार यह तृतीयभंग सर्व गतियों

षीले लंग-क्षायोपशमिक लाव नामना येथा लावने छोडीने भाडीना थार लावेना संयोगथी षीले लंग भन्थे छे.

त्रीले लंग-क्षायिक लाव नामना त्रीले लाव सिवायना थारे लावेना संयोगथी त्रीले लंग भन्थे छे.

येथे लंग-औपशमिक नामना षीले लावने छोडी छेने भाडीना थार लावेना संयोगथी येथे लंग भन्थे छे.

पांथमे लंग-औदयिक नामना पडेला लावने छोडी छेने भाडीना थार लावेना संयोगथी पांथमे लंग भन्थे छे.

औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ थार लावेना संयोगथी ने त्रीले लंग भने छे-ने त्रीले प्रकारने सान्निपातिक लाव निष्पन्न थाय छे तेने नारक आदि थारे गतिओमां सहभाव डाय छे त्यां नारक आदि गति औदयिक लाव रूप छे. आ गतिओमां प्रथम सम्यक्त्वना प्राप्ति काणे न उपशम लावनेो सहभाव डाय छे, मनुष्य गतिमां तो उपशम श्रेणीमां औपशमिक सम्यक्त्वनेो सहभाव डाय छे छेन्द्रियो क्षायोप-

गतिप्रपलभ्यते । यदिह सूत्रे—‘उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया’ इत्युक्तम्, तन्मनुष्यगत्यपेक्षयोक्तम् । उपशमश्रेण्यां मनुष्यत्वोदयः कषायोपशमश्च भवतः । मूलोक्तं तूपलक्षणं बोध्यम् । एवम् औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक-निष्पन्नश्चतुर्थभङ्गोऽपि नारकादिगतिचतुष्टयविषयो बोध्यः । तृतीयभङ्गवदेवात्रापि भावना कर्तव्या । विशेषस्त्वयमेव—तृतीयभङ्गे यदुपशमसम्यक्त्वमुक्तं तत्स्थानेत्विह क्षायिकसम्यक्त्वं वाच्यम् । क्षायिकसम्यक्त्वं तु सर्वास्वपि गतिषु जायते । नारकतिर्यग्देवगतिषु पूर्वप्रतिपन्नस्य प्रतिपद्यमानस्य चापि क्षायिकसम्यक्त्वं

में पाया जाता है । जो इस सूत्रमें “उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया” ऐसा पाठ कहा है वह मनुष्यगति की अपेक्षा से कहा है । उपशमश्रेणी में मनुष्यत्व का उदय और कषायों का उपशम होता है । मूलोक्तपाठ उपलक्षण है ऐसा जानना चाहिये । इसीप्रकार औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से चौथा भंग बना है, वह भी नारक आदि चारगतियों में होता है ऐसा जानना चाहिये । तृतीय भंग की तरह ही यहां पर भी कथन समझना चाहिये । परन्तु इसमें विशेषता इतनी ही है कि तृतीय भंग में उपशम सम्यक्त्व कहा है सो उसके स्थान में यहां क्षायिक सम्यक्त्व समझना चाहिये । क्षायिकसम्यक्त्व चारों गतियों में होता है । नारक, तिर्यक् और देव इन गतियों में पूर्व प्रतिपन्न जीव को ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है । और मनुष्यगति

शमिक भाव रूप अने श्रुत्व पारिणामिक भाव रूप होय छे. आ प्रकारे त्रीने लंग भधी गतिओमां शक्य अने छे. आ सूत्रमां ‘ उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया ’ आ प्रकारेने जे पाठ आपवामां आये छे ते मनुष्य गतिनी अपेक्षाये आपवामां आये छे. उपशम श्रेणीमां मनुष्यत्वने उदय अने कषायेने उपशम होय छे. मूलोक्त पाठ उपलक्षण छे जेपुं समजपुं जेधये.

जेज प्रमाणे औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार भावोना संयोगथी जे जेथे लंग अने छे, तेने पण नारक आदि चारे गतिओमां संलव होय छे, जेभ समजपुं त्रीन लंगना जेपुं ज कथन अही पण समजपुं जेधये, परन्तु त्रीन लंगमां जे उपशम सम्यक्त्व कहुं छे तेने जेहे अही क्षायिक सम्यक्त्व समजपुं जेधये चारे गतिओमां क्षायिक सम्यक्त्वने सहलाव संलवीं शके छे. नारक, तिर्यक अने देव, आ त्रय गतिओमां पूर्वप्रतिपन्न श्रुतमां ज क्षायिक सम्यक्त्व होय छे. परन्तु मनुष्यगतिमां तो पूर्वप्रतिपन्नमां अने प्रतिपद्यमानमां क्षायिक

मन्वति । इत्थं चात्र तृतीयचतुर्थ भङ्गौ एव वस्तुगतत्वेन संभवतः । इतरे भङ्गारतु
प्रदर्शनमात्रम् । तद्रूपेण तेषां वस्तुन्यसंभवादिति ॥सू० १६०॥

अथ पञ्चकसंयोगं निरूपयति—

मूलम्—तत्थं णं जे से एक्के पंचगसंजोए से णं इमे—अत्थि-
नामे उदइय उवसमिय खइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे ?
कथरे से नामे उदइय उवसमिय खइयखओवसमियपारिणामिय-
निष्फण्णे ? उदइय उवसमिय खइयखओवसमियपारिणामिय-
निष्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं
खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जावे । एस णं से
णामे जाव पारिणामियनिष्फण्णे । से तं सन्निवाइए । से तं
छपणामे ॥सू० १६१॥

छाया—तत्र खलु यः स एकः पञ्चकसंयोगः स खलु अयम्—अस्ति नाम
औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ? । कतरत् तन्नामं

में पूर्व प्रतिपन्न को और प्रतिपद्यमान को भी होता है । इसप्रकार
तृतीय और चतुर्थ ये दो भंग ही वास्तविक रूप में वस्तुगत संभवित
होते हैं । इतर शेष-तीन भंग नहीं पाये जाते हैं ॥सू० १६०॥

अब सूत्रकार पांच भावों के संयोग से जो-भंग निष्पन्न होता है
उसकी प्ररूपणा करते हैं—“तत्थं णं जे से एक्के” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(तत्थं णं जे से एक्के पंचक संयोगे से णं इमे) पांचों भावों
के संयोग से जो एक भंग उत्पन्न होता है वह इस प्रकार से है—

सम्यक्त्व डोय छे. आ प्रकारे अहाँ त्रीजे अने चोथे, आ जे लंग न
वास्तविक रूपे वस्तुगत संभवित डोय छे आकीना त्रण लगे वास्तविक रूपे
ते संभवित न नथी छतां प्ररूपणा करवाना डेतुथी न अही ते लगेनुं
निरूपण करवामां आओयुं छे. ॥सू० १६०॥

पांच भावोना संयोगथी जे सान्निपातिक भाव निष्पन्न थाय छे, तेनी
सूत्रकार छे प्ररूपणा करे छे—“तत्थं णं जे से एक्के” इत्यादि—

शब्दार्थ—(तत्थं णं जे से एक्के पंचगसंयोगे से णं इमे) पांच भावोना
संयोगथी जे अके लंग गने छे ते आ प्रभाणे छे—(अत्थिगामे उदइयउवस-

औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्?, औदयिकौपशमिक-
क्षायिक क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् औदयिकमितिमानुष्यम्, उपशान्ताः
कषायाः, क्षायिकं सम्यक्त्वं, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणामिको जिवः ।

(अथि णामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे?)
औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन
पांचों भावों के संयोग से निष्पन्न-हुआ औदयिकौपशमिक क्षायिक
क्षायोपशमिक पारिणामिक इस नामका सान्निपातिक भाव है । (कयरे
से नामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे?) हे
भदन्त ! औदयिकौपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नाम का
जो पांचों भावों के संयोग से निष्पन्न सान्निपातिक-भाव वह कैसा है?

उत्तर-(उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे)
औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणा-
मिक इन पांचों भावों के संयोग से जो सान्निपातिक भाव निष्पन्न
होता है वह ऐसा है-(उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं
खओव समियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) यहां इस सान्निपातिक भाव
में मनुष्य गति यह औदयिकी है, उपशमित कषाये औपशमिक भाव है
क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव है इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव है जीवत्व

मिय खइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक,
क्षायोपशमिक अने पारिष्ठाभिक, आ पांचे लावेना संयोगथी अनतो
“ औदयिकौपशमिक-क्षायिक क्षायोपशमिक ” नामने सान्निपातिक लाव, आ
अेक जे लंग अने छे.

प्रश्न-(कयरे से नामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे?)
हे भगवन् ! औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिष्ठाभिक,
आ पांचे लावेना संयोगथी निष्पन्न थतो सान्निपातिक लाव केवे छे ?

उत्तर-(उदइय उवसमियखओवसमियपारिणामियनिष्फण्णे) औदयिक,
औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिष्ठाभिक, आ पांचे लावेना
संयोगथी निष्पन्न थतो सान्निपातिक लाव आ प्रकारने छे-(उदइएत्ति
मणस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए
जीवे) आ सान्निपातिक लावमां मनुष्यगति औदयिक लाव इप छे, उपशान्त
कषाये औपशमिक लाव इप छे, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक लाव इप छे,
इन्द्रियो क्षायोपशमिक लाव इप छे अने जीवत्व पारिष्ठाभिक लाव इप छे.

एष खलु तन्नाम यावत् पारिणामिकनिष्पन्नम् । स एष सान्निपातिकः ।
तदेतत् षण्णाम ॥सू० १६१॥

टीका—‘तत्थ णं’ इत्यादि—

व्याख्या सुगमा । अयं पञ्चक संयोगस्तस्यैव संभवति यः क्षायिकसम्यग्दृष्टिः सन् उपशमश्रेणि प्रतिपद्यते । अन्यस्य तु न संभवति । अन्यत्र हि समुदितभावपञ्चकस्यास्यासंभवादिति । अत्रेदं बोध्यम्—एकः क्षायिकपारिणामिकभावद्वयनिष्पन्नरूपो नवमो भङ्गो द्विकसंयोगे, औदयिकक्षायिकपारिणामिकभावत्रयनिष्पन्नरूपः पञ्चमः, औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिक भावत्रयनिष्पन्न-

यह पारिणामिक भाव है । (एसणं से णामे जाव पारिणामियनिष्फण्णे, से तं सन्निवाइए से तं छण्णामे) इस प्रकार यह पांच भावों के संयोग से निष्पन्न हुए इस नाम के सान्निपातिक भाव का स्वरूप है । यहां तक औदयिक भाव से लेकर पारिणामिक भाव तक के पांच भावों के संयोग-से जीतने सान्निपातिक भाव निष्पन्न होते हैं उनका प्रतिपादन किया-इस प्रकार यह छह प्रकार के नामका स्वरूप कथन समाप्त हुआ ।-

भावार्थ—सूत्रकार ने इस सूत्रद्वारा पांचो भावों के संयोग से निष्पन्न हुए सान्निपातिक भाव का कथन किया है । यह पंचक संयोग रूप सान्निपातिक भाव उसी को संभवित होता है, जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर उपशम श्रेणी पर चढता है । अन्यजीव को नहीं क्योंकि; उस को इस समुच्चिन भाव पंचकरूप सान्निपातिक भावका अभाव होता है । यहां पर इस प्रकार से जानना चाहिये—द्विक संयोग में क्षायिक और

(एस णं से णामे जाव परिणामियनिष्फण्णे, से तं सन्निवाइए, से तं छण्णामे) आ प्रभाण्णे आ पांचे लावोना संयोगथी निष्पन्न थयेत्त आ नामनुं सान्निपा-
तिक स्वरूप छे अही' सुधी औदयिक लावथी मांडीने पारिणामिक भाव सुधीना पांच लावोना संयोगथी नेटला सान्निपातिक लावो निष्पन्न थाय छे. तेमनुं प्रतिपादन कथुं छे. आ प्रभाण्णे आ छ प्रकारना नामनुं स्वरूप-
कथन पुरं थयुं छे.

लावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्र वडे पांचे लावोना संयोगथी निष्पन्न थयेत्त सान्निपातिक लावनुं कथन कथुं छे. आ पंचक संयोग रूप सान्निपातिक भाव तेमने न संभवे छे के ने क्षायिक सम्यग्दृष्टि थधने उपशम श्रेणी पर चढे छे. भीलओने नडि कारणु के तेमने आ समुदितभाव पंचक रूप सान्नि-
पातिक लावोना अलाव डोय छे अही' ओम समणु' नेधओ के द्विक-
संयोगमां क्षायिक अने पारिणामिक आ ने लावोना संयोगथी निष्पन्न

षष्ठश्चेति द्वौ भङ्गौ त्रिकसंयोगे, औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिकपारिणामिक भाव चतुष्टयनिष्पन्नरूपरत्नतीयः, औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावचतुष्टय निष्पन्नरूपश्चतुर्थश्चेति द्वौ भङ्गौ चतुष्कसंयोगे, भावपञ्चकरूप एको भङ्गः पञ्चक-संयोगे। इत्येवमेते षड्भङ्गाः सम्भाव्यत्वेन बोध्याः। इतोऽपरेर्विंशतिर्भङ्गास्तु संभाव्यत्वरहिता अपि योगप्रदर्शनार्थमेव प्रोक्ताः। षण्णामसूत्रे ये द्विकसंयोग-

पारिणामिक, इन दो भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ जो इस नाम का नौवां भंग है वह, तथा त्रिक संयोग में औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक, इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नाम का पांचवां-भंग और औदयिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक, इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नामका छठा भंग, तथा चतुष्क संयोग में औदयिक, औपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नाम का तृतीय भंग, और औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नाम का चौथा भंग तथा पांचो भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ एक इस नाम का भंग ये छह भंग जीवों में वास्तविकरूप से पाये जाते हैं और इनसे अतिरिक्त जो २० भंग हैं; वे वास्तविक रूप से-नहीं पाये जाते हैं; ऐसा, जानना चाहिये। २० भंग जब कि भव्यत्व रहित है तो फिर ये क्यों कहे गये हैं ? तो इस

थयेल ने आ नवमे लंग छे ते तेमज त्रिकसंयोगमां औदयिक क्षायिक, अने पारिणामिक आ त्रिषु लावोना संयोगथी निष्पन्न थयेल आ नामने पांचमे लंग अने औदयिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक आ त्रिषु लावोना संयोगथी निष्पन्न थयेल छठे लंग तेमज चतुष्क संयोगमां औद-यिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक आ चार लावोना संयो-गथी निष्पन्न थयेल आ नामने त्रीजे लंग अने औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक आ चार लावोना संयोगथी निष्पन्न थयेल आ नामे चोथे लंग तथा पांचे लावोना संयोगथी निष्पन्न थयेल ओक आ नामे लंग अे छ लंगो एवोमां वास्तविक इपे भगे छे अने अेमना सिवाय ने २० लंगो छे. ते वास्तविक इपे प्राप्त थता नथी आअ समजवु ओछेअे २० लंगो न्यारे लव्यत्व रहित छे तो पछी अेमनुं कथन शा भाटे करवामां आंशुं छे ? आ शंकांनुं निराकरण आ प्रभाणु छे के आ २०-

त्रिकसंयोगचतुष्कसंयोगपञ्चकसंयोगलक्षणा भङ्गास्ते किल सिद्धकेवलित्तिचतुष्ट-
योपन्नान्तमोहमनुष्यविषया विज्ञेयाः। इयमत्र भावना-द्विकसंयोगभङ्गेष्वेकः क्षायि-
कपारिणामिकभावद्वयनिष्पन्नरूपो नवमो भङ्गः सिद्धेषु भवति। त्रिकसंयोगभङ्गेषु
औदयिकक्षायिकपारिणामिकभावत्रयनिष्पन्नरूपः पञ्चमो भङ्गः केवलित्तिषु, औद-
यिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावत्रयनिष्पन्नरूपः षष्ठो भङ्गो गतिचतुष्टये
भवति। चतुष्कसंयोगभङ्गेषु-औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावचतु-

शंका का समाधान यह है कि-ये २०वीं सभंग योग प्रदर्शन के निमित्त
ही कहे गये हैं अर्थात् इन पांच भावों के योग से किस २ प्रकार से
कितने भंग बन सकते हैं ? यह प्रकट करने के अभिप्राय से कहे गये
हैं। षण्णाभ सूत्र में जो द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग, चतुष्कसंयोग और
पञ्चकसंयोग रूप भंग हैं, वे सिद्धों में, केवलियों में, चारों गतियों में,
और उपशांत मोहमनुष्यों में पाये जाते हैं; ऐसा जानना चाहिये-अर्थात्-
द्विकसंयोगवाले भंगों में जो क्षायिक पारिणामिक भावद्वय
से निष्पन्न नौवां भंग है, यह सिद्धों में पाया जाता है। त्रिकसंयोगवाले
भंगों में जो औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक, इन तीन भावों के
संयोग से निष्पन्न हुआ पंचम भंग है, वह केवलियों में पाया जाता है।
औदयिक क्षायोपशमिक, और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग
से जन्म लठा भंग चार गतियों-में पाया जाता है। चतुष्क संयोगवाले
भंगों में औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक-इन

लंगो योग प्रदर्शनना निमित्तथी कडेवामां आव्या छे. ओटवे के आ पांथ
लावेना थोगथी केवी रीते. केटला लंगो थछ शके छे? आ स्पष्ट करवाना
उदेशथी न कडेवामां आव्यां छे. 'षण्णाभ' सूत्रमां न द्विकसंयोग, त्रिक-
संयोग, चतुष्क संयोग अने पञ्चक संयोग इय लंगो छे ते सिद्धोमां
केवलियोमां, चारे गतियोमां अने उपशांत मोहवाणा भाषुओमां भजे छे.
आम समञ्जसुं लेछये ओटवे के द्विकसंयोगवाणा लंगोमां न क्षायिक पारि-
णामिक भावद्वयथी निष्पन्न नवमो लंग छे. ते सिद्धोमां प्राप्त थाय छे.
त्रिकसंयोगवाणा लंगोमां न औदयिक, क्षायिक अने पारिणामिक आ त्रय
लावेना संयोगथी निष्पन्न थयेल पञ्चम लंग छे, ते केवलियोमां प्राप्त
थाय छे. औदयिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक आ त्रय लावेना संयो-
गथी निष्पन्न छठे लंग चारे गतियोमां प्राप्त थाय छे चतुष्क संयोगवाणा
लंगोमां औदयिक औपशमिक-क्षायोपशमिक अने पारिणामिक आ चार
लावेना संयोगथी निष्पन्न थयेल त्रीने लंग तेमञ्च औदयिक, क्षायिक,

दृयनिष्पन्नरूपस्त्वृतीयः, औदयिकक्षायिकृक्षायोपशमिकपारिणामिकभावचतुष्टय-
निष्पन्नरूपश्चतुर्थश्चेत्येतावपि द्वौ भङ्गौ गतिचतुष्टयेऽपि लभ्येते । भावपञ्चकनिष्पन्न-
रूप एको भङ्ग उपशान्तमोहमनुष्येष्वेव लभ्यते । विस्तरतस्तु स्वस्वभङ्गस्वरूपे
विलोकनीयम् । प्रकृतमुपसंहरन्नाह-स एष सान्निपातिक इति । इत्थमुक्तः सान्नि-
पातिको भावः । उक्ते तस्मिंश्चोक्ताः षडपि भावाः । ते च तद्वाचकैर्नामभिर्विना
प्ररूपयितुं न शक्यन्ते इति तद्वाचकान्यौदयिकादीनि नामान्यप्युक्तानि । एतैश्च षडभि-
रपि धर्मास्तिकायादेः समस्तस्यापि वस्तुनो ग्रहणात् इदं पट्ट प्रकारकं सत् समस्तस्या-
पि वस्तुनो नाम षण्णामेत्युच्यते । एतदेवोपसंहरन्नाह-तदेतत् षण्णामेति ॥ सू. १६१ ॥

चारभावों के संयोग से निष्पन्न हुआ तृतीयभंग तथा औदयिकृक्षायिक,
क्षायोपशमिक एवं-पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न
हुआ चौथा भंग चारों गतियों में पाये जाते हैं, तथा पाँचों भावों के
संयोग से-निष्पन्न हुआ चौथाभंग ये दोनों भी भंग चारों गतियों में
पाये जाते हैं तथा पाँचों भावों के संयोग से-निष्पन्न हुआ एकभंग उप-
शांतमोही मनुष्यों में ही पाया जाता है । विस्तर पूर्वक इनका कथन
अपने २ भंग-स्वरूप में देखलेना चाहिये । इसप्रकार सान्निपातिकभाव
का कथन है-इस भाव के कथित होने पर अब छहों भाव कथित हो
चुके । इन भावोंका कथन उनके वाचक नामों के बिना हो नहीं सकता
है इसलिये उन भावों के वाचक औदयिक आदि नामों को-भी यहाँ
कहा गया है । इन छह नामों से भी-धर्मास्तिकायादिक समस्त
वस्तुओं का ग्रहण हो जाना है, इसलिये ये समस्त वस्तु के नाम छह
प्रकार के होने से छह नाम इस प्रकार से कहलाये हैं । ॥सू० १६१॥

क्षायोपशमिक अने पारिणामिक आ चार लावोना संयोगथी निष्पन्न थयेत
चोथो लंग आ अन्ने लंगे पणु आरे गतिओमां प्राप्त थाय छे, तेमन्
पांचे लावोना संयोगथी निष्पन्न थयेत अेक लंग उपशांत मोही माणुसोमां
न् प्राप्त थयेछे, आ विषे सविस्तर विवेचन पोतपोताना लंग-स्वरूपमां
नेछे लवुं नेछे आ प्रमाणे सान्निपातिक लावतुं कथन छे, आ लावने
कहा जाद छे छे लावो कथित थय गया, आ लावोतुं कथन तेमना
वाचकनामो वजर संलवे नहि अेटला माटे ते लावोना वाचक औदयिक
वगेरे नामोतुं पणु अडीं कथन थयुं छे, आ छे नामोथी पणु धर्मास्ति-
कायादिक समस्त वस्तुओतुं शडणु थय नय छे अेटला माटे आ अधी वस्तुओना
छे प्रकारना नामो डोवाथी छे नामो आ प्रमाणे कडेवामां आव्यां छे, ॥सू० १६१॥

अथ सप्तनाम प्ररूपयति—

मूळम्—से किं तं सत्त नामे ? सत्तनामे—सत्त सरा पणत्ता, तं जहा—सज्जे रिसहे गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे । धेवए चैव निस्साए सरा सत्त वियाहिया ॥१॥सू०१६२॥

छाया—अथ किं तत् सप्त नाम ? सप्त नाम—सप्त स्वराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—षड्जः ऋषभः गान्धारः मध्यमः पञ्चमः स्वरः । धैवतश्चैव निषादः, स्वराः सप्त व्याख्याताः ॥१॥सू०१६२॥

टीका—‘से किं तं सत्तनामे’ इत्यादि—

अथ किं तत् सप्तनाम ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—सप्तनाम=सप्तविधं नाम सप्तनाम, तच्च=सप्त=सप्त संख्यकाः स्वराः=ध्वनिविशेषाः प्रज्ञप्ताः । तानेव स्पष्टयति—तद्यथा—षड्ज ऋषभ इत्यादिना । तत्र—षड्जः—नासिकाकंठोरस्तालुजिह्वा-दन्तेति पटस्थानसंज्ञातत्वात् अयं स्वरः षड्ज इत्युच्यते । उक्तं च—

अथ सूत्रकार सप्त नाम की प्ररूपणा करते हैं—

“से किं तं सत्तनामे ?” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं सत्तनामे ?) हे भदन्त ! सप्तनाम क्या है ?

उत्तर—(सत्तनाम) सप्त प्रकार रूप-जो सप्तनाम है वह (सत्तसरा-पणत्ता) सातस्वर स्वरूपप्रज्ञप्त हुआ है । अर्थात् सातस्वर ही सप्तनाम हैं । (तं जहा) वे सात स्वर इस प्रकार से हैं—(सज्जे रिसहे गंधारे, मज्झिमे, पंचमे सरे । धेवए—चैव निस्साए सरा सत्त वियाहिया) षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद । नासिका, कंठ, उरस्थल, तालु, जिह्वा और पन्च इन छह स्थानों से उत्पन्न होने के कारण प्रथम स्वर ‘षड्ज’ कहलाता है । उक्त करके “नासां कण्ठ”

इसे सूत्रकार सप्तनामनी प्ररूपणा करे छे.

“से किं तं सत्तनामे ?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं सत्तनामे ?) हे भदन्त ! सप्तनाम सात नाम हैं । (तं जहा) वे सात स्वर इस प्रकार से हैं—(सज्जे रिसहे गंधारे, मज्झिमे, पंचमे सरे । धेवए चैव निस्साए सरा सत्त वियाहिया) षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद । नासिका, कंठ, उरस्थान, तालु, जिह्वा और पन्च इन छह स्थानों से उत्पन्न होने के कारण प्रथम स्वर

“ नासां कण्ठमुरस्तालं जिह्वांदन्तांश्च संश्रितः ।

षड्भिः संजायते यस्मात्तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ॥ इति ॥

तथा—ऋषभो—वृषभः, तद्वद् यो वर्तते स ऋषभः । उक्तंचास्य लक्षणम्—

“वायुः समुत्थितो नाभेः, कण्ठशीर्षसमाहृतः ।

नर्दन् वृषभवद् यस्तत्, तस्मात्, वृषभ उच्यते ॥ इति ॥

तथा—गान्धारः—गन्धम् इर्यति—प्राप्नोतीति गन्धारः, सएव गान्धारः गन्धप्रापकः
स्वरविशेषः । उक्तंच -

वायुः समुत्थितो नाभे—हृदिकण्ठे समाहृतः ।

नानागन्धवहः पुण्यो गान्धारस्तेन हेतुना ॥ इति ॥

इत्यादि श्लोक द्वारा यही बात कही गई है । ऋषभनाम बैल का है । बैल के स्वर के जैसे जो स्वर होता है, उसका नाम ऋषभ है । इसका लक्षण इस प्रकार कहा हुआ है—नाभि से जो वायु उठता है, वह कण्ठ और शीर्ष में जाकर टकराता है । इससे बैल के स्वर के जैसे आवाज होती है । इसलिये इस स्वर का नाम ऋषभ है । गंध को जो स्वर प्राप्त करता है उसका नाम 'गान्धार' स्वर है । इस का लक्षण इस प्रकार कहा गया है—जो वायु नाभि से उत्थित होकर हृदय और कंठ में टकराता है तथा नाना प्रकार के गंधों को वहन करता है इसलिये हृदय और कंठ से टकराने पर जो आवाज उत्पन्न होता है, उसका नाम 'गान्धार' है । शरीर के बीच में जो स्वर होता है, उसका नाम 'मध्यम' स्वर है । इसका लक्षण इस प्रकार से है—नाभिप्रदेश से उत्पन्न हुआ

षड् ज कडेवाय छे उक्तंच पछी “ नासा कण्ठ ” वगेरे श्लोक वडे अज वात स्पष्ट करवामां आवी छे. ऋषभ अणदनुं नाम छे. अणदना स्वरनी जेभ जे स्वर डोय छे तेनुं नाम ऋषभ छे. आनुं लक्षण आ प्रमाणे कडेवामां आण्युं छे—नालिस्थानथी जे वायु उपर उठे छे ते कंठ अने शीर्षमां जर्दने अथडाय अने तेथी अणदनी जेभ अवाज थाय छे. अटला माटे ज आ स्वरनुं नाम ऋषभ छे. गंधने जे स्वर प्राप्त करे छे तेनुं नाम ' गान्धार ' स्वर छे. आनुं लक्षण आ प्रमाणे स्पष्ट करवामां आण्युं छे. जे वायु नालिस्थानथी उपर उठीने हृदय अने कंठ स्थानमां अथडाय छे तेमज विविध जातना गंधानुं पहन करे छे अटला माटे हृदय अने कंठने अथडाय पछी जे स्वर उत्पन्न थाय छे तेनुं नाम गान्धार छे. शरीरनी वच्ये जे स्वर डोय छे तेनुं नाम मध्यम स्वर छे आनुं लक्षण आ प्रमाणे छे नालिस्थानथी उत्पन्न थयेल वायु

તથા-મધ્યમઃ-મધ્યે કાયસ્ય ભવો મધ્યમઃ । ઉક્તંચ-

વાયુઃ સમુત્થિતો નાભેરુરોહૃદિ સમાદતઃ ।

નાભિ પ્રાપ્તો મહાનાદો, મધ્યમત્વં સમશ્નુતે ॥

યદ્વા-“તદ્વદેવોત્થિતો વાયુ રુરઃ કણ્ઠસમાદતઃ । નાભિ પ્રાપ્તો મહાનાદો મધ્યસ્થ-
સ્તેન મધ્યમઃ ॥ ઇતિ ॥

તથા-પંચમઃ-પંચાનાં=પદ્મજાદિસ્વરાનુસારેણ પંચસંખ્યકાનાં સ્વરાણાં પૂરણઃ
સ્વરઃ પંચમઃ । યદ્વા-પંચસુ નાભ્યાદિ સ્થાનેષુ માતીતિ પંચમઃ । ઉક્તંચ-

“વાયુઃ સમુદ્ભવો નામે રુરો હૃત્કણ્ઠમૂર્ધસુ ।

વિચરન્ પંચમસ્થાનપ્રાપ્ત્યા પંચમ ઉચ્યતે” ॥ ઇતિ ॥

વાયુ ડરસ્થલ ઓર હૃદય મેં ટકરાતા હૈ ઓર ફિર નાભિસ્થાન મેં આકર વડી આવાજ ઉત્પન્ન કરતા હૈ-હસલિયે હસ સ્વર કા નામ મધ્યમ સ્વર હૈ । અથવા-ઉસી પ્રકાર સે ઉત્થિત હુમા વાયુ ડરસ્થલ ઓર કણ્ઠ મેં ટકરાતા હૈ ફિર નાભિસ્થલ મેં પહુંચ કર બડે મારી શબ્દ કો ઉત્પન્ન કરતા હૈ । હસ પ્રકાર મધ્યસ્થ હોને સે યહ સ્વર મધ્યમ કહા ગયા હૈ । પદ્મજ આદિ સ્વરોં કી યહ સ્વર પાંચવી સંખ્યા કી પૂર્નિ કરતા હૈ હસલિયે હસ સ્વર કા નામ ‘પંચમ’ સ્વર હુમા હૈ । અથવા નાભિ આદિ પાંચ સ્થાનોં મેં યહ સ્વર સમા જાતા હૈ હસલિયે યહ-સ્વર પંચમ સ્વર કહલાયા હૈ । હસ કા લક્ષણ હસ પ્રકાર સે કહા ગયા હૈ-નાભિસ્થાન સે જો વાયુ ઉત્પન્ન હોતા હૈ, વહ વક્ષસ્થલ હૃદય કંઠ ઓર મસ્તક મેં ટકરાતા હુમા પંચમસ્થાન મેં ઉત્પન્ન હોતા હૈ । હસલિયે હસ

ઉત્થળ અને હૃદયમાં અથડાય છે અને પછી નાભિસ્થાનમાં આવીને મોટો અવાજ ઉત્પન્ન કરે છે, એટલા માટે આ સ્વરનું નામ મધ્યમસ્વર છે. અથવા પહેલાની જેમ જ ઉપરની તરફ ઉઠતો વાયુ ઉત્થળ અને કંઠમાં અથડાય છે પછી નાભિસ્થાનમાં પહોંચીને બહુ મોટો અવાજ ઉત્પન્ન કરે છે. આ પ્રમાણે મધ્યસ્થ હોવા બદલ આ સ્વર મધ્યમ કહેવાય છે. પર જ વગેરે સ્વરોમાં આ સ્વર પાંચમી સંખ્યાને પૂરે છે એટલા માટે આ સ્વરનું નામ પંચમસ્વર છે. અથવા નભિ વગેરે પાંચ સ્થાનોમાં આ સ્વર સમાવિષ્ટ થઈ જાય છે. એથી આ સ્વર પંચમસ્વર કહેવાય છે આનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કહેવામાં આવ્યું છે નાભિસ્થાનમાંથી જે વાયુ ઉત્પન્ન થાય છે તે વક્ષસ્થળ હૃદય કંઠ અને મસ્તકમાં અથડાઈને પંચમસ્થાનમાં ઉત્પન્ન થાય છે. એટલા માટે આનું નામ આ પ્રમાણે રાખવામાં આવ્યું છે. જે સ્વર બાકી રહેલા

तथा-धैवतः-अभिसन्धयते=अनुसन्धयति शेषस्वरानिति धैवतः । यद्वा-धीमता-
मयं धैवतः । पक्षद्वयेऽपि पृषोदरादित्वात् साधुत्वम् । उक्तंचास्य लक्षणम्-

“अभिसन्धयते यस्मादेतान् पूर्वोदितान् स्वरात् ।

तस्मादस्य स्वरस्यापि, धैवतत्वं विधीयते” ॥ इति ।

तथा-निषादः-निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् स निषादः । उक्तं चापि--

“निषीदन्ति स्वराः यस्मिन्, -निषादस्तेन हेतुना ।

सर्वांश्चाभि भवत्येष, यदादित्योऽस्य दैवतम्” ॥ इति ।

तदेवं सप्त=सप्तसंख्यकाः स्वराः=जीवाजीवाश्रयाः स्वराः व्याख्याताः=विविधप्रका-
रेण तीर्थङ्करगणधरैः कथिताः । ननु कार्यं हि कारणात्तं, तच्च कारणं कार्यभूतानां
स्वराणां जिह्वादिकं, तानि च द्वीन्द्रियादि त्रसजीवानामसंख्येयत्वादसंख्येयानि
किमुताजीवनिसृतानां ततः कथं स्वराणां सप्तसंख्यकत्वं न विरुद्धते ? उच्यते-

का नाम ऐसा कहा गया है । जो स्वर शेष स्वरों का अनुसंधान करता
है वह 'धैवत' है । अथवा संगीत विशारदों का जो स्वर है वह 'धैवत'
है । इस का लक्षण इस प्रकार से कहा है-“अभिसंधयते” इत्यादि
इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट है । जिस में स्वर टहरता है उसका नाम
निषाद स्वर है । यह स्वर समस्त स्वरों का पराभव करता है
क्योंकि इसका देव आदित्य है । ये जो सात स्वर हैं वे जीव और
अजीव दोनों के आश्रय रहते हैं । ऐसा तीर्थंकर भगवंतोंने कहा है ।

शंका-कार्य कारणों के आधीन होता है । इन सात स्वरस्वरूप
कार्य के कारण जिह्वा आदिक हैं । ये जिह्वा आदि कारण द्वीन्द्रिय
आदि त्रस जीवों के असंख्यात होने से असंख्यात हैं । अजीव निसृत
स्वरों के विषय की तो बात ही क्या है । इसलिये स्वरों का सात
प्रकार का कहना ठीक नहीं है ।

स्वरानुं अनुसंधान करे छे ते “धैवत” छे. अथवा संगीत विशारदोंने के
स्वर छे. ते धैवत छे आनुं लक्षण आ प्रमाणे कडेवामां आण्युं छे.
“अभिसन्धयते इत्यादि” आ प्रदोक्तने अर्थ स्पष्ट न छे जेमां स्वर स्थिर
थाय छे तेनुं नाम निषाद स्वर छे. आ स्वर भधा स्वराने पराभूत करे छे
केमं के आने देव आदित्य छे जे आ सात स्वर छे ते छव अने अछव
भन्ने ने आश्रित रहे छे. आम तीर्थंकर भगवंतोंने कहुं छे.

शंका-कार्य कारणोंने अधीन होय छे. आ सात स्वर उप कार्यना कारणो
जिह्वा वगेरे छे. आ जिह्वा वगेरे कारणो द्वीन्द्रिय वगेरे त्रस छवो
असंख्यात होवाथी असंख्यात छे अछव निसृत स्वराना विषयनी तो बात न
शीकरवी? अेटला भाटे स्वराना सात प्रकारो योग्य कडेवाय नहि.

विशेषमाश्रित्यासंख्येया अपि स्वराः सामान्येन सर्वेऽपि सप्तस्वेवान्तर्भवति । च सूत्रे स्वराणां यत् सप्तसंख्यकत्वमुक्तं तत् स्थूलस्वरान् गीतं चाश्रित्य सर्वेषां स्वराणां सप्तस्वरानुपात्तित्वाद्दतो नास्ति कोऽपि स्वराणां सप्तसंख्यागणने दोष इति ॥ सू० १६२ ॥

इत्थं स्वरान्नामतो निरूप्य संप्रति तानेव कारणत आह—

मूलम्—एएसिं णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्ठणा पणत्ता, तं जहा—सज्जं च अग्गजीहाए, उरेण रिसहं सरं । कंठुग्गएण गंधारं, मज्झजीहाए मज्झिमं ॥१॥ नासाए पंचमं बूया, दंतोट्टेण य धेवयं । मुद्धाणेण य णेसायं, सरट्ठणा विधाहिया ॥३॥ सत्तसरा जीवणिसिसया पणत्ता, तं जहा—सज्जं रवइ मऊरो, कुक्कुडो रिसभं सरं । हंसो रवइ गंधारं, मज्झिमं च गवेलगा ॥४॥ अह कुसुमसंभवे काले, कोइला पंचमं सरं । छट्टं च सरसा कोचा, नेसायं सत्तमं गया ॥५॥ सत्तसरा अजीवणिसिसया पणत्ता, तं जहा—सज्जं रवइ मुयंगो, गोमुही रिसहं सरं । संखो रवइ गंधारं,

उत्तर—विशेष की अपेक्षा लेकर स्वर यद्यपि असंख्यात हैं परन्तु ये सब असंख्यात स्वर सामान्यरूप से इन सात स्वरों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं । अथवा सूत्रकारने जो “सात स्वर हैं” ऐसा सूत्र कहा है, वह स्थूल स्वरों से एवं गीत को लेकर कहा है ऐसा जानना चाहिये । क्योंकि और जितने भी स्वर हैं, वे सब इन्हीं सात स्वरों में समा जाया करते हैं । इसलिये स्वर सात हैं इस प्रकार के कथन में कोई दोष नहीं है ॥ सू० १६२ ॥

उत्तर—विशेषनी अपेक्षाथी स्वर ने के असंख्यात छे छतां ओ आ अथा असंख्यात स्वरो सामान्य रूपथी आ सात स्वरोमां अ अन्तर्भूत थथं नथ छे, अथवा सूत्रकारे ने ‘सात स्वरो छे’ आभ कथुं ते स्थूल स्वरो अने गीतने लधने कथुं छे आभ नालुपुं नेछं ओ केम के नील नेटला स्वरो छे ते अथा ओ सात स्वरोमां समाविष्ट थथं नथ छे ओटला भाटे स्वर सात छे आ नतना कथनमां केछं पणु नतनो दोष नथी, ॥सू० १६२॥

मज्झिमं पुण झल्लरी ॥६॥ चउचरणपइट्टाणा, गोहिया पंचमं सरं ।
आडंबरो धेवइयं, महाभेरी य सत्तमं ॥७॥सू०१६३॥

छाया—एतेषां खलु सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
षड्जं च अग्रजिह्वया, उरसा ऋषभं स्वरम् । कण्ठाग्रेण गान्धारं, मध्ये जिह्वया मध्य-
मम् ॥२॥ नासिकया पञ्चमं ब्रूयात्, दन्तोष्ठेन च धैवतम् । मूर्ध्ना च निषादम्, स्वर-
स्थानानि व्याख्यातानि ॥३॥ सप्तस्वराः जीवनिश्रिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—षड्जं

इस प्रकार नाम से स्वरों का कथन करके अब सूत्रकार उन्हीं स्वरों
का कारण की अपेक्षा लेकर कथन करते हैं—

‘एएसिं णं सत्तण्हं’ इत्यादि ।

शब्दार्थ—(एएसिणं) इन (सत्तसराणं) सात स्वरों के (सप्त)सात
(सरट्टाणा) स्वरस्थान (पणत्ता) कहे गये हैं । (तं जहा) वे इस प्रकार
से हैं ।—(सज्जं च अगगजीहाए) जिह्वा के अग्र भाग से षड्ज
स्वर बोलना चाहिये (उरेण रिसहं सरं) वक्षस्थल से ऋषभस्वर
बोलना चाहिये (कंठुगएणं गंधारं) कण्ठ के अग्रभाग से गान्धार स्वर
बोलना चाहिये । (मज्झजीहाए मज्झिमं) जिह्वा के मध्य भाग से
मध्यम स्वर बोलना चाहिये । (नासाए पंचमं) नासिका से पंचम स्वर
बोलना चाहिये (दंतोष्ठेण य धेवयं) दन्तोष्ठ से धैवत स्वर बोलना
चाहिये (मुद्धाणेणं य णेसायं ब्रूया) और मूर्धा से निषाद स्वर बोल-

आ प्रभाण्णे स्वरानुं नामनी अपेक्षाण्णे कथन करीने इवे सूत्रकार तेण
स्वरानुं काशण्णी अपेक्षाण्णे कथन करे छे—

“एएसिं णं सत्तण्हं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(एएसिं णं) आ (सत्तसराणं) सात स्वराना (सत्त) सात (सर-
ट्टाणा) स्वरस्थानो (पणत्ता) कडेवाभां आण्णां छे. (तंजहा) ते आ प्रभाण्णे छे
(सज्जं च अगगजीहाए) ललना अग्रभागथी षड्ज स्वरनुं उच्चारणु करवुं
नेधण्णे (उरेणं रिसहं सरं) वक्षस्थलथी ऋषभ स्वरनुं उच्चारणु करवुं नेधण्णे.
(कंठुगएणं गंधारं) कंठना अग्रभागथी गान्धार स्वरनुं उच्चारणु करवुं नेधण्णे
(मज्झजीहाए मज्झिमं) ललना मध्यभागथी मध्यम स्वरनुं उच्चारणु करवुं
नेधण्णे. (नासाए पंचमं) नासिकथी पंचमस्वरनुं उच्चारणु करवुं नेधण्णे.
(दंतोष्ठेण य धेवयं) दन्तोष्ठथी धैवत स्वरनुं उच्चारणु करवुं नेधण्णे (मुद्धाणेणं य
णेसायं ब्रूया) अने मूर्धाथी निषाद स्वरनुं उच्चारणु करवुं नेधण्णे. (सरट्टाणा
वियाहिया) आ प्रभाण्णे सात स्वर स्थानानुं कथन करवाभां आण्णुं छे.

रौति मयूरः, कुक्कुटः ऋषभं स्वरम् । हंसो रौति गान्धारं, मध्यमं च गवेलकः
 (मेपाः) ॥४॥ अथ कुसुमसंभवे काले, कोकिलाः पञ्चमं स्वरम् । षष्ठं च सारसाः
 क्रौञ्चाः, निषादं सप्तमं गजाः ॥५॥ सप्तस्वराः अजीवनिश्रिताः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-
 षड्जं रौति मृदङ्गो, गोमुखी ऋषभं स्वरं । शंखो रौति गान्धारं, मध्यमं पुनर्ल-
 लरी ॥ ६ ॥ चतुश्चरणप्रतिष्ठाना, गोधिका पञ्चमं स्वरं । आडम्बरो धैवतकं, महा-
 भेरीश्च सप्तमम् ॥ सू० १६३ ॥

ना चाहिये । (सरद्व्याणा विद्याहिया) इस प्रकार से सात स्वरस्थान व्या-
 ख्यात किये हैं । (सत्तसरा जीवणिस्त्रिया पण्णत्ता) सात स्वर जीव-
 निश्रित कहे गये हैं । (तंजहा) वे इस प्रकार से हैं—(सज्जं रवइ
 मउरो) षड्जस्वर मयूर बोलता है (कुक्कुडो रिसहं सरं) कुक्कुट—
 ऋषभस्वर बोलता है । (हंसो रवइ गंधारं) हंस गांधार स्वर
 बोलता है (मज्झिमं च गवेलगा) गवेलक-मेष मध्यम-स्वर
 बोलते हैं । (अह कुसुमसंभवे काले कोइला पंचमं सरं)
 पुष्पोत्पत्तिकाल में कोयल पंचम स्वर बोलती है (छट्टं च
 सारसा कौंचा) छठा धैवत स्वर सारस और क्रौंच पक्षी बोलते हैं ।
 (सत्तमं नेसायं गया) सातवां जो निषाद स्वर है उसे गज बोलते हैं ।
 (सत्त सरा अजीवनिस्त्रिया पण्णत्ता) सात स्वर अजीवनिश्रित कहे
 गये हैं—(तं जहा) वे इस प्रकार से हैं—(सज्जं रवइ मुयंगो) षड्ज
 मृदंग बोलता है (गोमुही रिसहं सरं) गोमुखी-वाद्यविशेष-ऋषभ स्वर
 बोलता है । (शंखो गंधारं रवइ) शंख-गांधार स्वर बोलता है । (झल्लरी-
 मज्झिमं) झल्लरी मध्यमस्वर बोलता है । (चउचरणपइद्व्याणा गोहिया)

(सत्तसरा जीवणिस्त्रिया पण्णत्ता) सात स्वरो अजीवनिश्रित कहेवाभां आल्या छे
 (तंजहा) ते आ प्रभाणु छे—(सज्जं रवइ मउरो) षड्ज स्वर मयूर-भोर-भादे
 छे. (कुक्कुडो रिसहं सरं) कुक्कुडो ऋषभ स्वर भादे छे. (मज्झिमं च गवेलगा)
 गवेलक-मेष-मध्यम स्वर भादे छे (अह कुसुमसंभवे काले कोइला पंचमं सरं)
 पुष्पोत्पत्ति कालमां-कोयल पंचमस्वर भादे छे (छट्टं च सारसा कौंचा) छठा
 धैवत स्वर सारस अने-क्रौंचपक्षी विशेष भादे छे. (सत्तमं नेसायं गया)
 सातवां निषाद स्वर गज भादे छे (सत्तसरा अजीवनिस्त्रिया पण्णत्ता) सात
 स्वरो अजीवनिश्रित कहेवाभां आल्या छे (तंजहा) ते आ प्रभाणु छे—
 सज्जं रवइ मुयंगो) षड्ज स्वर मृदंगभांथी नीकणे छे. (गोमुही रिसहं सरं)
 गोमुखी-वाद्य विशेषभांथी ऋषभ स्वर नीकणे छे. (शंखो गंधारं रवइ) शंख-
 भांथी गांधार स्वर नीकणे छे. (झल्लरी मज्झिमं) झल्लरी भांथी मध्यम स्वर
 नीकणे छे. (चउचरणपइद्व्याणा गोहिया) आरे पण्णत्ता अनी ७ भांथी ७ भांथी ७ भांथी

टीका—‘एएसि णं’ इत्यादि—

एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि, अयं भावः एते षड्जादि सप्तस्वरा यस्मात् यस्मात् स्थानात् समुत्पद्यते तानि जिह्वाग्रभागादिस्वरस्थानान्यपि सप्तसंख्यकानि सन्ति । नाभेरुत्थितो ऽविकारी स्वर आभोगतोऽनाभोगतो वा जिह्वादिस्थानं प्राप्य विशेषमासादयतीति तत् स्वरस्योपकारकमतस्तत् स्वरस्थानमुच्यते, इति । तान्येव स्थानानि दर्शयति—तद्यथा—षड्जं स्वरम् अग्रजिह्वा—अग्रभूता जिह्वा—अग्रजिह्वा, तथा जिह्वाग्रभागेन ज्ञयात् । षड्जस्वरस्य स्थानं जिह्वाग्र-

चारोंपैरों से जमीन ऊपर रखी गई ऐसी गौधिका—वाद्यविशेष—(पंचमं सरं) पंचम स्वर को बोलती है (आडंबरो धेवयं) आडंबर धेवत स्वर को बोलता है (महाभेरीय सत्तमं) और महाभेरी सप्तम जो निषाद स्वर है, उसे बोलती है ।

भावार्थ—इस सूत्र द्वारा सूत्रकारने सात स्वरों के सात स्थानों का कथन किया है । षड्ज आदि सात स्वर जिस २ स्थान से उत्पन्न होते हैं, वे जिह्वाग्रभाग आदि स्वरोत्पादक स्थान सात हैं । नाभिस्थान से उत्थित अविकारी स्वर आभोग (अनजान) से जिह्वा आदि स्थान को प्राप्त हो करके अपने में विशेषता प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह जिह्वा आदि स्थान उस स्वर का उपकारक होता है । अतः वह उस स्वर का स्थान कहा जाता है । सूत्रकारने इन्हीं सात स्वर स्थानों को यहाँ दिखलाया है । षड्ज स्वर जिह्वाग्रभाग से बोला जाता है । इसलिये उसका स्थान जिह्वाग्रभाग है ।

आवे छे. अनी गोधिका—वाद्य विशेषमांथी (पंचमं सरं) पंचम स्वर नीकणे छे (आडंबरो धेवयं) आडंबरमांथी धेवत स्वर नीकणे छे. (महाभेरीय सत्तमं) अने महाभेरीमांथी सातमे ने निषाद नामे स्वर छे के नीकणे छे.

भावार्थ—आ सूत्र वडे सूत्रकारे सात स्वराना स्थानानुं कथन कयुं छे. षड्ज वगेरे सात स्वर ने ने स्थान विशेषथी उत्पन्न थाय छे. ते जिह्वाग्र भाग वगेरे सात स्वरोत्पादक स्थानो छे नाभिस्थानथी उत्थित थयेल अविकारी स्वर आभोग (अणु) थी के अनाभोग (अनणु)थी जिह्वा वगेरे स्थान सुधी पडोंथीने पोतानी नतमां अेक विशेषता मेणवी दे छे. अेटला भाटे जिह्वा वगेरे स्थान ते स्वर भाटे उपकारक डोय छे. अेथी ते ते स्वरनुं स्थान कडेवाय छे. सूत्रकारे अेज सात स्वर स्थानानुं अडीं स्पष्टीकरण कयुं छे षड्ज स्वर जिह्वाग्र भागथी उच्यरित करवामां आवे छे तेथी तेनुं नाम जिह्वाग्र भाग छे.

भाग इत्यर्थः । ननु षड्जस्वरोच्चारणे कण्ठादीन्यपि स्थानान्याश्रीयन्ते, अग्रजिह्वा-
 चस्वरान्तरेष्वप्याश्रीयते तत्कथं षड्जादिष्वेकैकस्य स्वरस्य अग्रजिह्वादिरूपमेकैकं
 स्थानमुच्यते ? इति चेदाह—यद्यपि षड्जादयः सर्वेऽपि स्वराः जिह्वाग्रभागादीनि
 सर्वाण्यपि स्थानान्यपेक्षन्ते, तथापि विशेषत एकैकस्वरो जिह्वाग्रभागादिष्वेकैकं स्थान-
 मादायैव व्यज्यते । अतस्तत्तत्स्वरस्य तत्तत्स्थानमुक्तमिति बोध्यम् । तथा—उरसा=
 वक्षसा ऋषभं स्वरं ब्रूयात् । ऋषभस्वरस्य स्थानं वक्षो बोध्यम् । तथा—कण्ठोद्गतेन
 कण्ठादुद्गतम्-उद्गतिः=स्वरनिष्पत्तिहेतुभूताक्रिया तेन गान्धारं स्वरं ब्रूयात् । गान्धार-

शंका—षड्ज स्वर के उच्चारण करने में कण्ठोदिक स्थानों का भी सहारा लेना पड़ता है, तथा अग्रजिह्वा दूसरे स्वरों में भी उप-
 युक्त होती है, तो फिर षड्ज-आदि स्वरों में से एक २ स्वर का अग्र-
 जिह्वा आदि रूप एक २ स्थान प्रतिनियत कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर—यद्यपि षड्ज आदि समस्त भी स्वर जिह्वाग्रभाग आदि
 रूप समस्त स्थानों की अपेक्षा करते हैं, तो भी विशेष रूप से एक २
 स्वर जिह्वाग्रभागादिक रूप स्थानों में से एक २ स्थान को आश्रित
 करके ही अभिव्यक्त (प्रकट) होता है । इसलिये उस २ स्वर का वह-
 वह स्थान कहा जाता है । इसी अभिप्राय को लेकर यहां सूत्रकारने एक २
 स्वर का एक एक स्थान कहा है । वक्षस्थल से ऋषभ स्वर बोलना
 चाहिये इस कथन से यही जाना जाता है कि—‘ऋषभ स्वर का वक्ष-
 स्थल स्थान है । स्वर की निष्पत्ति की हेतुभूत जो क्रिया कंठ से होती

शंका—षड्ज स्वरने उच्चार करता कंठ वगेरे स्थानेना पण आधार
 लेवा पडे छे. तेमज अग्रजिह्वा जीन पण कंटलाक स्वरनेना उच्चारणु भाटे
 सहायभूत होय छे. तो पछी षड्ज वगेरे स्वरनेमांथी ओक ओक स्वरनुं
 अग्रजिह्वा वगेरे इप ओक ओक स्थान प्रतिनियत डेवी रीते कडेवाय ?

उत्तर—जे के षड्ज वगेरे पछा स्वरने जिह्वाग्र भाग वगेरे पछा
 स्थानेनेना उपयोग करे छे. छतां जे विशेष इपथी दरेक स्वर जिह्वाग्र भागा-
 दिक स्थानेमांथी केरि ओक स्थानने समाश्रित करीने जे व्यक्त (उच्यरित)
 थाय छे. ओटला भाटे ते स्वरनुं ते स्थान कडेवाय छे जे अभिप्रायने लघने
 अर्धी सूत्रकारे दरेक स्वरनुं ओक ओक स्थान कहुं छे. वक्षस्थली ऋषभ
 स्वरनुं उच्चारणु करवुं लेधजे आ कथनथी जे वात स्पष्ट थाय छे के ऋषभ
 स्वरनुं स्थान वक्षस्थली छे स्वरनी निष्पत्तिमां डेतभूत जे क्रिया कंठथी थाय छे,

स्वरस्य स्थानं कण्ठो बोध्यम् तथा-मध्य जिह्वाजिह्वाया मध्यो भागो मध्यजिह्वा,
तथा-मध्यमं स्वरं ब्रूयात् । जिह्वाया मध्यभागो मध्यमस्वरस्य स्थानमिति भावः ।
तथा-नासया=नासिकया पञ्चमं स्वरं ब्रूयात् । पञ्चमस्वरस्य स्थानं नासिकेत्यर्थः ।
तथा-दन्तोष्ठेन=दन्तोष्ठक्रियया धैवतं स्वरं ब्रूयात् । धैवतस्वरस्य स्थानं दन्तोष्ठं
बोध्यम् । तथा-मूर्ध्ना=मूर्धस्थानेन निषादं स्वरं ब्रूयात् । निषादस्वरस्य स्थानं मूर्धा
बोध्यम् । एतानि जिह्वाग्रभागादीनि सप्त स्वरस्थानानि भगवता व्याख्यातानि ।
इत्थं स्वरस्थानान्युक्त्वा सम्प्रति 'को जीवः कं स्वरं ब्रूते' इति दर्शयति- 'सत्त
सरा जीवनिस्त्रिया' इत्यादिना 'णिसायं सत्तमं गया इत्यन्तेन । अर्थः स्पष्टः ।
नवरम्-गावश्च-एलकाश्चेति गवेलकाः, यद्वा गवेलकाः-मेषा एव । कुसुमसंभवे-

है, उसका नाम 'कण्ठोद्गत' है इससे गांधार स्वर बोला जाता है, अतः
गांधार स्वर का स्थान -कंठ है । जिह्वा का जो मध्य भाग है-उससे
मध्यम स्वर बोला जाता है; इस कारण मध्यम स्वर का स्थान जिह्वा
का मध्य भाग है । 'नासिका से पंचम स्वर बोलना चाहिये' इस कथन
से यही जाना जाता है-कि 'पंचम स्वर का स्थान नासिका है ।' 'दन्तो-
ष्ठ क्रिया से धैवत स्वर को बोलना चाहिये' इस कथन से यही स्पष्ट
होता है कि 'धैवत स्वर का स्थान दन्तोष्ठ है' । 'मूर्धा से निषाद
स्वर बोलना चाहिये' इससे यही जाना जाता है कि 'निषाद स्वर का
स्थान मूर्धा है ।' ये जिह्वाग्रभागादिक सप्तस्वरस्थान भगवान् ने कहे
हैं । इस प्रकार सात स्वरों के स्थान कहकर सूत्रकारने पुनः यह बत-
लाया है कि-कौन २ जीव किस २ स्वर को बोलता है—? "गवेलक"
में गौ और एलक ये दो प्राणी आये हैं । अथवा गवेलक का अर्थ मेष

तेनुं नाम कण्ठोद्गतं च । अनाथी गांधार स्वर उच्यते तथा च अथी
गांधार स्वरनुं नाम कंठं च । जिह्वाया मध्य भागं मध्यम स्वरनुं उच्यते
तथा च । अथी जिह्वाया मध्य भागं मध्यम स्वरनुं स्थानं च नासिकां पंचम
स्वरनुं उच्यते करणं नेत्रं च । अथनथी वा वात स्पष्टं तथा च के पंचम
स्वरनुं स्थानं नासिकां च । दन्तोष्ठं क्रियां धैवत स्वरं बोधते नेत्रं च ।
अथनथी च वा वात ज्ञायते च के धैवत स्वरनुं स्थानं दन्तोष्ठं च । मूर्धां
निषाद स्वरं बोधते नेत्रं च । अथी च वा वात ज्ञायते च के, निषाद स्वरनुं
स्थानं मूर्धां च । जिह्वाया मध्य भागं वगेरे सप्तस्वर स्थानो लक्षणानि कथ्यां च ।

आ प्रमाणे सप्तस्वरानां स्थानं विधे भवति आपीने सूत्रकार इरी
अथ अतावे च के-कथा कथा लोको कथा कथा स्वरथी बोधते च । "गवेलक"मां
गौ अने अलकं च । अथवा गवेलकानां अर्थं मेषं पण्यं च ।

કાલે=વસન્તસમયે । અથ યસ્માત્ યસ્માત્ વાઘાદ યો યઃ સ્વરો નિર્ગચ્છાંત, તં તપાદ-તદ્વા-તદ્દર્શયતિ-‘સત્ત સરા અજીવનિસ્તિયા’ इत्यादिना ‘महाभेरो य सत्तमं’ इत्यन्तेन । अर्थः स्पष्टः । नवरं-गोमुखी=यस्या मुखे गोशृङ्गादि वस्तु स्थाप्यते सा ‘काहला’ इत्यपरनाम्ना प्रसिद्धा । चतुश्चरणप्रतिष्ठाना गोधिका=चतुर्भिश्चरणैः प्रतिष्ठानं भुवि यस्याः सा तथाभूता गोधिका-गोधैव गोधिका चर्माश्रनद्धा दर्दरिकेत्यपरनाम्ना प्रसिद्धा वाद्यविशेषः । आडम्बरः=पटहः । सप्तमं=निषादम् । अत्रेदं बोध्यम्-यद्यपि मृदङ्गादि जनितेषु स्वरेषु नाभ्युरःकण्ठाद्युत्पद्यमानरूपो व्युत्पत्यर्थो न घटते, तथापि-मृदङ्गादि वाद्येभ्यः षड्जादिस्वरसदृश-स्वरा उत्पद्यन्ते । अतएव तेषां मृदङ्गाद्यजीवनिश्चितत्वमुक्तम् ॥सू० १६३॥

સંપ્રતિ एषां सप्तस्वराणां लक्षणान्याह—

શૂલમ્-एषासिं णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पणत्ता,
તં જહા-સજ્જેણ લહઈ વિત્તિં, કયં ચ ન વિણસ્સઈ । ગાવો પુત્તા
ય મિત્તા ય, નારીણં હોઈ વલ્લહો ॥૧૥૩॥ રિસહેણ ડ એસજ્જં, સેણા-

भी है । कुसुमसंभवकाल का तात्पर्य वसन्त ऋतु से है । जिसके मुख पर गोशृंग आदि स्थापित किया जाता है तथा जिसका दूसरा नाम ‘काहला’ है, वह वाद्यविशेष ‘गोमुखी’ कहलाता है । चतुश्चरण प्रतिष्ठाना गोधिका भी एक प्रकार का वाद्यविशेष होता है इस का नाम ‘दर्दरिका’ है । यह चमड़े से मढा हुआ होता है । ‘आडम्बर’ पटह को कहते हैं । यद्यपि मृदङ्ग आदि जनित स्वरों में नाभि उरसू कण्ठ आदि से उत्पन्न होना रूप व्युत्पत्यर्थ घटित नहीं होता है, तो भी मृदंग आदि वाद्यों से षड्ज आदि स्वरों के सदृश स्वर उत्पन्न होते हैं, इसलिये उन्हें मृदंगरूप अजीव से निश्चित कहा है ॥सू० १६३॥

કુસુમ સંભવકાલ એટલે વસન્ત ઋતુ છે જેનાં મુખ પર ગોશ્વંગ, વગેરે સ્થાપિત કરવામાં આવે છે તેમજ જેનું ખીજું નામ ‘કાહલા’ છે તે વાદ્ય-વિશેષ ‘ગોમુખી’ કહેવાય છે ચતુશ્ચરણ પ્રતિષ્ઠાના ગોધિકા પણ એક વાદ્ય-વિશેષ છે એનું નામ ‘દર્દરિકા’ છે. એ ચામડથી બનાવેલું હોય છે ‘આડમ્બર’ પટહને કહે છે. જે કે મૃદંગ વગેરેથી ઉત્પન્ન સ્વરોમાં નાભિ, ઉરસ, કંઠ વગેરેથી ઉત્પન્ન રૂપ વ્યુત્પત્યર્થ નીકળતો નથી, છતાં એ મૃદંગ વગેરે વાદ્યોથી ષડ્જ વગેરે સ્વરોની જેમ જ સ્વર ઉત્પન્ન થાય છે. એથી તેમને મૃદંગ રૂપ અજીવથી નિશ્ચિત કહ્યા છે. ॥સૂ૦ ૧૬૩॥

वच्चं धणाणि य । वत्थ गंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि या॥२॥
 गंधारे गीयजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिया । हवंति कइणो
 पण्णा, जे अपणे सत्थपारगा॥३॥ मज्झिमस्सरसंपन्ना, हवंति
 सुहजीविणो । खायई पियई देई, मज्झिमस्सरमस्सिओ॥४॥
 पंचमस्सरसंपन्ना हवंति पुढवीवई । सूरा संगहकत्तारो अपेग-
 गणनायगा॥५॥ धेवयस्सरसंपन्ना हवंति कलहप्पिया । साउणिया
 वग्गुरिया, सोयरिया मच्छबंधा य ॥६॥ चंडाला मुट्टिया सेया,
 जे अन्ने पावकम्मिणो । गोघातगा य जे चोरा, णिसायं
 सरमस्सिया ॥७॥सू० १६४॥

छाया—एतेषां खलु सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरलक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
 षड्जेन लभते वृत्ति, कृतं च न विनश्यति । गावः पुत्राश्च मित्राणि च, नारीणां

अब सूत्रकार इन सात स्वरों के लक्षणों को कहते हैं—

“एएसि णं सत्तण्हं” इत्यादि ।—

शब्दार्थ—(एएसि सत्तण्हं सराणं) इन सात स्वरों के (सरलस्वणा)
 स्वर लक्षण-तत् तत्-फल की प्राप्ति के अनुसार स्वर तत्त्व-(सत्त) सात
 (पण्णात्ता) कहे गये हैं । (तंजहा) वे इस प्रकार से हैं—(सज्जेण वित्ति ल-
 हई) षड्ज स्वर से अनुष्य-आजीविका प्राप्त करता है । (कयं च ण विण-
 स्सइ) तथा षड्ज स्वरवाले व्यक्ति का कृतकर्म नष्ट नहीं होता है ।
 (गावो पुत्ता य मित्ता य नारीणं होइ बल्लहो) इस को गाये पुत्र और

इसे सूत्रकार ये सात स्वराना लक्षणो करे छे—

“एएसि णं सत्तण्हं” इत्यादि—

शब्दार्थ—(एएसि णं सत्तण्हं सराणं) ये सात स्वराना (सरलस्वणा)
 स्वरलक्षण-ते ते क्षणी प्राप्तिनी अपेक्षाये स्वरतत्त्व (सत्त) सात (पण्णात्ता) कहे-
 वामां आब्या छे (तंजहा) तेओ आ प्रभाणे छे (सज्जेण वित्त लइई) षड्ज स्वरथी
 भाषुस आणविका प्राप्त करे छे (कयं च ण विणस्सइ) तेमए षड्ज स्वरवाणी व्यक्ति
 ओना कृतकर्मे नाश पाभता नथी अर्थात् कार्य सिद्ध करे छे । (गावो पुत्ता य मित्ता य
 नारीणं होइ बल्लहो) आने गाये पुत्र अने मित्र होय छे । स्त्रीओने ये षड्ज

भवति बल्लभः॥१॥ ऋषभेण तु ऐश्वर्यं सेनापत्यं धनानि च । वस्त्रगन्धम् अलंकारम्,
स्त्रियः शयनानि च ॥२॥ गान्धारे गीतयुक्तिज्ञाः धर्यवृत्तयः कलाधिकाः । भवन्ति
कवयो प्राज्ञाः, ये अन्ये शास्त्रपारगाः ।३॥ मध्यम स्वरसम्पन्ना भवन्ति-सुख-
जीविनः । खादति पिवति ददाति, मध्यमस्वरमाश्रितः ॥४॥ पञ्चमस्वरसम्पन्ना

मित्र होते हैं । यह स्त्रियों को बहुत प्यारा होता है । (रिसहेण उ
एसज्जं) ऋषभ स्वर से मनुष्य ऐश्वर्य-ईशानशक्तिवाला-होता है (सेणा-
वच्चं घणाणिय) इस स्वर के प्रभाव से वह सेनापतित्व को धन को,
(वत्थगंधमलंकारं इत्थिओ सयणाणिय य) वस्त्रों को गंधपदार्थों को, अलं-
कारों को, स्त्रियों को, और शयनों को पाना है । (गंधारे गीयजुत्तिण्णा)
गान्धार स्वर से गाना गानेवाले मनुष्य (वज्जवित्ती कलाहिया) श्रेष्ठ
आजीविकावाले होते हैं तथा कलाओं के ज्ञाताओं में शिरोमणि होते
हैं । (कइणो पण्णा हवंति) कवि-काव्यकर्त्ता-होते हैं अथवा-“कइणो-
कृत्तिनः” इस छाया पक्ष में कर्तव्यशील होते हैं । प्राज्ञः-सद्बोध
संपन्न-होते हैं । (जे अण्णे सत्थपारगा) तथा जो पूर्वोक्त गीत युक्तिज्ञ
आदि को से जो भिन्न होते हैं-वे, सकलशास्त्रों में निष्णात होते हैं ।
(मज्झिमस्सरसंपन्ना) जो मध्यम स्वर से युक्त होते हैं, वे (सुहजीविणो
हवंति) सुखजीवि होते हैं । (खायई पियई देई मज्झिमस्सरमस्सिओ)
सुखजीवि कैसे होते हैं? इसी बात को सूत्रकार कहते हैं कि वे सुस्वादु
भोजन को मनमाना खाते हैं, दुग्धादि का पान करते हैं । दूसरों को

प्रिय डोय छे (रिसहेण उ एसिज्जं) ऋषभ स्वरथी भाणुस ऐश्वर्य-ईशान शक्ति
संपन्न-डोय छे (सेणावच्चं घणाणिय) आ स्वरना प्रभावथी सेनापतित्वने,
धनने, (वत्थगंधमलंकारं इत्थिओ सयणाणिय) वस्त्रो, गंधपदार्थो, अलंकारो,
स्त्रीओ, तेभञ्ज शयनाने भेजवे छे. (गंधारे गीय जुत्तिण्णा) गान्धार स्वरथी
गानारा भाणुओ (वज्जवित्ती कलाहिया) श्रेष्ठ आजीविकावाणा डोय छे तेभञ्ज
कलाविदोमां श्रेष्ठ गणुय छे. (कइणोवण्णा हवंति) काव्यकार डोय छे अथवा
'कइणो-कृत्तिनः' आ छाया पक्षमां कर्तव्यशील डोय छे प्राज्ञः-सद्बोध
संपन्न डोय छे. (जे अण्णे सत्थपारगा) तेभञ्ज पूर्वोक्त गीत युक्तिज्ञ वगेरथी
जे भिन्न डोय छे तेओ सकल शास्त्रोमां निष्णात छे. (मज्झिमस्सरसंपन्ना)
जेओ मध्यम स्वर संपन्न डोय छे तेओ (सुहजीविणो हवंति) सुखजीवि
डोय छे. (खायई पियई देई, मज्झिमस्सरमस्सिओ) सुखजीवी कैवी रीते डोय
छे? जेओ बातने सूत्रकार हवे स्पष्ट करे छे-के तेओ पोटानी धर्य

भवन्ति पृथिवीपतयः । शूराः संग्रहकर्तारः, अनेकगणनायकाः ॥५॥ धैवतस्वर-
सम्पन्ना भवन्ति कलहप्रियाः । शाकुनिका वागुरिकाः सौकरिका मत्स्यबन्धाश्च ॥६॥
चाण्डालामौष्टिकाः सेया ये अन्ये पापकर्माणः । गोघातकाश्च ये चोरा निषादं
स्वरमाश्रिताः ॥ ७ ॥ ॥ सू० १६४ ॥

भी इसी प्रकार से खिलाते पिलाते रहते हैं । (पंचमस्वरसंपन्ना हवन्ति
पुढवीवई) जो पंचमस्वर से युक्त होते हैं वे पृथिवीपति होते हैं । (सूरा
संग्रहकर्तारो अनेकगणनायका) शूरवीर होते हैं, संग्रह करनेवाले
होते हैं और अनेक गणों के नायक होते हैं । तथा जा
(धैवतस्वरसंपन्ना हवन्ति कलहप्रिया) जो धैवतस्वरवाले होते हैं
वे कलहप्रिय होते हैं-लड़ाई झगडा करना उन्हें बहुत पसन्द आता है।
(साउणियावागुरिया सोयरिया, मच्छबन्धा य) शाकुनिक-पक्षियों का
शिकार करनेवाले, होते हैं, वागुरिक-हरिणों की हत्या करनेवाले, होते
हैं, सौकरिक-सुअरों का शिकार करनेवाले, होते हैं, और मत्स्यबंध-
मछलियों को मारनेवाले, होते हैं ! (चंडाला) तथा जो चांडाल-रौद्रकर्मा
हैं (मुष्टिया) मुष्टि से प्रहार करनेवाले हैं (सेया) अधम जातीय हैं-(जे
अन्ने पावकस्मिणो) तथा इनसे भिन्न जो पाप कर्मों में परायण बने
हुए प्राणी हैं, तथा जो (गोघातगा) गोघात करनेवाले हैं (जे चोरा) जो
चोरी करनेवाले हैं (णिसायं सरमस्सिया) वे सब निषाद स्वर से आश्रित

मुञ्जम तृप्तिदायक सुस्वादु लोञ्जन भेजवे छे. दूध वगेरे पीवे छे. भीलञ्जोने
पशु जेवी रीते भवडावता पीवडावता रडे छे. (पंचमस्वरसंपन्ना हवन्ति
पुढवीवई) जेञ्जे पंचम स्वर संपन्न डोय छे तेञ्जे पृथ्वीपति डोय छे.
(सूरा संग्रहकर्तारो अनेकगणनायका) शूरवीर डोय छे, संग्रह करनार डोय छे
अने धष्ठा गञ्जोना नेता डोय छे (धैवतस्वरसंपन्ना) तेभज्जे धैवत स्वर-
वाणा डोय छे. (हवन्ति कलहप्रिया) ते कलह प्रिय डोय छे लडाई, कंकास,
तकरार तेभने भडु गमे छे. (साउणिया वागुरिया सोयरिया, मच्छबन्धा य) शाकु-
निक-पक्षीञ्जोने शिकार करनार डोय छे वागुरिक-हरिणी हत्या करनार
डोय छे सौकरिक-सुअरने शिकार करे छे अने मत्स्य बंध-माछलीञ्जोने
मारनार डोय छे. (चंडाला) तेभज्जे चांडाल-रौद्रकर्मा-छे, (मुष्टिया) मुष्टिप्रहार
करनार डोय छे. (सेया) अधम जातवाणा डोय छे (जे अन्ने पावकस्मिणो)
तेभज्जे अभनाथी भिन्न जे पापकर्मां रत रडे छे तथा जे (गोघातगा)
गोवध करनार डोय छे (जे चोरा) जेञ्जे चोरी करनार छे. (णिसायं सर-

टीका—‘एप्सि णं’ इत्यादि—

एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरलक्षणानि=तत्तत्फलप्राप्त्यनुसारीणि स्वर-
तत्त्वानि कथितानि । तान्येव फलत आह—तद्यथा—षड्जेन लभते वृत्तिम्
इत्यादिभिः सप्तभिः श्लोकैः । तथाहि—षड्जेन स्वरेण जनो वृत्तिः=जीविकां लभते ।
तथा षड्जस्वरवतो जनस्य कृतं कर्म विनष्टं न भवति सफलमेव भवतीत्यर्थः ।
तस्य गावः पुत्रा मित्राणि च भवन्ति । तथा स स्त्रीणां वल्लभः=प्रियश्च भवति ।
ऋषभेण स्वरेण तु ऐश्वर्यम्=ईशानशक्तिमत्त्वं, सैनापत्यं=सेनापतित्वं, धनानि, वस्त्र-
गन्धम्=वस्त्राणि गन्धांश्च, अलंकारं स्त्रियः शयनानि च लभते । तथा—गान्धारे=
गान्धारस्वरे गीतयुक्तिज्ञाः=गीतयोजनावेत्तारः—गान्धारस्वरगानकर्तार इत्यर्थः,
वर्यवृत्तयः—वर्याः=श्रेष्ठा वृत्तिः=जीविका येषां ते तथा—श्रेष्ठजीविकावन्तः, कला-
धिकाः—कलाभिरधिकाःकलाज्ञेषु मूर्धन्याश्च भवन्ति । तथा—ऋवयः=काव्यकर्तारः,
‘कृत्स्निनः’ इतिच्छायापक्षे—कर्तव्यशीलाः, प्राज्ञाः=सद्बोधाश्च भवन्ति । ये अन्ये=
पूर्वोक्तेभ्यो गीतयुक्तिज्ञादिभ्यो ये भिन्ना भवन्ति ते शास्त्रपारगाः=सकल शास्त्र-
निष्णाता भवन्ति । तथा—मध्यमस्वरसम्पन्नास्तु सुखजीविनः=सुखेन जीवितुं शीला
भवन्ति । सुखजीवित्वमेव प्रकटयति मध्यमस्वरमाश्रितो जनो हि खादति=सुस्वादु
भोजनं भुङ्क्ते, पिवति=दुग्धादिपानं करोति, ददाति=अन्यानपि भोजयति पाय-
यति च । पञ्चमस्वरसम्पन्नास्तु पृथिवीपतयो भवन्ति, तथा—शूराः संग्रहकर्तारः
अनेकगणनायकाश्च भवन्ति । तथा—धैवतस्वरसम्पन्नास्तु कलहप्रियाः=क्लेशकारका
भवन्ति तथा—शकुनिकाः—शकुनेन=श्येनेन पर्यटन्ति, शकुनान्=पक्षिणो घ्नन्ति
वा शकुनिकाः=पक्षिघातका लुब्धकविशेषाः । वागुरिकाः—वागुरा=मृगबन्धिनी,
तया चरन्तीति वागुरिकाः=हरिणघातका लुब्धकविशेषाः, सौकरिकाः=सूकरेण-
सूकरवधार्थं चरन्ति, सूकरान् घ्नन्ति वा सौकरिकाः=सूकरघातका लुब्धक-
विशेषाः, तथा—मत्स्यबन्धाः=मत्स्यघातिनश्च भवन्तीति । तथा—ये चाण्डालाः
चाण्डकर्माणः, मौष्टिकः—मुष्टिः प्रहरणं येषां ते तथा, मुष्टिभिः प्रहरणशीला
इत्यर्थः, सेयाः=अधमजातीया मनुष्याश्च सन्ति, एभ्योऽन्ये च ये पापकर्माणः=
पापकर्मपरायणाः सन्ति, तथा च ये गोघातकाः सन्ति, ये च चौराः सन्ति, ते
सर्वे निषादस्वरमाश्रिता विज्ञेयाः इति । एष पाठः स्थानाङ्गानुसारेण व्याख्यातो
गृहीतश्च ॥सू० १६४॥

हैं, ऐसा जानना चाहिये । यह पाठ स्थानाङ्ग के अनुसार व्याख्यात किया
है—और वहीं से लिया है । ॥सू० १६४॥

मत्स्रजो) ते निषाद स्वरनुं उच्यते उच्ये छे स्थानांग प्रभाषे न आ पाठ अही
व्याभ्यात करवामां आ०ये छे—अने त्यांथी न देवामां आ०ये छे । ॥सू० १६४॥

अथैषां स्वराणां ग्रामान् एकैकग्रामस्य मूर्च्छनाश्चाह—

मूलम्—एएसिं णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पणत्ता, तं जहा—सज्जगामे मज्झिमगामे गंधारगामे । सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पणत्ताओ, तं जहा—मंगीकोरव्वीया हरी य, रयणी य सारकंता य । छट्ठी य सारसी नाम, सुद्धसज्जा य सत्तमा ॥१॥ मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पणत्ताओ, तं जहा—उत्तर मंदां रयणी, उत्तरा उत्तरा समा । समोकंता य सोवीरा, अभीरू हवइ सत्तमा ॥२॥ गंधारगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पणत्ताओ, तं जहा—नंदी य खुड्डिया पूरिमा य, चउत्थी य सुद्धगंधारा । उत्तरगंधारा वि य, पंचमिया हवइ मुच्छा उ ॥३॥ सुट्टुत्तर मायामा, सा छट्ठी नियमसो उ णायव्वा । अह उत्तरायया कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा ॥४॥ सू०१६५॥

छाया—एतेषां खलु सप्तानां स्वराणां त्रयो ग्रामा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा षड्ज-ग्रामः मध्यमग्रामः गान्धारग्रामः । षड्जग्रामस्य खलु सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः,

अब सूत्रकार इन स्वरो के ग्रामों को और एक एक ग्राम की मूर्च्छनाओं को कहते हैं—“एएसिं णं सत्तण्हं सराणं” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(एएसिं णं सत्तण्हं सराणं) इन सातस्वरो के (तओ गामा पणत्ता) तीन ग्राम कहे गये हैं । (तं जहा) वे इसप्रकार हैं—(सज्जगामे, मज्झिमगामे गंधारगामे) १ षड्जग्राम, २ मध्यमग्राम, ३ गान्धारग्राम, ४ (सज्जगामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पणत्ताओ) षड्ज-ग्राम की सात

छे सूत्रकार आ स्वरोना आभे। अने दरेके दरेक आभनी मूर्च्छनाओ विषे कथन करे छे—“एएसिं णं सत्तण्हं सराणं ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(एएसिं णं सत्तण्हं सराणं) आ सात स्वरोना (तओ गामा पणत्ता) त्रयु आभे। कडेवाय छे (तंजहा) ते आ प्रभावे छे. (सज्जगामे, मज्झिमगामे गंधारगामे) १ षड्जआभ, २ मध्यम आभ, ३ गान्धारआभ. (सज्जगामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पणत्ताओ) षड्ज आभनी सात मूर्च्छनाओ। कडे-

तद्यथा—मङ्गी कौरवीया हरिश्च, रजनी च सारकान्ता च । षष्ठी च सारसीनाम, शुद्धषड्जा च सप्तमी ॥१॥ मध्यमग्रामस्य खलु सप्तमूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उत्तरमन्दा रजनी उत्तरा उत्तरसमा । समवक्रान्ता च सौवीरा, अभीरुर्भवति सप्तमी ॥२॥ गान्धारग्रामस्य खलु सप्तमूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नन्दी च क्षुद्रिका पूरिमा च चतुर्थी च शुद्धगान्धारा । उत्तरगान्धाराऽपि च सा पञ्चमिका भवति मूर्च्छा ॥३॥ सुष्टूत्तरायामा सा षष्ठी नियमशस्तु ज्ञातव्या । अथ उत्तरायता कोटिमा च सा सप्तमीमूर्च्छा ॥४॥ सूत्र० १६५॥

मूर्च्छनाएँ कही हैं । (तं जहा) वे इसप्रकार से हैं—(मंगी कौरवीया हरी य, रयणी य सारकंता य छट्टी य सारसीनाम सुद्धषड्जा य सप्तमा) १ मंगी, २ कौरवीया, ३ हरि, ४ रजनी, ५ सारकान्ता, छठी सारसी और सातवीं शुद्ध षड्जा । (मज्झिमग्रामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पणत्ताओ) मध्यम ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही हैं । (तं जहा) वे इस प्रकार से हैं—(उत्तरमन्दा रयणी उत्तरा उत्तरा समा समोकंता य सौवीरा, अभीरु हवइ सत्तमा) १ उत्तर मन्दा, २ रजनी, ३ उत्तरा ४ उत्तरसमा, समवक्रान्ता, ६ सौवीरा और सातवीं अभीरु । (गंधारग्रामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पणत्ताओ) गंधार ग्रामकी सात मूर्च्छनाएँ कही हैं । (तं जहा—) वे इसप्रकार से हैं—(नन्दी य खुड्डिया, पूरिमा य, चउत्थीय सुद्धगंधारा । उत्तरगंधारा वि य पंचमिया हवइ मुच्छाउ) नन्दी, क्षुद्रिका, पूरिमा, चौथी, शुद्ध गान्धारा, पांचवीं उत्तरगंधारा (सुद्धुत्तरमायासा छट्टी नियमसो उणा-

वाभां आवी छे. (तंजहा) ते आ प्रभाणु छे (मंगी कौरवीया हरी य, रयणीय सारकंता य छट्टीय सारसी नाम सुद्धषड्जा य सप्तमा) १ मंगी, २ कौरवीया, ३ हरि, ४ रजनी ५ सारकान्ता, ६ सारसी अने ७ शुद्धषड्जम (मज्झिम ग्रामस्स ण सत्तमुच्छणाओ पणत्ताओ) मध्यम ग्रामनी सात मूर्च्छनाओ कडेवाय छे. (तंजहा) ते आ प्रभाणु छे (उत्तर-मन्दा रयणी उत्तरा उत्तरा समा समोकंता य सौवीरा, अभीरु हवइ सत्तमा) १ उत्तरमन्दा, २ रजनी, ३ उत्तरा, ४ उत्तरसमा, ५ समवक्रान्ता ६ सौवीरा, ७ अने अभीरु (गंधारग्रामस्सणं सत्तमुच्छणाओ पणत्ताओ) गंधार ग्रामनी सात मूर्च्छनाओ कडेवाभां आवी छे. (तंजहा) ते आ प्रभाणु छे:—(नन्दी य खुड्डिया, पूरिमा य, चउत्थीय, सुद्धगंधारा उत्तरगंधारा वि य पंचमिया हवइ मुच्छा) १ नन्दी, २ क्षुद्रिका, ३ पूरिमा, ४ शुद्ध गंधारा, ५ उत्तर गंधारा (सुद्धुत्तरमायासा छट्टी नियमसो उणायव्वा अहं उत्तरायया कोटिमा य सा सप्तमी मुच्छा) ६ सुष्टूत्तरायामा अने ७ मूर्च्छा उत्तरायता कोटिमा.

टीका—‘एषसि णं’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ।—अयं भावः—मूर्च्छनानां सप्तसूहः षड्जादित्त्रिधा ग्रामो विज्ञेयः । एकैकस्मिन् ग्रामे तु सप्तसप्तमूर्च्छना भवन्ति । ततः सप्तस्वराणामन्यान्यस्वरविशेषान् उत्पादयतो गायकस्य एकविंशतिर्मूर्च्छना भणिताः । कर्ता च मूर्च्छित इव ताः करोतीति मूर्च्छना उच्यन्ते, मूर्च्छन्निव वासकर्ता ताः करोतीति मूर्च्छना उच्यन्ते इति । मङ्गीप्रभृतीनामेकविंशतिमूर्च्छनानां स्वरविशेषाः पूर्वगत-स्वप्राभृते भणिताः । इदानीं ते तद्विनिर्गतेभ्यो भरतादिनिर्मितशास्त्रेभ्यो विज्ञेयाः ॥सू० १६५॥

यच्चा । अह उत्तरायया कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा) छठी सुष्टूत्तरायामा और सातवीं मूर्च्छा उत्तरायता कोटिमा ।

भावार्थ—इसका भाव यह है कि मूर्च्छनाओं का जो समूह है उस समूह से युक्त जो षड्ज आदि ग्राम है, और वे तीन प्रकार के हैं । एक २ ग्राम में सात २ मूर्च्छनाएँ होती हैं । इस कारण सात स्वरों के अन्य अन्य विशेष स्वरों को उत्पन्न करने वाले गायक की २१ मूर्च्छनाएँ कही गई हैं गायनकर्ता मूर्च्छित हुए अथवा मानों के जैसा मूर्च्छित सा होकर—उन्हे करता है इसलिये मूर्च्छना कहलाती हैं । मङ्गी आदि २१ मूर्च्छनाओं के स्वर विशेष पूर्वसंबन्धी स्वर प्राभृत में कहे हुए हैं । इस समय वे, स्वर प्राभृत से निर्गत हुए शास्त्रों से जिन्हे कि भरत आदि—नाट्यकारों ने बनाये हैं । उनसे जाने जा सकते हैं ॥सू० १६५॥

भावार्थ—अनेना भावार्थ आ प्रभावे छे के मूर्च्छनाअनेना जे समूह छे अने ते समूहथी युक्त जे षड्ज वगेरे ग्रामो छे ते त्रय प्रकारना कडेवामा आव्या छे दरेके दरेके ग्राममा सात मूर्च्छनाओ डोय छे अथी सातस्वराना जुदा जुदा विशेष स्वराने उत्पन्न करनारा गायकनी जेम २१ मूर्च्छनाओ कडेवामा आवी छे. गायक मूर्च्छित (अलान) थयेलानी जेम अथवा जाले के मूर्च्छितनी जेम थछने तमने कडे छे. अटला माटे अओ मूर्च्छनाओ कडेवाय छे मङ्गी वगेरे २१ मूर्च्छनाओना स्वर विशेष पूर्वसंबन्धी स्वर प्राभृतमा कडेवामा आव्या छे. छमणुा ते स्वर प्राभृतथी निर्गत थयेला शास्त्रो वडे-के जेमने भरत वगेरे नाट्यशास्त्रकारोअे जनाव्या छे-जाली शकय छे. ॥सू० १६५॥

एते सप्तस्वराः कुतो भवन्ति ? इत्यादि प्रश्नचतुष्टयपूर्वाणि तदुत्तराणि प्रोच्यन्ते—

मूलम्—सत्त सरा कओ संभवंति ? गीयस्स का हवंति जोणी ? ।
कइ समया उस्सासा ? कइ वा गीयस्स आगारा ? ॥१॥ सत्त-
सरा नाभीओ हवंति, गीयं च रुइयजोणियं । पायसमा ऊसासा,
तिणिण य गीयस्स आगारा ॥२॥ आइमिउ आरभंता समुव्वहंता-
य मज्झगारंमि । अवसाणे तज्जविंतो, तिन्नि य गीयस्स
आगारा ॥३॥सू० १६६॥

छाया— सप्त स्वराः कुतः संभवन्ति ? गीतस्य का भवन्ति योनयः ? कति
समया उच्छ्वासाः ? कति वा गीतस्य आकाराः ? ॥१॥ सप्तस्वरा नाभितो,
भवन्ति, गीतं च रुदितयोनिकम् । पादसमाउच्छ्वासाः, - त्रयश्च गीतस्य आ-

ये सात स्वर कहां से होते हैं इत्यादि जो चार प्रश्न हैं उनका उद्गा-
वन करते हुए सूत्रकार उनका उत्तर देते हैं—

“ सत्तसरा कओ ” इत्यादि ।—

शब्दार्थ—(सत्तसरा कओ संभवंति) प्रश्न—सात स्वर कहां से उत्पन्न
होते हैं ? (गीयस्स का हवंति जोणी) गीत की जातियां क्या हैं ? (कइ
समया उस्सासा ?) गीत के उच्छ्वास कितने समय के प्रमाणवाले होते
हैं (कति वा गीयस्स आगारा) गीत के आकार कितने होते हैं ?

उत्तर—(सत्तसरनाभीओ हवंति) सात स्वर नाभि से उत्पन्न होते
हैं । (गीयं च रुइयजोणियं) गीत रुदितयोनिक होता है । (पायसमा ऊसासा)
पाद सम उच्छ्वास होते हैं । (गीयस्स तिणिण आगारा) गीत के तीन

ये सात स्वरो कयांथी प्रगट्थाय छे वगेरे ने चार प्रश्नो छे तेमजुं
उद्ग्रावन करतां सूत्रकार तेमना ववाणमां कडे छे के—

“ सत्तसरा कओ ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(सत्तसरा कओ संभवंति) प्रश्न सात-स्वरो कयांथी उत्पन्न थाय
छे ? (गीयस्स का हवंति जोणी) गीताना उत्पत्ति स्थानो कया छे ? (कइसमया
उस्सासा ?) गीताना उच्छ्वास केटला समयना प्रमाणवाणां छेय छे ? (कति वा गीयस्स
आगारा) गीताना आकारो केटला छेय छे ?

उत्तर—(सत्त सर नाभीओ हवंति) सात स्वरो नाभियोथी उत्पन्न थाय
छे. (गीयं च रुइयजोणियं) गीत रुदित योनिक छेय छे (पायसमा उसासा)

काराः ॥२॥ आदिमृदुम् आरभमाणाः समुद्रहन्तश्च मध्यकारे । अवसाने क्षपयन्तः,
प्रयोऽपि गीतस्य आकाराः ॥३॥ सू१६६॥

टीका—‘सत्त सरा’ इत्यादि—

एते षड्जादिसप्तस्वराः कुतः संभवन्ति=उत्पद्यन्ते ? तथा-गीतस्य
का योनयो=जातयो भवन्ति ? तथा गीतस्य कति समयाः=क्रियत्काल
प्रमाणा उच्छ्वासा भवन्ति ? तथा-गीतस्य कति वा=क्रियन्तो वा आकाराः=
आकृतयः-स्वरूपाणि भवन्ति ? इति चत्वारः प्रश्नाः । उत्तरयति-षड्जादयः
सप्त स्वरा नाभितो भवन्ति=जायन्ते । गीतं च रुदितयोनिकम्-रुदितं
योनिः समानरूपतया जाति र्यस्य तत्तथाविधं भवति, गीतं रोदनसमानं भवती
त्यर्थः । उच्छ्वासाश्च पादसमा भवन्ति । यावता समयेन वृत्तस्य पादः समाप्यते

आकार होते हैं । (आइमिड आरभंता, समुव्वहंता य मज्झगारमि,
अवसाणे तज्जर्वितो तिन्निय गीयस्स आगारा) सर्व प्रथम गीत मृदुध्वनि-
वाला होता है । मध्यभाग में वह तेजध्वनिवाला और अन्त में मन्द्र-
ध्वनिवाला होता है ।

भावार्थ-सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा “ षड्ज आदि सात स्वर कहां
से उत्पन्न होते हैं ? गीत की जातियां क्या है ? गीत के उच्छ्वासों के
समय का प्रमाण कितने हैं, और गीत किस आकार का होना है ?-”
इन चार प्रश्नों के उत्तर दिये हैं । इसमें उन्होंने ने यह प्रकट किया है
कि-ये पूर्वोक्त षड्ज आदि सात स्वर नाभिस्थान से उत्पन्न होते हैं ।
गीत रोने की जाति के जैसा होता है । यहां योनि शब्द का अर्थ जाति
है । छन्द का पाद जितने समय में समाप्त होता है उतना ही समय गीत के

पादसम उच्छ्वास डोय छे. (गीयस्स तिण्णि आगारा) गीतना त्रष्टु आकार
डोय छे. (आइमिड आरभंता, समुव्वहंता य मज्झगारमि अवसाणे तज्जर्वितो
तिन्निय गीयस्स आगारा) सर्व प्रथम गीत मृदुध्वनि युक्त डोय छे. मध्य-
भागमां ते तीमध्वनि युक्त डोय छे अने छेवटे मन्द्रध्वनि युक्त डोय छे.

भावार्थ-सूत्रकारे आ सूत्र वडे “ षड्ज ” वगेरे सात स्वरो कथांथी
उत्पन्न थया छे ? गीतना उत्पत्ति स्थानो क्या छे ? गीतना उच्छ्वासेनु’ प्रमाणु
केटलु’ छे ? अने गीतना आकार कथं जातना छे ? अे चार
प्रश्नोना जवाणे आपवामां आन्था छे आमां तेमणे स्पष्ट
कथुं छे के पूर्वोक्त षड्ज वगेरे सात स्वरो नाभिस्थानमांथी
उत्पन्न थया छे गीतनी जाति रुदन जेवी डोय छे. अही’ योनि शब्दने

तावत्समया गीते उच्छ्वासा भवन्तीत्यर्थः । तथा—गीतस्य आकाराश्च त्रयो भवन्ति । तानेवाह—आदिमृदुम् आदी प्रारम्भे मृदुं गीतध्वनिमारभमाणाः, मध्यकारे मध्यभागे समुद्रहन्तः=महतीं गीतध्वनिं कुर्वन्तः, च=पुनः अवसाने=अन्ते क्षपयन्तः=गीतध्वनिं मन्द्रीकुर्वन्तश्च गायका गीतं गायन्ति । अतो गाने स्वरः आदी मृदुः, मध्ये तारः, अन्ते च मन्द्रो भवति । ततश्च मृदुतारमन्द्रध्वनिरूपास्त्रय आकारा गीतस्य विज्ञेयाः ॥सू०॥१६६॥

सम्प्रति गीते हेयोपादेयादिकं प्रवक्तुमुपक्रमते—

मूलम्—छद्दोसे अट्टगुणे, तिणिण य वित्ताइं दो य भणिईओ।
जाणाहिइ सोगाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमज्झंमि॥१॥ भीयं
दुयं रहस्सं, गायंतो माय गाहि उत्तालं । काकस्सरमणुणासं, च
होति गीयस्स छद्दोसा॥२॥ पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहा
अविघुट्ठं । महुरं समं सुललियं अट्टगुणा होति गीयस्स॥३॥ उर-
कंठसिरपसत्थं, गिज्जइ मउयरिभियपदवच्चं । समतालपडु-
वखेवं, सत्तस्सरसीभरं गीयं॥४॥ निहोसं सारमंतंच, हेउजुत्तमलं-
कियं । उवणीयं सोवयारं च, मियं महुरमेव य ॥५॥ समं अच्च-

उच्छ्वासों का है । गानेवाले सबसे पहिले गीत को मृदुध्वनि से प्रारंभ करते हैं, फिर बीच में उसे जोर की आवाज से गाते हैं बाद में अन्त में मन्द्रध्वनि से उसे समाप्त करते हैं । इसलिये गाने में स्वर आदि में मृदु, मध्य में तार, और अन्त में मंद होता है—अतः मृदु, तार, और मन्द्र इन तीन ध्वनिरूप आकार गाने के जानने चाहिये ॥ सू० १६६ ॥

अर्थ नति छे. छन्दो पाठ (अरणु) नेटला समयमां समाप्त थाय छे तेट्ठो
न समय गीतना उच्छ्वासानो छे गायको सो पडेलां गीतने मृदुध्वनिथी
प्रारंभ करे छे. पछी मध्यमां मोटा स्वर तेने गाय छे त्यार पछी अन्ते
मन्द्रध्वनिमां तेने समाप्त करे छे. नेटला भाटे गाती वअते प्रारंभमां स्वर
मृदु मध्यमां स्वर तार अने अन्तमां स्वर मंद होय छे अथी मृदु, तार,
अने मन्द्र अथ त्रय ध्वनि रूप आकार गीतने संभवेने लेधअे, ॥सू०१६६॥

समं चैव, स्रवत्थ विसमं च जं । तिणिण वित्तपयाराइं, चउत्थं
 नोवलब्भइ ॥६॥ सक्रया पायया चैव, दुहा भणिईओ आहिया ।
 सरमंडलंमि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिया ॥७॥ केसी गायइ
 मधुरं केसी गायइ खरं च रुक्खं च । केसी गायइ चउरं, केसी
 य विलंबियं दुतं केसी ? ॥८॥ विस्सरं पुण केरिसी—सामा गायइ
 मधुरं, काली गायइ खरं च रुक्खं च । गौरी गायइ चउरं, काणा-
 विलम्बं दुतं च अंधा ॥९॥ विस्सरं पुण पिंगला, तंतिसमं
 तालसमं, पायसमं लयसमं गहसमं च । नीससिऊससियसमं,
 संचारसमं सरा सत्त ॥१०॥ सत्तसरा तओ गामा मुच्छणा
 एकवीसई । ताणा एगूणपण्णासं, सम्मत्तं सरमंडलं ॥११॥
 से त्तं सत्तनामे ॥सू० १६७॥

छाया— षड्दोषान् अष्टगुणान् त्रीणि च वृत्तानि द्वेच भणित्वा । ज्ञास्यति
 स गास्यति सुशिक्षितो रत्नमध्ये ॥१॥ भीतं द्रुतं ह्रस्वं गायन् मा च गाय उत्तालम् ।
 काकस्वरमनुनासं च भवन्ति गेयस्य षड्दोषाः ॥२॥ पूर्णं रक्तं च अलंकृतं च व्यक्तं
 तथा अविघुष्टम् । मधुरं समं सुललितम् अष्टगुणा भवन्ति गेयस्य ॥३॥ उरः
 कण्ठशिरः प्रशस्तं च गीयते मृदुक-रिभित-पदबद्धम् । समताल प्रत्युत्क्षेपं सप्त-
 स्वरसीभरं गीतम् ॥४॥ निर्दोषं सारवच्च, हेतुयुक्तमलंकृतम् । उपनीतं सोपचारं च,
 मितं मधुरमेव च ॥५॥ समम् अर्धसमं चैव, सर्वत्र विषमं च यत् । त्रयो वृत्त-
 प्रकाराः, चतुर्थः नोपलभ्यते ॥६॥ संस्कृताः प्राकृताश्चैव द्विविधा भणितय आ-
 ख्याताः । स्वरमण्डले गीयन्ते प्रशस्ता ऋषिभाषिताः ॥७॥ कीदृशी गायति मधुरं ?
 कीदृशी गायति खरं च रुक्षं च ? ॥ कीदृशी गायति चतुरं ? कीदृशी च विलम्बितं
 द्रुतं कीदृशी ? ॥८॥ विस्वरं पुनः कीदृशी ? श्यामा गायति मधुरं काली गायति
 खरं च रुक्षं च । गौरी गायति चतुरं काणा विलम्बं द्रुतं च अन्धा ॥९॥ विस्वरं
 पुनः पिङ्गला । तन्त्रीसमं तालसमं पादसमं लयसमं ग्रहसमं च । निःश्वसितोच्छ्व-
 सितसमं संचारसमं स्वराः सप्त ॥१०॥ सप्तस्वराः त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाः एकविंशति ।
 तानाः एकोनपञ्चाशत्, समाप्तं स्वरमण्डम् ॥ ११ ॥ तदेतत् सप्तनाम ॥ सू० १६७॥

टीका—‘छद्दोसे’ इत्यादि—

गीते हि षड् दोषाः, अष्टगुणाः, त्रीणि वृत्तानि, द्वे भणितौ च भवन्ति ।
 यो जन एतान् यथावद् ज्ञास्यति स एव सुशिक्षितः सन् रङ्गमध्ये=नाट्यशालायां
 गांस्यति ॥संप्रति तानाह ‘भीयं’ इत्यादिना । हे गायक ! गीतं गाय च त्वं भीतं=
 भयपूर्वकं च मा गाय=गानं मा कुरु, द्रुतं=त्वरितं च मा गाय, ह्रस्वम्=अल्पस्वरेण
 च मा गाय, ॥३॥ उत्तालम्-उद्गत =ओचित्यादूर्ध्वं गतस्तालो यत्र तत् उत्तालम्-
 अतितालमस्थानतालं चेत्यर्थः, तथा मा गाय । तालस्तु कांस्यादिशब्दो बोध्यः ।

अथ सूत्रकार गीत में हेय और उपादेय आदि को कहते हैं—

“छद्दोसे अष्टगुणे” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(छद्दोसे अष्टगुणे तिणिण्य वित्ताइं दो य भणिईओ) छद्दो
 दोषों को, अष्टगुणों को, तीन वृत्तों को और दो भणितियों को (जाणा-
 हिइ) जो यथावत् जानेगा (सो) वही (सुसिस्त्रिओ) सुशिक्षित-गान
 कला में निपुण हुआ व्यक्ति (रंगमज्झंमि) रंगशाला में (गाहिइ)
 गावेगा—। गीत के छद्दोष—इस प्रकार से हैं (भीयं दुयं रहस्सं गायंतो
 मा य गाहि उत्तालं, कागस्सरमणुणासंच होंति गीयस्स छद्दोसा) जब
 गायक गाना गाने को तैयार होने लगता है, तब उससे कहा जाता है
 कि—‘हे गायक ! तुम गीत गाओ तो सही—परन्तु भीत-भयभीत होकर
 मत गाना, गाने में उतावली मत करना, अर्थात् जल्दी २ से मत गाना,
 अल्प स्वर से मत गाना—उत्ताल मत गाना—अर्थात् अतिताल होकर

इसे सूत्रकार गीतमां हेय अने उपादेय वगेरेनुं कथन करे छे—

“छद्दोसे अष्टगुणे” इत्यादि—

शब्दार्थ—(छद्दोसे अष्टगुणे तिणिण्य वित्ताइं दो य भणिईओ) छद्दोषोने,
 अष्टगुणेने, त्रय वृत्तोने अने दो भणितियोने (जाणाहिइ) के सारी रीते नक्षुशे
 (सो) ते (सुसिस्त्रिओ) सुशिक्षित-गानकलामां निपुण थयेल कलाकार (रंगमज्झंमि)
 रंगशालामां (गाहिइ) गाशे गीतमां छद्दोषो आ प्रभाणे छे. (भीयं दुयं
 रहस्सं गायंतो माय गाहि उत्तालं कागस्सरमणुणासंच होंति गीयस्स छद्दोसा)
 न्यारे गायक गावा भाटे प्रस्तुत थाय छे त्यारे तेने कडेवामां आवे छे के
 हे गायक ! तमे गीत गावो ते भयभीत छे पण तमे भीता भीता गाशे
 नहि गावामां जोटी उतावण करशे नहि अटले के नदही नदही गाशे नहि,
 अल्प स्वरमां गाशे नहि, उत्ताल (तालवगर) गाशे नहि, अटले के अतिताल
 थयने के अस्थानताल थयने गाशे नहि. कागडाना स्वर नेवा स्वरथी गीत

तथा—काकस्वरम्—काकस्य स्वरइव स्वरो यस्मिन् गीते तद्, श्लक्षणाश्रयस्वरमित्यर्थः, तथा मा गाय । अनुनासम्—सानुनासिकं च मा गाय । यत्-एते भीतादयः पट्ट गेयस्य दोषा भवन्तीति । इत्थं दोषानुत्त्वा सम्प्रति गुणानाह—‘पूर्ण’ इत्यदिना । पूर्णम्—यत्र गीते सर्वाः स्वरकलाः गायकैः प्रदर्श्यन्ते तत्र ‘पूर्ण’—नामा गुणो भवति ॥१॥ रक्तम्—गायको गीतरागेण रक्तः=भावितः सन् यद् गीतं गायति तत्र ‘रक्त’ नामा गुणो भवति ॥२॥ अलङ्कृतम्—यत्र गाने गायकोऽन्यान्यस्फुटशुभस्वरविशेषैर्गीतमलङ्करोति तत्र ‘अलङ्कृत’—नामको गुणः ॥३॥ व्यक्तम्—यत्र गाने गायकोऽक्षरान् स्वरांश्च स्फुटतयोच्चारयति तत्र ‘व्यक्त’—नामा गुणः ॥४॥ अविघुष्टम्—विक्रोशनमिव यद्विस्वरं भवति तद् विघुष्ट—मुच्यते, यत्र विघुष्टं न

या अस्थानताल होकर नहीं गाना, काक के स्वर के समान स्वर वाले होकर गान को मत गाना, सानुनासिक मत गाना । क्योंकि ये भीत आदि छ गान के दोष हैं ।

इस प्रकार दोष को कहकर अब गुणों को सूत्रकार कहते हैं—(पूर्णं रक्तं च अलंकियं च वक्तं तथा अविघुष्टं, महुरं समं सुललियं, अट्टगुणा ह्येति गीयस्स) जिस गीत में समस्त स्वरकलाएँ गीतकार गायने कला को दिख लाते हैं, वहाँ पूर्ण नामका गुण होता है । गायक गीतरागसे भावित होता हुआ जिस गीत को गाता है वहाँ ‘रक्त’ नामका गुण होता है । जिस गान में गायक अन्य अन्य स्फुटस्वर विशेषों द्वारा गीत को सजाता है, वहाँ ‘अलंकृत’ नाम का गुण होता है । — जिस गान में गायक अक्षरों एवं स्वरों को स्फुटरूप से उच्चारित करता है, वहाँ ‘व्यक्त’ नाम का गुण होता है । विक्रोशन—गुस्से में आये हुए व्यक्ति के स्वर के जैसा अथवा चिल्लाते हुए व्यक्ति के स्वर के जैसा

गाशे। नडि नाकमां गाशे। नडि केमके आ भीत वगेरे छ गीतना दोषा छे. आ प्रभाषे गीतना दोषानुं स्पष्टीकरु करीने डवे सूत्रकार गुणे विषे कडे छे. के (पूर्णं रक्तं च अलंकियं च वक्तं तथा अविघुष्टं, महुरं समं सुललियं अट्ट गुणा-ह्येति गीयस्स) ने गीतमां गीतकार समस्त गायन कणानुं प्रदर्शन करे छे ते पूर्ण नामे गुण कडेवाय छे. गायक गीत रागथी भावित यर्धने ने गीतमे गाय छे, ते रक्त नामे गुण कडेवाय छे. ने गीतमां गायक भीत विशेष स्फुट स्वरोथी गीतने अलंकृत करे छे. ते अलंकृत गुण कडेवाय छे. ने गीतमां गायक अक्षरो. अने स्वरोने स्फुट रूपमां उच्चारे छे ते व्यक्त नामे गुण कडेवाय छे. विक्रोशन—गुस्सामां लरेथी व्यक्तनी नेम अथवा तो घांटा पाउती व्यक्तना स्वरनी नेम ने गानारने स्वर डोयते गान ‘विघुष्ट’ कडेवाय छे. ने गानमां विघुष्ट न

भवति तत्र 'अविघुष्ट' नामा गुणो बोध्यः॥५॥ मधुरम्-मधुमत्तकोकिलकल काक-
लीवत् यत्र गाने गायकस्य मधुरः स्वरो भवति तत्र 'मधुरस्वर'-नामा गुणः॥६॥
समम्-तालवंशस्वरादिसमनुगतो यत्र स्वरो भवति, तत्र 'सम'-नामको गुणः॥७॥
सुललितम्-स्वरघोलनाप्रकारेण शुद्धातिशयेन शब्दस्पर्शनेन श्रोत्रेन्द्रियस्य सुखो-
त्पादनाद् वा, ललतीव यत् तत् सुललितम्-सुकुमारमित्यर्थः, अयं गेयस्याष्टमो
गुणः॥८॥ एते अष्ट गुणा गीतस्य भवन्ति । एतद्विरहितं गीतं तु गातमेव न
भवति । तच्च गीताभासं विज्ञेयम् ॥ इतोऽन्येऽपि गीतगुणाः सन्ति, तान् प्रदर्शयि-
तुमाह-'उरकंठ' इत्यादि । च=पुनः उरःकण्ठशिरःप्रशस्तम्-उरःकण्ठशिरसां
द्वन्द्वः, ततः प्रशस्तेन सह तृतीयातत्पुरुषः । एवं च-उरः प्रशस्तं कण्ठप्रशस्तं शिरः
प्रशस्तमिति शुद्धमिति पदत्रयं लभ्यते । तत्र-उरसि यदा विशालः स्वरो भवति,

जो गान स्वर विहीन होता है, वह 'विघुष्ट' गान कहलाता है । जिस
गान में विघुष्ट नहीं होता वहां, 'अविघुष्ट' नाम का यह गुण होता है ।
वसन्त में मत्त कोकिलाकी कलकाकली के जैसा जिस गान में गायक का
स्वर मधुर होता है, उस गान में 'मधुर' स्वर नाम का गुण होता है ।
जिस गान में ताल, वंश-स्वर आदि से समनुगत स्वर होता है उस
गान में 'सम' नामका गुण होता है । स्वर घोलना प्रकार से शुद्धाति-
शय से अथवा शब्दस्पर्शन से जो श्रोत्रेन्द्रिय को सुखोत्पादक होता है
और इसी कारण जो विशेष प्रिय लगता है वह सुललित है-यह गान
का अष्टमगुण है । इस प्रकार ये गीत के ८ गुण हैं । इन गुणों से रहित
हुआ गीत (गान) गीत ही नहीं कहलाता है । वह तो गीताभास है ।
इन गुणों से अन्य और भी गीत के गुण हैं, जो इस प्रकार से हैं (उर-
कंठशिरपसत्थं) उरःप्रशस्त कंठप्रशस्त और शिरःप्रशस्त, गान का

હોય ત્યાં 'અવિઘુષ્ટ' નામક ગુણ કહેવાય છે. વસન્તમાં મત્ત કોયલની કલ-
કાકલીની જેમ જે ગીતમાં ગાયકનો સ્વર મધુર હોય છે, તે ગીતમાં મધુર
સ્વર નામે ગુણ હોય છે જે ગીતમાં તાલ, વંશ, સ્વર વગેરેથી સમનુગત
સ્વર હોય છે તે ગીતમાં 'સમ' નામક ગુણ હોય છે. સ્વરઘોલના પ્રકારથી,
શુદ્ધાતિશયથી અથવા શબ્દ સ્પર્શનથી જે શ્રોત્રેન્દ્રિયને સુખ અર્પે છે અને
એથી જે વિશેષ પ્રિય લાગે છે તે સુલલિત છે આ ગીતનો આઠમો ગુણ છે
આ પ્રમાણે આ ગીતના આઠ ગુણો છે. આ ગુણોથી હીન ગીત ગીત કહી
શકાય જ નહીં તે તો ગીતાભાસ છે. આ ગુણોની સાથે સાથે બીજા પચ
કેટલાક ગીતના ગુણો છે તે આ પ્રમાણે છે-(ઉરકંઠશિરપસત્થં) ઉરઃપ્રશસ્ત,
કંઠપ્રશસ્ત અને શિરઃપ્રશસ્ત ગીતનો વિશાળ સ્વર જ્યારે વક્ષસ્થળમાં પુરિત

तदा-उरःप्रशस्तं विज्ञेयम् । यदा च कण्ठे स्वरो वर्तितोऽतिस्फुटितश्च तदा कण्ठ प्रशस्तम् । यदा च शिरसि प्राप्तः स्वरः स चेदानुनासिक्यरहितस्तदा शिरःप्रशस्तम् । यद्वा-उरःकण्ठशिरस्तु कफरहितेषु सत्सु यद् प्रशस्तं गीतं भवति तद्-उरः कण्ठशिरःप्रशस्तम् । तथा-मृदुक रिमितपदवद्धम्-मृदुना=कोमलेन स्वरेण यद् गीयते तद् मृदुकम्, यत्र अक्षरेषु घोलनया संचरन् स्वरो रङ्गतीव तद् घोलना-बहुलं रिमितम्, पदैः=गेयपदैः वद्धम्=विशिष्टरचनया रचितं-पदवद्धम् । पदत्रयस्य कर्मधारयः । तथा च-समतालप्रत्युत्क्षेपम्-तालः=हस्ततालसमुत्थः शब्दः, प्रत्यु-

विशालस्वर जब वक्षःस्थल में भर जाता है तब वह उरःप्रशस्त गान कहलाता है, गान का यह उरःप्रशस्त गुण है । गान का स्वर जब कंठ में भर जाता है और वह अतिस्फुट होता है तब वह कण्ठ प्रशस्त गान कहलाता है । गान का यह कण्ठप्रशस्त गुण है । जब गान का स्वर शिर में जाकर यदि अनुनासिक से वह रहित हो जाता है तब वह गान शिरःप्रशस्त कहलाता है । गान का यह शिरः-प्रशस्त गुण है । अथवा-कफ रहित होने पर उर, कंठ और शिर ये सब प्रशस्त रहते हैं, उस समय गाया गया गीत भी प्रशस्त होता है । ऐसा गीत उरः कंठ शिरःप्रशस्त कहलाता है । (मउयरिभिधपदवद्धं) तथा मृदुक रिमित और पदवद्ध, भी गान के ३ तीन गुण हैं-जो गान कोमल स्वर-से गाया जाता है, 'मृदुक' गुणवाला गाना है । जहां अक्षरों में घोलना से संचार करता हुआ स्वर चलता रहता है ऐसा वह घोलना बहुल गान 'रिमित' गुणवाला गान कहा जाता है । जिस गान

धर्ष ङय छे त्पारे ते उरःप्रशस्त गीत कडेवाय छे. गीतने आ उरःप्रशस्त शुष्ण छे गानने। स्वर न्यारे कंठप्रदेशमां लरार्ध ङय छे अने ते अतिस्फुट डोय छे त्पारे ते कंठप्रशस्त गीत कडेवाय छे गान ने आ कंठप्रशस्त शुष्ण छे. न्यारे गानने स्वर भस्तकमां न्धने ते अनुनासिक विनाने धर्ष ङय छे त्पारे ते गान शिरःप्रशस्त कडेवाय छे गानने आ शिरःप्रशस्त शुष्ण छे. अथवा कक्ष रहित डोवा ङाड उर, कंठ, अने शिर आ ङधा प्रशस्त रडे छे ते वभते गवायेल गीत पष्ण प्रशस्त डोय छे अेपुं गीत उरः कंठ, शिरःप्रशस्त कडेवाय छे. (मउयरिभिधपदवद्धं) तेमज मृदुक रिमित अने पदवद्ध आ प्रभाषे पष्ण गीतना त्रष्ण शुष्णे छे ने गान डोमण स्वरमां गवाय छे ते मृदुक शुष्ण युक्त गान कडेवाय छे न्यां अक्षरमां घोलनाथी संचरष्ण करतो स्वर आलतो रडे छे अेपुं ते घोलन ङहुल गीत 'रिमित' शुष्ण युक्त गीत कडेवाय छे ने गीतमां पढोनी रचना विशिष्ट डोय छे, ते 'पद-

ત્ક્ષેપઃ=મુરજકાંસ્યાદીનાં ગીતોપકારકાણાં ધ્વનિઃ, નર્તકીપદપ્રક્ષેપલક્ષણો વા, સપ્તે તાલપ્રત્યુક્ષેપૌ યત્ર તત્ । તથા-સપ્તસ્વરસીમરમ્-સપ્ત સ્વરાઃ સીમરન્તિ=અક્ષર-દિમિઃ સહ સમા યત્ર ભવન્તિ તત્ । एवं विधं यद् गीतं गीयते तदेव सुगीतं भवति । इत्थं च उरःकण्ठ शिरःप्रशस्तत्वादयोऽपि गीतगुणा बोध्याः 'सप्त-स्वरसीमरम्' इत्युक्तं, तत्र ये सप्त स्वरास्ते क्वचित् एवमुक्ताः—

“अक्षरसमं पदसमं तालसमं च लयसमं ग्रहसमं ।

नीससिभोससियसमं संचारसमं सरा सत् ॥

છાયા—અક્ષરસમં પદસમં તાલસમં ચ લયસમં ગ્રહસમમ્ ।

निःश्वसितोच्छ्वसितसमं सञ्चारसमं स्वराः सप्त ॥इति॥

અયમર્થઃ—અક્ષરસમમ્—યત્ર દીર્ઘેઽક્ષરે દીર્ઘો ગીતસ્વરઃ ક્રિયતે, હ્રસ્વે હ્રસ્વઃ, પ્લુતે પ્લુતઃ, સાનુનાસિકે સાનુનાસિકઃ, તદક્ષરસમમ્ ॥૧॥ પદસમમ્—યત્ પદં=ગીત-

में पदों की रचना विशिष्ट होती है, वह 'पदयुद्ध' गान है । (समताल-पङ्कखेवं) जिस गान में ताल-हस्तताल से उत्पन्न हुआ शब्द और प्रत्युत्क्षेप-मृदंग कांस्य आदि का जो कि गीत के उपकारक होते हैं उनकी ध्वनि अथवा नर्तकीजन का पादप्रक्षेप ये दोनों जिसमें एक साथ होते हैं वह समताल प्रत्युत्क्षेप गान है । यह गान का गुण है । (सप्तस्वरसीमरं गीयं) जिस गान में सात स्वर अक्षरों के साथ समान होते हैं वह गान 'सप्तस्वरसीमर' कहलाता है । इस प्रकार का जो गाना गाया जाता है वही सुगीत (गीत) कहलाता है । सप्तस्वर सीमर में जो सात स्वर कहे गये हैं, वे कहीं-पर इस प्रकार से कहे गये हैं—अक्षर-सम१, पदसम२, तालसम३, लयसम४, ग्रहसम५, निःश्वसितोच्छ्वसित-सम६, और संचारसम ७, जिस गान में दीर्घ अक्षर पर दीर्घस्वर, ह्रस्व अक्षर पर ह्रस्व स्वर प्लुत अक्षर पर प्लुत स्वर और सांनुनासिक

પદ' ગીત છે. (સમતાલ પઙ્કલેવં) જે ગીતમાં તાલ-હસ્તતાલથી ઉત્પન્ન થયેલ શબ્દ અને પ્રત્યુત્ક્ષેપ-મૃદંગ કાંસ્ય વગેરેનો કે જે ગીતના માટે ઉપકારક હોય છે તેમનો ધ્વનિ-અથવા નર્તકીઓનું પાદપ્રક્ષેપણ અને બંને બેમાં એકી સાથે હોય છે તે સમતાલ પ્રત્યુત્ક્ષેપ ગીત છે. આ ગીતનો ગુણ છે. (સપ્તસ્વરસીમરં ગીયં) જે ગીતમાં સાતસ્વર અક્ષરોની સાથે સમાન હોય છે તે ગીત 'સપ્તસ્વર સીમર' કહેવાય છે. આ પ્રમાણે જે ગીત ગવાય છે તે સુગીત (ગીત) કહેવાય છે. 'સપ્તસ્વર સીમર'માં જે સાત સ્વરો કહેવા છે તેઓ કોઈક સ્થાને આ પ્રમાણે પણ કહેવામાં આવ્યા છે—૧ અક્ષરસમ, ૨ પદસમ, ૩ તાલસમ, ૪ લયસમ, ૫ ગ્રહસમ, ૬ નિઃશ્વસિતોચ્છ્વસિતસમ, અને ૭ સંચારસમ, જે ગીતમાં દીર્ઘઅક્ષર પર દીર્ઘસ્વર, હ્રસ્વઅક્ષર પર હ્રસ્વ-સ્વર, પ્લુત અક્ષર પર પ્લુતસ્વર અને સાંનુનાસિક પર સાંનુનાસિક સ્વર

पदम् यत्र स्वरे अनुपाति भवति तत्रैव यदा गीयते तदा पदसमं भवति ॥२॥
 तालसमम्—यत् परस्पराभिहतहस्ततालस्वरानुसारिणा स्वरेण गीयते तत्ताल-
 समम् ॥३॥ लयसमं शृङ्ग—दावाद्यन्यतमवस्तुमयेनाङ्गुलीकोशेन समाहते तन्व्यादौ
 यस्तरस्वरप्रकारः स लयः, तमनुसरता स्वरेण यद् गीयते तदलयसमम् ॥४॥
 ग्रहसमम्—प्रथमतो वंशतन्व्यादिभिर्यः स्वरो गृहीतः स ग्रहः, तत्समेन स्वरेण यद्
 गीयते तद् ग्रहसमम् ॥५॥ निःश्वसितोच्छ्वसितसमम्—निःश्वसितोच्छ्वसितमान-
 मनतिक्रमतो यद् गेयं तद् निःश्वसितोच्छ्वसितसमम् ॥६॥ संचारसमम्—वंशतन्व्या-
 दिष्वेव अङ्गुलीसंचारसमं यद् गीयते तत्संचारसमम् । एवमेते सप्तस्वरा भवन्ति ।

परं सानुनासिक स्वर होता है वह अक्षरसम है । जिस स्वर में जो गीतपद अनुपाती होता है, वह गीत पद जब वहीं पर गाया जाता है तब पदसमस्वरवाला गीत होता है । जो गाना परस्पराभिहत हस्तताल के तालस्वर के अनुसारवाले स्वर से गाया जाता है वह गाना तालसम स्वरवाला कहलाता है । शृंग अथवा दारु काष्ठ आदि किसी एक वस्तु के बने हुए अंगुली कोश से तंत्री आदि के बजाने पर जो ध्वनि निकलती है, उसका नाम लय है । उस लय का अनुसरण करनेवाले स्वर से जो गाना गाया जाता है वह लयसमस्वरवाला गाना कहलाता है । वंशतंत्री आदिकों द्वारा जो स्वर पहिले से गृहीत कर लिया जाता है उसका नाम ग्रह है । इस ग्रह के समान स्वर से जो गीत गाया जाता है वह ग्रहसम स्वरवाला गीत कहलाता है । निःश्वास उच्छ्वास के प्रमाणानुसार जो गाना गाया जाता है वह निःश्वसितोच्छ्वसित सम है । वंशतंत्री आदि को

डोय छे ते अक्षरसम छे. जे स्वरमां जे गीत पद अनुपाती डोय छे, ते गीत पद ज्यारे त्यांज गावामां आवे छे, त्यारे पद समस्वरवाणुं गीत कडेवाय छे. जे गीत पर स्वराभिहत हस्ततलेना तालस्वर ने अनुसरता स्वरथी गवाय छे. ते गीत तालसम स्वरवाणुं कडेवाय छे शृंग अथवा दारु-काष्ठ वगेरे डोय पणु अेक वस्तुना भनेला अंगुली कोशथी तंत्री वगेरे वगाडवाथी जे ध्वनि नीकणे छे तेनुं नाम लय छे ते लयने अनुसरनार स्वरथी जे गीत गवाय छे ते लयसमस्वरवाणुं गीत कडेवाय छे. वंश तंत्री वगेरे वडे जे स्वर पहिलाथी जे गृहीत करवामां आवे छे तेनुं नाम ग्रह छे. आ अडना समान स्वरथी जे गीत गवाय छे ते अडसम स्वर युक्त गीत कडेवाय छे. निःश्वास उच्छ्वासना प्रमाणु मुजणु जे गीत गवाय छे ते निःश्वसितोच्छ्व-

अत्रेदं बोध्यम्-एकोऽपि गीतस्वरोऽक्षरपदादिभिः सप्तभिः स्थानैः सह समत्वं प्रतिपद्यमानः सप्तधात्वं भजते, अतोऽक्षरसमादयः सप्तस्वरा भवन्तीति । अत्र तु सूत्रोपान्ते 'तंतिसमं तालसमं' इति गाथया सप्तस्वरा उच्यन्ते इति बोध्यम् । तथा गीते यः सूत्रबन्धः सोऽष्टगुण एव कर्तव्य इति तानाह-'निर्दोसं' इत्यादि । निर्दोषम्='अलिप्तमुत्रघायजणयं' इत्यादि द्वात्रिंशद्दोषरहितम् १, सारवत्=विशिष्टार्थयुक्तम् २ हेतुयुक्तम्-गीतानामर्थबोधोऽनायासेन श्रोतॄणां भवत्विति हेतुमुपलक्ष्य यद् रचितं गीतं तत्, प्रासादगुणयुक्तमित्यर्थः ३, अलङ्कृतम्-उपमाद्यलङ्कारयुक्तम् ४,

के ऊपर ही जो अंगुली के संचार के साथ २ गाना गाया जाता है, वह संचारसम है । इस प्रकार ये सात स्वर होते हैं । यहां पर ऐसा जानना चाहिये कि-एक ही गीत स्वर अक्षर पद आदि सात स्थानों के साथ उनकी समानता को पाता हुआ सात प्रकार का हो जाता है । इसलिये अक्षरसम आदि सात स्वर होते हैं । यहां तो सूत्र के उपान्त में "तंतिसमं, तालसमं" इस गाथा द्वारा सातस्वर कहे गये हैं । तथा गीत में जो सूत्रबन्ध-किया जावे वह आठ गुणवाला ही किया जाना चाहिये । आठ गुण इस प्रकार से हैं-(निर्दोसं सारमंतंच हेतुजुत्तमलंकियं उवणीयं सोवयारंच मियं महुरमेव य) निर्दोष-अलीक, उपघात जनक इत्यादि ३२ दोषों से रहित होना इसका नाम 'निर्दोष' है । सारवत्-विशिष्ट अर्थ से युक्त होना इसका नाम 'सारवत्' है । श्रोताजनों को अनायास ही गीत के अर्थ का बोध हो जावे, इस हेतु को ध्यान में रख कर जो गीत रचा गया हो वह 'हेतुयुक्त' है । तात्पर्य यह है कि

सित सम छे वंश तंत्री वगेरेनी उपर ७ ७ आंगणीना संधारनी साथे साथे गवाय छे ते 'संधारसम' छे. आ प्रभाण्ये आ भधा सात थाय छे. अही ओम समन्तुं जेधजे के दरेक गीत स्वर अक्षर पद वगेरे सात स्थानोनी साथे साथे तेमनी समानता भेगवतुं सात प्रकारनुं थर् भय छे. अही सूत्रना उपान्तमां "तंतिसमं तालसमं" आ गाथा वडे सात स्वरो कडेवामां आन्या छे, तेमन् गीतमां जे सूत्रबन्ध करवामां आवे ते आठ गुण युक्त ७ होवे जेधजे आठ गुणो आ प्रभाण्ये छे-(निर्दोसं सारमंतंच हेतुजुत्तमलंकियं उवणीयं सोवयारंच मियं महुरमेवयं) निर्दोष-अलीक, उपघातजनक वगेरे अत्रीश दोष रहित थपुं ते निर्दोष छे. सारवत्-विशिष्ट अर्थथी युक्त होय ते सारवत् छे. अलङ्काराने अनायास ७ गीतना अर्थनुं जान थाय जे वातने ध्यानमां राणीने जे गीतनी रचना करवामां आवे छे ते 'हेतुयुक्त' कडेवाय छे मतलब जे छे के गीत प्रासाद गुण युक्त होयुं जेधजे

उपनीतम्—उपनयनिगमनयुक्तम्—उपसंहारयुक्तमित्यर्थः५, सोपचारम्—क्लिष्टविरुद्ध-
लज्जास्पदार्थावाचकं सानुप्रासं वा गीतम् ६, मितम्—अतिवचनविस्तररहितं,
संक्षिप्ताक्षरमित्यर्थः७, तथा—मधुरम्—माधुर्यगुणसमन्वितं—सुश्रव्यशब्दार्थयुक्त-
मित्यर्थः८, एतादृशं यत् गीतं तदेव गानयोग्यं भवति । अथ यदुक्तं त्रीणि वृत्ता-
नीति तान्याह—‘समं’ इत्यादि । यत्र वृत्ते चतुर्ष्वपि चरणेषु समानि अक्षराणि
भवन्ति, तद् वृत्तं समम् । यत्र प्रथम तृतीययोर्द्वितीयचतुर्थयोश्च चरणयोः सामान्या-
क्षराणि भवन्ति तदर्धसमम् । तथा—यत्र=वृत्ते सर्वत्र=चतुर्ष्वपि चरणेषु अक्षराणां

गीत को प्रासाद गुण युक्त होना चाहिये । उपमा आदि अलंकारों से
जो गीत सजा हुआ होता है वह गीत ‘अलंकृत गुण वाला कहलाता है
जो गीत उपसंहार से युक्त हो जाता है वह उपनीत गुण युक्त गीत
माना जाता है । जो गीत क्लिष्ट विरुद्ध एवं लज्जास्पद पदार्थ का वाचक
नहीं होता अथवा अनुप्रास युक्त होता है वह ‘सोपचार’ गीत
कहलाता है । जिस गीत में वचनों का विस्तार अधिक नहीं होता है
अर्थात् जो गीत संक्षिप्त अक्षरों वाला होता है, वह ‘मित’ गुण वाला
गान है । जो गान सुश्राव्य शब्द और अर्थ वाला होता, है वह
मधुर गुण युक्त गान कह लाता है । ऐसा जो गान —
होता है वही गान योग्य होता है । गीत की तीन भणितियां इस प्रकार
से हैं—(समं अद्धसमं चैव सव्वत्थविसमं च यं, तिण्णि वित्तपयाराइं
चउत्थं नोवलम्भइ) जिस वृत्त में चारों चरणों में समान अक्षर होते
हैं, वह ‘समवृत्त’ है । जिस वृत्त में प्रथम तृतीय पादों में और द्वि-
तीय चतुर्थ पादों में समान अक्षर होते हैं वह अर्द्धसमवृत्त है । तथा

उपमा वगेरे अलंकारेथी ने गीत अलंकृत डोय छे ते गीत अलंकृत शुष्-
वाणुं कडेवाय छे. ने गीत उपसंहारथी युक्त डोय छे ते उपनीत शुष् युक्त
गीत कडेवाय छे ने गीत क्लिष्ट, विरुद्ध, अने लज्जास्पद पदार्थ वाचक न
डोय अने अनुप्रास युक्त डोय छे ते ‘सोपचार’ गीत कडेवाय छे. ने गीतमा
वचनविस्तार वधारे न डोय अटवे के ने गीत संक्षिप्त अक्षरे युक्त डोय
छे, ते ‘मित’ शुष्युक्त गीत छे. ने गीत सुश्राव्य शब्द अने अर्थवाणुं
डोय छे ते मधुर शुष् युक्त गीत कडेवाय छे. अणुं ने गीत डोय छे ते
गीत गाव लायक डोय छे गीतनी त्रुष् लक्ष्मितीअा आ प्रभाणुं छे—(समं
अद्धसमं चैव सव्वत्थ विसमं च यं, तिण्णि वित्तपयाराइं चउत्थं नोवलम्भइ)
ने वृत्तमां थारे यरणेमां सम अक्षरे डोय छे ते ‘समवृत्त’ छे ने वृत्तमां
प्रथम-तृतीय पादमां अने द्वितीय चतुर्थ पादमां समान अक्षर डोय छे ते

वैषम्यं तद्वृत्तं विषमम् । एते त्रय एव वृत्तप्रकारा भवन्ति, चतुर्थे वृत्तं तु नोपलभ्यते ।
 तथा-भणितयः=भाषाः संस्कृताः प्राकृताश्च द्विविधा द्विप्रकारका एव आख्याताः=
 उक्ताः । एता ऋषिभाषिता अतएव प्रशस्ता भाषा बोध्याः । अत एव एताः
 स्वरमण्डले=षड्जादि स्वरसमूहे गीयन्ते ॥ अत्र गीतविचारः प्रस्तुतः, अतः
 'कीदृशी स्त्री कथं गायति?' इति पृच्छति-'केसी गायइ' इत्यादिना-कीदृशी
 स्त्री मधुरं=मधुरस्वरेण गायति? च=पुनः कीदृशी स्त्री खरं=खरस्वरेण रुक्षं=
 रुक्षस्वरेण च गायति? कीदृशी स्त्री चतुरं=चातुर्येण-गीतशास्त्रोक्तयथाविधि

जिस वृत्त में चारों ही पादों में अक्षरों की विषमता रहती है, वह
 'विषमवृत्त' है। ये तीन वृत्तों के प्रकार हैं और चतुर्थ प्रकार वृत्त का
 कोई नहीं है। (सक्कया पायया चैव दुहा भणिईओ आहिया। सरमंड-
 लंमि गिज्जंते पसत्था इस्सिभासिया) तथा-भणिति-भाषा-संस्कृत
 और प्राकृत के भेद से दो प्रकार की ही कही गई है। ये ऋषिजनों द्वारा
 भाषित हुई हैं, इसलिये इन्हे प्रशस्त भाषा जानना चाहिये। प्रशस्त
 भाषा होने के कारण ही ये दोनों प्रकार की भाषाएँ षड्ज आदि स्वर
 समूह में गाई जाती हैं। यहाँ पर गीत का विचार चल रहा है इसलिये
 पूछा जा रहा है कि-कैसी स्त्री किस प्रकार से गाती है? इसी बात को
 सूत्रकार-अथ प्रकट कर रहे हैं-(केसी गायइ मधुरं) कैसी स्त्री गीत को
 मधुर स्वर से गाती है? (केसी गायइ खरं च रुक्खं च) कैसी स्त्री गीत
 को खर स्वर से गाती है? कैसी स्त्री गीत को रुक्षस्वर से गाती है?
 (केसी गायइ चउरं? केसी य विलंबियं दुतं केसी?) कैसी स्त्री चतुराई

'अर्द्ध-समवृत्त' छे तेमज्जे जे वृत्तमां आदेश्यार अरथोमां अक्षरोनी विष-
 मता रडे छे ते 'विषमवृत्त' छे आ त्रणे वृत्तोना प्रकार छे अे शिवाय
 वृत्तने अेथे प्रकार नथी. (सक्कया पायया चैव दुहा भणिईओ आहिया।
 सरमंडलंमि गिज्जंते पसत्था इस्सिभासिया) तेमज्जे भणिति-भाषा-संस्कृत
 अने प्राकृतना लेदथी जे प्रकार नी कडेवामां आवी छे अे ऋषिओ वडे
 भाषित थयेथी छे अेथी तेने प्रशस्त भाषा जणुवी जेथअे अे प्रशस्त
 भाषा होवा जहल ज्ज आ ज्जने जतनी भाषाओ षड्ज वगेरे स्वर समूहोमां
 गवाय छे अडी गीत संभंधी प्रकटण आवी रथुं छे अेथी आ प्रभाओ
 पूछवामां आवी रथुं छे के कथं स्त्री केवी रीते गाय छे? अेज्ज वातने सूत्र-
 कार डवे प्रकट करे छे. (केसी गायइ मधुरं) केवी स्त्री मधुर स्वर गीत गाय
 छे? (केसी गायइ खरं च रुक्खं च) कथं स्त्री गीतने अर स्वरथी गाय छे?
 कथं स्त्री रुक्षस्वरथी गीत गाय छे? (केसी गायइ चउरं? केसी विलंबियं

स्वरविधानेन गायति ? कीदृशी च स्त्री विलम्बितं=मन्धर (मन्द) स्वरेण गायति ? कीदृशी स्त्री द्रुतं=द्रुतस्वरेण गायति ? तथा-कीदृशी च स्त्री विस्वरं=विकृतं स्वरं कृत्वा गायति ? उत्तरयति-‘सामा’ इत्यादिना । व्याख्या स्पष्टा । नवरं-पिङ्गला-कपिला । ‘सप्तसीभरम्’ इति यदुक्तम्, तत्र सप्त स्वराः के ? इति दर्शयति-‘तंतीसमं’ इत्यादि-तन्त्रीसमम्-तन्त्री-वीणा, तस्याः शब्देन समं=तुल्यं मिलितं

से अर्थात् गीत शास्त्र में कथित विधि के अनुसार स्वरविधान से गाती है ? कैसी स्त्री विलम्बित-मन्धर स्वर-से गाती है ? कैसी स्त्री द्रुतस्वर से गाती है ? (विस्वरं पुण केरिस्त्री) और कैसी स्त्री विकृत स्वर से गाती है अर्थात् स्वर को विकृत कर गाती है ?

उत्तर-(सामा गायइ महुरं) श्यामा-षोडशवार्षिकी-स्त्री मधुर-स्वर से गाती है (काली गायइ खरं च रुक्खं च) काली कृष्णरूप-वाली स्त्री गीत को खर से और रुक्ख स्वर से गाती है । (गोरी गायइ चउरं) गौरवर्णसंपन्ना स्त्री गीत को चतुराई से गाती है । (काणा विलम्बं द्रुतं च अंधा) काणी स्त्री-एकाक्षी नारी गीत को मंद स्वर से गाती है । अंधी स्त्री गीत को द्रुतस्वर से गाती है । (विस्वरं पुण पिंगला) और जो कपिला-कपिल वर्ण वाली स्त्री होती है वह गीत को विकृत स्वर से गाती है । (तंतिसमं, तालसमं, पायसमं, लयसमं, गहसमं च नीससिजस-सियसमं संचारसमं सरा सत्त) तन्त्रीसम-तन्त्री-वीणा के समान

द्रुतं कैसी ?) कर्ष स्त्री अतुरताथी अेटवे डे गीतशास्त्रमां कथित विधि मुञ्ज स्वरविधानथी गाय छे ? कर्ष स्त्री विलम्बित-मन्धर-स्वरथी गीत गाय छे ? कर्ष स्त्री द्रुतस्वरथी गीत गाय छे ? (विस्वरं पुण केरिस्त्री) अने कर्ष स्त्री विकृत स्वरथी गीत गाय छे अेटवे डे स्वरने विकृत करीने गाय छे ?

उत्तर-(सामा गायइ महुरं) श्यामा-षोडश वार्षिकी अेटवे डे सोण वर्षनी स्त्री मधुर स्वरथी गीत गाय छे. (काली गायइ खरं च रुक्खं च) काणी कृष्ण रूपवाणी-काणारंगनी-स्त्री भर अने रुक्ख स्वरथी गाय छे. (गोरी गायइ चउरं) गौरवर्ण संपन्ना अेटवे डे गोरी स्त्री अतुराधथी गीत गाय छे. (काणा विलम्बं द्रुतं च अंधा) काणी स्त्री-अेक आंभवाणी-स्त्री मंद स्वरथी गीत गाय छे आंधणी स्त्री द्रुतस्वरथी-उतावणथी-गीत गाय छे. (विस्वरं पुण पिंगला) अने ने कपिला कपिलवर्णवाणी स्त्री डोय छे ते विकृत स्वरथी गीत गाय छे. (तंतिसमं तालसमं, पायसमं, लयसमं गहसमं च नीससिजससियसमं संचारसमं सरा सत्त)-तन्त्री सम-तन्त्री वीणा-ना शब्द नेवे अथवा तेना स्वरनी

વા ગેયમ્ । એવમગ્રેડપિ ગેયમિતિ સંવન્ધનીયમ્ । ‘તાલસમમ્’ इत्यारभ्य संचार-
सममम्’ इत्यन्तं पदषट्कं पूर्वं व्याख्यातम् । गेयस्वरयोरन्वयान्तरत्वादाह—‘सत्त सरा’
इति । इत्थं स्वरा बोध्या इति भावः । सम्प्रति समस्तं स्वरमण्डलं संक्षेपेणाह—
षड्जादयः सप्त स्वरा विज्ञेयाः, ग्रामाश्च त्रयः, मूर्च्छनाश्च एकत्रिंशतिः तता,
तन्त्री, तान इति पर्यायाः भण्यन्ते, तत्र षड्जादिषु स्वरेषु प्रत्येकं सप्तभिस्तानै-
र्गीयते इत्यतः सप्त तन्त्रिकायां वीणायामेकोनपञ्चाशत्ताना भवन्ति । एवमेव
एकतन्त्रिकायां त्रितन्त्रिकायां वा वीणायां कण्ठेनापि वा गीयमाना एकोनपञ्चाश-

अथवा उसके साथ मिला हुआ जो स्वर आता है , वह तंत्री समस्वर
है । इसी प्रकार से ताल सम आदि के साथ भी “गेय” इसका संबंध
कर लेना चाहिये । गेय और स्वर में अर्थ भेद नहीं है । इसलिये गेय
से यहाँ स्वर लेना चाहिये । इस प्रकार ये सात स्वर हैं । तालसम से
लेकर संचारसम तक के ६ पदों की व्याख्या पहिले करदी गई है ।
(सत्तसरा तओ गामा मुच्छणा एकवीसई, ताणा एगूणपण्णासं सम्मत्तं
सरमंडलं) इस प्रकार संक्षेपसे समस्तस्वर मंडल सातस्वर, तीन ग्राम
इक्कीस मूर्च्छना और ४९ तान इस प्रकार से हैं । तता, तंत्री, तान, ये
सब पर्यायवाची-शब्द हैं । षड्ज आदि सात स्वरों में से प्रत्येक स्वर
सात तानों से गाया जाता है । इसलिये सप्त तंत्रिका वाली वीणा में ४९
ताने होती हैं । इसी प्रकार एक तंत्रिका वाली अथवा त्रितंत्रिकावाली
वीणा में कंठ से भी गाई गई ताने ४९ ही होती हैं । इस प्रकार सात-

साथे मिश्रित થયેલા જે સ્વર છે તે ‘તંત્રીસમ સ્વર’ છે આ પ્રમાણે
તાલ-સમ વગેરે માટે પણ ‘ગેય’ શબ્દનો સંબંધ સમજવો જોઈએ ગેય
અને સ્વરમાં અર્થ-ભેદ તથી એટલા માટે ગેયથી અહીં સ્વર લેવો જોઈએ
આ પ્રમાણે સ્વરો સાત છે ‘તાલ સમ’થી લઈને ‘સંચાર સમ’ સુધીના છ
પદોની વ્યાખ્યા પહેલા કરવામાં આવી છે. (સત્તસરા તઓ ગામા મુચ્છણા એક-
વીસઈ, તાણા એગૂણપણ્ણાસં સમ્મત્તં સરમંડલં) આ પ્રમાણે ટૂંકમાં સમસ્ત સ્વર-
મંડળ-સાતસ્વર, ત્રણગ્રામ, એકવીસ મૂર્ચ્છના અને ૪૯ તાન-આ પ્રમાણે
છે તતા-તંત્રી, તાન, આ બધા પર્યાયવાચી શબ્દો છે ષડ્જ વગેરે સાત
સ્વરોમાંથી દરેકે દરેક સાત તાનોથી ગવાય છે. એથી સપ્ત તંત્રિકા યુક્ત
વીણામાં ૪૯ તાનો હોય છે આમ એક તંત્રિકા યુક્ત વીણા અથવા ત્રિતંત્રિકા-
વાળી વીણામાં કંઠથી ગવાયેલ તાનો પણ ૪૯ હોય છે આ પ્રમાણે સાત

देव ताना भवन्ति । इत्थं षड्जादिभिः सप्तभिर्नीलभिः सर्वस्यापि स्वरमण्डलस्य ग्रहणादिदं सप्तनामेत्युच्यते । इदमेवोपसंहरन्नाह—‘तदेतत् सप्तनामे’ति ॥ सू. १६७ ॥

अथाष्टनाम निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं अट्टनामे ? अट्टनामे अट्टविहा वयणविभक्ती पणत्ता, तं जहा—निद्देसे पढमा होइ, विइया उवएसणे । तइया करणमि कया, चउत्थी संपथावणे ॥१॥ पंचमी य अवायाणे, छट्टी सत्तामिवायणे । सत्तमी सण्णिहाणत्थे, अट्टमाऽऽमंतणी भवे ॥२॥ तत्थ पढमा विभक्ती, निद्देसे सो इमो अहं वत्ति । विइया पुण उवएसे भण कुणसु इमं व तं वत्ति ॥३॥ तइया करणमि कया, भणियं च कयं च तेण व भए वा । हंदि णमो साहाए, हवइ चउत्थी पयाणंमि ॥४॥ अणय गिण्ह य एत्तो, इउत्ति वा पंचमी अवायाणे । छट्टी तस्स इमस्स व गयस्स वा सामिसंबंधे ॥५॥ हवइ पुण सत्तमी तं, इमंमि आहारकालभावे य । आमंतणे भवे अट्टमी उ जहा हे जुवाणत्ति ॥६॥ से तं अट्टनामे ॥ सू० १६८ ॥

छाया—अथ किं तत् अष्टनाम ? अष्टनाम—अष्टविधाः वचनविभक्तयः प्रज्ञप्ताः, तथा—निर्देशे प्रथमा भवति, द्वितीया उपदेशने । तृतीया करणे कृता, चतुर्थी नामो से समस्त भी स्वरमंडल का ग्रहण हो जाता है । इसलिये यह सप्तनाम ऐसा कहा जाता है । (सेत्तं सत्तनामे) इस प्रकार से यह सप्तनाम है । ॥ सू० १६७ ॥

अथ सूत्रकार अष्ट नाम का निरूपण करते हैं—

“से किं तं अट्टनामे” इत्यादि ।

नामोथी आथा स्वरमंडलानुं अडणु समजुं लेधणे अथी ‘सप्तनाम’ आम कडेवाय छे. (सेत्तं सत्तनामे) आ प्रभाणु आ सप्तनामे छे ॥ सू० १६७ ॥

इवे सूत्रकार अष्ट नामनुं निरूपणु करे छे—

“से किं तं अट्टनामे” इत्यादि—

संपदापने ॥१॥ पञ्चमी च अपादाने, षष्ठी स्वस्वामिवाचने । सप्तमी सन्निधानार्थे, अष्टमी आमन्त्रणी भवेत् ॥२॥ तत्र प्रथमाविभक्तिः, निर्देशः सः अयम् अहं वा इति । द्वितीया पुनरुपदेशे मण कुरु इदम् वा तत् वा इति ॥३॥ तृतीया करणे कृता

शब्दार्थ- (से किं तं अट्टनामे) हे भदन्त । वह अष्ट नाम क्या है ? (अट्ट विहा वयणविभक्ती पण्णत्ता)

उत्तर-आठ प्रकार की जो वचनविभक्ति है वह अष्ट नाम है। जो कहे जाते हैं, वे 'वचन' हैं। तथा कर्ता, कर्म आदिरूप अर्थ जिसके द्वारा प्रकट किया जाता है वह 'विभक्ति' है। वचनों-पदों की जो विभक्ति है वह 'वचनविभक्ति' है। ऐसा तीर्थकर एवं गणधरो ने कहा है। वचनविभक्ति से यहां पर सुबन्त रूप प्रथमा आदि विभक्तियों को कहनेवाली वचनविभक्ति गृहीत हुई है। तिङन्तरूप आख्यात विभक्ति नहीं। (तंजहा) वचनविभक्ति के आठ प्रकार ये हैं- (निर्देशे प्रथमा होइ) (प्रातिपदिक अर्थमात्र का प्रतिपादन करना इसका नाम निर्देश है। इस निर्देश में "सु औ, जस" यह प्रथमा विभक्ति होती है। (उवएसणे विइया) किसी एक क्रिया में प्रवर्तन होने के लिये इच्छा के उत्पादन करने में "अम् औद् शस्" यह द्वितीया विभक्ति होती है। "उवएसण" यह पद उपलक्षण है। इससे "ग्रामं गच्छति" इत्यादि पद में इसके बिना भी द्वितीया विभक्ति होती है। (करणमि

शब्दार्थ- (से किं तं अट्टनामे) हे भदन्त । आ अट्टनामे शुं छुं (अट्ट विहा वयणविभक्ती पण्णत्ता) उत्तर-आठ प्रकारनी जे वचन विलकित छे ते अष्टनाम छे जे कडेवासां आवे छे, ते 'वचन' छे तेभज कर्ता, कर्म वगेरु रुप अर्थ जेना वट्ट प्रकट करवासां आवे छे ते 'विलकित' छे। वचनो-पदोनी जे विलकित छे ते वचन विलकित छे। आम तीर्थकरो जे अने गणधरो जे कथुं छे वचन विलकितथी अही सुबन्त रुप प्रथमा विलकितओने प्रकट करनारी वचन विलकितना धयेवी छे तिङन्त रुप आख्यात विलकित नथी (तंजहा) वचन विलकितना आठ प्रकारे आ प्रभाषे छे। (निर्देशे प्रथमा होइ) प्रातिपदिक अर्थ मात्रनु प्रतिपादन करवुं तेनु नाम निर्देश छे। आ निर्देशमां 'सु औ जस' आ प्रथमा विलकित छे। (उवएसणे विइया) कोछ ओक क्रियामां प्रवर्तित थवा मोटे ध्येछा उत्पन्न करवासां 'अम्, औद् शस्' आ द्वितीया विलकित होय छे "उवएसण" आ यह उपलक्षण छे जेनाथी "ग्रामं गच्छति" वगेरु पदोसां

मणितं च कृतं च तेन वा मया वा । इन्दि नमः स्वाहायै भवति चतुर्थीप्रदाने॥४॥
अपनय गृहाण च अस्मात् इतः इति वा पञ्चमी अपादाने । षष्ठी तस्य अस्य च
गतस्य वा स्वामिसम्बन्धे॥५॥ भवति पुनः सप्तमी सा अस्मिन् आधारकालभावे
च । आमन्त्रणे भवेत् अष्टमी तु यथा हे युवन् इति॥६॥ तदेतद् अष्टनाम॥मू. १६८॥

टीका—‘ से किं तं ’ इत्यादि—

अथ किं तत् अष्टनाम ? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरयति—अष्टनाम—अष्टविधं
नाम—अष्टनाम, तथाहि—अष्टविधा=अष्टप्रकारा वचनविभक्तिः—उच्यन्ते इति
वचनानि=पदानि, विभज्यते=प्रकटीक्रियते कर्तुकर्मादिरूपोऽर्थोऽनयेति विभक्तिः,
वचनानां विभक्तिः—वचनविभक्तिः प्रज्ञप्ता=कथिता तीर्थकरगणधरैः । वचनविभ-

तइया कया) करण में “टा, भ्याम् भिस्” यह तृतीया विभक्ति होती है।
(संपयावणे चउत्थी) संप्रदान में चतुर्थी डे, भ्याम् भ्यस्—यह विभक्ति
होती है। (अवायाणे पंचमीच) अपादान में ङसि भ्याम्, भ्यस्, “यह
पंचमी विभक्ति होती है। (सस्सामिवायणे छट्टी) स्व स्वामी संबंध
प्रतिपादन करने में “ङस् ओस् आम्” यह षष्ठी विभक्ति होती है।
(सण्णिहाणत्थे सत्तमी) सन्निधान अर्थ में “ङि ओस् सुप्” यह
सप्तमी विभक्ति होती है। (आमंतणी अट्टमा भवे) सन्मुख करने के
अर्थ में संबोधनरूप आठवीं विभक्ति होती है। तात्पर्य कहने का यह है
कि—‘यहां पर सूत्रकार ने अष्ट नाम क्या है ? यह कहा है। नाम के
विचार का प्रस्ताव होने से प्रथमादि विभक्तयन्त नाम का ही
ग्रहण किया गया है। यह नाम विभक्ति के भेद से आठ

येना वगेर षष्ठी द्वितीया विलङ्कित डोय छे. (करणम्नि तइया कया) डरष्टुभां
“टा, भ्याम्, भिस्” आ तृतीया विलङ्कित डोय छे (संपयावणे चउत्थी)
संप्रदानभां चतुर्थी “डे, भ्याम्, भ्यस्” आ विलङ्कित डोय छे. (अवायाणे
पंचमी च) अपादानभां “ङसि, भ्याम् भ्यस्,” आ पांचमी विलङ्कित डोय छे
(सस्सामिवायणे छट्टी) स्व स्वामी संबंध प्रतिपादन करवाभां ‘ङस् ओस्
आम्’ आ षष्ठी विलङ्कित डोय छे. (सण्णिहाणत्थे सत्तमी) सन्निधान अर्थभां
‘ङि ओस्, सुप्’ आ सप्तमी विलङ्कित डोय छे (आमंतणी अट्टमाभवे)
अलिमुप करवाना अर्थभां संबोधन रूप आठमी विलङ्कित डोय छे मतलब
आ छे डे ‘अही’ सूत्रकारे अष्टनाम अष्टवे शुं ? आ कहुं छे नामविचार
विषे न प्रस्ताव डोवा पहल प्रथमा वगेरे विलङ्कित नामनुं न अडलु डर-
वाभां आण्युं छे आ नाम विलङ्कित लेइथी आठ प्रकारना डोय छे. प्रथमा

क्तिस्तु नामविभक्तिः सुवन्तरूपा प्रथमादिका बोध्या, न तु तिङन्तरूपा-आख्यात-
विभक्तिः। अष्टप्रकारां वचनविभक्तिमेवाह-तद्यथा-निर्देशे-प्रातिपदिकार्थमात्रस्य
प्रतिपादनं निर्देशस्तस्मिन् 'सु औ जस्' इति प्रथमा विभक्तिर्भवति। उपदेशने-
अन्यतरक्रियायां प्रवर्तनेच्छोत्पादने 'अम् औट् शस्' इति द्वितीया विभक्ति
भवति। उपदेशनमित्युपलक्षणम्, तेन ग्रामं गच्छतीत्यादौ तदन्तरेणापि भवति।
करणे 'टा भ्यां भिस्' इति तृतीया विभक्ति भवति। अत्र करण शब्दस्तन्प्रेण
निर्दिष्टः। तेनात्र कर्तरि=क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितेऽर्थे देवदत्तादौ करणे=
क्रियासिद्धौ प्रकृतोपकारके च तृतीयाविभक्ति भवति। करोतीति करणः, 'कृत्य-
ल्युटो बहुल' मिति बाहुलकात् कर्तरि ल्युट्। क्रियतेऽनेनेति करणम्, करणे

प्रकार का होता है। प्रथमा विभक्ति द्वितीया विभक्ति आदि
के भेद से विभक्तियां आठ हैं। इनमें प्रातिपदिकार्थ मात्र के प्रतिपादन
में प्रथमा विभक्ति होती है। संस्कृत में कारक विभक्तियों को प्रकट
करने के लिये सु औ जस् आदि २१ विभक्तियां=प्रत्यय, हैं। ये सुप्-
प्रत्यय कह लाते हैं। ये सुप्प्रत्यय जिन शब्दों में जुड़ते हैं उन्हें 'प्राति-
पदिक' कहते हैं। सुप्प्रत्यय जुड़ने पर ही प्रातिपदिक शब्दों का वाक्य
में प्रयोग हो सकता है। करण में तृतीया विभक्ति होती है। ऐसा जो
कहा है वह तंत्र (१) से कहा है। इसलिये तृतीया विभक्तिकर्ता में-
क्रिया में स्वतंत्ररूप से विवक्षित देवदत्त आदि रूप अर्थ में-एवं
करण में-क्रिया की सिद्धि में प्रकृतम उपकारक में-होती है। "कृत्य-
ल्युटो बहुलम्" इस सूत्र के अनुसार कृत्य और ल्युट्प्रत्यय कर्ता और

विभक्ति द्वितीया विभक्ति वगेरेना लेश्ठी विभक्तिः आठ छे आभां इकत
प्रातिपदिकार्थना प्रतिपादनमां प्रथमा विभक्ति डोय छे संस्कृतमां कारक विभ-
क्तिः आने प्रकट करवाभां माटे सु, औ, जस् वगेरे २१ विभक्तिना प्रत्ययो छे-
छे अे सुप् प्रत्ययो कडेवाय छे अे सुप् प्रत्ययो अे शब्दोभां उमेराय छे
ते प्रातिपदिक कडेवाय छे सुप् प्रत्यय उमेराया पछी अे प्रातिपदिक शब्दोना
वाक्यमां प्रयोग थर्ष शके छे. करणुमां तृतीया विभक्ति डोय छे, अेवुं अे
कडेवाभां आल्युं छे ते तंत्र (सिध्धांत)थी कडेवाभां आल्युं छे अोटला माटे
तृतीया विभक्ति कर्ताभां, क्रियाभां स्वतंत्र रूपथी विवक्षित देवदत्त वगेरे
इप अर्थभां अने करणुमां क्रियानी सिद्धिमां प्रकृतम उपकारक डोय छे.
'कृत्यल्युटो बहुलम्' आ सूत्र मुज्ज् 'कृत्य' अने 'ल्युट्' प्रत्यय कर्ता अने
करण अे अनेभां डोय छे आ प्रभाणे 'करोति इति करणम्, क्रियते

ल्युट् । संपदापने-संपदाने-दानस्य कर्मणा योऽभिप्रेतस्तस्मिन् 'ङि भ्याम् भ्यस्' इति चतुर्थी विभक्ति भवति । अपादाने-अपायावधिभूते 'ङसि भ्याम् भ्यस्' इति पञ्चमी विभक्ति भवति । स्वस्वामिवाचने-स्वम्-भृत्यादि, स्वामी-राजादिस्तयो-वाचने-तत्सम्बन्धप्रतिपादने 'ङस् ओस् आम्' इति षष्ठी विभक्ति भवति । सन्निधानार्थे वाच्ये 'ङि ओस् सुप्' इति सप्तमी विभक्ति भवति । तथा-अष्टमी=संबोधनविभक्तिः आमन्त्रणी=अभिमुखी करणार्था भवति । इत्थं सामान्येनोक्त्वा सम्प्रति सोदाहरणमाह-निर्देशे प्रथमा, विभक्ति भवति, यथा-सः अयम् अहं वेति । उपदेशे पुनः द्वितीया विभक्ति भवति । यथा-'भण कुरु इदं वा तद्वेति इदं प्रत्यक्षं यत् श्रुतं तद् भण, इदं प्रत्यक्षं कार्यं कुरु, तत्-परोक्षं वा यत् श्रुतं तद्

करण इन दोनों में होते हैं । इस प्रकार करोति इति करणः क्रियतेऽने-नेति करणम् "यहां दोनों जगह ल्युट् प्रत्यय हुआ है । दान रूप क्रिया के कर्म का जिसके साथ संबन्धकर्ता को दृष्ट हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है । अपाय की अवधिभूत पदार्थ का नाम अपादान है । इसमें पंचमी विभक्ति होती है । स्वस्वामी संबन्ध में सेव्य सेवक आदि भाव लिया गया है । स्व का तात्पर्य सेवक, भृत्यादि से है और स्वामी का सेव्य राजादि से । सन्निधान और आमन्त्रणी इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट है । इस प्रकार सामान्य से कह कर अब सूत्रकार इस अष्ट नाम को उदाहरण देकर समझाते हैं-(तत्थ निद्देसे पढमा विभत्ती) निर्देश में प्रथमा विभक्ति होती है-जैसे (सो इमो अहं वत्ति) वह यह अथवा मैं । (बिइया पुण उवएसे) उपदेश में द्वितीयाविभक्ति होती है जैसे-(भण कुणसु इमं व तं वत्ति) जो तुमने प्रत्यक्ष में सुना है, उसे कहो, इस सामने के काम को करो, जो परोक्ष में तुमने सुना है उसे कहो अथवा उस

अनेन इति करणम्' अङ्गी' अन्ने स्थाने, ल्युट् प्रत्यय थयेत्त छे. दानरूप क्रियाना कर्मना जेनी साथे संबन्ध कर्ताने दृष्ट होय तेमां चतुर्थी विलकित थाय छे. अपाय (जुहा थवु)नी अवधिभूत पदार्थनुं नाम अपादान छे आमां पंचमी विलकित थाय छे स्व स्वामी संबन्धमां सेव्य सेवक वगेदे लाव ग्रहणुं करवामां आवे छे स्वतुं तात्पर्य सेवक भृत्य वगेदेथी छे अने स्वामीनुं सेव्य राजा वगेदेथी सन्निधान अने आमन्त्रणी आ संबोधन शब्दानो अर्थ स्पष्ट छे.

आ प्रमाणे सूत्रकार सामान्य रूपमां उल्लेख करीने हुवे आ अष्ट-नामने सोदाहरण समजावे छे. (तत्थ निद्देसे पढमा विभत्ति) निर्देशमां प्रथमा विलकित होय छे. जेम के (सो इमो अहं वत्ति) 'ते,' 'आ' के 'हुं' (बिइया पुण उवएसे) उपदेशमां षष्ठी विलकित होय छे. जेम के (भण कुणसु इमं व तं वत्ति) जे तमे प्रत्यक्षमां संबन्धुं छे, तेने कहे, आ सामनेनुं काम

મણ, તત્-પરોક્ષં કાર્યં વા કુરુ ઇતિ । તૃતીયા વિભક્તિઃ કરણે-કર્તરિકરણે ચ ભવતિ । યથા-મણિતં ચ કૃતં ચ તેન વા મયા વેતિ, કર્તરીદમુદાહરણમ્ । કરણેતુ 'રથેન યાતિ' ઇત્યાદિકં સ્વબુદ્ધ્યા વિભાવનીયમ્ । સંપ્રદાને ચતુર્થી વિભક્તિ ભવતિ, યથા-મુનયે દાનં દદાતિ । નમઃ શબ્દયોગેઽપિ ચતુર્થી વિભક્તિ ભવતિ, યથા- 'હન્દિ । નમો જિનેશ્વરાય' ઇતિ । 'હન્દિ' હતિ કોમલામન્ત્રણે । અપાદાને પંચમી ભવતિ, યથા-'ઉપનય ગૃહાણ એતસ્માદિતો વે'તિ । સ્વામિસંબન્ધે=સ્વસ્વામિ ભાવસંબન્ધે વાચ્યે ષષ્ઠી ભવતિ, તથા-'ગતસ્ય તસ્ય, ગતસ્ય અસ્ય વા ઇદમસ્તિ'

પરોક્ષ કાર્યં કો કરો । (તદ્યા કરણમિ-કયા) તૃતીયા વિભક્તિ કરણ કર્તા ઓર કરણ-મેં હોતી હૈં જૈસે-(મણિયં ચ કયં ચ તેણ મણવા) ઉસને ઓર મૈને કહા અથવા ઉસને ઓર મૈને કિયા । યહ ઉદાહરણકર્તા મેં હૈં । કરણ મેં ઉદાહરણ "વહ રથ સે જાતા હૈ" આદિ હૈં । એસે ઉદાહરણ અપની બુદ્ધી સે ઓર મી કલ્પિત કરલેના ચાહિયે । (ચતુર્થી સંપયાણમિ હવહ) ચતુર્થી વિભક્તિ સંપ્રદાન મેં હોતી હૈ-જૈસે (હંદિ ણમો સહાય) હન્દિ ! જિનેશ્વર કે લિયે નમસ્કાર હો, અગ્નિ કે લિયે સ્વાહા હો (યહાં પર 'હન્દિ' યહ શબ્દ કોમલામંત્રણ મેં આયા હૈ । હસી પ્રકાર સે 'દા' ધાતુ કે યોગ મેં ચતુર્થી હોતી હૈ-જૈસે વહ મુનિ કે લિયે દાન દેતા હૈ । (અવાયાણે પંચમી) અપાદાન મેં પંચમી હોતી હૈ-જૈસે (અવણય ગિણહ ય એત્તો ઇ ઉત્તિવા) હસસે દૂર કરો અથવા હસસે લેલો (સામિ સંબંધે) જહાં સ્વ-સ્વામી સંબંધ વાચ્ય હોતા હૈ યહાં પર ષષ્ઠી વિભક્તિ હોતી હૈ, જૈસે (ગયસ્સ તસ્સ ગયસ્સ ઇમસ્સ વ) ગયે હુપ

કરો જે પરોક્ષમાં તમે સાંભળ્યું છે તેને કહો અથવા તે પરોક્ષકામને કરો. (તદ્યા કરણમિ કયા) ત્રીજી વિભક્તિ કરણ કર્તા અને કરણમાં હોય છે જેમ કે (મણિયં ચ કયં તેણ મણવા) તેણે અને મેં કહું અથવા તેણે અને મેં કર્યું આ ઉદાહરણ કર્તામાં છે કરણમાં ઉદાહરણ આ પ્રમાણે છે-તે રથથી જાય છે વગેરે છે એવા ઉદાહરણો પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પિત કરી લેવા જોઈએ (ચતુર્થી સંપયાણમિ હવહ) ચતુર્થી વિભક્તિ સંપ્રદાનમાં હોય છે જેમ કે (હંદિ ણમો સહાય) હન્દિ ! જિનેશ્વર માટે મારા નમસ્કાર અગ્નિ માટે સ્વધા અહીં 'હન્દિ' આ શબ્દ કોમલામંત્રણ માટે આવે છે આ પ્રમાણે 'દા' ધાતુના યોગમાં ચતુર્થી હોય છે જેમ કે તે મુનિ માટે દાન આપે છે. (અવાયાણે પંચમી) અપાદાનમાં પંચમી હોય છે જેમ કે (અવણય ગિણહ ય એત્તો ઇ ઉત્તિવા) આને દૂર કરો અથવા એનાથી લઈ લો. (સામિ સંબંધે) જ્યાં સ્વસ્વામિ સંબંધ વાચ્ય હોય છે ત્યાં ષષ્ઠી વિભક્તિ થાય છે જેમ કે (ગયસ્સ તસ્સ ગયસ્સ ઇમસ્સ વ) ગયેલ

इति । आधारकालभावे=आधारे काले भावे च सप्तमी भवति, यथा—‘तत् अस्मि’
न्निति, अस्मिन् कुण्डादौ तद् वदरादिकं तिष्ठति, इत्यर्थः । अत्राधारे सप्तमी
बोध्या । काले यथा—‘मधौ रमते’ भावे तु—‘चारित्र्येऽवतिष्ठते’ इति । आमन्त्रणे
तु अष्टमी विभक्ति भवति । यथा—‘हे युव’—न्निति । अत्र च नामविचारप्रस्तावात्
प्रथमादि विभक्तयन्तं नामैव गृह्यते । तथा चाष्ट विभक्तिभेदादष्टविधमिदं भवति ।
न च प्रथमादि विभक्तयन्तनामाष्टकमन्तरेणाऽपरं नामास्ति, अतोऽनेन नामाष्टकेन
सर्वस्य वस्तुनोऽभिधानद्वारेण सङ्ग्रहादष्टनामेत्युच्यते, इति भावार्थः । एतदुप
संहरन्नाह—तदेतदष्टनामेति ॥ सू० १६८ ॥

उसकी अथवा गये हुए इसकी यह वस्तु है । (आहारकालभावे य
सप्तमी पुण हवइ) आधार में, काल में और भाव में सप्तमी विभक्ति
होती है । जैसे—तं इमस्मि) इस कुण्ड आदि में वदरादि फल हैं । यह
आधार में सप्तमी विभक्ति का दृष्टान्त है । काल में सप्तमी विभक्ति का
दृष्टान्त “मधौ रमते” कोयल वसन्त में आनंद पाती है, यह है । भाव
में सप्तमी विभक्ति का दृष्टान्त—“चारित्र्येऽवतिष्ठते” यह साधु अपने
चारित्र्य में उहरा हुआ है—यह है । (आमंत्रणे अष्टमी भवे) आमंत्रण
अर्थ में अष्टमी विभक्ति होती है । (जहा)—जैसे—(हे जुवाणत्ति) ये युवन्-
तरुण ! यहां पर नाम के विचार का प्रस्ताव होने से प्रथमादि विभक्तय-
न्त नाम ही ग्रहण किया गया है । इस प्रकार आठ प्रकार की विभ-
क्तियों के भेद से नाम आठ प्रकार का होता है । प्रथमादि विभक्तयन्त
नामाष्टक के बिना और दूसरा नाम नहीं है । इसलिये इस नामाष्टक

तेनी अथवा गयेल आनी आ वस्तु छे. (आहार कालभावे य सप्तमी पुण हवइ)
आधारमां, कालमां आने लावमां सप्तमी विलकित डाय छे जेभ के—(तं
इमस्मि) आ कुंड वगेरेमां अदर वगेरे इणो छे आ आधारमां सप्तमी विल-
कितनुं उदाहरणु छे डालमां सप्तमी विलकितनुं उदाहरणु “मधौ रमते”
कोयल वसन्तमां आनंद भावु छे लावमां सप्तमी विलकितनुं उदाहरणु
“चारित्र्येऽवतिष्ठते” आ साधु पोताना चारित्र्यमां न स्थिर छे. (आमंत्रणे
अष्टमी) आमंत्रणु अर्थमां आठमी विलकित डाय छे. (जहा) जेभ के (हे जुवा-
णत्ति!) हे युवन्! तरुणु ! अही नामविचार प्रस्तावने लीधे प्रथमा वगेरे
विलक्ष्यन्त नाम न ग्रहणु करवामां आव्यां छे आ प्रभावे आठ प्रकारनी
विलकितआना लेखी नाम आठ प्रकारना डाय छे प्रथमा वगेरे विलक्ष्यन्त

अथ नवनाम निर्दिशति—

मूलम्—से किं तं नवनामे?, नवनामे—णव कव्वरसा पणत्ता,
तं जहा—वीरो सिंगारो अब्भुओ य रोहो य होइ बोद्धव्वो।
वेलणओ वीभच्छो, हासो कलुणो पसंतो य ॥१॥सू० १६९॥

छाया—अथ किं तत् नव नाम? नवनाम—नव काव्यरसाः प्रज्ञप्ताः,
सद्यथा—वीरः शृङ्गारः अद्भुतश्च रौद्रश्च भवति बोद्धव्यः। व्रीडनको वीभत्सो हास्यः
करुणः प्रशान्तश्च ॥ १ ॥सू० १६९॥

से समस्तवस्तुओं के कथन का संग्रह हो जाता है—अतः यह अष्ट-
नाम ऐसा कहा गया है। (से तं अट्टणामे) इस प्रकार यह अष्ट-
नाम है ॥ सू० १६८ ॥

अब सूत्रकार नव नामका कथन करते हैं—

“से किं तं नवनामे?” इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं नव नामे?) हे भदन्त! वह नव प्रकार का
नाम क्या है?

उत्तर—(नव नामे) नव नाम इस प्रकार से है—(णव कव्वरसा पणत्ता)
काव्यके जो नौ रस हैं, वे ही नव नाम रूप से प्रज्ञप्त हुए हैं। (तं जहा) वे
नौ रस ये हैं—(वीरो सिंगारो, अब्भुओ य रोहो य होइ बोद्धव्वो। वेल्-
णओ वीभच्छो हासो कलुणो पसंतो य) वीररस, शृंगाररस, अद्भुतरस
रौद्ररस, व्रीडनकरस, वीभत्सरस, हास्यरस, करुणरस, और प्रशान्तरस।

नामाष्टक सिवाय षीणु' नाम नथी अट्टत्ता माटे आ नामाष्टकथी णधी वस्तुओना
संश्रद्ध थर्ध ज्ञय छे. अथी आ अष्टनाम आभ कडेवाभां आण्युं छे (से तं
अट्टणामे) आभ आ आठनामे छे. ॥सू० १६८॥

इसे सूत्रकार नव नामनु' कथन करे छे—

“से किं तं नवनामे?” इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं नवनामे?) हे भदन्त! ते नवप्रकारनु' नाम थुं छे?

उत्तर—(नवनामे) नव नाम आ प्रभाण्णे छे. (णव कव्वरसा पणत्ता)
काव्यना जे नव रसे छे तेज नव नामथी प्रज्ञप्त थथेत्त छे. (तं जहा) ते नव
नामे आ प्रभाण्णे छे. (वीरो सिंगारो, अब्भुओ य रोहो य होइ बोद्धव्वो। वेल्-
णओ वीभच्छो हासो कलुणो पसंतो य) वीररस, शृंगाररस, अद्भुतरस, रौद्ररस,
व्रीडनकरस, वीभत्सरस, हास्यरस, करुणरस अने प्रशान्तरस.

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

अथ किं तत् नव नाम ? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरयति—नवनाम—नवविधं नवनाम—नवसंख्यकाः काव्यरसाः—कवेः कर्म काव्यम्, रस्यन्ते—अन्तरात्मनाऽनुभूयन्ते इति रसाः, तत्तत्सहकारि कारणसामीप्यात्समुद्भूताश्चित्तोत्कर्षविशेषा इत्यर्थः, उक्तं च—

“बाह्यार्थालम्बनो यस्तु, सूक्ष्मो मानसो भवेत् ।

स भावः कथयते सद्भिस्तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः ॥” इति ॥

—काव्ये समुपनिबद्धा रसाः काव्यरसाः प्रज्ञप्ताः=कथिताः । तानेवाह—‘वीरः शृङ्गारः’ इत्यादिना—वीरयति=विक्रमयुक्तं करोति त्यागतपः—कर्म शत्रुनिग्रहेषु प्रेरयति जनमिति वीरः—उत्तम प्रकृति पुरुष—चरितश्रवणादि हेतु समुद्भूतो दाना-

कवि के कर्मका नाम ‘काव्य’ है । अन्तरात्मा से जिनका अनुभव किया जाता है उनका नाम रस है । ये रस तत्तत्सहकारी कारणों की समीपता से चित्तमें जो उत्कर्ष विशेष उत्पन्न होते हैं उनरूप होते हैं । कहा भी है—“बाह्यार्थ इत्यादि—बाह्यार्थ के अवलम्बन से जो मानसिक उल्लास होता है वह ‘भाव’ है । इस भाव का उत्कर्ष रस है । काव्य में उपनिबद्ध हुए रस काव्यरस शब्द के वाच्यार्थ हैं । जो रस मनुष्य को विक्रम युक्त करता है—अर्थात् त्याग में शत्रुओं के निग्रह करने में प्रेरित करता है—वह वीररस है । तात्पर्य कहने का यह है कि—रस का जो वीर यह विशेषण है वह अन्यरसों की अपेक्षा इसमें यही विशेषता प्रकट करता है, कि इसरस के सद्भाव में त्याग में तपश्चरण में, और कर्मरूप शत्रु के निग्रह करने में विक्रमयुक्त आत्मपारिणाम होता

कविकर्म काव्य कडेवाय छे. अन्तरात्माथी जे अनुलवाय छे ते रस कडेवाय छे जे रसो तत्तत्सहकारी कारणोनी समीपताथी चित्तमां जे उत्कर्ष विशेष उत्पन्न करे छे ते अनुभूयं डाय छे कथुं पणु छे के—“बाह्यार्थ इत्यादि—” बाह्यार्थना अवलम्बनथी जे मानसिक उल्लास डाय छे ते ‘भाव’ छे. ते लावने उत्कर्ष रस छे काव्यमां उपनिबद्ध थयेल रस काव्य रस शब्दोना वाच्यार्थ छे जे रस माणुसने वीरत्वपूरु करे छे जेटवे के त्यागमां, तपमां अने कर्मरूप शत्रुओना निग्रह कार्यमां प्रेरित करे छे ते वीर रस छे. तात्पर्य आ प्रमाणु छे के रसनुं जे वीर विशेषणु छे ते भील रसो करतां आमां जेन विशेषता प्रकट करे छे के आ रसना सद्भावमां, त्यागमां, तपश्चरणुमां अने कर्मरूप शत्रुनिग्रहमां वीरत्वपूरु आत्मपरिणाम डाय छे. अने

દ્યુત્સાહપ્રકર્ષાત્મકો રસઃ । રસ इति सर्वत्र योजनीयः ॥२॥ शृङ्गारः-शृङ्गं=प्राधान्यम् इर्यति-गच्छतीति-शृङ्गारः । अतएव—

“शृङ्गार-हास्यकरुण, -रौद्र-वीर भयानकाः ।

वीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च, नव नाट्ये रसाः स्मृताः” ॥

इत्यत्र शृङ्गारस्यैव प्रथममुपादानं कृतम् । अत्र तु वीररसस्य प्रथमत उपादानम् । अत्रायं हेतुः—त्यागतपःकर्मनिग्रहगुणो वीररसे भवति । अतोऽस्य सर्वरसप्रधानत्वम् । उक्तं च—“त्यागेन कर्ममलमेति लयं समस्तं, त्यागेन निर्मलतरत्वमुपैति जीवः । त्यागेन केवलमवाप्य समेति सिद्धिं, त्यागो गुणो गुणशताधिको मतो मे” ॥१॥

है । और वह परिणाम उस मनुष्य को उस ओर बढने के लिये प्रेरणा देता है । इस प्रकार के परिणाम की-उद्भूति के कारण उत्तम प्रकृतिवाले सत्पुरुषों के चरित्र श्रवण वगैरह हैं । इसलिये यह रस दानादिको में उत्साह का प्रकर्ष होने रूप है । रस शब्द का संबन्ध सर्वत्र वीर, शृंगार आदि के साथ लगा लेना चाहिये “शृंगप्राधान्यं इर्यति गच्छति इति शृंगारः” जो रस प्रधान रूप से विषयों की ओर प्रेरित करता है वह रस शृंगार है । इसलिये—“शृंगार हास्य-करुण” इत्यादि श्लोक में इस शृंगार रसका प्रथम उपादान किया गया है । परन्तु यहां सूत्र में वीररस का प्रथम पाठ रखा है सो उसका कारण यह है कि लोग में, तप में एवं कर्मनिग्रह करने में प्रेरणा देना रूप जो गुण है वह एक इस वीररस में है । इसलिये इसमें सर्व रसों की अपेक्षा प्रधानता है कहा भी है “त्यागेन इत्यादि”—

તે પરિણામ તે માણસને તે તરફ આગળ વધવામાં પ્રેરણા આપે છે આ જાતના પરિણામની ઉદ્ભૂતિમાં ઉત્તમ પ્રકૃતિ (સ્વભાવવાળા) સંતોના ચરિત્ર શ્રવણ વગેરે જ કારણ છે. એટલા માટે આ રસ દાન વગેરેમાં ઉત્સાહના-પ્રકર્ષ માટે છે વીર, શૃંગાર વગેરે રસોની સાથે પણ રસ શબ્દનો સંબંધ બધા લગાડવો જોઈએ. (શૃંગ-પ્રાધાન્યં ઇર્યતિ ગચ્છતિ ઇતિ શૃંગારઃ—) રસ પ્રધાનતા વિષયો તરફ વાળે છે તે રસ શૃંગાર છે. એથી જ “શૃંગારહાસ્યકરુણ” વગેરે શ્લોકમાં આ શૃંગાર રસનું સૌથી પહેલા શ્રદ્ધણ કરવામાં આવ્યું છે. પણ અહીં સૂત્રમાં વીરરસનો પાઠ પહેલાં રાખવામાં આવ્યો છે. તેનું કારણ એ છે કે લોકોને તપ અને કર્મનિગ્રહ કરવામાં જે પ્રેરણાત્મક ગુણ હોય છે તે આ રસ વીરરસમાં જ હોય છે. એટલા માટે આમાં બધાં રસોની અપેક્ષાએ પ્રાધાન્ય છે. કહ્યું પણ છે કે “ત્યાગેન ઇત્યાદિ” ત્યાગથી

इति, 'परलोकातिगं धाम तपः श्रुतम्' इति च । तपः श्रुतं चे त्यपि मोक्षप्रापकमि
त्यर्थः अनोऽत्र वीररसस्य प्रथममुपादानम् ॥२॥ अद्भुतः—श्रुतं शिल्पं त्यागतपः
शौर्यकर्मादि वा यस्य सकलजनातिगमस्ति, तदेवंविधमपूर्वं किमपि वस्तु अद्भुतमि-
त्युच्यते । तद्दर्शनश्रवणजो रसोऽप्युपचाराद् विस्मयरूपोऽद्भुतः ॥३॥ रौद्रः रोद-
यति=अतिदारुणतया अश्रूणि मोचयतीति रौद्रम्-शत्रुजन-महारण्य-गाढतिमि-
रादि, तद्दर्शनाद्युद्भवो विकृताध्यवसायरूपो रसोऽपि रौद्रः ॥४॥ व्रीडयति-

त्याग से कर्मरूप मैल विलय-विनाश-को प्राप्त होता है, त्याग से जीव
निर्मलता को प्राप्त करता है, त्याग से ही केवलज्ञान को पाकर के आत्मा
सिद्धि को पाता है । इसलिये सैंकड़ों गुणों से अधिक एक त्याग गुण
माना गया है । तथा—"परलोकातिगं धाम तपः श्रुतम्" अर्थात् तप
और श्रुत ये भी मोक्ष को प्राप्त करानेवाले हैं " इसलिये यहां सूत्र में
वीर रस का सर्व प्रथम उपादान किया गया है । श्रुत, शिल्प, अथवा
त्याग, तप, शौर्य कर्म आदि जिसके सकल जनों की अपेक्षा अधिक हैं
इस प्रकार की वह कोई भी अपूर्व वस्तु अद्भुत कहलाती है । उस
अपूर्ववस्तु के दर्शन से या श्रवण से जो रस उत्पन्न होता है, वह रस
भी उपचार से 'अद्भुत रस' कहलाता है । यह विस्मय रूप होता है ।
जो अतिदारुण होने के कारण रुलाता है—अर्थात् अश्रुओं को निकल-
वाता है वह 'रौद्र' है । शत्रु, जन, महाअरण्य गाढतिमिर आदि रौद्र
है । इनके दर्शन आदि से अद्भुत हुआ विकृत अध्यवसाय-परिणाम

कर्मरूप भास्विन्य विलय-विनाश-ने पाये छे. त्यागशी लुव निर्माण थाय छे.
इउत त्यागशी न केवलज्ञानने भेगवीने आत्मा सिद्धि पाये छे. अटला
भाटे डलरे शुष्ठां करतां पषु वधारे पडते। त्यागशुष्ठा मनाय छे. तेमन
" परलोकातिगं धाम तपःश्रुतम् " अटले के तप अने श्रुत पषु मोक्ष आप-
नारा छे अथी अही सूत्रमां वीररसनुं सर्वप्रथम उपादान करवामां आण्युं
छे श्रुत, शिल्प, अथवा त्याग, तप शौर्य कर्म वगेरे नेना सी करतां वधारे
छे, अथी गमे ते वस्तु डोय-ते ते पषु अद्भुत कडेवामां आवशे न
अे पूर्व वस्तुना दर्शनथी के श्रवणथी ने रस उद्भवे छे ते रस पषु उप-
चारथी अद्भुत रस कडेवाय छे. आ विस्मय रूप डोय छे. ने अतिदारुण
डोवा गढल रडावे छे अटले के अश्रु वडेवडावे छे ते रौद्र छे. शत्रुज्यो,
महारण्य, गाढतिमिर, वगेरे रौद्र छे. अमना दर्शन वगेरेथी उद्भवेल
विकृत अध्यवसाय-परिणाम रूप रस पषु रौद्र छे ने वलनननक छे ते

लज्जामुत्पादयतीति व्रीडनकः—लज्जास्पदवस्तुदर्शनादि—जन्यो मनोग्लानादि स्वरूपोऽयं रसः । अस्य स्थानेऽन्यत्र भयानको रसः प्रोक्तः । अयं हि—भयजनक संग्रामादि दर्शनेन जायते । अस्य रौद्रसेऽन्तर्भावनादत्र नायं पृथगुक्तः ॥ ५ ॥
 वीभत्सः—शुक्रशोणितोच्चारप्रस्रवणाद्यनिष्ठोद्वेगजनकवस्तुदर्शनश्रवणादिजो जुगुप्साप्रकर्षो रसो वीभत्सः ॥ ६ ॥ हास्यः—हास्यास्पदविकृताऽसम्बद्धपरवचनवेषालङ्कारादिश्रवणदर्शनजो मनःप्रकर्षादि चेषटात्मको रसो हास्यरसः ॥ ७ ॥ करुणः—प्रियविषयोगादि दुःखहेतुसमुद्भवः शोकप्रकर्षस्वरूपो रसः करुणरसः । कुत्सितं

रूप रस भी रौद्र है । जो लज्जा को उत्पन्न करता है वह 'व्रीडनक' है । यह रस लज्जास्पद वस्तु के देखने आदि से उत्पन्न मनोग्लानि आदि रूप होता है । इसके स्थान में दूसरी जगह भयानक रस कहा गया है । यह भय जनक संग्राम आदि के देखने से उत्पन्न होता है । इसका अन्तर्भाव रौद्र रस में करलिया है, इसलिये उसे यहां पृथक् नहीं कहा गया है । शुक्र, शोणित, उच्चार-विष्टा, प्रस्रवण-पेशाव, मूत्र, आदि जो अनिष्ट एवं उद्वेग जनक वस्तुएँ हैं, उनके देखने से, सुनने आदि से जो जुगुप्सा का प्रकर्ष होता है वही जुगुप्सा प्रकर्ष विभत्स रस कहलाता है । हास्यास्पद, विकृत एवं असंबद्ध ऐसे दूसरों के वचन सुनने से, वेष अलंकार आदि के देखने से जो मनप्रकर्ष आदि के चेषटात्मक रस होता है वह 'हास्य रस' है । प्रिय पदार्थ के वियोग से जन्य दुःख आदि हेतु से उद्भूत हुआ शोक प्रकर्ष स्वरूप जो रस है वह 'करुणरस' है । जिससे प्राणी बुरी तरह से रोता है अथवा जिसके

व्रीडनक छे. आ रस लज्जामुत्पादयतीति वस्तु जेवा वगेरेथी उत्पन्न थयेत मनोग्लानि वगेरे रूप डोय छे. जेना स्थाने भीष्म जग्याजे लयानक रस कडेवाभां आव्यो छे. आ लयानक रस संग्राम वगेरे जेवाथी उत्पन्न थाय छे जेना अन्तर्भाव रौद्र रसभां ज करवाभां आव्यो छे. जेथी अडी- पृथक् कथन कथुं नथी शुक्र, शोणित, उच्चार-मलविष्टा, प्रस्रवण-मूत्र वगेरे जे अनिष्ट अने उद्वेगजनक वस्तुजो छे जेभने जेवाथी, सांलणवा वगेरेथी जे जुगुप्सात्मक भाव उत्पन्न थाय छे तेज जुगुप्साप्रकर्ष रस वीभत्स रस कडेवाय छे. हास्यजनक, विकृत अने असंबद्ध जेवा भीष्म भाषुसोना वचनो सांलणवाथी वेष अलंकार वगेरे जेवाथी जे मनःप्रकर्ष वगेरे चेषटात्मक रस डोय छे ते हास्य रस छे. प्रियपदार्थना वियोगथी जन्य दुःख वगेरे हेतुथी उद्भूत थयेत शोक प्रकर्ष स्वरूप ज रस छे ते करुण रस छे जेनाथी प्राणी कथंकर रीते रो छे अथवा

रौत्यनेनेति करुणास्पदत्वाद् वा करुणः, इत्युभयविधाऽपि करुणशब्दव्युत्पत्ति-
र्बोध्या ॥८॥ प्रशान्तःपरमगुरुवचःश्रवणादि हेतुसमुद्भव उपशमप्रकर्षात्मको रसः
प्रशान्त रसः । प्रशाम्यति-क्रोधादिजनितचित्तविक्षेपादिरहितो भवत्यनेनेति
प्रशान्तशब्दव्युत्पत्तिर्बोध्या ॥ ९ ॥ सू० १६९ ॥

एतानेव रसान् लक्षणादि द्वारेण विवक्षुः प्रथमं तावद् वीररसं लक्षणनिर्देश-
पुरस्सरं निरूपयति—

मूलम्—तत्थ परिच्चायंमि य, तवचरणसत्तुजणविणासे
य । अणणुसयधिइपरकम—लिंगो वीरो रसो होइ ॥१॥ वीरो रसो
जहा—सो नाम महावीरो, जो रज्जं पयहिऊणपव्वइओ । काम-
कोहमहासत्तुपक्खनिग्घायणं कुणइ ॥२॥सू०१७०॥

छाया—तत्र—परित्यागे च तपश्चरणे शत्रुजनविनाशे च । अननुशयधृतिपराक्रम-
कारण प्राणी करुणा का आस्पद (स्थान) बनता है, वह रस 'करुणरस'
है । करुणशब्द की दोनों प्रकार की यह व्युत्पत्ति संगत जाननी चाहिये ।
परमगुरुओं के वचन श्रवणादिरूप हेतु से उद्भूत जो उपशम की प्रक-
र्षतारूपरस है, वह 'प्रशान्तरस' है । जिसके द्वारा प्राणी क्रोध आदिसे
जनित-चित्त विक्षेप आदि से विहीन बन जाता है ऐसी यह प्रशान्त
शब्द की व्युत्पत्ति है । ॥ सू० १६९ ॥

अब सूत्रकार इन्हीं रसों को लक्षणादि द्वारा कहने की इच्छा से
सर्व प्रथम लक्षण निर्देश पुरस्सर वीररस का कथन करते हैं ।

“तत्थ परिच्चायंमि” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(तत्थ) इन नवरसों के बीच में (परिच्चायंमि य तव चरण-

जेनाथी प्राणी कइण्णुपूणुं थधं नय छे ते रस कइण्णु रस छे. कइण्णु शब्दनी
आ नन्ने प्रकारनी व्युत्पत्ति योग्य न कडेवाय परमगुरुजनोना वचन श्रवण
वगेरे इय हेतुथी उद्भूत जे उपशमनी प्रकर्षता इय रस छे ते प्रशान्त रस
छे. जेना वडे प्राणी क्रोध वगेरेथी उद्भवेव चित्तविक्षेपादिथी विहीन थधं
नय छे प्रशान्त शब्दनी आ व्युत्पत्ति छे. ॥सू०१६९॥

इसे सूत्रकार जोर रसोने लक्षणो वगेरे द्वारा स्पष्ट करवानी अपेक्षाथी
अही' सर्व प्रथम वीर रसनु' कथन लक्षण निर्देश पुरस्सर करे छे—

“तत्थ परिच्चायंमि” इत्यादि—

शब्दार्थ—(तत्थ) आ नव रसोमां (परिच्चायंमि य तवचरणसत्तुजण

लिक्रो वीरो रसो भवति ॥१॥ वीरो रसो यथा-स नाम महावीरो यो राज्यं प्रहाय
प्रव्रजितः । कामक्रोधमहाशत्रुपक्षनिर्घातनं करोति ॥२॥ सू० ॥१७० ॥

टीका—‘तत्थ’ इत्यादि—

तत्र तेषु नव रसेषु मध्ये परित्यागे च तपश्चरणे च शत्रुजनविनाशे अननु-
शयधृतिपराक्रमलिक्रो वीरो रसो भवति । अयं भावः—परित्यागे—दाने अननुशय-
लिक्रः—अनुशयः—गर्वः पश्चात्तापो वा, स लिक्रं=लक्षणं यस्य सोऽनुशयलिक्रः, न
अनुशयलिक्रः अननुशयलिक्रः—दानं दत्त्वाऽहङ्कारं पश्चात्तापं वा न करोति तदा वीरो
रसो बोध्यः । तपश्चरणे =तपसि धृतलिक्रः=धैर्यचिह्नःतपश्चर्यायां धैर्यमेव करोति
न पश्चात्तापं तदा वीरो रसो भवति । शत्रुविनाशे=शत्रूणांमुन्मूलने पराक्रमलिक्रः=

सत्तुजणविणासेय) परित्याग करने में, तपश्चरण करने में और शत्रुजन
के विनाश करने में अणणुसयधिइपरक्रम-लिंगो वीररसो होइ) अन-
नुशय धृति, पराक्रम इन चिन्हों वाला वीररस होता है । अनुशय
शब्द का अर्थ गर्व अथवा पश्चात्ताप है । यह जिसका लक्षण है,
वह अनुशयलिक्र है यह लिक्र जिसमें नहीं होता वह
अननुशय लिक्र है दान देकर के जो अहंकार या पश्चात्ताप नहीं
करता है, उससमय वीररस होता है । तपश्चर्या करने में जो धैर्यरखता
है—पश्चात्ताप नहीं करता है वह वीररस का काम है । “शत्रुजन के
विनाश करने में जो पराक्रमका अवलम्बन करता है वैकल्य-विकलता
कमजोरी हृदय में नहीं लाता है, यह सब वीररस के द्वारा होता है ।
इन अननुशय, धैर्य और पराक्रम लक्षणों से यह जाना जाता है कि
‘यह मनुष्य वीररस में वर्तमान है । इसीप्रकार से अन्यत्र भी समझना

विणासे य) परित्याग करवाभां, तपश्चरण करवाभां, अने शत्रुजोना विनाश
करवाभां (अणणुसयधिइपरक्रमलिंगो वीररसो होइ) अननुशय, धृति, परा-
क्रम आ लक्षणोवाणो रस वीररस कडेवाय छे. अनुशय शब्दने
अर्थ गर्व—अथवा पश्चात्ताप छे. आ जेनुं लक्षण छे, ते अनुशय लिंग
छे. जे जेभां होतो नथी. ते अननुशय लिंग छे. दान आपीने जे
अहंकार के पश्चात्ताप करतो नथी ते वीररस कडेवाय छे. तपश्चर्याभां
जे धैर्य राणे छे—पश्चात्ताप करतो नथी ते वीररसने लीधे ज. शत्रुजनना
विनाशार्थे जे पराक्रम भतावे छे वैकल्य-विकलता—नभणापणुं भतावतो नथी ते
वीर रसने लीधे ज. आ सवे अननुशय, धैर्य अने पराक्रमना लक्षणोथी अभ
जणाय छे के ‘आ भाणुस वीररस युक्त छे.’ आ प्रमाणे जीजे पणु समणुं लोध्थे.

पराक्रमचिह्नः परक्रमते न तु वैकृष्यमवलम्बते तदा च वीरो रसो भवति । एतन्नि-
मिलक्षणैर्ज्ञाते यदयं जनो वीरे रसे वर्तते इति । एवमन्यत्रापि बोध्यम् । सम्प्रति
उदाहरणं दर्शयितुमाह — वीरो रसो यथा यथा=येन प्रकारेण वीरो रसो ज्ञायते-
तथोच्यतेऽनुपदवक्ष्यमाणया गाथया 'सो नाम' इत्यादि रूपया । यो राज्यं परि-
त्यज्य प्रव्रजितः सन् कामक्रोधरूपमहाशत्रुपक्षस्य निर्वातनं=विनाशं करोति स
नाम=निश्चयेन महावीरो भवति । वीररसे यथा पुरुषचेष्टाप्रतिपाद्यते तथैवैवविधेषु
काव्येषु पुरुषचेष्टाप्रतिपादनात् वीरो रसो बोध्यः । तथा चात्र मोक्षप्रतिपादके
प्रस्तुतशास्त्रे महापुरुषविजेतव्यकामक्रोधादिभावशत्रुजयेनैव वीररसोदाहरणम् । प्रा-

चाहिये । अब सूत्रकार (वीरो रसो जहा) वीररस जिस प्रकार के दृष्टान्त
से जाना जाता है, उस प्रकार के दृष्टान्त को इस गाथा द्वारा प्रकट
करते हैं—(सो नाम महावीरो जो रज्जं पयहिऊण पव्वहओ, काम कोह-
महासत्तुपक्खनिग्घायणं कुणइ) ' जो राज्य का परित्याग करके
दीक्षित होता है और दीक्षित होकर जो-काम क्रोध रूप
महाशत्रु के पक्षका विनाश करता-है वह निश्चय से महावीर होता है ।
वीररस में जैसी पुरुष चेष्टा कही जाती है वैसी ही पुरुष चेष्टा इस
प्रकार के काव्यों में प्रकट की जाती है अर्थात् वर्णित की जाती है—इस-
लिये वहां वीररस जानना चाहिये । यह प्रस्तुत शास्त्र मोक्ष का प्रति-
पादन करने वाला है । इसलिये इसमें महा पुरुष द्वारा विजेतव्य जो
काम क्रोध आदि भावशत्रु हैं, उनके जीतने से ही वीररस का उदा-
हरण कहा गया है । साधारण मनुष्यद्वारा साध्य—ऐसे संसार का कारण

डवे सूत्रकार आ (वीरो रसो जहा) वीररस जे प्रकारना दृष्टान्त-
न्तथी लक्षणवामां आवे छे ते प्रकारना दृष्टान्तने आ गाथा वडे
स्पष्ट करे छे—(सो नाम महावीरो जो रज्जं पयहिऊण पव्वहओ, कामकोह
महासत्तुपक्खनिग्घायणं कुणइ) ' जे राज्याना वैलवने त्यज्जने दीक्षा अडण्ण
करे छे अने दीक्षित थधने जे काम-क्रोध इय महाशत्रुनां पक्षने विनष्ट करे
छे, ते अडण्ण महावीर होय छे. वीररसमां जेवी पुरुष-चेष्टा उडेवामां आवे
छे तेवी पुरुषचेष्टा आ लतना काव्येमां प्रकट करवामां आवे छे अट्ठे डे
वर्णववामां आवे छे. अथी त्यां वीररस लक्षणवो लक्षणो आ प्रस्तुतशास्त्र
मोक्षप्रतिपादक छे. अट्ठे माटे आ शास्त्रमां महापुरुष वडे विजेतव्य काम,
क्रोध वगेरे शत्रुलावो छे, तेमने लतवाना ज वीररसना उदाहरणो प्रस्तुत
मानवामां आव्यां छे. सामान्य माणुसो वडे साध्य अेवा संसारना कारणभूत

कृतमनुजसाध्यसंसारकारणद्रव्यशत्रुनिग्रहस्याप्रस्तुतत्वान्न तथाविधोदाहरणमत्र
इत्थम् । एवमन्यत्रापि बोध्यम् ॥सू० १७०॥

अथ द्वितीयं शृङ्गाररसं लक्षणं निरूपयति—

मूलम्—सिंगारो नाम रसो रतिसंयोगाभिलाससंजणणो ।
मण्डणविलासविद्योयहासलीलारमणलिंगो ॥४॥ सिंगारो रसो
जहा मधुरविलाससलियं हियउम्मादणकरं जुवाणाणं । सामा
सद्दुदामं दाएती मेहलादामं ॥५॥ धी धीमं सिंगारे, साहूणं
जो उवजियवो य । मोक्खगिहअगला सो, नायरियवो य
मुणिहि इमो ॥६॥सू० १७१॥

छाया— शृङ्गारो नामरसो रतिसंयोगाभिलाषसंजननः । मण्डनविलास वि-
व्वोक हास्यलीलारमणल्लिङ्गोः ॥४॥ शृङ्गारो रसो यथा—मधुरविलाससुललितं हृद-
योन्मादनकरं यूनाम् । श्यामा शब्दोद्दामं दर्शयति मेखलादाम ॥५॥ धिग्धिग् इमं
शृङ्गारं, साधूनां यस्तु वर्जितव्यश्च । मोक्षगृहार्गला सः, नाचरितव्यश्च मुनि-
भिरयम् ॥६॥ सू० १७१॥

टीका —‘सिंगारो’ इत्यादि—

शृङ्गारो नाम रसो हि—रतिसंयोगाभिलाषसंजननः—रतिः रतिकारणानि
ललनादीनि गृह्यन्ते कार्ये कारणोपचारात्, तत्संयोगाभिलाषस्य—ललनाभिः सह
श्रुतं जो द्रव्य शत्रु का निग्रह करना है वह यहां अप्रस्तुत है । इसलिये
सूत्रकारने इस प्रकार का उदाहरण यहां नहीं दिया है इसी प्रकार से
अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥ सू० १७० ॥

अथ सूत्रकार लक्षण सहित शृंगार रस का निरूपण करते हैं—
“सिंगारो नाम रसो” इत्यादि ।

शब्दार्थ— (सिंगारो नाम रसो रतिसंयोगाभिलास—संजणणो)
शृङ्गार नामक रस रतिसंयोगाभिलाष जनक होता है । रति से

ने द्रव्यशत्रुत्वं दहन करवुं ते अहीं अप्रस्तुत छे. अथी न सूत्रकारे आ नतवुं
उदाहरणु अहीं आप्थुं नथी आ प्रभाणु पीने पणु न्णवुं लेध्मे. ॥सू० १७०॥

इये सूत्रकार लक्षणसहित शृंगाररसनुं निरूपणु करे छे—

“सिंगारो नाम रसो ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(सिंगारो नाम रसो रतिसंयोगाभिलाससंजणणो) शृंगार रस
रतिसंयोगाभिलाषजनक होय छे. अहीं रतिथी कार्यंभां कारणुना उपन्याथी

सङ्गमेच्छायाः संजननः=समुत्पादकः, तथाच मण्डनविलासविब्वोकहास्यरमण-
लिङ्गः-मण्डनम्-अलङ्कारैर्गात्रालङ्करणम्, विलासः-प्रियसमीपगमने यः स्थानास-
नगमनविब्वोकितेषु विकारोऽकस्माच्च क्रोधस्मितचमत्कारमुखविक्रवनं स विलासः,
विब्वोकः=अभिमत्प्राप्तौपि गर्वादनादरः, सापराधस्य सङ्गचन्दनादिना संयमनं
ताडनं च, हास्यम्=प्रतीकार्थम्, लीला=सकामगमनभाषितादि रमणीयचेष्टा,
अलब्धप्रियसमागमया स्त्रिया स्वचित्तविनोदार्थं प्रियस्य या वेषगतिदृष्टिदृष्टिसितभ-
णितैरनुकृतिः क्रियते सा वा लीला, रमणं=क्रीडनम्, एतानि लिङ्गं-चिह्नं यस्य
स तथाविधो भवति । उदाहरणमाह-शृङ्गारो रसो यथा-श्यामा-पोडशवर्षदे-

यहां पर कार्य में कारण के उपचार से रति के कारणभूत जो
ललना आदि पदार्थ हैं, वे ग्रहण किये गये हैं । उनके साथ संगम की
इच्छा का जनक यह शृङ्गार रस होता है । (मंडणाविलासविब्वोय,
हास, लीलारमणलिङ्गो) अलंकारों से शरीर को सज्जित=अलंकृत,
करना इसका नाम 'मण्डन' है । प्रिय के समीप जाने में जो स्थान,
आसन, गमन, एवं विलोकन में विकार और अकस्मात् क्रोध, स्मित,
चमत्कार, मुख विक्रवन होता है, वह विलास है । अभिमत् की प्राप्ति
में भी गर्व (अहंकार) से अनादर, करना और अपराधसहित का
स्रक-माला चंदन आदि से संयमन करना, ताडन करना, यह विब्वोक
है । हास्य-हँसना । सकाम गमन एवं भाषित आदि जो रमणीय चेष्टाएँ
हैं, वे 'लीला' हैं । अथवा जिस स्त्री को प्रिय का समागम अलब्ध हो
रहा है, वह जो अपने चित्त को विनोदित करने के लिये प्रिय के वेष

रतिना कारणे ने ललना वगैरे पदार्थो छे तेमनुं अर्हणु करवाभां आण्युं छे.
तेमनी साथे संगमनी धञ्जाने उद्भावके आ शृंगार रस डोय छे. (मंडण-
विलासविब्वोय, हास, लीला रमणलिङ्गो) अलंकारोथी शरीरने सुसज्जित-
अलंकृत-करवुं तेनुं नाम 'मंडन' छे. प्रियनी पासे नतां ने स्थान,
आसन, गमन अने विलोकनभां विकार तेमज्ज आचिंता-क्रोध, स्मित, चम-
त्कार, मुखविक्रवन डोय छे, ते विलास छे अलिमतनी प्राप्तिभां पणु गर्व
(अहंकार)थी अनादर करवो, तेमज्ज अपराधीनुं स्रक-भाणा-चंदन वगैरेथी
संयमन करवुं, ताडन करवुं विब्वोक छे हास्य-हंसवुं सकाम गमन अने
भाषित ने रमणीय चेष्टाओ छे, ते 'लीला' छे. अथवा ने श्री प्रियसमा-
गम भेणवी शकी नहीं तेवी श्री पोताना चित्तने प्रसन्न करवा भाटे प्रियना
वेषनुं गतिनुं दृष्टिनुं, हास्यनुं, वाणीनुं अनुकरणु करे छे, ते 'लीला' छे.

शीया-स्त्री, 'श्यामा षोडशवार्षिकी' इत्यभिधानात्, शब्दोद्दाम-शब्दउद्दामा= प्रचुरो यत्र तत्-किङ्किणी स्वनमुत्तरम् 'उद्दाम' शब्दस्य परनिपात आर्षत्वात्, अतएव यूनां=तरुणानां हृदयोन्मादकरम् प्रबलस्मरप्रकटीकरणान् हृदयोन्मत्तता विधायकं स्वकीयं मेखलादाम=कटिसूत्रं मधुरविलाससुललितम्-मधुरैः=कामिजनहृदयाह्लादकतया माधुर्यमुरगतैः विलासैः सकामचेष्टाविशेषैः सुललितम्=अतिशयमनोहारि यथास्यात्तथा दर्शयति । शृङ्गारप्रधानचेष्टाप्रतिपादनादयं शृङ्गारो रसः,

का, गति का, दृष्टि का, हास्य का, बोली का अनुकरण करती है, वह 'लीला' है । क्रीडा करना इसका नाम रमण है । इस शृङ्गार रस के मंडन, विलास, विव्भोक, हास्य, लीला और रमण ये चिह्न हैं ।

अब सूत्रकार (सिंगारो रसो जहा) यह शृङ्गार रस जिस प्रकार से जाना जाता है, उस प्रकार को इस गाथा द्वारा प्रकट करते हैं—(सामा) "श्यामा षोडशवार्षिकी" इस कथनानुसार कोई षोडशवर्षदेशीया—सोलह वर्ष की अवस्था वाली तरुण वयस्का-स्त्री (सदुद्दामं) क्षुद्रघंटिकाओं के शब्द से सुखरित अतएव (जुवाणाणं) युवा पुरुषों के (हियउम्मादणकरं) हृदय को प्रबलस्मरकी पीड़ा उत्पन्न करने से उन्मत्त करने वाले ऐसे (मेहलादामं) अपने कटिसूत्र को (मधुरविलाससुललियं) कामिजनों के हृदय को आह्लादक होने के कारण मधुर लगने वाले विलासों-सकाम चेष्टा विशेषों-से अतिशय मनोहारी जैसे बहं होता है उस प्रकार से (दाएती) दिखलाते हैं इस शृंगाररस में शृंगारप्रधान चेष्टाओं का प्रतिपादन होता है इसलिये इसे 'शृंगाररस'

क्रीडा करवी ते रमणु कडेवाय छे मंडन, विलास, विव्भोक, हास्य, लीला तेमज रमणु आ सर्वे शृंगार रसना चिहो छे.

इसे सूत्रकार (सिंगारो रसो जहा) शृंगाररस' जेनाथी जणाय छे तेनु आ गाथा वडे कथन करे छे. (सामा) "श्यामा षोडशवार्षिकी" आ कथन मुज्ज कौं सोण वर्षनी अवस्थावाणी तरुणवयस्का-स्त्री (सदुद्दामं) क्षुद्रघंटिका-ओथी सुखरित तेथी (जुवाणाणं) युवकेना (हियउम्मादणकरं) हृदयेने प्रबलतम स्मर पीडाथी युक्त करीने उन्मत्त करनार (मेहला दामं) पोताना कटिसूत्रने (मधुरविलाससुललियं) कामुकेना हृदयेने आह्लादक होवा पहल मधुर लागे तेवा विलासो-सकाम चेष्टा विशेषोथी अतिशय मनोहारी लागे तेम (दाएती) तेने पतावे छे. आ शृंगार रसमां शृंगार प्रधान चेष्टाओनुं प्रतिपादन थाय छे ओथी आने शृंगार रस कडेवाभां आवे छे. (धी धीमं

इति बोध्यम् ॥ इमं = पूर्वोक्तस्वरूपं शृङ्गारं = शृङ्गाररसं धिग् धिग् = धिगस्तु यस्तु-
साधुनां = सर्वविरतिमतां मुनीनां वर्जितव्यः । स शृङ्गारः मोक्षगृहार्गला = मोक्षद्वार-
स्यागलाभूतोऽतोऽसौ शृङ्गाररसः मुनिभिर्नावरितव्यः = न सेवनीयः ॥ ६ ॥ सू० १७१ ॥

अथ तृतीयमद्भुतरसं सलक्षणमाह—

मूलम्—विम्हयकरो अपुञ्जो, अनुभूयपुञ्जो य जो रसो होइ ।
हरिसविसा उप्पत्ति,—लक्खणो अब्भुओ नाम ॥ ६ ॥ अब्भुओ
रसो जहा—अब्भुयतरमिहएत्तो अन्नं किं अत्थि जीवलोगंमि ।
जं जिणवयणे अत्था तिकालजुत्ता मुणिज्जंति ? ॥ ७ ॥ सू० १७२ ॥

छाया—विस्मयकरः अपूर्वः अनुभूतपूर्वश्च यो रसो भवति । हर्षविपादोत्प-
त्तिलक्षणः—अद्भुतो नाम ॥ अद्भुतो रसो यथा—अद्भुतरमिह एतस्मात् अन्यत्
किमस्ति जीवलोके । यत् जिनवचने अर्थाः त्रिकालयुक्ता ज्ञायन्ते ॥ सू० १७२ ॥

टीका—‘विम्हयकरो’ इत्यादि—

अपूर्वः = अननुभूतपूर्वः, अनुभूतपूर्वः—पूर्वमनुभूतो वा विस्मयकरः—कस्मि-
श्चिदद्भुते पदार्थे दृष्टे यदाश्चर्यं जायते, अतः स पदार्थो विस्मयकर उच्यते,

कहा है । (धी धीमं शृंगारं) इसपूर्वोक्त स्वरूपवाले शृंगाररस—को धिक्कार
हो धिक्कार हो (जो उ) क्योंकि यह (साहूणं) साधु जनों को (वज्जियव्वो)
छोड़ने योग्य कहा गया है । कारण इसका यह है कि यह (मोक्खगिह
अगलाओ) मोक्ष रूपी घरकी अर्गला रूप है । अतः (मुणिहि इमो नाय-
रियव्वो) मुनि जनों को इसका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ सू० १७१ ॥

अब सूत्रकार लक्षणनिर्देश पुरस्सर तीसरे अद्भूत रस का कथन
करते हैं ।—“विम्हय करो अपुञ्जो अनुभूयपुञ्जो” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(अपुञ्ज) पूर्व में कभी अनुभव में नहीं आये अथवा (अनु-

सिगार) आ उपरोक्त स्वरूपवाला शृंगार रसने धिक्कार छे, धिक्कार छे.
(जो उ) केम के अ्जे (साहूणं) साधु जनोने सर्व विरति संपन्न मुनिजनोना
भाटे (विवज्जियव्वो) त्याज्य छडेवाभां आव्ये छे. केम के आ (मोक्खगिह-
अगलाओ) मोक्षरूपी घरनी अर्गला छे. अथी (मुणिहि इमो नायरियव्वो)
मुनिजनो आ रसनं सेवन करे नडीं. ॥ सू० १७१ ॥

इसे सूत्रकार लक्षण सहित त्रीन अद्भुत रसनं कथन करे छे—

“विम्हयकरो अपुञ्जो अनुभूयपुञ्जो” इत्यादि—

शब्दार्थ—(अपुञ्ज) पूर्व के छे पणु दिवसे न अनुभवेत अथवा ते।

તદર્શનોદ્ભવો રસોઽપિ વિસ્મયકરો बोध्यः एतादृशो यो रसो भवति स हर्षविषा
 दोत्पत्तिलक्षणः आश्चर्यमये शुभे वस्तुनि दृष्टे हर्षोत्पत्तिः, तथैवाशुभे वस्तुनि दृष्टे
 विषादोत्पत्तिः, एतदुभयचिह्नः अद्भुतो नाम रसो बोध्यः । उदाहरणमाह—अद्भुतो
 रसो यथा—इह=अस्मिन् जीवलोके=संसारे इतोऽन्यत्=अस्मात्परम् अद्भुततरम्=
 आश्चर्यतरम् किमस्ति? =न किंचिदप्यस्ति । कुतो न ? इत्याह—यत्=यस्मात् कारणात्
 जिनवचने त्रिकालयुक्ताः=अतीतानागतवर्तमानरूपत्रिकालयुक्ता अपि अर्थाः=
 जीवादयः सूक्ष्मव्यवहिततिरोहितातीन्द्रिया मूर्त्तादिस्वरूपा ज्ञायन्ते इति॥सू० १७२॥

ભૂયપુવ્વો) અનુભવ મેં મી આયે હુએ એસે (વિમ્હયકરો) કિસી અદ્ભૂત
 પદાર્થ કે દેખને પર જો આશ્ચર્ય હોતા હૈ, ઉસ આશ્ચર્ય કા જનક વહ
 પદાર્થ વિસ્મય કર કહલાતા હૈ તથા ઉસસે જો રસ ઉત્પન્ન હોતા હૈ,
 વહ રસ-મી વિસ્મયકર કહા જાતા હૈ । હસ અદ્ભૂત રસ કા- લક્ષણ
 હર્ષ ઓર વિષાદ કી ઉત્પત્તિ હોના હૈ । આશ્ચર્ય જનક કિસી શુભવસ્તુ
 કે દેખને પર હર્ષોત્પત્તિ હોતી હૈ, ઓર અશુભવસ્તુ દેખને પર વિષાદો-
 ત્પત્તિ હોતી હૈ । અતઃ યહ અદ્ભૂત રસ ઇન દોનોં ચિહ્ન વાલા હોતા હૈ,
 એસા જાનના ચાહિયે । અબ સૂત્રકાર હસ રસ કો જાનને કે લિયે ઉદા-
 હરણ કહતે હૈ । વે કહતે હૈ કિ (અબ્ધુઓ રસો) 'યહ અદ્ભૂત રસ
 હસપ્રકાર સે હૈ (જહા) જૈસે-(અબ્ધુયતરમિહ ઇત્તો અન્નં કિં અત્થિજીવ-
 લોગંમિ) હસ-જીવલોક મેં હસસે અધિક ઓર દૂસરા આશ્ચર્ય-
 કયા હૈ ? (જં જિણવચણે તિકાલજુક્તા અત્થા મુણિજ્જંતિ) જો જિન વચન
 મેં સ્થિત ત્રિકાલ-અતીત -અનાગત-ઓર વર્તમાન કાલવર્તી સમસ્ત

(અનુભૂયપુવ્વો) અનુભવેલ (વિમ્હયકરો) કોઈ પણ અદ્ભૂત પદાર્થને જોઈને
 જે આશ્ચર્ય થાય છે, તે આશ્ચર્યને ઉત્પન્ન કરનાર તે પદાર્થ વિસ્મયકારી
 કહેવાય છે. તેમજ તેના વડે જે રસ ઉત્પન્ન થાય છે, તે રસ પણ વિસ્મય-
 કર કહેવાય છે આ અદ્ભૂત રસનું લક્ષણ હર્ષ અને વિષાદની ઉત્પત્તિ થવી
 તે છે આશ્ચર્યોત્પાદક કોઈ શુભ વસ્તુને જોવાથી હર્ષ ઉત્પન્ન થાય છે.
 અને અશુભ વસ્તુને જોવાથી વિષાદની ઉત્પત્તિ થાય છે. એથી
 આ અદ્ભૂત રસ આ બંને ચિહ્નો યુક્ત હોય છે. હવે સૂત્રકાર આ રસને
 જાણવા માટે ઉદાહરણો પ્રસ્તુત કરે છે. તેઓ કહે છે કે (અબ્ધુઓ રસો)
 આ અદ્ભૂત રસ આ પ્રમાણે છે-(જહા) જેમ કે (અબ્ધુયતરમિહ ઇત્તો અન્નં
 કિં અત્થિ જીવલોગંમિ) આ જીવલોકમાં એના કરતાં ખીણ કંઈ નવાઈ
 યમાટે તેવી વાત છે. કે (જં જિણવચણે તિકાલ જુક્તા અત્થા મુણિજ્જંતિ) જે
 જિન વચનમાં સ્થિત ત્રિકાલ-અતીત-અનાગત અને વર્તમાનકાલીન સર્વ

अथ चतुर्थं रौद्ररसं सलक्षणमाह—

मूलम्—भयजण्णरूवसद्वंधयारचिंताकहासमुप्पण्णो । संमोह-
संभमविसायमरणलिङ्गो रसो रोदो ॥८॥ रोदो रसो जहा—भिउडी
विडंबियमुहो संदट्टोइ इयरुहिरमाकिण्णो । हणसि पसुं असुरणिभो
भीमरसिय अइरोह ! रोदोऽसि ॥९॥सू० १७३॥

छाया—भयजननरूपशब्दान्धकारचिन्ताकथासमुत्पन्नः । सम्मोहसंभ्रमत्रि-
षादमरणलिङ्गो रसो रौद्रः ॥ रौद्रो रसो यथा—भुकुटिविडम्बितमुखः संदष्टौष्ठः
इति रुधिरमाकीर्णः । हंसि पशुम् असुरनिभो भीमरसित अतिरौद्र !
रौद्रोऽसि । सू० १७३॥

टीका—‘भयजण्ण’ इत्यादि—

भयजननरूपशब्दान्धकारचिन्ताकथासमुत्पन्नः—रूपं=शत्रुपिशाचादीनामाकृतिः,

सूक्ष्म व्यवहित एवं तिरोहित पदार्थ जान लिये जाते हैं । स्वभाव विप्र-
कृष्ट परमाणु आदि पदार्थ सूक्ष्म हैं । काल विप्रकृष्ट—राम—रावण आदि
आदि पदार्थ व्यवहित हैं देश विप्रकृष्ट—सुमेरु पर्वत आदि पदार्थ
तिरोहित हैं । इस प्रकार अतीन्द्रिय एवं अमूर्त स्वरूप जितने भी आगम-
कथित त्रिकालवर्ति जीवादिक पदार्थ हैं, वे सब जिनवचन के प्रभाव
से प्रत्यक्ष और परोक्षरूप से जानलिये जाते हैं ॥ सू० १७२ ॥

अब सूत्रकार चौथा रौद्र रस का लक्षण निर्देशपूर्वक कथन
करते हैं—“भयजण्णरूव” इत्यादि

शब्दार्थ—(भयजण्णरूवसद्वंधयारचिंताकहासमुप्पण्णो) भय,

सूक्ष्म व्यवहित अने तिरोहित, पदार्थों जलणी देवाय छे स्वभाव विप्रकृष्ट
परमाणु वगेरे पदार्थों सूक्ष्म छे. कालविप्रकृष्ट राम—रावण वगेरे पदार्थों
व्यवहित छे, देशविप्रकृष्ट सुमेरुपर्वत वगेरे पदार्थों तिरोहित छे. आ प्रमाणु
नेटलां आगम कथित त्रिकालवर्ती अतीन्द्रिय अने अमूर्त स्वरूप एवादि
पदार्थों छे, ते सवें जिन वचनना प्रभावधी प्रत्यक्ष तेमण परोक्ष रीते
जलणी देवाय छे. ॥सू० १७२॥

उवे सूत्रकार चतुर्थं रौद्र रसतुं लक्षण सद्धित कथन करे छे—

“ भयजण्णरूव ” इत्यादि—

शब्दार्थ—(भयजण्णरूवसद्वंधयारचिंता कहा समुप्पण्णो) लयेत्पाठक ३५,

शब्दः=तेषामेव शत्रुपिशाचादीनां शब्दः, अन्धकारः-निविडतमः, एतेषां द्वन्द्वः,
 भयजननाः=भयोत्पादका ये रूपशब्दान्धकाराः-तेषां चिन्ता=तत्स्वरूपपर्यालो-
 चनरूपा स्मृतिः, कथा=स्वरूपप्रकथनं च, उपलक्षणत्वाद् दर्शनमपि बोध्यम्, ततः
 समुत्पन्नः=संजातः, तथा-संमोहसंभ्रमविषादमरणलिङ्गः-संमोहः विवेकरहित्यम्,
 संभ्रमः=व्याकुलता, विषादः=ममाऽत्रप्रदेशे समागमनमशोभनमित्येवं शोकः,
 मरणं=भयोद्विग्नस्य गजसुकुमालहन्तुः सोमिलब्राह्मणस्येव झटिति प्राणोत्क्रमणम्,
 एतानि लिङ्गानि=चिह्नानि यस्य स तथाभूतो रौद्रो रसो भवति । नन्वयं भयजन-
 क्तरूपादि स्मरणकथनदर्शनसमुत्पन्नः सम्मोहादिलक्षणो भयानक एव भवति,
 कथमस्य रौद्ररसत्वमभिहितम् ? इति चेदाह-यद्यप्ययं भवत्कथनानुसारेण भयानक

जनक रूप, शब्द और अंधकार की स्वरूपपर्यालोचनारूप स्मृति से स्वरूप कथनरूप कथा से ' दर्शन से उत्पन्न हुआ (संमोहसंभ्रमविषादमरणलिङ्गो) तथा विवेकरहितपना रूप संमोह व्याकुलतारूप संभ्रम शोक रूप विषाद और प्राणविसर्जन रूप मरण इन-लिङ्गों चिह्नों वाला (रौद्रो रसो) रौद्र रस होता है । तात्पर्य कहने का यह है कि यह रौद्र रस भयजनक रूपादिकों के स्मरण आदि से उत्पन्न होता है और यह संमोह चिह्नों से जाना जाता है मेरा इस प्रदेश में समागमन ठीक नहीं है, इस प्रकार से शोक करने का नाम विषाद है । गज सुकुमाल को मारने वाले सोमिल ब्राह्मण की तरह भयोद्विग्न व्यक्ति के जो जल्दी से प्राणों का उत्क्रमण है वह मरण है ।

शंका-भयजनक रूपादिकों के स्मरण से, कथन से एवं दर्शन से,-

शब्द अने अंधकारनी स्वरूप पर्यालोचना रूप स्मृतिधी, स्वरूप कथन रूप कथाधी दर्शनधी उत्पन्न थयेत (संमोहसंभ्रमविषादमरणलिङ्गो) तेभ्यो विवेकरहित्य रूप संमोह, व्याकुलता रूप संभ्रम, शोक रूप विषाद अने प्राण विसर्जन रूप मरण आ चिह्नो युक्त (रौद्रो रसो) रौद्र रस होय छे. तात्पर्य आ प्रभाषे छे के आ रौद्र रस लयेत्याहक रूप वगेरेना स्मरणधी उत्पन्न थाय छे. आ संमोहन चिह्नोधी लक्ष्यवामा आवे छे भाई आ प्रदेशमा समागमन उचित नथी, आ प्रभाषे चिन्ता करवी ते विषाद छे. गजसुकुमालने मारनार सोमिल ब्राह्मणी नेम लयेद्विग्न व्यक्तिना प्राणानुं ने जल्दी उत्क्रमण छे, ते मरण छे.

शंका-भयोत्पादक रूपादिकेने स्मरणधी, कथनधी अने दर्शनधी उत्पन्न

एव, तथाऽपि पिशाचादिरौद्रवस्तुसंजातत्वादस्य रौद्रत्वं विवक्षितम्। अतो न कश्चिद् दोषः। किं च शत्रुजनादिदर्शने तच्छिरच्छेदने समुद्युक्तानां छागशूकरकुरङ्गवधादिप्रवृत्तानां च यो रौद्राध्यवसायात्मको भ्रुकुटीभङ्गादिलिङ्गो रौद्रो रसोऽप्युपलक्षणत्वाद्त्रैव बोध्यः। अन्यथा स निरास्पद एव स्यात्। अत एवात्र रौद्रपरिणामवत्पुरुषचेष्टाप्रतिपादकमेवोदाहरणं वक्ष्यति। भयत्रस्तचेष्टाप्रतिपादकमुदाहरणं

उत्पन्न हुआ संमोहादिलक्षणोंवाला भयानक रसही होता है, फिर इसे रौद्ररस रूप कैसे कहा ?

उत्तर—यद्यपि यह आपके कथनानुसार भयानक रस ही है—तो भी पिशाच आदि रौद्र वस्तु के देखने आदि से यह उत्पन्न होता है, इसलिये इसमें रौद्रता विवक्षित हुई है। किंच—शत्रुजन आदि के दर्शन होनेपर उनके शिरच्छेद करने में कटिबद्ध हुए व्यक्तियों के और पकरा, शूकर एवं कुरंग—हिरण—आदि जानवरों की हिंसा करने में प्रवृत्त हुए व्यक्तियों के जो रौद्र परिणाम होते हैं, कि जो भ्रुकुटी भङ्ग आदि चिह्नों से जाने जाते हैं वे भी रौद्ररस स्वरूप ही होते हैं। अतः उपलक्षण—से रौद्ररस यहां पर जानना चाहिये। नहीं तो, रौद्राध्यवसाय रूप—रौद्ररस निराश्रय मानना पड़ेगा। इसीलिये रौद्रपरिणाम युक्त पुरुष की चेष्टाओं का प्रतिपादक ही उदाहरण यहां सूत्रकार ने कहा है। भय से त्रस्त हुए व्यक्तियों की चेष्टाओं का प्रतिपादन करने वाला उदा-

थयेल संमोहादि लक्षणेषुवाणो भयानक रस न डोय छे, त्यारे अने रौद्र रस इप शा भाटे कडेवामां आव्यो छे ?

उत्तर—जे के तमारा कथा मुज्जम तो आ भयानक रस न छे छतां जे पिशाच वगेरे रौद्र वस्तुने जेवा वगेरेथी ते उत्पन्न थाय छे, जेथी आमां रौद्रत्व विवक्षित छे, किंच शत्रुजन वगेरेना दर्शनथी, तेभनुं शिरच्छेदन करवा भाटे तत्पर थयेल व्यक्तिओने अने पकरा, सूकर तेभज कुरंग—हिरण वगेरे जानवरानी हिंसा करवा भाटे प्रवृत्त थयेल व्यक्तिओना जे रौद्र रस परिणाम डोय छे अने जे भ्रुकुटी—अंग वगेरे चिहोथी लक्षणेषुवां आवे छे ते पणु आ रौद्ररस स्वरूप न डोय छे. भाटे उपलक्षणथी रौद्ररस अही न लक्षणो जेधजे नडितर, रौद्राध्यवसाय इप रौद्ररस निराश्रय मानवो पडशे जेथी रौद्र परिणाम युक्त पुरुषनी चेष्टाओनुं प्रतिपादक उदाहरण न अही सूत्रकारे कथुं छे. अथ संत्रस्त व्यक्तिनी चेष्टाओनुं प्रतिपादन करनार

स्वयमेवाभ्युत्थम् । अतोदाहरणमाह-रौद्रो रसो यथा-भुक्कुटीविडम्बितमुखः-भुक्कुटिः
 -क्रोधादिना ललाटसंकोचनं तथा विडम्बितं=विकृती-भूतं मुखं यस्य स तथा,
 पुनश्च-सन्दष्टोष्ठः-सन्दष्टः=दन्तै-दष्ट ओष्ठो येन स तथाभूतः, इति=अतश्च-
 रुधिराकीर्णः-रुधिरैः आकीर्णः-शोणितसंकुलो हे भीमरसिन।-भीमं=भयंकरं
 रसितं यस्य तत्संबुद्धौ,-हे भयजनकशब्दकारिन् ! त्वम् असुरनिभ-देत्य इव पशुं
 हंसि, अतो हे अतिरौद्रं=अतिशयरौद्ररूपधारिन् ! त्वं रौद्रोऽसि=रौद्रपरिणामयुक्तो-
 ऽसीति नरकनिगोदादिदुःखं मोक्षयसे ॥ सू० १७३ ॥

हरण तो अपने आप जान लेना चाहिये । रौद्ररस का ज्ञान जिसप्रकार
 से हो सकता है सूत्रकार (रौद्रो रसो जहा) इन पदोंद्वारा उसी प्रकार के
 उदाहरणद्वारा प्रकट करते हैं-जैसे-(भिउडी विडम्बियमुहो संदष्टोष्ठहय
 रुधिरमाकिण्णो) पशुहिंसा में निरत बने हुए किसी हत्यारे मनुष्य से
 कोई धर्मात्मा मनुष्य यह कह रहा है कि अरे ! यह तेरा मुख इस
 समय भुक्कुटी से विकरालबना हुआ है । क्रोधादिक के आवेग से तेरे ये
 दांत अधरोष्ठ को डस रहे हैं । खून से तेरा शरीर लथ पथ हो रहा
 है (भीमरसिय) जो तेरे मुख से शब्द निकल रहे हैं, बड़े भयावने हैं ।
 अतः महाभयजनक शब्द बोलने वाले तुम (असुरनिभो) असुर जैसे
 बने हुए हो और (पशुं हणसि) पशुकी हत्या कर रहे हो । अतः (अह-
 रोह) अतिशय रौद्ररूपधारी तुम (रौद्रोऽसि) रौद्रपरिणामों से युक्त होने
 के कारण रौद्ररस रूप हो-सो याद रखो, नरकनिगोद आदि के दुःखों
 को भोगोगे ॥ सू० १७३ ॥

विडम्बितं तो योतानी भेजे न नाली वेपुं नोष्ठं न्ने रीते रौद्र
 रसतुं ज्ञान थछ शके छे डवे सूत्रकार (रौद्रो रसो जहा) ते प्रभाषु आ पदो
 वडे विडम्बितो प्रस्तुत करीने स्पष्ट करे छे, न्नेम डे-(भिउडी विडम्बियमुहो
 संदष्टोष्ठहयरुधिरमाकिण्णो) पशु हिंसा भाटे तत्पर थयेला डेअ धातक
 भाषुसने डेअ धर्मात्मा पुरष आ प्रभाषु कडे डे अरे ! आ ताडं मेां
 डमषां भुक्कुटीओथी विकराल भनी रछुं छे-क्रोध वगेरेना आवेगथी तारा दांत
 अधरोष्ठोने लीसी रछा छे ताडं शरीर दोहीथी भरडाअ रछुं छे, (भीमर-
 सिय) तारा वचने अती लथेत्पाडक छे, ओथी महालयजनक शब्दो गोल-
 नार तुं, (असुरनिभो) असुर न्नेवे थछ गथे छे, अने (पशुं हणसि) पशुनी
 हत्या करी रछी छे, ओथी (अहरोह) अतिशय रौद्र रूप धारीतुं (रौद्रोऽसि)
 रौद्र-परिणामथी युक्त होवा गदल रौद्ररस रूप छे तो तुं याद राण डे
 नरकनिगोद वगेरेना दुःखो लोगववा पडथे ॥ सू० १७३ ॥

अथ पञ्चमं व्रीडनकरसं सलक्षणं निरूपयति—

मूलम्—विणओवयारगुज्जगुरुद्वारमेरावइवइक्कमुप्पणो ।
 वेलणओ नाम रसो, लज्जासंकाकरणलिंगो ॥१०॥ वेलणओ रसो
 जहा—किं लोइयकरणीओ लज्जणी अतरंति लज्जयामुत्ति । वारि-
 ज्जम्मिं गुरुयणो परिवंदइ जं बहुप्पोत्तं ॥११॥सू० १७४॥

छाया—विनयोपचारगुह्यगुरुद्वारमर्यादाव्यतिक्रमोत्पन्नः । व्रीडनको नाम
 रसो लज्जाशङ्काकरणलिङ्गः ॥ व्रीडनको रसो यथा—किं लौकिककरण्या लज्जनीय-
 तरं लज्जयामीति । वारिज्जे गुरुजनः परिवन्दते यत् वधूपोतम् ॥सू० १७४॥

टीका—‘विणओ’ इत्यादि—

विनयोपचारगुह्यगुरुद्वारमर्यादाव्यतिक्रमोत्पन्नः—विनयोपचारः—विनय-
 योग्ये=मातापित्रादिगुरुजने विनयकरणम्, गुह्यं=रहस्यम्, गुरुद्वारमर्यादा=पितृ-
 व्यकलाचार्यादि गुरुजनभार्याभिः सह औचित्येन वर्तनम्, एतेषां द्वन्द्वः, तेषां
 व्यतिक्रमः=विपर्ययस्तस्मादुत्पन्नः—संजातः, तथा—लज्जाशङ्काकरणलिङ्गः—लज्जा=

अब सूत्रकार पांचवे व्रीडनक रस का लक्षण को कहते हुए
 कथन करते हैं—“विणओवयार गुज्ज” इत्यादि ।

शब्दार्थ—(विणओवयारगुज्जगुरुद्वार मेरावइक्कमुप्पणो) विनय
 करने के योग्य माता पिता आदि गुरु जनों की विनय के व्यतिक्रम-
 उल्लंघन—से मित्रादिजनों की गुप्त वार्ता आदि रूप रहस्य को अन्यजनों
 के समक्ष प्रकट करने से तथा पितृव्य—चाचा, एवं कलाचार्य आदि
 मान्यजनों की धर्मपत्नियों के साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार का अतिक्रम
 करने से व्रीडनक रस उत्पन्न होता है । (लज्जासंकाकरणलिंगो)

इसे सूत्रकार पांचमो व्रीडनक रसनुं लक्षणसहित कथन करे छे—

“विणओवयारगुज्ज” इत्यादि—

शब्दार्थ—(विणओवयारगुज्जगुरुद्वारमेरावइक्कमुप्पणो) विनय करवा
 योग्य मातापिता वगेरे गुरुओनी साथे अविनयपूर्व व्यवहार करवाधी,
 मित्र वगेरेनी गुप्त वात वगेरे रूप रहस्यने भीलओनी साथे प्रकट करवाधी
 तेमन् पितृव्य (काका) अने कलाचार्य वगेरे मान्यजनोनी धर्मपत्नीओ साथे
 औचित्यपूर्व व्यवहारना अतिक्रम करवाधी आ व्रीडनक रस उत्पन्न थाय
 छे. (लज्जा-संका करणलिंगो) लज्जा अने शंका उत्पन्न थवी ते आ रसनुं

शिरोऽधोऽवनमनादिरूपा, शङ्का=मां न कश्चित् किञ्चिद् वदे ? दितिरूपा, तयोः करणं=विद्यानं लिङ्गं=लक्षणं यस्य स तथाभूतो व्रीडनको नाम रसो भवति । अयं भावः-विनययोग्यानां मातापित्रादिपूज्यजनानां विनयोपचारव्यतिक्रमे सति सज्जनस्य पश्चाद् व्रीडा प्रादुर्भवति-अहो ! मया कथं मातापित्रादीनामपमानः कृतः ? इति, तथा-सुहृदां रहस्यस्य अन्यजनसन्निधौ कथने पश्चाद् सज्जनस्य व्रीडा भवति-कथं मया सुहृदो रहस्यमन्यजनसन्निधौ निवेदितम् ? इति, तथा-पितृव्यकलाचार्यादिगुरुजनानां भार्याणां शीलभङ्गे कृते सति पश्चाद् व्रीडा समुत्पद्यते-अहो ! मया दुरात्मना किमिदं दुष्कृतं कृतम् ? इति इत्येवं रूपेण व्रीडनको रसः समुत्पद्यते । तथा च-शिरोऽधोऽवनमनात्रसंकोचरूपा लज्जा, मां

लज्जा और शंकाकरना ये इस रस के चिह्न होते हैं । ऐसा (बेलणओ नाम रसो) यह व्रीडनक नाम का रस होता है । तात्पर्य इसका यह है कि- ' विनय योग्य पूज्य माता पिता आदि गुरुजनों का यथायोग्य विनयोपचार जब उल्लंघित हो जाता है, तब सज्जन पुरुषों को बाद में लज्जा आती है । वे विचारते हैं कि अरे ! हमने क्यों माता पिता आदि जनों का अपमान किया है ? तथा अपने मित्रजनों का रहस्य जब दूसरे व्यक्तियों के पास प्रगट करता है, तब बाद में उस उद्घाटनकर्त्ता सज्जन को लज्जा आती है और वह सोचता है कि- ' क्या मैंने दूसरों के समक्ष अपने मित्र के रहस्य का उद्घाटन किया ? तथा-पितृव्य, कलाचार्य आदि गुरुजनों की भार्याओं का शीलभंग कर देने पर मनुष्य को बाद में व्रीडा उत्पन्न होती है । वह सोचता है-सुप्त दुरात्माने यह दुष्कृत क्यों किया ? इस प्रकार से यह व्रीडनक रस उत्पन्न होता है । शिर को नीचा नमाना शरीर को संकुचित करना इस

चिह्न छे. अथे व्रीडनक नामे रस उवाच छे. तात्पर्य आ प्रभाषे छे के विनय योग्य पूज्य मातापिता वगेरे गुरुजनो साथेनो उचित विनयोपचार न्यारे सज्जनो वडे उल्लंघित थाय छे त्यारे तेभने लज्जानी अनुभूति थाय छे. तेभो विचार करे छे, के ' अरे ! अमे मातापिता वगेरेनु' अपमान कथु' छे. ' तेभज भाषुस पोताना मित्रोनी सुप्त वात न्यारे धीलने कडे छे त्यारे तेभे सुप्त वात कथा आद लज्जानी अनुभूति थाय छे अने ते विचार करे छे के ' अरे ! मे' दुरात्माअे आ काम शु' काम कथु' ? ' आ प्रभाषे ते व्रीडनक रस उत्पन्न थाय छे लज्जामां भस्तक नीचे थपु' अने शरीर संकुचित

कश्चित् कश्चित् किमपि कथयिष्यति तु न? इत्येवं सर्वत्र या मनसोऽभिशङ्कना सा शङ्का, तयोः करणं=निष्पादनमेवास्य लक्षणमिति । अस्योदाहरणमाह-व्रीडनको रसो यथा-लौकिककरण्याः=लौकिकक्रियायाः परं लज्जनीयतरम्=अतिशयलज्जास्पदं किमस्ति? नातः परं किमपि लज्जास्पदमस्तीत्यर्थः, इत्यतोऽहं लज्जे । लज्जायां हेतुमाह-यत्=यस्मात् कारणात् वारिज्जन्मि देशी शब्दोऽयम्, विवाहे वधूवरयोः प्रथमसंगमे जाते 'वारिज्जन्मि विवाहे इत्यर्थः गुरुजनः=श्वश्रुश्वशुरादिः वधूपोतं=स्तुषापारिधानवस्त्रं परिवन्दते=नमस्करोति । अस्य गाथाया अवतरणमेवं बोध्यम्-कस्मिंश्चिद् देशेऽयं व्यवहारोऽस्ति, यत् वधूवरयोः प्रथम-

रूप 'लज्जा' होती है । 'मुझसे कोई कुछ कहेगा तो नहीं?' इस प्रकार सर्वत्र जो मने में आशंका बन जाती है उसका नाम 'शंका' है । लज्जा और शंका इनका उत्पन्न करना ही इस व्रीडनक रस के लक्षण हैं । इसका ज्ञान जिस प्रकार से होता है, सूत्रकार उस प्रकार को (बेलणभो रसो जहा) इन पदों द्वारा प्रकट करने की सूचना देते हैं । वे कहते हैं कि-'यह व्रीडनक रस इस प्रकार से है ।' जैसे-(किं लोह्यकरणीभो लज्जणीअतरं ति लज्जया मुत्ति) इस लौकिकक्रिया से अधिक और लज्जास्पद बात क्या हो सकती है ? मैं तो इससे बहुत लजाती हूँ । (वारिज्जन्मि गुरुजणो परिवंदइ जं बहुप्पोत्तं) वधूवर के प्रथम संगम होनेपर गुरुजन-सास ससुर आदि-जो वधूपोत को-बहु द्वारा परिघृत वस्त्र की प्रशंसा करते हैं । इस गाथा का अवतरण इसप्रकार से है-किसी देश में ऐसे चाल है-कि 'जब वधूवर का

करवुं थाय छे 'मने कोध कंथ कडेशे तो नहीं?' आ प्रभावे मनमां ने आशंकाओ उत्पन्न थाय छे ते 'शंका' छे लज्जा अने शंका उत्पन्न थपी तेण व्रीडनक रसनुं लक्षण छे आ रसनुं ज्ञान डेवुं डोय छे, सूत्रकार ते विषयमां कडे छे के 'आ व्रीडनकरस आ प्रभावे छे. नेम के (किं लोह्यकरणीभो लज्जणीअतरं ति लज्जया मुत्ति) आ लौकिक व्यवहारथी वधादे कंथ लज्जास्पद वात थथ शके छे ? 'मने तो अनाथी भहुण शरम आवे छे.' (वारिज्जन्मि गुरुजणो परिवंदइ जं बहुप्पोत्तं) मने तो आनाथी भहुण शरम आवे छे (वारिज्जन्मि गुरुजणो परिवंदइ जं बहुप्पोत्तं) वधू-वरना प्रथम-समागम यही गुणनो-सासुससुरा वगेरे-वहुओ पहरेला वस्त्रना वभाषु करे छे. आ गाथानुं अवतरणु आ प्रभावे छे-कोध ओक

सूत्रमे यदि वध्वा निवसनं शोणिताभिषिक्तं भवति, तदा सा पूर्वमकृतसंगमाऽतः सती वर्तते इति लोका मन्यन्ते । तस्यास्तद्वक्तारुणितं वसनं तत्सतीत्वख्यापनार्थं प्रतिगृहे भ्राम्यते । तस्याः श्वशुरादयो गुरुजना बहुमानपुरस्सरं तद्वस्त्रं वन्दते । अमुं देशाचारमनुसृत्य कस्याश्चिद्वध्वास्तथाविधं निवसनं प्रतिगृहं नीयते गुरुजनैश्च तद्वन्द्यते । तद् दृष्ट्वा वधूः स्वसखीं वदति - 'किं लोह्यकरणीओ' इत्यादि ॥ सू. १७४ ॥ इति श्री विश्वविख्यात जगद्ब्रह्मादिपदभूषित बालब्रह्मचारी 'जैनाचार्य' पूज्यश्री घासीलालव्रतिविरचिता "अनुयोगद्वारसूत्रस्य" अनुयोगचन्द्रिकाख्यायां टीकायां प्रथमो भागः समाप्तः

सुहागरात्रि में प्रथम संगम होता-है-तब उस संगम में-यदि वधूका पहिरा हुआ वस्त्र-खून से युक्त होता तो, उससे वह ऐसी जानी जाती है कि- 'यह पहिले अकृतसंगमा रही है अतः सती है । ऐसा लोग मानते हैं । उसके उस रुधिररक्त-वस्त्र को हर एक घर-में उसके सतीत्व के ख्यापन के लिये घुमाया जाता है । उसके श्वशुर आदि गुरुजन बहुमान पुरस्सर उस वस्त्र की प्रशंसा करते हैं । इसी देशाचार को लेकर किसी वधू के उस प्रकार के वस्त्र को गुरुजनों द्वारा वंदित होता हुआ देख-कर किसी वधू ने अपनी सखी से ऐसा कहा है-कि" किं लोह्यकरणीओ इत्यादि । ॥ सू० १७४ ॥

जैनाचार्यश्री घासीलालजीमहाराजकृत 'अनुयोगद्वार' सूत्र की अनुयोगचन्द्रिकाटीका का प्रथम भाग समाप्त

इशमां ऐवी प्रथा छे के न्यारे सुहागरात्रिमां वधुवरनो प्रथम-समागम थाय छे त्यारे ते संगममां ले वधुऐ पड़ेरुं वस्त्र बोडीवाणुं थधं नय छे तां तेथी ऐम मानवामां आवे छे के ते स्त्री पड़ेला अकृतसंगमां रही छे. ऐथी ते सती छे. ऐवुं बोडेा माने छे तेथी वधुना ते बोडीथी भरडायेला वस्त्रने तेना सतीत्वनी प्रसिद्धि भाटे हरेके हरेके घरमां भताववामां आवे छे तेना श्वसुरे वगेरे गुरुजनो लारे सन्मानपूर्वक ते वस्त्रोना भूषण वधावुं करे छे. आ जतना बोडाचारने अनुलक्षिने केछं ऐक वधुना वस्त्रने गुरुजनो वडे प्रशंसित धनुं लेधने ते वधुऐ पोतानी सखीने आ प्रभाणे कथं छे के- " किं लोह्यकरणीओ इत्यादि " ॥ सू० १७४ ॥

जैनाचार्य श्री घासीलालजीमहाराजकृत 'अनुयोगद्वार सूत्र' की अनुयोग-चन्द्रिकाटीकाने पड़ेला भाग समाप्त.

